सूक्ष्म (या व्यष्टि) अर्थशास्त्र

[MICRO ECONOMICS]

[राजस्थान विश्वविद्यालय के बी. ए. (द्वितीय वर्ष) के नवीनतम् पाठ्यक्रमानुसार]

साहित्य भवन, आगरा-३

प्रथम संस्करण : १९६७
द्वितीय संस्करण : १९६८
तृतीय संस्करण : १९६९

: सोलह रुपये

प्रस्तुत संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक राजस्थान विश्वविद्यालय के बी० ए० द्वितीय वर्ष के अर्थशास्त्र के प्रथम प्रश्न-पत्र : सूक्ष्म (या व्यष्टि) अर्थशास्त्र (Micro Economics) के लिए है।

'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' में हम व्यक्तिगत इकाइयों (individual units) का अध्ययन करते हैं। 'परिचय' (Introduction), 'उपभोग' (Consumption), 'उत्पादन' (Production), 'वस्तु-मूल्य निर्धारण' या 'विनिमय' (Commodity Pricing or Exchange), तथा 'वितरण' (Distribution)—इन सब खण्डों या भागों मे 'सूक्ष्म या व्यष्टि दृष्टिकोण (Micro approach) से ही मेरी पुस्तक 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' मे विषय-सामग्री का विवेचन है जैसा अन्य सभी पुस्तको में किया जाता है। उपर्युक्त पाँचों भागो की विषय-सामग्री को ही 'सूक्ष्म या व्यष्टि अर्थशास्त्र'(Micro-Economics) कहा जाता है। इसको 'मूल्य-सिद्धान्त' ('Price Theory') के एक दूसरे नाम से भी पुकारा जाता है।

दूसरे शब्दों मे 'परिचय', 'उपभोग', 'उत्पादन', 'वस्तु-मूल्य निर्धारण या विनिमय' तथा 'वितरण' की विषय सामग्री के लिए 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' (Principles of Economics) या 'मूल्य-सिद्धान्त' (Price Theory) या 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' (Micro Economics) किसी भी नाम का प्रयोग किया जा सकता है जैसा कि विभिन्न विश्वविद्यालयो मे किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक मेरी पुस्तक 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' का पूर्णतया सशोधित तृतीय संस्करण है जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय के बी० ए० द्वितीय वर्ष के अर्थशास्त्र के प्रथम प्रश्न-पत्र 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' (Micro Economics) के कोर्स को पूरा करती है। विद्यार्थियों को कौन-कौन से अध्याय पढ़ने हैं इस दृष्टि से (Micro Economics के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए) विशेष तौर पर विषय-सूची बनायी गयी है जिससे विद्यार्थियो को लेशमात्र भी कठिनाई न हो।

Micro Economics के कोर्स में 'पैमाने का प्रतिफल' (Returns to Scale) तथा 'साधनो का अनुकूलतम संयोग' (Optimum Combination of Factors) को शामिल किया गया है, जिसको पूर्णतया समझने के लिए 'सम-उत्पाद रेखाओं' (Iso Product Curves) को पढना तथा समझना आवश्यक है, इसको बहुत ही अच्छे ढंग से मैंने अपनी पुस्तक के इस तृतीय संस्करण मे 'खण्ड ३ : उत्पादन' के पृष्ठ ४५७ पर परिशिष्ट १ में दिया है।

मेरी पुस्तक मे Micro Economics के पाठ्यक्रम की दृष्टि से केवल निम्न दो अध्याय नहीं हैं जिनकी एक पूरक पुस्तिका (Supplement) शीघ्र ही विद्यार्थियों को प्राप्त हो जायेगी :

१. आर्थिक प्रणाली के कार्य (Economic Functions of an Economic System)

२. पैमाने का प्रतिफल तथा साधनों का अनुकूलतम संयोग (Returns to Scale and Optimum Combination of Factors)।

[illegible]टी स्टेशन रोड, आगरा

के० पी० जैन

सूक्ष्म (या व्यष्टि) अर्थशास्त्र
[MICRO ECONOMICS]

विषय-सूची

भाग 1 परिचय
[INTRODUCTION]

भाग 2 उपभोग [CONSUMPTION]

भाग 3 उत्पादन [PRODUCTION]

भाग 4 वस्तु मूल्य-निर्धारण [COMMODITY PRICING]

Monopoly in the short period and the long period.

भाग 5

वितरण
[DISTRIBUTION]

Factor Price Determination

नोट : एक पृथक पुस्तिका (Supplement) निम्न अध्यायों की शीघ्र ही प्राप्य होगी :

१. आर्थिक प्रणाली के कार्य (Economic Functions of an Economic System)

२. पैमाने का प्रतिफल तथा साधनों का अनुकूलतम संयोग (Returns to Scale and Optimum Combination of Factors)।

परिचय
[INTRODUCTION]

I
प्रथम भाग

अर्थशास्त्र की परिभाषा
[DEFINITION OF ECONOMICS]

आर्थिक विश्लेषण
(ECONOMIC ANALYSIS)

अर्थशास्त्र का जन्म सन् १७७६ में एडम स्मिथ (Adam Smith) की पुस्तक 'राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की जाँच' (An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations) के प्रकाशन के साथ हुआ। इस शास्त्र के जन्म के समय इसका नाम 'राज्य अर्थ-व्यवस्था' (Political Economy) था, और यह नाम लगभग एक शताब्दी तक प्रचलित रहा। सन् १८९० में प्रो० मार्शल ने अर्थशास्त्र की अपनी विख्यात पुस्तक का नाम 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' (Principles of Economics) रखा। इस प्रकार इस शास्त्र का नाम 'राज्य अर्थ-व्यवस्था' से बदलकर 'अर्थशास्त्र' हो गया। अर्थशास्त्र के नाम बदलने का मुख्य कारण यह था कि १९वीं शताब्दी के अन्त तक, जबकि मार्शल की पुस्तक प्रकाशित हुई थी, अर्थशास्त्र के क्षेत्र का पर्याप्त विकास हो चुका था, इसलिए मार्शल ने अर्थशास्त्र का 'राज्य अर्थ-व्यवस्था' जैसा नाम उचित नहीं समझा और उसके स्थान पर 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' अर्थात् 'अर्थशास्त्र' नाम का प्रयोग किया।

मार्शल के पश्चात् सभी अर्थशास्त्रियों ने इस नये शब्द 'अर्थशास्त्र' को स्वीकार किया और तब से यही नाम प्रचलित चला आ रहा है। परन्तु वर्तमान समय में 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' के स्थान पर 'आर्थिक विश्लेषण' नाम का प्रयोग करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। उदाहरणार्थ, प्रो० बोल्डिंग (Prof. K. E. Boulding) ने अपनी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त पर लिखी पुस्तक का नाम आर्थिक विश्लेषण' (Economic Analysis) रखा है। वास्तव में, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए आर्थिक यन्त्र (economic tools) प्रस्तुत करते हैं। अतः बहुत से आधुनिक अर्थशास्त्री 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' के अर्थ में 'आर्थिक विश्लेषण' के नाम को अधिक पसन्द करते हैं, इसलिए अब इस नाम का प्रयोग बहुत होने लगा है।

परिभाषा की समस्या
(PROBLEM OF DEFINITION)

अर्थशास्त्र की परिभाषा बताने तथा इस पर विचार करने से पूर्व इस सम्बन्ध में दो बातें जानना आवश्यक है: प्रथम, अर्थशास्त्र के विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है, अतः इस शास्त्र की अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं। दूसरे, अर्थशास्त्रियों का एक समूह ऐसा भी है जिसका यह मत है कि अर्थशास्त्र की परिभाषा देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

जहाँ तक अर्थशास्त्र की अनेक परिभाषाओं का प्रश्न है, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि किसी भी शास्त्र की परिभाषा उस शास्त्र के क्षेत्र तथा विकास की स्थिति पर निर्भर करती है।

चूंकि विगत १६२ वर्षों में अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र में बहुत विस्तार हुआ है, अतः अर्थशास्त्र परिभाषा में एक सीमा तक भिन्नता पाया जाना स्वाभाविक है। दूसरे, जैसा कि पूर्व गया है, अर्थशास्त्रियों का एक ऐसा समूह है जो अर्थशास्त्र की परिभाषा की आवश्यकता समझता। इस समूह के पुराने अर्थशास्त्रियों में रिचार्ड जोन्स (Richard Jones) और कु (Comte) तथा नये अर्थशास्त्रियों में जैकब वीनर (Jacob Viner), मौरिस डोब (Mau Dobb), वॉन माइजेस (Von Mises), गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal) आदि के नाम हैं। इन अर्थशास्त्रियों का मत है कि अर्थशास्त्र की एक परिभाषा देना कठिन है, क्यों इसके क्षेत्र के विकास के कारण जो परिभाषा आज दी जाती है वह कल उचित नहीं रह जाती पुनः, चूंकि अर्थशास्त्र तथा अन्य शास्त्रों में गहरा सम्बन्ध है, इसलिए भी अर्थशास्त्र की एक निश्चि परिभाषा देना कठिन है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र की परिभाषा की बारीकि (niceties) में पड़ने से कोई लाभ नहीं। जैकब वीनर का कहना है कि "अर्थशास्त्र वह है जो अर्थशास्त्री करते हैं।"[1]

वास्तव में, अर्थशास्त्र की परिभाषा देना आवश्यक है। **प्रथम,** यदि अर्थशास्त्र की परिभा देकर उसके क्षेत्र को सीमित नहीं किया जा सकता है तो अर्थशास्त्रियों को बहुत अधिक स्वतन्त्र मिल जायेगी, वे इसका दुरुपयोग कर सकते हैं तथा ऐसी बातों को अर्थशास्त्र के अन्तर्गत सकते हैं जिनका अर्थशास्त्र से कोई भी सम्बन्ध न हो। **दूसरे,** यद्यपि अर्थशास्त्र की समस्य को भली प्रकार से समझने के लिए अन्य सामाजिक शास्त्रों (जैसे, समाजशास्त्र, इतिहास, राजनी मनोविज्ञान) का अध्ययन आवश्यक है, तथापि इसके साथ ही अर्थशास्त्र के विद्यार्थी को अध्ययन के आधार के लिए परिभाषा का होना आवश्यक है। वास्तव में, परिभाषा पर विच विनिमय अर्थशास्त्र की मूल धारणा के स्पष्टीकरण के लिए बहुत उपयोगी है।

अर्थशास्त्र की परिभाषा
(DEFINITION OF ECONOMICS)

अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में बहुत मतभेद पाया जाता है। कारण प्रो० केंज (J. N. Keynes) को यह कहना पड़ा कि "राज्य अर्थ-व्यवस्था ने भाषाओं में [illegible] लिया है।"[2] ज्यूथन (Zuthen) के शब्दों में, "अर्थशास्त्र एक विज्ञान (unfinished science) है।"[3] उसकी सीमाएँ अभी पूर्णतया निश्चित नहीं हो पा [illegible] विकास हो रहा है। अतः ऐसी स्थिति में अर्थशास्त्र की परिभाषा में एक [illegible] पाया जाना स्वाभाविक है, क्योंकि किसी भी शास्त्र की परिभाषा उसके क्षेत्र तथा [illegible] पर निर्भर करती है।

अर्थशास्त्र की बहुत अधिक परिभाषाओं की कठिनाई से बचने तथा अध्ययन की [illegible] की परिभाषाओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) 'धन' परि ('Wealth' Definitions); (२) 'कल्याण' परिभाषाएँ ('Welfare' Definitions); (३) 'दुर्लभता' परिभाषा ('Scarcity' Definition)।

'धन' परिभाषाएँ
('WEALTH' DEFINITIONS)

'धन' परिभाषाएँ तथा उनकी व्याख्या— प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को 'धन का ज्ञान' (Science of Wealth) कहकर परिभाषित किया। अर्थशास्त्र के जन्मदाता एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक का नाम 'राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की खोज' (An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations) रखा। अत. एडम स्मिथ के अनुसार, "अर्थशास्त्र [illegible]

[illegible] धन के उस भाग का नाम है जिसका सम्बन्ध धन से है।"[6] इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इस युग में धन पर विशेष बल दिया गया।

इन परिभाषाओं की आलोचना

एडम स्मिथ तथा उनके समर्थकों की परिभाषाओं में कई कमियाँ थीं जिनके कारण उनकी तीव्र आलोचनाएँ हुई जो निम्नलिखित हैं :

(१) इन परिभाषाओं में धन पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया, यहाँ तक कि धन को एक साध्य (goal or end) मान लिया गया। परन्तु धन की प्राप्ति साध्य नहीं बल्कि साधन है जिसकी सहायता से मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। धन पर अत्यधिक जोर देने के कारण कारलाइल (Carlyle), रसकिन (Ruskin) आदि विद्वानों ने अर्थशास्त्र को 'कुबेर की विद्या' (Gospel of Mammon) 'घृणित विज्ञान' (Dismal Science), 'रोटी-मक्खन का शास्त्र' (Bread and Butter Science) कहकर कड़ी आलोचनाएँ की।

(२) एडम स्मिथ ने एक 'आर्थिक मनुष्य' (Economic Man) की कल्पना कर डाली। उनके अनुसार मनुष्य धन की प्रेरणा तथा अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर ही कार्य करता है तथा उनकी स्वार्थ वृद्धि से सामूहिक हित में भी वृद्धि होती है। परन्तु ऐसा सोचना गलत है। 'वास्तविक मनुष्य' धन की प्रेरणा के अतिरिक्त अन्य भावनाओं से भी प्रेरित होता है तथा व्यावहारिक जीवन में व्यक्तिगत हितों तथा सामूहिक हितों में प्रायः विरोधाभास पाया जाता है।

(३) ये परिभाषाएँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र को बहुत संकुचित कर देती हैं क्योंकि इनके अन्तर्गत केवल उन्हीं मनुष्यों का अध्ययन किया जायेगा जिनका सम्बन्ध धन के उत्पादन तथा उपभोग से हो। इन सब दोषों के कारण १९वीं शताब्दी के अन्त में इन परिभाषाओं को त्याग दिया गया।

'कल्याण' परिभाषाएँ
('WELFARE' DEFINITIONS)

मार्शल प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने १९वीं शताब्दी के अन्त में अर्थशास्त्र को अपयश के गर्त से निकाल कर उसे एक आदरयुक्त स्थान दिया। उन्होंने बताया कि धन साध्य नहीं है, (जैसा कि प्राचीन अर्थशास्त्री सोचते थे), बल्कि वह साधनमात्र है जिसकी सहायता से मानव कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार, मार्शल ने धन पर से बल हटाकर मनुष्य तथा मनुष्य के हित

---

4 "Economics is a subject concerned with an enquiry into the nature and causes of wealth of nations." —Adam Smith

5 "Economics is the science which treats of wealth." —J. B. Say

6 "Political economy or Economics is the name of that part of knowledge which relates to wealth." —F. A. WalKer, *Political Economy*, 1883

या कल्याण पर अधिक बल दिया। वास्तव में, मार्शल अर्थशास्त्र को 'सामाजिक उन्नति का एक यन्त्र' (an engine of social betterment) बनाना चाहते थे। इस दृष्टि से मार्शल ने अर्थशास्त्र को परिभाषित किया।

मार्शल की अर्थशास्त्र की परिभाषा—मार्शल के अनुसार, "अर्थशास्त्र मानव जीवन के सामान्य व्यवसाय का अध्ययन है। इसमें व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्रियाओं के उस भाग की जाँच की जाती है जिसका भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति और उपयोग से बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है।"[7]

मार्शल की इस परिभाषा के प्रकाशित होने पर इससे मिलती-जुलती और कई परिभाषाओं की रचना की गयी। **प्रो० केनन** (Cannan) के अनुसार, " 'राजनीतिक अर्थशास्त्र' का उद्देश्य उन सामान्य कारणों की व्याख्या करना है जिन पर मनुष्य का भौतिक कल्याण निर्भर है।"[8] थोड़े से परिवर्तन के साथ **प्रो० पीगू** (Pigou) ने अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी है, "हमारी जाँच का क्षेत्र सामाजिक कल्याण के उस भाग तक सीमित हो जाता है जो कि द्रव्य के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष मापदण्ड से सम्बद्ध किया जा सकता हो?"[9]

मार्शल, केनन, पीगू की परिभाषाएँ लगभग एक सी हैं। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र में उन मानवीय प्रयत्नों का अध्ययन किया जाता है जो धन से सम्बन्धित हैं और जिनसे मानव के भौतिक सुखों में वृद्धि होती है। अब 'धन' के स्थान पर 'मनुष्य' तथा 'मनुष्य के हितों' पर अधिक जोर दिया जाने लगा तथा अर्थशास्त्र अब एक श्रेष्ठ सामाजिक विज्ञान माना जाने लगा।

मार्शल की परिभाषा की व्याख्या

मार्शल की परिभाषा का विश्लेपण करने पर निम्न विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

(१) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र का विषय मनुष्य है, उन्होंने **धन की अपेक्षा मनुष्य तथा मनुष्य के हितों पर अधिक जोर** दिया। यह बात मार्शल के इस कथन से स्पष्ट है : "इस प्रकार, यह (अर्थशास्त्र) एक ओर तो धन का अध्ययन है और दूसरी ओर, जो कि अधिक महत्त्वपूर्ण है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।"[10] संक्षेप में, अर्थशास्त्र में **भौतिक कल्याण का अध्ययन** किया जाता है। (२) अर्थशास्त्र में सामाजिक (Social), सामान्य (Normal) तथा वास्तविक (Real) मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अतः मार्शल ने **अर्थशास्त्र के सामाजिक विज्ञान (Social Science) होने पर जोर** दिया। (३) अर्थशास्त्र में **मनुष्य के जीवन के साधारण व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन** किया जाता है। इसका अर्थ उन क्रियाओं से लगाया जाता है जो धन के उत्पादन, विनिमय, उपभोग तथा वितरण से सम्बन्धित हैं।

---

7 "Economics is a study of mankind in the ordinary business of life; it examines that part of individual and social action which is most closely connected with the attainment and with the use of material requisites of well-being."

—Marshall, *Principles of Economics*, p. 1

8 "The aim of Political Economy is the explanation of the general causes on which the material welfare of human beings depends.

--Cannan, *Wealth*, p. 17

9 "The range of our enquiry becomes restricted to that part of social welfare which can be brought directly or indirectly into relationship with the measuring rod of money."

—*Economics of Welfare*, p. 11

10 "Thus, it (*i. e.*, Economics) is on the one side, a study of wealth, and on the other and more important side, a part of the study of man."

—Marshall, *Economics of Industry*, p. 1

'कल्याण' परिभाषाओं (या मार्शल की परिभाषा) की आलोचना

मार्शल, पीगू, केनन इत्यादि अर्थशास्त्रियों की 'कल्याण' परिभाषाओं की कड़ी आलोचनाएँ की गयी हैं। ये आलोचनाएँ मुख्य रूप से प्रो० रोबिन्स ने की हैं। मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) ये परिभाषाएँ 'श्रेणी-विभाजक' (Classificatory) हैं, 'विश्लेषणात्मक' (Analytical) नहीं—(अ) मार्शल ने अर्थशास्त्र के अध्ययन को केवल भौतिक साधनों की प्राप्ति तथा उपभोग तक ही सीमित रखा। परन्तु प्रो० रोबिन्स का कथन है कि 'भौतिक' और 'अभौतिक' वस्तुओं के बीच अन्तर सदा स्पष्ट नहीं होता और न ऐसा वर्गीकरण करना ठीक ही है।[11] डाक्टरों, वकीलों इत्यादि की सेवाओं में कोई भी भौतिकत्व नहीं है, परन्तु फिर भी अर्थशास्त्र में उनका अध्ययन किया जाता है, और वे मानवीय कल्याण में अत्यन्त सहायक हैं। (ब) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, अनार्थिक क्रियाओं का नहीं। रोबिन्स का कथन है कि मनुष्य के कार्यों को आर्थिक तथा अनार्थिक क्रियाओं में बाँटना अनुचित तथा असम्भव है।[12] रोबिन्स के अनुसार केवल धन से सम्बन्धित होने या न होने से कोई क्रिया आर्थिक या अनार्थिक नहीं हो जाती है, परन्तु अर्थशास्त्र में सीमित साधनों (धन तथा समय) से प्रभावित होने वाले मानव व्यवहार (अर्थात् मानव व्यवहार के चुनाव सम्बन्धी पहलू) का अध्ययन किया जाता है। (स) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय के सम्बन्ध में मानव जाति का अध्ययन है। परन्तु क्रियाओं को इस प्रकार 'साधारण व्यवसाय' तथा 'असाधारण व्यवसाय' में बाँटना बिलकुल ही अनुचित है। पुनः, 'असाधारण व्यवसाय' में मनुष्य की कौनसी क्रियाएँ आती हैं और उनका अर्थशास्त्र में अध्ययन क्यों नहीं किया जाता, इन सब बातों पर मार्शल ने कोई प्रकाश नहीं डाला है।

(२) कल्याण तथा अर्थशास्त्र (Welfare and Economics)—रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र का कल्याण से सम्बन्ध स्थापित करना ठीक नहीं है। प्रथम, बहुत सी क्रियाएँ, जैसे शराब तथा अन्य मादक वस्तुओं का उत्पादन तथा बिक्री, मानव कल्याण के लिए हितकर नहीं हैं परन्तु फिर भी इनका अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। दूसरे, मानव कल्याण एक मनोवैज्ञानिक (psychological) विचार है जो प्रत्येक व्यक्ति या एक ही व्यक्ति के सम्बन्ध में समय-समय पर परिवर्तित होता रहता है, उसे परिमाणात्मक रूप से (quantitatively) मापा नहीं जा सकता। कल्याण को मापने के लिए द्रव्यरूपी पैमाना अपर्याप्त है।

(३) अर्थशास्त्र उद्देश्यों (ends) के प्रति तटस्थ (neutral) है—अर्थशास्त्र का कल्याण के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का अर्थ यह हो जाता है कि अर्थशास्त्री को कार्यों की अच्छाई तथा

---

11 रोबिन्स का कथन कि "मजदूरी का ऐसा कोई सिद्धान्त उचित नहीं कहा जा सकता जो कि उन सब भुगतानों पर ध्यान नहीं देता है जो अभौतिक सेवाओं के लिए दिये जाते हैं अथवा अभौतिक उद्देश्यों पर व्यय किये जाते हैं।"

"A Theory of Wages which ignored all those sums which were paid for immaterial services or were spent on immaterial end would be intolerable"

12 एक व्यक्ति की एक ही क्रिया एक समय में आर्थिक तथा दूसरे समय में अनार्थिक हो सकती है। उदाहरणार्थ, कवि सम्मेलन में एक कवि की कविता पढ़ने की क्रिया आर्थिक हो जाती है क्योंकि उसको कविता-पाठ के लिए धन के रूप में पुरस्कार मिलता है। परन्तु यदि वह यह कविता मित्रों के बीच सुनाता है तो उसकी क्रिया अनार्थिक हो जाती है।

बुराई के सम्बन्ध में निर्णय (judgement) देना होगा। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र एक आदर्शात्मक विज्ञान (Normative Science) हो जाता है। परन्तु रोबिन्स ने इसकी कड़ी आलोचना की है। उनके अनुसार अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान है जो कि जैसी स्थिति है, उसका वैसा ही अध्ययन करता है, वह अच्छी है या बुरी है इस सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं दे सकता। किसी कार्य की अच्छाई या बुराई बताने का कार्य तो नीतिशास्त्र का है। यदि अर्थशास्त्री नैतिक निर्णय (moral judgement) देने लगता है, तो वह अर्थशास्त्र के क्षेत्र के बाहर चला जाता है और दूसरे शास्त्र अर्थात् नीतिशास्त्र के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है जो कि उचित नहीं है। अतः रोबिन्स ने कहा है कि "अर्थशास्त्र का सम्बन्ध चाहे किसी से भी हो, इतना निश्चय है कि इसका सम्बन्ध भौतिक कल्याण के कारणों से नहीं है।"[13]

(४) अर्थशास्त्र केवल एक सामाजिक विज्ञान (Social Science) ही नहीं, बल्कि मानव विज्ञान (Human Science) है—मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है एवं इसका क्षेत्र समाज के अन्दर रहने वाले मनुष्यों के आर्थिक कार्यों तक ही सीमित है। परन्तु रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र एक मानव विज्ञान है और इसमें सभी मनुष्यों का अध्ययन होता है, चाहे वे समाज के अन्दर रहते हों या बाहर। अर्थशास्त्र के कई नियम (जैसे उपयोगिता ह्रास नियम) सभी व्यक्तियों पर लागू होते हैं चाहे वे समाज के बाहर रहते हों या अन्दर।

(५) अर्थशास्त्र का क्षेत्र अधिक संकुचित (narrow) हो जाता है—'कल्याण' परिभाषाएं वर्गकारिणी (classificatory) हैं, अर्थात् इनमें एक प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जबकि दूसरी प्रकार की क्रियाएँ—अभौतिक साधनों की प्राप्ति तथा उपभोग, असाधारण क्रियाएँ, अनार्थिक क्रियाएँ—छोड़ दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक क्रियाओं को द्रव्यरूपी पैमाने से नापने के कारण 'वस्तु-विनिमय अर्थव्यवस्था' (Barter Economy) की क्रियाएँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र से छूट जाती हैं। इसी प्रकार मार्शल के अनुसार, असामाजिक मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र के क्षेत्र के बाहर है। अतः, यह कहा जाता है कि 'कल्याण' परिभाषाएँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक सीमित और संकुचित कर देती हैं।

उपर्युक्त आलोचनाओं के होने पर भी बहुत-से विख्यात आधुनिक अर्थशास्त्री मार्शल की परिभाषा से सहमत हैं। मार्शल की परिभाषा सरल तथा स्पष्ट है और व्यावहारिक दृष्टि से लिखी गयी है।

'दुर्लभता' परिभाषा
('SCARCITY' DEFINITION)

प्रो० रोबिन्स की परिभाषा

प्रो० रोबिन्स[14] ने 'कल्याण' परिभाषाओं के दोषों को बताते हुए न तो धन पर जोर दिया और न मनुष्य के कल्याण या हितों पर, बल्कि उन्होंने मनुष्य की असीमित आवश्यकताओं का सीमित साधनों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अर्थशास्त्र के पुराने ढांचे को, जो कि धन तथा भौतिक कल्याण पर टिका हुआ था, तोड़कर अपनी परिभाषा एक नये

---

13 "Whatever Economics is concerned with, it is not concerned with the causes of material welfare as such."

14 प्रो० रोबिन्स ने १९३२ में अपनी पुस्तक 'An Essay on the Nature and Significance of Economic Science' में अर्थशास्त्र की परिभाषा एक नये दृष्टिकोण से दी।

दृष्टिकोण[15] में दी जो इस प्रकार है : "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें साध्यों (ends) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों से सम्बन्धित मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।"[16]

रोबिन्स की परिभाषा की व्याख्या

रोबिन्स की परिभाषा के निम्न चार मूल तत्त्व हैं :

(१) साध्य (Ends)—'साध्य' का तात्पर्य आवश्यकताओं से है। मनुष्य के साध्य या उद्देश्य अर्थात् आवश्यकताएँ अनन्त तथा असीमित हैं और वह इनकी पूर्ति के लिए सतत प्रयत्न करता रहता है। (२) साधन सीमित हैं—यद्यपि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं परन्तु उनकी पूर्ति के लिए मनुष्य के पास साधन (अर्थात् समय तथा धन) सीमित हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य को आवश्यकताओं के बीच चुनाव करना पड़ता है। यहाँ एक बात यह ध्यान रखने की है कि साधनों के सीमित होने का अर्थ है कि वे माँग की तुलना में सीमित हैं, निरपेक्ष (absolute) रूप में नहीं।[17] (३) साधनों के वैकल्पिक प्रयोग (Alternative Uses)—हमारे साधन केवल सीमित ही नहीं हैं, बल्कि उनको कई प्रयोगों में उपयोग किया जा सकता है। अतः वस्तु के प्रयोग के सम्बन्ध में चुनाव की आर्थिक समस्या सदा ही हमारे समक्ष बनी रहती है। (४) उद्देश्यों के महत्त्व में भिन्नता—विभिन्न उद्देश्यों या साध्यों (अर्थात आवश्यकताओं) का भिन्न-भिन्न महत्त्व होता है। मनुष्य अपनी तीव्र आवश्यकताओं की पूर्ति पहले करने की चेष्टा करता है। अतः आवश्यकताओं की तीव्रता में भिन्नता होने के कारण उनके बीच चुनाव करने में सहायता मिलती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि असीमित आवश्यकताओं (या साध्यों) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों के बीच मानव व्यवहार (human behaviour) का रूप 'चुनाव करने' (choice-making) या 'निर्णय करने' (decision-taking) का होता है। 'इस चुनाव करने की क्रिया' (choice-making) को रोबिन्स ने 'आर्थिक समस्या' (economic problem) कहा है और बताया है कि इसी 'आर्थिक-समस्या' का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता

---

[15] यद्यपि रोबिन्स ने अर्थशास्त्र की परिभाषा के क्षेत्र में एक नया दृष्टिकोण दिया, परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि रोबिन्स के विचार एकदम उनके मौलिक विचार नहीं हैं। उनकी पुस्तक 'The Nature and Significance of Economic Science' (1932) के प्रकाशन होने से कुछ वर्ष पूर्व एक अंग्रेज अर्थशास्त्री P. H. Wicksteed (1844-1927) ने अपनी पुस्तक 'The Commonsense of Political Economy' में वे सब मूल बातें बतायी हैं जो कि हमें प्रो० रोबिन्स की परिभाषा में मिलती हैं। यह बात Wicksteed के इन शब्दों से स्पष्ट होती है : "Economics....a study of the principles of administration of resources and selection between alternatives." स्पष्ट है कि Wicksteed द्वारा बतायी गयी बात पर ही प्रो० रोबिन्स की परिभाषा आधारित है। प्रो० रोबिन्स की नवीनता इस बात में है कि उन्होंने Wicksteed के विचारों को हमारे सामने अधिक स्पष्ट, वैज्ञानिक तथा पूर्ण रूप में रखा।

[16] "Economics is the science which studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses." —L. Robbins.

[17] उदाहरणार्थ सड़े या खराब अण्डों की संख्या बहुत कम होती है परन्तु वे सीमित नहीं होते क्योंकि उनकी माँग शून्य है, जबकि अच्छे अण्डों की संख्या बहुत अधिक होने पर भी वे सीमित होते हैं, क्योंकि उनकी माँग बहुत अधिक होती है।

।[18] संक्षेप में, रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र में मानव व्यवहार के 'चुनाव करने' या 'निर्णय करने' के पहलू का अध्ययन किया जाता है। स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र चुनाव सम्बन्धी विज्ञान (Science of choice-making) है।

परन्तु इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने की है कि **'आर्थिक समस्या'** तब तक उत्पन्न नहीं हो सकती, जब तक कि उपर्युक्त चारों बातें संयुक्त रूप से उपस्थित न हों।

रोबिन्स की परिभाषा की विशेषताएँ

प्रो० रोबिन्स की परिभाषा ने अर्थशास्त्र के विषय को स्पष्ट कर दिया और इनकी परिभाषा की सहायता से ज्ञान के भण्डार में से अर्थशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान को पहचानना आसान हो जाता है। इनकी परिभाषा की निम्न मुख्य विशेषताएँ हैं :

(१) प्रो० रोबिन्स ने **अर्थशास्त्र का क्षेत्र विस्तृत कर दिया** क्योंकि इनकी परिभाषा के अनुसार मानव व्यवहार के चुनाव करने के पहलू का अध्ययन अर्थशास्त्र का क्षेत्र है। इस प्रकार रोबिन्स ने 'बल' (emphasis) को 'सामाजिक व्यवहार' (social behaviour) से हटाकर 'मानव व्यवहार' (human behaviour) पर लगा दिया। (२) रोबिन्स की **परिभाषा विश्लेषणात्मक** (analytical) है, श्रेणी-विभाजक (classificatory) नहीं। रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को 'आर्थिक' और 'अनार्थिक' क्रियाओं तथा 'भौतिकवादी' आधार से मुक्त कर दिया। उन्होंने बताया कि अर्थशास्त्र में मनुष्यों की विशेष क्रियाओं का अध्ययन नहीं किया जाता है बल्कि प्रत्येक क्रिया के 'आर्थिक पहलू' अर्थात 'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन किया जाता है। (३) रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को **केवल वास्तविक विज्ञान** (positive science) बताया, अर्थात अर्थशास्त्री उद्देश्यों के अच्छे या बुरे होने से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। अतः कल्याण अर्थशास्त्र (Welfare Economics) रोबिन्स की परिभाषा के बाहर है। रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र कला (art) भी नहीं है। (४) चूंकि रोबिन्स अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान मानते हैं, इसलिए उनकी परिभाषा का **सार्वभौमिक प्रयोग** (universal application) किया जा सकता है। यह परिभाषा पूंजीवादी तथा साम्यवादी सभी देशों में सत्य है।

रोबिन्स की परिभाषा की आलोचना

प्रो० रोबिन्स की परिभाषा भी त्रुटियों से रहित नहीं है। मार्शल की विचारधारा का अभी अन्त नहीं हुआ है। डरबिन (Durbin), वूटन (Wootton), फ्रेजर (Fraser) वेवरिज इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने मार्शल के सिद्धान्तों की बड़ी रक्षा, और रोबिन्स की परिभाषा की कड़ी आलोचना की है। रोबिन्स की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) **अर्थशास्त्र का क्षेत्र एक साथ अधिक विस्तृत तथा अधिक संकीर्ण हो जाता है** (The scope of Economics becomes at once too wide and too narrow)—यह आलोचना रोबर्टसन (Robertson) द्वारा की गयी है। एक ओर तो रोबिन्स की परिभाषा ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक व्यापक बना दिया है। रोबिन्स के अनुसार सीमित साधनों में सम

[18] इसी बात को अन्य शब्दों में भी व्यक्त किया जा सकता है। अर्थशास्त्र में उस मानव व्यवह का अध्ययन किया जाता है जो कि सीमितता (scarcity) से प्रभावित होता है, परन्तु साध की सीमितता से प्रभावित होने वाले मानव-व्यवहार का रूप 'चुनाव करने' का ही होता [illegible] में उस मानव व्यवहार का अध्ययन होता है जो कि सीमित साधनों के वित (allocation) से सम्बन्धित है, उसका अभिप्राय भी मानव व्यवहार के 'चुनाव करने के प या 'निर्णय करने के पहलू' से ही है।

भी आ जाता है। अतः समय के बीच चुनाव की क्रिया भी अर्थशास्त्र में आ जाती है। उदाहरणार्थ, यदि एक विद्यार्थी यह सोचता है कि वह कक्षा में अध्ययन के लिए बैठे या फुटबाल का मैच देखे, या कोई मनुष्य यह निर्णय करे कि वह कृष्ण की पूजा करे या राम की पूजा, तो ये क्रियाएँ भी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आ जाती हैं जबकि इनका सम्बन्ध अर्थशास्त्र से नहीं है। अतः, मार्शल की परिभाषा के फलस्वरूप द्रव्य के मापदण्ड के द्वारा अर्थशास्त्र के अध्ययन में जो निश्चितता का लाभ है वह इस परिभाषा द्वारा नहीं हो सकता।

दूसरी ओर रोबिन्स की परिभाषा अर्थशास्त्र के क्षेत्र को बहुत सीमित भी कर देती है। बेरोजगारी समस्या संगठन से सम्बन्धित दोषों (Organisational defects) के कारण तथा जनसंख्या के आधिक्य के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। रोबिन्स की परिभाषा के अनुसार बेरोजगारी की समस्या का अध्ययन अर्थशास्त्र मे नही किया जाना चाहिए क्योंकि यह समस्या साधन (मनुष्य) की सीमितता के कारण उत्पन्न नहीं होती, बल्कि बाहुल्यता का परिणाम है। इसी प्रकार 'धनी समाज' (affluent society, like America) मे कई आर्थिक समस्याएँ, जैसे 'बड़े पैमाने पर अत्यधिक उपभोग' (high mass consumption), साधनों की सीमितता के कारण नही बल्कि साधनों की प्रचुरता (abundance) के कारण उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि उपर्युक्त महत्वपूर्ण समस्याएँ अर्थशास्त्र के बाहर हो जायेंगी यदि रोबिन्स की परिभाषा को स्वीकार किया जाये।

(२) अर्थशास्त्र के सामाजिक स्वभाव (social character) पर उचित बल (emphasis) नहीं दिया गया है—रोबिन्स के अनुसार समाज से बाहर रहने वाले व्यक्तियों की क्रियाओं का भी अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र मे विज्ञान की आवश्यकता तभी होती है जबकि आर्थिक समस्याएँ सामाजिक महत्व धारण कर लेती हैं और व्यक्तियो के एक समूह की क्रियाएँ दूसरे समूह की क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। अर्थशास्त्र में व्यक्तियों तथा समूहों की क्रियाओं के सामाजिक पहलू का ही अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। रोबिन्स ने अर्थशास्त्र के सामाजिक स्वभाव पर उचित जोर नही दिया।[19]

(३) अर्थशास्त्र उद्देश्यों के बीच तटस्थ नहीं है (Economics is not neutral between ends)—(अ) रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्री उद्देश्यों की अच्छाई या बुराई के सम्बन्ध मे कुछ नही कह सकता। वास्तव मे, अर्थशास्त्र उद्देश्यो के बीच तटस्थ नही रह सकता; यदि वह रहता है, तो वर्तमान युग मे आर्थिक नियोजन का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नही रह जाता। अतः तटस्थता (neutrality) एक बड़ा धोखा (illusion) है। मार्शल के समर्थकों, जैसे वूटन (Wootton), बेवरिज (Beveridge), फ्रेजर (Fraser), डरबिन (Durbin) इत्यादि का कहना है कि अर्थशास्त्र का कल्याण से सम्बन्ध विच्छेद कर देना उचित नहीं है। ऐसा करने से अर्थशास्त्र जो कि सामाजिक

---

19 अतः केरनक्रास ने सुझाव दिया है कि अर्थशास्त्र के सामाजिक स्वभाव पर उचित जोर देने की दृष्टि से रोबिन्स की परिभाषा इस प्रकार संशोधित की जाय, "अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है जो यह अध्ययन करता है कि मनुष्य किस प्रकार सीमितता का आवश्यकताओं के साथ समन्वय करने का प्रयत्न करते हैं और किस प्रकार ये प्रयत्न विनिमय के माध्यम से एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।"

"Economics is a social science studying how people attempt to accomodate scarcity to their wants and how these attempts interact through exchange."—A. Cairncross, *Introduction to Economics* p. 12

विज्ञान है, भावहीन और मानवीय स्पर्शों से रहित हो जायेगा। अर्थशास्त्र केवल सीमित साधनों का अध्ययन नहीं है, बल्कि मानव कल्याण का भी अध्ययन है क्योंकि मानवीय कल्याण अन्तिम उद्देश्य है। (ब) आलोचकों का यह भी कहना है कि यद्यपि रोबिन्स अर्थशास्त्र का सम्बन्ध कल्याण के साथ स्थापित करने के एकदम विरुद्ध हैं, परन्तु उनकी परिभाषा में कल्याण का विचार छिपा हुआ (implicit) है। सीमित साधनों का अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस प्रकार से प्रयोग किया जाता है कि 'अधिकतम उपयोगिता' अर्थात् 'अधिकतम सन्तुष्टि' मिले, जिसका अभिप्राय है कि 'अधिकतम कल्याण' मिले। इस प्रकार से प्रो० रोबिन्स की परिभाषा में 'कल्याण का विचार' (concept of welfare) चोर-दरवाजे (back door) से प्रवेश कर जाता है। (स) प्रो० ऐरिक **रोल** (Erich Roll) ने इस सम्बन्ध में कहा है कि रोबिन्स की परिभाषा एक अर्थशास्त्री के व्यक्तित्व (personality) को दो भागों में बाँट देती है—'अर्थशास्त्री के रूप में' तथा 'नागरिक (citizen) के रूप में।' जब वह निर्णय (value judgement) देता है तब वह एक नागरिक के रूप में ऐसा करता है, परन्तु जब वह निर्णय नहीं देता तब वह एक अर्थशास्त्री के रूप में ऐसा करता है। परन्तु, जैसा कि ऐरिक रोल कहते हैं, एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को इस प्रकार विभाजित (split) नहीं किया जा सकता।

(४) **अर्थशास्त्र केवल एक विशुद्ध विज्ञान** (pure science) **ही नहीं, बल्कि कला** (art) **भी है**—रोबिन्स के हाथों में अर्थशास्त्र केवल एक विशुद्ध विज्ञान हो जाता है जिसका उद्देश्य केवल सिद्धान्त बनाना (tool-making) है और उन सिद्धान्तों का व्यवहार में प्रयोग (tool using) करना नहीं है। किन्तु यदि अर्थशास्त्र जैसा सामाजिक विज्ञान व्यावहारिक समस्याओं के हल करने से कोई सम्बन्ध नहीं रखे, तो फिर इसका कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अतः अधिकांश अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि अर्थशास्त्री को केवल 'सिद्धान्त बनाने वाला' (tool-maker) ही नहीं होना चाहिए, 'बल्कि सिद्धान्तों का प्रयोग करने वाला' (tool-user) भी होना चाहिए। रोबिन्स की पुस्तक 'Economic Planning and International Order' इस बात का प्रमाण है कि वे भी परोक्ष रूप से अर्थशास्त्र के कला होने के पक्ष को मानते हैं।

निष्कर्ष : वास्तव में, रोबिन्स की परिभाषा की आलोचनाएँ मुख्यतया इस बात पर की गयी हैं कि उन्होंने अर्थशास्त्र को उद्देश्यों के बीच तटस्थ बताया है, यह उनकी परिभाषा की सबसे बड़ी आलोचना बतायी जाती है। परन्तु रोबिन्स की परिभाषा वैज्ञानिक है और यह मुख्य आर्थिक समस्या (अर्थात् 'चुनाव करने की समस्या') को स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष प्रस्तुत (focus) करती है।

मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाओं की तुलना

अन्तर की बातें

(१) **मार्शल की परिभाषा वर्गकारिणी** (classificatory) **है जबकि रोबिन्स की परिभाषा विश्लेषणात्मक** (analytical) **है**—मार्शल ने मनुष्य की क्रियाओं को भौतिक तथा अभौतिक, आर्थिक तथा अनार्थिक, साधारण जीवन-व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाएँ तथा असाधारण क्रियाओं में विभक्त किया है और उनके अनुसार एक प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है, जबकि दूसरी प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन नहीं किया जाता है। परन्तु रोबिन्स ने क्रियाओं का इस प्रकार का वर्गीकरण नहीं किया, उनके अनुसार मनुष्य की समस्त क्रियाओं के 'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है।

(२) मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र धन से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन है, जबकि रोबिन्स के अनुसार दुर्लभ साधनों के प्रयोग से सम्बन्धित क्रियाओं का—मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में केवल उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जिनका सम्बन्ध धन से है। इस प्रकार मार्शल ने द्रव्य के मापदण्ड से अर्थशास्त्र में निश्चितता का गुण प्रदान करने का प्रयत्न किया। परन्तु रोबिन्स की परिभाषा में यह गुण नहीं रह जाता, उनके अनुसार अर्थशास्त्र में ऐसे कार्यों का भी अध्ययन किया जाता है जिनका द्रव्य से कोई सम्बन्ध नहीं, जैसे सीमित समय का विभिन्न प्रयोगों में वितरण। रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र उस मानवीय आचरण का अध्ययन करता है जो दुर्लभ साधनों से सम्बन्धित है, दुर्लभ साधनों में धन के अतिरिक्त समय भी आ जाता है।

(३) अर्थशास्त्र, मार्शल के अनुसार, सामाजिक विज्ञान है किन्तु रोबिन्स के अनुसार मानव विज्ञान—मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र एक 'सामाजिक विज्ञान' है, जिसके अन्तर्गत केवल उन मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन होता है जो कि समाज में रहते हों। परन्तु रोबिन्स के अनुसार समाज के अन्दर तथा बाहर रहने वाले सभी व्यक्तियों की क्रियाओं के 'चुनाव करने के पहलू' का अर्थशास्त्र में अध्ययन किया जाता है। रोबिन्स अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान के स्थान पर 'मानव विज्ञान' कहते हैं।

(४) अर्थशास्त्र मार्शल के अनुसार विज्ञान व कला दोनों हैं, किन्तु रोबिन्स के अनुसार केवल वास्तविक विज्ञान—मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र का आदर्शात्मक पहलू भी है और वह कला भी है। परन्तु रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान है, उसका सम्बन्ध मानव कल्याण से स्थापित नहीं किया जा सकता है और न वह कला है।

(५) मार्शल की परिभाषा व्यावहारिक है किन्तु रोबिन्स की परिभाषा सैद्धान्तिक—प्रो० मार्शल की परिभाषा सरल है तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण लिये हुए है जबकि रोबिन्स की परिभाषा वैज्ञानिक है तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण लिये हुए है।

समानता की बातें

मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाएँ कई दृष्टियों से मिलती-जुलती हैं—(i) दोनों ही अर्थशास्त्र को एक विज्ञान मानते हैं। (ii) मार्शल ने अपनी परिभाषा में 'धन' शब्द का प्रयोग किया है जबकि रोबिन्स ने सीमित साधनों का। दोनों का अर्थ एक ही है क्योंकि सीमितता धन का मुख्य गुण है; परन्तु रोबिन्स सीमित साधन में 'समय' को भी शामिल कर लेते हैं। (iii) रोबिन्स का कहना है कि सीमित साधनों का प्रयोग मितव्ययता से होना चाहिए, इसका अर्थ हुआ अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना, इसे मार्शल ने अधिकतम-कल्याण कहा है।

निष्कर्ष : रोबिन्स की परिभाषा श्रेष्ठ है या मार्शल की ?

यह कहना कठिन है कि मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाओं में से कौनसी अधिक उत्तम है। वास्तव में, दोनों परिभाषाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। प्रो० मार्शल की परिभाषा अधिक सरल और व्यावहारिक दृष्टिकोण लिये हुए है, जबकि प्रो० रोबिन्स की परिभाषा वैज्ञानिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण लिये हुए है। आज भी कई विख्यात आधुनिक अर्थशास्त्री मार्शल की परिभाषा के झण्डे के नीचे रहना पसन्द करते हैं, यद्यपि अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों पर रोबिन्स की परिभाषा का बहुत गहरा प्रभाव है।

जे० के० मेहता (J. K. Mehta) की परिभाषा

प्रो० मेहता ने अर्थशास्त्र को नया दृष्टिकोण देने का प्रयत्न किया है जो कि पाश्चात्य देशों के अर्थशास्त्रियों से भिन्न है। प्रो० मेहता के विचार भारतीय संस्कृति तथा परम्परा के अनु-

कूल हैं । प्राचीनकाल से ही, ऋषियों तथा महात्माओं ने 'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्श को हमारे सामने रखा है और आवश्यकताओं को कम से कम करने पर जोर दिया है । प्रो० मेहता ने इसी विचार को आर्थिक शब्दों में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है और बताया है कि अर्थशास्त्र का सम्बन्ध इच्छाओं की सन्तुष्टि से नहीं, वरन् इच्छाओं के अन्त से है, जिससे कि 'इच्छारहित' (wantlessness) अथवा निर्वाण (nirvan) की स्थिति को प्राप्त किया जा सके ।

प्रो० मेहता द्वारा अर्थशास्त्र की परिभाषा

"अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो मानवीय आचरण का इच्छारहित अवस्था में पहुंचने के लिए साधन के रूप में अध्ययन करता है ।"[20]

प्रो० मेहता की परिभाषा की व्याख्या

प्रो० रोबिन्स ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में जो विचार अपनी परिभाषा में व्यक्त किये हैं उनसे कुछ सीमा तक प्रो० मेहता सहमत हैं, परन्तु वे आवश्यकताओं (उद्देश्यों) की सन्तुष्टि के सम्बन्ध में रोबिन्स की विचारधारा से बिलकुल सहमत नहीं हैं ।

प्रो० मेहता के अनुसार 'अधिकतम सन्तुष्टि' के लक्ष्य की पूर्ति आवश्यकताएँ न्यूनतम रखने से ही की जा सकती है । प्रो० रोबिन्स की परिभाषा से यह अर्थ निकलता है कि अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है और मानव व्यवहार का लक्ष्य 'अधिकतम सन्तुष्टि' (maximum satisfaction) प्राप्त करना है । परन्तु प्रश्न यह है कि मानव व्यवहार के इस लक्ष्य को इच्छाएँ अधिक रखकर पूरा किया जा सकता है या कम रखकर ? पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों की धारणा है कि अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए अधिकतम इच्छाएँ होना आवश्यक है । उनके अनुसार आवश्यकताओं की वृद्धि ही सभ्यता का प्रतीक है । परन्तु प्रो० मेहता इस विचार से बिलकुल सहमत नहीं हैं । उनका कथन है कि अधिकतम आवश्यकताएँ या इच्छाएँ रखने से हमारे 'सुख' (happiness) में कोई वृद्धि नहीं हो सकती । उनके अनुसार अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य 'सन्तुष्टि को अधिकतम करना' (maximisation of satisfaction or utility) नहीं बल्कि 'वास्तविक सुख को अधिकतम करना' (maximisation of real happiness) है । वास्तविक सुख की वृद्धि इच्छाओं को अधिकतम रखने से नहीं, बल्कि कम से कम करने में ही हो सकती है । इसलिए **"इच्छाओं से मुक्ति पाने की समस्या ही आर्थिक समस्या है ।"**[21]

मेहता की 'सुख' धारणा एवं रोबिन्स की 'सन्तुष्टि' धारणा में भेद है । प्रो० मेहता के विचारों को ठीक प्रकार से समझने के लिए 'सन्तुष्टि' (satisfaction) तथा 'सुख' (happiness) के बीच अन्तर को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए । 'सन्तुष्टि' वह अनुभव है जो कि किसी इच्छा या आवश्यकता की तृप्ति के पश्चात मिलती है । जब तक इच्छा की पूर्ति नहीं होती, तब तक कष्ट का अनुभव होता है और जितनी ही वह इच्छा तीव्र होती है उतनी ही अधिक तकलीफ पूर्ति न होने पर अनुभव होती है, किन्तु पूर्ति के पश्चात् उतनी ही अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है । प्रो० मेहता ने इस अनुभव को आनन्द (pleasure) शब्द द्वारा व्यक्त किया । इसके विपरीत, सुख वह अनुभव है जो उस समय प्राप्त होता है जबकि कोई इच्छा ही न हो । इच्छाओं के बने रहने के कारण मस्तिष्क सन्तुलन की अवस्था में नहीं रहता है क्योंकि किसी इच्छा के उत्पन्न होते ही

---

20 "...economics is a science that studies human behaviour as a means to the end of wa[nt]lessness."—Mehta, *Studies in Advanced Economic Theory*, p. 11

21 "The problem of getting freedom from wants is regarded as an economic problem."
—J. K. Mehta. *op. cit.*, p. 1

मनुष्य के मस्तिष्क का सन्तुलन भंग हो जाता है और वह अपने मस्तिष्क के सन्तुलन को पुनः स्थापित करने के लिए इस इच्छा की पूर्ति करने का प्रयत्न करेगा क्योंकि सन्तुलन के भंग होने से कष्ट का अनुभव होता है। इस इच्छा की तृप्ति पर सन्तुलन पुनः स्थापित हो जायेगा और उसे कुछ आनन्द (pleasure) प्राप्त होगा। परन्तु यह स्थिति 'सुख' की नहीं होगी क्योंकि एक इच्छा की पूर्ति दूसरी इच्छा को जन्म दे सकती है या पहली इच्छा पुनः उत्पन्न हो सकती है। अतः प्रो० मेहता के अनुसार इच्छारहित अवस्था में, जबकि मस्तिष्क पूर्ण सन्तुलन (complete equilibrium) में होता है, जो अनुभव प्राप्त होता है उसे 'सुख' कहा जाता है। अर्थशास्त्र का ध्येय इसी सुख को अधिकतम करना होता है। प्रो० मेहता के शब्दों में, 'सुख' इस तथ्य का ज्ञान है कि मस्तिष्क सन्तुलन में है। 'कष्ट' (pain) इस बात का ज्ञान है कि मस्तिष्क असन्तुलन में है। 'आनन्द' इस बात का ज्ञान है कि असन्तुलन से युद्ध किया जा रहा है और वह कम हो रहा है।[22]

अतः स्पष्ट है कि 'अधिकतम सुख' तथा 'अधिकतम इच्छाएँ' पूर्णतया असंगत हैं, वास्तविक स आवश्यकता की वृद्धि से नहीं, बल्कि उन्हें कम करने में ही है।

प्रो० मेहता के अनुसार, मानव व्यवहार, जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय है, स्तिष्क के असन्तुलित अवस्था का परिणाम है और मस्तिष्क के असन्तुलित रहने का कारण बाहरी क्तियों का क्रियाशील होना है। मानवीय मस्तिष्क का यह नियम है कि वह असन्तुलन को नापसन्द रता है और इसलिए सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है योंकि असन्तुलन कष्ट है और उसका निवारण आनन्द।[23]

प्रो० मेहता ने सन्तुलन या सुख की इस अवस्था को प्राप्त करने के दो तरीके बताये हैं—थम तरीका यह है कि बाहरी शक्तियों का, जो कि असन्तुलन की अवस्था उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं, इस प्रकार से सुधार या समन्वय किया जाये कि वे मस्तिष्क के साथ मेल खायें अर्थात अनुरूप हो जायें। यह वही बात है जिसे रोबिन्स ने 'साधनों का प्रयोग' (use of resources) कहा। परन्तु सन्तुलन को प्राप्त करने का यह तरीका निम्न दो बातों से अपूर्ण या सीमित रह जाता है—(i) कोई भी प्रयत्न जो किसी वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जाता है दूसरी आवश्यकता को जन्म दे देता है, उदाहरण के लिए, भूख की तृप्ति, आराम करने की इच्छा या आवश्यकता को जन्म दे देती है। (ii) एक ही समय में सारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जा सकती, क्योंकि आवश्यकताएँ असीमित होती हैं। अतः प्रो० मेहता का विचार है कि पूर्ण सन्तुलन केवल बाहरी परिस्थितियों को बदल देने से प्राप्त नहीं किया जा सकता, दूसरे शब्दों में, केवल साधनों के प्रयोग के द्वारा ही पूर्ण सन्तुलन नहीं मिल सकता। दूसरा तरीका इस सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त करने का यह है कि मस्तिष्क को ऐसी अवस्था में रखा जाय कि वह बाहरी शक्तियों द्वारा प्रभावित न हो। इस हेतु मस्तिष्क को दबाने (repression) की नहीं, बल्कि शिक्षित करने' (educating the mind) की जरूरत है।

अतः, प्रो० मेहता के अनुसार 'सुख की स्थिति' अर्थात 'इच्छारहित स्थिति' को प्राप्त करना ही अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। प्रश्न यह उठता है कि इस स्थिति को कैसे प्राप्त

[22] "Happiness is, then, we might say, the consciousness of the fact ... mental self is in equilibrium. Pain is the ... Pleasure is the conc... —*Ibid*, p. 2

[23] "Human ... is the result of a state ... such a state is that it is ... from without... It is the law of the human ... dislikes disequilibrium and strives therefore to attain the state of equilibrium ..." *Ibid*, p. 1

किया जाय ? इस सम्बन्ध में प्रो० मेहता ने दो बातें बताती हैं—प्रथम, मनुष्य को यह होना चाहिए कि जीवन का उद्देश्य 'सुख' प्राप्त करना है और यह इच्छाओं से स्वतन्त्रता पाने से ही प्राप्त हो सकता है। दूसरे, इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए ह शरीर तथा मस्तिष्क पर नियन्त्रण रखना भी होगा अर्थात मस्तिष्क को इस अवस्था में रख कि उस पर वाहरी शक्तियों का प्रभाव न पड़े। प्रो० मेहता ने इस बात पर जोर दि सुख की स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें इच्छाओं को दबाना नहीं है, बल्कि मि शिक्षित करना है। प्रो० मेहता के शब्दों में, "कुछ इच्छाओं को हटाने का प्रयत्न कर ही कुछ सफल हो परन्तु इसका अर्थ होगा और अधिक तथा शक्तिशाली इच्छाओं को ज अतः हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त करने का सरल और उपाय प्रत्येक इच्छा का दमन करना है।[24]

इच्छाओं के चुनाव की समस्या

चूँकि मनुष्य अपनी सब इच्छाएँ एक साथ कम नहीं कर सकता, इसलिए उसके चुनाव की समस्या (choice-making) आती है कि इन इच्छाओं में से किन को कम किया और किन को सन्तुष्ट किया जाय। यह निर्णय कुछ नियमों द्वारा संचालित होता है जिनका लगाना अर्थशास्त्री का कर्तव्य है। प्रो० मेहता के शब्दों में, "अर्थशास्त्री वाहरी दशाओं या साव (stimuli) द्वारा मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभाव की प्रतिक्रिया का, इच्छाओं को सन्तुष्ट के सम्बन्ध में, अध्ययन करता है। वाहरी दशाओं या उकसावों के प्रति मस्तिष्क की प्रतिक्रिया नियमों द्वारा संचालित होती है जिनकी खोज करना अर्थशास्त्री का कर्तव्य है।"[25]

मेहताजी का सुझाव है कि मनुष्य को चाहिए कि अपनी आवश्यकताओं को धीरे-धीरे करे। प्रथम तो उन आवश्यकताओं को त्याग देना चाहिए जिनकी पूर्ति करने में मनुष्य अ है। इसके पश्चात वे आवश्यकताएँ रह जायेंगी जिनकी पूर्ति करने में मनुष्य समर्थ है। चूँकि आवश्यकताएँ पूरी हो जायेंगी, इसलिए उसे किसी कष्ट का अनुभव नहीं होगा। इस प्रकार आ श्यकताओं को साधनों की सीमा तक घटाया जाना चाहिए और यह प्रयत्न हमारे अन्तिम लक्ष्य इच्छारहित स्थिति—तक पहुँचने की दिशा में प्रथम कदम हो जाता है। अन्तिम लक्ष्य तक पहुँ के लिए मनुष्य को धीरे-धीरे प्रयत्न करते रहना पड़ेगा।

मेहता की परिभाषा की आलोचना—मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) प्रो० मेहता ने धर्म तथा दर्शनशास्त्र को अनावश्यक रूप से अर्थशास्त्र के साथ म कर दिया है।

(२) उन्होंने इतना ऊँचा आदर्श हमारे समक्ष रखा है कि जिसे व्यवहार में प्राप्त किया जा सकता है, अतः उनके विचार अव्यावहारिक हैं। इस सम्बन्ध में प्रो० मेहता का क है कि यदि कोई चीज असम्भव दिखाई दे तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी आवश्यकता न महसूस की जाय।[26]

---

24 "The effort to discard some wants, even though successful, is likely to give r more and stronger wants. We should not, therefore, think that the best and the e way to reach the final end is to cure each desire as and when it is felt."

25 "The economist studies the reactions produced on man by external stimuli as a p of satisfying wants. The reaction of the mind to various stimuli is governed by c laws which it is the concern of the economist to discover."

26 "For we refuse to think on these lines because there is the firm conviction that a s of wantlessness is an impossibility. And for most of us it is no argument to be that the fact that a thing appears impossible is no proof that it is not desirable."
—Ibid, I

व मनुष्य की सभी आवश्यकताओं का अन्त हो जायेगा, तो अर्थशास्त्र के अध्ययन की
ावश्यकता नहीं रह जायेगी। इस प्रकार से मेहता का अर्थशास्त्र अपनी बरबादी के बीज
है। (प्रो० मेहता के समर्थक इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं। यदि चिकित्सा-विज्ञान
of medicine) इतना पूर्ण हो जाय कि मनुष्य को कोई रोग न हो तो यह कहना कि
विज्ञान व्यर्थ है, ठीक नहीं। इसी प्रकार यह कहना भी कि यदि मनुष्य की कोई आव-
रहे तो अर्थशास्त्र व्यर्थ हो जायेगा, उचित नहीं होगा।)

ष्कर्ष: इसमे सन्देह नहीं कि प्रो० मेहता के विचार वैज्ञानिक तथा तर्कयुक्त हैं परन्तु
रिभाषा मानने योग्य नहीं है क्योंकि यह आदर्शवादी है, अव्यावहारिक है और आर्थिक
सिद्धान्तों के विपरीत जाती है।

ा तथा रोबिन्स की परिभाषाओं की तुलना

द्यपि दोनों की परिभाषाओं में मानव व्यवहार के 'निर्णयात्मक' या 'चुनाव करने के पहलू'
-making aspect) का अध्ययन किया जाता है, परन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। यथा—
रोबिन्स ने उद्देश्य या लक्ष्य (अधिकतम सन्तोष) को पूर्व निश्चित माना है और इसलिए
ुसार अर्थशास्त्र एक तटस्थ विज्ञान (positive science or neutral science) है।
० मेहता के अनुसार उद्देश्य स्वयं निर्धारित किया जाता है और इसलिए अर्थशास्त्र एक
ज्ञान (normative science) है। (ii) प्रो० रोबिन्स के अनुसार आवश्यकताओं की वृद्धि
ी प्रतीक है। अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति से मनुष्य को अधिकतम सन्तोष प्राप्त
किन्तु प्रो० मेहता के अनुसार आवश्यकताओं का बिलकुल अन्त हो जाना ही अधिकतम
स्थिति को प्राप्त करना है।

अर्थशास्त्र की कुछ अन्य परिभाषाएँ

बोलडिंग : "अर्थशास्त्र आर्थिक परिमाणों का वैज्ञानिक अध्ययन है।"
OULDING : "ECONOMICS IS A SCIENTIFIC STUDY OF ECONOMIC QUANTITIES.")

की परिभाषा की व्याख्या

प्रो० जेकोब वीनर से यह पूछे जाने पर कि अर्थशास्त्र क्या है, उन्होंने उत्तर दिया कि
स्त्र वह है जो अर्थशास्त्री करते है।" (Economics is what economists do)। प्रो०
इस कथन को उद्धृत करते हुए बोलडिंग ने बताया है कि इसमें बहुत कुछ सत्यता है क्योंकि
ी शास्त्र की सीमाएँ बहुत कम स्पष्ट होती हैं। वे बातें जो आज शास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन
रही हैं कल इसके बाहर हो सकती हैं। अतः बोलडिंग यह महसूस करते हैं कि अर्थशास्त्र
ी भी संक्षिप्त परिभाषा अर्थशास्त्र के विषय को व्यक्त करने मे अपर्याप्त रहेगी। अतः उनका
कि अर्थशास्त्र को 'मानव जीवन के साधारण व्यवसाय का अध्ययन' कहना निसन्देह बहुत
है। इसे 'भौतिक धन का अध्ययन' कहना बहुत संकुचित है। इसे 'मानवीय मूल्यांकन तथा
का अध्ययन कहना कदाचित पुनः व्यापक है, और इसे मानवीय कार्यों के उस अंश का अध्य-
ाना जिसे मुद्रारूपी मापदण्ड से मापा जा सकता है, पुनः संकुचित है।[27]

To define it as a study of mankind [illegible]

परन्तु, बोलडिंग आगे कहते हैं कि सामान्य रूप से अर्थशास्त्र में मनुष्य के कार्यों के तीन प्रकार (types) का अध्ययन किया जाता है और ये तीन प्रकार निम्न हैं—उपभोग, उत्पादन और विनिमय। इन क्रियाओं का अध्ययन करने के लिए हमें कुछ परिमाणों (quantities) की जाँच खोज करनी पड़ती है, जैसे वस्तुओं का उत्पादन, संचय किये हुए स्टाक की मात्रा, कीमतें, मजदूरी, ब्याज तथा लगान। इनको बोलडिंग ने 'आर्थिक परिमाण' (economic quantities) कहा। अर्थशास्त्र इन्हीं आर्थिक परिमाणों का वैज्ञानिक अध्ययन है। बोलडिंग के शब्दों में, "आर्थिक विश्लेषण के एक बहुत अधिक भाग का सम्बन्ध इन आर्थिक परिमाणों की प्रकृति की खोज करने, उनके आपसी सम्बन्ध एवं इन्हें निर्धारण करने वाली शक्तियों को मालूम करने से है।"[28] आर्थिक परिमाणों से सम्बन्धित आँकड़े इकट्ठे करने का कार्य आर्थिक अंकशास्त्र (economic statistics) तथा आर्थिक इतिहास (economic history) का है और उनका विश्लेषण (interpretation) करना 'आर्थिक विश्लेषण' (economic analysis) का कार्य।

बोलडिंग की परिभाषा की आलोचना

बोलडिंग की परिभाषा की समस्त आलोचना यह है कि उन्होंने जो कुछ बताया वह सब अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किये गये विषयों की व्याख्या है, वास्तव में परिभाषा नहीं।

प्रो० हिक्स द्वारा अर्थशास्त्र की परिभाषा

हिक्स के अनुसार, "हम यह कह सकते हैं कि मानव व्यवहार का वह विशिष्ट पहलू जिसका अर्थशास्त्र अध्ययन करता है मानव का व्यापार सम्बन्धी व्यवहार है। अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो व्यापार सम्बन्धी कार्यों का अध्ययन करता है।"[29]

प्रो० हिक्स की परिभाषा की व्याख्या—'व्यापार' शब्द का अर्थ

प्रो० हिक्स के अनुसार अर्थशास्त्र मानव-व्यवहार के 'व्यापार सम्बन्धी कार्यों' (business affairs) का अध्ययन करता है। उनका कहना है कि अर्थशास्त्र को इस प्रकार से परिभाषित करते समय हमें 'व्यापार' शब्द का विस्तृत अर्थ लेना चाहिए। जब एक गृहस्वामिनी (house-wife) दुकान से गोश्त खरीदने जाती है, दुकानदार (अर्थात् विक्रेता) की दृष्टि से यह क्रिया निःसन्देह 'व्यापार की क्रिया' (business transaction) हुई और इसलिए वह अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाती है। किन्तु इस क्रिया को एक साधारण व्यक्ति गृहस्वामिनी के दृष्टिकोण से 'व्यापार की क्रिया' नहीं कहेगा। परन्तु एक अर्थशास्त्री गृहस्वामिनी के सौदा करने की क्रिया पर भी उतना ही ध्यान देगा जितना कि दुकानदार के बेचने की क्रिया पर। अतः गोश्त या किसी वस्तु को खरीदने की क्रिया उसी प्रकार एक आर्थिक प्रश्न है जिस प्रकार कि उस वस्तु को बेचने की क्रिया।

प्रो० हिक्स 'व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं' के अर्थ को कुछ अन्य उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करते हैं। जब पुरुषों तथा औरतों को किसी कारखाने में काम करने के परिणामस्वरूप वेतन मिलता है तो स्पष्ट है कि उनका रोजगार मालिक (employer) की दृष्टि से व्यापार सम्बन्धी क्रिया है। इस प्रकार यह अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आ जाती है; परन्तु अर्थशास्त्र को श्रमिकों के दृष्टिकोण से भी विचार करना है तथा मालिकों के दृष्टिकोण पर भी। लाभ पर टैक्सों का भुगतान स्पष्ट

28. "The greater part of economic analysis, indeed, is concerned with investigating the natures of economic quantities, the relationships existing between them and the forces which determine them."

29. "We may say that the particular aspect of human behaviour which is dealt with in economics is the behaviour of human being in business. Economics is the science which deals with business affairs."

आर्थिक प्रश्न है। परन्तु अर्थशास्त्र को इस प्रश्न को सभी दृष्टियों से देखना चाहिए, अर्थात् फर्मों तथा व्यक्तियों की दृष्टि से जो कि टैक्सो को अदा करते हैं, सरकार की दृष्टि से जो कि टैक्सो से आय (revenue) प्राप्त करती है, तथा उन व्यक्तियों की दृष्टि से जिनको कि सरकार टैक्सों द्वारा प्राप्त आय में से मजदूरी तथा अन्य वेतन देती है। ये सब क्रियाएँ व्यापार सम्बन्धी क्रियाएँ कही जायेंगी और इसलिए वे अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाती हैं।

प्रो० हिक्स के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि 'व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं' का आशय उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय, वितरण तथा राजस्व से सम्बन्धित क्रियाओं से है, और इन सब क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

हिक्स की परिभाषा के गुण

प्रो० हिक्स की परिभाषा मे निम्न गुण पाये जाते हैं—(i) यह परिभाषा मार्शल की परिभाषा की भाँति सरल है। (ii) यह परिभाषा व्यावहारिक दृष्टि से लिखी गयी है। (iii) मार्शल की भाँति इस परिभाषा के अनुसार सामाजिक मनुष्यों की व्यापारिक क्रियाओं का अध्ययन ही अर्थशास्त्र मे किया जाता है। (iv) प्रो० हिक्स मार्शल की भाँति 'साधारण जीवन व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं' के शब्दों का प्रयोग नहीं करते, वे 'साधारण' शब्द को निकाल देते हैं और केवल 'व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं' के शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार यह परिभाषा 'आर्थिक क्रियाओं' या 'भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति' इत्यादि शब्दो का प्रयोग नही करती। दूसरे शब्दो मे, इस परिभाषा पर 'श्रेणी-विभाजक' होने का आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

हिक्स की परिभाषा की आलोचना

(१) प्रो० हिक्स की परिभाषा एक प्रकार से अस्पष्ट है। यह इस बात पर स्पष्ट प्रकाश नही डालती है कि अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान (positive science) ही है या उसका आदर्शात्मक पहलू (normative aspect) भी है, तथा वह कला (art) भी है या नही।

(२) चूँकि मार्शल की परिभाषा की भाँति इस परिभाषा के अनुसार भी मानव व्यवहार के व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है, इसलिए हम यह कह सकते हैं कि प्रो० हिक्स की परिभाषा भी, मार्शल की भाँति, अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू को मानती है या उसे कला भी मानती है। यदि ऐसा है तो इस पर भी लगभग वे ही आलोचनाएँ लागू हो सकती हैं जो कि रोबिन्स द्वारा मार्शल की परिभाषा के प्रति की गयी हैं।

अर्थशास्त्र का क्षेत्र
[SCOPE OF ECONOMICS]

अर्थशास्त्र के क्षेत्र से आशय

अर्थशास्त्र की परिभाषा की भाँति उसके क्षेत्र के सम्बन्ध में भी अर्थशास्त्रियों में मतभेद रहा है। क्षेत्र का अर्थ है अर्थशास्त्र के अध्ययन का प्रदेश। अर्थशास्त्र के क्षेत्र का विवेचन करते में प्रायः निम्न बातों पर विचार किया जाता है—(१) अर्थशास्त्र की **विषय-सामग्री** (Subject-matter)। (२) **अर्थशास्त्र का स्वभाव** या प्रकृति (nature); इस सम्बन्ध में निम्न बातों पर विचार किया जाता है : (अ) **क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है?** (ब) **क्या वह केवल वास्तविक विज्ञान है या उसका आदर्शात्मक पहलू भी है।** (स) **क्या अर्थशास्त्र कला भी है?**

अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री

प्रारम्भ में **एडम स्मिथ** तथा उनके साथियों ने अर्थशास्त्र को धन का शास्त्र बताया। परन्तु यह परिभाषा अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री पर ठीक प्रकाश नहीं डालती, क्योंकि इसमें धन को प्रधान स्थान और मनुष्य को गौण स्थान दिया गया है। इस दोष को दूर करते हुए **मार्शल** तथा उनके समर्थकों ने अर्थशास्त्र को 'भौतिक कल्याण' का शास्त्र बताया, उन्होंने धन पर जोर न देकर मनुष्य के कल्याण पर जोर दिया। इनके अनुसार अर्थशास्त्र में मनुष्य की उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जिन्हें "प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से द्रव्य के मापदण्ड से सम्बन्धित किया जा सकता है।" सरल शब्दों में, मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में सामाजिक, वास्तविक तथा सामान्य व्यक्तियों की धन सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। परन्तु **प्रो० रोबिन्स** ने मार्शल की परिभाषा को दोषपूर्ण बताते हुए अर्थशास्त्र को 'अभाव का विज्ञान' (Science of scarcity) बताया। उनके अनुसार हम अर्थशास्त्र में मानवीय व्यवहार के केवल एक पहलू अर्थात 'आर्थिक पहलू' या 'चुनाव करने का पहलू' या 'निर्णयात्मक पहलू' का अध्ययन करते हैं।

वास्तव में अर्थशास्त्र का विषय बहुत विस्तृत है। यह उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय तथा वितरण की सभी समस्याओं पर प्रकाश डालता है। राजस्व भी इसके अध्ययन का एक मुख्य भाग है।

मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र एक **सामाजिक विज्ञान** (social science) है। अर्थशास्त्र मनुष्य का समाज के सदस्य के रूप में आर्थिक प्रयत्नों का अध्ययन करता है। अतः उनके अनुसार समाज के बाहर रहने वाले साधु-संन्यासी तथा रोबिन्सन क्रूसो जैसे एकान्तवासियों की क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में नहीं किया जाता है। अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है क्योंकि इसमें उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय, वितरण तथा राजस्व सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है और ये समस्याएँ समाज के अन्दर ही उठती हैं। **रोबिन्स का मत है** कि अर्थशास्त्र में हम सामाजिक व असामाजिक दोनों प्रकार के मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। उनके अनुसार अर्थशास्त्र

में प्रत्येक मनुष्य की, चाहे वह समाज में रहता हो या समाज के बाहर, क्रिया के निर्णयात्मक पहलू का अध्ययन किया जाता है। पुनः रोबिन्स ने यह बताया कि यद्यपि विनिमय, वितरण तथा राजस्व सम्बन्धी बातें और नियम केवल समाज में ही रहकर सम्भव हैं, परन्तु उपभोग (जैसे क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम) तथा उत्पत्ति के नियम तो समाज के बाहर रहने वाले व्यक्तियों पर भी लागू होते हैं। अतः रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र मानवीय विज्ञान (human science) है जिसमें समाज के अन्दर तथा समाज के बाहर रहने वाले सभी व्यक्तियों के 'चुनाव करने के पहलू' का अध्ययन किया जाता है।

परन्तु अधिकांश अर्थशास्त्रियों का मत है कि अर्थशास्त्र मुख्यतया सामाजिक शास्त्र है और हम मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन उसके समाज के सदस्य के रूप में ही करना पसन्द करते हैं।

क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है ?

१. प्राक्कथन (Introductory)

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है या नहीं, इसकी विवेचना से पहले 'विज्ञान' के अर्थ को समझ लेना चित है।

विज्ञान की परिभाषा—विज्ञान ज्ञान का क्रमबद्ध या नियमबद्ध अध्ययन है जो कि कार्य या र्यों के कारण तथा परिणाम के पारस्परिक सम्बन्ध को बताता है। परन्तु केवल तथ्यों (facts) ा एकत्रित करना ही विज्ञान नहीं है। पोइनकेअर (Poincare) ने बिलकुल ठीक कहा है—'विज्ञान तथ्यों द्वारा निर्मित होता है, जिस प्रकार कि एक मकान ईंटों द्वारा निर्मित होता है; परन्तु ाथ्यों को एकत्रित करना मात्र ही उसी प्रकार से विज्ञान नहीं है जिस प्रकार से कि एक ईंटों का ढेर मकान नहीं है।[1] स्पष्ट है कि एक विज्ञान के लिए तथ्यों को क्रमबद्ध एकत्रित करना तथा उनका वर्गीकरण और विश्लेषण करना आवश्यक है।

२. अर्थशास्त्र को विज्ञान मानने के पक्ष में तर्क

उपर्युक्त परिभाषा को ध्यान में रखते हुए यह कहना ठीक है कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। इसके पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं—(१) अर्थशास्त्र आर्थिक बातों के कारण तथा परिणाम के बीच क्रमबद्ध तरीके से सम्बन्ध स्थापित करता है। (२) इसके अन्तर्गत तत्सम्बन्धी तत्त्वों का क्रमबद्ध तरीके से एकत्रण, वर्गीकरण तथा विश्लेषण किया जाता है। अर्थशास्त्र के समस्त विषय को क्रमबद्ध तरीके से पाँच भागों—उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय, वितरण तथा राजस्व में बाँटा गया है (३) पुनः, आर्थिक तत्त्वों को नापने के लिए अर्थशास्त्री के पास मुद्रा का पैमाना भी है। यद्यपि यह पैमाना, भौतिक विज्ञानों (Physical sciences) की भाँति निश्चित नहीं है, तथापि यह मोटा पैमाना ही अर्थशास्त्र में निश्चितता ला देता है। अतः स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। अधिकांश अर्थशास्त्री इस मत से सहमत हैं।

३. अर्थशास्त्र को विज्ञान मानने के विरोध में तर्क

कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि अर्थशास्त्र को विज्ञान नहीं मानना चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्न तर्क दिये जाते हैं—

(१) अर्थशास्त्रियों में बहुत अधिक मत-विभिन्नता पायी जाती है। श्रीमती वूटन (Mrs. Barbara Wootton) का कथन है, "जब कभी छह अर्थशास्त्री एकत्रित होते हैं तो सात मत होते हैं।"[2]

---

[1] "Science is built up of facts as a house is built up of stones; but an accumulation of facts is no more a science than a heap of stones is a house."
—M. Poincare, Quoted by Pigou, *Economics of Welfare*, p.

[2] "Whenever six economists are gathered, there are seven opinions."

परन्तु यह तर्क उचित नहीं है। यदि अर्थशास्त्र विज्ञान की परिभाषा के गुणों को पूरा
रता है, तो वह विज्ञान है चाहे अर्थशास्त्रियों में मत विभिन्नता बनी रहे। वास्तव में, मत-विभि-
ता का रहना विज्ञान के स्वस्थ्य विकास के लिए अच्छा है। पुनः, अर्थशास्त्र का विकास अभी बन्द
हीं हो गया है, वह बराबर बढ़ रहा है और ऐसी अवस्था में मत-विभिन्नता रहना अस्वाभाविक
नहीं है।

(ii) **मानवीय व्यवहार को वैज्ञानिक विश्लेषण के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता है।**
मानव व्यवहार भविष्य में क्या होगा ठीक नहीं कहा जा सकता और न मानव व्यवहार के सम्बन्ध
में निश्चित नियम ही बनाये जा सकते हैं। इसका कारण है कि मनुष्य स्वतन्त्र इच्छा (free will)
रखता है और एकसी परिस्थितियों में वह सदैव एकसा व्यवहार नहीं करता।

यह तर्क ऊपर से जितना गम्भीर दिखायी देता है वास्तव में उतना है नहीं, क्योंकि, प्रथम
यद्यपि मनुष्य स्वतन्त्र इच्छा रखता है, परन्तु फिर भी प्रायः सभी मनुष्यों में कुछ आधारभूत प्रवृत्तियां
(basic human instincts and impulses) पायी जाती हैं जिनसे उनका व्यवहार शासित होता
है और इसलिए अधिकतर मनुष्य एकसी परिस्थितियों में एकसा व्यवहार करते हैं, यद्यपि कुछ
अपवाद हो सकते हैं। दूसरे, अर्थशास्त्र में यह मान लिया जाता है कि मानवीय व्यवहार विवेकपूर्ण
(rational) होता है और ऐसी मान्यता उचित भी है, क्योंकि जब उद्देश्य दिये हैं और साधन
सीमित हैं, तो अधिकतम सन्तुष्टि को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक मनुष्य का व्यवहार विवेकपूर्ण होगा
अर्थात् वह अपने सीमित साधनों का मितव्ययता से प्रयोग करेगा। अतः हम मानवीय व्यवहार की
भविष्यवाणी (predict) कर सकते हैं।

(iii) **जिन आँकड़ों पर अर्थशास्त्र के निष्कर्ष आधारित हैं वे आँकड़े (data) बराबर बदलते
रहते हैं।** उत्पादन की टैक्नीकल स्थितियाँ तथा संस्थागत स्वरूपों (institutional patterns) में
बराबर परिवर्तन होते रहते हैं। अतः अर्थशास्त्र के नियम जो कि एक समय विशेष के सम्बन्ध में
बनाये जाते हैं वे दूसरे समय की स्थितियों में लागू नहीं होते। इस प्रकार से अर्थशास्त्र के नियम
ऐतिहासिक होते हैं, वे स्थायी नहीं होते।

यह तर्क भी उचित नहीं है। (अ) इसमें सन्देह नहीं कि संस्थाओं के प्ररूपों में टैक्नीकल
परिवर्तन होते रहते हैं, परन्तु मानव का आधारभूत व्यवहार—अर्थात् सन्तोष को अधिकतम
करना अपरिवर्तित रहता है। (ब) प्रत्येक टैक्नीकल परिवर्तन के साथ इस बात की आवश्यकता नहीं
पड़ती है कि अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का पुनर्निर्माण किया जाय। विभिन्न परिस्थितियों को आर्थिक
नियमों के द्वारा भलीभाँति तथा आसानी से समझाया जा सकता है।

(iv) **आर्थिक नियम परिमाणात्मक (quantitative) नहीं होते।** निःसन्देह आर्थिक नियम
गणितात्मक रूप से कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं रखते। परन्तु यह अन्तर इसलिए नहीं है कि अन्य
विज्ञानों में प्रयोग में लाये जाने वाले तरीकों तथा अर्थशास्त्र में प्रयुक्त किये जाने वाले तरीकों में
कोई आधारभूत अन्तर हो; वरन् इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र का विषय ऐसा है कि उसे
आसानी से नापा नहीं जा सकता है। परन्तु फिर भी अर्थशास्त्रियों के पास द्रव्य रूपी मोटा पैमाना
है, तथा अब गणित का अर्थशास्त्र में बहुत अधिक प्रयोग होने लगा है।

४. निष्कर्ष : अर्थशास्त्र विज्ञान है

स्पष्ट है अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के विपक्ष में दिये हुए तर्क ठीक नहीं हैं। वास्तव में
अर्थशास्त्र एक विज्ञान है।

वास्तविक विज्ञान बनाम आदर्शवादी पहलू
(POSITIVE VERSUS NORMATIVE)

१. प्राक्कथन (Introductory)

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है; प्रश्न यह उठता है कि क्या यह केवल वास्तविक विज्ञान (Positive science) ही है या इसका आदर्शात्मक पहलू (Normative aspect) भी है ? इस मत-विभेद पर विचार करने से पहले यह आवश्यक है कि विज्ञान के वास्तविक पहलू तथा आदर्शवादी पहलू दोनों का अर्थ भली प्रकार से समझ लिया जाय।

वास्तविक विज्ञान का अर्थ—वास्तविक विज्ञान किसी कार्य के कारण तथा परिणाम के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। यह 'क्या है ?' प्रश्न का उत्तर देता है; किन्तु 'क्या होना चाहिए ?' प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। इसकी खोज वैज्ञानिक खोज होती है; यह वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करके केवल तथ्यों का यथावत वर्णन कर देता है। वह अच्छाई या बुराई के सम्बन्ध में कोई प्रकाश नहीं डालता; वह कोई आदर्श स्थापित नहीं करता।

आदर्श विज्ञान से आशय (आदर्शवादी पहलू)—विज्ञान का आदर्शात्मक पहलू 'क्या होना चाहिए ?' प्रश्न का जवाब देता है। यह केवल तथ्यों का यथावत वर्णन ही नहीं करता, वरन् यह भी बताता है कि क्या होना चाहिए। यह विषय की अच्छाई तथा बुराई की विवेचना करता है, तथा एक आदर्श हमारे समक्ष रखता है।

२. आदर्शवादी पहलू पर विवाद (Controrversy)

अधिकांश अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है क्योंकि यह आर्थिक घटनाओं के 'कारण' तथा 'परिणाम' के सम्बन्ध का क्रमबद्ध तरीके से अध्ययन करता है। परन्तु मतभेद इस प्रश्न पर है कि क्या अर्थशास्त्र का आदर्शवादी पहलू भी है ? यह मतविभेद अर्थशास्त्र के जन्म होने के समय से ही है। प्राचीन आंग्ल क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मत था कि अर्थशास्त्र एक विशुद्ध वास्तविक विज्ञान है और अर्थशास्त्रियों को आर्थिक विषयों की अच्छाई या बुराई पर कोई विवेचन करने का अधिकार नहीं है। किन्तु इसके विपरीत, ऐतिहासिक स्कूल (Historical School of Germany) का मत यह था कि अर्थशास्त्र का सम्बन्ध नीतिशास्त्र (Ethics) से अलग नहीं किया जा सकता, अर्थात् वे अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू को मानते थे और उस पर जोर देते थे। यह वाद-विवाद बहुत समय तक चलता रहा। मार्शल तथा उनके साथी भी अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू को स्वीकार करते हैं और उस पर जोर देते हैं। इस सम्बन्ध में वाद-विवाद २०वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में बहुत कुछ समाप्त सा हो गया था। परन्तु १९३२ में रोबिन्स ने अपनी पुस्तक 'An Essay on the Nature and Significance of Economic Science' में पुनः इस मरे हुए वाद-विवाद के घोड़े को कोड़े मारकर जगा दिया। प्रो० रोबिन्स प्राचीन आंग्ल क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के विचार से सहमत हैं और अर्थशास्त्र को उद्देश्यों के प्रति तटस्थ मानते हैं।

३. केवल वास्तविक विज्ञान होने के पक्ष में तर्क (अथवा, आदर्शवादी पहलू के विपक्ष में तर्क)

प्रो० रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र एक विशुद्ध वास्तविक विज्ञान है और उसका आदर्शवादी पहलू नहीं है क्योंकि ऐसा होने के लिए हमें नीतिशास्त्र (Ethics) की सहायता लेनी होगी जबकि नीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र को मिलाया नहीं जा सकता। रोबिन्स के शब्दों में, "दुर्भाग्यवश तर्कशास्त्रीय दृष्टिकोण से किसी भी प्रकार इन दोनों अध्ययनों को संयुक्त करना सम्भव प्रतीत नहीं होता केवल इन्हें समीप ही रखा जा सकता है। अर्थशास्त्र जांचने योग्य तथ्यों का अध्ययन

करता है, जबकि नीतिशास्त्र मूल्य निरूपण तथा कर्तव्यों का । अन्वेषण के ये दोनों क्षेत्र वार्तालाप के एक स्वर पर नहीं हैं ।''[3] रोबिन्स के लिए अर्थशास्त्र मूल्य सिद्धान्त (Value Theory) है और मूल्य सिद्धान्त अर्थशास्त्र है, उसका कोई आदर्शवादी पहलू नहीं है । रोबिन्स के शब्दों में, "मूल्य **सिद्धान्त के चारों तरफ स्वीकृति का कोई क्षेत्र नहीं है । साम्य केवल साम्य ही है ।**''[4] रोबिन्स के अनुसार आर्थिक साम्य की अच्छाई, बुराई तथा परिणामों के सम्बन्ध में एक अर्थशास्त्री कुछ भी नहीं कह सकता है, साम्य केवल साम्य है । अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है ।

अर्थशास्त्र के केवल वास्तविक विज्ञान होने के पक्ष में (या उसके आदर्शवादी पहलू के विपक्ष में) रोबिन्स तथा उनके साथियों के द्वारा निम्न तर्क दिये जाते हैं ।

(i) **आदर्शवादी पहलू भावों पर आधारित होता है, तर्कों पर नहीं**—रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र एक विज्ञान है और विज्ञान होने के कारण इसका आधार भी अन्य विज्ञानों की भाँति तर्कशास्त्र (Logic) है । अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है इसलिए इसमें से आदर्शवादी दृष्टिकोण को, जो तर्क पर आधारित नहीं होता बल्कि केवल भावों पर ही निर्भर होता है, अलग कर देना चाहिए ।

(ii) **अच्छे श्रम विभाजन का तर्क**—अर्थशास्त्रियों को सारे कार्य अर्थात किसी विषय के कारण और परिणाम के सम्बन्ध को स्थापित करना, उस विषय की अच्छाई तथा बुराई को बताना, सुझाव देना, इत्यादि, स्वयं नहीं करने चाहिए । उन्हें तो केवल पहले कार्य अर्थात किसी विषय के 'कारण' तथा 'परिणाम' के बीच सम्बन्ध स्थापित करने पर ही पूरा ध्यान देना चाहिए और अन्य कार्यों को किसी राजनीतिज्ञ या आचार्यशास्त्री पर छोड़ देना चाहिए । यदि एक अर्थशास्त्री स्वयं ही सारे कार्य करेगा; तो वह पहले कार्य में प्रवीण नहीं हो सकेगा ।

(iii) **भ्रम पैदा होने का भय**—'क्या है' ? तथा 'क्या होना चाहिए' ? इन दोनों के अन्वेषणों (enquires) को एक साथ मिला देने से अर्थशास्त्रियों को बड़ा भ्रम (confusion) पैदा हो जायेगा । उदाहरण के लिए, मजदूरी की दर को निर्धारित करने वाले तथ्यों के साथ-साथ यदि इस तथ्य पर भी कि एक उचित (fair) मजदूरी क्या होनी चाहिए विचार किया जाय, तो विषय के अध्ययन के विकास में कठिनाई पैदा होगी । वास्तव में अर्थशास्त्र की वैज्ञानिक नींव तभी दृढ़ होगी जबकि 'क्या है' ? तथा 'क्या होना चाहिए' ? दोनों अन्वेषणों (enquires) को अलग-अलग रखा जाय ।

(iv) **आदर्शात्मक पहलू मानने से प्रगति में बाधा पड़ने का भय**—यदि अर्थशास्त्र को केवल विशुद्ध वास्तविक विज्ञान न रखा जाय तो इसकी प्रगति बहुत कुछ रुक जायेगी । 'क्या है ?' सम्बन्धि अन्वेषण (enquires) के बारे में मत-विभेद होने की सम्भावना बहुत कम रहेगी जबकि 'क्या होना चाहिए ?' के अन्वेषण बहुत अधिक वाद-विवाद तथा मत-विभेद को जन्म देंगे और इसलिए अर्थशास्त्र की प्रगति में बड़ी बाधा उपस्थित हो जायेगी ।

(v) **अर्थशास्त्री के गलत समझे जाने की सम्भावना**—अर्थशास्त्र के वास्तविक तथा आदर्शवादी दोनों पहलुओं को मिला देने से अर्थशास्त्री बड़ी कठिनाई में पड़ जायेगा । ऐसा होने पर

---

3 "Unfortunately it does not seem logically possible to associate these two studies in any form but mere juxtaposition. *Economics deals with ascertainable facts, ethics with valuations and obligations. The two fields of enquiry are not on the same plane of discourse.*"

अपने प्रत्येक अन्वेषण (enquiry) के सम्बन्ध में अच्छाई या बुराई के रूप में मूल्यांकन देना होगा और ऐसी अवस्था में उसका कार्य-भार बहुत बढ़ जायेगा और यदि वह ऐसा नहीं करता है और चुप रहता है तो लोग यह सोचेंगे कि अर्थशास्त्री तत्सम्बन्धी अन्वेषणों से सहमत है, जबकि यह जरूरी नहीं है। अर्थशास्त्री के गलत समझे जाने की सम्भावनाएँ सदैव बनी रहेंगी।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्र को केवल एक विशुद्ध वास्तविक विज्ञान ही मानना चाहिए।

४. अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू होने के पक्ष में तर्क (अथवा वास्तविक विज्ञान के विपक्ष में तर्क)

अधिकांश अर्थशास्त्रियों का विचार है कि अर्थशास्त्र केवल एक विशुद्ध वास्तविक विज्ञान ही नहीं है; बल्कि उसका आदर्शवादी पहलू भी है। वास्तव में, यह सच है कि यदि अर्थशास्त्र में से उसके आदर्शवादी पहलू को निकाल दिया जाता है तो उसका कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू के होने के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं .

(i) सीमित साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग—यदि अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि उद्देश्यों को दिया हुआ मान लेना पड़ेगा और उसका निर्धारण जानबूझकर नहीं किया जायेगा। ऐसी स्थिति में सीमित साधनों का सर्वोत्तम ढंग से प्रयोग नहीं हो पायेगा।

(ii) मनुष्य केवल तार्किक ही नहीं, वरन् भावुक भी होता है—अर्थशास्त्र के केवल वास्तविक विज्ञान होने के पक्ष में दिये गये प्रथम तर्क के उत्तर में यह कहना ठीक है कि यद्यपि मनुष्य तार्किक या न्यायसिद्ध (logical) होता है, परन्तु साथ ही वह भावुक (sentimental) भी होता है। अर्थशास्त्र में हम मनुष्य जैसा है उसका वैसा ही अध्ययन करते हैं, और चूँकि मनुष्य तार्किक (logical) तथा भावुक (sentimental) दोनों एक साथ ही है इसलिए अर्थशास्त्र में मानव व्यवहार के दोनों दृष्टिकोणों का अध्ययन आवश्यक है, एक के अध्ययन के बिना दूसरे का अध्ययन व्यर्थ है। अतः अर्थशास्त्र को मानव व्यवहार का अध्ययन करते समय आदर्शवादी पहलू का ध्यान रखना परम आवश्यक है।

(iii) दोनों पहलुओं को अलग-अलग करना गलत श्रम-विभाजन है—अर्थशास्त्र के केवल वास्तविक विज्ञान होने के पक्ष में दिया गया दूसरा तर्क—अर्थात् श्रम-विभाजन का तर्क—भी ठीक नहीं है। यह उचित नहीं है कि एक अर्थशास्त्री किसी विषय का अध्ययन करे, उसके 'कारण' तथा 'परिणाम' के सम्बन्ध को बताये और जब निर्णय देने की बात हो तो यह कार्य एक राजनीतिज्ञ या एक नीतिशास्त्रवेत्ता को या किसी अन्य शास्त्री को दे दिया जाय।

प्रो० पी० सी० जैन का कथन इस सम्बन्ध में बहुत उचित है, "एक गलत श्रम-विभाजन हानिकारक हो सकता है। ऐसा श्रम-विभाजन विचित्र तथा असगत (fantastic) होगा जिसमें कि एक व्यक्ति खाना खाये तथा दूसरा केवल पानी पीये। एक दौड़ में यह बात वास्तव में विचित्र होगी कि एक व्यक्ति सारी दूरी दौड़े और जब वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने को हो तो कोई और उसका स्थान ले ले। इसी प्रकार, यदि अर्थशास्त्र 'कारण' तथा 'परिणाम' के सम्बन्ध का अध्ययन करता है तथा यह निर्णय कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए किसी दूसरे पर छोड़ देता है तो यह समय तथा शक्ति का मितव्ययतापूर्वक प्रयोग न होकर इनकी बर्बादी होगी।"

(iv) साम्य केवल साम्य होने का तर्क अनुचित—प्रो० रोबिन्स का कहना है कि मूल्य के सिद्धान्त के चारों तरफ स्वीकृति (approbation) का कोई क्षेत्र (penumbra) नहीं है तथा साम्य केवल साम्य है—उचित नहीं है। उदाहरण के लिए, भारतीय गाँवों में ब्याज की दर बहुत ऊँची है, इसमें सन्देह नहीं कि यह दर पूँजी की माँग तथा पूर्ति की शक्तियों के साम्य (equili-

brium) का परिणाम है। परन्तु क्या इतनी ऊँची ब्याज की दर न्याययुक्त है ? रोबिन्स के अनुसार साम्य केवल साम्य है, इसलिए ब्याज की ऊँची दर को कम करने के लिए सरकार या समाज को कोई कदम नहीं उठाना चाहिए। परन्तु क्या यह उचित है ? वास्तव में अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू को हम नहीं छोड़ सकते।

(v) **अर्थशास्त्री पर भावनाओं और दृष्टिकोणों का प्रभाव पड़ना अनिवार्य है**—वास्तव में, यदि हम अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान मान लें, तो यह हमारे चाहते हुए भी सम्भव नहीं है। अर्थशास्त्री एक रक्त-माँस का आदमी है, जिसकी अपनी भावनाएँ तथा दृष्टिकोण होते हैं और जब वह कुछ समस्याओं के सम्बन्ध में अन्वेषण करता है, तो उस पर उसकी भावनाओं तथा दृष्टिकोण का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता है। वह इतना वस्तुगत (objective) नहीं हो सकता है जितना कि एक भौतिकशास्त्र का वैज्ञानिक (a physicist or a chemist)। इसका अर्थ यह नहीं है कि अर्थशास्त्री को वस्तुगत (objective) नहीं होना चाहिए. वास्तव में उसे वस्तुगत होने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए और अपनी भावनाओं तथा दृष्टिकोणों का प्रभाव अपनी खोज (enquiry) पर नहीं पड़ने देना चाहिए। उन्हें अपनी खोज के सम्बन्ध में 'क्या है ?' तथा 'क्या होना चाहिए ?' को अलग-अलग स्पष्ट रूप से बताना चाहिए।

(vi) **विषय को रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए आदर्शवादी पहलू स्वीकार करना**—अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान मानने से यह फीका तथा अरुचिकर (colourless and disgusting) हो जायेगा और अन्वेषकों को भी खोज करने में कोई विशेष रुचि नहीं रह जायेगी। यदि वह कुछ आदर्शों तथा उद्देश्यों को समक्ष रखकर खोज करेगा तो उसे रुचि अनुभव होगी तथा वह आनन्द प्राप्त करेगा। साथ ही साथ वह उन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर उपयोगी (relevant) आँकड़े एकत्रित करेगा।

(vii) **कोरा वास्तविक विज्ञान बनाने वाले विद्वान भी अपना मत पूरी तरह नहीं निभा पाये हैं**—अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू के पक्ष में एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि रोबिन्स जो कि अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान बताने के मुख्य समर्थक हैं, वे भी इस बात को पूर्णतया नहीं निभा पाते हैं

(viii) सामाजिक प्रगति का इंजन बनना तब ही सम्भव है जबकि आदर्शवादी पहलू स्वीकार किया जाय—अर्थशास्त्र मुख्यतया एक सामाजिक विज्ञान है। अतः अर्थशास्त्रियों को मानवीय क्रियाओं के प्रति अपने मतों को व्यक्त करने का अधिकार होना चाहिए। अर्थशास्त्रियों को कुछ दिये हुए उद्देश्यों के कल्याण सम्बन्धी अर्थों (welfare implications) पर भी विचार विनिमय करना चाहिए। मनुष्यों तथा समूहों के कल्याण को कैसे बढ़ाया जाय? यह भी अर्थशास्त्र का विषय है। यदि अर्थशास्त्र को 'समाज के उत्थान के लिए एक इंजन' (an engine of social betterment) का कार्य करना है तो उसके आदर्शात्मक पहलू को भुलाया नहीं जा सकता है।

(ix) आर्थिक नियोजन का आधार—आज प्रत्येक देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक नियोजन में विश्वास करता है, इसमें उद्देश्यों को जान-बूझकर निर्धारित किया जाता है और इन पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उपलब्ध सीमित साधनों का प्रयोग किया जाता है ताकि अधिकतम कल्याण को प्राप्त किया जा सके। वुल्फ (Wolfe) का कहना है कि यदि अर्थशास्त्र में से उसके आदर्शवादी पहलू को निकाल दिया जाय तो इसका महत्त्व उसी प्रकार से समाप्त हो जायेगा जिस प्रकार से कि शेक्सपियर के हेमलेट नाटक में से उसके नायक हेमलेट को निकाल देने पर।

५. निष्कर्ष : स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान ही नहीं, बल्कि उसका आदर्शवादी पहलू भी है। "अर्थशास्त्री का कार्य केवल व्याख्या और खोज करना ही नहीं, बल्कि अच्छाई तथा बुराई को भी बताना है।"[6]

क्या अर्थशास्त्र कला है ?

प्राक्कथन (Introductory)

क्या अर्थशास्त्र एक कला है? अथवा वह व्यावहारिक समस्याओं को हल कर सकता है? इस सम्बन्ध में भी मतभेद है। परन्तु इसका विवेचन करने से पहले यह आवश्यक है कि 'कला' शब्द के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझ लिया जाय।

'कला' शब्द का अर्थ :

कला का अर्थ किसी कार्य को करने के सर्वोत्तम ढंग से है। कोसा (Cossa) के शब्दों में, विज्ञान जानने के सम्बन्ध में बताता है, कला करने के सम्बन्ध में बताती है। एक शब्द में, विज्ञान व्याख्या तथा खोज करता है; कला निर्देशन करती है; कला व्यावहारिकता की ओर ले जाती है या नियमों को प्रस्तावित करती है।" कीन्ज (J. N. Keynes) के अनुसार, "कला एक दिये हुए उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नियमों की एक प्रणाली है।"[7] विज्ञान तथा कला एक दूसरे के पूरक हैं। किसी भी बात का क्रमबद्ध ज्ञान तो विज्ञान है, और यदि उस ज्ञान का क्रमबद्ध प्रयोग किया जाता है, तो वह कला है। कोसा (Cossa) के शब्दों में, "विज्ञान को कला की आवश्यकता है, कला को विज्ञान की आवश्यकता है, प्रत्येक एक-दूसरे की पूरक है।"[8] कला हमें 'वास्तविक विज्ञान' से 'विज्ञान के आदर्शवादी पहलू' तक ले जाने का मार्ग बताती है।

बहुत-से आधुनिक अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र के लिए 'विज्ञान' (science) तथा 'कला' (art) के स्थान पर क्रमशः 'विशुद्ध अर्थशास्त्र' (Pure Economics) तथा 'व्यावहारिक अर्थशास्त्र'

6 "The function of the economist is not only to explain and explore but also to advocate and condemn."

7 "An art is a system of rules for the attainment of a given end."

8 "Science requires art, art requires science, each being complementrry to the other."
—*Luigi Cossa*

(Applied Economics) शब्दों का प्रयोग करते हैं और अब वाद का वर्गीकरण पहले की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक तथा उपयुक्त माना जाने लगा है।

२. अर्थशास्त्र के कला होने के सम्बन्ध में मतभेद (controversy)

अर्थशास्त्र कला है या नहीं, इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। एडम स्मिथ, रिकार्डो, जे० एन० केंज, मिल, मार्शल, पीगू इत्यादि अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को कला मानते हैं और आर्थिक समस्याओं को हल करने तथा व्यावहारिक नीति बनाने पर जोर देते हैं। इसके विपरीत, कुछ अर्थशास्त्री जैसे सीनियर (Senior), वालरस (Walras), कूरनो (Cournot), शुम्पीटर (Schumpeter) इत्यादि अर्थशास्त्र को कला नहीं मानते। आधुनिक अर्थशास्त्रियों में से प्रो० रोबिन्स ने भी इसी मत का बड़े जोरदार शब्दों में समर्थन किया है, उनके अनुसार अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान है, व्यावहारिक नीति (public policy) के निर्माण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

३. अर्थशास्त्र को कला न मानने के संबंध में तर्क

अर्थशास्त्र को कला न मानने के सम्बन्ध में निम्न मुख्य तर्क दिये जाते हैं:

(i) **वैज्ञानिक आधार बनाये रखना**—यदि अर्थशास्त्र नीति निर्माण में सहयोग देता है तो वह अपना वैज्ञानिक स्वभाव खो बैठेगा। अर्थशास्त्री को तो विभिन्न कार्यो की विशेषताएँ बताने में केवल एक विशेषज्ञ (expert) का कार्य ही करना चाहिए।[9] अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार को बनाये रखने, सत्य की खोज करने, तथा उसके उचित और पूर्ण विकास के लिए यह आवश्यक है कि अर्थशास्त्री को उद्देश्यों के प्रति तटस्थ रहते हुए नीति-निर्माण से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।

(ii) **समस्याओं का विशुद्ध आर्थिक न होना**—अधिकांश समस्याएँ विशुद्ध आर्थिक नहीं होतीं। उनका अध्ययन आर्थिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण से भी करना आवश्यक हो जाता है। अतः ऐसी अवस्था में यह कैसे सम्भव है कि केवल आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर ही एक अर्थशास्त्री समस्याओं को हल करने के लिए उचित नीति का निर्माण कर सके।

(iii) **सुनिश्चित निष्कर्ष प्रदान न करना, वरन् निष्कर्ष निकालने में सहायक होना**—[illegible] के परिणामस्वरूप जे० एम० केंज ने यह विचार व्यक्त किया कि "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त कोई ऐसे सुनिश्चित एवं पूर्व-निश्चित या बने बनाये निष्कर्ष प्रदान नहीं करते जिन्हें [illegible] प्रयोग किया जा सके। यह एक रीति है, न कि एक सिद्धान्त, मस्तिष्क [illegible] विचार करने की एक तकनीकी (technique) है जो इसके अधिकारी को सही [illegible]

समस्याओं को हल करने में पूर्ण सहयोग देना चाहिए। अर्थशास्त्र के कला होने के सम्बन्ध मे निम्न तर्क दिये जाते है :

(i) **अर्थशास्त्र के कला होने से वैज्ञानिक आधार के विकास में कोई बाधा नहीं**—निस्सन्देह अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक आधार बनाये रखना महत्वपूर्ण बात है, परन्तु अर्थशास्त्री को केवल सत्य के लिए सत्य जानने की दृष्टि से अपने विषय का अध्ययन उचित नही है। अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, इसलिए उसका महत्व इस बात में निहित है कि वह आर्थिक समस्याओं को हल करने मे सहायक हो। अतः प्रो० पीगू के अनुसार "हमारी मनोदशा एक दार्शनिक की सी नहीं होती, अर्थात हम ज्ञान की खोज केवल ज्ञान के लिए नहीं करते, बल्कि हमारी मनोवृत्ति एक डॉक्टर की सी होती है जो कि ज्ञान को स्वस्थ करने के लिए प्रयोग करता है।"[11] अर्थशास्त्र में ज्ञान का मूल्य इसलिए नही है कि वह 'प्रकाशदायक' (light-bearing) है; बल्कि इसलिए है कि वह 'फलदायक' (fruit-bearing) है।

(ii) **अनेक समस्याएँ विशुद्ध आर्थिक स्वभाव की होती हैं**—बहुत-सी समस्याएँ विशुद्ध आर्थिक प्रकृति की है, जैसे बेकारी, विनिमय-दर, मुद्रा तथा साख सम्बन्धी समस्याएँ। यदि इन समस्याओं का हल अर्थशास्त्री नहीं बतायेगा तो और कौन बतायेगा? यदि कोई समस्या मिश्रित प्रकृति की है, तो उसके हल के लिए अर्थशास्त्री द्वारा दी गयी सम्मति सुझाव के रूप मे (suggestive type) हो सकती है क्योंकि एक राजनीतिज्ञ बिना आर्थिक दृष्टिकोण को समझे कोई उचित नीति नही बना सकता है।

(iii) **कींज का यह कथन कि अर्थशास्त्र में ऐसे निष्कर्ष नहीं निकलते जिनका कि तत्काल प्रयोग हो सकता हो अर्थशास्त्र के कला होने के विपक्ष में नहीं है**—(i) कींज ने तो इस बात पर जोर दिया है कि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओ के समाधान के लिए बने बनाये या पूर्व निश्चित नुस्खे (ready-made solution) उपस्थित नहीं करता, उनके कथन का यह अर्थ कदापि नही है कि अर्थशास्त्री को समस्याओं के हल करने मे सहयोग नहीं देना चाहिए। परन्तु निसन्देह यदि अर्थशास्त्री को व्यवहारिक नीति के निर्माण मे सहयोग देना है तो उसे केवल एक सकीर्ण विशेषज्ञ (narrow specialist) के रूप मे कार्य नही करना चाहिए, उसे थोड़ा बहुत मनोविज्ञान तथा अन्य सामाजिक विज्ञानो का अध्ययन भी करना आवश्यक है। (ii) वास्तव मे, अर्थशास्त्री अनेक व्यावहारिक समस्याओ को हल करने मे पर्याप्त रूप से निश्चित नीति तथा तैयार हल देता है। उदाहरणार्थ, उपभोग के क्षेत्र मे प्रतिस्थापन का नियम (Law of Substitution) उपभोक्ता को यह बताता है कि अपनी सीमित आय से वह किस प्रकार अधिकतम सन्तोष प्राप्त कर सकता है।

(iv) **व्यावहारिक अर्थशास्त्र के महत्त्व में वृद्धि**—वास्तव मे, 'व्यावहारिक अर्थशास्त्र' (Applied Economics) का महत्त्व 'विशुद्ध अर्थशास्त्र' की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। प्रो० स्टिगलर (Stigler) के अनुसार लगभग ९०% अर्थशास्त्री अपने समय के आधे से अधिक को 'व्यावहारिक अर्थशास्त्र' के अध्ययन पर व्यतीत करते है, 'विशुद्ध 'आर्थिक सिद्धान्तों' पर नहीं। इससे स्पष्ट है कि यदि अर्थशास्त्री व्यावहारिक समस्याओ को हल करने मे समर्थ नही होते तो व्यावहारिक अर्थशास्त्र के अध्ययन को इतना महत्त्व नहीं दिया जाता।

---

[11] "... our impluse is not the philosopher's impulse, knowledge for the sake of knowledge, but rather the physiologist's knowledge for the healing that knowledge may help to bring." —Pigou, *The Economics of Welfare*, p. 5.

(Applied Economics) शब्दों का प्रयोग करते हैं और अब वाद का वर्गीकरण पहले की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक तथा उपयुक्त माना जाने लगा है।

२. अर्थशास्त्र के कला होने के सम्बन्ध में मतभेद (controversy)

अर्थशास्त्र कला है या नहीं, इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। एडम स्मिथ, रिकार्डो, जे० एन० केंज, मिल, मार्शल, पीगू इत्यादि अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को कला मानते हैं और आर्थिक समस्याओं को हल करने तथा व्यावहारिक नीति बनाने पर ज़ोर देते हैं। इसके विपरीत कुछ अर्थशास्त्री जैसे सीनियर (Senior), वालरस (Walras), कूरनो (Cournot), शुम्पीटर (Schumpeter) इत्यादि अर्थशास्त्र को कला नहीं मानते। आधुनिक अर्थशास्त्रियों में से प्रो० रोबिन्स ने भी इसी मत का बड़े जोरदार शब्दों में समर्थन किया है, उनके अनुसार अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान है, व्यावहारिक नीति (public policy) के निर्माण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

३. अर्थशास्त्र को कला न मानने के संबंध में तर्क

अर्थशास्त्र को कला न मानने के सम्बन्ध में निम्न मुख्य तर्क दिये जाते हैं :

(i) **वैज्ञानिक आधार बनाये रखना**—यदि अर्थशास्त्र नीति निर्माण में सहयोग देता है तो वह अपना वैज्ञानिक स्वभाव खो बैठेगा। अर्थशास्त्री को तो विभिन्न कार्यों की विशेषताएँ बताने में केवल एक विशेषज्ञ (expert) का कार्य ही करना चाहिए।[9] अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार को बनाये रखने, सत्य की खोज करने, तथा उसके उचित और पूर्ण विकास के लिए यह आवश्यक है कि अर्थशास्त्री को उद्देश्यों के प्रति तटस्थ रहते हुए नीति-निर्माण से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।

(ii) **समस्याओं का विशुद्ध आर्थिक न होना**—अधिकांश समस्याएँ विशुद्ध आर्थिक नहीं होतीं। उनका अध्ययन आर्थिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त राजनीतिक, सामाजिक तथा अन्य दृष्टिकोण से भी करना आवश्यक हो जाता है। अतः ऐसी अवस्था में यह कैसे सम्भव है कि केवल आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर ही एक अर्थशास्त्री समस्याओं को हल करने के लिए उचित नीति का निर्माण कर सके।

(iii) **सुनिश्चित निष्कर्ष प्रदान न करना, वरन् निष्कर्ष निकालने में सहायक होना**—उपर्युक्त बात के परिणामस्वरूप जे० एम० केंज ने यह विचार व्यक्त किया कि "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त हमें कोई ऐसे सुनिश्चित एवं पूर्व-निश्चित या बने बनाये निष्कर्ष प्रदान नहीं करते जिन्हें नीति के रूप में तत्काल प्रयोग किया जा सके। वह एक रीति है, न कि एक सिद्धांन्त, मस्तिष्क का यन्त्र तथा विचार करने की एक तकनीकी (technique) है जो इसके अधिकारी को सही निष्कर्ष प्राप्त करने में सहायता करती है।"[10]

४. अर्थशास्त्र के कला होने के पक्ष में तर्क

अर्थशास्त्र में कला होने तथा उसके व्यावहारिक नीति के निर्माण न करने के सम्बन्ध में जो उपर्युक्त तर्क दिये गये हैं उनमें कुछ सत्यता अवश्य है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अर्थशास्त्र कला नहीं है; वास्तव में, अधिकतर अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि अर्थशास्त्र को व्याव

समस्याओं को हल करने में पूर्ण सहयोग देना चाहिए। अर्थशास्त्र के कला होने के सम्बन्ध में निम्न तर्क दिये जाते हैं :

(i) **अर्थशास्त्र के कला होने से वैज्ञानिक आधार के विकास में कोई बाधा नहीं**—निस्सन्देह अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक आधार बनाये रखना महत्वपूर्ण बात है, परन्तु अर्थशास्त्री को केवल सत्य के लिए सत्य जानने की दृष्टि से अपने विषय का अध्ययन उचित नहीं है। अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, इसलिए उसका महत्व इस बात में निहित है कि वह आर्थिक समस्याओं को हल करने में सहायक हो। अतः प्रो० पीगू के अनुसार "हमारी मनोदशा एक दार्शनिक की सी नहीं होती, अर्थात हम ज्ञान की खोज केवल ज्ञान के लिए नहीं करते, बल्कि हमारी मनोवृत्ति एक डॉक्टर की सी होती है जो कि ज्ञान को स्वस्थ करने के लिए प्रयोग करता है।"[11] अर्थशास्त्र में ज्ञान का मूल्य इसलिए नहीं है कि वह 'प्रकाशदायक' (light-bearing) है; बल्कि इसलिए है कि वह 'फलदायक' (fruit-bearing) है।

(ii) **अनेक समस्याएँ विशुद्ध आर्थिक स्वभाव की होती हैं**—बहुत-सी समस्याएँ विशुद्ध आर्थिक प्रकृति की है, जैसे बैंक-दर, विनिमय-दर, मुद्रा तथा साख सम्बन्धी समस्याएँ। यदि इन समस्याओं का हल अर्थशास्त्री नहीं बतायेगा तो और कौन बतायेगा? यदि कोई समस्या मिश्रित प्रकृति की है, तो उसके हल के लिए अर्थशास्त्री द्वारा दी गयी सम्मति सुझाव के रूप में (suggestive type) हो सकती है क्योंकि एक राजनीतिक बिना आर्थिक दृष्टिकोण को समझे कोई उचित नीति नहीं बना सकता है।

(iii) **कॅज का यह कथन कि अर्थशास्त्र में ऐसे निष्कर्ष नहीं निकलते जिनका कि तत्काल प्रयोग हो सकता हो अर्थशास्त्र के कला होने के विपक्ष में नहीं है**—(i) कॅज ने तो इस बात पर जोर दिया है कि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए बने बनाये या पूर्व निश्चित नुस्खे (ready-made solution) उपस्थित नहीं करता, उनके कथन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि अर्थशास्त्री को समस्याओं के हल करने में सहयोग नहीं देना चाहिए। परन्तु निस्सन्देह यदि अर्थशास्त्री को व्यवहारिक नीति के निर्माण में सहयोग देना है तो उसे केवल एक संकीर्ण विशेषज्ञ (narrow specialist) के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए, उसे थोड़ा बहुत मनोविज्ञान तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन भी करना आवश्यक है। (ii) वास्तव में, अर्थशास्त्री अनेक व्यावहारिक समस्याओं को हल करने में पर्याप्त रूप से निश्चित नीति तथा तैयार हल देता है। उदाहरणार्थ, उपभोग के क्षेत्र में प्रतिस्थापन का नियम (Law of Substitution) उपभोक्ता को यह बताता है कि अपनी सीमित आय से वह किस प्रकार अधिकतम सन्तोष प्राप्त कर सकता है।

(iv) **व्यावहारिक अर्थशास्त्र के महत्त्व में वृद्धि**—वास्तव में, 'व्यावहारिक अर्थशास्त्र' (Applied Economics) का महत्त्व 'विशुद्ध अर्थशास्त्र' की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। प्रो० स्टिगलर (Stigler) के अनुसार लगभग ९०% अर्थशास्त्री अपने समय के आधे से अधिक को 'व्यावहारिक अर्थशास्त्र' के अध्ययन पर व्यतीत करते हैं, 'विशुद्ध 'आर्थिक सिद्धान्तों' पर नहीं। इससे स्पष्ट है कि यदि अर्थशास्त्री व्यावहारिक समस्याओं को हल करने में समर्थ नहीं होते तो व्यावहारिक-अर्थशास्त्र के अध्ययन को इतना महत्त्व नहीं दिया जाता।

---

[11] "...our impluse is not the philosopher's impulse, knowledge for the sake of knowledge, but rather the physiologist's knowledge for the healing that knowledge may help to bring." —Pigou, *The Economics of Welfare*, p. 5.

(v) **आर्थिक नियोजन में अर्थशास्त्री की भूमिका**—आज प्रत्येक देश में आर्थिक नियोजन प्रगति पर है। किसी देश की सरकार का आर्थिक 'सलाहकार' (Economic Advisor) व 'प्लानिंग कमीशन' उद्देश्यों को पूर्व निश्चित करता है, विभिन्न आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करता है, उनकी अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में मनन करता है और उनको हल करने के लिए व्यावहारिक नीति बनाता है।

४. निष्कर्ष :

स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र एक कला है और वह व्यावहारिक नीति को बनाने में पूर्ण सहयोग देता है।

अर्थशास्त्र सुनिश्चित एवं पूर्व-निश्चित निष्कर्ष प्रदान नहीं करता वरन् यह निष्कर्ष निकालने में सहायता करता है

केंज का कथन—अर्थशास्त्र तथा आर्थिक नियमों के सम्बन्ध में जे० एम० केंज (J. M. Keynes) का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत रूप से विचारणीय है कि "अर्थशास्त्र ऐसे सुनिश्चित निष्कर्ष प्रदान नहीं करता है, जिनका कि नीति के रूप में तत्काल ही प्रयोग हो सके। यह तो एक रीति (method) है, न कि एक सिद्धान्त (doctrine), मस्तिष्क का एक यन्त्र तथा विचार करने की एक तकनीक (technique) है, जो इसके अधिकारी को सही निष्कर्ष प्राप्त करने में सहायता करती है।"[12]

केंज के कथन की व्याख्या—उक्त शब्दों से यह पता चलता है कि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक नीति का निर्माण करने में किस सीमा तक सहयोग दे सकता है। इस कथन के दो भाग हैं—प्रथम भाग तो यह बताता है कि अर्थशास्त्र क्या नहीं है, अर्थात् अर्थशास्त्र कोई तैयार नुस्खे नहीं देता जिनको तत्काल ही आर्थिक समस्याओं को हल करने में प्रयोग किया जा सकता हो। दूसरा भाग यह बताता है कि अर्थशास्त्र क्या है, अर्थात् अर्थशास्त्र मनुष्य को सोचने की एक यान्त्रिक व्यवस्था प्रदान करता है जिससे कि अर्थशास्त्री को सही निष्कर्ष निकालने में सहायता मिलती है।

केंज द्वारा अर्थशास्त्र के कलात्मक स्वभाव पर जोर—यदि हम केंज के कथन के अंदर गहराई के साथ झाँकने का प्रयत्न करें, तो इस बात का पता चलता है कि केंज अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू को तथा उसके कला होने की बात को मानते हैं, क्योंकि यदि हम अर्थशास्त्र में कुछ आदर्शों को लेकर चलते हैं तभी उनको प्राप्त करने तथा आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु व्यावहारिक नीति का निर्माण करने तथा उसके सफल होने की सीमा इत्यादि के प्रश्न उठते हैं अन्यथा नहीं। किन्तु जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं, अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू तथा उसके कला होने के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं। रोबिन्स तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू तथा कला-स्वभाव को मान्यता नहीं देते हैं, परन्तु आज प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप में आर्थिक नियोजन प्रगति पर है, इसके अन्तर्गत उद्देश्यों (या आदर्शों) को पूर्व निश्चित किया जाता है और इन्हें प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्री व्यावहारिक नीति बनाते हैं। किसी देश की सरकार का आर्थिक सलाहकार विभिन्न आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करता है, उनकी अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में मनन करता है और उनको हल करने के लिए नीति (policy) निर्धारित करता है।

---

12 "The Theory of Economics does not furnish a body of settled conclusions immediately applicable to policy. It is a method rather than a doctrine, an apparatus of the mind, a technique of thinking, which helps its possessor to draw correct conclusions."
—J. M. Keynes, *Introduction to Cambridge Economics Series*

अतः यह बात ध्यान रखने की है कि कींज के कथन का यह अर्थ निकालना उचित नहीं होगा कि अर्थशास्त्री को व्यावहारिक समस्याओं को हल करने में मदद नहीं देनी चाहिए। वास्तव में, कींज तो अर्थशास्त्री के व्यावहारिक रूप में भाग लेने के सम्बन्ध में सहानुभूति रखते है। उन्होंने तो केवल इस बात पर जोर दिया है कि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए कोई सुनिश्चित तथा पूर्व-निश्चित नुस्खे (ready-made solutions) उपस्थित नहीं करता। उनके कथन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि अर्थशास्त्री को समस्याओं के हल करने में सहयोग नहीं देना चाहिए। वास्तव में, प्रो० मार्शल भी कींज से मिलता हुआ विचार व्यक्त कर चुके हैं। "…"(अर्थशास्त्र) ठोस सत्य (concrete truth) का अचल समूह (body) नहीं है, बल्कि मिकेनिक्स (mechanics) के सिद्धान्त की भाँति निश्चित सत्य की खोज करने वाला इंजन है।[13] प्रो० ब्राउन ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं: "अर्थशास्त्र स्वयं व्यावहारिक समस्याओं का उत्तर नहीं देता बल्कि उन समस्याओं में खोज (inquiry) करने का साधन (equipment) है।"[14]

अर्थशास्त्री के लिए विभिन्न विषयों का ज्ञान होना आवश्यक—परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि अर्थशास्त्री को व्यावहारिक नीति के निर्माण में सहयोग देना है तो उसे केवल एक संकीर्ण विशेषज्ञ (narrow specialist) के रूप में नहीं रहना चाहिए, उसके लिए सामाजिक विज्ञानों का पर्याप्त अध्ययन आवश्यक है। फ्रेजर (Fraser) ने ठीक ही कहा है कि "वह अर्थशास्त्री जो केवल अर्थशास्त्री ही है, वह एक सोचनीय दशा वाली सुन्दर मछली के समान है।" (An Economist who is only an economist is a poor pretty fish)। कींज ने भी इसी प्रकार का विचार अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त किया है: एक अर्थशास्त्री को विभिन्न दिशाओं में योग्यता का एक ऊँचा स्तर प्राप्त होना चाहिए और विभिन्न योग्यताओं का मिश्रण, जो कि प्रायः एक ही मनुष्य में नहीं पाया जाता है, उसके पास होना चाहिए।[15] परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि एक अर्थशास्त्री को सब सामाजिक विज्ञानों का विशेषज्ञ होना चाहिए, यह सम्भव और व्यावहारिक नहीं है। वास्तविक बात यह है कि एक अर्थशास्त्री को सकीर्ण विशेषज्ञ नहीं होना चाहिए।

विभिन्न आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु गहन विश्लेषण आवश्यक—विभिन्न आर्थिक समस्याएँ, जैसे बेरोजगारी, मुद्रा-स्फीति या विस्फीति (deflation), जनाधिक्य या न्यून-जनसंख्या, इत्यादि परमावश्यक (urgent) होती हैं, अतः यह विचार आता है कि यदि अर्थशास्त्र इनको हल करने के लिए तैयार नुस्खे दे सकता तो अच्छा होता, जबकि अर्थशास्त्र ऐसा करने में असमर्थ है। विभिन्न आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए नीति बनाने से पहले यह आवश्यक कि उनका गहरा विश्लेषण किया जाय, यह विश्लेषण अनुमान प्रणाली (deductive method) ा अनुभव प्रणाली (inductive method) या दोनों के प्रयोग द्वारा तथा सूक्ष्म दृष्टिकोण micro-approach) या व्यापक दृष्टिकोण (macro-approach) या दोनों ही से किया जाय, रन्तु अर्थशास्त्र के लिए यह सम्भव नहीं कि वह निश्चित नुस्खे दे सके।

---

13 "…(Economics) is not a body of concrete truth, but an engine for the discovery of concrete truth, similar to say, the theory of mechanics."

—A. C. Pigou, *Memorials of Alfred Marshall*

14 "Economic theory does not itself provide answers to practical problems but is an equipment for use in the inquiry into them."

—E. H. Phelps Brown, *A Course in Applied Economics*

15 "He must reach a higher standard in several different directions and must combine talents, not often found together."

(v) **आर्थिक नियोजन में अर्थशास्त्री की भूमिका**—आज प्रत्येक देश में आर्थिक नियोजन प्रगति पर है। किसी देश की सरकार का आर्थिक 'सलाहकार' (Economic Advisor) या 'प्लानिंग कमीशन' उद्देश्यों को पूर्व निश्चित करता है, विभिन्न आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करता है, उनकी अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में मनन करता है और उनको हल करने के लिए व्यावहारिक नीति बनाता है।

४. निष्कर्ष :

स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र एक कला है और वह व्यावहारिक नीति को बनाने में पूर्ण सहयोग देता है।

अर्थशास्त्र सुनिश्चित एवं पूर्व-निश्चित निष्कर्ष प्रदान नहीं करता वरन् यह निष्कर्ष निकालने में सहायता करता है

केंज का कथन—अर्थशास्त्र तथा आर्थिक नियमों के सम्बन्ध में जे० एम० केंज (J. M. Keynes) का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत रूप से विचारणीय है कि "अर्थशास्त्र ऐसे सुनिश्चित निष्कर्ष प्रदान नहीं करता है, जिनका कि नीति के रूप में तत्काल ही प्रयोग हो सके। यह तो एक रीति (method) है, न कि एक सिद्धान्त (doctrine), मस्तिष्क का एक यन्त्र तथा विचार करने की एक तकनीक (technique) है, जो इसके अधिकारी को सही निष्कर्ष प्राप्त करने में सहायता करती है।"[12]

केंज के कथन की व्याख्या—उक्त शब्दों से यह पता चलता है कि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक नीति का निर्माण करने में किस सीमा तक हमें सहयोग दे सकता है। इस कथन के दो भाग हैं—प्रथम भाग तो यह बताता है कि अर्थशास्त्र क्या नहीं है, अर्थात् अर्थशास्त्र कोई तैयार नुस्खे नहीं देता जिनको तत्काल ही आर्थिक समस्याओं को हल करने में प्रयोग किया जा सकता हो। दूसरा भाग यह बताता है कि अर्थशास्त्र क्या है, और अर्थशास्त्र मनुष्य को सोचने की एक यान्त्रिक व्यवस्था प्रदान करता है जिससे कि अर्थशास्त्री को सही निष्कर्ष निकालने में सहायता मिलती है।

केंज द्वारा अर्थशास्त्र के कलात्मक स्वभाव पर जोर—यदि हम केंज के कथन को गहराई के साथ झाँकने का प्रयत्न करें, तो इस बात का पता चलता है कि केंज अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू को तथा उसके कला होने की बात को मानते हैं, क्योंकि यदि हम अर्थशास्त्र में कुछ आदर्शों को लेकर चलते हैं तभी उनको प्राप्त करने तथा आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक नीति का निर्माण करने तथा उसके सफल होने की सीमा इत्यादि के प्रश्न उठते हैं, अन्यथा नहीं। किन्तु जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं, अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू तथा उसके कला होने के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं। रोबिन्स तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू तथा कला-स्वभाव को मान्यता नहीं देते हैं, परन्तु आज प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप में आर्थिक नियोजन प्रगति पर है, इसके अन्तर्गत उद्देश्यों (या आदर्शों) को निश्चित किया जाता है और इन्हें प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्री व्यावहारिक नीति बनाते हैं। किसी देश की सरकार का आर्थिक सलाहकार विभिन्न आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करता है, उनकी अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में मनन करता है और उनको हल करने के लिए नीति (policy) निर्धारित करता है :

---

12 "The Theory of Economics does not furnish a body of settled conclusions immediately applicable to policy. It is a method rather than a doctrine, an apparatus of the mind, a technique of thinking, which helps its possessor to draw correct conclusions."
—J. M. Keynes, *Introduction to Cambridge Economic* [Handbooks]

अतः यह बात ध्यान रखने की है कि कींज के कथन का यह अर्थ निकालना उचित नहीं होगा कि अर्थशास्त्री को व्यावहारिक समस्याओं को हल करने में मदद नहीं देनी चाहिए। वास्तव में, कींज तो अर्थशास्त्री के व्यावहारिक रूप में भाग लेने के सम्बन्ध में सहानुभूति रखते हैं। उन्होंने तो केवल इस बात पर जोर दिया है कि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए कोई सुनिश्चित तथा पूर्व-निश्चित नुस्खे (ready-made solutions) उपस्थित नहीं करता। उनके कथन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि अर्थशास्त्री को समस्याओं के हल करने में सहयोग नहीं देना चाहिए। वास्तव में, प्रो० मार्शल भी कींज से मिलता हुआ विचार व्यक्त कर चुके हैं। "..."(अर्थशास्त्र) ठोस सत्य (concrete truth) का अचल समूह (*body*) नहीं है, बल्कि मिकेनिक्स (mechanics) के सिद्धान्त की भाँति निश्चित सत्य की खोज करने वाला इंजन है।[13] प्रो० ब्राउन ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं: "अर्थशास्त्र स्वयं व्यावहारिक समस्याओं का उत्तर नहीं देता बल्कि उन समस्याओं में खोज (inquiry) करने का साधन (equipment) है।"[14]

अर्थशास्त्री के लिए विभिन्न विषयों का ज्ञान होना आवश्यक—परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि अर्थशास्त्री को व्यावहारिक नीति के निर्माण में सहयोग देना है तो उसे केवल एक संकीर्ण विशेषज्ञ (narrow specialist) के रूप में नहीं रहना चाहिए, उसके लिए सामाजिक विज्ञानों का पर्याप्त अध्ययन आवश्यक है। फ्रेजर (Fraser) ने ठीक ही कहा है कि "वह अर्थशास्त्री जो केवल अर्थशास्त्री ही है, वह एक सोचनीय दशा वाली सुन्दर मछली के समान है।" (An Economist who is only an economist is a poor pretty fish)। कींज ने भी इसी प्रकार का विचार अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त किया है: एक अर्थशास्त्री को विभिन्न दिशाओं में योग्यता का एक ऊँचा स्तर प्राप्त होना चाहिए और विभिन्न योग्यताओं का मिश्रण, जो कि प्रायः एक ही मनुष्य में नहीं पाया जाता है, उसके पास होना चाहिए।[15] परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि एक अर्थशास्त्री को सब सामाजिक विज्ञानों का विशेषज्ञ होना चाहिए, यह सम्भव और व्यावहारिक नहीं है। वास्तविक बात यह है कि एक अर्थशास्त्री को संकीर्ण विशेषज्ञ नहीं होना चाहिए।

विभिन्न आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु गहन विश्लेषण आवश्यक—विभिन्न आर्थिक समस्याएँ, जैसे बेरोजगारी, मुद्रा-स्फीति या विस्फीति (deflation), जनाधिक्य या न्यून-जनसंख्या, इत्यादि परमावश्यक (urgent) होती हैं, अतः यह विचार आता है कि यदि अर्थशास्त्र इनको हल करने के लिए तैयार नुस्खे दे सकता तो अच्छा होता, जबकि अर्थशास्त्र ऐसा करने में असमर्थ है। विभिन्न आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए नीति बनाने से पहले यह आवश्यक है कि उनका गहरा विश्लेषण किया जाय, यह विश्लेषण अनुमान प्रणाली (deductive method) या अनुभव प्रणाली (inductive method) या दोनों के प्रयोग द्वारा तथा सूक्ष्म दृष्टिकोण (micro-approach) या व्यापक दृष्टिकोण (macro-approach) या दोनों ही से किया जाय, परन्तु अर्थशास्त्र के लिए यह सम्भव नहीं कि वह निश्चित नुस्खे दे सके।

---

13 "...(Economics) is not a body of concrete truth, but an engine for the discovery of concrete truth, similar to say, the theory of mechanics."

—A. C. Pigou, *Memorials of Alfred Marshall*

14 "Economic theory does not itself provide answers to practical problems but is an equipment for use in the inquiry into them."

—E. H. Phelps Brown, *A Course in Applied Economics*

15 "He must reach a higher standard in several different directions and must combine talents, not often found together."

अर्थशास्त्र सुनिश्चित एवं पूर्व निश्चित नुस्खे प्रदान क्यों नहीं करता—परन्तु अब यह प्रश्न उठता है कि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए सुनिश्चित एवं पूर्व निश्चित नुस्खे क्यों नहीं प्रदान कर सकता है ? इसके कारण हैं—**प्रथम**, अर्थशास्त्र में जड़-पदार्थों का अध्ययन नहीं किया जाता, बल्कि मनुष्य का अध्ययन किया जाता है जो कि जीव है, विवेकपूर्ण है तथा स्वतन्त्र इच्छा वाला है। ऐसी स्थिति में मनुष्य की क्रियाओं के बारे में निश्चित रूप से भविष्य-वाणी नहीं की जा सकती है, क्योंकि समान दशाओं में सभी मनुष्यों की आर्थिक क्रियाएँ समान होना आवश्यक नहीं है। **दूसरे**, अर्थशास्त्र एक सामाजिक शास्त्र है, इसलिए इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों से प्रभावित विभिन्न प्रकार के मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अतः सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक कारणों से अनेक आर्थिक नियमों का व्यवहार में लागू होना कठिन हो जाता है। **तीसरे**, आर्थिक तत्त्व तथा कारण समय पाकर स्वयं बदलते रहते हैं। इसी प्रकार, समय के साथ-साथ मनुष्यों के दृष्टिकोण, रुचि, स्वभाव इत्यादि में भी परिवर्तन हो जाता है। इन्हीं सब कारणों के परिणामस्वरूप आर्थिक नियम कम निश्चित होते हैं और इसलिए अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए तैयार तथा निश्चित नुस्खे प्रदान नहीं कर पाता है।

बहुत सीमा तक सही निष्कर्ष निकालने में सहायक—उपर्युक्त बातों के कारण कैंज को यह कहना पड़ा कि अर्थशास्त्र तो एक रीति (method) है, न कि एक सिद्धान्त (doctrine), मस्तिष्क का एक यन्त्र तथा विचारने या सोचने की एक तकनीक (technique) है जो कि इसके अधिकारी को सही निष्कर्ष निकालने में सहायता करती है। यद्यपि अर्थशास्त्र निश्चित सैद्धान्तिक दावे (dogmatic assertions) नहीं कर सकता परन्तु फिर भी दिये हुए तत्त्वों (data) तथा विश्लेषण के तरीकों के आधार पर वह बहुत सीमा तक सही निष्कर्ष निकालने में मदद करता है। उदाहरणार्थ, उपभोग के क्षेत्र में 'प्रतिस्थापन का नियम' (Law of Substitution) एक उपभोक्ता को यह बताता है कि वह सीमित आय से किस प्रकार अधिकतम सन्तोष प्राप्त कर सकता है। उत्पादन का सिद्धान्त औद्योगिक संगठन में तथा लागतों को निम्नतर रखने में बहुत सीमा तक मदद करता है। विनिमय का सिद्धान्त मूल्य निर्धारण में, विशेष रूप से एकाधिकार के अन्तर्गत, बहुत सहायता देता है। राजस्व के अध्ययन से एक वित्तमन्त्री को कर इत्यादि से सम्बन्धित व्यावहारिक नीति में बहुत मदद मिलती है।

निष्कर्ष—यद्यपि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए निश्चित तथा तैयार नुस्खे नहीं दे पाता, परन्तु इससे अर्थशास्त्र का महत्त्व आर्थिक समस्याओं के व्यावहारिक समाधान के दृष्टिकोण से कम नहीं होता, क्योंकि अर्थशास्त्र के लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि यह बहुत सीमा तक विश्वसनीय तथा सही निष्कर्ष निकाल लेता है और इस कार्य को भली प्रकार निभाता है।

-

३ अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीतियाँ
[METHODS OF ECONOMIC STUDY]

आर्थिक अध्ययन की रीतियों से आशय

कोसा (Cossa) के अनुसार, "रीति शब्द का अर्थ उस तर्कपूर्ण प्रणाली से होता है जिसका प्रयोग सच्चाई को खोजने या उसे व्यक्त करने के लिए किया जाता है।"[1] अन्य विज्ञानों की भाँति, अर्थशास्त्र आर्थिक नियमों का, जो कि आर्थिक घटनाओं के 'कारण' तथा 'परिणाम' के पारस्परिक सम्बन्ध को बताते हैं, निर्माण करता है। जिन रीतियों का प्रयोग आर्थिक नियमों तथा सिद्धान्तों के निर्माण में किया जाता है, उन्हें अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीतियाँ कहते हैं। आर्थिक नियमों तथा सिद्धान्तों के निर्माण में मुख्यतया दो रीतियों का प्रयोग किया जाता है—(I) निगमन प्रणाली (Deductive Method), तथा (II) आगमन प्रणाली (Inductive Method)।

(I) निगमन प्रणाली
(DEDUCTIVE METHOD)

निगमन प्रणाली का अर्थ

इस प्रणाली के अन्तर्गत मनुष्य, प्रकृति या समाज की कुछ सर्वमान्य स्वयंसिद्ध तथा आधारभूत बातों को आधार मानकर विशिष्ट निष्कर्ष निकाले जाते हैं; अर्थात् इसमें तर्क का क्रम 'सामान्य से विशिष्ट की ओर' (From general to particular) होता है। उदाहरणार्थ, यह स्वयंसिद्ध सत्य है कि मनुष्य मरणशील है, अतः राम, जो कि एक मनुष्य है, भी मरणशील है। इसी प्रकार, यह स्वयंसिद्ध सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य वस्तुएँ सस्ते मूल्यों पर खरीदना चाहता है, अतः राम भी सस्ते मूल्यों पर वस्तुएँ खरीदेगा। इन उदाहरणों में तर्क का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर है।

प्रो० बोल्डिंग (Boulding) निगमन रीति को 'मानसिक प्रयोग की रीति' (Method of Intellectual Experiment) कहते हैं। चूँकि वास्तविक संसार जटिल तथा गुँथा हुआ है इसलिए उसका वास्तविक रूप में एकदम अध्ययन नहीं किया जा सकता। अतः पहले सरल और कम वास्तविक दशाओं तथा मान्यताओं को लेकर चलते हैं, फिर धीरे-धीरे अन्य जटिल मान्यताओं का समावेश करते जाते हैं ताकि वास्तविकता तक पहुँच जायें।[2] इस रीति के अन्य नाम भी हैं। इनको

---

[1] "Method means the logical process used in discovering or in demonstrating the truth."

[2] "Under these circumstances what we do is to postulate, in our own minds, economic systems which are simpler than reality but more easy to grasp. We then work out the relationships involved in these simplified systems and by introducing more and more complete assumptions, finally work up to the consideration of reality itself."

—Boulding, *Economic Analysis*, p 13

'काल्पनिक रीति' (Hypothetial Method), 'अमूर्त रीति' (Abstract Method) तथा 'विश्लेषणात्मक रीति' (Analytical Method) भी कहते हैं।[3]

निगमन रीति दो प्रकार की होती है—गणितीय (Mathematical) तथा अगणितीय (Non-mathematical)। 'अगणितीय रीति' का प्रयोग प्रतिष्ठित तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने किया। इस रीति के अन्तर्गत गणित या गणित के चिन्हों का प्रयोग नहीं किया जाता। १९वीं शताब्दी में एजवर्थ (Edgeworth) ने 'गणितीय निगमन रीति' का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया। आज आर्थिक समस्याओं की व्याख्या में चित्रों तथा गणित का एक महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया है।

निगमन प्रणाली के गुण (Merits of Deductive Method)

(१) **सरलता** (Simplicity)—प्रत्येक व्यक्ति इसका प्रयोग आसानी के कर सकता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत आँकड़ों का एकत्र करना तथा उनका विश्लेषण, इत्यादि कठिन और जटिल कार्य नहीं करने पड़ते, बल्कि इसमें तो सामान्य तथा स्वयंसिद्ध सत्य के आधार पर तर्क की सहायता से विशिष्ट सत्य की खोज की जाती है। सरलता के कारण ही इस रीति का प्रयोग अर्थशास्त्र के विकास के प्रारम्भिक चरणों में किया गया और आज भी यह रीति लोकप्रिय है।

(२) **निश्चितता तथा स्पष्टता** (Certainty and Clarity)—यदि स्वयंसिद्धियाँ (axioms) तथा मान्यताएँ ठीक हों, तो इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष सामान्यतया निश्चित, सही (precise) और स्पष्ट (well-defined) होते हैं, क्योंकि (i) इसमें त्रुटियों को तर्क की सहायता से निकाला जा सकता है, और (ii) इसमें गणितशास्त्र का प्रयोग होने से निष्कर्ष स्पष्ट होते हैं।

(३) **सर्वव्यापकता** (Universality)—इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष तथा नियम हर समय तथा प्रत्येक देश में लागू होते हैं, क्योंकि वे मनुष्य की सामान्य प्रकृति तथा स्वभाव पर आधारित होते हैं जबकि आगमन रीति (Inductive method) द्वारा बनाये गये नियम किसी स्थान विशेष या समय विशेष में ही ठीक उतरते हैं। उदाहरण के लिए, सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, जो कि निगमन प्रणाली पर आधारित है, प्रत्येक समय और प्रत्येक देश में लागू होता है; किन्तु माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त, जो कि आगमन रीति पर आधारित है, उन्हीं देशों के लिए ठीक था जिनके निरीक्षण और अवलोकन के बाद उसे निर्माण किया गया था।

(४) **निष्पक्षता** (Impartiality)—इसी रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष निष्पक्ष होते हैं, क्योंकि वे सामान्य सत्य के आधार पर तर्क द्वारा निकाले जाते हैं। अतः एक अन्वेषक (Investigator) निष्कर्षों को अपने विचारों तथा दृष्टिकोण से प्रभावित नहीं कर सकता। किन्तु आगमन प्रणाली में ऐसा करने की सम्भावना रहती है, क्योंकि इसके अन्तर्गत एक अन्वेषक निरीक्षण का ऐसा क्षेत्र चुन सकता है जहाँ पर उसके विचारों की पुष्टि हो।

---

[3] इसे (i) 'काल्पनिक रीति' इसीलिए कहते हैं कि इसके अन्तर्गत आर्थिक नियमों का निर्माण कुछ कल्पनाओं (अर्थात् मूल सिद्धान्तों) के आधार पर किया जाता है। (ii) 'अमूर्त रीति' या 'सार निकालने वाली रीति' इसलिए कहते हैं क्योंकि उन बातों को जिनको कि आधार माना जाता है उनका सार निकालकर नियमों का निर्माण किया जाता है। (iii) 'विश्लेषणात्मक रीति' इसलिए कहते हैं कि एक कठिन समस्या के विभिन्न अंगों या पहलुओं को अलग-अलग करके उन पर विचार किया जाता है जिससे विश्लेषणात्मक अध्ययन हो सके।

(५) भविष्यवाणी (Forecasting)—इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष अधिक निश्चित होते हैं। अतः यह रीति आर्थिक घटनाओं की भविष्यवाणी करने या उनका उचित अनुमान लगाने में अधिक उपयुक्त होती है।

(६) अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान के लिए यह रीति अधिक उपयोगी—अर्थशास्त्र में मनुष्य के सामाजिक व्यवहार के बारे में अध्ययन किया जाता है, परन्तु मानवीय व्यवहार के ऊपर किसी प्रकार का प्रयोग करना प्रायः सम्भव नहीं होता। इसके अतिरिक्त बहुत-से ऐतिहासिक तथ्य प्रायः अप्राप्य अथवा अपर्याप्त होते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों में अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान के अध्ययन के लिए निगमन रीति बहुत महत्त्वपूर्ण है।

(७) आगमन रीति की पूरक—निगमन रीति की सहायता से आगमन रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों की सत्यता की जाँच की जा सकती है।

उपर्युक्त गुणों के कारण ही केअरनीस (Cairnes) ने इस रीति की प्रशंसा में कहा है, "यदि पर्याप्त सावधानी से काम लिया जाये तो निगमन प्रणाली अतुल्य है और मानव बुद्धि द्वारा अन्वेषण करने वाले यन्त्रों में अत्यन्त शक्तिशाली यन्त्र है।"[4]

निगमन प्रणाली के दोष (Demerits of Deductive Method)

(१) इस प्रणाली द्वारा प्राप्त निष्कर्ष प्रायः वास्तविकता से दूर होते हैं—इसके दो कारण होते हैं : (अ) इस प्रणाली के अन्तर्गत हम जिन सामान्य मान्यताओं को आधार मानकर चलते हैं उनकी यथार्थता तथा सच्चाई को जाँचने का कोई उपाय नहीं है। वास्तव में, ये मान्यताएँ सदैव सत्य नहीं होती हैं या अंशतः ही ठीक होती है। अतः असत्य तथा अपूर्ण मान्यताओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष भी असत्य, दोषपूर्ण और अपूर्ण होंगे। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की मान्यताएँ वास्तविक जीवन से बहुत भिन्न थी, अतः उन्होंने अर्थशास्त्र में सिद्धान्तों का एक अवास्तविक और दोषपूर्ण ढाँचा खड़ा कर दिया। प्रो० जीड (Gide) का कथन ठीक है कि "प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मुख्य दोष सार रीति (Abstract method) के अत्यधिक प्रयोग में नहीं था बल्कि सार या अमूर्त (abstraction) को वास्तविकता समझ लेने में था।"[5] अतः, यदि केवल निगमन रीति का ही प्रयोग किया जाये तो इस बात का पूर्ण डर है कि अर्थशास्त्री केवल 'बौद्धिक खिलौने' (Intellectual toys) उत्पन्न कर सकेंगे जिनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

(ब) इस रीति द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को जाँचना तथा प्रमाणित करना भी कठिन है। प्राप्त निष्कर्ष तर्क की कसौटी पर ठीक हो सकते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वे वास्तविक और व्यावहारिक जगत में भी ठीक एवं सत्य हों, निष्कर्ष वास्तविक जीवन से प्राप्त आँकड़ों तथा सूचनाओं पर आधारित नहीं होते क्योंकि इनके एकत्रीकरण में बहुत श्रम उठाना पड़ता है। अतः प्रो० निकोलसन ने कहा है कि "निगमन प्रणाली का सबसे बड़ा खतरा इस बात में निहित है कि इसमें निष्कर्षों की जाँच करने के श्रम से स्वाभाविक अरुचि हो जाती है।"[6]

(२) निष्कर्षों की सर्वव्यापकता सन्देहात्मक—कई परिस्थितियों में निगमन रीति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष या नियम सर्वव्यापक नहीं होते। "आर्थिक दशाएँ, स्थान तथा समय के साथ-साथ

---

4 "The method of deduction is incomparable when conducted under perfect checks, the most powerful instrument of discovery ever wielded by human intelligence."

5 "The mistake of the classical school did not consist in too frequent use of the abstract method, but in having too often mistaken the abstraction for the reality."

6 "The great danger of the deductive method lies in the natural aversion of the labour of verification.

निरन्तर बदलती रहती हैं और तर्क द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को दूसरे स्थान व समय में, जहाँ पर कि मूलभूत आधार ही सच नहीं होता, प्रयोग नहीं करना चाहिए।"[1] प्रो० ए० पी० लार्नर (A. P. Lerner) के शब्दों में 'निगमन आराम-कुर्सी विश्लेषण' (Deductive arm-chair analysis) को सार्वजनिक और सार्वभौमिक नहीं माना जा सकता।

(३) **स्थिर दृष्टिकोण (Static Approach)**—यह रीति एक तथ्य या क्रियात्मक शक्ति का, अन्य तथ्यों या क्रियात्मक शक्तियों से अलग करके अध्ययन करती है और अन्य क्रियात्मक शक्तियों या परिस्थितियों को स्थिर मान लेती है। परन्तु वास्तविक जीवन की परिस्थितियाँ स्थिर नहीं होतीं बल्कि परिवर्तनशील होती हैं। अतः अर्थशास्त्र के अध्ययन में हमारा दृष्टिकोण प्रावैगिक (dynamic) होना चाहिए जबकि निगमन रीति का दृष्टिकोण स्थिर (static) है।

(४) **अर्थशास्त्र का पूर्ण विकास सम्भव नहीं**—इस रीति द्वारा अर्थशास्त्र के सभी पहलुओं का अध्ययन सम्भव नहीं हो सकता। परिणामस्वरूप केवल इस रीति के प्रयोग द्वारा अर्थशास्त्र अपने विकास की चरमसीमा तक नहीं पहुँच सकता है।

स्पष्ट है कि निगमन रीति के बहुत से गुण होते हुए भी यह पूर्ण नहीं है। यद्यपि सावधानी के साथ प्रयोग करने से इसके दोष कम हो सकते हैं, परन्तु फिर भी यह दोषों से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो सकती। अतः, अर्थशास्त्र के सर्वांगीण विकास के लिए निगमन रीति के साथ आगमन रीति का सहयोग आवश्यक है।

(II) आगमन रीति
(INDUCTIVE METHOD)

आगमन रीति का प्रयोग जर्मनी के अर्थशास्त्रियों लिस्ट (List), रोशर (Roscher) इत्यादि ने निगमन प्रणाली की प्रतिक्रिया के रूप में आरम्भ किया जिन्हें **'ऐतिहासिक सम्प्रदाय'** (Historical-School) के नाम से पुकारा जाता है। इन्होंने निगमन रीति की कड़ी आलोचना की और आगमन रीति के प्रयोग पर बहुत जोर दिया। कुछ समय बाद इंगलैण्ड में क्लिफ लैसली (Cliffe Leslie) इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने भी इस रीति के प्रयोग का समर्थन किया।

आगमन रीति का अर्थ

यह रीति निगमन रीति के ठीक विपरीत है; इसमें **तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर (From particular to general)** होता है। इसमें पहले बहुत-सी विशिष्ट घटनाओं या वास्तविक तथ्यों के अवलोकन और अध्ययन के आधार पर सामान्य सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है। इसके पश्चात प्रयोग द्वारा इस सामान्य सिद्धान्त की जाँच की जाती है। अतः इस प्रणाली में अवलोकन (observation) तथा प्रयोग (experiment) के आधार पर सामान्य नियम या निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

उदाहरणार्थ किसी वस्तु की कीमत गिर जाने पर हम यह अवलोकन करते हैं कि १ ग्राहक उसकी अधिक मात्रा खरीद रहे हैं, तो यह सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वस्तुओं की कीमत कम होने पर उनकी माँग बढ़ जाती है। यहाँ पर तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर है।

---

[1] "Economic conditions are continually changing in place and time, and conclusions obtained by such reasoning must not be applied at another place or another time where the premise does not hold good."

आगमन रीति के सामान्यतया दो रूप हैं—(i) सांख्यिक रूप (Statistical form), तथा (ii) प्रयोगिक रूप (Experimental form)। प्रथम रूप में, हम बहुत-से तथ्य या आँकड़े विभिन्न क्षेत्रों से एकत्र करते हैं, तत्पश्चात उनके आधार पर सामान्य नियमों का निर्माण करते हैं। स्पष्ट है कि यहाँ हम विशिष्ट से सामान्य की ओर चलते हैं। अतएव आगमन के सांख्यिक रूप को ही आगमन रीति कहा जाता है। दूसरे रूप में, सामान्य नियमों की सच्चाई प्रयोग द्वारा जाँच की जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अर्थशास्त्र में यह रूप पहले की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान में प्रयोग करने की सम्भावना बहुत कम और सीमित रहती है।

आगमन रीति को कई अन्य नामों से भी पुकारा जाता है। इसे 'ऐतिहासिक रीति' (Historical Method), 'वास्तविक रीति' (Realistic Method), 'सांख्यिक रीति' (Statistical Method) तथा 'प्रयोगिक प्रणाली' (Experimental Method) भी कहते हैं।[8]

आगमन रीति के गुण (Merits of Inductive Method)

(१) निष्कर्ष वास्तविकता के निकट—इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष तथा सामान्य नियम वास्तविक घटनाओं तथा तथ्यों के अवलोकन पर आधारित होते हैं; अतः वे वास्तविकता के निकट होते हैं।

(२) प्रयोग तथा अनुसन्धान सम्भव—इस रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों तथा नियमों की सत्यता को प्रयोग, ऐतिहासिक अनुभव और अनुसन्धान द्वारा जाँचा जा सकता है; जबकि निगमन प्रणाली में मान्यताओं तथा निष्कर्षों को इस प्रकार परखने की सुविधा नहीं होती।

(३) आर्थिक समस्याओं की जटिलता पर उचित ध्यान—इस रीति का एक मुख्य गुण यह है कि यह आर्थिक समस्याओं की जटिलताओं पर उचित ध्यान देती है और बताती है कि ऐसे निष्कर्ष तथा सिद्धान्तों का निर्माण कठिन है जो प्रत्येक समय और स्थान पर लागू हो सकें। यह इस बात को स्पष्ट करती है कि एक सामान्य सिद्धान्त दी हुई परिस्थितियों के अन्तर्गत किसी विशेष स्थान या निश्चित समय में ही ठीक उतरता है।

(४) प्रावैगिक दृष्टिकोण (Dynamic Approach)—इस रीति का दृष्टिकोण स्थिर न होकर प्रावैगिक है। यह रीति इस बात पर प्रकाश डालती है कि आर्थिक तथ्य परिवर्तनशील होते हैं, अतः सिद्धान्तों को बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए। इस रीति ने इतिहास की बहुत-सी बातों को स्पष्ट करके हमारे ज्ञान में वृद्धि की तथा हमारे विचारों तथा दृष्टिकोणों को अधिक व्यापक बनाया है।

---

8 (१) ऐतिहासिक रीति—इस रीति को 'ऐतिहासिक रीति' इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें बहुत-से विशिष्ट सत्यों को मालूम करने के लिए प्रयोग करना सदैव सम्भव नहीं होता, अतः इसमें बहुधा ऐतिहासिक तथ्यों तथा लेखों की मदद लेनी पड़ती है। (२) वास्तविक रीति : इस रीति को 'वास्तविक रीति' इसलिए कहते हैं कि यह वास्तविक तथ्यों का विवरण देती है एवं वास्तविक निरीक्षणों की सहायता लेती है जिसके कारण इसके निष्कर्ष प्रायः वास्तविकता के निकट होते हैं। (३ सांख्यिक रीति : इसे 'सांख्यिक रीति' इसलिए कहते हैं कि इसमें सामान्य नियम या निष्कर्ष निकालने के लिए बहुत-से तथ्यों और आँकड़ों का प्रयोग किया जाता है। (४)-प्रयोगिक रीति : इसे 'प्रयोगिक रीति' इसलिए कहते हैं कि इसमें सामान्य निष्कर्षों को प्रयोग द्वारा जाँचने का प्रयत्न किया जाता है। (५) संश्लेषणात्मक रीति : इसे 'संश्लेषणात्मक रीति' (Synthetic Method) भी कहते हैं, क्योंकि इसमें विषय को विभागों में बाँटते नहीं बल्कि तथ्यों को अनुभव के आधार पर मिलाकर निष्कर्ष निकालते हैं।

(५) निगमन रीति की पूरक—निगमन रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों तथा सिद्धान्तों की सच्चाई और वास्तविकता को आगमन रीति द्वारा जाँचा जा सकता है। इस रीति ने बहुत से निगमन-निष्कर्षों को प्रमाणित किया है अथवा उनमें त्रुटियों को स्पष्ट किया है।

आगमन प्रणाली के दोष (Demerits of Inductive Method)

(१) कठिन तथा असुविधाजनक—यह प्रणाली सरल नहीं है क्योंकि (i) आर्थिक तथ्यों से सम्बन्धित आँकड़ों तथा सूचनाओं को एकत्र करना, उनकी व्याख्या और विवेचना करना प्रत्येक के लिए सम्भव नहीं; केवल वे ही लोग इसका प्रयोग कर सकते हैं जिनको इस प्रकार के कार्य के लिए पूर्व प्रशिक्षण दिया गया हो। (ii) इसके प्रयोग में अत्यधिक लागत आती है; सीमित आँकड़ों को इकट्ठे करने के लिए एक विस्तृत यान्त्रिक व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है—अन्वेषक रखने पड़ते हैं, उन्हें प्रशिक्षित करना होता है, आँकड़ों को एकत्रित करने के बाद उनका वर्गीकरण, विश्लेषण तथा विवेचन करना पड़ता है। इन सब बातों में पर्याप्त लागत पड़ती है। अतः इस प्रणाली का प्रयोग केवल बड़े सर्वेक्षणों तथा बड़े अनुसन्धान कार्यों में ही किया जा सकता है।

(२) निरीक्षण का क्षेत्र सीमित होने पर दोषपूर्ण निष्कर्ष—व्यवहार में समय और धन की कमी के कारण प्रायः थोड़े-से आँकड़ों के आधार पर ही निष्कर्ष निकाल लिए जाते हैं। ऐसे निष्कर्षों की सत्यता सन्देहात्मक रहती है, क्योंकि निरीक्षण का विस्तृत क्षेत्र होने पर ही नियम अधिक सही निकलते हैं। अतः, सीमित निरीक्षण तथा जल्दी में संग्रहित भ्रामक तथ्यों के परिणामस्वरूप निष्कर्ष तथा नियम गलत भी प्रतिपादित हो सकते हैं।

(३) पक्षता (Partiality)—इस प्रणाली के अन्तर्गत इस बात की बहुत अधिक सम्भावना रहती है कि इसके द्वारा निकाले गये निष्कर्ष निष्पक्ष न हों। उन पर प्रायः अन्वेषक (Investigator) के व्यक्तिगत दृष्टिकोण तथा विचारों की छाप हो सकती है, क्योंकि अन्वेषक निरीक्षण के ऐसे क्षेत्र का चुनाव कर सकता है जहाँ पर उसके विचारों की पुष्टि होती हो। आँकड़ों द्वारा कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है" (Statistics can prove anything), यह कथन इस प्रणाली के सम्बन्ध में बहुत कुछ सत्य है।

(४) अर्थशास्त्र में सीमित प्रयोग—यह रीति प्राकृतिक विज्ञानों के लिए बहुत उपयुक्त होती है। अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान में इसका प्रयोग सीमित मात्रा में ही किया जा सकता है क्योंकि कुछ मानवीय आर्थिक क्रियाओं तथा तथ्यों का निरीक्षण और उन पर प्रयोग बहुत कठिन होता है। उदाहरणार्थ, मानवीय सुख (Happiness) तथा हित (Welfare) का ठीक पता निरीक्षण और प्रयोग द्वारा नहीं लगाया जा सकता है। कभी-कभी आर्थिक समस्याएँ बहुत जटिल होती हैं, जटिलता का कारण कारणों की बहुलता या प्रभावों का मिश्रण हो सकता है। ऐसी स्थितियों में तो इस रीति का प्रयोग प्रायः असम्भव-सा होता है।

(५) केवल यह रीति अर्थशास्त्र के विकास में सहायक नहीं—यदि अर्थशास्त्र में केवल इसी रीति का प्रयोग किया जाये, तो अर्थशास्त्र का पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। केवल आगमन या तथ्यात्मक दृष्टिकोण समाज को आगे बढ़ाने में सफल न होंगे। जेवन्स (Jevons) के अनुसार, "यद्यपि अवलोकन तथा आगमन प्रकृति सम्बन्धी सभी निश्चित शास्त्रों का आधार हैं, तथापि केवल इनके ही प्रयोग से आधुनिक विज्ञान के निष्कर्षों को प्राप्त नहीं किया जा सकता था।"[9]

---

9 "Though observation and induction must ever be the ground of all certain knowledge of nature, their unaided employment could never have led to the results of modern science."

दोनों रीतियों के सम्बन्ध में विवाद
(CONTROVERSY ABOUT THE TWO METHODS)

दोनों रीतियों में से कौनसी रीति अर्थशास्त्र के लिए अधिक उपयुक्त है, इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद तथा वाद-विवाद रहा है।

निगमन रीति का समर्थन

प्राचीन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री, रिकार्डो, सीनियर, केअरनीज (Cairnes), मिल इत्यादि इस मत के थे कि आर्थिक अध्ययन के लिए केवल निगमन रीति (Deductive Method) ही उचित और ठीक है। (प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में से एडम स्मिथ तथा रिकार्डो ने दोनों प्रणालियों का प्रयोग किया था। परन्तु अधिकांश प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री निगमन रीति के ही कड़े समर्थक थे।) इस प्रणाली का समर्थन होने के कारण इसके गुण तथा कुछ अन्य कारण भी थे जो कि इस प्रकार हैं—(i) प्राचीन काल में आर्थिक समस्याओं से सम्बन्धित आंकड़े तथा सूचनाएँ एकत्र करने का कार्य बहुत कम था क्योंकि उस समय सांख्यिकी विज्ञान (Statistics) का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया था। (ii) ये अर्थशास्त्री तर्कशास्त्र तथा अर्थशास्त्र में गहरा सम्बन्ध मानते थे, अतः उन्होंने निगमन रीति के प्रयोग पर अत्यधिक जोर दिया। (iii) ये अर्थशास्त्री समझते थे कि इस रीति के प्रयोग से ही आर्थिक नियमों में निश्चितता लायी जा सकती है क्योंकि मनुष्य का स्वभाव सब जगह एक-सा ही रहता है।

परन्तु अर्थशास्त्र में केवल इस रीति के प्रयोग होने के परिणामस्वरूप बहुत-से ऐसे आर्थिक निष्कर्ष निकले जिनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध न था और अर्थशास्त्र की उपयोगिता कम होती हुई प्रतीत होने लगी।

आगमन रीति का समर्थन

निगमन रीति के अत्यधिक प्रयोग की प्रतिक्रिया में जर्मनी में एक नया समुदाय उठ खड़ा हुआ जो कि ऐतिहासिक समुदाय (Historical School) के नाम से विख्यात है। इस समुदाय के अर्थशास्त्रियों, रोशर (Roscher), नीज (Knies), हिल्डेब्रांड (Hildebrand) इत्यादि ने निगमन रीति की कड़ी आलोचना की और बताया कि अर्थशास्त्र के पूर्ण विकास के लिए केवल आगमन रीति (Inductive Method) ही सबसे अधिक ठीक है। बाद में इंग्लैण्ड में क्लिफलैसली (Clife Leslie) आदि अर्थशास्त्री आगमन रीति के कड़े समर्थकों में से हो गये। इस रीति के समर्थन के कारण इस प्रकार हैं—(i) सांख्यिकी का विकास हो रहा था, तथा (ii) अर्थशास्त्री व्यावहारिक प्रश्नों को हल करने की तीव्र आवश्यकता अनुभव करने लगे थे।

निष्कर्ष—दोनों प्रणालियाँ आवश्यक तथा सहयोगी हैं

(१) दोनों रीतियाँ पूरक हैं—अब दोनों रीतियों के सम्बन्ध में मतभेद तथा वाद-विवाद समाप्त हो चुका है। दोनों रीतियों के अपने-अपने गुण-दोष हैं। कोई रीति अपने में पूर्ण नहीं, बल्कि दोनों एक दूसरे की सहयोगी तथा पूरक हैं। अर्थशास्त्र के पूर्ण विकास के लिए दोनों रीतियों का प्रयोग आवश्यक है। अतः मार्शल ने शोमलर (Schmoller) को उद्धृत किया है, "जिस प्रकार चलने के लिए दाहिने और बायें दोनों पैरों की आवश्यकता है, उसी प्रकार अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए निगमन और आगमन दोनों रीतियों की आवश्यकता है।"[10] (इसी विचार को वेगनर (Wagner) ने इन शब्दों में व्यक्त किया है, "अर्थशास्त्र की प्रणालियों के वाद-विवाद का वास्तविक

---

10 "Induction and Deduction are both needed for scientific thought as the right and left foot are both needed for walking." —Schmoller, Quoted by Marshall.

हल निगमन अथवा आगमन के चुनाव में नहीं बल्कि निगमन तथा आगमन दोनों के ग्रहण करने में है।"[11]

(२) यहाँ पर एक प्रश्न उठ सकता है कि किस अनुपात में दोनों रीतियों को मिलाना चाहिए?—इस प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह बात खोज की प्रकृति, प्राप्त सामग्री इत्यादि पर निर्भर करेगी। उदाहरण के लिए, उपभोग, मूल्य-सिद्धान्त इत्यादि में निगमन रीति का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा, जब कि व्यापार-चक्र सिद्धान्त (Trade Cycle Theory), उत्पत्ति तथा राजस्व में, जहाँ प्रयोग की सम्भावना है, आगमन रीति अधिक उपयुक्त होगी। विनिमय तथा वितरण की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए कहीं निगमन का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता है तो कहीं आगमन का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता है।

मार्शल के शब्दों में, "अन्वेषण की कोई भी एक ऐसी रीति नहीं है जिसे अर्थशास्त्र के अध्ययन की उचित रीति कहा जा सके, बल्कि प्रत्येक का यथास्थान या तो अकेले या मिश्रित रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए।"[12]

(३) आधुनिक अर्थशास्त्री दोनों के मिश्रित (integrated) तरीके का प्रयोग करते हैं और मिश्रित रीति को 'वैज्ञानिक तरीका' (Scientific Method) कहते हैं। इसके अन्तर्गत तीन बातों का समावेश होता है—अवलोकन (observation), तर्क (reasoning) तथा जाँच या परख (verification)।

४ आर्थिक नियम तथा मान्यताएँ [ECONOMIC LAWS AND ASSUMPTIONS]

आर्थिक नियम (ECONOMIC LAWS)

१. प्राक्कथन

'नियम' शब्द बहुत व्यापक है। इसका व्यवहार एवं उल्लेख ज्ञान की विभिन्न शाखाओं तथा समाज के विभिन्न क्षेत्रों में पाया जाता है। नियमों का इतना महत्त्व होता है कि इनके बिना न तो समाज का ठीक प्रकार से संचालन हो सकता है और न ही किसी ज्ञान का विधिवत् अध्ययन

---

11 "The true solution of the contest about methods is not to be found in the selection of deduction or induction, but in the acceptance of both deduction and induction." —Wag[illegible]

12 "There is not anyone method of investigation which can properly be called the method of economics, but every method must be made serviceable at its proper place, either singly or in combination with others." —Marshall, *Principles of Economics*, p.

ही किया जा सकता है। मार्शल के अनुसार, "एक विज्ञान अपने नियमों की संख्या तथा निश्चितता मे वृद्धि करके ही प्रगति तथा विकास कर सकता है।"[1] प्रो० टगवेल ने नियम की परिभाषा इस प्रकार दी है, "एक नियम देखे गये सम्बन्धों का सारांश है, अनुभव का संक्षिप्त विवरण है, एक संक्षिप्त चिह्न है जो कि बहुत-सी सम्बन्धित बातों को समझने में सहायता करता है।"[2]

२. आर्थिक नियम की परिभाषा

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, इसलिए अर्थशास्त्र के नियम वैज्ञानिक नियमों की श्रेणी में आते हैं अर्थात्, अन्य विज्ञानों के नियमों की भाँति वे भी 'कारण' और 'परिणाम' के सम्बन्ध को बताते हैं। अर्थशास्त्र के नियम मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों के 'कारण' और 'परिणाम' की व्याख्या करते हैं। मार्शल ने आर्थिक नियम को इस प्रकार से परिभाषित किया है, "आर्थिक नियम अथवा आर्थिक प्रवृत्तियों के कथन वे सामाजिक नियम हैं जिनका सम्बन्ध व्यवहार की उन शाखाओं से होता है जिनमें मुख्य मनोवृत्तियों (motives) की शक्ति द्रव्य द्वारा मापी जाती है।"[3]

उक्त परिभाषा से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं—(अ) आर्थिक नियम आर्थिक प्रवृत्तियों के केवल कथनमात्र (statements of economic tendencies) होते हैं। दूसरे शब्दों मे, ये नियम केवल 'सम्भावना' (likelihood)' या 'आशा' (expectation) के सूचक होते हैं; ये किसी 'परिणाम' के निश्चय या अनिवार्य रूप से घटित होने का दावा नहीं करते। (ब) आर्थिक नियम सामाजिक नियमों (social laws) की शाखाएँ होते हैं। (स) आर्थिक नियम अन्य सामाजिक नियमों से इस दृष्टि से भिन्न होते हैं कि आर्थिक नियमों का सम्बन्ध मानव व्यवहार के उन भागों से होता है जिनमे मुख्य मनोवृत्तियों की शक्ति द्रव्य द्वारा मापी जा सकती है; अन्य सामाजिक नियमों का सम्बन्ध उन प्रवृत्तियों से होता है जिनको द्रव्य द्वारा नहीं मापा जा सकता है। इस दृष्टि से आर्थिक नियम अन्य सामाजिक नियमों की अपेक्षा अधिक निश्चित कहे जाते हैं। प्रो० रोबिन्स द्वारा आर्थिक नियमों की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है, "अर्थशास्त्र के नियम उन समानताओं (uniformities) के कथन होते हैं जो सीमित साधनों से असीमित उद्देश्यों की पूर्ति करने में मानव आचरण को शासित करते हैं।"[4]

३. अर्थशास्त्र के नियमों की विशेषताएँ या उनका स्वभाव

यद्यपि अर्थशास्त्र के नियम, प्राकृतिक नियमों की भाँति, कारण तथा परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करते हैं, परन्तु फिर भी वे प्राकृतिक नियमो से भिन्नता रखते हैं। आर्थिक नियमों की निम्न विशेषताएँ होती हैं :

---

1 "A science progresses by increasing the number and exactness of its laws."
—Marshall, *Principles of Economics*, p. 25

2 "A Law is a summary of observed relations, a brief resume of experience, a shorthand symbol which assists in the understanding of a number of related phenomena."
—R. G. Tugwell, *The Trend of Economics*, p. 42

3 "Economic laws or statements of economic tendencies are those social laws which relate to branches of conduct in which the strength of the motives chiefly concerned can be measured by a money price."
—Marshall, *Principles of Economics*, p. 97

4 Economic laws are "statement of uniformities about human behaviour concerning the disposal of scarce means with alternative uses for the achievement of ends that are unlimited."

(i) आर्थिक नियम आर्थिक प्रवृत्तियों के केवल कथनमात्र होते हैं, अर्थात् वे कम निश्चित होते हैं (Economic Laws are mere Statement of Economic Tendencies; that is, they are less exact)

अर्थशास्त्र के नियम केवल यह बताते हैं कि दी हुई परिस्थितियों के अन्तर्गत मनुष्य या मनुष्य समूहों के व्यवहारों की सम्भावना किस प्रकार होने की है। ये नियम केवल 'सम्भावना' (likelihood) या 'आशा' (expectation) के प्रदर्शक होते हैं; प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों की भाँति निश्चित नहीं होते, और न ही ये किसी 'परिणाम' के निश्चय या अनिवार्य रूप से घटित होने का दावा करते हैं; दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र के नियम कम निश्चित होते हैं।

उदाहरण के लिए, रसायनशास्त्र (chemistry) का एक नियम यह बताता है कि यदि एक निश्चित दबाव तथा तापक्रम पर दो हिस्सा हाइड्रोजन तथा एक हिस्सा आक्सीजन मिलाया जाय तो पानी बन जायेगा। यदि हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन की मिलने वाली मात्रा दुगुनी कर दी जाय तो पानी की मात्रा भी निश्चित रूप से दुगुनी हो जायगी।

इसके विपरीत अर्थशास्त्र के नियमों में इस प्रकार की निश्चितता नहीं पायी जाती है। उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्र के माँग के नियम के अनुसार हम यह नहीं कह सकते कि यदि किसी वस्तु का मूल्य बढ़कर दुगुना हो जाये, तो निश्चित रूप से उसकी माँग घटकर आधी रह जायेगी। केवल यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार की सम्भावना हो सकती है। अर्थशास्त्र का यह नियम तो केवल परिवर्तन की दिशा बता सकता है कि माँग घट जायेगी, परन्तु वह निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि माँग कितनी घटेगी। प्रो० वाग (Wough) के अनुसार, "अर्थशास्त्र के नियमों की इस विशेषता को हम इस प्रकार बताते हैं कि वे गुणात्मक (qualitative) होते हैं न कि परिमाणात्मक (quantitative); वे परिवर्तन की किस्म या दिशा बताते हैं न कि परिवर्तन की मात्रा।"[5]

नुमानों पर आधारित होता है और उन मान्यताओं की सीमा के अन्दर ही वह सत्य सिद्ध ता है। उदाहरणार्थ, 'गुरुत्वाकर्षण के नियम' (Law of Gravitation) को ही लीजिए। इस म के अनुसार, सभी चीजों को नीचे गिरना चाहिए पर सदा ऐसा नहीं होता। वास्तव में, यह म वायुमण्डल के दबाव, वस्तु की गति इत्यादि पर निर्भर है। गुब्बारे में भरी गैस वायु से की होने के कारण ही गुब्बारे को ऊपर उड़ा देती है। इसी प्रकार से दो हिस्सा हाइड्रोजन एक हिस्सा आक्सीजन को मिलाने से पानी तभी बनेगा जबकि एक निश्चित दबाव तथा क्रम मौजूद हो।

अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राकृतिक विज्ञानों के नियम भी मान्यताओं तथा मानों पर आधारित हैं, उनके बाहर वे सब सही हो सकते हैं। यही बात आर्थिक नियमों के प है, फिर अर्थशास्त्र के नियमों का काल्पनिक होना या केवल तब ही लागू होना जब अन्य तें पूर्ववत रहें, कोई विचित्र बात नहीं है। अतः अर्थशास्त्र के नियम वैज्ञानिक नियमों की भाँति ते हैं। अर्थशास्त्र तथा प्राकृतिक विज्ञान दोनों के ही नियम काल्पनिक होते हैं, अन्तर केवल ना होता है कि अर्थशास्त्र के नियमों में, प्राकृतिक नियमों की अपेक्षा, काल्पनिकता का अधिक होता है, इसका मुख्य कारण यह है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय जड़ पदार्थ वस्तुएँ ी बल्कि मनुष्य है जो जीव है, बुद्धि रखता है तथा परिवर्तनशील है।

यह बात भी ध्यान रखने की है कि सभी आर्थिक नियम मूलतः काल्पनिक नहीं होते हैं। ऐसे नियम भी हैं जो प्राकृतिक नियमों की भाँति ही सही व ठीक कहे जा सकते हैं तथा कुछ थिक नियम ऐसे भी हैं जो स्वयंसिद्ध हैं। क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम, कुछ ऐसी बातों पर धारित है जो मनुष्य के लिए बाह्य कारण होते हैं। निःसंदेह कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक विधियों का ोग करके इस प्रवृत्ति को कुछ समय तक रोका जा सकता है परन्तु दीर्घकाल में यह प्रवृत्ति श्य दिखायी देगी। अतः इस नियम को प्राकृतिक नियमों की श्रेणी में रखा जा सकता है। कुछ भी नियम हैं, जो स्वयंसिद्ध हैं अर्थात् जिनके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। । उदाहरणार्थ, यह बात कि पूँजी, कुल आय में से व्यय करने के बाद हुई बचत से प्राप्त होती स्वयंसिद्ध है और किसी भी तरह इसे काल्पनिक नहीं कहा जा सकता है।

(i) अर्थशास्त्र के नियम सापेक्षिक होते हैं (Economic Laws are relative)

आर्थिक नियमों की एक विशेषता यह बतायी जाती है कि ये समय, जगह या देश से सम्ब- त हैं। उदाहरणार्थ, किसी देश के एक समय के बैंकिंग तथा करेंसी के नियम सब समयों में नहीं हो सकते, तथा एक देश के बैंकिंग के नियम दूसरे देश में लागू नहीं किये जा सकते हैं। रे शब्दों में, अर्थशास्त्र के नियम ...
stitutional) होते हैं, वे ऐति
े हैं।

परन्तु यह धारणा पूर्णतया सही है। इस सम्बन्ध में निम्न दो बातें ध्यान में रखनी हिए :

(अ) अर्थशास्त्र के अनेक नियम, जैसे, उपभोग, माँग तथा पूर्ति इत्यादि के नियम, सार्व- क (universal) होते हैं, वे सभी देशों ... लगभग सही उतरते हैं अतः वे
, जैसे, पूँजी का संचय बचत से

(ब) रोबिन्स के अनुसार, आर्थिक सामान्यताओं (economic generalisatio[ns]) अर्थात आर्थिक नियमों को 'ऐतिहासिक-सापेक्षिक' (historico-relative) कहना एक खतर[नाक] भ्रम (dangerous misapprehension) है। प्रो० रोबिन्स के अनुसार आर्थिक प्रयोग करते [समय] हमें उनकी ऐतिहासिक-सापेक्षिक मान्यताओं (historico-relative assumptions) को ध्यान [में] रखना चाहिए, अपनी मान्यताओं के अन्तर्गत आर्थिक नियम सही उतरेंगे।[7] प्रो० नाईट (Knight) के अनुसार, "आर्थिक नियम स्वयं संस्थात्मक नहीं होते। वे समाजवादी अर्थव्यवस्था में उतने [ही] सही होंगे जितने कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में।"[8]

४. प्राकृतिक नियमों से अर्थशास्त्र के नियमों की भिन्नता

प्राकृतिक नियमों की अपेक्षा अर्थशास्त्र के नियमों की कम निश्चितता—अर्थशास्त्र के नि[यम] कम निश्चित क्यों होते हैं ? या आर्थिक नियमों तथा प्राकृतिक नियमों में भिन्नता के क्या का[रण] हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार है :

(i) **जड़ पदार्थों की अपेक्षा स्वतन्त्र मनुष्य का अध्ययन होना**—प्राकृतिक विज्ञानों [की] भाँति अर्थशास्त्र में हम जड़ पदार्थों का अध्ययन नहीं करते बल्कि मनुष्य का अध्ययन करते हैं [जो] कि जीव है, विवेकपूर्ण है तथा स्वतन्त्र इच्छा वाला है। ऐसी परिस्थितियों में मनुष्य की क्रियाओं [के] बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा (predict) जा सकता क्योंकि समान दशाओं में सभी मनुष्यों [की] आर्थिक क्रियाएँ समान नहीं होंगी। इसी बात को **मार्शल** ने इस प्रकार व्यक्त किया है, "[एक] रसायनशास्त्री जिस विषय (matter) का अध्ययन करता है वह सदा एकसा रहता है परन्तु अ[र्थ]शास्त्र जीवशास्त्र (Biology) की भाँति, ऐसे विषय (matter) का अध्ययन करता है जिसका आन्तरिक स्वभाव और बनावट (constitution) तथा बाहरी रूप (form) बराबर ब[दलता] रहता है।"[9]

(ii) **द्रव्य रूपी मापदण्ड दोषपूर्ण होना**—जिस प्रकार एक रसायनशास्त्री के पास नाप[ने] के लिए तराजू (fine balance) होती है, उसी प्रकार अर्थशास्त्री के पास मूल्यों को मापने के [लिए] द्रव्यरूपी मापदण्ड (measuring rod of money) होता है, परन्तु अर्थशास्त्रियों की यह [तराजू] (economist's balance) अपूर्ण तथा अविश्वसनीय होती है; क्योंकि (i) किसी मनुष्य के [मन] में द्रव्य की अभिलाषा होने का अर्थ यह नहीं है कि उस पर अन्य बातों का प्रभाव ही नहीं [पड़ता।] अन्य भावनाएँ तथा प्रवृत्तियों जैसे देश प्रेम, भक्ति, त्याग, इत्यादि भी अपना प्रभाव रखती हैं। [(ii)] द्रव्य के द्वारा मनुष्य की आवश्यकताओं की तीव्रता ठीक प्रकार से मापी नहीं जा सकती, [क्योंकि] रुपये का मूल्य एक धनी व्यक्ति की अपेक्षा एक गरीब आदमी के लिए अधिक है। (iii) अ[र्थशास्त्र] की तराजू, जिससे क्रियाओं को नापा जाता है, स्वयं अस्थिर है अर्थात् द्रव्य का मूल्य घटता [बढ़ता] रहता है।

---

7 "It is quite true that in order fruitfully to apply the more general propositions of [eco]nomics, it is important to supplement them with a series of subsidiary postulates [drawn] from the examination of what may often be legitimately designated historico-[relative] material. It is certain that unless this is done bad mistakes are likely to be made."
—R[obbins]

8 "The laws of Economics, however, are not themselves institutional. They will be [as valid] in a socialist society as they are in the capitalist society to-day."
—Knight, *The Ethics of Competition*

9 "The matter with which the chemist deals is the same always; but economics, [like] biology, deals with a matter, of which the inner nature and constitution, as well [as] outer form, are constantly changing."
—Marshall, *Principles of Economics*, Appendix C.

(iii) प्रयोग की सुविधा न होना—पुनः प्राकृतिक विज्ञानों में जड़ पदार्थों के अध्ययन के रण उनमें सूक्ष्म प्रयोग (experiments) किये जा सकते हैं; परन्तु अर्थशास्त्र के अध्ययन का यं मनुष्य होने के कारण उसमें प्रयोग बहुत सीमित होते हैं।

(iv) विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ना—चूँकि अर्थशास्त्र एक सामाजिक शास्त्र अतः इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों से प्रभावित विभिन्न प्रकार के मनुष्यों की याओं का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक कारणों से बहुत से थक नियमों का व्यवहार में लागू होना कठिन हो जाता है।[10] यद्यपि प्राकृतिक विज्ञानों में भी प्रकार के कारणों की विभिन्नता पायी जाती है परन्तु उनमें कारणों और परिणामों को अलग ना आसान होता है।

(v) प्रभाव डालने वाली प्रवृत्तियों का स्वयं भी बदलते रहना—इतना ही नहीं कि आर्थिक तथा कारण बहुत और विभिन्न होते हैं परन्तु समय पाकर वे स्वयं बदलते रहते हैं। ऐसी स्थिति में यह हो सकता है कि सम्भावित परिणाम ही बिल्कुल प्राप्त न हों या केवल क रूप से ही प्राप्त हों। इसी प्रकार, समय के साथ मनुष्यों के दृष्टिकोण, रुचि और स्वभाव रिवर्तन हो जाता है। अतः यह बताना (predict) कठिन हो जाता है कि विभिन्न अवसरों रिस्थितियों में एक दिये हुए परिवर्तन के उत्तर में विभिन्न मनुष्य किस प्रकार का व्यवहार ct) करेंगे।

(vi) अज्ञात तत्त्वों का प्रभाव पड़ना—डरबिन (Durbin) ने हमारा ध्यान इस ओर षित किया है कि आर्थिक घटनाओं को निर्धारित करने वाले वास्तविक तत्त्वों की अभी तक या खोज नहीं हो पायी है।[11] किसी भी स्थिति के बारे में अनेक अज्ञात (unknown) तत्त्व हैं, सच तो यह है कि सारे तत्त्व ज्ञात भी नहीं किये जा सकते। अतः ज्ञात तत्त्वों (known) पर आधारित भविष्यवाणियाँ अज्ञात तत्त्वों (unknown data) के प्रभाव से गलत सिद्ध हो ते हैं।

निष्कर्ष

आर्थिक नियमों की विशेषताओं, प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों से उनका अन्तर तथा इस के कारणों इत्यादि का अध्ययन करने के पश्चात निम्न निष्कर्ष निकलते हैं: (i) अर्थशास्त्र यम आर्थिक प्रवृत्तियों के द्योतक होते हैं। प्राकृतिक नियमों की अपेक्षा आर्थिक नियमों में नेकता का अंश अधिक होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आर्थिक नियम वैज्ञानिक होते। (ii) चूँकि अर्थशास्त्र के नियम प्राकृतिक नियमों की अपेक्षा कम निश्चित होते हैं ए मार्शल ने कहा है, "आर्थिक नियमों की तुलना गुरुत्वाकर्षण के सरल तथा निश्चित नियमों करके ज्वार-भाटों के नियमों से करनी चाहिए।"[12] (iii) यद्यपि आर्थिक नियम प्राकृतिक की अपेक्षा कम निश्चित होते हैं परन्तु वे अन्य सामाजिक विज्ञानों के नियमों की अपेक्षा निश्चित होते हैं क्योंकि अर्थशास्त्र में मुद्रारूपी मोटा (rough) मापदण्ड होता है।

दाहरण के लिए, भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली के कारण स्थान विशेष पर कम मजदूरी प्त करने पर भी दूसरी जगह जहाँ अधिक मजदूरी मिलती है, मजदूर जाना नहीं चाहता। भी-कभी सरकार भी राजनीतिक कारणों से श्रमिकों की गतिशीलता में कानून बनाकर बाधक जाती है।

e true determinants of economic events are not yet adequately discovered.

he Laws of Economics are to be compared with the laws of tides rather than with the ple and exact law of gravitation." Marshall, *Principles of Economics*, p. 26

आर्थिक नियमों के स्वभाव को देखते हुए अर्थशास्त्र को एक विज्ञान कहना कहाँ तक ठीक होगा ?
(IN VIEW OF THE NATURE OF ECONOMIC LAWS, HOW FAR IS IT LEGITIMATE TO CALL ECONOMICS A SCIENCE)

आर्थिक नियम अधिक काल्पनिक होते हैं, वे कम निश्चित होते हैं और अधिकांश नि सार्वभौमिक नहीं होते, अर्थशास्त्र की सामग्री मनुष्य होती है, परन्तु प्रत्येक मनुष्य की इच्छा स्व होती है। अत: निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि एक सी परिस्थितियों में सब मनुष्य ए सा ही कार्य करेंगे। इतनी सब सीमाओं तथा कठिनाइयों के होते हुए भी अर्थशास्त्र को एक वि कहना उचित होगा। इसके निम्न कारण हैं :

(१) **अनेक नियमों पर मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा का प्रभाव न पड़ना**—यद्यपि अर्थशा के बहुत-से नियम मानव स्वभाव पर आधारित होते हैं, तथापि मनुष्य के सब अनुभव उसकी इच्छा नुसार नहीं होते। उदाहरणार्थ, यदि हम खाते भी चले जायँ और यह भी चाहें कि तृप्ति न तो ऐसा नहीं हो सकता। इसी प्रकार के कितने ही अनुभव हैं जो कि मनुष्य के स्वभाव आधारित होते हैं और उन पर मनुष्य की इच्छा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अत: ऐसे आ पर आधारित नियम सार्वभौमिक होंगे।

(२) **वश से बाहर बाह्य प्रकृति पर आधारित नियम**—हमारे कुछ आर्थिक अनुभव प्रकृति के उन नियमों पर आधारित हैं, जिन पर हमारा कोई वश या काबू नहीं है—जैसे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम।

(३) **अन्य सामाजिक विज्ञानों की तुलना में अधिक निश्चित**—यद्यपि अर्थशास्त्र प्राकृ विज्ञानों की अपेक्षा कम निश्चित कहा जा सकता है परन्तु अर्थशास्त्र में द्रव्यरूपी मापदण्ड के के कारण वह अन्य सामाजिक विज्ञानों से अधिक निश्चित होता है। मार्शल के अनु **"जिस तरह रसायनशास्त्र की सही तराजू ने रसायनशास्त्र को अन्य प्राकृतिक विज्ञानों से अ सही बना दिया है उसी प्रकार अर्थशास्त्र की तराजू (द्रव्य का मापदण्ड) ने, भले ही वह हम अपूर्ण है, अर्थशास्त्र को अन्य सामाजिक शास्त्रियों से अधिक सही बना दिया।"**[13]

(४) **सामूहिक व्यवहार के बारे में भविष्यवाणी करना सम्भव**—मनुष्य की स्वतन्त्र इ का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य सब काम बिना सोचे-विचारे करता है; और यदि वह कोई कार्य बि तर्क बुद्धि के करता भी है तो गणितशास्त्र के 'सम्भावना सिद्धान्त' (Theory of Probabil के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उनके कार्यों की रूपरेखा किस प्रकार की होगी। म प्राय: पर्याप्त कारणों तथा वृत्तियों (motives) के आधार पर ही कार्य करता है, यही कार कि मानव व्यवहारों तथा मानव व्यवहार से सम्बन्धित नियमों में एकरूपता (uniform मिलती है। यह सम्भव है कि व्यक्तिगत रूप से एक व्यक्ति एक नियम के विरुद्ध कार्य करे। शब्दों में, व्यक्तिगत व्यवहार (individual behaviour) को ठीक प्रकार से न बताया (pred जा सके। परन्तु सामूहिक व्यवहार (group behaviour) की बहुत कुछ सीमा तक सही भवि वाणी की जा सकती है; यदि समस्त व्यक्ति एक ही प्रकार के प्रयोजनों से प्रेरित होकर कार्य हैं तो उनके व्यवहार एक से होंगे। अत: अर्थशास्त्र मनुष्य के सामान्य तथा औसत व्यव बताता है।

(४) जीव विज्ञान एवं मौसम विज्ञान की भाँति उपयोगी होना—चूँकि आर्थिक नियमों में, प्राकृतिक नियमों की अपेक्षा, काल्पनिकता का अंश अधिक होता है, इसलिए अर्थशास्त्र की भविष्यवाणियाँ प्रायः सत्य नहीं होती तथा बाद की घटनाएँ उन्हें प्रायः गलत सिद्ध कर देती हैं; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अर्थशास्त्र के नियम अवैज्ञानिक हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि हम कार्यों के सही कारणों से परिचित नहीं रहते। जीव विज्ञान (Biology) तथा मौसम विज्ञान (Meteorology) के नियम भी बाद की घटनाओं के आधार पर सदैव सही नहीं उतरते; परन्तु इस आधार पर कोई यह नहीं कह सकता कि ये दोनों शास्त्र विज्ञान नहीं हैं। वास्तव में, "अर्थशास्त्र आने वाली व्यापारिक मन्दी का समय जितने पहले बता सकता है, उतने पहले 'जलवायु विज्ञान' तूफान

1. अर्थशास्त्र के विज्ञान होने का अधिकार इस कारण नहीं छीना जा सकता कि उसमें निश्चितता भविष्यवाणी की शक्ति कम है।

आर्थिक विश्लेषण की मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS OF ECONOMIC ANALYSIS)

न्यताएँ लेकर चलना क्यों आवश्यक है ?

अर्थशास्त्र में मानव व्यवहार के 'चुनाव करने के पहलू' (choice-making aspect) का ध्ययन किया जाता है। मनुष्य एक जीव है, तर्क शक्ति रखता है तथा विभिन्न प्रकार की भावनाओं से प्रेरित होता है। ऐसी स्थिति में विशिष्ट आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए र्थशास्त्रियों को कुछ मान्यताओं के आधार पर चलना पड़ता है। उदाहरणार्थ, माँग-विश्लेषण के म्बन्ध में अर्थशास्त्री यह मानकर चलते हैं कि मनुष्य विवेकपूर्ण तरीके से कार्य करेगा। उसकी चि, आय, इत्यादि में अल्प-काल में कोई परिवर्तन नहीं होगा, इत्यादि। प्रायः विभिन्न मान्यताओं ो व्यक्त करने के लिए अर्थशास्त्री 'अन्य बातें समान रहें' (other things being equal) वाक्यांश ा प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार फर्मों या उत्पादकों के व्यवहार इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ मान्यताओं को लेकर चला जाता है।

कुछ सामान्य मान्यताएँ

किसी विशिष्ट आर्थिक समस्या के अध्ययन में क्या मान्यताएँ मानी जायेंगी, यह उस आर्थिक समस्या के स्वभाव तथा क्षेत्र पर निर्भर होगा, परन्तु फिर भी आर्थिक विश्लेषण के सम्बन्ध में कुछ सामान्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं :

(१) मानव व्यवहार से सम्बन्धित मान्यताएँ—यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति विवेकपूर्ण (rational) तरीके से व्यवहार करेगा, अर्थात् यदि वह व्यक्ति उपभोक्ता के रूप में है, तो वह अपने सीमित साधनों को इस प्रकार से प्रयोग में लायेगा जिससे उसको अधिकतम सन्तुष्टि ... । इसी प्रकार, यदि वह व्यक्ति एक उत्पादक या साहसी के ... को अधिकतम करने का प्रयत्न करेगा। इसी प्रकार से ... यान पर काम करेंगे जहाँ पर कि उनको अधिकतम आय ... ।

(२) आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं से सम्बन्धित मान्यताएँ—किसी भी देश विशेष की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन वहाँ की प्रचलित आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक

बातों से प्रभावित होता है। यदि देश विशेष में पूँजीवादी तथा लोकतान्त्रिक व्यवस्था है, तो इससे सम्बन्धित मान्यताओं को लेकर अर्थशास्त्रियों को चलना होगा, और यदि देश में साम्यवाद है तो इसके अनुसार मान्यताएँ बदल दी जायेंगी।

(३) आधारभूत मान्यताएँ जो कि विज्ञान, जीव विज्ञान, भूगोल इत्यादि से सम्बन्धित हैं—उदाहरणार्थ, विज्ञान यह बताता है कि मैटर (matter) को नष्ट नहीं किया जा सकता। हाँ, उसका रूप बदल सकता है। अर्थशास्त्रियों को विज्ञान की इस आधारभूत बात को मानकर चलना होगा। इसी प्रकार, भूगोल, जीवविज्ञान इत्यादि से सम्बन्धित आधारभूत तत्त्वों को भी अर्थशास्त्री मानकर चलेगा।

यद्यपि कुछ आर्थिक मान्यताएँ व्यावहारिक जीवन में सदैव तथा प्रत्येक स्थिति में सही नहीं उतरती हैं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अधिकांश परिस्थितियों (cases) में वे ठीक ही होती हैं।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्
[MICRO ECONOMICS AND MACRO ECONOMICS

आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन प्रायः दो दृष्टिकोणों से किया जाता है—(i) सूक्ष्म विश्ले (Micro analysis), तथा (ii) व्यापक विश्लेषण (Macro analysis)। अर्थशास्त्रियों की श वली में दोनों शब्द बहुत प्रयोग होने लगे हैं। विश्लेषण की इन दोनों रीतियों के आधार पर अर्थशास्त्र को अब दो भागों में बाँटा जाने लगा है—(i) सूक्ष्म अर्थशास्त्र (Micro Economi तथा (ii) व्यापक अर्थशास्त्र (Macro Economics)। अर्थशास्त्र के विश्लेषण तथा अध्ययन रीतियों में सूक्ष्म तथा व्यापक दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

संक्षिप्त ऐतिहासिक निरूपण
(A BRIEF HISTORICAL REVIEW)

'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' में हम व्यक्तिगत इकाइयों, जैसे एक फर्म, एक उद्योग, किसी एक व विशेष का मूल्य आदि का अध्ययन करते हैं, जबकि 'व्यापक अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत हम सम् अर्थव्यवस्था का उसके सम्पूर्ण रूप में अध्ययन करते हैं—जैसे, कुल राष्ट्रीय आय, कुल बच कुल विनियोग, कुल रोजगार इत्यादि।

---

[1] Micro Economics के अन्य हिन्दी अनुवाद इस प्रकार हैं—व्यष्टि अर्थशास्त्र, व्यक्ति पद्धति अर्थशास्त्र, आर्थिक व्यष्टिभाव; और Macro Economics के इस प्रकार हैं—समष्टि अर्थशास्त्र, सामूहिक पद्धति अर्थशास्त्र, आर्थिक समष्टिभाव।

प्रारम्भ से ही अर्थशास्त्रियों ने सूक्ष्म विश्लेषण (Micro analysis) का प्रयोग किया है तथा मार्शल ने इस पद्धति को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। यद्यपि 'व्यापक विश्लेषण' (Macro analysis) अपेक्षाकृत नया है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि प्राचीन समय में इसका बिलकुल प्रयोग नहीं होता था। यह सत्य है कि प्राचीन समय में आर्थिक विश्लेषण के एक पृथक तथा स्पष्ट शाखा के रूप में 'व्यापक अर्थशास्त्र' विद्यमान नहीं था, परन्तु प्रायः 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' के साथ मिलाकर प्रयोग में लाया जाता था। आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'सूक्ष्म-अर्थशास्त्र' तथा 'व्यापक अर्थशास्त्र' दोनों का अध्ययन विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने किया है।

सन् १६३० की विश्वव्यापी मन्दी ने अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण में एक बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया। कीन्ज़ (J. M. Keynes) ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि पूर्ण रोजगार की स्थिति का अध्ययन करने के लिए 'व्यापक विश्लेषण' अपनाना चाहिए। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण बिलकुल गलत है बल्कि उन्होंने उसकी त्रुटियों पर उचित प्रकाश डाला। कीन्ज की पुस्तक 'General Theory of Employment, Interest and Money' 'व्यापक अर्थशास्त्र' के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। संक्षेप में, विश्वव्यापी मन्दी, द्वितीय विश्व युद्ध, अविकसित देशों के तीव्र विकास की आवश्यकता तथा व्यापार चक्र को हल करने की आवश्यकता इत्यादि 'व्यापक अर्थशास्त्र' के विकास में महत्त्वपूर्ण कारण रहे हैं। कीन्ज के अतिरिक्त अन्य अर्थशास्त्रियों—जैसे, वालरस (Walras), विकसैल (Wicksell), फिशर (Fisher) इत्यादि ने व्यापक अर्थशास्त्र के विकास में बहुत सहयोग दिया है।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र
(MICRO ECONOMICS)

सूक्ष्म अर्थशास्त्र का अर्थ

'सूक्ष्म अर्थशास्त्र' आधुनिक आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जो अर्थव्यवस्था की वैयक्तिक इकाइयों (Individual units) जैसे, व्यक्ति, परिवार, फर्म, उद्योग, विशेष वस्तु का मूल्य इत्यादि का अध्ययन करती है। वह व्यक्तिगत उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के आर्थिक प्रयोजनों तथा व्यवहार, एवं व्यक्तिगत फर्म तथा उद्योग के संचालन और संगठन के सिद्धान्तों का अध्ययन करती है। बोल्डिंग (Boulding) के अनुसार, "सूक्ष्म अर्थशास्त्र विशेष फर्मों, विशेष परिवारों, वैयक्तिक कीमतों, मजदूरियों, आयों, वैयक्तिक उद्योगों तथा विशिष्ट वस्तुओं का अध्ययन है।"[2]

सूक्ष्म अर्थशास्त्र का क्षेत्र

उपर्युक्त परिभाषा से सूक्ष्म अर्थशास्त्र का क्षेत्र स्पष्ट हो जाता है, इसका सम्बन्ध वैयक्तिक इकाइयों से होता है। उपभोग का अधिकांश भाग इसके अन्तर्गत आता है। वास्तव में, सूक्ष्म अर्थशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण यन्त्र (tool) सीमान्त विश्लेषण (Marginal analysis) है। उपभोग के नियम—जैसे, उपयोगिता ह्रास नियम, सम-सीमान्त उपयोगिता नियम, उपभोक्ता की बचत जो कि सीमान्त विश्लेषण पर आधारित है, सूक्ष्म अर्थशास्त्र के ही अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रकार उत्पादन के क्षेत्र में वैयक्तिक फर्म, वैयक्तिक उद्योग आदि सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं। वितरण के क्षेत्र में विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को राष्ट्रीय आय में से उनका हिस्सा कैसे मिलता है, यह सूक्ष्म अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। परन्तु राजस्व, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, विदेशी विनिमय, बैंकिंग, इत्यादि इसके क्षेत्र के बाहर हैं।

---

2 "Micro economics is the study of particular firms, particular house holds, individual prices, wages, incomes, individual industries, particular commodities."
—K. E. Boulding, *Economic Analysis*, p. 23

सूक्ष्म अर्थशास्त्र की आवश्यकता तथा इसके प्रयोग

(१) सूक्ष्म अर्थशास्त्र वैयक्तिक तथा विशिष्ट आर्थिक समस्याओं का अध्ययन तथा विश्ले- षण करता है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को समझने के लिए यह आवश्यक है कि वैयक्तिक इकाइयों का, जो मिलकर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का निर्माण करती हैं, अध्ययन विशिष्ट रूप से तथा विस्तृत रूप से किया जाये।

(२) यह व्यक्तियों, परिवारों, फर्मों, इत्यादि को अपने-अपने क्षेत्रों में आर्थिक व्यवहार के सम्बन्ध में निर्णय लेने में मदद करता है।

(३) यह वैयक्तिक व्यय, उपभोग, बचत, विनियोग, आय के स्रोतों (sources) तथा उनके स्वभावों पर विश्लेषणात्मक प्रकाश डालता है।

(४) यह वस्तु विशेष के मूल्य-निर्धारण या साधन विशेष के पारितोषण-निर्धारण को बताता है।

(५) यह किसी फर्म, उद्योग तथा अन्य वैयक्तिक इकाइयों की कार्यक्षमता तथा उनके स्वभाव का अध्ययन करके उनकी समस्याओं का हल प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त विवरण से सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण की आवश्यकता तथा उपयोगिता स्पष्ट होती है। अतः कॅज ने ठीक ही कहा है कि "यह मनुष्य के वैचारिक-यन्त्र का एक मुख्य अंग है।" (It is one's apparatus of thought)।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमाएँ तथा दोष

यद्यपि सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण आवश्यक तथा उपयोगी है परन्तु इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं। मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन का सही चित्र प्राप्त नहीं होता—सूक्ष्म अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर ध्यान न देकर उसके कुछ भागों के संचालन तथा संगठन पर ही ध्यान देता है। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन का सामूहिक रूप में उचित ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

(२) **सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण के बहुत-से निष्कर्ष सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से ठीक नहीं होते**—यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्तिगत निर्णयों का योग सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए उचित हो। प्रायः वैयक्तिक इकाइयों का विशिष्ट व्यवहार उनके सामूहिक सामान्य व्यवहार तथा औसत व्यवहार से बिलकुल भिन्न होता है। उदाहरणार्थ, बचत (saving) करना एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से अच्छा है, यदि एक साथ सभी व्यक्ति बचत करने लगें, तो यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक होगा क्योंकि ऐसा करने से उपभोग-वस्तुओं की माँग कम हो जायेगी, रोजगार कम होगा और राष्ट्रीय आय कम होने लगेगी।

(३) **यह कई अवास्तविक मान्यताओं, जैसे, पूर्ण रोजगार, निजी हित, पूर्ण प्रतियोगिता इत्यादि पर आधारित है।** वास्तविक जीवन में प्रायः ये मान्यताएँ नहीं पायी जाती हैं।

(४) **कुछ आर्थिक समस्याओं का अध्ययन सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया ही नहीं जा सकता**—[illegible] के क्षेत्र की समस्याएँ, देश के लिए उचित मौद्रिक नीति, धन के न्यायपूर्ण वितरण की समस्या, उचित प्रशुल्क नीति का निर्धारण, इत्यादि का अध्ययन तथा विश्लेषण सूक्ष्म अर्थशास्त्र के द्वारा सम्भव नहीं है।

व्यापक अर्थशास्त्र
(MACRO ECONOMICS)

व्यापक अर्थशास्त्र का अर्थ

'व्यापक अर्थशास्त्र, आधुनिक आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जो वैयक्तिक इकाई के व्यवहार का अध्ययन न करके समस्त इकाइयों का सामूहिक रूप में अध्ययन करती है, जैसे, कुल आय, कुल बचत, कुल उपभोग, कुल विनियोग इत्यादि। चूंकि यह योगों का अध्ययन (study of aggregates) होता है; अतः इसे 'योग-सम्बन्धी अर्थशास्त्र' (Aggregative Economics) भी कहते हैं। बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों में, "व्यापक अर्थशास्त्र का सम्बन्ध वैयक्तिक मात्राओं के अध्ययन से नहीं होता बल्कि इन मात्राओं के समूहों से होता है—इसका सम्बन्ध वैयक्तिक आय से नहीं बल्कि राष्ट्रीय आय से होता है; वैयक्तिक कीमतों से नहीं बल्कि कीमत-स्तर से होता है तथा वैयक्तिक उत्पादन से नहीं बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन से होता है।"[3] एक अन्य स्थान पर बोल्डिंग ने लिखा है, "अतः व्यापक अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का वह भाग है जो अर्थशास्त्र के बड़े समूहों और औसतों का अध्ययन करता है न कि उसकी विशेष मदों का, और इन समूहों को उपयोगी ढंग से परिभाषित करने का प्रयत्न करता है तथा इनके पारस्परिक सम्बन्धों को देखता है।"[4]

व्यापक अर्थशास्त्र का क्षेत्र

उपर्युक्त परिभाषा से व्यापक अर्थशास्त्र का क्षेत्र स्पष्ट हो जाता है। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के बड़े समूहों तथा औसतों का अध्ययन किया जाता है। आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त (Economic Theory) के बहुत से विषय जैसे, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, विदेशी विनिमय, राजस्व, बैंकिंग, व्यापार चक्र के सिद्धान्त, राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के सिद्धान्त, आर्थिक विकास के सिद्धान्त (Theory of growth or Economic Development) इत्यादि व्यापक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं।

व्यापक अर्थशास्त्र की आवश्यकता तथा प्रयोग

व्यापक अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमाओं तथा कुछ अन्य बातों के परिणामस्वरूप प्रतीत होती है। निम्न कारण व्यापक अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता या प्रयोगों को प्रदर्शित करते हैं।

(१) जटिल अर्थव्यवस्था के सामूहिक संचालन को समझने में सहायक—आधुनिक अर्थव्यवस्था अत्यन्त जटिल है और आर्थिक तत्त्व परस्पर एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। व्यापक अर्थशास्त्र के अध्ययन से समस्त अर्थव्यवस्था के आर्थिक संगठन और संचालन का सही ज्ञान प्राप्त होता है, जबकि सूक्ष्म अर्थशास्त्र केवल वैयक्तिक इकाइयों का ही ज्ञान कराता है।

(२) आर्थिक नीति के निर्माण में महत्त्व—प्रो० बोल्डिंग (Boulding) ने ठीक ही कहा है कि "आर्थिक नीति के दृष्टिकोण से व्यापक अर्थशास्त्र बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसा इसलिए है कि सरकार की आर्थिक नीतियों का सम्बन्ध व्यक्तियों से न होकर व्यक्तियों के समूहों तथा योगों से

---

[3] "Macro Economics ... [illegible]

[4] [illegible]

—Boulding, *Economic Analysis*, p. 259

होता है। वास्तव में, आर्थिक दृष्टिकोण से राज्य व्यक्तियों का समूह है, अतः उसका [illegible] व्यापक आर्थिक रूप से होना चाहिए।"[5] यद्यपि सरकार समय-समय पर वैयक्तिक इकाइयों (जैसे विशिष्ट मूल्यों, विशिष्ट फर्मों इत्यादि) पर भी ध्यान देती है, परन्तु उसका मुख्य आर्थिक [illegible] दायित्व सामान्य मूल्य-स्तर, कुल उत्पादन, व्यापार का सामान्य-स्तर इत्यादि के नियन्त्रण में निहित है। अतः यह स्पष्ट है कि व्यापक आर्थिक विश्लेषण उचित आर्थिक नीतियों के निर्माण में अत्यन्त आवश्यक है, विशेषतया जबकि संसार की अधिकांश सरकारें कल्याणकारी राज्य (Welfare State) के आदर्श पर कार्य कर रही हैं और आर्थिक नियोजन को अपना रही हैं।

(३) **अर्थशास्त्रियों को विभिन्न महत्त्वपूर्ण आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता**— राष्ट्रीय आय, रोजगार, उत्पादन इत्यादि समस्याओं को व्यापक आर्थिक विश्लेषण की सहायता से समझकर अर्थशास्त्री उनके समाधान के लिए सुझाव प्रस्तुत करते हैं।

(४) **सूक्ष्म अर्थशास्त्र के विकास के लिए भी व्यापक अर्थशास्त्र आवश्यक है**—सूक्ष्म अर्थशास्त्र विभिन्न नियमों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है किन्तु ऐसा करने में उसे व्यापक अर्थशास्त्र की सहायता लेनी पड़ती है। उदाहरणार्थ, उपयोगिता ह्रास नियम तभी सम्भव हो सका जबकि व्यक्तियों के समूहों के व्यवहार का अध्ययन किया गया। इसी प्रकार, एक फर्म का सिद्धान्त (Theory of firm) का निर्माण बहुत-सी फर्मों के व्यवहार को सामूहिक रूप में अध्ययन करके ही बनाया जा सका।

(५) **व्यापक अर्थशास्त्रीय विरोधाभासों** (Macro economic paradoxes) **के कारण भी व्यापक अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है—बोल्डिंग** (Boulding) के अनुसार, 'व्यापक अर्थशास्त्रीय विरोधाभास' का आशय उन धारणाओं से है जो किसी एक व्यक्ति के लिए तो सही हों लेकिन यदि उनका प्रयोग सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए किया जाय तो गलत सिद्ध हों। उदाहरणार्थ, बचत एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से लाभदायक है, परन्तु यदि सभी लोग द्राव्यिक बचत करने लग जायें, तो वह सम्पूर्ण देश के दृष्टिकोण से हानिकारक होगी। बोल्डिंग का कथन है कि इन विरोधाभासों के कारण ही सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के पृथक अध्ययन की आवश्यकता है।"[6]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि व्यापक आर्थिक विश्लेषण की आवश्यकता आंशिक रूप से इस बात में निहित है कि सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण अपने में अपर्याप्त तथा अपूर्ण है और [illegible] रूप में इस बात में निहित है कि कुछ क्षेत्रों—जैसे, राष्ट्रीय आय, रोजगार, व्यापक [illegible] में धन का समान वितरण, इत्यादि, में व्यापक आर्थिक विश्लेषण अधिक उपयुक्त है।

व्यापक आर्थिक विश्लेषण की कठिनाइयाँ तथा खतरे

यद्यपि व्यापक आर्थिक विश्लेषण महत्त्वपूर्ण है तथा पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुका है, [illegible] इसकी कुछ सीमाएँ तथा खतरे (pitfalls) भी हैं जिनको ध्यान में रखना आवश्यक है। [illegible] [illegible] कठिनाइयाँ निम्नलिखित दो कारणों से उत्पन्न होती हैं :

(१) वैयक्तिक इकाइयों के योग के आधार पर व्यापक अर्थशास्त्र के निष्कर्ष निकाले जाते हैं, ऐसा करने में बहुत-से खतरे होते हैं। यह जरूरी नहीं है कि जो व्यक्तियों तथा लघु-समूहों के सम्बन्ध में सत्य हो वह सम्पूर्ण समाज था अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में भी सत्य हो। इस प्रकार के 'आर्थिक विरोधाभासों' (economic paradoxes) के कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं—(अ) यदि एक व्यक्ति जब चाहे तब अपना जमा (deposit) बैंक से निकाल लेता है तो कोई नुकसान नहीं है। परन्तु, यदि एक ही साथ सभी व्यक्ति बैंक से अपनी जमाएँ (deposits) निकालने लग जायें, तो बैंक फेल हो जायेगा और इसका प्रभाव अन्य बैंकों पर भी पड़ेगा। (ब) इसी प्रकार, एक व्यक्ति द्राव्यिक रूप में बचत कर सकता है, परन्तु यदि सभी लोग एक साथ द्राव्यिक रूप में बचत शुरू कर दें और उसका विनियोग न करें, तो देश के लिए हानिकारक होगा क्योंकि ऐसा करने से उपभोग वस्तुओं की माँग कम होगी, बेरोजगारी फैलेगी और अर्थव्यवस्था में मन्दी छा जायेगी। अतः केंज (Keynes) ने ठीक कहा है कि "बचत जो कि एक व्यक्तिगत गुण है वह सार्वजनिक बुराई हो जाती है" (Savings which is an individual virtue becomes a public vice.)।

(२) वैयक्तिक इकाइयों से सम्बन्ध न रखकर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या समाज का प्रत्यक्ष रूप से विश्लेषण किया जाता है तो ऐसा करने में भी दोष रहते हैं क्योंकि इसमें सम्पूर्ण समाज पर तो ध्यान दिया जाता है जबकि वैयक्तिक इकाइयों तथा छोटे समूहों जिनसे समाज या अर्थ व्यवस्था बनती है, को छोड़ दिया जाता है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या समाज का प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन या विश्लेषण करने में निम्न कठिनाइयाँ या खतरे उपस्थित होते हैं :

(अ) समूह (या योग) की अपेक्षा समूह की बनावट (structure), रचना (composition) तथा अंग (components) अधिक महत्वपूर्ण होते हैं—उदाहरणार्थ, मान लीजिए १९६२ तथा १९६३ में सामान्य मूल्य-स्तर समान है, उसमें कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु यह सम्भव है कि कृषि की कीमतें बहुत गिर गयी हों तथा औद्योगिक वस्तुओं की कीमतें बहुत बढ़ गयी हों जिससे सामान्य मूल्य-स्तर में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः समूह या योग के आधार पर भविष्यवाणी करना या सुझाव देना या विवेचन करना उचित नहीं होगा जब तक कि समूह की बनावट और उसके अंगों के स्वभाव तथा आपसी सम्बन्ध की पूर्ण जानकारी न प्राप्त कर ली जाये।

(ब) दूसरी कठिनाई यह है कि एक योग (aggregate) अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को समान रूप से प्रभावित नहीं करता। उदाहरणार्थ, कुल माँग में वृद्धि के परिणामस्वरूप कुल उत्पादन बढ़ेगा परन्तु कुछ फर्मों को उत्पादन बढ़ाने में बढ़ती हुई लागतों का सामना करना पड़ेगा जबकि कुछ फर्में गिरती हुई लागतों के अन्तर्गत उत्पादन में वृद्धि कर सकेंगी। इसी प्रकार, यदि सभी लोगों की आयों में सामान्य वृद्धि हो जाती है, तो बहुत से लोग साइकिलों के स्थान पर स्कूटरों का प्रयोग करने लग सकते हैं; ऐसी स्थिति में साइकिल उद्योग पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि साइकिलों की माँग कम हो जायेगी जबकि स्कूटर उद्योग पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा क्योंकि उनकी माँग बढ़ जायेगी।

अतः उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट है कि व्यापक अर्थशास्त्र के अध्ययन और विवेचन में भी बहुत सी कठिनाइयाँ हैं। ये कठिनाइयाँ या तो वैयक्तिक इकाइयों के योग के आधार पर निष्कर्ष निकालने के कारण होती हैं या सीधे योग (aggregate) का अध्ययन करने से होती हैं क्योंकि

ऐसा करने में प्रायः योग के विभिन्न अंगों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर ध्यान नहीं दि[या] जाता है।

सूक्ष्म तथा व्यापक दोनों पद्धतियों की पारस्परिक निर्भरता
(INTERDEPENDENCE OF THE TWO METHODS)

सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण तथा व्यापक आर्थिक विश्लेषण दोनों में आपस में बहुत घनि[ष्ठ] सम्बन्ध है। वे एक दूसरे की प्रतियोगी न होकर पूरक हैं। इनमें से कोई भी प्रणाली अपने [में] पूर्ण नहीं है, प्रत्येक की सीमाएँ तथा दोष हैं। वास्तव में, एक प्रणाली की सीमाएँ तथा दोष दूसरी प्रणाली द्वारा दूर हो जाते हैं। अतः दोनों रीतियाँ एक दूसरे पर निर्भर करती हैं। दोनों पद्धति[यों] की पारस्परिक निर्भरता कुछ उदाहरणों द्वारा निम्न प्रकार से स्पष्ट की जा सकती है :

(I) सूक्ष्म अर्थशास्त्र को व्यापक अर्थशास्त्र का सहारा आवश्यक है (Micro Econom[ic] Analysis needs the support of Macro Economic Analysis)

(१) एक व्यक्तिगत फर्म या एक उद्योग श्रम, कच्चे माल, मशीनों इत्यादि के लिए [जो] कीमतें देता है, वे उस फर्म या उद्योग की उन साधनों की स्वयं की माँग पर ही निर्भर [नहीं] करती, वल्कि इस वात पर निर्भर करती है कि इन साधनों की समस्त अर्थ-व्यवस्था में कुल [माँग] कितनी है।

(२) इसी प्रकार कोई फर्म अपना माल कितना वेच सकेगी यह बात केवल उस फर्म द्वा[रा] उत्पादित वस्तुओं की कीमतों पर ही निर्भर नहीं करती है वल्कि इस वात पर भी निर्भर करेगी [कि] समाज में कुल क्रय-शक्ति (total purchasing power) कितनी है।

(३) किसी एक वस्तु का मूल्य-निर्धारण केवल उस वस्तु की पूर्ति और माँग पर ही निर्भर नहीं करता, वल्कि अन्य वस्तुओं की कीमतों पर भी निर्भर करता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सूक्ष्म अर्थशास्त्र को विभिन्न वैयक्तिक समस्याओं [का] अध्ययन और विवेचन करने के लिए व्यापक अर्थशास्त्र पर निर्भर करना पड़ता है।

(II) व्यापक अर्थशास्त्र को भी सूक्ष्म अर्थशास्त्र का सहारा आवश्यक है (Macro Econo[mic] Analysis needs the support of Micro Economic Analysis)

यह वात निम्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की जा सकती है :

(१) यह आवश्यक नहीं है कि अर्थ-व्यवस्था की विभिन्न इकाइयों द्वारा लिया गया नि[र्णय] एक ही दिशा में हो। उदाहरणार्थ, यदि कुल माँग बढ़ती है तो यह सम्भव है कि इस बढ़ी [हुई] माँग का अधिकांश हिस्सा वस्तु विशेष की माँग के लिए हो जबकि अन्य वस्तुओं की माँग [घट] रही हो। ऐसी स्थिति में वस्तु विशेष के उद्योग का विस्तार होगा तथा अन्य वस्तुओं के [उद्योगों] का संकुचन।

(४) वास्तव में, सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था विभिन्न प्रकार की वैयक्तिक इकाइयों, (जैसे व्यक्तियों, परिवारों, फर्मों तथा उद्योगों) द्वारा निर्मित होती है। अतः सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के कार्य-करण के उचित ज्ञान के लिए विभिन्न वैयक्तिक इकाइयों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर ध्यान देना आवश्यक है।

निष्कर्ष—स्पष्ट है कि दोनों पद्धतियाँ प्रतियोगी न होकर एक दूसरे की पूरक हैं। अर्थ-व्यवस्था के कार्यकरण (working) को सही रूप में समझने के लिए दोनों की आवश्यकता है। प्रो॰ सैमुअलसन (Prof. Samuelson) के शब्दों में, "वास्तव में सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं है। दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि आप एक को समझते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ रहते हैं, तो आप केवल अर्द्ध-शिक्षित हैं।"[7]

of movement) में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यह गति निश्चित और नियमित रूप से होती है, उसमें कोई उतार-चढ़ाव, झटके (jerks) या अनिश्चितता नहीं होती है। प्रो० हैरोड (Harrod) के शब्दों में, "एक स्थैतिक सन्तुलन का अर्थ विश्राम की अवस्था से नहीं होता, बल्कि उस अवस्था से होता है जिसमें कि दिन-प्रतिदिन और वर्ष-प्रतिवर्ष कार्य निरन्तर हो रहा हो, परन्तु उसमें वृद्धि या कमी न हो रही हो।......इस सक्रिय (active) परन्तु परिवर्तनशील प्रक्रिया (unchanging process) को ही स्थैतिक अर्थशास्त्र कहा जा सकता है।"[1]

आर्थिक स्थैतिक के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

(१) वास्तव में स्थैतिक शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है—कुछ अर्थशास्त्रियों ने इसको संकीर्ण (narrow) रूप में परिभाषित किया है जबकि कुछ ने इसकी परिभाषा विस्तृत रूप में दी है। प्रो० हिक्स (Hicks) ने लिखा है, "आर्थिक सिद्धान्त के उन भागों को स्थैतिक अर्थशास्त्र कहता हूँ जिनमें हमें तिथिकरण (dating) की आवश्यकता नहीं होती एवं उन भागों को प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहता हूँ जिनमें से प्रत्येक मात्रा का तिथिकरण करना आवश्यक है।"[2] यह परिभाषा स्थैतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र को अधिक संकुचित कर देती है। प्रो० हैरोड (Harrod) का कहना है कि स्थैतिक तथा प्रावैगिक का सम्बन्ध तिथिकरण (dating) से जोड़ना ठीक नहीं है।

(२) टिनबर्जन (Tinbergen), मेकफी (Macfie), स्टिगलर (Stigler) इत्यादि अर्थशास्त्री स्थैतिक अर्थशास्त्र को 'स्थिर अर्थव्यवस्था' (Stationary economy) का अध्ययन मानते हैं। स्टिगलर (Stigler) के अनुसार, 'स्थिर अर्थव्यवस्था' तब होगी जबकि तीन आधारभूत तत्वों (data)—(i) रुचि, (ii) साधनों, और (iii) टेक्नोलोजी, में कोई परिवर्तन न हो।[3] दूसरे शब्दों में, स्थैतिक अर्थशास्त्र 'स्थिर सन्तुलन' (Stationary or stable equilibrium) का अध्ययन करता है।

(३) परन्तु प्रो० हेरोड (Harrod) के अनुसार, स्थैतिक अर्थशास्त्र को केवल 'स्थिर अर्थव्यवस्था' (stationary economy) का, जिसमें कि परिवर्तनों की पूर्ण अनुपस्थिति मानी जाती है, अध्ययन समझना पूर्णतया उचित नहीं है क्योंकि, उनके अनुसार, कुछ प्रकार के परिवर्तन, जैसे 'एक-बारगी परिवर्तन' (Once-over changes),[4] मौसमों तथा फसलों के परिवर्तन इत्यादि स्थैतिक

---

1 "Thus a static equilibrium by no means implies a state of idleness, but one in which work is steadily going forward day by day and year by year, but without increase or diminution...that it is to this *active but unchanging process that the expression static economics should be applied.*"
—Harrod, *Towards a Dynamic Economics*, p. 3

2 "I call economic statics those parts of economic theory where we do not trouble about dating, economic dynamics those parts where every quantity must be dated."
—Hicks, *Value and Capital*, p. 115

3 प्रो० क्लार्क (Clark) ने 'स्थिर अर्थव्यवस्था' (Stationary economy) के लिए तत्वों (data) के अन्तर्गत पांच बातों को स्थिर या समान माना है—जनसंख्या, पूंजी, उत्पादन की रीतियां, वैयक्तिक कारखानों के रूप (form of individual establishment) और मानवीय आवश्यकताएं।

4 कुछ अर्थशास्त्री 'एक-बारगी परिवर्तनों' (Once-over changes) को 'तुलनात्मक स्थैतिक' (Comparative Statics) के अन्तर्गत रखना पसन्द करते हैं। 'तुलनात्मक स्थैतिक' के अन्तर्गत हम परिवर्तनशील प्रक्रिया को कई सन्तुलन स्थितियों में बांट लेते हैं और एक सन्तुलन स्थिति का दूसरी सन्तुलन स्थिति के साथ तुलना करते हैं।

अर्थशास्त्र में शामिल होते हैं, बशर्ते (provided) कि ये परिवर्तन सन्तुलन के स्थापित होने की प्रवृत्ति को नष्ट न करते हों।

स्थैतिक अर्थशास्त्र की सीमाएँ तथा दोष

स्थैतिक अर्थशास्त्र, 'स्थिर अर्थव्यवस्था' (Stationary economy) का अध्ययन करता है परन्तु वास्तविक जगत परिवर्तनशील है। इसलिए वास्तविक जगत के लिए स्थैतिक रीति का प्रयोग बहुत ही सीमित रह जाता है। प्रो० हिक्स के शब्दों में, "स्थिर अवस्था अन्त में, कुछ नहीं बल्कि केवल वास्तविकता से दूर भागना है।"[5] स्थैतिक रीति के बहुत अधिक सीमित प्रयोग के निम्नलिखित दो मुख्य कारण बताये जाते हैं :

(१) अवास्तविक मान्यताओं (Unrealistic assumptions) पर आधारित—यह अवास्तविक मान्यताओं, जैसे, पूर्ण गतिशीलता, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रतियोगिता इत्यादि पर आधारित है। परन्तु व्यावहारिक जीवन में ये मान्यताएँ नहीं पायी जाती हैं। अतः इस रीति का प्रयोग सीमित रह जाता है।

(२) यह रीति परिवर्तनशील तत्त्वों को स्थिर मान लेती है (It assumes variable data constant)—यह आर्थिक व्यवहार को निर्धारित करने वाले तत्त्वों (determinants of onomic behaviour)—रुचि, साधनों, तथा टेक्नोलोजी—को स्थिर मान लेती है बल्कि स्तविक जीवन में ये परिवर्तनशील होते हैं और निरन्तर बदलते रहते हैं।

तिक अर्थशास्त्र का महत्त्व तथा क्षेत्र

यद्यपि स्थैतिक अर्थशास्त्र की सीमाएँ हैं, परन्तु फिर भी आर्थिक विश्लेषण में इसका हत्त्वपूर्ण सहयोग रहता है। प्रो० हेरोड[6] (Harrod) ने बताया है कि कुछ लोगों द्वारा स्थैतिक क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक सीमित करने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि वे प्राचीन अर्थशास्त्रियों के कार्य को अवमानित (denigrate) करने की प्रवृत्ति रखते हैं। परन्तु इस प्रवृत्ति के ते हुए भी प्रो० हेरोड का कथन है कि "मुझे विश्वास है कि स्थैतिक कुल अर्थशास्त्र का एक हत्त्वपूर्ण भाग रहेगा।"[7] स्थैतिक का महत्त्व निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जायेगा :

(१) आर्थिक जगत का कार्यकरण (working) जटिल सम्बन्धों में उलझा हुआ है तथा आर्थिक तत्त्वों में निरन्तर परिवर्तन होते हैं। अतः परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था का अध्ययन करना बहुत कठिन है और इसके लिए हमें स्थैतिक रीति की सहायता लेनी पड़ती है। जैसा कि प्रो० मेहता ने बताया है कि आर्थिक जीवाणु (economic organism) की गति को सूक्ष्म भागों में विभाजित करना पड़ता है, प्रावैगिक अवस्थाओं को छोटी-छोटी स्थैतिक अवस्थाओं में तोड़ा जा सकता है; तभी अध्ययन में सुविधा होगी क्योंकि शुद्ध प्रावैगिक का अध्ययन बहुत कठिन कार्य है। इस प्रकार हम स्थैतिक को प्रावैगिक की ही एक अवस्था मान सकते हैं। प्रो० मेहता कहते हैं कि "प्रावैगिक अर्थशास्त्र को स्थैतिक अर्थशास्त्र के ऊपर एक लगातार टीका (running

5 "Stationary state is in the end, nothing but an evasion."
—Hicks, *Value and Capital*, p. 117

6 "......that the scope of statics in my judgement has been too much narrowed of late I believe that this arises from a certain tendency to denigrate the work of older economists."
—Harrod, *op. cit.*, p. 4

7 "I am sure that statics will remain an important part of the whole."
—*Ibid.*, p. 5

commentary) माना जा सकता है। अतः स्थैतिक अर्थशास्त्र के नियम प्रावैगिक में लागू किये जाने चाहिए।"[8]

(२) अर्थशास्त्र के कार्यकरण के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि स्थैतिक का सहारा लिया जाय। एक उड़ते हुए वायुयान के कार्यकरण को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उसकी मशीन तथा विभिन्न भागों का अध्ययन स्थिर अवस्था में किया जाय। प्रो० स्टिगलर (Stigler) ने ठीक कहा है, "जहाँ पर आर्थिक समस्याएँ पूर्णतया समझी जा सकती हैं वहाँ भी यह उचित नहीं कि उसका विश्लेषण केवल एक कदम (single step) में ही किया जाये; चूँकि जटिल समस्याओं की व्याख्या भी प्रायः जटिल होती है, अतः व्याख्या को कई भागों में बाँटने के शैक्षिक लाभ हैं।"[9]

(३) स्थैतिक अर्थशास्त्र का महत्त्व उसके क्षेत्र (scope) या प्रयोगों (uses) से भी स्पष्ट होता है। प्रो० हैरोड के अनुसार, स्वतन्त्र व्यापार (free trade) की समस्या, मूल्य निर्धारण या उत्पत्ति के साधनों का मूल्यांकन, एक व्यक्ति को अपने साधनों का मितव्ययिता के साथ प्रयोग करना, अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त, इत्यादि स्थैतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। प्रो० हैरोड के अनुसार, "यद्यपि प्रो० रोबिन्स की परिभाषा का कुछ सम्बन्ध प्रावैगिक से है परन्तु उनकी परिभाषा का अन्तःकरण या केन्द्रीय भाग (central core) स्थैतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत ही आता है।" इसी प्रकार हैरोड आगे कहते हैं कि केंज का सिद्धान्त भी मुख्यतया स्थैतिक ही है यद्यपि उनके सिद्धान्त में कुछ बातें प्रावैगिक से भी सम्बन्धित हैं—जैसे, वास्तविक बचत (positive saving) का विचार। व्यापार चक्र का सिद्धान्त स्थैतिक तथा प्रावैगिक की मध्य-सीमा (border line) पर स्थित बताया जाता है।

स्थैतिक अर्थशास्त्र का इतना महत्त्व होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि वास्तविक परिवर्तनशील जगत की आर्थिक समस्याओं के अध्ययन, विश्लेषण और उनके समाधान में इसका सीमित प्रयोग है। सामान्यतया स्थैतिक विश्लेषण वहाँ पर अधिक उपयोगी हो सकता है जहाँ परिवर्तनों को उत्पन्न करने वाली बातें कम हों तथा समायोजन (adjustment) शीघ्रता से और आसानी से हो।

प्रावैगिक अर्थशास्त्र
(DYNAMIC ECONOMICS)

प्रावैगिक अर्थशास्त्र का अर्थ

'प्रावैगिक अर्थशास्त्र 'निरन्तर परिवर्तनों (continuous changes) तथा इन परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले तत्त्वों (determinants of change) या 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) का अध्ययन करता है। आर्थिक प्रावैगिक रीति, स्थैतिक अर्थशास्त्र की भाँति, आर्थिक तत्त्वों (economic data) को स्थिर नहीं मानती। प्रावैगिक रीति निरन्तर परिवर्तनों, क्रमों (sequences), अनुमानों (expectations), संचयी राशियों (cumulative magnitudes), विलम्बनों (lags) इत्यादि सभी को ध्यान में रखती है, इस प्रकार यह रीति अधिक वास्तविक होती है, परन्तु साथ ही साथ अधिक जटिल और कठिन भी होती है।

---

8 "Dynamic economics is, as it were, a running commentary on static economics. The laws of static economics must, therefore, apply to dynamics."
—J. K. Mehta, *Lectures on Modern Economic Theory*, p. 1[illegible]

9 "Even when economic phenomena are completely understood, it is not desirable to analyse them in a single step; the explanation of complicated phenomena is usually so complicated, and there are pedagogical advantages in breaking the explanation down into several parts."
—Stigler, *Theory of Value* (1947), p. [illegible]

स्थैतिक की भाँति प्रावैगिक अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में भी अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं। हम मुख्य अर्थशास्त्रियों की परिभाषाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित करते हुए तथा उनकी कमियों और गुणों को बताते हुए नीचे देते हैं :

(१) हिक्स (Hicks)[10] आर्थिक सिद्धान्त के उन विभागों को प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहते हैं जिनमें प्रत्येक मात्रा का तिथिकरण (dating) करना आवश्यक है। आलोचकों का कहना है कि हिक्स की परिभाषा प्रावैगिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र को अधिक विस्तृत कर देती है।

(२) हैरोड (Harrod) ने सुझाव दिया है कि प्रावैगिक अर्थशास्त्र की परिभाषा को निरन्तर परिवर्तनों (continuous changes) के विश्लेषण तक ही सीमित रखना चाहिए तथा एक-बारगी परिवर्तनों (once-over changes) का अध्ययन इसके अन्तर्गत नहीं होना चाहिए। उनके अनुसार, प्रावैगिक का सम्बन्ध ऐसी अर्थव्यवस्था से होना चाहिए जिसमें कि उत्पादन की दरें (rates of output) परिवर्तित हो रही हों। अतः हैरोड (Harrod) प्रावैगिक को इस प्रकार परिभाषित करते हैं, "प्रावैगिक का सम्बन्ध विशेषतया निरन्तर परिवर्तनों के प्रभावों तथा निर्धारित किये जाने वाले मूल्यों में परिवर्तनों की दरों से होना चाहिए।"[11]

(३) रेगनर फ़िश (Regner Frish) हैरोड की परिभाषा में थोड़ा परिवर्तन करते हुये कहते हैं कि प्रावैगिक के अध्ययन के लिए निरन्तर परिवर्तन (continuing change) महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) अधिक महत्वपूर्ण है और इसी का अध्ययन प्रावैगिक का सार (essence) है।

(४) रेगनर फ़िश तथा बोमोल (Baumol) के अनुसार प्रावैगिक अर्थशास्त्र का अध्ययन भविष्यवाणी (forecasting) करने में सहायक होता है। परन्तु बोमोल का कहना है कि भविष्यवाणी का अर्थ साधारण भविष्यवाणी (simple forecasting) से नहीं लेना चाहिए बल्कि एक घटना को पिछली तथा आगामी घटनाओं से सम्बन्धित करते हुए इसका अर्थ विस्तृत दृष्टिकोण से लेना चाहिए। अतः बोमोल (Baumol) प्रावैगिक को इस प्रकार परिभाषित करते हैं, "प्रावैगिक अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं का अध्ययन पिछली और आगे की घटनाओं को सम्बन्धित करते हुए करता है।"[12]

प्रावैगिक अर्थशास्त्र का महत्त्व, आवश्यकता तथा क्षेत्र

वास्तविक परिवर्तनशील जगत की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए प्रावैगिक विश्लेषण की परम आवश्यकता है। प्रावैगिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता और महत्त्व निम्नलिखित विवरण से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है :

(१) प्रावैगिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता स्थैतिक अर्थशास्त्र की अवास्तविकताओं (unrealities) के कारण उत्पन्न होती है। *स्थैतिक अर्थशास्त्र अवास्तविक मान्यताओं (जैसे, पूर्ण* गतिशीलता, पूर्ण ज्ञान इत्यादि) पर आधारित है तथा यह आर्थिक व्यवहार के निर्धारकों (जैसे, रुचि, साधनों, टेक्नोलोजी) को स्थिर और अपरिवर्तनशील मान लेता है, जबकि वास्तविक जगत में ऐसा नहीं होता। अतः स्थैतिक की इन अवास्तविकताओं के कारण प्रावैगिक की आव-

---

10 Hicks suggested that "we call...*economic dynamics those parts where every quantity must be dated.*" —Hicks, *Value and Capital*, p. 115

11 "Dynamics will specially be concerned with the effects of continuing changes and with rates of change in the values that have to be determined." —Harrod, *op. cit.*, p. 3

12 Dynamics is "the study of economic phenomena in relation to preceeding and succeeding events." —W. J. Baumol, *Economic Dynamics*, p. 7

श्यकता है। दूसरे शब्दों में, प्रावैगिक का महत्त्व इस बात में निहित है कि यह, स्थैतिक की अपेक्षा, वास्तविकता के अधिक निकट है।

(२) बहुत-सी समस्याएँ ऐसी हैं जिनका अध्ययन स्थैतिक नहीं कर सकता, उनके अध्ययन के लिए प्रावैगिक की आवश्यकता पड़ती है; जैसे—

(अ) निरन्तर परिवर्तनों (continuous changes) के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अध्ययन प्रावैगिक अर्थशास्त्र ही कर सकता है।

(ब) प्रावैगिक अर्थशास्त्र परिवर्तन उत्पन्न करने वाली मूल शक्तियों का अध्ययन करता है जबकि स्थैतिक उन्हें दिया हुआ मान लेता है। स्थैतिक केवल अन्तिम सन्तुलन (final equilibrium) का अध्ययन कर सकता है जबकि सन्तुलन की अपेक्षा 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (process of change) का अध्ययन अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसका अध्ययन प्रावैगिक ही कर सकता है।

(स) **मानवीय मनोविज्ञान पर आधारित आर्थिक समस्याओं के अध्ययन** के लिए प्रावैगिक की ही आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, व्यापार चक्र जैसी जटिल आर्थिक समस्याओं का अध्ययन तथा उचित विश्लेषण प्रावैगिक द्वारा ही सम्भव है।

(३) **प्रावैगिक विश्लेषण रीति की आवश्यकता इसलिए भी है कि यह लोचदार** (flexible) होती है जिसके परिणामस्वरूप सभी प्रकार की सम्भावनाओं की खोज की जा सकती है। इसी लोचदार गुण के परिणामस्वरूप यह विकासमान (developing) तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र की समस्याओं तथा नियोजन (planning) की समस्याओं के विश्लेषण के लिए अधिक उपयोगी है।

(४) **प्रो० रोबिन्स** के अनुसार, प्रावैगिक के चार महत्त्वपूर्ण कार्य है—(i) यह बहुत से आर्थिक सिद्धान्तों की सत्यता तथा क्रियाशीलता की जाँच करता है। (ii) यह स्थैतिक अर्थशास्त्र की मान्यताओं की अवास्तविकता को बताते हुए अधिक वास्तविक मान्यताएँ हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर आर्थिक व्याख्या की जानी चाहिए ताकि वह वास्तविक जगत के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। (iii) यह उन क्षेत्रों पर प्रकाश डालता है जहाँ पर कि स्थैतिक सिद्धान्तों का सुधार और उन सिद्धान्तों का अधिक विस्तृत रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए। (iv) प्रावैगिक अर्थशास्त्र नये तत्त्वों पर प्रकाश डालता है और इससे भविष्यवाणी के अधिक सही और निश्चित होने में सहायता मिलती है।

(५) **प्रावैगिक रीति का महत्त्व उसके क्षेत्र तथा प्रयोगों से भी स्पष्ट होता है।** मकड़ी के जाले का सिद्धान्त (Cobweb Theorem) तथा व्यापार चक्र (Trade Cycles), जनसंख्या के विकास का सिद्धान्त, बचत तथा विनियोग के सिद्धान्त, ब्याज का सिद्धान्त, लाभ का सिद्धान्त, मूल्य निर्धारण पर समय का प्रभाव, इत्यादि प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं।

उपर्युक्त विवरण से प्रावैगिक की आवश्यकता स्पष्ट है। संक्षेप में, आर्थिक जीवन की समस्याओं को वास्तविक रूप में समझने तथा हल करने के लिए प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अध्ययन की परम आवश्यकता है।

प्रावैगिक की सीमाएँ

यद्यपि प्रावैगिक आर्थिक विश्लेषण के लिए बहुत आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है परन्तु साथ ही यह बहुत जटिल भी है। इसकी मुख्य सीमाएँ इस प्रकार हैं :

(१) यदि परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है, तो समस्या का अध्ययन केवल शुद्ध प्रावैगिक दृष्टिकोण से करना बहुत कठिन है, इसके लिए हमें समस्या को कई स्थैतिक टुकड़ों में बाँट कर ही अध्ययन करना पड़ेगा।

(२) प्रावैगिक के अध्ययन के लिए इकोनोमेट्रिक्स (Econometrics) की सहायता लेनी पड़ती है जिसके कारण यह रीति बहुत कठिन हो जाती है और इसका समझना सामान्य अर्थशास्त्रियों की समझ के बाहर है।

(३) प्रावैगिक का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है जिसके कारण इसका प्रयोग कठिन हो जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—स्थैतिक तथा प्रावैगिक के विवेचन से स्पष्ट होता है कि अर्थशास्त्र के पूर्ण विकास के लिए दोनों की आवश्यकता है। कुछ आर्थिक समस्याएँ ऐसी हैं जिनका अध्ययन प्रावैगिक द्वारा ही हो सकता है जबकि कुछ का अध्ययन स्थैतिक द्वारा किया जा सकता है, तथा कुछ समस्याओं के विवेचन के लिए दोनों की साथ-साथ आवश्यकता पड़ सकती है। अतः अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए दोनों प्रणालियों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है।

साम्य का विचार
(THE CONCEPT OF EQUILIBRIUM)

साम्य का विचार अर्थशास्त्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि अधिकांश आर्थिक विश्लेषण साम्य विश्लेषण होता है। अर्थशास्त्र के अन्तर्गत हम साम्य की उन दशाओं तथा शक्तियों का अध्ययन करते हैं जो साम्य को एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित करती हैं।

साम्य का अर्थ
(MEANING OF EQUILIBRIUM)

अर्थशास्त्र में साम्य[1] का अर्थ भौतिक [illegible]
(inert state) से नहीं लि[illegible]
brium) से लिया जाता है [illegible]
कार्य करना बन्द कर दि[illegible]

[1] साम्य (equilibrium) शब्द दो लैटिन शब्दों—'*aequus*' (जिसका अर्थ है समान) तथा '*libra*' (जिसका अर्थ है सन्तुलन) से बना है, अतः साम्य का अर्थ है 'समान सन्तुलन'। इस शब्द का प्रायः भौतिक शास्त्र में बहुत प्रयोग किया जाता है जहाँ कि साम्य विश्राम की स्थिति को बताता है।

दूसरे के प्रभाव को नष्ट कर देती हैं। इसमें गति की अनुपस्थिति (absence of movement) नहीं होती बल्कि 'गति की दर में परिवर्तन की अनुपस्थिति' (absence of change in the rate of movement) होती है। प्रो० मेहता के अनुसार, "अर्थशास्त्र में साम्य 'गति में परिवर्तन की अनुपस्थिति' को बताता है जबकि भौतिक विज्ञानों में यह गति की अनुपस्थिति को ही बताता है।"[2] स्टिगलर (Stigler) के अनुसार, साम्य वह स्थिति है जिससे हटने की कोई वास्तविक प्रवृत्ति (net tendency) न हो। हम 'वास्तविक' (net) प्रवृत्ति शब्द का प्रयोग इस बात पर जोर देने के लिए करते हैं कि यह निश्चित स्थिति का द्योतक नहीं होता बल्कि शक्तिशाली शक्तियों द्वारा एक दूसरे के बल को नष्ट करने का द्योतक है।"[3]

साम्य का महत्व
(SIGNIFICANCE OF EQUILIBRIUM)

(i) **यात्रा के लक्ष्य (goal of the journey) के बताने में सहायक**—साम्य के विचार का महत्त्व इस बात में नहीं है कि व्यावहारिक जगत में इसे प्राप्त किया जा सकता है या नहीं, बल्कि इसका महत्त्व इस बात में निहित है कि यह एक लक्ष्य या उद्देश्य (goal) को बताता है जिसको प्राप्त करने के लिए आर्थिक क्रियाएँ प्रयत्नशील रहती हैं। संक्षेप में, साम्य का विचार यात्रा के लक्ष्य को बताने में मदद करता है।

(ii) **आर्थिक परिवर्तनों की दिशा (direction) को बताता है**—किसी मूल्य या फर्म या उद्योग या सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की साम्य की स्थिति उस स्थिति को बताती है जिस ओर कि ये गतिशील होते हैं और जिस पर कि ये विश्राम (rest) प्राप्त करते हैं। एक बार इस स्थिति पर पहुँच जाने के पश्चात वहाँ से हटने पर, अर्थात् असन्तुलन की स्थिति में फँस जाने पर, नयी आर्थिक शक्तियाँ उत्पन्न हो जायेंगी जो कि इनको पुनः साम्य की स्थिति में लाने का प्रयत्न करेंगी। अतः साम्य के विचार को 'अर्थशास्त्री का कुतुबनुमा' (economist's compass) कहा जा सकता है जिसकी मदद से आर्थिक तत्त्वों में परिवर्तनों को जाना जाता है।

क्या साम्य वास्तविक जगत में प्राप्त किया जा सकता है ?
(IS EQUILIBRIUM ACTUALLY FOUND IN REAL WORLD)

कुछ आलोचकों का कहना है कि साम्य की स्थिति वास्तविक परिवर्तनशील जगत में नहीं पायी जाती, यह विचार अवास्तविक है और इसलिए इसके अध्ययन का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं रह जाता है। परन्तु इस प्रकार की आलोचना उचित नहीं है; इसके मुख्य कारण निम्न हैं :

(१) यद्यपि यह सच है कि प्रायः वास्तविक जीवन की दशाएँ अर्थशास्त्रियों द्वारा वर्णित दशाओं के समान नहीं होतीं और परिणामस्वरूप उनसे साम्य प्राप्त नहीं किया जाता; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि **वास्तविक जीवन की दशाएँ साम्य की ओर जाने की प्रवृत्ति** अवश्य रखती हैं। यदि दीर्घकाल तक आर्थिक तथ्यों में परिवर्तन न हो तो साम्य की स्थिति अवश्य प्राप्त हो सकती है। यह तथ्य साम्य के विचार को व्यावहारिक बनाता है।

---

2 "The point worth noting is that equilibrium denotes in economics absence of change in movement while in the physical sciences it denotes absence of movement itself."
J. K. Mehta, *Studies in Advanced Economic Theory*, p. 120

Equilibrium is "a position from which there is no net tendency to move. We say 'net' tendency to emphasise the fact that it is not necessarily a state of sodden inertia, but may instead represent the cancellation of powerful forces."
—Stigler, *Theory of Price*

(२) वास्तविक जीवन में कभी-कभी साम्य इस अर्थ में प्राप्त हो जाता है कि एक निश्चित मूल्य पर कुल माँग और कुल पूर्ति बराबर हो जाती है। परन्तु कठिनाई यह है कि माँग और पूर्ति का यह साम्य बहुत थोड़े समय के लिए रहता है और फिर नष्ट हो जाता है क्योंकि वास्तविक जीवन में माँग तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाली शक्तियाँ यथास्थिर न रहकर शीघ्रता से परिवर्तित होती रहती हैं।

(३) वास्तव में, साम्य एक आदर्श स्थिति या अन्तिम लक्ष्य का द्योतक होता है। हम देश विशेष में पूर्ण ईमानदारी प्राप्त करने का लक्ष्य रख सकते हैं यद्यपि व्यावहारिक जगत में पूर्ण ईमानदारी नहीं पायी जाती है, केवल उसका एक अंश पाया जाता है। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में साम्य की स्थिति एक आदर्श स्थिति को बताती है। अतः वास्तविक जीवन में साम्य की स्थिति न पाये जाने का अर्थ यह नहीं है कि साम्य का विचार बेकार है।

साम्य के प्रकार
(KINDS OF EQUILIBRIUM)

आर्थिक साम्य को कई वर्गों में बाँटा जा सकता है। साम्य के महत्त्वपूर्ण प्रकार निम्नलिखित हैं :

१. स्थिर, तटस्थ तथा अस्थिर साम्य (Stable, Neutral and Unstable Equilibria)

(अ) एक आर्थिक प्रणाली स्थिर साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि, यदि कोई छोटी हलचल (disturbance) उत्पन्न हो, तो तुरन्त ही ऐसी शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं जो कि आर्थिक प्रणाली को पहली ही स्थिति की ओर ले जाने की प्रवृत्ति रखती हैं तथा इन पुनर्स्थापन करने वाली शक्तियों के परिणामस्वरूप पहला साम्य पुनः स्थापित हो जाता है।

(ब) एक आर्थिक प्रणाली तटस्थ साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी, यदि कोई छोटी हलचल उत्पन्न हो, तो प्रारम्भिक स्थिति की ओर ले जाने वाली पुनर्स्थापन-शक्तियाँ उत्पन्न नहीं होतीं, परन्तु साथ ही आगे और हलचल उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ भी प्रकट नहीं होतीं; परिणामस्वरूप आर्थिक प्रणाली पहली हलचल के बाद जिस स्थिति में पहुँची थी उसी पर स्थिर टिकी रहती है।

(स) एक आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई अस्थिर साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि, यदि कोई छोटी हलचल उत्पन्न हो, तो परिणामस्वरूप और अधिक हलचल तथा विघ्न उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं और ये सब मिलकर आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई को प्रारम्भिक स्थिति से बहुत दूर फेंक देती हैं।

प्रो० पीगू ने उपर्युक्त तीनों प्रकार के साम्यों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए निम्न उदाहरण दिये हैं। भारी पेंदी (heavy keel) वाला जहाज 'स्थिर साम्य' की स्थिति में होगा, एक करवट से पड़ा हुआ अण्डा 'तटस्थ साम्य' की स्थिति में होगा तथा एक सिरे पर टिकाया हुआ अण्डा 'अस्थिर साम्य' की स्थिति में होगा।

उपर्युक्त तीनों में से 'स्थिर साम्य' का प्रयोग आर्थिक विश्लेषण में बहुत होता है और यह वास्तविक जगत में प्रायः पाया जाता है। परन्तु अन्य दोनों प्रकार के साम्य व्यावहारिक जगत में नहीं पाये जाते; यद्यपि, जैसा कि प्रो० स्टिगलर ने बताया है, तटस्थ और अस्थिर साम्यों की काल्पनिक स्थितियों को सोचा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इन दोनों साम्यों का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है।

दूसरे के प्रभाव को नष्ट कर देती हैं। इसमें **गति की अनुपस्थिति** (absence of movement) **नहीं होती बल्कि 'गति की दर में परिवर्तन की अनुपस्थिति'** (absence of change in the rate of movement) **होती है। प्रो० मेहता** के अनुसार, "अर्थशास्त्र में साम्य 'गति में परिवर्तन' की अनुपस्थिति को बताता है जबकि भौतिक विज्ञानों में यह गति की अनुपस्थिति को ही बताता है।"[2] **स्टिगलर** (Stigler) के अनुसार, **साम्य वह स्थिति है जिससे हटने की कोई वास्तविक प्रवृत्ति** (net tendency) **न हो।** हम 'वास्तविक' (net) प्रवृत्ति शब्द का प्रयोग इस बात पर जोर देने के लिए करते हैं कि यह निश्चित स्थिति का द्योतक नहीं होता बल्कि शक्तिशाली शक्तियों द्वारा एक दूसरे के बल को नष्ट करने का द्योतक है।"[3]

साम्य का महत्व
(SIGNIFICANCE OF EQUILIBRIUM)

(i) **यात्रा के लक्ष्य** (goal of the journey) **के बताने में सहायक**—साम्य के विचार का महत्व इस बात में नहीं है कि व्यावहारिक जगत में इसे प्राप्त किया जा सकता है या नहीं, बल्कि इसका महत्व इस बात में निहित है कि यह एक लक्ष्य या उद्देश्य (goal) को बताता है जिसको प्राप्त करने के लिए आर्थिक क्रियाएँ प्रयत्नशील रहती हैं। संक्षेप में, साम्य का विचार यात्रा के लक्ष्य को बताने में मदद करता है।

(ii) **आर्थिक परिवर्तनों की दिशा** (direction) **को बताता है**—किसी मूल्य या फर्म या उद्योग या सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की साम्य की स्थिति उस स्थिति को बताती है जिस ओर कि ये गतिशील होते हैं और जिस पर कि ये विश्राम (rest) प्राप्त करते हैं। एक बार इस स्थिति पर पहुँच जाने के पश्चात वहाँ से हटने पर, अर्थात् असन्तुलन की स्थिति में फँस जाने पर, नयी आर्थिक शक्तियाँ उत्पन्न हो जायेंगी जो कि इनको पुनः साम्य की स्थिति में लाने का प्रयत्न करेंगी। अतः साम्य के विचार को **'अर्थशास्त्री का कुतुबनुमा'** (economist's compass) कहा जा सकता है जिसकी मदद से आर्थिक तत्त्वों में परिवर्तनों को जाना जाता है।

क्या साम्य वास्तविक जगत में प्राप्त किया जा सकता है ?
(IS EQUILIBRIUM ACTUALLY FOUND IN REAL WORLD)

कुछ आलोचकों का कहना है कि साम्य की स्थिति वास्तविक परिवर्तनशील जगत में नहीं पायी जाती, यह विचार अवास्तविक है और इसलिए इसके अध्ययन का कोई व्यावहारिक महत्व नहीं रह जाता है। परन्तु इस प्रकार की आलोचना उचित नहीं है; इसके मुख्य कारण निम्न हैं :

(१) यद्यपि यह सच है कि प्रायः वास्तविक जीवन की दशाएँ अर्थशास्त्रियों द्वारा वर्णित दशाओं के समान नहीं होतीं और परिणामस्वरूप उनसे साम्य प्राप्त नहीं किया जाता; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि **वास्तविक जीवन की दशाएँ साम्य की ओर जाने की प्रवृत्ति अवश्य रखती हैं।** यदि दीर्घकाल तक आर्थिक तथ्यों में परिवर्तन न हो तो साम्य की स्थिति अवश्य प्राप्त हो सकती है। यह तथ्य साम्य के विचार को व्यावहारिक बनाता है।

---

2 "The point worth noting is that equilibrium denotes in economics absence of change in movement while in the physical sciences it denotes absence of movement itself."
—J. K. Mehta, *Studies in Advanced Economic Theory*, p. [illegible]

3 "Equilibrium is the position from which there is no net tendency to move. We say 'net' tendency to emphasise the fact that it is not necessarily a state of sodden inertia, but may instead represent the cancellation of powerful forces."
—Stigler, *Theory of P[illegible]*

(२) वास्तविक जीवन में कभी-कभी साम्य इस अर्थ में प्राप्य हो जाता है कि एक निश्चित मूल्य पर कुल माँग और कुल पूर्ति बराबर हो जाती है। परन्तु कठिनाई यह है कि माँग और पूर्ति यह साम्य बहुत थोड़े समय के लिए रहता है और फिर नष्ट हो जाता है क्योंकि वास्तविक वन में माँग तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाली शक्तियाँ यथास्थिर न रहकर शीघ्रता से परि-तन होती रहती है।

(३) वास्तव मे, साम्य एक आदर्श स्थिति या अन्तिम लक्ष्य का द्योतक होता है। हम देश गेप में पूर्ण ईमानदारी प्राप्त करने का लक्ष्य रख सकते हैं यद्यपि व्यावहारिक जगत में पूर्ण ानदारी नहीं पायी जाती है, केवल उसका एक अंश पाया जाता है। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में म्य की स्थिति एक आदर्श स्थिति को बताती है। अतः वास्तविक जीवन में साम्य की स्थिति न ये जाने का अर्थ यह नहीं है कि साम्य का विचार बेकार है।

साम्य के प्रकार
(KINDS OF EQUILIBRIUM)

आर्थिक साम्य को कई वर्गों में बाँटा जा सकता है। साम्य के महत्त्वपूर्ण प्रकार निम्न-खित हैं :

. स्थिर, तटस्थ तथा अस्थिर साम्य (Stable, Neutral and Unstable Equilibria)

(अ) एक आर्थिक प्रणाली स्थिर साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि, यदि कोई छोटी हलचल (disturbance) उत्पन्न हो, तो तुरन्त ही ऐसी शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं जो कि ार्थिक प्रणाली को पहली ही स्थिति की ओर ले जाने की प्रवृत्ति रखती हैं तथा इन पुनर्स्थापन रने वाली शक्तियों के परिणामस्वरूप पहला साम्य पुनः स्थापित हो जाता है।

(ब) एक आर्थिक प्रणाली तटस्थ साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी, यदि कोई छोटी लचल उत्पन्न हो, तो [illegible]
होती, परन्तु साथ ह [illegible]
रिणामस्वरूप आर्थिक [illegible]
टिकी रहती है।

(स) एक आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई अस्थिर साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि, यदि कोई छोटी हलचल उत्पन्न हो, तो परिणामस्वरूप और अधिक हलचल तथा विघ्न उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं और ये सब मिलकर आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई को प्रारम्भिक स्थिति से बहुत दूर फेंक देती हैं।

प्रो० पीगू ने उपर्युक्त तीनों प्रकार के साम्यों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए निम्न उदाहरण दिये हैं। भारी पेंदी (heavy keel) वाला जहाज 'स्थिर साम्य' की स्थिति में होगा, एक करवट से पड़ा हुआ अण्डा 'तटस्थ साम्य' की स्थिति में होगा तथा एक सिरे पर टिकाया हुआ अण्डा 'अस्थिर साम्य' की स्थिति में होगा।

उपर्युक्त तीनों में से 'स्थिर साम्य' का प्रयोग आर्थिक विश्लेषण में बहुत होता है और यह वास्तविक जगत में प्रायः पाया जाता है। परन्तु अन्य दोनों प्रकार के साम्य व्यावहारिक जगत में नहीं पाये जाते; यद्यपि, जैसा कि प्रो० स्टिगलर ने बताया है, तटस्थ और अस्थिर साम्यों की काल्पनिक स्थितियों को सोचा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इन दोनों साम्यों का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है।

दूसरे के प्रभाव को नष्ट कर देती हैं। इसमें **गति की अनुपस्थिति** (absence of movement) नहीं होती बल्कि **'गति की दर में परिवर्तन की अनुपस्थिति'** (absence of change in the rate of movement) होती है। प्रो० मेहता के अनुसार, "अर्थशास्त्र में साम्य 'गति में परिवर्तन' की अनुपस्थिति को बताता है जबकि भौतिक विज्ञानों में यह गति की अनुपस्थिति को ही बताता है।"[2] स्टिगलर (Stigler) के अनुसार, साम्य वह स्थिति है जिससे हटने की कोई वास्तविक प्रवृत्ति (net tendency) न हो। हम 'वास्तविक' (net) प्रवृत्ति शब्द का प्रयोग इस बात पर जोर देने के लिए करते हैं कि यह निश्चित स्थिति का द्योतक नहीं होता बल्कि शक्तिशाली शक्तियों द्वारा एक दूसरे के बल को नष्ट करने का द्योतक है।"[3]

साम्य का महत्व
(SIGNIFICANCE OF EQUILIBRIUM)

(i) **यात्रा के लक्ष्य (goal of the journey) के बताने में सहायक**—साम्य के विचार का महत्त्व इस बात में नहीं है कि व्यावहारिक जगत में इसे प्राप्त किया जा सकता है या नहीं, बल्कि इसका महत्त्व इस बात में निहित है कि यह एक लक्ष्य या उद्देश्य (goal) को बताता है जिसको प्राप्त करने के लिए आर्थिक क्रियाएँ प्रयत्नशील रहती हैं। संक्षेप में, साम्य का विचार यात्रा के लक्ष्य को बताने में मदद करता है।

(ii) **आर्थिक परिवर्तनों की दिशा (direction) को बताता है**—किसी मूल्य या फर्म या उद्योग या सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की साम्य की स्थिति उस स्थिति को बताती है जिस ओर कि ये गतिशील होते हैं और जिस पर कि ये विश्राम (rest) प्राप्त करते हैं। एक बार इस स्थिति पर पहुँच जाने के पश्चात वहाँ से हटने पर, अर्थात् असन्तुलन की स्थिति में फँस जाने पर, नयी आर्थिक शक्तियाँ उत्पन्न हो जायेंगी जो कि इनको पुनः साम्य की स्थिति में लाने का प्रयत्न करेंगी। अतः साम्य के विचार को **'अर्थशास्त्री का कुतुबनुमा'** (economist's compass) कहा जा सकता है जिसकी मदद से आर्थिक तत्त्वों में परिवर्तनों को जाना जाता है।

क्या साम्य वास्तविक जगत में प्राप्त किया जा सकता है ?
(IS EQUILIBRIUM ACTUALLY FOUND IN REAL WORLD)

कुछ आलोचकों का कहना है कि साम्य की स्थिति वास्तविक परिवर्तनशील जगत में नहीं पायी जाती, यह विचार अवास्तविक है और इसलिए इसके अध्ययन का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं रह जाता है। परन्तु इस प्रकार की आलोचना उचित नहीं है; इसके मुख्य कारण निम्न हैं :

(१) यद्यपि यह सच है कि प्रायः वास्तविक जीवन की दशाएँ अर्थशास्त्रियों द्वारा वर्णित दशाओं के समान नहीं होतीं और परिणामस्वरूप उनसे साम्य प्राप्त नहीं किया जाता; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि **वास्तविक जीवन की दशाएँ साम्य की ओर जाने की प्रवृत्ति** अवश्य रखती हैं। यदि दीर्घकाल तक आर्थिक तथ्यों में परिवर्तन न हो तो साम्य की स्थिति अवश्य प्राप्त हो सकती है। यह तथ्य साम्य के विचार को व्यावहारिक बनाता है।

---

2 "The point worth noting is that equilibrium denotes in economics absence of change in movement while in the physical sciences it denotes absence of movement itself."
J. K. Mehta, *Studies in Advanced Economic Theory*, p. 1[illegible]

[3] Equilibrium is "a position from which there is no net tendency to move. We say 'net' tendency to emphasise the fact that it is not necessarily a state of sodden inertia, but may instead represent the cancellation of powerful forces." —Stigler, *Theory of Pr*[illegible]

(२) वास्तविक जीवन में कभी-कभी साम्य इस अर्थ में प्राप्य हो जाता है कि एक निश्चित मूल्य पर कुल माँग और कुल पूर्ति बराबर हो जाती है। परन्तु कठिनाई यह है कि माँग और पूर्ति का यह साम्य बहुत थोड़े समय के लिए रहता है और फिर नष्ट हो जाता है क्योंकि वास्तविक जीवन में माँग तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाली शक्तियाँ यथास्थिर न रहकर शीघ्रता से परिवर्तित होती रहती है।

(३) वास्तव में, साम्य एक आदर्श स्थिति या अन्तिम लक्ष्य का द्योतक होता है। हम देश विशेष में पूर्ण ईमानदारी प्राप्त करने का लक्ष्य रख सकते है यद्यपि व्यावहारिक जगत में पूर्ण ईमानदारी नहीं पायी जाती है, केवल उसका एक अंश पाया जाता है। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में साम्य की स्थिति एक आदर्श स्थिति को बताती है। अतः वास्तविक जीवन में साम्य की स्थिति न पाये जाने का अर्थ यह नहीं है कि साम्य का विचार बेकार है।

साम्य के प्रकार
(KINDS OF EQUILIBRIUM)

आर्थिक साम्य को कई वर्गों में बाँटा जा सकता है। साम्य के महत्वपूर्ण प्रकार निम्नलिखित हैं :

१. स्थिर, तटस्थ तथा अस्थिर साम्य (Stable, Neutral and Unstable Equilibria)

(अ) एक आर्थिक प्रणाली स्थिर साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि, यदि कोई छोटी हलचल (disturbance) उत्पन्न हो, तो तुरन्त ही ऐसी शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं जो कि आर्थिक प्रणाली को पहली ही स्थिति की ओर ले जाने की प्रवृत्ति रखती है तथा इन पुनर्स्थापन करने वाली शक्तियों के परिणामस्वरूप पहला साम्य पुनः स्थापित हो जाता है।

(ब) एक आर्थिक प्रणाली तटस्थ साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी, यदि कोई छोटी हलचल उत्पन्न हो, तो प्रारम्भिक स्थिति को ओर ले जाने वाली पुनर्स्थापन-शक्तियाँ उत्पन्न नहीं होतीं, परन्तु साथ ही आगे और हलचल उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ भी प्रकट नहीं होती; परिणामस्वरूप आर्थिक प्रणाली पहली हलचल के बाद जिस स्थिति में पहुँची थी उसी पर स्थिर टिकी रहती है।

(स) एक आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई अस्थिर साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि, यदि कोई छोटी हलचल उत्पन्न हों, तो परिणामस्वरूप और अधिक हलचल तथा विघ्न उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं और ये सब मिलकर आर्थिक प्रणाली या आर्थिक इकाई को प्रारम्भिक स्थिति से बहुत दूर फेंक देती हैं।

प्रो० पीगू ने उपर्युक्त तीनों प्रकार के साम्यों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए निम्न उदाहरण दिये हैं। भारी पेंदी (heavy keel) वाला जहाज 'स्थिर साम्य' की स्थिति में होगा, एक करवट से पड़ा हुआ अण्डा 'तटस्थ साम्य' की स्थिति में होगा तथा एक सिरे पर टिकाया हुआ अण्डा 'अस्थिर साम्य' की स्थिति में होगा।

उपर्युक्त तीनों में से 'स्थिर साम्य' का प्रयोग आर्थिक विश्लेषण में बहुत होता है और यह वास्तविक जगत में प्रायः पाया जाता है। परन्तु अन्य दोनों प्रकार के साम्य व्यावहारिक जगत में नहीं पाये जाते; यद्यपि, जैसा कि प्रो० स्टिगलर ने बताया है, तटस्थ और अस्थिर साम्यों की काल्पनिक स्थितियों को सोचा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इन दोनों साम्यों का कोई व्यावहारिक महत्व नहीं है।

२. एकाकी तथा अनेक तत्त्वीय साम्य (Single or Unique and Multiple Equilibria)

एकाकी साम्य तब कहा जायेगा जबकि उत्पादन की मात्रा तथा कीमत का केवल एक ही समूह साम्य की दशाओं को सन्तुष्ट करता है। इसके विपरीत, **अनेक तत्त्वीय साम्य** तब कहा जायेगा जबकि उत्पादन की मात्राओं तथा कीमतों के अनेक विभिन्न समूह साम्य की दशाओं को सन्तुष्ट करते हैं। अनेक तत्त्वीय साम्य की स्थितियाँ तब उत्पन्न होती हैं जबकि माँग रेखा का ढाल (Slope) बदलता रहता है अर्थात माँग रेखा कुछ दूरी तक बेलोचदार रहती है, फिर कुछ दूरी तक बहुत लोचदार रहती है, पुनः कुछ दूरी तक बेलोचदार हो जाती है। यह बात संलग्न चित्र १ से स्पष्ट है। ऐसी स्थिति उस बाजार में पायी जा सकती है जबकि विभिन्न आय वाले उपभोक्ता के विभिन्न वर्गों में विभाजित हों। ऐसी परिस्थिति में माँग रेखा कई विन्दुओं पर कोनेदार होगी और प्रत्येक कोनेदार विन्दु पर कीमत के परिवर्तन होने पर उपभोक्ताओं का एक नया वर्ग वस्तु को खरीदता है। वास्तविक संसार में एकाकी साम्य के उदाहरण प्रायः पाये जाते हैं जबकि अनेक तत्त्वीय साम्य के उदाहरण बहुत ही कम या न के बराबर होते हैं।
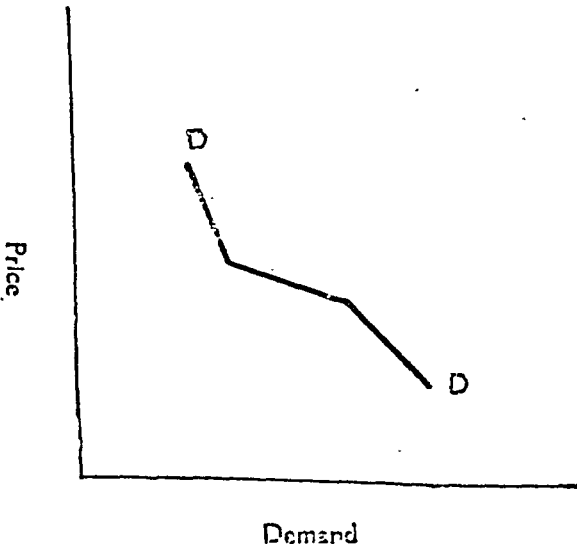
लीन-साम्य कहा जाता है। (ii) 'दीर्घकालीन साम्य' को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित या जा सकता है। दीर्घकालीन साम्य वह साम्य है जो कि एक लम्बे समय तक बना रहता है। साम्य केवल थोड़े समय तक या एक समय-बिन्दु पर ही नहीं बना रहता बल्कि अल्पकालों के लम्बी शृंखला तक बना रहता है।

स्थैतिक तथा प्रावैगिक साम्य (Static and Dynamic Equilibria)

स्थैतिक साम्य स्थिर अर्थव्यवस्था (stationary economy) से सम्बन्धित होता है। स्थिर

ता है। प्रो० बोल्डिंग ने स्थैतिक साम्य के उदाहरण इस प्रकार दिये हैं। एक गेंद यदि समान से लुढ़कती है तो वह स्थैतिक साम्य में कही जायेगी। एक जंगल जिसमें कि पेड़ उगते, बढ़ते ा मृत्यु को प्राप्त होते हैं परन्तु सम्पूर्ण जंगल की बनावट (composition) अपरिवर्तित रहती तो जंगल स्थैतिक साम्य में कहा जायेगा।[1]

प्रो० जे० के० मेहता ने स्थैतिक साम्य का अर्थ कुछ भिन्न प्रकार से बताया है। उनके अनु- र, जो साम्य एक निश्चित समय अवधि के बाद भी बना रहता है, वह स्थैतिक साम्य है। यदि मय अवधि हम १० दिन लेकर चलें, और किसी वस्तु की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित साम्य ल्य १० दिन के उपरान्त भी बना रहता है, तो यह स्थैतिक साम्य कहा जाएगा।

प्रावैगिक साम्य का सम्बन्ध प्रावैगिक अर्थव्यवस्था से होता है। प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में म, स्थिर अर्थव्यवस्था की भाँति, आर्थिक तत्त्वों (data) को स्थिर नहीं मानते, वे परिवर्तित होते रहते हैं। प्रावैगिक अर्थव्यवस्था को स्पष्ट रूप से समझने के लिए दो बातों को ध्यान में रखना ाहिए: (i) प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों या विभिन्न आर्थिक तत्त्वों में सकता है। (ii) परन्तु उन विभिन्न अंगों । यदि प्रावैगिक अर्थव्यवस्था, जिसमें कि या जाये तो स्पष्ट है कि यह अवास्तविक तीत होता है, आर्थिक तत्त्वों या आर्थिक अंगों में परिवर्तन होता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि ह परिवर्तन एक समान दर या गति से हो। उपर्युक्त अर्थ में ही प्रो० बोल्डिंग ने प्रावैगिक साम्य ी परिभाषा इस प्रकार दी है: "......एक अर्थव्यवस्था प्रावैगिक साम्य की दशा में कही जा कती है यदि समस्त स्टाक (stock), जिसमें वस्तुओं तथा मानव दोनों को शामिल किया जाता , अर्थात् वस्तुएँ और मानव में आर्थिक ... भी मदों के उत्पादन तथा

प्रो० जे० के० मेहता ... र, जो साम्य एक निश्चित समय अवधि के अन्दर ही रहता है और उस समय अवधि के उपरान्त ट हो जाता है तो उसे प्रावैगिक साम्य कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हम समय अवधि १०

[1] "A mechanical analog... of a f... of the...

"An e... ding t... rates...

primary), द्वितीय स्तर (secondary), तृतीय स्तर (tertiary), इत्यादि पर अनुभव किये जाते हैं। आंशिक साम्य विश्लेषण रीति प्रथम स्तर के प्रभावों या प्रत्यक्ष प्रभावों का ही अध्ययन करती है।

सामान्य साम्य का अर्थ (Meaning of general equilibrium)—'सामान्य साम्य विश्लेषण रीति' का प्रयोग प्रारम्भ में वालरस (Walras) तथा लोसेन स्कूल (Lausanne school) द्वारा किया गया। सामान्य साम्य विश्लेषण रीति एक परिवर्तनशील तत्व (single variable) का अध्ययन नहीं करती बल्कि अनेक परिवर्तनशील तत्वों (multiplicity of variable) का एक साथ अध्ययन करती है, इसका सम्बन्ध समस्त अर्थ-व्यवस्था से होता है। आंशिक साम्य विश्लेषण की भाँति इस रीति द्वारा किया गया अध्ययन सीमित तथ्यों (restricted range of data) पर आधारित नहीं होता, यह रीति बहुत अधिक विस्तृत होती है और इसके अन्तर्गत आंशिक साम्य सम्मिलित होता है।

'सामान्य साम्य विश्लेषण' अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों की पारस्परिक निर्भरता पर जोर देता है। इस सम्बन्ध में प्रो० बोल्डिंग ने एक प्याले में पड़ी हुई तीन गेंदों का उदाहरण दिया है। एक गेंद की साम्य स्थिति केवल प्याले के आकार और उस गेंद के आकार पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि अन्य दो गेंदों की स्थिति पर भी निर्भर करती है।

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, सामान्य साम्य के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था की अन्य सभी इकाइयाँ भी समय विशेष में एक ही साथ साम्य की स्थिति में हों। लेफ्टविच (Leftwitch) के अनुसार, "सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था उसी समय सामान्य साम्य की स्थिति में होगी जबकि अर्थव्यवस्था की सभी इकाइयाँ एक ही साथ अपना-अपना आंशिक साम्य प्राप्त कर लें। सामान्य साम्य की धारणा सभी आर्थिक इकाइयों तथा अर्थव्यवस्था के सभी अंगों के पारस्परिक निर्भरता पर बल देती है।"[7] इस प्रकार की सम्भावना को समझने के लिए अर्थव्यवस्था तथा उसके विभिन्न अंगों की तुलना क्रमशः मानव शरीर तथा उसके विभिन्न अंगों से की जाती है। मानव के सम्पूर्ण शरीर के साम्य अवस्था में रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसका कोई अंग असन्तुलित अवस्था में न हो अर्थात् किसी भी अंग में कष्ट न हो रहा हो। जिस प्रकार मानव के सम्पूर्ण शरीर का साम्य उसी अवस्था में सम्भव है जबकि शरीर के सभी अंगों में पृथक-पृथक साम्य हो, उसी प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के साम्य के लिए यह आवश्यक है कि सभी अलग-अलग भागों में सन्तुलित हों।

सामान्य साम्य की कठिनाई या सीमा (Difficulty or Limitation of General Equilibrium)

प्रो० लेफ्टविच द्वारा दी हुई सामान्य साम्य की परिभाषा बहुत प्रभावशाली तथा आकर्षक प्रतीत होती है। परन्तु इस प्रकार के सामान्य साम्य की स्थिति के अध्ययन का कोई स्पष्ट और निश्चित निष्कर्ष नहीं निकल सकता। ऐसी अवस्था में प्रत्येक बात दूसरी बात पर निर्भर करती है और ऐसी स्थिति के वर्णन में उतने ही समीकरण (equations) होंगे जितने कि अज्ञात तत्व (unknown variables) हैं। अतः सामान्य साम्य विश्लेषण रीति एक बहुत कठिन और जटिल रीति है।

[7] "General equilibrium for the entire economy ... exist only if all economic units were ... adjustments. The concept of general ... economic units and of all segments ..."

—Leftwitch, *The Price System and Resource Allocation*, p. 853

दिन लेकर चलें और यदि किसी वस्तु की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित साम्य मूल्य १० दि[न]
उपरान्त भंग हो जाता है तो यह प्रावैगिक साम्य होगा, यदि वह १० दिन के उपरान्त भी
रहता है तो वह स्थैतिक साम्य कहा जायेगा।

५. आंशिक या विशिष्ट तथा सामान्य साम्य (Partial or Particular and Gen[eral] Equilibria)

आंशिक या विशिष्ट साम्य का अर्थ (Meaning of partial or particular equi-
brium)—आंशिक साम्य विश्लेषण की रीति प्रारम्भ में मार्शल तथा केम्ब्रिज स्कूल (Cambri[dge]
School) द्वारा प्रतिपादित की गयी। आंशिक साम्य वह है जिसका सम्बन्ध किसी एक वि[शिष्ट]
इकाई से हो। एक व्यक्ति का साम्य, एक फर्म का साम्य, एक उद्योग का साम्य, इत्यादि आं[शिक]
साम्य के उदाहरण हैं। प्रो० स्टिगलर (Stigler) के अनुसार, "आंशिक साम्य वह है जो
सीमित आँकड़ों पर आधारित होता है; इसका एक अच्छा उदाहरण किसी एक वस्तु की की[मत]
है, जबकि विश्लेषण काल में अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें यथा स्थिर मान ली जाती हैं।"
आंशिक साम्य, जैसा कि इसका नाम बताता है, आंशिक होता है तथा समस्त अर्थव्यवस्था के स[म्पूर्ण]
चित्र की जानकारी इसके द्वारा नहीं की जा सकती है।

आंशिक या विशिष्ट साम्य की मान्यताएँ तथा सीमाएँ (Assumptions and limita-
tions of partial or particular equilibrium)—(i) आंशिक साम्य विश्लेषण रीति
अन्तर्गत विशिष्ट इकाइयों के सम्बन्ध में साम्य की दशाओं का विश्लेषण करते समय, हम अ[न्य]
बातों को यथा स्थिर मान लेते हैं। दूसरे शब्दों में, हम **स्थिर स्थिति** (stationary state)
उपस्थित मान लेते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम यह विश्वास करते हैं कि अन्य बातें
स्थिर रहती हैं और उनमें परिवर्तन नहीं होता, ऐसा हम केवल अध्ययन तथा विश्लेषण की सु[विधा]
के लिए करते हैं। उदाहरणार्थ, आंशिक साम्य विश्लेषण रीति द्वारा एक उद्योग के साम्य की दशा[ओं]
का अध्ययन करने के लिए उस उद्योग विशेष को अन्य उद्योगों से अलग करके अध्ययन कि[या]
जायेगा। यह मान लिया जाता है कि उद्योग विशेष में उत्पादन और माँग की दशाएँ अन्य उद्[योगों]
में माँग तथा पूर्ति की दशाओं से बिलकुल प्रभावित नहीं होतीं। (ii) आंशिक विश्लेषण
अर्थव्यवस्था के केवल एक अंग को प्रस्तुत करता है, समस्त अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को इ[सके]
द्वारा नहीं समझा जा सकता।

आंशिक या विशिष्ट साम्य का महत्त्व तथा प्रयोग (Importance and uses of par[tial]
or particular equilibrium)—यद्यपि आंशिक साम्य विश्लेषण सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के चित्र
उसके पूर्णरूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं करता, परन्तु आंशिक साम्य दो प्रकार की समस्या[ओं]
के अध्ययन में सहायक है: (i) कुछ आर्थिक समस्याएँ ऐसी होती हैं जो कि विशेष प्रका[र]
आर्थिक विघ्नों (disturbances) द्वारा उत्पन्न होती हैं और जिनका प्रभाव किसी विशेष उ[द्योग]
तक या अर्थव्यवस्था के किसी एक विशेष भाग तक ही सीमित रहता है, जब कि कुछ आ[र्थिक]
विघ्नों का प्रभाव समस्त अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। आंशिक साम्य विश्लेषण प्रथम प्रकार [की]
समस्याओं के अध्ययन का एक उचित साधन है। (ii) किसी भी विघ्न के प्रभाव प्रथम

---

6 "A partial equilibrium is one which is based only a restricted range of data, a st[andard]
example is the price of a single product, the prices of all other products being he[ld fixed]
during the analysis."
—Stigler, *Theory of Price*

(primary), द्वितीय स्तर (secondary), तृतीय स्तर (tertiary), इत्यादि पर अनुभव किये जाते हैं। आंशिक साम्य विश्लेषण रीति प्रथम स्तर के प्रभावों या प्रत्यक्ष प्रभावों का ही अध्ययन करती है।

सामान्य साम्य का अर्थ (Meaning of general equilibrium)—'सामान्य साम्य विश्लेषण रीति' का प्रयोग प्रारम्भ में वालरस (Walras) तथा लोसेन स्कूल (Lausanne school) द्वारा किया गया। सामान्य साम्य विश्लेषण रीति एक परिवर्तनशील तत्व (single variable) का अध्ययन नहीं करती बल्कि अनेक परिवर्तनशील तत्वों (multiplicity of variable) का एक साथ अध्ययन करती है, इसका सम्बन्ध समस्त अर्थ-व्यवस्था से होता है। आंशिक साम्य विश्लेषण की भांति इस रीति द्वारा किया गया अध्ययन सीमित तथ्यों (restricted range of data) पर आधारित नहीं होता, यह रीति बहुत अधिक विस्तृत होती है और इसके अन्तर्गत आंशिक साम्य सम्मिलित होता है।

'सामान्य साम्य विश्लेषण' अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों की पारस्परिक निर्भरता पर जोर देता है। इस सम्बन्ध में प्रो० बोल्डिंग ने एक प्याले में पड़ी हुई तीन गेंदों का उदाहरण दिया है। एक गेंद की साम्य स्थिति केवल प्याले के आकार और उस गेंद के आकार पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि अन्य दो गेंदों की स्थिति पर भी निर्भर करती है।

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, सामान्य साम्य के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था की अन्य सभी इकाइयाँ भी समय विशेष में एक ही साथ साम्य की स्थिति में हों। लेफ्टविच (Leftwitch) के अनुसार, "सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था उसी समय सामान्य साम्य की स्थिति में होगी जबकि अर्थव्यवस्था की सभी इकाइयाँ एक ही साथ अपना-अपना आंशिक साम्य प्राप्त कर लें। सामान्य साम्य की धारणा सभी आर्थिक इकाइयों तथा अर्थव्यवस्था के सभी अंगों के पारस्परिक निर्भरता पर बल देती है।"[1] इस प्रकार की सम्भावना को समझने के लिए अर्थव्यवस्था तथा उसके विभिन्न अंगों की तुलना क्रमशः मानव शरीर तथा उनके विभिन्न अंगों से की जाती है। मानव के सम्पूर्ण शरीर के साम्य अवस्था में रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसका कोई अंग असन्तुलित अवस्था में न हो अर्थात किसी भी अंग में कष्ट न हो रहा हो। जिस प्रकार मानव के सम्पूर्ण शरीर का साम्य उसी अवस्था में सम्भव है जबकि शरीर के सभी अंगों में पृथक-पृथक साम्य हो, उसी प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के साम्य के लिए यह आवश्यक है कि सभी अलग-अलग भागों में सन्तुलित हों।

सामान्य साम्य की कठिनाई या सीमा (Difficulty or Limitation of General Equilibrium)

प्रो० लेफ्टविच द्वारा दी हुई सामान्य साम्य की परिभाषा बहुत प्रभावशाली तथा आकर्षक प्रतीत होती है। परन्तु इस प्रकार के सामान्य साम्य की स्थिति के अध्ययन का कोई स्पष्ट और निश्चित निष्कर्ष नहीं निकल सकता। ऐसी अवस्था में प्रत्येक बात दूसरी बात पर निर्भर करती है और ऐसी स्थिति के वर्णन में उतने ही समीकरण (equations) होंगे जितने कि अज्ञात तत्व (unknown variables) हैं। अतः सामान्य साम्य विश्लेषण रीति एक बहुत कठिन और जटिल रीति है।

[1] "General equilibrium for the entire economy could exist only if all economic units were to achieve simultaneous particular equilibrium adjustments. The concept of general equilibrium stresses the interdependence of all economic units and of all segments of the economy on each other."

—Leftwitch, *The Price System and Resource Allocation*, p. 253

अतः प्रो० स्टिगलर का कथन है कि "सामान्य साम्य एक मिथ्या नाम (misnomer) है। कोई भी आर्थिक विश्लेषण इस अर्थ में सामान्य नहीं है कि वह सभी सम्बन्धित तथ्यों पर एक साथ विचार कर सके।............अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि सामान्य साम्य अध्ययन आंशिक साम्य अध्ययनों की अपेक्षा, अधिक विस्तृत होते हैं, परन्तु वे कभी पूर्ण नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त, विश्लेषण जितना ही अधिक सामान्य होगा उतने ही अधिक उसके निष्कर्ष अ- निश्चित होंगे।"[8]

सामान्य साम्य का महत्त्व तथा प्रयोग (Importance and Uses of General Equilibrium)

उपर्युक्त कठिनाई के होने पर भी सामान्य साम्य के कई महत्त्वपूर्ण प्रयोग हैं। प्रो० स्टिगलर (Stigler) ने सामान्य साम्य के निम्न तीन महत्त्वपूर्ण प्रयोग बताये हैं: (१) यह इस बात को स्पष्ट करता है कि अर्थव्यवस्था के एक भाग में साम्य, उसके अन्य भागों में साम्य के साथ-साथ रह सकता है। (२) यह अर्थव्यवस्था के सामान्य ढाँचे तथा कार्यकरण की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। (३) यह इस बात को मालूम करने में अत्यन्त सहायक होता है कि किसी विशिष्ट समस्या के लिए कौन से तथ्य उपयोगी (relevant) हैं, और यह अन्य उद्योगों को यथास्थिर मानकर केवल एक उद्योग पर विचार करने के अर्थ तथा सीमाओं को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

आंशिक साम्य तथा सामान्य साम्य की तुलना
(COMPARISON OF PARTIAL EQUILIBRIUM AND GENERAL EQUILIBRIUM)

दोनों रीतियाँ अर्थशास्त्रियों के लिए उपयोगी हैं, परन्तु दोनों में निम्न अन्तर पाये जाते हैं:

(१) 'आंशिक साम्य विश्लेषण रीति' अधिक व्यावहारिक है और इसकी सहायता से हम विभिन्न कीमतों पर वस्तु विशेष की माँगी जाने वाली मात्रा या पूर्ति की जाने वाली मात्रा ज्ञात कर सकते हैं।

परन्तु यह रीति अर्थव्यवस्था में विभिन्न आर्थिक तत्त्वों की पारस्परिक निर्भरता पर ध्यान नहीं देती, जबकि 'सामान्य साम्य विश्लेषण रीति' ऐसा करती है। अतः केवल आंशिक साम्य रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्षों को समस्त अर्थव्यवस्था में लागू करने से भीषण और गलत परिणाम प्राप्त होंगे। उदाहरणार्थ, एक विशेष उद्योग में मजदूरों की मजदूरी की दर को गिरा देने से अधिक मजदूरों को रोजगार दिया जा सकता है; परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं होगा कि सभी उद्योगों में मजदूरी-दर गिरा देने से अधिक मजदूरों को रोजगार प्राप्त हो जायेगा। सभी मजदूरी-दर के गिरने से लोगों की क्रय शक्ति बहुत कम कर देगी, परिणामस्वरूप वस्तुओं की माँग कम होगी और उद्योगों में अधिक मजदूरों को रोजगार नहीं मिल सकेगा बल्कि रोजगार कम [illegible] वस्तुओं की माँग कम होने पर उद्योगों में शिथिलता आ जायेगी और कुछ [illegible]

परन्तु सामान्य साम्य विश्लेषण रीति से हमें अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण चित्र का ज्ञान होता क्योंकि यह रीति अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों के पारस्परिक निर्भरता पर ध्यान देती है। इस कार इस रीति के प्रयोग से आंशिक साम्य विश्लेषण रीति की कमियों तथा गलतियों से बचा जा कता है।

निष्कर्ष—स्पष्ट है कि विश्लेषण की दोनों रीतियाँ प्रतियोगी न होकर एक दूसरे की पूरक । अर्थव्यवस्था के समस्त चित्र को जानने के लिए सामान्य साम्य विश्लेषण आवश्यक है तथा चित्र एक अंग के कार्यकरण को समझने के लिए आंशिक साम्य विश्लेषण जरूरी है।

वास्तविक तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र
[POSITIVE AND WELFARE ECONOMICS]

कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। यह पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी है और इसने आर्थिक भूमि में अपनी जड़ें जमा ली हैं। कल्याणवादी अर्थशास्त्री (Welfare Economists) अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग सामाजिक कल्याण (social welfare) को अधिकतम करने के लिए करते हैं।

संक्षिप्त ऐतिहासिक निरूपण (Brief Historical Review)

आर्थिक विश्लेषण के एक पृथक शाखा (separate branch) के रूप में कल्याणवादी अर्थशास्त्र का विकास नवीन ही है, यद्यपि प्राचीन क्लासीकल अर्थशास्त्रियों (Old classical economists) ने इसका प्रयोग वास्तविक अर्थशास्त्र (Positive Economics) के साथ मिश्रित रूप में किया था। वास्तव में, एक दृष्टि से उपयोगवादी विचारक (utilitarian thinker) बेन्थम (Bentham) कल्याणवादी अर्थशास्त्र के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। उनका प्रसिद्ध सिद्धान्त-वाक्य (dictum)—'अधिकतम संख्या को अधिकतम सुख' (The greatest happiness of the greatest number)—कल्याणवादी अर्थशास्त्री का आधार कहा जा सकता है। इसके पश्चात अंग्रेज अर्थशास्त्री होबसन (J. H. Hobson) ने अपनी पुस्तक 'Work and Wealth' (१९१४) में, उस समय की इंगलैण्ड की सोचनीय सामाजिक अवस्था से प्रभावित होकर, अर्थशास्त्र को सामाजिक सुधार का यन्त्र या साधन बनाने के लिए जोरदार शब्दों में समर्थन किया। लगभग इसी समय अमरीकन अर्थशास्त्री हेनरी क्ले (Henary Clay) ने अपनी पुस्तक 'Economics for the General Reader' (१९१६) में कल्याणवादी विचारधारा का समर्थन किया।

सन् १९२० में प्रो० पीगू की विख्यात पुस्तक 'Economics of Welfare' के प्रकाशन के साथ कल्याणवादी अर्थशास्त्र के विकास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। इस पुस्तक के प्रकाशन के

साथ ही कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अध्ययन आर्थिक विश्लेषण की एक पृथक शाखा के रूप में कि
जाने लगा। प्रो० लिटिल (I. M. D. Little) ने कहा है, "कल्याणवादी अर्थशास्त्र को प्रो०
पीगू के नाम के साथ जोड़ना अधिक उचित होगा। इससे पहले 'आनन्द अर्थशास्त्र' (Happiness
Economics) था और इससे भी पहले 'धन अर्थशास्त्र' (Wealth Economics) था।"[1]

नये क्लासिकल अर्थशास्त्रियों (New Classical Economists), मार्शल, पीगू, इत्यादि
ने कल्याण पर मनोवैज्ञानिक शब्दों (psychological terms) में विचार किया तथा उसमें वृद्धि के
लिए उपयोगिता को अधिकतम करने को बताया। उनके विरोध में प्रो० रोबिन्स (Robins) तथा
उनके अनुयायियों ने कहा कि अर्थशास्त्र का सम्बन्ध कल्याण से जोड़ना ठीक नहीं है और उनके
अनुसार, अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक अर्थशास्त्र ही मानना चाहिए। प्रो० रोबिन्स के इस विचार
का कई प्रतिष्ठित आधुनिक अर्थशास्त्रियों, जैसे, हिक्स (Hicks), कालडोर (Kaldor), साइ-
टोवोस्की (Scitovosky), लिटिल (Little), वर्गसन (Bergson), सेम्यूलसन (Samuelson)
इत्यादि ने विरोध किया तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र का जोरदार समर्थन करते हुए अपने विचार
प्रकट किये। निस्सन्देह अब कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेपण की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है।

वास्तविक अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Positive Economics)

'वास्तविक अर्थशास्त्र' या 'मूल्य अर्थशास्त्र' (Price Economics) आर्थिक सिद्धान्तों का
अध्ययन तथा विश्लेषण तटस्थ रूप (neutral way) में करता है। यह किसी आदर्श से प्रभावित
नहीं होता। यह किसी घटना का अध्ययन केवल उसके कारण तथा परिणाम के सम्बन्ध के रूप में
करता है; इसका सम्बन्ध अच्छाई या बुराई से नहीं होता। अतः यह समाज के कल्याण को अधिक-
तम करने की दशाओं (criteria) को नहीं बताता क्योंकि ऐसा करने में मूल्यांकन (value
judgement) का प्रश्न आ जाता है जो कि इसके क्षेत्र के बाहर है।

कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Welfare Economics)

कल्याणवादी अर्थशास्त्री, अर्थशास्त्र का अध्ययन तटस्थ रूप में नहीं करता। यह आर्थिक
नीतियों तथा परिवर्तनों का अध्ययन किसी विशेष उद्देश्य या आदर्श (norm) को ध्यान में रखा
करता है। यह उद्देश्य या आदर्श है—व्यक्ति तथा समाज के कल्याण को अधिकतम करना।
इसमें आर्थिक संगठन की कुशलता को अधिकतम सामाजिक कल्याण के सन्दर्भ में आँका जाता है।
यह कुछ ऐसे सिद्धान्तों तथा कसौटियों (indices) का प्रतिपादन करता है जिनके आधार पर यह
आँका जाता है कि सरकार की आर्थिक नीतियाँ उचित हैं अथवा नहीं।

कल्याणवादी अर्थशास्त्र के उद्देश्य (Objects of Welfare Economics)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं :

(१) कल्याणवादी अर्थशास्त्र समस्त समाज के 'आर्थिक कल्याण' को अधिकतम करने के
उपायों तथा साधनों का अध्ययन करता है। आर्थिक कल्याण का तात्पर्य सन्तुष्टि (satisfaction)
से है जो कि समाज के सदस्य वस्तुओं और सेवाओं के प्रयोग से प्राप्त करते हैं।

(२) यह उन दशाओं (indices) को बताता है जिनके आधार पर यह मालूम किया जा
सकता है कि व्यक्ति एक वातावरण (environment) में दूसरे वातावरण की अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट
(better-off) है अथवा असन्तुष्ट (worse-off) है या उसका आर्थिक कल्याण अपरिवर्तित रहता है।

1 "We would prefer to say that welfare economics began with Pigou. Before that was
Happiness Economics and before that, Wealth Economics."
—I. M. D. Little, *A Critique of Welfare Economics*, p.

(३) यह उन दशाओं को भी बताता है जिनके आधार पर यह मालूम किया जा सकता है क समयावधि (period) में दूसरे की अपेक्षा सम्पूर्ण समाज का आर्थिक कल्याण बढ़ गया है ा घट गया है। व्यक्ति के कल्याण की अपेक्षा सम्पूर्ण समाज का कल्याण अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(४) कल्याणवादी अर्थशास्त्र का एक उद्देश्य यह भी बताया जाता है कि यह ऐसे न्तों का निर्माण करता है जो वैज्ञानिक हैं और साथ ही साथ नैतिक निर्णयों (value gements) से मुक्त (free) हों। प्रो० रेडोमिस्लर (Prof. A. Radomysler) के अनुसार, ० पीगू अपनी पुस्तक 'Economics of Welfare' में नैतिक निर्णयों को नहीं बताते, क्योंकि वल इस बात की खोज करते हैं कि कौन से कारण आर्थिक कल्याण में वृद्धि करेंगे, और उसे छोड़ देते हैं। यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कल्याणवादी अर्थशास्त्र कल्याण के कारणों से सम्बन्धित इसका आदर्शात्मक (normative) अध्ययन नहीं है।" सरल शब्दों में, प्रो० रेडोमिस्लर edomysler) के अनुसार, कल्याणवादी अर्थशास्त्र 'आदर्शात्मक कल्याणवादी अर्थशास्त्र' ormative Welfare Economics) न होकर 'वास्तविक कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (Posi- e Welfare Economics) है जिसका उद्देश्य केवल आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने वाले रणों की खोज करना होता है और कल्याण के सम्बन्ध में कोई आदर्श उपस्थित करना नहीं ा है। इस दृष्टि से कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा वास्तविक अर्थशास्त्र बहुत निकट आ जाते हैं।

परन्तु इस विचारधारा से कई अन्य कल्याणवादी अर्थशास्त्री सहमत नहीं हैं। प्रो० लिटिल बात से सहमत नहीं है कि प्रो० पीगू ने केवल आर्थिक कल्याण के कारणों का अध्ययन किया है, के अनुसार, कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध नैतिक निर्णयों (value judgements) से होना वश्यक है।

वास्तविक अर्थशास्त्र तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र की तुलना
(COMPARISON OF POSITIVE ECONOMICS AND WELFARE ECONOMICS)

(१) वास्तविक अर्थशास्त्र 'आर्थिक सिद्धान्तों' का विश्लेषण करता है—यह केवल कारण ा परिणाम के वास्तविक सम्बन्ध का अध्ययन करता है, इसका औचित्य या अनौचित्य से कोई म्बन्ध नहीं होता। इसलिए यह अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति के लिए कोई दशाएँ या सौटियाँ (criteria) प्रस्तुत नहीं करता।

कल्याणवादी अर्थशास्त्र 'आर्थिक नीतियों' का विश्लेषण करता है; यह किसी घटना या ीति की वांछनीयता तथा अवांछनीयता पर प्रकाश डालता है। यह व्यक्ति तथा समाज के दृष्टि- ोण से अधिकतम कल्याण प्राप्त करने के लिए दशाएँ या कसौटियाँ प्रस्तुत करता है।

(२) वास्तविक अर्थशास्त्र या तो व्यापक आर्थिक विश्लेषण (macro economic analysis) ा सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण *(micro economic analysis) का प्रयोग कर सकता है, अर्थात् यह* ा तो एक इकाई का अध्ययन कर सकता है या सम्पूर्ण अर्थशास्त्र का।

कल्याणवादी अर्थशास्त्र में भी एक व्यक्ति के कल्याण में परिवर्तनों का अध्ययन किया जा कता है, परन्तु इसके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण बात समस्त समाज के कल्याण का अध्ययन या उसमें रिवर्तनों का अध्ययन है। दूसरे शब्दों में, कल्याणवादी अर्थशास्त्र के लिए व्यापक आर्थिक विश्लेषण macro economic analysis) सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण (micro economic analysis) की पेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(३) वास्तविक तथा कल्याणवादी अर्थशास्त्र दोनों के दृष्टिकोणों (method of appraoch) में भी अन्तर है—जैसा कि ग्राफ (J. de. V. Graff) ने बताया है कि वास्तविक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त की जाँच हम सामान्यतया उसके आधार पर निकाले गये निष्कर्षों की जाँच करके

कर सकते हैं, जबकि कल्याणवादी कथन (proposition) की जाँच हम सामान्यतया उसकी मा
ताओं की जाँच करके करते हैं। दृष्टिकोण के इस महत्त्वपूर्ण अन्तर को भुला नहीं देना चाहिए
उदाहरणार्थ, यदि हम लोकतन्त्र की मान्यताओं को लेकर चलते हैं तो आर्थिक कल्याण को अधि
तम करने के निष्कर्ष अपेक्षाकृत भिन्न होंगे यदि हम साम्यवाद की मान्यताओं को लेकर चलें।
कल्याणवादी कथनों (proposition) की जाँच हम उसकी मान्यताओं की जाँच करके कर सकते हैं।

प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(OLD WELFARE ECONOMICS)

प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अर्थ तथा उसकी व्याख्या

प्राचीन क्लासीकल अर्थशास्त्री धन तथा कल्याण में सीधा सम्बन्ध स्थापित करते थे। **उनके मतानुसार जितना अधिक धन का उत्पादन होगा उतना ही अधिक** कल्याण प्राप्त होगा। अतः उन्होंने इस बात पर ध्यान केन्द्रित किया कि साधनों का संगठन तथा उनका विभिन्न प्र में वितरण इस प्रकार किया जाये कि भौतिक वस्तुओं का प्रतिवर्ष अधिकतम उत्पादन हो। प्राप्त करने के लिए वे अधिकतम आर्थिक स्वतन्त्रता को साधन मानते थे। **एडम स्मिथ** के अनु वार्षिक उत्पादन को अधिकतम करने के लिए श्रम-विभाजन तथा अहस्तक्षेप-नीति (*Laissez-faire* policy) आवश्यक थी। इसी प्रकार **रिकार्डो** ने शुद्ध आय, जो कि लगानों और लाभों को सम्मि लित करती है, को अधिकतम करने पर जोर दिया।

नये क्लासीकल अर्थशास्त्रियों (Neo Classical Economists), **विशेषतया मार्शल** और **पीगू, ने कल्याण का अर्थ मनोवैज्ञानिक तत्त्व** (psychological thing) 'अधिकतम सन्तोष' **लगाया।** मार्शल के अनुसार, उपभोक्ताओं और उत्पादकों की बचत (surplus) में वृद्धि कर आर्थिक कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। यदि प्रत्येक वस्तु से प्राप्त बचत को जोड़ा जाये तो कुल बचत प्राप्त हो जायेगी, यदि कुल बचत अधिकतम है तो आर्थिक कल्याण अधिकतम होगा। पीगू के अनुसार, सामाजिक आर्थिक कल्याण (Social Economic Welfare) व्यक्तियों को मिलने वाली सन्तुष्टि की मात्राओं (Quantities of satisfaction) को जोड़ने से प्राप्त हो सकता है। आर्थिक कल्याण का अर्थ सन्तुष्टि की उन मात्राओं से है जिनको मुद्रा रूपी पैमाने से मापा जा सकता है।

प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र की मान्यताएँ (Assumptions of Old Welfare Economics)

मार्शल तथा पीगू द्वारा निर्मित 'प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' निम्न मान्यताओं पर आधारित है :

---

2 "...the normal way of testing a theory in positive economics is to test its conclusions; the normal way of testing a welfare proposition is to test its assumptions. The significance of this should not be overlooked." --Graff, *Theorical Welfare Economics*.
ग्राफ (Graff) आगे इस प्रकार व्याख्या करते हैं : वास्तविक अर्थशास्त्र में हम अपनी मान्यताओं को जितना चाहें सरल बना सकते हैं क्योंकि उनके औचित्य की जाँच उस समय की जा सकती है, जबकि हम उनके आधार पर निष्कर्षों को वास्तविक जगत में लागू करें। परन्तु कल्याणवादी अर्थशास्त्र में ऐसा नहीं कर सकते हैं। इसमें हमें मान्यताओं की सूक्ष्म परीक्षा अत्यन्त सावधानी पूर्वक और विस्तार के साथ करनी पड़ी है। इसमें हम मान्यताओं को सरल नहीं कर सकते और न ऐसी आशा कर सकते हैं कि दो गलत मान्यताएँ किसी प्रकार एक दूसरे को काटकर सत्य निष्कर्ष प्रस्तुत कर सकती हैं। वास्तविक अर्थशास्त्र में इस प्रकार की प्रक्रिया की जाती है और इसकी आवश्यकता होती है।

(१) उपयोगिता को मुद्रा रूपी पैमाने से मापा जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि किसी वस्तु से प्राप्त कुल उपयोगिता को ज्ञात किया जा सकता है यदि वस्तु की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं को जोड़ दिया जाये।

(२) दूसरी मान्यता यह है कि किसी वस्तु के प्रयोग से व्यक्ति विशेष को मिलने वाली उपयोगिता पर अन्य व्यक्तियों के पास इस वस्तु की उपलब्ध मात्रा या अन्य वस्तुओं की मात्रा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(३) उपयोगिता की अन्तर्व्यक्तीय तुलना (Inter-personal comparison of utility) की जा सकती है; अर्थात विभिन्न व्यक्तियों को वस्तु विशेष से प्राप्त उपयोगिताओं की तुलना की जा सकती है। इसके अर्थ (implications) ये हैं—(अ) आय में वृद्धि के साथ आय की सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है या आय में कमी के साथ आय की सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाती है। अतः निर्धन मनुष्य के लिए एक रुपये की सीमान्त उपयोगिता धनवान मनुष्य की अपेक्षा अधिक होती है। (ब) प्रत्येक व्यक्ति की एक निश्चित आय द्वारा उपयोगिता प्राप्त करने की योग्यता (capacity) समान होती है। (स) धनवान मनुष्यों की आय में से कुछ भाग निर्धनों को हस्तान्तरित करके कुल उपयोगिता या कुल सन्तोष को बढ़ाया जा सकता है।

(४) द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता (marginal utility of money) समान रहती है। इसका अर्थ यह है कि किसी वस्तु की इकाइयों को खरीदते समय उपभोक्ता के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर यह ज्ञात करना कठिन है कि व्यक्ति या सरकार की क्रियाओं द्वारा सामाजिक कल्याण में कमी होगी या वृद्धि। मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था में कोई भी परिवर्तन जो कि धनवान व्यक्तियों की आयों में से कुछ भाग निर्धनों को हस्तान्तरित करता है ताकि आय के वितरण में अधिक समानता हो जाये तो सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी, इसकी विपरीत स्थिति में आर्थिक कल्याण में ह्रास होगा।

'प्राचीन कल्याण अर्थशास्त्र' की आलोचना (Criticism of Old Welfare Economics)

मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं :

(१) आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, प्रमुख आलोचना यह है कि उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता। अतः सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता में परिवर्तनों को भी मालूम नहीं किया जा सकता और इसलिए व्यक्तिगत या सामाजिक कल्याण में वृद्धि या कमी को ज्ञात नहीं कर सकते।

(२) इसके अन्तर्गत आर्थिक कल्याण को बढ़ाने के लिए धन के वितरण पर बहुत अधिक ध्यान दिया है और इस बात पर उचित ध्यान नहीं दिया कि समान वितरण पर अत्यधिक जोर देने के परिणामस्वरूप 'उत्पादन की इच्छा' (will to produce) पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। वास्तव में, उत्पादन की कुशलता तथा धन का समान वितरण (efficiency and equality) दोनों ही आर्थिक कल्याण के लिए आवश्यक हैं परन्तु इन अर्थशास्त्रियों ने समान वितरण पर जोर दिया।

नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र
(NEW WELFARE ECONOMICS)

उपयोगिता को मापने की कठिनाई को दूर करने तथा 'प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' के ऊपर सुधार करने की दृष्टि से वर्तमान शताब्दी के तृतीय दशक (decade) के निकट कल्याणवादी अर्थशास्त्र की दो और विचारधाराओं (Schools) का उदय हुआ। प्रथम विचारधारा का नाम

'नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (New Welfare Economics) है, और, दूसरी को 'सामाजिक कल्याण फलन' (Social Welfare Function) के नाम से पुकारा जाता है। पहले हम 'नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' का अध्ययन करेंगे।

नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अर्थ तथा उसकी व्याख्या

'नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (New Welfare Economics) के प्रतिपादक हिक्स (Hicks), कालडोर (Kaldor) इत्यादि अर्थशास्त्री हैं, यद्यपि मूलरूप में इसके जन्मदाता पेरिटो (Pareto) माने जाते हैं। **प्रो० लिटिल (Little)** के शब्दों में, "नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र इस दृष्टि से नया है कि यह विभिन्न व्यक्तियों की उपयोगिताओं को जोड़े बिना उत्पादन और विनिमय की अनुकूलतम दशाओं (Optimum conditions) को निर्धारित करने का दावा करता है। इस दृष्टि से इसने अर्थशास्त्र की उपयोगितावादी परम्परा से नाता तोड़ लिया है।"[3]

'नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' ने उपयोगिता के मापने की कठिनाई को दूर करने के लिए उदासीनता वक्र विश्लेषण (Indifference curve technique)[4] का प्रयोग किया है। उदासीनता वक्र विश्लेषण के अनुसार उपयोगिता को मापने की जरूरत नहीं है। इस रीति के द्वारा यह जाना जा सकता है कि एक व्यक्ति एक प्रकार के वस्तुसंयोग (one-combination of commodities) को दूसरे की अपेक्षा अधिक पसन्द करता है, या कम अथवा दोनों के बीच तटस्थ या उदासीन है। (इसके द्वारा यह नहीं बताया जा सकता है कि एक वस्तु-संयोग को दूसरे की अपेक्षा कितना अधिक या कितना कम पसन्द किया जाता है क्योंकि इसके लिए उपयोगिता को मापना होगा। यह रीति तो केवल यह बताती है कि व्यक्ति विशेष एक संयोग को दूसरे से अधिक पसन्द करेगा या कम। यह उदासीनता वक्र विश्लेषण का आधार है।) ऊँची उदासीनता रेखाएँ नीची रेखाओं की अपेक्षा अधिक सन्तुष्टि को बताती हैं। अतः कल्याण में वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति ऊँची उदासीनता वक्र रेखा पर पहुँच जाये।

पेरिटो ने यह मान लिया कि कुछ लोगों का कल्याण, बिना अन्य लोगों के कल्याण में कमी किए हुए, बढ़ाया जा सकता है। परन्तु इस मान्यता ने वास्तविक स्थिति को ध्यान में नहीं रखा जिसमें कि कुछ लोगों के कल्याण में वृद्धि होने के साथ कुछ अन्य लोगों के कल्याण में कमी हो सकती है। ऐसी स्थिति में कुल कल्याण में वृद्धि हुई या कमी, इसको कैसे जाना जाये?

इस कठिनाई को प्रो० हिक्स, ने अपने विख्यात **'हानिपूरक सिद्धान्त'** (Compensation Principle) को प्रस्तुत करके दूर किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, अर्थव्यवस्था के पुर्नसंगठन या उसमें परिवर्तन के द्वारा आर्थिक कल्याण में वृद्धि की जा सकती है यदि जिनको परिवर्तन से लाभ हुआ है वे हानि होने वालों की हानि-पूर्ति (Compensation) करदें और फिर भी उनके पास प्राप्त लाभ में से कुछ बच रहे। दूसरे शब्दों में, पुर्नसंगठन या परिवर्तन का होना तभी ठीक होगा जबकि लाभ प्राप्त करने वाले लोगों पर कर लगाकर हानि उठाने वाले लोगों की हानि-पूर्ति कर दी जाये। "परन्तु यहाँ पर यह बात विशेषरूप से ध्यान रखने की है कि कर द्वारा आर्थिक सहायता का उद्देश्य न्यायपूर्ण वितरण से नहीं है जैसा कि प्रारम्भिक अर्थशास्त्री धनवानों से साधनों का निर्धनों को हस्तान्तरण करने में समझते थे। यहाँ पर कर द्वारा आर्थिक-सहायता के सिद्धान्त

---

3 "The New Welfare Economics is new that it claims to have established the optimum conditions of production and exchange without adding the 'utilities' of different persons. In this respect it has broken with the utilitarian in economics."
—I. M. D. Little, *A Critique of Welfare Economics*, p. [illegible]

4 उदासीनता या तटस्थता वक्र विश्लेषण के पूरे विवरण के लिए अध्याय १८ देखिए।

(-bounty principle) का प्रयोग एक वैज्ञानिक यन्त्र (a scientific tool) के रूप में यह म करने के लिए किया जाता है कि कल्याण में वृद्धि हुई है अथवा नहीं, इसका प्रयोग समाज विभिन्न अंगों में न्याय प्राप्त करने की दृष्टि से एक नैतिक साधन (ethical device) के रूप में किया जाता।"[5]

कल्याणवादी अर्थशास्त्र की आलोचना (Criticism of New Welfare Economics)

कालडोर-हिक्स (Kaldor-Hicks) द्वारा प्रतिपादित नये कल्याणवादी अर्थशास्त्र की मुख्य लोचनाएँ निम्न हैं।

(१) हिक्स-कालडोर ने आर्थिक कल्याण को केवल कुशलता (efficiency) के दृष्टिकोण से देखा और न्यायपूर्ण वितरण के प्रश्न को किसी और के लिए (शायद राजनीतिज्ञों के लिए) छोड़ा। इसके विपरीत नये क्लासीकल अर्थशास्त्रियों ने कल्याण के लिए केवल न्यायपूर्ण वितरण ही अधिक जोर दिया। इस प्रकार नये क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के विचार एक सिरे (extreme) है और हिक्स-कालडोर के विचार दूसरे सिरे (extreme) के हैं।

(२) केवल कुशलता (efficiency) के दृष्टिकोण से आर्थिक कल्याण में वृद्धि या कमी को इस प्रकार से मालूम नहीं किया जा सकता। परिवर्तन के बाद की स्थिति की परिवर्तन से पहले की स्थिति के साथ तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि प्रत्येक परिवर्तन के साथ आय में कुछ पुनर्वितरण भी हो जाता है जो कि आर्थिक कल्याण को प्रभावित कर देता है। अतः प्रो० लिटिल (Little) का कथन है कि "स्वतन्त्र उद्योग (Free enterprise) पर आधारित अर्थव्यवस्था में कुशलता-प्रभावों (efficiency effects) को आय-वितरण प्रभावों (income-distribution effects) से अलग नहीं किया जा सकता और इसलिए हानि-पूर्ति सिद्धान्त ठीक नहीं उतरता।"[6]

सामाजिक कल्याण फलन

(THE SOCIAL WELFARE FUNCTION OR THE SOCIAL WELFARE SCHOOL)

सामाजिक कल्याण फलन' का अर्थ तथा उसकी व्याख्या

'नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' की मुख्य आलोचना यह की गयी है कि इसने आय के वितरण के प्रभावों पर ध्यान नहीं दिया। परन्तु यदि धन के वितरण पर ध्यान दिया जाता है तो मूल्य निर्णय (value judgement) का प्रश्न आ जाता है। एक विशेष प्रकार का धन का पुनः वितरण कैसा है इस सम्बन्ध में लोगों में मतभेद हो सकता है; कुछ के अनुसार वह अच्छा हो सकता है जबकि कुछ के अनुसार वह बुरा हो सकता है। इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से एक नया सिद्धान्त—'सामाजिक कल्याण फलन' (Social Welfare Function) प्रस्तुत किया गया है।

'सामाजिक कल्याण फलन' के प्रवर्तक (founder) बर्गसन (Bergson), सेम्युलसन (Samuelson) इत्यादि अर्थशास्त्री हैं। यह विचारधारा कल्याण के अध्ययन में कुशलता (efficiency) तथा आय के वितरण (equity) दोनों पर ध्यान देती है जबकि 'नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' ने केवल कुशलता पर ही ध्यान दिया था। "इस विचारधारा (School) के अनुसार,

"सामाजिक कल्याण या तो समाज के प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण पर या समाज के प्रत्येक व्यक्ति उपभोग की गयी वस्तुओं की मात्राओं तथा उनके द्वारा की गयी सेवाओं पर निर्भर करता है।[7]

बर्गसन (Bergson) के अनुसार, "यह आवश्यक नहीं है कि कल्याण तभी अधिक जबकि प्रत्येक व्यक्ति पहले से अधिक सन्तुष्ट हो अथवा जबकि कुछ व्यक्ति, अन्य व्यक्तियों अपेक्षा कम सन्तुष्ट हुए बिना अधिक सन्तुष्ट हों; अन्य बातों को भी ध्यान में रखना होगा। दूसरे शब्दों में, आय वितरण के ढंग, विभिन्न व्यक्तियों के कल्याण की पारस्परिक निर्भरता, उपभोक्ताओं की प्रभुता (sovereignty) इत्यादि कल्याण को प्रभावित करने वाली सभी बातों ध्यान में रखना चाहिए।

बर्गसन, सैम्युलसन, इत्यादि अर्थशास्त्री उपयोगिता की मापनीयता (measurability utility) और अन्तरव्यक्तीय तुलना (inter-personal comparability) में विश्वास नहीं रखते यद्यपि वे कल्याणवादी अर्थशास्त्र के लिए नैतिक निर्णयों का होना जरूरी समझते हैं परन्तु उनके अनुसार, इन नैतिक निर्णयों को निश्चित करना स्वयं अर्थशास्त्रियों का कार्य नहीं बल्कि सरकार राजनीतिज्ञों अथवा समाज के अन्य जिम्मेदार संस्थाओं का है जिनसे अर्थशास्त्री नैतिक निर्णय ले सकता है।

सामाजिक कल्याण फलन (Social Welfare Function) की आलोचना

मुख्य अलोचनाएँ निम्न हैं :

(i) यह कहा जाता है कि 'सामाजिक कल्याण फलन' के अन्तर्गत प्रत्येक मनुष्य को समान भार (equal weight) तथा प्रत्येक मनुष्य के मत को समान महत्त्व दिया जाता है। यह स्वयं एक नैतिक विचार हो जाती है और वैज्ञानिक विश्लेषण की द्योतक नहीं है। यदि विभिन्न व्यक्तियों के अधिमानों के क्रम (Scale of preferences) को विभिन्न भार दिये भी जाएं तो यह आपत्ति उठायी जा सकती है कि ऐसा करने में हम अपने मूल्यांकनों या मापदण्डों (scales) दूसरों पर थोप रहे हैं। (ii) "सामाजिक कल्याण फलन तो समस्या के कथन का एक गणितीय रूप (mathematical form) है, वह समस्या का हल नहीं है।"

निष्कर्ष—कल्याणवादी अर्थशास्त्र अभी भी एक असन्तोपजनक स्थिति में है। 'पुराने कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (Old Welfare Economics) उपयोगिता की मापनीयता पर आधारित है। इसके अन्तर्गत धन के वितरण का आर्थिक कल्याण पर प्रभाव मालूम करने के लिए अर्थशास्त्रियों को नैतिक निर्णय (Value judgment) देने के लिए अधिकृत किया गया। 'नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (New Welfare Economics) के अन्तर्गत उपयोगिता के मापने की कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से हिक्स-कालडोर ने उदासीनता वक्र विश्लेषण का प्रयोग किया। नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था की कुशलता पर ही ध्यान दिया गया तथा धन के न्यायपूर्ण वितरण की समस्या को छोड़ दिया गया। 'सामाजिक कल्याण फलन' (Social Welfare Function) के अन्तर्गत कुशलता तथा धन के वितरण दोनों पर ध्यान दिया गया परन्तु नैतिक निर्णयों (Value judgements) का कार्य अर्थशास्त्री का न होकर सरकार, राजनीतिज्ञ या अन्य जिम्मेदार संस्था का बताया गया। इन सब प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भी कल्याणवादी अर्थशास्त्र की स्थिति सन्तोपजनक नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि अर्थशास्त्र में मनुष्य

7 "This school regards social welfare as a function either of welfare of each member of community or of quantities of products consumed and services rendered by each member of the community."

...क कल्याण का अध्ययन किया जाता है और मनुष्य अपने कार्यों में केवल तर्क (logic) से ही ...वित नहीं होता बल्कि अन्य प्रेरणाओं से भी प्रभावित होता है।

कल्याणवादी अर्थशास्त्र का मूल्यांकन—उसकी मान्यताएँ तथा सीमाएँ
(EVALUATION OF WELFARE ECONOMICS—ITS ASSUMPTIONS AND LIMITATIONS)

कल्याणवादी अर्थशास्त्र का मूल्यांकन निम्न विवरण से स्पष्ट है :

(१) नये क्लासीकल अर्थशास्त्रियों (मार्शल, पीगू, इत्यादि) की कल्याणवादी विचारधारा ...त पर आधारित है कि उपयोगिता को मापा जा सकता है और उपयोगिता की अन्तर्व्यक्तीय (inter-personal comparison of utility) सम्भव है। इन अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक ...न के सन्दर्भ में धन के उचित वितरण पर बहुत जोर दिया। अन्य अर्थशास्त्रियों ने आलोचना ... उपयोगिता तो एक मनोवैज्ञानिक विचार है और उनको ठीक प्रकार से मापना सम्भव ...।

(२) उपयोगिता के मापने की कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से हिक्स तथा अन्य अर्थ-...स्त्रों ने तटस्थता वक्र विश्लेषण (Indifference curve analysis) का आविष्कार किया और ... आधार पर 'नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' (New Welfare Economics) को जन्म दिया।

परन्तु इनकी विचारधारा भी सन्तोषजनक नहीं रही क्योंकि (i) इन्होंने कल्याण की वृद्धि ...ए केवल अर्थव्यवस्था की कुशलता (efficiency) पर ही ध्यान दिया और उचित वितरण ...ity) की समस्या पर कोई ध्यान नहीं दिया। (ii) तटस्थता वक्र रेखाओं द्वारा बतायी जाने ... व्यक्तिगत अधिमानों (preferences) की रूपरेखा बहुत ही काल्पनिक मान्यताओं पर आधा-...है; जैसे, यह मान लेना कि उपभोक्ताओं के अधिमान (preferences) मूल्य तथा अन्य परि-... द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं।

(३) 'नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र' के दोषों को दूर करने की दृष्टि से 'सामाजिक कल्याण ...' (Social Welfare Function) को बर्गसन, सेम्युलसन इत्यादि ने प्रतिपादित किया और ...ने कल्याण के दृष्टिकोण से अर्थव्यवस्था की कुशलता (efficiency) तथा उचित वितरण ...uity) दोनों पर ध्यान दिया।

इनकी विचारधारा भी पूर्णतया ठीक नहीं मानी जाती क्योंकि इनके अनुसार, अर्थशास्त्रियों ...स्वयं नैतिक निर्णय नहीं लेने चाहिए बल्कि सरकार या राजनीतिज्ञों द्वारा दिये गये नैतिक ...यों को मान कर चलना चाहिए। रोबिन्स का वास्तविक अर्थशास्त्र भी यही कहता है कि ...क निर्णय का कार्य अर्थशास्त्रियों का नहीं है, यह तो अन्य लोगों पर छोड़ देना चाहिए। इस ... से 'सामाजिक कल्याण फलन' (Social Welfare Function) तथा वास्तविक अर्थशास्त्र ...sitive Economics) मिलते-जुलते हैं।

(४) रोबिन्स तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों का कहना है कि चूँकि कल्याणवादी अर्थशास्त्र ... सम्बन्ध नैतिकता से होता है, इसलिए उसे नीतिशास्त्र की एक शाखा माननी चाहिए और अर्थ-...त में इसका कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

इस सम्बन्ध में कुछ कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों, जैसे रेडोमिस्लर (Radomysler) का ...ना है कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र तो केवल कल्याण में वृद्धि के कारणों (causes of welfare) ... अध्ययन करता है; इसलिए इसका सम्बन्ध नैतिकता से नहीं होता क्योंकि यह क्या होना ...हिए ? का अध्ययन नहीं करता बल्कि केवल 'कल्याण के कारणों' पर प्रकाश डालता है और ... प्रकार से यह एक वास्तविक विज्ञान का अध्ययन है। यदि रेडोमिस्लर के इस दृष्टिकोण को

माना जाये तो 'कल्याणवादी अर्थशास्त्र', 'वास्तविक अर्थशास्त्र' के वहुत निकट आ जाता है। अन्य कल्याणवादी अर्थशास्त्री (जैसे प्रो० लिटिल) रेडोमिस्लर के इस विचार से सहमत नहीं। उनका कहना है कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध नैतिकता से होना आवश्यक है।

निष्कर्ष—यद्यपि कल्याणवादी अर्थशास्त्र का कभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है परन्तु भी यह अर्थशास्त्र के अध्ययन का एक मुख्य भाग है। मार्शल का कथन ठीक है कि 'अर्थशास्त्र और बेकार होगा यदि यह आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने वाले कारणों का अध्ययन नहीं करता है
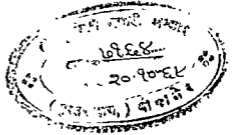
द्वितीय भाग

उपभोग
[CONSUMPTION]

उपभोक्ता की प्रभुता
[CONSUMER'S SOVEREIGNTY]

प्राक्कथन (Introductory)

सभी आवश्यकताओं का अन्तिम उद्देश्य वस्तुओं का उपभोग है ताकि आवश्यकताओं की [illegible]र हो सके। इसलिए हम आर्थिक गतिविधि (economic process) में उपभोक्ता के स्थान [illegible] महत्व की उपेक्षा नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता अपने क्रय करने या न करने [illegible] उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं की किस्म तथा मात्रा निर्धारित करता है।

उपभोक्ता की प्रभुता का अर्थ (Meaning of Consumer's Sovereignty)

[illegible] Sovereign) के समान माना [illegible] कार को निर्धारित करते हैं। [illegible] पसन्द की जाती हैं, चाहे वे [illegible] हों या बुरी। उत्पादक, उप-[illegible] [illegible]ताओं की रुचि तथा पसन्द की उपेक्षा नहीं कर सकते, यदि वे ऐसा करते हैं तो उनकी वस्तुओं [illegible] विक्रय नहीं होगा और उन्हें हानि उठानी पड़ेगी। उत्पादक तथा साहसी, उपभोक्ता के नौकरों [illegible] भाँति होते हैं; उन्हें उपभोक्ता के पसन्द या रुचि रूपी आदेशों तथा संकेतों को मानना पड़ता [illegible]। अतः यह कहा जाता है कि उपभोक्ता सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का सम्राट या शासक होता है।

स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की प्रभुता का महत्व (Significance of Consumer's Sovereignty in Free Enterprise Economy)

प्राचीन समय में, उपभोक्ता की शक्ति तथा सत्ता बहुत दृढ़ थी। वह अधिकांश वस्तुओं को [illegible] आदेश (order) देकर प्राप्त करता था। उदाहरणार्थ, वह जूता, कपड़ा, इत्यादि मोची तथा [illegible]हे को आदेश देकर प्राप्त कर लेता था। यद्यपि आधुनिक काल में उत्पादक अधिकांश वस्तुओं [illegible] उत्पादन भविष्य की माँग का अनुमान लगाकर करते हैं, परन्तु वे भविष्य की माँग का अनुमान उपभोक्ताओं की रुचि, पसन्द इत्यादि को ध्यान में रखकर ही लगाते हैं। यदि उत्पादकों के [illegible]मान ठीक निकलते हैं तो उन्हें अधिक लाभ होता है, यदि वे गलत सिद्ध होते हैं तो वे अपने [illegible]ादन की योजना को बदल देते हैं ताकि वह उपभोक्ताओं की इच्छा तथा रुचि के अनुरूप हो [illegible]। अतः पूँजीवादी व्यवस्था, जिसकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रतियोगिता है, के अन्तर्गत अर्थव्य-[illegible]ा को नियन्त्रित करने वाली शक्ति उपभोक्ता की रुचि, क्रय-शक्ति, तथा व्यय करने का ढंग है।

कीकोफर (Kickhofer), उपभोक्ता की तुलना एक मतदाता (voter) से करते हैं। जिस [illegible]र कि लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनता वोट देकर शासन को नियन्त्रित करती है उसी प्रकार [illegible]र्थिक चुनाव (economic election) में उपभोक्ता अपने रुपयों के व्यय करने के ढंग से,

अर्थात रुपयों-रूपी-वोटों (Rupee-votes) से, उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा
प्रकार पर नियन्त्रण रखता है। यदि आर्थिक वोट देने वाले (अर्थात उपभोक्ता) अपने
आवश्यक, अच्छी तथा सुन्दर वस्तुओं के स्थान पर विलासिता की वस्तुओं, खराब या
वस्तुओं पर व्यय करते हैं तो उत्पादक ऐसी ही वस्तुओं का उत्पादन करेंगे। अतः उपभोक्ता
चुनाव (choice), चाहे वह समझदारी का हो या मूर्खतापूर्ण, समस्त औद्योगिक प्रणाली
नियन्त्रित करता है।

४. उपभोक्ता की प्रभुता की सीमाएँ (Limitations of Consumer's Sovereignty)

उपर्युक्त विवरण से यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि उपभोक्ता एक निरंकुश
(absolute monarch) होता है। आधुनिक युग में परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं और उपभोक्ता
की प्रभुता या सत्ता कई बातों से सीमित हो जाती है। उपभोक्ता निरंकुश सम्राट न होकर
वैधानिक सम्राट या सीमित सम्राट (Constitutional or Limited Monarch) रह जाता है।
उपभोक्ता की प्रभुता की मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

(i) **आय की मात्रा** (Size of income)—किसी उपभोक्ता का यह निर्णय किसी
को, तथा कितनी मात्रा में, खरीदा जाये उसकी आय की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि
में अधिकांश उपभोक्ताओं की आयें सीमित तथा कम हैं तो उपभोक्ता की सत्ता या प्रभुता का
वस्तुओं की उत्पादन की मात्रा तथा प्रकार निर्धारण करने में कम पड़ेगा। अतः आय
सीमितता उपभोक्ता की प्रभुता को सीमित करती है।

(ii) **आदतें तथा सामाजिक रीति-रिवाज** (Habits and social customs)—
उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं, (जैसे, खाने की वस्तुएँ, कपड़ा, मकान सजाने की वस्तुएँ इत्यादि)
प्रयोग में आदतों तथा सामाजिक रीति-रिवाजों से प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता
की विभिन्न वस्तुओं के बीच चुनाव करने की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। आदतें तथा सामा-
जिक रीति-रिवाज उपभोक्ता की प्रभुता को बहुत सीमित कर देते हैं।

(iii) **टेक्नीकल ज्ञान तथा वर्तमान में वस्तुओं की प्राप्यता** (Technical knowledge
and the availability of goods)—उपभोक्ता कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं की इच्छा
सकते हैं परन्तु उनकी इच्छा के अनुसार, उन वस्तुओं का उत्पादन उत्पादकों द्वारा नहीं
सकता है; क्योंकि उस प्रकार की वस्तुओं को बनाने के लिए विशेष प्रकार के टेक्नीकल ज्ञान
आवश्यकता हो सकती है जिसकी खोज वैज्ञानिकों द्वारा अभी तक न की जा सकी हो। उदाहरण
यदि हम शोर-रहित कार या ट्रेन में बैठना चाहें तो यह असम्भव है क्योंकि अभी तक इस प्र
की कार या ट्रेन बनाने के लिए टेक्नीकल ज्ञान का विकास नहीं हो पाया है। अतः टेक्नीकल
की स्थिति के अनुसार, उपभोक्ता की सत्ता सीमित हो जाती है और उसे बाजार में प्राप्य
का ही प्रयोग करना पड़ता है।

(iv) **वातावरण तथा अत्यधिक उपभोग** (Environment and conspicuous consumption)—धनी उपभोक्ता अपने धन को 'अत्यधिक उपभोग' (Conspicuous Consumption)
पर व्यय करते हैं अर्थात् वे ऐसी वस्तुओं पर धन को व्यय करते हैं जिनके द्वारा वे धन का
[illegible] दिखावा कर सकें। समाज के धनी उपभोक्ता एक-दूसरे के देखा-देखी वस्तुओं का
है और अपने-अपने धन के दिखावे में होड़ लगाते हैं। चतुर उत्पादक (alert producers)
[illegible] की इस 'दिखावे की इच्छा' का लाभ उठाते हैं और उनके द्वारा प्रयोग की
वस्तुओं की कीमतें ऊँची कर देते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ऊँची कीमतें धनी वर्ग में

तोग बढ़ा देगी। इस प्रकार उपभोक्ता समाज में प्रचलित परिस्थितियों तथा वातावरण से प्रभावित होकर बहुत-सी वस्तुओं का प्रयोग करने लगते हैं और इस कारण उपभोक्ता के चुनाव की स्वतन्त्रता नहीं रह जाती, उसकी सत्ता सीमित हो जाती है।

(v) अज्ञानता या जानकारी की कमी (Ignorance or lack of knowledge)—बाजार में प्राप्य विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता को उचित ज्ञान या जानकारी नहीं होती, अतः उपभोक्ता के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बीच विवेकपूर्ण चुनाव (rational choice) करना कठिन हो जाता है। उपभोक्ता के पास इतना समय तथा योग्यता नहीं होती कि वह दो लगभग एक-सी तथा समान कीमत वाली वस्तुओं के बीच यह निर्णय कर सके कि कौन-सी वस्तु अच्छी किस्म की है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता वस्तु के गुण को आंकने में कीमत का सहारा लेता है। "जानकारी की कमी के कारण आर्थिक गतिविधि (economic process) एक प्रकार से उल्टा हो जाती है। वस्तु का गुण कीमत को नियन्त्रित करने के स्थान पर, वस्तु की कीमत उसके गुण को आंकने का आधार बन जाती है अर्थात् कीमत उपभोक्ता के मस्तिष्क में वस्तु की उपयोगिता को निर्धारित करती है।"[1] स्पष्ट है, अज्ञानता या जानकारी की कमी उपभोक्ता की सत्ता को सीमित कर देती है।

(vi) एकाधिकार का प्रभाव (Effect of monopoly)—किसी वस्तु के उत्पादन में एक उत्पादक हो सकता है या प्रायः कुछ बड़े उत्पादक मिलकर एकाधिकार की स्थिति बना लेते हैं। ऐसी स्थिति में वस्तु-विशेष की अधिकांश पूर्ति एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती है और एकाधिकारी जिन वस्तुओं का उत्पादन करेगा तथा जिन कीमतों में उन्हें बेचना चाहेगा, बेच सकेगा। अतः एकाधिकारी उपभोक्ता के स्वतन्त्र चुनाव तथा उसकी सत्ता को सीमित कर देता है।

(vii) फैशन (Fashion)—फैशन तथा स्टाइल (style) उपभोक्ता के उपभोग को प्रभावित करते हैं। अतः उत्पादक वर्ग निरन्तर वस्तुओं का डिजाइन, रूप, आकार इत्यादि में परिवर्तन या नये फैशन का समावेश करते रहते हैं ताकि उनकी वस्तुओं की माँग बढ़े। इस प्रकार उत्पादक उपभोक्ताओं की सत्ता को सीमित कर देते हैं।

(viii) बिक्री की रीतियाँ (Marketing methods)—'बिक्री की रीतियों' के अन्तर्गत बिक्री को बढ़ाने तथा उपभोक्ताओं के चुनावों (choices) को प्रभावित करने वाली सभी रीतियाँ आ जाती हैं। इनमें से मुख्य रीतियों का वर्णन निम्न है—(अ) विज्ञापन तथा प्रचार : नयी वस्तुओं का विज्ञापन, या उत्पादक अपनी पुरानी वस्तुओं के नये प्रयोग तथा उनमें नये परिवर्तन के विज्ञापन (अखबारों, सिनेमा, रेडियो इत्यादि) के द्वारा उपभोक्ता के चुनाव को प्रभावित करते हैं। एक उत्पादक अपनी वस्तु को दूसरी वस्तु से भिन्न बताने का खूब विज्ञापन करता है और जिस उत्पादक का विज्ञापन अधिक प्रभावशाली होता है, उसकी वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। (ब) पैकिंग : वस्तुओं के अच्छे तथा सुन्दर रूपों में पैकिंग करके भी उत्पादक उपभोक्ताओं के चुनाव को प्रभावित करते हैं। (स) उधार तथा किस्तों की सुविधा : बहुत से विक्रेता उपभोक्ताओं को उधार की सुविधा देकर अपनी वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने में सफल होते हैं। इसी प्रकार, बहुत से विक्रेता उपभोक्ताओं को वस्तुओं की कीमतों का भुगतान छोटी-छोटी किस्तों में देने की सुविधा देकर उपभोक्ताओं के चुनाव की स्वतन्त्रता को प्रभावित करते हैं।

---

[1] "The usual economic process is in a sense reversed when consumers lack knowledge. Instead of quality controlling price, price becomes the basis for judging quality; in other words, price determines utility in the mind of the purchaser."

(ix) **प्रमापित वस्तुएँ** (Standardised goods)—आज के युग में अधिकांश वस्तुओं का मशीनों की सहायता से बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है। उत्पादक उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत रुचि तथा पसन्द पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते बल्कि वे तो वस्तुओं का प्रमापीकरण (standardisation) करके उनका उत्पादन बड़ी मात्रा में करते हैं ताकि वस्तुएँ सस्ती पड़ें और उपभोक्ता उनको खरीदें। **"इस प्रकार उपभोक्ता एकत्रित कर दिये जाते हैं और एक समूह के रूप में समझे जाते हैं, सम्राट की भाँति नहीं बल्कि भेड़ों के झुण्ड की भाँति।"**[2]

(x) **उपभोग पर सरकारी नियन्त्रण** (Government control over consumption)—पूँजीवादी देशों में भी सरकार उपभोक्ताओं के उपभोग को विभिन्न प्रकार से नियन्त्रित करती है। उदाहरणार्थ, वह कुछ दवाइयों की बिक्री को रोक सकती है, शराब जैसी नशीली वस्तुओं के उपभोग को बिलकुल बन्द कर सकती है या उस पर आंशिक रोक लगा सकती है; कुछ वस्तुएँ जैसे—तम्बाकू इत्यादि पर अधिक टैक्स लगा सकती है ताकि उनकी कीमतें बहुत ऊँची हो जाएँ और उपभोक्ता उनका कम प्रयोग करें। इसी भाँति सरकार जिन वस्तुओं का उत्पादन सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से अच्छा समझती है उनके उत्पादन को आर्थिक सहायता (subsidy) देकर प्रोत्साहित कर सकती है।

५. निष्कर्ष

आधुनिक युग में उपभोक्ता की प्रभुता या सत्ता कई कारणों से सीमित हो जाती है। उपभोक्ता एक सम्राट के समान नहीं रह जाता; उत्पादक तथा सरकार वस्तुओं के उत्पादन को कई प्रकार से प्रभावित करते हैं। वास्तव में, आज के युग में किसी देश के आर्थिक विकास के लिए उपभोक्ता, उत्पादक तथा सरकार तीनों का निकटतम सहयोग आवश्यक है।

१० आवश्यकताएँ [WANTS]

मनुष्य की आवश्यकताएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं और वह उनमें से अधिक से अधिक आवश्यकताओं को पूरा करने की दृष्टि से अधिकतम प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार आवश्यकताएँ ही आर्थिक क्रियाओं और संसार की वर्तमान आर्थिक प्रगति के पीछे प्रेरक शक्ति हैं।

आवश्यकता का अर्थ
(MEANING OF WANT)

साधारण भाषा में 'इच्छा' या 'चाह' (desire or need) तथा 'आवश्यकता' (want) ... एक अर्थ में ही प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र में 'इच्छा' तथा 'आवश्यकता' में अन्तर ...

---

2 "The consumers are bulked together and treated en mass, not like a king but a sheep."

क व्यक्ति के मस्तिष्क में किसी कार्य को करने या किसी वस्तु को प्राप्त करने की 'चाह' या ामना' उत्पन्न हो सकती है, परन्तु उसको पूरा करने के लिए उसके पास पर्याप्त साधन नहीं हैं । इसे 'इच्छा' कहा जाता है । अतः इच्छा मस्तिष्क का केवल एक विचार मात्र है जिसको पूरा रने के लिए मनुष्य के पास साधन (अर्थात धन) नहीं होता ।

अर्थशास्त्र में 'प्रभावपूर्ण इच्छा' (effective desire) को आवश्यकता (want) कहते हैं । सरे शब्दों में, आवश्यकता मनुष्य की उस इच्छा को कहते हैं जिनको पूरा करने के लिए मनुष्य ावश्यक प्रयत्न या त्याग करने को तैयार है । अतः आवश्यकता के अन्तर्गत तीन बातें प्रमुख हैं : i) किसी वस्तु की इच्छा का होना; (ii) इच्छा को सन्तुष्ट करने के लिए सामर्थ्य या योग्यता capacity) का होना अर्थात पर्याप्त धन का होना; तथा (iii) धन को व्यय करने की तत्परता willingness) का होना । उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति एक स्कूटर को प्राप्त करने की इच्छा करता ; परन्तु यह इच्छा तभी आवश्यकता कहलायेगी जबकि स्कूटर को खरीदने के लिए उसके पास र्याप्त धन है और जिसको वह व्यय करने के लिए तैयार है ।

ावश्यकता तथा माँग में अन्तर

'आवश्यकता' (want) तथा 'माँग' दोनों बहुत कुछ मिलते-जुलते शब्द हैं, परन्तु फिर भी नमें अन्तर अवश्य है । दोनों ही 'प्रभावपूर्ण इच्छा' (effective desire) को बताते हैं अर्थात नों के लिए इच्छा का होना, उसको पूरा करने के लिए धन का होना तथा धन को व्यय करने ी तत्परता का होना जरूरी है । इन दोनों में मुख्य अन्तर इस प्रकार है : (i) माँग का सम्बन्ध वेत कीमत तथा समय से होता है जबकि आवश्यकता का इस प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता । हम यह कह सकते हैं कि हमें 'अ' वस्तु की आवश्यकता ५० किलोग्राम की है, परन्तु यह कहना क वस्तु 'अ' की माँग ५० किलोग्राम की है ठीक नहीं है क्योंकि माँग के साथ कीमत तथा समय ा होना जरूरी है । अतः हम कहेंगे कि वस्तु 'अ' की माँग ४ रुपये प्रति किलोग्राम कीमत पर या एक सप्ताह के लिए ५० किलोग्राम है । (ii) माँग उस आवश्यकता को कहते हैं जिसकी न्तुष्टि की जाती है । मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त हैं, वह उन सबको सामूहिक रूप से पूरा हीं कर सकता, उनमें से कुछ को ही पूरा कर पाता है । जिन आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती अर्थात सन्तुष्टि की जाती है उन्हें माँग कहा जाता है । अतः कोई आवश्यकता माँग तभी कही ायेगी जबकि उसकी सन्तुष्टि की जाती है । बेन्हम (Benham) के अनुसार, "एक दी हुई ीमत पर किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की वह मात्रा है जो कि वास्तव में उस कीमत पर खरीदी ायेगी ।"[1]

आवश्यकताओं के लक्षण अथवा विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF WANTS)

यद्यपि मनुष्यों की आवश्यकताओं में बहुत भिन्नता पायी जाती है परन्तु फिर भी उनमें कुछ मानताएँ या सामान्य लक्षण पाये जाते हैं । आवश्यकताओं के सामान्य लक्षणों या विशेषताओं अर्थशास्त्र में बहुत महत्त्व है क्योंकि इन विशेषताओं पर बहुत से आर्थिक नियम आधारित हैं । ावश्यकताओं की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) आवश्यकताएँ अनन्त अथवा असीमित होती हैं—जिस प्रकार समुद्र में मनगिनत हरें उठती हैं उसी प्रकार मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त होती हैं । मनुष्य अपनी सभी आवश्-

[1] "The demand for a thing at a given price is the amount of it which would in fact bought at that price." —Benham, Economics, p

कताओं को पूरा नहीं कर पाता है। एक के बाद दूसरी, दूसरी से तीसरी, इस प्रकार से आवश्यकताएँ उत्पन्न होती रहती हैं। आवश्यकताओं के अनन्त तथा अनेक प्रकार के होने के कारण नयी-नयी खोजें तथा आविष्कार होते रहते हैं और इस प्रकार समाज की आर्थिक प्रगति (economic progress) होती रहती है। स्पष्ट है कि आवश्यकताओं की इस विशेषता पर 'प्रगति का नियम' (Law of Progress) आधारित है।

(२) **आवश्यकता विशेष की पूर्ति की जा सकती है**—यद्यपि मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त हैं, परन्तु एक समय में किसी एक आवश्यकता की पूर्ति अवश्य की जा सकती है। भूख लगने पर मनुष्य रोटियों का उपभोग करके उसकी सन्तुष्टि कर सकता है। भूखे व्यक्ति के लिए पहली रोटी की उपयोगिता बहुत होगी, दूसरी रोटी की कम, तीसरी रोटी की और कम तथा इस प्रकार पाँचवी रोटी खाने पर हो सकता कि उसकी भूख पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाती है। स्पष्ट है कि **आवश्यकताओं के इस लक्षण पर 'उपयोगिता ह्रास नियम'** (Law of Diminishing Utility) **आधारित है।**

(३) **आवश्यकताएँ प्रतियोगी (competitive) होती हैं**—मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त हैं परन्तु उसके साधन सीमित हैं। विभिन्न आवश्यकताएँ सन्तुष्टि के लिए आपस में प्रतियोगिता करती हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य अधिक तीव्र आवश्यकताओं को पहले सन्तुष्टि करता है और कम तीव्र आवश्यकताओं की बाद में तथा शेष आवश्यकताओं को असन्तुष्ट छोड़ देता है। इस प्रकार मनुष्य प्रतियोगी आवश्यकताओं को उनकी तीव्रता के अनुसार सन्तुष्ट करता है। आवश्यकताओं की **इस विशेषता के आधार पर 'सम-सीमान्त उपयोगिता नियम' या 'प्रतिस्थापन का नियम'** (Law of Equi-marginal Utility of Law of Substitution) **आधारित है।**

(४) **कुछ आवश्यकताएँ पूरक (complimentary) होती हैं**—कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य आवश्यकताओं के साथ में की जाती है। अर्थात् आवश्यकताएँ एक दूसरे की पूरक होती हैं। उदाहरणार्थ, फाउन्टेन पेन की आवश्यकता की पूर्ति बिना स्याही के नहीं हो सकती है, इसी प्रकार मोटर-कार तथा पेट्रोल दोनों का साथ-साथ प्रयोग होता है। **आवश्यकताओं की इस विशेषता पर 'संयुक्त माँग का सिद्धान्त'** (Theory of Joint Demand) **आधारित हैं।**

(५) **भविष्य की अपेक्षा वर्तमान की आवश्यकताएँ अधिक तीव्र प्रतीत होती हैं**—भविष्य अनिश्चित होता है इसलिए मनुष्य भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को अधिक महत्त्व देता है। भविष्य की आवश्यकताओं की अपेक्षा वर्तमान आवश्यकताएँ अधिक तीव्र तथा महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती हैं। **आवश्यकताओं के इस गुण के आधार पर फिशर ने 'ब्याज का समय अधिमान सिद्धान्त'** (Time Preferance Theory of Interest) **का निर्माण किया।**

(६) **कुछ आवश्यकताएँ वैकल्पिक (alternative) होती हैं**—कुछ आवश्यकताओं को अनेक प्रकार से सन्तुष्ट किया जा सकता है अर्थात आवश्यकताएँ वैकल्पिक होती हैं। उदाहरणार्थ, ठंड को दूर करने की आवश्यकता को ऊनी कपड़े पहनकर, रुई के कपड़े पहनकर, चद्दर ओढ़कर, आग तापकर या गर्म पेय द्वारा पूरा किया जा सकता है। **आवश्यकता की इस विशेषता के आधार पर 'मिश्रित पूर्ति'** (Composite Supply) **या 'वैकल्पिक माँग'** (Alternative Demand) के नियम आधारित हैं।

(७) **कुछ आवश्यकताएँ आदत में परिवर्तित हो जाती हैं**—एक वस्तु का हमेशा प्रयोग करते रहने से मनुष्य उस वस्तु के प्रयोग का आदी हो जाता है और उसके बिना उसे अत्यन्त कष्ट अनुभव होने लगता है। उदाहरणार्थ, चाय या सिगरेट का निरन्तर प्रयोग करने से मनुष्य

ावश्यकताएँ आदत में परिवर्तित हो जाती हैं। अतः, अनेक आवश्यकताएँ मनुष्य के जीवन-स्तर ा अंग बन जाती है। आवश्यकताओं की इस विशेषता के आधार पर मजदूरी सामान्यतया जीवन-तर के अनुसार निर्धारित होती है।

(८) आवश्यकताओं की तीव्रता में भिन्नता होती है—मनुष्य की सभी आवश्यकताएँ एक मान तीव्र नहीं होती हैं; वह आवश्यकताओं को उनकी तीव्रता के क्रम में रखता है और अधिक व्र आवश्यकताओं को पहले सन्तुष्ट करता है। इसी विशेषता के आधार पर आवश्यकताओं को 'आवश्यक', 'आरामदायक' तथा 'विलासता' की आवश्यकताओं में बाँटा गया है।

(९) कुछ आवश्यकताएँ बार-बार अनुभव होती हैं—कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं कि नकी पूर्ति करने के बाद वे पुनः उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, सुबह भूख की तृप्ति करने ाद दोपहर को भूख पुनः अनुभव होने लगती है, दोपहर के बाद शाम को फिर भूख लगने ती है। इस प्रकार कुछ आवश्यकताएँ बार-बार अनुभव होती हैं।

(१०) आवश्यकताएँ सामाजिक रीति-रिवाजों तथा फैशन से प्रभावित होती हैं—मनुष्य ा समाज में रहता है उसके रीति-रिवाजों द्वारा उसकी बहुत-सी आवश्यकताओं का निर्माण ा है। उदाहरणार्थ, हिन्दू समाज में मुर्दे को जलाना आवश्यक है। इसी प्रकार समय विशेष पर लित फैशन भी मनुष्य की आवश्यकताओं को निर्धारित करता है। जैसे, बहुत से व्यक्ति टाई का ोग फैशन के परिणामस्वरूप करने लगते हैं।

(११) आवश्यकताएँ ज्ञान वृद्धि तथा वैज्ञानिक उन्नति से प्रभावित होती हैं—शिक्षा तथा न वृद्धि से मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ जाती हैं। उदाहरणार्थ, प्रायः एक शहर में रहने वाले क्ति का सामान्य ज्ञान अधिक होता है और इसलिए उसकी आवश्यकताएँ अधिक होती हैं; जबकि क ग्रामीण की आवश्यकताएँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं। इसी प्रकार वैज्ञानिक उन्नति के परि-ामस्वरूप भी आवश्यकताएँ बढ़ जाती हैं। उदाहरणार्थ, वैज्ञानिक उन्नति के कारण ही रेडियो, ीविजन, इत्यादि का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

(१२) प्रचार तथा विक्रय-कला (publicity and salesmanship) द्वारा आवश्यकताएँ त्तेजित होती हैं—यदि किसी वस्तु के बारे में बहुत प्रचार किया जाता है तथा विक्रय के नये-नये के प्रयोग किये जाते हैं तो मनुष्य उस वस्तु विशेष की आवश्यकता अनुभव करने लगता है। ाहरणार्थ, बहुत समय पहले भारत में लोगों को चाय की आदत न के बराबर थी, परन्तु चाय कम्पनियों ने चाय का बहुत जोरदार प्रचार किया, शुरू में लोगों को नमूने के तौर पर मुफ्त य पिलाई, परिणामस्वरूप लोगों को चाय की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

(१३) आवश्यकताएँ आविष्कारों को प्रोत्साहित करती हैं—वास्तव में, आवश्यकताएँ ही विष्कारों को जन्म देती हैं। उदाहरणार्थ, बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने के लिए विभिन्न प्रकार रबड़ की वस्तुओं तथा अन्य अनेक उपायों का आविष्कार हो रहा है।

(१४) आवश्यकताएँ बदलती रहती हैं—मनुष्य की आवश्यकताएँ समान नहीं रहती हैं। समय तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं।

वश्यकताओं की विशेषताओं या लक्षणों के कुछ अपवाद (Exceptions)

प्रो० मोरलैण्ड (Moreland) ने आवश्यकताओं की विशेषताओं के कुछ अपवाद बताये हैं, न्तु ये अपवाद दिखावटी हैं न कि वास्तविक। उनके अनुसार मुख्य अपवाद इस प्रकार हैं :

(१) आवश्यकताओं की एक विशेषता यह है कि किसी एक आवश्यकता की पूर्ति की जा ती है। मोरलैण्ड ने बताया कि कुछ स्थितियाँ ऐसी हैं जहाँ कि विशेष आवश्यकताओं की

नहीं हो पाती हैं। किसी व्यक्ति के पास एक विशेष वस्तु जितनी अधिक होती है वह उसकी ... अधिक आवश्यकता अनुभव करता है। इसके लिए उन्होंने निम्न उदाहरण दिये हैं:

(अ) **दिखावे या प्रदर्शन की आवश्यकता**—कुछ व्यक्तियों में दिखावे की आवश्यकता ... प्रबल होती है, वे अपने सुन्दर तथा आलीशान मकान, मोटर कार, सुन्दर आभूषण, इत्यादि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा अपने रहन-सहन के ढंग द्वारा अपना प्रदर्शन करते हैं। वे सदैव दिखावे के लिए नवीनतम वस्तुओं पर धन व्यय करते हैं, और इस प्रकार वे कभी सन्तुष्ट नहीं हो पाते हैं।

परन्तु यह अपवाद दिखावटी है क्योंकि प्रदर्शन की आवश्यकता कोई एक आवश्यकता नहीं है। वह बहुत-सी आवश्यकताओं का सामूहिक नाम है। एक समय पर मनुष्य एक सुन्दर मकान खरीदकर अपनी एक आवश्यकता की पूर्ति कर लेता है; परन्तु इसके बाद उसे दूसरी आवश्यकता अर्थात मोटरकार को खरीदने की आवश्यकता होने लगती है, इत्यादि।

(ब) **शक्ति प्रदर्शन की आवश्यकता** (Want of power)—कुछ व्यक्ति अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहते हैं। जितनी अधिक शक्ति उनके पास होती है उतनी ही अधिक शक्ति या सत्ता को वे अर्जित करना चाहते हैं; शक्ति या सत्ता को प्राप्त करने की उनकी आवश्यकता पूरी नहीं होती है। **मोरलैंड** कहते हैं कि यह अपवाद वास्तविक प्रतीत होता है। परन्तु ऐसे व्यक्ति साधारण व्यक्ति नहीं होते, और एक अर्थशास्त्री तो साधारण व्यक्ति की आवश्यकताओं से सम्बन्ध रखता है।[2]

(स) **एक कंजूस व्यक्ति की धन एकत्रित करने की आवश्यकता**—एक कंजूस व्यक्ति की धन एकत्रित करने की आवश्यकता कभी पूरी नहीं होती। परन्तु यह अपवाद भी दिखावटी है क्योंकि एक कंजूस व्यक्ति साधारण व्यक्ति नहीं है और अर्थशास्त्र में कंजूस व्यक्तियों की क्रियाओं का अध्ययन नहीं किया जाता है।

(द) **द्रव्य की आवश्यकता**—द्रव्य की आवश्यकता की पूर्ति नहीं की जा सकती। जितना अधिक द्रव्य होता है उतना ही और अधिक द्रव्य एकत्रित करने की इच्छा रहती है। परन्तु यह अपवाद भी दिखावटी है क्योंकि द्रव्य की आवश्यकता एक नहीं है बल्कि बहुत-सी आवश्यकताओं का सामूहिक नाम है, द्रव्य से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ खरीदी जाती हैं।

(२) आवश्यकताओं की एक विशेषता यह है कि वे अनन्त हैं अर्थात मनुष्य की आवश्यकताएँ संख्या में तथा विभिन्नता से सीमित नहीं होती हैं। परन्तु कुछ **व्यक्ति जैसे, साधु-संन्यासी** ऐसे हैं जिनकी आवश्यकताएँ संख्या तथा विभिन्नता (number and variety) में बढ़ती नहीं बल्कि कम होती हैं, उनकी आवश्यकताएँ बहुत सूक्ष्म तथा सीमित होती हैं। परन्तु यह अपवाद भी दिखावटी है क्योंकि साधु-संन्यासी इत्यादि साधारण व्यक्ति नहीं हैं, जबकि अर्थशास्त्र में साधारण व्यक्तियों की आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन किया जाता है।

आवश्यकताओं की वृद्धि
(MULTIPLICATION OF WANTS)

आमतौर से एक प्रश्न यह उठाया जाता है कि **क्या आवश्यकताओं की संख्या-वृद्धि** ... है? इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं, **दो विचारधाराएँ** पायी जाती हैं। एक विचार...

2 "This exception seem to be real, that is to say, the lust of some men for power ... be satisfied. But such men are not ordinary men, and the economist is concerned ... the wants of ordinary men."
—Moreland, *An Introduction to Economics*

र अनुसार, आवश्यकताओं की वृद्धि मानव सुख तथा आर्थिक प्रगति के लिए वांछनीय है। दूसरी विचारधारा के अनुसार, आवश्यकताओं की वृद्धि नहीं बल्कि उनकी कमी वास्तविक मानव सुख ो बढ़ाती है तथा आवश्यकताओं की वृद्धि वांछनीय नहीं है। इन दोनों विचारधाराओं के तर्कों ा विस्तृत रूप से नीचे विवरण दिया गया है :

आवश्यकताओं की संख्या-वृद्धि के पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं

(१) **मानव-सुख में वृद्धि**—किसी आवश्यकता की पूर्ति से मनुष्य को सन्तुष्टि प्राप्त होती है अर्थात उसे सुख का अनुभव होता है। अतः मनुष्य की जितनी अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति होगी उतना ही अधिक सुख उसे प्राप्त होगा। (२) **सभ्यता का विकास तथा आर्थिक उन्नति**—सभ्यता का विकास आवश्यकताओं की वृद्धि के साथ जुड़ा हुआ है। इतिहास को देखने से स्पष्ट होता है कि वास्तव में सभ्यता के विकास की कहानी आवश्यकताओं की वृद्धि की कहानी है। आवश्यकताओं में वृद्धि के कारण ही देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन होता है, नये-नये आविष्कारों की खोज होती है। इस प्रकार देश की आर्थिक उन्नति तथा सभ्यता का विकास होता है। (३) **जीवन स्तर का ऊँचा उठना**—आवश्यकताओं की वृद्धि के कारण ही मनुष्य अधिक प्रयत्न करता है; विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का अधिकतम उत्पादन करता है। समाज में अधिक धन उत्पादन के परिणामस्वरूप लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा उठता है। (४) **राजनैतिक दृढ़ता**—किसी भी देश की राजनीतिक दृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि उस देश का आर्थिक ढाँचा मजबूत हो। आवश्यकताओं की वृद्धि के परिणामस्वरूप ही देश की आर्थिक उन्नति होती है और इसलिए देश में राजनैतिक दृढ़ता भी आती है।

आवश्यकताओं की संख्या वृद्धि के विपक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं

(१) **वास्तविक मानव सुख में वृद्धि नहीं होती**—मनुष्य के साधन सीमित हैं; अतः जितनी अधिक उसकी आवश्यकताएँ होंगी उतना ही उनको पूरा करना उसके लिए कठिन होगा। परिणामस्वरूप उसकी बहुत-सी आवश्यकताएँ सन्तुष्ट नहीं की जा सकेंगी और उसे कष्ट तथा दुख का अनुभव होगा। इसके विपरीत जितनी ही उसकी आवश्यकताएँ कम होंगी उतनी ही सरलता से उनकी सन्तुष्टि हो सकेगी और मनुष्य को अधिक सुख प्राप्त होगा। अतः वास्तविक सुख आवश्यकताओं की वृद्धि में नहीं बल्कि कमी में है। (२) **समाज में वर्ग-संघर्ष में वृद्धि**—आवश्यकताओं की वृद्धि के कारण प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक धन कमाने का प्रयत्न करता है; वह अधिक स्वार्थी हो जाता है और दूसरों का शोषण करता है। इस प्रकार धनवान व्यक्तियों तथा निर्धन व्यक्तियों में संघर्ष बढ़ता है। (३) **मनुष्य का दृष्टिकोण संकुचित**—आवश्यकताओं की वृद्धि के कारण मनुष्य धन कमाने में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे दूसरों के सुख-दुख या कल्याण का कोई ध्यान नहीं रहता है। वह स्वकेन्द्रित (Self-centered) हो जाता है और उसका दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है। (४) **आध्यात्मिक विकास में रुकावट**—अधिक से अधिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए मनुष्य हर समय अधिकाधिक धन कमाने में लगा रहता है, उसका दृष्टिकोण बहुत अधिक भौतिकवादी (materialistic) हो जाता है। इस प्रकार उसका आध्यात्मिक विकास रुक जाता है।

निष्कर्ष

पक्ष तथा विपक्ष में तर्कों के अध्ययन के पश्चात निष्कर्ष के रूप में यह कहना अधिक उचित होगा कि न तो आवश्यकताएँ बहुत अधिक होनी चाहिए और न बहुत कम। यदि किसी देश

मनुष्यों की आवश्यकताएँ बहुत कम हैं तो वह देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ जायेगा। वास्तव में सत्य दोनों विचारधाराओं के मध्य में प्रतीत होता है।

आवश्यकताओं का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF WANTS)

मनुष्य की सभी आवश्यकताएँ समान रूप से तीव्र नहीं होतीं। कुछ आवश्यकताएँ अति तीव्र होती हैं, ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति मनुष्य की कार्यक्षमता को बनाये रखने तथा उसमें वृद्धि करने के लिए जरूरी है। कुछ आवश्यकताएँ कम या बहुत कम तीव्र होती हैं, ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति मनुष्य की कार्यक्षमता में कोई वृद्धि नहीं करती। आवश्यकताओं की तीव्रता में भिन्नता (अर्थात् उनके कार्यक्षमता पर प्रभाव) के आधार पर अर्थशास्त्रियों ने आवश्यकताओं को निम्न तीन वर्गों में बाँटा है : (१) **अनिवार्य आवश्यकताएँ या आवश्यक वस्तुएँ** (Necessaries) (२) **आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ या आराम की वस्तुएँ** (Comforts); तथा (३) **विलासिताएँ या विलासिता की वस्तुएँ** (Luxuries)।

(१) अनिवार्य आवश्यकताएँ या आवश्यक वस्तुएँ (Necessaries)

अनिवार्य आवश्यकताएँ वे आवश्यकताएँ हैं जो कि प्रारम्भिक (primary) तथा आधारभूत होती हैं और जिनका पूरा करना जीवन-रक्षा के लिए कार्यक्षमता को बनाये रखने तथा समाज में प्रतिष्ठा रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार अनिवार्य आवश्यकताओं को निम्न तीन उपश्रेणियों में बाँटा गया है :

(अ) **जीवन-रक्षक आवश्यकताएँ** (Necessaries for life)—इनकी पूर्ति मनुष्य की जीवन रक्षा के लिए आवश्यक है, इनके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। उदाहरणार्थ, न्यूनतम भोजन; साधारण वस्त्र तथा मकान के बिना मनुष्य का जीवित रहना कठिन है। जीवनरक्षक वस्तुओं की मात्रा, व्यक्ति के स्वभाव, समय तथा देश की जलवायु द्वारा प्रभावित होती है।

(ब) **कार्यक्षमता-रक्षक अनिवार्यताएँ** (Necessaries for efficiency)—ये ऐसी आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति मनुष्य की कार्यक्षमता को बनाये रखने के लिए जरूरी है। प्रो० मोरलैंड ने भारत के सन्दर्भ में कार्यक्षमता-रक्षक अनिवार्यताओं के अन्तर्गत निम्न वस्तुओं को बताया है : (१) जीवन रक्षा के लिए जितने भोजन की आवश्यकता है उससे अधिक भोजन अर्थात पौष्टिक तथा सन्तुलित भोजन; (२) एक निश्चित मात्रा में वस्त्र तथा फर्नीचर; (३) रहने के लिए अच्छा तथा हवादार मकान; (४) चिकित्सा की उचित सुविधाएँ; तथा (५) बच्चों की शिक्षा की उचित सुविधाएँ।

इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने की है कि जितना धन कार्यक्षमता-रक्षक आवश्यकताओं की पूर्ति पर व्यय किया जाता है उससे अधिक अनुपात में कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

(स) **प्रतिष्ठारक्षक अनिवार्यताएँ या परम्परागत अनिवार्यताएँ** (Conventional necessaries)—ये वे अनिवार्यताएँ हैं जिनकी पूर्ति सामाजिक रीति-रिवाजों या परम्पराओं को पालन करने के लिए जरूरी है ताकि व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा बनी रहे।

(२) आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ (Comforts)

इन आवश्यकताओं की पूर्ति मनुष्य को सुख देने, रहन-सहन को विशिष्ट बनाने तथा कार्यक्षमता में वृद्धि के लिए जरूरी है। यदि इनकी पूर्ति नहीं की जाती है तो मनुष्य को थोड़े कष्ट का अनुभव होता है, उसका जीवन-स्तर नीचे गिरता है तथा उसकी कार्यक्षमता में कमी आती है।

'कार्यक्षमता-रक्षक अनिवार्यताओं' (Necessaries for efficiency) तथा 'आरामदायक आवश्यकताओं' (Comforts) में एक मुख्य अन्तर यह है कि कार्यक्षमता-रक्षक अनिवार्यताओं

अनुपात में धन व्यय किया जाता है उससे अधिक अनुपात में कार्यक्षमता बढ़ती है; जबकि आरामदायक आवश्यकताओं पर जिस अनुपात में धन व्यय किया जाता है उससे कम अनुपात में कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

गर्मी में पंखे की और जाड़ों में हीटर की आवश्यकता, इत्यादि कुछ आरामदायक वस्तुओं के उदाहरण हैं। वास्तव में, निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि कौनसी वस्तु आरामदायक है। यह बात वस्तु के मूल्य तथा उपभोक्ता की परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। भारत में अधिकांश व्यक्ति आरामदायक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं क्योंकि यहाँ की अधिकांश जनता गरीब है।

(iii) विलासिताएँ (Luxuries)

वे आवश्यकताएँ हैं जिनके प्रयोग से मनुष्य को अत्यधिक सुख अनुभव होता है और वह विलासप्रिय हो जाता है। इनके प्रयोग से मनुष्य की कार्यक्षमता में कोई वृद्धि नहीं होती बल्कि कुछ दशाओं में कार्यक्षमता घट जाती
कार्यक्षमता में कोई कमी नहीं आती है
अनावश्यक आवश्यकताएँ' (superfluous
व्यक्तिगत उपभोग' (excessive personal consumption) का नाम दिया है।

विलासिताओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है: (i) हानिरहित विलासिताएँ (harmless luxuries), तथा (ii) हानिकारक विलासिताएँ (harmful luxuries)। हानिरहित विलासिताओं के अन्तर्गत अत्यन्त बढ़िया वस्त्र, बहुत शानदार मकान, कीमती हीरे-जवाहरात तथा अन्य कीमती आभूषण, बहुत मँहगी तथा कीमती कारें इत्यादि वस्तुएँ शामिल की जा सकती हैं; इन वस्तुओं के प्रयोग से मनुष्य की कार्यक्षमता में न कोई वृद्धि होती है और न कोई कमी। हानिकारक विलासिताओं के अन्तर्गत वे वस्तुएँ आती हैं जिनके प्रयोग से मनुष्य की कार्यक्षमता घट जाती है, जैसे—शराब तथा अन्य मादक वस्तुओं का उपभोग, क्योंकि इनके प्रयोग से मनुष्य का स्वास्थ्य खराब होता है।

आवश्यकताओं का यह वर्गीकरण सापेक्षिक (relative) है

यह ध्यान रखने की बात है कि आवश्यकताओं का वर्गीकरण कठोर तथा बेलोच (rigid and inelastic) नहीं है। निश्चय रूप से यह कहना कठिन है कि अमुक वस्तु प्रत्येक समय, प्रत्येक स्थान या देश तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक होगी या आरामदायक या विलासिता की होगी। समय, स्थान तथा व्यक्ति विशेष के साथ वस्तुओं का गुण बदलता रहता है; दूसरे शब्दों में, आवश्यकताओं का यह वर्गीकरण समय, स्थान तथा व्यक्ति के साथ सापेक्षिक (relative) है। अतः एक वस्तु एक समय में विलासिता की हो सकती है, परन्तु दूसरे समय में वही वस्तु आवश्यक हो सकती है। उदाहरण के लिए, २५-३० वर्ष पहले भारत में रेडियो विलासिता की वस्तु समझा जाता था परन्तु अब यह एक प्रकार से आवश्यक वस्तु है। इसी प्रकार एक छोटे गाँव में टेलीफोन विलासिता की वस्तु कही जायेगी, जबकि वही टेलीफोन बड़े शहरों में आरामदायक या आवश्यक वस्तु कही जाती है। इसी प्रकार जाड़े के दिनों में भारत में हीटर का प्रयोग आरामदायक होगा जबकि ब्रिटेन में हीटर आवश्यक वस्तु है। यह वर्गीकरण केवल समय तथा स्थान के प्रति ही सापेक्षिक नहीं है बल्कि व्यक्ति के प्रति भी सापेक्षिक है। उदाहरणार्थ, कार एक व्यस्त डाक्टर या इंजीनियर के लिए आवश्यक, अध्यापक के लिए आरामदायक तथा एक क्लर्क के लिए विलासिता की वस्तु है। इसी प्रकार डाक्टर के लिए एक कार आवश्यक है परन्तु दूसरी कार उसके लिए

विलासिता की वस्तु हो जायेगी, जबकि एक बहुत बड़े उद्योगपति के लिए २ या ३ कार आ
हैं। इसी प्रकार एक फाउन्टेनपेन एक विद्यार्थी या अध्यापक के लिए आवश्यक है, साधारण व्य
व्यक्ति के लिए आरामदायक है जबकि एक अशिक्षित व्यक्ति के लिए विलासिता की वस्तु
इस प्रकार आवश्यकताओं का यह वर्गीकरण समय, स्थान, व्यक्ति तथा वस्तु की इकाइयों के
सापेक्षिक है।

आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करने वाले तत्त्व

अध्ययन की सुविधा के लिए इन तत्त्वों को साधारणतया तीन भागों में बाँटा जा
(I) व्यक्ति से सम्बन्धित तत्त्व, (II) वस्तु से सम्बन्धित तत्त्व, तथा (III) वातावरण (enviro-
ment) से सम्बन्धित तत्त्व।

(I) व्यक्ति से सम्बन्धित तत्त्व

व्यक्ति से सम्बन्धित निम्न तत्त्व आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करते हैं:

(१) **व्यक्ति विशेष की आय**—व्यक्ति की आय के अनुसार, आवश्यकताओं के व
पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, एक धनी व्यक्ति के लिए प्रशीतक यन्त्र (Refrigera
आवश्यक हो सकता है जबकि एक कम आय वाले व्यक्ति के लिए वह विलासिता की वस्तु
(२) **व्यक्ति विशेष का व्यवसाय**—एक व्यक्ति का व्यवसाय भी आवश्यकताओं के वर्गीकरण
प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ, एक डाक्टर या इंजीनियर के लिए कार आवश्यक है जबकि
अध्यापक के लिए आरामदायक तथा एक क्लर्क के लिए विलासिता की वस्तु है। (३) **व्यक्ति
आदतें**—यदि एक व्यक्ति को चाय पीने की आदत पड़ गयी है तो उसके लिए चाय आवश्यक
है जब कि अन्य व्यक्तियों, जिनको चाय की आदत नहीं है, के लिए चाय जाड़ों में आरामदायक
गर्मियों में विलासिता की वस्तु है। (४) **व्यक्ति का सामाजिक-स्तर**—सामाजिक-स्तर आवश्यक-
ताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करता है। देश के प्रधानमन्त्री के लिए एक बहुत बड़ा तथा सु
मकान आवश्यक है क्योंकि उसका सामाजिक स्तर बहुत ऊँचा है। जबकि उतना बड़ा मकान
डाक्टर के लिए विलासिता की वस्तु होगी। (५) **व्यक्ति की धार्मिक भावनाएँ**—एक धा
प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के लिए सादा मकान, सादा भोजन आरामदायक है जबकि एक धनी व्यक्ति
लिए शानदार मकान, बढ़िया भोजन आरामदायक होगा।

(II) वस्तु से सम्बन्धित तत्त्व

वस्तु से सम्बन्धित निम्न तत्त्व आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करते हैं:

(१) **वस्तु का मूल्य**—साधारणतया बहुत अधिक मूल्य वाली वस्तुएँ विलासिता की वस्तु
ऊँचे मूल्य वाली वस्तुएँ, आरामदायक वस्तुएँ; तथा कम मूल्य वाली वस्तुएँ आवश्यक वस्तुएँ
जाती हैं। (२) **वस्तु की मात्रा तथा इकाइयाँ**—एक डाक्टर के लिए एक कार आवश्यक
दूसरी या तीसरी कार विलासिता की वस्तु हो जाती है। अतः वस्तु की मात्रा या इकाइ
आवश्यकताओं के वर्गीकरण को प्रभावित करती हैं।

(III) वातावरण (environment) से सम्बन्धित तत्त्व

समय, स्थान तथा आर्थिक, भौगोलिक और सामाजिक वातावरण भी आवश्यकताओं
वर्गीकरण को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार के तत्त्व निम्न हैं :

(१) **स्थान तथा समय से सम्बन्धित परिस्थितियाँ**—भारत के बड़े शहरों में [illegible]
आवश्यक वस्तु है जबकि वह छोटे गाँव में विलासिता की वस्तु है। इसी प्रकार भारत में [illegible]
[illegible] विलासिता की वस्तु कही जा सकती थी परन्तु अब समय के साथ वह कुछ [illegible]

र आवश्यक तथा कुछ के लिए आरामदायक वस्तु हो गयी है। (२) भौगोलिक परिस्थितियाँ—न जैसे ठण्डे देश में हीटर तथा ऊनी कपड़े आवश्यक हैं जबकि भारत जैसे गर्म देश में वे आराम क वस्तुएँ हैं। (३) आर्थिक प्रगति—किसी देश का आर्थिक विकास भी आवश्यकताओं के किरण को प्रभावित करता है। कुछ समय पहले जो वस्तुएँ विलासिता की वस्तुएँ समझी जाती वे देश के आर्थिक विकास के साथ आवश्यक या आरामदायक वस्तुएँ हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, रीका में बहुत अधिक आर्थिक उन्नति हो चुकी है, अतः वहाँ पर रेडियो, टेलीविजन, कार ादि आवश्यक वस्तुएँ बन गयी हैं।

आवश्यकताओं के वर्गीकरण का आधार

आवश्यकताओं के वर्गीकरण के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों ने तीन आधार बताये हैं : (१) र्यक्षमता का आधार या सिद्धान्त, (२) सुख-दुख का आधार या सिद्धान्त, तथा (३) मूल्य और ग का आधार या सिद्धान्त।

(१) **कार्यक्षमता का आधार या सिद्धान्त**—इस आधार या सिद्धान्त के अनुसार, किसी वस्तु ो किस वर्ग में रखा जाये यह बात उस वस्तु के उपभोग करने अथवा उपभोग न करने से उप-क्ता की कार्यक्षमता पर प्रभाव को मालूम करके निश्चित की जायेगी। (i) यदि वस्तु विशेष के योग से व्यक्ति की कार्यक्षमता की रक्षा होती है या उसमें वृद्धि होती है, तथा उस वस्तु के प्रयोग करने से कार्यक्षमता घट जाती है, तो ऐसी वस्तु को 'अनिवार्य वस्तु' या 'अनिवार्यताओं' के न्तर्गत रखा जायेगा। (ii) यदि वस्तु के प्रयोग से कार्यक्षमता में थोड़ी वृद्धि होती है तथा उसका योग न करने से कार्यक्षमता घट जाती है तब ऐसी वस्तु को 'आरामदायक वस्तु' की श्रेणी में रखा, येगा। (iii) यदि वस्तु के प्रयोग से कार्यक्षमता न बढ़ती है और न घटती है अर्थात पूर्ववत बनी हती है तो ऐसी वस्तु को 'हानिरहित विलासिताओं' के अन्तर्गत रखेंगे; परन्तु यदि वस्तु के प्रयोग कार्यक्षमता घटती है तथा उसका प्रयोग बन्द कर देने पर कार्यक्षमता का घटना रुक जाता है तो गी वस्तु को 'हानिकारक विलासिता' कहेंगे।

कार्यक्षमता के आधार या सिद्धान्त के अनुसार, आवश्यकताओं के वर्गीकरण को संक्षेप में म्न तालिका द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है :-

वस्तुएं	व्यक्ति की कार्यक्षमता पर प्रभाव	
	वस्तु का प्रयोग करने पर	वस्तु का प्रयोग न करने पर
(१) अनिवार्य वस्तुएँ	कार्यक्षमता की रक्षा होती है या वह बढ़ती है।	कार्यक्षमता बहुत कम हो जाती है।
(२) आरामदायक वस्तुएँ	कार्यक्षमता में थोड़ी वृद्धि होती है।	कार्यक्षमता थोड़ी घट जाती है।
(३) विलासिताएँ (हानिरहित)	कार्यक्षमता में वृद्धि नहीं होती है।	कार्यक्षमता घटती भी नहीं है।
विलासिताएँ (हानिकारक)	कार्यक्षमता में कमी हो जाती है।	कार्यक्षमता में कमी होना बन्द हो जाता है।

(२) **सुख-दुख का आधार या सिद्धान्त**—इस आधार या सिद्धान्त के अनुसार, किसी वस्तु या आवश्यकता को किस वर्ग में रखा जाये इस बात को उस वस्तु के उपभोग करने अथवा न करने से उपभोक्ता के सुख या दुख पर प्रभाव को मालूम करके निश्चित किया जायेगा। (i)

वस्तु विशेष के प्रयोग से व्यक्ति को थोड़ा सुख मिलता है तथा प्रयोग न करने पर वहुत अधिक होता है तो ऐसी वस्तु को 'अनिवार्य वस्तु' या अनिवार्यताओं' के अन्तर्गत रखा जायेगा। (ii) वस्तु के प्रयोग से व्यक्ति को कुछ अधिक सुख (या पर्याप्त) सुख मिलता है तथा इसका प्रयोग न करने से थोड़ा ही दुख होता है तब ऐसी वस्तु को 'आरामदायक वस्तु' की श्रेणी में रखा जायेगा। (iii) यदि वस्तु के प्रयोग से वहुत अधिक सुख का अनुभव होता है तथा उसका प्रयोग न करने से दुख नहीं होता तब ऐसी वस्तु को 'हानिरहित विलासिता' के अन्तर्गत रखा जायेगा। यदि वस्तु का प्रयोग करने से केवल क्षणिक सुख या वहुत थोड़े समय के लिए सुख मिलता है तथा प्रयोग न करने पर वहुत अधिक कष्ट या दुख (वस्तु की आदत पड़ जाने के कारण) का अनुभव होता है तो 'हानिकारक विलासिता' या 'फिजूल-खर्ची' (extravagance) कहेंगे।

इस वर्गीकरण को संक्षेप में निम्न तालिका द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :

वस्तुएँ	व्यक्ति के सुख-दुख पर प्रभाव	
	वस्तु का उपभोग करने पर	वस्तु का उपभोग न करने पर
(१) अनिवार्य वस्तुएँ	थोड़ा सुख प्राप्त होता है।	वहुत दुख अनुभव होता है।
(२) आरामदायक वस्तुएँ	कुछ और अधिक सुख (या पर्याप्त सुख) प्राप्त होता है।	थोड़ा ही दुख होता है।
(३) विलासिताएँ (हानिरहित)	वहुत अधिक सुख प्राप्त होता है।	दुख नहीं होता (यदि व्यक्ति आदी न हो गया हो)।
विलासिताएँ (हानिकारक या फिजूलखर्ची)	अल्पकालीन या क्षणिक सुख प्राप्त होता है।	वहुत दुख या कष्ट (आदी हो जाने के कारण) होता है।

(३) **मूल्य तथा माँग का आधार या सिद्धान्त**—(i) यदि किसी वस्तु के मूल्य में वृद्धि या कमी होने पर उसकी माँग लगभग पहले जैसी ही रहती है तब ऐसी वस्तु को 'अनिवार्य वस्तु' के अन्तर्गत रखा जायेगा। (ii) यदि वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में परिवर्तन उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में कि मूल्य में परिवर्तन हुआ है तो ऐसी वस्तु को 'आरामदायक वस्तु' के अन्तर्गत रखा जायेगा। (iii) यदि वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन, मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन की अपेक्षा अधिक होता है तब ऐसी वस्तु को विलासिता की वस्तु कहते हैं।

इस वर्गीकरण को निम्न तालिका द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :

वस्तुएँ	कीमत में वृद्धि होने पर	कीमत में कमी होने पर
(१) आवश्यक वस्तुएँ	माँग लगभग पहले जैसी ही रहती है।	माँग लगभग पहले जैसी ही रहती है।
(२) आरामदायक वस्तुएँ	माँग में आनुपातिक कमी कीमत में आनुपातिक वृद्धि के वरावर।	माँग में आनुपातिक वृद्धि कीमत में आनुपातिक कमी के वरावर।
(३) विलासिताएँ	माँग में आनुपातिक कमी कीमत में आनुपातिक वृद्धि से अधिक।	माँग में आनुपातिक वृद्धि कीमत में आनुपातिक कमी से अधिक।

क्या विलासिताओं का उपभोग उचित है ?
(IS CONSUMPTION OF LUXURIES BENEFICIAL TO SOCIETY ?)

विलासिताओं के उपभोग से मनुष्य की कार्यक्षमता में कोई वृद्धि नहीं होती है बल्कि कुछ ों में उसमें कमी हो जाती है। इसलिए एक प्रश्न यह उठता है कि क्या विलासिताओं का उप-उचित है या नहीं ? इस सम्बन्ध में इस बात पर कोई मतभेद नहीं हो सकता है कि 'हानि-विलासिताओं' का उपभोग नहीं होना चाहिए क्योंकि इनके प्रयोग से मनुष्य के स्वास्थ्य पर असर पड़ता है और उसकी कार्यक्षमता घटती है। वास्तव में, मतभेद 'हानिरहित विला-ओं' के सम्बन्ध में है, कुछ अर्थशास्त्री इनके उपभोग के पक्ष में हैं तथा कुछ इनका विरोध करते ोचे हम पक्ष तथा विपक्ष के तर्कों का अध्ययन करके ही एक निष्कर्ष पर पहुँचेंगे।

सिताओं के उपभोग के पक्ष में तर्क

(१) सामाजिक उन्नति तथा सभ्यता के विकास में सहायक—एक दृष्टि से विलासिताओं पभोग सामाजिक उन्नति करता है। विलासिताओं का उपभोग करने से एक समय के बाद ार्य तथा आरामदायक आवश्यकताओं में परिवर्तन हो जाता है। हमारे पूर्वजों के लिए जो ी विलासिताएँ थी, वे आज अनिवार्य तथा आरामदायक हो गयी हैं। इस प्रकार विलासिताओं पभोग से अनिवार्य तथा आरामदायक आवश्यकताओं में वृद्धि तथा विभिन्नता होती जाती है, ी पूर्ति के लिए अधिक प्रयत्न किये जाते है, नये-नये आविष्कार होते हैं और सामाजिक उन्नति सभ्यता में विकास होता है।

(२) कार्य-उत्साह तथा आर्थिक उन्नति को प्रोत्साहन—एक व्यक्ति जब दूसरों को विला-ा की वस्तु का प्रयोग करते देखता है तो उसकी इच्छा भी उसको प्रयोग करने की होती यदि उसके पास आर्थिक साधन कम होते हैं तो वह अधिक कार्य तथा परिश्रम करने को ाहित होता है ताकि अधिक धन कमा कर वह अपनी इच्छा की सन्तुष्टि कर सके। इस प्रकार ल व्यक्ति की ही नहीं बल्कि सामूहिक रूप से देश की आर्थिक उन्नति भी होती है।

(३) जीवन-स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनसंख्या में कमी—विलासिताओं के उपभोग सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति होती है और व्यक्तियों का जीवन-स्तर ऊँचा उठता है। अपने वन-स्तर को ऊँचा बनाये रखने के लिए व्यक्ति अपने परिवारों के आकार को छोटा रखने का त्न करते हैं। इस प्रकार जनसंख्या में कमी होती है जो कि अविकसित देशों के लिए अत्यन्त उपयुक्त है।

(४) कलाकौशल को प्रोत्साहन—प्रायः विलासिता की वस्तुएँ कलात्मक होती हैं और अच्छे ारीगरों द्वारा बनायी जाती है। अतः विलासिता की अधिक वस्तुओं के प्रयोग से अच्छे कारीगरों ो प्रोत्साहन मिलेगा और इस प्रकार देश में कला का विकास होगा।

(५) रोजगार में वृद्धि—विलासिता की विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के प्रयोग होने से ाभिन्न प्रकार के उद्योग धन्धे खुलते हैं, व्यापार बढ़ता है और अधिक मनुष्यों को रोजगार मलता है।

(६) धन संचय तथा बीमे का कार्य—विलासिता की कुछ वस्तुओं, जैसे—सोना, चाँदी, ीरे, जवाहरात इत्यादि के प्रयोग करने से व्यक्तियों के पास धन का संचय हो जाता है। इनको ा आवश्यकता पड़ने पर मुद्रा में परिवर्तित कर सकते हैं। इस प्रकार आर्थिक संकट के समय वलासिता की ये वस्तुएँ बीमे (insurance) का कार्य करती हैं।

(७) **राज्य की आय में वृद्धि**—प्राय: विलासिता की वस्तुओं पर अपेक्षाकृत अधिक [illegible] लगाया जाता है। अत: इनके अधिक प्रयोग से सरकार को अधिक कर-राशि प्राप्त होती है [illegible] उसकी आय में वृद्धि होती है। इस बढ़ी हुई आय को सरकार निर्धन व्यक्तियों के कल्याण [illegible] व्यय कर सकती है।

(८) **एक सीमा तक धन का निर्धनों को हस्तान्तरण**—विलासिता की वस्तुओं का [illegible] प्राय: धनी व्यक्तियों द्वारा किया जाता है परन्तु इनका निर्माण निर्धन व्यक्तियों द्वारा [illegible] है। इस प्रकार एक सीमा तक धनी व्यक्तियों से धन निर्धनों को हस्तान्तरण हो जाता है।

(९) **जीवन में नीरसता का दूर होना**—विलासिता की वस्तुओं के प्रयोग से व्यक्ति [illegible] अधिक सुख मिलता है; उनके जीवन की नीरसता दूर होती है और पूर्णतया सन्तुष्ट रहने के [illegible] उनकी कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती है।

विसासिताओं के विपक्ष में तर्क

(१) **सामाजिक असमानता तथा असन्तोष को प्रोत्साहन**—विलासिताओं का प्रयोग [illegible] थोड़े से धनी व्यक्तियों द्वारा ही किया जाता है; निर्धन व्यक्ति इनके प्रयोग से वंचित रहते [illegible] इस प्रकार धनी व्यक्तियों तथा निर्धन व्यक्तियों के बीच अन्तर या असमानता बढ़ती जाती [illegible] निर्धनों में असन्तोष फैलता है जिससे भयंकर हिंसात्मक परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं।

(२) **रोजगार में कोई विशेष वृद्धि नहीं होती**—विलासिता की वस्तुओं की माँग [illegible] थोड़े से धनी व्यक्तियों तक ही सीमित रहती है जबकि अनिवार्य तथा आरामदायक वस्तुओं [illegible] माँग समस्त समाज या देश द्वारा होती है। अत:, यदि विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन के [illegible] पर अनिवार्य तथा आरामदायक वस्तुओं का उत्पादन अधिक बढ़ाया जाये तो रोजगार के अ[illegible] में कहीं अधिक वृद्धि होगी।

(३) **उत्पादन कार्यों के लिए पूंजी की कमी**—यदि लोग अपना धन सोना, चाँदी, [illegible] जवाहरात इत्यादि जैसी विलासिता की वस्तुओं में लगा देते हैं तो देश में विभिन्न प्रकार के उत्पा[illegible] कार्यों के लिए धन तथा पूंजी की कमी हो जाती है और देश का आर्थिक विकास रुक जाता [illegible] उसकी गति बहुत कम हो जाती है। इसका एक अच्छा उदाहरण भारत है।

(४) **धन वितरण में असमानता**—वास्तव में, विलासिता की वस्तुओं के उत्पा[illegible] धन के वितरण में समानता नहीं आती बल्कि असमानता उत्पन्न होती है। इसका कारण है [illegible] आज के युग में विलासता की वस्तुओं का निर्माण छोटे या कुटीर उद्योगों में बहुत कम होता [illegible] अधिकांश उत्पादन बड़े पैमाने पर बड़े उद्योगों में ही होता है।

(५) **निर्धनों को कष्ट तथा उनकी कार्यक्षमता में कमी**—कभी-कभी निर्धन व्यक्ति [illegible] व्यक्तियों को देखकर कुछ विलासिता की वस्तुओं का प्रयोग करने लगते हैं। ऐसा करने में [illegible] अपनी कुछ अनिवार्य तथा आरामदायक वस्तुओं के उपभोग को बन्द करना पड़ता है क्योंकि [illegible] आय कम होती है। इसका परिणाम यह होता है कि उनको कष्ट होता है और उनकी कार्यक्ष[illegible] में कमी हो जाती है।

(६) **कला को प्रोत्साहन नहीं मिलता**—आज के युग में विलासिता की अधिकांश [illegible] का उत्पादन बड़े पैमाने के उद्योगों द्वारा होता है। अत: इनके उत्पादन में व्यक्तिगत [illegible] प्रोत्साहन नहीं मिलता।

निष्कर्ष—विलासिताओं के उपभोग के पक्ष तथा विपक्ष में दिये जाने वाले तर्कों का [illegible] करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि जब तक समाज या देश के प्रत्येक व्यक्ति को [illegible]

या आरामदायक वस्तुओं की प्राप्ति नहीं होती तब तक सामाजिक दृष्टि से विलासिताओं का प्रयोग उचित नहीं कहा जा सकता। हानिकारक विलासिताओं का प्रयोग तो सामाजिक दृष्टि से सकुन-उचित नहीं है।

११ उपयोगिता तथा सीमान्त विश्लेषण
[UTILITY AND MARGINAL ANALYSIS]

साधारण भाषा में उपयोगिता का अर्थ 'लाभदायकता' (usefulness) से लिया जाता है। दृष्टि से पानी, हवा, सूर्य की रोशनी इत्यादि बहुत अधिक उपयोगिता रखते हैं। परन्तु अर्थ-त्र में उपयोगिता शब्द का अर्थ साधारण अर्थ से भिन्न है तथा अधिक व्यापक है।

उपयोगिता का अर्थ
(MEANING OF UTILITY)

वस्तु की वह शक्ति, गुण या क्षमता (power, quality or capacity) जिससे किसी के की आवश्यकता की पूर्ति, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, (ि) जा सकती है, उपयोगिता कहलाती संक्षेप में, अर्थशास्त्र में किसी वस्तु की 'आवश्यकता-पूर्ति की शक्ति' (Want satisfying ver) को उपयोगिता कहते हैं।

उपयोगिता की उपर्युक्त परिभाषा को पूर्णरूप से समझने के लिए निम्न बातों का ध्यान ना आवश्यक है :

(१) उपयोगिता की परिभाषा के सम्बन्ध में हमें एक सूक्ष्म अन्तर (fine distinction) ध्यान देना आवश्यक है। 'सन्तुष्टि प्रदान करने की क्षमता' (capacity to give satisfac-(n) तथा 'वास्तव में प्राप्त सन्तुष्टि' (actual satisfaction rendered), दोनों में बारीक र है। प्रथम का अर्थ है किसी वस्तु से आशा की जाने वाली सन्तुष्टि अर्थात् 'अनुमानित ष्टि' (expected satisfaction); दूसरे का अर्थ है वस्तु का प्रयोग कर लेने के बाद जो ष्टि प्राप्त होती है अर्थात 'वास्तविक सन्तुष्टि' (realised satisfaction); इसे कुछ अर्थ-स्त्री 'सन्तोष... ते है। 'अनुमानित सन्तुष्टि', वास्तविक सन्तुष्टि ... : प्रश्न यह उठता है कि इन दोनों में से किसको ... आधुनिक अर्थशास्त्री, सामान्यतया, उपयोगिता ...थ अधिक विस्तृत विचार 'अनुमानित सन्तुष्टि' (expected satisfaction) से लेते हैं। ...मानित सन्तुष्टि' इच्छा की तीव्रता पर निर्भर करती है, वस्तु के लिए इच्छा जितनी तीव्र उतनी ही अधिक उससे सन्तुष्टि मिलने का अनुमान या आशा होगी। इसलिए 'अनुमानित ष्टि' (expected satisfaction) के स्थान पर 'इच्छा की तीव्रता (intensity of desire)

या केवल 'इच्छा करना' (desiredness) के शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। (Fraser) के अनुसार, "कुल मिलाकर, आधुनिक वर्षों में, विस्तृत परिभाषा पसन्द की जाती, उपयोगिता का अर्थ 'इच्छा करने' (desiredness) से लिया जाता है न कि (satisfyingness) से।"[1]

(२) अर्थशास्त्र में उपयोगिता का अर्थ 'लाभदायकता' (usefulness) या नैतिक (moral or ethical consideration) से सम्बन्धित नहीं होता। वस्तु की 'आवश्यकता-पूर्ति शक्ति' ही उपयोगिता है चाहे वस्तु लाभदायक हो या हानिकारक। शराब जैसी हानिकारक या विष जैसी घातक वस्तु भी उपयोगिता रखती है क्योंकि इनसे मनुष्य विशेष की आवश्यकता की पूर्ति होती है। किसी वस्तु की इच्छा (desire) की जाती है केवल यही बात उसको उपयोगिता से आभूषित (invest) करने के लिए पर्याप्त है, चाहे वह वस्तु हितकर हो या हानिदायक।

(३) उपयोगिता केवल वस्तुगत (objective) नहीं होती—इसका अर्थ है कि वस्तु के केवल आन्तरिक गुण को उपयोगिता कहना पूर्णतया उचित नहीं है। उदाहरणार्थ व्यक्ति के लिए पानी उपयोगी है, दूसरे व्यक्ति के लिए जो प्यासा नहीं है, पानी उपयोगी यदि उपयोगिता वस्तु के अन्दर निवास करती या केवल वस्तु का आन्तरिक गुण हो पानी दोनों व्यक्तियों के लिए उपयोगी होता, जबकि ऐसा नहीं है।

(४) वास्तव में, उपयोगिता व्यक्तिगत (subjective) तथा सापेक्षिक (rela है—इसका अर्थ है कि उपयोगिता व्यक्ति विशेष की इच्छा की तीव्रता पर, उसकी फैशन, तथा परिस्थितियों पर निर्भर करती है। सिगरेट पीने वाले के लिए सिगरेट दूसरे के लिए नहीं। अतः उपयोगिता व्यक्तिगत सापेक्षिक होने के कारण, व्यक्ति-व्यक्ति परिवर्तित होती रहती है। इतना ही नहीं एक व्यक्ति के लिए उपयोगिता भिन्न-भि बदलती रहती है; उदाहरणार्थ, आदतों में परिवर्तन हो जाने के कारण एक शराबी पीना छोड़ सकता है और फिर उसी व्यक्ति के लिए अब शराब उपयोगी नहीं रह ज एक व्यक्ति के लिए सर्दी में उपयोगी है परन्तु उसी व्यक्ति के लिए गर्मी में नहीं है।

संक्षेप में उपयोगिता का अर्थ इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है, उपयो लाभदायकता को और न तृप्ति को बताती है, बल्कि किसी वस्तु के लिए इच्छा को बताती है। प्रो० फ्रेजर (Fraser) के शब्दों में, यह केवल इच्छा करना (desiredness

क्या उपयोगिता एक गणनावाचक विचार है या क्रमवाचक विचार
(IS UTILITY AN ORDINAL OR A CARDINAL CONCEPT ?)

अथवा

क्या उपयोगिता को मापा जा सकता है ?
(CAN UTILITY BE MEASURED ?)

उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण हैं—(१) गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Appro

1 [illegible] in recent years, the wider definition is prefered and utility [illegible] rather than with satisfyingness."
2 [illegible] 'usefulness', not 'satisfaction' but the intensity of [illegible] Fraser, "It is simply desiredness."

नहीं है। यद्यपि मार्शल ने उपयोगिता को मापने के लिए द्रव्य रूपी पैमाने का प्रयोग किया, पर द्रव्य रूपी पैमाना निश्चित तथा स्थिर नहीं होता, वह बदलता रहता है।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण हिक्स का कहना है कि उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता और इसलिए उन्होंने उपयोगिता विश्लेषण (Utility-Analysis) के स्थान पर तटस्थता वक्र विश्लेपण (Indifference-Curve Analysis) की नवीन रीति निकाली जिसमें उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं है। (तटस्थता वक्र विश्लेपण के लिए अध्याय १८ देखिये।)

इस दृष्टिकोण को 'क्रमवाचक दृष्टिकोण' (Ordinal Approach) कहते हैं। इस दृष्टिकोण या विचारधारा के मानने वाले अर्थशास्त्रियों को '**क्रमवाचक अर्थशास्त्री**' (Ordi... कहा जाता है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि (first, second, third, and so on) ... **वाचक संख्याएँ**' (Ordinal numbers) कहा जाता है। ये संख्याएँ निरपेक्ष अन्तर (... difference) के सम्बन्ध में कुछ नहीं बतातीं और न इनको जोड़ा ही जा सकता है ... इस बात को बताती हैं कि द्वितीय प्रथम से अधिक है या तृतीय द्वितीय से अधिक है, प... कितना निरपेक्ष अन्तर है इसको नहीं जाना जा सकता। (इसके विपरीत 'गणनावाच... निरपेक्ष अन्तर को बताती हैं।)

"यह विचारधारा (view) गणनावाचक मात्राओं (cardinal quantities) को ही अस्वीकार करती है। इसके अनुसार उपयोगिताओं को केवल 'क्रमवाचक संख्याएँ' numbers) ही प्रदान (assign) की जा सकती हैं। उपयोगिताओं को एक क्रम ... व्यवस्थित (arrange) किया जा सकता है; उदाहरणार्थ, प्रथम, द्वितीय, इत्यादि। ... संख्यात्मक मात्रा या परिमाण (numerical magnitude) प्रदान नहीं किया जा... कमीज की उपयोगिता सेब की तुलना में अधिक हो सकती है, परन्तु एक व्यक्ति ... सकता कि कमीज की उपयोगिता कितनी अधिक है। क्रमवाचक दृष्टिकोण के लिए ... 'इकाई' (unit) का कोई अर्थ नहीं होता। जब व्यक्ति वस्तुओं का मूल्यांकन करते हैं ... मूल्य या महत्त्व के एक क्रम में व्यवस्थित करते हैं, वे उनको गणनावाचक संख्... करते।"[4] चूंकि उपयोगिताओं को क्रमवाचक संख्याएँ प्रदान की जाती हैं, इसलिए ... को '**क्रमवाचक दृष्टिकोण**' (Ordinal Approach) या '**क्रमवाचक उपयोगि...**' (Ordinal Utility Approach) या केवल '**क्रमवाचक उपयोगिता**' (Ord... कहते हैं।

निष्कर्ष—यद्यपि 'गणनावाचक दृष्टिकोण' पुराना मत है, परन्तु इसका अभी ... नहीं हुआ है। 'गणनावाचक अर्थशास्त्रियों' तथा 'क्रमवाचक अर्थशास्त्रियों' में ... चल रहा है। परन्तु अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री 'क्रमवाचक दृष्टिकोण' को मान... इनके अनुसार उपयोगिता एक गणनावाचक विचार (cardinal concept) नहीं ... विचार (ordinal concept) है।

---

4 "This view (i. e. ordinal approach) denies the very notion of cardi... utility. The only numbers that can be assigned to utilities are ordinal nu... can be arranged in *order*; for example, first, second, and so on. They ca... assigned numerical magnitude. A shirt may be said to have greater utilit... one may not say *how many times* the utility of the shirt is greater. A 'Un... no meaning for the ordinal approach When men value goods, they ... order of value; they do not attach cardinal numbers to them."

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता
(MARGINAL UTILITY AND TOTAL UTILITY)

सीमान्त उपयोगिता का अर्थ—किसी वस्तु की अन्तिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता, सीमान्त [उपयो]गिता होती है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई [(Add]itional unit) के प्रयोग से कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त उपयोगिता [कह]ते हैं। बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों में, "वस्तु की किसी मात्रा की सीमान्त उपयोगिता [कुल] उपयोगिता में वृद्धि है जो कि उपभोग में एक और इकाई के परिणामस्वरूप होती है।"[9]

सीमान्त उपयोगिता को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है :

रोटियों की संख्या	सीमान्त उपयोगिता	कुल उपयोगिता
१	४ Positive Utility	४
२	३	७
३	२	९
४	१	१०
५	० Zero Utility	१० → पूर्ण तृप्ति का बिन्दु (Point of Satiety)
६	−२ Negative Utility	८

उपर्युक्त उदाहरण में माना कि उपभोक्ता ३ रोटियों का उपभोग करता है तो उसको कुल [उप]योगिता ९ इकाइयों के बराबर मिलती है। यदि वह एक और रोटी (अर्थात् चौथी रोटी) का [उप]भोग करता है तो कुल उपयोगिता बढ़कर १० [इका]इयों के बराबर हो जाती है अर्थात् कुल उपयोगिता [में] वृद्धि एक इकाई के बराबर होती है। अतः ४ [रो]टियों की सीमान्त उपयोगिता एक इकाई के [बरा]बर हुई। उदाहरण से यह भी स्पष्ट है कि ४ [रो]टियों तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक (positive) [है।] अधिक रोटियों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता [कम] हो जाती है और ५वीं रोटी के प्रयोग से सीमान्त [उप]योगिता शून्य (Zero) हो जाती है, इस स्थान पर [कुल] उपयोगिता का बढ़ना बन्द हो जाता है और कुल [उप]योगिता अधिकतम हो जाती है। इसलिए इस बिन्दु [को पू]र्ण तृप्ति का बिन्दु (point of satiety) कहते [हैं।] यदि ५वीं रोटी के बाद और रोटियों का प्रयोग [किया] जाता है तो अनुपयोगिता होने लगती है अर्थात् सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक (Negative) [हो ज]ाती है। व्यवहार में उपभोक्ता सामान्यतया ५ रोटियों के बाद और रोटियों का उपभोग [करन]ा पसन्द नहीं करेगा। सीमान्त उपयोगिता रेखा (Marginal Utility Line) को चित्र नं० [२ में] दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि अधिक रोटियों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता
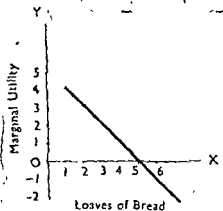
चित्र—२

[9] "The marginal utility of any quantity of a commodity is the increase in total utility which results from a unit increase in consumption." —*Boulding*

नहीं है। यद्यपि मार्शल ने उपयोगिता को मापने के लिए द्रव्य रूपी पैमाने का प्रयोग किया, पर द्रव्य रूपी पैमाना निश्चित तथा स्थिर नहीं होता, वह बदलता रहता है।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण हिक्स का कहना है कि उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता और इसलिए उन्होंने उपयोगिता विश्लेषण (Utility-Analysis) के स्थान पर तटस्थता वक्र विश्लेषण (Indifference-Curve Analysis) की नवीन रीति निकाली जिसमें उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं है। (तटस्थता वक्र विश्लेषण के लिए अध्याय १८ देखिये।)

इस दृष्टिकोण को **'क्रमवाचक दृष्टिकोण'** (Ordinal Approach) कहते हैं तथा इस दृष्टिकोण या विचारधारा के मानने वाले अर्थशास्त्रियों को **'क्रमवाचक अर्थशास्त्री'** (Ordinalists) कहा जाता है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि (first, second, third, and so on) को 'क्रमवाचक संख्याएँ' (Ordinal numbers) कहा जाता है। ये संख्याएँ निरपेक्ष अन्तर (absolute difference) के सम्बन्ध में कुछ नहीं बताती और न इनको जोड़ा ही जा सकता है। ये केवल इस बात को बताती हैं कि द्वितीय प्रथम से अधिक है या तृतीय द्वितीय से अधिक है, परन्तु उनमें कितना निरपेक्ष अन्तर है इसको नहीं जाना जा सकता। (इसके विपरीत 'गणनावाचक संख्याएँ' निरपेक्ष अन्तर को बताती हैं।)

"यह विचारधारा (view) गणनावाचक मात्राओं (cardinal quantities) के विचार को ही अस्वीकार करती है। इसके अनुसार उपयोगिताओं को केवल 'क्रमवाचक संख्याएँ' (Ordinal numbers) ही प्रदान (assign) की जा सकती हैं। उपयोगिताओं को एक क्रम (order) में व्यवस्थित (arrange) किया जा सकता है; उदाहरणार्थ, प्रथम, द्वितीय, इत्यादि। परन्तु उनको संख्यात्मक मात्रा या परिमाण (numerical magnitude) प्रदान नहीं किया जा सकता। एक कमीज की उपयोगिता सेब की तुलना में अधिक हो सकती है, परन्तु एक व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि कमीज की उपयोगिता कितनी अधिक है। क्रमवाचक दृष्टिकोण के लिए उपयोगिता की 'इकाई' (unit) का कोई अर्थ नहीं होता। जब व्यक्ति वस्तुओं का मूल्यांकन करते हैं, तो वे उनको मूल्य या महत्त्व के एक क्रम में व्यवस्थित करते हैं, वे उनको गणनावाचक संख्याएँ प्रदान नहीं करते।"[4] चूंकि उपयोगिताओं को क्रमवाचक संख्याएँ प्रदान की जाती हैं, इसलिए इस दृष्टिकोण को **'क्रमवाचक दृष्टिकोण'** (Ordinal Approach) या **'क्रमवाचक उपयोगिता दृष्टिकोण'** (Ordinal Utility Approach) या केवल **'क्रमवाचक उपयोगिता'** (Ordinal Utility) कहते हैं।

निष्कर्ष—यद्यपि 'गणनावाचक दृष्टिकोण' पुराना मत है, परन्तु इसका अभी बिलकुल अन्त नहीं हुआ है। 'गणनावाचक अर्थशास्त्रियों' तथा 'क्रमवाचक अर्थशास्त्रियों' में अभी तक विवाद चल रहा है। परन्तु अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री 'क्रमवाचक दृष्टिकोण' को मान्यता देते हैं। इनके अनुसार उपयोगिता एक गणनावाचक विचार (cardinal concept) नहीं बल्कि क्रमवाचक विचार (ordinal concept) है।

---

4 "This view (i. e. ordinal approach) denies the very notion of cardinal quantities of utility. The only numbers that can be assigned to utilities are ordinal numbers. They can be arranged in *order*; for example, first, second, and so on. They cannot however be assigned numerical magnitude. A shirt may be said to have greater utility than an apple, one may not say *how many times* the utility of the shirt is greater. A 'Unit' of utility has no meaning for the ordinal approach When men value goods, they arrange them in order of value; they do not attach cardinal numbers to them."

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता
(MARGINAL UTILITY AND TOTAL UTILITY)

सीमान्त उपयोगिता का अर्थ—किसी वस्तु की अन्तिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता, सीमान्त योगिता होती है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई dditional unit) के प्रयोग से कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त उपयोगिता ते हैं। बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों में, "वस्तु की किसी मात्रा की सीमान्त उपयोगिता र उपयोगिता में वृद्धि है जो कि उपभोग में एक और इकाई के परिणामस्वरूप होती है।"[9]

सीमान्त उपयोगिता को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है :

रोटियों की संख्या	सीमान्त उपयोगिता		कुल उपयोगिता
१	४	Positive Utility	४
२	३		७
३	२		९
४	१		१०
५	०	Zero Utility	१० →पूर्ण तृप्ति का बिन्दु
६	−२	Negative Utility	८ (Point of Satiety)

उपर्युक्त उदाहरण में माना कि उपभोक्ता ३ रोटियों का उपभोग करता है तो उसको कुल योगिता ९ इकाइयों के बराबर मिलती है। यदि वह एक और रोटी (अर्थात् चौथी रोटी) का भोग करता है तो कुल उपयोगिता बढ़कर १० इयों के बराबर हो जाती है अर्थात् कुल उपयोगिता वृद्धि एक इकाई के बराबर होती है। अतः ४ टियों की सीमान्त उपयोगिता एक इकाई के बर हुई। उदाहरण से यह भी स्पष्ट है कि ४ टियों तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक (positive) अधिक रोटियों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता म हो जाती है और ५वीं रोटी के प्रयोग से सीमान्त योगिता शून्य (Zero) हो जाती है, इस स्थान पर उपयोगिता का बढ़ना बन्द हो जाता है और कुल योगिता अधिकतम हो जाती है। इसलिए इस बिन्दु पूर्ण तृप्ति का बिन्दु (*point of satiety*) कहते यदि ५वीं रोटी के बाद और रोटियों का प्रयोग या जाता है तो अनुपयोगिता होने लगती है अर्थात् सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक (Negative) लगती है। व्यवहार में उपभोक्ता सामान्यतया ५ रोटियों के बाद और रोटियों का उपभोग ना पसन्द नहीं करेगा। सीमान्त उपयोगिता रेखा (Marginal Utility Line) को चित्र नं० में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि अधिक रोटियों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता
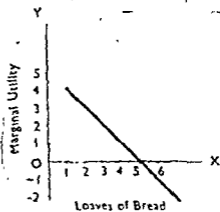
चित्र—२

---

[9] "The marginal utility of any quantity of a commodity is the increase in total utility which results from a unit increase in consumption."

(२) एक बिन्दु पर (अर्थात ५वीं रोटी पर) सीमान्त उपयोगिता घट कर शून्य हो जाती ए इस स्थान पर कुल उपयोगिता का बढ़ना बन्द हो जाता है और वह अधिकतम हो जाती इस बिन्दु को 'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु' (point of satiety) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, यह ा है कि जहाँ पर सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है वहाँ पर कुल उपयोगिता अधिकतम ।

(३) यदि पूर्ण तृप्ति के बिन्दु के बाद (अर्थात ५वीं रोटी के बाद) और अधिक रोटियों का किया जाता है तो उपयोगिता ऋणात्मक tive) हो जाती है और कुल उपयोगिता गिरने ।

चित्र—४

सीमान्त उपयोगिता र उपयोगिता के उप- म्बन्ध को चित्र नं० ४ देखाया जा सकता है। स्पष्ट है कि ४ रोटियों मान्त उपयोगिता गिरती और कुल उपयोगिता होती है। ५वीं रोटी मान्त उपयोगिता शून्य ती है तथा कुल उपयो- धिकतम हो जाती है। ाद रोटियों के प्रयोग करने से सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है और कुल उपयो- गिरने लगती है।
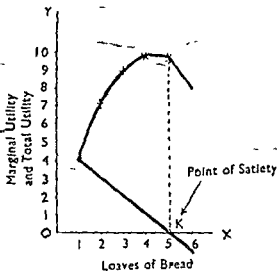
सीमान्त के विचार का महत्त्व
(IMPORTANCE OF THE CONCEPT OF MARGIN)

सीमान्त का विचार या सीमान्त विश्लेषण (marginal analysis) अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों ाख्या में एक महत्वपूर्ण पार्ट अदा करता है। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र के सभी क्षेत्रों अर्थात ग, विनिमय (मूल्य सिद्धान्त), उत्पादन, वितरण तथा राजस्व में किया जाता है। अतः प्रो० ० मेहता के शब्दों मे, "यह कहा जा सकता है कि लगभग समस्त आर्थिक ढाँचा सीमान्त उप- ा के विचार पर आधारित है।"[8] सीमान्त विश्लेषण या सीमान्त उपयोगिता के विचार का विभिन्न क्षेत्रों मे निम्न विवरण से स्पष्ट हो जाता है।

ग के क्षेत्र में—

सीमान्त उपयोगिता के विचार पर ही क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम, सम-सीमान्त उप- ता नियम, उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त तथा माँग का नियम आधारित है।

---

[8] "It can be said that almost the entire economic structure is based on the concep- on of marginal utility."

(१) सीमान्त उपयोगिता का अर्थ है, एक इकाई कम या एक अतिरिक्त इकाई के प्रयो[illegible] प्राप्त उपयोगिता। सीमान्त उपयोगिता का विचार बताता है कि जैसे-जैसे सीमान्त आगे [illegible] जाता है उपयोगिता कम हो जाती है अर्थात अधिकाधिक इकाइयों के प्रयोग से सीमान्त [illegible] घटती जाती है। और यही बात **उपयोगिता ह्रास नियम** बताता है।

(२) प्रत्येक व्यक्ति अपने सीमित साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह सीमान्त उपयोगिता की सहायता लेता है। वह अपनी सीमित [illegible] विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है कि व्यय किये हुये द्रव्य की सीमान्त उपयो[illegible] प्रत्येक दिशा में बराबर हों; यदि किसी एक दिशा में, दूसरी दिशा की अपेक्षा सीमान्त उपयो[illegible] कम है तो वह प्रथम प्रयोग से द्रव्य को निकाल कर दूसरे प्रयोग में लगायेगा ताकि दोनों प्रयो[illegible] सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर हो जायें और उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। यही बात [illegible] **सीमान्त उपयोगिता नियम**' बताता है।

(३) '**उपभोक्ता की बचत**' का सिद्धान्त भी सीमान्त उपयोगिता के विचार पर आ[illegible] है। किसी वस्तु की सीमान्त इकाई से पहले की इकाइयों पर एक व्यक्ति को 'उपभोक्ता की [illegible] प्राप्त होती है। सीमान्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता ठीक उसके लिए दी जाने वाली कीमत के [illegible] वर होती है और इसलिए सीमान्त इकाई पर कोई बचत नहीं होती।

(४) **माँग का नियम** उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है और उपयोगिता ह्रास [illegible] सीमान्त उपयोगिता पर आधारित है; इस प्रकार माँग का नियम भी सीमान्त उपयोगिता [illegible] पर निर्भर करता है।

मूल्य निर्धारण (अर्थात विनिमय) के क्षेत्र में

वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में सीमान्त उपयोगिता का विचार एक महत्त्वपूर्ण [illegible] करता है। एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए कितनी कीमत देगा यह बात उस वस्तु से प्रा[illegible] वाली सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर करेगी। वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता के [illegible] वर होने की प्रवृत्ति रखती है। एक वस्तु को तब तक खरीदा जायेगा जब तक वस्तु की [illegible] उपयोगिता घटकर उसके लिए दी जाने वाली कीमत के बराबर न हो जाये। वस्तु की एक [illegible] रिक्त इकाई या एक इकाई कम की उपयोगिता (**अर्थात सीमान्त उपयोगिता**) ही वस्तु की [illegible] **को प्रभावित करती है, न कि वस्तु की सभी इकाइयाँ** (जो कि हमारे पास है) की [illegible] प्रत्येक उपभोक्ता वस्तु को खरीदते समय यह सोचता है कि उसे कहाँ रुकना है, उसे वस्तु [illegible] सम्बन्ध में खरीद की सीमा (margin) को निर्धारित करना होता है अर्थात सीमान्त उप[illegible] अधिक कीमत वह नहीं देना चाहेगा। दूसरे शब्दों में, "**कीमत के द्वारा कुल उपयोगिता नहीं सीमान्त उपयोगिता मापी जाती है।**"[1]

कभी-कभी यह कहा जाता है कि उत्पादन-व्यय (cost of production), न [illegible] उपयोगिता, मूल्य का मुख्य निर्धारक है। इस सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखने की हैं। प्र[illegible] कि प्रो० जे० के० मेहता का कथन है कि हमें यही नहीं भूलना चाहिए कि उत्पादन-व्यय स्व[illegible] साधनों की सीमान्त उपयोगिताओं (अर्थात सीमान्त उत्पादकताओं) द्वारा निर्धारित हो[illegible]

---

[1] "It is marginal utility, and not total utility, that is measured by price."

"Sometimes it is said that cost of production and not marginal utility is the de[illegible] [illegible]minant of value. But those who uphold this theory overlook the fact that [illegible] [illegible] itself is determined by marginnl utilities of factors of production."

रे मूल्य निर्धारण की एक सीमा सीमान्त उपयोगिता तथा दूसरी उत्पादन-व्यय द्वारा निर्धारित ती है और मूल्य इन दोनों सीमाओं के बीच निर्धारित होता है। सन्तुलन-मूल्य (equilibrium ice) पर दोनों सीमाएँ बराबर होती हैं अर्थात मूल्य, उत्पादन व्यय (अर्थात सीमान्त लागत) । सीमान्त उपयोगिता दोनों के बराबर होता है। अतः सन्तुलन की स्थिति में सब सीमान्त योगिता बराबर होती है और मूल्य इन सीमान्त उपयोगिताओं के बराबर होता है।

रण के क्षेत्र में

प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही पुरस्कार (reward) दिया ता है। इस प्रकार सीमान्त का विचार उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार को निर्धारित करता है।

स्व के क्षेत्र में

(i) सरकार भी, एक व्यक्ति की भाँति, अपनी सीमित आय को इस प्रकार व्यय करना ती है ताकि समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इसके लिए यह सीमान्त उपयोगिता के ार की सहायता लेती है। सरकार अपनी सीमित आय को विभिन्न मदों पर इस प्रकार व्यय ती है कि प्रत्येक दिशा में 'सीमान्त सामाजिक उपयोगिताएँ' बराबर हों, तभी समाज को अधिक- लाभ प्राप्त होगा। इसी सिद्धान्त को 'अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त' (Principle of ximum Social Advantage) कहा जाता है। (ii) इसके अतिरिक्त धनवान लोगों पर क कर लगाने के पीछे सीमान्त उपयोगिता का विचार ही काम करता है। निर्धन लोगों के धन की सीमान्त उपयोगिता अधिक होती है जबकि धनवान व्यक्तियों के लिए धन की त उपयोगिता कम होती है; अतः सरकार धनवान व्यक्तियों पर अधिक कर तथा निर्धन पर र लगाती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सीमान्त उपयोगिता या सीमान्त विश्लेषण का अर्थशास्त्र महत्त्व है और इसका प्रयोग प्रत्येक क्षेत्र में होता है।

सीमान्त विश्लेषण की मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS OF THE MARGINAL ANALYSIS)

सीमान्त विश्लेषण कुछ मान्यताओं पर आधारित है जो कि सदैव सही नहीं होती। मुख्य ताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) सीमान्त विश्लेषण माँग और पूर्ति के सम्बन्ध में निरन्तरता (continuity) को कर चलता है। दूसरे शब्दों में, यह मान लिया जाता है कि कीमत में सूक्ष्म परिवर्तनों के [illegible] (२) यह मान लिया जाता है कि वस्तु [illegible] हैं। (३) यह भी मान लिया जाता [illegible] कार्य करता है। (४) किसी समय में 'आवश्यकताएँ' अपरिवर्तित रहती हैं। (५) यह मानकर चला जाता है कि मनुष्य के व्यय करने के लिए एक निश्चित स्थिर आय है। (६) यह भी मान लिया जाता है कि बहुत क क्रेता तथा विक्रेता होते हैं और व्यक्ति विशेष उनमें से केवल एक होता है।

सीमान्त विश्लेषण की आलोचना
(CRITICISM OF MARGINAL ANALYSIS)

सीमान्त विश्लेषण की अधिकांश आलोचनाएँ, इसकी अव्यावहारिक मान्यताओं के प्रति हैं। आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) मांग तथा पूर्ति के सम्बन्ध में निरन्तरता (continuity) का मानना ठीक नहीं क्योंकि व्यावहारिक जीवन में वस्तुओं की कीमतों में सूक्ष्म परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मांग पूर्ति में सदैव परिवर्तन नहीं होता। टिकाऊ वस्तुओं (durable goods) जैसे रेडियो, साइकिल इत्यादि को तो एक पूर्ण इकाई के रूप में ही खरीदा जा सकता है इनकी कीमतों में परिवर्तन होने पर इनको टुकड़े-टुकड़े करके नहीं खरीदा जा सकता है। (२) वस्तु की सभी इयों को बिलकुल एक रूप मानना भी उचित नहीं है क्योंकि व्यावहारिक जीवन में उनमें पायी जाती है। (३) यह मानना ठीक नहीं है कि मनुष्य सदैव विवेकपूर्ण तरीके से कार्य है। वह व्यावहारिक जीवन में रीति-रिवाजों, आदतों तथा भावनाओं इत्यादि से प्रभावित कार्य करता है। (४) इसी प्रकार अन्य मानताएँ जैसे, आय का स्थिर मानना, आवश्यकताओं परिवर्तन न होना, इत्यादि भी व्यावहारिक दृष्टि से गलत हैं। (५) उपयोगिता (या सीमान्त योगिता) एक मनोवैज्ञानिक विचार है जो कि एक ही वस्तु के सम्बन्ध में न केवल विभिन्न के साथ भिन्न होती हैं वल्कि एक व्यक्ति के साथ विभिन्न समयों पर भिन्न होती है। उसको ठीक प्रकार से मालूम नहीं किया जा सकता; इसका परिमाणात्मक मापन (quantit measurement) भी ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता। (६) सीमान्त विश्लेषण का प्रयोग पक अर्थशास्त्र' (macro-economics) में सीमित हो जाता है क्योंकि सीमान्त विश्लेपण व्यक्ति या सूक्ष्म दृष्टिकोण (micro-approach) रखता है।

सीमान्त विश्लेषण के सम्बन्ध में निष्कर्ष
(CONCLUSION REGARDING MARGINAL ANALYSIS)

उपर्युक्त मान्यताओं तथा आलोचनाओं के होते हुए भी सीमान्त विश्लेपण का अर्थ में वहुत महत्त्व है और आज भी वह आर्थिक समस्याओं के समझने तथा उनके हल करने में योग देता है। आधुनिक अर्थशास्त्री अब अर्थशास्त्र के अध्ययन में 'कुल व्यवहार' (aggregate behaviour) पर, अपेक्षाकृत 'व्यक्तिगत व्यवहार' (individual behaviour) के, अधिक देने लगे हैं। ऐसी स्थिति में सीमान्त विश्लेषण का महत्व कुछ कम हो जाता है क्योंकि विश्लेपण व्यक्तिगत या सूक्ष्म अर्थशास्त्र (Micro-economics) के लिए अधिक उपयु और 'व्यापक अर्थशास्त्र' (Macro-economics) के अध्ययन के लिए इसका प्रयोग तथा कम है।

२

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम

[LAW OF DIMINISHING MARGINAL UTILITY]

का आधार (Basis of the Law)

'उपयोगिता ह्रास नियम' उपभोग के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण नियम है। इस नियम को अर्थशास्त्री गोसेन (Gossen) के नाम पर गोसेन का प्रथम नियम (Gossen's First Law) प्ति का नियम' (Law of Satiety) भी कहा जाता है। यद्यपि आवश्यकताएँ अनन्त होती तु उनकी एक विशेषता यह है कि एक समय पर किसी आवश्यकता विशेष की सन्तुष्टि की ती है। आवश्यकता के इसी गुण पर उपयोगिता ह्रास नियम आधारित है। दैनिक जीवन यह अनुभव करते हैं कि यदि किसी वस्तु की अधिक इकाइयाँ उपभोक्ता के पास बढ़ती है तो उस वस्तु की बाद की आने वाली इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता कम होती हैं और एक सीमा के बाद यह उपयोगिता बिलकुल नहीं रह जाती है अर्थात पूर्ण तृप्ति हो है। दैनिक जीवन के इसी अनुभव के आधार पर अर्थशास्त्रियों ने 'सीमान्त उपयोगिता ह्रास का प्रतिपादन किया है।

त उपयोगिता ह्रास नियम का कथन (Statement of Diminishing Marginal Utility)

(१) प्रो० मार्शल ने इस नियम की परिभाषा इस प्रकार दी है, "किसी मनुष्य के पास वस्तु के स्टाक की मात्रा में वृद्धि होने से जो अतिरिक्त लाभ (additional benefit) उसको होता है तो, अन्य बातों के समान रहने पर, यह वस्तु के स्टाक की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ घटता जाता है।"[1]

(२) कुछ दशाओं में यह सम्भव हो सकता है किसी वस्तु की एक या दो इकाइयों के से सीमान्त उपयोगिता बढ़े और तत्पश्चात घटनी शुरू हो। अतः ऐसी सम्भावना को ध्यान ते हुए आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम के कथन में 'एक सीमा के बाद' 'एक बिन्दु के बाद' r a point) या 'अन्त में' (eventually) शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसी एक परिभाषा त आधुनिक अर्थशास्त्री प्रो० बोल्डिंग ने दी है, "जब कोई उपभोक्ता, अन्य वस्तुओं के उप-को स्थिर रखते हुए, किसी एक वस्तु के उपभोग को बढ़ाता है तो परिवर्तनशील वस्तु iable commodity) की सीमान्त उपयोगिता अन्त में अवश्य घटती है।"[2]

The additional benefit which a person derives from a given increase of a stock of a ing diminishes, other things being equal, with every increase in the stock that he lready has." —*Marshall*

As a consumer increases the consumption of any one commodity, keeping constant e consumption of all other commodities, the marginal utility of the variable commodity must eventually decline." —

(३) इस नियम को कुल उपयोगिता के शब्दों में भी पारिभाषित किया जाता है।[3] रौस (Ross) के अनुसार, "कुल उपयोगिता के शब्दों में इस नियम का अर्थ है कि जैसे-जैसे [illegible] वस्तु की अधिक इकाइयों का उपभोग या क्रय किया जाता है, तो कुल उपयोगिता अन्त में [illegible] हुयी दर से बढ़ती है।"[4]

घटती हुई सीमान्त उपयोगिता के कारण (Reasons for Diminishing Marginal U[illegible])

प्रो० बोल्डिंग ने घटती हुई सीमान्त उपयोगिता नियम के निम्न दो मुख[illegible] बताये हैं :—

(१) **वस्तुएँ एक दूसरे की अपूर्ण स्थानापन्न होती हैं** (Commodities are Imp[illegible] Substitutes)—व्यवहार में वस्तुएँ एक दूसरे के स्थान पर पूर्णतया प्रस्थापित नहीं की जा[illegible] हैं; दूसरे शब्दों में, वस्तुओं को उचित अनुपातों में ही प्रयोग किया जा सकता है।[5] मान [illegible] रोटी की मात्रा के साथ मक्खन की Y मात्रा का प्रयोग उचित अनुपात को बताता है। यदि [illegible] की X मात्रा को स्थिर रखा जाये तथा मक्खन की मात्रा में वृद्धि करते चलें तो मक्खन की [illegible]त्तर (successive) इकाइयों से घटती हुई सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होगी।

(२) **विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है** (Satiability of Parti[illegible] Wants)—किसी भी आवश्यकता विशेष की पूर्ति की जा सकती है। हमारे उपभोग [illegible] क्षमता (capacity) सीमित है और हम किसी वस्तु की अनन्त मात्रा का उपभोग नहीं कर [illegible] वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों का प्रयोग करने से एक बिन्दु ऐसा आ जाता है जहाँ पर [illegible] मिल जाती है तथा वस्तु की अधिक इकाइयों के प्रयोग से सन्तुष्टि को बढ़ाया नहीं जा [illegible] स्पष्ट है कि वस्तु की अधिक इकाइयों के प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता गिरती जाती है [illegible] में शून्य हो जाती है और इस स्थिति में कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है।

उदाहरण द्वारा नियम की व्याख्या

निम्न तालिका एक उपभोक्ता के लिए रोटियों के उपभोग से प्राप्त उप[illegible] बताती है :

रोटियों की संख्या	सीमान्त उपयोगिता	कुल उपयोगि[illegible]
०	—	०
१	२	२
२	४	३
३	२	८
४	१	६
५	० →पूर्ण तृप्ति का विन्दु	←६
६	—२	७

3 [illegible] इकाइयों (additional units) के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि [illegible] [illegible] है। अतः घटती हुई सीमान्त उपयोगिता के नियम को कुल [illegible] शब्दों में भी [illegible] कर सकते हैं। उपयोगिता ह्रास नियम बताता है कि किसी वस्तु [illegible] [illegible] इकाइयों (successive units) का प्रयोग या उपभोग करने में कुल [illegible] [illegible] मात्रा में वृद्धि होती है; अर्थात्, कुल उपयोगिता घटती हुई दर से [illegible]

4 [illegible] utility this (i.e. the law) means that as more units of [illegible] [illegible], total utility eventually increases at a decreasing rate."

5 [illegible] are not perfectly substitutable one for the other. That is to [illegible] [illegible] proportions in which commodities tend to be consumed."

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि यदि उपभोक्ता २ रोटियों का प्रयोग करता है तो प्रारम्भ
मान्त उपयोगिता बढ़ती है अर्थात् दूसरी रोटी की उपयोगिता, पहली की अपेक्षा अधिक है।
दूसरी रोटी के बाद से (अर्थात् एक सीमा के बाद से) अधिक रोटियों के प्रयोग से सीमान्त
गिता घटने लगती है अर्थात् कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ती है। चौथी रोटी पर
त उपयोगिता घट कर १ इकाई के बराबर हो जाती है और कुल उपयोगिता बढ़ कर ६
यों के बराबर हो जाती है। यदि अब एक और रोटी अर्थात् पाँचवीं रोटी का प्रयोग किया
है तो सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है और कुल उपयोगिता का बढ़ना बन्द हो जाता
र्थात् उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो जाती है। इस बिन्दु को 'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु'
nt of satiety) कहते हैं। इस पूर्ण तृप्ति के बिन्दु के बाद यदि एक और रोटी अर्थात् ६वीं
का उपभोग किया जायेगा तो उपभोक्ता को ऋणात्मक उपयोगिता (अर्थात् अनुपयोगिता)
होगी, व्यवहार में, सामान्यतया, वह ६वीं रोटी का उपभोग नहीं करेगा।

द्वारा निरूपण (Diagramatic Representation)

चित्र नं० ५ के दो भाग हैं। नीचे के भाग में नियम को सीमान्त उपयोगिता के शब्दों में
ऊपर के भाग में कुल उपयोगिता के शब्दों में व्यक्त किया गया है। चित्र के नीचे के भाग से
है कि रोटियों की उत्तरोत्तर इकाइयों का उपभोग करने से प्रारम्भ में हो सकता है कि
त उपयोगिता बढ़े, परन्तु एक बिन्दु के बाद (माना दूसरी रोटी के बाद) से सीमान्त उप-
गिरने लगती है, अतः सीमान्त उपयोगिता रेखा (अर्थात् MU Curve) गिरती हुई रेखा
है। ५वीं इकाई पर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है अर्थात् उपभोक्ता को पूर्ण तृप्ति
जाती है, अतः इस बिन्दु (S) को 'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु' (point of satiety) कहा
है।

चित्र नं० ५ के ऊपर के भाग में कुल उपयोगिता रेखा (अर्थात TU-curve) का प्रारम्भिक
BF, X-axis के प्रति उन्नतोदर (convex) है जिसका अर्थ है कि प्रारम्भ में (माना वस्तु
इकाइयों के प्रयोग तक) कुल उपयोगिता बढ़ती हुयी गति से बढ़ती है।[6] दूसरे शब्दों में, जब
मान्त उपयोगिता बढ़ती है तब तक कुल उपयोगिता बढ़ती हुयी गति से बढ़ेगी, अर्थात कुल
गिता रेखा (TU-curve) X-axis के प्रति उन्नतोदर होगी; चित्र से स्पष्ट है कि R बिन्दु तक
त उपयोगिता बढ़ती है; इसलिए कुल उपयोगिता रेखा F बिन्दु तक, जो कि बिन्दु R के ठीक
है, X-axis के प्रति उन्नतोदर होगी। बिन्दु R के बाद सीमान्त उपयोगिता गिरने लगती
लिए F बिन्दु के बाद से कुल उपयोगिता घटती हुयी दर से बढ़ती है, अर्थात कुल उपयोगिता
(TU-curve) X-axis के प्रति नतोदर (Concave) हो जाती है। चित्र से स्पष्ट है कि
इकाई के बाद तीसरी इकाई का प्रयोग करने से कुल उपयोगिता में वृद्धि KM के बराबर

---

[6] अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए नोट : यदि कुल उपयोगिता बढ़ती हुयी गति से बढ़ती है
तो कुल उपयोगिता रेखा को X-axis के प्रति उन्नतोदर (Convex) बनाया जाता है। यदि
कुल उपयोगिता घटती हुयी दर से बढ़ती है तो 'कुल उपयोगिता रेखा' को X-axis के प्रति
नतोदर (Concave) बनाया जाता है। इन दोनों बातों को इस अध्याय के परिशिष्ट (App-
endix) में पूर्णतया स्पष्ट किया गया है; अतः चित्र नं० ५ के ऊपर के भाग को समझने के लिए
परिशिष्ट को पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। अध्यापकों से निवेदन है कि विद्यार्थियों को चित्र
नं० ५ की व्याख्या करने से पहले वे इस अध्याय की परिशिष्ट को समझाने का कष्ट करेंगे।

होती है, चौथी इकाई के प्रयोग करने से कुल उपयोगिता में वृद्धि PT के बराबर होती है; PT कम है KM से। स्पष्ट है कि कुल उपयोगिता घटती हुयी दर से बढ़ती है। पाँचवीं इकाई अर्थात बिन्दु C पर उपयोगिता अधिकतम हो जाती है (क्योंकि वहाँ पर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है); अतः बिन्दु G 'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु' है। पाँचवीं इकाई के बाद से TU-रेखा गिरने लगती है क्योंकि सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक (negative) हो जाती है। बिन्दु 'F' से पहले तक कुल उपयोगिता रेखा उन्नतोदर है और F बिन्दु पर वह मोड़ लेती है तथा नतोदर हो जाती है; इसलिए बिन्दु 'F' को 'मोड़ का बिन्दु' (Point of Flexure) कहते हैं। यदि प्रारम्भ में सीमान्त उपयोगिता नहीं बढ़ती बल्कि घटती है, तो इसका अर्थ है कि प्रारम्भ से ही कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ेगी, अर्थात TU-रेखा का प्रारम्भिक भाग ADF X-axis के प्रति नतोदर होगा, और TU-रेखा का आकार ADFKPCL होगा न कि ABFKPCL।
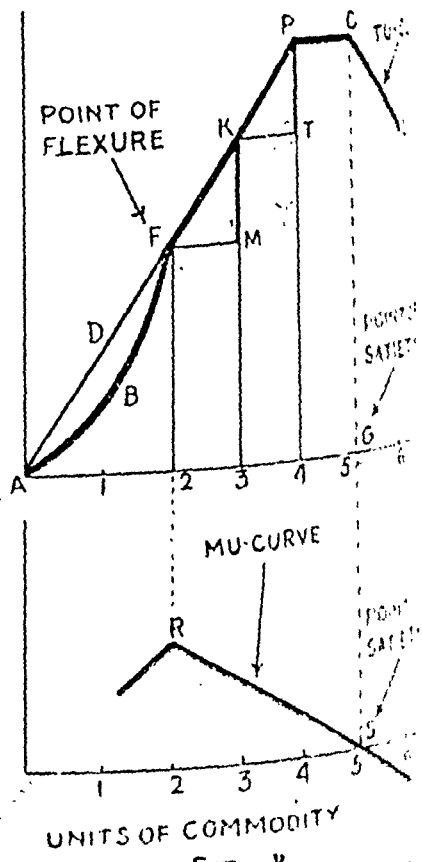
चित्र—५

नियम की मान्यताएँ या शर्तें या सीमाएँ (Assumptions or Conditions or Li

पयोगिता अधिक होगी। अतः नियम के लागू होने के लिए आवश्यक है कि वस्तु की सभी इका-
ई, गुण तथा मात्रा में समान हों।

(३) वस्तु की इकाइयों का उपभोग लगातार होना चाहिए—यदि एक रोटी सुबह खाई
ये तथा दूसरी रोटी ४ घण्टे बाद तो निश्चय ही दूसरी रोटी की उपयोगिता अधिक होगी।

(४) वस्तु के मूल्य में परिवर्तन नहीं होना चाहिए—उदाहरणार्थ, माना कि सन्तरों की
मत २५ पैसे प्रति इकाई है। यदि दो सन्तरों का उपभोग करने के बाद दूकानदार ५ पैसे प्रति
तरा देने को तत्पर है तो निश्चय ही तीसरे सन्तरे की उपयोगिता [illegible]
गी।

(५) वस्तु की स्थानापन्न वस्तुओं (substitutes) [illegible]—
दाहरणार्थ, चाय की स्थानापन्न वस्तु काफी है। [illegible]
पेक्षाकृत सस्ती रहेगी, उसकी माँग बढ़ेगी तथा उपयोगिता [illegible]

(६) उपभोक्ता की मानसिक स्थिति में कोई [illegible]—उदाहरणार्थ,
न रोटी खाने के बाद यदि उपभोक्ता शराब या [illegible]
सकी मानसिक स्थिति में परिवर्तन हो जायेगा, [illegible]
सी स्थिति में चौथी रोटी की उपयोगिता तीसरी की [illegible]
गा।

तथा दिखावटी है क्योंकि नियम की यह एक मान्यता है कि नियम के लागू होने
इकाइयाँ उपयुक्त (proper or suitable) हों जबकि बूँद-बूँद पानी या रोटी के
उपयुक्त इकाइयाँ नहीं हैं।

(२) यह कहा जाता है कि **दुर्लभ तथा विभिन्न वस्तुओं जैसे, पुराने सि**
टिकट (Stamps) इत्यादि के संग्रह में यह नियम लागू नहीं होता। एक व्यक्ति के
का जितना अधिक संग्रह होगा उतनी ही अधिक उपयोगिता उसको मिलेगी।
भी दिखावटी है। **प्रथम**, इन वस्तुओं की इकाइयाँ समान नहीं होतीं, भिन्न-भिन्न
प्रकार के टिकटों या सिक्कों का संग्रह किया जाता है। **दूसरे**, जैसा कि वीनर (
है, इन वस्तुओं के एक वर्ग या सेट (group or set) पर विचार करना चाहि
लागू होगा। उदाहरणार्थ रानी विक्टोरिया के टिकटों के एक सेट (set) के व
उपयोगिता अवश्य घटेगी।

(३) **मुद्रा संचय, शक्ति संचय, दिखावट तथा शान-शौकत की इच्छा, इ**
के अपवाद बताये जाते हैं। अधिक शक्ति या अधिक मुद्रा इत्यादि को प्राप्त कर
घटती नहीं बल्कि बढ़ती है। परन्तु यह अपवाद भी दिखावटी है। **प्रथम**, मुद्रा सं
इत्यादि एक आवश्यकता या एक वस्तु नहीं हैं, ये तो बहुत-सी आवश्यकताओं
सामूहिक नाम है; जबकि नियम की मान्यता है कि एक वस्तु या एक आवश्यकता
दूसरे, इसमें कोई सन्देह नहीं कि धनवान व्यक्तियों के लिए, निर्धनों की अपेक्षा,
उपयोगिता कम होती है।

(४) **यह कहा जाता है कि मादक वस्तुओं, जैसे, शराब इत्यादि के उपभो**
लागू नहीं होता क्योंकि शराब के उत्तरोत्तर प्यालों से उपयोगिता बढ़ती है घटती
अपवाद भी असत्य तथा दिखावटी है। **प्रथम**, शराब के १-२ प्याले पीने के बाद शर
स्थिति में परिवर्तन हो जाता है, जबकि नियम के लागू होने के लिए मानसिक
नहीं होना चाहिए। **दूसरे**, एक सीमा के बाद शराब के अधिक प्याले पीने से उ
कम होती है।

(२) टाउसिग (Taussig) का कहना है कि सुन्दर कविता को बार-बार सुनने से उसकी ता घटती नहीं बल्कि बढ़ती है और यह नियम लागू नहीं होता। परन्तु एक सीमा के बाद को बार-बार सुनने से उपयोगिता अवश्य गिरती जायेगी।

(१) प्रो० टाउसिग का कथन ठीक है—"यह प्रवृत्ति (सीमान्त उपयोगिता ह्रास की) इतने रूप में तथा इतने कम अपवादों के साथ दिखायी देती है कि इसे सर्वव्यापी कहने में कोई पूर्ण गलती नहीं होगी।"[7]

(२) यदि आधुनिक अर्थशास्त्रियों (Boulding and others) की परिभाषाओं को ध्यान तो इस नियम के वास्तविक अपवाद भी अपवाद नहीं रह जाते। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने त को अनुभव किया कि किसी वस्तु के प्रयोग से यह हो सकता है कि प्रारम्भ में उपयोगिता बढ़े एक सीमा के बाद वह अवश्य गिरने लगेगी। इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्री नियम की संशो-रिभाषा में 'एक बिन्दु के बाद' या 'एक सीमा के बाद' या 'अन्त में' (eventually) वाक्यांशों योग करते हैं, अर्थात एक बिन्दु के बाद से उपयोगिता अवश्य घटेगी। इस प्रकार की एक पा प्रो० बोल्डिंग ने दी है जिसको हम पहले लिख चुके हैं। अतः, यदि मान्यताएँ पूर्ववत है तो आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, इस नियम का कोई अपवाद नहीं रह जाता और पूर्ण रूप से सर्वव्यापी हो जाता है।

नियम का महत्व
(IMPORTANCE OF LAW)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के निम्नलिखित महत्व हैं :

(१) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन इस नियम के क्रियाशील होने के कारण है—जब किसी वस्तु की पूर्ति अधिक हो जाती है तो उपभोक्ताओं के लिए उसकी उपयोगिता होने लगती है। अतः उत्पादक उत्पत्ति के साधनों को उस वस्तु के उत्पादन से हटाकर दूसरी के उत्पादन में लगा देता है और इस प्रकार विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन होता ा है। टाउसिग ने ठीक कहा है, "यह नियम उत्पादित वस्तुओं में बढ़ती हुई विभिन्नता तथा दन और उपभोग के जटिल होते जाने की व्याख्या करता है।"[8]

(२) यह नियम 'माँग के नियम' की व्याख्या करता है, अर्थात इस बात पर प्रकाश डालता क माँग रेखा दाएँ को गिरती हुई क्यों होती है—यदि उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक इयों का प्रयोग करता है तो उसके लिए वस्तु की उपयोगिता कम होती जाती है, इसलिए वह की अधिक मात्रा प्रयोग करने के लिए कम कीमत देना चाहेगा। दूसरे शब्दों में, वस्तु की कम त पर (अर्थात कीमत गिर जाने पर) उसकी अधिक मात्रा का प्रयोग (अर्थात अधिक मात्रा माँग) करेगा। यही बात माँग का नियम बताता है। इसी प्रकार वस्तु की कम इकाइयों का ग करने से उसकी उपयोगिता अधिक होगी, इसलिए उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा प्रयोग करने लिए अधिक कीमत दे सकेगा। दूसरे शब्दों में, वस्तु की ऊँची कीमत पर उसकी कम मात्रा की ग करेगा। यही बात माँग का नियम बताता है।

---

[7] "The tendency (*i.e.*, Diminishing Marginal Utility) shows itself so widely and with so few exceptions that there is no significant inaccuracy in speaking of it as universal." —*Taussig*

[8] "It is this fact of Diminishing Utility that explains the growing variety in the articles produced and the growing complexity of production and consumption." —*Taussig*

चित्र—६

चित्र—७

यदि हम तर्क (अ) तथा (ब) को उल्टे तरीके से देखें, जैसा कि लम्बे तीर बताते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा माँगी जायेगी और अधिक पर वस्तु की कम मात्रा माँगी जायेगी। यही माँग का नियम है।

(३) यह नियम 'आधुनिक कर प्रणाली' का आधार है—अधिक धन होने के कारण व्यक्तियों के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता, गरीबों की अपेक्षा, कम होती है। सरकार धनवानों पर अधिक कर लगाती है और गरीबों पर कम। दूसरे शब्दों में, वर्द्धमान **प्रणाली** (progressive taxation) **उपयोगिता ह्रास नियम पर ही आधारित है।**

(४) सम सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of equi-marginal utility) भी उप **ह्रास नियम पर आधारित है**—प्रत्येक व्यक्ति अपने सीमित साधनों से अधिकतम सन्तोष करना चाहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपभोक्ता सबसे प्रथम उस वस्तु पर अपनी आय को व्यय करता है जो कि उसके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। परन्तु जब वह वस्तु पर अपना धन व्यय करता जाता है तो क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम के कारण उपयोगिता गिरती जाती है और उपभोक्ता को अनुभव होता है अब उसकी यह आ अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं रह गयी है बल्कि दूसरी आवश्यकता अधिक महत्त्वपूर्ण है। ऐसा होते ही वह द्रव्य को पहले कम लाभदायक प्रयोग से दूसरे अधिक लाभदायक प्रयोग में न्तरित कर देता है। अतः उपयोगिता ह्रास नियम के कारण वह अपनी आय को दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित करता जायेगा जब तक कि प्रत्येक प्रयोग से द्रव्य की सीमान्त योगिताएँ बराबर न हो जायें। यही सम सीमान्त उपयोगिता नियम है जो कि उपभो अपनी सीमित आय के व्यय से अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने में सहायता करता है। विवरण से स्पष्ट है कि उपयोगिता ह्रास नियम की मदद से ही सम-सीमान्त उपयोगि

तु की सीमान्त इकाई की उपयोगिता ठीक कीमत के बराबर हो जाती है। इस सीमान्त इकाई उपभोक्ता को कोई बचत (surplus) प्राप्त नहीं होती, परन्तु सीमान्त इकाई से पहले की सब इयों पर उसे उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है। स्पष्ट है कि 'उपभोक्ता की बचत' का ार उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है।

(६) यह नियम विनिमय-मूल्य (value-in-exchange) तथा प्रयोग-मूल्य (value-in-use) अन्तर को बताता है—उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की पूर्ति (जैसे पानी, हवा, सूर्य की रोशनी) तनी अधिक होगी उतनी ही उसकी सीमान्त उपयोगिता कम होगी और इसलिए उसका निमय-मूल्य' कम या शून्य होगा, यद्यपि उसका 'प्रयोग-मूल्य' अधिक हो सकता है।

अध्याय १२ की परिशिष्ट : कुल उपयोगिता वक्र के उन्नतोदर तथा नतोदर होने की रेखागणित[1]

[APPENDIX TO CHAPTER 12]

(GEOMETARY OF TOTAL UTILITY CURVE BEING CONVEX AND CONCAVE)

अतिरिक्त इकाइयों के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं; र यदि सीमान्त उपयोगिता बढती है तो यह कहा जाता है कि कुल उपयोगिता बढ़ती हुयी दर से ती है; रेखागणित (geometry) में इस बात X-axis के प्रति उन्नतोदर (convex) रेखा रा व्यक्त किया जाता है। चित्र नं० ८ में कुल पयोगिता रेखा AB उन्नतोदर है X-axis के प्रति। स से स्पष्ट है कि १ इकाई के प्रयोग से एक कि को CD के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त ती है, २ इकाइयों से EF के बराबर कुल पयोगिता प्राप्त होती है। यदि बिन्दु C से एक खा CG, X-axis के समानान्तर (parallel) खींची जाये जो कि EF को G बिन्दु पर मिलती तो CD और GF बराबर होंगी, तथा CD और F के अन्तर को EG बतायेगी; दूसरे शब्दों में, सरी इकाई के प्रयोग करने से कुल उपयोगिता
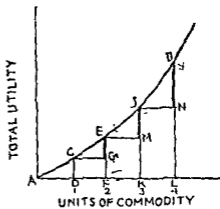
चित्र—८

वृद्धि (अर्थात सीमान्त उपयोगिता) मोटी रेखा EG के बराबर होगी। इसी प्रकार तीसरी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि (अर्थात सीमान्त उपयोगिता) मोटी रेखा JM के

[1] अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए नोट—इस परिशिष्ट का अध्ययन इस अध्याय में पृष्ठ ११० पर दिये गये चित्र नं० ५ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

बराबर, तथा चौथी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि मोटी रेखा BN के बराबर होगी। चित्र से स्पष्ट है कि कुल उपयोगिता में वृद्धि EG, JM, तथा BN मोटी रेखाएँ व्यक्त करती हैं; और यह भी स्पष्ट है कि BN अधिक है JM से, तथा JM अधिक है EG से; दूसरे शब्दों में, कुल उपयोगिता बढ़ती हुयी गति से बढ़ रही है। **इस प्रकार यदि 'कुल उपयोगिता रेखा' X-axis के प्रति उन्नतोदर है तो इसका अभिप्राय है कि कुल उपयोगिता बढ़ती हुयी दर से बढ़ती है।**

एक-एक करके अतिरिक्त इकाइयों के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं; यदि सीमान्त उपयोगिता घटती है तो यह कहा जाता है कि कुल उपयोगिता घटती हुयी दर से बढ़ती है; रेखागणित (geometry) में इस बात को X-axis के प्रति नतोदर (concave) रेखा द्वारा दिखाया जाता है। चित्र नं० ६ में कुल उपयोगिता रेखा EF नतोदर है X-axis के प्रति। चित्र से स्पष्ट है कि पहली इकाई के प्रयोग से एक व्यक्ति को AB के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है, २ इकाइयों से CD के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है। यदि विन्दु A से एक रेखा AK, X-axis के समानान्तर खींची जाये जो कि CD को K पर मिलती है तो CD और AB के अन्तर को CK बतायेगी, दूसरे शब्दों में, दूसरी इकाई के प्रयोग करने से कुल उपयोगिता में वृद्धि (या सीमान्त उपयोगिता) मोटी रेखा CK के बराबर होगी। इसी प्रकार तीसरी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि मोटी रेखा GL के बराबर तथा चौथी इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता में वृद्धि मोटी रेखा JP के बराबर होगी। चित्र से स्पष्ट है कि कुल उपयोगिता में वृद्धि CK, GL, तथा JP मोटी रेखाएँ व्यक्त करती हैं और यह भी स्पष्ट है कि JP कम है GL से, GL कम है CK से; दूसरे शब्दों में कुल उपयोगिता घटती हुयी दर से बढ़ रही है। इस प्रकार यदि 'कुल उपयोगिता रेखा' X-axis के प्रति नतोदर है तो इसका अभिप्राय है कि कुल उपयोगिता घटती हुयी दर से बढ़ती है।
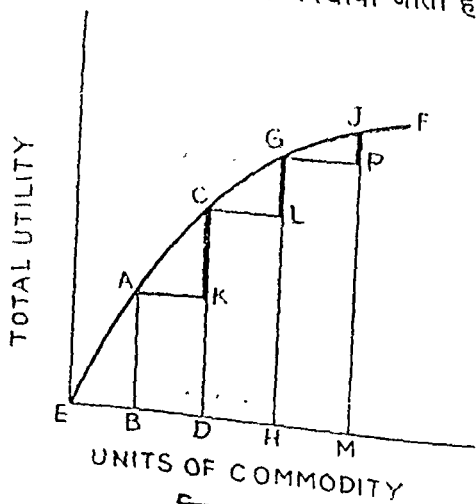
चित्र—६

१३

उपभोक्ता की बचत
[CONSUMER'S SURPLUS]

'उपभोक्ता की बचत' या 'उपभोक्ता का अतिरेक' (Consumer's surplus) का विचार ...वादी आर्थिक विश्लेषण (welfare economic analysis) में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता ...यपि इस विचार को सर्वप्रथम फ्रांस के अर्थशास्त्री ड्यूपिट (Dupuit) ने प्रस्तुत किया, परन्तु ...पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने इस विचार (concept) की अधिक वैज्ञानिक ढंग से तथा ...त रूप से व्याख्या की और इसे कल्याणवादी अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान दिया। अतः ...ल को ही 'उपभोक्ता की बचत' के विचार का जन्मदाता कहा जाता है।

यह दैनिक जीवन का अनुभव है कि अधिकांश वस्तुओं को खरीदने के लिए उपभोक्ता ...ी कीमत देता है (अर्थात कीमत के रूप में उपयोगिता का त्याग करता है) उससे अधिक ...गिता उसे उस वस्तु के प्रयोग से प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ हम एक समाचार-पत्र के लिए ...पैसे देते हैं परन्तु उससे कहीं अधिक उपयोगिता (माना कि १०० पैसों के बराबर उपयोगिता) मिलती है; तो इस प्रकार हमें (१००—१५)=८५ पैसों के बराबर बचत या अतिरेक ...plus) का अनुभव होता है, इसे ही 'उपभोक्ता की बचत' कहा जाता है।

...भोक्ता की बचत का आधार—उपयोगिता ह्रास नियम (Basis of Consumer's Surplus—The Law of Diminishing Utility)

उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार, किसी वस्तु की इकाइयों का प्रयोग करते जाने से बाद ...ाने वाली इकाइयों की उपयोगिता पहले की इकाइयों की अपेक्षा कम होती जाती है। इसका ...यह है कि उपभोक्ता वस्तु विशेष की शुरू की इकाइयों के लिए अधिक कीमत देने को तत्पर ...ा है क्योंकि उनसे उसे अधिक उपयोगिता मिलती है अपेक्षाकृत बाद की इकाइयों के, परन्तु ...ार में उपभोक्ता वस्तु की सभी इकाइयों के लिए समान कीमत देता है। उपभोक्ता किसी वस्तु ...उस सीमा तक खरीदता है जहाँ पर कि उससे प्राप्त होने वाली उपयोगिता गिरकर उसके ...ए दी जाने वाली कीमत के बराबर हो जाती है। वस्तु की इस सीमान्त इकाई के प्रयोग से ...भोक्ता को कोई अतिरेक या बचत प्राप्त नहीं होती क्योंकि जितनी उपयोगिता उसे मिलती है ...क उसके बराबर कीमत के रूप में वह उपयोगिता खोता है अर्थात सीमान्त इकाई पर उपयोगिता ...ा अनुपयोगिता दोनों बराबर होती हैं। परन्तु सीमान्त इकाई से पहले की इकाइयों में से प्रत्येक ...उपयोगिता कीमत से अधिक होती है। इस प्रकार उपभोक्ता को सीमान्त इकाई से पहले की ...इयों पर एक प्रकार की बचत का अनुभव होता है और इसे उपभोक्ता की बचत कहते हैं। ...ष्ट है कि उपभोक्ता की बचत उपयोगिता की घटने की प्रवृत्ति पर आधारित होती है।

उपयोगिता की वचत की परिभाषा (Definition of Consumer's Surplus)

प्रो० मार्शल ने उपभोक्ता की वचत की परिभाषा इस प्रकार दी है : "किसी वस्तु के से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता जो कीमत देने को तत्पर होता है तथा जो कीमत वह में देता है, उसका अन्तर (excess) ही अतिरेक सन्तुष्टि (surplus satisfaction) का माप है। इसको उपभोक्ता की वचत कहा जाता है।"[1]

मार्शल की परिभाषा के अन्तर्गत निहित विचार को ही विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने शब्दों में व्यक्त किया है। **प्रो० जे० के० मेहता** के अनुसार, "किसी वस्तु से प्राप्त उपभोक्ता वचत उस वस्तु के प्रयोग से प्राप्त उपयोगिता तथा उसको प्राप्त करने के लिए त्याग की वाली उपयोगिता के अन्तर के बराबर होती है।"[2]

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—माना कि एक उपभोक्ता केलों का उपभोग करता है। बाजार में केलों की कीमत १० पैसे प्रति केले है। उपयोगिता ह्रास नियम के अ जैसे-जैसे उपभोक्ता केलों का उपभोग करता जायेगा उसके लिए वाद में आने वाली इकाइ उपयोगिता, पहली इकाइयों की अपेक्षा घटती जायेगी। दूसरे शब्दों में, शुरू की इकाइयों के उपभोक्ता अधिक कीमत देने को तैयार होगा क्योंकि उनसे उसको, वाद की इकाइयों की अ अधिक उपयोगिता मिलती है। निम्न उदाहरण से समस्त स्थिति स्पष्ट होती है :

केलों की इकाइयाँ	प्राप्त उपयोगिता अर्थात कीमत जो उपभोक्ता देने को तैयार है (पैसों में)	बाजार में कीमत (पैसों में)	उपभोक्ता की बचत (पैसों में)
१	८०	१०	८०—१०=७
२	७०	१०	७०—१०=६
३	५०	१०	५०—१०=४
४	३०	१०	३०—१०=२
५	१०	१०	१०—१०=०
	कुल=२४० पैसों के उपयोगिता	कुल कीमत=१०×५=५० पैसे	उपभोक्ता की कुल वचत=१६

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उपभोक्ता को केले की पहली इकाई से ८० पै बरावर उपयोगिता मिलती है, जवकि वाजार में कीमत १० पैसे है, अतः इस प्रथम इका वह ७० पैसे की वचत का अनुभव करता है। इसी प्रकार दूसरी इकाई पर ६०, तीसरी पर चौथी पर २० पैसों के वरावर वचत का अनुभव करता है। पाँचवें केले (अर्थात सीमान्त इ पर उसको कोई वचत नहीं होती क्योंकि प्राप्त उपयोगिता तथा कीमत दोनों वरावर हो हैं। अतः ५ केलों का उपभोग करने से उपभोक्ता को (७०+६०+४०+२०+०)=१ पैसों के वरावर कुल वचत प्राप्त होती है।

---

1 "The excess of the price which he would be willing to pay rather than go with thing, over that which he actually does pay is the economic measure of this satisfaction. It may be called consumer's surplus."
—Marshall, *Principles of Economics*

2 "Consumer's surplus obtained by a person from a commodity is the difference the satisfaction which he derives from it and which he foregoes in order to pro commodity."
—J. K. Mehta, *Groundwork of Economics*

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण—माँग रेखा बताती है कि एक उपभोक्ता वस्तु की विभिन्न [मात्रा]ओं को किन कीमतों पर खरीदने को तत्पर होगा; दूसरे शब्दों में, माँग रेखा उन कीमतों को [बताती] है जो कि उपभोक्ता वस्तु की [विभि]न्न मात्राओं के लिए देने को तत्पर है, [अथवा य]ह कहिये कि माँग रेखा वस्तु की [विभिन्]न मात्राओं से मिलने वाली उप[योगि]ताओं को बताती है। माँग रेखा [के नी]चे का क्षेत्रफल उपभोक्ता को प्राप्त [होने] वाली कुल उपयोगिता को बताता [है।] चित्र नं० १० मे PD माँग रेखा है [मान] लिया कि वस्तु की बाजार कीमत [OP₁] है। इस कीमत पर उपभोक्ता वस्तु [की] OQ मात्रा खरीदता है, तो OQ [मात्रा] से मिलने वाली कुल उपयोगिता [माँग] रेखा के नीचे के क्षेत्रफल OPEQ [के] बराबर होगी। परन्तु बाजार में [उपभो]क्ता एक इकाई के लिए OP_1 [कीम]त देता है अर्थात वह $OQ \times OP_1$ या OP_1EQ के बराबर कुल कीमत देता है; दूसरे शब्दों [में] वह OP_1EQ के बराबर उपयोगिता का त्याग करता है।
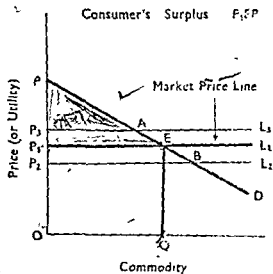
चित्र—१०

अतः, चित्र में—

कुल उपयोगिता = क्षेत्रफल OPEQ

कुल कीमत जो उपभोक्ता वास्तव में देता है = क्षेत्रफल OP_1EQ

उपभोक्ता की बचत = कुल उपयोगिता — कुल कीमत

$= OPEQ — OP_1EQ$

= क्षेत्रफल P_1EP

दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता की बचत, माँग रेखा तथा कीमत रेखा के बीच का क्षेत्रफल [होत]ा है। यदि कीमत गिरकर OP_2 हो जाती है तो उपभोक्ता की बचत बढ़कर P_2BP हो जाती [है;] यदि कीमत बढ़कर OP_3 हो जाती है तो उपभोक्ता की बचत घटकर P_3AP हो जाती है। [अतः], सामान्यतया कीमत में कमी उपभोक्ता की बचत में वृद्धि करती है, और इसके विपरीत, [कीम]त में वृद्धि उपभोक्ता की बचत में कमी करती है।

मार्शल ने बताया कि किसी देश में उपभोक्ता की बचत वहाँ की आर्थिक, सामाजिक तथा [रा]जनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। उन्नतिशील देशों में परिवहन तथा संवादवहन, [त]ार-पत्र इत्यादि की अधिक तथा सस्ती सुविधाएँ होती है जिनके परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं [को] अधिक 'उपभोक्ता की बचत' प्राप्त होती है। इसके विपरीत पिछड़े तथा अविकसित देशों में [ऐ]सी सुविधाएँ बहुत कम तथा महँगी होती है; परिणामस्वरूप, ऐसे देशों के निवासियों को [उप]भोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है।

उपभोक्ता की बचत की मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS OF CONSUMER'S SURPLUS)

मार्शल का उपभोक्ता की बचत का विचार निम्न मान्यताओं पर आधारित है: (१) **उपयोगिता मापनीय है** तथा इसे मुद्रारूपी पैमाने से मापा जा सकता है। **मार्शल ने प्रत्येक वस्तु को एक स्वतन्त्र (Independent) वस्तु माना है।** दूसरे शब्दों में विशेष की उपयोगिता उसकी स्वयं की पूर्ति पर निर्भर करती है और दूसरी वस्तुओं से प्रभावित नहीं होती। (३) खरीदने की समस्त क्रिया में **मुद्रा की सीमान्त** उपयोगिता समान है। (४) मार्शल ने यह भी माना कि विचाराधीन वस्तु के कोई स्थानापन्न (substitutes) नहीं है और यदि उसकी स्थानापन्न वस्तुएँ हैं तो उन सब को एक वस्तु ही मान लेना चाहिए। (५) मार्शल ने उपभोक्ता की बचत के विचार को सम्पूर्ण बाजार के सम्बन्ध में भी बाजार की उपभोक्ता की बचत को निकालने के लिए उन्होंने यह माना कि बाजार में उपभोक्ताओं की आय, रुचि, फैशन, इत्यादि में अन्तर तथा विभिन्नताएँ एक दूसरे को नष्ट (neutralise or cancel out) कर देती हैं, इसलिए इन अन्तरों का कोई प्रभाव नहीं रह जाता।

उपभोक्ता की बचत की माप
(MEASUREMENT OF CONSUMER'S SURPLUS)

मार्शल के अनुसार, किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को मुद्रा द्वारा मापा जा सकता है, इसलिए उनके अनुसार, उपभोक्ता की बचत को भी मुद्रा की इकाई में माप सकते हैं। तालिका के रूप में दिये गये उदाहरण (पृष्ठ ११८) की सहायता से उपभोक्ता की बचत की माप को स्पष्ट किया जा सकता है। यदि हम प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता में से वस्तु की खरीदी जाने वाली इकाइयों की कुल कीमत को घटा दें, तो उपभोक्ता की बचत ज्ञात हो जायेगी। उदाहरण में, प्राप्त कुल उपयोगिता २४० पैसों के बराबर है और कुल कीमत ५० पैसे हैं, तो उपभोक्ता की बचत = २४० — ५० = १९० पैसों के। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता की बचत को निकालने का गणितात्मक सूत्र इस प्रकार दिया जा सकता है।

उपभोक्ता की बचत = [कुल उपयोगिता] — [(वस्तु की कीमत) × (वस्तु की खरीदी जाने वाली इकाइयों की संख्या)]

मार्शल ने उपभोक्ता की बचत के विचार को केवल एक व्यक्ति के लिए ही नहीं सम्पूर्ण बाजार के लिए बताया। उन्होंने यह माना कि बाजार में यद्यपि व्यक्तियों की आय, फैशन, इत्यादि में अन्तर होता है, परन्तु ये अन्तर या विभिन्नताएँ एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट कर देती हैं। इसलिए,

बाजार में सभी उपभोक्ताओं द्वारा प्राप्त उपभोक्ता की बचत = [माँग-मूल्यों का योग (Aggregate market demand prices)] — [वास्तविक कीमत (Actual selling price)]

माँग-मूल्य वह मूल्य है जिस पर एक व्यक्ति वस्तु विशेष को खरीदने को तैयार है और प्राप्त होने वाली उपयोगिता को बताता है। अतः बाजार में विभिन्न उपभोक्ताओं के माँग-मूल्यों को जोड़ने से बाजार में प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता मालूम कर ली जाती है।

उपभोक्ता की बचत को मापने की कठिनाइयाँ या आलोचना
(DIFFICULTIES IN THE MEASUREMENT OF CONSUMER'S SURPLUS OR ITS CRITICISM)

उपभोक्ता की बचत उपयोगिता के घटने की प्रवृत्ति पर आधारित है, परन्तु उपयोगिता मनोवैज्ञानिक विचार है जिसको मापना कठिन है और इसलिए उपभोक्ता की बचत [illegible]

र मे नहीं मापा जा सकता। उपभोक्ता की बचत के विचार के सम्बन्ध में आलोचकों का कहना : (अ) यह विचार (concept) सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित नहीं है क्योंकि यह गलत मान्यताओं आधारित है; (ब) यदि इसे सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित भी मान लिया जाये तो इसको मुद्रारूपी ने से मापा नहीं जा सकता, और (स) इसलिए इसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नही रह जाता। व मे, इस विचार की अधिकांश आलोचनाएँ अवास्तविक मान्यताओं तथा उपयोगिता को ने की कठिनाइयों से सम्बन्धित हैं। इसकी मुख्य आलोचनाएँ या इसके मापने से सम्बन्धित मुख्य नाइयाँ निम्नलिखित हैं :

(१) उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता (Utility cannot be measured)—उपयो- एक मनोवैज्ञानिक विचार है जिसे निश्चित रूप से कीमत के रूप में अर्थात मुद्रा रूपी पैमाने मापा नहीं जा सकता। परन्तु मार्शल तथा उनके समर्थकों का कहना है कि निश्चित रूप से न परन्तु मोटे रूप से मुद्रा की सहायता से उपयोगिता को अवश्य मापा जा सकता है क्योंकि ी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिताओं के अनुसार ही उपभोक्ता कीमत देता है या देने को र होता है।

(२) द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान नहीं रहती (Marginal utility of money es not remain constant)—मार्शल ने यह माना कि किसी वस्तु को खरीदने की क्रिया मे भोक्ता के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है। परन्तु यह मान्यता उचित नहीं । उपभोक्ता जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिकाधिक इकाइयाँ खरीदता जाता है, वैसे-वैसे उसके पास य की मात्रा कम होती जाती है, परिणामस्वरूप द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाती है। । ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता की बचत को मापना कठिन हो जाता है। द्रव्य की सीमान्त उप- गिता समान रहने की मान्यता मे सत्यता का अंश तब ही सकता है जबकि उपभोक्ता वस्तु विशेष : अपनी आय का बहुत थोड़ा भाग व्यय करता है। प्रो० हिक्स (Hicks) ने इस कठिनाई को र करने की दृष्टि से बताया कि उपभोक्ता की बचत का अर्थ द्राव्यिक आय (money income) वृद्धि से लिया जाना चाहिए जो कि वस्तु विशेष की कीमत में कमी होने के कारण होती है।

(३) उपभोक्ता को पूरी माँग-तालिका की जानकारी नहीं होती (Consumer does not ıow the full demand schedule)—यदि उपभोक्ता को किसी वस्तु के प्रयोग से वंचित करने ा डर दिखाया जाये तो वह उस वस्तु के लिए कितना मूल्य देने को तैयार होगा, यह ठीक-ठीक ानना उपभोक्ता के लिए बहुत कठिन है। इसी प्रकार वस्तु की विभिन्न इकाइयों के लिए वह ितना-कितना मूल्य देने को तैयार होगा यह जानना भी बहुत कठिन है; वह माँग-मूल्यों का केवल क साधारण अनुमान ही लगा सकता है। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता व्यावहारिक जीवन में पहले ाजार मे प्रचलित कीमत को मालूम करता है, तब वह यह निश्चित करता है कि वस्तु विशेष की ितनी इकाइयाँ खरीदी जायँ। संक्षेप में, कठिनाई यह है कि उपभोक्ता की माँग तालिका कल्पित ोती है और केवल अनुमान पर आधारित होती है, इसलिए उपभोक्ता की बचत को ठीक-ठीक नहीं ापा जा सकता है।

(४) उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियों में भिन्नता होती है (Consumers' economic onditions differ)—बाजार में सभी उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियाँ एक समान नहीं होतीं, छ धनी होते हैं तथा कुछ निर्धन, और धनी व्यक्तियों के लिए रुपये की उपयोगिता निर्धन ्यक्तियों की अपेक्षा कम होती है। एक धनी व्यक्ति एक वस्तु के लिए अधिक कीमत देने को ैयार हो सकता है जबकि एक निर्धन व्यक्ति उसी वस्तु के लिए कम कीमत देने को तैयार

है, परन्तु बाजार में दोनों व्यक्ति उस वस्तु के लिए एक ही कीमत देते हैं। अतः धनी व्यक्ति निर्धन की अपेक्षा, अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी। दूसरे शब्दों में, बाजार में उपभो... की आर्थिक स्थितियों में अन्तर होने के कारण उपभोक्ता की बचत को ठीक प्रकार से नहीं जा सकता।

परन्तु यह कठिनाई एक बड़ी बाधा (obstacle) नहीं है। जब बाजार में बहुत होते हैं तो 'औसत का नियम' (Law of averages) लागू होने लगता है। कुछ धनी व्यक्ति का धन (wealth) दूसरे व्यक्तियों की गरीबी द्वारा सन्तुलित हो जाता है और इसलिए बाजार उपभोक्ताओं के आर्थिक अन्तरों पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती है।

(५) **उपभोक्ताओं की रुचियों तथा चेतन्यताओं में अन्तर** (Consumer's differ tastes and sensibilities)—यदि यह मान लें कि बाजार में सभी उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थितियाँ एक समान हैं तो भी उनकी रुचियों तथा चेतन्यताओं में अन्तर होता है। एक व्यक्ति इच्छा वस्तु विशेष के लिए अधिक तीव्र हो सकती है अपेक्षाकृत दूसरे व्यक्ति के, ऐसी स्थिति पहला व्यक्ति, दूसरे की अपेक्षा, उस वस्तु के लिए अधिक कीमत देने को तैयार होगा और इस पहले व्यक्ति को अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी क्योंकि बाजार में दोनों के लिए वस्तु कीमत एक ही है।

परन्तु यह कठिनाई भी उपभोक्ता की बचत को मापने में एक बड़ी बाधा नहीं है क्यों इस स्थिति में भी 'औसत का नियम' लागू होता है। जब बाजार में व्यक्तियों की अधिक सं होती है तो उनकी रुचियों तथा चेतन्यताओं में अन्तर एक दूसरे को नष्ट या सन्तुलित कर दे और इस प्रकार अन्तरों पर ध्यान देने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती है।

(६) **स्थानापन्न वस्तुओं के कारण कठिनाई** (Difficulties owing to the presence of substitutes)—उदाहरणार्थ, चाय तथा काफी एक दूसरे की स्थानापन्न वस्तुएँ हैं। **चाय त काफी दोनों की संयुक्त कुल उपयोगिता इन दोनों की अलग-अलग उपयोगिता के योग से अ होगी।** माना कि दोनों के उपलब्ध न होने पर उपभोक्ता को ८० इकाइयों के बराबर 'सन्तु की हानि' या 'अनुपयोगिता' (loss of satisfaction or disutility) होती है और केवल च न मिलने पर उसे ३० इकाइयों के बराबर अनुपयोगिता मिलती है क्योंकि वह एक सीमा त काफी का प्रयोग करके सन्तुष्टि की हानि को पूरा कर देता है। यदि उसे केवल काफी न मिलती है तो उसे २० इकाइयों के बराबर अनुपयोगिता मिलती है क्योंकि एक सीमा तक च का प्रयोग करके वह अनुपयोगिता को कम कर लेता है। इस प्रकार दोनों की अलग-अलग उ योगिताओं का योग (३०+२०)=५० इकाइयों के बराबर होता है जबकि दोनों की संयुक्त उपयोगिता ८० इकाइयों के बराबर है और यह अधिक है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता की बच को ठीक-ठीक मापना बहुत कठिन है। (इस कठिनाई को दूर करने के लिए मार्शल ने यह सु दिया कि स्थानापन्न वस्तुओं को एक ही वस्तु मान लेना चाहिए और तब उनसे प्राप्त होने उपभोक्ता की बचत को मापना चाहिए।)

(७) **जीवन रक्षक तथा परम्परागत आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की ब अनिश्चित होती है**—यदि जीवन रक्षक तथा आवश्यक वस्तुओं के प्रयोग से वंचित कर दि तो हम उनको प्राप्त करने के लिए सब कुछ देने को तैयार हो जाते हैं। एक प्यासा व भूखे व्यक्ति, पानी या रोटी से वंचित कर देने की अवस्था में, एक गिलास पानी या रोटी के लि

ना मूल्य देने को तैयार होगा, यह कहना कठिन है और इस प्रकार उपभोक्ता की बचत को ना नहीं जा सकता।

(८) प्रतिष्ठात्मक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी उपभोक्ता की बचत अनिश्चित होती है—त्मक वस्तुओं जैसे, हीरे, जवाहरात इत्यादि के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत को मालूम कठिन है। इन वस्तुओं को ऊँची कीमतों पर ही धनी व्यक्तियों को इनसे अधिक उपयोगिता है, इनकी कीमतों के कम हो जाने से उपयोगिता कम हो जाती है। अतः प्रतिष्ठात्मक ों की कीमतों में कमी हो जाने से प्रायः उपभोक्ता की बचत में वृद्धि नहीं होती और इस इन वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत अनिश्चित हो जाती है।

(९) उपभोक्ता के लिए वस्तु की अधिकाधिक इकाइयों के खरीदने के साथ-साथ प्रारम्भिक यों की उपयोगिता घटती जाती है—पेटन (Patten) के अनुसार, जब उपभोक्ता किसी वस्तु धिकाधिक इकाइयाँ खरीदता जाता है तो उसके लिए प्रारम्भिक इकाइयों (earlier units) पयोगिता कम होती जाती है। उपभोक्ता की बचत की सही माप के लिए यह जरूरी है कि तार की घटती हुई उपयोगिता को ध्यान में रखा जाये, इसका अर्थ है कि प्रत्येक अतिरिक्त के खरीदने पर उपभोक्ता की माँग-सारणी में परिवर्तन किया जाये और ऐसा करना कठिन इसलिए उपभोक्ता की बचत की सही माप नहीं की जा सकती है।

परन्तु यह कठिनाई सत्य नहीं है। प्रथम, पीगू (Pigou) का कहना है कि किसी वस्तु के मे थोड़ी वृद्धि होने के परिणामस्वरूप वस्तु की प्रारम्भिक इकाइयों की उपयोगिता में विशेष अन्तर नहीं होता। दूसरे, यह कठिनाई तब सत्य होती है जबकि माँग-मूल्यों की (list of demand prices) वस्तु की विभिन्न इकाइयों की औसत उपयोगिता (average ity) को बताती, जबकि ऐसा नहीं है। उदाहरणार्थ, माना कि एक उपभोक्ता को पहली कमीज ० रु० के बराबर उपयोगिता मिलती है। दूसरी कमीज को खरीदने से उसको ८ रु० की ोगिता मिलती है, तो दो कमीजों के खरीदने के बाद औसत उपयोगिता (१०+८)/२=९ रु० ो। तीसरी कमीज से ६ रु० की उपयोगिता मिलती है, तो अब एक कमीज की औसत उप- ाता (१०+८+६)/३=८ रु० के बराबर होगी। यदि माँग-रेखा औसत उपयोगिताओं को ये तो वस्तु की अधिकाधिक इकाइयों के प्रयोग से प्रारम्भिक इकाइयों की औसत उपयोगिता ती जायेगी। परन्तु माँग-मूल्यों की सूची अतिरिक्त इकाइयों (additional units) से प्राप्त रिक्त उपयोगिता (additional utility) को बताती है। उपभोक्ता को दूसरी रोटी से जो योगिता मिलती है, वह पहली रोटी के अतिरिक्त मिलती है जो कि ८ रु० के बराबर है। अतः ो स्थिति मे अधिकाधिक इकाइयों के प्रयोग से प्रारम्भिक इकाइयों की उपयोगिता पर कोई ाव नहीं पड़ता है।

(१०) यह विचार काल्पनिक तथा अव्यावहारिक है (The concept is imaginary) [illegible] लसन (Nicholson) ने इसको काल्पनिक तथा अव्यावहारिक

कोई महत्व नहीं रखता कि इंगलैण्ड की १०० पौण्ड वार्षिक आय
,००० पौण्ड वार्षिक आय के बराबर है।

मार्शल ने इसके जवाब मे कहा कि इस प्रकार का कथन महत्त्वहीन नहीं है। इंग्लैण्ड क उन्नतशील देश है जहाँ पर जीवन सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ जैसे बिजली, यातायात सवादवहन के साधन, मनोरंजन की सुविधाएँ, खाने-पीने की वस्तुएँ, सस्ते दामो पर आसानी उपलब्ध हैं और वहाँ उपभोक्ता की बचत अधिक प्राप्त होती है। इसके विपरीत, मध्य

एक अविकसित तथा पिछड़ा हुआ देश है जहाँ पर कि ये सब वस्तुएँ तथा सुविधाएं प्राप्त
और यदि कुछ हैं तो वे बहुत थोड़ी माला में हैं तथा मँहगी हैं और वहाँ उपभोक्ता की बचत
प्राप्त होती है। इस प्रकार मार्शल ने बताया कि यह विचार काल्पनिक तथा अव्यावहारिक
यह विचार तो देशों की आर्थिक उन्नति की तुलना करने में सहायता देता है।

निष्कर्ष—इस विचार की आलोचनाओं या इसके मापने से सम्बन्धित कठिनाइयों
अध्ययन के पश्चात निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि उपभोक्ता की बचत
विचार सैद्धान्तिक दृष्टि से पूर्ण रूप रूप से सही नहीं है तथा इसकी पूर्ण रूप से सही माप
सकती, परन्तु यह विचार कोरी कल्पना नहीं है और न बिलकुल अव्यावहारिक है। व्यावहारिक
जीवन में बहुत-सी वस्तुओं के प्रयोग से हम उपयोगिता की बचत का अनुभव करते हैं।
निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि कितनी उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है, इसका
की सहायता से केवल मोटा अनुमान लगाया जा सकता है। **रोबर्टसन** (Robertson) का
ठीक है कि **यदि हम इस विचार से बहुत अधिक आशा न करें तो यह बौद्धिक रूप से आदर्श**
तथा व्यावहारिक कार्यों में मार्ग-प्रदर्शन करने की दृष्टि से लाभदायक है।[3]

ान रखता है कि मूल्य इतना ऊँचा न हो कि वह सारी उपभोक्ता की बचत को समाप्त कर दे ां तो उपभोक्ताओं में असन्तुष्टि फैलेगी और उसका एकाधिकार खतरे में पड़ सकता है। वह य ऊँचा करते समय कुछ उपभोक्ता की बचत अवश्य छोड़ देता है।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ की माप में सहायता—प्रायः एक देश दूसरे देशों से । वस्तुओं का आयात करता है जो कि अपने देश में कम हों तथा महँगी हो। ऐसी स्थिति में देश ो वस्तुएँ सस्ती मिलने लगेंगी जिनका आयात किया जा रहा है, परिणामस्वरूप उपभोक्ता इन तुओं के लिए पहले की अपेक्षा बाजार में कम कीमत देंगे और इस प्रकार उन्हें सन्तुष्टि का तरेक (surplus) अनुभव होगा; दूसरे शब्दों में, उन्हें उपभोक्ता की बचत प्राप्त होने लगेगी। ' प्रकार उपभोक्ता की बचत का विचार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उत्पन्न लाभ को मापता है।

(४) राजस्व तथा सार्वजनिक नीति में महत्त्व—किसी वस्तु पर टेक्स लगाने से एक र तो उसकी कीमत बढ़ जाती है और इसलिए उससे प्राप्त उपभोक्ता की बचत घट जाती है, ारी ओर सरकार को कर के द्वारा अतिरिक्त आय (additional revenue) प्राप्त होती है। कार कर लगाने से जो अतिरिक्त आय प्राप्त करती है उसकी उपयोगिता को वह उपभोक्ता बचत में कमी की पृष्ठिभूमि में देखती है। यदि कर ऐसा है कि जिससे उपभोक्ता की बचत में मी अधिक होती है अपेक्षाकृत अतिरिक्त आय की उपयोगिता के तो ऐसा कर बुरा कर होगा से सरकार लगाना पसन्द नहीं करेगी। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का विचार राजस्व के त्र में महत्त्व रखता है।

राजस्व के क्षेत्र में उपभोक्ता की बचत के महत्त्व को पूर्णरूप से समझने के लिए इस बात र भी ध्यान दिया जाता है कि वस्तु का उत्पादन कौनसे उत्पत्ति के नियम के अन्तर्गत हो रहा ।। (i) यदि वस्तु का उत्पादन 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तो वस्तु पर कर गाने से कीमत बढ़ेगी जिसके परिणामस्वरूप माँग घटेगी और उत्पादन कम किया जायेगा, उत्पादन म होने से प्रति इकाई लागत बढ़ेगी जिसके कारण कीमत और बढ़ जायेगी; अतः ऐसी वस्तु पर र लगाने से वस्तु की कीमत कर की मात्रा से अधिक बढ़ेगी। इसका परिणाम यह होगा कि रकार को प्राप्त अतिरिक्त आय की अपेक्षा उपभोक्ताओं को 'उपभोक्ता की बचत' की हानि अधिक ोगी; इसलिए सरकार ऐसी वस्तुओं पर कर लगाना पसन्द नहीं करेगी। (ii) यदि वस्तु का त्पादन 'लागत वृद्धि नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तो वस्तु पर कर लगाने से कीमत बढ़ेगी, जिसके रिणामस्वरूप माँग घटेगी और उत्पादन कम किया जायेगा, उत्पादन कम होने से प्रति इकाई लागत टेगी जिसके कारण कीमत कम होगी; अतः ऐसी वस्तु पर कर लगाने से वस्तु की कीमत कर की ात्रा से कम बढ़ेगी। इसका परिणाम यह होगा कि सरकार को प्राप्त अतिरिक्त आय की अपेक्षा पभोक्ताओं को 'उपभोक्ता की बचत' की हानि कम होगी, इसलिए सरकार ऐसी वस्तुओं पर कर गायेगी। (iii) यदि वस्तु का उत्पादन 'समान लागत नियम' के अन्तर्गत हो रहा है ो ऐसी वस्तु पर कर लगाना उचित नहीं है क्योंकि इससे सरकार को लाभ कम होगा अपेक्षाकृत पभोक्ताओं के नुकसान के।

इसी प्रकार जब सरकार किसी उद्योग को आर्थिक सहायता (bounty) देती है तो उपभोक्ता ी बचत को ध्यान में रखती है। यदि उद्योग ऐसा है जो कि लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत वस्तु ा उत्पादन कर रहा है तो सरकार द्वारा आर्थिक सहायता देना उचित होगा। ऐसे उद्योग को ार्थिक सहायता देने से लागत कम होगी इसीलिए मूल्य कम होगा और वस्तु की माँग बढ़ेगी, माँग ढ़ने से वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जायेगा, उत्पादन बढ़ाने से प्रति इकाई लागत और कम होगी

और मूल्य भी और कम होगा; इस प्रकार उपभोक्ता की बचत में बहुत वृद्धि होगी। [illegible] लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत कार्य करने वाले उद्योग को सरकारी आर्थिक [illegible] हितकर है, जब कि लागत-वृद्धि नियम के अन्तर्गत उद्योग को सरकारी आर्थिक सहायता [illegible] नहीं है।

निष्कर्ष : स्पष्ट है कि उपभोक्ता की बचत का विचार निरर्थक नहीं है। [illegible] केवल सैद्धान्तिक ही नहीं बल्कि व्यावहारिक भी है। यह मोटे रूप से व्यावहारिक [illegible] प्रदर्शन करने की दृष्टि से लाभदायक है।

हिक्स द्वारा उपभोक्ता की बचत का पुनर्निर्माण
(REHABILITATION OF CONSUMER'S SURPLUS BY PROF. HICKS)

मार्शल उपभोक्ता की बचत के विचार का प्रतिपादन करते समय कुछ ऐसी [illegible] लेकर चले जो अवास्तविक (unreal) थीं। हिक्स तथा अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों [illegible] मुख्य अवास्तविक मान्यताएँ निम्न हैं : (१) उपयोगिता को निश्चित रूप से मुद्रा [illegible] मापा जा सकता है। परन्तु उपयोगिता तो एक मनोवैज्ञानिक वस्तु है जिसको परिमा[illegible]

है। माना कि उपभोक्ता की द्राव्यिक आय (money-income) OA है। X-वस्तु को X-axis दिखाया गया है। AB 'कीमत ' (Price line) है। P बिन्दु भोक्ता का 'सन्तुलन बिन्दु' (Equilibrium point) है जो कि X-तु की OQ मात्रा + OM द्रव्य के ाग को बताता है अर्थात उपभोक्ता वस्तु की OQ मात्रा को खरीदने के ए AM या LP द्रव्य देता है। S दु नीचे की तटस्थता वक्र रेखा I_2 है। इसका अर्थ है कि X-वस्तु की नी ही मात्रा OQ को खरीदने के ए उपभोक्ता LS या AN द्रव्य देने तैयार है, परन्तु वह वास्तव में, LP AM द्रव्य ही देता है, अत: —LP—PS या MN उपभोक्ता बचत हुई।
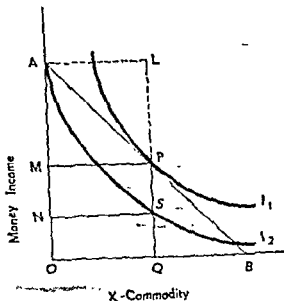
चित्र—११

१४ प्रतिस्थापन का नियम
[THE LAW OF SUBSTITUTION]

प्रतिस्थापन का नियम
(THE LAW OF SUBSTITUTION)

प्रतिस्थापन का सिद्धान्त (Principle of Substitution) या प्रतिस्थापन का नियम (Law of Substitution) एक महत्वपूर्ण व्यापक (general) नियम है जो कि दैनिक जीवन के अनुभव पर आधारित है। मनुष्य अपने सीमित साधनों से असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। अत: वह अपने सीमित साधनों को इस प्रकार से व्यय करना चाहता है कि उसे अधिकतम सन्तोष मिले। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह पहले अधिक जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा और बाद में कम जरूरी आवश्यकताओं की। परन्तु एक ही आवश्यकता की पूर्ति करते रहने से, उपयोगिता ह्रास नियम के कारण, उसकी उपयोगिता कम होती जायेगी। अब उपभोक्ता के लिए दूसरी आवश्यकता अधिक जरूरी प्रतीत होने लगती है। ऐसा अनुभव करते ही वह अपने धन को कम लाभदायक प्रयोग से अधिक लाभदायक प्रयोग में हस्तान्तरित कर देता है; दूसरे

शब्दों में, कम लाभदायक वस्तु के स्थान पर अधिक लाभदायक वस्तु का प्रतिस्थापन करेगा और ऐसा तब तक करता जायेगा जब तक कि दोनों वस्तुओं से सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर न हो जायँ। इसी प्रकार उत्पत्ति के क्षेत्र में, एक उत्पादक अधिक महँगे साधन के स्थान पर सस्ते साधन का प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनों से सीमान्त उत्पादकताएँ (marginal productivities) बराबर न हो जायें।

प्रतिस्थापन के नियम का सामान्य कथन (General Statement of the Law of Substitution)

कम-उपयोगी वस्तु (low-utility commodity) **के स्थान पर अधिक-उपयोगी** (high-utility commodity) **का या महँगे उत्पत्ति के साधन** (high-cost factor of production) **के स्थान पर कम-महँगे साधन** (low-cost factor) **का प्रतिस्थापन करना ही प्रतिस्थापन का नियम या सिद्धान्त कहा जाता है।** प्रत्येक उपभोक्ता, उत्पादक तथा व्यक्ति प्रतिस्थापन की सहायता से अपने सन्तोष या उपयोगिता या लाभ को अधिकतम करता है। अतः प्रतिस्थापन का नियम अर्थशास्त्र के सभी क्षेत्रों में लागू होता है।

सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-marginal Utility)

उपभोग में प्रतिस्थापन के सिद्धान्त को प्रायः **सम-सीमान्त उपयोगिता नियम**[1] के नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने की दृष्टि से उपभोक्ता अपने सीमित द्रव्य या सीमित वस्तु को विभिन्न प्रयोगों में इस प्रकार बाँटता है कि प्रत्येक प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता समान मिले। नियम की आधुनिक व्याख्या के परिणामस्वरूप इसे 'अनुपातिकता का नियम' (Law of Proportionality) भी कहते हैं; इसका विवरण आगे दिया गया है। यह नियम **'उपभोक्ता के सन्तुलन'** (Equilibrium of Consumer) को बताता है। जब प्रत्येक प्रयोग से सीमान्त उपयोगिता बराबर होती है तो उपभोक्ता को अधिकतम सन्तोष प्राप्त होता है क्योंकि ऐसी स्थिति में वह द्रव्य या वस्तु को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित करके उपयोगिता या सन्तोष में कोई वृद्धि नहीं कर सकता। अतः अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने के कारण वह सन्तुलन की स्थिति में रहता है।

सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का कथन (Statement of the Law)

मार्शल ने इस नियम की परिभाषा इस प्रकार दी है, "यदि किसी व्यक्ति के पास एक ऐसी वस्तु है जो अनेक प्रयोगों में लायी जा सकती है तो वह उसको विभिन्न प्रयोगों में इस

---

1 **'उपभोग में प्रतिस्थापन का सिद्धान्त'** (Law of Substitution in Consumption) को 'सम-सीमान्त उपयोगिता नियम' के अतिरिक्त इसे कई अन्य नामों से पुकारा जाता है। इसे 'अधिकतम सन्तुष्टि का नियम' (Law of Maximum Satisfaction) भी कहते हैं क्योंकि इसके प्रयोग से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इसे 'तटस्थता का नियम' (Law of Indifference) भी कहते हैं क्योंकि विभिन्न प्रयोगों से उपयोगिता समान मिलने के कारण उपभोक्ता उनके प्रति तटस्थ (Indifferent) हो जाता है। इसे 'उपभोग का नियम' (Law of Consumption) भी कहते हैं क्योंकि यह नियम बताता है कि अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता को किस प्रकार उपभोग करना चाहिए। इसे 'मितव्ययिता का नियम' (Law of Economy) भी कहते हैं क्योंकि यह नियम बताता है कि एक व्यक्ति को अपने सीमित साधनों को मितव्ययिता के साथ प्रयोग करना चाहिए तभी उसे अधिकतम सन्तोष मिलेगा। गोसेन (Gossen) के नाम पर इसे 'गोसेन का दूसरा नियम' (Second Law of Gossen) भी कहते हैं।

या कि उसकी सीमान्त उपयोगिता सभी प्रयोगों में समान रहे, क्योंकि यदि वस्तु की सीमान्त योगिता एक प्रयोग में दूसरे की अपेक्षा अधिक है तो वह दूसरे प्रयोग से वस्तु की मात्रा हटाकर र उसका प्रयोग पहले में करके लाभ प्राप्त कर सकता है।"[1]

मार्शल की उपर्युक्त परिभाषा एक व्यापक परिभाषा है; यद्यपि यह परिभाषा वस्तु के न्ध में दी गयी है, परन्तु यदि वस्तु के स्थान पर द्रव्य का प्रयोग किया तो यह द्रव्य के सम्बन्ध ी लागू होती है। द्रव्य एक ऐसी वस्तु है जिसको अनेक प्रयोगों में बाँटा जा सकता है अर्थात भिन्न वस्तुओं पर व्यय किया जा सकता है। द्रव्य के सम्बन्ध में नियम का कथन, इस प्रकार ा जा सकता है—एक व्यक्ति अपनी सीमित आय (अर्थात द्रव्य) से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त ने के लिए द्रव्य को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करेगा कि प्रत्येक वस्तु पर व्यय किये द्रव्य की अन्तिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता (अर्थात सीमान्त उपयोगिता) समान हो।

म की मान्यताएँ (Assumptions of the Law)

अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भाँति यह नियम भी कुछ मान्यताओं पर आधारित है। मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) मनुष्य को विवेकशील प्राणी (rational person) मानकर चलते हैं। उपभोक्ता तम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है और इसलिए अपनी सीमित आय को सोच-समझकर करता है। वह द्रव्य को विभिन्न वस्तुओं पर व्यय करते समय उनसे प्राप्त उपयोगिताओं की ा करता है। (२) उपभोक्ता की आय, रुचि इत्यादि एक निश्चित समयावधि में समान रहते र उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। (३) द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान रहती है द्रव्य के कम या अधिक होने से उसकी सीमान्त उपयोगिता में कोई अन्तर नहीं होता। (४) ोक्ता अपने द्रव्य को बहुत थोड़ी-थोड़ी मात्रा (very small amounts) में व्यय करता है। उपयोगिता को द्रव्यरूपी पैमाने से मापा जा सकता है।

हरण तथा रेखाचित्र द्वारा नियम का स्पष्टीकरण

माना एक व्यक्ति के पास ८ रुपये हैं जिन्हें वह दो वस्तुओं—गेहूँ और चीनी—पर व्यय ाहता है और वह प्रत्येक वस्तु पर एक-एक रुपये करके व्यय करता है। वस्तुओं पर प्रत्येक के व्यय करने से प्राप्त उपयोगिताएँ निम्न तालिका से स्पष्ट हैं :

द्रव्य (रु०) की इकाइयाँ	गेहूँ से उपयोगिता	चीनी से उपयोगिता
१	१८ (१)	१४ (३)
२	१६ (२)	१२ (५)
३	१४ (४)	१० (७)
४	१२ (६)	८
५	१० (८)	६
६	८	४
७	६	२
८	४	०

[1] a person has a *thing* which he can put to *several* uses he *will distribute it* among se uses in such a way that it has the same marginal utility in all. For if it had a ater marginal utility in one use than another he would gain by taking some of it m second use and applying it to the first."

उपभोक्ता सर्वप्रथम १ रुपये को उस वस्तु पर व्यय करेगा जिससे उसको अधिकतम
योगिता मिलती है। तालिका से स्पष्ट है कि रुपये की पहली इकाई वह गेहूँ पर व्यय करेगा
उसे १८ इकाइयों के बराबर उपयोगिता मिलती है। दूसरे रुपये को भी वह गेहूँ पर व्यय कर
तीसरे रुपये को वह गेहूँ या चीनी दोनों में से किसी पर व्यय कर सकता है क्योंकि दोनों
से समान उपयोगिता अर्थात १४ के बराबर उपयोगिता मिलती है; माना कि तीसरा रुपया
चीनी पर व्यय करता है, चौथा रुपया गेहूँ पर, पाँचवाँ रुपया चीनी पर, छठा रुपया गेहूँ पर,
रुपया चीनी पर तथा आठवाँ रुपया गेहूँ पर व्यय करता है। दोनों वस्तुओं पर द्रव्य की
जाने वाली इकाइयों को कोष्ठकों (brackets) में दिखाया गया है। इस प्रकार उपभोक्ता
में से ५ रुपये गेहूँ पर और ३ रुपये चीनी पर व्यय करता है। द्रव्य को इस प्रकार
करने से दोनों दिशाओं से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर हैं अर्थात १० के बराबर;
अतः उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी। यह सिद्धान्त दो से अधिक वस्तुओं
इसी प्रकार लागू होगा। इसको चित्र संख्या १२ द्वारा स्पष्ट किया गया है।
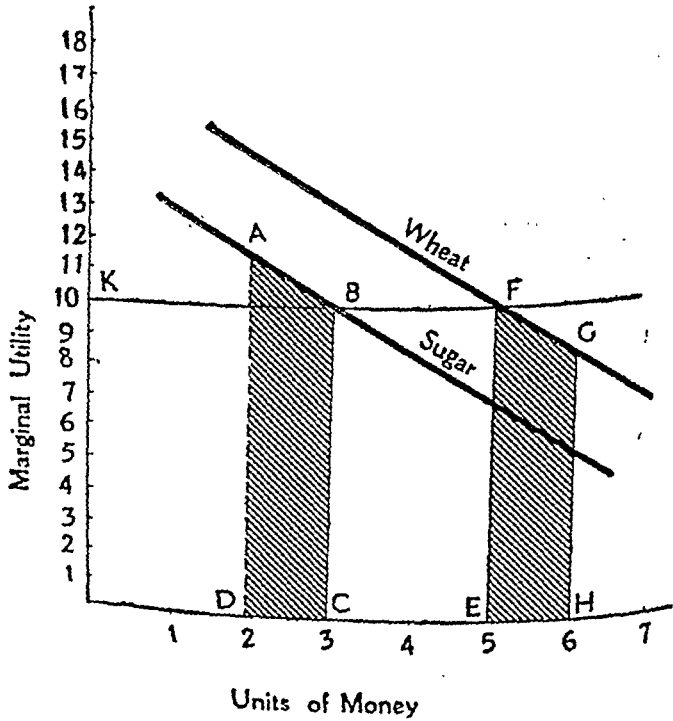
चित्र—१२

चित्र में दो रेखाएँ खींची गयी हैं जो कि गेहूँ तथा चीनी पर द्रव्य को व्यय करने से
होने वाली सीमान्त उपयोगिताओं को बताती हैं। चित्र से स्पष्ट है कि गेहूँ पर ५ रुपये
से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता FE के बराबर तथा चीनी पर ३ रुपये व्यय करने से
सीमान्त उपयोगिता BC के बराबर है, ये दोनों सीमान्त उपयोगिताएँ (१० इकाई की)
हैं। दोनों दिशाओं से सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर होने से ही उपभोक्ता को अधिकतम
होता है। माना कि वह अपने व्यय करने के क्रम को बदल देता है। ५ रुपये के स्थान पर
रुपये गेहूँ पर और ३ रुपये के स्थान पर २ रुपये चीनी पर व्यय करता है। ऐसा करने

H के बराबर कुल उपयोगिता में वृद्धि होनी है और DABC के बराबर कुल उपयोगिता मे र होना है। स्पष्ट है कि नुकसान लाभ की अपेक्षा अधिक है। अतः उपभोक्ता को अधिकतम भी होगा जबकि द्रव्य की सीमान्त उपयोगिताएँ दोनों दिशाओं से बराबर हों।

की आधुनिक व्याख्या—आनुपातिकता का नियम (Modern Interpretation of the Law—Law of Proportionality)

आधुनिक अर्थशास्त्री सम सीमान्त उपयोगिता नियम को अधिक उचित तरीके से बताते हैं की नयी व्याख्या निम्न विवरण से स्पष्ट है। मानाकि एक व्यक्ति के पास किसी वस्तु की इयां हैं और इस स्थिति में उसको वस्तु से ७ रुपये के बराबर सीमान्त उपयोगिता मिलती दि वस्तु की कीमत ७ रुपये से कम है तो उसके लिए वस्तु की अधिक इकाइयों को खरीदना यक होगा क्योंकि कीमत की अपेक्षा मे उसको उपयोगिता अधिक मिलती है। उपभोक्ता की अधिक इकाइयाँ उस स्थान तक खरीदता जायेगा जब तक कि वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता उसके लिए दी जाने वाली कीमत के बराबर न हो जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि—वस्तु मान्त उपयोगिता तथा उसकी कीमत में अनुपात इकाई के बराबर होना चाहिए, (यदि यह त ठीक इकाई के बराबर नहीं हो पाता तो जहाँ तक सम्भव हो इकाई के निकट होना ए)। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु A से प्राप्त होने वाली उपयोगिता ७ रुपये के बराबर र उसकी कीमत भी ७ रुपये है तो उपयोगिता तथा कीमत में अनुपात ($\frac{7}{7}=1$) इकाई के र होगा। इसी प्रकार उपभोक्ता दूसरी वस्तु B को उस सीमा तक खरीदेगा जहाँ पर कि B से मिलने वाली उपयोगिता तथा उसकी कीमत का अनुपात इकाई के बराबर हो जाये। एक वस्तु A की सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) तथा कीमत (Price) का अनु- दूसरी वस्तु B की सीमान्त उपयोगिता तथा कीमत के अनुपात के बराबर होना चाहिए कि दोनों अनुपात इकाई के बराबर हैं। यह तर्क दो से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी लागू । माना कि एक व्यक्ति अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं A, B, C इत्यादि पर व्यय करना है, तो अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने और सन्तुलन की स्थिति में रहने के लिए निम्न य पूरा होना चाहिए :

$$\frac{\text{Marginal Utility of A}}{\text{Price of A}}=\frac{\text{M. U. of A}}{\text{Price of B}}=\frac{\text{M.U. of C}}{\text{Price of C}}=\text{etc.}$$

चूँकि एक वस्तु की उपयोगिता तथा कीमत का अनुपात दूसरी वस्तु की उपयोगिता तथा त के अनुपात के बराबर होता है, इसलिये सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को 'आनुपातिकता नियम' (Law of Proportionality) भी कहते हैं।

'प्रतिस्थापन का नियम' या 'सम-सीमान्त उपयोगिता का नियम' का क्षेत्र, प्रयोग या महत्त्व

COPE OR APPLICATION OR IMPORTANCE OF THE 'LAW OF SUBSTITUTION' OR THE 'LAW OF EQUI-MARGINAL UTILITY')

मार्शल के अनुसार, "प्रतिस्थापन के सिद्धान्त का प्रयोग आर्थिक खोज के लगभग प्रत्येक में लागू होता है।"[3] सम-सीमान्त उपयोगिता नियम बताता है कि एक व्यक्ति अपने सीमित

"The application of the principle of substitution extend over almost every field of economic enquiry."
—Marshall, *Principle of Economics*, p. 341.

साधन (अर्थात् द्रव्य) को असीमित आवश्यकताओं के समक्ष किस प्रकार से व्यय करें कि अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। रॉबिन्स की परिभाषा भी सीमित साधनों तथा असीमित आ ताओं के बीच मानव व्यवहार के सम्बन्ध पर प्रकाश डालती है। अतः इस नियम को का आधार' कहा जा सकता है। इस नियम का विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग निम्न विवरण से स्

(१) उपभोग के क्षेत्र में प्रयोग

'उपभोग में प्रतिस्थापन के सिद्धान्त' को सम-सीमान्त उपयोगिता नियम कहा जिसका अध्ययन विस्तृत रूप से हम कर चुके हैं। यह नियम बताता है कि अधिकतम सन्तु करने के लिए प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधन (वस्तु या द्रव्य) को विभिन्न प्रयोगों प्रकार बाँटता है कि प्रत्येक प्रयोग से सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर हों।

(२) उत्पादन के क्षेत्र में प्रयोग

प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। इसके लिए उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को इस प्रकार मिलायेगा कि कम से कम लागत पर अधिक उत्पादन प्राप्त हो। इस सम्बन्ध में उत्पादक को प्रतिस्थापन के सिद्धान्त की सहायता लेनी है। अधिकतम उत्पत्ति कम से कम लागत पर प्राप्त करने के लिए उत्पादक एक महँगे उत्पादक साधन के स्थान पर सस्ते तथा अधिक उत्पादक साधन का प्रतिस्थापन करेगा और सीमा तक प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकताएँ न हो जाएँ। इस बात को प्रो० बेन्हम[4] ने निम्न प्रकार से व्यक्त किया है :

$$\text{यदि } \frac{\text{Marginal product of Factor A}}{\text{Price of Factor A}} > \frac{\text{Marginal Product of Factor B}}{\text{Price of Factor B}}$$

तो उत्पादक साधन B के स्थान पर साधन A का प्रतिस्थापन करता जायेगा जब तक कि अनुपात बराबर न हो जायँ। यह बात दो से अधिक साधनों के सम्बन्ध में लागू होती है

$$\frac{\text{M. P. of Factor A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{M. P. of Factor B}}{\text{Price of B}} = \frac{\text{M. P. of Factor C}}{\text{Price of C}} = \text{etc.}$$

इसी प्रकार उत्पत्ति के एक साधन के विभिन्न प्रयोगों के सम्बन्ध में भी यह नियम होता है। उदाहरणार्थ, भूमि को विभिन्न प्रयोगों (खेती करने, मकान निर्माण करने, इत्यादि) उत्पादक इस प्रकार बाँटेगा कि प्रत्येक दिशा से सीमान्त उत्पादकताएँ समान हों।

(३) विनिमय के क्षेत्र में प्रयोग

(अ) वास्तव में, विनिमय एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु के प्रतिस्थापन करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एक वस्तु की न्यूनता (scarcity) होने के कारण उसकी कीमत बढ़ जाती है तो हम अधिक न्यून वस्तु (more scarce good) के स्थान पर कम न्यून वस्तु (less scarce good) का प्रतिस्थापन करने लगते हैं और इस प्रकार से न्यून वस्तु की कमी दूर हो जाती है तथा उसकी कीमत गिर जाती है। (ब) मूल्य निर्धारण में सीमान्त उपयोगिता करती है। एक उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर देना चाहेगा, सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य नहीं देगा। (स) इसी प्रकार वस्तु-विनिमय में दो व्यक्तियों के बीच दो वस्तुओं का विनिमय तब तक होगा जब तक कि प्रत्येक व्यक्ति

4 Benham, *Economics*, p. 187.

वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर न हो जाएँ; तभी वस्तु-विनिमय से दोनों पक्षों को तम लाभ प्राप्त होगा।

वितरण के क्षेत्र में प्रयोग

वितरण की समस्या है कि संयुक्त उत्पादन में से विभिन्न उत्पत्ति के साधनों का हिस्सा कैसे त किया जाये? इसको हल करने के लिए हम प्रतिस्थापन या सम-सीमान्त उत्पादकता के की मदद लेते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को उसकी सीमान्त उत्पाद- के बराबर ही मूल्य दिया जाता है।

राजस्व के क्षेत्र में प्रयोग

सरकार का उद्देश्य अपनी सीमित आय से अधिकतम सामाजिक कल्याण (Maximum al Advantage) प्राप्त करना होता है। इसमें सम-सीमान्त उपयोगिता नियम मदद करता सरकार अपनी सीमित आय को विभिन्न मदों (items) पर इस प्रकार व्यय करती है कि प्रत्येक से 'सीमान्त सामाजिक उपयोगिता' बराबर हो।

नियम की आलोचना या सीमाएँ
(CRITICISM OR LIMITATIONS OF THE LAW)

प्रतिस्थापन के नियम या सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की कई आलोचनाएँ भी हैं जिनका ड़ यह है कि बहुत-सी सीमाओं तथा कठिनाइयों के परिणामस्वरूप यह नियम व्यावहारिक न में लागू नहीं हो पाता है। इसकी मुख्य आलोचनाएँ तथा सीमाएँ निम्न हैं :

(१) प्रायः उपभोक्ता हिसाबी स्वभाव के नहीं होते-(Generally consumer do not into details of calculation)—इस नियम की मान्यता है कि अधिकतम सन्तुष्टि को त करने के लिए उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिताओं का हिसाब कर ही उन पर द्रव्य व्यय करना चाहिए। परन्तु व्यवहार में अधिकांश व्यक्ति इस हिसाबी- के में नहीं पड़ते, वे अपनी आय को आदत इत्यादि के वश होकर व्यय करते हैं।

(२) वस्तुओं की अविभाज्यता (Indivisibility of goods)—प्रो० बोल्डिंग ने इस सीमा ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। नियम लागू होने के लिए एक मान्यता यह है कि ग की जाने वाली वस्तु की छोटी-छोटी इकाइयों (doses or units) में प्रयोग किया जाए। न्तु बहुत-सी वस्तुओं, जैसे, रेडियो, पंखा, कार, मकान, इत्यादि ऐसी हैं जिनको छोटी-छोटी इयों में विभाजित नहीं किया जा सकता और इसलिए उन वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं तुलना करना सम्भव नहीं और न ही इनकी तुलना अन्य वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं से जा सकती है। उदाहरणार्थ, कारों (cars) की सीमान्त उपयोगिता की तुलना केलों की सीमान्त योगिता से नहीं की जा सकती क्योंकि कार को टुकड़े-टुकड़े करके या छोटी-छोटी इकाइयों में नीं खरीदा जा सकता।

(३) अनिश्चित 'बजट-अवधि' या कुछ वस्तुओं का अधिक टिकाऊ होना (Indefinite udget-Period' or some goods are more durable)—प्रो० बोल्डिंग (Boulding) के सार, हमारी बजट अवधि (Budget-Period) निश्चित नहीं है जबकि यह नियम एक निश्चित ट अवधि में ही लागू होता है। समय की वह अवधि जिसमें कि हम यह विचार करते हैं कि नी आय का कितना भाग विभिन्न वस्तुओं पर व्यय किया जाये, उसे 'बजट-अवधि' कहते हैं; प्रायः एक साल होती है, इससे भी अधिक कोई भी अवधि हो सकती है। नियम के अनुसार, भोक्ता अपनी एक बजट-अवधि की सीमित आय से उस अवधि में ही अधिकतम सन्तोष प्राप्त

करने का प्रयत्न करता है । परन्तु बहुत-सी वस्तुएँ ऐसी हैं जो कि एक बजट-अवधि में … जाती हैं जबकि उनका प्रयोग दूसरी बजट-अवधि में भी किया जाता है; उदाहरणार्थ, कार, … फर्नीचर इत्यादि टिकाऊ वस्तुएँ (durable goods) हैं जिनका वर्षों तक प्रयोग किया जाता है। ऐसी वस्तुओं को खरीदते समय हम उनकी उपयोगिताओं की तुलना केवल बजट-अवधि के लिए नहीं करते बल्कि आने वाले कई वर्षों तक प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं को भी ध्यान में … हैं । अतः ऐसी स्थिति में यह नियम लागू नहीं होता ।'

(४) **आदत, रीति-रिवाज तथा फैशन** (Habit, customs and fashion)—… में मनुष्य प्रायः आदत, रीति-रिवाज तथा फैशन से प्रभावित होता है । वह सोच समझकर … वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिताओं को ध्यान में रखकर व्यय नहीं करता । रीति-रिवाज, … इत्यादि के कारण वह उन वस्तुओं पर तथा उन प्रयोगों में अपनी आय को व्यय करता है … उसको कम उपयोगिता मिलती है । उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति पुत्र होने पर रीति-रिवाज के … समाज में अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों को पार्टी देता है जबकि इससे उसको उपयोगिता कम … है । इसी प्रकार, फैशन के वश एक सामान्य आय का व्यक्ति एक बड़े होटल में ७५ पैसे … रुपये में चाय का एक प्याला पीता है जबकि उसकी उपयोगिता कम है; इसी प्रकार … मनुष्य सिगरेट, शराब इत्यादि पर अपनी आय का एक अच्छा भाग व्यय कर देता है । अतः … रीति-रिवाज़, फैशन इत्यादि इस नियम के लागू होने में बाधक होते हैं ।

(५) **अज्ञानता, आलस्य तथा लापरवाही** (Ignorance, laziness and carelessness)… बहुत से उपभोक्ता बाजार में प्रचलित विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों तथा अन्य बातों से अनभिज्ञ … हैं और इसलिए वे अपनी आय को व्यय करते समय विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिताओं की ठीक प्रकार से तुलना नहीं कर सकने के कारण अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त नहीं कर पाते । … प्रकार उपभोक्ता आलस्य या लापरवाही के कारण भी अपनी सीमित आय को ऐसी वस्तुओं … या ऐसे प्रयोगों में व्यय करता है जिससे कम उपयोगिता मिलती है ।

(६) **अधिकतम कुल उपयोगिता आवश्यक रूप से अधिकतम सन्तुष्टि को नहीं …** (Maximum total utility does not necessarily means maximum satisfaction)… कुल आलोचकों के अनुसार, इस नियम के द्वारा कुल उपयोगिता को अधिकतम किया जा सकता … परन्तु कुल सन्तुष्टि को नहीं, क्योंकि उपयोगिता (utility) तथा सन्तुष्टि (satisfaction) … बात नहीं है । उपयोगिता इच्छा की तीव्रता का माप है जबकि सन्तुष्टि वस्तु के प्रयोग … के बाद प्राप्त होती है । अतः कुल उपयोगिता का आवश्यक रूप से कुल सन्तुष्टि के बराबर … जरूरी नहीं है ।

(७) **वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन** (Change in the prices of commodities)… वस्तुओं की कीमतें प्रायः बाजार में बदलती रहती हैं जिसके परिणामस्वरूप उनकी उपयोगिताएँ … भी बदलती रहती हैं और इसलिए विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं की तुलना … कठिन हो जाता है । अतः वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन नियम के लागू होने में बाधक हैं ।

(८) **कुछ वस्तुओं का न मिलना** (Non-availability of some commodities)… कभी-कभी बाजार में अधिक उपयोगी वस्तुएँ नहीं मिलतीं और उसके स्थान पर हमें कम … वस्तुएँ खरीदनी पड़ती हैं । उदाहरणार्थ, 7 O'Clock ब्लेड के न मिलने के कारण कोई … अन्य ब्लेड खरीदना पड़ता है । अतः ऐसी स्थिति में हम अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम … पाते और यह नियम लागू नहीं होता ।

(९) पूरक-वस्तुएँ (Complementary goods) कुछ वस्तुएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं :वे एक साथ एक निश्चित अनुपात में प्रयोग की जाती हैं जैसे डबल रोटी तथा मक्खन, न्टेनपेन तथा स्याही, दूध-चीनी-चाय, इत्यादि। इन वस्तुओं को एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता और इसलिए इन वस्तुओं के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं होता।

(१०) नियम की कुछ अन्य मान्यताएँ गलत (Some other assumptions of the are also wrong)—नियम की कई मान्यताएँ गलत हैं जिनमें से कुछ के सम्बन्ध में हम र अध्ययन कर चुके हैं और कुछ अन्य का विवरण कर रहे हैं—(i) उपयोगिता को ठीक प्रकार ा नहीं जा सकता जबकि यह नियम यह मानकर चलता है कि उसे मापा जा सकता है। (ii) नियम द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानकर चलता है जबकि यह गलत है क्योंकि ा के कम या अधिक होने से उसकी सीमान्त उपयोगिता में अन्तर पड़ता है। (iii) मनुष्य सदैव कशील (rational) नहीं होता।

निष्कर्ष
(CONCLUSION)

नियम की अधिकांश सीमाएँ तथा आलोचनाएँ उसकी मान्यताओं से सम्बन्धित हैं। (अ) पि उपयोगिता को बिलकुल सही प्रकार से नहीं मापा जा सकता परन्तु मोटे रूप से द्रव्य रूपी ाने से इसे अवश्य मापा जा सकता है। (ब) यद्यपि उपयोगिता तथा सन्तुष्टि एक बात नहीं है न्तु फिर भी दोनों में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए अधिकतम उपयोगिता तथा अधिकतम तुष्टि को मोटे रूप से एक ही माना जा सकता है। (स) अधिकांश व्यक्ति विवेकशील होते हैं र सोच समझ कर व्यय करते हैं।

नियम की कुछ सीमाओं के होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति सचेत अथवा अचेत रूप से इस यम का पालन करता है। यह नियम भी अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भाँति आर्थिक प्रवृत्ति ा द्योतक है। इसलिए प्रो० चैपमैन का कथन बहुत उचित है : "यद्यपि हम प्रतिस्थापन या सम-मान्त उपयोगिता नियम के अनुसार अपनी आय को वितरित करने में ठीक उसी प्रकार वश नहीं होते जिस प्रकार कि एक पत्थर ऊपर फेंके जाने पर विवश होकर नीचे भूमि पर रता है, परन्तु फिर भी हम, वास्तव में, मोटे रूप से ऐसा ही करते हैं क्योंकि हम में तर्क-ध्दि है।"[7]

उपयोगिता के मापने से सम्बन्धित कठिनाइयों तथा आलोचनाओं को दूर करने की दृष्टि प्रो० हिक्स ने उपभोक्ता के सन्तुलन को तटस्थता वक्र रेखाओं (Indifference curves) द्वारा ताया है।

प्रतिस्थापन नियम (या सम सीमान्त उपयोगिता नियम) तथा उपयोगिता ह्रास नियम का सम्बन्ध

(RELATION BETWEEN ... MARGINAL U...

... उपयोगिता ...

...निष्ठ सम्बन्ध है। ...

[7] "We are not, of course, compelled to distribute our income according to the Law of Substitution or Equi-marginal Expenditure, as a stone thrown in air is compelled, in a sense, to fall back to the earth, but, as a matter of fact, we do so in a certain rough fashion because we are reasonable." —Chapman, *Outline of Political Economy*, p. 48

करता है कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि मिले। सर्वप्रथम वह उस वस्तु पर अपना द्रव्य व्यय करेगा जिसकी उसको सबसे अधिक आवश्यकता है; परन्तु इस एक वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयाँ खरीदते जाने से उसको, उपयोगिता ह्रास नियम के परिणामस्वरूप, घटती हुई उपयोगिता प्राप्त होती है। एक सीमा के बाद उसके लिए इस वस्तु की आवश्यकता कम हो जाती है और दूसरी वस्तु की आवश्यकता ज्यादा जरूरी अनुभव होने लगती है। ऐसा अनुभव होते ही वह पहली वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु का प्रतिस्थापन करने लगता है और तब तक करता है जब तक कि दोनों वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर न हो जायें। स्पष्ट है कि उपयोगिता ह्रास नियम के कारण ही प्रतिस्थापन का नियम या सम-सीमान्त उपयोगिता नियम लागू होता है। यदि वस्तुओं से घटती हुई उपयोगिताएँ प्राप्त नहीं होती तो एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु के प्रतिस्थापन का प्रश्न ही नहीं उठता। स्पष्ट है कि सम-सीमान्त उपयोगिता नियम या प्रतिस्थापन का नियम उपयोगिता ह्रास नियम के कारण ही लागू होता है।

प्रतिस्थापन का नियम तथा उत्पत्ति-ह्रास नियम में सम्बन्ध
(RELATION BETWEEN THE LAW OF SUBSTITUTION AND THE LAW OF DIMINISHING RETURNS)

उत्पादन के क्षेत्र में प्रतिस्थापन के नियम के लागू होनें का कारण उत्पत्ति-ह्रास नियम है। यदि उत्पादक एक उत्पत्ति के साधन A की उत्तरोत्तर इकाइयों को लगाता जाता है तो उसे उत्पत्ति-ह्रास नियम के परिणामस्वरूप, घटता हुआ उत्पादन मिलता है। साधन A का प्रयोग केवल उस सीमा तक किया जायेगा जहाँ पर कि साधन की सीमान्त उत्पत्ति गिरकर उसके लिए दिये जाने वाले मूल्य के बराबर हो जाये और तत्पश्चात पहले साधन A के स्थान पर दूसरे साधन B का प्रतिस्थापन किया जाने लगेगा और उस सीमा तक प्रतिस्थापन किया जायेगा जब तक कि

$$\frac{\text{Marginal Product of A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{Marginal Product of B}}{\text{Price of B}}$$

; अतः स्पष्ट है कि उत्पत्ति-ह्रास नियम के कारण ही उत्पादन के क्षेत्र में प्रतिस्थापन का नियम लागू होता है।

माँग तथा माँग का नियम
[DEMAND AND LAW OF DEMAND]

अर्थशास्त्र में माँग तथा पूर्ति के विचार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रायः यह कहा जाता है "यदि एक तोते को अर्थशास्त्र के प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में पूर्ति तथा माँग रटा दिया जाये तो वह अच्छा अर्थशास्त्री होगा।"[1] अर्थशास्त्री की समस्याओं के विवेचन में माँग तथा पूर्ति को भलीभाँति समझना अत्यन्त आवश्यक है।

---

1 "Teach a parrot to say 'supply and demand' in reply to every question, and it is a good economist."

माँग की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF DEMAND)

प्रो० बेनहम के अनुसार, "किसी दी हुई कीमत पर किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की वह ा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय में खरीदी जायेगी।

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि माँग के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है :

(१) 'प्रभावपूर्ण इच्छा' अथवा आवश्यकता; अर्थात (अ) इच्छा का होना, (ब) इच्छा का करने के लिए पर्याप्त साधन (अर्थात द्रव्य) का होना, तथा (स) साधन अर्थात द्रव्य को व्यय ा की तत्परता का होना। (२) एक निश्चित कीमत; माँग सदैव एक निश्चित कीमत पर होती ाँग शब्द का कोई अर्थ नहीं है, यदि यह न बताया जाये कि माँग किस कीमत पर है। वस्तु प की माँग विभिन्न कीमतों पर भिन्न-भिन्न होगी। (३) निश्चित समय या प्रति इकाई समय r unit of time); माँग सदैव समय की प्रति इकाई (अर्थात प्रतिदिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह प्रतिवर्ष) के साथ व्यक्त की जाती है।

उदाहरणार्थ केवल यह कहना कि आगरे में १००० क्विण्टल गेहूँ की माँग है, ठीक नहीं माँग के सम्बन्ध में पूर्ण कथन इस प्रकार होना चाहिए—आगरे में ९० रुपये प्रति क्विण्टल की मत पर गेहूँ की माँग १००० क्विण्टल प्रति माह है।

माँग तथा आवश्यकता में अन्तर

माँग तथा आ[illegible] थोड़ा तर है। आवश्यक[illegible] इच्छा (effective desire) को कहते हैं अर्थात आवश्यकता तीन बात होनी चाहिए। (i) किसी वस्तु की इच्छा होना; (ii) इच्छा को पूरा करने के लिए धन (द्रव्य) का होना; तथा (iii) साधन को व्यय करने की तत्परता का होना। परन्तु माँग को भावपूर्ण इच्छा' कहना पर्याप्त नहीं है क्योंकि माँग सदैव एक निश्चित मूल्य पर तथा एक श्चित समय में होती है। इस प्रकार माँग के लिए निम्न पाँच बातों का होना जरूरी है : (i) च्छा; (ii) इच्छा को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन; (iii) साधन को व्यय करने की तत्परता; v) निश्चित कीमत; तथा (v) निश्चित समयावधि।

माँग के प्रकार
(KINDS OF DEMAND)

ल्य-माँग, आय-माँग तथा आड़ी माँग (Price Demand, Income Demand and Cross Demand)

किसी वस्तु या सेवा की माँगी जाने वाली मात्रा मुख्यतया तीन बातों पर निर्भर करती है :) वस्तु या सेवा की कीमत, (ब) उपभोक्ताओं की आय, तथा (स) सम्बन्धित वस्तुओं की मतें। अतः इन तीनों बातों को ध्यान में रखते हुए कुछ अर्थशास्त्रियों (जैसे Bober) ने माँग के न प्रकार बताये हैं : (१) मूल्य-माँग (Price Demand), (२) आय-माँग (Income Demand), तथा (३) आड़ी माँग (Cross Demand)।

१) मूल्य माँग (Price Demand)

मूल्य-माँग किसी वस्तु की उन मात्राओं को बताती है जो कि एक उपभोक्ता एक निश्चित मय में विभिन्न कल्पित मूल्यों पर खरीदने को तैयार है, यदि अन्य बातें समान रहती हैं। अन्य तों के समान रहने का अर्थ है कि उपभोक्ता की आय, रुचि, सम्बन्धित वस्तुओं (related goods) की कीमतों, इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता।

"The demand for anything, at a given price, is the amount of it which will be bought per unit of time at that price." —Benham, *Economics*, p. 36.

चित्र संख्या १३ में मूल्य मांग रेखा (Price Demand Curve) को दिखाया गया है। रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती जाती है। इसका ऋणात्मक ढाल (negative slope) है। इसका अर्थ है कि मूल्य और मांग में उल्टा (inverse) सम्बन्ध है। मूल्य बढ़ता है तो मांग घटती है तथा घटने पर मांग बढ़ती है।

चित्र—१३

(२) आय-मांग (Income Demand)

आय-मांग किसी वस्तु की उन मात्राओं को बताती है जो कि उपभोक्ता एक निश्चित समय में विभिन्न स्तरों पर खरीदने को तैयार रहता है, यदि अन्य बातें समान रहती हैं। आय-मांग रेखा (Income Demand Curve) को जर्मनी के एक पुराने अर्थशास्त्री एंजिल के नाम पर 'एंजिल-रेखा' (Engel Curve) भी कहते हैं। अन्य बातों के समान रहने का अर्थ है कि वस्तु या सेवा के मूल्य, अन्य वस्तुओं के मूल्यों तथा उपभोक्ता की रुचि, स्वभाव इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता।

जिस प्रकार मूल्य-मांग मूल्यों तथा मात्राओं के सम्बन्ध को बताती है, उसी प्रकार आय-मांग, आयों तथा मांगी गयी मात्राओं के सम्बन्ध को व्यक्त करती है। आय-मांग की मांग-सूची (demand schedule) को बनाने के लिए हम एक ओर आयों को लिखते हैं और दूसरी ओर उन आयों पर मांगी गयी मात्राओं को लिखते हैं।

कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनकी माँग, आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है। ऐसी वस्तुओं को आर्थिक दृष्टि से श्रेष्ठ वस्तुएँ (economically superior goods) कहते हैं, इस प्रकार की वस्तुएँ विलासिता तथा आराम की वस्तुएँ होती हैं, इनकी माँग आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है। चित्र संख्या १४ में श्रेष्ठ वस्तु की आय-माँग रेखा दिखायी गयी है। चित्र में स्पष्ट है कि OT आय पर X-वस्तु की माँगी गयी मात्रा OQ है, यदि आय बढ़कर OT_1 हो जाती है तो वस्तु की माँग भी बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

चित्र—१४

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनकी माँग, आय में वृद्धि के साथ घटती जाती है। ऐसी एँ (उदाहरणार्थ विभिन्न प्रकार के अनाज, T; इत्यादि) को आर्थिक दृष्टि से निम्न ट की वस्तुएँ (economically inferior ods) कहते हैं। ऐसी वस्तुओ की आय-माँग- ' चित्र संख्या १५ में दिखायी गयी है जो कि 'से दायें नीचे की ओर गिरती है। चित्र से ट है कि PQ आय पर वस्तु की OQ मात्रा ी जाती है; यदि आय बढ़कर P_1Q_1 हो ी है तो माँग घटकर OQ_1 हो जाती है।

चित्र—१५

) आड़ी-माँग (Cross Demand)

किसी वस्तु X की आड़ी-माँग X वस्तु उन मात्राओं को बताती है जो कि एक उप- क्ता, (X के विभिन्न मूल्यों पर नहीं बल्कि) X सम्बन्धित किसी वस्तु Y के विभिन्न मूल्यों : खरीदने को तैयार है, जबकि माँग को ावित करने वाली अन्य बातें समान रहती हैं। घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की ती हैं। एक तो प्रतिस्थापन वस्तुएँ (Substitute goods) जो कि एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग की जा सकती हैं। दूसरे, पूरक वस्तुएँ (Complementary goods) जो कि एक दूसरे के साथ पूरक के रूप मे प्रयोग की जाती हैं।
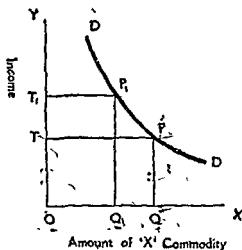
चित्र—१६

'प्रतिस्थापन वस्तुओं' का एक अच्छा उदाहरण चाय (X वस्तु) तथा काफी (Y वस्तु) का है। यदि काफी (Y वस्तु) का मूल्य बढ़ता है, तो अन्य बातों के समान रहने पर चाय (X वस्तु) की माँग मे वृद्धि हो जायेगी क्योंकि काफी महँगी हो जाने के कारण लोग चाय का प्रयोग अधिक करने लगेंगे। दूसरे शब्दों में, प्रतिस्थापन वस्तुओं के मूल्य तथा माँगी गयी मात्रा में सीधा सम्बन्ध (direct relation) होता है; एक वस्तु के मूल्य में वृद्धि या कमी दूसरी वस्तु की माँग में वृद्धि या कमी करती है। प्रतिस्थापन वस्तुओं की आड़ी-माँग रेखा चित्र संख्या १६ में दिखायी गयी
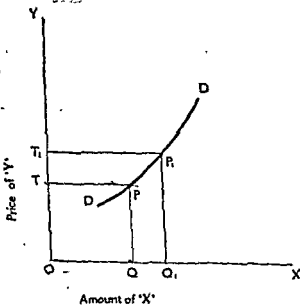
है। चित्र से स्पष्ट है कि यदि Y वस्तु का मूल्य PQ से बढ़कर P_1Q_1 हो जाता है तो X की माँग भी बढ़कर OQ से OQ_1 हो जाती है।

पूरक वस्तुओं (Complementary goods) का एक उदाहरण स्याही (X वस्तु) तथा पेन (Y वस्तु) का है। यदि पेन (Y वस्तु) का मूल्य बढ़ता है तो पेन की माँग में कमी होगी और परिणामस्वरूप स्याही (X वस्तु) की माँग में कमी हो जायेगी। इसके विपरीत यदि पेन (Y वस्तु) का मूल्य घटता है तो पेन की माँग बढ़ेगी और परिणामस्वरूप स्याही (X वस्तु) की माँग में वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में, पूरक वस्तुओं के मूल्य तथा माँग में उलटा सम्बन्ध (inverse relation) होता है। पूरक वस्तुओं की आड़ी माँग की माँग रेखा चित्र संख्या १७ में दिखायी गयी है। चित्र से स्पष्ट है कि Y का मूल्य PQ से घटकर P_1Q_1 हो जाता है तो X की माँग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है अर्थात दोनों में उलटा सम्बन्ध है।

चित्र—१७

संयुक्त माँग, उत्पन्न माँग तथा सामूहिक माँग (Joint Demand, Derived Demand, Composite Demand)

माँग के तीन और निम्न प्रकार हैं : (i) संयुक्त माँग, (ii) उत्पन्न या व्युत्पन्न माँग (Derived Demand), तथा (iii) सामूहिक माँग।

(i) **संयुक्त माँग**—जब दो या अधिक वस्तुएँ किसी एक संयुक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक साथ माँगी जाती हैं तो ऐसी माँग को 'संयुक्त-माँग' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, मोटर तथा पेट्रोल की माँग, पेन तथा स्याही की माँग, डबल रोटी तथा मक्खन की माँग, इत्यादि।

माँग-तालिका
(DEMAND SCHEDULE)

एक बाजार में किसी निश्चित समय में विभिन्न मूल्यों पर किसी वस्तु की विभिन्न मात्राएँ ी जाती हैं। इन विभिन्न मूल्यों तथा उन पर माँगी जाने वाली मात्राओं को एक तालिका के में लिखा जाये तो इसे माँग की तालिका कहते हैं। दूसरे शब्दों में, माँग की तालिका 'मूल्य' । 'माँगी गयी मात्रा' में कार्यात्मक सम्बन्ध (functional relationship) को बताती है।

माँग की तालिका दो प्रकार की होती है : (१) व्यक्तिगत माँग तालिका (Individual mand Schedule), तथा (२) बाजार की माँग तालिका (Market Demand Schedule)।

व्यक्तिगत माँग तालिका—किसी निश्चित समय में एक व्यक्ति किसी वस्तु की विभिन्न मतों पर उसकी विभिन्न मात्राओं को माँगता है। ये विभिन्न कीमतें तथा माँगी गयी मात्राएँ लकर व्यक्ति की माँग तालिका का निर्माण करती हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अमुक-क कीमतें वास्तव में प्रचलित हैं और तदनुसार अमुक-अमुक मात्राएँ खरीदी जाती हैं। एक क्ति की माँग तालिका का निर्माण उस व्यक्ति की भूतकाल में प्रतिक्रियाओं (reactions) की नकारी के आधार पर किया जाता है। परन्तु भूत-काल की अपेक्षा वर्तमान में व्यक्ति की आय, व इत्यादि में परिवर्तन हो सकता है और इसलिए व्यक्ति की वर्तमान माँग-तालिका पहले की पेक्षा भिन्न हो सकती है। माँग तालिका के निर्माण का यह एक महत्त्वपूर्ण दोष है।

एक व्यक्ति X की किसी वस्तु (माना चीनी) की माँग तालिका निम्न उदाहरण द्वारा है :

मूल्य प्रति किलोग्राम	माँगी गयी मात्रा (किलोग्राम में)
१·०० रु०	८
१·२५ रु०	७
१·५० रु०	४
२·०० रु०	२

बाजार माँग तालिका—किसी वस्तु की 'व्यक्तिगत माँग तालिकाओं की सहायता से र्ण बाजार की माँग तालिका' निकाली जा सकती है। वस्तु की प्रत्येक कीमत पर बाजार में निश्चित कुल माँग (aggregate demand) होगी जो कि बाजार में सभी क्रेताओं की माँगों जोड़कर प्राप्त होती है। अतः विभिन्न कीमतें तथा उनसे सम्बन्धित कुल माँगें (aggregates demand) मिलकर एक बाजार की माँग तालिका का निर्माण करती है। उदाहरणार्थ, माना एक बाजार में केवल तीन व्यक्ति X, Y तथा Z हैं और किसी वस्तु के लिए इन व्यक्तियों माँग तालिकाएँ निम्न है :

मूल्य प्रति किलोग्राम (रुपयों में)	माँगी गयी मात्राएँ (किलोग्राम में)			बाजार में तीनों व्यक्तियों (X, Y तथा Z) की कुल माँग (किलोग्राम में)
	X द्वारा	Y द्वारा	Z द्वारा	
१	८	१४	१०	३२
२	७	१२	८	२७
३	५	१०	५	२०
४	४	८	२	१४

तालिका से स्पष्ट है कि अन्तिम स्तम्भ (column) सम्पूर्ण बाजार की कुल
बताता है। अतः प्रथम तथा अन्तिम स्तम्भ मिलकर 'बाजार की माँग तालिका' को बताते हैं।

'माँग-तालिका' के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखने योग्य हैं :

(१) बाजार की माँग तालिका बनाते समय हम यह मान लेते हैं कि 'अन्य बातें **समान रहती हैं** अर्थात उपभोक्ताओं की आय, रुचि, स्थानापन्न वस्तुओं (substitutes) की इत्यादि समान रहती हैं और केवल वस्तु विशेष की कीमत ही बदलती है परन्तु वास्तविक में ऐसा नहीं होता है क्योंकि प्राय: अन्य बातें समान नहीं रहती हैं।

(४) वास्तव में, एक काल्पनिक माँग तालिका का बनाना आसान है, परन्तु एक या बाजार की **वास्तविक माँग तालिका का बनाना बहुत कठिन है।**

विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों द्वारा एक बाजार का निर्माण होता है, इसलिए यह सकता है कि विभिन्न व्यक्तियों की माँग तालिकाओं का योग ही बाजार की माँग तालि निर्माण करता है। मोटे तौर पर तो हम ऐसा कह सकते हैं, परन्तु निश्चित रूप से यह सही स्थिति नहीं है। वास्तव में, एक व्यक्तिगत माँग तालिका कम या अधिक रूप में व्यवहार (market behaviour) से प्रभावित होती है; अतः हम एक व्यक्तिगत माँग रूप को ठीक प्रकार से नहीं जान सकते जब तक कि हमें बाजार की माँग रेखा का रूप हो। अतः **व्यक्तिगत माँग तालिका तथा बाजार माँग तालिका एक दूसरे पर निर्भर करती एक दूसरे को प्रभावित करती हैं।** अतः "कुल व्यवहार (aggregate behaviour) सांख्यिकी अनुमान (statistical estimate), न कि व्यक्तिगत माँगों का गणितात्मक योग metical summing) बाजार माँग तालिका (Community's demand schedule) रेखा (outline) दे सकता है।"[3]

'बाजार माँग-तालिका' एक और प्रकार से भी बनायी जा सकती है। हम बाजार क्रेताओं में से एक प्रतिनिधि क्रेता (representative buyer) की माँग तालिका मालूम हैं, और इसको कुल खरीदारों या उपभोक्ताओं से गुणा करके बाजार की माँग तालिका जा सकती है। परन्तु सम्पूर्ण बाजार में से एक प्रतिनिधि क्रेता या उपभोक्ता को बहुत कठिन है क्योंकि उपभोक्ताओं की आय, रुचि इत्यादि में बहुत अन्तर होता है। किया भी जा सकता है यदि यह मान लें कि आय, रुचि इत्यादि से सम्बन्धित उपभो अन्तर आपस में एक दूसरे को नष्ट कर देते हैं।

(३) मार्शल ने बताया कि व्यक्तिगत माँग तालिका की अपेक्षा **बाजार की माँग अधिक अभंग तथा समतल** (continuous and smooth) होती है। एक व्यक्ति अनि (erratic manner) से व्यवहार कर सकता है, परन्तु ये अनियमितताएँ या बल (kinks) (angularities) बाजार की माँग तालिका में समतल (smooth) हो जाते हैं क्योंकि के अन्तर एक-दूसरे को नष्ट कर देते हैं और इस प्रकार हमें एक समतल चित्र प्राप्त हो

(४) **व्यक्तिगत तथा बाजार माँग तालिकाओं दोनों पर समय एक महत्वपूर्ण प्रभा है।** प्रथम, कीमत में परिवर्तन होने के साथ यदि उपभोक्ता को अपनी माँग को समायोजन करने का अधिक समय दिया जाता है तो उसकी माँग अधिक लोचदार (elastic) हो दूसरे, जितना अधिक समय विचाराधीन होगा उतना ही भविष्य में अनुमानित कीमतों प्रभाव रहेगा।

3. [illegible] estimate of 'aggregate behaviour' rather than an arithmetical [illegible] [illegible] can give us an outline of community's demand schedule

माँग तालिका का महत्त्व—यद्यपि माँग तालिका का बनाना कठिन है परन्तु इसका अर्थ यह ! कि माँग-तालिका का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता है। कीमतों में परिवर्तन होने के मस्वरूप माँगी गयी मात्राओं में परिवर्तनों का मोटा अनुमान तो अवश्य लगाया जा सकता स दृष्टि से माँग तालिका का पर्याप्त महत्त्व है—(अ) माँग तालिका के आधार पर ही वित्त यह अनुमान लगाता है कि कर लगाने से कीमतों में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप किस सीमा पभोक्ता अपनी माँग को कम करेंगे। (ब) इस प्रकार से बजट का निर्माण एक सीमा तक तालिका पर आधारित है। (स) इसी प्रकार से एक एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम की दृष्टि से अपनी वस्तु की कीमतें में परिवर्तन करने के परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं की माँग रवर्तन का अनुमान लगाता है अर्थात माँग तालिका की सहायता लेता है।

माँग-रेखा
(DEMAND CURVE)

रेखा का अर्थ (Meaning of Demand Curve)

जब माँग तालिका को रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया जाता है तो माँग रेखा (Demand ve) प्राप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी कितनी एँ खरीदी जायेगी, इस सम्बन्ध को माँग रेखा बताती हैं। माँग तालिका की भाँति माँग रेखा ो प्रकार की होती है—(१) व्यक्तिगत माँग रेखा (Individual Demand Curve), तथा बाजार की माँग रेखा (Market Demand Curve)। व्यक्तिगत माँग तालिका के आधार खींची गयी माँग रेखा 'व्यक्तिगत माँग रेखा' कहलाती है; और बाजार माँग तालिका के आधार खींची गयी माँग रेखा 'बाजार की माँग रेखा' कही जाती है।

चित्र संख्या १८ में माँग-रेखा (DD) को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि कीमत PQ है तो माँगी जाने वाली मात्रा OQ है। यदि कीमत गिरकर P_1Q_1 जाती है तो माँग बढ़कर OQ_1 हो ती है। माँग रेखा बायें से दायें को नीचे ओर गिरती है। इस प्रकार की रेखा ती है कि कीमत तथा माँग में उल्टा न्ध है अर्थात यदि कीमत घटती है तो बढ़ती है और कीमत बढ़ने पर माँग ती है।

चित्र—१८

रेखा के पीछे मान्यताएँ (Assumptions behind the Demand Curve)

(१) माँग रेखा एक स्थिर स्थिति (stationary state) को ही बताती है और प्रकार एक समयावधि के अन्तर्गत माँग परिवर्तनों को नहीं बताती। माँग रेखा कीमतों को दिया हुआ तथा स्थिर निकर चलती है। ये कीमतें वास्तव में बाजार में नहीं पायी जाती।
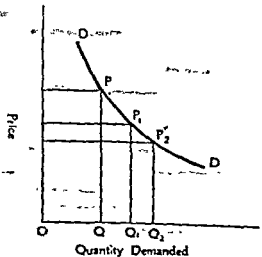
माँग तालिका का महत्त्व—यद्यपि माँग तालिका का बनाना कठिन है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि माँग-तालिका का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता है। कीमतों में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप माँगी गयी मात्राओं में परिवर्तनों का मोटा अनुमान तो अवश्य लगाया जा सकता है। इस दृष्टि से माँग तालिका का पर्याप्त महत्त्व है—(अ) माँग तालिका के आधार पर ही वित्त मन्त्री यह अनुमान लगाता है कि कर लगाने से कीमतों में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप किस सीमा तक उपभोक्ता अपनी माँग को कम करेंगे। (ब) इस प्रकार से बजट का निर्माण एक सीमा तक माँग-तालिका पर आधारित है। (स) इसी प्रकार से एक एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करने की दृष्टि से अपनी वस्तु की कीमत में परिवर्तन करने के परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं की माँग में परिवर्तन का अनुमान लगाता है अर्थात माँग तालिका की सहायता लेता है।

माँग-रेखा
(DEMAND CURVE)

माँग रेखा का अर्थ (Meaning of Demand Curve)

जब माँग तालिका को रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया जाता है तो माँग रेखा (Demand Curve) प्राप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु को विभिन्न कीमतों पर उसकी कितनी मात्राएँ खरीदी जायेंगी, इस सम्बन्ध को माँग रेखा बताती हैं। माँग तालिका की भाँति माँग रेखा भी दो प्रकार की होती है—(१) व्यक्तिगत माँग रेखा (Individual Demand Curve); तथा (२) बाजार की माँग रेखा (Market Demand Curve)। व्यक्तिगत माँग तालिका के आधार पर खींची गयी माँग रेखा 'व्यक्तिगत माँग रेखा' कहलाती है; और बाजार माँग तालिका के आधार पर खींची गयी माँग रेखा 'बाजार की माँग रेखा' कही जाती है।

चित्र संख्या १८ में माँग-रेखा (DD) को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि जब कीमत PQ है तो माँगी जाने वाली मात्रा OQ है। यदि कीमत गिरकर P_1Q_1 हो जाती है तो माँग बढ़कर OQ_1 हो जाती है। माँग रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती है। इस प्रकार की रेखा बताती है कि कीमत तथा माँग में उल्टा सम्बन्ध है अर्थात यदि कीमत घटती है तो माँग बढ़ती है और कीमत बढ़ने पर माँग घटती है।

चित्र—१८

माँग रेखा के पीछे मान्यताएँ (Assumptions behind the Demand Curve)

(१) माँग रेखा एक स्थिर स्थिति (stationary state) को ही बताती है और इस प्रकार एक समयावधि के अन्तर्गत माँग में परिवर्तनों को नहीं बताती। माँग रेखा कुछ कीमतों को दिया हुआ तथा स्थिर मानकर चलती है। ये कीमतें वास्तव में बाजार में नहीं पायी जातीं।
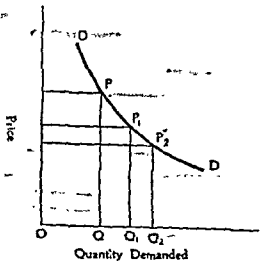
(२) यह मान लिया जाता है कि उपभोक्ता के स्वभाव तथा रुचि में परिवर्तन नहीं होता है।

(३) उपभोक्ता की मौद्रिक आय (money income) भी स्थिर मान ली जाती है।

(४) अन्य वस्तुओं, जिनमें कि उपभोक्ता दिलचस्पी रखता है, की कीमतें भी स्थिर मान ली जाती हैं।

(५) कीमत तथा माँग के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में परिवर्तनों में निरन्तरता (continuity in variation) या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तनों का होना मान लिया जाता है। परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसा पाया जाना जरूरी नहीं है। यह सम्भव है कि प्रायः कीमतों में थोड़े परिवर्तनों के होने पर माँग पर कोई प्रभाव न हो और माँग बिल्कुल परिवर्तित न हो, बल्कि तभी परिवर्तन होगा जबकि कीमत में एक निश्चित मात्रा में परिवर्तन हो। दूसरे शब्दों में, व्यावहारिक जीवन में माँग रेखा का समतल तथा अटूट (smooth and continuous) होना आवश्यक नहीं है, उसमें बहुत से मोड़ (kinks) या कोण (angularities) पाये जा सकते हैं क्योंकि कीमत में प्रत्येक सूक्ष्म परिवर्तन के उत्तर (response) में माँग में परिवर्तन नहीं होता; कीमत में एक निश्चित परिवर्तन होने पर ही माँग में परिवर्तन होता है।

(६) एक अटूट (continuous) माँग रेखा यह मान लेती है कि एक वस्तु की अत्यन्त छोटी-छोटी इकाइयाँ मौजूद होती हैं। परन्तु ऐसा मानना भी वास्तविक नहीं है। अविभाज्य वस्तुओं (indivisible commodities) के सम्बन्ध में माँग रेखा अटूट तथा समतल (smooth) नहीं हो सकती है, परन्तु उसका ऐसा होना मान लिया जाता है।

माँग का नियम
(LAW OF DEMAND)

१. नियम का कथन (Statement of the Law)

माँग का नियम कीमत तथा माँगी गयी मात्रा के सम्बन्ध को बताता है। माँग के नियम का कथन इस प्रकार दिया जा सकता है : **अन्य बातों के यथावत रहते हुए, किसी सेवा या वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी माँग घटती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी माँग बढ़ती है। अतः माँग का नियम कीमत तथा माँगी गयी मात्रा में विपरीत सम्बन्ध** (inverse relationship) को बताता है।[4] दूसरे शब्दों में, वस्तु की अधिक इकाइयाँ कम कीमत पर बेची जा सकेंगी तथा कम इकाइयाँ ऊँची कीमत पर बिकेंगी।

माँग का नियम एक गुणात्मक कथन (qualitative statement) है न कि परिमाणात्मक कथन (quantitative statement)। इसका अर्थ है कि यह केवल माँग में परिवर्तन की दिशा (direction) को बताता है-अर्थात केवल यह बताता है कि माँग कम होगी या ज्यादा; यह माँग में परिवर्तन के परिमाण (quantity) को नहीं बताता अर्थात यह नहीं बताता कि माँग कितनी मात्रा में कम होगी या कितनी मात्रा में अधिक। संक्षेप में, **माँग का नियम बताता है कि माँग कीमत की अपेक्षा विपरीत दिशा में परिवर्तित होती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि माँग में परिवर्तन आनुपातिक (proportionate) हो।**[5]

---

4 Other things being equal, the increase in price of a service or a commodity leads to a fall in its demand and the fall in the price leads to an increase in its demand. Thus, the law of demand reflects the inverse relationship between price and demand.

5 "Thus, in short, the law of demand says that demand varies inversely with price, not necessarily proportionately."

२. नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the Law)

"माँग के नियम के कथन में 'अन्य बातें समान रहें' (Other things being equal) या माँग की दशाएँ समान रहें' (the conditions of demand remaining constant) महत्त्वपूर्ण ... है; यह नियम की मान्यताओं या सीमाओं को बताता है। प्रो० मेयर्स (Meyers) के ..., माँग के नियम लागू होने के लिए निम्न दशाएँ (conditions) या मान्यताएँ पूरी होनी ...:

(i) व्यक्तियों की आय समान रहनी चाहिए।

(ii) उनके स्वभाव तथा रुचि में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(iii) आय तथा वस्तुओं की कीमतें समान रहनी चाहिए।

(iv) वस्तु की किसी नयी स्थानापन्न वस्तु (substitute) की खोज नहीं होनी चाहिए।

(v) वस्तु की कीमत में और अधिक परिवर्तन होने की आशा नहीं की जाती है।

(vi) वस्तु ऐसी नहीं है जिसको रखने से या प्रयोग करने से लोगों को समाज में अधिक ...ा (distinction or prestige) मिलती हो। (क्योंकि यदि प्रतिष्ठा प्रदान करने वाली वस्तु ... धनवान् व्यक्ति उसकी ऊँची कीमत होने पर भी अधिक खरीदेंगे।)

...ग के नियम की व्याख्या (Explanation of the Law of Demand)

अथवा

माँग रेखाएँ दायें को नीचे की ओर क्यों झुकती हैं ? (Why Demand Curves Slope ...nwards to the Right)

— माँग का नियम कीमत तथा माँगी गयी मात्रा के बीच उल्टे सम्बन्ध को बताता है। इस ... जब माँग के नियम को माँग-रेखा द्वारा व्यक्त करते हैं तो माँग-रेखा बायें से दायें नीचे की ... गिरती है। ऐसा क्यों होता है अर्थात कीमत तथा माँग में उल्टा सम्बन्ध क्यों होता है ? इस ... की व्याख्या निम्न कारणों द्वारा स्पष्ट हो जाती है :—

(i) उपयोगिता ह्रास नियम (Law of diminishing utility)—माँग का नियम उप- ... । सामान्यतया एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए कीमत उसकी ... । किसी वस्तु की अधिक इकाइयों (additional units) का ... करते जाने से, उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार, उसकी उपयोगिता घटती जाती है; अतः ...क्ता उस वस्तु की अधिक इकाइयाँ तभी खरीदेगा जबकि उसकी कीमत कम हो। दूसरे शब्दों ... अन्य बातों के समान रहते हुए, उपभोक्ता वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी अधिक माँग ...। इसी प्रकार यदि उपभोक्ता को वस्तु की कम इकाइयाँ प्राप्त होती हैं तो उसके लिए वस्तु ... उपयोगिता अधिक होगी और वह वस्तु के लिए ऊँची कीमत देने को तैयार होगा। दूसरे शब्दों ... अन्य बातों के समान रहते हुए, ऊँची कीमत पर वह वस्तु की कम इकाइयाँ खरीदेगा। इस ...र उपयोगिता ह्रास नियम, माँग के नियम की व्याख्या करता है, अर्थात बताता है कि कम ...त पर वस्तु की अधिक मात्रा तथा ऊँची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा क्यों खरीदी जाती है।

(ii) प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution effect)—अन्य वस्तुओं की कीमतें अपरि-...त रहने पर जब किसी वस्तु की कीमत गिरती है तो वह वस्तु अन्य वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती ...त होने लगती है या अन्य वस्तुएँ इस वस्तु की अपेक्षा महँगी प्रतीत होने लगती हैं। अतः वस्तु ... कीमत गिरने पर लोग इस वस्तु का अन्य वस्तुओं, जिनकी कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं, ...न पर प्रतिस्थापन करने लगते हैं। इसे 'प्रतिस्थापन प्रभाव' कहते हैं। इस प्रकार

कीमत गिर जाने से प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उसकी माँग बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ, यदि चाय की कीमत गिर जाती है, और काफी (coffee) की कीमत पहले जैसी ही रहती है, तो कुछ व्यक्ति चाय का प्रतिस्थापन (अर्थात प्रयोग) काफी के स्थान पर करेंगे। इस प्रकार चाय की माँग बढ़ जायेगी। **इसी प्रकार यदि किसी वस्तु की कीमत बढ़ जाती है और अन्य वस्तुओं की कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं, तो लोग इस वस्तु के स्थान पर अन्य वस्तुओं का प्रयोग करने लगते हैं और इस वस्तु की माँग कम हो जाती है।** अतः स्पष्ट है कि प्रतिस्थापन प्रभाव के परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत गिरने पर उसकी माँग बढ़ती है और कीमत बढ़ने पर उसकी माँग घटती है, अर्थात माँग के नियम के लागू होने के कारण की व्याख्या हो जाती है। दूसरे शब्दों में, इसी कारण माँग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है।

(iii) **आय प्रभाव** (Income effect)—**किसी वस्तु की कीमत में कमी वास्तव में उपभोक्ता की आय में वृद्धि के समान है** क्योंकि अब उसे वस्तु की उतनी ही मात्रा खरीदने के लिए कम मुद्रा व्यय करनी पड़ती है। इस प्रकार से आय में वृद्धि में से एक भाग वस्तु की और अधिक मात्रा खरीदने पर व्यय कर सकता है। उदाहरणार्थ, ½ किलो चाय की कीमत ५ रुपये से गिरकर ३ रुपये हो जाती है, तो उपभोक्ता को २ किलो चाय खरीदने के लिए अब केवल १२ रुपये व्यय करने पड़ते हैं जबकि पहले वह उतनी ही मात्रा खरीदने के लिए २० रुपये व्यय करता था। अतः कीमत गिरने से वास्तव में उसकी आय (२० – १२) = ८ रुपये से बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई आय में से वह कुछ रुपया और चाय खरीदने पर व्यय कर सकता है और इस प्रकार कीमत गिरने से चाय की माँग बढ़ जाती है। इसे **'आय प्रभाव'** कहते हैं। इसी प्रकार **किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि वास्तव में उपभोक्ता की आय में कमी के समान होती है** और उपभोक्ता को वस्तु पर किये जाने वाले खर्च में कमी करनी पड़ती है, अर्थात उसकी माँग घट जाती है। इस प्रकार 'आय प्रभाव' माँग के नियम की व्याख्या करता है। दूसरे शब्दों में, 'आय प्रभाव' बताता है कि माँग रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर क्यों गिरती है।

मार्शल का माँग का नियम केवल 'कीमत के गिरने के प्रतिस्थापन प्रभाव' (Substitution effect of a fall in price) पर ही जोर देता है और 'आय प्रभाव' को बिलकुल भुला देता है।

(iv) **कुछ नये व्यक्तियों के प्रवेश या कुछ के बाजार छोड़कर जाने के प्रभाव** (Effects of the entry of some new purchasers or some going out of the market)—जब किसी वस्तु की कीमत गिरती है तो कुछ और व्यक्ति, जो कि पहले उसको नहीं खरीद सकते थे, खरीदने लगते हैं और इसलिए वस्तु की कुल माँग में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत यदि वस्तु की कीमत बढ़ती है तो कुछ व्यक्ति अब उसे नहीं खरीद पायेंगे और वस्तु के बाजार के बाहर हो जायेंगे; अतः वस्तु की माँग घट जायेगी।

४. माँग के नियम के अपवाद (Exceptions to the Law of Demand)

अथवा

क्या कुछ माँग-रेखाएँ ऊपर की ओर चढ़ती हुई हो सकती हैं? (Can some Demand Curves Slope Upwards)

कुछ दशाएँ ऐसी हैं जिनमें माँग का नियम लागू नहीं होता है, अर्थात कीमत तथा माँग में उल्टा सम्बन्ध नहीं बल्कि सीधा सम्बन्ध हो जाता है। कीमत बढ़ने पर माँग बढ़ती है तथा कीमत घटने पर माँग घटती है; दूसरे शब्दों में, कुछ दशाओं में माँग रेखाएँ ऊपर की ओर चढ़ती हुई हो सकती है। इन दशाओं को माँग के नियम के अपवाद कहते हैं। मुख्य अपवाद निम्नलिखित हैं:

(i) प्रतिष्ठा सूचक वस्तुओं के सम्बन्ध में (Commodities which confer distinction)—कुछ वस्तुओं, जैसे, हीरों की कीमत जितनी ऊँची होगी उतनी ही उनकी माँग अधिक होगी। हीरों की ऊँची कीमत के कारण इनका प्रयोग प्रतिष्ठा (distinction) का सूचक समझा जाता है, इसलिए इनकी कीमत और ऊँची होने पर धनी लोगों में इनकी माँग बढ़ती है, घटती नहीं।

(एक दृष्टि से यह नियम का अपवाद नहीं कहा जा सकता। यह तो नियम की मान्यता है कि वस्तु प्रतिष्ठा प्रदान करने वाली नहीं होनी चाहिए।)

(ii) कीमतों में भविष्य में वृद्धि या कमी की आशा (Expectation of rise or fall in prices)—यदि किसी वस्तु की कीमत मे वृद्धि उस वस्तु की भविष्य मे कीमत में और अधिक वृद्धि की सूचक है तो कीमत बढ़ने पर भी उनकी माँग बढ़ेगी, घटेगी नहीं। उदाहरणार्थ, सट्टे में किसी वस्तु (जैसे शेयरों) की कीमत में वृद्धि के साथ प्रायः लोग अधिक मात्रा मे उसको खरीदते हैं क्योंकि उनका ध्यान होता है कि कीमत मे भविष्य में और अधिक वृद्धि होगी। इसी प्रकार [illegible] मे कमी के साथ प्रायः उसकी माँग कम होगी, बढ़ेगी नहीं क्योंकि लोगों का यह ध्यान होता [illegible] भविष्य में कीमत और गिरेगी।

(वास्तव में, एक दृष्टि से यह भी नियम का अपवाद नहीं कहा जा सकता है। प्रथम, [illegible]त स्थिति केवल अल्प काल के लिए रहती है। दूसरे, यह नियम की मान्यता है कि किसी [illegible] की कीमत मे भविष्य मे और अधिक वृद्धि की आशा नहीं होनी चाहिए।)

(iii) गिफिन का विरोधाभास—कुछ निम्न कोटि की वस्तुएँ (Giffin's paradox—[illegible]e inferior goods)—गिफिन ने बताया कि कुछ निम्न कोटि की वस्तुओं की कीमत गिरने [illegible] उनकी माँग प्रायः बढ़ती नहीं बल्कि कम हो जाती है; इसे गिफिन के नाम पर 'गिफिन [illegible]रोधाभास' (Giffin's Paradox) कहते हैं। इस स्थिति मे माँग का नियम लागू नहीं [illegible] है।

माना कि निम्न कोटि की वस्तु (जैसे डालडा घी, शुद्ध घी की अपेक्षा, निम्न कोटि की [illegible] है) की कीमत गिरती है। कीमत गिरने के दो प्रभाव होंगे—एक तो 'प्रतिस्थापन प्रभाव' [illegible] [illegible]रा 'आय प्रभाव' (Income Effect)। चूँकि निम्न कोटि की [illegible], जबकि श्रेष्ठ वस्तु (शुद्ध घी) की कीमत उतनी ही रहती है, [illegible] वस्तु (डालडा घी) का प्रतिस्थापन श्रेष्ठ वस्तु (शुद्ध घी) के स्थान पर होगा अर्थात प्रति[illegible]पन प्रभाव के परिणामस्वरूप निम्न कोटि की वस्तु (डालडा घी) की माँग बढ़ेगी। प्रतिस्थापन [illegible]व हमेशा धनात्मक (positive) होता है अर्थात इसके प्रभाव से माँग मे वृद्धि (extension) ही [illegible]ती है, कमी नहीं। परन्तु इस प्रतिस्थापन प्रभाव के साथ-साथ 'आय प्रभाव' भी होगा अर्थात [illegible]नकोटि की वस्तु (डालडा घी) की कीमत में कमी होना उपभोक्ता की आय में वृद्धि के समान [illegible] क्योंकि अब वह कम रुपयों मे पहले के बराबर ही डालडा घी खरीद सकता है और इस प्रकार [illegible]के पास कुछ द्रव्य बढ़ेगा। इस बढ़े हुए समस्त द्रव्य को या उसके एक भाग को वह और अधिक [illegible]म्न कोटि की वस्तु (डालडा घी) को खरीदने में व्यय कर सकता है, यदि वह ऐसा करता है तो [illegible]तु की माँग बढ़ेगी तथा ऐसे आय प्रभाव को धनात्मक प्रभाव (positive income effect) कहा [illegible]ता है। ऐसी स्थिति में 'प्रतिस्थापन प्रभाव' तथा 'आय प्रभाव' दोनों के परिणामस्वरूप कीमत [illegible]रने पर माँग बढ़ेगी जैसा कि माँग का नियम बताता है। परन्तु चूँकि वस्तु निम्न कोटि की है [illegible]लिए उपभोक्ता अपनी बढ़ी हुई आय को और अधिक निम्न कोटि की वस्तु (डालडा घी) [illegible]य न करके श्रेष्ठ वस्तु (शुद्ध घी) पर व्यय करना पसन्द करेगा। ऐसी स्थिति में

कीमत घटने पर भी उसकी माँग बढ़ती नहीं अर्थात यह कहा जाता है कि एक प्रकार से उसकी
घटती है, ऐसे 'आय प्रभाव' को ऋणात्मक आय प्रभाव (Negative Income Effect) कहते हैं।
इस प्रकार 'आय प्रभाव' धनात्मक तथा ऋणात्मक (positive and negative) दोनों हो सकता है
जबकि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' केवल धनात्मक ही होता है। परन्तु जब 'आय प्रभाव' ऋणात्मक होता
है अर्थात माँग में कमी (contraction) करता है तो माँग पर कुल प्रभाव इस बात पर निर्भर
करता है कि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' का अधिक जोर है या 'आय प्रभाव' का। निम्न कोटि की वस्तुएँ
(Inferior goods), जिन पर कि उपभोक्ता अपनी आय का एक बड़ा भाग व्यय करता है, ऐसी
वस्तुएँ होती हैं जिनके सम्बन्ध में 'ऋणात्मक आय प्रभाव' का जोर 'धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव'
से अधिक होता है और इसलिए वस्तु की कीमत में कमी होने पर उसकी माँग, बढ़ने के बजाय
घटती है।

अतः 'गिफिन वस्तुओं' के सम्बन्ध में कीमत में कमी माँग में, वृद्धि के स्थान पर, कमी
उत्पन्न करती है और इस प्रकार यहाँ पर माँग का नियम लागू नहीं होता।

ध्यान रहे कि सभी निम्न कोटि की वस्तुओं को 'गिफिन वस्तुएँ' नहीं कहते हैं, केवल वे ही
निम्न कोटि की वस्तुएँ जिन पर उपभोक्ता अपनी आय का एक अच्छा भाग व्यय करता है 'गिफिन
वस्तुएँ' कहलाती हैं।

(iv) **केवल अज्ञानता या भ्रम** (Sheer ignorance or illusion)—कभी-कभी उपभोक्ता
वर्ग केवल अज्ञानता या भ्रम से प्रभावित होकर कार्य करते हैं। वे सोचते हैं कि किसी वस्तु (जैसे
कपड़ा, क्रीम, पाउडर इत्यदि) की नीची कीमत उसकी नीची उपयोगिता या निम्न महत्व को बताती
है। अतः वे नीची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा खरीदते हैं। यदि विक्रेता उन्हीं वस्तुओं के दाम
बढ़ा देते हैं तो ऊँची कीमत वस्तु के अधिक महत्व को बताने वाली समझी जाती है और इसलिए
वही वस्तुएँ ऊँची कीमत पर अधिक मात्रा में माँगी जाने लगती हैं। इस प्रकार ऐसी स्थिति में माँग
का नियम लागू नहीं होता।

(v) **जीवन की अनिवार्य वस्तुओं के सम्बन्ध में** (Necessaries of life)—जीवन की
अनिवार्य वस्तुओं (जैसे, गेहूँ, चना इत्यादि) के सम्बन्ध में एक सीमा तक मूल्य बढ़ने पर उनकी माँग
घटती नहीं; उपभोक्ता को अन्य वस्तुओं पर खर्च को कम करके इन अनिवार्यताओं को ऊँचे मूल्य
पर भी खरीदना पड़ता है।

माँग में परिवर्तन अर्थात माँग में वृद्धि या कमी
(CHANGES IN DEMAND i.e. INCREASE OR DECREASE IN DEMAND)

तथा

माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन अर्थात माँग में विस्तार तथा संकुचन
(CHANGES IN AMOUNT DEMANDED i.e. EXPANSION OR CONTRACTION OF DEMAND)

में अन्तर

साधारण बोलचाल में **'माँग में परिवर्तन'** (Change in Demand) तथा **'माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन'** (Change in Amount Demanded) दोनों एक ही अर्थ में प्रयोग होते हैं। परन्तु
अर्थशास्त्र में इन दोनों में अन्तर है। **'माँग में वृद्धि'** (Increase in Demand) का अर्थ **'माँग में
विस्तार'** (Expansion of Demand) से भिन्न होता है, और इसी प्रकार **'माँग में कमी'** (Dec-
rease in Demand) और **माँग में संकुचन** (Expansion and Contraction of Demand)
में अन्तर है।

माँग में विस्तार तथा संकुचन (Expansion and Contraction of Demand)

माँग में विस्तार तथा संकुचन केवल कीमत में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होते हैं। वे एक ही माँग रेखा पर चलन (movement) को बताते हैं; नीचे की ओर चलन कीमत में कमी और माँग में विस्तार को बताता है, तथा ऊपर की ओर चलना कीमत में वृद्धि तथा माँग में संकुचन बताता है।

चित्र संख्या १९ में DD माँग रेखा है। जब कीमत PQ है तो माँगी गयी मात्रा (Quantity demanded) OQ है। यदि इसी माँग रेखा DD पर नीचे की ओर चलन (movement) होता है अर्थात P_1 बिन्दु पर पहुँचा जाता है तो कीमत कम होकर P_1Q_1 हो जाती है और माँग में विस्तार होता है तथा वह OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार यदि माँग रेखा DD पर ऊपर की ओर चलन होता है तथा P_2 बिन्दु पर पहुँचा जाता है तो कीमत बढ़कर P_2Q_2 हो जाती है और माँग में संकुचन होकर वह OQ_2 हो जाती है।

चित्र—१९
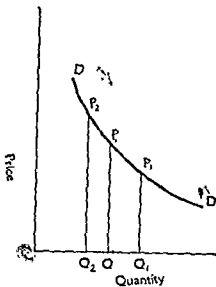
इस प्रकार जब कीमत में परिवर्तन होता है तो 'माँगी गयी मात्रा' में भी परिवर्तन होता है परन्तु माँग रेखा वही बनी रहती है। दूसरे शब्दों में, कीमत में परिवर्तन माँगी गयी मात्रा को परिवर्तित करता है परन्तु माँग को नहीं। यहाँ पर उपभोक्ता केवल एक निष्क्रिय पार्ट (passive role) अदा करता है; वह केवल कीमत द्वारा निर्देशित होता है; उसकी माँग तालिका (demand schedule स्थिर रहती है अर्थात माँग रेखा वही रहती है और उसी माँग रेखा पर वह ऊपर या नीचे कीमत में परिवर्तन के अनुसार चलता रहता है।

माँग में वृद्धि या कमी (Increase or Decrease in Demand)

वस्तु की कीमत को छोड़कर माँग को निर्धारित करने वाले अन्य तत्वों (determinants of demand) में से किसी में भी परिवर्तन के कारण माँग पर जो प्रभाव होता है उसे 'माँग में परिवर्तन' कहते हैं। कीमत के अतिरिक्त माँग को निर्धारित करने वाले कई अन्य तत्व होते हैं, जैसे उपभोक्ताओं की आय, उनकी रुचि तथा पसन्द, जनसंख्या, स्थानापन्न वस्तुओं की प्राप्ति, इत्यादि; कीमत को छोड़कर माँग को निर्धारित करने वाले इन तत्वों में से किसी भी एक में परिवर्तन 'माँग में परिवर्तन' उत्पन्न कर देता है। 'माँग में परिवर्तन' अर्थात 'माँग में वृद्धि' या 'माँग में कमी' का अर्थ स्वयं माँग रेखा के क्रमशः दायें को या बायें को हटने (shift) से है। दूसरे शब्दों में, 'माँग में परिवर्तन का अर्थ है कि उपभोक्ता की पहली माँग तालिका नहीं रहती बल्कि उसके स्थान पर नयी माँग तालिका आ जाती है। यहाँ पर उपभोक्ता एक सक्रिय पार्ट (active role) अदा करता है। वह वस्तु की कीमत द्वारा निर्देशित नहीं होता, बल्कि वह अपनी आय, आवश्यकताओं इत्यादि

ध्यान में रखते हुये, अपनी माँग, कम या अधिक, स्वयं निश्चित करता है। चित्र संख्या २० में 'माँग में वृद्धि' को दिखाया गया है। D_1D_1 प्रारम्भिक माँग रेखा है और OM_1 (अर्थात P_1Q) कीमत पर OQ (या M_1P_1) माँग है। कीमत के अतिरिक्त, माँग के निर्धारक तत्वों में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप 'माँग में वृद्धि' होती है अर्थात माँग रेखा दायें को खिसक जाती है और इस प्रकार नयी माँग रेखा D_2D_2 है। माँग की वृद्धि के दो अर्थ हैं—(i) वही मात्रा OQ ऊँची कीमत OM_2 (या P_2Q) पर माँगी जाती है; या (ii) उसी कीमत OM_1 पर अधिक मात्रा OL माँगी जाती है। P_2 तथा P_3 दोनों बिन्दु नयी माँग रेखा D_2D_2 पर हैं जो कि माँग में वृद्धि को बताती है।

चित्र—२०
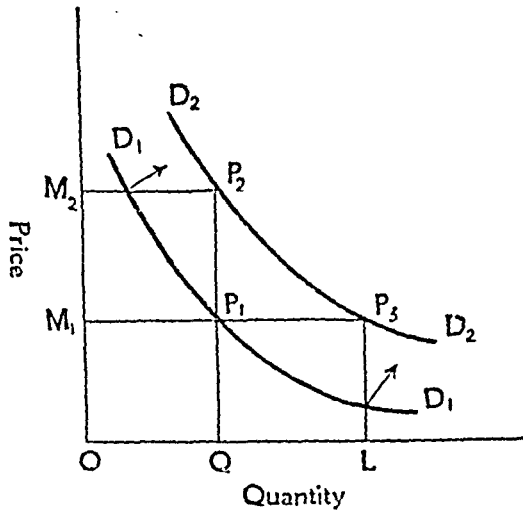
चित्र संख्या २१ में 'माँग में कमी' को दिखाया गया है। प्रारम्भिक माँग रेखा D_1D_1 है। कीमत को छोड़कर माँग के निर्धारक तत्वों के परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'माँग में कमी' होती है अर्थात माँग रेखा बायें को खिसक जाती है और अब नयी माँग रेखा D_2D_2 है। परिवर्तन से पहले OM_1 (या P_1Q) कीमत पर माँग OQ के बराबर थी। परन्तु अब **माँग में कमी हो गयी है जिसके दो अर्थ हैं :** (i) उसी कीमत OM_1 पर अब वस्तु की कम मात्रा OL खरीदी जाती है या (ii) कम कीमत OM_2 (या P_3Q) पर उतनी ही मात्रा OQ खरीदी जाती है।

चित्र—२१

संक्षेप में :

(१) **'माँग में विस्तार'** (Expansion of demand) का अर्थ है कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा; जबकि **'माँग में वृद्धि'** (Increase in demand) का अर्थ है (अ) उसी कीमत (same price) पर अधिक मात्रा या (ब) ऊँची कीमत पर उतनी ही मात्रा।

(२) **'माँग में संकुचन'** (Contraction of demand) का अर्थ है ऊँची कीमत पर कम मात्रा, जबकि **'माँग में कमी'** (Decrease of demand) का अर्थ है : (अ) उसी कीमत (same price) पर कम मात्रा या (ब) कम कीमत पर उतनी ही मात्रा।

(३) एक बात यह ध्यान देने की है कि **'माँग में वृद्धि या कमी'** का महत्त्व दीर्घकालीन **समय** (long period) में है क्योंकि दीर्घकाल में माँग के निर्धारक तत्त्व, जैसे, उपभोक्ताओं की रुचि तथा पसन्द, आय इत्यादि स्थिर नहीं रहते बल्कि बदलते रहते हैं। 'माँग में विस्तार'

संकुचन' का महत्व अल्पकालीन समय (short period) में है क्योंकि अल्पकाल में माँग के निर्धारक तत्व जैसे, उपभोक्ताओं की आय, रुचि इत्यादि प्रायः लगभग स्थिर रहते हैं, उनमें बदलने की सम्भावना (समय कम होने के कारण) कम रहती है, केवल कीमत में परिवर्तन होते रहते हैं।

माँग को प्रभावित करने वाले तत्व या माँग के निर्धारक तत्व
(FACTORS INFLUENCING DEMAND OR DETERMINANTS OF DEMAND)

(१) आय (Income)—*एक व्यक्ति कितनी वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रयोग करता है यह* बात उसकी आय पर निर्भर करती है। यदि उसकी आय अधिक है तो उसकी क्रय-शक्ति अधिक होगी और उसकी वस्तु की माँग अधिक होगी, परन्तु आय कम होने पर माँग कम होगी।

आय में परिवर्तनों का माँग पर प्रभाव पड़ने के सम्बन्ध में निम्न तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं—(अ) आय में परिवर्तन का प्रभाव विभिन्न प्रकार की वस्तुओं पर भिन्न-भिन्न होता है; उदाहरणार्थ, आवश्यक वस्तुओं (necessaries) पर आय में परिवर्तन का प्रभाव कम पड़ता है अपेक्षाकृत आरामदायक और विलासिता की वस्तुओं के। (ब) यह आवश्यक नहीं है कि आय में परिवर्तन का प्रभाव माँग पर तुरन्त पड़े, प्रायः कुछ समय बाद ही माँग पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में माँग पर प्रभाव न केवल वर्तमान आय में परिवर्तनों का, बल्कि भूतकाल में एकत्रित धन (accumulated wealth) का, प्रभाव भी पड़ता है। (स) आय में परिवर्तन का माँग पर प्रभाव उपभोक्ताओं की बचत करने की प्रवृत्ति (propensity to save) पर भी निर्भर करता है। यदि लोगों की बचत करने की प्रवृत्ति तीव्र है तो बढ़ी हुई आय में से वे अधिक बचायेंगे और थोड़ा व्यय करेंगे और इस प्रकार माँग में अधिक वृद्धि नहीं होगी। इसके विपरीत यदि उनकी बचत करने की प्रवृत्ति कम है तो वे कम बचायेंगे और अधिक व्यय करेंगे और इस प्रकार माँग में अधिक वृद्धि होगी।

(२) धन का वितरण (Distribution of wealth)—किसी समाज में धन के वितरण का प्रभाव भी माँग पर पड़ता है। यदि धन का असमान वितरण है और धन थोड़े से धनी व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित है तो विलासिता की वस्तुओं की अधिक माँग होगी। परन्तु यदि धनी व्यक्तियों पर कर लगाकर तथा गरीब व्यक्तियों को आर्थिक सहायता देकर या अन्य तरीकों से धन का वितरण अधिक न्याययुक्त तथा समान किया जाता है तो विलासिता की वस्तुओं की माँग घटेगी तथा अनिवार्य और आरामदायक वस्तुओं की माँग बढ़ जायेगी।

(३) उपभोक्ताओं की पसन्द (Consumers' preferences)—उपभोक्ताओं की पसन्द, उनकी रुचि, फैशन, आदत तथा प्रथाओं आदि पर निर्भर करती है; इन सब बातों का महत्वपूर्ण प्रभाव माँग पर पड़ता है। जिस वस्तु के प्रति उपभोक्ताओं की रुचि बढ़ेगी उसकी माँग भी बढ़ जायेगी; उदाहरणार्थ, यदि लोग चाय की अपेक्षा काफी (coffee) को अधिक पसन्द करने लगते हैं तो काफी की माँग बढ़ जायेगी और चाय की माँग कम हो जायेगी। इसी प्रकार फैशन में परिवर्तन होते रहने से पुराने डिजायन के वस्त्र, आभूषण इत्यादि बाजार से हटते जाते हैं और नये प्रकार के वस्त्रों, आभूषणों इत्यादि की माँग बाजार में बढ़ जाती है।

(४) जलवायु तथा मौसम (Climate and seasons)—जाड़ों के दिनों में ऊनी कपड़ों तथा पौष्टिक और गर्मी प्रदान करने वाली वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है, जबकि गर्मी के मौसम में सूती कपड़े तथा शीतलता प्रदान करने वाली वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। इस प्रकार जलवायु तथा मौसमों में परिवर्तन से माँग के स्वभाव पर प्रभाव पड़ता है।

(५) **व्यापार की दशा में परिवर्तन** (Changes in the state of trade)—(अ) पूंजीवादी देशों में व्यापार में चक्रीय चढ़ाव-उतार (cyclical fluctuations) होते हैं अर्थात् नियमित समय से व्यावसायिक तेजी (boom) तथा व्यावसायिक मन्दी (slump) आती रहती है। तेजी के समय (boom period) में आर्थिक क्रियाओं, रोजगार तथा द्राव्यिक और वास्तविक आय में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की माँग बढ़ती है। इसके विपरीत मन्दी काल (slump period) में सभी वस्तुओं की माँग घटती है। (ब) यदि आयात-निर्यात-कर (custom duties) में कमी कर दी जाती है तथा व्यापार में कई प्रकार की बाधाएँ (trade barrier) हटा दी जाती हैं तो अधिक व्यापारी वस्तु विशेष के बाजार में प्रवेश करेंगे और इस प्रकार वस्तु की माँग बढ़ेगी।

(६) **जनसंख्या** (Population)—यदि किसी देश में जनसंख्या में वृद्धि होती है तो इसका अर्थ है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की माँग बढ़ेगी।

(७) **वस्तु की कीमत** (Price of a commodity)—यदि किसी वस्तु की कीमत घटती है तो उसकी माँग बढ़ेगी तथा कीमत बढ़ने पर माँग घटेगी।

(८) **भविष्य में मूल्य परिवर्तन की आशा** (Expectations of changes in future prices)—यदि भविष्य में कुछ वस्तुओं की कीमत में और अधिक वृद्धि होने की आशा होती है तो उनकी माँग बढ़ती है। इसके विपरीत यदि भविष्य में कीमत के गिरने की आशा है तो माँग में कमी होती है।

(९) **द्रव्य की मात्रा में परिवर्तन** (Changes in the quantity of money)—यदि देश में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है अर्थात साधारण मात्रा में मुद्रा-प्रसार (inflation) हो जाता है तो लोगों की क्रय-शक्ति बढ़ जाती है और वस्तुओं के मूल्य भी बढ़ जाते हैं। बहुत-सी वस्तुओं के मूल्य बढ़ने पर भी उनकी माँग उतनी ही बनी रहती है। ऐसी स्थिति को भी माँग में वृद्धि कहते हैं।

(१०) **सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन** (Changes in the prices of related goods)—सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं—स्थानापन्न वस्तुएँ (Substitutes) तथा पूरक वस्तुएँ (Complementary goods)। यदि किसी वस्तु 'X' की स्थानापन्न वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तो वस्तु 'X' की माँग बढ़ जायेगी और यदि स्थानापन्न वस्तु की कीमत घट जाती है तो वस्तु 'X' की माँग घट जायेगी क्योंकि उपभोक्ता अब स्थानापन्न वस्तु का अधिक प्रयोग करेंगे क्योंकि वह सस्ती हो गयी है अपेक्षाकृत 'X' वस्तु के।

यदि वस्तु 'A' की पूरक वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तो पूरक वस्तु की माँग कम होगी और चूंकि A वस्तु अपनी पूरक वस्तु के साथ प्रयोग होती है इसलिए 'A' वस्तु की माँग भी घट जायेगी। इसी प्रकार यदि वस्तु 'A' की पूरक वस्तु की कीमत घट जाती है तो पूरक वस्तु की माँग बढ़ेगी और इसलिए वस्तु 'A' की माँग भी बढ़ेगी।

याय १५ की परिशिष्ट : व्युत्पन्न माँग[7]
APPENDIX TO CHAPTER 15] (DERIVED DEMAND)

व्युत्पन्न माँग का अर्थ (Meaning of Derived Demand)

किसी साधन की माँग के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखने की यह है कि दकों या फर्मों द्वारा साधनो (श्रम, भूमि, पूँजी, कच्चा माल, मशीन, इत्यादि) की माँग प्रत्यक्ष ाँग के लिए नहीं की जाती, बल्कि साधनों की माँग उनके द्वारा निर्मित अन्तिम तथा पूर्ण वस्तु al and finished commodity) की माँग पर निर्भर करती है अर्थात उसकी माँग से न होती है। अतः साधनो की माँग को 'व्युत्पन्न माँग' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, उपभोक्ताओ मकानों की माँग 'प्रत्यक्ष माँग' (direct demand) होती है, परन्तु मकानों के निर्माण के श्रम, ईंट, चूना, सीमेन्ट इत्यादि साधनों की माँग प्रत्यक्ष नही होती बल्कि अन्तिम वस्तु अर्थात नो की माँग के कारण उत्पन्न होती है। कभी-कभी व्युत्पन्न माँगें कई अवस्थाओं से गुजरती ऊन की माँग सूत (yarn) को कातने के लिए की जाती है, सूत की माँग कपड़े को बुनने के की जाती है, कपड़े की माँग कोटों को बनाने के लिए की जाती है। अन्तिम वस्तु कोटों की के कारण ही पिछली सब माँगें (अर्थात् सूत तथा कपड़े की माँगें) व्युत्पन्न होती हैं।[8] यदि तम वस्तु, जिसके उत्पादन में साधन सहायक होते हैं, की माँग अधिक है तो साधनों की माँग भी क होगी।

प्रो० सेम्युलसन के अनुसार, "व्युत्पन्न माँग इस तथ्य को बताती है कि जब लाभ अर्जित ने वाली फर्में एक साधन की माँग करती हैं तो वे ऐसा इसलिए करती हैं क्योंकि साधन की ायता से वे ऐसी वस्तु का उत्पादन कर सकती हैं जिसको कि उपभोक्ता वर्तमान या भविष्य में रीदने को तत्पर होते हैं। अतः किसी उत्पत्ति के साधन की माँग अन्त में उपभोक्ताओं की अन्तिम स्तुओं के लिए इच्छाओं से उत्पन्न होती है।"[9]

व्युत्पन्न माँग के नियम का मार्शल द्वारा कथन (Statement of the Law of Derived Demand by Marshall)

यदि हम पहले मार्शल द्वारा दिये उदाहरण को समझ लें तो व्युत्पन्न माँग के नियम को सम- ने में अधिक सुविधा होगी। मार्शल मकान निर्माण का उदाहरण लेते हैं। माना कि मकानों की माँग या पूर्ति साम्य मे है, तथा श्रमिकों के एक वर्ग, माना प्लास्टर करने वाले श्रमिको, द्वारा हड़ताल र दी जाती है या किसी अन्य कारण से उनकी पूर्ति मे कमी हो जाती है। इस उत्पत्ति के साधन अर्थात् प्लास्टर करने वाले श्रमिकों) की माँग को अन्य साधनों की माँग से पृथक करके अध्ययन रने के लिए यह मान लिया जाता है कि (i) नये मकानों की माँग की दशाओ में कोई परिवर्तन

[7] अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए नोट—इसको विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों के अनुसार छोड़ा जा सकता है या पढ़ा जा सकता है।

[8] "Sometimes the ... wanted to spin yarn; ... previous demands ... be secured from

[9] ... a factor of ... good which ... the factor of ...

—*Samuelson*

नहीं होता है, तथा (ii) अन्य साधनों की पूर्ति की दशाओं में भी कोई परिवर्तन नहीं होता है। ऐसी परिस्थितियों में प्लास्टर करने वाले श्रमिकों की पूर्ति में अस्थायी रुकावट या कमी मकान निर्माण कार्य में आनुपातिक कमी उत्पन्न कर देगी, परिणामस्वरूप मकानों की कुछ कमी हो जायेगी और मकानों की माँग-कीमतें (demand prices) कुछ ऊँची हो जायेंगी, परन्तु अन्य उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति-कीमतें (supply prices) पहले की अपेक्षा अधिक नहीं होंगी अर्थात पहले के समान ही रहेंगी (क्योंकि हम यह मान कर चले हैं कि अन्य साधनों की पूर्ति की दशाओं में कोई अन्तर नहीं होता है) अतः अब नये मकान ऊँची कीमतों पर बेचे जा सकेंगे अर्थात् ऐसी कीमतों पर बेचे जा सकेंगे जो कि मकानों के निर्माण के लिए अन्य उत्पत्ति के साधनों की कीमतों के योग से पर्याप्त मात्रा (good margin) में अधिक होंगे और यह 'अधिक मात्रा' या 'अन्तर' (margin) प्लास्टर करने वाले श्रमिकों को दी जाने वाली कीमतों में सम्भावित वृद्धि की सीमा को बतायेगी, यदि यह मान लिया जाए कि प्लास्टर करने वालों का श्रम अत्यावश्यक है। प्लास्टर करने वाले श्रमिकों की विभिन्न कमियों से सम्बन्धित इस 'अधिक मात्रा' या 'अन्तर' (margin) की विभिन्न मात्राएँ एक सामान्य नियम द्वारा शासित होती हैं। इस सामान्य नियम को मार्शल ने 'व्युत्पन्न माँग का नियम' कहा।[10]

मार्शल ने व्युत्पन्न माँग के नियम का कथन इस प्रकार दिया है—"वस्तु विशेष की प्रत्येक पृथक मात्रा के लिए, वस्तु के उत्पादन में प्रयोग होने वाले किसी साधन के लिए प्रदान की जाने वाली कीमत, उस आधिक्य या अन्तर द्वारा सीमित होती है जो कि वस्तु की तत्सम्बन्धित मात्रा की खरीदी जाने वाली कीमत तथा वस्तु की उस मात्रा के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले अन्य साधनों की मात्राओं की कीमतों (जिन पर कि वे कार्य करने को तत्पर हैं) के योग में होता है।"[11]

टेक्नीकल शब्दों में, किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयोग होने वाले किसी उत्पत्ति के साधन की माँग तालिका उस वस्तु की माँग तालिका से निकाली जा सकती है यदि वस्तु की प्रत्येक पृथक मात्रा की माँग-कीमत में से अन्य साधनों की तत्सम्बन्धित मात्राओं की पूर्ति-कीमतों के योग को घटा दिया जाए।[12]

३. किसी साधन की व्युत्पन्न माँग को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Factors Determining the Derived Demand For a Factor of Production)

किसी साधन की माँग को प्रभावित करने वाले तत्त्व निम्नलिखित हैं :

(i) **एक साधन की माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की माँग के स्तर पर निर्भर करती है** (The demand of a factor depends on the level of the demand for the com-

---

10 "Thus new houses can now be sold at prices which exceed by a good margin the sum of the prices at which these other requisites for the production of houses can be bought: and that margin gives the limit to the possible rise of the price that will be offered for plasterers' labour, on the supposition that plasterers' labour is indispensable." The different amounts of this margin, corresponding to different checks to the supply of plasterers' labour, are governed by general rule, which marshall calls as the 'law of derived demand'

11 "The price that will be offered for any thing used in producing a commodity is, for each separate amount for the commodity, limited by the excess of the price at which that amount of the commodity can find purchasers over the sum of the prices at which the corresponding supplies of the other things needed for making it will be forth coming."
—Marshall

12 "To use technical terms, the demand schedule for any factor of production of a commodity can be *derived* from that for the commodity by subtracting from the demand price of each separate amount of the commodity the sum of the supply prices for corresponding amounts of the other factors."
—Marshall

modities which the factor helps to produce)—यदि किसी वस्तु की माँग अधिक या कम हो जाती है तो उसके उत्पादन में सहायता करने वाले साधनों की माँग भी अधिक या कम होगी। उदाहरणार्थ, यदि कालेज जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या बढ़ जाती है तो कालेज प्रोफेसरों की व्युत्पन्न माँग बढ़ जायेगी। यदि मकानों की माँग घट जाती है तो ईंट, चूना, सीमेन्ट, राजों तथा बेलदारों, इत्यादि साधनों की व्युत्पन्न माँग घट जायेगी।

(ii) एक साधन की माँग अन्य साधनों की कीमत पर निर्भर करती है (The demand of a factor depends on the prices of other factors)—उत्पादक एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का प्रतिस्थापन कर सकते हैं; साधन श्रम की कीमत (अर्थात् मजदूरी) बढ़ जाती है तो इस साधन श्रम की माँग घट जायेगी क्योंकि इसके स्थान पर दूसरे साधन मशीन का प्रतिस्थापन होने लगेगा। सेम्युलसन (Samuelson) के शब्दों में, "इस प्रकार, प्रत्येक साधन की माँग अन्य सभी साधनों की कीमतों पर निर्भर करेगी, केवल उसकी स्वयं की कीमत पर नहीं। विभिन्न साधनों के बीच आड़ी-लोचें उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि सामान्य लोच।"[13] (लोच तथा आड़ी-लोच के विस्तृत विवरण के लिए देखिए अध्याय १६)।

ऊपर हमने प्रतिस्पर्धात्मक साधनों (Competitive factors) का उदाहरण लिया था, परन्तु बहुत से साधन पूरक (Complementary) भी होते हैं। उदाहरणार्थ, पेट्रोल की माँग बढ़ जायेगी यदि मोटरकारों तथा स्कूटरों की कीमतें कम हो जाती हैं।

(iii) एक साधन की माँग उसकी उत्पादकता पर निर्भर करती है (The demand of a factor of production depends on its productivity)—सामान्यतया, एक साधन की उत्पादकता अधिक या कम होने से उसकी माँग भी अधिक या कम होगी, यदि अन्य बातें समान रहें।

४. व्युत्पन्न माँग की लोच के निर्धारक तत्व (The Determinants of Elasticity of Derived Demand)

व्युत्पन्न माँग एक साधन की माँग होती है जो कि उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग से उत्पन्न होती है। अतः व्युत्पन्न माँग की लोच का अर्थ है साधन की माँग की लोच। किसी साधन माँग की लोच निम्न बातों पर निर्भर करती है :

(i) अन्तिम वस्तु की माँग की लोच ('Elasticity of demand for the final oduct')

अन्तिम वस्तु की माँग की लोच जितनी अधिक होगी उतनी ही उस वस्तु को उत्पादित ने वाले साधनों की माँग की लोच अधिक होगी।[14] उदाहरणार्थ, यदि किसी उत्पत्ति के साधन कीमत बढ़ जाती है तो अन्तिम वस्तु की उत्पादन लागत बढ़ेगी और इसलिए वस्तु की कीमत जायेगी। यदि वस्तु की कीमत में वृद्धि वस्तु की माँग में बहुत कमी कर देती है (अर्थात् वस्तु माँग अधिक लोचदार है), तो साधन की माँग में भी बहुत कमी हो जायेगी अर्थात् साधन की ग भी अधिक लोचदार होगी। स्पष्ट है कि वस्तु की माँग की लोच अधिक होने पर साधन की ग की लोच भी अधिक होगी।

"Thus, the demand for each input will depend upon the prices of *all* inputs, not on its own price alone. *Cross elasticities* between different factors are as important as regular elasticities."

"The more elastic the demand for the final good, the more elastic will be the demand for the factors that go to make it."

इसके विपरीत यदि वस्तु की कीमत में वृद्धि वस्तु की माँग में वहुत थोड़ी कमी करती है (अर्थात् वस्तु की माँग बेलोचदार है), तो साधन की माँग में भी वहुत थोड़ी कमी होगी अर्थात् साधन की माँग भी वेलोचदार होगी। संक्षेप में, **अन्तिम वस्तु की माँग बेलोचदार होने पर साधन की माँग भी वेलोचदार होगी।**

(ii) अन्तिम वस्तु की कुल लागत में एक दिये हुये साधन की लागत का अनुपात या महत्व : "अमहत्त्वपूर्ण होने का महत्त्व" (The proportion or importance of the cost of a given factor in the total cost of the final good : "*the importance of being unimportant*")

माना कि किसी वस्तु की १०० रु० की कुल लागत में से किसी साधन 'अ' की लागत १० रुपये है अर्थात् साधन 'अ' की लागत कुल लागत की १०% है। माना कि अव साधन 'अ' की लागत में १०% की वृद्धि होती है और इसलिए साधन की उतनी ही मात्रा की लागत अव ११ रु० से बढ़कर ११ रु० हो जाती है। साधन की लागत में इस वृद्धि को निकालने के लिए अन्तिम वस्तु (final product) की कुल कीमत को १०० से बढ़ा कर १०१ रु० करनी पड़ेगी अर्थात वस्तु की कीमत में १% की वृद्धि की जायेगी। माना कि वस्तु की माँग की लोच इकाई के बरावर है, तो वस्तु की माँग में १% की कमी होगी (क्योंकि उसकी कीमत १% से वढ़ी है); इसलिए साधन की व्युत्पन्न माँग में भी १% की कमी होगी। यह ध्यान देने की वात है कि साधन की लागत (अर्थात कीमत)में १०% की वृद्धि हुई, परन्तु उसकी माँग में केवल १% की कमी हुई, अर्थात साधन की माँग वेलोचदार है। इसका कारण यह है कि **साधन 'अ' की लागत वस्तु की कुल लागत का एक वहुत थोड़ा या बहुत अमहत्त्वपूर्ण भाग है जिससे कि साधन की लागत (या कीमत) में वृद्धि वस्तु की कीमत तथा उत्पादन पर वहुत थोड़ा प्रभाव डालती है; परिणामस्वरूप ऐसे साधन की माँग वेलोचदार होती है। संक्षेप में, एक साधन की माँग बेलोचदार होगी यदि अन्तिम वस्तु की कुल लागत में उसका हिस्सा थोड़ा या अमहत्त्वपूर्ण है। इसको कभी-कभी "अमहत्त्वपूर्ण होने का महत्त्व"** ("the importance of being unimportant") **कहा जाता है।**

एक दूसरी स्थिति लीजिए। माना कि वस्तु की १०० रुपये की कुल लागत में से किसी दूसरे साधन 'व' की लागत ६० रुपये है। पहले की भाँति यह मान लेते हैं कि वस्तु की माँग की लोच इकाई के बरावर है। माना कि साधन की लागत में १०% की वृद्धि होती है, तो साधन की लागत (या कीमत) अव ६० रुपये+६ रुपये=६६ रुपये हो जायेगी; साधन की लागत में वृद्धि निकालने के लिए वस्तु की कुल कीमत को १०० रु० से वढ़ा कर १०६ करनी पड़ेगी अर्थात वस्तु की कीमत में ६% की वृद्धि हो जायेगी; परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में और इसलिए साधन की माँग में भी ६% की कमी हो जायेगी। स्पष्ट है कि साधन की लागत (या कीमत) में १०% की वृद्धि होती है तो उसकी माँग में ६% की कमी हो जाती है, अर्थात साधन 'व' की माँग अपेक्षा लोचदार है (जबकि पहले उदाहरण में साधन 'अ' की माँग वेलोचदार थी क्योंकि साधन 'अ' की लागत या कीमत में १०% की वृद्धि के परिणामस्वरूप उसकी माँग में केवल १% की कमी होती थी)। अतः व्युत्पन्न माँग का दूसरा सिद्धान्त इस प्रकार निकलता है : **एक साधन की माँग अधिक लोचदार होगी यदि अन्तिम वस्तु की कुल लागत में उसका हिस्सा अधिक है।**[15]

15 The demand for a factor of production or Input would be more elastic the larger its proportion in the cost of the final product.

(iii) स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता (The availability of substitutes)

अभी तक हम यह मानते आये हैं कि यदि किसी साधन की कीमत बढ़ जाती है तो भी उत्पादक उसका प्रयोग करते जायेंगे। परन्तु ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी; यह इस पर निर्भर करेगा कि मँहगे साधन के स्थान पर कितनी आसानी से अन्य साधन को प्रतिस्थापित किया जा सकेगा। यदि साधन श्रम की कीमत (अर्थात मजदूरी) बढ़ जाती है तो उत्पादक श्रम के स्थान पर मशीनों का अधिक प्रयोग करने लगेंगे। इसी प्रकार यदि साधन इस्पात (steel) की कीमत बढ़ जाती है तो उत्पादक कई प्रयोगों में इस्पात के स्थान पर एल्यूमीनियम, ताँबा, इत्यादि का प्रयोग अधिक करेंगे। एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का प्रतिस्थापन कितनी आसानी से किया जा सकता है यह साधनों के मिलने की टेक्नीकल दशाओं इत्यादि पर निर्भर करेगा। प्रतिस्थापन की जितनी अधिक सम्भावनाएँ होंगी उतनी ही साधन विशेष की माँग अधिक लोचदार होगी।[6]

माँग की लोच
[ELASTICITY OF DEMAND]

माँग का नियम केवल गुणात्मक कथन (qualitative statement) है। यह मूल्य में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप माँग के परिवर्तन की दिशा (direction) को बताता है। माँग का नियम यह नहीं बताता कि कीमत में परिवर्तन के कारण माँग में कितना परिवर्तन होता है। इस बात को जानने के लिए अर्थशास्त्रियों ने माँग की लोच का टेक्नीकल विचार (technical concept) प्रस्तुत किया है।

माँग की लोच की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच, कीमत में थोड़े-से परिवर्तन के उत्तर में, माँग की मात्रा में होने वाले परिवर्तन की माप है। इसका पूरा नाम 'माँग की कीमत-लोच' (price elasticity of demand) है क्योंकि माँग में परिवर्तन, कीमत में परिवर्तन के उत्तर में होता है। माँग की लोच की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्न हैं :

(१) मार्शल के अनुसार, "किसी वस्तु की माँग की लोच अधिक या कम तब कही जायेगी जब कीमत में एक निश्चित कमी होने पर उसकी माँग में अधिक या कम वृद्धि होती है तथा कीमत में एक निश्चित वृद्धि होने पर माँग में अधिक या कम कमी होती है।"[1]

---

6 The greater the possibilities of substitution, the more elastic will be demand for the factor in question.

1 "The elasticity (or responsiveness) of demand in a market is great or small according as the amount demanded increases much or little for a given fall in price, and diminishes much or little for a given rise in price." —Marshall

(२) प्रो० केरनक्रास के अनुसार, "किसी वस्तु की माँग की लोच उस वेग को बताती है जिससे कि कीमतों में परिवर्तनों के साथ खरीदी जाने वाली मात्रा में परिवर्तन होते हैं।"[2]

प्रो० बोल्डिग (Boulding), श्रीमती जोन रोबिन्सन, इत्यादि ने माँग की लोच की गणितात्मक परिभाषाएँ (numerical definitions) भी दी हैं। श्रीमती जोन रोबिन्सन के शब्दों में "माँग की लोच, किसी कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप खरीदी गयी मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।"[3] इसको सूत्र द्वारा निम्न प्रकार से बताया जाता है :

$$ep = \frac{\text{मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$ जबकि ep = माँग की कीमत लोच।

माँग की लोच के सम्बन्ध में दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए : (i) इसके अन्तर्गत हम माँग के उस परिवर्तन पर विचार करते हैं जो कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता हो, तथा (ii) जो अल्प समय के लिए ही हो।[4]

बिन्दु लोच तथा चाप लोच (Point Elasticity and Arc Elasticity)

माँग रेखा (DD) के किसी बिन्दु (P) पर माँग की लोच मालूम की जाये तो इसे 'माँग की बिन्दु लोच' (Point Elasticity of Demand) कहते हैं। वास्तव में, मांग की लोच मांग रेखा के किसी एक बिन्दु की स्थिति पर निर्भर करती है, इसलिए इसको ज्ञात करने के लिए हमको कीमतों और मात्राओं में बहुत सूक्ष्म परिवर्तनों को ध्यान में रखना चाहिए।[5] परन्तु प्रायः हम कुछ कीमतों तथा उनसे सम्बन्धित मात्राओं को लेकर ही चलते हैं और माँग रेखा के स्वभाव (nature) को उसके प्रत्येक बिन्दु पर ठीक प्रकार से नहीं जानते। दूसरे शब्दों में, व्यवहार में कीमतों तथा मात्राओं में सूक्ष्म परिवर्तन हमें मालूम नहीं होते इसलिए 'माँग की बिन्दु लोच' को ज्ञात करना कठिन होता है।
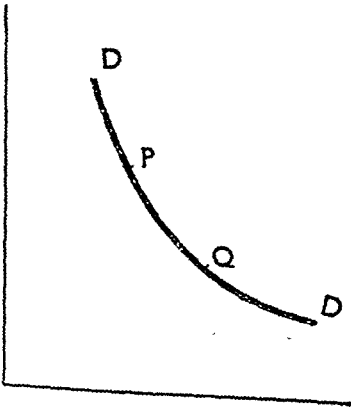
चित्र—२२

2 "The elasticity of demand for a commodity is the rate at which the quantity bought changes as the price changes." —A. Cairncross

3 "The elasticity of demand at any price or at any output, is the proportional change of amount purchased in response to a small change in price, divided by the proportional change of price." —Mrs. Joan Robinson

4 'कीमतों में अधिक उतार-चढ़ाव के परिणामस्वरूप मांग में जो परिवर्तन होता है उसमें सट्टेबाजियों का प्रभाव अधिक रहता है; अतः माँग के ऐसे परिवर्तनों को माँग की लोच नहीं मानना चाहिए। इसी प्रकार यदि आज की माँग की तुलना आज से १०-१५ वर्ष पूर्व की माँग से की जाय तो आज की माँग में जो परिवर्तन दिखायी पड़ेगा, वह केवल मूल्य के परिवर्तन का परिणाम न होकर बदलती हुई इच्छाओं, फैशन, रीति-रिवाजों, इत्यादि का परिणाम होगा।

5 "Elasticity is a function of a point on the curve and should be calculated in terms of infinitesimal changes in price and quantity."

अतः व्यावहारिक जीवन में हम 'बिन्दु लोच' न मालूम करके 'चाप लोच' (Arc Elasticity) मालूम करते हैं। चित्र संख्या २२ से स्पष्ट है कि 'चाप लोच' किसी माँग रेखा (DD) के 'एक चाप' (Arc PQ) पर निकाली जाती है अर्थात यह मूल्यों और मात्राओं के एक क्षेत्र (range) से सम्बन्धित होती है। जब हम किसी माँग रेखा (DD) पर दो बिन्दुओं (P and Q) को लेकर चलते हैं तो इन दो बिन्दुओं से अनेक माँग रेखाएँ खींच सकते हैं—एक सीधी रेखा तथा बहुत-सी वक्र रेखाएँ जिनकी वक्रता (curvature) भिन्न-भिन्न होगी। जब हम इन दो बिन्दुओं के बीच माँग की लोच ज्ञात करते हैं तो वास्तव में हम इन दोनों बिन्दुओं के बीच चाप के क्षेत्र पर माँग की लोचों का औसत (average of the elasticities over the arc between these two points) निकालते हैं। इसे, 'बिन्दु लोच' से भेद प्रकट करने के लिए 'चाप लोच' कहते हैं।

'माँग की कीमत-लोच' की श्रेणियाँ या मात्राएँ

(DEGREES OF THE 'PRICE ELASTICITY OF DEMAND')

कीमत में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की माँग पर एकसा प्रभाव नहीं होता अर्थात कुछ वस्तुओं की माँग की लोच कम होती है तथा कुछ की अधिक। माँग की लोच की पाँच श्रेणियाँ हैं : (१) पूर्णतया लोचदार माँग, (२) अत्यधिक लोचदार माँग, (३) लोचदार माँग, (४) बेलोच माँग, तथा (५) पूर्णतया बेलोच माँग।

(१) पूर्णतया लोचदार माँग (Perfectly elastic demand)—जब वस्तु के मूल्य में परिवर्तन नहीं होने पर भी या अत्यन्त [illegible]

[illegible] चित्र २३ से स्पष्ट है। पूर्णतया लोचदार माँग की दशा में माँग-रेखा आधार रेखा (X-axis) के समान्तर (parallel) होती है। चित्र में मूल्य PQ है तो माँग OQ है, परन्तु मूल्य में बिना परिवर्तन हुए (अर्थात मूल्य KL यानी PQ रहता है) माँग OQ से OL हो जाती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार की

चित्र—२३
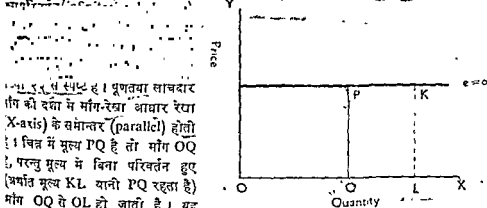
माँग केवल काल्पनिक होती है। वास्तविक जीवन में पूर्णतया लोचदार माँग का उदाहरण नहीं मिलता। चूँकि इस प्रकार की दशा में कीमत में शून्य परिवर्तन होने पर माँग में अनन्त (infinity) परिवर्तन होता है इसलिए गणित की भाषा में हम इसे $e = \infty$ द्वारा व्यक्त करते हैं। यद्यपि व्यावहारिक जीवन में पूर्णतया लोचदार माँग नहीं पायी जाती, फिर भी यह माँग की लोच की ऊपरी सीमा निर्धारित करती है।

(२) अत्यधिक लोचदार माँग (Highly elastic demand)—जब किसी वस्तु की माँग में आनुपातिक [illegible], कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता [illegible]। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु के मूल्य में २ [illegible] प्रतिशत वृद्धि हो जाती है तो ऐसी वस्तु की माँग अधिक लोचदार कही जायेगी। ऐसी वस्तु की माँग की लोच को 'इकाई से अधिक लोच'

भी कहते हैं और गणित की भाषा में $e>1$ द्वारा व्यक्त करते हैं। इस प्रकार की लोच प्रायः विलासिता की वस्तुओं (जैसे टाई, मोटरकार इत्यादि) में होती है। चित्र संख्या २४ द्वारा अधिक लोचदार माँग को बताया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि माँग में आनुपातिक परिवर्तन (QL) कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (TS) से अधिक है।

चित्र—२४
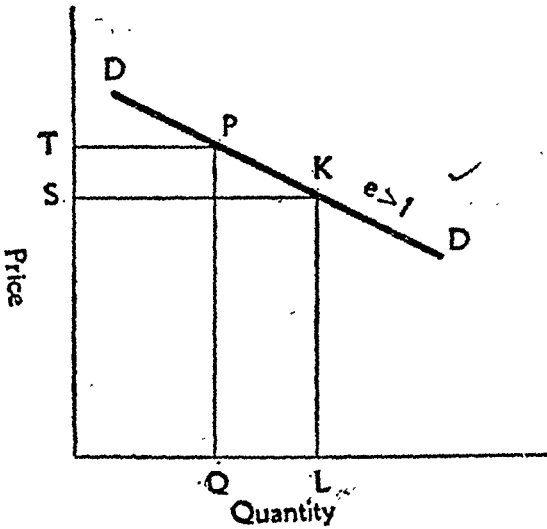
(३) लोचदार माँग या औसत दर की लोचदार माँग (Elastic demand)—जब किसी वस्तु की माँग में परिवर्तन ठीक उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में परिवर्तन हुआ है, तब ऐसी वस्तु की माँग को 'लोचदार माँग' कहते हैं। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की कीमत में २०% की वृद्धि होती है और उसकी माँग में ठीक २०% कमी हो जाती है, तो यह लोचदार माँग कहलायेगी। प्रायः इस प्रकार की लोच आरामदायक वस्तुओं (जैसे, साइकिल, घड़ी, बिजली का पंखा, इत्यादि में पायी जाती है)। इस प्रकार की लोच को 'इकाई के बराबर लोच' भी कहते हैं, गणित की भाषा में इसको $e=1$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। चित्र संख्या २५ द्वारा यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।
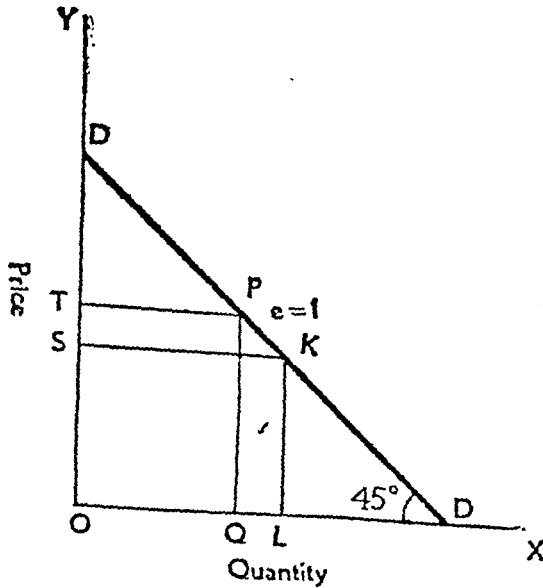
चित्र—२५
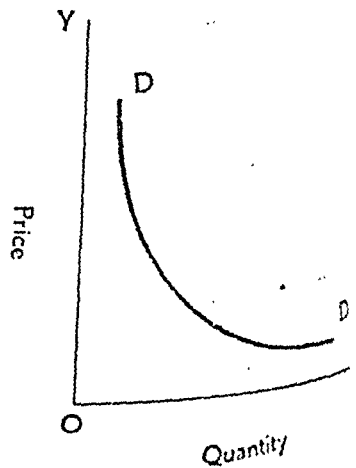
चित्र—२६

यदि माँग रेखा वक्र (Curve) न होकर एक सीधी रेखा (straight line) है तो वह X-axis व Y-axis के साथ ४५° का कोण (angle) बनाती है। परन्तु ध्यान रहे कि इस रेखा के प्रत्येक

र e=1 नहीं होती, रेखा के केवल मध्य में ही ऐसा होता है।[6] चित्र से स्पष्ट है कि माँग में आनुपातिक परिवर्तन (QL) तथा कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (TS) के बराबर है। यदि माँग रेखा को सीधी रेखा द्वारा न बनाकर वक्र (curve) द्वारा बनाया जाये तो 'माँग की इकाई लोच' rectangular hyperbola (ऐसी वक्र रेखा जिसको दोनों सिरों पर बढ़ाये जाने पर यह X-axis तथा Y-axis को काटती नहीं है) द्वारा दिखाया जाता है जैसा कि साथ के दूसरे चित्र संख्या २६ में दर्शाया गया है। इस वक्र की समस्त लम्बाई पर e=1 होती है।

(४) बेलोच माँग (Inelastic demand)—जब किसी वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु की कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो ऐसी दशा को 'बेलोच माँग' कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत में ५०% की वृद्धि होती है, परन्तु माँग में केवल १०% कमी होती है, तो ऐसी माँग को बेलोच माँग कहा जाता है। ऐसी लोच प्रायः अनिवार्य वस्तुओं (जैसे, नमक, अनाज इत्यादि) में पायी जाती है। इस प्रकार की लोच को 'इकाई से कम लोच' भी कहते हैं; गणित की भाषा में इसको e<1 द्वारा व्यक्त किया जाता है। बेलोच माँग को चित्र संख्या २७ द्वारा दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि माँग में आनुपातिक परिवर्तन (QL) कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (TS) से कम है।
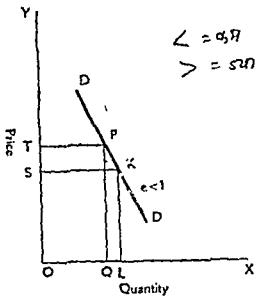
चित्र—२७

(५) पूर्णतया बेलोचदार माँग (Perfectly inelastic demand)—जब किसी वस्तु के मूल्य में पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी उसकी माँग में बिलकुल परिवर्तन न हो तो ऐसी दशा को 'पूर्णतया बेलोच माँग' कहते हैं। माँग में बिलकुल परिवर्तन न होने के कारण ऐसी स्थिति को गणित की भाषा में e=0 द्वारा व्यक्त किया जाता है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि पूर्णतया बेलोचदार माँग केवल एक काल्पनिक स्थिति की द्योतक है, वास्तविक जीवन में इस प्रकार की माँग की लोच का कोई उदाहरण नहीं मिलता है। इस प्रकार की दशा में माँग रेखा आधार-रेखा (X-axis) पर लम्ब (perpendicular) होती है जैसा कि चित्र संख्या २८ में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि जब मूल्य OQ है तो माँग OT या QP है; यदि मूल्य बढ़कर OL हो जाता है तो भी माँग उतनी ही (LK यानी QP) रहती है।

माँग की कीमत-लोच (Price Elasticity of Demand) की पाँचों श्रेणियों या दशाओं को हम एक ही चित्र नं० २९ द्वारा भी दिखा सकते हैं।[7]

---

[6] इसको समझने के लिए इस अध्याय में आगे 'माँग की लोच को नापने की तीसरी रीति' अर्थात 'बिन्दु रीति या रेखागणित रीति' को पढ़िये।

[7] इसको पूरी प्रकार से समझने के लिए इस अध्याय की परिशिष्ट के फुटनोट ११ को पढ़िये।
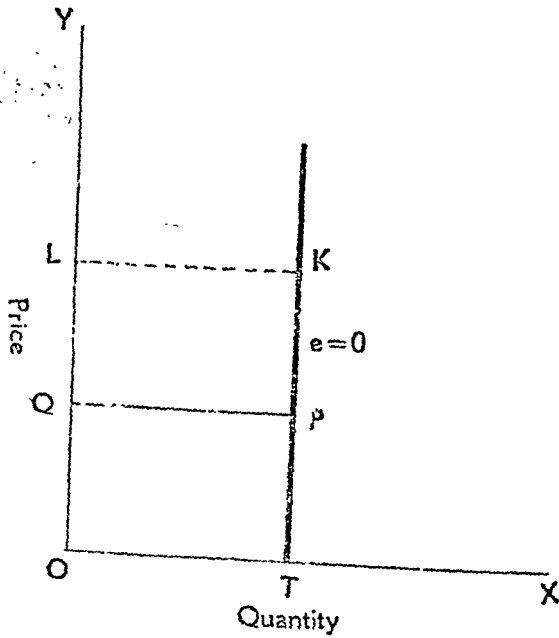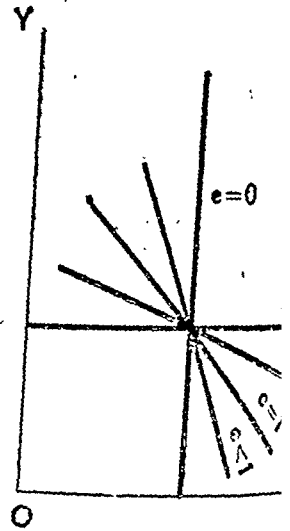
चित्र—२८ चित्र—२९

माँग की लोच को मापने की रीतियाँ
(METHODS FOR MEASURING ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच मापने की मुख्य रीतियाँ तीन हैं : (१) कुल व्यय रीति, (२) अ... रीति, तथा (३) विन्दु रीति।

(१) कुल व्यय रीति (Total Outlay Method)

मार्शल द्वारा प्रतिपादित इस रीति द्वारा मूल्य में परिवर्तन होने से पहले और बाद ... व्यय की तुलना करके यह ज्ञात किया जाता है कि माँग की लोच 'इकाई के बराबर' है, 'इकाई से अधिक' या 'इकाई से कम' है।

(अ) माँग की लोच इकाई से अधिक ($e > 1$)—कुल व्यय मूल्य-परिवर्तन से विपरीत ... में चलता है (Total outlay moves in the opposite direction from price)—... वस्तु के मूल्य में कमी होने पर कुल व्यय की मात्रा बढ़ती है या मूल्य में वृद्धि होने से ... की मात्रा घटती है, तो ऐसी वस्तु की माँग की लोच को 'इकाई से अधिक' कहते हैं। उ...

वस्तु का मूल्य	माँगी गयी मात्रा	कुल व्यय
४ रुपये	१०० इकाइयाँ	४०० रु०
२ रुपये	३०० इकाइयाँ	६०० रु०

(ब) माँग की लोच इकाई के बराबर ($e = 1$)—मूल्य में परिवर्तन होने ... अप्रभावित रहता है (Total outlay is unaffected by price changes)—जब ... के मूल्य में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होने पर भी कुल व्यय की मात्रा यथास्थिर रहती ... की लोच 'इकाई के बराबर' कही जाती है। उदाहरणार्थ :

वस्तु का मूल्य	माँगी गयी मात्रा	कुल व्यय
४ रुपये	१०० इकाइयाँ	४००
२ रुपये	२०० इकाइयाँ	४००

$$= \frac{\frac{\Delta q}{q}}{\frac{\Delta p}{p}},$$

जबकि

Δ (डेल्टा) = सूक्ष्म परिवर्तन

Δq = माँग में सूक्ष्म परिवर्तन

q = माँग की पूर्व मात्रा

Δp = कीमत में सूक्ष्म परिवर्तन

p = पूर्व कीमत

$$= \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}$$

$$= \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

इस सूत्र से माँग की लोच निकालने में एक कठिनाई सामने आती है : "माँग की मात्रा आनुपातिक (या प्रतिशत) परिवर्तन, माँग की पूर्व (original) मात्रा पर या नयी मात्रा पर, कीमत में आनुपातिक (या प्रतिशत) परिवर्तन पूर्व कीमत पर या नयी कीमत पर निकाला सकता है।"[8] अतः माँग की लोच की संख्या (figure) कितनी होगी यह इस बात पर नि करेगी कि आनुपातिक परिवर्तन निकालने में कौन-सी रीति का प्रयोग किया गया है। इस कठि को दूर करने का एक तरीका यह है कि माँग का आनुपातिक परिवर्तन न तो माँग की पूर्व पर निकाला जाये और न नयी मात्रा पर, वल्कि दोनों मात्राओं के मध्य विन्दु (अर्थात औसत) निकाला जाये, इसी प्रकार कीमत का आनुपातिक परिवर्तन न तो पूर्व कीमत पर निकाला और न नयी कीमत पर, वल्कि दोनों कीमतों के मध्य विन्दु (अर्थात औसत) पर निकाला ऐसी स्थिति में सूत्र इस प्रकार हो जायेगा :

$$e_p = \frac{\frac{\text{माँग की मात्रा में परिवर्तन}}{(\text{पूर्व मात्रा} + \text{नयी मात्रा})/2}}{\frac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{(\text{पूर्व कीमत} + \text{नयी कीमत})/2}}$$

---

8 उदाहरण के लिए माना कि किसी वस्तु की कीमत ६ रुपये है तो उसकी माँग ३६ इ की है, यदि उसकी कीमत बढ़कर ८ रुपये हो जाती है तो उसकी माँग घटकर ३० इ बराबर हो जाती है। इस उदाहरण में, माँग में ६ का परिवर्तन ३६ पर निकाला जा है तो आनुपातिक परिवर्तन $\frac{६}{३६}$ होगा, या ३० पर निकाला जा सकता है तो माँग में पातिक परिवर्तन $\frac{६}{३०}$ होगा, जो कि पहले से भिन्न है। इसी प्रकार कीमत में २ का परि ६ पर निकाला जा सकता है तो कीमत में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{२}{६}$ होगा या ८ पर नि जा सकता है तो कीमत में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{२}{८}$ होगा जो कि पहले से भिन्न है। इस नाई को दूर करने के लिए अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि कीमत में परि न तो छोटी संख्या (६) और न बड़ी संख्या (८) पर निकाला जाये वल्कि दोनों संख्याओं के $\frac{६+८}{२}$ पर अर्थात दोनों संख्याओं के औसत पर निकाला जाये। इसी प्रकार माँग में प न तो छोटी संख्या (३०) पर और न वड़ी संख्या (३६) पर निकाला जाये वल्कि दोनों के $\frac{३०+३६}{२}$ पर अर्थात दोनों संख्याओं के औसत पर निकाला जाये।

माँग की।

$$= \frac{\dfrac{q \sim q_1}{\dfrac{q+q_1}{२}}}{\dfrac{p \sim p_1}{\dfrac{p+p_1}{२}}}$$

जबकि, q = माँग की पूर्व मात्रा
q_1 = माँग की नयी मात्रा
p = पूर्व कीमत
p_1 = नयी कीमत
~ यह चिन्ह दो संख्याओं के बीच 'अन्तर' को बताता है

$$= \frac{\dfrac{q \sim q_1}{q+q_1}}{\dfrac{p \sim p_1}{p+p_1}}$$

[उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत ६ रुपये है तो उसकी माँग ३६ इकाइयों की है, ीमत ८ रुपये हो जाने पर माँग ३० इकाइयों के बराबर हो जाती है। इस उदाहरण में,

$$e_p = \frac{\dfrac{३६ \sim ३०}{३६+३०}}{\dfrac{६ \sim ८}{६+८}} = \frac{\dfrac{६}{६६}}{\dfrac{२}{१४}} = \frac{\dfrac{१}{११}}{\dfrac{१}{७}} = \frac{१}{११} \times \frac{७}{१} = \frac{७}{११} = ·६३,$$ अर्थात माँग की लोच इकाई से म है।]

(३) बिन्दु-रीति या रेखागणित रीति (Point Method or Geometrical Method)

इस रीति द्वारा हम माँग रेखा के किसी बिन्दु पर माँग की लोच निकाल सकते हैं। चेत्र संख्या ३१ में DD माँग रेखा के P बिन्दु पर लोच मालूम करने के लिए, P बिन्दु पर एक पर्श रेखा (tangent) RK खींची जाती है और उसे दोनों ओर बढ़ाया जाता है ताकि वह X axis को K बिन्दु पर तथा Y-axis को R बिन्दु पर काटती है। माँग की लोच का सूत्र निम्न प्रकार है :

$$e_p = \frac{\text{नीचे का भाग(Lower sector)}}{\text{ऊपर का भाग(Upper sector)}}$$

$$= \frac{PK}{PR}$$

यदि Lower sector > Upper sector से, तो e > १

यदि Lower sector < Upper sector से, तो e < १

यदि Lower sector = Upper sector के, तो e = १

चित्र—३१
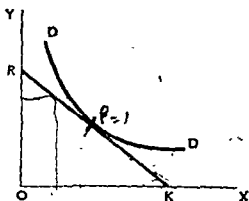
माँग की लोच तथा उपयोगिता ह्रास नियम
(ELASTICITY OF DEMAND AND THE LAW OF DIMINISHING UTILITY)

माँग की लोच का उपयोगिता ह्रास नियम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार किसी वस्तु की पूर्ति में वृद्धि के साथ सीमान्त उपयोगिता घटती है तथा पूर्ति में कमी के साथ सीमान्त उपयोगिता बढ़ती है। परन्तु सभी वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता समान दर से नहीं घटती है। कुछ वस्तुओं (आवश्यकता की वस्तुएँ, जैसे, नमक इत्यादि) के प्रयोग से हमें शीघ्र ही सन्तुष्टि प्राप्त हो जाती है, अर्थात सीमान्त उपयोगिता शीघ्र गिर जाती है, ऐसी वस्तुओं के मूल्य में अधिक कमी होने पर भी इनकी माँग में वृद्धि नहीं होगी। दूसरे शब्दों में, ऐसी वस्तुओं की माँग की लोच बेलोच होती है। परन्तु कुछ वस्तुएँ, जैसे आराम तथा विलासिता की वस्तुएँ, ऐसी होती हैं जिनकी पूर्ति में वृद्धि के साथ सीमान्त उपयोगिता धीरे-धीरे गिरती है, अतः ऐसी वस्तुओं के मूल्य में थोड़ी कमी होने पर उनकी माँग अधिक बढ़ जाती है और ऐसी वस्तुओं की माँग लोचदार होती है। अतः स्पष्ट है कि **जिन वस्तुओं की उपयोगिता शीघ्र गिरती है उनकी माँग बेलोच (inelastic) होती है तथा जिन वस्तुओं की उपयोगिता धीरे-धीरे गिरती है उनकी माँग लोचदार (elastic) होती है।** इस प्रकार माँग की लोच, उपयोगिता ह्रास नियम से सम्बन्धित है।

माँग की लोच तथा उपभोक्ता की बचत
(ELASTICITY OF DEMAND AND CONSUMER'S SURPLUS)

माँग की लोच का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव पड़ता है। आवश्यक वस्तुओं (Necessaries) तथा रस्मी आवश्यकता की वस्तुएँ (Conventional necessaries) की माँग की लोच बेलोच होती है। इन वस्तुओं (जैसे, नमक, अनाज इत्यादि) का मूल्य प्रायः नीचा होता है, जबकि उपभोक्ता इनके लिए अधिक कीमत देने को तत्पर होते हैं, अतः उपभोक्ता, जो देने को तत्पर है, और जो वास्तव में देते हैं—इन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत होती है, और यह बेलोच वस्तुओं में अधिक प्राप्त होती है। इसके विपरीत विलासिता तथा आराम की वस्तुओं की माँग लोचदार होती है और इन वस्तुओं का मूल्य प्रायः ऊँचा रहता है। परिणामस्वरूप इनसे उपभोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है। इस प्रकार **बेलोचदार माँग की वस्तुओं में उपभोक्ता की बचत अधिक और लोचदार माँग की वस्तुओं में उपभोक्ता की बचत कम होती है।**

माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(FACTORS INFLUENCING ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं :

(१) वस्तु का गुण (Nature of commodity)—(*i*) प्रायः आवश्यकता की वस्तुओं (Necessaries) तथा रस्मी आवश्यकताओं (Conventional necessaries) की वस्तुओं की माँग की लोच बेलोचदार होती है। उदाहरणार्थ, नमक, अनाज इत्यादि वस्तुओं की कीमत बढ़ने या घटने पर इनकी माँग अधिक घटती या बढ़ती नहीं है क्योंकि ये जीवन के लिए आवश्यक हैं और कीमत में परिवर्तन होने पर भी उपभोक्ता आवश्यकतानुसार जितनी मात्रा जरूरी है, खरीदते ही। इसी प्रकार रस्मी आवश्यकताओं की माँग पर भी मूल्य परिवर्तन का प्रभाव कम होता है।

(ii) प्रायः आरामदायक वस्तुओं (Comforts) की माँग की लोच औसत दर्जे की साधारण लोचदार (moderately elastic) होती है। ऐसी वस्तुओं के उपभोग से हमारी क्षमता बढ़ती है परन्तु इनकी अनुपस्थिति से कार्यशक्ति में कमी नहीं होती। अतः ऐसी वस्तु

क्योंकि इनकी कीमतें पहले से ही काफी ऊँची होती हैं तथा इन वस्तुओं की कीमतों में और वृद्धि या कमी हो जाती है तो इनकी माँग पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(६) आय-वर्ग (Income group)—माँग की लोच का सम्बन्ध एक दिये हुए आय-वर्ग से होता है। धनी-वर्ग के लिए वस्तुओं की माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है क्योंकि उनके लिए कीमतों में वृद्धि या कमी विशेष महत्त्व नहीं रखती। जबकि निर्धन-वर्ग के लिए प्रायः वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार होती है क्योंकि उनकी माँग कीमतों में परिवर्तन से अधिक प्रभावित होती है।

(७) समाज में धन के वितरण का लोच पर प्रभाव (Effect of the distribution of wealth)—प्रो० टाउसिग (Taussig) के अनुसार, सामान्यतया समाज में धन के असमान वितरण होने से माँग की लोच बेलोच होती है तथा धन के समान वितरण के साथ लोचदार हो जाती है। असमान वितरण के परिणामस्वरूप समाज दो वर्गों में बँट जाता है—थोड़े-से व्यक्तियों का धनी वर्ग तथा अधिकांश व्यक्तियों का निर्धन वर्ग। कीमतों में थोड़ी वृद्धि या कमी धनी वर्ग के लोगों की माँग को अधिक प्रभावित नहीं करती; इसी प्रकार निर्धनों के लिए भी लोच सामान्यतया बेलोचदार ही रहती है क्योंकि वे केवल आवश्यकता की वस्तुएँ ही खरीद पाते हैं। परन्तु धन के समान वितरण से लगभग सभी व्यक्तियों की क्रय-शक्ति ठीक होती है और कीमतों में वृद्धि या कमी का सब लोगों पर प्रभाव पड़ता है, अतः माँग लोचदार हो जाती है।

(८) उपभोक्ता की आय का व्यय किया जाने वाला भाग (Part of the consumer's income spent)—जिन वस्तुओं पर आय का बहुत थोड़ा भाग व्यय किया जाता है उनकी माँग की लोच बेलोचदार होती है, इसके विपरीत जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता अपनी आय का एक बड़ा भाग व्यय करता है उनकी माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। उदाहरणार्थ, सुई, डोरा, बटन इत्यादि पर उपभोक्ता आय का बहुत थोड़ा-सा भाग व्यय करता है, अतः इनकी कीमत में वृद्धि या कमी से माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और इनकी माँग की लोच बेलोचदार होती है। इसके विपरीत कपड़ा, रेडियो, साईकिल इत्यादि पर आय का बड़ा भाग व्यय किया जाता है इसलिए इनकी माँग की लोच लोचदार होती है।

(९) संयुक्त माँग (Joint demand)—कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो कि दूसरी वस्तु के साथ माँगी जाती हैं, जैसे डबलरोटी तथा मक्खन, पेन और स्याही, दियासलाई तथा सिगरेट। ऐसी वस्तुएँ जो दूसरी वस्तुओं के साथ माँगी जाती हैं उनकी माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है। उदाहरणार्थ, यदि सिगरेट की माँग नहीं गिरती है और वह पहले जैसे ही बनी रहती है तो दियासलाई की कीमत बढ़ने पर भी दियासलाई की माँग नहीं घटेगी क्योंकि सिगरेट पीने वालों के लिए वह जरूरी है और इस प्रकार दियासलाई की माँग की लोच बेलोचदार हुई।

(१०) मनुष्य के स्वभाव तथा आदतों का प्रभाव (Effect of human nature and habits)—यदि किसी उपभोक्ता को किसी वस्तु की आदत पड़ गयी है (जैसे, विशेष ब्रांड की चाय या विशेष ब्रांड की सिगरेट पीने की), तो उस वस्तु की कीमत बढ़ने पर भी वह उसका प्रयोग कम नहीं करेगा तथा वस्तु की माँग बेलोचदार रहेगी। इसी प्रकार रीति-रिवाज (social customs) प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की माँग की लोच भी बेलोचदार रहती है।

(११) समय का प्रभाव (Influence of time)—प्रो० मार्शल ने इस बात पर बल दिया कि समय का प्रभाव माँग की लोच पर पड़ता है क्योंकि किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि या कमी होने पर उसकी माँग पर तत्काल ही प्रभाव नहीं पड़ता, उसमें कुछ समय लगता है। अतः सामा

रूप में यह कहा जा सकता है कि समय जितना कम होगा वस्तुओं की माँग की लोच कम लोचदार होगी और समय जितना अधिक होगा माँग की लोच अधिक लोचदार होगी क्योंकि उपभोक्ता दूसरी स्थानापन्न वस्तुओं को ज्ञात करके प्रयोग में लाने लगेगा।

माँग की लोच का व्यावहारिक महत्व
(PRACTICAL UTILITY OF ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच का केवल सैद्धान्तिक महत्त्व ही नहीं, बल्कि यह बहुत-सी व्यावहारिक समस्याओं के सुलझाने में मदद करती है। कैंज (Keynes) के अनुसार, मार्शल की सबसे बड़ी देन माँग की लोच का सिद्धान्त है तथा इसके अध्ययन के बिना मूल्य तथा वितरण के सिद्धान्तों की विवेचना सम्भव नहीं है। माँग की लोच का व्यावहारिक महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट है :

(१) मूल्य सिद्धान्त में (In Theory of Value)

(i) माँग की लोच का सिद्धान्त किसी फर्म के साम्य की दशाओं के निर्धारण में सहायक होता है। एक फर्म साम्य की दशा में तब होती है जबकि सीमान्त आगम (Marginal Revenue) = सीमान्त लागत (Maginal Cost)। परन्तु सीमान्त आगम माँग की लोच पर निर्भर करती है।

(ii) एक एकाधिकारी उत्पादक (Monopolist) अपनी वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग की लोच के विचार की सहायता लेता है। एकाधिकारी का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है अर्थात् वह 'मूल्य प्रति इकाई × बिकी की गयी मात्रा' के गुणनफल को अधिकतम करता है। यदि उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग की लोच बेलोचदार है तो वह वस्तु की कीमत ऊँची निर्धारित करेगा और ऐसा करने में उसकी बिक्री की गयी मात्रा पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि उसकी वस्तु की माँग की लोच अधिक लोचदार है तो वस्तु का मूल्य नीचा रखकर अधिक बिक्री करेगा और लाभ को अधिकतम करेगा।

(iii) एकाधिकारी मूल्य-विभेदीकरण (Price discrimination) में भी लोच के विचार की सहायता लेता है। मूल्य-विभेद का अर्थ है कि विभिन्न ग्राहकों अथवा विभिन्न वर्गों या विभिन्न बाजारों में एक ही वस्तु के भिन्न मूल्य प्राप्त करना। मूल्य-विभेद उन्हीं दो बाजारों या वर्गों के बीच सम्भव हो सकेगा जिनमें वस्तु की माँग की लोच समान नहीं है। जिस बाजार या वर्ग में माँग की लोच लोचदार है वहाँ एकाधिकारी कम मूल्य रखेगा और जहाँ माँग की लोच बेलोचदार है वहाँ वस्तु की कीमत ऊँची रखेगा।

(iv) इसी प्रकार राशिपतन (Dumping) करते समय भी एकाधिकारी विभिन्न बाजारों की माँग की लोच ध्यान में रखता है।

(v) संयुक्त-पूर्ति (Joint-Supply) से सम्बन्धित मूल्य निर्धारण में माँग की लोच का विचार सहायक होता है। जब दो या दो से अधिक वस्तुओं का उत्पादन साथ-साथ होता है (जैसे, गेहूँ तथा भूसा) तो उत्पादित वस्तुओं की लागतों को अलग-अलग मालूम करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में उत्पादक माँग की लोच का सहारा लेता है, जिस वस्तु की माँग बेलोच होती है उसकी लागत अधिक मानी जाती है और उसका मूल्य ऊँचा रखा जाता है, जिस वस्तु की माँग लोचदार होती है उसकी लागत कम मानी जाती है और उसका मूल्य नीचा रखा जाता है।

(२) वितरण सिद्धान्त में (In the Theory of Distribution)

माँग की लोच का विचार विभिन्न उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार (reward) निर्धारित करने में भी सहायक होता है। उत्पादक उन उत्पत्ति के साधनों को अधिक पुरस्कार देता है जिनकी माँग की लोच उसके लिए बेलोचदार है तथा उन साधनों को कम पुरस्कार देता है जिनकी लोच

क्योंकि इनकी कीमतें पहले से ही काफी ऊँची होती हैं तथा इन वस्तुओं की कीमतों में और वृद्धि या कमी हो जाती है तो इनकी माँग पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(६) **आय-वर्ग** (Income group)—माँग की लोच का सम्बन्ध एक दिये हुए आय-वर्ग से होता है। धनी-वर्ग के लिए वस्तुओं की माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है क्योंकि उनके लिए कीमतों में वृद्धि या कमी विशेष महत्त्व नहीं रखती। जबकि निर्धन-वर्ग के लिए प्रायः वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार होती है क्योंकि उनकी माँग कीमतों में परिवर्तन से अधिक प्रभावित होती है।

(७) **समाज में धन के वितरण का लोच पर प्रभाव** (Effect of the distribution of wealth)—**प्रो० टाउसिग** (Taussig) के अनुसार, सामान्यतया समाज में धन के असमान वितरण होने से माँग की लोच बेलोच होती है तथा धन के समान वितरण के साथ लोचदार हो जाती है। असमान वितरण के परिणामस्वरूप समाज दो वर्गों में बँट जाता है—थोड़े-से व्यक्तियों का धनी वर्ग तथा अधिकांश व्यक्तियों का निर्धन वर्ग। कीमतों में थोड़ी वृद्धि या कमी धनी वर्ग के लोगों की माँग को अधिक प्रभावित नहीं करती; इसी प्रकार निर्धनों के लिए भी लोच सामान्यतया बेलोचदार ही रहती है क्योंकि वे केवल आवश्यकता की वस्तुएँ ही खरीद पाते हैं। परन्तु धन के समान वितरण से लगभग सभी व्यक्तियों की क्रय-शक्ति ठीक होती है और कीमतों में वृद्धि या कमी का सब लोगों पर प्रभाव पड़ता है, अतः माँग लोचदार हो जाती है।

(८) **उपभोक्ता की आय का व्यय किया जाने वाला भाग** (Part of the consumer's income spent)—जिन वस्तुओं पर आय का बहुत थोड़ा भाग व्यय किया जाता है उनकी माँग की लोच बेलोचदार होती है, इसके विपरीत जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता अपनी आय का एक बड़ा भाग व्यय करता है उनकी माँग की लोच अधिक लोचदार होती है। उदाहरणार्थ, सुई, डोरा, बटन इत्यादि पर उपभोक्ता आय का बहुत थोड़ा-सा भाग व्यय करता है, अतः इनकी कीमत में वृद्धि या कमी से माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और इनकी माँग की लोच बेलोचदार होती है। इसके विपरीत कपड़ा, रेडियो, साईकिल इत्यादि पर आय का बड़ा भाग व्यय किया जाता है इसलिए इनकी माँग की लोच लोचदार होती है।

(९) **संयुक्त माँग** (Joint demand)—कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो कि दूसरी वस्तु के साथ माँगी जाती हैं, जैसे डबलरोटी तथा मक्खन, पेन और स्याही, दियासलाई तथा सिगरेट। ऐसी वस्तुएँ जो दूसरी वस्तुओं के साथ माँगी जाती हैं उनकी माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है। उदाहरणार्थ, यदि सिगरेट की माँग नहीं गिरती है और वह पहले जैसे ही बनी रहती है तो दियासलाई की कीमत बढ़ने पर भी दियासलाई की माँग नहीं घटेगी क्योंकि सिगरेट पीने वालों के लिए वह जरूरी है और इस प्रकार दियासलाई की माँग की लोच बेलोचदार हुई।

(१०) **मनुष्य के स्वभाव तथा आदतों का प्रभाव** (Effect of human nature and habits)—यदि किसी उपभोक्ता को किसी वस्तु की आदत पड़ गयी है (जैसे, विशेष ब्रांड की चाय या विशेष ब्रांड की सिगरेट पीने की), तो उस वस्तु की कीमत बढ़ने पर भी वह उसका प्रयोग कम नहीं करेगा तथा वस्तु की माँग बेलोचदार रहेगी। इसी प्रकार रीति-रिवाज (social customs) में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की माँग की लोच भी बेलोचदार रहती है।

(११) **समय का प्रभाव** (Influence of time)—**प्रो० मार्शल** ने इस बात पर बल दिया कि समय का प्रभाव माँग की लोच पर पड़ता है क्योंकि किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि या कमी होने पर उसकी माँग पर तत्काल ही प्रभाव नहीं पड़ता, उसमें कुछ समय लगता है। अतः साधारण

(५) अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में महत्त्व (Significance in the Theory of International Trade)

'किन्हीं दो देशों के बीच 'व्यापार की शर्तों' (terms of trade) के अध्ययन में माँग की लोच की धारणा सहायक होती है।"[10] 'व्यापार की शर्तें' देश की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करती हैं; जबकि सौदा करने की शक्ति वास्तव में आयातों तथा निर्यातों की माँग तथा पूर्ति की लोच पर निर्भर करती है। यदि देश के निर्यातों की माँग बेलोचदार है तो वे विदेशों में ऊँची कीमतों पर बिक सकेंगे; यदि हमारे आयातों की माँग हमारे लिए बेलोचदार है तो उन्हें हमें ऊँची कीमत पर भी खरीदना पड़ेगा। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार 'व्यापार की शर्तें' माँग की लोच पर निर्भर करती हैं।

(६) 'सम्पन्नता के बीच गरीबी' के विरोधाभास की व्याख्या (Explanation of the Paradox of 'Poverty in Plenty')

उदाहरणार्थ, कृषि उत्पादन में अधिक वृद्धि होती है और सम्पन्नता दिखायी देती है, परन्तु फिर भी इस सम्पन्नता के बीच किसान गरीब रह सकते हैं यदि उत्पादित वस्तु की माँग की लोच बेलोचदार है क्योंकि ऐसी स्थिति में मूल्य कम होने पर भी किसानों का अतिरिक्त उत्पादन नहीं बिक पायेगा और उन्हें लाभ के स्थान पर नुकसान होगा।

अध्याय १६ की परिशिष्ट : [APPENDIX TO CHAPTER 16]

माँग की लोच तथा माँग-रेखा का ढाल; माँग की आय लोच; एवं माँग की आड़ी लोच

(ELASTICITY OF DEMAND AND SLOPE OF DEMAND CURVE; INCOME ELASTICITY OF DEMAND; AND CROSS-ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच तथा माँग-रेखा के ढाल में सम्बन्ध

(RELATION BETWEEN ELASTICITY OF DEMAND AND THE SLOPE OF THE DEMAND CURVE)

साधारणतः यह कहा जाता है कि :

(i) यदि माँग की रेखा समतल (flat)[11] है तो वह बतायेगी कि माँग की लोच अधिक लोचदार (highly elastic) है, अर्थात इकाई से अधिक है, जैसा कि चित्र संख्या ३३ में स्पष्ट है।

---

[10] यदि कोई देश अपनी निर्यात की वस्तु को मँहगे दामों पर बेचता है या आयातों को नीचे दामों पर खरीदता है, तो 'व्यापार की शर्तें' उसके पक्ष में कही जाती हैं। इसकी विपरीत दशाओं में 'व्यापार की शर्तें' देश के विपक्ष में होंगी।

[11] यदि माँग रेखा पूर्ण समतल या पड़ी रेखा (horizontal) है, जैसा कि संलग्न चित्र संख्या ३२ में A B रेखा है, तो यह 'पूर्णतया लोचदार माँग' (perfectly elastic demand)

(ii) यदि माँग की रेखा ढालू (Steep) है तो वह यह दर्शाती है कि माँग की लोच कम लोचदार (Inelastic) है अर्थात इकाई से कम है जैसा कि चित्र संख्या ३४ से स्पष्ट है।
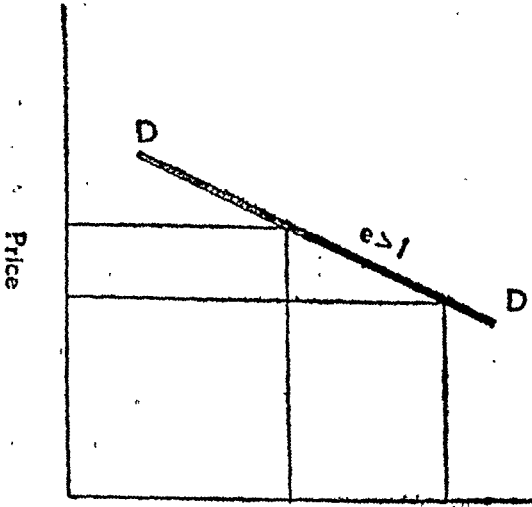
चित्र—३३
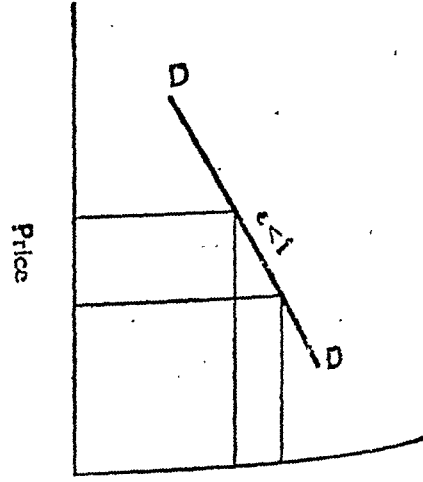
चित्र—३४

वताती है। यदि माँग रेखा आधार-रेखा (X-axis) पर खड़ी रेखा (Vertical line) है, जैसा कि चित्र में CD रेखा है, तो यह 'पूर्णतयां वेलोच माँग' (Perfectly Inelastic Demand) को वताती है। अतः स्पष्ट है कि पड़ी रेखा (PB) तथा खड़ी रेखा (PD) के बीच की रेखा PK, जो कि ∟DPB को bisect करती है अर्थात जो कि X-axis के साथ ४५° का कोण (angle) वनाती है, औसत दर्जे की माँग की लोच अर्थात 'इकाई के वरावर' माँग की लोच को वतायेगी।
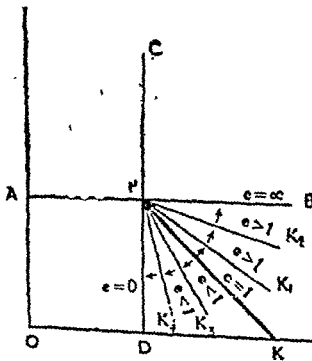
चित्र—३२

यदि अव PK रेखा को उठाकर PB की ओर चलाया जाये और यदि वह PK_1 या PK_2 का स्थान ग्रहण कर लेती है तो स्पष्ट है कि माँग की लोच 'अधिक लोचदार' या 'लोच इकाई से अधिक' होगी; और यदि PK रेखा को PK_2 के वाद और चलाया जाय ताकि वह PB रेखा से मिल जाये तो स्पष्ट है कि माँग की लोच पूर्णतया लोचदार हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे रेखा अधिक समतल (flat) होती जाती है वैसे-वैसे वह अधिक लोच को वताती है और जव वह पूर्णतया समतल या पड़ी हुई रेखा (perfectly flat or horizontal) हो जाती है तो वह पूर्णतया लोचदार माँग (perfectly elastic demand) को वताती है।

यदि PK रेखा को उठाकर PD की ओर चलाया जाये और यदि वह PK_3 या PK_4 का स्थान ग्रहण कर लेती है तो स्पष्ट है कि माँग की लोच कम लोचदार होगी या इकाई से कम होगी; और यदि PK रेखा को PK_4 के वाद और चलाया जाये ताकि वह PD रेखा से मिल जाये तो स्पष्ट है कि माँग पूर्णतया वेलोच (Perfectly Inelastic) हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे रेखा अधिक ढाल (Steep) होती जाती है, वैसे-वैसे वह

(iii) यदि सीधी मांग रेखा (straight line demand curve) है जो कि न बहुत समतल (flat) है और न बहुत ढालू (steep) बल्कि ऐसी है जो कि X-axis के साथ ४५° का कोण बनाती
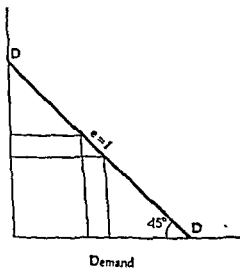
चित्र—३५
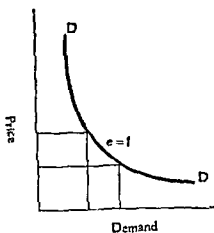
चित्र—३६
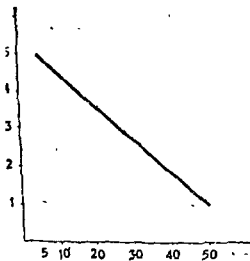
चित्र—३७
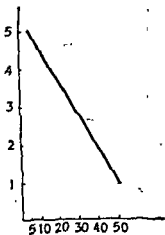
चित्र—३८

कम लोच को बताती है और जब वह पूर्ण ढालू या खड़ी रेखा (Perfectly steep or vertical line) हो जाती है तब वह पूर्णतया बेलोच मांग (Perfectly Inelastic Demand) को बताती है।

है तो यह 'लोचदार माँग' या 'इकाई के बराबर' माँग को बताती है जैसा कि चित्र संख्या ३५ से स्पष्ट है । [अथवा, यदि माँग की रेखा एक Rectangular Hyperbola है, जैसा कि चित्र संख्या ३६ में दिखाया गया है, तो माँग की लोच उस रेखा की समस्त लम्बाई पर 'इकाई के बराबर' होगी ।]

परन्तु इस सम्बन्ध में में यह नहीं भूलना चाहिए कि माँग रेखा का समतल होना या ढालू होना 'माँग की लोच की श्रेणी' (degree) की पूर्ण तथा उचित जाँच नहीं है ।' ("But 'flatness' and 'steepness' are not perfect tests for elasticity.")

यह निम्न तथ्यों से स्पष्ट है :

(i) यदि दो माँग-रेखाएँ भिन्न-भिन्न माप (scale) पर खींची जाती हैं तो उनका आकार (अर्थात समतल होना या ढालू होना) अलग-अलग होगा, यद्यपि यह हो सकता है कि वे दोनों माँग रेखाएँ एक ही प्रकार की माँग की दशाओं को बताएँ । उदाहरणार्थ, चित्र संख्या ३७ तथा चित्र संख्या ३८ में माँग रेखाएँ एक प्रकार की माँग की दशाओं को बताती हैं, परन्तु फिर भी चित्र संख्या ३७ में माँग रेखा अधिक समतल (flat) है जबकि चित्र संख्या ३८ में माँग रेखा समतल (flat) न होकर ढालू (steep) है । यह अन्तर इसलिए है कि दोनों चित्रों में X-axis पर भिन्न-भिन्न माप (scale) लिये गये हैं ।

चित्र—३९
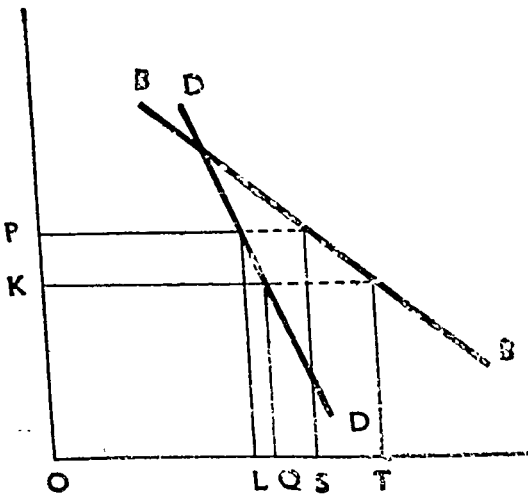
परन्तु यदि दोनों माँग रेखाएँ एक ही माप (scale) पर खींची जायें तो अवश्य ही समतल माँग रेखा ('Flat' demand Curve), ढालू माँग रेखा ('Steep' demand Curve) की अपेक्षा अधिक लोचदार होगी। इस बात को चित्र संख्या ३९ में दिखाया गया है । चित्र से स्पष्ट है कि यदि माँग रेखा DD पर विचार किया जाये (जो कि ढालू है), तो माँग में परिवर्तन LQ, मूल्य में परिवर्तन PK की अपेक्षा कम है अर्थात माँग की लोच बेलोच है या इकाई से कम है । यदि माँग रेखा BB पर विचार किया जाये (जो कि समतल है) तो माँग में परिवर्तन ST मूल्य में परिवर्तन PK की अपेक्षा अधिक है अर्थात माँग की लोच 'अधिक लोचदार' या 'इकाई से अधिक' है ।

(ii) यद्यपि माँग रेखा का ढाल एक ही हो, तो भी उस माँग रेखा की सम्पूर्ण लम्बाई पर एक समान माँग की लोच नहीं होगी, उसके भिन्न-भिन्न विन्दुओं पर माँग की लोच भिन्न-भिन्न ह

चित्र संख्या ४० में DD माँग रेखा का एक ही ढाल है अर्थात यह X-axis के साथ ४५° का कोण बनाती है, परन्तु फिर भी इसके विभिन्न बिन्दुओं पर माँग की लोच भिन्न-भिन्न है—P_1 बिन्दु[13] पर $e<१$, P बिन्दु (जो कि मध्य बिन्दु है) पर $e=१$ तथा P_2 बिन्दु पर $e>१$ ।
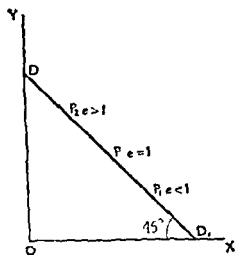
चित्र—४०

निष्कर्ष—माँग की लोच केवल माँग रेखा के ढाल (slope) पर ही निर्भर नहीं करती है। वास्तव में माँग की लोच दो बातों पर निर्भर करती है : (i) माँग रेखा के ढाल (slope) पर, तथा (ii) X-axis और Y-axis से 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' (price and quantity point) की स्थिति पर। माँग रेखा पर प्रत्येक बिन्दु 'कीमत' तथा 'माँगी गयी मात्रा' में सम्बन्ध बताता है, और उनके प्रत्येक बिन्दु को 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' कहा जाता है। चित्र संख्या ४० में P, P_1 तथा P_2 'कीमत तथा मात्रा बिन्दु' हैं। P_1 बिन्दु पर माग की लोच केवल माँग रेखा के ढाल पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि X-axis और Y-axis से P_1 की स्थिति क्या है। इसी प्रकार से P तथा P_2 पर माँग की लोच दोनों बातों पर निर्भर करती है।

माँग की लोच के प्रकार
(KINDS OF ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की लोच तीन प्रकार की होती है : (१) माँग की कीमत लोच (Price Elasticity of Demand), (२) माँग की आय-लोच (Income Elasticity of Demand), तथा (३) माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)। इनमें से 'माँग की कीमत लोच' का अध्ययन हम पहले ही कर चुके हैं। अब यहाँ पर हम 'माँग की आय लोच' तथा 'माँग की आड़ी लोच' का अध्ययन करेंगे।

माँग की आय लोच
(INCOME ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की आय लोच की परिभाषा

उपभोक्ता की आय माँग को प्रभावित करने वाले तत्त्वों में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। 'माँग की आय लोच' आय में परिवर्तन के उत्तर (response) में माँग में परिवर्तन की मात्रा का माप

---

[13] किसी बिन्दु पर माँग की लोच मालूम करने के लिए हमें 'बिन्दु रीति' (Point Method) ध्यान में रखना चाहिए। P_1 बिन्दु पर माँग की लोच $=\frac{\text{Lower Sector}}{\text{Upper Sector}}=\frac{P_1D_1}{P_1D}$ चूँकि P_1D_1 (Lower Sector) $<P_1D$ (Upper sector), इसलिए $e<१$, इसी प्रकार से P बिन्दु (जो कि मध्य बिन्दु है) पर $e=१$, P_2 बिन्दु पर $e>१$

है। अधिक निश्चित रूप से इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है—यदि कीमत तथा अन्य बातें यथा-स्थिर रहें, तो माँग में हुये आनुपातिक परिवर्तन को आय में हुये आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर 'माँग की आय लोच' प्राप्त की जाती है।

माँग की आय लोच को नापने की रीति

$$e_i = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

जबकि, e_i = Income Elasticity of Demand (माँग की आय लोच)

यह ध्यान रहे कि 'माँग की आय लोच' पर विचार करते समय हम यह मान लेते हैं कि उस वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता, वह पूर्ववत रहती है।

माँग की आय लोच के मापने के उपर्युक्त सूत्र की अपेक्षा और अधिक सही सूत्र निम्न प्रकार दिया जाता है :

$$e_i = \frac{\dfrac{Q \sim Q_1}{Q + Q_1}}{\dfrac{I \sim I_1}{I + I_1}}$$

जबकि, Q = माँग की पूर्व मात्रा
Q_1 = माँग की नयी मात्रा
I = पूर्व आय
I = नयी आय

माँग की आय लोच की श्रेणियाँ (Degrees)

सामान्यतया माँग की आय लोच धनात्मक (Positive) होती है। अर्थात आय में वृद्धि या कमी के साथ उपभोक्ता वस्तुओं की अधिक या कम मात्रा खरीदता है। दूसरे शब्दों में, आय में परिवर्तन तथा माँग में परिवर्तन एक ही दिशा में होते हैं। **परन्तु कुछ दशाओं में 'माँग की आय लोच' ऋणात्मक** (negative) **भी होती है** अर्थात आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता कुछ वस्तुओं की कम माँग करता है या उन पर कम खर्च करता है। यह स्थिति प्रायः निम्नकोटि की वस्तुओं (inferior goods) के सम्बन्ध में पायी जाती है।

'माँग की आय लोच' की निम्न पाँच श्रेणियाँ हैं :

(१) **माँग की शून्य आय लोच** (Zero income elasticity of demand)—जब आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग की मात्रा में या खरीद में कोई भी परिवर्तन नहीं होता तो माँग की आय लोच शून्य कही जाती है। शून्य माँग की लोच एक 'विभाजक रेखा' (dividing line) की भाँति काम करती है। इसके एक ओर तो माँग की आय लोच ऋणात्मक (negative) होती है अर्थात आय में वृद्धि के साथ माँग की मात्रा में या वस्तु पर खर्च में कमी होती है, जबकि 'माँग की शून्य आय लोच' की दूसरी ओर माँग की आय लोच धनात्मक (positive) होती है।

(२) **माँग की आय लोच ऋणात्मक** (Negative income elasticity of demand)—निम्न कोटि की वस्तुओं (जैसे, डालडा घी शुद्ध घी की अपेक्षा में) के सम्बन्ध में माँग की आय लोच ऋणात्मक होती है अर्थात आय में वृद्धि के साथ इन वस्तुओं पर कम खर्च किया जाता है।

(३) **माँग की आय लोच इकाई के बराबर** (Unitary income elasticity of demand)—इसका अर्थ है कि उपभोक्ता की आय का अनुपात जो कि वह वस्तु विशेष पर व्यय करता है, आय में वृद्धि के पहले तथा बाद में दोनों दशाओं में एक समान रहता है। यह एक 'विभाजक रेखा' (dividing line) की भाँति कार्य करती है। इसके एक ओर 'माँग की इकाई से अधिक आय लोच' होती है और दूसरी ओर 'माँग की इकाई से कम आय लोच' होती है।

(४) मांग की आय लोच 'इकाई से अधिक' (Income elasticity of demand greater than unity)—इसका अर्थ है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता वस्तु विशेष पर अपनी आय का व्यय अधिक अनुपात में करता है। प्रायः विलासिता की वस्तुओं के सम्बन्ध में मांग की आय लोच इकाई से अधिक पायी जाती है।

(५) मांग की आय लोच 'इकाई से कम' (Income elasticity of demand less than unity)—इसका अर्थ है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोक्ता वस्तु विशेष पर अपनी आय का व्यय कम अनुपात में करता है। ऐसी मांग की आय लोच प्रायः आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में पायी जाती है।

मांग की आड़ी लोच
(CROSS ELASTICITY OF DEMAND)

प्राक्कथन

मांग की आड़ी लोच के विचार का नियमित रूप से विकास मूर (Moore) द्वारा अपनी *Synthetic Economics* में किया गया है और इस विचार को अधिक विस्तृत रूप में कीमत के सिद्धान्त (theory of value) में प्रयोग राबर्ट टिफिन (*Robert Tiffin*) ने किया है।

दो वस्तुओं की मांग परस्पर इस प्रकार से सम्बन्धित हो सकती है कि एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माग में परिवर्तन ला सकता है; जबकि दूसरी वस्तु की कीमत पूर्ववत रहती है। वस्तुएँ तीन प्रकार की हो सकती हैं : प्रतियोगी या स्थानापन्न वस्तुएँ (competing goods or substitutes), पूरक वस्तुएँ (complementary goods) या अनाश्रित वस्तुएँ (independent goods)। मांग की आड़ी लोच द्वारा हम प्रथम दो प्रकार की सम्बन्धित वस्तुओं के बीच 'सम्बन्ध की मात्रा' (degree of relationship) माप सकते हैं।

मांग की आड़ी लोच की परिभाषा

एक वस्तु की मांग में जो परिवर्तन दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के उत्तर (response) में होता है, उसे मांग की आड़ी लोच कहते हैं। माना कि दो वस्तुएँ X तथा Y हैं। 'मांग की कीमत लोच' में हम X वस्तु की कीमत में परिवर्तन करते हैं, और फिर देखते हैं कि X वस्तु की मांग की मात्रा में कितना परिवर्तन होता है। मांग की आड़ी लोच में हम Y की कीमत परिवर्तन करते हैं और फिर देखते हैं कि X की मांग में कितना परिवर्तन होता है। अधिक उचित रूप में मांग की आड़ी लोच X वस्तु की मांग में आनुपातिक परिवर्तन को Y वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर पर प्राप्त किया जाता है।

मांग की आड़ी लोच के मापने की रीति

$$\text{मांग की आड़ी लोच} = \frac{X \text{ वस्तु की मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{Y \text{ वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

मांग की आड़ी लोच निकालने में उपर्युक्त सूत्र को और अधिक सही रूप में निम्न प्रकार बताते हैं :

$$\text{मांग की आड़ी लोच} = \frac{\dfrac{Qx \sim Q^1x}{Qx + Q^1x}}{\dfrac{Py \sim P^1y}{Py + P^1y}}$$

जबकि
Qx = X वस्तु की पूर्व मात्रा
Q^1x = X वस्तु की नयी मात्रा
Py = Y वस्तु की पूर्व कीमत
P^1y = Y वस्तु की नयी कीमत

माँग की आड़ी लोच के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें

(i) यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो एक दूसरे की **पूर्ण स्थानापन्न** (perfect substitutes) हैं तो उनके बीच प्रतिस्थापन की दर समान रहेगी, और ऐसी स्थिति में एक वस्तु का मूल्य कम होने पर यदि दूसरी वस्तु का मूल्य यथास्थिर रहे, उपभोक्ता दूसरी वस्तु के स्थान पर पूर्ण रूप से पहली वस्तु को प्रयोग में लाना चाहेगा। **ऐसी स्थिति में प्रतिस्थापन की दर असीमित या अनन्त** (infinite) **कही जाती है**, परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसी दो वस्तुएँ जो कि पूर्ण स्थानापन्न हों नहीं पायी जातीं, और यदि पायी जाती हैं तो इसका अर्थ है कि वे वस्तुएँ भिन्न-भिन्न दो वस्तुएँ नहीं बल्कि एक ही वस्तु है।

(ii) (अ) **व्यावहारिक जीवन में ऐसी वस्तुएँ पायी जाती हैं जो कि बहुत** निकट या अच्छे **स्थानापन्न** (close or good substitutes) **हों**। ऐसी वस्तुओं की माँग की आड़ी लोच बहुत अधिक होगी। अच्छी स्थानापन्न वस्तुओं के सम्बन्ध में यदि एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है तो दूसरी वस्तु की माँग में वृद्धि होगी। उदाहरणार्थ, यदि काफी की कीमत में वृद्धि होती है तो अन्य बातें यथावत रहने पर, चाय की माँग में वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में दो प्रतियोगी **वस्तुओं में सम्बन्ध सीधा या धनात्मक** (direct or positive) **होता है**। ऐसी दशा में हम माँग की आड़ी लोच की प्राप्त संख्या (numerical value) के पहले धनात्मक चिन्ह (sign of plus) लगाते हैं।

(ब) दूसरे शब्दों में, **यदि माँग की आड़ी लोच की धनात्मक** संख्या (positive numerical value) **दी हुई है, तो उसको देखकर हम कह सकते हैं कि** सम्बन्धित दो वस्तुएँ प्रतियोगी **या स्थानापन्न वस्तुएँ हैं**।

(स) वस्तुओं की तुलना करते समय, माँग की आड़ी लोच का अंक (Coefficient or numerical value) जितना अधिक होगा उतनी वे वस्तुएँ अधिक निकट की स्थानापन्न होंगी।

(iii) (अ) **यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जिनकी संयुक्त माँग** (joint demand) है अर्थात् पूरक वस्तुएँ (complementary goods) हैं, जैसे, डबलरोटी तथा मक्खन, तो रोटी की कीमत में कमी मक्खन की माँग को बढ़ा देगी। अतः स्पष्ट है कि **ऐसी वस्तुओं में सम्बन्ध उल्टा** (inverse) **या ऋणात्मक** (negative) **होता है**। इसलिए ऐसी दशा में माँग की आड़ी लोच के अंक (numerical value) के पहले ऋण का चिन्ह (sign of minus) लगाते हैं।

(ब) दूसरे शब्दों में, **यदि माँग की आड़ी लोच का ऋणात्मक अंक** (negative value) **दिया हुआ है तो उसे देखकर हम यह कह सकते हैं कि दो वस्तुएँ पूरक वस्तुएँ हैं**, न कि प्रतियोगी या स्थानापन्न वस्तुएँ।

(स) यहाँ पर आड़ी लोच का अंक जितना अधिक होगा उतनी वे वस्तुएँ अधिक निकट की पूरक वस्तुएँ होंगी।

(iv) **यदि माँग की आड़ी लोच का अंक** (Coefficient or numerical value) शून्य है तो इसका अर्थ है कि दो वस्तुएँ एक-दूसरे से सम्बन्धित नहीं हैं—न तो वे स्थानापन्न वस्तुएँ हैं और न पूरक वस्तुएँ, बल्कि **अनाश्रित वस्तुएँ** (independent goods) हैं।

१७

पूर्ति, पूर्ति का नियम तथा पूर्ति की लोच

[SUPPLY, LAW OF SUPPLY AND ELASTICITY OF SUPPLY]

पूर्ति का अर्थ
(MEANING OF SUPPLY)

किसी वस्तु की पूर्ति का अर्थ वस्तु की उस मात्रा से है जिसे विक्रेता एक निश्चित समय तथा एक निश्चित कीमत पर बाजार में बेचने को तैयार है। जिस प्रकार माँग हमेशा समय या कीमत से जुड़ी रहती है, इसी प्रकार पूर्ति का अर्थ एक निश्चित समय तथा निश्चित मूल्य के बिना पूर्ण नहीं होता। उदाहरणार्थ, पूर्ति के सम्बन्ध में यह कथन सही नहीं है कि बाजार में गेहूँ की पूर्ति १००० क्विन्टल है क्योंकि यहाँ समय और कीमत को नहीं बताया गया है। पूर्ण एवं सही कथन इस प्रकार होना चाहिए—८५ रु० प्रति क्विटल की दर पर एक हफ्ते में बाजार में गेहूँ की पूर्ति १००० क्विन्टल है।

पूर्ति के अर्थ को भली-भाँति समझने के लिए यह भी आवश्यक है कि पूर्ति (Supply) तथा स्टॉक (stock) के अन्तर को स्पष्ट रूप से समझ लिया जाये। किसी वस्तु का स्टॉक (stock) वस्तु की कुल मात्रा को बताता है जो कि किसी समय विशेष पर बाजार में मौजूद है जबकि पूर्ति स्टॉक का वह भाग है जो विक्रेता एक निश्चित समय में तथा एक निश्चित कीमत पर बेचने को तत्पर है।

पूर्ति की तालिका
(SUPPLY SCHEDULE)

एक बाजार में किसी निश्चित समय में विभिन्न मूल्यों पर किसी वस्तु की विभिन्न मात्राएँ बेची जाती हैं। इन विभिन्न मूल्यों तथा इन मूल्यों पर बेची जाने वाली वस्तुओं की मात्राओं को एक तालिका के रूप में व्यक्त किया जाये तो इसे 'पूर्ति की तालिका' कहते हैं। दूसरे शब्दों में; पूर्ति तालिका 'मूल्य' तथा 'बेची जाने वाली मात्रा' में कार्यात्मक सम्बन्ध (functional relationship) को बताती है।

पूर्ति की तालिका दो प्रकार की होती है: (१) व्यक्तिगत पूर्ति तालिका (Individual Supply Schedule), तथा (२) बाजार की पूर्ति तालिका (Market Supply Schedule)।

व्यक्तिगत पूर्ति तालिका—किसी निश्चित समय में एक विक्रेता किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी विभिन्न मात्राओं को बेचने को तत्पर होता है। ये 'विभिन्न कीमतें' तथा 'बेची जाने वाली मात्राएँ' मिलकर व्यक्ति (विक्रेता) की पूर्ति तालिका का निर्माण करती हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अमुक-अमुक कीमतें वास्तव में प्रचलित हैं और तदनुसार अमुक-अमुक मात्राएँ बेची जाती हैं। एक विक्रेता की पूर्ति तालिका का निर्माण उस विक्रेता की भूतकाल में प्रतिक्रियाओं (reactions) की जानकारी के आधार पर किया जाता है। दूसरे श

की पूर्ति तालिका अनुमानित कीमतों और वेची जाने वाली अनुमानित मात्राओं के [illegible] बनायी जाती है। एक विक्रेता की किसी वस्तु (माना चीनी) की पूर्ति तालिका निम्न [illegible] द्वारा वतायी गयी है; तालिका से स्पष्ट है कि मूल्य में वृद्धि के साथ वेची जाने वाली मात्रा में [illegible] होती जाती है।

मूल्य प्रति किलोग्राम (रुपये में)	वेची जाने वाली मात्रा (किलोग्राम में)
१	२
१·५०	४
२	७
४	१०

वाजार पूर्ति तालिका—किसी वस्तु की 'व्यक्तिगत पूर्ति तालिकाओं' की सहायता से [illegible] 'वाजार की पूर्ति तालिका' निकाली जा सकती है। वस्तु की प्रत्येक कीमत पर वाजार में [illegible] निश्चित कुल पूर्ति (aggregate supply) होगी जोकि वाजार में सभी विक्रेताओं की पूर्ति [illegible] जोड़कर प्राप्त होती है। अतः विभिन्न कीमतें तथा उनसे सम्बन्धित कुल पूर्तियां (aggregate suyply) मिलकर एक वाजार पूर्ति तालिका का निर्माण करती हैं। उदाहरणार्थ, माना [illegible] में केवल तीन विक्रेता X, Y तथा Z हैं और किसी वस्तु के लिए इन विक्रेताओं की पूर्ति [illegible] निम्न हैं :

मूल्य प्रति किलोग्राम (रुपये में)	वेची जाने वाली मात्राएँ (किलोग्राम में)			वाजार में तीनों [illegible] (X, Y तथा Z) [illegible] कुल पूर्ति (किलोग्राम में)
	X व्यक्ति द्वारा	Y व्यक्ति द्वारा	Z व्यक्ति द्वारा	
१	४	६	५	१५
२	६	८	७	२१
३	१०	१२	११	३३
४	१५	१६	१४	४५

उपर्युक्त तालिका में अन्तिम स्तम्भ (column) सम्पूर्ण वाजार की कुल पूर्तियों (a[illegible]gates of supply) को वताता है। अतः प्रथम तथा अन्तिम स्तम्भ (columns) [illegible]

ner) से व्यवहार कर सकता है, परन्तु ये अनियमितताएँ या बल (kinks) या कोने (angularities) बाजार की पूर्ति तालिका में समतल (smooth) हो जाते हैं क्योंकि विक्रेताओं के अन्तर एक दूसरे को नष्ट कर देते हैं और इस प्रकार हमें एक समतल चित्र प्राप्त हो जाता है।

(४) व्यक्तिगत तथा बाजार पूर्ति तालिकाओं दोनों पर समय एक महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। जितना समय अधिक होगा उतना ही विक्रेता पूर्ति का, माँग में परिवर्तनों के अनुसार, समायोजन आसानी से कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त जितना अधिक समय विचाराधीन होगा उतना ही अधिक भविष्य में अनुमानित कीमतों का अधिक प्रभाव पूर्ति पर पड़ेगा।

(५) यद्यपि पूर्ति तालिका का बनाना कठिन है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि पूर्ति तालिका का कोई महत्व ही नहीं रह जाता है। मोटे रूप से कीमतों में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप बेची जाने वाली मात्राओं में परिवर्तनों का अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है।

पूर्ति रेखा
(SUPPLY CURVE)

ति रेखा का अर्थ (Meaning of Supply Curve)

एक पूर्ति तालिका को रेखा चित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और ऐसी रेखा को पूर्ति ा कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी कितनी मात्राएँ ची जायेंगी इस सम्बन्ध को पूर्ति रेखा बताती है। माँग रेखा की भाँति, पूर्ति रेखा भी दो प्रकार ी होती है—व्यक्तिगत पूर्ति रेखा (Individual supply curve), तथा बाजार की पूर्ति रेखा Market supply curve)। व्यक्तिगत पूर्ति तालिका के आधार पर खींची गयी पूर्ति रेखा यक्तिगत पूर्ति रेखा' कहलाती है, जबकि बाजार पूर्ति तालिका के आधार पर खींची गयी पूर्ति रेखा ाजार की पूर्ति रेखा' कही जाती है।

चित्र संख्या ४१ में पूर्ति रेखा (SS) को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि जब कीमत Q है तो पूर्ति की जाने वाली मात्रा OQ है। यदि कीमत बढ़कर P_1Q_1 हो जाती है तो पूर्ति की ाने वाली मात्रा भी बढ़ जाती है और वह OQ_1 हो जाती है। पूर्ति रेखा दायें को ऊपर ी ओर चढ़ती हुई होती है। इस प्रकार ी रेखा बताती है कि कीमत तथा पूर्ति में ीधा सम्बन्ध होता है अर्थात कीमत बढ़ने र पूर्ति बढ़ती है और कीमत घटने पर पूर्ति घटती है।

चित्र—४१

पूर्ति रेखा की मान्यताएँ (Assumptions behind the Supply Curve)

पूर्ति रेखा पूर्ति तालिका को व्यक्त करती है। इसलिए पूर्ति रेखा के पीछे वे ही मान्यताएँ होती हैं जो कि पूर्ति तालिका के सम्बन्ध में होती हैं। मुख्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं :

(१) पूर्ति रेखा एक स्थिर स्थिति (Stationary state) को बताती है तथा एक समयावधि के अन्तर्गत पूर्ति में परिवर्तनों
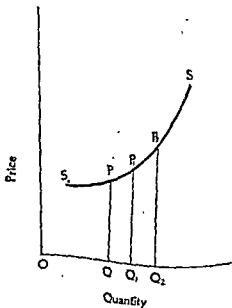
को नहीं बताती। पूर्ति रेखा कुछ कीमतों को दिया हुआ तथा स्थिर मानकर चलती है। ये कीमतें वास्तव में बाजार में नहीं पायी जातीं।

(२) यह मान लिया जाता है कि क्रेताओं तथा विक्रेताओं की रुचि तथा पसन्द में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(३) यह मान लिया जाता है कि क्रेताओं तथा विक्रेताओं की आयों (incomes) में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(४) उत्पत्ति के साधनों की कीमतें स्थिर मान ली जाती हैं।

(५) यह भी मान लिया जाता है कि उत्पादकों तथा विक्रेताओं के टेक्नीकल ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं होती है।

(६) कीमत तथा पूर्ति के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में परिवर्तनों में निरन्तरता (continuity in variation) या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तनों का होना मान लिया जाता है। परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसा पाया जाना जरूरी नहीं है। यह सम्भव है कि प्रायः कीमतों में तभी परिवर्तन हो जबकि कीमत में एक निश्चित मात्रा में परिवर्तन हो। दूसरे शब्दों में, व्यावहारिक जीवन में पूर्ति रेखा का समतल तथा अभंग (smooth and continuous) होना आवश्यक नहीं है, उसमें बहुत से बल (kinks) या कोने (angularities) पाये जा सकते हैं क्योंकि कीमत में प्रत्येक सूक्ष्म परिवर्तन के उत्तर (response) में पूर्ति में परिवर्तन नहीं होता; कीमत में एक निश्चित परिवर्तन होने पर ही पूर्ति में परिवर्तन होता है।

(७) एक अभंग (continuous) पूर्ति रेखा यह मान लेती है कि एक वस्तु की अत्यन्त छोटी-छोटी इकाइयाँ मौजूद होती हैं। परन्तु ऐसा मानना भी वास्तविक नहीं है। अविभाज्य वस्तुओं (indivisible commodities) के सम्बन्ध में पूर्ति रेखा अभंग तथा समतल नहीं हो सकती, परन्तु हम मान लेते हैं कि वह समतल और अभंग होती है।

पूर्ति का नियम
(LAW OF SUPPLY)

१. नियम का कथन (Statement of the Law)

पूर्ति का नियम कीमत तथा बेची जाने वाली मात्रा में सम्बन्ध को बताता है। पूर्ति के नियम का कथन इस प्रकार दिया जा सकता है। **अन्य बातों के यथावत रहते हुए, किसी सेवा या वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी पूर्ति में भी वृद्धि होती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी पूर्ति में भी कमी होती है। अतः पूर्ति का नियम कीमत तथा बेची जाने वाली वस्तु में सीधे सम्बन्ध** (direct relationship) **को बताता है।** स्पष्ट है कि पूर्ति का नियम, माँग के नियम के विपरीत है। दूसरे शब्दों में, माँग का नियम कीमत तथा माँग में उल्टे सम्बन्ध (inverse relationship) को बताता है जबकि पूर्ति का नियम कीमत तथा पूर्ति में सीधे सम्बन्ध को बताता है।

पूर्ति का नियम, माँग के नियम की भाँति, एक गुणात्मक कथन (qualitative statement) **है, न कि परिमाणात्मक कथन** (quantitative statement)। अर्थात् यह पूर्ति में केवल परिवर्तन की दिशा (direction of change) को बताता है न कि पूर्ति में परिवर्तन के परिमाण (quantity) को। यह नहीं बताता कि पूर्ति कितनी मात्रा में कम अथवा अधिक होगी। संक्षेप में, **पूर्ति का नियम बताता है कि पूर्ति और कीमत एक ही दिशा में परिवर्तित होते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि पूर्ति का परिवर्तन आनुपातिक हो।**[1]

1 Thus, in short, the law of supply says that supply varies directly with price, not necessarily proportionately.

२. नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the Law)

पूर्ति के नियम के कथन मे 'अन्य बातें यथावत रहें' (other things remaining the same) महत्त्वपूर्ण वाक्यांश है; यह नियम की मान्यताओं या सीमाओं को बताता है। पूर्ति के नियम के लागू होने के लिए निम्न मुख्य दशाएँ (conditions) या मान्यताएँ पूरी होनी चाहिए :

(i) क्रेताओं तथा विक्रेताओं की आयों मे कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(ii) क्रेताओं तथा विक्रेताओं की रुचि तथा पसन्द में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(iii) उत्पत्ति के साधनों की कीमतें स्थिर रहनी चाहिए।

(iv) उत्पादकों या विक्रेताओं के टेक्नीकल ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिए।

(v) कीमत में सूक्ष्म परिवर्तन के परिणामस्वरूप भी पूर्ति मे परिवर्तन होना चाहिए।

(vi) उत्पादक या विक्रेता यह मान कर चलते हैं कि वस्तु की कीमत मे एक परिवर्तन और अधिक परिवर्तन उत्पन्न नही करेगा।

३. पूर्ति के नियम की व्याख्या अर्थात पूर्ति के नियम के पीछे कारण (Explanation of the Law i.e., Reasons Underlying the Law of Supply)

पूर्ति का नियम कीमत तथा बेची जाने वाली मात्रा के बीच सीधे सम्बन्ध को बताता है। इसलिए जब पूर्ति नियम को पूर्ति रेखा द्वारा व्यक्त करते हैं तो पूर्ति रेखा दायें को ऊपर की ओर बढ़ती हुई होती है। ऐसा क्यों होता है? अर्थात कीमत बढ़ने पर पूर्ति क्यों बढ़ती है या कीमत घटने पर पूर्ति क्यों घटती है?

यह बात निम्न विवरण से पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है :

(१) कीमत मे वृद्धि होने से विक्रेताओं के लाभ में वृद्धि होती है और अधिक लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से वे अपनी वस्तु की पूर्ति बढ़ाते हैं। पूर्ति बढ़ाने की विधि मे समय के अनुसार परिवर्तन होता जाता है :

(i) यदि अति अल्पकालीन (very short period) समय है तो विक्रेता या उत्पादक स्टॉक में से अधिक माल निकाल कर बेचने लगते हैं, परन्तु स्टॉक मे रखे हुए माल से अधिक वे पूर्ति को नहीं बढ़ा पाते हैं। (ii) यदि अल्पकाल (short period) है तो विक्रेता या उत्पादक वर्तमान उत्पत्ति के साधनों की मदद से पूर्ति बढ़ाते हैं, परन्तु समय इतना नही होता कि नये साधनों की मदद से पूर्ति बढ़ा सकें। (iii) यदि दीर्घकालीन समय (long period) है तो वे वर्तमान उत्पत्ति के साधनों के अतिरिक्त नये उत्पत्ति के साधनों की सहायता से भी पूर्ति बढ़ा कर अधिक लाभ कमा सकते हैं।

(२) कीमत मे कमी होने से विक्रेताओं या उत्पादकों को कम लाभ प्राप्त होगा या नुकसान होने लगेगा। अतः कम लाभ होने के कारण नुकसान से बचने के लिए वे पूर्ति को कम करेंगे। समय के अनुसार वे पूर्ति को निम्न प्रकार से कम कर सकते हैं :

(i) यदि समय अति अल्पकालीन (very short period) है तो विक्रेता अपने स्टॉक से कम माल को बेचने को निकालेंगे तथा बाजार में से भी वस्तु की कुछ मात्रा खींच कर स्टॉकों में रखेंगे, यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली नहीं है। (ii) यदि अल्पकालीन समय (short period) है तो कुछ उत्पादक उत्पादन को कम कर देंगे। (iii) यदि दीर्घकालीन समय (long period) है तो कुछ उत्पादक उत्पादन बिलकुल बन्द कर देंगे और किसी दूसरे उद्योग में चले जायेंगे।

स्पष्ट है कि कीमत मे वृद्धि या कमी से लाभ मे वृद्धि या कमी होती है और इसलिए विक्रेता पूर्ति में वृद्धि या कमी करते हैं।

४. नियम के अपवाद (Exceptions of the Law)

पूर्ति के नियम के मुख्य अपवाद निम्न हैं :

(i) भविष्य में कीमत में अधिक कमी या वृद्धि की दशाओं में पूर्ति का नियम लागू नहीं होगा। माना किसी वस्तु की कीमत कम हो जाती है, परन्तु उत्पादकों का ध्यान है कि यह कमी निकट भविष्य में कीमत में और अधिक कमी की सूचक है तो वे कीमत कम होने पर भी वर्तमान में वस्तु की कम मात्रा नहीं बल्कि अधिक मात्रा बेचेंगे। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत में वर्तमान वृद्धि निकट भविष्य में और अधिक वृद्धि की सूचक है तो विक्रेता कीमत ऊँची होने पर भी वस्तु को अधिक मात्रा में नहीं बेचेंगे बल्कि उसको रोकेंगे और कम बेचेंगे ताकि भविष्य में अधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

(ii) कुछ दशाओं में यह नियम कृषि-उत्पादित वस्तुओं पर लागू नहीं होता है। यदि कृषि की वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं तो कभी-कभी उनकी वृद्धि नहीं की जा सकती है क्योंकि कृषि उत्पादन (विशेष तौर पर भारत जैसे अविकसित देश में) मुख्यतः प्रकृति पर निर्भर करता है। यदि वर्षा ठीक नहीं हुई, या टिड्डी दल फसलों को नुकसान कर गया तो कीमतों के ऊँचे होने पर भी पूर्ति नहीं बढ़ायी जा सकेगी।

(iii) कुछ कलात्मक वस्तुओं (artistic goods) के सम्बन्ध में भी पूर्ति का नियम लागू नहीं होता। उदाहरणार्थ, यदि किसी विख्यात चित्रकार के चित्रों की कीमत बहुत बढ़ या घट जाती है तो चित्रों की पूर्ति को बढ़ाना या घटाना कठिन है।

(iv) इसी प्रकार नीलाम की वस्तुओं की पूर्ति सीमित होती है, इसलिए उसकी कीमतों में वृद्धि या कमी उसकी पूर्ति को प्रभावित नहीं कर पाती है। इस प्रकार पूर्ति का नियम लागू नहीं होता है।

(v) अविकसित तथा पिछड़े देशों में श्रम की पूर्ति के सम्बन्ध में कभी-कभी यह नियम लागू नहीं होता। अविकसित देशों में श्रमिकों का जीवन स्तर बहुत नीचा होता है और उनकी आवश्यकताएँ बहुत कम होती हैं। यदि इन श्रमिकों की मजदूरियाँ बढ़ा दी जाती हैं तो वे कम घण्टे कार्य करके अपनी थोड़ी सी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं। इस प्रकार मजदूरी बढ़ जाने पर कार्य से गैरहाजिरी (absenteeism) भी बढ़ जाती है। दूसरे शब्दों में, श्रमिकों के कार्य की कीमत बढ़ने पर श्रमिक अपने श्रम को अधिक बेचने के स्थान पर कम बेचते हैं।

वास्तव में, पूर्ति के नियम के अपवाद बहुत कम हैं और पूर्ति का नियम प्रायः सब दशाओं में लागू होता है।

'पूर्ति में परिवर्तन' तथा 'पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन' में अन्तर

साधारण बोलचाल की भाषा में 'पूर्ति में परिवर्तन' (change in supply) तथा 'पूर्ति की गयी मात्रा में परिवर्तन' (change in quantity supplied) दोनों एक ही अर्थ में प्रयोग किये जाते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में इन दोनों वाक्यों में अन्तर है। 'पूर्ति में वृद्धि' (increase in supply) का अर्थ 'पूर्ति में विस्तार' (expansion of supply) से भिन्न होता है; तथा 'पूर्ति में कमी' (decrease in supply) और 'पूर्ति में संकुचन' (contraction of supply) में अन्तर किया जाता है।

पूर्ति में विस्तार तथा संकुचन (Expansion and Contraction of Supply)

पूर्ति को प्रभावित करने वाले बहुत से तत्वों में एक कीमत है। पूर्ति में विस्तार तथा संकुचन केवल कीमत में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होते हैं। वे एक ही पूर्ति रेखा पर ऊपर

(movement) को बताते हैं; पूर्ति रेखा पर नीचे की ओर चलन कीमत में कमी तथा पूर्ति में संकुचन को बताता है, और ऊपर की ओर चलन कीमत में वृद्धि तथा पूर्ति में विस्तार को बताता है।

चित्र—४२

चित्र संख्या ४२ में SS पूर्ति रेखा है। जब कीमत PQ है तो 'पूर्ति की गयी मात्रा' (quantity supplied) OQ है। यदि इस पूर्ति रेखा SS पर नीचे की ओर चलन (movement) होता है अर्थात P_1 बिन्दु पर पहुँचा जाता है तो कीमत में कमी होती है और वह $P_1 Q_1$ हो जाती है तथा पूर्ति में संकुचन होता है और वह OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार यदि इसी पूर्ति रेखा SS पर ऊपर की ओर चलन होता है, अर्थात P_2 बिन्दु पर पहुँचा जाता है तो कीमत मेंवृद्धि होकर वह $P_2 Q_2$ हो जाती है और पूर्ति में विस्तार होकर वह OQ_2 हो जाती है।
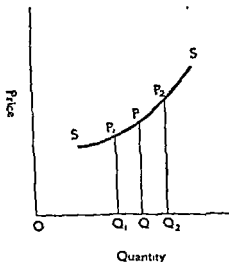
इस प्रकार जब कीमत में परिवर्तन होता है तो 'पूर्ति की गयी मात्रा'(quantity supplied) में भी परिवर्तन होता है। परन्तु पूर्ति रेखा वही बनी रहती है। इस बात को हम इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि कीमत में परिवर्तन पूर्ति की गयी मात्रा को परिवर्तित करता है परन्तु पूर्ति को नहीं। यहाँ पर उत्पादक या विक्रेता केवल एक निष्क्रिय पार्ट (passive role) अदा करता है; वह केवल कीमत द्वारा निर्देशित होता है; उसकी पूर्ति तालिका (supply schedule) स्थिर रहती है, र्थात पूर्ति रेखा वही रहती है और उसी पूर्ति रेखा पर वह ऊपर या नीचे, कीमत में परिवर्तन के नुसार, चलता रहता है।

ति में वृद्धि या कमी (Increase or Decrease in Supply)

वस्तु की कीमत को छोड़कर पूर्ति को निर्धारित करने वाले तत्वों (determinants of upply) में से किसी में भी परिवर्तन के कारण पूर्ति पर जो प्रभाव होता है, उसे 'पूर्ति में परिवर्तन' हते हैं। कीमत के अतिरिक्त, पूर्ति को निर्धारित करने वाले कई अन्य तत्व होते हैं, जैसे, उत्पादन विधि में परिवर्तन, नयी खोजें, उत्पादकों की आयों में परिवर्तन, उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में परिवर्तन, इत्यादि। कीमतों को छोड़कर पूर्ति के इन निर्धारक तत्वों में से किसी भी एक में परिवर्तन 'पूर्ति में परिवर्तन' उत्पन्न कर देता। पूर्ति में परिवर्तन अर्थात 'पूर्ति में वृद्धि' या 'पूर्ति में कमी' का अर्थ स्वयं पूर्ति रेखा के दायें को या बायें को हटने (shift) से है। दूसरे शब्दों में, 'पूर्ति में परिवर्तन' का अर्थ है कि विक्रेता या उत्पादक की पहली वाली पूर्ति तालिका (supply schedule) नहीं रहती बल्कि उसके स्थान पर नयी पूर्ति तालिका आ जाती है। यहाँ पर विक्रेता या उत्पादक एक सक्रिय पार्ट (active role) अदा करता है, वह वस्तु की कीमत द्वारा निर्देशित नहीं होता बल्कि वह पूर्ति की दशाओं को ध्यान में रखते हुए अपनी पूर्ति कम या अधिक, स्वयं निश्चित करता है।

चित्र—४३
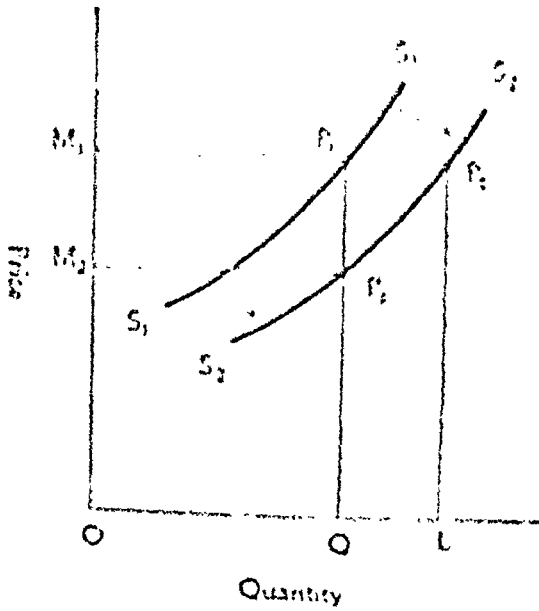
चित्र नं० ४३ में पूर्ति में वृद्धि को दिखाया गया है। S_1S_1 प्रारम्भिक पूर्ति रेखा है और OM_1 (या P_1Q) कीमत पर OQ (या M_1P_1) पूर्ति है। कीमत के अतिरिक्त पूर्ति के निर्धारक तत्त्वों में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप 'पूर्ति में वृद्धि' होती है अर्थात् पूर्ति रेखा दायें (नीचे) को खिसक जाती है और इस प्रकार नयी पूर्ति रेखा S_2S_2 है। पूर्ति में वृद्धि के दो अर्थ हैं—(i) वही मात्रा OQ कम कीमत OM_2 (या P_2Q) पर बेची जाती है; (ii) उसी कीमत OM_1 (या P_3L) पर अधिक मात्रा OL बेची जाती है। P_2 तथा P_3 दोनों बिन्दु नयी पूर्ति रेखा S_2S_2 पर हैं जो कि पूर्ति की वृद्धि को बताते हैं।

चित्र नं० ४४ में 'पूर्ति में कमी' को दिखाया गया है। प्रारम्भिक पूर्ति रेखा S_1S_1 है। कीमत को छोड़कर पूर्ति के निर्धारक तत्त्वों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'पूर्ति में कमी' होती है अर्थात् पूर्ति रेखा बायें को खिसक जाती है और अब नयी पूर्ति रेखा S_2S_2 है। परिवर्तन के पहले OM_1 (या P_1Q) कीमत पर पूर्ति OQ के बराबर थी परन्तु अब 'पूर्ति में कमी' हो गयी है। पूर्ति में कमी के दो अर्थ हैं—(i) उसी कीमत OM_1(या P_3L) पर अब वस्तु की कम मात्रा OL बेची जाती है या (ii) अब ऊँची कीमत OM_2 (या P_2Q) पर उतनी ही मात्रा OQ बेची जाती है।

चित्र—४४

संक्षेप में,
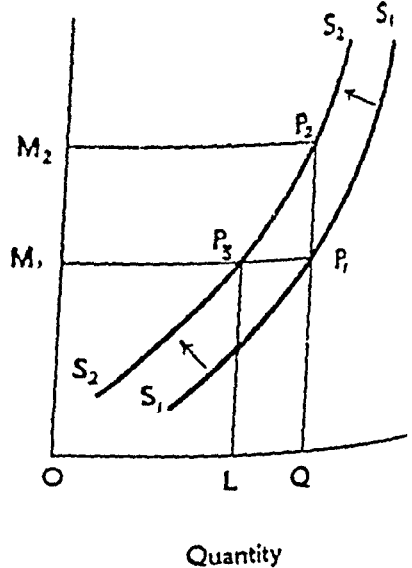
(१) पूर्ति के विस्तार (Expansion of Supply) का अर्थ है अधिक कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा; जबकि पूर्ति (Increase in supply) का अर्थ है—(अ) उसी कीमत पर अधिक मात्रा बेची जायेगी, कम कीमत पर उतनी ही मात्रा बेची जायेगी।

(२) 'पूर्ति में संकुचन' (Contraction of Supply) का अर्थ है कम कीमत पर वस्तु की ा मात्रा; जबकि 'पूर्ति में कमी' (Decrease in Supply) का अर्थ है—(अ) उसी कीमत पर ा मात्रा बेची जायेगी, या (ब) ऊँची कीमत पर उतनी ही मात्रा बेची जायेगी।

(३) 'पूर्ति में वृद्धि या कमी' का महत्त्व दीर्घकालीन समय में है क्योंकि दीर्घकालीन पूर्ति के र्धारक तत्त्व स्थिर नहीं रहते वल्कि बदलते रहते हैं। पूर्ति में विस्तार या संकुचन का महत्त्व अल्प-लीन समय में है क्योंकि अल्पकाल में कीमत के अतिरिक्त अन्य निर्धारक तत्त्व प्रायः लगभग र रहते हैं, उनमें बदलने की सम्भावना (समय कम होने के कारण) कम रहती है, केवल कीमत परिवर्तन होते रहते हैं।

पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्व या पूर्ति के निर्धारक तत्त्व
(FACTORS INFLUENCING SUPPLY OR DETERMINANTS OF SUPPLY)

वास्तविक जीवन मे पूर्ति बहुत से परिवर्तनशील तत्त्वों (dynamic factors) से प्रभावित ती है। पूर्ति को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं :

(१) वस्तु की कीमत (Prices of the commodity)—यदि अन्य बातें समान रहती हैं ो वस्तु की ऊँची कीमत पर अधिक पूर्ति होगी तथा नीची कीमत पर कम पूर्ति होगी।

(२) अन्य वस्तुओं की कीमतें (Prices of other commodities)—यदि अन्य स्तुओं की कीमत में वृद्धि हो जाती है जबकि वस्तु विशेष की कीमत उतनी ही रहती है तो सी स्थिति में उत्पादकों को वस्तु विशेष के उत्पादन मे कम आकर्षण रह जायेगा क्योंकि यह स्तु अन्य वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती रहती है। इस प्रकार वस्तु की पूर्ति कम हो जायेगी। इसके वपरीत यदि अन्य वस्तुओं की कीमतों में कमी हो जाती है तो उत्पादक इस वस्तु को बढ़ाने के लिए आकर्षित होंगे।

(३) उत्पादन के साधनों की कीमतें (Prices of the factors of production)—यदि उत्पादन के साधनों की कीमतें बढ़ जाती हैं तो वस्तु की उत्पादन लागत बढ़ेगी, परिणामस्वरूप उत्पादन कम किया जायेगा और पूर्ति में कमी होगी। इसके विपरीत यदि उत्पादन के साधनों की कीमतें कम होती हैं तो वस्तु की लागत कम होगी और उनकी पूर्ति बढ़ेगी।

(४) टेक्नीकल ज्ञान (Technological knowhow)—टेक्नीकल ज्ञान में विस्तार होने के परिणामस्वरूप किसी वस्तु के उत्पादन करने में कुशल रीति का प्रयोग होने लगता है, इससे लागत घटती है और वस्तु की पूर्ति बढ़ती है।

(५) उत्पादकों की रुचि (Tastes of producers)—यदि उत्पादक एक वस्तु की अपेक्षा दूसरी वस्तु का उत्पादन करना अधिक पसन्द करते हैं (यद्यपि दोनों मे समान लाभ प्राप्त होता है), तो इससे दूसरी वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी और पहली वस्तु की पूर्ति कम होगी।

(६) प्राकृतिक तत्त्व (Natural factors)—कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओं की पूर्ति पर एक सीमा तक प्राकृतिक तत्त्वों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। पर्याप्त वर्षा, सिंचाई की उचित सुविधाएँ, अच्छी खाद, अच्छे बीज, इत्यादि कृषि वस्तुओं की पूर्ति को बढ़ाते हैं। इसके विपरीत टिड्डी दल, अति वर्षा या सूखा, इत्यादि उनकी पूर्ति को कम करते हैं।

(७) परिवहन व संवादवहन के साधन (Means of transport and communication)—परिवहन तथा संवादवहन की अच्छी और विकसित सुविधाओं के मौजूद होने से विदेशों से किसी भी वस्तु के आयातों मे अधिक सुविधा के परिणामस्वरूप उसकी पूर्ति बढ़ेगी।

यदि इन साधनों का प्रयोग किसी वस्तु के अधिक निर्यात के लिए किया जाता है तो उसकी पूर्ति देश में कम रह जायेगी।

(८) युद्ध तथा राजनीतिक बाधाएँ (War and Political disturbances)—युद्ध छिड़ जाने से या राजनैतिक उथल-पुथल होने से कुछ वस्तुओं की पूर्ति की कमी देश विशेष में हो जाती है।

(६) कर नीति (Taxation policy)—सरकार की कर नीति भी वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करती है। यदि सरकार किसी वस्तु पर अधिक कर लगाती है तो वह वस्तु महँगी पड़ेगी और उसकी पूर्ति कम होगी।

(१०) उत्पादकों में परस्पर मेल (Agreement among the producers)—किसी वस्तु के बड़े उत्पादक आपस में मिलकर अधिक लाभ के कमाने की दृष्टि से उस वस्तु की कुल पूर्ति कम कर सकते हैं।

पूर्ति की लोच
(ELASTICITY OF SUPPLY)

माँग की लोच की भांति पूर्ति की लोच भी होती है। पूर्ति का नियम, माँग के नियम की भाँति, केवल गुणात्मक कथन है कर्थात पूर्ति का नियम मूल्य में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप पूर्ति में केवल परिवर्तन की दिशा (direction) को बताता है। पूर्ति का नियम यह नहीं बताता कि कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप पूर्ति में कितना परिवर्तन होता है। इस बात को जानने के लिए अर्थशास्त्रियों ने 'पूर्ति की लोच' का टेक्नीकल विचार प्रस्तुत किया है। यह विचार बताता है कि कीमत में कमी या वृद्धि से पूर्ति की मात्रा में निश्चित रूप से कितनी कमी या वृद्धि होती है।

पूर्ति की लोच की परिभाषा (Meaning of the Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच कीमत में थोड़े से परिवर्तन के उत्तर (response) **में, पूर्ति की मात्रा में होने वाले परिवर्तन की माप है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि पूर्ति की लोच कीमत में परिवर्तन के उत्तर में पूर्ति में होने वाले परिवर्तन की गति** (rate or ease) **को बताती है।**

पूर्ति की लोच की **गणितात्मक परिभाषा** (Numerical Definition) इस प्रकार दी जाती है। **पूर्ति की लोच कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप पूर्ति की मात्रा** में 'आनुपातिक **परिवर्तन'** (proportional change) **को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन** से भाग देने पर प्राप्त **होती है।** इसको सूत्र (formula) द्वारा निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है :

$$e_s = \frac{\text{पूर्ति में अनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

जबकि
e_s पूर्ति की लोच का चिन्ह है :

पूर्ति की लोच के सम्बन्ध में **दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए**—(i) इसके अन्तर्गत हम पूर्ति के उस परिवर्तन पर विचार करते हैं जो कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता है तथा (ii) जो अल्प समय के लिए हो।[2]

---

[2] कीमतों में अधिक उतार-चढ़ाव के परिणामस्वरूप जो पूर्ति में परिवर्तन होता है उसमें ... मटोरियों का प्रभाव अधिक रहता है; अतः पूर्ति के ऐसे परिवर्तनों को पूर्ति की लोच ... मानना चाहिए। इसी प्रकार यदि आज की पूर्ति की तुलना आज से १०-१५ वर्ष पूर्व ... पूर्ति से की जाय तो आज की पूर्ति में जो परिवर्तन दिखायी पड़ेगा, वह केवल मूल्य ... परिवर्तन का परिणाम न होकर पूर्ति को प्रभावित करने वाली अन्य बातों का परिणाम होगा।

पूर्ति की लोच की श्रेणियाँ या मात्राएँ (Degrees of Elasticity of Supply)

कीमत में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की पूर्ति पर एकसा प्रभाव नहीं होता, अर्थात् कुछ वस्तुओं की लोच कम होती है तथा कुछ वस्तुओं की अधिक। पूर्ति की लोच की निम्न पाँच श्रेणियाँ होती हैं :

(१) पूर्णतया लोचदार पूर्ति (Perfectly elastic supply)—जब मूल्य में परिवर्तन नहीं होने पर भी अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन (infinitesimal change) होने पर पूर्ति में बहुत अधिक परिवर्तन (कमी या वृद्धि) हो जाती है तब वस्तु की पूर्ति पूर्णतया लोचदार कही जाती है। ऐसी लोच को 'अपरिमित लोच' (infinite elasticity) भी कहते हैं तथा इसको इस प्रकार व्यक्त करते हैं : $e_s = \infty$ चित्र नं० ४७ से स्पष्ट है कि पूर्णतया लोचदार पूर्ति की दशा में पूर्ति रेखा आधार रेखा (X-axis) के समान्तर है। इस प्रकार की पूर्ति की लोच केवल काल्पनिक होती है, व्यावहारिक जीवन में इसका उदाहरण नहीं मिलता है।
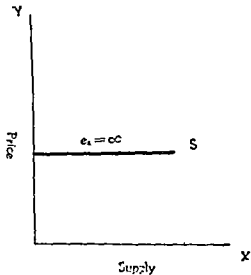
चित्र—४५

(२) अत्यधिक लोचदार पूर्ति (Highly elastic supply)—जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (proportional change), कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार पूर्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी वस्तु की कीमत में २० प्रतिशत कमी होती है परन्तु उसकी पूर्ति में ४० प्रतिशत की कमी हो जाती है तो ऐसी वस्तु की पूर्ति अधिक लोचदार पूर्ति कही जायेगी। ऐसी वस्तु की पूर्ति की लोच को 'इकाई से अधिक लोच' भी कहते हैं और गणित की भाषा में $e_s > 1$ द्वारा व्यक्त करते हैं। चित्र नं० ४६ द्वारा अधिक लोचदार पूर्ति को बताया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (PK) कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (P_1K) से अधिक है।
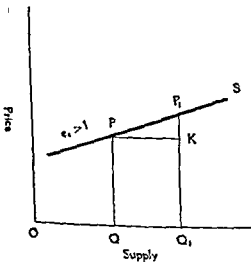
Price
$e_s > 1$ P P_1 S
K
O Q Q_1
Supply

चित्र—४६

(३) लोचदार पूर्ति या औसत दर्जे की लोचदार पूर्ति (Elastic supply)—जब किसी वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन ठीक उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में परिवर्तन हुआ है, तब ऐसी वस्तु की पूर्ति को लोचदार पूर्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु

(५) पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति (Perfectly inelastic supply)—जब किसी वस्तु के मूल्य में पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी उसकी पूर्ति में बिलकुल परिवर्तन न हो तो ऐसी दशा को पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति कहते हैं। चूंकि पूर्ति मे बिलकुल परिवर्तन नहीं होता इसलिए ऐसी स्थिति को गणित की भाषा में $e_s = O$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। चित्र नं० ४६ में पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति को दिखाया गया है। OP कीमत पर पूर्ति PQ है, कीमत बढ़ कर OP_1 हो जाती है परन्तु पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

चित्र—४६
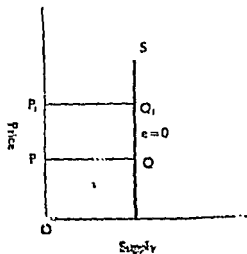
पूर्ति की लोच को मापने की रीतियाँ (Methods for Measuring of Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच को मापने की दो मुख्य रीतियाँ हैं: (१) आनुपातिक रीति (Proportional Method), तथा (२) बिन्दु रीति (Point Method)

(१) आनुपातिक रीति या प्रतिशत रीति (Proportional method or Percentage method)—इस रीति के अन्तर्गत पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) को कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) से भाग दिया जाता है। पूर्ति की लोच निम्न सूत्र द्वारा निकाली जाती है:

$$e_s = \frac{\text{पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{पूर्ति में परिवर्तन}}{\text{पूर्ति की पूर्व (original) मात्रा}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{पूर्व कीमत (original price)}}}$$

$$= \frac{\dfrac{\Delta q}{q}}{\dfrac{\Delta p}{p}}$$

जबकि, Δ (डेल्टा)=सूक्ष्म परिवर्तन का चिन्ह
Δq=पूर्ति में परिवर्तन
q=पूर्ति की पूर्व मात्रा
Δp=कीमत में परिवर्तन
p=पूर्व कीमत

$$= \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}$$

$$= \frac{\Delta q}{\Delta p} \cdot \frac{p}{q}$$

इस सूत्र से बिल्कुल ठीक व सही उत्तर निकालने के लिए कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसमें संशोधन किया है। इसका संशोधित रूप निम्न प्रकार से दिया जाता है :

$$e_s = \frac{\dfrac{\text{पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन}}{\dfrac{(\text{पूर्व मात्रा} + \text{नयी मात्रा})}{2}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\dfrac{(\text{पूर्व कीमत} + \text{नयी कीमत})}{2}}}$$

$$= \frac{\dfrac{q \sim q_1}{\dfrac{q+q_1}{2}}}{\dfrac{p \sim p_1}{\dfrac{p+p_1}{2}}}$$

जबकि,
q = पूर्ति की पूर्व मात्रा
q_1 = पूर्ति की नयी मात्रा
p = पूर्व की कीमत
p_1 = नयी कीमत

$$= \frac{\dfrac{q \sim q_1}{q+q_1}}{\dfrac{p+p_1}{p+p_1}}$$

(२) बिन्दु-रीति या रेखागणित रीति (Point method or geometrical method)—इस रीति द्वारा हम पूर्ति रेखा के किसी बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम कर सकते हैं। चित्र नं० ५० में SS पूर्ति रेखा के P बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम करना है। पूर्ति रेखा SS को नीचे की ओर बढ़ाया जाता है ताकि वह X-axis को T बिन्दु पर मिलती है और बिन्दु P से X-axis पर लम्ब (perpendicular) डाला जाता है ताकि वह X-axis को N बिन्दु पर मिलता है। पूर्ति की लोच निम्न सूत्र द्वारा दी जाती है :

$$e_s = \frac{TN}{ON}$$

चूँकि यहाँ पर TN < ON, इसलिए $e_s < 1$; चित्र नं० ५१ में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच $e_s = \frac{TN}{ON}$; चूँकि यहाँ पर TN > ON, इसलिए $e_s > 1$; चित्र नं० ५२ में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच $e_s = \frac{TN}{ON}$; यहाँ पर O तथा T बिन्दु एक ही हैं इसलिए TN = ON, अतः $e_s = 1$

चित्र नं० ५३ में यह दिखाया गया है कि पूर्ति रेखा सीधी रेखा (straight line) न होकर वक्र रेखा (curve) है, इस supply curve के P बिन्दु पर पूर्ति की लोच को मालूम करता है। P बिन्दु से होती हुई एक स्पर्श रेखा (Tangent) खींची जाती है ताकि वह X-axis को T बिन्दु पर मिले, अब— $e_s = \frac{TN}{ON}$; चूँकि यहाँ पर TN < ON, इसलिए $e_s < 1$
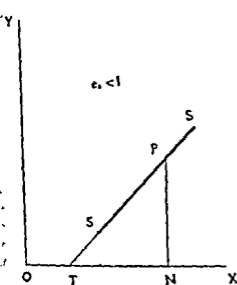
चित्र—५०
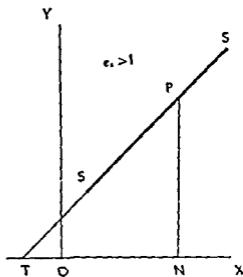
चित्र—५१
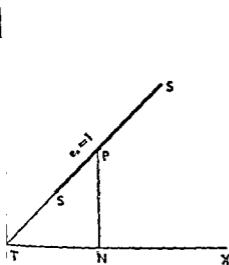
चित्र—५२
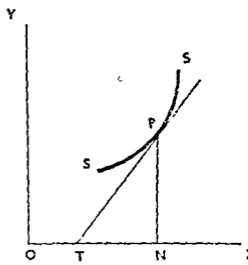
चित्र—५३

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(FACTORS INFLUENCING ELASTICITY OF SUPPLY)

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं :

(१) वस्तु की प्रकृति (Nature of the commodity)—यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने ली (perishable) है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति बेलोच होती है क्योंकि कीमत बढ़ने या घटने : इनकी पूर्ति को बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता है। इसके विपरीत यदि वस्तु टिकाऊ urable) है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होगी क्योंकि कीमत में परिवर्तन होने पर इनकी त्रा को परिवर्तित किया जा सकता है।

१८

तटस्थता-वक्र विश्लेषण[1]

[INDIFFERENCE CURVE ANALYSIS]

उपयोगिता-विश्लेषण के दोष
(DEFECTS OF UTILITY ANALYSIS)

मार्शल का माँग सिद्धान्त 'उपयोगिता-दृष्टिकोण' (utility approach) पर आधारि[illegible] अर्थात् उनके अनुसार, उपयोगिता को मापा जा सकता है। मार्शल ने माँग सिद्धान्त की व्या[illegible] उपयोगिता, सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन (quantitati[illegible] measurement) के आधार पर की है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उपयो[illegible] को मापा नहीं जा सकता। मार्शल की उपयोगिता-विश्लेषण के निम्न दोष बताये गये हैं :

---

1 इसके अन्य नाम 'अधिमान दृष्टिकोण' (Preference Approach) या 'प्रतिस्थापन विश्ले[illegible] (Substitution Analysis) भी है।

(१) किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता एक व्यक्तिगत (subjective) धारणा है जो किसी व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क में निवास करती है। अतः एक व्यक्तिगत भावना (subjective feeling) को किसी वस्तुगत पैमाने (objective standard) से मापने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

(२) उपयोगिता केवल भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ ही भिन्न-भिन्न नहीं होती, बल्कि यदि एक ही व्यक्ति लिया जाये तो भी भिन्न-भिन्न समयों पर एक ही वस्तु के सम्बन्ध में उस व्यक्ति की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया (reactions) होगी। अतः उपयोगिता हर समय बदलती रहती है और ऐसी वस्तु को, जो कि परिवर्तनशील है या हर समय बदलती रहती है, मापा नहीं जा सकता है।

(३) उपयोगिता को मापने के लिए कोई निश्चित तथा स्थिर (constant) पैमाना नहीं है। यद्यपि मार्शल ने उपयोगिता को मापने के लिए द्रव्य रूपी पैमाने का प्रयोग किया, परन्तु द्रव्य रूपी पैमाना निश्चित तथा स्थिर नहीं है, यह बदलता रहता है। मार्शल ने द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मान लिया जो कि एक गलत कदम है। जैसा कि हिक्स ने बताया है कि इस मान्यता के परिणामस्वरूप मार्शल 'आय-प्रभाव' (income-effect) पर ध्यान न दे सके।

(४) मार्शल यह भी मानकर चले कि एक वस्तु की माँग अन्य वस्तुओं की माँग से बिल्कुल स्वतन्त्र (independent) होती है, वह अन्य वस्तुओं की माँग से प्रभावित नहीं होती या उन पर निर्भर नहीं करती है। इस मान्यता के परिणामस्वरूप मार्शल के सिद्धान्त का प्रयोग एक-वस्तु-मॉडल (single-commodity model) तक ही सीमित रह जाता है; उसको सम्बन्धित वस्तुओं (related goods) अर्थात स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं (substitutes and complementary goods) के सम्बन्ध में प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है।

स्पष्ट है कि मार्शल की 'उपयोगिता-विश्लेषण' (utility analysis) अवास्तविक तथा अनुचित मान्यताओं पर आधारित है; परिणामस्वरूप इसका महत्त्व और प्रयोग सीमित रह जाता है।

प्राथमिकता दृष्टिकोण
(PREFERENCE APPROACH)

मार्शल की 'उपयोगिता-विश्लेषण' के अन्तर्गत उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन सम्बन्धित कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से आधुनिक अर्थशास्त्रियों, ऐलन तथा हिक्स (Allen and Hicks), ने 'तटस्थता-विश्लेषण' [illegible]
दृष्टिकोण' (preference approach [illegible]
कहते हैं। 'प्राथमिकता दृष्टिकोण' उप [illegible]
तो केवल उपयोगिता के परिमाणात्मक [illegible]
विश्लेषण' का दृष्टिकोण संख्यात्मक (cardinal approach) है, जबकि 'प्राथमिकता विश्लेषण' (preference approach) का दृष्टिकोण क्रमसूचक (ordinal approach) है। इसे व्याख्या के अन्तर्गत यह जानने की आवश्यकता नहीं होती कि वस्तु विशेष से उपभोक्ता को कितनी उपयोगिता मिलती है या इसकी उपयोगिता दूसरी वस्तु की उपयोगिता से कितनी अधिक है। इसके अन्तर्गत तो उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदते समय केवल अपने 'प्राथमिकता-क्रम' (scale of preference) को ध्यान में रखता है अर्थात वह वस्तुओं को उनके महत्त्व के अनुसार क्रम में रखता है। प्रत्येक क्रम (scale) संतुष्टि के एक निश्चित स्तर को बताता है और प्रत्येक क्रम को प्रथम, द्वितीय, तृतीय, इत्यादि क्रमसूचक या क्रमवाचक संख्याएँ (ordinal numbers) प्रदान

जाती हैं।² चूँकि इन क्रमवाचक संख्याओं को जोड़ा नहीं जा सकता, इसलिए 'प्राथमिकता-दृष्टिकोण' को 'क्रमवाचक उपयोगिता का सिद्धान्त' (Theory of ordinal Utility) भी कहा जाता है। इस 'प्राथमिकता-क्रम' की सहायता से वह, उपयोगिता के बिना संख्यात्मक मापन के, यह बता सकता है कि वस्तुओं का कोई एक संयोग वस्तुओं के किसी दूसरे संयोग से उसे अधिक पसन्द है, कम पसन्द है या बराबर पसन्द है।

तटस्थता-विश्लेषण का संक्षिप्त ऐतिहासिक विकास
(BRIEF HISTORICAL EVOLUTION OF THE INDIFFERENCE ANALYSIS)

सर्वप्रथम एजवर्थ (Edgeworth) ने सन् १८८१ में प्रतिस्पर्द्धात्मक तथा पूरक वस्तुओं (competitive and complementary goods) के अध्ययन के लिए तटस्थता वक्र-रेखाओं का प्रयोग किया। इसके पश्चात सन १९०६ में इटेलियन अर्थशास्त्री पेरिटो (Pareto) ने एजवर्थ की रीति को अपनाया।

वास्तव में, पेरिटो प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने स्पष्ट रूप से उपयोगिता की अमापनीयता (immeasurability) पर बल दिया। पेरिटो ने इस बात पर जोर दिया कि उपयोगिता की तुलना की जा सकती है परन्तु उसे निरपेक्ष रूप से (in the absolute sense) मापा नहीं जा सकता। इस तथ्य के आधार पर उसने बताया कि 'उपयोगिता के विचार' के स्थान पर 'प्राथमिकता-क्रम' (scale of preference) के विचार का प्रयोग करना वाँछनीय होगा।

पेरिटो का मुख्य दोष यह था कि वे अपने विश्लेषण में पूर्ण रूप से अनुरूप (consistent) नहीं थे, यद्यपि उन्होंने अपने नये सिद्धान्त की स्थापना की परन्तु वे उपयोगिता से सम्बन्धित विचारों का प्रयोग करते रहे। अत: बाद में अन्य अर्थशास्त्रियों ने तटस्थता-विश्लेषण में सुधार किये। सन् १९१३ में जोनसन (Johnson) तथा सन् १९१५ में स्लट्स्की (Slutsky) ने कुछ सुधार किये। सन् १९३४ में प्रो० हिक्स तथा प्रो० ऐलन ने 'मूल्य सिद्धान्त का पुनर्निर्माण' (A Reconstruction of the Theory of Value) के नाम से एक लेख प्रकाशित किया जिसमें तटस्थता-विश्लेषण का अधिक वैज्ञानिक रूप से विकास किया। तत्पश्चात् प्रो० हिक्स ने अपनी पुस्तक *Value and Capital* में तटस्थता विश्लेषण को पूर्ण रूप से विकसित किया।

तटस्थता वक्र की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF INDIFFERENCE CURVE)

तटस्थता वक्र के अर्थ को जानने से पूर्व तटस्थता तालिका (indifference schedule) को समझना आवश्यक है। **प्रो० मेयर्स** (Meyers)[3] के **अनुसार, तटस्थता तालिका वह तालिका है जो कि दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे कि किसी व्यक्ति को समान सन्तोष प्राप्त होता है। यदि इस तटस्थता तालिका को एक रेखा के रूप में दिखाया जाये तो हमें तटस्थता वक्र-रेखा प्राप्त हो जाती है। जे० के० ईस्थम** (J. K. Eastham) के शब्दों में, यह मात्राओं के उन संयोगों को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं का मार्ग (locus) है जिनके बीच व्यक्ति तटस्थ (indifferent) रहता है। अत: इसे तटस्थता वक्र रेखा कहते हैं। चूँकि तटस्थता-रेखा पर प्रत्येक बिन्दु समान सन्तुष्टि को बताता है, इसलिए इसे **'समान सन्तुष्टि रेखा'** (Iso-utility curve) कहते हैं।

---

2 इसके अधिक विस्तृत विवरण के लिए देखिए अध्याय ११ पृष्ठ ९८-१००।

3 "An Indifference schedule may be defined as a schedule of various combinations of goods that will be equally satisfactory to the individual concerned. If we depict this in the form of a curve we get an indifference curve." —*A. L. M*

तटस्थता वक्र रेखा को एक उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। निम्न तालिका सन्तरों तथा अमरूदों के विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि मिलती है और जिनके चुनाव के प्रति वह तटस्थ रहता है :

संयोग संख्या	सन्तरों (X) की संख्या		अमरूदों (Y) की संख्या
१	२	+	६
२	३	+	४
३	४	+	३

उपर्युक्त तालिका को चित्र न० ५४ द्वारा दिखा कर तटस्थता वक्र रेखा प्राप्त की जाती है। चित्र में X-axis पर सन्तरे तथा Y-axis पर अमरूद दर्शाये गये हैं। I तटस्थता वक्र रेखा है जिस पर कि सन्तरों तथा अमरूदों के विभिन्न संयोगों से समान सन्तुष्टि मिलती है।

तटस्थता मान चित्र (Indifference Map)

उपर्युक्त तालिका में सन्तरों (X) तथा अमरूदों (Y) के समान सन्तुष्टि या उपयोगिता वाले तमाम संयोगों को एक ही तटस्थता वक्र रेखा द्वारा दिखाया गया है क्योंकि इन संयोगों के लिए अलग-अलग वक्र रेखाएँ नहीं बनाई जा सकतीं। परन्तु यदि सन्तरों (X) तथा अमरूदों (Y) के ऐसे संयोग बना लिये जायें जिनसे उपभोक्ता को भिन्न-भिन्न सन्तोष या उपयोगिता प्राप्त होती है, तब ये संयोग केवल एक वक्र रेखा द्वारा नहीं दिखाये जा सकते बल्कि इन संयोगों को अलग-अलग वक्र रेखा द्वारा दिखाया जा सकता है। इस प्रकार से जब बहुत से तटस्थता वक्रों को, जो कि उपभोक्ता विशेष के लिए सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों को बताते हैं, एक ही चित्र में दिखाया जाता है तब इस चित्र को 'तटस्थता मानचित्र' (indifference map) कहते हैं। एक तटस्थता वक्र रेखा सन्तुष्टि के एक निश्चित स्तर को बताती है, जैसे-जैसे वक्र रेखाएँ दायें को ऊपर की ओर खिसकती जाती हैं वैसे-वैसे सन्तुष्टि का स्तर बढ़ता जाता है और वे अधिक सन्तुष्टि को

Y, Guava, 6, 5, 4, 3, 2, 1, O, 1, 2, 3, 4, 5, X, Oranges, I
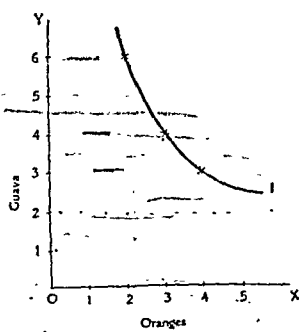
चित्र—५४
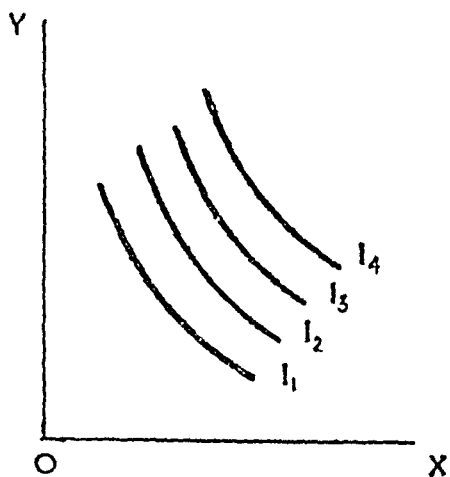
चित्र—५५

हैं। इसके विपरीत जैसे-जैसे ये रेखायें बायें को नीचे की ओर खिसकती जाती हैं वैसे-वैसे कम सन्तुष्टि को बताती हैं। चित्र नं० ५५ 'तटस्थता मान चित्र' को बताता है।

'तटस्थता मानचित्र' की तुलना 'भौगोलिक परिधिरेखा मानचित्र' (geographical contour map)से की जा सकती है। एक परिधिरेखा(contour) समान ऊँचाई की जगहों को दिखाती है; इसी प्रकार एक तटस्थता वक्र रेखा समान सन्तुष्टि प्रदान करने वाले दो वस्तुओं के संयोग को बताती है। विभिन्न परिधि-रेखाएँ विभिन्न ऊँचाइयों को बताती हैं; इसी प्रकार विभिन्न तटस्थता वक्र रेखाएँ सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों (levels) को बताती हैं।

तटस्थता वक्र रेखाओं की मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS OF INDEFFERENCE CURVES)

तटस्थता वक्र रेखाओं की मुख्य मान्यताएँ निम्न हैं :

(i) एक उपभोक्ता किसी वस्तु की कम मात्रा की तुलना में अधिक मात्रा को पसन्द करता है, यदि किसी अन्य वस्तु के उपभोग में कोई कमी नहीं होती।[4] दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु के उपभोग या उसकी मात्रा में वृद्धि से उपभोक्ता के सन्तुष्टि के स्तर में वृद्धि होती है; परन्तु उपभोक्ता यह नहीं बता सकता है कि कितनी वृद्धि होती है, अर्थात उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं होती।

(ii) एक व्यक्ति यह बता सकता है कि वस्तुओं के एक संयोग (combination) की उपयोगिता दूसरे संयोग की अपेक्षा अधिक है, कम है या बराबर है। अतः वह विभिन्न संयोगों को प्राथमिकता के अनुसार एक क्रम में रख सकता है।

(iii) व्यक्ति विशेष यह जानता है कि वस्तुओं के एक संयोग से दूसरे संयोग को प्राप्त करने में 'उपयोगिता में परिवर्तन' अपेक्षाकृत इस दूसरे संयोग से तोसरे संयोग पर जाने में, अधिक है, कम है या बराबर हैं।

(iv) उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण (rational) होता है। दूसरे शब्दों में, अपनी दी हुई आय से एक उपभोक्ता अपनी कुल सन्तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है।[5]

(v) वस्तुएँ एक रूप तथा विभाज्यनीय (divisible) होती हैं।

तटस्थता वक्र रेखाओं की विशेषताएँ अथवा गुण
(CHARACTERISTICS OR PROPERTIES OF INDEFFERENCE CURVES)

तटस्थता वक्र रेखाओं की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

---

4 "The consumer prefers more of any commodity to less of it, given that the consumption of no other commodity decreases."

5 The consumer attempts to maximise the total satisfaction obtainable from his given money income.

(१) तटस्थता रेखा यह नहीं बताती कि उपभोक्ता को दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों से कितनी मात्रा में उपयोगिता मिलती है; इससे केवल यह पता चलता है कि एक रेखा पर विभिन्न संयोगों से प्राप्त उपयोगिता समान है।

चित्र—५६

(२) एक उपभोक्ता के लिए दो वस्तुओं से सम्बन्धित कई तटस्थता रेखाएँ हो सकती हैं और ऊँची तटस्थता रेखा नीची रेखा की अपेक्षा में अधिक सन्तुष्टि को बताती है। एक तटस्थता रेखा के किसी बिन्दु से ऊपर की ओर या दायें को चला जाये तो हम ऊँची रेखा पर पहुँच जाते हैं जैसा कि चित्र न० ५६ से स्पष्ट है। परन्तु एक नीची रेखा से ऊँची रेखा पर पहुँच जाने पर हम यह नहीं कह सकते कि उपयोगिता में कितनी मात्रा से वृद्धि हो गयी, केवल इतना कहा जा सकता है कि पहले से उपयोगिता (या सन्तुष्टि) अधिक मिलने लग गयी।
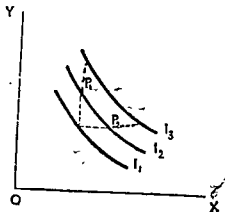
(३) प्रो० बोल्डिंग (Boulding) ने बताया है कि 'वस्तुओं की मात्रा' (quantities of commodities), जिनके विभिन्न संयोगों को दर्शाने के लिए तटस्थता रेखाएँ खींची जाती हैं, प्रायः तीन महत्त्वपूर्ण अर्थ लिये जाते हैं। तटस्थता रेखा किसी समय विशेष में वस्तुओं की 'क्रय की गयी मात्राओं' (quantities purchased) या 'उपभोग की गयी मात्राओं' (quantities consumed) या 'स्टॉक में रखी गयी मात्राओं' (stocks of commodities held) के सम्बन्ध में खींची जा सकती हैं। प्रत्येक दशा में रेखा उपभोक्ता के पसन्द के स्वभाव (structure of consumer preferences) को बतायेगी।

(४) तटस्थता रेखाएँ कभी एक दूसरे को नहीं काटती हैं। एक रेखा सन्तुष्टि के किसी एक स्तर को बताती है तथा विभिन्न रेखाएँ सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों को बताती हैं। यदि दो रेखाएँ एक दूसरे को किसी बिन्दु पर काटती हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि उपभोक्ता को E बिन्दु पर समान सन्तुष्टि मिलती है चाहे वह I_1 पर हो या I_2 पर; परन्तु यह असम्भव है क्योंकि दो रेखाएँ सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों को बताती हैं।
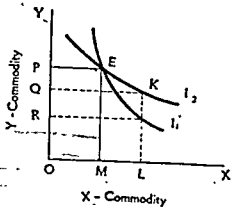
चित्र—५७

[इसी बात को गणितात्मक रूप में निम्न प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है :

I_1 तटस्थता रेखा के लिए :

$$OPy+OMx=ORy+OLx \cdots\cdots(i)$$

I_2 तटस्थता रेखा के लिए :

$$OPy+OMx=OQy+OLx \cdots\cdots$$

(i) तथा (ii) से हमें प्राप्त होता है :

$$ORy + OLx = OQy + OLx$$

अर्थात $ORy = OQy$

परन्तु यह असम्भव है क्योंकि चित्र से स्पष्ट है कि OQ मात्रा अधिक है OR से। यह निष्कर्ष निकलता है कि दो तटस्थता रेखाएँ एक दूसरे को नहीं काट सकतीं।]

(५) यह आवश्यक नहीं कि तटस्थता वक्र रेखाएँ अनिवार्य रूप से एक दूसरे के समान(parallel) हों। समानान्तर तटस्थता रेखाओं का अर्थ है कि सभी तटस्थता तालिकाओं ... वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन दर (rate of substitution) समान है, परन्तु ऐसा होना अनि... नहीं।

(६) तटस्थता वक्र रेखा के आकार (shape) से सम्बन्धित विशेषताएँ—(i) एक तट... **रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है अर्थात उसका ढाल (slope) ऋणात्मक (negati... होता है।** इसका सरल तथा स्पष्ट कारण यह है कि यदि उपभोक्ता एक वस्तु (X) की इका... बढ़ाता जाता है तो उसे दूसरी वस्तु (Y) की इकाइयाँ कम करनी पड़ेगी, तभी उसे वि... संयोगों से समान सन्तोष या उपयोगिता मिलेगी। यह तभी सम्भव है जबकि रेखा का ... ऋणात्मक हो।[6]

---

6 इस बात को दूसरी तरह से भी सिद्ध किया जा सकता है। माना कि तटस्थता रेखा बायें... दायें को नीचे की ओर नहीं गिरती, तो तीन सम्भावनाएँ हो सकती हैं :
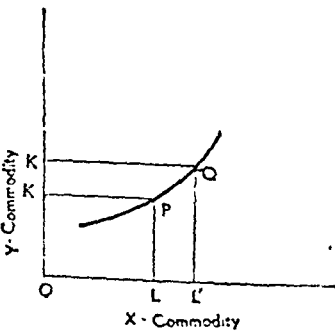
चित्र—५८

(अ) रेखा बायें से दायें ऊपर ... ओर चढ़ती हुई हो सकती है जैसा कि ... नं० ५८ में दिखाया गया है, परन्तु यह सम्भव ... है। चित्र से स्पष्ट है कि Q बिन्दु पर उपभोक्ता ... P की अपेक्षा, अधिक सन्तोष मिलता है क्योंकि ... पर उसके पास X तथा Y दोनों वस्तुओं की मा... P की अपेक्षा अधिक हैं। अतः P तथा Q दोनों बि... एक ही तटस्थता रेखा पर नहीं हो सकते क्योंकि ... होने के लिए दोनों बिन्दुओं पर समान सन्तोष मि... चाहिए था; वे दोनों अलग-अलग रेखाओं पर ... अतः एक तटस्थता रेखा ऊपर की ओर चढ़ती ... हो सकती।

(ब) तटस्थता रेखा, आधार-रेखा (X-axis) के समानान्तर हो सकती है जैसा चित्र नं० ५९ में दिखाया गया है, परन्तु यह भी सम्भव नहीं है। Q बिन्दु पर उपभोक्ता को P की अपेक्षा, अधिक सन्तोष मिलता है क्योंकि यद्यपि Y वस्तु की मात्रा समान रहती है पर X वस्तु की मात्रा OL से बढ़कर OL' हो जाती है। अतः दोनों बिन्दु एक रेखा पर न होकर अलग-अलग रेखाओं पर होंगे। दूसरे शब्दों में, तटस्थता रेखा, आधार-रेखा के समानान्तर नहीं हो सकती है।

(स) तटस्थता रेखा खड़ी रेखा हो सकती है जैसा कि चित्र नं० ६० में दिखाया गया है, परन्तु यह भी

(ii) तटस्थता वक्र रेखा मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex to the origin) होती । इसका बायाँ भाग सापेक्षिक रूप से ढालू (relatively steep) तथा दायाँ भाग सापेक्षिक रूप समतल (relatively horizontal) होता है । तटस्थता रेखा मूल बिन्दु के उन्नतोदर होने का र्थ है कि जब एक उपभोक्ता रेखा पर बायें से दायें को नीचे की ओर चलता है तो वह X वस्तु ी प्रत्येक इकाई को Y वस्तु की घटती हुई मात्रा से प्रतिस्थापित करता है । दूसरे शब्दों में, रेखा ा उन्नतोदर आकार 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' (diminishing marginal rate of ubstitution) को बताता है ।

चित्र—६१

यह बात चित्र नं० ६१ से स्पष्ट ा जाती है । उपभोक्ता रेखा के K न्दु से L बिन्दु की ओर चलता है र्थात बायें से दायें को नीचे की ओर लता है । X वस्तु की एक इकाई AB ो Y वस्तु की PQ इकाइयों द्वारा तिस्थापित (substitute) किया जाता है । दि X को एक और इकाई BC द्वारा ढ़ाया जाना है तो X की इस एक और इकाई BC को Y की QR इकाइयों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है । इसी प्रकार X की एक और अतिरिक्त इकाई CD को Y की RS इकाइयों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है । अतः चित्र से स्पष्ट है कि X की प्रत्येक इकाई को Y की घटती हुई मात्रा ($RS < QR < PQ$) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है । इसी को X की Y के लिए 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' (marginal rate of substitution of X for Y is diminishing) कहते हैं ।
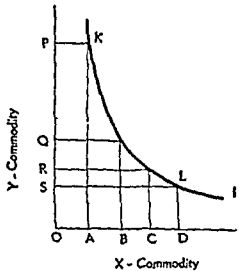
(iii) साधारणतया तटस्थता रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होती है तथा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती हुई होती है । परन्तु कुछ परिस्थितियों में इसका आकार भिन्न हो जाता है ।

सम्भव नहीं है । चित्र से स्पष्ट है कि Q बिन्दु पर Y वस्तु की मात्रा अधिक है अपेक्षाकृत P बिन्दु के, अतः उपभोक्ता को Q बिन्दु पर अधिक सन्तोष मिलता है । Q तथा P बिन्दु एक ही तटस्थता रेखा पर नहीं हो सकते हैं । दूसरे शब्दों में, तटस्थता रेखा खड़ी रेखा नहीं हो सकती ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तटस्थता रेखा का आकार बायें से दायें गिरते हुए होगा ।
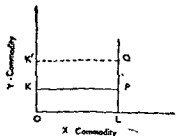
चित्र—६०
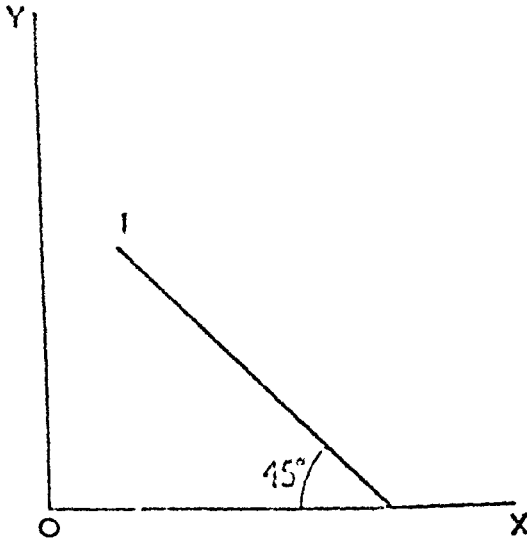
प्रथम, यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (Perfect substitutes) हैं तो तटस्थता रेखा Y-axis तथा X-axis के साथ ४५° का कोण बनाती हुई एक सरल रेखा होगी जैसा कि चित्र नं० ६२ से स्पष्ट है। इसका अर्थ है कि दो वस्तुओं X तथा Y में 'प्रतिस्थापन की दर' समान या स्थिर (constant) रहती है। उदाहरणार्थ यदि उपभोक्ता एक अधिक प्याला चाय का प्राप्त करना चाहता है तो वह एक प्याला काफी का परित्याग करेगा। यहाँ पर चाय तथा काफी में प्रतिस्थापन की दर १ : १ की है अर्थात् स्थिर है। वास्तव में, व्यवहार में कभी भी दो वस्तुएँ पूर्ण रूप से स्थानापन्न नहीं पायी जाती हैं। अतः कुछ अर्थशास्त्रियों का यह कहना है कि यदि दो वस्तुएँ पूर्ण स्थानापन्न हैं तो इसका अर्थ है कि वे वस्तुएँ भिन्न नहीं हैं बल्कि एक ही वस्तु की इकाइयाँ हैं।

चित्र—६२

दूसरे, यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो एक दूसरे की पूर्ण पूरक (Perfectly Complementary) हैं, तो तटस्थता रेखा का आकार दो सरल रेखाओं के रूप में होता है जिनमें से प्रत्येक किसी एक अक्ष (axis) के समानान्तर (parallel) होती हैं तथा दोनों एक दूसरे को ९०° के कोण पर मिलती हैं जैसा कि कि चित्र नं० ६३ से स्पष्ट होता है। दो वस्तुओं (जैसे बायें तथा दायें पैर के जूते, या कप तथा प्लेट) के पूर्ण पूरक होने का अर्थ है कि एक वस्तु के अभाव में दूसरी वस्तु बेकार रहती है। वे एक साथ माँगी या बेची जाती हैं; अर्थात् एक वस्तु की कुछ इकाइयों का परित्याग करके उसके स्थान पर दूसरी वस्तु की एक और अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करके सन्तोष का वही स्तर बनाये नहीं रखा जा सकता।
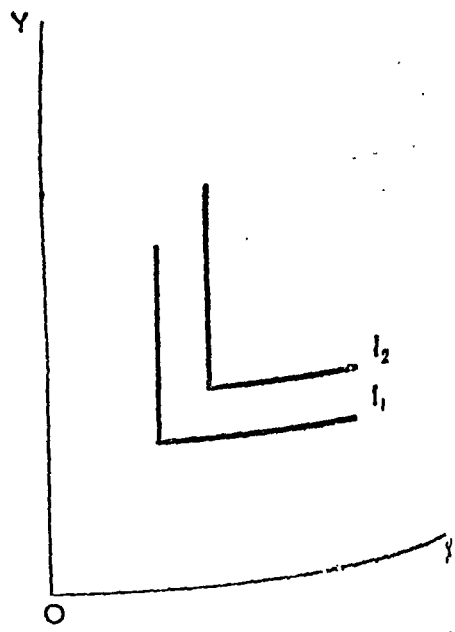
चित्र—६३

वास्तव में, **तटस्थता रेखा की वक्रता (curvature) दो वस्तुओं के बीच पूरकता तथा स्थानापन्नता के अंश को बताती है।** तटस्थता वक्र रेखा जितनी ही कम वक्रता लिए हुए होगी उतना ही स्थानापन्न का अंश अधिक होगा। पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं के लिए तटस्थता वक्र रेखाएं

ा रेखाएँ (straight lines) हो जाती हैं। इसके विपरीत, जितनी ही तटस्थता रेखाओं में ता अधिक होगी उतना ही पूरकता का अंश अधिक होगा।[1]

(iv) एक परिस्थिति में तटस्थता रेखा का रूप गोलाकार या अण्डाकार भी हो सकता है। ...तब होता है जबकि किसी वस्तु के बहुत अधिक मात्रा से प्रयोग से ऋणात्मक उपयोगिता (negative utility) मिलने लगती है। यदि किसी वस्तु का हम प्रयोग करते चले जाते हैं तो एक ...ा के बाद पूर्ण तृप्ति का बिन्दु पहुँच जाता है और यदि इस बिन्दु के बाद भी इस वस्तु का ...ग जारी रखा जाता है तो ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होने लगती है। ऐसी स्थिति में ...भोक्ता दूसरी वस्तु के प्रयोग की मात्रा कम करने के बजाय बढ़ाता है क्योंकि तभी वह पहली ...तु की ऋणात्मक उपयोगिता की क्षतिपूर्ति कर सकता है। अतः ऐसी स्थिति में तटस्थता रेखा का ...गोलाकार हो जाता है।

चित्र नं० ६४ में 'S' बिन्दु उपभोक्ता के ...ए 'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु' (saturation point) ...अर्थात यदि उपभोक्ता Q बिन्दु पर है तो उसे ...नों वस्तुओं के संयोग ($OM_x + OL_y$) में से ...सी वस्तु से अनुपयोगिता प्राप्त नहीं होती, इसी ...गर यदि उपयोगिता P बिन्दु पर है तो भी उसे ...नों वस्तुओं के संयोग ($OK_y + ON_y$) में से ...सी वस्तु से कोई अनुपयोगिता नहीं मिलती। ...P क्षेत्र (region) को 'प्रभावोत्पादक क्षेत्र' (effective region) कहते हैं क्योंकि इस क्षेत्र में ...या Y वस्तुओं की अधिक मात्रा प्रयोग करने ...कोई अनुपयोगिता प्राप्त नहीं होती। परन्तु ...दि उपभोक्ता P बिन्दु के आगे जाता है अर्थात X ...तु की और अधिक इकाइयों का प्रयोग करता है ...। X से उसे अनुपयोगिता प्राप्त होने लगती है ...र इस अनुपयोगिता की क्षतिपूर्ति (compensation) के लिए वह Y वस्तु की मात्रा भी बढ़ाने लगता है। इसी प्रकार यदि उपभोक्ता Q बिन्दु के ...गे जाता है अर्थात Y वस्तु की अधिक इकाइयों का प्रयोग करता है तो उसे Y से अनुपयोगिता ...लने लगती है और इस अनुपयोगिता की क्षतिपूर्ति के लिए वह X वस्तु की अधिक इकाइयों का ...योग करने लगता है। अतः ऐसी परिस्थिति में तटस्थता रेखा का रूप गोलाकार (circular) या ...ण्डाकार (elliptical) हो जाता है।
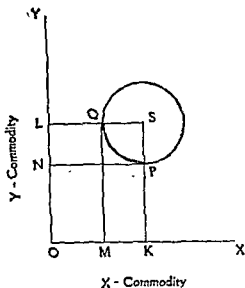
चित्र—६४

(७) जब व्यय दो वस्तुओं से अधिक वस्तुओं पर बाँटा जाता है तो तटस्थता वक्र रेखा ...ी सरलता समाप्त हो जाती है; तीन वस्तुओं के लिए हमें तीन माप (dimensions) की आवश्य-

कता पड़ेगी तथा तीन से अधिक वस्तुओं के लिए रेखागणित (Geometry) हमारा साथ देती है और हमें या तो बीजगणित (Algebra) की सहायता लेनी पड़ती है या हम शब्दों में करते हैं। परन्तु तटस्थता विश्लेपण के सिद्धान्त अप्रभावित (unaffected) रहते हैं।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर
(MARGINAL RATE OF SUBSTITUTION)

प्रो० हिक्स तथा ऐलन ने मूल्य-सिद्धान्त (Theory of Value) का पुनर्निर्माण के शब्दों में (in terms of preference) किया। इनके अनुसार चूंकि उपयोगिता या उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता, इसलिए मूल्य-सिद्धान्त को उपयोगिता के शब्दों में किया जा सकता। अत: प्रो० हिक्स मूल्य-सिद्धान्त को 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' के व्यक्त करते हैं क्योंकि उनका कथन है कि सीमान्त उपयोगिता का कोई निश्चित अर्थ नहीं, 'सीमान्त प्रतिस्थापन दर' का निश्चित अर्थ है।

दो वस्तुओं X तथा Y के संयोग में यदि एक वस्तु अर्थात X की मात्रा बढ़ायी जाती है यह स्वाभाविक है कि दूसरी वस्तु Y की मात्रा घटायी जायेगी ताकि उपभोक्ता की सन्तुष्टि में कमी न हो, वह पहले के समान बनी रहे। X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर Y की **मात्रा है जो कि X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है, उपभोक्ता का पहले के समान ही सन्तोष का स्तर बना रहे।**

सीमान्त प्रतिस्थापन दर का अर्थ निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जाता है :

Y वस्तु		X वस्तु	X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन (M. R. S. of X for Y)
६०	+	१	
४८	+	२	१२ : १
४०	+	३	८ : १

तालिका से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में एक उपभोक्ता Y वस्तु की ६० इकाइयों तथा X वस्तु की १ इकाई के संयोग से चलता है। अब वह X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करे तो उसे Y की इकाइयाँ घटानी पड़ती हैं ताकि उसका सन्तोष समान बना रहे, अत: X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर १२ : १ हुई। यदि वह १ और अतिरिक्त इकाई X वस्तु की प्राप्त करता है तो उसे Y की ८ इकाइयाँ घटानी पड़ती हैं, दूसरे शब्दों में, X वस्तु की १ इकाई, Y की ८ इकाइयों की स्थानापन्न (substitute) है, अत: X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर ८ : १ हुई।

अत:, मेयर्स (Meyers) का कथन है कि X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर Y की वे इकाइयाँ हैं जिनके लिए X की एक इकाई स्थानापन्न (substitute) है।[8] ध्यान रखने की बात है कि दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन दर, 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' (diminishing marginal rate of substitution) होती है। उदाहरण से स्पष्ट है कि X की एक इकाई Y की १२ इकाइयों की स्थानापन्न है, बाद में X की एक इकाई

8 Thus, the marginal rate of substitution of X for Y will be "the number of units for which one unit of X is a substitute."

यों की स्थानापन्न है; इस प्रकार दो वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई ती है।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर को एक दूसरे प्रकार से भी व्यक्त किया जाता है। ा वक्र रेखा का ढाल (slope) र प्रतिस्थापन दर को बताता त्र नं० ६६-६७ में हम तटस्थता का ढाल P विन्दु पर विचार हैं। यदि P तथा Q विन्दु निकट है (जैसा कि चित्र नं० दिखाया गया है) तो मोटे तौर म कह सकते हैं कि KT रेखा, ता रेखा के P बिन्दु पर स्पर्श (tangent) होगी और कोण तटस्थता रेखा के P बिन्दु पर (slope) को बतायेगा। चित्र ६ में माना कि उपभोक्ता P से Q बिन्दु पर आता है अर्थात तु की एक अतिरिक्त इकाई करता है तथा Y वस्तु की कुछ यों कम कर देता है। X वस्तु

चित्र—६६

ात्रा में वृद्धि को $\triangle X$ द्वारा बताते हैं तथा Y वस्तु की मात्रा में कमी को $\triangle Y$ द्वारा या जाता है। अतः X की Y के लिए न्त प्रतिस्थापन दर $\triangle Y : \triangle X$ हुई

$\frac{\triangle Y}{\triangle X}$ हुई। अब हम नीचे यह सिद्ध ंगे कि तटस्थता रेखा का ढाल सीमान्त स्थापन दर $\left(\text{अर्थात } \frac{\triangle Y}{\triangle X}\right)$ को ाता है।

चित्र—६७

तटस्थता वक्र रेखा का P बिन्दु पर
ल = Tangent KT का ढाल (यदि P तथा Q बहुत निकट है)

= Tan of ∟KTO

= Tan of ∟PQM

(∵ ∟KTO = ∟PQM, दोनों Corresponding angles हैं)

$= \frac{PS}{SQ}$
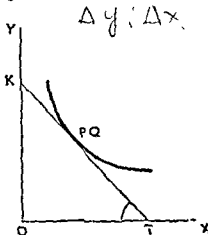
$$=\frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

$= MRS_{xy}$ (अर्थात Marginal Rate of Substitution of X for Y)

अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तटस्थता वक्र रेखा का ढाल सीमान्त प्रतिस्थापन [illegible] को बताता है।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर को तीसरे प्रकार से और व्यक्त किया जाता है। चूँकि [illegible] उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता इसलिए दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनु[illegible] कोई अर्थ नहीं होता। अतः प्रो० हिक्स X वस्तु को सीमान्त उपयोगिता तथा Y वस्तु की [illegible] उपयोगिता के अनुपात के स्थान पर X वस्तु की मात्रा में परिवर्तन तथा X वस्तु की [illegible] परिवर्तन के अनुपात को लेते हैं, और इसे वे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं। [illegible] प्रकार प्रो० हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित [illegible] (precise meaning) प्रदान करते हैं जबकि दोनो वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई हैं।

चित्र नं० ६६ में उपभोक्ता P बिन्दु से Q बिन्दु पर पहुँचने में X वस्तु की [illegible] प्राप्त करता है तथा Y वस्तु की PS मात्रा खोता है। उपयोगिता के शब्दों में, प्राप्त [illegible] (gain) $= SQ \times$ वस्तु X की सीमान्त उपयोगिता, तथा नुकसान (loss) $= PS \times$ वस्तु [illegible] सीमान्त उपयोगिता, जबकि हम यह मान लेते हैं कि SQ तथा PS बहुत थोड़ी (small) [illegible] हैं। चूँकि P तथा Q दोनों एक ही तटस्थता रेखा पर हैं इसलिए दोनों बिन्दुओं पर उपभोक्ता [illegible] कुल उपयोगिता या कुल सन्तोष समान रहता है, दूसरे शब्दों में, उपयोगिता में प्राप्त [illegible] उपयोगिता में नुकसान बराबर होंगे, अतः

$SQ \times$ वस्तु X की सीमान्त उपयोगिता $= PS \times$ वस्तु Y की सीमान्त उपयोगिता

$$\text{अर्थात } \frac{X \text{ की सीमान्त उपयोगिता}}{Y \text{ की सीमान्त उपयोगिता}} = \frac{PS}{SQ}$$

$$=\frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

$= MRS_{xy}$ (X की Y के लिए सीमान्त प्रति[illegible] दर।)

अतः स्पष्ट है कि प्रो० हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात [illegible] निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं, जबकि दोनों [illegible] की मात्राएँ दी हुई होती हैं। इसमें सीमान्त उपयोगिताओं को मापने की आवश्यकता नहीं [illegible] दोनों वस्तुओं की मात्राओं में परिवर्तन, जो कि मापनीय है, को मालूम करके ही [illegible] जाता है।

[illegible] marginal utility cannot be measured so that the ratio of two marginal utili[illegible] [illegible] In place of ratio of the marginal utility of X to the marginal uti[illegible] [illegible] in the quantity of X to that of Y. This he calls [illegible] [illegible] meaning to the rate of two marginal utilit[illegible] [illegible] commodities are given.

घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त
(THE PRINCIPLE OF DIMINISHING MARGINAL RATE OF SUBSTITUTION)

सिद्धान्त या नियम का कथन (Statement)

साधारणतया किन्हीं दो वस्तुओं से सम्बन्धित सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई (diminishing) होती है। जब उपभोक्ता X वस्तु की अधिक इकाइयों का प्रयोग करता है तो Y वस्तु इकाइयों की संख्या, जो कि वह X वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए परित्याग करने को तैयार है, में कमी होती जाती है। इसे ही 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त' कहते हैं।

प्रो० हिक्स ने इस सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त किया है—"माना कि हम वस्तु की एक दी हुई मात्रा से प्रारम्भ करते हैं, और X की मात्रा में वृद्धि और Y की मात्रा में कमी इस प्रकार से करते जाते हैं कि उपभोक्ता की स्थिति न तो पहले से अच्छी ही होती और न बुरी ही। तब Y की मात्रा जोकि X की दूसरी अतिरिक्त इकाई की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है, वह Y की उस मात्रा से कम होगी जोकि X की पहली अतिरिक्त इकाई की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है। अन्य शब्दों में, जितना ही अधिक X, Y के लिए प्रतिस्थापित की जाती है उतनी ही X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर कम होती जायेगी।"[10]

सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation)

चित्र न० ६८ में, माना कि उपभोक्ता K बिन्दु से L बिन्दु की ओर चलता है अर्थात् वह X वस्तु की मात्रा बढ़ाता जाता है और Y की मात्रा घटाता जाता है ताकि उसके कुल सन्तोष में कोई अन्तर न पड़े यानी उसकी स्थिति पहले से न तो अच्छी ही हो और न बुरी ही हो। वह X वस्तु को एक इकाई AB द्वारा बढ़ाता है तब उसको Y वस्तु की PQ इकाइयाँ घटानी पड़ती हैं। यदि X को एक और इकाई BC द्वारा बढ़ाया जाता है तो X की इस एक और इकाई BC को Y की QR इकाइयों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी प्रकार X की एक और अतिरिक्त इकाई CD को Y की RS इकाइयों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। अतः चित्र से स्पष्ट है कि X की प्रत्येक इकाई को Y की घटती हुई मात्रा (RS<QR<PQ) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी को X की Y के लिए घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर (diminishing marginal rate of substitution of X for Y) कहते हैं।
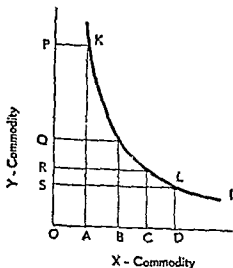
चित्र—६८

10 "Suppose we start with ...

ो कि X-axis तथा Y-axis के साथ ४५° का कोण बनाती है, देखिये चित्र ६६ को। वास्तव व्यवहार में किन्हीं भी दो वस्तुओं का पूर्ण स्थानापन्न होना कठिन है। अत कुछ अर्थशास्त्रियों ह कहना है कि यदि दो वस्तुएँ पूर्ण स्थानापन्न हैं तो इसका अर्थ है कि वस्तुएँ भिन्न नहीं हैं क एक ही वस्तु की इकाइयाँ हैं।

(ii) यदि दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो एक दूसरे की पूर्ण पूरक (perfectly complementary) ो वे हमेशा एक निश्चित अनुपात के संयोग में माँगी जायेंगी (उदाहरणार्थ, बाये तथा दायें पैर ते), उनके बीच प्रतिस्थापन की दर गिरती हुई नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में X वस्तु की अतिरिक्त इकाई द्वारा वृद्धि कर देने की प्रतिक्रिया में Y वस्तु की कुछ इकाइयों को घटा देने से भोक्ता के सन्तोष को समान बनाये नहीं रखा जा सकता क्योंकि दोनों वस्तुएँ एक निश्चित पात में ही माँगी जाती हैं। ऐसी स्थिति में प्रतिस्थापन की दर को अनन्त (infinite) कहा ता है अर्थात सन्तोष के स्तर को समान बनाये रखने के लिए X वस्तु की एक इकाई की वृद्धि वस्तु की अनन्त (infinite) इकाइयों के परित्याग (cost) पर की जायेगी।

घटती हुई उपयोगिता का नियम तथा घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त (The Law of Diminishing Utility and the Principle of Diminishing Marginal Rate of Substitution)

प्रायः कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा, यह कहा जाता है कि 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर सिद्धान्त' 'घटती हुई उपयोगिता के नियम' का केवल रूपान्तरण (translation) है। ऐसा दो रणों से कहा जाता है। प्रथम, एक वस्तु से दूसरी वस्तु का प्रतिस्थापन सीमान्त उपयोगिता आधार पर ही होता है। दूसरे, जिस प्रकार सीमान्त उपयोगिता घटती है उसी प्रकार सीमान्त तस्थापन दर भी घटती है।

परन्तु हिक्स के अनुसार 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त' 'घटती हुई पयोगिता के नियम' का केवल रूपान्तरण (translation) नहीं है। प्रथम, घटती हुई उपयोगिता नियम, उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन (quantitative measurement) पर आधारित जबकि 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम' के लिए उपयोगिता को मापने की आवश्यता नहीं है। दूसरे, उपयोगिता ह्रास नियम द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मान लेता है बकि घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का नियम ऐसा नहीं मानता। तीसरे, उपयोगिता ह्रास यम केवल एक वस्तु का अध्ययन करता है और यह बताता है कि एक वस्तु की उपयोगिता में मी होती है; यह दूसरी सम्बन्धित वस्तुओं (related goods) के प्रभाव पर ध्यान नहीं देता। रन्तु घटती हुई प्रतिस्थापन दर का नियम दो सम्बन्धित वस्तुओं का अध्ययन करता है और ताता है कि एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटती हुई होती है तथा दूसरी वस्तु की सीमान्त पयोगिता बढ़ती हुई। चौथे, सीमान्त उपयोगिता के बिना परिमाणात्मक मापन के ही प्रो० हिक्स ो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं, जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई होती हैं। दूसरे ब्दों में,

$$\frac{X \text{ की सीमान्त उपयोगिता}}{Y \text{ की सीमान्त उपयोगिता}} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

$= X$ की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर
(जबकि ΔY, Y में परिवर्तन को तथा ΔX, X में परिवर्तन को बताता है)

अतः उपर्युक्त बातों के आधार पर प्रो० हिक्स का कथन है कि 'घटती हुई प्रतिस्थापन दर का नियम,' 'उपयोगिता ह्रास नियम' का केवल रूपान्तरण नहीं है।

तटस्थता रेखाएँ तथा उपभोक्ता का सन्तुलन (INDIFFERENCE CURVES AND CONSUMER'S EQUILIBRIUM)

प्रत्येक उपभोक्ता अपनी दी हुई आय तथा वस्तुओं की दी हुई कीमतों को ध्यान में रखते हुए अपने सन्तोष को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है। मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण के अनुसार, सम-सीमान्त उपयोगिता नियम एक उपभोक्ता को अपनी दी हुई आय को विभिन्न वस्तुओं पर वितरण करने में इस प्रकार मदद करता है ताकि उसको अधिकतम सन्तोष प्राप्त हो। इसी प्रकार तटस्थता विश्लेषण भी एक उपभोक्ता को अपनी दी हुई आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने में मदद करता है।

एक उपभोक्ता अधिकतम सन्तोष तब प्राप्त करेगा अर्थात वह सन्तुलन की अवस्था में होगा जबकि निम्न तीन दशाएँ पूरी होती हैं :

(i) एक उपभोक्ता उस बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति में होगा जहाँ पर कि कीमत रेखा (price line) तटस्थता वक्र रेखा पर स्पर्श रेखा (tangent) होती है।

(ii) सीमान्त प्रतिस्थापन दर (marginal rate of substitution)=कीमतों का अनुपात (price ratio)।

(iii) स्थायी (stable) सन्तुलन के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर सन्तुलन के बिन्दु पर घटती हुई (diminishing) होनी चाहिए अर्थात तटस्थता वक्र रेखा मूल बिन्दु (origin) के प्रति उन्नतोदर (convex) होनी चाहिए।

तटस्थता वक्र रेखा दो वस्तुओं (माना कि नारंगी तथा केले) के विभिन्न संयोगों को बताती है जिनके प्रति उपभोक्ता तटस्थ रहता है। अपनी दी हुई आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने की दृष्टि से उपभोक्ता इन दोनों वस्तुओं के कौन से संयोग को चुनेगा यह उन वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों पर निर्भर करेगा। माना कि उपभोक्ता १ रुपये को दो वस्तुओं—नारंगी तथा केलों—पर व्यय करना चाहता है। माना कि नारंगी की कीमत २० पैसे प्रति इकाई तथा केले की कीमत १० पैसे प्रति इकाई है।

उपभोक्ता अपनी १ रुपये की आय को नारंगी और केलों पर कई प्रकार से व्यय कर सकता है; एक वस्तु पर अधिक तथा दूसरी वस्तु पर कम व्यय कर सकता है। एक सिरे की स्थिति (extreme case) यह हो सकती है कि वह अपनी १ रुपये की समस्त आय को केवल नारंगी पर ही व्यय करे जिस दशा में वह ५ नारंगी (अर्थात् चित्र नं० ७० में OM नारंगी) खरीदेगा, तथा केले बिलकुल नहीं खरीदेगा; दूसरे सिरे की स्थिति यह हो सकती है कि वह अपनी १ रुपये की समस्त आय को केवल केलों पर ही व्यय करे जिस दशा में वह १० केले (चित्र नं० ७० में OL केले) खरीदेगा और नारंगी बिलकुल नहीं खरीदेगा। चित्र नं० ७० में यह स्थिति LM रेखा द्वारा दिखायी गयी है। LM रेखा, 'कीमत रेखा' (price-line) या 'बजट-रेखा' (budget-line) या 'व्यय-रेखा' (outlay-line) कहलाती है। अतः, कीमत रेखा दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को बताती है जो कि एक उपभोक्ता वस्तुओं की कीमत के आधार पर अपनी दी हुई आय से खरीद सकता है। दूसरे शब्दों में, कीमत रेखा एक उपभोक्ता की दी हुई आय को दो वस्तुओं पर व्यय करने की सभी सम्भावनाओं को व्यक्त करती है। कीमत रेखा को 'उपभोग सम्भावना रेखा' (consumption possibility line) भी कहते हैं क्योंकि कीमत रेखा यह बताती है कि दी

आय तथा वस्तुओं की दी हुई कीमतों के आधार पर एक उपभोक्ता के लिए उन दोनों वस्तुओं की कितनी-कितनी मात्रा का उपभोग सम्भव है।

चित्र नं० ७० में LM कीमत रेखा I_1 को S तथा T बिन्दुओं पर काटती है। उपभोक्ता या तो SA नारंगी तथा SB केलों के संयोग या TA' नारंगी तथा TB' केलों के संयोग का उपभोग
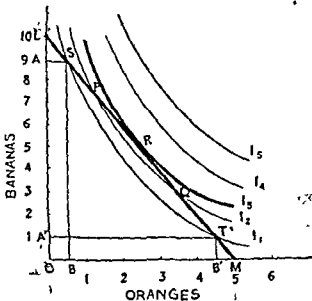
चित्र—७०

कर सकता है, उपभोक्ता को दोनों संयोगों से समान सन्तोष मिलता है। LM कीमत रेखा I_2 को P तथा Q बिन्दुओं पर काटती है। P तथा Q नारंगी तथा केलों के दो अन्य संयोगों को बताते हैं जिनमें से उपभोक्ता, अपनी दी हुई आय तथा दी हुई कीमतों के आधार पर, किसी को भी चुन सकता है। एक ओर S तथा T संयोगों और दूसरी ओर P तथा Q संयोगों के बीच उपभोक्ता बाद के (अर्थात् P तथा Q) संयोगों को चुनेगा क्योंकि वे एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा पर हैं और इसलिए अधिक सन्तोष को बताते हैं। LM रेखा I_3 को R बिन्दु पर स्पर्श करती है। R बिन्दु नारंगी तथा केलों के अन्य संयोग को बताता है जिसको कि उपभोक्ता, दी हुई आय तथा दी हुई कीमतों के आधार पर, प्राप्त कर सकता है। एक ओर P तथा Q संयोगों और दूसरी ओर R संयोग के बीच उपभोक्ता बाद के (अर्थात् R) संयोग को चुनेगा क्योंकि R बिन्दु एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा पर है और अधिक सन्तोष को बताता है। LM कीमत रेखा I_3 तटस्थता रेखा से ऊँची किसी तटस्थता रेखा को न काट सकती है और न स्पर्श कर सकती है। अतः दी हुई आय तथा दी हुई कीमतों के आधार पर उपभोक्ता के लिए बिन्दु R द्वारा बताये गये नारंगी तथा केलों के संयोग के अतिरिक्त किसी अन्य अधिक सन्तोष प्रदान करने वाले संयोगों को चुनना सम्भव नहीं है क्योंकि वे संयोग उसकी आय के बाहर होंगे, अतः वह R संयोग को चुन लेता है; जिस पर उसे अधिकतम सन्तोष मिलता है, इस प्रकार R बिन्दु पर उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में होगा। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता का सन्तुलन उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर कीमत-रेखा तटस्थता वक्र रेखा पर स्पर्श रेखा (tangent) होती है।

उपभोक्ता R बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति में है। इस सन्तुलन बिन्दु पर X वस्तु (अर्थात् नारंगी) की Y वस्तु (अर्थात् केलों) के लिए प्रतिस्थापन दर (Marginal Rate of Substitution) X तथा Y वस्तुओं के कीमत-अनुपात (Price-ratio) के बराबर है। यह बात निम्न विधि से स्पष्ट है। (हम यह पहले अध्ययन कर चुके हैं कि) तटस्थता वक्र रेखा का ढाल (slope) दो वस्तुओं (X तथा Y) की प्रतिस्थापन दर को बताता है। चित्र से स्पष्ट है कि R बिन्दु (अर्थात् उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु) पर,

तटस्थता वक्र रेखा का ढाल = कीमत रेखा LM के ढाल (Slope of Prics Line LM)

अर्थात्,

X वस्तु की Y वस्तु के लिए प्रतिस्थापन दर (MRS_{xy})

$$= \text{Slope of the price Line LM}$$

$$= \text{Tan of } \angle LMO$$

$$= \frac{OL}{OM}$$

$$= \frac{\frac{\text{Income}}{\text{Price of Y}}}{\frac{\text{Income}}{\text{Price of X}}}$$

$$= \frac{\frac{1}{\text{Price of Y}}}{\frac{1}{\text{Price of X}}}$$

$$= \frac{\text{Price of X}}{\text{Price of Y}}$$

$$= \textbf{Price Ratio of two Commodities}$$

अतः स्पष्ट है कि उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति में दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर, उन वस्तुओं के कीमत अनुपात (price-ratio) के बराबर होती है।

उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए यह भी आवश्यक है कि सन्तुलन बिन्दु (R) पर, X वस्तु (अर्थात् नारंगी) की Y वस्तु (अर्थात् केलों) के लिए प्रतिस्थापन दर घटती हुई हो (अर्थात् सन्तुलन बिन्दु पर तटस्थता वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) हो अथवा सन्तुलन की स्थिति एक स्थायी सन्तुलन (stable equilibrium) की स्थिति नहीं होगी।

माना कि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई नहीं है, तो वह स्थिर (constant) हो सकती है या बढ़ती हुई (increasing) हो सकती है। वह स्थिर नहीं हो सकती क्योंकि इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक अतिरिक्त (additional) इकाई से प्राप्त उपयोगिता समान होगी, परन्तु यह सम्भव नहीं है। यदि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बढ़ती हुई (increasing) है (अर्थात्, सन्तुलन के बिन्दु पर यदि तटस्थता वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave) है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हम एक वस्तु X की इकाइयाँ बढ़ाते जाते हैं तो X वस्तु की अतिरिक्त इकाई

की उपयोगिता (दूसरी वस्तु Y के शब्दों में) बढ़ती जाती है, परन्तु यह बात भी सम्भव नहीं है।

अतः उपभोक्ता के सन्तुलन के बिन्दु पर प्रतिस्थापन दर न स्थिर (constant) हो सकती है और न बढ़ती हुई (increasing), बल्कि वह घटती हुई होगी। इसी बात को प्रो० हिक्स ने चित्र नं० ७१ के द्वारा बताया है। चित्र में यद्यपि R बिन्दु पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कीमत-अनुपात के बराबर है, परन्तु R बिन्दु एक स्थायी (stable) सन्तुलन की स्थिति नहीं है क्योंकि यहाँ पर प्रतिस्थापन दर घटती हुई नहीं है बल्कि बढ़ती-हुई है (अर्थात् तटस्थता वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर 'concave' है), इसका अर्थ यह हुआ कि R बिन्दु से बायें या दायें किसी ओर हटने पर उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा पर पहुँच जायेगा और इस प्रकार अपनी सन्तुष्टि (satisfaction) को बढ़ा सकेगा। अतः R बिन्दु एक स्थायी सन्तुलन का बिन्दु नहीं है।
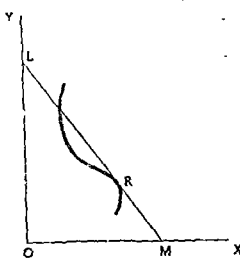
चित्र—७१

अतः स्पष्ट है कि उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति के लिए निम्न दशाओं का पूरा होना आवश्यक है :

(i) कीमत-रेखा तटस्थता-वक्र रेखा पर स्पर्श रेखा हो।

(ii) प्रतिस्थापन की सीमान्त दर=कीमत अनुपात।

(iii) स्थायी सन्तुलन के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन-दर सन्तुलन के बिन्दु पर घटती हुई (diminishing) होनी चाहिए, अर्थात् तटस्थता वक्र रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होनी चाहिए।

उपभोक्ता की माँग पर आय का प्रभाव
(INCOME EFFECT)

[illegible]

यदि वस्तुओं की कीमतें यथा स्थिर रहती हैं, परन्तु उपभोक्ता की आय में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होता है तो वह वस्तुओं की कम माँग या अधिक माँग कर सकता है और उसका सन्तोष पहले की अपेक्षा घट सकता है या बढ़ सकता है। इस प्रकार, उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप उसकी माँग पर प्रभाव होता है जिसे 'आय प्रभाव' (income effect) कहते हैं।

माना कि (i) दो वस्तुएँ X तथा Y हैं जिनकी कीमतें दी हुई हैं और वे स्थिर रहती हैं तथा (ii) उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होता है। उपभोक्ता की आय में जैसे-जैसे वृद्धि

चित्र—७२
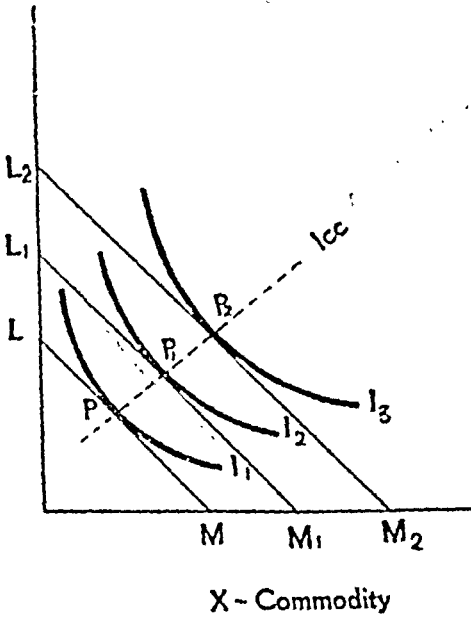
जाती है वैसे-वैसे कीमत रेखा LM अपने आपको समान्तर (parallel) रखती हुई दायें को ऊपर की ओर खिसकती जाती है जैसे कि चित्र नं० ७२ में दिखाया गया है। कीमत रेखाएँ एक दूसरे के समान्तर इसलिए रहती हैं क्योंकि X तथा Y वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता है और कीमतों का अनुपात $\left(\frac{Px}{Py}\right)$ समान रहता है। यदि कीमत रेखा की स्थिति LM है तो उपभोक्ता का सन्तुलन P विन्दु पर होगा। आय में वृद्धि हो जाने पर कीमत-रेखा की स्थिति L_1M_1 हो जाती है तो अब उपभोक्ता एक ऊँची तटस्थता वक्र रेखा I_2 पर पहुँच जाता है और उसका नया सन्तुलन अब P_1 विन्दु बताता है। इस प्रकार आय में वृद्धि होते जाने पर यदि सन्तुलन विन्दुओं P, P_1, P_2 इत्यादि को मिला दिया जाये तो एक नयी रेखा प्राप्त होती है जिसे प्रो० हिक्स ने 'आय-उपभोग रेखा' (income-consumption curve या संक्षेप में, Icc) कहा। आय उपभोग रेखा (Icc) बताती है कि आय में परिवर्तन होने पर उप**भोग (अर्थात माँग) में किस प्रकार परिवर्तन होता है, यदि दोनों वस्तुओं (X तथा Y) की कीमतें समान रहें।**

वास्तव में, आय-उपभोग वक्र रेखा (Icc) का रूप (shape) प्रयोग या उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के स्वभाव पर निर्भर करता है। साधारणतया आय उपभोग रेखा बायें से दायें ऊपर की ओर उठती हुई होती है जिसका अर्थ है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में, सामान्यतया 'आय-प्रभाव' धनात्मक (positive) होता है, यह बात हम पहले चित्र में देख चुके हैं तथा चित्र नं० ७३ से और स्पष्ट होती है।

चित्र—७३

परन्तु कुछ दशाओं में आय उपभोग रेखा ऊपर को बायें की ओर या दायें को नीचे की ओर भी झुक सकती है, जिसका अर्थ है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोग की जाने वाली वस्तुओं में से एक वस्तु की मात्रा में कमी होती जाती है। दूसरे शब्दों में, 'आय प्रभाव' ऋणात्मक (negative) भी हो सकता है। ऐसा प्रायः निम्न

चित्र—७४

...ओं (inferior goods) के सम्बन्ध में ... । ऐसी निम्न कोटि की वस्तुएँ जिन ...भोक्ता अपनी आय का एक बड़ा भाग ...रता है उन्हें, रोबर्ट गिफिन (Robert ...) के नाम पर, गिफिन वस्तुएँ (Giffen ...) भी कहते हैं क्योंकि गिफिन महोदय ...बात पर हमारा ध्यान आकर्षित किया ...निम्नकोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में ...उपभोग रेखा एक निश्चित बिन्दु के ... (चित्र न० ७४ में M बिन्दु के बाद ...पर को बायें की ओर झुक जाती है जैसा ...त्र में Icc_1 द्वारा दिखाया गया है, यदि ...कोटि की वस्तु को X-axis पर दिखाया ... आय-उपभोग रेखा एक बिन्दु (चित्र में K बिन्दु) के बाद दायें को नीचे की ओर झुक जाती ...ा कि चित्र में Icc_2 द्वारा दिखाया गया है, यदि निम्न कोटि की वस्तु को Y-axis पर ...ा जाये।
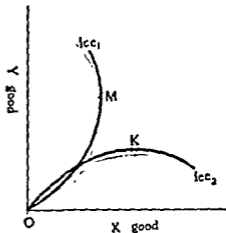
प्रतिस्थापन प्रभाव MC
(SUBSTITUTION EFFECT)

जब दो वस्तुओं के सापेक्षिक मूल्यों (relative prices) में इस प्रकार से परिवर्तन होता ... उपभोक्ता की आर्थिक स्थिति पहले से न बुरी हो और न अच्छी अर्थात् उसका कुल सन्तोष ... रहता है, परन्तु वह वस्तुओं की क्रय की मात्राओं को नये सापेक्षिक मूल्यों के अनुसार बदल ...है (अर्थात वह महंगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु का प्रतिस्थापन करता है) तो इसे ...स्थापन प्रभाव' कहते हैं। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता जब एक ही तटस्थता वक्र रेखा पर एक ...लन बिन्दु से दूसरे सन्तुलन बिन्दु पर जाता है तो इसे 'प्रतिस्थापन प्रभाव' कहते हैं। 'प्रति-...न प्रभाव' के अन्तर्गत हम निम्न मान्यताओं को मानकर चलते हैं: (१) दो वस्तुओं के ...िक मूल्यों में परिवर्तन हो जाता है और एक वस्तु सस्ती तथा दूसरी मंहगी हो जाती है। ... एक वस्तु के मंहगे होने का प्रभाव दूसरे वस्तु के सस्ते होने के प्रभाव से पूर्णतया नष्ट ...utralise) हो जाता है ताकि उपभोक्ता का कुल सन्तोष पहले के समान ही बना रहता है ...त् वह पुरानी ही तटस्थता वक्र रेखा पर बना रहता है। (३) मौद्रिक आय (money income) ...ोई परिवर्तन नहीं होता, वह समान रहती है।[11]

वस्तुओं के केवल सापेक्षिक मूल्यों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तुओं की मात्रा में परिवर्तन को 'प्रतिस्थापन प्रभाव' कहते हैं। जब दो वस्तुओं X तथा Y में से एक वस्तु X की कीमत गिरती है तो दोनों वस्तुओं X तथा Y के सापेक्षिक मूल्यों में परिवर्तन हो जायेगा। परन्तु यहाँ पर एक बात यह ध्यान रखने की है कि वस्तु X की कीमत घट जाने से उपभोक्ता की वास्तविक आय (अर्थात क्रय-शक्ति) में भी साथ साथ वृद्धि होगी जिसे 'कीमत में कमी के परिणामस्वरूप आय-प्रभाव' ('income effect due to a fall in price') कहते हैं। परन्तु प्रतिस्थापन प्रभाव को पृथक रूप से ज्ञात करने के लिए हमें 'केवल सापेक्षिक मूल्यों में परिवर्तन' ही मालूम होना चाहिए; यदि साथ में आय-प्रभाव भी मौजूद रहता है तो हम ...

प्रतिस्थापन प्रभाव को चित्र नं० ७५ द्वारा स्पष्ट किया गया है। माना कि A_1B_1 ... कीमत रेखा है तथा P_1 उपभोक्ता की पुरानी सन्तुलन स्थिति को बताता है अर्थात उपभोक्ता ...
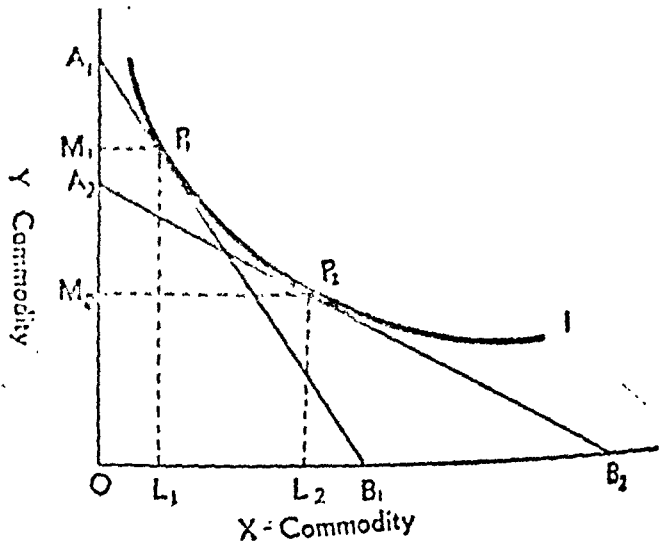
चित्र—७५

प्रभाव' को पृथक रूप से ज्ञात नहीं कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, 'प्रतिस्थापन प्रभाव' ... प्रथक रूप से ज्ञात करने के लिए 'आय-प्रभाव' को निकाल देना चाहिए; इसके लिए हम ... दो तरीकों में से कोई भी एक तरीका अपना सकते है (i) हम यह मान लेते हैं कि यदि ... X के मूल्य में कमी होती है तो साथ ही साथ वस्तु Y के मूल्य में इस प्रकार से वृद्धि ... है कि उपभोक्ता का संतोष पहले के समान ही रहता है अर्थात वह पहली ही (same) ... थता रेखा पर रहता है; ऐसी स्थिति का अभिप्राय यह है कि उपभोक्ता की मौद्रिक ... (money income) समान मान ली जाती है। इस प्रकार 'आय-प्रभाव' नष्ट हो जाता ... और 'केवल सापेक्षिक मूल्यों में परिवर्तन' ही रहता है। अथवा (ii) माना कि वस्तु X ... कीमत घटती है और Y की कीमत में कोई भी वृद्धि नहीं होती, वह स्थिर रहती है, तो ... तथा Y के सापेक्षिक मूल्यों में परिवर्तन तो होगा ही, परन्तु साथ ही साथ (X वस्तु ... कीमत में कमी के कारण) उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि अर्थात आय-प्रभाव भी होगा ... इस आय-प्रभाव को समाप्त करने के लिए हम यह मान लेते हैं कि जब वस्तु X की कीमत ... घटती है और उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि होती है तो वास्तविक आय में इस ... को समतुल्य (compensate) करने के लिए यह मान लिया जाता है कि साथ ही साथ ... भोक्ता की 'द्राव्यिक आय' (money income) में इस प्रकार से कमी (टैक्स लगाकर या किसी ... अन्य रीति द्वारा) होती है कि उपभोक्ता का सन्तोष पहले के समान ही रहता है अर्थात ... पहली (same) तटस्थता रेखा पर ही रहता है। इस प्रकार से द्राव्यिक आय में कमी ... 'समतुल्य-परिवर्ती' (compensating variant) कहा जाता है; इस compensating vari- ant के कारण ही उपभोक्ता उसी (same) तटस्थता वक्र रेखा पर बना रहता है। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार compensating variant के कारण ही हम 'आय-प्रभाव' को नष्ट ... देते हैं तथा 'केवल मूल्यों में सापेक्षिक परिवर्तन' ही रह जाता है जो कि प्रतिस्थापन प्रभाव ... ज्ञात करने के लिए आवश्यक है। उपर्युक्त दोनों विकल्पों (alternatives) में से हमने ... विकल्प (alternative) को अपनाया है क्योंकि वह डिग्री स्तर के विद्यार्थियों के लिए ... सरल पड़ता है; वास्तव में पहले विकल्प में भी compensating variant का विचार ... (implicit) है।

कारण 'कीमत-रेखा' (price line) की स्थितियाँ LK, LK_1 तथा LK_2 हैं।
पभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु हैं। इनको मिलाने से 'कीमत-उपभोग-रेखा' (PCC)
तुलन बिन्दु A से X-axis पर लम्ब (perpendicular) डालने पर वह X-axis
ता है। सन्तुलन बिन्दु A बताता है कि उपभोक्ता OE द्रव्य+OR वस्तु की
खना पसन्द करता है, दूसरे शब्दों में, वह OR वस्तु की मात्रा के लिए EL
। वस्तु की कीमत, 'कीमत-रेखा' LK का ढाल (slope) बताता है अर्थात

ीमत $\frac{OL}{OK}$ है, अतः सन्तुलन स्थिति A पर उपभोक्ता $\frac{OL}{OK}$ कीमत पर वस्तु

ा है। इसी प्रकार सन्तुलन स्थिति B पर वह $\frac{OL}{OK_1}$ कीमत पर वस्तु को

था सन्तुलन स्थिति C पर वह $\frac{OL}{OK_2}$ कीमत पर वस्तु को OT मात्रा

की OL_1 मात्रा तथा Y वस्तु की OM_1 मात्रा का प्रयोग करता है। अब माना कि X तथा वस्तुओं की कीमत बदल जाती है, X वस्तु सस्ती हो जाती है तथा Y वस्तु मँहगी हो जाती है, नु उपभोक्ता की मौद्रिक आय समान रहती है। Y वस्तु के मँहगे होने का प्रभाव X वस्तु के होने के प्रभाव द्वारा पूर्णतया नष्ट (neutralise or compensate) हो जाता है ताकि उपभोक्ता का कुल सन्तोष समान रहता है अर्थात् वह पुरानी तटस्थता वक्र रेखा पर ही रहता है। अब X वस्तु सस्ती तथा Y वस्तु महँगी हो गयी है इसलिए उपभोक्ता महँगी वस्तु Y के न पर सस्ती वस्तु X का प्रतिस्थापन करेगा और अब वह एक नये सन्तुलन बिन्दु P_2 पर आ है अर्थात् अब वह X वस्तु की OL_1 मात्रा के स्थान पर OL_2 मात्रा का तथा Y वस्तु की M_1 मात्रा के स्थान पर OM_2 मात्रा का प्रयोग करने लगता है। अतः अब उपभोक्ता सस्ती वस्तु को, महँगी वस्तु Y के स्थान पर, प्रतिस्थापित करेगा। दूसरे शब्दों में, एक ही तटस्थता वक्र पर उपभोक्ता के एक सन्तुलन बिन्दु P_1 से दूसरे सन्तुलन बिन्दु P_2 के चलन (movement) 'प्रतिस्थापन प्रभाव' कहते हैं।

मूल्य प्रभाव
(PRICE EFFECT)

यदि उपभोक्ता की मौद्रिक आय (money income) में कोई परिवर्तन नहीं होता और ग की जाने वाली दो वस्तुओं (Y तथा X) में से एक वस्तु (Y) का मूल्य स्थिर रहता है दूसरी वस्तु (X) के मूल्य में र्तन होता है, तो उपभोक्ता प्रयोग की जाने वाली दूसरी (X) की मात्रा पर जो प्रभाव है उसे 'मूल्य प्रभाव' है।

मूल्य प्रभाव को चित्र नं० द्वारा स्पष्ट किया गया है। अन्य बातें समान रहती हैं त् मौद्रिक आय समान रहती था Y वस्तु की कीमत स्थिर है) और केवल X वस्तु की मे परिवर्तन होता है। X वस्तु की कीमत में कमी है। उपभोक्ता अपनी दी हुई मे प्रारम्भ में Y वस्तु की
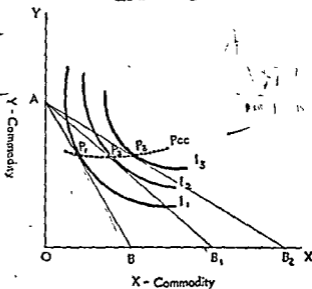
चित्र—७६

मात्रा या X वस्तु की OB मात्रा खरीद सकता है, अर्थात् प्रारम्भ में 'कीमत रेखा' की स्थिति है। परन्तु X वस्तु की कीमत में कमी होने से उपभोक्ता उसी दी हुई आय में X वस्तु की क मात्राएँ (अर्थात् OB_1 OB_2, इत्यादि) खरीद सकेगा; दूसरे शब्दों में, कीमत रेखा की नयी तियाँ AB_1, AB_2, इत्यादि होंगी। यदि सन्तुलन बिन्दुओं P_1, P_2, P_3, इत्यादि को मिला दिया ए तो हमें एक रेखा प्राप्त होती है जिसे 'मूल्य-उपभोग रेखा' (price consumption curve क्षेप में PCC) कहते हैं। 'मूल्य-उपभोग रेखा' (PCC) बताती है कि, अन्य बातों के समान

-शपन किया जाता है। इसको चित्र में X वस्तु की अधिक माँग की मात्रा $K_1 K_2$ द्वारा भी है। इसे 'कीमत के गिरने का प्रतिस्थापन प्रभाव' (substitution effect of price fall) है।

अतः स्पष्ट है कि,

कीमत प्रभाव (अर्थात् P से R तक चलन या $K K_2$) = आय प्रभाव + प्रतिस्थापन प्रभाव
= P से Q तक चलन + Q से R तक चलन
= KK^1 + K_1K_2

माँग रेखा का निकालना
(DERIVATION OF THE CONVENTIONAL DEMAND CURVE)

तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से साधारण माँग रेखा (Ordinary or conven-l demand curve) को निकाल सकते हैं। ऐसा करने में हम कीमत उपभोग रेखा (price umption curve) की सहायता लेते हैं। अतः माँग रेखा को निकालने से पूर्व 'कीमत उप-रेखा' तथा 'माँग रेखा' की समानता तथा अन्तर को समझना आवश्यक है।

चित्र नं० ७८ में ABC 'कीमत-उपभोग रेखा' (PCC) है। चित्र में उपभोक्ता जब साम्य A पर है तो वह $\frac{OL}{OK}$ कीमत पर वस्तु की QR मात्रा खरीदता है, या उपभोग करता है, उपभोक्ता साम्य स्थिति B पर है तथा कीमत गिर कर $\frac{OL}{OK_1}$ हो जाती है तो वह वस्तु की अधिक मात्रा OS उपभोग करता है। यदि कीमत और कम होकर $\frac{OL}{OK_2}$ हो जाती है तथा उपभोक्ता साम्य स्थिति C पर है तो वह वस्तु की और अधिक मात्रा OT खरीदता है। स्पष्ट है कि कीमत गिरने पर वस्तु की माँग बढ़ती है। दूसरे शब्दों में, 'कीमत-उपभोग-रेखा' (PCC) कीमत में परिवर्तन तथा उससे सम्बन्धित उपभोग की मात्रा में परिवर्तन के बीच सम्बन्ध को बताती है। यही बात सामान्य माँग रेखा बताती है कि विभिन्न कीमतों पर माँगी गयी मात्रा क्या होगी। इस प्रकार दोनों रेखाएँ एक-सी प्रतीत होती क्योंकि वे एक-सी बात बताती हैं।

चित्र—७८

रहने पर, यदि एक वस्तु X की कीमत में परिवर्तन होता है तो उपभोक्ता की माँग या उपभोग की मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है।

वास्तव में, 'मूल्य-प्रभाव' (Price Effect) दो प्रभावों—'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव'—का सम्मिलित परिणाम (net result) है। माना कि X वस्तु की कीमत में कमी की जाती है (जबकि अन्य बातें समान रहती हैं) तो इसका कुल प्रभाव माँग पर दो पृथक् भागों में बाँटा जा सकता है—(i) प्रथम तो X वस्तु की कीमत में कमी होने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की आर्थिक स्थिति पहले से अच्छी हो जाती है क्योंकि उसकी वास्तविक आय (real income) में वृद्धि हो जाती है और वह X वस्तु की अधिक मात्रा की माँग तथा उपभोग करता है। दूसरे शब्दों में, यह 'आय-प्रभाव' हुआ। (ii) दूसरे, X वस्तु की कीमत में कमी हो जाने के परिणामस्वरूप वह सस्ती हो जाती है, इसलिए सस्ती वस्तु X का प्रतिस्थापन दूसरी महँगी वस्तु Y के स्थान पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह 'प्रतिस्थापन प्रभाव' हुआ। अतः स्पष्ट है कि 'मूल्य-प्रभाव' वास्तव में दो प्रवृत्तियों—'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव'—का योग (sum of two tendencies) है।

चित्र—७७

कीमत प्रभाव, दोहरे प्रभाव (Dual Effect) का परिणाम है, यह बात चित्र नं० ७७ से स्पष्ट होती है। X वस्तु की कीमत में गिरावट उपभोक्ता को P बिन्दु से R बिन्दु (ऊँची तटस्थता वक्र रेखा) पर ले जाती है। P से R तक जाने का रास्ता दो भागों में बाँटा जा सकता है :
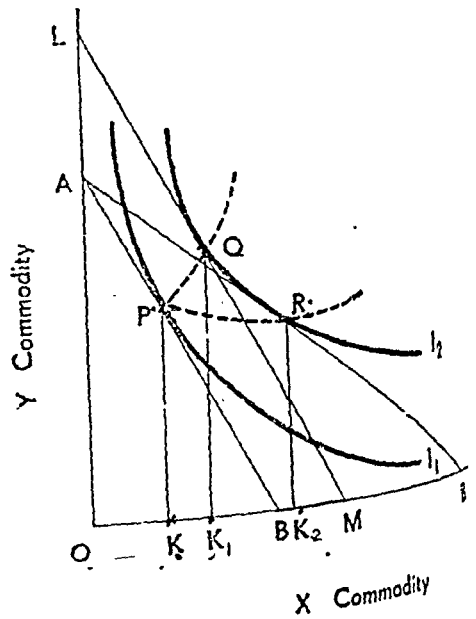
(i) P बिन्दु से Q बिन्दु तक चलन (movement), अर्थात् पहले X वस्तु की OK मात्रा का उपभोग किया जाता था, अब X वस्तु की OK_1 मात्रा का उपभोग किया जाता है। P से Q तक का चलन (movement) उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि के कारण है जबकि वास्तविक आय में वृद्धि X वस्तु की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप है। आय प्रभाव को मालूम करने के लिए पुरानी कीमत रेखा AB के समानान्तर दूसरी कीमत रेखा LM खींची जाती है जो कि ऊँची तटस्थता रेखा I_2 को Q बिन्दु पर स्पर्श करती है। आय का प्रभाव माँग पर क्या पड़ा? यह X वस्तु की बढ़ी हुई माँग KK_1 द्वारा मापा जाता है। इसे 'कीमत के गिरने का माँग पर आय प्रभाव' (income effect of price fall on demand) कहते हैं। मार्शल ने आय प्रभाव का अध्ययन नहीं किया था क्योंकि उन्होंने द्रव्य (money) की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मान लिया था।

(ii) उसी तटस्थता रेखा I_2 पर Q बिन्दु से R बिन्दु तक चलन (movement)। यह चलन 'प्रतिस्थापन प्रभाव' के कारण है क्योंकि सस्ती वस्तु X का महँगी वस्तु Y के स्थान पर

थापन किया जाता है। इसको चित्र में X वस्तु की अधिक माँग की मात्रा $K_1 K_2$ द्वारा भी 'है। इसे 'कीमत के गिरने का प्रतिस्थापन प्रभाव' (substitution effect of price fall) हैं।

अतः स्पष्ट है कि,
कीमत प्रभाव (अर्थात् P से R तक
चलन या K K_2)=आय प्रभाव+प्रतिस्थापन प्रभाव
=P से Q तक चलन+Q से R तक चलन
$=KK^1 + K_1K_2$

माँग रेखा का निकालना
(DERIVATION OF THE CONVENTIONAL DEMAND CURVE)

तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से साधारण माँग रेखा (Ordinary or conven- ıal demand curve) को निकाल सकते हैं। ऐसा करने में हम कीमत उपभोग रेखा (price ısumption curve) की सहायता लेते हैं। अतः माँग रेखा को निकालने से पूर्व 'कीमत उप- रेखा' तथा 'माँग रेखा' की समानता तथा अन्तर को समझना आवश्यक है।

चित्र नं० ७८ में ABC 'कीमत-उपभोग रेखा' (PCC) है। चित्र में उपभोक्ता जब साम्य ति A पर है तो वह $\frac{OL}{OK}$ कीमत पर वस्तु की QR मात्रा खरीदता है, या उपभोग करता है, उपभोक्ता साम्य स्थिति B पर है तथा कीमत गिर कर $\frac{OL}{OK_1}$ हो जाती है तो वह वस्तु की अधिक मात्रा OS उपभोग करता है।

चित्र—७८

यदि कीमत और कम होकर $\frac{OL}{OK_2}$ हो जाती है तथा उपभोक्ता साम्य स्थिति C पर है तो वह वस्तु की और अधिक मात्रा OT खरीदता है। स्पष्ट है कि कीमत गिरने पर वस्तु की माँग बढ़ती है। दूसरे शब्दों मे, 'कीमत-उपभोग-रेखा' (PCC) कीमत में परिवर्तन तथा उससे सम्बन्धित उपभोग की मात्रा मे परिवर्तन के बीच सम्बन्ध को बताती है। यही बात सामान्य माँग रेखा बताती है कि विभिन्न कीमतों पर माँगी गयी मात्रा क्या होगी। इस प्रकार दोनों रेखाएँ एक-सी प्रतीत होतीं क्योंकि ये एक-सी बात बताती हैं।

हने पर, यदि एक वस्तु X की कीमत में परिवर्तन होता है तो उपभोक्ता की माँग या उपभोग
मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है।

वास्तव में, 'मूल्य-प्रभाव' (Price Effect) दो प्रभावों—'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव'—का सम्मिलित परिणाम (net result) है। माना कि X वस्तु की कीमत में कमी हो जाती है (जबकि अन्य बातें समान रहती हैं) तो इसका कुल प्रभाव माँग पर दो पृथक् भागों में बाँटा जा सकता है—(i) प्रथम तो X वस्तु की कीमत में कमी होने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता की आर्थिक स्थिति पहले से अच्छी हो जाती है क्योंकि उसकी वास्तविक आय (real income) में वृद्धि हो जाती है और वह X वस्तु की अधिक मात्रा की माँग तथा उपभोग करता है। दूसरे शब्दों में, यह 'आय-प्रभाव' हुआ। (ii) दूसरे, X वस्तु की कीमत में कमी हो जाने के परिणामस्वरूप वह सस्ती हो जाती है, इसलिए सस्ती वस्तु X का प्रतिस्थापन दूसरी महँगी वस्तु Y के स्थान पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह 'प्रतिस्थापन प्रभाव' हुआ। अतः स्पष्ट है कि 'मूल्य-प्रभाव' वास्तव में दो प्रवृत्तियों—'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव'—का योग (sum of two tendencies) है।

चित्र—७७

कीमत प्रभाव, दोहरे प्रभाव (Dual Effect) का परिणाम है, यह बात चित्र नं० ७७ से स्पष्ट होती है। X वस्तु की कीमत में गिरावट उपभोक्ता को P विन्दु से R विन्दु (ऊँची तटस्थता वक्र रेखा) पर ले जाती है। P से R तक जाने का रास्ता दो भागों में बाँटा जा सकता है :

(i) P विन्दु से Q विन्दु तक चलन (movement), अर्थात् पहले X वस्तु की OK ... का उपभोग किया जाता था, अब X वस्तु की OK_1 मात्रा का उपभोग किया जाता है। P ... तक का चलन (movement) उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि के कारण है जबकि वास्तविक आय में वृद्धि X वस्तु की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप है। आय प्रभाव को मालूम करने के लिए पुरानी कीमत रेखा AB के समानान्तर दूसरी कीमत रेखा LM खींची जाती है जो ... तटस्थता रेखा I_2 को Q विन्दु पर स्पर्श करती है। आय का प्रभाव माँग पर क्या पड़ा? ... वस्तु की बढ़ी हुई माँग KK_1 द्वारा मापा जाता है। इसे 'कीमत के गिरने का माँग पर आय प्रभाव' (income effect of price fall on demand) कहते हैं। मार्शल ने आय प्रभाव को ... अस्वीकार नहीं किया था क्योंकि उन्होंने द्रव्य (money) की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर माना था।

(ii) उसी तटस्थता रेखा I_2 पर Q विन्दु से R विन्दु तक चलन (movement) ... 'प्रतिस्थापन प्रभाव' के कारण है क्योंकि सस्ती वस्तु X का महँगी वस्तु Y ...

होने के कारण 'कीमत-रेखा' (price line) की स्थितियाँ LK, LK_1 तथा LK_2 हैं। तथा C उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु है। इनको मिलाने से 'कीमत-उपभोग-रेखा' (PCC) ती है। सन्तुलन बिन्दु A से X-axis पर लम्ब (perpendicular) डालने पर वह X-axis न्दु पर मिलता है। सन्तुलन बिन्दु A बताता है कि उपभोक्ता OE द्रव्य+OR वस्तु की पने पास रखना पसन्द करता है, दूसरे शब्दों में, वह OR वस्तु की मात्रा के लिए EL र करता है। वस्तु की कीमत, 'कीमत-रेखा' LK का ढाल (slope) बताता है अर्थात

प्रति इकाई कीमत $\frac{OL}{OK}$ है, अतः सन्तुलन स्थिति A पर उपभोक्ता $\frac{OL}{OK}$ कीमत पर वस्तु

मात्रा खरीदता है। इसी प्रकार सन्तुलन स्थिति B पर वह $\frac{OL}{OK_1}$ कीमत पर वस्तु की

ा खरीदता है तथा सन्तुलन स्थिति C पर वह $\frac{OL}{OK_2}$ कीमत पर वस्तु की OT मात्रा है।

यहाँ पर अब यह कठिनाई उठती है कि $\frac{OL}{OK}$, $\frac{OL}{OK_1}$ तथा $\frac{OL}{OK_2}$ कीमतों को चित्र

दिखाया (अर्थात plot किया) जाये ? इसके लिए निम्न तरीका अपनाया जाता है। R (right) को वस्तु की एक इकाई के बराबर निशान (mark) लगाते हैं, माना वस्तु क इकाई RU के बराबर है। इसके बाद हम U से UP रेखा, LK कीमत-रेखा के र खींचते हैं। LK कीमत रेखा का ढाल (slope) वस्तु की प्रति इकाई कीमत को , इसलिए LK रेखा के समानान्तर खींची गयी रेखा UP का ढाल भी वस्तु की कीमत

गा। UP रेखा का ढाल (slope) $= \frac{PR}{RU}$ अर्थात वस्तु की कीमत $\frac{PR}{RU}$ हुई;

U=1 के, इसलिए वस्तु की कीमत PR के बराबर हुई। अतः PR कीमत पर OR मात्रा खरीदी जाती है; इस प्रकार माँग रेखा का एक बिन्दु P मालूम (plot) कर है। इसी प्रकार S के दाहिने (right) को वस्तु की एक इकाई के बराबर SV दूरी V से VP_1, LK_1 कीमत-रेखा के समानान्तर खींची। चूँकि LK_1 का ढाल (slope) प्रति इकाई कीमत को बताता है, इसलिए VP_1 का ढाल भी वस्तु की कीमत को बतायेगा।

ढाल $= \frac{P_1S}{SV}$, चूँकि SV=1, इसलिए वस्तु की कीमत P_1S हुई। अतः P_1S कीमत

की OS मात्रा खरीदी जाती है। इस प्रकार माँग रेखा का एक दूसरा बिन्दु P_1 मालूम जाता है। इसी प्रकार माँग रेखा का तीसरा बिन्दु P_2 मालूम कर लिया जाता है अर्थात त पर वस्तु की OT मात्रा खरीदी जाती है। अतः P, P_1, तथा P_2 बिन्दुओं को मिला गत माँग रेखा (conventional demand curve) DD प्राप्त हो जाती है।

परन्तु दोनों रेखाओं में समानता होते हुए भी निम्न अन्तर है :

(१) एक सामान्य माँग रेखा को खींचते समय माँगी जाने वाली वस्तु की मात्रा X-axis पर तथा कीमत को Y-axis पर दिखया जाता है।

कीमत-उपभोग रेखा (PCC) दो वस्तुओं के सम्बन्ध में खींची जाती है जिनमें से एक X-axis पर तथा दूसरी को Y-axis पर दिखाया जाता है। एक वस्तु के स्थान पर द्रव्य (money or income) को भी ले सकते हैं, ऐसी स्थिति में द्रव्य या आय को Y-axis पर तथा वस्तु को X-axis पर दिखाया जाता है।

(२) माँग रेखा के सम्बन्ध में कीमत को प्रत्यक्ष रूप में Y-axis पर दिखाया जाता है, अतः कीमतों में परिवर्तन तथा उनसे सम्बन्धित माँगी गयी वस्तुओं की मात्राओं को बड़ी आसानी से माँग रेखा से जाना जा सकता है।

परन्तु कीमत-उपभोग रेखा के सम्बन्ध में कीमत को प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाया जाता। कीमत को मालूम करने के लिए कीमत-रेखा की सहायता लेनी पड़ती है। कीमत रेखा दो वस्तुओं के कीमत अनुपात को बताती है, यदि Y-axis पर द्रव्य या आय तथा X-axis पर वस्तु को दिखाया गया है तो कीमत रेखा का ढाल वस्तु की प्रति इकाई कीमत को बतायेगा। (

चित्र में सन्तुलन स्थिति A पर वस्तु की कीमत $\frac{OL}{OK}$ होगी, सन्तुलन की स्थिति B पर वस्तु की

कीमत $\frac{OL}{OK_1}$ होगी, इत्यादि।) स्पष्ट है कि कीमत-उपभोग-रेखा से कीमतों में परिवर्तनों को

प्रत्यक्ष रूप से तथा आसानी से मालूम नहीं किया जा सकता है जबकि सामान्य माँग रेखा में कीमतों में परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप से तथा आसानी से मालूम किया जा सकता है और इस दृष्टि से सामान्य माँग रेखा, कीमत-उपभोग रेखा की अपेक्षा, श्रेष्ठ प्रतीत होती है।

(३) सामान्य माँग रेखा आय को स्थिर (constant) मानकर चलती है। कीमतों में परिवर्तन वास्तविक आय को प्रभावित करते हैं, परन्तु माँग रेखा कीमत के 'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव' को छोड़ देती है।

कीमत-उपभोग-रेखा आय को स्पष्ट रूप से Y-axis पर दिखाती है और यह कीमत परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' पर ध्यान देती है। अतः कीमत-उपभोग-रेखा अधिक गहराई तक जाती है (it goes much deeper) क्योंकि यह माँग के पीछे क्या कारण हैं उन तक जाती है और इस दृष्टि से यह, सामान्य माँग रेखा की अपेक्षा, श्रेष्ठ है।

(४) मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में माँग रेखा को प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति रेखा के साथ रखकर मूल्य-निर्धारण किया जा सकता है, जबकि कीमत-उपभोग-रेखा मूल्य निर्धारण में इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में सहायक नहीं होती।

कीमत-उपभोग-रेखा से सामान्य माँग रेखा को निकाला जा सकता है। तटस्थता रेखाओं की सहायता से माँग रेखा निकालने के कई तरीके हैं। उनमें से एक मुख्य तरीके का यहाँ पर विवेचन किया गया है। चित्र नं० ७८ में Y-axis पर आय (income) तथा X-axis पर वस्तु X को दिखाया गया है। माना उपभोक्ता की आय स्थिर तथा दी हुई है, जिसे OL द्वारा दिखायी गयी है। I_1, I_2, तथा I_3, तीन तटस्थता वक्र रेखाएँ हैं। वस्तु की

मी होने के कारण 'कीमत-रेखा' (price line) की स्थितियाँ LK, LK_1 तथा LK_2 हैं। , तथा C उपभोक्ता के संतुलन बिन्दु हैं। इनको मिलाने से 'कीमत-उपभोग-रेखा' (PCC) होती है। सन्तुलन बिन्दु A से X-axis पर लम्ब (perpendicular) डालने पर वह X-axis बिन्दु पर मिलता है। सन्तुलन बिन्दु A बताता है कि उपभोक्ता OE द्रव्य+OR वस्तु को अपने पास रखना पसन्द करता है, दूसरे शब्दों में, वह OR वस्तु की मात्रा के लिए EL व्यय करता है। वस्तु की कीमत, 'कीमत-रेखा' LK का ढाल (slope) बताता है अर्थात

की प्रति इकाई कीमत $\frac{OL}{OK}$ है, अतः सन्तुलन स्थिति A पर उपभोक्ता $\frac{OL}{OK}$ कीमत पर वस्तु

OR मात्रा खरीदता है। इसी प्रकार सन्तुलन स्थिति B पर वह $\frac{OL}{OK_1}$ कीमत पर वस्तु की

मात्रा खरीदता है तथा सन्तुलन स्थिति C पर वह $\frac{OL}{OK_2}$ कीमत पर वस्तु की OT मात्रा

दता है।

यहाँ पर अब यह कठिनाई उठती है कि $\frac{OL}{OK}$, $\frac{OL}{OK_1}$ तथा $\frac{OL}{OK_2}$ कीमतों को चित्र

से दिखाया (अर्थात plot किया) जाये? इसके लिए निम्न तरीका अपनाया जाता है। R हिने (right) को वस्तु की एक इकाई के बराबर निशान (mark) लगाते हैं, माना वस्तु ी एक इकाई RU के बराबर है। इसके बाद हम U से UP रेखा, LK कीमत-रेखा के नान्तर खींचते हैं। LK कीमत रेखा का ढाल (slope) वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ता है, इसलिए LK रेखा के समानान्तर खींची गयी रेखा UP का ढाल भी वस्तु की कीमत

बतायेगा। UP रेखा का ढाल (slope) $=\frac{PR}{RU}$ अर्थात वस्तु की कीमत $\frac{PR}{RU}$ हुई;

 RU=1 के, इसलिए वस्तु की कीमत PR के बराबर हुई। अतः PR कीमत पर तु की OR मात्रा खरीदी जाती है; इस प्रकार माँग रेखा का एक बिन्दु P मालूम (plot) कर ा गया है। इसी प्रकार S के दाहिने (right) को वस्तु की एक इकाई के बराबर SV दूरी लो, V से VP_1, LK_1 कीमत-रेखा के समानान्तर खींचो। चूँकि LK_1 का ढाल (slope) तु की प्रति इकाई कीमत को बताता है, इसलिए VP_1 का ढाल भी वस्तु की कीमत को बतायेगा।

P_1 का ढाल $=\frac{P_1S}{SV}$, चूँकि SV=1, इसलिए वस्तु की कीमत P_1S हुई। अतः P_1S कीमत

वस्तु की OS मात्रा खरीदी जाती है। इस प्रकार माँग रेखा का एक दूसरा बिन्दु P_1 मालूम र लिया जाता है। इसी प्रकार माँग रेखा का तीसरा बिन्दु P_2 मालूम कर लिया जाता है अर्थात T कीमत पर वस्तु की OT मात्रा खरीदी जाती है। अतः P, P_1, तथा P_2 बिन्दुओं को मिला से सामान्य माँग रेखा (conventional demand curve) DD प्राप्त हो जाती है।

तटस्थता-वक्र विश्लेषण का महत्त्व तथा प्रयोग
(SIGNIFICANCE AND USES OF INDIFFERENCE CURVE TECHNIQUE)

मार्शल की उपयोगिता-विश्लेषण (utility analysis) दोषपूर्ण थी; इन दोषों [illegible] की दृष्टि से हिक्स (Hicks) ने तटस्थता वक्र विश्लेषण का प्रयोग किया। [illegible] तरीका बहुत विख्यात (popular) हो गया है और अर्थशास्त्र के विभिन्न क्षेत्रों में इसका प्र[illegible] जाता है। इसके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग निम्न हैं :

(१) **विनिमय के क्षेत्र में** (In the field of exchange)—यदि दो [illegible] वस्तुओं के सम्बन्ध में अनुराग-क्रम (scale of preference) दिया हुआ है तो तटस्थता व[illegible] की मदद से यह दिखाया जा सकता है कि वे दो व्यक्ति किस सीमा तक आपस में उन [illegible] का विनिमय करेंगे।

(२) **उपभोक्ता का सन्तुलन** (Equilibrium of a consumer)—तटस्थता व[illegible] की मदद से, उपयोगिता को बिना परिमाणात्मक रूप से मापे ही, उपभोक्ता के सन्[illegible] स्थिति को मालूम किया जा सकता है। जिस बिन्दु पर कीमत रेखा, तटस्थता वक्र रेखा [illegible] रेखा होती है वह बिन्दु उपभोक्ता के सन्तुलन (अर्थात अधिकतम सन्तोष) को [illegible] बताता है।

(३) **माँग पर 'तीन प्रभावों' का अध्ययन** (Study of the 'three effects' [illegible] and)—तटस्थता वक्र रेखाओं की मदद से उपभोक्ताओं की माँग पर, आय (income), [illegible] (substitution), तथा मूल्य (price) के प्रभावों का स्पष्ट रूप से अध्ययन किया जाता है।

(४) **किन्हीं दो विकल्पों के बीच किसी व्यक्ति के अनुराग-क्रम को बताने के** [illegible] portray a person's scale of preference between any two alternatives)—[illegible] के अनुसार, तटस्थता वक्र रेखाएँ किसी व्यक्ति के आय तथा अवकाश (leisure) के बीच [illegible] क्रम को दिखा सकती हैं, वे बता सकती हैं कि वह दिन में २४ घण्टों को पुरस्कृत कार्य ([illegible] rated work) तथा अवकाश के बीच कैसे बाँटेगा। इसी प्रकार वर्तमान तथा भविष्य [illegible] तथा तरल सम्पत्तियों (liquid assets) और आय प्रदान करने वाली सम्पत्तियों के बी[illegible] अनुराग-क्रम बताने के लिए इनका प्रयोग किया जा सकता है।[12]

(५) **उपभोक्ता की बचत का अध्ययन** (Study of consumer's surplus)—[illegible] रेखाओं की सहायता से उपभोक्ता की बचत के विचार की व्याख्या की जाती है। यह [illegible] ७९ द्वारा स्पष्ट की जाती है। माना कि उपभोक्ता की द्रव्य-आय (money income) [illegible] X वस्तु को X-axis पर दिखाया गया है। AB कीमत रेखा (price line) है। P [illegible] का सन्तुलन बिन्दु है जो कि X वस्तु की OQ मात्रा + OM द्रव्य के संयोग [illegible] उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा को खरीदने के लिए AM या LP द्रव्य देता है। [illegible] की तटस्थता वक्र रेखा I_2 पर है, इसका अर्थ है कि X वस्तु की उतनी ही मात्रा OQ [illegible] के लिए उपभोक्ता LS या AN द्रव्य देने को तैयार है, परन्तु वह वास्तव में LP या AM [illegible] देता है, अतः LS—LP = PS या MN उपभोक्ता की बचत हुई।
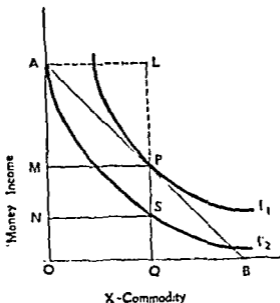
चित्र—७६

(६) राशनिंग का उपभोक्ता की सन्तुष्टि पर प्रभाव बताने के लिए (To show effect of rationing on consumer's satisfaction)—राशनिंग शुरू होने से पहले का वस्तु की OM_1 मात्रा खरीदता था तथा OL_1 द्रव्य की मात्रा अपने पास रखता था; यह संयोग P_1 बिन्दु द्वारा बताया गया है। राशनिंग लागू हो जाने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता अब वस्तु की केवल OM_2 मात्रा ही खरीद सकता है, यद्यपि अब उसके पास द्रव्य की अधिक मात्रा OL_2 रह जाती है—यह संयोग P_2 बिन्दु द्वारा बताया जाता है। परन्तु P_2 बिन्दु एक नीची तटस्थता रेखा I_2 पर स्थित है। अतः राशनिंग लागू हो जाने के बाद उपभोक्ता का सन्तोष पहले की अपेक्षा कम हो जाता है। यद्यपि उसके पास पहले की अपेक्षा अधिक द्रव्य बच रहता है जिसे वह अन्य वस्तुओं पर व्यय कर सकता है।
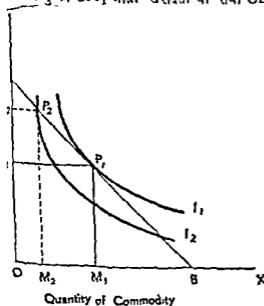
चित्र—८०

(७) **कर निर्धारण में प्रयोग** (Use in taxation)—कर लगाते समय [illegible] दृष्टिकोण यह रहता है कि वह ऐसे कर लगाये जिससे करदाताओं पर कम भार पड़े। [illegible] में तटस्थता वक्र रेखाएँ सहायक सिद्ध होती हैं। इन रेखाओं द्वारा यह दिखाया जा [illegible] सामान्यतया उपभोक्ताओं पर आय-कर का बोझ, अपेक्षाकृत बिक्री-कर या उत्पादन-[illegible] होता है।

(८) **सूचक अंकों की समस्या में प्रयोग** (Use in index numbers)—प्रो० [illegible] (Stigler) ने बताया है कि तटस्थता वक्र रेखाओं का प्रयोग सूचक अंकों की समस्या [illegible] में किया जा सकता है। माना कि उपभोक्ता का दो वस्तुओं के सम्बन्ध में अनुराग क्रम ([illegible] preference) समान रहता है परन्तु वह दो वस्तुओं के संयोग दोनों समयों में विभिन्न [illegible] अनुपात (price-ratio) पर प्रयोग करता है तो सूचक अंक सम्बन्धी समस्या यह है कि [illegible] दूसरे समय में, पहले समय की अपेक्षा, अच्छी स्थिति में है या बुरी स्थिति में है। इस[illegible] तटस्थता वक्र रेखाओं की मदद से दिया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, तटस्थता [illegible] की सहायता से यह ज्ञात किया जा सकता है कि उपभोक्ता का जीवन-स्तर दूसरे समय [illegible] समय की अपेक्षा, ऊँचा हो गया या नीचा।

(९) **उत्पादन के क्षेत्र में** (In the field of production)—उत्पादन के [illegible] तटस्थता रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। इस क्षेत्र में इनको 'Iso-quant curves' [illegible]

तटस्थता वक्र विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(CRITICAL ESTIMATE OF THE INDIFFERENCE CURVE TECHNIQUE)

यह कहा जाता है कि हिक्स के तटस्थता-विश्लेषण ने मार्शल के उपयोगिता-[illegible] दोषों को दूर किया तथा पुराने निष्कर्षों का पुनर्निर्माण करते हुए उन्हें अधिक निश्चित [illegible] निक रूप दिया। प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या तटस्थता-विश्लेषण उपयोगिता-[illegible] ऊपर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए यह आवश्यक है कि हम [illegible] विश्लेषण के गुण (merits) तथा दोष (demerits) दोनों का अध्ययन करें और [illegible] निष्कर्ष पर पहुँचें।

है। दूसरे शब्दो मे, तटस्थता विश्लेषण कम मान्यताओं पर आधारित है और उपयोगिता पण से श्रेष्ठ है।

(४) तटस्थता विश्लेषण किसी वस्तु की कीमत में कमी होने से उस वस्तु की माँग पर वाले प्रभाव की व्याख्या करने में 'आय प्रभाव' (जिसका अध्ययन मार्शल ने नहीं किया था) 'प्रतिस्थापन प्रभाव' दोनों को ध्यान मे रखता है। अतः यह उपयोगिता-विश्लेषण से श्रेष्ठ वास्तव में, आर्थिक सिद्धान्त के विश्लेषण में 'प्रतिस्थापन' को प्रमुख स्थान देने का श्रेय का है।

(५) तटस्थता-विश्लेषण सम्बन्धित वस्तुओं (Related goods), प्रतिस्पर्द्धात्मक (Competive) तथा पूरक (Complementary) वस्तुओं का भी अध्ययन करता है, जबकि मार्शल ने नहीं किया। अत. यह अधिक वास्तविक तथा श्रेष्ठ है। मार्शल ने केवल एक वस्तु का ही यन किया जैसे कि उस वस्तु की उपयोगिता केवल उस वस्तु की पूर्ति पर ही निर्भर करती हो; व में, वस्तु विशेष की उपयोगिता अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की पूर्ति पर भी निर्भर करती है।

(६) तटस्थता विश्लेषण का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र मे भी किया जाता है। अतः प्रो० ने तटस्थता विश्लेषण के रूप में सभी क्षेत्रों के लिए एक एकीकृत सिद्धान्त (unified theory) त की। यह इस सिद्धान्त की श्रेष्ठता को बताता है।

पता-वक्र विश्लेषण के दोष (Defects of Indifference Curve Technique)

(१) प्रो० हिक्स के अनुसार, एक उपभोक्ता दो वस्तुओं पर अपनी आय को व्यय करते एक वस्तु में थोड़ी वृद्धियों (small increments) की सापेक्षिक तुलना दूसरी वस्तु मे थोड़ी यों से करता है। परन्तु प्रो० नाइट (Prof Knight) तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि हार में उपभोक्ता तो परिमाणात्मक उपयोगिता (cardinal utility) तथा कुल सन्तुष्टि को के शब्दों में सोचता है, इसलिए माँग-सिद्धान्त (theory of demand) को उन बातों पर धारित न करके हिक्स ने गलती की।

(२) आलोचकों द्वारा बताया गया है कि तटस्थता विश्लेषण भी, उपयोगिता विश्लेषण भाँति, बहुत-सी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है; जैसे :

(i) उपभोक्ता पूर्ण विवेकशीलता (Perfect rationality) से प्रभावित होता है तथा समझ कर व्यय करता है। परन्तु व्यवहार में उपभोक्ता व्यय करते समय प्रायः आदतों, रीति-वाजों, परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होता है न कि केवल विवेकशीलता से।

(ii) उपभोक्ता को अपने तटस्थता मानचित्र (Indifference map) की पूर्ण जानकारी ती है। परन्तु ऐसा मानना भी गलत है। उपभोक्ता एक या दो संयोगो के सम्बन्ध मे स्पष्ट नकारी रख सकता है परन्तु उसके लिए बहुत से संयोगों के बीच चुनाव करना बहुत कठिन तथा व्यवहारिक है। प्रो० बोल्डिंग (Boulding) ने ठीक कहा है कि "हम कुछ निश्चित स्थितियों tuations) में चुनाव कर सकते हैं, परन्तु हमारे लिए स्थितियों की बहुत अधिक संख्याओं के र चुनाव करना सम्भव नहीं है।"[18]

(iii) अन्य मान्यताएँ हैं : वस्तु का प्रमापित (Standardised) होना, पूर्ण प्रतियोगिता पाया जाना, बाजार में उपभोक्ता के चुनाव पर कोई संस्थात्मक नियन्त्रण (institutional ntrol) का न होना। परन्तु ये सब मान्यताएँ अवास्तविक हैं।

"We make choice in particular situations, we do not contemplate making choices in an indefinitely large number of situations." —Boulding, *Reconstruction of Economics*.

११ जीवन-स्तर तथा पारिवारिक बजट
[STANDARD OF LIVING AND FAMILY BUDGET]

जीवन स्तर का अर्थ
(MEANING OF STANDARD OF LIVING)

किसी व्यक्ति के जीवन-स्तर का अर्थ उन वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा (quantities) या किस्मों (kinds) से होता है जिनको वह एक दिये हुए समय में प्राप्त करके उपभोग करता और उनके प्रयोग का अभ्यस्त हो गया है।

जीवन-स्तर की उपर्युक्त परिभाषा के अर्थ को भली-भाँति समझने के लिए निम्न बातें ध्यान में रखना आवश्यक है :

(१) परिभाषा में 'अभ्यस्त' शब्द महत्वपूर्ण है। व्यवहार में प्रत्येक व्यक्ति अपने उपभोग के लिए कुछ निश्चित वस्तुओं तथा सेवाओं को चुनता है, इनमें से कुछ आवश्यक आरामदायक या विलासिता की वस्तुएँ हो सकती हैं। इन वस्तुओं का निरन्तर उपभोग करते रहने से एक व्यक्ति उनका इतना अभ्यस्त हो जाता है कि यदि ये वस्तुएँ उसे उपलब्ध न हों तो उसे कष्ट होता है। अतः जिन वस्तुओं तथा सेवाओं का एक व्यक्ति आदी हो जाता है वे उसके जीवन-स्तर को बनाती हैं।

(२) स्पष्ट है कि जीवन-स्तर व्यक्ति की आदतों पर निर्भर करता है; आदतें आसानी तथा शीघ्रता से नहीं बदलतीं; इसलिए एक व्यक्ति का जीवन-स्तर साधारण रूप से निश्चित-सा रहता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जीवन-स्तर बिल्कुल स्थिर रहता है, बदला नहीं जा सकता। एक व्यक्ति का जीवन-स्तर इस दृष्टि से दिया हुआ या निश्चित कहा जाता है कि वह, जहाँ तक हो सकता है, उसे नीचे नहीं गिरने देता क्योंकि उसको कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रयोग की आदत पड़ गयी है। परन्तु वह जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न अवश्य करता है और इस दृष्टि से उसका जीवन-स्तर स्थिर नहीं रह जाता।

(३) जीवन-स्तर एक सापेक्षिक तथा तुलनात्मक शब्द है। इसका प्रयोग प्रायः दो व्यक्तियों, वर्गों, देशों अथवा एक ही देश में दो कालों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए किया जाता है।

(४) चूँकि जीवन-स्तर की माप उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा तथा रूप द्वारा की जाती है, इसलिए जीवन-स्तर किसी व्यक्ति, वर्ग या देश की आर्थिक उन्नति का सूचक (index) होता है।

(५) मार्शल ने 'जीवन-प्रमाप' (Standard of Life) शब्द का भी प्रयोग किया है। अतः 'जीवन-स्तर' (Standard of living) तथा 'जीवन-प्रमाप' (Standard of life) के अन्तर को भी समझ लेना आवश्यक है। 'जीवन-स्तर' का तात्पर्य उन भौतिक वस्तुओं तथा सेवाओं से है जिनका उपभोग करने के हम आदी हो गये हैं। 'जीवन-प्रमाप' अधिक विस्तृत है। यह जीवन के उच्च आदर्शों की ओर संकेत करता है और इसके अन्तर्गत अभौतिक वस्तुएँ, जैसे, ईमानदारी, सच्चाई, अच्छा चरित्र, इत्यादि भी आ जाती हैं। एक व्यक्ति का 'जीवन-स्तर' ऊँचा हो सकता

(३) तटस्थता विश्लेषण के बारे में एक मुख्य आलोचना यह की जाती है कि **यह कोई ाधारभूत नवीनता लिए हुए नहीं है; पुराने विचारों को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर दिया या है, पुरानी शराब नयी बोतल में भर दी गयी है।** उदाहरणार्थ, 'परिमाणवाचक प्रणाली' :ardinal number system) के एक, दो, तीन इत्यादि के स्थान पर 'क्रमवाचक प्रणाली' ordinal number system) के पहला, दूसरा, तीसरा इत्यादि का प्रयोग; 'उपयोगिता' के स्थान र 'अधिमान क्रम' (preference scale); 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'प्रतिस्थापन की ीमान्त दर', तथा 'क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम' के स्थान पर 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन र' का प्रयोग किया गया है। उपयोगिता विश्लेषण रीति में उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति $\frac{\text{M. U. of X}}{\text{Price of X}} = \frac{\text{M. U. of Y}}{\text{Price of Y}} = \frac{\text{M. U. of Z}}{\text{Price of Z}}$, इत्यादि समीकरण द्वारा बतायी जाती , जबकि तटस्थता विश्लेषण के अनुसार, उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए, दो वस्तुओं की प्रति- ापन दर=वस्तुओं का कीमत अनुपात (price ratio)—का यह समीकरण दिया जाता है। त: कहा जाता है कि **तटस्थता विश्लेषण रीति पुरानी रीति को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर ती है।**

परन्तु प्रो० हिक्स इस विचार से सहमत नहीं हैं। सीमान्त उपयोगिता के बिना परि- ाणात्मक मापन के ही प्रो० हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता के अनुपात को एक िश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते हैं, जबकि दोनों वस्तुओं ी मात्राएँ दी हुई होती हैं।

(४) **जब व्यय दो से अधिक वस्तुओं पर किया जाता है तो तटस्थता रेखाएँ अपनी सरलता ो खो देती हैं।** तीन वस्तुओं के लिए हमें तीन माप (three dimensions) चाहिए; तीन स्तुओं से अधिक होने पर रेखागणित (geomery) विफल (fail) हो जाती है तथा हमें बीज- णित (algebra) का सहारा लेना पड़ता है।

(५) वास्तव में, **तटस्थता वक्र विश्लेषण रीति बहुत जटिल होती है।** इसका प्रयोग केवल ही अर्थशास्त्री कर सकते हैं जिनका गणित का ज्ञान तथा अध्ययन बहुत अधिक हो।

(६) **शुम्पीटर** (Schumpeter) तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि **तटस्थता विश्लेषण ीति का प्रयोग व्यावहारिक अनुसन्धान** (empirical research) **में नहीं किया जा सकता है।** ग्रपि काल्पनिक तटस्थता वक्र रेखाएँ खींची जा सकती हैं परन्तु वास्तविक तटस्थता रेखाओं को ींचना सम्भव नहीं है।

ष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि तटस्थता विश्लेपण रीति, उपयोगिता िश्लेपण रीति से एक दम नयी या सर्वथा भिन्न नहीं है। यदि उपयोगिता विश्लेपण के अनेक दोप तो तटस्थता विश्लेपण भी दोपों से मुक्त नहीं है। परन्तु फिर भी यह कहना ठीक ही होगा कि ई दृष्टियों से तटस्थता विश्लेपण, उपयोगिता विश्लेपण पर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है। सका प्रयोग अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका है।

१९ जीवन-स्तर तथा पारिवारिक बजट
[STANDARD OF LIVING AND FAMILY BUDGET]

जीवन स्तर का अर्थ
(MEANING OF STANDARD OF LIVING)

किसी व्यक्ति के जीवन-स्तर का अर्थ उन वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा (quantities) तथा किस्मों (kinds) से होता है जिनको वह एक दिये हुए समय में प्राप्त करके उपभोग करता है और उनके प्रयोग का अभ्यस्त हो गया है।

जीवन-स्तर की उपर्युक्त परिभाषा के अर्थ को भली-भाँति समझने के लिए निम्न बातें ध्यान में रखना आवश्यक है :

(१) परिभाषा में 'अभ्यस्त' शब्द महत्वपूर्ण है। व्यवहार में प्रत्येक व्यक्ति अपने उपभोग के लिए कुछ निश्चित वस्तुओं तथा सेवाओं को चुनता है; इनमें से कुछ आवश्यक आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुएँ हो सकती हैं। इन वस्तुओं का निरन्तर उपभोग करते रहने से एक व्यक्ति उनका इतना अभ्यस्त हो जाता है कि यदि ये वस्तुएँ उसे उपलब्ध न हों तो उसे कष्ट होता है। अतः जिन वस्तुओं तथा सेवाओं का एक व्यक्ति आदी हो जाता है वे उसके जीवन-स्तर को बताती हैं।

(२) स्पष्ट है कि जीवन-स्तर व्यक्ति की आदतों पर निर्भर करता है; आदतें आसानी से तथा शीघ्रता से नहीं बदलतीं; इसलिए एक व्यक्ति का जीवन-स्तर साधारण रूप से निश्चित-सा रहता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जीवन-स्तर बिल्कुल स्थिर रहता है, बदला ही नहीं जा सकता। एक व्यक्ति का जीवन-स्तर इस दृष्टि से दिया हुआ या निश्चित कहा जाता है कि वह, जहाँ तक हो सकता है, उसे नीचे नहीं गिरने देता क्योंकि उसको कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रयोग की आदत पड़ गयी है। परन्तु वह जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न अवश्य करता है और इस दृष्टि से उसका जीवन-स्तर स्थिर नहीं रह जाता।

(३) जीवन-स्तर एक सापेक्षिक तथा तुलनात्मक शब्द है। इसका प्रयोग प्रायः दो व्यक्तियों, वर्गों, देशों अथवा एक ही देश में दो कालों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए किया जाता है।

(४) चूँकि जीवन-स्तर की माप उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा तथा रूप द्वारा की जाती है, इसलिए जीवन-स्तर किसी व्यक्ति, वर्ग या देश की आर्थिक उन्नति का सूचक (index) होता है।

(५) मार्शल ने 'जीवन-प्रमाप' (Standard of Life) शब्द का भी प्रयोग किया है। अतः 'जीवन-स्तर' (Standard of living) तथा 'जीवन-प्रमाप' (Standard of life) के अन्तर को भी समझ लेना आवश्यक है। 'जीवन-स्तर' का तात्पर्य उन भौतिक वस्तुओं तथा सेवाओं से है जिनका उपभोग करने के हम आदी हो गये हैं। 'जीवन-प्रमाप' अधिक विस्तृत है। यह जीवन के उच्च आदर्शों की ओर संकेत करता है और इसके अन्तर्गत अभौतिक वस्तुएँ, जैसे, ईमानदारी, सच्चाई, अच्छा चरित्र, इत्यादि भी आ जाती हैं। एक व्यक्ति का 'जीवन-स्तर' ऊँचा हो सकता,

है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसका जीवन-प्रमाप भी उच्च हो; उसका 'जीवन-प्रमाप' नीचा भी हो सकता है। पुनः एक व्यक्ति का 'जीवन-स्तर' ऊँचा हो सकता है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उस व्यक्ति को सुख तथा वास्तविक आनन्द (happiness) का भी अनुभव होता हो; एक ऋषि या मुनि जिसका जीवन-स्तर नीचा है, एक धनी सेठ की अपेक्षा जिसका जीवन-स्तर ऊँचा है, अधिक सुखी हो सकता है। दूसरे शब्दों में, **प्रत्येक देश अपने निवासियों का केवल जीवन-स्तर ही ऊँचा करने का प्रयत्न नहीं करता वरन जीवन-प्रमाप को भी उठाने का पूरा प्रयत्न करता है।**

जीवन-स्तर का महत्व
(IMPORTANCE OF STANDARD OF LIVING)

जीवन-स्तर किसी व्यक्ति, वर्ग या देश की आर्थिक उन्नति का सूचक (index) होता है। जिस देश में लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है वह देश आर्थिक दृष्टि से प्रगतिशील तथा उन्नतिशील होगा; इसके विपरीत जिस देश में जीवन-स्तर नीचा होता है वह आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ होगा।

प्रत्येक सरकार अपने निवासियों का ऊँचा जीवन-स्तर चाहती है। ऊँचे जीवन-स्तर का अर्थ है कि लोग अपनी आवश्यक तथा आरामदायक आवश्यकताओं की भली-भाँति पूर्ति कर सकेंगे, इससे **कार्यक्षमता में वृद्धि** होगी और परिणामस्वरूप देश में उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय बढ़ेगी। श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊँचा होगा तो उनकी कार्य क्षमता तथा मजदूरी में भी वृद्धि होगी और यदि वे अपनी बढ़ी हुई मजदूरी को उचित प्रकार से व्यय करेंगे तो देश के उत्पादन में और वृद्धि होगी। ऊँचे जीवन-स्तर के कारण कृषि, उद्योग, व्यापार, विज्ञान, कला इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में वृद्धि होती है, लोगों में ईमानदारी की भावना पैदा होगी तथा उनका चरित्र ऊँचा उठेगा। अतः ऊँचा जीवन-स्तर प्रगतिशील देश का द्योतक होता है।

यदि किसी देश में जीवन स्तर नीचा है तो इसका देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है। निम्न जीवन-स्तर (अर्थात निर्धनता) के कारण लोग अपनी आवश्यक तथा आरामदायक आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पायेंगे, उनका स्वास्थ्य खराब रहेगा, उनकी कार्य-क्षमता गिर जायेगी, परिणामस्वरूप देश में उत्पादन कम होगा और राष्ट्रीय आय कम होने लगेगी। कृषि, उद्योग, व्यापार, विज्ञान इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में देश पिछड़ जायेगा। श्रमिकों का नीचा जीवन-स्तर उनकी कार्य-क्षमता को गिरायेगा तथा उत्पादन कम होगा; उत्पादन कम होने से मजदूरी कम होगी जिससे उनका जीवन-स्तर तथा उत्पादन और गिरेगा एवं निर्धनता बढ़ेगी; यह विषैला चक्र (vicious circle) चलता रहेगा। अतः नीचा जीवन-स्तर देश के पिछड़ेपन का प्रतीक है।

स्पष्ट है जीवन-स्तर किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करता है। प्रत्येक देश का यह उद्देश्य होता है कि वह अपने देश का जीवन-स्तर ऊँचा उठाकर देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि करे तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके जीवन-स्तर को और ऊँचा उठाये।

जीवन-स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व

सामान्य रूप से हम यह कह सकते है कि जीवन-स्तर दो शक्तियों (forces) : (I) वातावरण (environment) जैसे समय, आय, वर्ग इत्यादि; तथा (II) व्यक्तित्व (individuality) से प्रभावित होता है।

I. वातावरण (Environment)

(१) समय (Time)—समय के साथ-साथ जीवन-स्तर बदलता जाता है। किसी भी देश मे ५० वर्ष पहले के जीवन-स्तर तथा आज के जीवन-स्तर में अन्तर पाया जायेगा। कृषि, उद्योग, यातायात तथा सम्वादवहन के साधनों, विज्ञान इत्यादि में समय के साथ बहुत उन्नति हो चुकी है जिसके परिणामस्वरूप लोगों का जीवन-स्तर पहले की अपेक्षा ऊँचा हो गया है। कुछ समय पहले जो वस्तुएँ विलासिता की वस्तुएँ समझी जाती थी, जैसे, रेडियो, ट्रांजिस्टर, पंखा इत्यादि वे अब सस्ती हो गयी हैं और साधारण व्यक्ति भी उनका प्रयोग कर सकते हैं। भविष्य में विज्ञान तथा अन्य क्षेत्रों में और अधिक उन्नति के साथ लोगों का जीवन-स्तर और ऊँचा उठ सकता है। अत. समय के अनुसार जीवन-स्तर में परिवर्तन होता रहता है।

(२) आय (Income)—(i) जीवन-स्तर तथा व्यक्ति की आय में बहुत निकट का सम्बन्ध होता है। जिस मनुष्य की आय अधिक है वह पर्याप्त मात्रा में तथा अच्छी किस्म की वस्तुओं और सेवाओं का प्रयोग करके अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सकेगा। इसके विपरीत जिस व्यक्ति की आय कम होगी उसका जीवन-स्तर नीचा होगा।

(ii) यदि प्राकृतिक साधनों की बाहुल्यता है तथा उनका उचित शोषण (exploitation) किया जाता है तो इससे राष्ट्रीय आय बढ़ेगी; परिणामस्वरूप व्यक्तियों की आय भी बढ़ेगी (यदि आय का बहुत अधिक असमान वितरण न हो) और इस प्रकार आय में वृद्धि के साथ व्यक्तियों का जीवन-स्तर ऊँचा उठेगा।

(iii) इसी प्रकार कृषि तथा उद्योग के क्षेत्रों में उन्नति तथा विकास के साथ देश तथा व्यक्तियों की आय मे वृद्धि होगी और जीवन-स्तर ऊँचा होगा।

(iv) यातायात तथा संवादवहन की अच्छी सुविधाओं की व्यवस्था से कृषि, उद्योग, व्यापार इत्यादि में वृद्धि होगी, जिससे देश की आय में वृद्धि होगी और परिणामस्वरूप जीवन-स्तर ऊँचा होगा।

(v) यदि देश मे अच्छी सामाजिक सुरक्षा (Social Security) की व्यवस्था है अर्थात् वृद्धावस्था की पेंशन, श्रमिकों के चोट लगने पर क्षतिपूर्ति (compensation), बेरोजगारी का बीमा, मातृत्व लाभ इत्यादि की अच्छी व्यवस्था है तो इससे लोगों का वास्तविक आय मे वृद्धि होती है और उनका जीवन-स्तर ऊँचा होता है।

(vi) यदि प्राकृतिक साधनों के शोषण तथा कृषि और उद्योग मे उन्नति के साथ जनसंख्या में अधिक तीव्र गति से वृद्धि होती है तो प्रति व्यक्ति आय कम हो जायेगी और जीवन-स्तर गिर जायेगा।

(vii) राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ यदि वस्तुओं की कीमत बहुत ऊँची हो जाती है तो मुद्रा की क्रय शक्ति बहुत कम हो जायेगी, अर्थात व्यक्तियों की वास्तविक आय कम हो जायेगी और उनका जीवन-स्तर गिर जायेगा।

(३) वर्ग (Class)—समाज मे धन के असमान वितरण के परिणामस्वरूप विभिन्न वर्गों का जन्म हो जाता है। यदि धन का वितरण

हाथ में धन केन्द्रित हो जाता है उनका जीवन-स्तर ऊँचा होता है और अधिकांश जनता का जीवन-स्तर नीचा होता है। धन के वितरण की दृष्टि से प्रायः समाज में तीन वर्ग पाये जाते हैं—**उच्च वर्ग, मध्य वर्ग** तथा **निम्न वर्ग**। उच्च वर्ग का जीवन-स्तर सबसे ऊँचा, मध्य वर्ग का जीवन-स्तर उससे नीचा तथा निम्न वर्ग का जीवन-स्तर सबसे नीचा रहता है। इस प्रकार जीवन-स्तर वर्ग पर निर्भर करता है।

पश्चिमी देशों में निम्न वर्ग अपने को संगठित करके अपने जीवन-स्तर को नीचे नहीं गिरने देता। वहाँ पर श्रमिकों के संगठन अधिक शक्तिशाली होते हैं जो श्रमिकों के जीवन-स्तर को केवल नीचे गिरने से ही नहीं रोकते हैं वरन उसको निरन्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

भारतवर्ष जैसे देश में **जाति व्यवस्था के कारण भी विभिन्न वर्ग** पाये जाते हैं, जैसे ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, शूद्र। इन सबके जीवन-स्तर में अन्तर पाया जाता है।

(४) **सामाजिक रीति-रिवाज** (Social customs)— किसी भी देश में वहाँ के सामाजिक रीति-रिवाजों का प्रभाव वहाँ के निवासियों पर पड़ता है; उदाहरणार्थ, भारत में हिन्दुओं में शादी पर दहेज दिया जाता है। यह दहेज की प्रथा मध्य तथा निम्न वर्ग के लोगों के जीवन-स्तर को गिराती है क्योंकि उनकी आय का एक बड़ा भाग दहेज, प्रीतिभोज इत्यादि में निकल जाता है। इसी प्रकार अन्य सामाजिक प्रथाओं को पूरा करने में आय का एक भाग निकल जाता है जिससे जीवन-स्तर नीचा होता है।

(५) **जलवायु** (Climate)—इंगलैण्ड, अमरीका इत्यादि ठण्डे देशों में कोट-पेण्ट इत्यादि का पहनना जरूरी है, इन देशों की ठण्डी जलवायु के कारण लोग अधिक मेहनती होते हैं तथा अधिक धन कमाते हैं, अच्छे वस्त्रों इत्यादि का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार इनका जीवन-स्तर ऊँचा होता है। इसके विपरीत भारतवर्ष में गरम जलवायु के कारण लोग कम मेहनती होते हैं, दक्षिण में अधिक गर्मी पड़ने पर वहाँ के निवासी लुँगी का प्रयोग करते हैं, जन साधारण प्रायः कमीज, कुर्ता इत्यादि भी नहीं पहनते; इस तरह इनका जीवन-स्तर नीचा होता है।

(६) **देश में शान्तिपूर्ण वातावरण** (Peaceful atmosphere in the country)—अच्छे जीवन-स्तर के लिए अच्छी आय के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों। यदि देश में अशान्ति तथा युद्ध की स्थिति रहती है तो लोगों को पर्याप्त मात्रा में वस्तुएँ नहीं मिलेंगी और उनका जीवन-स्तर गिर जायेगा। अतः देश में शान्तिपूर्ण वातावरण भी जीवन-स्तर को प्रभावित करता है।

II. **व्यक्तित्व** (Individuality)

(१) **परिवारगत प्रभाव** (Hereditary influence)—व्यक्ति के जीवन-स्तर पर उसके माता-पिता तथा परिवार के जीवन-स्तर का प्रभाव पड़ता है। एक डॉक्टर, इंजीनियर या प्रोफेसर का लड़का कम से कम अपने परिवार के जीवन-स्तर को बनाये रखने का अवश्य प्रयत्न करेगा क्योंकि उसके व्यक्तित्व पर परिवार का प्रभाव रहता है।

(२) **व्यय करने का ढंग** (Method of spending one's income)—किसी भी व्यक्ति का जीवन-स्तर उसकी आय को व्यय करने के ढंग से प्रभावित होता है। यदि एक व्यक्ति सोच-समझ कर अपनी आय को आवश्यक तथा आरामदायक वस्तुओं पर व्यय करता है तो उसका जीवन-स्तर उस व्यक्ति की अपेक्षा ऊँचा होगा जो अपनी आय का अधिकांश भाग बिना सोचे-समझे विलासिता की आवश्यक वस्तुओं पर बर्बाद करता है।

(३) धार्मिक विचारों का प्रभाव (Influence of religion)—भारत में हिन्दुओं का धर्म अपनी आवश्यकताओं को सीमित करने पर जोर देता है, अतः जिन हिन्दुओं पर धार्मिक विचारों का प्रभाव अधिक होता है वे अपनी भौतिक आवश्यकताओं को कम से कम करके अत्यन्त सादा जीवन व्यतीत करते हैं; इस प्रकार उनका जीवन-स्तर (standard of living) नीचा रहता है यद्यपि उनका जीवन-प्रमाप (standard of life) ऊँचा हो सकता है। पाश्चात्य देशों में ईसाई धर्म के अनुयायी अपनी आवश्यकताओं को बहुत अधिक सीमित करने में विश्वास नहीं करते, वे विभिन्न प्रकार के भौतिक सुख और आराम को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और उनका जीवन स्तर ऊँचा होता है।

(४) व्यक्ति की शिक्षा तथा रुचि (Education and taste of an individual)—शिक्षा से एक व्यक्ति की कार्य-क्षमता में वृद्धि होती है जिससे उसकी आय भी बढ़ती है और उसका जीवन-स्तर ऊँचा होता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा से व्यक्ति का दृष्टिकोण विस्तृत होता है, उसकी रुचि में परिवर्तन होता है; और विभिन्न प्रकार की सुन्दर, कलात्मक तथा आरामदायक वस्तुओं का उसे ज्ञान हो जाता है। शिक्षा के परिणामस्वरूप वह अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के प्रति जागरूक हो जाता है और उसे ऊँचा करने का भरसक प्रयत्न करता है।

(५) विदेश-सम्पर्क (Contact with foreign countries)—जिस व्यक्ति को विदेशों में जाने का अवसर प्राप्त होता है वह बहुत-सी वस्तुओं के प्रयोग का महत्व सीखता है, विदेशियों के सम्पर्क में आने से उसकी विचारधारा में परिवर्तन होता है। इन सब परिवर्तनों एवं प्रभावों के परिणामस्वरूप वह अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है।

भारत में निम्न जीवन-स्तर के कारण
(FACTORS RESPONSIBLE FOR LOW STANDARD OF LIVING IN INDIA)

जीवन-स्तर विभिन्न तत्वों से प्रभावित होता है। व्यक्तियों तथा देश की आय, व्यय करने का ढंग, धन का वितरण, सामाजिक रीति-रिवाज, कृषि, उद्योग, यातायात के साधनों इत्यादि की स्थिति—ये सब बातें किसी देश के जीवन-स्तर को प्रभावित करती हैं। यदि इन सब तत्वों को हम भारत के संदर्भ में देखें तो यह स्पष्ट होता है कि अपने देश में निम्न जीवन-स्तर क्यों है ? भारत में निम्न जीवन-स्तर के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(१) भारत की अविकसित अर्थ-व्यवस्था—भारत आर्थिक दृष्टि से पिछडा हुआ देश है, कृषि, उद्योग, इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन तथा उत्पादकता (production and productivity) बहुत कम है। नियोजन (planning) को अपनाने के पश्चात उत्पादन में वृद्धि अवश्य हुई है परन्तु देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए यह बहुत कम है, इसके साथ ही अन्य देशों की अपेक्षा अभी उत्पादन बहुत कम है।

भारत की अर्थ-व्यवस्था के अविकसित रहने का एक मुख्य कारण यह रहा है कि देश वर्षों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहा और ब्रिटिश सरकार ने देश को आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

(२) असन्तुलित अर्थ-व्यवस्था—भारत आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ ही नहीं है बल्कि उसकी अर्थ-व्यवस्था भी असन्तुलित है। आज भी भारत में लगभग ७०% लोग प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं तथा केवल १४% लोग ही उद्योग-धन्धों में लगे हुए हैं। इस असन्तुलित अर्थ-व्यवस्था के परिणामस्वरूप यहाँ पर प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है और लोगों का जीवन-स्तर निम्न है।

पारिवारिक बजट के बनाने की रीति तथा उसका स्वरूप—पारिवारिक बजट को बनाने के लिए उसको तीन भागों में विभाजित किया जाता है। **प्रथम**, प्रारम्भिक भाग सूचना प्रधान होता है। इसमें परिवार के स्वामी का नाम, व्यवसाय का पद लिखा जाता है। इसके साथ-साथ इसमें परिवार के सदस्यों की कुल संख्या (स्त्री तथा पुरुष और बच्चे), उन सबकी आयु, बजट की अवधि, विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय इत्यादि बातें लिखी जाती हैं। बजट का **दूसरा भाग** अनुमान प्रधान होता है : इसमें विभिन्न मदों पर व्यय की जाने वाली अनुमानित राशि लिखी जाती है, इसके लिए प्रयोग में आने वाली विभिन्न वस्तुओं की मात्रा या संख्या, दर इत्यादि लिखी जाती है। बजट का **तीसरा भाग** दूसरे भाग का सारांश होता है, इसमें विभिन्न वस्तुओं पर व्यय की गयी राशि को आय के प्रतिशत के रूप में लिखा जाता है।

उपर्युक्त से स्पष्ट होता है कि **पारिवारिक बजट निम्न बातों पर प्रकाश डालता है** :

(i) परिवार का स्वामी कौन है और उसका क्या व्यवसाय है।

(ii) परिवार में कुल कितने लोग हैं।

(iii) परिवार की कुल आय कितनी है और किन-किन स्रोतों से प्राप्त होती है।

(iv) परिवार आवश्यक, आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुओं का प्रयोग किस मात्रा में करता है।

(v) विभिन्न वस्तुओं पर व्यय की जाने वाली राशि कुल आय की कितनी प्रतिशत है, तथा

(vi) परिवार ऋणग्रस्त है या वह कुछ बचत कर पाता है।

पारिवारिक बजट को बनाने के लिए एक नमूना नीचे दिया जाता है :

पारिवारिक बजट

स्वामी का नाम........................व्यवसाय........................

पता..

परिवार के सदस्यों की संख्या (आयु सहित)..................................

(पुरुष..................स्त्री..................बच्चे..................)

आय तथा उसके स्रोत..

बजट की अवधि..

व्यय के मद	उपभोग की जाने वाली मात्रा	वस्तु की दर	व्यय की मात्रा	आय के प्रतिशत के रूप में व्यय	अन्य विवरण, यदि कोई है
१. भोजन					
२. वस्त्र					
३. मकान					
४. प्रकाश व ईंधन					
५. शिक्षा					
६. मनोरंजन					
७. स्वास्थ्य					
८. अन्य					

पारिवारिक बजट से लाभ या उसका महत्त्व—किसी भी देश में पारिवारिक बजटों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इसका महत्त्व न केवल व्यक्ति विशेष के लिए ही है जिसके लिए परिवार का बजट बनाया जाता है वरन् अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों, समाज-सुधारकों तथा सरकार के लिए भी है। निम्न विवरण से पारिवारिक बजट का विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्व स्पष्ट होता है :

(१) गृह-स्वामियों के लिए महत्व—अपनी आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए एक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी आय को विवेकपूर्ण ढंग से व्यय करे और ऐसा वह तभी कर सकेगा जबकि अपना पारिवारिक बजट बनाये। एक गृहस्वामी अपने बजट को बनाकर पहले से ही अपने सम्भावित व्यय का अनुमान लगाता है, और वह आवश्यक तथा बेकार के व्यय से बच जाता है। अतः एक गृहस्वामी बजट बना कर अपने व्यय को आय के अनुरूप करता है तथा कुछ बचा भी सकता है और अपनी आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने में सफल होता है।

(२) अर्थशास्त्रियों के लिए—पारिवारिक बजटों की सहायता से अर्थशास्त्री देश के विभिन्न वर्गों के जीवन स्तर का ज्ञान प्राप्त करते हैं। विभिन्न समयों पर देश की आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। उन्हें देश में धन के वितरण की स्थिति का भी ज्ञान हो जाता है। पारिवारिक बजटों के आधार पर सूचक-अंक (index number) बनाये जाते हैं, इनसे समय-समय पर रहन-सहन की लागत का ज्ञान प्राप्त होता रहता है। इन सूचक-अंकों की सहायता से किसी समय पर किन्हीं दो देशों के जीवन-स्तर की तुलना की जा सकती है।

(३) समाज सुधारकों तथा राजनीतिज्ञों के लिए—पारिवारिक बजटों की सहायता से लोगों के जीवन-स्तर तथा उनकी आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। समाज-सुधारक तथा राजनीतिज्ञ इस ज्ञान की सहायता से गरीब वर्ग की स्थिति सुधारने का प्रयत्न करते हैं। वे सरकार से उन लोगों पर अधिक कर लगाने की सिफारिश करते हैं जिनमें कर देने की अधिक क्षमता होती है तथा वे सरकार को उन मदों पर अधिक व्यय करने को कहते हैं जिनसे गरीब वर्ग को अधिक लाभ होता है। पारिवारिक बजटों की सहायता से लागत के सूचक-अंक (cost of living index) बनाये जाते हैं, जिनके आधार पर राजनीतिज्ञ मजदूरों को कम से कम एक न्यूनतम वेतन दिलवाने का प्रयत्न करते हैं। पारिवारिक बजटों की सहायता से देश में धन के वितरण की विषमता को मालूम करके राजनीतिज्ञ उसे कम करने का प्रयत्न करते हैं।

(४) देश की सरकार के लिए—पारिवारिक बजटों की सहायता से सरकार को देश के विभिन्न वर्गों की आर्थिक स्थिति का सही ज्ञान प्राप्त हो जाता है, परिणामस्वरूप सरकार अपनी आर्थिक नीति का स्वरूप निर्धारण करती है। वह धनी वर्ग पर अधिक कर लगा कर उनसे प्राप्त धन राशि को गरीबों के कल्याण पर व्यय करती है। पारिवारिक बजटों से प्राप्त आर्थिक स्थिति के आधार पर सरकार किसानों, श्रमिकों, पिछड़े हुए लोगों को शोषण से बचाने के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रकार के नियम बनाती रहती है।

ऐंजिल का उपभोग-नियम
(ENGEL'S LAW OF CONSUMPTION)

जर्मनी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ० ऐंजिल ने पारिवारिक बजटों का अध्ययन करके एक नियम प्रस्तुत किया जो उनके नाम पर 'ऐंजिल का उपभोग-नियम' कहलाता है। डॉ० ऐंजिल ने विभिन्न वर्गों के बजटों का अध्ययन करके निम्न निष्कर्ष निकाले :

(i) आय में वृद्धि के साथ भोजन पर प्रतिशत व्यय कम होता है; तथा आय में कमी के साथ भोजन पर प्रतिशत व्यय बढ़ता जाता है।

(ii) आय में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होने पर भी वस्त्र, मकान-किराया, प्रकाश व ईंधन पर प्रतिशत व्यय स्थिर रहता है।

(iii) आय में वृद्धि के साथ शिक्षा, मनोरंजन, स्वास्थ्य, इत्यादि पर प्रतिशत व्यय में वृद्धि होती है और आय में कमी के साथ इन पर प्रतिशत व्यय घटता है।

ऐंजिल के नियम का कथन (Statement)

किसी व्यक्ति की आय में वृद्धि के साथ भोजन पर प्रतिशत व्यय घटता है; वस्त्र, मकान, प्रकाश व ईंधन पर प्रतिशत व्यय स्थिर रहता है; तथा शिक्षा, मनोरंजन, स्वास्थ्य इत्यादि पर प्रतिशत व्यय बढ़ता जाता है।

ऐंजिल के नियम की व्याख्या

ऐंजिल के नियम के सम्बन्ध में प्रतिशत व्यय के अर्थ को भली-भाँति समझ लेने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, जब यह कहा जाता है कि आय में वृद्धि के साथ-साथ भोजन पर प्रतिशत व्यय घटता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि भोजन पर कुल व्यय घटता है; इसका अर्थ है कि जिस अनुपात में आय बढ़ती है उस से कम अनुपात में भोजन पर व्यय बढ़ता है अर्थात प्रतिशत व्यय घटता है। यह बात इस उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जायेगी। माना कि एक व्यक्ति की आय २०० रुपये मासिक है, इसमें से वह ११० रुपये भोजन पर व्यय करता है; अर्थात भोजन पर प्रतिशत व्यय ६०% हुआ। अब माना उसकी आय बढ़कर ३०० रु० हो जाती है तो उसका भोजन पर कुल व्यय १२० रुपये से बढ़कर १५० रु० हो जाता है। स्पष्ट है कि भोजन पर व्यय की जाने वाली कुल धन राशि में वृद्धि हुई परन्तु यह धनराशि (अर्थात १५० रु०) उसकी वर्तमान आय (अर्थात ३०० रुपये) का केवल ५०% ही है; अतः आय में वृद्धि के साथ भोजन पर प्रतिशत व्यय घट जाता है।

ऐंजिल के नियम को हम एक तालिका के रूप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :

मुख्य मदें जिन पर व्यय किया जाता है	व्यय (आय के प्रतिशत के रूप में)			विवरण (Remarks)
	निम्न या निर्धन वर्ग	मध्यम वर्ग	उच्च वर्ग	
भोजन	६५%	६०%	५५%	प्रतिशत व्यय घटता है
वस्त्र	१५%	१५%	१५%	प्रतिशत व्यय स्थिर है
मकान	१०%	१०%	१०%	
प्रकाश व ईंधन	५%	५%	५%	
शिक्षा, मोरंजन, स्वास्थ्य तथा अन्य	५%	१०%	१५%	प्रतिशत व्यय बढ़ता है
	१००%	१००%	१००%	

तृतीय भाग

उत्पादन
[PRODUCTION]

२० उत्पादन
[PRODUCTION]

उत्पादन का अर्थ (Meaning of Production)

एडम स्मिथ तथा अन्य प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन को 'भौतिक वस्तुओं का सृजन' (creation of material goods) बताकर एक संकुचित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। यह सर्वविदित वैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य पदार्थ (matter) को न तो बना सकता है और न नष्ट ही कर सकता है, वह केवल उसका रूप बदल सकता है। अतः प्राचीन अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी उत्पादन की परिभाषा दोषपूर्ण होने के कारण मान्य नहीं है।

कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पादन का अर्थ 'उपयोगिता का सृजन' (creation of utility) बतलाते हैं। प्रो० मेहता 'उपयोगिता का सृजन' के स्थान पर 'उपयोगिता में वृद्धि' कहना अधिक पसन्द करते हैं।

कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात से सहमत नहीं हैं कि उत्पादन को 'उपयोगिता का सृजन' कहकर परिभाषित किया जाय। इनके अनुसार, उत्पादन के लिए 'उपयोगिता में वृद्धि' के साथ-साथ 'विनिमय मूल्य' (price) का होना भी आवश्यक है। किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है, परन्तु यदि उसका विनिमय-मूल्य नहीं है तो 'उपयोगिता-सृजन' या 'उपयोगिता-वृद्धि' के इन कार्य को उत्पादन नहीं कहा जायेगा।[1] प्रो० टॉमस (Thomas) के अनुसार, उत्पादन की सर्वोत्तम परिभाषा 'मूल्यों का सृजन' (creation of values) है। फेयरचाइल्ड (Fairchild), कैयरनक्रॉस (Cairncross), मेयर्स (Meyers), इत्यादि अन्य आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पादन को इसी प्रकार से परिभाषित करते हैं। अतः अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उत्पादन का अर्थ केवल 'उपयोगिता का सृजन' या 'उपयोगिता में वृद्धि' नहीं है परन्तु 'मूल्यों का सृजन' (creation of values), या 'आर्थिक उपयोगिताओं का सृजन' (creation of economic utilities) है।

उत्पादन तथा उपभोग में अन्तर (Difference Between Production and Consumption)

उपभोग वह क्रिया है जो उपयोगिता को नष्ट करती है, जबकि उत्पादन वह क्रिया है जो उपयोगिता का सृजन करती है। वास्तव में, उत्पादन तथा उपभोग की क्रियाओं को पृथक करना

---

[1] प्रो० टॉमस इस सन्दर्भ में एक उदाहरण देते हैं। एक टेनिस खिलाड़ी के सतत् प्रयत्नों के परिणामस्वरूप उसके स्वास्थ्य तथा खेलने की कला (skill) में वृद्धि हो सकती है और इस प्रकार उपयोगिता में भी वृद्धि होती है; परन्तु उसके खेलने की दशा ऐसी नहीं हुई कि उसको अपनी सेवाओं के लिए कीमत (price) मिल सके। जब वह एक व्यावसायिक खिलाड़ी (professional player) हो जाता है और उसकी सेवाओं की उसको कीमत मिलने लगती है तभी उसके टेनिस खेलने [illegible]।

कठिन है। प्रत्येक कार्य उत्पादन तथा उपभोग दोनों है, अन्तर केवल हमारे दृष्टिकोण का है। उदाहरणार्थ, जब बढ़ई एक कुर्सी बनाता है तो एक ओर तो वह लकड़ी की उपयोगिता में वृद्धि करके उत्पादन का कार्य करता है जबकि दूसरी ओर लकड़ी के लट्ठे की उपयोगिता को नष्ट करके उपभोग का कार्य करता है। इसी प्रकार जब एक व्यक्ति मक्खन का उपभोग करता है तब साथ ही साथ वह अपनी शक्ति में वृद्धि करके उत्पादन का कार्य भी करता है। यद्यपि उपभोग तथा उत्पादन में अन्तर है परन्तु वे एक ही क्रिया के दो पहलू हैं। **प्रो० मेहता** के अनुसार, आवश्यकता की प्रत्यक्ष सन्तुष्टि (direct satisfaction) उपभोग है और अप्रत्यक्ष सन्तुष्टि (indirect or derived satisfaction) उत्पादन है। इस प्रकार से उपभोग तथा उत्पादन दोनों ही आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

उपयोगिता सृजन की रीतियाँ (Methods of Creation of Utility)

(१) **रूप परिवर्तन द्वारा उत्पादन** (Change of form)—जब किसी वस्तु या पदार्थ के रूप में परिवर्तन करके उसकी उपयोगिता में वृद्धि कर दी जाती है तब इसे 'रूप परिवर्तन द्वारा उत्पादन' कहते हैं। उदाहरणार्थ, एक बढ़ई लकड़ी से मेज, कुर्सी, पलंग, इत्यादि बनाकर लकड़ी के रूप में परिवर्तन करके उत्पादन का कार्य करता है। इसी प्रकार दर्जी, कृषक, विभिन्न प्रकार के कारखाने, इत्यादि रूप परिवर्तन द्वारा उत्पादन का कार्य करते हैं।

(२) **स्थान परिवर्तन द्वारा उत्पादन** (Change of place)—जब किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने से उसकी उपयोगिता में वृद्धि होती है, तो इसे 'स्थान परिवर्तन द्वारा उत्पादन' कहते हैं। उदाहरणार्थ, जंगलों से लकड़ी काट कर या खानों से कोयला इत्यादि निकाल कर मोटर या रेल यातायात द्वारा शहरों में लाने से वस्तुओं की उपयोगिता में वृद्धि होती है। अतः यातायात के विभिन्न साधन स्थान परिवर्तन द्वारा उत्पादन का कार्य करते हैं।

(३) **समय परिवर्तन द्वारा उत्पादन** (Change of time)—कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका स्टॉक या संचय करने से उनकी उपयोगिता में वृद्धि हो जाती है। उदाहरणार्थ, व्यापारी लोग गेहूँ, चना इत्यादि का फसल के समय स्टॉक करते हैं तथा कुछ महीनों बाद गैर-फसल के समय बेचते हैं क्योंकि इस समय इन वस्तुओं की उपयोगिता अधिक होती है। इसी प्रकार शराब तथा चावल जितने पुराने होंगे उतनी ही इनकी उपयोगिता अधिक होगी। विभिन्न वस्तुओं के व्यापारी तथा स्टॉकिस्ट, कोल्ड स्टोरेज के स्वामी, इत्यादि समय परिवर्तन द्वारा उत्पादन का कार्य करते हैं।

(४) **अधिकार परिवर्तन द्वारा उत्पादन** (Change of possession)—वस्तुओं के अधिकार परिवर्तन द्वारा भी उपयोगिता में वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ, जब एक पुस्तक, विक्रेता के पास से अध्यापक या विद्यार्थी के पास चली जाती है तो उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। विभिन्न प्रकार के व्यापारी तथा दूकानदार अधिकार परिवर्तन द्वारा उत्पादन का कार्य करते हैं।

(५) **सेवा द्वारा उत्पादन** (By performing service)—जब विभिन्न मनुष्यों द्वारा विभिन्न प्रकार की सेवाओं से उपयोगिता में वृद्धि होती है तब इसे 'सेवा द्वारा उत्पादन' कहते हैं। उदाहरणार्थ, अध्यापक, डॉक्टर, वकील, नौकर, इत्यादि सभी अपनी-अपनी सेवाओं द्वारा उपयोगिता में वृद्धि करते हैं और इसलिए उत्पादकों की श्रेणी में आते हैं।

(६) **ज्ञान द्वारा उत्पादन** (By increasing knowledge)—बहुत-सी वस्तुओं के सम्बन्ध में ज्ञान उत्पन्न करके या ज्ञान में वृद्धि करके उनकी उपयोगिता में वृद्धि की जाती है; इसको 'ज्ञान द्वारा उत्पादन' कहते हैं। उदाहरणार्थ, जब विज्ञापन द्वारा किसी वस्तु (जैसे, पुस्तक, फाउन्टेनपेन, रेडियो, साइकिल इत्यादि) के गुणों को बताया जाता है तो इन वस्तुओं की उपयोगिता उपभोक्ताओं

के लिए बढ़ जाती है और वे इन्हें खरीदने लगते हैं। व्यापारी, दुकानदार, उत्पादक इत्यादि-विभिन्न प्रकार के विज्ञापन द्वारा वस्तुओं की जानकारी कराके उपयोगिता में वृद्धि द्वारा उत्पादन का कार्य करते हैं।

उत्पादन का महत्त्व (Importance of Production)

व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोणों से उत्पादन का महत्त्व है। इसका महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट होता है :

(१) आवश्यकताओं की पूर्ति उत्पादन पर निर्भर है—एक व्यक्ति उत्पादन करके ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। व्यक्ति विशेष अपनी उत्पादित वस्तु या वस्तुओं या सेवाओं को बाजार में विनिमय करके धन या द्रव्य प्राप्त करता है और तब अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है। स्पष्ट है, समाज के व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति उनके द्वारा उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करती है।

(२) जीवन-स्तर उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है—किसी व्यक्ति या समाज का जीवन-स्तर देश में उत्पादित वस्तुओं की मात्रा तथा प्रकार पर निर्भर करता है। यदि देश विशेष में अधिक उत्पादन होता है, तो प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी और व्यक्तियों का जीवन-स्तर ऊँचा होगा; इसके विपरीत उत्पादन कम होने पर जीवन-स्तर नीचा होगा। भारतवासियों का जीवन-स्तर नीचा है क्योंकि देश में उत्पादन की मात्रा कम है, जबकि अमरीका, इंग्लैण्ड तथा योरोपीय देशों में व्यक्तियों का जीवन-स्तर ऊँचा है क्योंकि इन देशों में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता है।

(३) आर्थिक उन्नति उत्पादन पर निर्भर करती है—किसी देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का जितना अधिक उत्पादन होगा, उतना ही अधिक अन्तरदेशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य होगा। स्पष्ट है, देश की आर्थिक उन्नति उत्पादन पर निर्भर करती है।

(४) राज्य की आय में वृद्धि—किसी देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का जितना अधिक उत्पादन होगा, उतनी ही अधिक सरकार को वस्तुओं पर लगाये गये करों से आय प्राप्त होगी। बढ़ी हुई आय को सरकार देश के हित में व्यय कर सकेगी।

उत्पादन के साधन
(FACTORS OF PRODUCTION)

उत्पादन के साधनों से अर्थ उन सेवाओं और वस्तुओं से है जिनका धन के उत्पादन में प्रयोग होता है। किसी भी वस्तु का उत्पादन विभिन्न उत्पादन के साधनों के सहयोग से होता है। प्रायः उत्पादन के पाँच साधन बताये जाते हैं—भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन (या प्रबन्ध या व्यवस्था) तथा साहस।

(१) भूमि (Land)—अर्थशास्त्र में भूमि का अर्थ केवल भूमि की सतह से ही नहीं लिया जाता बल्कि वह समस्त प्राकृतिक उपहारों को बताती है। अर्थशास्त्र में भूमि का अर्थ भूमि की सतह तथा उन सब वस्तुओं और शक्तियों से होता है जिन्हें प्रकृति ने मानव को बिना मूल्य प्रदान किया है। अतः भूमि की सतह, नदी, समुद्र, खनिज पदार्थ, जंगल, पहाड़, धूप, इत्यादि सभी भूमि के अन्तर्गत आते हैं।

(२) श्रम (Labour)—अर्थशास्त्र में श्रम का अर्थ मनुष्य के उस शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम से लिया जाता है जो धन उत्पादन के उद्देश्य से किया जाय। केवल मनोरंजन की दृष्टि से किये गये परिश्रम को अर्थशास्त्र में श्रम नहीं कहा जायेगा।

(३) **पूंजी (Capital)**—पूंजी, भूमि को छोड़कर, व्यक्तिगत तथा सामूहिक धन का वह भाग है जो और अधिक धन उत्पन्न करने के प्रयोग में आता है। पूंजी के अन्तर्गत केवल नकद द्रव्य ही नहीं आता बल्कि धन का वह भाग आता है जो कि और अधिक धन उत्पादन में सहयोग दे। उदाहरणार्थ, औजार, यन्त्र, मशीन, बीज, कच्ची सामग्री, यातायात के साधन (जैसे, सड़क, रेल, नहर आदि), द्रव्य का केवल वह भाग जो अधिक धनोत्पादन में मदद करे; ये सब पूंजी के अन्तर्गत आते हैं।

(४) **संगठन या प्रबन्ध या व्यवस्था (Organisation)**—संगठन का अर्थ उस विशिष्ट श्रम (specialised labour) से है जो उत्पादन के तीन साधनों (भूमि, श्रम तथा पूंजी) को एकत्र करता है, उनमें समन्वय स्थापित करता है तथा उनका निरीक्षण करता है। कुछ अर्थशास्त्री इसको पृथक साधन नहीं मानते हैं—कुछ इसको श्रम के अन्तर्गत रखना चाहते हैं तथा कुछ इसको साहस के साथ रखते हैं। परन्तु आधुनिक युग में इसके महत्त्व को देख कर अधिकांश अर्थशास्त्री इसे एक पृथक साधन मानते हैं।

(५) **साहस (Enterprise)**—साहस उत्पादन का वह साधन है जो उद्योग तथा व्यवसाय की जोखिम और अनिश्चितता को सहन करता है। किसी भी उद्योग को चलाने में बड़ा जोखिम (लाभ तथा हानि) होता है, तब तक इस जोखिम को उठाने वाला कोई साधन न हो तब तक उत्पादन का कार्य प्रारम्भ नहीं हो सकता।

उत्पादन के साधनों के सम्बन्ध में मतभेद (Controversy over the Number of Factors of Production)

अर्थशास्त्री उत्पादन के साधनों की संख्या के सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। इस सम्बन्ध में निम्न विचारधाराएँ पायी जाती हैं :

(१) **कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन के केवल दो साधन हैं—भूमि तथा श्रम।** इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, पूंजी, संगठन तथा साहस का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। श्रम तथा भूमि के पारस्परिक सहयोग द्वारा पूंजी उत्पन्न होती है तथा पूंजी पिछली बचत का परिणाम है। संगठन तथा साहस श्रम के केवल विशिष्ट रूप ही हैं। इस प्रकार इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, पूंजी, संगठन तथा साहस का कोई पृथक् तथा स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है और उत्पादन के केवल दो ही मौलिक साधन—भूमि तथा श्रम—हैं।

(२) **अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन के साधन पांच हैं।** आज के युग में बड़े पैमाने के उत्पादन में बहुत अधिक मात्रा में पूंजी का प्रयोग होता है, बिना पूंजी के बड़े-बड़े उद्योगों को नहीं चलाया जा सकता। इसलिए पूंजी को एक स्वतन्त्र उत्पादन का साधन मानना आवश्यक है। इसी प्रकार आज की उत्पादन व्यवस्था में संगठन का बड़ा महत्त्व है। संगठन उत्पादन के अन्य साधनों को एकत्र करता है, उनमें समन्वय स्थापित करता है तथा उनका निरीक्षण करता है, बिना संगठन के बड़े-बड़े उद्योगों को सुचारु रूप से चलाना असम्भव है। अतः संगठन को एक स्वतन्त्र उत्पादन का साधन मानना आवश्यक है। आज का उत्पादन भविष्य की अनुमानित मांग पर किया जाता है, परिणामस्वरूप उत्पादन में बहुत जोखिम रहती है। जब तक इन जोखिम को सहने के लिए कोई तत्पर नहीं है तब तक उत्पादन का कार्य आरम्भ नहीं हो सकता; अतः साहस को एक पृथक् तथा स्वतन्त्र उत्पादन का साधन मानना आवश्यक है। इस प्रकार इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उत्पादन के साधन दो नहीं पांच हैं।

(३) प्रो० बेन्हम (Benham) के अनुसार उत्पादन के अनगिनत साधन हैं। इनके अनुसार, जो भी सेवा या वस्तु उत्पादन के कार्य में सहायता दे वही उत्पादन का साधन है। सभी भूमि एक समान नहीं होती, किसी की उर्वरा शक्ति कम है और किसी की अधिक, कुछ भूमि के टुकड़ों की स्थिति अधिक अच्छी है कुछ की खराब, इत्यादि। इसलिए विभिन्न प्रकार की भूमियों को अलग-अलग उत्पादन के साधन मानना चाहिए। इसी प्रकार, श्रम, पूँजी, संगठन तथा साहस की अनेक किस्में हैं, कुछ कम कुशल हैं तो कुछ अधिक। इनमें से प्रत्येक की किस्म को एक पृथक् तथा स्वतन्त्र साधन मानना चाहिए। इस प्रकार प्रो० बेन्हम के अनुसार, उत्पादन के साधन अनगिनत हैं। परन्तु इस प्रकार का वर्गीकरण उचित नहीं है। अधिकांश अर्थशास्त्री इस मत से सहमत नहीं हैं।

(४) आस्ट्रियन अर्थशास्त्री वीजर (Austrian Economist Weiser) के अनुसार उत्पादन के साधनों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) विशिष्ट साधन (Specific Factors), तथा (२) अविशिष्ट साधन (Non-specific Factors)। विशिष्ट साधन वे हैं जो एक समय में केवल एक ही कार्य में प्रयोग किये जा सकते हैं, दूसरे शब्दों में, ये साधन एक समयावधि में अगतिशील (immobile) होते हैं अर्थात एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित नहीं किये जा सकते। अविशिष्ट साधन वे हैं जो एक समय में कई वैकल्पिक कार्यों में प्रयोग किये जा सकते हैं; दूसरे शब्दों में, ये साधन एक समयावधि में गतिशील (mobile) होते हैं अर्थात एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित किये जा सकते हैं। इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखने की है कि 'विशिष्टता' या 'अविशिष्टता' (specificity or non-specificity) एक गुण (quality) है जो किसी भी उत्पादन से साधन के साथ जोड़ी जा सकती है। उत्पादन का एक साधन आज विशिष्ट हो सकता है तथा कुछ समय बाद वह अविशिष्ट हो सकता है; उदाहरणार्थ, यदि भूमि में गेहूँ का बीज डाल दिया गया है तो वह गेहूँ के प्रयोग के लिए विशिष्ट हो जाती है, परन्तु कुछ समय बाद जब गेहूँ की फसल कट जाती है तो वह भूमि का टुकड़ा स्वतन्त्र हो जाता है और इसको किसी भी कार्य में प्रयुक्त किया जा सकता है अर्थात वह अविशिष्ट हो जाता है। दूसरे, यह वर्गीकरण केवल अल्पकालीन है। उत्पादन के साधनों के इस वर्गीकरण के आधार पर ही लगान का आधुनिक सिद्धान्त आधारित है।

उत्पादन के साधनों के सम्बन्ध में निष्कर्ष—उत्पादन के साधनों के वर्गीकरण के अध्ययन के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि उत्पादन के साधन पाँच हैं। यद्यपि एक दृष्टि से उत्पादन के साधन को 'विशिष्ट' तथा 'अविशिष्ट' में बाँटना महत्त्वपूर्ण है। परन्तु यह वर्गीकरण केवल अल्पकाल में ही सही है, दीर्घकाल में सभी साधन अविशिष्ट हो जाते हैं। वास्तव में, 'विशिष्टता' या 'अविशिष्टता' तो केवल एक गुण है जो कि किसी भी साधन के साथ जोड़ा जा सकता है। उत्पादन के साधनों को पाँच वर्गों में बाँटना ही अधिक उचित तथा वैज्ञानिक है।

उत्पत्ति के साधनों का सापेक्षिक महत्त्व

एक प्रश्न यह उठता है कि उत्पत्ति के पाँचों साधनों में से कौन-सा साधन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है ? वास्तव में, यह कहना कि अमुक साधन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है अत्यन्त कठिन है क्योंकि प्रत्येक साधन अपने स्थान पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

भूमि (अर्थात नदियाँ, खनिज पदार्थ, जंगलात, इत्यादि प्राकृतिक उपहार) किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है; जिस देश में प्राकृतिक उपहार जितनी प्रचुर मात्रा में होंगे, उस देश की उतनी ही अधिक उन्नति होने की सम्भावना होगी।

परन्तु किसी देश में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक साधनों का पाया जाना ही पर्याप्त नहीं है। इन प्राकृतिक साधनों के पूर्ण उपयोग के लिए **श्रम** (तथा पूंजी) अत्यन्त आवश्यक हैं। पर्याप्त तथा कुशल श्रम-शक्ति के बिना देश विशेष के प्राकृतिक साधनों का पूर्ण शोषण नहीं किया जा सकता है।

आज की औद्योगिक प्रणाली में पूंजी भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज के बड़े पैमाने के उत्पादन में बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी का प्रयोग होता है, विभिन्न प्रकार की मशीनों तथा औजारों द्वारा ही विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का बड़ी मात्रा में उत्पादन सम्भव हो सका है; छोटे पैमाने के उद्योगों में भी छोटी परन्तु कुशल और आधुनिकतम मशीनों व औजारों का प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

आज की औद्योगिक व्यवस्था इतनी जटिल हो गयी है कि उसको सुचारु रूप से चलाने के लिए कुशल प्रबन्धकों की अत्यन्त आवश्यकता है; अतः प्रबन्ध का महत्त्व स्पष्ट है।

आधुनिक औद्योगिक प्रणाली में जोखिम का अंश बहुत बढ़ गया है, इस जोखिम को उठाने के लिए **साहस** अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी देश की औद्योगिक तथा आर्थिक उन्नति बिना योग्य तथा अनुभवी साहसियों के सम्भव नहीं है।

विभिन्न परिस्थितियों तथा आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में साधनों के महत्त्व में अन्तर हो सकता है। प्रारम्भिक अवस्था या पशु पालन अवस्था में भूमि का महत्त्व बहुत अधिक था क्योंकि मनुष्य अपने जीवन निर्वाह के लिए मुख्यतया प्राकृतिक वस्तुओं तथा शक्तियों पर निर्भर रहता था। आखेट युग में तीर, कमान, भालों के रूप में पूंजी का भी महत्त्व था क्योंकि इनका प्रयोग मनुष्य केवल रक्षा के लिए ही नहीं बल्कि जीवन-पोषण के लिए भी करता था। समय के साथ मनुष्य का प्रकृति पर भी नियन्त्रण बढ़ने लगा; हस्तकला अवस्था (Handicraft stage) में श्रम का महत्त्व, अपेक्षाकृत, अधिक बढ़ गया। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात औद्योगिक अवस्था में पूंजी का महत्त्व अधिक हो गया। उत्पादन प्रणाली में बढ़ती हुई जटिलता के साथ प्रबन्ध तथा साहस का भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया।

उपर्युक्त विवरण से यह **निष्कर्ष** निकलता है कि आधुनिक औद्योगिक प्रणाली में उत्पत्ति के पाँचों साधन महत्त्वपूर्ण हैं; यह कहना कठिन है कि कोई एक या दो साधन अन्य साधनों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं; हाँ यह सम्भव है कि उत्पादन की किसी विशेष अवस्था या प्रणाली में एक या दो साधन अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करें।

उत्पादन की मात्रा को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(FACTORS AFFECTING THE VOLUME OF PRODUCTION)
या
उत्पादन कुशलता
(EFFICIENCY OF PRODUCTION)

उत्पादन की मात्रा विभिन्न प्रकार के तत्त्वों से प्रभावित होती है। उत्पादन कुशलता का **अर्थ है कि एक निश्चित समय में उत्पादन की अधिक मात्रा तथा अच्छी किस्म की वस्तुएँ प्राप्त** हों। उत्पादन की मात्रा तथा किस्म या उत्पादन कुशलता को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को सामान्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है : I. आन्तरिक्त तत्त्व, तथा II. बाह्य तत्त्व।

I. आन्तरिक तत्त्व (Internal Factors)

इसके अन्तर्गत हम उत्पादन के (i) साधनों की कुशलता, तथा (ii) उनके मिलाने के अनुपात को शामिल करते हैं। यदि उद्योग विशेष में लगाये जाने वाले उत्पादन के साधन कुशल हैं तो

अधिक उत्पादन प्राप्त होगा। दूसरे, यह भी आवश्यक है कि विभिन्न उत्पादन के साधनों के मिलाने का अनुकूलतम अनुपात (optimum proportion) होना चाहिए तभी उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

II. बाह्य तत्त्व (External Factors)

(१) प्राकृतिक तत्त्व—किसी देश की उत्पादन शक्ति उस देश की जलवायु, भूमि की उर्वराशक्ति, वर्षा, तूफान, ओले इत्यादि प्राकृतिक तत्त्वों से प्रभावित होती है। यदि देश की भूमि की उर्वराशक्ति अच्छी है, नियमित रूप से उचित वर्षा होती रहती है, प्राकृतिक प्रकोप कम होते हैं, तो अधिक मात्रा में उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा।

(२) वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान की स्थिति—किसी देश में विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान की जितनी अधिक प्रगति होगी उतनी ही उत्पादन की अधिक मात्रा तथा अच्छी किस्म की वस्तुएँ प्राप्त होंगी। इसके लिए यह आवश्यक है कि श्रमिकों तथा प्रबन्धकों को तकनीकी शिक्षा की उचित तथा विस्तृत रूप में सुविधाएँ प्रदान की जायें।

(३) कच्चे माल की स्थिति—यदि उद्योगों को आवश्यक कच्चा माल उचित मात्रा में, और नियमित रूप से तथा सस्ते मूल्य पर मिलता रहता है तो उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

(४) पूँजी की स्थिति—उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि के लिए यह परम आवश्यक है कि पर्याप्त मात्रा में तथा सस्ती दर पर पूँजी की व्यवस्था हो। इसके लिए बैंकिंग, बीमा, इत्यादि की उचित तथा विस्तृत व्यवस्था होना आवश्यक है।

(५) परिवहन व संवादवहन की सुविधाएँ—यदि किसी देश में परिवहन तथा संवादवहन के साधन भली प्रकार से विकसित हैं तो उद्योगों तक कच्चा माल आसानी से पहुँच सकेगा, उत्पादित वस्तुओं को विभिन्न मण्डियों तक सुगमता तथा शीघ्रता से भेजा जा सकेगा, श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि होगी, इत्यादि। इन सब बातों के परिणामस्वरूप उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

(६) सरकार की नीति—यदि सरकार विभिन्न प्रकार के उद्योगों को प्रोत्साहित करती है, उन्हें आर्थिक सहायता देती है तथा ऐसी कर प्रणाली की व्यवस्था करती है जिससे उत्पादन को प्रोत्साहन मिले तो निश्चय ही उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

(७) अनुसन्धान की सुविधाएँ—यदि किसी देश में सरकार तथा व्यक्तिगत संस्थाएँ या उद्योगपति अनुसन्धान पर जोर देते हैं, उत्पादन से सम्बन्धित नयी रीतियों की खोज होती रहती है, लागत को कम करने के सम्बन्ध में अनुसन्धान होते रहते हैं, तो इन सब का परिणाम उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता की वृद्धि पर पड़ेगा।

(८) राजनीतिक स्थिरता तथा शान्ति एवं सुरक्षा—यह अत्यन्त आवश्यक है कि देश में राजनीतिक झगड़े न हों, शान्ति तथा सुरक्षा की उचित व्यवस्था हो तभी उत्पादन की मात्रा तथा कुशलता में वृद्धि होगी।

क्या सारी आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत आ जाती हैं ?

सामान्यत

तथा वितरण। -

क्रियाएँ आती हैं :

के लिए धन एकत्रित करने से सम्बन्धित होता है।

(१) यदि गहराई से देखा जाय तो यह पता लगेगा कि वितरण तथा विनिमय की क्रियाएँ वास्तव में उत्पादन के अन्तर्गत आ जाती हैं। वितरण का अर्थ है कि उत्पादित धन को विभिन्न उत्पादन के साधनों में वितरण कर दिया जाय; दूसरे शब्दों में, मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि वितरण की क्रिया 'स्थान उपयोगिता' (place utility) पैदा करती है और इस प्रकार उत्पादन के अन्तर्गत आ जाती है। प्रो० मेहता के अनुसार, "जंगल की कम उपयोगी लकड़ी को शहर ले जाने का अर्थ है स्थान उपयोगिता में वृद्धि। ठीक इसी प्रकार से वितरण की प्रक्रिया (process) व्यक्तिगत उत्पादन के साधनों के लिए वस्तुएँ अधिक उपयोगी बना देती है।"[2] स्पष्ट है कि वितरण का अर्थ स्थान उपयोगिता में वृद्धि करना है और इसलिए यह उत्पादन के अन्तर्गत आ जाता है।

(२) प्रो० मेहता स्पष्ट करते हैं कि विनिमय का अर्थ द्रव्य के बदले में किसी वस्तु का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण होना है। विनिमय की क्रिया तभी होगी जब दोनों व्यक्तियों को उपयोगिता का लाभ हो अर्थात जब प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है कि उसके अधिकार में जो वस्तु है वह उस वस्तु की अपेक्षा जो दूसरे के पास है, उसके लिए कम उपयोगी है। इस प्रकार विनिमय की क्रिया 'स्थान उपयोगिता' तथा 'अधिकार उपयोगिता' (possession utility) का सृजन करती है। इस प्रकार विनिमय की क्रियाएँ उत्पादन के अन्तर्गत आ जाती हैं।

(३) उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनुष्य की सभी आर्थिक क्रियाएँ या तो उत्पादन में या उपभोग में दोनों में संयुक्त रूप से शामिल होती हैं और इस प्रकार सभी आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत आ जाती हैं।

(४) प्रत्येक मनुष्य उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों होता है। इसलिए मनुष्य की प्रत्येक आर्थिक क्रिया या तो उत्पादन से या उपभोग से सम्बन्धित होनी चाहिए। इस दृष्टि से भी यह कहा जा सकता है कि सभी आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत आ जाती हैं।

(५) वास्तव में, वितरण तथा विनिमय की क्रियाएँ उपभोग के लिए साधन के रूप में हैं। उत्पादन का अन्तिम उद्देश्य उपभोक्ताओं को उनकी जरूरत की वस्तुओं की पूर्ति करना है और यह वितरण तथा विनिमय के माध्यम से ही होता है।

निष्कर्ष

यदि गहराई से देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि मनुष्य की सभी आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर्गत आ जाती हैं।

---

2 "The transportation of wood from the forest to a city, involves the addition of Place utility to the comparatively less useful woods lying in the forest. In much the same way distribution involves the process of making things more useful to the individual factors of production."

२१ भूमि
[LAND]

भूमि का अर्थ
(MEANING OF LAND)

(अ) साधारण बोलचाल में 'भूमि' का अर्थ केवल भूमि की ऊपरी सतह से लिया जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में 'भूमि' शब्द का अर्थ 'प्राकृतिक उपहारों' से लिया जाता है जो अधिक व्यापक है। मार्शल के अनुसार, "भूमि का अर्थ उन सब पदार्थों तथा शक्तियों से लिया जाता है जो प्रकृति मनुष्य की सहायता के लिए भूमि और पानी, हवा और प्रकाश तथा गर्मी के रूप में निःशुल्क प्रदान करती है।"[1]

(ब) मार्शल की परिभाषा के अनुसार, भूमि के अन्तर्गत प्रकृति द्वारा निःशुल्क प्रदान किये गये पदार्थ तथा शक्तियाँ आती हैं जो भूमि की सतह पर, सतह से नीचे तथा सतह से ऊपर पायी जाती हैं, जैसे :

(i) भूमि की सतह, भूमि की उर्वरा शक्ति, सतह पर पाये जाने वाले जंगल, पहाड़, पशु-पक्षी, जड़ी-बूटियाँ इत्यादि;

(ii) समुद्र, नदियाँ, झील इत्यादि तथा इनके अन्दर पायी जाने वाली वस्तुएँ ;

(iii) भूमि की सतह के नीचे पाये जाने वाले खनिज-पदार्थ तथा अन्य प्रकार की वस्तुएँ;

(iv) प्राकृतिक शक्तियाँ, जैसे, वर्षा, वायु, सूर्य की रोशनी, इत्यादि। कुछ अर्थशास्त्री जैसे प्रो० केअरनक्रॉस (Prof. Cairncross), वर्षा, सूर्य की रोशनी इत्यादि को भूमि के अन्तर्गत शामिल नहीं करते क्योंकि इन पर किसी का स्वामित्व तथा नियन्त्रण नहीं होता।

भूमि के अर्थ तथा परिभाषा के सम्बन्ध में नया दृष्टिकोण
(A NEW APPROACH REGARDING THE MEANING AND DEFINITION OF LAND)

(i) आस्ट्रियन अर्थशास्त्री वीजर (Wieser) ने उत्पादन के साधनों का वर्गीकरण उनकी 'गतिशीलता' (mobility) के गुण के आधार पर किया। वीजर के अनुसार, उत्पादन के साधन दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं—'विशिष्ट साधन' (specific factors) तथा 'अविशिष्ट साधन' (non-specific factors)। 'विशिष्ट साधन' वे हैं जो केवल एक प्रयोग में ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं, दूसरे प्रयोगों में नहीं लाये जा सकते अर्थात अगतिशील हैं। 'अविशिष्ट साधन' वे हैं जिनको कई प्रयोगों में लाया जा सकता है, जो एक प्रयोग से दूसरे में जा सकते हैं अर्थात जो गतिशील (mobile) हैं।

---

1 "By Land is meant the material and the forces which Nature gives freely for man's aid, in land and water, in air and light and heat."

-Marshall, *Principles of Economics*, p. 14

(ii) बीज़र के वर्गीकरण—विशिष्ट साधन तथा अविशिष्ट साधन—के आधार को लेकर प्रो० मेहता भूमि की एक नयी परिभाषा देते हैं जो कि क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की परिभाषा से भिन्न है। प्रो० मेहता के अनुसार, **"आधुनिक परिभाषा यह है कि भूमि एक विशिष्ट साधन है या किसी साधन में विशिष्ट तत्व (specific element) को बतलाती है या किसी वस्तु के विशिष्टता पहलू (specificity aspect) को बताती है।**[2]

(iii) इस परिभाषा के अनुसार, **भूमि एक गुण (quality) है जिसे कोई भी साधन अर्जित (acquire) कर सकता है।** एक भूमि के टुकड़े पर यदि केवल गेहूँ की फसल उगायी जाती है तो वह टुकड़ा गेहूँ के प्रयोग के लिए विशिष्ट है और भूमि के इस टुकड़े को हम 'भूमि' या 'भूमि तत्व' कहेंगे। यदि एक भूमि के टुकड़े को कई प्रयोगों में लाया जा सकता है तो वह विशिष्ट नहीं है। माना ऐसा भूमि का टुकड़ा वर्तमान प्रयोग में १००रु० प्राप्त करता है जबकि दूसरे प्रयोग में उसको ७० रु० मिल सकते हैं, तो ७० रू० की सीमा तक यह जमीन का टुकड़ा दूसरे प्रयोग में गतिशील हो सकता है तथा (१००—७०)=३० रु० की सीमा तक यह वर्तमान प्रयोग के लिए 'विशिष्ट' है। अतः इस टुकड़े की आय में से ३० रु० 'भूमि-तत्व' (land element या land aspect) है।

(iv) इसी प्रकार कोई भी अन्य साधन चाहे वह श्रम हो या पूंजी, 'भूमि-तत्व' रखता है। **कोई भी साधन जिस सीमा तक दूसरे प्रयोग में माँगा जाता है उस सीमा तक वह विशिष्ट नहीं (non-specific) है, और जिस सीमा तक वह दूसरे प्रयोग में नहीं माँगा जाता उस सीमा तक वह वर्तमान प्रयोग के लिए विशिष्ट है और विशिष्टता के इस गुण को ही हम 'भूमि' या 'भूमि-तत्व' या 'भूमि-पहलू' कहते हैं।**

(v) **प्रो० मेहता के अनुसार, भूमि की इस नयी परिभाषा तथा क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की भूमि की परिभाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं है।** प्रो० मेहता के शब्दों में,[3] "यह देखा जा सकता है कि भूमि की यह आधुनिक परिभाषा, पुरानी परिभाषा से भिन्न नहीं है। पुरानी परिभाषा बताती है कि भूमि एक निःशुल्क उपहार है। आधुनिक परिभाषा बताती है कि इसका कोई दूसरा प्रयोग नहीं है। इसका अर्थ है कि वस्तु को एक ही प्रयोग में, जिसमें इसको प्रयुक्त किया जा सकता है, इस्तेमाल करने में कोई त्याग नहीं करना पड़ता। इसका अर्थ है कि वह वस्तु निःशुल्क है, एक उपहार है।

(vi) वास्तव में, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने पूंजी से भूमि का अन्तर स्पष्ट करने के लिए भूमि की एक विशेषता सीमितता (fixity), जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री विशिष्टता (specificity) कहते हैं—पर ही बल दिया था। आधुनिक अर्थशास्त्री इस 'विशिष्टता' को ही 'भूमि' कहते हैं। **क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने यह गलती की कि उन्होंने केवल भूमि को ही विशिष्ट माना जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भूमि ही नहीं बल्कि कोई भी अन्य उत्पादन का साधन विशिष्ट हो सकता है और उसमें 'भूमि तत्व' हो सकता है।** इससे स्पष्ट होता है कि क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की भूमि की परिभाषा तथा भूमि की नयी परिभाषा में सम्बन्ध की कड़ी है।

---

2 "The modern definition is that land is a specific factor or that it is the specific element in a factor or again that it is the specificity aspect of a thing." —*J. K. Mehta*

3 "It will be seen that modern definition of land does not differ from the old definition. The old definition says that it has no other use. If there is no other use it simply means that there is no sacrifice involved in making the only use to which the thing can be put. And no sacrifice means that it is free, it is a gift." —*J. K. Mehta*

भूमि का उत्पादन में महत्व
(IMPORTANCE OF LAND IN PRODUCTION)

(१) मानव जीवन के विकास के विभिन्न चरणों में भूमि का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। आखेट युग (Hunting age), पशुपालन युग (Pastoral age), कृषि युग (Agricultural age) तथा औद्योगिक युग (Industrial age) इत्यादि मे भूमि अर्थात प्रकृति ने भोजन की व्यवस्था, औद्योगीकरण के विकास, तथा मानव सभ्यता के विकास मे बहुत सहयोग दिया है। वास्तव में, मनुष्य प्रकृति का ऋणी है।

(२) भूमि किसी भी देश की आर्थिक समृद्धि का आधार है। (i) एक देश का आर्थिक विकास उस देश के प्राकृतिक उपहारों पर निर्भर करता है। अच्छी कृषि, योग्य भूमि, अनुकूल जलवायु, विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ, वन तथा उनसे प्राप्त होने वाले पदार्थ, फल, दूध, इत्यादि पर देश की समृद्धि निर्भर है। (ii) कृषि, कच्चे माल, खनिज पदार्थ इत्यादि प्राथमिक उद्योगो तथा विभिन्न प्रकार के गौण उद्योगों के लिए भूमि अति आवश्यक है। (iii) जल, शक्ति, कोयला, पेट्रोल, इत्यादि शक्ति साधनो के प्रयोग से मशीनों तथा कारखानों का सचालन होता है।

स्पष्ट है जितनी अधिक मात्रा मे विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक उपहार देश में पाये जायेंगे तथा उनका जितना अधिक शोषण किया जायेगा, उतना ही वह देश समृद्धशाली होगा। अमरीका, इंगलैण्ड, इत्यादि प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाले प्राकृतिक साधनों का भली-भाँति शोषण करके आज उन्नति के शिखर पर हैं। भारत मे भी पर्याप्त मात्रा में प्रकृति के साधन है और वह भी इनका पूर्ण शोषण करके उन्नति के शिखर तक पहुँच सकता है।

(३) भूमि किसी भी देश के यातायात तथा संवादवहन के साधनों के विकास में सहायक होती है। यदि किसी देश में समतल भूमि है तो रेल, सड़क, तार-टेलीफोन इत्यादि का सुगमता से अधिक विकास सम्भव होगा। इसके विपरीत यदि देश का अधिकाश भाग पहाड़ी है, ऊँचा-नीचा है तो इन साधनों के विकास मे अधिक व्यय तथा कठिनाई होगी। अतः किसी देश की भूमि की रचना पर उसके यातायात तथा सवादवहन के साधनों का विकास निर्भर करता है।

(४) लगान का आधुनिक सिद्धान्त 'भूमि' पर आधारित है। यदि भूमि का अर्थ 'विशिष्टता के गुण' (Quality of specificity) से लिया जाय तो आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार कोई भी साधन 'भूमि-तत्त्व' (land element) अर्थात 'विशिष्टता' के कारण लगान प्राप्त करता है। एक साधन के पारितोषण (reward) में जितना 'भूमि तत्त्व' है उतना ही उसके पारितोषण में लगान का अंश होगा।

भूमि की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF LAND)

उत्पादन के साधन के रूप में भूमि की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) प्रकृति का उपहार (Nature's gift)—मनुष्य ने भूमि को प्रकृति से निःशुल्क उपहार के रूप मे प्राप्त किया है। भूमि को सुधारने में, उर्वरा शक्ति बढ़ाने मे, जंगल इत्यादि साफ करके भूमि को काम के योग्य बनाने में मनुष्य को परिश्रम तथा पूंजी लगानी पड़ती है। परन्तु जलवायु, वर्षा, सूर्य की रोशनी, भूमि का क्षेत्रफल, तथा भूमि की स्थिति मे मनुष्य कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। इस दृष्टि से भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार है।

(२) पूर्ति की सीमितता (Fixity of supply)—प्रकृति का उपहार होने के कारण भूमि की पूर्ति सीमित (fixed) है, जो भूमि प्रकृति द्वारा दी गयी है उसको हम घटा-बढ़ा नहीं सकते। भूमि कटाव (soil erosion) या समुद्र कटाव (coastal erosion) तथा बाढ़ इत्यादि भूमि की

सतह को थोड़ा कम कर सकते हैं या नदी या समुद्र के पानी को सुखा कर (जैसा हॉलैण्ड में किया गया है) भूमि की मात्रा को थोड़ा बढ़ाया जा सकता है। परन्तु इस प्रकार की कमी या वृद्धि बहुत कम होती है। यह प्रक्रिया बहुत ही धीमी तथा महत्त्वहीन है। वास्तव में, भूमि का क्षेत्रफल उतना ही रहता है जितना प्रकृति ने हमें प्रदान किया है और इस दृष्टि से भूमि सीमित है।

परन्तु भूमि की **'प्रभावोत्पादक पूर्ति'** (*effective supply*) को बढ़ाया जा सकता है। इसका अर्थ है कि बिना भूमि के क्षेत्रफल को बढ़ाये अधिक श्रम तथा पूँजी का प्रयोग करके अर्थात् गहरी कृषि करके भूमि से उत्पादन बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है या दो-तीन-चार मंजिलों के मकान बनाकर, भूमि की पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है।

परन्तु क्षेत्रफल की दृष्टि से भूमि सीमित है तथा भूमि के एक दिये हुए क्षेत्रफल से सम्बन्धित जलवायु, सूर्य की रोशनी इत्यादि भी सीमित हैं, इन्हें घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। अतः इन दृष्टियों से भूमि की पूर्ति सीमित है।

प्रो० केअरनक्रॉस (Cairncross) के अनुसार, भूमि की सीमितता का एक परिणाम यह होता है कि भूमि के मालिक एकाधिकारी की स्थिति में हो जाते हैं। जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप भूमि की माँग में वृद्धि होने पर भूमिपतियों को अधिक लगान प्राप्त होने लगत है। लगान में वृद्धि भूमिपतियों के प्रयास का परिणाम नहीं है, बल्कि माँग की अपेक्षा पूर्ति सीमित रह जाने के कारण उन्हें 'बिना प्रयास आय' (windfall income) प्राप्त होती है। यही बात एकाधिकारी के सम्बन्ध में होती है, उसकी वस्तु की माँग बढ़ने पर उसे बिना प्रयास ही ऊँचे मूल्य तथा लाभ प्राप्त होते हैं। भूमि की पूर्ति को दीर्घकाल में भी नहीं बढ़ाया जा सकता माँग में वृद्धि होने पर दीर्घकाल में भी ऊँचे लगान प्राप्त होते रहेंगे।

(३) **कोई उत्पादन व्यय नहीं** (*No cost of production*)—भूमि प्रकृति का उपहा है इसको प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कोई श्रम नहीं करना पड़ता। दूसरे शब्दों में, भूमि क कोई **'पूर्ति मूल्य'** (supply price) नहीं है, उसको प्रयोग में लाने के लिए मनुष्य को कोई मूल्य नहीं देना पड़ता, वह तो प्रकृति की ओर से पहले से ही विद्यमान है। भूमि का मूल्य चाहे जितन कम हो जाये या चाहे जितना बढ़ जाये उसकी कुल पूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः भूमि की कोई लागत नहीं है।

यदि भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए हम श्रम तथा पूँजी को लगाते हैं, त निःसन्देह यह मनुष्यकृत उर्वरा शक्ति की लागत है; परन्तु प्राकृतिक उर्वरा शक्ति (*natura fertility*) तथा किसी भूमि के टुकड़े की स्थिति तथा उससे सम्बन्धित जलवायु के लाभों की को लागत नहीं है।

इस दृष्टि से भूमि, श्रम तथा पूँजी से भिन्न है। श्रम के पालन-पोषण, शिक्षा इत्यादि प व्यय करना पड़ता है। पूँजी का बचत द्वारा निर्माण किया जाता है और बचत का अर्थ त्या और लागत है। किसी समय पर कितना श्रम तथा पूँजी होगी यह इस पर निर्भर करेगा कि उन लिए कितना मूल्य दिया जाता है, अर्थात् इनका पूर्ति मूल्य होता है और इनकी पूर्ति प्रकृति प निर्भर नहीं करती।

(४) **विभिन्नता** (Heterogeneity)—कोई भी भूमि के दो टुकड़े उर्वरा शक्ति तथा स्थि की दृष्टि से एक समान नहीं होते। उनमें भिन्नता पायी जाती है। कुछ भूमि के टुकड़ों की उर्व शक्ति इतनी अधिक होती है कि उन पर लागत से अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। इ प्रकार की भूमियों को 'पूर्व-सीमान्त भूमियाँ' (*intra-marginal lands*) कहते हैं। कुछ

उर्वरा शक्ति इतनी कम होती है कि उन पर लागत से कम उपज प्राप्त होती है; इन्हे 'उप-सीमान्त भूमियाँ' (sub-marginal lands) कहते हैं। कुछ भूमि के टुकड़े ऐसे होते है जिनकी उपज ठीक लागत के बराबर होती है। इस प्रकार की भूमि को 'सीमान्त भूमि' (marginal land) कहते है। 'सीमान्त' (margin) कोई निश्चित रेखा या बिन्दु नही है, यह भूमि की उर्वरा शक्ति तथा स्थिति के अतिरिक्त उत्पादित वस्तु के मूल्य पर भी निर्भर करता है; सीमान्त परिस्थिति के अनुसार आगे-पीछे घट-बढ सकता है।

भूमि की विभिन्नता का एक अर्थ यह भी है कि उसे विभिन्न प्रयोगो मे स्तेमाल किया जा सकता है, जैसे, कृषि के लिए, डेयरी के लिए, मकान बनाने के लिए, इत्यादि। एक भूमि का टुकड़ा किस प्रयोग मे प्रयुक्त किया जायेगा यह उसकी उपज (yield) पर निर्भर करेगा। परिस्थितियो के अनुसार, भूमि एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरित की जा सकती है। इस प्रकार से एक दूसरा 'सीमान्त' (margin) भी होता है जिसे हम 'हस्तान्तरण का सीमान्त' (margin of transference) कहते हैं, अर्थात् कुछ भूमियाँ एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरण की सीमा पर होती हैं।

ये दो प्रकार के सीमान्त (margin) इस बात पर बल देते है कि भूमियों में विभिन्नता होती है—उर्वरा शक्ति, स्थिति या प्रयोग की दृष्टि से। वास्तव मे, यह विशेषता केवल भूमि मे ही नही पायी जाती बल्कि उत्पादन के अन्य साधनो (श्रम तथा पूँजी) मे भी पायी जाती है।

(५) भूमि अविनाशी (Indestructible) है—भूमि को नष्ट नही किया जा सकता। भूमि के लगातार प्रयोग से उसकी उर्वरा शक्ति कुछ कम हो सकती है, परन्तु भूमि के किसी टुकडे से सम्बन्धित जलवायु, सूर्य की रोशनी इत्यादि मे कोई परिवर्तन नही होता, ये अविनाशी हैं। इस दृष्टि से भूमि को अविनाशी कहा जा सकता है। भूमि की उर्वरा शक्ति की कमी को खाद इत्यादि द्वारा पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

(६) भूमि अगतिशील (Immobile) है—भूमि को (श्रम तथा पूंजी की भाँति), भौतिक रूप से (physically) एक स्थान से दूसरे स्थान पर नही ले जाया जा सकता है। इस कारण ही भिन्न जगहो पर लगान भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं। यदि गतिशीलता का अर्थ विस्तृत दृष्टि से किया जाये तो भूमि गतिशील (mobile) है क्योंकि भूमि को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे हस्तान्तरित किया जा सकता है।

(७) भूमि निष्क्रिय (Passive) साधन है—भूमि से उत्पादन प्राप्त करने के लिए श्रम तथा पूँजी को लगाना पड़ता है। भूमि स्वयं कुछ भी उत्पादन नही दे सकती है, इस दृष्टि से वह निष्क्रिय है। इसके विपरीत श्रम, संगठन, साहस, उत्पादन के सक्रिय (active) साधन हैं।

(८) भूमि उत्पत्ति ह्रास नियम के आधीन है (Land is subject to the law of diminishing returns)—यदि दिये हुए एक भूमि के टुकड़े पर श्रम तथा पूँजी का अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है तो उत्पादन उसी अनुपात में नहीं होगा अर्थात अतिरिक्त उत्पादन कम होता जायेगा। रिकार्डो, मार्शल, इत्यादि का विचार था कि कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है, जबकि शिल्प-निर्माण उद्योगों मे उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, सभी उद्योगों में परिस्थितियों के अनुसार, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

भूमि तथा पूँजी
(LAND AND CAPITAL)

(अ) भूमि को पूँजी से, निम्न विशेषताओं के आधार पर पृथक किया जाता है : (i) भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार है जबकि पूँजी मनुष्य के त्याग तथा परिश्रम का परिणाम है। (ii) भूमि

की कोई लागत नहीं होती जबकि पूँजी की लागत होती है। (iii) प्रकृति द्वारा भूमि की पूर्ति निश्चित है, परन्तु पूँजी की पूर्ति परिवर्तनशील है। (iv) भूमि अविनाशी है जबकि पूँजी नष्ट हो सकती है। (v) भूमि अगतिशील है, जबकि पूँजी गतिशील हैं।

(ब) **यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो भूमि तथा पूँजी में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता है।** **प्रथम,** भूमि को खेती या अन्य कामों के योग्य बनाने के लिए मनुष्य को श्रम तथा पूँजी लगानी पड़ती है। इस दृष्टि से भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार नहीं रह जाती है, वह भी, पूँजी की भाँति मनुष्यकृत है। **दूसरे,** भूमि को जब काम लाने योग्य बनाने के लिए लागत लगानी पड़ती है तो पूँजी की भाँति, भूमि की भी लागत हो जाती है। **तीसरे,** एक दृष्टि से भूमि की पूर्ति स्थिर (fixed) नहीं; रहती, भूमि पर गहरी खेती करके उत्पादन को बहुत बढ़ाया जा सकता है, ४-५ मंजिले मकान बना कर निवास के लिए अधिक जगह प्राप्त की जा सकती है। इसका अर्थ है कि भूमि की 'प्रभावोत्पादक पूर्ति' (effective supply) को बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किसी एक प्रयोग के लिए भूमि की पूर्ति को अन्य प्रयोगों से हटाकर, बढ़ाया जा सकता है। इन दृष्टियों से यह कहा जाता है कि भूमि की पूर्ति को, पूँजी की भाँति, घटाया-बढ़ाया जा सकता है। **चौथे,** भूमि अविनाशी नहीं है, लगातार प्रयोग करने से भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होती है। अतः पूँजी की भाँति, भूमि को भी विनासशील माना जाता है। **पाँचवें,** भूमि भी पूँजी की भाँति गतिशील है क्योंकि भूमि को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित किया जा सकता है।

(स) उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आर्थिक दृष्टि से भूमि तथा पूँजी में कोई अन्तर नहीं है। इसलिए कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भूमि को एक पृथक उत्पादन का साधन नहीं मानना चाहिए, वह तो पूँजी की भाँति है। परन्तु **आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से यह अच्छा होगा कि भूमि तथा पूँजी को पृथक रखा जाये** क्योंकि दोनों में थोड़ा अन्तर अवश्य है और एक मुख्य अन्तर यह है कि भूमि की पूर्ति बहुत ही धीमी गति से परिवर्तित होती है जबकि पूँजी की पूर्ति बहुत शीघ्रता से परिवर्तित होती है।

भूमि की कार्यक्षमता
(EFFICIENCY OF LAND)

भूमि की कार्यक्षमता का अर्थ उसकी **उत्पादकता** (productivity) अर्थात उत्पादन की शक्ति से लिया जाता है। भूमि की कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

(१) प्राकृतिक तत्व (Natural factors)—भूमि के प्राकृतिक गुण, जैसे उर्वरा शक्ति, जलवायु, सूर्य की रोशनी, मिट्टी की बनावट इत्यादि भूमि की कार्यक्षमता को आवश्यक रूप से प्रभावित करते हैं। जिस क्षेत्र में भूमि के उपर्युक्त प्राकृतिक गुण उचित तथा अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं वहाँ की भूमि की उत्पादकता अधिक होगी ; उदाहरणार्थ, भारत में उत्तरप्रदेश के गंगा-जमुना के क्षेत्र की भूमि की उत्पादकता, राजस्थान की पथरीली तथा रेतीली भूमि से अधिक है।

(२) भूमि की स्थिति (Situation of land)—शहरों, मण्डियों तथा रेलवे स्टेशनों के निकट की भूमियाँ, अन्य बहुत दूर स्थित भूमियों की अपेक्षा, अधिक उत्पादक समझी जाती हैं क्योंकि इन भूमियों तक खाद, बीज इत्यादि आसानी से तथा कम लागत पर पहुँचाये जा सकते हैं और इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को भी कम लागत पर आसानी से मण्डियों तथा बाजारों में ले जाया जा सकता है।

(३) मानवीय तत्व (Human factors)—मानव के विभिन्न प्रकार के प्रयत्नों द्वारा भूमि की उत्पादकता को बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है। इन मानव तत्वों का विवरण हम नीचे दे रहे हैं :

(i) भूमि पर स्थायी सुधार—भूमि पर पूँजी लगाकर स्थायी, सुधारों, जैसे पानी के वितरण तथा निकासी के लिए पक्की नालियाँ बनाना, खेत के चारों तरफ मेड़ बनाना, पास मे ट्यूब-वैल (Tube-well) खुदवाना इत्यादि द्वारा भूमि की उर्वरा शक्ति और उत्पादकता को बहुत बढ़ाया जा सकता है। (ii) भूमि का उचित प्रयोग—जो भूमि जिस कार्य के उपयुक्त है उसको उसी प्रयोग में काम में लाना ठीक है; जैसे, यदि एक भूमि का टुकड़ा चावल के उत्पादन के लिए अधिक उपयुक्त है तो उस पर चावल ही उगाना चाहिए। इसी प्रकार शहर के मध्य स्थिति भूमियों पर कृषि करने की अपेक्षा बिल्डिंग बनाना अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार भूमि का उचित प्रयोग करके उसकी उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। (iii) संगठन योग्यता—उत्पादन की कुशलता के लिए यह परम आवश्यक है कि भूमि को अन्य उत्पत्ति के साधनों के साथ अनुकूलतम अनुपात में मिलाया जाये। इसके लिए एक योग्य संगठनकर्त्ता की आवश्यकता है। (iv) भूमि का स्वामित्व—यदि कृषक स्वयं भूमि का मालिक है तो वह उसमे अधिक रुचि लेगा, अधिक श्रम तथा पूँजी लगायेगा और इस प्रकार भूमि की उत्पादकता मे वृद्धि करेगा।

स्पष्ट है कि प्राकृतिक तत्त्व, स्थिति से सम्बन्धित तत्त्व और मानव तत्त्वभूमि की उत्पादकता को प्रभावित करते हैं।

विस्तृत खेती तथा गहरी खेती
(EXTENSIVE CULTIVATION AND INTENSIVE CULTIVATION)

कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए दो मुख्य रीतियाँ हैं : विस्तृत खेती तथा गहरी खेती।

विस्तृत खेती (Extensive cultivation)—विस्तृत खेती मे कृषक उत्पादन को बढ़ाने के लिए श्रम तथा पूँजी की अपेक्षा भूमि का अधिक प्रयोग करता है। वह भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाता जाता है परन्तु श्रम तथा पूँजी उसी अनुपात में नहीं बढ़ाये जाते हैं। विस्तृत खेती के लक्षण या विशेषताएँ इस प्रकार हैं : (अ) इस रीति का प्रयोग प्रायः नये देशों मे या ऐसे देशों मे किया जाता है जहाँ पर जनसंख्या कम तथा भूमि अधिक होती है। (ब) कृषि की जोत या औसत आकार प्रायः बड़ा होता है। (स) पूँजी तथा श्रम का कम मात्रा मे प्रयोग किया जाता है। (द) अधिक मात्रा में भूमि की उपलब्धि होने के कारण भूमि का प्रयोग प्रायः पूरी सावधानी से नहीं किया जाता।

गहरी खेती (Intensive cultivation)—गहरी खेती का अर्थ है कि कृषक उत्पादन को बढ़ाने के लिए भूमि का क्षेत्रफल लगभग समान रखता है और श्रम तथा पूँजी का अधिक प्रयोग करता है। गहरी खेती के लक्षण या विशेषताएँ इस प्रकार हैं : (अ) इस रीति का प्रयोग प्रायः उन देशों मे किया जाता है जहाँ जनसंख्या अधिक तथा भूमि कम है। (ब) कृषि की जोत का औसत आकार प्रायः छोटा होता है। (स) श्रम तथा पूँजी का अधिक प्रयोग किया जाता है। (द) भूमि का प्रयोग वैज्ञानिक रीतियों के द्वारा बहुत सावधानी से किया जाता है। फसलों का हेर-फेर (rotation of crops), अच्छे बीज, रासायनिक खाद, नवीनतम औजारों, इत्यादि का प्रयोग किया जाता है तथा कृषि से सम्बन्धित अनुसन्धान पर बहुत ध्यान दिया जाता है।

विस्तृत तथा गहरी खेती के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य है। विस्तृत खेती के अन्तर्गत जोत की इकाई बहुत बड़ी हो सकती है अर्थात बड़े-बड़े फार्म हो सकते हैं परन्तु उन पर गहरी खेती की रीति, अर्थात अधिक श्रम तथा पूँजी और वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग किया जा सकता है, जैसा कि अमरीका, कनाडा इत्यादि देशों मे है। दूसरे शब्दों में, यह आवश्यक नहीं कि गहरी खेती के साथ सदैव छोटे खेत या छोटे फार्म हों। दूसरी ओर भारत में हम देखते हैं कि विस्तृत खेती की रीति का प्रयोग होता है जबकि खेतों का आकार छोटा है, इन

गहरी खेती की रीति का अधिक प्रयोग नहीं करते अर्थात आज भी हमारे देश में कृषि के पुराने तरीकों का प्रयोग अधिक होता है, और वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग बहुत कम। इसका अर्थ यह हुआ कि **यह आवश्यक नहीं है कि विस्तृत खेती की रीति के साथ सदैव बड़े फार्म हों।**

किसी देश में कौन सी रीति का प्रयोग किया जाना चाहिए यह उस देश की परिस्थितियों, जैसे भूमि की मात्रा, पूँजी की उपलब्धि, भूमि पर जनसंख्या का दबाव इत्यादि, पर निर्भर करेगा। भारत में भूमि की कमी है और जनसंख्या का दबाव बहुत है, इसलिए गहरी खेती अधिक उपयुक्त है। सामान्यतया हम परिस्थितियों के अनुसार विस्तृत तथा गहरी खेती दोनों का प्रयोग करते हैं।

श्रम
[LABOUR]

श्रम की परिभाषा
(DEFINITION OF LABOUR)

अर्थशास्त्र में श्रम का अर्थ उस शारीरिक तथा मानसिक प्रयत्न से लिया जाता है जो आर्थिक उद्देश्य से किया जाय। इस दृष्टि से मजदूर, प्रबन्धक, अध्यापक, वकील, डाक्टर, नौकर, इत्यादि सभी के प्रयत्न श्रम के अन्तर्गत आ जाते हैं।

प्रो० टोमस (Thomas) के अनुसार, "श्रम का अर्थ मानव के उस शारीरिक या मानसिक प्रयत्न से है जो प्रतिफल की आशा में किया जाता है।"[1] **मार्शल,** के अनुसार 'श्रम से हमारा अर्थ मनुष्य के उस मानसिक तथा शारीरिक प्रयास से है जो अंशत: या पूर्णतया, कार्य से प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाले आनन्द के अतिरिक्त, किसी लाभ की दृष्टि से किया जाये।"[2]

मार्शल या टोमस की परिभाषा से स्पष्ट है कि श्रम के लिए दो बातों का होना आवश्यक है—(i) श्रम के अन्तर्गत **मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के प्रयत्न** सम्मिलित किये जाते हैं। (ii) श्रम के अन्तर्गत **केवल वे ही प्रयत्न आते हैं जिनका उद्देश्य आर्थिक होता है;** केवल आनन्द के लिए किये गये श्रम को अर्थशास्त्र में श्रम नहीं कहेंगे।

श्रम का महत्व
(SIGNIFICANCE OF LABOUR)

श्रम उत्पादन का एक सक्रिय (active) तथा महत्वपूर्ण साधन है। एक देश में विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा में मौजूद हो सकते हैं, परन्तु वे बेकार होंगे यदि श्रम

---

1 "Labour connotes all human efforts, of body or of mind, which is undertaken in the expectation of reward." —Thomas, *Elements of Economics*, p. 75.

2 "We may define labour as an exertion of mind or body undergone partly or wholly with a view to some good other than the pleasure derived directly from the work." —Marshall, *Principles of Economics*, p. 54.

द्वारा उनका भली-भाँति प्रयोग न किया जाये। यदि किसी देश मे उपयुक्त मात्रा मे निपुण श्रम शक्ति है तो वह देश विभिन्न क्षेत्रो मे उन्नति के शिखर पर पहुँच सकेगा।

प्रो० केयरनक्रॉस (Cairncross) के अनुसार, समाज की दृष्टि से, उत्पादन के साधनो मे श्रम एक बहुत महत्वपूर्ण साधन है। यदि भूमि या पूँजी का उचित प्रयोग नही होता तो केवल इन साधनों के मालिकों की थोड़ी आय की हानि होगी, परन्तु, यदि श्रम का उचित प्रयोग नही होता (अर्थात् वह बेरोजगार रहता है या अत्यधिक कार्य कराके उसका शोषण किया जाता है) तो इससे मनुष्यों तथा औरतों मे हीनता (degradation) और निर्धनता फैलती है, तथा सामाजिक जीवन के स्वरूप में गिरावट आती है।

श्रम के प्रकार
(KINDS OF LABOUR)

श्रम के तीन मुख्य प्रकार बताये जाते हैं जो निम्न हैं :

(१) उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम (Productive and unproductive labour)—(i) उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियों में मतभेद रहा है। फ्रांस मे 'फिजियोक्रेट्स' (*Physiocrats*) अर्थशास्त्री केवल कृषक के श्रम को (अर्थात प्राथमिक व्यवसायो मे काम करने वालो के श्रम को) ही उत्पादक मानते थे, अन्य सभी प्रकार के श्रम को वे अनुत्पादक समझते थे। एडम स्मिथ ने उत्पादक श्रम का कुछ विस्तृत दृष्टिकोण लिया। एडम स्मिथ ने श्रम के अन्तर्गत उन सभी प्रयत्नों को शामिल किया जिनके द्वारा भौतिक वस्तुओं का उत्पादन होता हो। इस दृष्टिकोण से अध्यापक, वकील इत्यादि की सेवाओ को श्रम नही माना जा सकता क्योंकि ये कोई भौतिक वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते। मार्शल ने उत्पादक श्रम का और अधिक विस्तृत दृष्टिकोण लिया और उत्पादक श्रम को इस प्रकार परिभाषित किया, "यह अधिक अच्छा होगा कि सारे श्रम को उत्पादक समझा जाये केवल उस श्रम को छोड़कर जो कि अपने उद्देश्य की पूर्ति मे असफल रहता है और इस प्रकार किसी भी प्रकार की उपयोगिताओ का निर्माण नहीं करता।"[3] सरल शब्दो मे, मार्शल के अनुसार, जो प्रयत्न उपयोगिता का सृजन करता है और अपने उद्देश्य की पूर्ति मे सफल होता है उसे 'उत्पादक श्रम' कहेंगे, इसके विपरीत दशाओं में श्रम अनुत्पादक होगा।

(ii) आधुनिक अर्थशास्त्री, मार्शल की भाँति, उत्पादक श्रम का प्रयोग अधिक विस्तृत दृष्टिकोण मे करते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, कोई भी प्रयत्न जो उपयोगिता का सृजन करता है 'उत्पादक श्रम' कहा जायेगा तथा जो उपयोगिता का सृजन नही करता वह अनुत्पादक श्रम होगा। उपयोगिता का अर्थ है 'आवश्यकता पूर्ति की शक्ति' (want satisfying power)। अत: ब्रिग्स तथा जोरडन (Briggs and Jordan) के अनुसार, "वह सब श्रम जो आवश्यकता की पूर्ति करता है उत्पादक श्रम के अन्तर्गत आना चाहिए।" ("All labour satisfying wants must be classified as productive") प्रो० टोमस 'उपयोगिता-सृजन' के स्थान पर 'मूल्य-सृजन' (production of value) का प्रयोग अधिक अच्छा समझते हैं क्योंकि, उनके अनुसार, बहुत-सी वस्तुओं मे बहुत अधिक उपयोगिता हो सकती है परन्तु उनमें मूल्य (value) का अभाव हो सकता है। अत. प्रो० टोमस के अनुसार, वे सभी श्रम जो 'मूल्य-सृजन' न कि 'उपयोगिता-सृजन' करते है, उन्हें उत्पादक श्रम कहना चाहिए। इस प्रकार, आधुनिक अर्थ-

3 "It would be best to regard all labour as productive except that which failed to promote the aim towards which it was directed and so produced no utilities."

शास्त्रियों के अनुसार, विभिन्न प्रकार की भौतिक वस्तुओं का उत्पादन तथा विभिन्न प्रकार की सेवाएँ जिनके द्वारा व्यक्ति आय प्राप्त करता है—ये सब प्रयत्न उत्पादक श्रम के अन्तर्गत आते हैं।

(iii) यह सम्भव है कि किसी 'श्रम' का उद्देश्य 'मूल्य-सृजन' है परन्तु वह अपने उद्देश्य में असफल रहता है और ऐसे श्रम के परिणामस्वरूप प्राप्त वस्तु में कोई उपयोगिता या मूल्य नहीं होता। प्रश्न यह उठता है कि क्या ऐसा श्रम उत्पादक है या अनुत्पादक? **प्रो० टोमस** के अनुसार, यदि ऐसे श्रम के लिए प्रतिफल (reward) मिलता है तो वह 'उत्पादक श्रम' कहलायेगा अन्यथा 'अनुत्पादक श्रम' होगा। प्रो० टोमस इस सम्बन्ध में पनामा नहर के प्रारम्भिक निर्माण का उदाहरण देते हैं। पनामा नहर के प्रारम्भिक निर्माण में श्रमिकों को प्रतिफल या मजदूरी दी गयी, परन्तु श्रम का उद्देश्य असफल रहा क्योंकि पनामा नहर ठीक नहीं बन सकी और बाद में उसे दुबारा बनाना पड़ा। इस 'श्रम' को 'उत्पादक श्रम' कहा जायेगा क्योंकि श्रमिकों को श्रम से आय तो प्राप्त हुई, यद्यपि उद्देश्य में सफलता नहीं हुई। इसी प्रकार यदि एक लेखक की पुस्तक प्रकाशित हो जाती है और उसको प्रकाशक से अपने श्रम का प्रतिफल मिल जाता है चाहे बाद में वह पुस्तक खराब सिद्ध हो, तो लेखक का यह श्रम उत्पादक होगा। यदि उसकी पुस्तक प्रकाशित नहीं होती तथा उसे कोई प्रतिफल नहीं मिलता तो ऐसा श्रम अनुत्पादक श्रम होगा।

(२) **कुशल श्रम तथा अकुशल श्रम** (Skilled and unskilled labour)—(i) **'कुशल श्रम' वह श्रम है जिसे करने के लिए विशेष प्रशिक्षण** (training) **तथा ज्ञान की आवश्यकता होती है।** उदाहरणार्थ, अध्यापक, इन्जीनियर, डॉक्टर, मशीन चालक, इत्यादि का श्रम 'कुशल श्रम' है। **'अकुशल श्रम' वह श्रम है जिसे करने के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण तथा ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती।** उदाहरणार्थ, घरेलू नौकर, कुली, चपरासी, इत्यादि का श्रम 'अकुशल श्रम' है।

(ii) कुशल श्रमिकों की पूर्ति में व्यय तथा समय लगता है, परिणामस्वरूप इनकी पूर्ति माँग की अपेक्षा कम होती है, अतः कुशल श्रमिकों को अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है। इसके विपरीत अकुशल श्रमिकों की पूर्ति, माँग की अपेक्षा, अधिक होती है, इसलिए इन्हें कम प्रतिफल दिया जाता है।

(३) **मानसिक तथा शारीरिक श्रम** (Mental and physical labour)—**वह श्रम जिसमें शरीर की अपेक्षा, मस्तिष्क या बुद्धि का अधिक प्रयोग होता है उसे 'मानसिक श्रम' कहते हैं।** उदाहरणार्थ, अध्यापक, वकील, इंजीनियर, इत्यादि का कार्य 'मानसिक श्रम' है। **वह श्रम जिसमें, मस्तिष्क या बुद्धि की अपेक्षा, शरीर का अधिक प्रयोग होता है, उसे 'शारीरिक श्रम' कहते हैं।** उदाहरणार्थ, कुली, घरेलू नौकर, इत्यादि का श्रम 'शारीरिक श्रम' है। यह बात ध्यान रखने की है कि कोई भी श्रम न तो पूर्णतया मानसिक और न पूर्णतया शारीरिक होता है। प्रत्येक श्रम में मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार के श्रम का प्रयोग होता है अन्तर केवल मात्रा या श्रेणी (degree) का है; कुछ श्रम में मस्तिष्क की प्रधानता हो सकती है जबकि कुछ में शरीर की।

श्रम की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OR PECULIARITIES OF LABOUR)

श्रम उत्पादन का एक बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। उत्पादन के साधन के रूप में श्रम की विशेषताएँ हैं जो कि इसको अन्य उत्पादन के साधनों से पृथक करती हैं। श्रम की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) **श्रम एक सक्रिय (active) साधन है**—भूमि तथा पूंजी निष्क्रिय साधन हैं, जबकि श्रम एक अत्यन्त सक्रिय साधन है। श्रम के बिना भूमि तथा पूंजी से कुछ भी उत्पादन नहीं किया

जा सकता है। प्रबन्ध तथा साहस, एक प्रकार के श्रम के विशिष्ट रूप हैं। वास्तव में, श्रम के बिना किसी प्रकार का उत्पादन किया नहीं जा सकता है।

(२) **श्रम को श्रमिक से पृथक नहीं किया जा सकता**—जब कोई श्रमिक अपने श्रम को बेचता है तो वह अपने आपको श्रम से पृथक नहीं कर सकता; श्रम प्रदान करने के स्थान पर श्रमिक को स्वयं उपस्थित रहना पड़ता है। इसलिए श्रमिक अपने श्रम को बेचते समय कई बातों को ध्यान में रखता है, जैसे कार्य करने की जगह का वातावरण, कार्य का स्वभाव, मालिक की प्रकृति (temperament), इत्यादि। इन सब बातों को श्रमिक को ध्यान में रखना पड़ता है क्योंकि यदि ये बातें उसके लिए अनुकूल हैं तो उसका जीवन सुखी रहेगा अन्यथा नहीं। एक वस्तु-विक्रेता इसकी चिन्ता नहीं करता कि उसकी वस्तु कैसे वातावरण में बिकेगी, कहाँ बिकेगी, इत्यादि, क्योंकि विक्रेता अपने आपको वस्तु से पृथक कर सकता है।

(३) **श्रम नाशवान (perishable) है**—इसका अर्थ है कि श्रमिक को अपने तथा अपने परिवार के जीवन के लिए कार्य करना पड़ेगा। यदि वह किसी दिन कार्य नहीं करता है तो या तो उस दिन का श्रम सदैव के लिए नष्ट हो जाता है या श्रमिक को दूसरे दिन दुगना कार्य करना पड़ेगा। परन्तु एक या दो दिन से अधिक श्रमिक कार्य को स्थगित नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, श्रम का संचय (stock) नहीं किया जा सकता, जबकि एक वस्तु-विक्रेता वस्तु का संचय पर्याप्त समय तक कर सकता है और अच्छी कीमत मिलने पर वस्तु को बेच सकता है।

(४) **श्रम की सौदा करने की शक्ति (bargaining power) कमजोर होती है**—श्रम नाशवान है, इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक की मालिकों के साथ सौदा करने की शक्ति कमजोर रहती है। मालिक जो भी वेतन या मजदूरी देता है उस पर श्रमिक को कार्य करना पड़ता है क्योंकि वह बेरोजगार नहीं रह सकता। इसके अतिरिक्त श्रमिक अशिक्षित होते हैं तथा उनकी आर्थिक स्थिति, मालिकों की अपेक्षा, बहुत कमजोर होती है; इन बातों के कारण भी श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति कमजोर रहती है। परन्तु श्रमिक संगठनों (labour unions) द्वारा श्रमिक अपनी सामूहिक सौदा करने की शक्ति में वृद्धि कर लेता है और उचित वेतन पाने में सफल हो जाता है।

(५) **श्रम की पूर्ति मन्द गति से परिवर्तित होती है**—श्रमिकों की पूर्ति धीरे-धीरे बढ़ती है क्योंकि पूर्ति नये बच्चों की जन्म-दर तथा लम्बे समय तक उनके पोषण और प्रशिक्षण इत्यादि पर निर्भर रहती है। इसी प्रकार श्रमिकों की पूर्ति को शीघ्रता से कम नहीं किया जा सकता क्योंकि जन्मदर को तुरन्त कम नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, श्रम की पूर्ति या उसकी माँग के साथ शीघ्रता से समायोजन (adjustment) नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, मन्दी के समय में श्रमिकों की माँग कम होती है परन्तु उनकी पूर्ति को शीघ्रता से कम नहीं किया जा सकता, परिणामस्वरूप श्रमिकों की मजदूरी की दर गिर जाती है। इसके विपरीत व्यापार तथा उद्योग के विकास के समय में या युद्ध काल में श्रमिकों की माँग बहुत बढ़ जाती है, परन्तु बढ़ी हुई माँग के अनुरूप श्रम की पूर्ति में शीघ्रता से वृद्धि नहीं की जा सकती, परिणामस्वरूप श्रमिकों के वेतन ऊँचे हो जाते हैं।

(६) **श्रम की श्रेष्ठता (quality) श्रमिकों के माता-पिता के साधनों पर निर्भर करती है**—यदि किसी श्रमिक के माता-पिता धनवान, चरित्रवान, योग्य तथा दूरदर्शी हैं तो वह गुणात्मक दृष्टि से, अन्य श्रमिकों की अपेक्षा, अधिक श्रेष्ठ होगा। इसके विपरीत दशाओं में श्रमिक योग्य तथा दक्ष नहीं होगा।

(७) श्रमिक अपना श्रम बेचता है न कि स्वयं को—यद्यपि श्रमिक तथा श्रम को पृथक नहीं किया जा सकता, परन्तु कार्य करने के लिए श्रमिक अपने श्रम को बेचता है, न कि स्वयं को। अपने शरीर, योग्यता, कुशलता इत्यादि पर श्रमिक का अपना अधिकार होता है। प्राचीन समय में जिन जगहों पर दासता की प्रथा प्रचलित थी, वहाँ पर श्रमिक को, श्रम के साथ अपने आपको भी बेचना पड़ता था। परन्तु अब दासता की प्रथा समाप्त हो गयी है, इसलिए श्रमिक केवल अपने श्रम को ही बेचता है।

(८) श्रम एक साधन (means) तथा साध्य (end) दोनों है—श्रम की सहायता से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, इस दृष्टि से श्रम एक साधन है। परन्तु विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन इसलिए किया जाता है ताकि श्रमिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके; इस दृष्टि से श्रम एक साध्य भी है। अतः "श्रम एक साधन तथा साध्य दोनों है और उसका मूल्य (value) केवल श्रम के रूप में किये गये कार्य के मूल्य में ही निहित नहीं होता।"[4]

(९) श्रम का प्रतिफल श्रम की पूर्ति को सामान्य तरीके (normal way) से प्रभावित नहीं करता—सामान्यतया वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि उनकी पूर्ति में वृद्धि करती है। परन्तु श्रम के साथ सदैव ऐसा नहीं होता। एक सीमा के बाद यदि श्रमिकों के वेतन में वृद्धि की जाती है तो वे अधिक आराम (leisure) प्राप्त करना पसन्द करेंगे और कम घण्टे काम करेंगे; दूसरे शब्दों में, श्रमिकों की पूर्ति, उनके वेतनों में वृद्धि के परिणामस्वरूप कम होगी। इसके विपरीत, एक सीमा के नीचे यदि श्रमिकों का वेतन कम कर दिया जाता है तो श्रमिक अपना तथा अपने परिवार का पोषण ठीक प्रकार से नहीं कर पायेंगे और अधिक घण्टे काम करेंगे; दूसरे शब्दों में, श्रमिकों की पूर्ति, उनके वेतनों में कमी के परिणामस्वरूप बढ़ेगी। स्पष्ट है, श्रम का प्रतिफल श्रम की पूर्ति को सामान्य तरीके से प्रभावित नहीं करता।

(१०) श्रम में पूँजी का विनियोग (investment) किया जाता है—श्रम को अधिक योग्य तथा कुशल बनाने के लिए, उसके अच्छे पोषण, शिक्षा तथा प्रशिक्षण इत्यादि में पर्याप्त पूँजी का विनियोग किया जाता है। उद्योगों में पूँजी का विनियोग करके अधिक उत्पादन या आय प्राप्त की जाती है। इसी प्रकार कुशल, शिक्षित तथा योग्य श्रमिकों द्वारा अधिक उत्पादन किया जा सकता है। अतः **श्रम को मानवीय पूँजी (human capital) भी कहा जाता है।** द्रव्य की वह मात्रा जो श्रमिकों में विनियोग कर दी जाती है सदैव के लिए उन्हीं में लगी रहेगी, उसको निकाला नहीं जा सकता है, जबकि वस्तुओं, मशीनों, भवनों इत्यादि में लगाये गये द्रव्य को इन वस्तुओं को बेचकर एक सीमा तक निकाला जा सकता है। यद्यपि अधिक द्रव्य के प्रयोग से श्रम की कुशलता में वृद्धि के परिणामस्वरूप अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है और इस प्रकार बढ़े हुए उत्पादन के रूप में द्रव्य को एक सीमा तक निकाला जा सकता है परन्तु यह क्रिया बहुत धीमी होती है तथा इसके लिए बहुत लम्बे समय की आवश्यकता है।

(११) श्रम, वस्तु की भाँति, लगातार सेवा प्रदान नहीं कर सकता—बहुत-सी वस्तुओं का निर्माण हो जाने के पश्चात उनसे लगातार तथा लम्बे समय तक सेवा प्राप्त की जा सकती हैं। परन्तु श्रम के सम्बन्ध में ऐसा नहीं होता क्योंकि श्रम की पूर्ति करने वाला मनुष्य है तो जीव

---

4 "But labour is both a means and an end and its value does not consist merely in the value of the work it does as labour."

होता है। श्रमिकों को बीच-बीच में निश्चित समयों पर मनोरंजन, आराम, खाने, पीने, सोने इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है।

(१२) **श्रम गतिशील (mobile) है**—श्रम एक मनुष्य है, उसमें जीव है। अतः वह पूंजी तथा वस्तुओं की अपेक्षा कम गतिशील होता है। उसको एक स्थान से दूसरे स्थान, एक उद्योग से दूसरे उद्योग या एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में ले जाया जा सकता है, यद्यपि व्यावहारिक जीवन में कुछ बातें पूर्ण गतिशीलता में बाधक होती है।

(१३) **श्रम बुद्धि तथा निर्णय-शक्ति का प्रयोग करता है (Labour exercises intelligence and judgement)**—श्रमिक मनुष्य होते हैं, इसलिए उनमे बुद्धि तथा तर्क और निर्णय शक्ति होती है। किसी भी कार्य या श्रम में बुद्धि तथा निर्णय शक्ति का प्रयोग करना श्रमिकों के लिए स्वाभाविक है। जिस कार्य में बुद्धि के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती, ऐसे कार्य को विशुद्ध यान्त्रिक कार्य (pure mechanical work) कहा जाता है और ऐसा कार्य मशीनों द्वारा किया जाता है। 'स्नायु-शक्ति' (muscle-power) तथा मशीन एक दूसरे के प्रत्यक्ष प्रतियोगिता में है और एक का दूसरे से प्रतिस्थापन किया जा सकता है। परन्तु मानव मस्तिष्क के कार्य को किसी अन्य से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता।'[5] अतः प्रो० केअरनक्रास (Cairncross) के अनुसार, श्रम की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता 'बुद्धि तथा निर्णय-शक्ति का प्रयोग' है क्योंकि इसके आधार पर इसको अन्य उत्पादन के साधनों से पृथक किया जा सकता है।

श्रम की उपरोक्त विशेषताओं के कारण ही श्रम के एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता होती है। वास्तव में, श्रम की उपरोक्त विशेषताओं में थोड़ी अतिशयोक्ति (exaggeration) प्रतीत होती है क्योंकि इनमे से अधिकाश विशेषताएँ अन्य उत्पादन के साधनों में भी पायी जाती हैं :

श्रम की विशेषताओं का आर्थिक सिद्धान्त में महत्त्व
(IMPORTANCE OF PECULIARITIES OF LABOUR IN ECONOMIC THEORY)

श्रम की विशेषताओं का आर्थिक सिद्धान्त में महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट होता है :

(१) **श्रम की मांग पर प्रभाव**—एक फर्म श्रम की मांग उसकी उत्पादकता (productivity) के कारण करती है न कि उसकी प्रत्यक्ष उपयोगिता के कारण, जबकि किसी वस्तु की मांग उसकी प्रत्यक्ष उपयोगिता के कारण की जाती है। श्रम की मांग इसलिए की जाती है क्योंकि उसकी सहायता से किसी वस्तु का उत्पादन किया जाता है; अतः श्रम की मांग 'उत्पन्न मांग' (derived demand) होती है।

(२) **श्रम की पूर्ति पर प्रभाव**—श्रम एक जीव है, इसलिए उसकी पूर्ति में धीरे-धीरे परिवर्तन होता है; उसकी पूर्ति को शीघ्रता से घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता।

(३) **श्रम की मजदूरी पर प्रभाव**—(i) श्रम अत्यन्त नाशवान (perishable) तथा आर्थिक दृष्टि से दुर्बल होता है तथा उसकी सौदा करने की शक्ति कमजोर होती है। इन सब विशेषताओं का परिणाम यह होता है कि मालिक या उद्योगपति श्रमिकों का शोषण करते हैं और उनको मजदूरी उनकी उत्पादकता के बराबर नहीं देना चाहते हैं। परन्तु आज के युग में अपनी इन विशेषताओं से उत्पन्न कमजोरियों को दूर करने के लिए श्रमिक अपने आप को सगठित करके 'श्रम-संघ'

5 "Muscle power and machinery are in direct competition with one another and the one can replace the other. But the work of human mind cannot be replaced."

बनाते हैं। इन 'श्रम-संघों' के कारण उनकी सौदा करने की शक्ति बढ़ जाती है और वे प्रायः मालिकों से उचित मजदूरी, तथा कभी-कभी ऊँची मजदूरी, लेने में सफल हो जाते हैं।

(ii) श्रम की एक विशेषता यह है कि श्रमिकों की पूर्ति को शीघ्रता से घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता है। इस विशेषता के कारण, युद्ध काल में श्रमिकों की माँग बढ़ जाने पर उनकी मजदूरी बढ़ जाती है क्योंकि श्रमिकों की पूर्ति को शीघ्रता से बढ़ाया नहीं जा सकता। इसी प्रकार मन्दी के समय में श्रमिकों की माँग कम होने पर उनकी मजदूरी कम हो जाती है क्योंकि श्रमिकों की पूर्ति को शीघ्रता से घटाया नहीं जा सकता।

(iii) श्रम एक जीव है, उसको एक निर्जीव वस्तु की भाँति नहीं समझा जा सकता। उनको अपने तथा अपने परिवार के पोषण के लिए उचित मजदूरी मिलनी चाहिए। इसलिए प्रत्येक देश की सरकार श्रमिकों के संरक्षण के लिए विभिन्न प्रकार के नियम बनाती है ताकि श्रमिकों का शोषण न हो सके और उन्हें उचित मजदूरी मिले।

(iv) कभी-कभी श्रम की कुशलता या गुण के द्वारा उनकी मजदूरी निर्धारित नहीं होती बल्कि संस्थात्मक तत्त्व (institutional factors) तथा सामाजिक रीति-रिवाज मजदूरों को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ, भारत जैसे अविकसित देशों में, गाँवों में श्रमिकों की मजदूरी प्रायः गाँव में प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार निर्धारित होती है न कि प्रतियोगिता या इकरार (contract) द्वारा।

(४) **श्रम के कार्य करने की दशाओं पर प्रभाव**—(अ) श्रम की एक विशेषता यह है कि श्रम को श्रमिकों से पृथक नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ है कि श्रम को केवल एक निर्जीव वस्तु की भाँति चाहे जिस तरह काम करने को मजबूर नहीं किया जा सकता, न उससे लगातार लम्बे समय तक काम लिया जा सकता है। यह आवश्यक है कि उसके कार्य करने का वातावरण अच्छा हो, बीच-बीच में उसको आराम की सुविधाएँ दी जाएँ, मनोरंजन इत्यादि की उचित व्यवस्था हो, इत्यादि। श्रम में मानवीय तत्त्व को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसलिए विभिन्न देशों की सरकारें श्रमिकों के कल्याण तथा सामाजिक सुरक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के नियम बनाती हैं।

(ब) श्रम में मानवीय तत्त्व के कारण कभी-कभी श्रम की मजदूरी ऊँची हो जाने पर वह कम घण्टे काम करना पसन्द करता है ताकि उसे अधिक आराम मिल सके और वह एक स्वस्थ तथा सुखी जीवन व्यतीत कर सके।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि श्रम की विशेषताएँ किस प्रकार से श्रम की माँग, श्रम की पूर्ति, कार्य करने के घण्टे, मजदूरी, सरकार की नीतियों, इत्यादि को प्रभावित करती हैं। आर्थिक सिद्धान्त (Economic theory) में श्रम की विशेषताओं का महत्त्व स्पष्ट है। श्रम की विशेषताओं के कारण श्रम के एक अलग सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु श्रम का मूल्य (अर्थात मजदूरी) निर्धारण में माँग तथा पूर्ति का सामान्य सिद्धान्त अवश्य लागू होता है।

क्या श्रम के साथ एक वस्तु की भाँति व्यवहार किया जा सकता है ?
(CAN LABOUR BE TREATED AS A COMMODITY)

क्लासिकल अर्थशास्त्री (Classical Economists) श्रम को एक वस्तु की भाँति समझते थे कि किसी वस्तु की भाँति, बाजार में बेचा तथा खरीदा जा सकता है और उसका मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। परन्तु यह विचारधारा अनुचित है। श्रम को एक वस्तु की भाँति नहीं समझा जा सकता है; इसके कारण निम्नलिखित हैं :

(१) वस्तु निर्जीव होती है, जबकि श्रम जीव होता है। वस्तु को विक्रेता से अलग किया जा सकता है; इसलिए एक विक्रेता वस्तु को बेचने के बाद इस बात की चिन्ता नहीं करता कि उस वस्तु का क्या होना है, उसका उचित प्रयोग होता है या नहीं। परन्तु श्रम को श्रमिक से पृथक नहीं किया जा सकता। जब श्रमिक अपने श्रम को बेचता है तो श्रमिक स्वयं श्रम के साथ उपस्थित रहता है; उसका सारा व्यक्तित्व, जीवन, कुशलता, परिवार की खुशी इत्यादि सभी बातें उसके श्रम के साथ जुड़ी रहती है।

(२) थोड़े समय में ही वस्तुओं की पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है, परन्तु श्रम की पूर्ति को शीघ्रता से नहीं बढ़ाया जा सकता, ऐसा करने में वर्षों लगते हैं। इसी तरह से कुछ ही दिनों में या कुछ ही महीनों में कुछ वस्तुओं को दूसरी वस्तुओं से प्रतिस्थापित किया जा सकता है। परन्तु श्रमिकों को मशीनों या अन्य वस्तुओं से इतनी आसानी से तथा कम समय में प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। श्रमिकों के स्थान पर मशीनों का प्रयोग करने का अर्थ है कि श्रमिक बेकार हो जायेंगे। इसलिए साथ ही इनके रोजगार की भी व्यवस्था करनी होगी।

(३) वस्तुओं की भाँति श्रम एक निष्क्रिय (passive) वस्तु नहीं है। वस्तु निर्जीव है, उसमें कोई भावनाएँ नहीं होती; श्रम जीव है और वह विभिन्न प्रकार की भावनाओं से प्रभावित होता है। श्रमिक श्रम बेचने तथा कार्य करने में उन सब भावनाओं (feeling) से प्रेरित होता है जो उसके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक होती हैं।

(४) वस्तुओं में बहुत अधिक गतिशीलता होती है, जबकि श्रम बहुत कम गतिशील होता है। श्रम की गतिशीलता में सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक तत्त्व, इत्यादि बाधक होते हैं।

(५) वस्तुओं को लम्बे समय तक संचय (store) किया जा सकता है, परन्तु श्रम को हम कुछ दिनों के लिए भी संचय नहीं कर सकते; यदि श्रमिक को कुछ दिनों तक कार्य नहीं मिलता तो उसको अपने तथा अपने परिवार का पोषण करना कठिन हो जायगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि श्रम को वस्तु की भाँति नहीं समझा जा सकता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रम का प्रतिफल या मजदूरी माँग तथा पूर्ति के सामान्य सिद्धान्त द्वारा निर्धारित नहीं होती। वास्तव में, श्रम की विशेषताओं के कारण सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

श्रम की कार्यक्षमता
(EFFICIENCY OF LABOUR)

किसी देश का उत्पादन श्रमिकों की संख्या तथा उनके कार्य करने के घण्टों के अतिरिक्त कार्यक्षमता पर भी निर्भर करती है। किसी देश में श्रमिक जितने अधिक कुशल होंगे उतना ही अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा।

श्रम की कार्यक्षमता का अर्थ

(i) एक निश्चित समय में तथा दी हुई परिस्थितियों में एक श्रमिक की, मात्रा तथा किस्म दोनों की दृष्टि से, वस्तु के उत्पादन करने की शक्ति को श्रम की कार्यक्षमता कहते हैं। श्रम की कार्यक्षमता एक तुलनात्मक शब्द है। यदि एक श्रमिक समान दशाओं में दूसरे श्रमिक की अपेक्षा अधिक वस्तुएँ तथा अच्छी किस्म की वस्तुएँ उत्पन्न करता है तो वह, दूसरे की अपेक्षा, अधिक कुशल कहा जायेगा।

(ii) श्रम की कार्यक्षमता को प्राय: मुद्रा में मापा जाता है। इसको मापने के लिए हमें उत्पादन की मात्रा (quantity) तथा किस्म (quality) की तुलना श्रम की लागत (cost) से

साथ करनी पड़ती है। वस्तु की मात्रा को मापना आसान है, परन्तु उसकी उत्तमता को ठीक-ठीक मापना कठिन है। ऐसी परिस्थिति में कार्यक्षमता को केवल मोटे रूप में ही मापा जा सकता है। यदि लागत समान (constant) हैं तो कार्यक्षमता, उत्पादन के साथ प्रत्यक्ष (direct) रूप से परिवर्तित होती है अर्थात अधिक उत्पादन का अर्थ है अधिक कार्यक्षमता तथा कम उत्पादन का अर्थ है कम कार्यक्षमता। यदि उत्पादन समान रहता है तो कार्यक्षमता, लागत से विपरीत दशा में परिवर्तित होती है अर्थात लागत अधिक होने पर कार्यक्षमता कम तथा लागत कम होने पर कार्यक्षमता अधिक होगी।

श्रम की कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors Affecting the Efficiency of Labour)

श्रमिकों की कार्यक्षमता अनेक तत्त्वों से प्रभावित होती है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन तत्त्वों को पाँच मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त कर सकते हैं—(१) श्रमिक के व्यक्तिगत गुण, (२) देश की परिस्थितियाँ, (३) कार्य करने की दशाएँ, (४) प्रवन्ध की योग्यता, तथा (५) कुछ अन्य बातें। इन शीर्षकों के अन्तर्गत विभिन्न तत्त्वों का विस्तृत अध्ययन नीचे किया जा रहा है :

(१) श्रमिक के व्यक्तिगत गुण—श्रमिकों के व्यक्तिगत गुणों का उनकी कार्यक्षमता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रमुख गुण इस प्रकार हैं :

(i) **जातीय तथा पैत्रिक विशेषताएँ** (Racial and hereditary characteristics)—एक व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है वह उस जाति के गुणों को जन्म से ही ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार स्वस्थ, योग्य तथा शिक्षित माता-पिता के बच्चे भी प्रायः स्वस्थ, योग्य तथा शिक्षित होंगे।

भारत में वैश्य जाति के लोग प्रायः व्यापार में दक्ष होते हैं: क्षत्रिय तथा सिक्ख अच्छे सैनिक सिद्ध होते हैं। भारत में अधिकांश श्रमिकों के माता-पिता स्वस्थ तथा शिक्षित नहीं होते, परिणामस्वरूप भारतीय श्रमिक की कार्यकुशलता कम है।

परन्तु समय, शिक्षा, परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ जातीय तथा पैत्रिक गुणों में परिवर्तन होते रहते हैं।

(ii) **नैतिक गुण**—चरित्र, कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी इत्यादि नैतिक गुण कार्यक्षमता में वृद्धि करते हैं; उनकी अनुपस्थिति में कार्यक्षमता घटती है।

भारतीय श्रमिकों में शिक्षा की कमी तथा निर्धनता के कारण कर्तव्यनिष्ठा की कुछ कमी पायी जाती है। शिक्षा, उचित मजदूरी तथा उपयुक्त श्रम-नीति द्वारा भारतीय श्रमिकों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है।

(iii) **स्वास्थ्य तथा जीवन-स्तर**—यदि श्रमिक स्वस्थ है तो उसकी कार्यक्षमता अधिक होगी। अच्छे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त तथा पौष्टिक भोजन, स्वच्छ तथा हवादार मकान और पर्याप्त मात्रा में वस्त्र की उपलब्धि होनी चाहिए। यदि श्रमिकों को अच्छा वेतन मिलता है तो उनका जीवन-स्तर ऊँचा होगा, वे अपनी आवश्यक तथा आरामदायक आवश्यकताओं की पूर्ति करके अपनी कार्यक्षमता का स्तर ऊँचा बना सकेंगे :

अधिकांश भारतीय श्रमिकों को कम वेतन मिलता है, उनका जीवन-स्तर नीचा है, वे अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की भी पूर्ति भली प्रकार से नहीं कर पाते हैं; परिणामस्वरूप उनकी कार्यक्षमता कम होती है।

(iv) सामान्य बुद्धि (General intelligence)—श्रमिक की सामान्य बुद्धि की मात्रा (degree) उसकी कार्यक्षमता पर गहरा प्रभाव डालती है। एक श्रमिक जो ठीक सोच सकता है, जिसके विचारों में स्पष्टता है, जो तेज गति से कार्य कर सकता है, जो ठीक निर्णय ले सकता है तथा जिसकी स्मरण-शक्ति अच्छी है, दूसरे श्रमिक की अपेक्षा अधिक कुशल होगा। सामान्य बुद्धि के उपर्युक्त गुण प्रायः ईश्वर की भेंट हैं परन्तु शिक्षा इत्यादि के द्वारा वे अर्जित भी किये जा सकते हैं।

अन्य उन्नतिशील देशों की अपेक्षा भारतीय श्रमिक की सामान्य बुद्धि का स्तर नीचा है क्योंकि वह निर्धन, अशिक्षित तथा भाग्यवादी है।

(v) सामान्य, विशिष्ट तथा वाणिज्य शिक्षा (General, technical and commercial education)—सामान्य शिक्षा से व्यक्ति के मस्तिष्क का विकास होता है, वह विभिन्न प्रकार की समस्याओं तथा उत्पादन के नये तरीकों को सुगमता और शीघ्रता से समझ सकता है। आज के युग मे नये आविष्कार होते रहते हैं, उत्पादन की रीतियाँ तेजी से बदलती रहती हैं; ऐसी स्थिति मे सामान्य शिक्षा बहुत आवश्यक है ताकि श्रमिक नयी परिस्थितियों के साथ आसानी से समायोजन (adjustment) कर सकें। अतः सामान्य शिक्षा अप्रत्यक्ष रूप से श्रमिक की कार्य-कुशलता को प्रभावित करती है।

वाणिज्य तथा टेक्नीकल शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से श्रमिकों की कार्यक्षमता को प्रभावित करती है। टेक्नीकल शिक्षा श्रमिक को कार्य के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पहलुओं को समझने तथा कार्य को अधिक वैज्ञानिक रीति से करने मे मदद करती है। टेक्नीकल शिक्षा प्राप्त श्रमिकों के निरीक्षण की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। इन सब बातों के परिणामस्वरूप समय, शक्ति, कच्चे माल इत्यादि की बर्बादी न्यूनतम हो जाती है। टेक्नीकल शिक्षा प्राप्त श्रमिक कार्य से सम्बन्धित मशीनों के विकास, सरलीकरण तथा आविष्कार मे भी मदद करते हैं।

भारत मे, श्रमिकों के लिए सामान्य शिक्षा तथा वाणिज्य और टेक्नीकल शिक्षा की उचित एवं पर्याप्त सुविधाएँ नहीं हैं; परिणामस्वरूप, भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता का स्तर नीचा है।

(२) देश की परिस्थितियाँ—किसी भी देश की प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ श्रमिकों की कार्य क्षमता को प्रभावित करती हैं :

(i) जलवायु—प्राकृतिक परिस्थितियाँ, मुख्यतया जलवायु, श्रमिकों की कार्यक्षमता को प्रभावित करती हैं। (क) गरम देश के लोग गर्मी के कारण आलसी होते हैं और अधिक मेहनत नहीं कर पाते। इसके अतिरिक्त गरम देशों के लोगों की आवश्यकताएँ सरल तथा सीमित होती हैं जिन्हें वे थोड़ी मेहनत करके ही पूरी कर लेते हैं। (ख) ठण्डे देश के लोगों की कार्यक्षमता अधिक होती है, वे अधिक बलवान होते हैं; शरीर मे फुर्ती बनाये रखने के लिए उन्हें अधिक कार्य करना पड़ता है; उनकी आवश्यकताएँ भी अधिक होती हैं जिनको पूरा करने के लिए उन्हें अधिक मेहनत करनी पड़ती है। (ग) जिन देशों मे भूमि अधिक उपजाऊ है तथा अन्य प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हैं वहाँ के लोग कम मेहनत से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं।

भारत एक गरम देश है। अतः यहाँ के श्रमिकों की कार्यक्षमता, अमरीका, इंग्लैण्ड इत्यादि ठण्डे देशों की अपेक्षा कम है। परन्तु कृत्रिम तरीकों, जैसे, बिजली के पंखे, कूलर, खस की टट्टियों, इत्यादि से कार्य-स्थान का तापमान नीचा रखकर भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता को ऊँचे स्तर पर बनाये रखने के प्रयत्न किये जाते हैं। जापान, अफ्रीका आदि के श्रमिक प्रतिकूल जलवायु होने

पर भी बहुत परिश्रमी हैं। वास्तव में, जलवायु का श्रमिकों की कार्यक्षमता पर अधिक महत्त्वपू
प्रभाव नहीं पड़ता।

(i) **सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ**—एक देश के श्रमिकों की कार्यक्षमता देश
प्रचलित सामाजिक रीति-रिवाजों तथा धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होती है। ये परिस्थिति
श्रमिकों के उपयुक्त व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता में बाधक हो सकती हैं और इस प्रकार श्रम
कार्यक्षमता को कम कर सकती हैं।

भारत में, जाति प्रथा तथा धार्मिक विचार श्रमिकों की कार्यक्षमता को कम करते है
प्राय: एक व्यक्ति जिस जाति में पैदा होता है या जिस धर्म को मानता है वह उसी जाति या
के व्यवसाय को अपनाता है, अपनी योग्यता तथा रुचि के अनुसार वह व्यवसाय को चुनने में
स्वतन्त्र नहीं रह पाता। भारत में धार्मिक प्रवृत्ति श्रमिकों को भाग्यवादी बना देती है और भ
के भरोसे रहने के कारण उनकी कार्यक्षमता कम रहती है। परन्तु शिक्षा, आर्थिक विकास इत्य
के कारण इन बाधक तत्त्वों का प्रभाव कम होता जा रहा है।

(iii) **राजनीतिक परिस्थितियाँ**—यदि किसी देश में राजनीतिक स्थायित्व, सुरक्षा त
शान्ति है, तो वहाँ के श्रमिकों की कार्यक्षमता का स्तर ऊँचा होगा, इसके विपरीत परिस्थिति
नीचा होगा। एक परतन्त्र देश के श्रमिकों की कार्यक्षमता, स्वतन्त्र देश की अपेक्षा, कम होगी।

भारत में राजनीतिक स्थायित्व है जो श्रमिकों की कार्यकुशलता के लिए अनुकूल
परन्तु भारत बहुत लम्बे समय तक परतन्त्र रहा है जिसके परिणामस्वरूप यहाँ के श्रमिकों
कार्यक्षमता का स्तर नीचा रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात से श्रमिकों की कार्यक्षमता में वर
वृद्धि हो रही है।

(३) **कार्य करने की दशाएँ**—श्रमिकों की कार्यक्षमता कार्य करने की दशाओं से
प्रभावित होती है। इन दशाओं का विवरण इस प्रकार है :

(i) **कार्य के स्थान की दशा**—यदि कार्य का स्थान स्वच्छ तथा हवादार है, साफ पी
पानी, उचित प्रकाश, सर्दी-गर्मी से बचाव, मशीनों की दुर्घटनाओं से बचाव, केन्टीन, इत्यादि
उचित व्यवस्था है तो श्रमिकों की कार्यक्षमता का स्तर ऊँचा होगा। इन व्यवस्थाओं की अनुपि
में कार्यक्षमता में कमी होगी।

भारत में अधिकांश फैक्ट्रियों तथा कार्य करने के स्थानों पर उपर्युक्त बातों की उ
व्यवस्था नहीं होती है; परिणामस्वरूप भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता का स्तर नीचा रहता

(ii) **कार्य करने के घण्टे तथा उनका वितरण**—निरन्तर अधिक घण्टों तक कार्य कर
श्रमिकों में बहुत थकावट तथा शिथिलता आ जाती है और उनकी कार्यक्षमता गिर जाती है।
कार्य के घण्टे अधिक नहीं होने चाहिए ताकि श्रमिकों को मनोरंजन और आराम के लिए प
समय मिल सके। केवल कार्य करने के घण्टों में कमी ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनका उचित
रण भी कार्यक्षमता के लिए परम आवश्यक है। श्रमिकों को बीच-बीच में उचित विश्राम (
देने से उनकी कार्यक्षमता का स्तर गिरता नहीं है।

भारत में बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों में कार्य करने के घन्टों को फैक्ट्री अधिनियम के अ
नियमित कर दिया गया है, परन्तु फिर भी अमरीका, इंगलैण्ड इत्यादि उन्नत देशों की अपेक्षा
देश में कार्य करने के घण्टों की संख्या अधिक है। अमरीका में तो कार्य करने के घण्टों में
से अधिक कमी करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(iii) मजदूरी की पर्याप्तता तथा नियमितता (Adequacy and regularity of wages)—यदि श्रमिक को पर्याप्त मजदूरी मिलती है तो उसका जीवन-स्तर ऊँचा होगा और वह अपनी कार्यक्षमता के स्तर को ऊँचा बनाये रख सकेगा। जब श्रमिक को यह विश्वास रहता है कि उसको उचित वेतन निश्चित समय पर तथा द्रव्य के रूप में मिलता रहेगा तो वह अपना कार्य पूरी मेहनत और मन लगाकर करेगा तथा इस प्रकार उसकी कार्यक्षमता का स्तर ऊँचा रहेगा।

(iv) अच्छी मशीनों तथा औजारों की प्राप्ति—यदि एक श्रमिक को अच्छी मशीन, यन्त्र या औजार कार्य करने के लिए दिये जाते हैं तो उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होगी और वह अधिक कार्य कर सकेगा। पुरानी, घिसी-पिटी मशीनों तथा औजारों के प्रयोग से उत्पादन कम मात्रा में होगा और उसकी कार्यक्षमता गिर जायेगी।

भारतीय श्रमिकों को अच्छी तथा नवीनतम औजारों, मशीनों इत्यादि से कार्य करने की उचित सुविधाएँ नहीं हैं; इसलिए उनकी कार्यक्षमता नीची रहती है।

(v) आशा, स्वतन्त्रता तथा परिवर्तन (Hopefulness, freedom and change)—यदि श्रमिक को भविष्य में उन्नति की आशा है तो वह अधिक मेहनत के साथ कार्य करेगा। कार्य करने की प्रबल इच्छा बनाये रखने के लिए श्रमिक को उचित स्वतन्त्रता भी मिलनी चाहिए। यदि कार्य में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है तो श्रमिक की कार्य के प्रति रुचि बनी रहती है।

भारत में प्रजातन्त्र है, इसलिए श्रमिकों को पर्याप्त स्वतन्त्रता है। परन्तु प्राय. फैक्ट्रियों में उन्हें भविष्य में उन्नति की आशा कम रहती है तथा कार्य में परिवर्तन की व्यवस्था की भी कमी रहती है; जबकि उन्नतिशील देशों में श्रमिकों की भविष्य में उन्नति करने के बहुत अवसर रहते हैं।

(v) श्रम कल्याण कार्य तथा सामाजिक सुरक्षा—यदि श्रमिकों के लिए कल्याणकारी कार्यों की उचित व्यवस्था है तो उनकी कार्य-क्षमता में वृद्धि होगी। इसी प्रकार सामाजिक सुरक्षा की उचित व्यवस्था द्वारा श्रमिक दुर्घटना, बेरोजगारी, वृद्धावस्था, मृत्यु इत्यादि जीवन की अनिश्चितताओं से चिन्तित नहीं रहेगा और इस प्रकार उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होगी।

भारत में राज्य सरकारों, मालिकों, श्रमिक संघों इत्यादि द्वारा विभिन्न प्रकार के श्रमिक कल्याण कार्य किये जाते हैं परन्तु वे कम हैं। इसी प्रकार भारत में श्रमिक राज्य बीमा अधिनियम १९४८ के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा का प्रारम्भ कर दिया गया है परन्तु इसका क्षेत्र अभी बहुत सीमित है। इंगलैण्ड तथा अन्य उन्नतिशील देशों में श्रमिक जन्म से मरण तक सभी प्रकार की अनिश्चितताओं से सुरक्षित रहता है। परिणामस्वरूप भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता इंगलैण्ड के श्रमिकों की अपेक्षा, बहुत कम है।

(४) प्रबन्ध की योग्यता (Capability of organisation)—श्रमिकों की कार्यक्षमता प्रबन्धक की कुशलता तथा योग्यता पर भी निर्भर करती है। यदि प्रबन्धक योग्य व्यक्ति है तो वह श्रमिकों के बीच उनकी रुचि तथा योग्यता के अनुसार कार्य का वितरण करेगा, अन्य उत्पादन के साधनों के साथ श्रम को अनुकूलतम अनुपात में मिलायेगा, तथा श्रमिकों के विकास के लिए उचित सुविधाओं की व्यवस्था करेगा। इन सुविधाओं के परिणामस्वरूप श्रम की कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। इसके विपरीत एक अयोग्य तथा अकुशल प्रबन्धक श्रमिकों का उचित संगठन तथा समन्वय नहीं कर पायेगा और श्रमिकों की कार्यक्षमता में कमी आ जायेगी।

भारत में योग्य, कुशल तथा अनुभवी प्रबन्धकों की कमी है जिसके कारण भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता अन्य उन्नतिशील देशों की अपेक्षा कम है।

(५) **कुछ अन्य तत्त्व** (Some other factors)—श्रमिकों की कार्यक्षमता को कुछ अन्य बातें भी प्रभावित करती हैं जो इस प्रकार हैं :

(i) **श्रमिक संघों की शक्ति**—यदि मजदूरों के संगठन शक्तिशाली हैं तो वे मालिकों से उचित वेतन ले सकेंगे, श्रमिकों की शिक्षा, प्रशिक्षण, मनोरंजन इत्यादि की व्यवस्था में अच्छा सहयोग दे सकेंगे। इन सब बातों के परिणामस्वरूप श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि होगी।

भारत में श्रमिक संघ, कई कारणों से, शक्तिशाली नहीं हो पाये हैं; उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर है। अतः भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि में श्रमिक-संघों का कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं रह जाता है।

(ii) **श्रमिकों का प्रवासी होना** (Migratory character of labour)—यदि श्रमिक एक व्यवसाय में जम कर कार्य नहीं करते हैं. बल्कि एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में, एक स्थान से दूसरे स्थान को बहुत जल्दी-जल्दी जाते रहते हैं तो वे एक व्यवसाय में निपुण नहीं हो पाते और उनकी कार्यक्षमता का स्तर नीचा रहता है।

भारत में श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति अभी भी समाप्त नहीं हो पायी है, वे कुछ समय कार्य करने के पश्चात अपने गाँवों को वापस चले जाते हैं तथा कुछ समय गाँवों में रहकर फिर फैक्ट्रियों में काम करने को आते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उन्हें पहले उद्योग या व्यवसाय में काम मिल ही जाय। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रायः अपने कार्य से अनुपस्थित रहते हैं। भारतीय श्रमिकों की अनुपस्थिति तथा उनका प्रवासी होना उनकी कार्यक्षमता को कम करने वाले तत्त्व हैं।

(iii) **मालिकों का सहानुभूति का दृष्टकोण**—यदि मालिक श्रमिकों के प्रति उदार रहते हैं, उनकी कठिनाइयों तथा समस्याओं को समझने का प्रयत्न करते हैं, श्रमिकों को निर्जीव वस्तुओं की भाँति नहीं समझते तथा श्रमिकों में मानवीय तत्त्व को उचित मान्यता देते हैं तो श्रमिकों को मनोवैज्ञानिक संतोष मिलता है। श्रमिकों तथा मालिकों के अच्छे सम्बन्ध रहते हैं। इन बातों के कारण श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

भारत में बहुत थोड़े उद्योगपति ऐसे हैं जो श्रमिकों के प्रति उदार तथा सहानुभूति का दृष्टिकोण रखते हैं। अतः श्रमिकों की कार्यक्षमता कम रहती है।

भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि के सुझाव
(SUGGESTIONS FOR IMPROVING THE EFFICIENCY OF INDIAN LABOUR)

प्रायः यह कहा जाता है कि इंगलैण्ड, अमरीका इत्यादि उन्नतिशील देशों की अपेक्षा भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता बहुत कम है। भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता के कम होने के अनेक कारण हैं। कम वेतन, जीवन-स्तर का नीचा होना, अच्छे स्वास्थ्य का न होना, सामान्य तथा टेक्नीकल शिक्षा की कमी, देश की गर्म जलवायु, कार्य करने की असन्तोषजनक परिस्थितियाँ, कार्य करने की अच्छी मशीनों तथा औजारों की कमी, योग्य प्रबन्धकों की कमी, श्रम संघ आन्दोलन का अविकसित दशा में होना, श्रमिकों का प्रवासी होना, इत्यादि अनेक कारण भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता के निम्न स्तर के लिए उत्तरदायी हैं। वास्तव में, भारतीय श्रमिक अन्य किसी भी देश के श्रमिक से कम कुशल नहीं हैं, केवल विपरीत परिस्थितियों के कारण ही भारतीय श्रमिकों का कार्यक्षमता का स्तर नीचा है।

भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं :

(१) सामान्य, वाणिज्य तथा टेक्नीकल शिक्षा की उचित व्यवस्था—यह परम आवश्यक है कि अधिक से अधिक श्रमिकों को सामान्य शिक्षा दी जाय। सन्तोषजनक बात है कि भारत सरकार ने प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य कर दी है। परन्तु इतना पर्याप्त नहीं है, श्रमिकों को उच्च सामान्य शिक्षा के लिए सरकार को हर प्रकार की आर्थिक सहायता देनी चाहिए।

श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा वाणिज्य और टेक्नीकल शिक्षा में सीधा सम्बन्ध है। टेक्नीकल शिक्षण संस्थाओं की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है तथा उनमें अधिक से अधिक श्रमिकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए।

भारत सरकार ने 'श्रमिक शिक्षा का केन्द्रीय बोर्ड' (Central Board for Workers' Education) स्थापित किया है जिसमें केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों, उत्पादकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि और शिक्षा विशेषज्ञ होते हैं। बोर्ड ने देश में १४ 'प्रादेशिक श्रम शिक्षा केन्द्र' (Regional Workers' Education Centres) स्थापित कर दिये हैं।

(२) कार्य करने की अच्छी दशाएँ—श्रमिकों के कार्य करने के स्थान स्वच्छ तथा हवादार होने चाहिए, कार्य स्थान पर प्रकाश का ठीक प्रबन्ध होना चाहिए, साफ पानी तथा अच्छी कैन्टीनों (canteens) की व्यवस्था होनी चाहिए। भारत सरकार ने श्रमिकों के कार्य करने की दशाओं को सुधारने के लिए फैक्ट्री अधिनियम बना रखा है, इस अधिनियम का बहुत कड़ाई के साथ पालन करवाना चाहिए।

(३) मकानों की उचित व्यवस्था—भारतीय श्रमिकों के लिए मकानों की व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। भारतीय श्रमिक जिन मकानों में रहते हैं वे गन्दी बस्तियों में होते हैं, उनमें धूप, प्रकाश तथा हवा का नाम नहीं होता तथा रहने की जगह भी बहुत कम होती है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रमिकों के लिए खुली हुई जगहों पर स्वच्छ तथा हवादार मकानों की व्यवस्था की जाय। मकानों की उचित तथा पर्याप्त सुविधाएँ देने के लिए सरकार, उद्योगपतियों तथा श्रमिकों को मिलकर बराबर प्रयत्न करते रहने चाहिए। भारत सरकार ने विभिन्न प्रकार की मकान योजनाएँ चलायी हैं परन्तु आवश्यकताओं को देखते हुए वे बहुत कम हैं।

(४) उचित वेतन, स्वास्थ्य तथा जीवन स्तर में सुधार—भारतीय श्रमिकों की मजदूरी प्रायः कम होती है, वे अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर पाते हैं और उनका जीवन स्तर नीचा रहता है जो कार्यक्षमता को कम करता है। अतः ये बहुत आवश्यक है कि श्रमिकों को अच्छी मजदूरी दी जाय तथा बोनस इत्यादि की व्यवस्था की जाय। भारत सरकार इस ओर प्रयत्नशील है।

(५) अच्छी मशीनों तथा यन्त्रों की व्यवस्था—श्रमिकों को अधिक वेतन तब मिल सकेगा जबकि वे अधिक उत्पादन करें; अधिक उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि मालिकों द्वारा श्रमिकों को काम करने के लिए अच्छी मशीनों तथा कुशल यन्त्रों की व्यवस्था की जाय।

(६) गर्मी सर्दी से बचाव—भारत एक गर्म देश है। गर्मियों में श्रमिकों की कार्यक्षमता बहुत गिर जाती है; अतः गर्मी के दिनों में नमीकरण, खस की टट्टियों, पखों इत्यादि की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इसी प्रकार बहुत अधिक सर्दी से बचाव के लिए विभिन्न प्रकार के कृत्रिम साधनों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(७) श्रम कल्याण कार्य तथा सामाजिक सुरक्षा—भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के श्रम कल्याण कार्यों की अत्यन्त आवश्यकता है। केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों, मालिकों तथा श्रमिक संघों द्वारा, खेल-कूद के मैदानों, वाचनालयों, संगीत तथा

सांस्कृतिक कार्यक्रमों इत्यादि की व्यवस्था की गयी है, परन्तु आवश्यकताओं को देखते हुए ये कम हैं। श्रम राजकीय बीमा अधिनियम १९४८ (Employees' State Insurance Act, 1948) के अन्तर्गत श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा देने की भी व्यवस्था है, परन्तु अभी इस नियम का क्षेत्र सीमित है तथा थोड़े से श्रमिकों को ही इससे लाभ मिल पाता है। आशा है निकट भविष्य में ये सुविधाएँ अधिक से अधिक श्रमिकों को दी जा सकेंगी।

(८) **श्रमिक संघों को मजबूत बनाना**—भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन अभी भी बहुत कमजोर है; श्रमिक संघों की आर्थिक स्थिति खराब है, उन पर बाहरी राजनीतिक नेताओं का प्रभाव रहता है। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि अधिक से अधिक श्रमिकों को शिक्षा दी जाय ताकि श्रमिकों में से ही नेताओं का निर्माण किया जा सके। भारत में **रस्किन कॉलेज ऑव ऑक्सफोर्ड** (Ruskin College of Oxford) के नमूने पर श्रम कॉलेजों की स्थापना होनी चाहिए। कलकत्ते में **एशियन ट्रेड यूनियन कॉलेज** (Asian Trade Union College) की स्थापना करके इस दिशा में कदम उठाये गये हैं।

(९) **मालिकों का उदार दृष्टिकोण**—भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि के लिए यह परम आवश्यक है कि मलिकों का श्रमिकों के प्रति उदार तथा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण हो। ऐसी स्थिति में श्रमिक अधिक सन्तुष्ट रहेंगे और दिल लगाकर कार्य करेंगे।

श्रम की गतिशीलता
(MOBILITY OF LABOUR)

श्रम की गतिशीलता का अर्थ

श्रमिक की गतिशीलता का अर्थ श्रमिक का एक स्थान से दूसरे स्थान एक व्यवसाय या प्रयोग से दूसरे व्यवसाय या प्रयोग में, या कार्य के एक वर्ग (grade) से दूसरे वर्ग में जाने से लिया जाता है। **प्रो० टोमस** (Thomas) के अनुसार, **"श्रमिक की गतिशीलता का अर्थ एक व्यवसाय या प्रयोग से दूसरे में जाने की योग्यता तथा तत्परता से लिया जाता है।"**[6]

श्रम की गतिशीलता के प्रकार

श्रम की गतिशीलता निम्न प्रकार की होती है :

(१) **भौगोलिक गतिशीलता** (Geographical mobility)—जब श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है तो इसे 'भौगोलिक गतिशीलता' या 'स्थान गतिशीलता' या 'प्रादेशिक गतिशीलता' कहते हैं। यदि श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थायी रूप से चला जाता है तो इसे 'स्थायी भौगोलिक गतिशीलता' कहते हैं। यदि श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान को केवल थोड़े समय के लिए अर्थात अस्थायी रूप से जाता है तो इसे 'अस्थायी भौगोलिक गतिशीलता' (temporary geographical mobility) कहते हैं।

(२) **व्यावसायिक गतिशीलता** (Occupational mobility)—यदि श्रमिक एक व्यवसाय या उद्योग से दूसरे व्यवसाय या उद्योग में चला जाता है तो इसे 'व्यावसायिक गतिशीलता' कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक श्रमिक कपड़ा उद्योग को छोड़कर जूट उद्योग में चला जाता है तो इसे व्यावसायिक गतिशीलता कहेंगे।

(३) **वर्गीय गतिशीलता** (Grade mobility)—प्रत्येक व्यवसाय या उद्योग में श्रमिकों के लिए वेतन के आधार पर विभिन्न वर्ग (grade) होते हैं। यदि श्रमिक एक वर्ग से दूसरे वर्ग में

6 "By the mobility of labour is meant its ability and willingness to move from one trade or occupation to another."

जाता है तो इसे 'वर्गीय गतिशीलता' कहते हैं। वर्गीय गतिशीलता दो प्रकार की होती है—समवर्गीय या समस्तरीय गतिशीलता (horizontal mobility) तथा भिन्नवर्गीय या शीर्ष गतिशीलता (vertical mobility)। यदि श्रमिक एक फर्म या व्यवसाय को छोड़कर दूसरे फर्म या व्यवसाय में उसी वर्ग या ग्रेड में नौकरी करता है तो यह 'समस्तरीय गतिशीलता' कही जायेगी। जब श्रमिक एक फर्म या व्यवसाय को छोड़कर दूसरे फर्म या व्यवसाय में पहले की अपेक्षा ऊँचे वर्ग में या नीचे वर्ग में नौकरी करता है तो यह 'शीर्ष गतिशीलता' कही जायेगी।

श्रम की गतिशीलता के कारण (Causes of the Mobility of Labour) अथवा श्रम की गतिशीलता को प्रोत्साहित करने वाले तत्त्व (Factors Encouraging the Mobility of Labour)

भौगोलिक, व्यावसायिक तथा वर्गीय गतिशीलता को प्रभावित करने वाले कई तत्त्व हैं; ये निम्नलिखित हैं :

(१) भौगोलिक गतिशीलता के कारण

(i) *आर्थिक कारण*—श्रमिक नौकरी की तलाश में एक स्थान पर जा सकता है। भारत में गाँवों से बहुत से व्यक्ति शहरों में नौकरी के लिए जाते रहते हैं। (ii) *राजनीतिक कारण*—जब एक व्यक्ति के लिए एक स्थान पर राजनीतिक प्रगति के अवसर नहीं हैं तो वह दूसरे स्थान को जाना पसन्द करता है। (iii) *सामाजिक कारण*—यदि एक व्यक्ति एक स्थान पर अपनी जाति से निकाल दिया जाता है या जाति वालों से झगड़ा करता है, तो वह उस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को चला जाता है।

(२) व्यावसायिक गतिशीलता के कारण

(i) *ऊँचा वेतन*—यदि एक श्रमिक को दूसरे व्यवसाय में पहले की अपेक्षा अधिक वेतन मिल सकता है तो वह दूसरे व्यवसाय में चला जायेगा। (ii) *कार्य की सुरक्षा*—यदि एक श्रमिक को दूसरे व्यवसाय में, पहले की अपेक्षा, नौकरी का स्थायित्व तथा सुरक्षा अधिक है तो वह दूसरे व्यवसाय में जाना पसन्द करेगा। (iii) *कार्य की अच्छी दशाएँ*—यदि एक श्रमिक को दूसरे व्यवसाय में, पहले की अपेक्षा, कार्य करने करने की अच्छी दशाएँ मिलती हैं तो वह दूसरे व्यवसाय में चला जायेगा। (iv) *भविष्य में उन्नति की आशा*—यह स्वाभाविक है कि श्रमिक को जिस व्यवसाय में, भविष्य में उन्नति के अधिक अवसर प्राप्त होंगे, वह उसी व्यवसाय में जाकर कार्य करेगा।

(३) वर्गीय गतिशीलता के कारण

(i) *योग्यता में वृद्धि*—जब एक श्रमिक शिक्षा, ट्रेनिंग तथा अनुभव द्वारा अपनी योग्यता में वृद्धि कर लेता है तो उसे वर्तमान वर्ग (ग्रेड) से दूसरे ऊँचे वर्ग या ग्रेड में नौकरी मिल जाती है। (ii) *अन्य वर्गों में रोजगार के अधिक अवसर*—यदि किसी दूसरे ऊँचे वर्ग या ग्रेड में नौकरी के कई रिक्त स्थान हैं तो श्रमिकों को दूसरे ऊँचे वर्ग में नौकरी मिलना आसान हो जाता है। (iii) यदि श्रमिक को एक व्यवसाय में वर्तमान ग्रेड में नौकरी से मालिक द्वारा हटा दिया जाता है, तो यह हो सकता है कि उसे दूसरी जगह उसी व्यवसाय में उसी ग्रेड में नौकरी न मिले, तब उसे नीचे के ग्रेड में नौकरी करनी पड़ेगी।

श्रम की गतिशीलता में बाधक तत्त्व (Factors Hindering the Mobility of Labour) अथवा श्रम की गतिशीलता कम होने के कारण (Factors Responsible for the Low Mobility of Labour)

श्रम अन्य उत्पादन के साधनों की अपेक्षा कम गतिशील होता है। श्रम की गतिशीलता-

विभिन्न प्रकार के तत्वों से प्रभावित होती है। श्रम की गतिशीलता निम्न बाधक तत्वों के कारण कम होती है :

(१) **स्थानीय तथा पारिवारिक सम्बन्ध** (Local and family ties)—प्रायः श्रमिकों को अपने स्थान, घर तथा परिवार से स्नेह या जुड़ाव रहता है जिसके कारण वे दूसरे स्थान को नहीं जाना चाहते। भारतीय श्रमिकों को विशेष रूप से अपने स्थान तथा परिवार से बहुत जुड़ाव तथा स्नेह रहता है जिसके कारण दूसरे स्थान पर अच्छा वेतन मिलने पर वे जाना पसन्द नहीं करते।

(२) **क्षेत्र में विभिन्नता** (Differences between regions)—प्रायः एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत अन्तर पाया जाता है; इस भिन्नता के कारण भी श्रमिक एक क्षेत्र या स्थान से दूसरे क्षेत्र या स्थान को नहीं जाते। भारत एक विशाल देश है, इसके विभिन्न क्षेत्रों में खाने-पीने, रहन-सहन, भाषा, रीति-रिवाज, इत्यादि में बहुत भिन्नता पायी जाती है। ऐसी स्थिति में भारतीय श्रमिक अपने स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को नहीं जाना चाहता।

(३) **सामाजिक बाधाएँ** (Social obstacles)—कुछ सामाजिक बातें तथा रीति-रिवाज भी श्रम की गतिशीलता में बाधक होती हैं। भारत में जाति-प्रथा तथा संयुक्त परिवार प्रणाली श्रम की गतिशीलता में बहुत बाधक है। शिक्षा की प्रगति तथा आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप ये सामाजिक बन्धन अब भारत में ढीले होते जा रहे हैं।

(४) **सामान्य शिक्षा की कमी तथा अज्ञानता** (Lack of general education and ignorance)—भारत जैसे अविकसित देशों में श्रमिकों में सामान्य शिक्षा की बहुत कमी होती है, उन्हें विभिन्न व्यवसायों तथा स्थानों की परिस्थितियों तथा उनमें प्रचलित वेतनों इत्यादि के सम्बन्ध में पूरी जानकारी नहीं होती। अतः निरक्षता तथा अज्ञानता के कारण भारतीय श्रमिकों की गतिशीलता निम्न होती है।

(५) **टेक्नीकल कौशल की कमी** (Want of technical skill)—कभी-कभी टेक्नीकल ज्ञान तथा कौशल की कमी के कारण भी श्रमिक एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में नहीं जा पाते। भारतीय श्रमिकों का टेक्नीकल ज्ञान कम होता है, इसलिए वे एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में जाने से डरते हैं।

(६) **यातायात व संवादवहन के साधनों का अपर्याप्त विकास** (Inadequate development of the means of transport and communications)—यदि किसी देश में यातायात तथा संवादवहन के साधन अविकसित हैं, तो श्रमिकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में बहुत कठिनाई होगी तथा उनको लागत भी अधिक पड़ेगी। भारत में यातायात तथा संवादवहन के साधनों का विकास अभी पूरी तरह से नहीं हो पाया है, इससे श्रमिकों को अधिक कठिनाई तथा लागत का सामना करना पड़ता है और इस प्रकार उनकी गतिशीलता में बाधा पड़ती है।

(७) **श्रमिकों की निर्धनता** (Poverty of labour)—जिस देश में श्रमिकों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, वहाँ श्रमिकों की गतिशीलता कम होगी क्योंकि वे जाने-आने के व्यय को सहन नहीं कर सकते। भारत में अधिकांश श्रमिक बहुत गरीब हैं। गरीबी के कारण वे दूसरे स्थान पर अच्छा वेतन मिलने पर भी जाने में डरते हैं।

(८) **उच्चाकांक्षा की कमी** (Lack of ambition)—यदि श्रमिकों में ऊँचा उठने की भावना प्रबल है तो जहाँ भी ऊँचे वेतन मिलेंगे या उन्नति की आशा होगी वे वहाँ जाने को तत्पर होंगे। भारत में अधिकांश श्रमिक बहुत गरीब हैं, उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है; परिस्थितियों के

कारण वे भाग्यवादी हो गये हैं, और उनमें कोई उच्चाकांक्षा नहीं रह गयी है। अतः उनमें गतिशीलता कम पायी जाती है।

श्रमिक संघ
(TRADE UNION)

श्रमिक संघ का जन्म—श्रमिक संघ आन्दोलन पूँजीवादी बड़े पैमाने के उत्पादन का परिणाम है। जब उत्पादन छोटे पैमाने पर होता था तो मालिकों तथा श्रमिकों में बहुत निकट का सम्पर्क रहता था। परन्तु बड़े पैमाने के उत्पादन के परिणामस्वरूप हजारों तथा लाखों की संख्या में श्रमिक फैक्ट्रियों में कार्य करने लगे, मालिकों तथा श्रमिकों के बीच कोई निकट सम्पर्क नहीं रह गया, श्रमिक अपना व्यक्तित्व खो बैठे तथा अपने आपको असहाय अनुभव करने लगे। दूसरी ओर पूँजीपतियों की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति मजबूत होती है, वे अधिक लाभ कमाने का प्रयत्न करते रहते हैं तथा श्रमिकों का शोषण करते हैं। ऐसी स्थिति में श्रमिकों को अपने आपको पूँजीपतियों के शोषण से बचाने के लिए तथा अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए श्रम-संगठन की आवश्यकता अनुभव हुई। इस प्रकार श्रम-संघों का जन्म हुआ। भारत में भी पूँजीवादी बड़े पैमाने के उत्पादन के परिणामस्वरूप ही श्रमिक संघों का जन्म हुआ।

श्रमिक संघों की परिभाषा—श्रमिक संघ श्रमिकों का ऐच्छिक संगठन होता है और इसका मुख्य उद्देश्य श्रमिकों की आर्थिक तथा सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाना होता है। सिडनी तथा वेब (Sydney and Webb) के अनुसार, श्रमिक संघ, "श्रमिकों का एक निरन्तर संगठन है जिसका उद्देश्य श्रमिकों को कार्य करने की उचित दशाओं को बनाये रखने या उनमें सुधार करने का होता है।"[7] वी० वी० गिरी (V. V. Giri) के अनुसार, "श्रमिक संघ श्रमिकों के ऐच्छिक संगठन होते हैं जो सामूहिक कार्य द्वारा श्रमिकों के हितों की वृद्धि तथा रक्षा के हेतु बनाये जाते हैं।"[8]

श्रमिक संघों की आवश्यकता तथा महत्त्व (Need and importance of trade unions)—एक दृढ़ तथा स्वस्थ श्रमिक संघ आन्दोलन केवल श्रमिकों के लिए ही लाभदायक नहीं होता बल्कि इससे मालिकों तथा समस्त समाज को लाभ प्राप्त होता है। यह प्रजातन्त्र (democracy) की जड़ों को मजबूत करता है। इससे निम्नलिखित लाभ हैं :

(१) श्रमिकों को लाभ—श्रमिक संघ श्रमिकों की शोषण से रक्षा करते हैं, श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाते हैं तथा राजनीतिक क्षेत्र में श्रमिकों के प्रभाव को बढ़ाते हैं। (२) मालिकों को लाभ—दृढ़ श्रम संगठन मालिकों तथा श्रमिकों के बीच अच्छे तथा मधुर औद्योगिक सम्बन्ध बनाये रखने में मदद करते हैं; परिणामस्वरूप मालिकों के उत्पादन तथा लाभ में वृद्धि होती है। (३) समाज को लाभ—श्रमिक संघ अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाकर समाज में शान्ति रखते हैं और समाज को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की पूर्ति निरन्तर मिलती रहती है। एक सीमा तक दृढ़ तथा स्वस्थ श्रम संघ समाज में धन के असमान वितरण को कम करते हैं क्योंकि मजबूत श्रम संघों द्वारा ही श्रमिक मालिकों से अच्छा वेतन प्राप्त कर सकते हैं। (४) प्रजातन्त्र की जड़ों का मजबूत होना—बेविन (Bevin) के अनुसार, "श्रमिक संघों का मुख्य उद्देश्य साधारण व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा समाज के अन्य सदस्यों के साथ ठीक सम्बन्ध बनाये रखने का होता है। क्या प्रजातन्त्र का भी यही मुख्य उद्देश्य नहीं होता ?"[9]

---

[7] Sidney and Webb have defined a Trade union as "a continuous association of wage earners for the purpose of maintaining or improving the conditions of their working."

[8] "Trade unions are voluntary organisations of workers formed to promote and protect their interests by collective action."

[9] "The central idea of trade unions is the liberty of the ordinary man and the right relationship between fellow men. Is not this also the central idea of democracy?"

श्रमिक संघों के उद्देश्य तथा कार्य (Aims and functions of trade unions)—श्रमिक संघों का मुख्य उद्देश्य सामूहिक कार्य (collective action) द्वारा श्रमिकों के आर्थिक तथा सामाजिक स्तर को उठाना होता है। श्रमिक संघों के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं :

(१) **संघर्ष या लड़ाई के कार्य** (Militant or fighting functions)—इसके अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए किये जाते हैं, जैसे, मजदूरी की कटौती को रोकना तथा उनमें वृद्धि करना, कार्य के घण्टों में कमी करना, बोनस को प्राप्त करने के प्रयत्न, इत्यादि। इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए श्रमिकों को मालिकों से निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है, इसलिए इन कार्यों को 'संघर्ष या लड़ाई के कार्य' कहते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए श्रमिक विभिन्न तरीके अपना सकते हैं, जैसे आपसी विचार-विनिमय, सामूहिक सौदा, या अन्त में हड़ताल करके।

(२) **कल्याणकारी कार्य** (Welfare activities)—इनके अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो श्रमिकों के शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तथा आर्थिक उत्थान के लिए किये जाते हैं, जैसे, खेलों की व्यवस्था, पुस्तकालय, स्कूल, वृद्धावस्था की पेंशन, चिकित्सा की सुविधाओं इत्यादि की व्यवस्था।

(३) **प्रतिनिधि-कार्य** (Representative functions)—मालिकों के साथ विभिन्न प्रकार की बातचीत में श्रमिक संघ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुकद्दमों में तथा राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय श्रम अधिवेशनों (conferences) में भी श्रमिक संघ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रम नीति बनाने से सम्बन्धित सरकारी संस्थाओं में भी श्रमिक संघ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(४) **राजनीतिक कार्य** (Political activities)—बहुत से श्रम संघ सरकार बनाने के लिए चुनाव भी लड़ते हैं। इंगलैण्ड का उदाहरण हमारे समक्ष है; कुछ वर्षों पूर्व इंगलैण्ड में श्रम सरकार (labour government) थी और आज फिर वहाँ पर श्रम सरकार है। परन्तु भारत में श्रम संघ आन्दोलन का अभी इतना विकास नहीं हो पाया है कि वे चुनाव लड़ें। परन्तु भारत में श्रम संघ विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के साथ मिलकर चुनावों को परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं और विधान सभाओं (legislative assemblies) में कुछ स्थान (seats) भी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

(५) **विकासमान कार्य** (Development functions)—ये कार्य श्रमिक संघों के आधुनिक कार्य माने जाते हैं। अविकसित परन्तु विकासमान तथा आयोजित अर्थव्यवस्था (under-developed but developing and planned economy) में श्रम संघ विकास कार्य में सहयोग देकर महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। (i) श्रमिक संघ हड़तालों, धीमे कार्य करने के तरीकों (go-slow tatics) इत्यादि से दूर रहकर देश में उत्पादन को अधिक बढ़ा सकते हैं; (ii) यदि श्रमिक बढ़े हुए उत्पादन में से ही मजदूरी में वृद्धि प्राप्त करें तो वे मुद्रा स्फीति (inflation) को रोकने में सहयोग दे सकते हैं; (iii) श्रमिक संघों के प्रयत्न के फलस्वरूप श्रमिक अपने बोनस में से एक भाग अल्प बचत योजनाओं में लगाकर पूँजी निर्माण में सहयोग दे सकते हैं। श्रमिक संघ के ये सब कार्य 'विकासमान कार्य' कहलाते हैं।

२३

पूँजी तथा पूँजी-निर्माण
[CAPITAL AND CAPITAL FORMATION]

पूँजी उत्पत्ति का एक साधन है। बड़े पैमाने की उत्पत्ति के लिए तो पूँजी एक बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। आज के युग में पूँजी का महत्त्व इतना बढ़ गया है कि इस युग को पूँजीवाद का युग कहा जाता है।

पूँजी की परिभाषा
(DEFINITION OF CAPITAL)

साधारण बोलचाल में पूँजी का अर्थ द्रव्य तथा धन-सम्पत्ति से लिया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र में पूँजी का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया जाता है। सामान्यतया मनुष्य द्वारा उत्पादित धन का वह भाग जो और अधिक धन के उत्पादन में प्रयोग किया जाता है, पूँजी कहलाता है। पूँजी की परिभाषा तथा अर्थ के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद पाया जाता है। नीचे हम कुछ मुख्य परिभाषाओं का विश्लेषण करते हैं :

बोम-बेवर्क (Bohm-Bawerk) के अनुसार, पूँजी का अर्थ 'उत्पादित उत्पादन के साधनों' (produced means of production) से लिया जाता है; इसका अर्थ है कि वे उत्पादन के साधन जो श्रम द्वारा उत्पादित किये गये हैं, जैसे, औजार, मशीन, बिल्डिंग, इत्यादि पूँजी के अन्तर्गत आते हैं, भूमि तथा प्राकृतिक उपहार पूँजी में शामिल नहीं किये जाते हैं। परन्तु बोम-बेवर्क की परिभाषा पूर्ण नहीं है।[1]

चैपमैन (Chapman) के अनुसार, "पूँजी वह धन है जो आय प्रदान करता है या आय के उत्पादन में सहायता करता है या जिसका इरादा इस प्रकार का होता है।"[2] प्रो० टॉमस

---

[1] बोम-बेवर्क की परिभाषा के अनुसार, 'उपभोग-वस्तुएँ' (consumption goods), जो प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग की जाती है, पूंजी के अन्तर्गत नहीं आतीं, इसके अन्तर्गत 'उत्पादक वस्तुएँ' (production goods) आती हैं जो और अधिक उत्पादन के लिए प्रयोग की जाती हैं। बोम-बेवर्क की परिभाषा की दो मुख्य आलोचनाएँ की जाती हैं—(i) 'उपभोग वस्तुओं' तथा 'उत्पादक-वस्तुओं' के बीच स्पष्ट अन्तर नहीं किया जा सकता है। एक वस्तु दोनों के अन्तर्गत आ सकती है, जैसे, एक डॉक्टर यदि कार में मरीज को देखने जाता है तो वह कार उत्पादक वस्तु होगी, यदि वह डॉक्टर कार में घूमने जाता है तो वही कार 'उपभोग वस्तु' हो जाती है। (ii) पूंजी के अन्तर्गत केवल मशीन तथा औजार ही शामिल नहीं होते, व्यापारी लोग इसके अन्तर्गत द्रव्य, बॉण्ड (bonds) तथा सिक्युरिटीज (securities) भी शामिल करते हैं।

[2] Capital "is wealth which yields an income or aids the production of an income or is intended to do so." —Chapman, *Outline of Political Economy*, p. 73.

(Tomas) के अनुसार, "भूमि को छोड़कर, पूँजी व्यक्तिगत तथा सामूहिक धन का वह भाग है जो और अधिक धन के उत्पादन में सहायक होता है।"[3]

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार पूँजी के निम्न महत्त्वपूर्ण गुण हुए :

(i) पूँजी के विचार का सार है 'आय प्रदान करने वाली' (income yielding), यह 'आय उत्पादन करने वाली' (income-creating) भी हो सकती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह आवश्यक रूप से आय-उत्पादन भी करे।[4]

(ii) पूँजी के अन्तर्गत केवल मनुष्यकृत धन सम्मिलित होता है, भूमि तथा प्राकृतिक उपहार नहीं।

(iii) पूँजी में केवल वे ही वस्तुएँ सम्मिलित होती हैं, जो धन हैं, अर्थात समस्त पूँजी धन होती है।

(iv) यद्यपि समस्त पूँजी धन होती है, परन्तु सारा धन पूँजी नहीं होता, धन का केवल वह भाग पूँजी होता है जो और अधिक धन के उत्पादन में सहयोग देता है।

कुछ अन्तर
(SOME DISTINCTIONS)

पूँजी तथा आय (Capital and income)—(i) पूँजी के स्वामित्व से एक निश्चित समय में जो प्रतिफल (return) प्राप्त होता है, उसे आय कहा जाता है। यह बात भी ध्यान रखने की है कि आय पूँजी के स्वामित्व न होने पर भी प्राप्त की जा सकती है, जैसे, गरीब व्यक्ति तथा नौकर पेशे वाले व्यक्ति (professional men) अपनी सेवाओं के द्वारा आय प्राप्त करते हैं। (ii) जिस प्रकार पूँजी से आय प्राप्त की जाती है उसी प्रकार आय को भी पूँजी में परिवर्तित किया जा सकता है; आय का वह भाग जो बचा (save) कर उत्पादक कार्यों में लगाया जाता है, पूँजी हो जाता है। (iii) पूँजी एक स्टॉक (stock) है जबकि आय एक प्रवाह (flow) है। एक दिये हुए समय पर धन का जो स्टॉक होता हैं वह पूँजी कहलाती है, तथा आय एक निश्चित समय से सम्बन्धित लाभ (benefit) का प्रवाह है।

पूँजी तथा द्रव्य (Capital and money)—सभी द्रव्य पूँजी नहीं होता; द्रव्य का वह भाग जो और अधिक उत्पादन में प्रयोग किया जाता है, पूंजी होता है। इसी प्रकार सभी पूँजी द्रव्य नहीं होती, पूंजी का कुछ भाग बिल्डिंग, मशीनों, औजारों इत्यादि के रूप में होता है।

पूँजी तथा धन (Capital and wealth)—समस्त धन पूंजी नहीं होता, धन का केवल वह भाग जो और अधिक उत्पादन में प्रयोग होता है, पूंजी होगा। इस बात को हम दूसरी तरह से देखें तो स्पष्ट होगा कि पूंजी का धन होना आवश्यक है। अतः यह कहा जाता है कि समस्त पूंजी धन है परन्तु समस्त धन पूंजी नहीं होती। बेन्हम तथा फिशर धन तथा पूंजी में कोई अन्तर नहीं करते, इनके अनुसार, समस्त धन पूंजी है, परन्तु यह विचार माननीय नहीं है।

पूंजी तथा पूंजीवाद (Capital and capitalism)—पूंजी वस्तुओं का स्टॉक, यन्त्र, मशीन इत्यादि हैं जिनसे और अधिक उत्पादन किया जाता है। पूंजीवाद समाज की एक प्रणाली को बताता है जिसमें वस्तुओं के स्टॉक, यन्त्र, मशीन तथा उत्पादन के अन्य साधनों पर व्यक्तिगत लोगों (private persons) का स्वामित्व होता है जिनको वे अपने लाभ के लिए प्रयोग करते हैं। जिन देशों में व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होता वहाँ पर पूंजीवादी (capitalist) तो नहीं होता पर पूंजी अवश्य होती है। पूंजी उत्पादन में सहायक होती है, जबकि पूंजीवादी अपनी सम्पत्ति का उत्पादन में प्रयोग करके आय प्राप्त करता है।

पूंजी तथा भूमि—प्रायः भूमि तथा पूंजी में अन्तर किया जाता है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्री (जैसे, फिशर, वेनहम आदि) भूमि तथा पूंजी में कोई अन्तर नहीं करते। अतः प्रश्न उठता है कि क्या भूमि पूंजी है? इसके उत्तर को जानने के पहले भूमि तथा पूंजी में अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। दोनों में अन्तर इस प्रकार है: (i) पूंजी मनुष्यकृत है जबकि भूमि प्रकृति की देन है (ii) भूमि अविनाशी (indestructible) है जबकि पूंजी नश्वर (perishable) है। यद्यपि निरन्तर प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होती है परन्तु खाद इत्यादि के प्रयोग से उसे पुनः प्राप्त किया जा सकता है। (iii) पूंजी में स्थान गतिशीलता तथा प्रयोग गतिशीलता दोनों होती हैं, जबकि भूमि में केवल प्रयोग गतिशीलता होती है (अर्थात् उसको एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित किया जा सकता है) परन्तु स्थान गतिशीलता नहीं होती (अर्थात् भूमि को स्थिर होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान को उठा कर नहीं ले जाया जा सकता है। (iv) पूंजी को प्राप्त करने के लिए समाज तथा व्यक्ति दोनों को कुछ न कुछ लागत देनी पड़ती है, जबकि भूमि को प्राप्त करने के लिए समाज को दृष्टि से कोई लागत नहीं देनी पड़ती है यद्यपि एक व्यक्ति को भूमि प्राप्त करने के लिए कुछ न कुछ लागत देनी पड़ेगी। (v) पूंजी की पूर्ति को माँग के अनुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है, जबकि भूमि की पूर्ति स्थिर होती है और इसलिए उसमें माँग के अनुरूप परिवर्तन नहीं किये जा सकते हैं।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्री भूमि तथा पूंजी में कोई अन्तर नहीं करते, वे भूमि को पूंजी मानते हैं; इस सम्बन्ध में वे निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं: (i) पूंजी की भाँति एक दृष्टि से भूमि भी मनुष्यकृत है—मनुष्य ने बहुत-सी बंजर भूमि को कृषि तथा अन्य प्रयोगों के योग्य बनाया है। (ii) भूमि भी, पूंजी की भाँति, गतिशील है क्योंकि भूमि को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित किया जा सकता है। (iii) यद्यपि भूमि की कुल मात्रा स्थिर है, परन्तु वास्तविक दृष्टि से, पूंजी की भाँति, भूमि की पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है—भूमि में गहरी खेती करके उसमें उत्पादित वस्तुओं की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है अर्थात् भूमि की प्रभावोत्पादक पूर्ति (effective supply) को बढ़ाया जा सकता है। (iv) एक व्यक्ति या फर्म भूमि को पूंजी की भाँति ही मानती है। इन तर्कों के आधार पर कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भूमि तथा पूंजी में कोई आधारभूत अन्तर नहीं है।

यद्यपि पूंजी तथा भूमि में कुछ बातों में समानता है, परन्तु इन दोनों में कुछ आधारभूत अन्तर भी हैं और इसलिए अधिकांश अर्थशास्त्री पूंजी तथा भूमि को दो पृथक् साधन मानते हैं।

पूंजी का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF CAPITAL)

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने पूंजी के कार्य तथा प्रयोग के अनुसार पूंजी का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया है। पूंजी का वर्गीकरण मुख्यतः निम्न प्रकार किया जा सकता है:

(१) **अचल पूँजी तथा चल पूँजी** (Fixed capital and circulating capital)—अचल पूँजी वह है जो टिकाऊ (durable) होती है और जिसका उत्पादन में बार-बार प्रयोग किया जा सकता है; उदाहरणार्थ, मशीन, औजार, बिल्डिंग इत्यादि इनको लगातार कई वर्षों तक उत्पादन कार्य में प्रयुक्त किया जा सकता है। चल पूँजी वह है जिसकी समस्त उपयोगिता एक बार के प्रयोग में ही नष्ट हो जाती है; उदाहरणार्थ, कच्चा माल। किसी वस्तु के उत्पादन में कच्चे माल को एक बार ही प्रयोग में लाया जा सकता है।

(२) **एक-अर्थी पूँजी तथा बहु-अर्थी पूँजी** (Sunk capital and floating capital)—एक-अर्थी पूँजी को विशिष्ट पूँजी (Specialised capital) भी कहते हैं। एक-अर्थी पूँजी या विशिष्ट पूँजी वह पूँजी है जो केवल एक ही कार्य के लिए प्रयोग में लायी जा सकती है अर्थात जो केवल एक कार्य के लिए विशिष्ट हो, उदाहरणार्थ, रेल की लाइन केवल रेल चलाने में ही प्रयुक्त की जा सकती है, बर्फ बनाने की मशीन केवल बर्फ बनाने के लिए ही प्रयोग की जा सकती है, इत्यादि। बहु-अर्थी पूँजी, जिसको **अविशिष्ट पूँजी** (non-specialised capital) भी कहते हैं, वह पूँजी है जिसको एक से अधिक प्रयोगों में काम में लाया जा सकता है, उदाहरणार्थ, द्रव्य, बिजली इत्यादि। इनको कई प्रयोगों में स्तेमाल किया जा सकता है।

(३) **उत्पादन वस्तुएँ तथा उपभोग वस्तुएँ** (Capital goods and consumption goods)—कुछ अर्थशास्त्री पूँजी को उत्पादक वस्तुओं तथा उपभोग वस्तुओं में बाँटते हैं। उत्पादक वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जो प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में सहायता देती हैं, जैसे, मशीन, औजार, कच्चा माल इत्यादि। उपभोग वस्तुएँ वे हैं जो प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं और इस प्रकार उपभोक्ताओं को सेवाएँ प्रदान करती हैं, जैसे भोजन, वस्त्र, मकान, कार, रेडियो इत्यादि। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उपभोग वस्तुएँ पूँजी तब होंगी जबकि वे उत्पादकों के हाथ में हों क्योंकि ऐसी स्थिति में वे उत्पादन में सहायक होंगी; इसके विपरीत यदि उपभोग वस्तुएँ उपभोक्ताओं के हाथ में होंगी तो वे पूँजी नहीं होंगी क्योंकि ऐसी स्थिति में वे उत्पादन में सहायक नहीं होंगी। कुछ अर्थशास्त्री 'उत्पादकों के हाथ में उपभोग वस्तुएँ' तथा 'उपभोक्ताओं के हाथ में उपभोग वस्तुएँ' के बीच कोई अन्तर करना पसन्द नहीं करते और इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, सभी टिकाऊ उपभोग वस्तुएँ (durable consumption goods), जैसे, कार, रेडियो, मकान, इत्यादि पूँजी होती हैं।

(४) **भौतिक पूँजी तथा वैयक्तिक पूँजी** (Meterial capital and personal capital)—भौतिक पूँजी वह पूँजी है जो मूर्त तथा स्थूल रूप (concrete and tangible form) में [illegible] है और जिसको एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित किया जा सकता है। वैयक्तिक पूँजी में [illegible] किसी व्यक्ति के निजी गुण आते हैं जो उसकी कार्यक्षमता को प्रभावित करते हैं और [illegible] व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है; जैसे एक [illegible] [illegible], एक अध्यापक के पढ़ाने की योग्यता इत्यादि।

(५) **वेतन पूँजी तथा सहायक पूँजी** (Remunerative capital and auxiliary capital)—[illegible] उत्पादन में [illegible] श्रमिकों की मजदूरी या वेतन के [illegible] [illegible] 'वेतन पूँजी' के अन्तर्गत आती है। सहायक पूँजी [illegible] उत्पादन में सहायक होती है, जैसे, मशीनें, औजार [illegible] इत्यादि।

(६) व्यक्तिगत पूँजी तथा सार्वजनिक पूँजी (Individual capital and public capital)—व्यक्तिगत पूँजी वह पूँजी है जिस पर किसी व्यक्ति का स्वामित्व होता है, उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति का किसी वस्तु के उत्पादन का कारखाना, एक किसान के निजी हल, बैल इत्यादि। सार्वजनिक पूँजी वह पूँजी है जिस पर समस्त समाज अथवा सरकार का स्वामित्व होता है, जैसे, रेल, सड़कें, पुल, इत्यादि।

(७) राष्ट्रीय पूँजी तथा अन्तरराष्ट्रीय पूँजी (National capital and international capital)—राष्ट्रीय पूँजी का अर्थ किसी राष्ट्र की सब प्रकार की पूँजी मिलाकर लिया जाता है। अन्तरराष्ट्रीय पूँजी वह है जिस पर किसी देश का अधिकार न होकर सभी देशों का अधिकार हो, विश्व बैंक की पूँजी इस प्रकार की पूँजी कही जा सकती है।

(८) कार्यशील पूँजी (Working capital)—कार्यशील पूँजी उस नकद द्रव्य को कहते हैं जो कि एक उत्पादक अपने व्यवसाय को चलाने के लिए प्रयोग करता है; इस पूँजी को प्रायः कच्चा माल खरीदने, श्रमिकों की मजदूरी देने इत्यादि में प्रयोग किया जाता है।

पूँजी के कार्य
(FUNCTIONS OF CAPITAL)

आधुनिक समाज में पूँजी के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं :

(१) श्रम की उत्पादकता को बढ़ाना (To increase the productivity of labour)—मशीनों, यन्त्रों, औजारों इत्यादि की सहायता से श्रम को अधिक मात्रा में तथा अच्छी किस्म की वस्तुओं को उत्पादन करने में सहायता मिलती है; इस प्रकार देश का कुल उत्पादन अर्थात् राष्ट्रीय आय बढ़ती है।

(२) जीवन-निर्वाह के लिए व्यवस्था (The provision of subsistence)—प्रो० टौमस के अनुसार पूँजी, जब तक श्रमिक अपने प्रयत्नों के फल के लिए प्रतीक्षा करता है, श्रमिकों के लिए भोजन, वस्त्र, रहने के लिए मकान, इत्यादि के रूप में जीवन निर्वाह की व्यवस्था करती है। आज के युग में उत्पादन प्रक्रियाएँ जटिल, घुमावदार (round about) तथा लम्बी अवधि की होती हैं; अतः पूँजी द्वारा जीवन निर्वाह की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण बात है।

(३) उत्पादन में निरन्तरता (Continuity in production)—पूँजी की सहायता से उत्पादन की निरन्तरता (continuity) प्राप्त की जाती है। यदि उत्पादक को 'उत्पादन की दूसरी मात्रा' (second lot of production) के उत्पादन को प्रारम्भ करने के लिए उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक कि 'उत्पादन की पहली मात्रा' (first lot of production) को बेचकर उसे कीमत प्राप्त न हो जाये, को उत्पादन प्रक्रिया (process) की निरन्तरता भंग हो जायेगी। द्रव्य के रूप में पूँजी उत्पादन में निरन्तरता बनाये रखती है।

संख्या (२) तथा संख्या (३) के परिणामस्वरूप उत्पादन तथा उपभोग साथ-साथ चल सकते हैं अर्थात् पूँजी उत्पादन तथा उपभोग के बीच समकालीनता प्राप्त करती है (capital secures synchronization between production and consumption)।

(४) बिक्री के लिए व्यवस्था (Provision for sale)—उत्पादक अपने माल को बेचने के लिए परिवहन तथा संवादवहन के साधनों की सहायता लेता है, तथा विज्ञापन इत्यादि पर व्यय करता है। इन सब पर वह द्रव्य पूँजी (money capital) में से ही व्यय करता है।

(५) माल की व्यवस्था (The provision of materials)—उत्पादन के लिए कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है; अर्द्ध-निर्मित तथा निर्मित वस्तुएँ (semi-manufactured and

manufactured articles) उद्योग के अन्य चरणों (stages) में कच्चे माल की भाँति कार्य करती हैं। स्पष्ट है कि पूँजी माल की व्यवस्था करती है।

पूँजी की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF CAPITAL)

पूँजी की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(१) **पूँजी एक निष्क्रिय साधन है** (Capital is a passive factor)—भूमि की भाँति पूँजी भी उत्पत्ति का एक निष्क्रिय साधन है; बिना श्रम के पूँजी बेकार पड़ी रहेगी।

(२) **पूँजी श्रम का परिणाम है** (Capital is the result of labour)—श्रम द्वारा प्राकृतिक साधनों पर काम करने से पूँजी प्राप्त होती है; मशीनें, औजार, इत्यादि सब श्रम का परिणाम हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि पूँजी 'पिछले श्रम की संचित वस्तु' (accumulated product of past labour) है।

(३) **पूँजी बचत का परिणाम है** (Capital is the result of saving)—मनुष्य समस्त धन को वर्तमान में उपभोग वस्तुओं पर व्यय न करके उसके एक भाग को बचाता है; इस बचे हुए धन की सहायता से ही पूँजी-वस्तुओं (capital goods) का उत्पादन होता है। अतः विक्सेल (Wicksell) के शब्दों में, पूँजी 'एक सामंजस्यपूर्ण बचाया-गया-श्रम तथा बचायी हुई भूमि है जो कि वर्षों में संचित होती है।"[5]

(४) **पूँजी 'अस्थायी' है** (Capital is 'non-permanent)—प्रो० हायेक (Prof. Hayek) के शब्दों में, पूँजी अस्थायी है अर्थात उसको समय-समय पर पुनरुत्पादित (reproduce) तथा पुनरापूरित (replenish) करना पड़ता है।

(५) **पूँजी में उत्पादकता होती हैं** (Capital possesses productivity)—श्रम पूँजी की सहायता से बहुत अधिक उत्पादन कर सकता है; अतः पूँजी उत्पादक होती है। पूँजी की उत्पादकता के कारण ही उद्योगपति इसकी माँग करते हैं। यह विशेषता पूँजी के माँग पक्ष पर प्रकाश डालती है।

(६) **पूँजी की पूर्ति में सुगमता से परिवर्तन किया जा सकता है** (Supply of capital can be easily changed)—भूमि की कुल पूर्ति लगभग स्थिर होती है। श्रम की पूर्ति को भी शीघ्रता से नहीं बढ़ाया जा सकता है। परन्तु पूँजी की पूर्ति को आसानी से घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

(७) **पूँजी आय प्रदान करती है** (Capital is income yielding)—लोग पूँजी एकत्रित करके भविष्य में आय प्राप्त करने की आशा करते हैं। यह विशेषता पूँजी के पूर्ति पक्ष की व्याख्या करती है।

(८) **पूँजी बहुत अधिक गतिशील होती है** (Capital is highly mobile)—भूमि में गतिशीलता नहीं होती क्योंकि वह स्थिर होती है। श्रम में स्थान तथा व्यावसायिक गतिशीलता (सामाजिक तथा अन्य कारणों के परिणामस्वरूप) कम होती है। अन्य उत्पत्ति के साधनों की अपेक्षा पूँजी में स्थान तथा व्यावसायिक गतिशीलता बहुत अधिक पायी जाती है।

पूँजी का महत्त्व
(IMPORTANCE OF CAPITAL)

सभ्यता तथा आर्थिक विकास के प्रारम्भिक अवस्था में उत्पादन के लिए किसी न किसी रूप में पूँजी की सहायता लेनी पड़ी है। यद्यपि सभ्यता विकास के प्रारम्भिक चरणों में उत्पादन

5 Capital is a single coherent mass of saved-up labour and saved-up land, which is accumulated in the course of years."

में पूंजी का पार्ट कम महत्त्वपूर्ण रहा, परन्तु वर्तमान युग में पूंजी का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। विभिन्न क्षेत्रों में पूंजी का महत्त्व निम्न से स्पष्ट होता है :

(१) पूंजी आधुनिक उत्पादन प्रणाली में महत्त्वपूर्ण भाग लेती है (Capital plays a vital role in the modern productive system)—पूंजी की सहायता से उत्पादन को बहुत बढ़ाया जा सकता है। (i) आज का औद्योगिक उत्पादन पूंजी पर निर्भर है। विभिन्न प्रकार की मशीनों, औजारों, यन्त्रों, इत्यादि की सहायता से औद्योगिक उत्पादन में बहुत वृद्धि की गयी है। श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण के इस युग में बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए पूंजी अत्यन्त आवश्यक है। (ii) कृषि उत्पादन बढ़ाने में भी पूंजी बहुत महत्त्वपूर्ण है। छोटी-बड़ी सिंचाई की योजनाओं, ट्रैक्टरों, खाद, इत्यादि सब के लिए पूंजी चाहिए और इनकी सहायता से संसार के सभी उन्नतिशील देशों में कृषि उत्पादन में बहुत वृद्धि की गयी है। *(iii) औद्योगिक तथा कृषि की वस्तुओं की बिक्री के लिए यातायात तथा संवादवहन के साधनों के रूप में पूंजी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।*

आज के बड़े पैमाने के उत्पादन में पूंजी की इतनी अधिक आवश्यकता पड़ती है कि वर्तमान युग को पूंजीवाद का युग कहा जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि साम्यवाद प्रणाली में पूंजी का कोई महत्त्व नहीं है, साम्यवाद में भी बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए पूंजी की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि पूंजीवाद में।

(२) नियोजन तथा आर्थिक विकास के लिए पूंजी आधारभूत है (Capital is basic for planning and economic development)—अविकसित देशों में नियोजित आर्थिक विकास (planned economic development) के लिए पूंजी अत्यन्त आवश्यक है। पर्याप्त पूंजी के बिना न तो देश की मानव शक्ति तथा प्राकृतिक साधनों का पूरा-पूरा प्रयोग किया जा सकता है, न औद्योगिक तथा कृषि की वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है और न ही *यातायात तथा संवादवहन के साधनों को विकसित किया जा सकता है। अविकसित देशों में* पूंजी की कमी होती है, इसलिए इन देशों में उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय कम होती है और लोगों का जीवन-स्तर नीचा रहता है। इसके विपरीत उन्नतिशील देशों में पूंजी की बाहुल्यता होती है, *इसलिए इन देशों में बहुत अधिक उत्पादन होता है और लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है।* संक्षेप में, अविकसित देशों के तीव्र आर्थिक विकास तथा जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए नियोजन की आवश्यकता है और नियोजन के लिए पूंजी आधारभूत महत्त्व रखती है।

(३) राजनीतिक स्थायित्व तथा सैनिक शक्ति के लिए पूंजी आवश्यक है (Capital is essential for political stability and military strength)—बिना पर्याप्त पूंजी के एक देश में राजनीतिक स्थायित्व को सदैव डर बना रहता है और पूंजी-अभाव वाले देश की आवाज़ अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में भी नहीं सुनी जाती है। देश को सैनिक दृष्टि से मजबूत बनाने के लिए भी बहुत अधिक मात्रा में पूंजी चाहिए।

संक्षेप में, किसी भी देश की आर्थिक, राजनीतिक तथा सैनिक शक्ति बहुत बड़ी सीमा तक पूंजी पर निर्भर करती है।

पूंजी निर्माण
(CAPITAL FORMATION)

पूंजी निर्माण के विचार का अर्थ (The Concept of Capital Formation)

आज की उत्पादन प्रणाली की मुख्य विशेषता है पूंजी का बड़े पैमाने पर प्रयोग। पूंजी

का निर्माण (capital formation) या पूंजी का संचय (capital accumulation) धीरे-धीरे होता है।

'पूँजी निर्माण' देश के अन्दर होता है, इसके लिए समाज तथा व्यक्ति वर्तमान उपभोग को कम करके धन बचाते हैं और बचत को उत्पादक प्रयोगों में लगाते हैं ताकि और अधिक धन प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार पूँजी निर्माण एक सामाजिक प्रक्रिया (social process) है। पूंजी निर्माण देश के अन्दर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में होना चाहिए। यदि एक अविकसित अर्थ-व्यवस्था को उन्नतिशील तथा विकासमान अर्थ-व्यवस्था में बदलना है। पूँजी की पूर्ति, एक सीमा तक, देश के बाहर से अर्थात् उन्नतिशील देशों से प्राप्त की जा सकती है और इस प्रकार देश के अन्दर पूँजी की पूर्ति को एक सीमा तक बढ़ाया जा सकता है। बाहर से पूंजी की पूर्ति, उचित परिस्थितियों में, देश के पूंजी निर्माण के लिए एक 'शक्तिशाली प्रेरक एजेन्ट' (powerful catalytic agent) हो सकती है और पूंजी निर्माण की प्रक्रिया (process) को उत्तेजित (stimulate) कर सकती है।

पूँजी निर्माण की अवस्थाएँ (Stages of Capital Formation)

पूंजी निर्माण के लिए तीन स्वतन्त्र परिवर्तनशील तत्त्व (three independent variables) आवश्यक हैं अर्थात् पूंजी निर्माण की प्रक्रिया (process) में तीन अवस्थाएँ (three stages) होती हैं जिनका विवरण हम नीचे देते हैं :

(१) **वास्तविक बचत** (Real savings) **का निर्माण करना**—साधनों का उपभोग वस्तुओं पर कम व्यय करके वास्तविक बचत में वृद्धि करना। इस अवस्था के लिए यह आवश्यक है कि लोगों में, 'बचत करने की इच्छा' (will to save) तथा 'बचत करने की शक्ति' (power to save) होनी चाहिए। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि बचत को अनुत्पादक प्रयोजनों (जैसे, जेवर इत्यादि को खरीदना) में बर्बाद न किया जाय।

(२) **दूसरी अवस्था है बचतों को एकत्रित** (Mobilize) **करना**—इसके लिए यह आवश्यक है कि देश विशेष में बैंकों, बीमा कम्पनियों, तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का जाल-सा बिछा हो जोकि, एक ओर तो, कुशलता के साथ लोगों की बचतों को एकत्रित कर सकें, और दूसरी ओर, उन बचतों को विनियोगकर्ताओं तक आसानी से पहुँचाया जा सके।

(३) **द्राव्यिक बचतों** (Money savings) **को वास्तविक पूँजीगत सम्पत्ति** (Real capital assets) **में बदलना**—केवल वास्तविक बचतों को एकत्रित करने से पूंजी निर्माण नहीं होगा, इसके लिए यह आवश्यक है कि देश में जोखिम उठाने वाले कुशल तथा योग्य साहसी मौजूद हों जो कि द्राव्यिक बचतों को लेकर उत्पादक कार्यों में विनियोग करके उत्पादक वस्तुओं (producers goods) अर्थात् नयी पूंजीगत सम्पत्ति (new capital assets) का निर्माण कर सकें।

यद्यपि उपर्युक्त 'तीन स्वतन्त्र परिवर्तनशील तत्त्व' (three independent variables) या 'तीन अवस्थाएँ (three stage) एक दूसरे से स्वतन्त्र (independent) हैं परन्तु पूंजी निर्माण के लिए तीनों आवश्यक हैं। लोगों को बचत करना चाहिए, इन बचतों को एकत्रित करने की उचित तथा कुशल यन्त्र-व्यवस्था (machinery) होनी चाहिए, तथा अन्त में इन बचतों को साहसियों द्वारा नयी पूंजीगत वस्तुओं में बदल देना चाहिए।

पूँजी निर्माण तथा आर्थिक विकास (Capital Formation and Economic Development)

पूंजी तथा पूंजी निर्माण किसी देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं। (i) पूंजी बुनियादी तथा भारी उद्योगों का निर्माण करके एक आधुनिक औद्योगिक समाज की जड़ों को

स्थापित करती है। पूंजी 'आधार-ढांचे' (infra-structure) के अन्य अंगो, जैसे यातायात, शक्ति (power) इत्यादि के निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। (ii) अविकसित देशों में पूँजी की कमी कृषि-क्षेत्र को भी प्रभावित करती है क्योंकि किसान पुराने तथा अकुशल औजारों और यन्त्रों को हटाकर नये और अधिक कुशल औजार तथा यन्त्र प्रयोग में नहीं ला सकते हैं और इसलिए कृषि उत्पादन निम्न रहता है। कार्यशील पूंजी (working capital), स्टाक रखने की जगह, यातायात व सवादवहन के साधनों इत्यादि की कमी कृषि विपणन (marketing) तथा बाजार मूल्य के ढाँचे को प्रभावित करती है। इस प्रकार से पूँजी 'आर्थिक विकास' (economic development) में एक महत्वपूर्ण योग प्रदान करती है और 'आर्थिक-वर्द्धन' (economic growth) प्रति व्यक्ति पूंजी में वृद्धि से सम्बन्धित होता है।

परन्तु अधिक नवीन घटनाओं तथा परिणामो ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि आर्थिक विकास के लिए पूँजी आवश्यक है पर वह आर्थिक विकास की एक पर्याप्त दशा (sufficient condition) नहीं है। एक अविकसित तथा पिछड़े हुए देश में केवल पूँजी के स्टॉक या नवीनतम औजारों तथा यन्त्रों की अधिक मात्रा में पूर्ति कर देने से ही उसका आर्थिक विकास नहीं होगा। प्रो० लेविस (Prof. Lewis) के अनुसार, आर्थिक विकास पूँजी के अतिरिक्त, अन्य बातों से भी सम्बन्धित है; आर्थिक विकास उन संस्थाओं (institutions) से सम्बन्धित है जो प्रयत्न (effort) को प्रेरणा प्रदान करती हैं, उन दृष्टिकोणों (attitudes) से सम्बन्धित है जो आर्थिक कुशलता को महत्व (value) देते हैं, बढ़ते हुए टेक्नीकल ज्ञान से सम्बन्धित है, इत्यादि। वर्द्धन (growth) के लिए केवल पूँजी ही आवश्यक तत्व (requirement) नहीं है, क्योंकि यदि पूंजी प्राप्त कर ली जाती है और उसके प्रयोग की उपयुक्त योजना (frame work) नहीं बनायी जाती तो वह व्यर्थ चली जायगी।[6]

बोअर तथा यामे (Baur and Yamey) के अनुसार, यह कहने की अपेक्षा कि विकास पूँजी संचय पर निर्भर करता है, यह कहना सत्य के अधिक निकट होगा कि पूंजी का निर्माण विकास की प्रक्रिया (process) में होता है।[7] वास्तव मे, आर्थिक विकास तथा पूँजी निर्माण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। आर्थिक विकास सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के मिश्रण का परिणाम है, तथा ये परिवर्तन अन्य परिवर्तनों को जन्म देते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूँजी निर्माण आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण अवश्य है, परन्तु केवल पूँजी ही आर्थिक विकास की पर्याप्त दशा (sufficient condition) नहीं है। आर्थिक विकास के लिए पूँजी निर्माण के साथ-साथ टेक्नीकल ज्ञान, कुशलता (skill), प्रशिक्षण (training) आर्थिक कुशलता के लिए दृष्टिकोण (attitudes), इत्यादि अन्य तत्वों की भी आवश्यकता है।

पूँजी-निर्माण को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors Affecting Capital Formation)

पूँजी निर्माण या पूँजी संचय बचत पर निर्भर करता है: यदि हम केन्ज (Keynes) की शब्दावली का प्रयोग करें तो पूँजी निर्माण 'बचत की प्रवृत्ति' (propensity to save) पर निर्भर करता है। लोगों की बचत की प्रवृत्ति 'बचत करने की इच्छा' (will to save) तथा 'बचत करने

---

6 "[illegible] which give ince- [illegible] owing technical [illegible] and if capital [illegible] ramework for its [illegible]

7 "It is often nearer the truth to say that capital is created in the process of developm[illegible] than that development is a function of capital accumulation."

की शक्ति' (power to save) पर निर्भर करती है। आधुनिक युग में पूँजी निर्माण में सरकार का सहयोग (role) भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। अतः पूँजी निर्माण निम्न बातों पर निर्भर करता है :

I. बचत करने की इच्छा (Will to save);
II. बचत करने की शक्ति (Power to save);
III. बचत करने की सुविधाएँ (Facilities for saving); तथा
IV. सरकार का सहयोग (*Role of government*)। इन चारों बातों का विस्तृत वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

I. **बचत करने की इच्छा** (Will to save)—मनुष्य अनेक उद्देश्यों से प्रेरित होकर बचत करता है। बचत करने की इच्छा निम्न बातों से प्रभावित होती है :

(i) **दूरदर्शिता** (Foresight)—मनुष्य को भविष्य में अनेक अनिश्चितताओं (uncertainties) जैसे, बीमारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था का सामना करना पड़ता है। इन सब अनिश्चितताओं की उचित व्यवस्था करने की इच्छा से प्रेरित होकर एक व्यक्ति धन बचाता है।

(ii) **पारिवारिक स्नेह** (Family affection)—बहुत से मनुष्य अपने परिवार के प्रति स्नेह की भावना से प्रेरित होकर अपने आश्रितों के लिए पर्याप्त मात्रा में धन संचय करते हैं ताकि उनकी मृत्यु के पश्चात उनके आश्रितों को कोई कष्ट न उठाना पड़े।

(iii) **समाज में सम्मान, शक्ति तथा प्रभाव प्राप्त करने की इच्छा** (Desire to command social respect, power and influence)—आज के युग में एक व्यक्ति के पास जितना अधिक धन होगा उतना ही अधिक उसे समाज में सम्मान, शक्ति तथा प्रभाव प्राप्त होगा; इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूँजी का संचय करेगा।

(iv) **व्यापार में सफलता की इच्छा** (*Desire for success in bussiness*)—व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिए, अन्य बातों के अतिरिक्त पूँजी का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। अतः एक व्यक्ति अपने व्यापार में सफलता प्राप्त करने तथा अपने साथियों और प्रतियोगियों से आगे निकलने के लिए पूँजी का संचय करता है।

(v) **व्यक्तियों का स्वभाव** (Nature of individuals)—कुछ व्यक्ति स्वभाव से ही कंजूस या कृपण होते हैं और बचत करना उनकी आदत होती है; वे बचत किए बिना नहीं रह सकते चाहे उन्हें अपनी कुछ आवश्यक आवश्यकताओं को असन्तुष्ट ही क्यों न छोड़ना पड़े। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति स्वभाव से बहुत खर्चीले होते हैं और वे कुछ भी बचत नहीं करते हैं।

(iv) **ब्याज की दर** (The rate of interest)—सामान्यतया यदि ब्याज की दर ऊँची है तो लोग अधिक बचत करेंगे; इसके विपरीत यदि ब्याज की दर कम है तो लोग कम बचत करेंगे। परन्तु ब्याज की दर तथा बचत में सम्बन्ध इतना सरल नहीं है। अधिक धनी लोग ब्याज की दर मन्द होने पर भी बचायेंगे; धनी लोगों को बचत करने के लिए ब्याज की दर के प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ऊँची ब्याज की दर पर अधिक बचत होगी। यह मत क्लासीकल तथा नव-क्लासीकल अर्थशास्त्रियों का है। परन्तु केन्ज के अनुसार, ब्याज की दर प्रत्यक्ष रूप से बचतों को प्रभावित नहीं करती है, वरन बचत तो आय पर निर्भर करती है।

भारत में बचत करने की इच्छा—भारतवासियों में पूँजी संचय की इच्छा अन्य प्रगतिशील देशों की अपेक्षा कम नहीं है क्योंकि भारत में बचत की इच्छा को प्रोत्साहित करने वाले लगभग

सभी तत्त्व विद्यमान हैं। सामान्यतया भारतवासी दूरदर्शी होते हैं; उनमे अपने परिवार के प्रति प्रबल स्नेह होता है; समाज के सम्मान, शक्ति तथा प्रभाव प्राप्त करने की इच्छा भी उनमे तीव्र होती है; व्यापार में सफलता प्राप्त करने की भी प्रबल इच्छा उनमे होती है; देश मे ब्याज की दर भी आकर्षक है। भारत में इन सब तत्त्वों के कारण बचत करने की प्रबल इच्छा होती है; परन्तु भारत मे बहुत गरीबी है, लोगो में बचत करने की क्षमता बहुत कम है। इसलिए बचत करने की प्रबल इच्छा होते हुए भी भारत में बचत करने की दर बहुत नीची है।

II. बचत करने की शक्ति (Power to save)—केवल बचत करने की इच्छा होने से बचत नहीं होगी। यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोगों में बचत करने की शक्ति या क्षमता हो, तभी बचत हो पायेगी अन्यथा नहीं। बचत करने की शक्ति निम्न बातो पर निर्भर करती है :

(i) आय (Income)—यदि व्यक्तियों की आय अधिक है तो बचत अधिक होगी, इसके विपरीत यदि आय कम है तो लोग कम बचत कर सकेंगे। दूसरे शब्दों में, यदि राष्ट्रीय आय अधिक है तो देश में कुल बचत अधिक होगी।

(ii) प्राकृतिक साधन तथा आर्थिक विकास (Natural resources and economic development)—यदि किसी देश में प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता है तो सामान्यतया उसकी राष्ट्रीय आय अधिक होगी। परन्तु प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता ही पर्याप्त नहीं है, यह आवश्यक है कि उनका पूर्ण प्रयोग या शोषण किया जाय, इसके लिए यह आवश्यक है कि देश का नियोजित रूप से आर्थिक विकास किया जाये। परिणामस्वरूप देश की राष्ट्रीय आय, लोगों की बचाने की शक्ति और बचत अधिक होगी।

(iii) व्यय-चातुर्य (Rational way of expenditure)—यदि लोगों की आय अधिक है परन्तु वे अपनी आय को विवेकपूर्ण ढंग से व्यय नहीं करते बल्कि उसका दुरुपयोग करते हैं तो बचत बहुत कम होगी या बिलकुल नहीं होगी। अतः अधिक बचत के लिए लोगों मे व्यय-चातुर्य आवश्यक है।

(iv) धन का वितरण (Distribution of wealth)—यदि देश में धन का वितरण असमान है तो अधिक बचत होगी; यह बात विशेषतया अविकसित तथा कम आय वाले देशों मे लागू होती है। कम आय वाले देशों मे केवल बहुत अधिक आय वाले व्यक्ति ही बचत कर सकते हैं; यदि इन देशों मे धन का समान वितरण होता है तो अधिकांश लोग अपनी थोड़ी तथा सीमित आय को उपभोग वस्तुओं पर व्यय करेंगे और बचत बहुत कम या बिलकुल नहीं कर पायेंगे।

परन्तु धन का असमान वितरण सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय (undesirable) है। अतः देश में छोटी-छोटी बचतों को एकत्र करने के लिए विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाएँ (financial institutions) पर्याप्त संख्या में होनी चाहिए।

भारत में बचत की शक्ति—भारत मे लोगो की बचत करने की शक्ति बहुत कम है। इसके कई कारण हैं : (i) भारत मे बहुत निर्धनता है, व्यक्ति-आय तथा राष्ट्रीय आय बहुत कम है। इसलिए लोगो की बचत करने की शक्ति बहुत कम है। (ii) यद्यपि भारत में आयोजित आर्थिक विकास हो रहा है, परन्तु इससे लोगों की बचत करने की शक्ति मे आशानुरूप वृद्धि नहीं हुई है, इसके मुख्य दो कारण हैं—प्रथम, भारत मे मुद्रा-स्फीति (money inflation) के कारण वस्तुओं की कीमतें बहुत बढ़ गयी हैं, परिणामस्वरूप जीवन निर्वाह की लागत बहुत बढ़ गयी है और बचत-क्षमता कम हो गयी है। दूसरे, भारत मे जनसंख्या बड़ी तीव्र गति (लगभग २.२% प्रति वर्ष के हिसाब) से बढ़ रही है जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय में अधिक वृद्धि नहीं होती।

की शक्ति' (power to save) पर निर्भर करती है। आधुनिक युग में पूंजी निर्माण में सरकार का सहयोग (role) भी बहुत महत्वपूर्ण है। अतः पूंजी निर्माण निम्न बातों पर निर्भर करता है :

I. बचत करने की इच्छा (Will to save);
II. बचत करने की शक्ति (Power to save);
III. बचत करने की सुविधाएँ (Facilities for saving); तथा
IV. सरकार का सहयोग (Role of government)। इन चारों बातों का विस्तृत वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

I. **बचत करने की इच्छा** (Will to save)—मनुष्य अनेक उद्देश्यों से प्रेरित होकर बचत करता है। बचत करने की इच्छा निम्न बातों से प्रभावित होती है :

(i) **दूरदर्शिता** (Foresight)—मनुष्य को भविष्य में अनेक अनिश्चितताओं (uncertainties) जैसे, बीमारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था का सामना करना पड़ता है। इन सब अनिश्चितताओं की उचित व्यवस्था करने की इच्छा से प्रेरित होकर एक व्यक्ति धन बचाता है।

(ii) **पारिवारिक स्नेह** (Family affection)—बहुत से मनुष्य अपने परिवार के प्रति स्नेह की भावना से प्रेरित होकर अपने आश्रितों के लिए पर्याप्त मात्रा में धन संचय करते हैं ताकि उनकी मृत्यु के पश्चात उनके आश्रितों को कोई कष्ट न उठाना पड़े।

(iii) **समाज में सम्मान, शक्ति तथा प्रभाव प्राप्त करने की इच्छा** (Desire to command social respect, power and influence)—आज के युग में एक व्यक्ति के पास जितना अधिक धन होगा उतना ही अधिक उसे समाज में सम्मान, शक्ति तथा प्रभाव प्राप्त होगा; इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूँजी का संचय करेगा।

(iv) **व्यापार में सफलता की इच्छा** (Desire for success in bussiness)—व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिए, अन्य बातों के अतिरिक्त पूँजी का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। अतः एक व्यक्ति अपने व्यापार में सफलता प्राप्त करने तथा अपने साथियों और प्रतियोगियों से आगे निकलने के लिए पूँजी का संचय करता है।

(v) **व्यक्तियों का स्वभाव** (Nature of individuals)—कुछ व्यक्ति स्वभाव से ही कंजूस या कृपण होते हैं और बचत करना उनकी आदत होती है; वे बचत किए बिना नहीं रह सकते चाहे उन्हें अपनी कुछ आवश्यक आवश्यकताओं को असन्तुष्ट ही क्यों न छोड़ना पड़े। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति स्वभाव से बहुत खर्चीले होते हैं और वे कुछ भी बचत नहीं करते हैं।

(iv) **ब्याज की दर** (The rate of interest)—सामान्यतया यदि ब्याज की दर ऊँची है तो लोग अधिक बचत करेंगे; इसके विपरीत यदि ब्याज की दर कम है तो लोग कम बचत करेंगे। परन्तु ब्याज की दर तथा बचत में सम्बन्ध इतना सरल नहीं है। अधिक धनी लोग ब्याज की दर शून्य होने पर भी बचायेंगे; धनी लोगों को बचत करने के लिए ब्याज की दर के प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ऊँची ब्याज की दर पर अधिक बचत होगी। यह मत क्लासीकल तथा नव-क्लासीकल अर्थशास्त्रियों का है। परन्तु केन्ज के अनुसार, ब्याज की दर प्रत्यक्ष रूप से बचतों को प्रभावित नहीं करती है, वरन बचत तो आय पर निर्भर करती है।

भारत में बचत करने की इच्छा—भारतवासियों में पूँजी संचय की इच्छा अन्य प्रगतिशील देशों की अपेक्षा कम नहीं है क्योंकि भारत में बचत की इच्छा को प्रोत्साहित करने वाले लगभग

सभी तत्त्व विद्यमान हैं। सामान्यतया भारतवासी दूरदर्शी होते हैं; उनमें अपने परिवार के प्रति प्रबल स्नेह होता है; समाज के सम्मान, शक्ति तथा प्रभाव प्राप्त करने की इच्छा भी उनमे तीव्र होती है; व्यापार में सफलता प्राप्त करने की भी प्रबल इच्छा उनमें होती है; देश में ब्याज की दर भी आकर्षक है। भारत में इन सब तत्त्वों के कारण बचत करने की प्रबल इच्छा होती है; परन्तु भारत में बहुत गरीबी है, लोगों मे बचत करने की क्षमता बहुत कम है। इसलिए बचत करने की प्रबल इच्छा होते हुए भी भारत मे बचत करने की दर बहुत नीची है।

II. बचत करने की शक्ति (Power to save)—केवल बचत करने की इच्छा होने से बचत नहीं होगी। यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोगों में बचत करने की शक्ति या क्षमता हो, तभी बचत हो पायेगी अन्यथा नहीं। बचत करने की शक्ति निम्न बातो पर निर्भर करती है :

(i) आय (Income)—यदि व्यक्तियों की आय अधिक है तो बचत अधिक होगी, इसके विपरीत यदि आय कम है तो लोग कम बचत कर सकेंगे। दूसरे शब्दों मे, यदि राष्ट्रीय आय अधिक है तो देश मे कुल बचत अधिक होगी।

(ii) प्राकृतिक साधन तथा आर्थिक विकास (Natural resources and economic development)—यदि किसी देश में प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता है तो सामान्यतया उसकी राष्ट्रीय आय अधिक होगी। परन्तु प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता ही पर्याप्त नही है, यह आवश्यक है कि उनका पूर्ण प्रयोग या शोषण किया जाय, इसके लिए यह आवश्यक है कि देश का नियोजित रूप से आर्थिक विकास किया जाये। परिणामस्वरूप देश की राष्ट्रीय आय, लोगों की बचाने की शक्ति और बचत अधिक होगी।

(iii) व्यय-चातुर्य (Rational way of expenditure)—यदि लोगों की आय अधिक है परन्तु वे अपनी आय को विवेकपूर्ण ढंग से व्यय नहीं करते बल्कि उसका दुरुपयोग करते हैं तो बचत बहुत कम होगी या बिलकुल नही होगी। अतः अधिक बचत के लिए लोगो मे व्यय-चातुर्य आवश्यक है।

(iv) धन का वितरण (Distribution of wealth)—यदि देश में धन का वितरण असमान है तो अधिक बचत होगी; यह बात विशेषतया अविकसित तथा कम आय वाले देशों में लागू होती है। कम आय वाले देशों मे केवल बहुत अधिक आय वाले व्यक्ति ही बचत कर सकते हैं; यदि इन देशों में धन का समान वितरण होता है तो अधिकांश लोग अपनी थोड़ी तथा सीमित आय को उपभोग वस्तुओं पर व्यय करेंगे और बचत बहुत कम या बिलकुल नही कर पायेंगे।

परन्तु धन का असमान वितरण सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय (undesirable) है। अतः देश में छोटी-छोटी बचतों को एकत्र करने के लिए विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाएँ (financial institutions) पर्याप्त संख्या में होनी चाहिए।

भारत में बचत की शक्ति—भारत में लोगो की बचत करने की शक्ति बहुत कम है। इसके कई कारण हैं : (i) भारत मे बहुत निर्धनता है, व्यक्ति-आय तथा राष्ट्रीय आय बहुत कम है। इसलिए लोगों की बचत करने की शक्ति बहुत कम है। (ii) यद्यपि भारत में आयोजित आर्थिक विकास हो रहा है, परन्तु इससे लोगों की बचत करने की शक्ति में आशानुकूल वृद्धि नहीं हुई है, इसके मुख्य दो कारण हैं—प्रथम, भारत मे मुद्रा-स्फीति (money inflation) के कारण वस्तुओं की कीमतें बहुत बढ़ गयी हैं, परिणामस्वरूप जीवन निर्वाह की लागत बहुत बढ़ गयी है और बचत-क्षमता कम हो गयी है। दूसरे, भारत में जनसंख्या बड़ी तीव्र गति (लगभग २·५% प्रति वर्ष के हिसाब) से बढ़ रही है जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय में अधिक वृद्धि नहीं होती है

की शक्ति' (power to save) पर निर्भर करती है। आधुनिक युग में पूंजी का सहयोग (role) भी बहुत महत्वपूर्ण है। अतः पूंजी निर्माण निम्न करता है :

I. बचत करने की इच्छा (Will to save);
II. बचत करने की शक्ति (Power to save);
III. बचत करने की सुविधाएँ (Facilities for saving); त
IV. सरकार का सहयोग (Role of government) । इन
नीचे दिया जा रहा है :

I. बचत करने की इच्छा (Will to save)—मनुष्य अनेक
करता है। बचत करने की इच्छा निम्न बातों से प्रभावित होती है :

(i) दूरदर्शिता (Foresight)—मनुष्य को भविष्य में अनेक
ties) जैसे, बीमारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था का सामना करना पड़ता
उचित व्यवस्था करने की इच्छा से प्रेरित होकर एक व्यक्ति धन

(ii) पारिवारिक स्नेह (Family affection)—बहुत से
स्नेह की भावना से प्रेरित होकर अपने आश्रितों के लिए पर्याप्त
उनकी मृत्यु के पश्चात उनके आश्रितों को कोई कष्ट न उठाना

(iii) **समाज में सम्मान, शक्ति तथा प्रभाव प्राप्त**
command social respect, power and influence)—
जितना अधिक धन होगा उतना ही अधिक उसे समाज में सम्म
इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूंजी का सं

(iv) **व्यापार में सफलता की इच्छा** (Desire for
में सफलता प्राप्त करने के लिए, अन्य बातों के अतिरिक्त पूं
अतः एक व्यक्ति अपने व्यापार में सफलता प्राप्त करने त
आगे निकलने के लिए पूंजी का संचय करता है।

(v) **व्यक्तियों का स्वभाव** (Nature of individ
या कृपण होते हैं और बचत करना उनकी आदत होती है
चाहे उन्हें अपनी कुछ आवश्यक आवश्यकताओं को असन्त
कुछ व्यक्ति स्वभाव से बहुत खर्चीले होते हैं और वे कुछ

(iv) **ब्याज की दर** (The rate of interest
है तो लोग अधिक बचत करेंगे; इसके विपरीत यदि
करेंगे। परन्तु ब्याज की दर तथा बचत में सम्बन्ध
की दर शून्य होने पर भी बचायेंगे; धनी लोगों को
की आवश्यकता नहीं है। कुल मिलाकर यह कहा
बचत होगी। यह मत क्लासीकल तथा नव-
अनुसार, ब्याज की दर प्रत्यक्ष रूप से बचतों को
नि

तीन प्रोत्साहन नहीं मिला है। भारत में बढ़ती हुई कीमतें तथा मुद्रा-स्फीति बचतों को निरुत्साहित करती हैं।

(iv) सरकार का सहयोग (Role of government)—पूँजी निर्माण के कार्य में सरकार का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सरकार अपनी नीतियों से बचाने की इच्छा, शक्ति तथा सुविधाओं को प्रभावित कर सकती है।

(अ) विकसित तथा उन्नतिशील देशों (Developed and advanced countries) में पूँजी निर्माण मुख्यतया व्यक्तिगत लोगों (private individuals) द्वारा किया जाता है। इन देशों में बचतों की कमी नहीं होती, बैंकिंग तथा वित्तीय सुविधाओं की बहुत अच्छी सुविधाएँ होती हैं, कुशल तथा ईमानदार उद्योगपतियों की भी कोई कमी नहीं होती। सरकार विशेषतया व्यापार-मन्दी (business depression) के समय में सहयोग प्रदान करती है। मन्दी के समय में देश में बेरोजगारी फैल जाती है, लोगों की आय कम हो जाती है तथा पूँजी निर्माण की दर बहुत गिर जाती है। ऐसे समय में सरकार सार्वजनिक निर्माण कार्यों (public works), जैसे, सड़क बनवाना, मकान बनवाना, रेल की नयी लाइनें डालना, सिंचाई के साधनों का निर्माण, इत्यादि में विनियोग करती है, इससे बेरोजगार लोगों को रोजगार मिलता है, लोगों की आय में वृद्धि होती है, लोगों की प्रभावोत्पादक माँग (effective demand) बढ़ती है, उद्योग तथा व्यापार में विस्तार होता है; इस प्रकार पूँजी निर्माण की दर जो गिर गयी थी, अब फिर बढ़ जाती है।

(ब) समाजवादी देशों में, जिनमें कि उत्पादन तथा वितरण के समस्त साधनों पर सरकार का स्वामित्व तथा नियन्त्रण होता है, सरकार पूँजी निर्माण के लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी होती है। सरकार ही उत्पत्ति के साधनों का विभिन्न प्रयोगों में वितरण करती है, वह कर नीति, राशन, इत्यादि द्वारा उपभोग को कम करके पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिए बचतों को लगाती है।

(स) अल्पविकसित देशों (Underdeveloped countries) में पूँजी निर्माण में सरकार का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इन देशों में पूँजी निर्माण के लिए सरकार एक बड़ी सीमा तक उत्तरदायी होती है। (इसके कारण हैं—इन देशों में बहुत गरीबी होती है, आय बहुत कम होती है और लोगों की ऐच्छिक बचत की दर बहुत निम्न होती है, लोगों की छोटी-छोटी बचतों को एकत्रित करने के लिए बैंकिंग व्यवस्था तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं की कमी होती है, इत्यादि।) अल्पविकसित देशों में सरकार निम्न रीतियों से पूँजी निर्माण में सहयोग प्रदान करती है :

(i) सरकार राजकोषीय नीति (fiscal policy) द्वारा पूँजी निर्माण में सहयोग प्रदान कर सकती है। वह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर लगाकर प्राप्त धन को पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण में लगा सकती है; वह नये उद्योगों पर कर क्षमा करके या करों में रियायत करके या उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान करके नये उद्योगों के विस्तार में सहायता देकर पूँजी निर्माण में सहयोग देती है। सरकार 'अनिवार्य बचत योजना' (compulsory saving scheme) लगा कर लोगों को बचत करने के लिए बाध्य कर सकती है।

(ii) सरकार बैंकिंग व्यवस्था को अधिक सुव्यवस्थित तथा दृढ़ बना सकती है और उनका विस्तार कर सकती है; छोटे-छोटे शहरों तथा गाँवों में बैंकों की नयी शाखाएँ खुलवाकर लोगों की छोटी बचतों को एकत्रित करा सकती है। वह अन्य वित्तीय संस्थाएँ, जैसे, औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance C...

(i) देश में शान्ति तथा सुरक्षा (Peace and security)—यदि देश में [illegible] [illegible] [illegible] हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहता है, लोगों की सम्पत्ति सुरक्षित नहीं रहती है तो स्पष्ट है कि देश में बचत बहुत कम होगी। बचत के लिए देश में शान्ति तथा सुरक्षा का वातावरण रहना आवश्यक है।

(ii) विनियोग की सुविधाएं (Facilities for investment)—यदि देश में विभिन्न प्रकार के उद्योग, व्यापार, व्यवसाय इत्यादि हैं जिनमें लोग अपने बचाये हुए धन को सुरक्षित रूप से विनियोग कर सकते हैं तो अधिक बचत को प्रोत्साहन मिलता। इसके विपरीत यदि देश में सुरक्षित विनियोग के अवसर बहुत कम हैं तो निश्चय ही लोग बचत कम करेंगे। देश में उचित तथा पर्याप्त बैंकिंग सुविधाओं का होना आवश्यक है ताकि छोटी और बड़ी बचतों को सुरक्षित विनियोग के लिए एकत्रित किया जा सके। इसके अतिरिक्त सहकारी समितियाँ तथा बीमा कम्पनियाँ भी बचतों को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण होती हैं।

(iii) मुद्रा प्रणाली में स्थायित्व (Stability of the monetary system)—किसी देश में बचत के लिए यह आवश्यक है कि कीमतों में बहुत अधिक परिवर्तन न हों अर्थात् मुद्रा के मूल्य में स्थायित्व रहे। यदि वस्तुओं के मूल्य में बहुत अधिक वृद्धि होती है और देश में मुद्रा-स्फीति (inflation) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो लोगों की द्रव्य रूप में बचतों का वास्तविक मूल्य बहुत कम रह जायेगा; ऐसी स्थिति में लोग बचत नहीं करेंगे।

(iv) योग्य तथा ईमानदार उद्योगपति (Capable and honest industrialists)—प्रत्येक देश में लोग अपने बचाये हुए धन को उद्योगपतियों, व्यापारियों इत्यादि को उधार देकर व्याज का लाभ कमाना चाहते हैं। यदि देश में योग्य तथा ईमानदार, साहसी, उद्योगपति तथा व्यापारी अधिक संख्या में पाये जाते हैं तो लोग अधिक बचत करेंगे क्योंकि उनका द्रव्य तथा धन सुरक्षित रहेगा।

भारत में बचत करने की सुविधाएँ—स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में बचत करने की सुविधाओं में विस्तार हुआ है। भारत में नियोजन के परिणामस्वरूप बैंकों के विस्तार तथा बीमा की सुविधाओं में बहुत वृद्धि हुई है। छोटी-छोटी जगहों पर बैंकों की शाखाएँ स्थापित की जा रही हैं जिससे छोटी-छोटी बचतों को एकत्र किया जा सके। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के उद्योगों का विकास किया जा रहा है तथा योग्य व कुशल साहसियों की संख्या में वृद्धि हो रही है; इस प्रकार विनियोग के अवसरों में पहले की अपेक्षा पर्याप्त वृद्धि हुई है। अन्य उन्नतशील देशों की तुलना में भारत में आज भी बैंकिंग, बीमा इत्यादि की सुविधाएँ बहुत कम हैं, औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्रों में भी भारत अभी पिछड़ा हुआ है। भारत में बचतों को आशा--

ोन प्रोत्साहन नहीं मिला है। भारत में बढ़ती हुई कीमतें तथा मुद्रा-स्फीति बचतों को हतोत्साहित करती है।

(iv) सरकार का सहयोग (Role of government)—पूंजी निर्माण के कार्य में सरकार का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सरकार अपनी नीतियों से बचाने की इच्छा, शक्ति तथा सुविधाओं को प्रभावित कर सकती है।

(अ) विकसित तथा उन्नतिशील देशों (Developed and advanced countries) में पूंजी निर्माण मुख्यतया व्यक्तिगत लोगों (private individuals) द्वारा किया जाता है। इन देशों में बचतों की कमी नहीं होती, बैंकिंग तथा वित्तीय सुविधाओं की बहुत अच्छी सुविधाएँ होती हैं, कुशल तथा ईमानदार उद्योगपतियों की भी कोई कमी नहीं होती। सरकार विशेषतया व्यापार-मन्दी (business depression) के समय में सहयोग प्रदान करती है। मन्दी के समय में देश में बेरोजगारी फैल जाती है, लोगों की आय कम हो जाती है तथा पूंजी निर्माण की दर बहुत गिर जाती है। ऐसे समय में सरकार सार्वजनिक निर्माण कार्यों (public works), जैसे, सड़क बनवाना, मकान बनवाना, रेल की नयी लाइनें डालना, सिंचाई के साधनों का निर्माण, इत्यादि में विनियोग करती है, इससे बेरोजगार लोगों को रोजगार मिलता है, लोगों की आय में वृद्धि होती है, लोगों की प्रभावोत्पादक माँग (effective demand) बढ़ती है, उद्योग तथा व्यापार में विस्तार होता है; इस प्रकार पूंजी निर्माण की दर जो गिर गयी थी, अब फिर बढ़ जाती है।

(ब) समाजवादी देशों में, जिनमें कि उत्पादन तथा वितरण के समस्त साधनों पर सरकार का स्वामित्व तथा नियन्त्रण होता है, सरकार पूंजी निर्माण के लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी होती है। सरकार ही उत्पत्ति के साधनों का विभिन्न प्रयोगों में वितरण करती है; वह कर नीति, राशन, इत्यादि द्वारा उपभोग को कम करके पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिए बचतों को लगाती है।

(स) अल्पविकसित देशों (Underdeveloped countries) में पूंजी निर्माण में सरकार का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इन देशों में पूंजी निर्माण के लिए सरकार एक बड़ी सीमा तक उत्तरदायी होती है। (इसके कारण हैं—इन देशों में बहुत गरीबी होती है, आय बहुत कम होती है और लोगों की ऐच्छिक बचत की दर बहुत निम्न होती है, लोगों की छोटी-छोटी बचतों को एकत्रित करने के लिए बैंकिंग व्यवस्था तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं की कमी होती है, इत्यादि।) अल्पविकसित देशों में सरकार निम्न रीतियों से पूंजी निर्माण में सहयोग प्रदान करती है :

(i) सरकार राजकोषीय नीति (fiscal policy) द्वारा पूंजी निर्माण में सहयोग प्रदान कर सकती है। वह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर लगाकर प्राप्त धन को पूंजीगत वस्तुओं के निर्माण में लगा सकती है, वह नये उद्योगों पर कर क्षमा करके या करों में रियायत करके या उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान करके नये उद्योगों के विस्तार में सहायता देकर पूंजी निर्माण में सहयोग देती है। सरकार 'अनिवार्य बचत योजना' (compulsory saving scheme) लगा कर लोगों को बचत करने के लिए बाध्य कर सकती है।

(ii) सरकार बैंकिंग व्यवस्था को अधिक सुव्यवस्थित तथा दृढ़ बना सकती है और उनका विस्तार कर सकती है; छोटे-छोटे शहरों तथा गाँवों में बैंकों की नयी शाखाएँ खुलवाकर लोगों की छोटी बचतों को एकत्रित करा सकती है। वह अन्य वित्तीय संस्थाएँ, जैसे, औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation), विनियोग ट्रस्ट (Investment Trust), इत्यादि खोल-

प्रत्येक देश में लोग अपने बचाये हुए धन को उद्योगपतियों, व्यापारियों इत्यादि को ब्याज या लाभ कमाना चाहते हैं। यदि देश में योग्य तथा ईमानदार, साहसी, व्यापारी अधिक संख्या में पाये जाते हैं तो लोग अधिक बचत करेंगे क्योंकि उनका सुरक्षित रहेगा।

भारत में बचत करने की सुविधाएँ—स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में सुविधाओं में विस्तार हुआ है। भारत में नियोजन के परिणामस्वरूप बैंकों के विस की सुविधाओं में बहुत वृद्धि हुई है। छोटी-छोटी जगहों पर बैंकों की शाखाएँ रही हैं जिससे छोटी-छोटी बचतों को एकत्र किया जा सके। पंचवर्षीय योज विभिन्न प्रकार के उद्योगों का विकास किया जा रहा है तथा योग्य व कुशल सा में वृद्धि हो रही है; इस प्रकार विनियोग के अवसरों में पहले की अपेक्षा पर्या अन्य उन्नतशील देशों की तुलना में भारत में आज भी बैंकिंग, बीमा इत्यादि की कम हैं, औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्रों में भी भारत अभी पिछड़ा हुआ है। भारत में

भारत या अन्य अल्पविकसित देशों में पूंजी निर्माण की धीमी गति के कारण
(REASONS FOR THE SLOW RATE OF CAPITAL FORMATION IN INDIA OR OTHER UNDERDEVELOPED COUNTRIES)

भारत जैसे अल्पविकसित देशो में श्रम-शक्ति की बाहुल्यता होती है तथा पूंजी का अभाव। इन देशों में पूंजी निर्माण की गति बहुत धीमी होती है और यह बात आर्थिक विकास में एक बहुत बड़ी बाधा होती है। अल्पविकसित देशों में पूंजी निर्माण की धीमी गति के मुख्य कारण निम्न हैं :

(i) इन देशों में अधिकांश लोगों की आय बहुत कम होती है, उनका जीवन-स्तर निम्नतम होता है, वे कठिनाई के साथ केवल जीवन की अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं का ही उपभोग कर पाते हैं। स्पष्ट है कि इनकी बचत की क्षमता बहुत कम होती है। छोटी बचतों को एकत्र करने के लिए बैंकिंग सुविधाएँ कम होती है, छोटे शहरों तथा गाँवों में बैंकों की शाखाएँ प्रायः नहीं होती हैं।

(ii) अविकसित देशों (जैसे, भारत) मे केवल धनवान लोगो द्वारा ही बचत की जा सकती है क्योंकि इन लोगों की बचत की क्षमता अधिक होती है। परन्तु ये अमीर लोग भी अधिक बचत नहीं कर पाते हैं; ये लोग उपभोग वस्तुओं पर अत्यधिक व्यय करते हैं। दूसरे, ये लोग अपनी बचत का एक बड़ा भाग अनुत्पादक कार्यों, जैसे, आभूषणों, रहने के मकानो, भूमियों इत्यादि मे लगाते हैं।

(iii) इन देशों में जनसंख्या बहुत तीव्र गति से बढती है; भारत मे जनसंख्या लगभग २.३ से २.५% प्रतिवर्ष बढ़ रही है। इस कारण अधिकांश बचत बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण पर व्यय हो जाती है और पूंजी निर्माण कार्य के लिए बचाये हुए धन का प्रयोग नहीं हो पाता।

(iv) वास्तव में भारत या अन्य अल्पविकसित देशों मे पूंजी निर्माण की धीमी गति का मुख्य कारण है कि ये देश 'दुश्चक्रों' (vicious circles) मे फँसे होते हैं; ये 'दुश्चक्र' इस प्रकार हैं :

(१) मुख्य दुश्चक्र (basic vicious circle) इस प्रकार से कार्य करता है—'अविकसित साधनों, पिछड़ेपन तथा पूंजी की कमी' (underdeveloped resources, backwardness and capital deficiency) के कारण 'निम्न उत्पादकता' (low productivity) होती है, इसके कारण 'कम वास्तविक आय' (low real income) होती है, इसके कारण 'कम बचत' (low saving) होती है, इसके कारण 'पूंजी की कमी' (capital deficiency) रहती है या पूंजी निर्माण की गति धीमी रहती है। (२) दूसरा दुश्चक्र इस प्रकार कार्य करता है—'अविकसित साधनो, पिछड़ेपन तथा पूंजी की कमी' के कारण 'निम्न उत्पादकता' होती है, इसके कारण 'कम वास्तविक आय' होती है, इसके कारण 'कम माँग' (low demand) होती है, इसके कारण 'कम विनियोग' होता है, इसके कारण 'पूंजी की कमी' रहती है। (३) तीसरा दुश्चक्र इस प्रकार कार्य करता है—'अविकसित साधनों' के कारण 'पिछड़े व्यक्ति' (backward people) रहते हैं और इन पिछड़े व्यक्तियों के कारण 'अविकसित साधन' रहते हैं।

इन तीनों दुश्चक्रों को हम चित्र न० ८१ द्वारा दिखा सकते हैं।

अविकसित देशों मे पूंजी निर्माण की गति को तीव्र करने मे सरकार का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है। राजकोषीय नीति (fiscal policy), बैंकिंग सुविधाओं में पर्याप्त वृद्धि, 'सामाजिक पूंजी' (social capital) मे विनियोग, सरकार स्वयं अपने उद्योगों को स्थापित करके,

आवश्यकतानुसार घाटे की अर्थव्यवस्था द्वारा, विदेशी सहायता, राष्ट्रीय स्तर पर उचित जनसंख्या
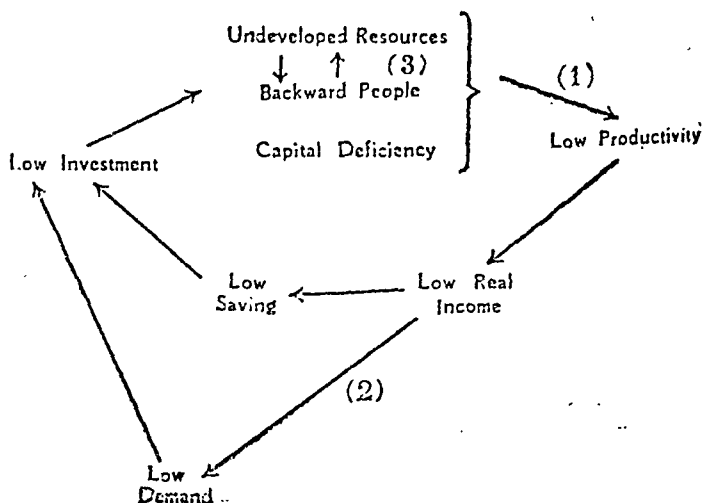
चित्र—८१

नीति, वेकार विशाल श्रम शक्ति का प्रयोग करके, शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार, इत्यादि इन सब बातों को क्रियाशील करके अविकसित देशों में पूंजी निर्माण द्रुत गति से किया जा सकता है। (इन सब बातों का विस्तृत वर्णन हम पहले कर चुके हैं)।

साहस तथा संगठन
[ENTERPRISE AND ORGANISATION]

साहस
(ENTERPRISE)

साहस तथा साहसी का अर्थ (Meaning of Enterprise and Entrepreneur)

व्यवसाय की जोखिम या अनिश्चितता उठाने के कार्य को साहस (enterprise) तथा इस जोखिम के सहन करने वाले व्यक्ति को साहसी (entrepreneur) कहते हैं। प्रत्येक व्यवसाय में कुछ न कुछ जोखिम (risk) या अनिश्चितता (uncertainty) होती है। आज का उत्पादन भविष्य की मांग पर आधारित होता है। यदि एक उत्पादक का भविष्य की मांग का अनुमान ठीक सिद्ध होता है तो उसे लाभ होगा। इसके विपरीत यदि उसका अनुमान गलत निकलता है तो उसे हानि होगी। इस प्रकार छोटा हो या बड़ा प्रत्येक व्यवसाय में लाभ-हानि के सम्बन्ध में कम या अधिक

अनिश्चितता रहती है। स्पष्ट है कि इस जोखिम या अनिश्चितता को साहस और उसे सहन करने वाले को साहसी कहते हैं।

साहसी तथा प्रबन्धक में अन्तर (Difference between Entrepreneur and Organiser)

साहसी तथा प्रबन्धक (organiser) में मुख्य अन्तर इस प्रकार है: (i) साहसी वह है जो व्यवसाय की जोखिम उठाये; जबकि प्रबन्धक या संगठनकर्ता वह है जो उत्पत्ति के साधनों को एकत्रित करके उनको अनुकूलतम (optimum) अनुपात में मिलाये। उदाहरणार्थ, मिश्रित पूँजी कम्पनी (joint stock company) में अंशधारी (shareholders) साहसी होते हैं क्योंकि वे जोखिम उठाते हैं; जबकि व्यवस्थापक संगठन या प्रबन्ध करते हैं। परन्तु कुछ उद्योगों, जैसे छोटे पैमाने के तथा कुटीर उद्योगों, में एक ही व्यक्ति साहसी और संगठनकर्ता हो सकता है। (ii) साहसी का पुरस्कार 'लाभ' कहा जाता है जबकि प्रबन्धक या संगठनकर्ता का पुरस्कार 'वेतन' कहा जाता है।

साहसी तथा पूँजीपति में अन्तर (Difference between Entrepreneur and Capitalist)

साहसी तथा पूँजीपति में मुख्य अन्तर इस प्रकार है—साहसी व्यवसाय का स्वामी तथा जोखिम उठाने वाला होता है; जबकि पूँजीपति ऋणदाता होता है और साहसी से अपनी पूँजी पर ब्याज प्राप्त करता है। पूँजीपति का जोखिम उठाने से कोई सम्बन्ध नहीं होता। कुछ दशाओं में यह सम्भव हो सकता है कि एक ही व्यक्ति साहसी भी हो और पूँजीपति भी। प्रायः छोटे तथा कुटीर उद्योगों में एक व्यक्ति साहसी भी होता है और पूँजीपति भी।

साहसी का महत्त्व (Importance of Entrepreneur)

आधुनिक युग में साहसी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—(i) छोटे या बड़े किसी भी व्यवसाय का प्रारम्भ बिना साहसी के नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यवसाय में कुछ न कुछ जोखिम अवश्य होती है और जब तक इस जोखिम को उठाने के लिए कोई व्यक्ति तत्पर नहीं होगा तब तक व्यवसाय आरम्भ नहीं होगा। (ii) आधुनिक उत्पादन व्यवस्था में जोखिम का अंश बहुत बढ़ गया है। उत्पादन विधियाँ अत्यन्त जटिल हो गयी हैं, उनमें निरन्तर परिवर्तन होते हैं। उपभोक्ताओं की रुचि तथा फैशन बराबर बदलते रहते हैं। इन सब बातों के कारण वर्तमान काल में व्यवसायों में बहुत अधिक अनिश्चितता हो गयी है। ऐसी स्थिति में साहसी का महत्त्व आधुनिक काल में और अधिक बढ़ गया है। (iii) एक देश का आर्थिक विकास तथा उन्नति एक बड़ी सीमा तक कुशल एवं योग्य साहसियों पर निर्भर करती है। अमरीका, इंगलैण्ड, इत्यादि देशों में अधिक मात्रा में कुशल साहसी उपलब्ध हैं, परिणामस्वरूप इन देशों में आर्थिक उन्नति का उच्च स्तर है। इसके विपरीत भारत जैसे अविकसित देशों में कुशल तथा योग्य साहसी कम हैं, परिणामस्वरूप इन देशों में आर्थिक उन्नति का स्तर निम्न है।

साहसी के कार्य (Functions of Entrepreneur)

यद्यपि साहसी का मुख्य कार्य जोखिम उठाना है, परन्तु वह कुछ प्रशासनात्मक (administrative) या निर्णयात्मक (decision-taking) कार्य भी करता है। अध्ययन की सुविधा के लिए साहसी के कार्य को तीन भागों में बाँटा जा सकता है: (१) जोखिम उठाने का कार्य; (२) प्रशासनात्मक तथा निर्णयात्मक कार्य; तथा (३) वितरण सम्बन्धी कार्य।

(१) जोखिम उठाने का कार्य (Risk-taking function)—साहसी का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य जोखिम उठाने का कार्य है। आधुनिक उत्पादन भविष्य की माँग पर आधारित होता है, इसलिए प्रत्येक व्यवसाय में कम या अधिक अनिश्चितता या जोखिम होती है। इस जोखिम को साहसी ही उठाता है; अन्य साधन जोखिम उठाने में कोई भाग नहीं लेते। स्पष्ट

बिना साहसी के कोई व्यवसाय प्रारम्भ नहीं हो सकता। बीमा कम्पनियों ने साहसी के लिए कुछ प्रकार के जोखिमों को सरल कर दिया है।

(२) **प्रशासनात्मक तथा निर्णयात्मक कार्य** (Administrative and decision-taking function)—इस सम्बन्ध में मुख्य कार्य निम्न हैं :

(i) साहसी सर्वप्रथम **उद्योग के चुनाव के** सम्बन्ध में निर्णय लेता है। विभिन्न उद्योगों में लाभ की सम्भावनाओं का अध्ययन करके वह उस उद्योग को चुनता है जिसमें उसे अधिकतम लाभ की सम्भावना प्रतीत होती है। (ii) इसके पश्चात साहसी यह निश्चित करता है कि उद्योग से **सम्बन्धित किस प्रकार की वस्तु का उत्पादन करे।**

(iii) साहसी का तीसरा कार्य यह निर्णय करना है कि **उत्पादन की इकाई का आकार क्या रखा जाये तथा उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाये या छोटे पर।** (iv) इसके पश्चात साहसी यह निर्णय करता है कि **उत्पान किस स्थान पर किया जाय।** उत्पादन के स्थान निर्णय करते समय वह कई बातों को ध्यान में रखता है, जैसे, शक्ति, कच्चे माल, श्रमिकों इत्यादि की उपलब्धि, बाजार की निकटता, यातायात के साधनों तथा बैंकिंग की सुविधाएँ इत्यादि। (v) साहसी कुछ ऐसे प्रशासनात्मक कार्य भी करता है जो संगठनकर्ता या प्रबन्धक के क्षेत्र में भी आते हैं। जैसे, (अ) **साधनों को अनुकूलतम अनुपात में मिलाना।** वह प्रतिस्थापन नियम की सहायता से महँगे तथा कम उत्पादक साधनों के स्थान पर सस्ते तथा अधिक उत्पादक साधनों का प्रयोग करने का प्रयत्न करता है। (ब) वह **बिक्री, विज्ञापन,** इत्यादि की **व्यवस्था में** संगठनकर्ता को सहयोग देता है। (स) प्रबन्धक के साथ-साथ वह **व्यवसाय पर सामान्य नियन्त्रण** भी रखता है तथा व्यवसाय **के सम्बन्ध में सामान्य नीतियों को निर्धारित** करता है।

(३) **वितरण सम्बन्धी कार्य** (Distributive functions)—साहसी विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार वितरण करने का कार्य भी करता है।

एक अच्छे साहसी के गुण (Qualities of a Good Entrepreneur)

एक अच्छे तथा सफल साहसी में निम्न गुणों का होना आवश्यक है :

(१) एक अच्छे साहसी में **दूरदर्शिता** का गुण होना आवश्यक है तभी वह व्यवसाय से सम्बन्धित भविष्य की प्रवृत्तियों का अच्छा अनुमान लगा सकेगा। (२) व्यवसाय की दिन प्रतिदिन की जटिल समस्याओं को समझने के लिए यह आवश्यक है कि साहसी **प्रखर बुद्धि वाला,** योग्य तथा अच्छी प्रकार से शिक्षित हो। (३) साहसी में **शीघ्र निर्णय लेने की योग्यता** होनी चाहिए; निर्णयों में देर करने से व्यवसाय में भारी हानि की सम्भावना रहती है। (४) सफल साहसी के लिए आवश्यक है कि उसे व्यवसाय से सम्बन्धित बातों का **विस्तृत ज्ञान** हो, **नवीनतम आविष्कारों** तथा सुधारों की पूर्ण जानकारी हो तभी वह क्रय-विक्रय तथा अन्य बातों के सम्बन्ध में उचित तथा शीघ्र निर्णय ले सकेगा। (५) साहसी को **मानवी प्रकृति** का अच्छा ज्ञान होना चाहिए तभी वह व्यवसाय के लिए योग्य तथा कुशल कार्यकर्ताओं को चुन सकेगा। (६) साहसी में आर्थिक कठिनाइयों का **धैर्यपूर्वक** सामना करने की योग्यता होनी चाहिए। (७) साहसी के लिए यह भी आवश्यक है कि वह ईमानदार तथा गम्भीर हो।

संगठक या प्रबन्धक
(ORGANISER)

संगठन तथा संगठनकर्ता का अर्थ (Meaning of Organisation and Organiser)

उत्पादन के विभिन्न साधनों को एकत्रित करने तथा उनको अनुकूलतम अनुपात में मिलाने के कार्य को संगठन कहते हैं और जो व्यक्ति संगठन के कार्य को करता है उसे संगठनकर्ता कहते हैं।

संगठन तथा श्रम में अन्तर (Difference between Organisation and Labour)

यद्यपि संगठन एक विशिष्ट प्रकार का श्रम है, परन्तु दोनों में अन्तर है—(i) संगठन का कार्य मुख्यतया मानसिक है जबकि श्रम का कार्य मुख्यतया शारीरिक है। (ii) संगठन का कार्य अत्यन्त कठिन है, उसे समस्त व्यवसाय का नियन्त्रण तथा निरीक्षण करना पड़ता है; संगठनकर्ता के लिए उच्चकोटि की टेक्नीकल शिक्षा, अनुभव तथा योग्यता का होना आवश्यक है। इसके विपरीत श्रम का कार्य सरल होता है, उसके लिए उच्चकोटि की शिक्षा तथा योग्यता की आवश्यकता नहीं है।

संगठन का महत्व (Importance of Organisation)

(१) आधुनिक युग में श्रम-विभाजन, बड़े पैमाने के उत्पादन, इत्यादि के कारण उत्पादन प्रणाली अत्यन्त जटिल हो गयी है, अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि उत्पत्ति के साधनों को उचित अनुपात में मिलाया जाय तथा उनमें प्रभावपूर्ण सहकारिता स्थापित की जाय। इस कार्य को संगठक ही कर सकता है। (२) उत्पादन कुशलता एक बड़ी सीमा तक संगठक या प्रबन्धक की योग्यता तथा कुशलता पर निर्भर करती है। (३) संगठक का महत्व पूँजीवाद, समाजवाद तथा मिश्रित अर्थ-व्यवस्था सभी आर्थिक प्रणालियों में है।

संगठन के कार्य (Functions of the Organiser)

संगठक या प्रबन्धक के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं :

(१) उत्पादन-योजना का निर्धारण—संगठन समस्त उत्पादन कार्य के सम्बन्ध में योजना बनाता है। वह इस बात का निर्णय करता है कि किस वस्तु का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन किया जायेगा। (२) उत्पत्ति के साधनों की व्यवस्था—(i) संगठक भूमि, पूँजी तथा श्रम को पर्याप्त मात्रा में जुटाता है। (ii) इन उत्पत्ति के साधनों को अनुकूलतम अनुपात में मिलाता है ताकि उत्पादन लागत निम्नतम रहे। (iii) वह कच्चे माल की उचित व्यवस्था करता है ताकि उसकी पूर्ति पर्याप्त मात्रा में तथा नियमित रूप से मिलती रहे। (iv) वह नवीनतम मशीनों तथा यन्त्रों का प्रयोग करने का प्रयत्न करता है ताकि लागत को निम्नतर रख कर प्रतियोगियों का सामना किया जा सके। (३) श्रम सम्बन्धी समस्याएँ—प्रबन्धक श्रमिकों को उनकी योग्यतानुसार कार्य देता है। उनके कार्य करने की दशाओं को उचित बनाये रखता है। एक कुशल उत्पादक श्रमिकों को सन्तुष्ट रख कर हड़तालों को होने से रोकता है। इस प्रकार श्रम की समस्त समस्याओं पर उचित ध्यान देकर एक कुशल संगठक औद्योगिक शान्ति को बनाये रखता है। (४) विक्रय की व्यवस्था—(i) संगठक एजेण्टों, व्यापार प्रतिनिधियों, थोक विक्रेताओं इत्यादि को अनुकूलतम शर्तों पर नियुक्त करके उत्पादित माल के विक्रय की उचित व्यवस्था करता है। (ii) वह लागत तथा बाजार की दशाओं को ध्यान में रखकर वस्तु का मूल्य निर्धारित करता है। (iii) वह वस्तु की बिक्री को बढ़ाने के लिए उचित विज्ञापन तथा प्रचार व्यवस्था रखता है। (५) खोज व अनुसन्धान—एक कुशल संगठक उत्पादन रीतियों, लागतों, विक्रय व्यवस्था इत्यादि से सम्बन्धित खोजों तथा अनुसन्धानों पर भी ध्यान देता है। (६) उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार के वितरण की व्यवस्था करता है।

संक्षेप में, संगठक का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है; वह समस्त कार्य का निरीक्षण तथा प्रबन्ध करता है।

संगठक के आवश्यक गुण (Necessary Qualities of an Organiser)

संगठक की कार्यकुशलता पर ही उत्पादन कुशलता निर्भर करती है। एक कुशल संगठक के लिए निम्न आवश्यक गुण बताये जाते हैं :

उत्पत्ति के नियम

[LAW OF RETURNS]

उत्पत्ति ह्रास नियम
(LAW OF DIMINISHING RETURNS)

विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के संयोग (combination) से किसी वस्तु का उत्पादन होता है। कम लागत तथा कुशल उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि उत्पत्ति के साधनों को उचित अनुपातों में मिलाया जाय।

उत्पत्ति के नियम यह बताते हैं कि साधनों की मात्रा में वृद्धि करने से किस अनुपात में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होगी। उत्पत्ति के प्रायः तीन नियम बताये जाते हैं—(१) यदि उत्पत्ति के साधनों में वृद्धि करने के अनुपात से अधिक उत्पादन बढ़ता है तो इसे 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' (Law of increasing returns) कहते हैं। (२) उत्पादन के साधनों का अधिक प्रयोग करने तथा उत्पादन को बढ़ाते जाने से जब बड़े पैमाने की उत्पत्ति की सब बचतें समाप्त हो जाती हैं और वस्तु की प्रति इकाई लागत निम्नतम हो जाती है तो कहा जाता है कि उत्पादन 'अनुकूलतम स्तर' (optimum scale) पर हो रहा है; यदि इसी स्थिति में उत्पादन चलता रहता है तो 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' (Law of constant returns) लागू होता है। (३) यदि साधनों की वृद्धि की अपेक्षा उत्पादन कम अनुपात में बढ़ता है तो इसे 'उत्पत्ति ह्रास नियम' (Law of diminishing returns) कहते हैं।

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उत्पत्ति का मूलतया एक ही नियम है और वह है 'उत्पत्ति ह्रास नियम'। उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति स्थिरता नियम केवल थोड़े समय के लिए ही लागू

होते हैं, अन्त में, उत्पत्ति ह्रास नियम ही क्रियाशील होता है। दूसरे शब्दों में, 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' तथा 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' उत्पत्ति ह्रास नियम की अस्थायी अवस्थाएँ (temporary phases) हैं।

मार्शल (तथा अन्य प्राचीन क्लासीकल अर्थशास्त्रियों) के अनुसार, उत्पत्ति ह्रास नियम केवल कृषि या भूमि पर ही लागू होता है। मार्शल ने केवल भूमि को स्थिर माना तथा उत्पत्ति के अन्य साधनों को परिवर्तनशील रखा। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री मार्शल के मत से सहमत नहीं हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह नियम केवल कृषि या भूमि के सम्बन्ध में ही लागू नहीं होता बल्कि उद्योगों तथा अन्य सभी क्षेत्रों में लागू होता है।

आधुनिक मत—परिवर्तनशील अनुपातों का नियम
(MODERN VIEW—THE LAW OF VARIABLE PROPORTIONS)

१. प्राक्कथन (Introductory)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि किसी भी एक साधन (चाहे वह भूमि हो या श्रम या पूँजी या प्रबन्ध) को स्थिर रखा जाये तथा अन्य साधनों को बढ़ाया जाये तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होगा। उत्पत्ति ह्रास नियम की इस व्यापक क्रियाशीलता (general applicability) की बात पर जोर देने की दृष्टि से आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पत्ति ह्रास नियम को 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' (Law of variable proportions) कहते हैं।[1]

२. नियम का कथन (Statement of the Law)

'उत्पत्ति ह्रास नियम' या 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' एक टैक्नोलोजीकल सिद्धान्त (technological principle) है। यह प्रयोग में लाये जाने वाले परिवर्तनशील-उत्पत्ति के साधनों की भौतिक मात्राओं (physical quantities of inputs) तथा उत्पादन की भौतिक मात्राओं में सम्बन्ध बताता है।

---

[1] 'परिवर्तनशील अनुपातों के नियम' के अतिरिक्त इस नियम को कुछ अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, जिनका विवरण यहाँ दिया जाता है। इसको 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' इसलिए कहते हैं क्योंकि उत्पादन की मात्रा उत्पत्ति के साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों पर निर्भर करती है। इसे 'अनुपात का नियम' (Law of proportionality) भी कहा जाता है क्योंकि उत्पादन उत्पत्ति के साधनों के मिलाने के अनुपात पर निर्भर करता है। इसे 'प्रतिफल का नियम' (Law of returns) भी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति के साधनों के मिलाने के अनुपात में परिवर्तन करने से उत्पादन या प्रतिफल में परिवर्तन होता रहता है। इसे 'असमान अनुपातीय प्रतिफल का नियम, (Law of non-proportional returns or Law of non-proportionate output) भी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति के साधनों के मिलने के अनुपात में परिवर्तन करने से उत्पादन या प्रतिफल में असमान अनुपात में परिवर्तन होता है, जैसे कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ सकता है या घटती हुई गति से, इत्यादि। इसे 'सीमान्त उत्पादकता ह्रास नियम' या 'घटती हुई सीमान्त उत्पादकता का नियम' (Law of diminishing marginal productivity) भी कहते हैं क्योंकि एक सीमा के बाद सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। प्रो० बोल्डिंग (Boulding) इसे 'अन्ततः घटती हुई सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम' (Law of eventually diminishing marginal physical productivity) कहना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि उनके अनुसार, 'घटता हुआ प्रतिफल' (diminishing returns) एक ढीला (loose) शब्द है जिसके कई अर्थ निकाले जा सकते हैं। प्रो० सेम्युलसन (Semuelson) तथा श्रीमती जोन रोबिन्सन इसको पुराने नाम अर्थात् 'उत्पत्ति ह्रास नियम या मात्र प्रतिफल नियम' (Law of diminishing returns) के नाम से ही पुकारते हैं।

श्रीमती जोन रोबिन्सन (Mrs. Joan Robinosn) के अनुसार, "उत्पत्ति ह्रास नियम, जैसा कि प्रायः इसे बनाया जाता है, बताता है कि किसी एक उत्पत्ति के साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाय तथा अन्य साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाय, तो, एक निश्चित बिन्दु के बाद, उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होगी।"[2]

प्रो बेनहम के अनुसार, "उत्पादन के साधनों के संयोग में एक साधन का अनुपात ज्यों-ज्यों बढ़ाया जाता है त्यों-त्यों एक बिन्दु के बाद, उस साधन का सीमान्त तथा औसत उत्पादन घटता जाता है।"[3] अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने भी इसी प्रकार की परिभाषाएँ दी हैं।[4]

३. नियम की व्याख्या (Explanation)

श्रीमती जोन रोबिन्सन उत्पत्ति के एक साधन को स्थिर रख कर अन्य साधनों को परिवर्तनशील रखती हैं। प्रो० बेन्हम अन्य साधनों को स्थिर रख कर केवल एक साधन में वृद्धि करके सीमान्त उत्पादन मालूम करते हैं। कुछ अन्य आधुनिक अर्थशास्त्री, जैसे, स्टिगलर, बोल्डिंग इत्यादि भी अन्य साधनों को स्थिर रख कर केवल एक साधन को परिवर्तनशील रखते हैं। परन्तु इन दोनों दृष्टिकोणों में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि मुख्य बात यह है कि कुछ साधन स्थिर होने चाहिए और कुछ परिवर्तनशील।

इस नियम को समझने के लिए तीन शब्दों का समझना आवश्यक है—कुल उत्पादन (Total Product), सीमान्त उत्पादन (Marginal Product), तथा औसत उत्पादन (Average Product)। किसी परिवर्तनशील साधन (variable factor) के एक निश्चित इकाइयों के प्रयोग से जो उत्पादन प्राप्त होता है उसे **'कुल उत्पादन'** (TP) कहते हैं। साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे **'सीमान्त उत्पादन'** (MP) कहते हैं। कुल उत्पादन में परिवर्तनशील साधन की प्रयोग की जाने वाली कुल इकाइयों का भाग देने से जो प्राप्त होता है उसे **'औसत उत्पादन'** (AP) कहते हैं।[5]

---

2 "The Law of Diminishing Returns, as it is usually formulated, states that with a fixed amount of any one factor of production successive increases in the amount of other factors wiil after a point yield a diminishing increment of the product."
—Mrs. Joan Robinson : *The Economics of Imperfect Competition*, p. 330.

3 "As the proportion of one factor in a combination of factors is increased, after a point the marginal and average product of that factor will diminish."
—Benham : *Economics*, p. 128.

4 कुछ अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों (स्टिगलर, बोल्डिंग तथा सेम्युलसन) की परिभाषाएँ नीचे दी गयी हैं :

"If the quantity of one productive service is increased by equal increments the quantities of other productive services remaining fixed the resulting increments of product will decrease after a certain point."
—Stigler : *Theory of Price*, p. 116.

"As we increase the quantity of anyone input which is combined with a fixed quantity of the other inputs, the marginal physical productivity of the variable input must eventually decline."
—Boulding : *Economic Analysis*, p. 589.

"An increase in some inputs relative to other comparatively fixed input will cause output to increase, but after a point the extra output resulting from the same additions of input will become less and less. This falling off of extra returns is a consequence of the fact that the new "doses" of the varying resources have less and less of the constant resources to work with."
—Samuelson : *Economics—An Introductory Analysis*. (Asian ed.) p. 27.

5 उदाहरणार्थ, माना कि परिवर्तनशील साधन श्रम है तथा अन्य साधन स्थिर हैं। माना कि ४ श्रमिकों का प्रयोग करने में वस्तु का उत्पादन २३ इकाइयों के बराबर होता है, तो यह कुल 'उत्पादन' (TP) हुआ। यदि श्रम की एक और इकाई बढ़ायी जाती है अर्थात ५ श्रमिक

इस नियम को सीमान्त उत्पादन (Marginal Product), कुल उत्पादन (Total Product) तथा औसत उत्पादन (Average Product) इन तीन शब्दों (terms) में व्यक्त किया जाता है। यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट होता है। माना कि श्रम परिवर्तनशील साधन है तथा भूमि और पूँजी स्थिर हैं। श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयों के प्रयोग करने से जो उत्पादन प्राप्त होता है वह निम्न तालिका में दिखाया गया है :

श्रमिकों की संख्या	कुल उत्पादन (TP) (मैट्रिक टनों में)	औसत उत्पादन (AP) (मैट्रिक टनों में)	सीमान्त उत्पादन (MP) (मैट्रिक टनों में)	विशेष कथन (Remarks)
१	४	४·०	४	
२	११	५·५	७	
३	१९	६·३३	८	Stage I
४	२७	६·७५	८	
५	३४	६·८	७	
६	३९	६·५	५	
७	४२	६·०	३	
८	४४	५·५	२	Stage II
९	४५	५·०	१	
१०	४५	४·५	०	
११	४४	४·०	—१	Stage III

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयों के प्रयोग करने से प्राप्त उत्पादन को तीन अवस्थाओं (three stages) में बाँट सकते हैं :

प्रथम अवस्था (Stage I)—प्रारम्भ में जब श्रम की इकाइयों को बढ़ाया जाता है तो स्थिर साधनों (भूमि तथा पूँजी) का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगता है और सीमान्त उत्पादन बढ़ता है अर्थात् कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ता है। चूँकि कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ता है इसलिए औसत उत्पादन भी बढ़ता है; अतः आरम्भ में प्रथम अवस्था में कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन तीनों बढ़ते हैं।

इस अवस्था में ही एक स्थान पर (उदाहरण में ४ इकाई पर) सीमान्त उत्पादन (MP) अधिकतम होकर घटना शुरू हो जाता है[6] परन्तु फिर भी औसत उत्पादन (AP) बढ़ता है और एक स्थान पर (अर्थात् श्रम की ५वीं इकाई पर) AP बढ़कर अधिकतम हो जाती है। चूँकि इस

हो जाते हैं तो कुल उत्पादन २६ इकाइयों के बराबर हो जाता है। केवल पाँचवें श्रमिक के प्रयोग से कुल उत्पादन में (२६—२३)=३ इकाइयों के बराबर वृद्धि होती है, इसे सीमान्त उत्पादन (MP) कहते हैं। कुल उत्पादन अर्थात् २६ इकाइयों में साधन श्रम की कुल इकाइयों अर्थात् ५ इकाइयों का भाग देने से २६/५=५·२ इकाइयों के बराबर उत्पादन प्राप्त होता है, इसे औसत उत्पादन (AP) कहते हैं।

6 मार्शल के अनुसार जहाँ तक सीमान्त उत्पादन (MP) बढ़ता है वहाँ तक 'बढ़ते हुये उत्पादन की अवस्था' (Increasing Returns) रहती है और जहाँ से सीमान्त उत्पादन घटने लगता है वहाँ से 'घटते हुये उत्पादन की अवस्था' (Diminishing Returns) लागू हो जाती है। परन्तु अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार जहाँ तक औसत उत्पादन (AP) बढ़ता है वहाँ तक 'बढ़ते हुए उत्पादन की अवस्था' रहती है तथा जहाँ से औसत उत्पादन (AP) घटने लगता है वहाँ से 'घटते हुये उत्पादन की अवस्था' लागू होने लगती है।

अवस्था में औसत उत्पादन (AP) निरन्तर बढ़ता है, इसलिए इस अवस्था को 'बढ़ते हुये औसत उत्पादन की अवस्था' (Stage of Increasing Average Returns) कहते हैं।

दूसरी अवस्था (Stage II)—इस अवस्था में औसत उत्पादन गिरने लगता है। [illegible] उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है क्योंकि सीमान्त उत्पादन (MP) भी गिर रहा है चूंकि इस अवस्था से औसत उत्पादन गिरने लगता है, इसलिए यह कहा जाता है कि इस अवस्था से 'घटते हुए औसत उत्पादन का नियम' (Law of diminishing average returns) लागू हो जाता है।
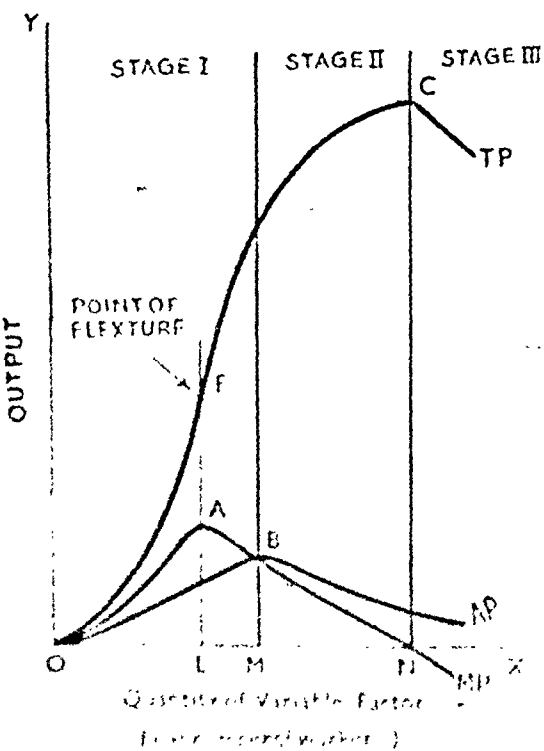
चित्र—[illegible]

तीसरी अवस्था (Stage III)—इस अवस्था में कुल उत्पादन गिरने लगता है क्योंकि सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक (nega-tive) हो जाता है। चूंकि इस अवस्था में [illegible] उत्पादन गिरने लगता है, इसलिए यह कहा जाता है कि इस अवस्था में 'घटते हुए कुल उत्पादन का नियम' (Law of diminishing total returns) लागू हो जाता है।

[illegible] व्याख्या की जा सकती है।

चित्र में तीनों अवस्थाएं [illegible]

(i) बिन्दु 'F' [illegible] का बिन्दु' (point of flexture) [illegible]

क्योंकि इस बिन्दु के पहले तक कुल उत्पादन (TP) तीव्र गति से बढ़ता है (क्योंकि सीमान्त उत्पादन तेजी से बढ़ता है) और इसलिए O से F तक TP रेखा OX के प्रति उन्नतोदर (convex) है; तथा इस बिन्दु के बाद से कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है (क्योंकि सीमान्त उत्पादन घटने लगता है) और इसलिए इस बिन्दु के बाद से TP रेखा OX के प्रति नतोदर (concave) हो जाती है। यह ध्यान रखने की बात है कि बिन्दु 'F', बिन्दु 'A' (जहाँ पर कि सीमान्त उत्पादन अधिकतम है) के ठीक ऊपर है।

(ii) व्यवहार में एक उत्पादक प्रायः दूसरी अवस्था (stage II) में पाया जायेगा। तीसरी अवस्था में पाये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि इस अवस्था में कुल उत्पादन (TP) घटने लगता है। पहली अवस्था में भी उत्पादक नहीं पाया जायेगा क्योंकि इस अवस्था में कुल उत्पादन (TP) तथा औसत उत्पादन (AP) बढ़ते हैं। उत्पादक केवल दूसरी अवस्था में ही पाया जायेगा क्योंकि इसमें सीमान्त उत्पादन (MP) तथा औसत उत्पादन (AP) दोनों घटने लगते हैं और कुल उत्पादन (TP) घटती हुई दर से बढ़ते-बढ़ते बिन्दु C पर अधिकतम होता है (यहाँ पर सीमान्त उत्पादन शून्य हो जाता है)। दूसरे शब्दों में, उत्पादक OM से कम और ON से अधिक श्रमिकों को नहीं लगायेगा; इसलिए बिन्दु M तथा N दो सीमा की स्थितियाँ (*limiting positions*) को बताते हैं।

(iii) बिन्दु 'A' पर सीमान्त उत्पादन अधिकतम हो जाता है और उसके बाद से घटने लगता है, इसलिए इसको 'घटते हुए सीमान्त उत्पादन का बिन्दु' (point of diminishing marginal returns) कहते हैं। बिन्दु 'B' के बाद से औसत उत्पादन घटने लगता है इसलिए इसे 'घटते हुए औसत उत्पादन का बिन्दु' (point of diminishing average returns) कहते हैं। इसी प्रकार बिन्दु 'C' के बाद से कुल उत्पादन घटने लगता है इसलिए इसे 'घटते हुए कुल उत्पादन का बिन्दु' (*point of diminishing total returns*) कहते हैं।

संक्षेप में, उपर्युक्त व्याख्या के सन्दर्भ में इस नियम का कथन इस प्रकार भी दिया जाता है, "[illegible] इयों का प्रयो[illegible] बाद से सी[illegible][8]

४. उत्पत्ति ह्रास नियम तथा लागत (Law of Diminishing Returns and Cost)

यदि 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' या उत्पत्ति ह्रास नियम' को लागत की दृष्टि से देखा जाय तो इसे 'परिवर्तनशील लागत का नियम' (*Law of variable cost*) या 'लागत वृद्धि नियम' (Law of increasing costs) कहते हैं। प्रारम्भ में, अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए जब परिवर्तनशील साधन की इकाइयों को बढ़ाया जाता है तो अनुपात से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है, [illegible] ost) [illegible] तो

8 "If we add more units of the variable factor to fixed quantities of other factors, other conditions remaining the same, we will reach points beyond which the marginal, then the average, and finally the total outputs diminish"

9 एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) को उत्पादन करने से कुल लागत में जो परिवर्तन होता है उसे सीमान्त लागत (MC) कहते हैं। कुल लागत में कुल उत्पादन का भाग देने से जो प्राप्त होता है वह औसत लागत (AC) होगी।

पहले सीमान्त लागत (MC) एक बिन्दु पर निम्नतम होकर बढ़ने लगती है, इसके पश्चात् औसत लागत एक बिन्दु पर निम्नतम होती है और फिर बढ़ने लगती है। सीमान्त लागत रेखा (MC) औसत लागत रेखा (AC) के निम्नतम बिन्दु से गुजरती है। इसको चित्र नं० ८३ द्वारा दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में सीमान्त लागत (MC) तथा औसत लागत (AC) घटते हैं। K बिन्दु पर औसत लागत (CC) निम्नतम हो जाती है, इसके बाद बढ़ती है; सीमान्त लागत (MC) भी K बिन्दु से गुजरती हुई बढ़ती है। K बिन्दु के बाद से AC तथा MC दोनों बढ़ने लगते हैं और इस बिन्दु के बाद से 'लागत वृद्धि नियम' लागू हो जाता है।
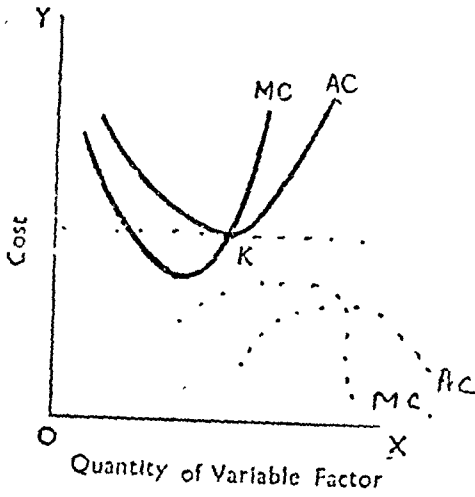
चित्र—८३

५. उत्पत्ति ह्रास नियम की मान्यताएँ या सीमाएँ (Assumptions or Limitations of the Law of Diminishing Returns)

यह नियम कई मान्यताओं पर आधारित है। मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :

(i) यह मान लिया जाता है कि उत्पत्ति के साधनों के मिलने के अनुपात में जैसा चाहे वैसा परिवर्तन किया जा सकता है। (ii) यह नियम तभी लागू होगा जबकि एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों को परिवर्तनशील रखा जाय या अन्य साधन स्थिर हों और एक साधन परिवर्तनशील रहे। (iii) परिवर्तनशील साधन की सब इकाई एक-रूप (homogeneous) होनी चाहिए। (iv) यह सम्भव है कि प्रारम्भिक दशा (initial stage) में यह नियम लागू न हो जबकि परिवर्तनशील साधन थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बढ़ाया जाता है; ऐसी स्थिति में थोड़े समय के लिए 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' लागू होगा। उत्पत्ति ह्रास नियम तभी लागू होगा जबकि परिवर्तनशील साधन की पर्याप्त मात्रा का प्रयोग हो चुका हो। (v) यह मान लिया जाता है कि संगठन, उत्पादन के ढंगों, टेक्नोलोजी इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यदि इनमें परिवर्तन होता है तो उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति भविष्य के लिए स्थगित हो जाती है। (vi) नियम का सम्बन्ध वस्तु की भौतिक मात्रा (physical quantity) से है न कि उसके मूल्य (value) से, एक निश्चित बिन्दु के बाद वस्तु की मात्रा में ह्रास होता है। वस्तु की मात्रा का मूल्य तो बाजार की दशाओं पर निर्भर करता है जिनमें दिन प्रति दिन परिवर्तन होते रहते हैं। (vii) यदि हम लागत की दृष्टि से देखें तो 'लागत वृद्धि नियम' तब लागू होगा जबकि परिवर्तनशील साधनों या साधन की कीमत

नियम के लागू होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(i) **एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर होना** (Fixity of one or more than one factors of production)—यदि अन्य साधनों (भूमि तथा पूंजी) को स्थिर रखा जाय तथा एक साधन (श्रम) को बढ़ाया जाय तो परिवर्तनशील साधन (श्रम) को स्थिर साधनों (भूमि तथा पूंजी) की कम और कम मात्रा के साथ कार्य करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में श्रम की उत्पादक शक्ति कम होती जायेगी और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा। इसी बात को हम दूसरे शब्दों में निम्न दो प्रकार से और व्यक्त कर सकते हैं।

(अ) **उत्पादक साधनों की सीमितता** (Scarcity of productive resources) : यदि किसी उत्पत्ति के साधन की पूर्ति को अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता, तो उत्पादक को उस साधन की सीमित मात्रा से (अर्थात साधन की एक दी हुई स्थिर मात्रा से) ही कार्य चलाना पड़ेगा और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा।[10] (ब) **'अनुकूलतम संयोग' के आगे जाने से** (Going beyond the optimum combination of factors of production) : जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक साधन को परिवर्तनशील रखा जाता है तो एक बिन्दु पर उत्पत्ति के साधनों के संयोग का अनुकूलतम अनुपात प्राप्त हो जाता है। उत्पादन को बढ़ाने के लिए यदि अब अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा। संक्षेप में, अनुकूलतम संयोग के आगे जाने से उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।[11]

(ii) **उत्पत्ति के साधन एक दूसरे के अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं** (Factors of production are imperfect substitutes for one another)—श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, एक साधन को दूसरे के स्थान पर केवल एक सीमा तक ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है। यदि यह बात सच नहीं होती तो, एक साधन की मात्रा स्थिर होने पर और अन्य साधनों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होने पर यह सम्भव होता कि उत्पादन का एक भाग स्थिर साधन की सहायता से किया जाय और तत्पश्चात जबकि इस स्थिर साधन तथा अन्य साधनों में अनुकूलतम संयोग स्थापित हो जाये, स्थिर साधन के स्थान पर अन्य साधन का स्थानापन्न किया जाये तथा स्थिर लागत पर उत्पादन को बढ़ाया जाय।[12]

---

10 उदाहरणार्थ, कृषि भूमि पर आधारित है, परन्तु भूमि लगभग स्थिर है। इसलिए कृषि को बढ़ाने के लिए भूमि की सीमित मात्रा के साथ श्रम तथा पूंजी का अधिक प्रयोग किया जायेगा, परिणामस्वरूप, एक बिन्दु के बाद, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा। इसी प्रकार एक उद्योग में यदि किसी मशीन या कच्चे माल की कमी है तो इस सीमित उत्पादक साधन के साथ, अन्य साधनों की अधिक मात्रा के प्रयोग से उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा। किसी उत्पादक साधन की सीमितता (scarcity) उसकी पूर्ति में कमी के कारण हो सकती है या उस साधन को एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित करने की बहुत ऊंची लागत के कारण हो सकती है।

11 अनुकूलतम संयोग के आगे जाने का एक कारण यह हो सकता है कि उद्योग विशेष में नयी फर्मों का प्रवेश अत्यधिक लागत (high cost) के कारण कठिन हो। जब नयी फर्मों का प्रवेश कठिन है तो उत्पादन में वृद्धि वर्तमान फर्मों द्वारा ही की जायेगी। ऐसी स्थिति में वर्तमान फर्मों को अपने 'अनुकूलतम आकार' से आगे जाना पड़ेगा और इसलिए सीमान्त लागत तथा औसत लागत दोनों बढ़ेंगी अर्थात उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा।

12 "A moment's reflection will show that what the Law of Diminishing Returns really states is that there is a limit to the extent to which one Factor of production can be substituted

७. नियम का क्षेत्र (Scope of the Law)

मार्शल के अनुसार, यह नियम केवल कृषि तथा भूमि से निकालने वाले व्यवसायों (extractive industries), जैसे, खान खोदना, मछली पकड़ना, मकान बनाना, इत्यादि में ही लागू होता है, निर्माण उद्योगों (manufacturing industries) में नहीं। परन्तु यह विचारधारा उचित नहीं है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रों में लागू होता है। जब भी एक या एक से अधिक उत्पत्ति के साधन स्थिर होते हैं और अन्य साधन परिवर्तनशील रहते हैं तो अनुकूलतम संयोग के बाद से यह नियम लागू होगा, चाहे वह कृषि हो या उद्योग या उत्पादन का कोई अन्य क्षेत्र।

८. उत्पत्ति ह्रास नियम के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion)

(i) यह नियम उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है।

(ii) यद्यपि उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम दो भिन्न स्थितियों (situations) में लागू होते हैं, परन्तु ये एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति स्थिरता नियम, उत्पत्ति ह्रास नियम की अस्थायी अवस्थाएँ (temporary phases) हैं।

(iii) यदि एक या अधिक उत्पत्ति के साधन स्थिर रहते हैं और अन्य साधन परिवर्तनशील हैं तो यह नियम आवश्यक रूप से लागू होगा। श्रीमती जोन रोबिन्सन ने ठीक कहा है कि उत्पत्ति **ह्रास नियम एक 'तार्किक अनिवार्यता'** (logical necessity) है **और उत्पत्ति वृद्धि नियम एक 'अनुभवसिद्ध तथ्य'** (empirical fact) है।[13] उत्पत्ति वृद्धि नियम 'अनुभवसिद्ध' इसलिए है कि यह व्यवहार में बहुत-सी स्थितियों (cases) में क्रियाशील होता है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि यह नियम आवश्यक रूप से प्रत्येक क्षेत्र में लागू हो। उत्पत्ति ह्रास नियम एक 'तार्किक अनिवार्यता' इसलिए है कि यह उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी अवस्था में आवश्यक रूप से लागू होगा क्योंकि उत्पत्ति के साधन सीमित हैं और वे एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नहीं हैं।

उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को स्थगित किया जा सकता है
(THE WORKING OF THE LAW OF DIMINISHING RETURNS CAN BE POSTPONED)

कृषि, उद्योग, इत्यादि क्षेत्रों में इस नियम की क्रियाशीयता को कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है। वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रयोग, कृषि कला में सुधार, यातायात तथा संवाद-वहन के साधनों में विकास, उन्नत बीज, अच्छी खाद, इत्यादि के प्रयोग से कृषि के क्षेत्र में इस नियम की क्रियाशीलता को भविष्य के लिए स्थगित किया जा सकता है। इसी प्रकार उद्योगों में भी नये आविष्कारों के प्रयोग, उत्पादन की नयी रीतियों की खोज, इत्यादि से इस नियम की क्रियाशीलता को बहुत समय के लिए रोका जा सकता है। अमरीका, ब्रिटेन, यूरोप के उन्नतशील देशों, तथा रूस में उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप ही उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति को रोका जा सका है। यह ध्यान

---

for another, or, in other words, that the elasticity of substitution between factors is not finite. If this were not true it would be possible, when one factor of production is fixed in amount and the rest are in perfectly elastic supply, to produce part of the output with the aid of the fixed factor and then, when the optimum proportion between this and other factors was attained, to substitute some other factor for it and to increase output at constant cost." —Mrs. Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*, p. 330.

13 "The Law of Diminishing Returns,..is merely a matter of logical necessity. But the Law of Increasing Returns is a matter of empirical fact." —Mrs. Joan Robinson, *Op. Cit.*, p. 333.

रहे कि उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति को कुछ समय तक ही स्थगित किया जा सकता है परन्तु उसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता।

उत्पत्ति ह्रास नियम का महत्व
(SIGNIFICANCE OF THE LAW OF DIMINISHING RETURNS)

(१) उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थशास्त्र का एक आधारभूत (fundamental) नियम है। कृषि, खान खोदना, मछली पकड़ना, मकान बनाना, उद्योग-धन्धे, इत्यादि सभी क्षेत्र उत्पत्ति ह्रास प्रवृत्ति से प्रभावित होते हैं।

(२) यह नियम ही एक देश से दूसरे देश में जनसंख्या के प्रवास (migration) के लिए उत्तरदायी है। एक ओर भूमि पर जनसंख्या का दबाव तथा दूसरी ओर उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण भूमि से अधिक उत्पादन न मिल सकने के कारण ही एक देश से दूसरे देश को जनसंख्या का प्रवास हुआ है।

(३) माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त इसी नियम पर आधारित है। माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त बताता है कि जनसंख्या खाद्यान्नों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ती है; खाद्यान्नों के धीमी गति से बढ़ने का कारण है कि खाद्यान्नों के उत्पादन पर उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

(४) रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है। गहरी खेती में जब भूमि के एक दिये हुए टुकड़े पर श्रम तथा पूंजी की अधिकाधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो पहले की इकाइयों की अपेक्षा बाद की इकाइयों की उत्पत्ति घटती है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। सीमान्त इकाई से पहले की इकाइयों को जो बचत प्राप्त होती है उसको रिकार्डो ने लगान कहा। स्पष्ट है, यह लगान उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण ही प्राप्त होता है। विस्तृत खेती में जो बचत श्रेष्ठ भूमियों को, निम्न कोटि की भूमियों के ऊपर प्राप्त होती है, उसे रिकार्डो ने लगान कहा; परन्तु निम्न कोटि की भूमियों को जोत में लाने का कारण उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता है।

(५) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (marginal productivity theory), जिसके अनुसार उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार दिया जाता है, भी उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता पर आधारित है।

(६) किसी देश या क्षेत्र (region) में लोगों का जीवन स्तर इस नियम द्वारा प्रभावित होता है। किसी देश में, यदि जनसंख्या अन्य साधनों (भूमि, पूंजी, टेक्नोलॉजी) की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ती है, तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होगा और लोगों का जीवन स्तर नीचा हो जायेगा। इसके विपरीत, यदि पूंजी तथा टेक्नोलाजी इत्यादि, जनसंख्या की अपेक्षा, तीव्र गति से बढ़ते हैं तो उत्पत्ति वृद्धि नियम (जो कि उत्पत्ति ह्रास नियम की एक अवस्था है) लागू होगा और जीवन स्तर ऊंचा होगा।

(७) यह नियम बहुत से आविष्कारों के लिए उत्तरदायी है। बहुत से आविष्कार तथा उत्पत्ति की नयी रीतियों की खोज इस नियम की क्रियाशीलता को स्थगित करने के लिए ही की गयी है। इस नियम की प्रवृत्ति को लम्बे समय तक रोकने के लिए आज भी मनुष्य नयी खोजों के लिए प्रयत्नशील है।

उत्पत्ति ह्रास नियम के सम्बन्ध में मार्शल के दृष्टिकोण की पूर्ण विवेचना (FULL DISCUSSION OF MARSHALL'S VIEW ON THE LAW OF DIMINISHING RETURNS)

प्राक्कथन (Introduction)—उत्पत्ति के नियम यह बताते हैं कि साधनों की मात्रा में वृद्धि करने से किस अनुपात में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होगी। यदि साधनों के वृद्धि करने के अनुपात से कम उत्पादन बढ़ता है तो इसे उत्पत्ति ह्रास नियम कहते हैं।

मार्शल द्वारा नियम का कथन (Statement of the law by Marshall)—मार्शल ने इस नियम की परिभाषा इस प्रकार दी है—"यदि कृषि कला में उन्नति न हो तो भूमि को जोतने के लिए लगायी गयी श्रम तथा पूँजी की मात्रा में वृद्धि करने से कुल उपज में, सामान्यतया, अनुपात से कम वृद्धि होती है।"[14]

व्याख्या (Explanation)—परिभाषा से स्पष्ट है कि मार्शल ने इस नियम की चर्चा कृषि के प्रसंग में की। यदि भूमि के एक दिये हुए टुकड़े पर श्रम तथा पूँजी की मात्राओं में वृद्धि की जाय तो एक सीमा के बाद श्रम तथा पूँजी की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त उत्पादन (अर्थात् सीमान्त उत्पादन) घटेगा। दूसरे शब्दों में, कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ेगा या कुल उत्पादन, श्रम तथा पूँजी के लगाने की अपेक्षा, कम अनुपात में बढ़ेगा।

उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Example and diagrammatic presentation)—मार्शल द्वारा प्रतिपादित उत्पत्ति ह्रास नियम को हम निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। माना कि १० एकड़ का एक भूमि का टुकड़ा दिया हुआ है जिस पर श्रम तथा पूँजी का प्रयोग करके गेहूँ की खेती की जाती है। माना कि श्रम तथा पूँजी की एक इकाई की लागत १०० रु० है। श्रम तथा पूँजी की विभिन्न इकाइयों के प्रयोग से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपज तथा कुल उपज निम्न तालिका में दिखायी गयी है :

श्रम तथा पूँजी की मात्रा	कुल उत्पादन (मैट्रिक टनों में)	सीमान्त उत्पादन (मैट्रिक टनों में)	विवरण (Remarks)	कुल लागत (रुपये में)	औसत लागत (रु. में)	विवरण (Remarks)
१	५०	५०		१००	२	लागत ह्रास नियम
२	११०	६०	उत्पत्ति वृद्धि नियम	२००	१·८	
३	१९०	८०		३००	१·५	लागत स्थिरता नियम
४	२७०	८०	उत्पत्ति स्थिरता नियम	४००	१·४८	(लागत लगभग समान है)
५	३३०	६०		५००	१·५	
६	३७०	४०		६००	१·६	
७	३९०	२०	उत्पत्ति ह्रास नियम	७००	१·८	लागत वृद्धि नियम
८	३९५	५		८००	२·०	

उदाहरण से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में श्रम तथा पूँजी की इकाइयों (३ इकाइयों तक) के लगाने से सीमान्त उत्पादन (marginal production) बढ़ता है अर्थात कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ता है, इस अवस्था में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है। तत्पश्चात्, श्रम तथा पूँजी की चौथी इकाई लगाने से सीमान्त उत्पादन स्थिर रहता है। इस अवस्था में 'उत्पत्ति स्थिरता नियम'

---

14 "An increase in the capital and labour applied in the cultivation of land causes in general a less than proportionate increase in the amount of produce raised, unless it happens to coincide with an improvement in the arts of agriculture.
—Marshall, *Principle of Economics*, p. 125

लागू होता है। इसके बाद (अर्थात् ५वीं इकाई में) श्रम तथा पूँजी की अधिक इकाइयों के प्रयोग से सीमान्त उत्पादन घटता है अर्थात् कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है, इस अवस्था में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। स्पष्ट है कि एक सीमा या एक विन्दु के बाद से ही उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

उत्पत्ति ह्रास नियम को हम चित्र नं० ८४ द्वारा स्पष्ट कर कर सकते हैं।

चित्र—८४

नियम तथा लागत (The Law and Cost)

श्रम तथा पूँजी की इकाइयों के प्रयोग से कुल उत्पादन अनुपात से अधिक बढ़ता है इसलिए लागत घटती है, इसलिए इस अवस्था को 'लागत ह्रास नियम' (Law of Decreasing Cost) कहते हैं। कुछ समय के लिए लागत लगभग स्थिर रहती है, इसलिए इस व्यवस्था को 'लागत स्थिरता नियम' (Law of Constant Cost) कहते हैं। यदि श्रम तथा पूँजी की और अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो कुल उत्पादन अनुपात से कम बढ़ता है, इसलिए लागत बढ़ने लगती है, इस स्थिति को 'लागत वृद्धि नियम' (Law of Increasing Cost) कहते हैं; अतः 'उत्पत्ति ह्रास नियम' को 'लागत वृद्धि नियम' भी कहते हैं। यह ऊपर दिये हुए उदाहरण से स्पष्ट होती है।
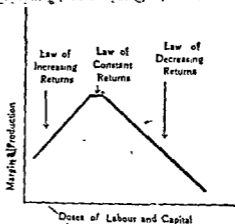
Law of Decreasing Cost — Law of Constant Cost — Law of Increasing Cost

Average Cost

Doses of Labour and Capital

चित्र—८५

'लागत वृद्धि नियम' को चित्र नं० ८५ द्वारा स्पष्ट किया गया है।
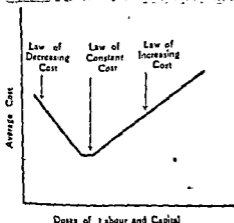
नियम की सीमाएँ (Limitations of the Law)

मार्शल की परिभाषा निम्न दो मान्यताओं (assumptions) या सीमाओं को बताती है :

(१) सामान्यतया; इसका अर्थ है एक सीमा या एक बिन्दु के बाद से ही प्रायः यह नियम लागू होता है, प्रारम्भ में उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति लागू हो सकती है। (२) यदि कृषि कला में सुधार या उन्नति न हो। इसका अर्थ है कि यदि कृषि कला में उन्नति होती रहती है तो इस नियम की प्रवृत्ति को भविष्य में लम्बे समय तक स्थगित किया जा सकता है। अतः यह नियम तभी लागू होगा जबकि कृषि कला में सुधार न हो।

यहाँ पर एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि नियम का सम्बन्ध केवल उत्पादन की मात्रा से है न कि उसके मूल्य (value or price) से। उत्पत्ति ह्रास नियम तो केवल यह बताता है कि एक सीमा के बाद से उत्पादन की मात्रा में ह्रास होने लगता है।

नियम के लागू होने के कारण (Causes of the Operation of the Law)

मार्शल के अनुसार, उत्पत्ति ह्रास नियम भूमि या कृषि में ही लागू होता है; इसके लागू होने का मुख्य कारण यह है कि कृषि में प्रकृति का हाथ प्रधान होता है। भूमि प्रकृति द्वारा दी हुई है, उसकी पूर्ति सीमित होती है, श्रम तथा पूंजी का भूमि पर प्रयोग करते जाने से एक स्थान पर अन्य साधनों का भूमि के साथ मिलने का अनुकूलतम अनुपात स्थापित हो जाता है; इसके बाद और अधिक श्रम तथा पूंजी का प्रयोग करने से अनुकूलतम अनुपात भंग हो जाता है और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगता है। कृषि में प्रकृति की प्रधानता इस बात से स्पष्ट होती है कि प्राकृतिक बातें, जैसे ऋतु परिवर्तन, अत्यधिक वर्षा, सूखा, टिड्डी दलों का आक्रमण, आँधी, तूफान, ओले इत्यादि कृषि उत्पादन को कम करते हैं, कृषि उत्पादन में लम्बा समय लगता है तथा श्रम विभाजन की सम्भावना कम रहती है। मार्शल के अनुसार, उपर्युक्त प्राकृतिक कारणों के परिणामस्वरूप यह नियम कृषि में लागू होता है।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह नियम इसलिए लागू नहीं होता कि कृषि में प्रकृति की प्रधानता होती है बल्कि इसलिए लागू होता है कि उत्पत्ति का एक साधन (अर्थात् भूमि) स्थिर या सीमित रह जाती है। जब भी एक साधन को स्थिर रखकर, अन्य साधनों को बढ़ाया जाता है, तो एक सीमा के बाद, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा चाहे वह कृषि हो या उद्योग या उत्पादन का कोई अन्य क्षेत्र।

नियम का क्षेत्र (Scope of the Law)

मार्शल के अनुसार, यह नियम केवल कृषि तथा भूमि से पदार्थ निकालने वाले व्यवसायों (जैसे, मछली पकड़ना, खान खोदना, इत्यादि) में ही लागू होता है।

कृषि में—यदि भूमि के एक दिये हुए टुकड़े पर श्रम तथा पूंजी की उत्तरोत्तर इकाइयां लगायी जाती हैं तो एक सीमा के बाद सीमान्त उत्पादन घटने लगेगा अर्थात् कुल उत्पादन श्रम और पूंजी के लगाने के अनुपात से कम बढ़ेगा। यह विवरण नियम की क्रियाशीलता को गहरी खेती में बताता है। यह नियम विस्तृत खेती पर भी लागू होता है। विस्तृत खेती में भूमि के क्षेत्रफल को बढ़ाया जाता है। श्रम तथा पूंजी की समान मात्रा लगाने से निम्नकोटि की भूमियों से कम उत्पादन मिलता जाता है और इस प्रकार विस्तृत खेती में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। किसान उस स्थान पर खेती करना बन्द कर देगा जहाँ पर भूमि से प्राप्त उत्पादन से उपलब्ध आय उस पर लगाये गये श्रम तथा पूंजी की लागत के बराबर हो जाती है।

मछली उद्योग में—यदि तालाब तथा नदियों से मछलियों के पकड़ने के लिए श्रम तथा पूंजी की उत्तरोत्तर इकाइयों का प्रयोग किया जाता है, तो इसमें मछलियों की पूर्ति कम होती जायेगी और एक सीमा के बाद मछलियों की पकड़ (catch) कम होने लगेगी अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा। इसी प्रकार एक सीमा के बाद समुद्र से मछली पकड़ने में भी यह नियम लागू होगा।

खानों में—खान खोदने में जैसे-जैसे श्रम तथा पूंजी की उत्तरोत्तर इकाइयों का प्रयोग किया जायेगा तो प्रारम्भ में अनुपात से अधिक खनिज पदार्थ मिलेगा क्योंकि ऊपर की तहों (layers) में माल अधिक होगा तथा श्रम और पूंजी की लागत अपेक्षाकृत कम रहेगी। परन्तु जैसे-जैसे नीचे की तहों की खुदाई होती जायेगी वैसे-वैसे खनिज पदार्थ की मात्रा कम निकलेगी, उसको खोदने का खर्चा अपेक्षाकृत अधिक बढ़ता जायेगा (जैसे; रोशनी का अधिक प्रबन्ध करना होगा, माल को ऊपर

तक जाने का खर्चा बढ़ता जायेगा, इत्यादि)। अतः खानों में भी एक सीमा के बाद से उत्पत्ति ह्रास नियम या लागत वृद्धि नियम लागू होता है।

मिट्टी के बर्तन बनाने में—जितने अधिक मिट्टी के बर्तन बनाये जायेंगे, उतनी अधिक मिट्टी खोदनी पड़ेगी, जितनी अधिक गहराई से मिट्टी खोदी जायेगी तो श्रम तथा पूँजी की लागत अधिकाधिक होती जायेगी, उत्पादन कम होगा और उत्पत्ति ह्रास नियम (या लागत वृद्धि नियम) लागू होने लगेगा।

मकानों तथा दुकानों के निर्माण में—यदि एक मकान या दुकान को कई मंजिल तक बनाया जाना है तो जैसे-जैसे ऊपर की मंजिलें बनेंगी, वैसे-वैसे श्रम तथा पूँजी की लागत बहुत अधिक होती जायेगी क्योंकि सामग्री को ऊँचा ढोने में लागत बढ़ेगी, जबकि इन मकानों की ऊपर की मंजिलों से प्रतिफल बहुत कम मिलेगा। इस प्रकार से इस क्षेत्र में भी उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

उद्योगों में—आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह नियम केवल कृषि तथा भूमि से पदार्थ निकालने वाले व्यवसायों में ही नहीं, बल्कि निर्माण उद्योगों में भी लागू होता है। निर्माण उद्योगों में किसी एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों की मात्राओं को बढ़ाने से, एक सीमा के बाद, यह नियम अवश्य लागू होगा।

मार्शल द्वारा प्रतिपादित उत्पत्ति ह्रास नियम के दोष—नियम के दो मुख्य दोष हैं :

(१) मार्शल के अनुसार यह नियम केवल कृषि तथा भूमि से पदार्थ निकालने वाले व्यवसायों में लागू होता है क्योंकि इनमें प्रकृति की प्रधानता होती है। परन्तु यह विचार गलत है। यह नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रों में लागू होता है।

(२) मार्शल ने केवल भूमि को ही स्थिर या सीमित माना तथा अन्य साधनों को परिवर्तनशील। परन्तु ऐसा मानना त्रुटिपूर्ण है क्योंकि अन्य कोई भी साधन सीमित या स्थिर हो सकता है तथा भूमि को परिवर्तित किया जा सकता है। जब भी किसी एक साधन को स्थिर रख कर अन्य साधनों को बढ़ाया जायेगा तो, एक सीमा के बाद, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होगा चाहे कृषि हो या उद्योग या उत्पादन का कोई अन्य क्षेत्र।

निष्कर्ष

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, उत्पत्ति ह्रास नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रों में समान रूप से लागू होता है: उन्होंने इस नियम को अधिक व्यापक रूप दिया है। . . . . [illegible] यकता के कारण, इसको 'परिवर्तनशील अनुपातों का [illegible]' कहते हैं।

उत्पत्ति वृद्धि नियम या वर्द्धमान प्रतिफल नियम
(LAW OF INCREASING RETURNS)

१. प्राक्कथन (Introductory)

उत्पत्ति के नियम यह बताते हैं कि उत्पत्ति के साधनों की मात्रा में वृद्धि करने से किस अनुपात में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होगी। एक या एक से अधिक साधनों को स्थिर रख कर अन्य साधनों की मात्रा को बढ़ाया जाय, और यदि परिवर्तनशील साधनों में वृद्धि करने के अनुपात से अधिक उत्पादन बढ़े तो इसे उत्पत्ति वृद्धि नियम कहेंगे।

२. उत्पत्ति वृद्धि नियम का कथन (Statement of the Law of Increasing Returns)

मार्शल के अनुसार, "श्रम तथा पूंजी में वृद्धि सामान्यतया संगठन को अधिक श्रेष्ठ बनाती है जिसके परिणामस्वरूप श्रम तथा पूंजी की कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है।"[15]

मार्शल के अनुसार उत्पत्ति वृद्धि नियम केवल निर्माण उद्योगों में ही लागू होता है। परन्तु यह विचार गलत है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह नियम कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के अन्य सभी क्षेत्रों में लागू होता है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों में से श्रीमती जॉन रोबिन्सन की परिभाषा बहुत अच्छी मानी जाती है। **श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार** "जब किसी प्रयोग में किसी उत्पत्ति के साधन की अधिक मात्रा लगायी जाती है, तो प्राय: संगठन में सुधार हो जाता है जिससे उत्पत्ति के साधनों की प्राकृतिक इकाइयाँ (मनुष्य, एकड़ या द्राव्यिक पूंजी) अधिक कुशल हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में उत्पादन को बढ़ाने के लिए साधनों की भौतिक मात्रा में आनुपातिक वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं होती।"[16]

श्रीमती जॉन रोबिन्सन आगे लिखती हैं : यह नियम या प्रवृत्ति, उत्पत्ति ह्रास नियम की भाँति, उत्पत्ति के सभी साधनों के सम्बन्ध में समान रूप से लागू हो सकती है, परन्तु उत्पत्ति ह्रास नियम के विपरीत, यह प्रत्येक दशा में लागू नहीं होती है। कभी साधनों की वृद्धि से कुशलता में सुधार होंगे और कभी नहीं भी होंगे।[17]

३. उत्पत्ति वृद्धि नियम की व्याख्या (Explanation of the Law of Increasing Returns)

उत्पत्ति वृद्धि नियम के पीछे मुख्य बात यह है कि साधनों की अधिक इकाइयों के प्रयोग से संगठन में सुधार होते हैं, साधनों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, बड़े पैमाने की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं, स्थिर तथा अविभाज्य साधनों (indivisible factors) का प्रयोग भली भाँति होने लगता है। इन सब के परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादन बढ़ता है, अर्थात् कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ता है, तथा औसत उत्पादन भी बढ़ता है। जब साधनों के मिलने का अनुपात अनुकूलतम हो जाता है तो औसत उत्पादन अधिकतम हो जाता है; इसके बाद यदि साधनों की मात्रा को और बढ़ाया जाता है तो सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों गिरने लगते हैं अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है।

इस नियम को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है :

---

15 "An increase of labour and capital leads generally to improved organisation, which increases the efficiency of the work of labour and capital."
—Marshall : *Principles of Economics*, p. 265.

16 "When an increased amount of any factor of production is devoted to a certain use, it is often the case the improvements in organisation can be introduced which will make natural units of the factors (men, acres or money capital) more efficient, so that an increase in output does not require a proportionate increase in the physical amount of factors."

17 Mrs. Joan Robinson further adds, "This law, or rather tendency, like the Law of Diminishing Returns, may apply equally to all the factors of production, but unlike the Law of Diminishing Returns, it does not apply in every case. Sometimes an increase of the factors will lead to improvements in efficiency, and sometimes it will not."
—Mrs. Joan Robinson : *Economics of Imperfect Competition*, pp. 333-34.

परिवर्तनशील साधन (श्रम) की इकाइयाँ	कुल उत्पादन (Total Product)	सीमान्त उत्पादन (Marginal Product)	औसत उत्पादन (Average Product)
१	१०	१०	१०
२	२५	१५	१२.५
३	४७	२२	२३.५
४	७७	३०	३८.५
५	११२	३५	५६

उदाहरण से स्पष्ट है कि अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन श्रम की इकाइयों को बढ़ाने से सीमान्त उत्पादन (MP) तथा औसत उत्पादन (AP) बढ़ते हैं और कुल उत्पादन बढ़ती हुई गति से बढ़ता है। नियम को चित्र नं० ८६ द्वारा बताया जाता है।

चित्र—८६

४. उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा लागत (The Law of Increasing Returns and Cost)

लागत की दृष्टि से इस नियम को 'लागत ह्रास नियम' (Law of Decreasing Cost) कहा जाता है। चूँकि जिस अनुपात में परिवर्तनशील साधन या साधनों को बढ़ाया जाता है उससे अधिक उत्पादन प्राप्त होता है, इसलिए सीमान्त लागत (marginal cost) तथा औसत लागत (average cost) घटती हैं। इन लागतों के घटने के कारण ही इस नियम को लागत ह्रास नियम कहते हैं। इसको हम चित्र नं० ८७ द्वारा स्पष्ट करते हैं।
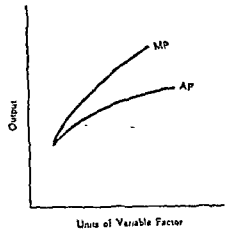
चित्र—८७

५. उत्पत्ति वृद्धि नियम की सीमाएँ (Limitations of the Law)

(i) यह आवश्यक नहीं है कि उत्पत्ति वृद्धि नियम प्रत्येक दशा में आवश्यक रूप से लागू हो। यदि परिवर्तनशील साधन की इकाई, स्थिर साधन की अपेक्षा छोटी है, तो प्रारम्भिक दशा में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा अन्यथा प्रारम्भ से ही उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक दशा में यह आवश्यक नहीं है कि परिवर्तनशील साधन या साधनों की मात्रा में वृद्धि करने से संगठन में सुधार हो, साधनों की कार्यक्षमता में वृद्धि हो और उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू हो।
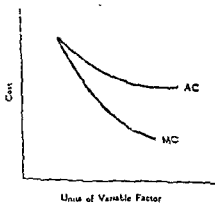
(ii) यह प्रश्न उठता है कि क्या उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होने के बाद वह अनिश्चित समय तक क्रियाशील रहेगा ? इसका उत्तर स्पष्ट 'ना' (No) है। जब तक साधनों के मिलने के अनुकूलतम अनुपात की ओर अग्रसर किया जाता है तब तक यह नियम लागू होगा। जब एक बार अनुकूलतम अनुपात स्थापित हो जाता है और इसके बाद यदि परिवर्तनशील साधन की मात्रा को और बढ़ाया जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जायेगा।

६. उत्पत्ति वृद्धि नियम के क्रियाशील होने की दशाएँ या कारण (Conditions or Causes of Its Operation)

नियम के लागू होने के कारण निम्नलिखित हैं :

(i) साधनों की अविभाजिकता (Indivisibility of factors of production)—श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार, नियम के क्रियाशील होने का मुख्य कारण है उत्पत्ति के साधनों की अविभाजिकता। अविभाजिकता का अर्थ है कि साधनों को प्रायः हम छोटे-छोटे टुकड़ों में नहीं बाँट सकते हैं। मैनेजर, भूमि, मशीन-औजारों के रूप में पूंजी, इत्यादि साधन एक सीमा तक अविभाज्य हैं। किसी भी एक अविभाज्य साधन के साथ प्रारम्भ में यदि परिवर्तनशील साधन या साधनों की कम मात्रा का प्रयोग किया जाता है तो अविभाज्य साधन का भलीभाँति प्रयोग नहीं होता है। परन्तु परिवर्तनशील साधन की मात्रा के एक सीमा तक बढ़ाने से अविभाज्य साधन का प्रयोग अच्छी प्रकार से होने लगता है, उत्पादन अनुपात से अधिक बढ़ता है और लागत घटती है, अर्थात उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।[18]

(ii) पर्याप्त मात्रा में साधनों की पूर्ति की प्राप्यता (Adequate availability of the supply of factors)—यदि सभी आवश्यक साधनों की पूर्ति आसानी से और पर्याप्त मात्रा में की जा सकती है तथा प्रत्येक साधन के अनुपात में कमी या वृद्धि की जा सकती है तो परिवर्तनशील अनुपातों का नियम लागू होगा और एक सीमा तक अनुपात से अधिक उत्पादन बढ़ेगा तथा लागत गिरेगी, अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा।

(iii) बड़े पैमाने की उत्पत्ति की बचतें (Economics of large scale production)—कुछ उद्योगों में उत्पत्ति के साधनों को बढ़ाने से बड़े पैमाने की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं जिसके कारण एक सीमा तक उत्पादन अनुपात से अधिक बढ़ता है, लागत घटती है और उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

यद्यपि यह नियम उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है परन्तु कृषि की अपेक्षा, उद्योगों में यह विशेष रूप से लागू होता है। इसका कारण है कि उद्योग में सभी साधनों को आसानी से

घटाया-बढ़ाया जा सकता है (जबकि कृषि में भूमि सीमित रहती है), श्रम विभाजन तथा बड़े पैमाने की बचतें आसानी से प्राप्त होती हैं तथा उद्योगों में अनुसन्धान तथा परीक्षण की अधिक सुविधाएँ रहती हैं।

७. नियम का क्षेत्र (Scope of the Law)

मार्शल के अनुसार, यह नियम केवल निर्माण उद्योगों में ही लागू होता है क्योंकि उद्योगों में मनुष्य का हाथ, (प्रकृति की अपेक्षा), अधिक होता है। परन्तु यह विचारधारा गलत है। नियम के लागू होने का कारण मनुष्य के हाथ की प्रधानता नहीं है बल्कि अन्य कारण हैं जिनका अध्ययन हम ऊपर कर चुके हैं। जब तक उत्पत्ति के साधनों के अनुकूलतम अनुपात की स्थापना की ओर अग्रसर (move) किया जाता है, यह नियम उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होगा।

८. उत्पत्ति वृद्धि तथा उत्पत्ति ह्रास नियमों की तुलना (Comparison of the Law of Increasing and Diminishing Returns)

(i) यदि एक साधन के अधिक प्रयोग करने से कुशलता बढ़ती है तब उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है; यदि साधन के अधिक प्रयोग से कुशलता घटती है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति ह्रास नियम तब क्रियाशील होता है जबकि उत्पत्ति के साधन गलत अनुपातों में मिला दिये जाते हैं; उत्पत्ति ह्रास नियम साधनों के गलत अनुपातों के परिणामों को बताता है। उत्पत्ति वृद्धि नियम तब लागू होता है जबकि एक साधन को बढ़ाने से साधनों के अनुपातों में सुधार होता है और पैमाने की बचतें (economies of scale) प्राप्त होती हैं।

(ii) उत्पत्ति वृद्धि नियम तब लागू होगा जबकि हम 'अनुकूलतम' की ओर अग्रसर होते हैं; उत्पत्ति ह्रास नियम तब लागू होता है जबकि हम अनुकूलतम के आगे (beyond) जाते हैं।

९. उत्पत्ति वृद्धि नियम के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम एक ही प्रकार के तत्वों (same set of facts) से सम्बन्धित नहीं होते; वे भिन्न परिस्थितियों (different situations) में लागू होते हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी वे घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में एक सीमा तक उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, अनुकूलतम की अवस्था में उत्पत्ति स्थिरता नियम लागू होता है, तत्पश्चात् उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति वृद्धि नियम, उत्पत्ति ह्रास नियम की एक अस्थायी अवस्था है; अन्त में उत्पत्ति ह्रास नियम आवश्यक रूप से लागू होता है।

क्या उत्पत्ति वृद्धि नियम पूर्ण प्रतियोगिता के अनुरूप होता है ?
(IS INCREASING RETURNS COMPATIBLE WITH PERFECT COMPETITION ?)

वास्तव में, 'बढ़ते हुये प्रतिफल' (increasing returns) तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' आपस में मेल नहीं खाते; बढ़ते हुये प्रतिफल के क्रियाशील रहने से पूर्ण प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है। इसका कारण इस प्रकार है : किसी उद्योग में सभी फर्मों को बढ़ते हुये प्रतिफल एक साथ प्राप्त नहीं होते; पहले एक फर्म या कुछ फर्में बढ़ते हुये प्रतिफल को प्राप्त करने में सफल होती हैं; अर्थात एक फर्म या कुछ फर्मों को, अपने विस्तार के साथ, बचतें प्राप्त होती हैं तथा उस एक फर्म या उन कुछ फर्मों की उत्पादन लागत कम होती जाती है। यह एक विकासमान फर्म या ये कुछ विकासमान फर्में, लागत में ह्रास के परिणामस्वरूप अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में नहीं टिकने देतीं; धीरे-धीरे फर्मों की संख्या कम होती जाती है और अल्पाधिकार (oligopoly) या एकाधिकार की

उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार 'बढ़ते हुये प्रतिफल' तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' दोनों का सहअस्तित्व (co-existence) नहीं हो सकता।

उपर्युक्त बात को **प्रो० सेम्युलसन** (Samuelson) इस प्रकार व्यक्त करते हैं—"फर्मों की लगातार गिरती हुई लागतों के अन्तर्गत, उनमें से एक या कुछ फर्में अपनी उत्पादन-मात्राओं को इस प्रकार बढ़ायेंगी ताकि बाजार में उद्योग की कुल उत्पादन-मात्रा में से उनकी उत्पादन-मात्राएँ एक महत्त्वपूर्ण भाग हो जाएँ। तब हमें इस प्रकार की स्थितियाँ प्राप्त हो सकती हैं: (१) एक अकेला एकाधिकारी जो कि उद्योग पर प्रभुत्व रखेगा; (२) थोड़े बड़े विक्रेता जो कि संयुक्त रूप से उद्योग पर प्रभुत्व रखेंगे, इनको 'अल्पाधिकारी' (oligopolists) कहा जाता है; या (२) प्रतियोगिता में किसी प्रकार की अपूर्णता, जो कि स्थायी रीति से या अन्तर्विरामी (intermittent) कीमत-युद्धों की एक शृंखलाओं के सम्बन्ध में, अर्थशास्त्रियों के पूर्ण प्रतियोगिता के मॉडल (model), जिसमें कि किसी भी फर्म का उद्योग-कीमत पर कोई नियन्त्रण नहीं होता, से एक महत्त्वपूर्ण अन्तर या विचलन (departure) को बताता है।[19]

उत्पत्ति स्थिरता नियम
(LAW OF CONSTANT RETURNS)

१. प्राक्कथन

उत्पत्ति के नियम यह बताते हैं कि साधनों की मात्रा में वृद्धि करने से किस अनुपात में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होगी। 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम के बीच अन्तःकालीन स्थिति (transitional stage) में क्रियाशील होता है। **चाहे यह नियम कितने ही थोड़े समय के लिए क्रियाशील रहे परन्तु यह उस स्थिति में लागू होता है जहाँ पर उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति समाप्त होती है और उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति प्रारम्भ नहीं हो पाती है।** इस प्रकार से यह नियम उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम के बीच एक कड़ी का कार्य करता है।

२. उत्पत्ति स्थिरता नियम का कथन तथा व्याख्या (Statement and Explanation of the Law)

यदि एक या एक से अधिक साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों को बढ़ाया जाता है तो प्रारम्भ में बढ़ती हुई उत्पत्ति प्राप्त होगी। **उत्पादन के साधनों का अधिक प्रयोग करने तथा उत्पादन को बढ़ाते जाने से जब बड़े पैमाने की उत्पत्ति की सब बचतें समाप्त हो जाती हैं और वस्तु की प्रति इकाई लागत निम्नतम हो जाती है तो कहा जाता है कि उत्पादन 'अनुकूलतम स्तर' (optimum scale) पर हो रहा है; यदि इसी स्थिति में उत्पादन चलता रहता है तो 'उत्पत्ति स्थिरता नियम'** (Law of Constant Returns) **या 'स्थिर लागत नियम'** (Law of Constant Costs) **लागू होता है।** यदि इस अवस्था में, जैसे मशीन इत्यादि को स्थिर रखकर, परिवर्तनशील साधन (श्रम) की एक और इकाई बढ़ायी जाती है तो 'अनुकूलतम स्तर' भंग हो जायेगा और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगेगा। यदि इस अवस्था में [illegible]

उनमे कोई परिवर्तन नही किया जाता है तो उत्पादन स्थिर लागत (constant cost) पर जारी रहेगा।

माना कि इस अवस्था में ४ मशीन तथा ४०० श्रमिक मिलकर किसी वस्तु की १,००० इकाइयों का उत्पादन करते हैं और प्रति इकाई न्यूनतम लागत ५ रु० है। यदि इस स्थिति मे उत्पादन चलता रहता है तो कहा जायेगा कि 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' लागू हो रहा है। हम वस्तु की १,००० इकाइयों और उत्पादन कर सकते हैं यदि ४ मशीन तथा ४०० श्रमिक और लगाएँ। दूसरे शब्दों में, स्थिर लागत पर उत्पादन को अनिश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है यदि साधनों के वर्तमान संयोग (present set-up) को कई गुना किया जाये। इस उदाहरण मे यदि हम १,०२० इकाइयाँ उत्पन्न करना चाहें तो हमें किसी एक साधन की मात्रा को अधिक बढ़ाना होगा (क्योंकि वर्तमान संयोग को दुगना करने से कोई मतलब नहीं निकलेगा) और ऐसी स्थिति में स्थिर लागत पर यह बढ़ा हुआ उत्पादन प्राप्त नहीं होगा।

साधारण उत्पत्ति के नियमों में प्रायः एक साधन को परिवर्तनशील रखकर अन्य सभी साधनों को स्थिर रखा जाता है। यदि हम 'अनुकूलतम स्तर' पर समान लागत पर अधिक उत्पादन करना चाहते हैं तो हमें सभी उत्पत्ति के साधनों को समान अनुपात (same proportion) में बढ़ाना होगा। इसलिए 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' को एक दूसरी प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है। प्रो० स्टिगलर (Stigler) के शब्दों में, "जब सभी उत्पादक सेवाओं को एक दिये हुए अनुपात में बढ़ाया जाता है, तो उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है।"[20] इस परिभाषा में यह ध्यान देने की बात है कि इसमें किसी भी साधन को स्थिर नहीं रखा गया है, सभी साधनों को बढ़ाकर उसी अनुपात में उत्पादन प्राप्त किया जाता है। वास्तव में, ऐसी स्थिति को 'पैमाने का स्थिर उत्पादन नियम' (Law of Constant Returns to Scale) कहते हैं। अतः यह कहा जाता है कि अनुकूलतम बिन्दु पर उत्पादन 'स्थिरता प्रतिफल' (constant returns) तथा 'पैमाने का स्थिर प्रतिफल' (constant returns to scale) दोनों के अधीन होता है।[21]

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, कोई 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' (Law of Constant Returns) नहीं होता बल्कि केवल 'पैमाने का स्थिर उत्पादन नियम' (Law of Constant Returns to Scale) होता है।

उपर्युक्त विवरण को स्पष्ट रूप से समझने के लिए 'पैमाने का उत्पादन' या 'पैमाने का प्रतिफल' (returns to scale) को ठीक प्रकार से समझ लेना आवश्यक है। दीर्घकाल में सभी उत्पत्ति के साधनों को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। जब किसी फर्म द्वारा प्रयोग किये जाने वाले सभी साधनों की मात्राओं (प्लांट तथा मशीनरी को मिलाकर) मे परिवर्तन होता है तो हम कहते हैं कि 'उत्पादन का पैमाना' (scale of production) बदल गया है। यदि उत्पत्ति के सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढाया जाता है (माना कि सभी को दुगना कर दिया जाता है), तो उत्पादन (output) तीन प्रकार से प्रभावित हो सकता है—उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ सकता है, अधिक अनुपात में बढ सकता है या कम अनुपात मे बढ़ सकता है। यदि उत्पादन उसी अनुपात मे बढ़ता है जिसमें साधन बढ़ाये गये हैं, तो हम कहते हैं कि फर्म को 'पैमाने का स्थिर

20 "When all the productive services are increased in a given proportion, the product is increased in the same proportion." —Stigler : *The Theory of Price*, p. 129.

21 "Production at the optimum point is, therefore, subject to both constant returns and constant returns to scale."

उत्पादन' (constant returns to scale) प्राप्त होता है; यदि उत्पादन, साधनों की अपेक्षा, कम अनुपात से बढ़ता है, तो हम कहते हैं कि फर्म को **'पैमाने का घटता हुआ उत्पादन'** (decreasing returns to scale) प्राप्त होता है; और, यदि उत्पादन, साधनों की अपेक्षा, अधिक अनुपात में बढ़ता है, तो हम कहते हैं कि फर्म को **'पैमाने का बढ़ता हुआ उत्पादन'** (increasing returns to scale) प्राप्त होता है।

चित्र—८८
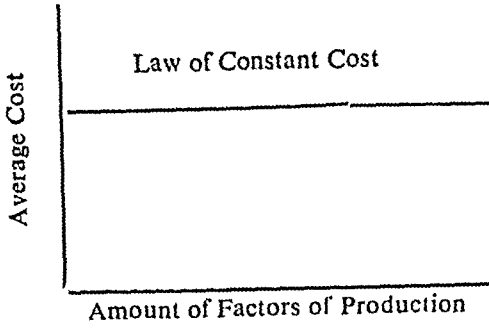
'पैमाने का स्थिर उत्पादन नियम' अर्थात् 'स्थिर लागत नियम' (law of constant cost) को चित्र नं० ८८ द्वारा व्यक्त किया जाता है।

जनसंख्या के सिद्धान्त
[THEORIES OF POPULATION]

प्राचीन समय से ही जनसंख्या की समस्या में अर्थशास्त्रियों ने रुचि दिखाई है। **वाणिज्यवादी अर्थशास्त्री** (Mercantilists) देश की आर्थिक प्रगति तथा शक्ति के लिए घनी या अधिक जनसंख्या का होना अच्छा समझते थे। **प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री** (Physiocrats) जनसंख्या की वृद्धि के विरुद्ध नहीं थे; वे 'प्राकृतिक व्यवस्था' (natural order) में विश्वास रखते थे, इसलिए प्राकृतिक रूप में यदि जनसंख्या घटती है या बढ़ती है तो वे उसे बुरा नहीं समझते थे। **एडम स्मिथ** (Adam Smith) जनसंख्या के एक पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं समझते थे क्योंकि उनके अनुसार, जनसंख्या माँग तथा पूर्ति के अनुसार अपने आपको समायोजित (adjust) कर लेती है। **माल्थस** (Malthus) से पहले इन प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने जनसंख्या के सम्बन्ध में किसी पूर्ण तथा निश्चित सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया। **माल्थस** प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने जनसंख्या के सिद्धान्त को एक निश्चित तथा पूर्ण रूप दिया। माल्थस के सिद्धान्त की आलोचना की गई और कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा जनसंख्या के एक नये सिद्धान्त का निर्माण किया गया जो **'अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त'** (Optimum Theory of Population) के नाम से विख्यात है। इस सिद्धान्त में भी कमियाँ पायी गयीं तथा कुछ अन्य सिद्धान्तों जैसे, **जनसंख्या का जैविकीय सिद्धान्त** (The Biological Theory of Population), **शुद्ध पुनरुत्पादन दर** (Net

Reproduction Rate) का सिद्धान्त तथा जनांकिकी परिवर्तन का सिद्धान्त (Theory o
Demographic Transition) इत्यादि का निर्माण किया गया। अब हम इन सिद्धान्तों क
विस्तृत अध्ययन करेंगे।

माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त
(MALTHUSIAN THEORY OF POPULATION)

प्राक्कथन (Introductory)

यद्यपि जनसंख्या की समस्या ने विद्वानों तथा अर्थशास्त्रियों का ध्यान बहुत पहले से आकर्षित किया है, परन्तु माल्थस प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने जनसंख्या के सिद्धान्त को एक निश्चित तथा पूर्ण रूप दिया। इस दृष्टि से माल्थस का नाम जनसंख्या के सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है
के पश्चात अपने विचारों को
नाम नहीं दिया गया था। स
नाम '*An Essay on the Pr*
माल्थस के विचारों का आधार माना जाता है।

माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की पृष्ठभूमि (Background of the Malthusian Theory o Population)

प्रथम, जिस समय माल्थस ने जनसंख्या के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उस समय सारा यूरोप नैपोलियन की लड़ाइयों की आग में जल रहा था, चारों तरफ मुसीबतें तथा गरीबी फैली हुई थी। इन लड़ाइयों ने खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुओं की बहुत कमी कर दी थी। एक ओर तो वस्तुओं की कमी के कारण 'आर्थिक असन्तुष्टि' (economic discontent) बहुत प्रबल हो रही थी और दूसरी ओर बेकारी तीव्र गति से बढ़ रही थी। दूसरे, औद्योगिक क्रान्ति अभी कठिनाई से आरम्भ ही हुई थी; जीवन-निर्वाह के साधनों में कोई विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखाई पड़ता था; परन्तु जनसंख्या में वृद्धि बड़ी तीव्र गति से हो रही थी। उपर्युक्त सब बातों ने माल्थस के 'जनसंख्या सिद्धान्त' के प्रतिपादन को प्रभावित किया। तीसरे, माल्थस की पुस्तक के प्रकाशन का तात्कालिक कारण गोडविन (Godwin) की पुस्तक '*An Enquiry into Political Justic*' का प्रकाशन था। गोडविन आशावादी होने के कारण मानव समाज का भविष्य बहुत उज्ज्वल समझते थे परन्तु माल्थस निराशावादी थे, अतः वे गोडविन के विचारों से सहमत नहीं थे परिणामस्वरूप माल्थस ने गोडविन की पुस्तक के उत्तर में अपनी पुस्तक लिखी; इसके कारण उन्होंने अपनी पुस्तक की भाषा प्रभावशील तथा कठोर रखी।

माल्थस के सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Malthusian Theory)

माल्थस अपने जनसंख्या के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय निम्न मान्यताओं को लेकर चले। (१) मनुष्य की प्रजनन शक्ति (fecundity) स्थिर रहती है। (२) जीवन-स्तर तथा जनसंख्या में सीधा सम्बन्ध होता है; अर्थात जीवन-स्तर बढ़ने पर जनसंख्या में वृद्धि होगी क्योंकि अधिक बच्चों का पालन-पोषण किया जा सकेगा। इसके विपरीत जीवन-स्तर में कमी होने पर जनसंख्या में कमी होगी।

माल्थस का जनसंख्या का नियम (Malthusian Law of Population)

माल्थस के जनसंख्या के नियम को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है :

---

1 पूरा नाम इस प्रकार है : "*An Essay on the Principle of Population as it Affects the Futu Improvement of Society.*"

"उत्पादन कलाओं की एक दी हुई स्थिति के अन्तर्गत, जनसंख्या जीवन-निर्वाह के साधनों से अधिक तीव्र गति से बढ़ने की प्रवृति दिखलाती है।" ("In a given state of the arts of production, population tends to outrun subsistence.")

माल्थस के जनसंख्या के नियम या सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Malthusian Law of Population or Theory of Population)

इस नियम की पूर्ण तथा विस्तृत व्याख्या के लिए **माल्थस के सिद्धान्त की मुख्य बातों** (main features) का विवरण नीचे दिया गया है :

(१) **खाद्यान्न तथा जनसंख्या की वृद्धि में सम्बन्ध**—(अ) खाद्यान्न की अपेक्षा जनसंख्या में तीव्र गति से बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। (ब) माल्थस ने इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए गणित का रूप दिया। उन्होंने बताया कि जनसंख्या 'ज्यामितिक वृद्धि' (Geometrical Progression) तथा खाद्यान्न 'अंकगणित वृद्धि' (Arithmetical Progression) के अनुसार बढ़ती है। ज्यामितिक वृद्धि का अर्थ है १, २, ४, ८, १६, ३२, इत्यादि तथा अंकगणित वृद्धि का अर्थ है १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, इत्यादि। परन्तु माल्थस के सिद्धान्त को शाब्दिक अर्थ में नहीं लेना चाहिए। उन्होंने गणितात्मक रूप केवल इस बात को समझाने के लिए दिया था **कि जनसंख्या की प्रवृत्ति, खाद्यान्न की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ने की होती है।** (स) मनुष्य की प्रजनन शक्ति बहुत तीव्र होती है और **यदि बाधाएँ न हों तो किसी देश की जनसंख्या प्रत्येक २५ वर्ष में दुगनी हो जायेगी,** जबकि खाद्यान्नों में वृद्धि इस अनुपात में नहीं होगी क्योंकि कृषि में शीघ्र ही उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है। (द) स्पष्ट है कि **माल्थस के सिद्धान्त का आधार उत्पत्ति ह्रास नियम** (Law of diminishing returns) है। भूमि सीमित है, उसकी पूर्ति (supply) को नहीं बढ़ाया जा सकता। यदि कृषि कला में कोई उन्नति नहीं होती तो भूमि पर अधिक पूंजी तथा श्रम का प्रयोग करने से सीमान्त उत्पादन में ह्रास होता जायेगा।

(२) **नैसर्गिक प्रतिबन्ध तथा माल्थूसियन चक्र** (Positive checks and Malthusian cycle)—जनसंख्या खाद्यान्न की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ती है, इसलिए प्रत्येक देश में कुछ समय बाद एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब खाद्यान्न की कमी हो जाती है। यह अति-जनसंख्या (over population) की स्थिति है। ऐसी स्थिति में प्रकृति बढ़ती हुई जनसंख्या पर रोक लगाती है, अर्थात अकाल, भयंकर बीमारियाँ, बाढ़, भूकम्प, युद्ध इत्यादि लागू होने लगते हैं और इनसे देश में बड़ी विपत्ति फैलती है तथा लाखों व्यक्तियों की असामयिक मृत्यु हो जाती है। प्रकृति द्वारा लगाए गये इन प्रतिबन्धों को माल्थस ने **'नैसर्गिक प्रतिबन्ध'** (positive checks) कहा। इन नैसर्गिक प्रतिबन्धों द्वारा जनसंख्या में कमी होती है और जनसंख्या का खाद्यान्न के साथ सन्तुलन (balance) स्थापित हो जाता है। परन्तु यह सन्तुलन बहुत थोड़े समय तक ही रहता है। मानव के बढ़ने की स्वाभाविक इच्छा (inherent urge) शीघ्र कार्य करने लगती है, जनसंख्या पुनः बढ़ कर खाद्यान्न की पूर्ति से अधिक हो जाती है; प्रकृति पुनः नैसर्गिक प्रतिबन्धों द्वारा बढ़ी जनसंख्या को कम करके उसका सन्तुलन खाद्यान्न के साथ स्थापित कर देती है। घटनाओं का यह चक्र

चित्र—८६
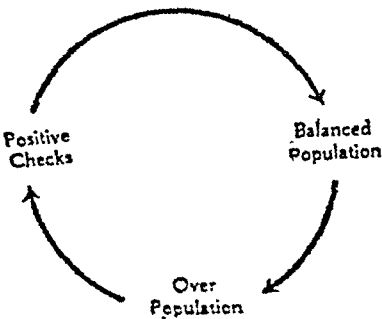
(cycle) चलता रहेगा; इसे 'माल्थूसियन चक्र' (Malthusian cycle) कहते हैं। इस 'माल्थूसियन चक्र' को चित्र नं० ८८ द्वारा स्पष्ट किया गया है।

निष्कर्ष—निवारक प्रतिबन्ध (Conclusion—Preventive checks)—घटनाओं के इस चक्र तथा नैसर्गिक प्रतिबन्धों के कष्टों से बचने के लिए माल्थस ने सुझाव दिया कि मनुष्य को स्वयं जनसंख्या पर रोक लगानी चाहिए। इसके लिए उन्होंने देर से शादी करने, संयम से रहने तथा अविवाहित या ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करने का सुझाव दिया। इन प्रतिबन्धों को माल्थस ने 'निवारक प्रतिबन्ध' (preventive checks) कहा। ध्यान रहे कि माल्थस ने सन्तान निग्रह के आधुनिक कृत्रिम साधनों के बारे में कुछ नहीं कहा, उनका निवारक प्रतिबन्धों से अर्थ केवल नैतिक संयम (moral restraints) से ही था; कृत्रिम साधनों के प्रयोग पर माल्थस के अनुयायियों, जो कि नव-माल्थसवादी (New Malthusians) कहलाते हैं, ने ही अधिक जोर दिया है।

माल्थस के सम्पूर्ण सिद्धान्त को हम संक्षेप में निम्न चार्ट (chart) द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं :
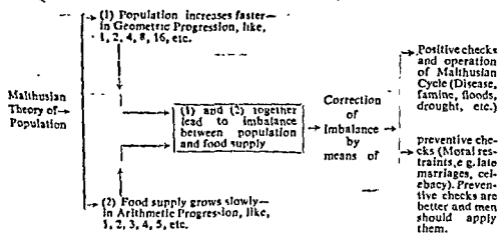
माल्थस के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Malthusian Theory of Population)

माल्थस के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं :

(१) मनुष्य की सन्तान-उत्पादन शक्ति (fecundity) स्थिर नहीं रहती—माल्थस ने इस जीवशास्त्रीय सिद्धान्त (biological theory) की उपेक्षा की कि सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य की सन्तान उत्पादन शक्ति कम होती है, स्थिर नहीं रहती।

(२) जीवन-स्तर ऊँचा होने के साथ जनसंख्या घटती है, बढ़ती नहीं—यूरोपीय देशों तथा अन्य उन्नतिशील देशों का अनुभव यह सिद्ध करता है कि आर्थिक सम्पन्नता तथा जीवन-स्तर में वृद्धि के साथ जनसंख्या में कमी होने की प्रवृत्ति क्रियाशील होने लगती है। जीवन-स्तर ऊँचा होने से पुरुष तथा स्त्रियाँ देर से शादी करते हैं तथा कम सन्तान चाहते हैं ताकि वे अपने बच्चों के उचित [illegible] उनका भावी जीवन सुखी [illegible] का प्रसार तथा उच्च जीवन- [illegible] कि माल्थस का विचार था।

(५) सिद्धान्त का गणितात्मक रूप उचित नहीं है—इतिहास साक्षी है कि जनसंख्या में वृद्धि ज्यामितिक गति तथा खाद्यान्न में वृद्धि अंकगणित गति से नहीं होती; वास्तव में, जनसंख्या या खाद्यान्न की वृद्धि को कोई निश्चित गणितात्मक रूप नहीं दिया जा सकता।

परन्तु यह आलोचना सही नहीं है। माल्थस का आशय जनसंख्या की प्रवृत्ति का, खाद्यान्न की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ने से था; इस बात को समझाने के लिए ही उन्होंने ज्यामितिक वृद्धि तथा अंकगणित वृद्धि के शब्दों का प्रयोग किया। अपनी पुस्तक के बाद के संशोधित संस्करणों में उन्होंने इन शब्दों को भी हटा दिया था।

(४) माल्थस भावी वैज्ञानिक आविष्कारों का ठीक अनुमान नहीं लगा सके—माल्थस का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण खाद्यान्नों में कमी हो जाती है। परन्तु कृषि में वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप नयी रीतियों, उन्नत बीज, खादों, इत्यादि के प्रयोग से उत्पत्ति ह्रास नियम की प्रवृत्ति को बहुत समय के लिए स्थगित किया जा सकता है। माल्थस कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रगति का अनुमान नहीं लगा सके; दूसरे शब्दों में, माल्थस ने उत्पत्ति वृद्धि नियम को ठीक नहीं समझा और न उस पर उचित बल दिया। इसी प्रकार यातायात व संवादवहन के साधनों में बहुत अधिक प्रगति हुई है, परिणामस्वरूप खाद्यान्नों को एक जगह या देश से दूसरी जगह या देश को आसानी से ले जाया जा सकता है और इस प्रकार देश विशेष में खाद्यान्न की कमी को दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में भी वैज्ञानिक प्रगति तथा बड़े पैमाने के उत्पादन के परिणामस्वरूप जीवन-निर्वाह की वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकी हैं। अतः माल्थस विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक उन्नति का ठीक अनुमान नहीं लगा सके।

(५) जनसंख्या की तुलना कुल राष्ट्रीय आय से करनी चाहिए—आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, एक देश की जनसंख्या की तुलना उस देश की कुल राष्ट्रीय आय से करनी चाहिए, न कि केवल खाद्यान्नों से। अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त (Optimum theory of population) का यही आधार है। एक देश में खाद्यान्न का उत्पादन कम हो सकता है, परन्तु यदि वह देश औद्योगिक दृष्टि से उन्नतिशील है तो वह अपने यहाँ के बने हुए माल के बदले में दूसरे कृषि प्रधान देशों से खाद्यान्न मँगा सकता है और अधिक जनसंख्या का पालन-पोषण कर सकता है। **सेलिगमेन** (Seligman) ने ठीक कहा है कि जनसंख्या की समस्या केवल एक संख्या (या मात्रा) की समस्या नहीं है बल्कि कुशल उत्पादन तथा समान वितरण की समस्या भी है।[2] दूसरे शब्दों में, यदि जनसंख्या में वृद्धि के साथ देश का कुल उत्पादन भी बढ़ता है तथा धन का उचित वितरण होता है तो जनसंख्या की वृद्धि से कोई हानि नहीं।

(६) जनसंख्या वृद्धि के साथ श्रम-शक्ति में भी वृद्धि—प्रो० केनन (Cannan) के अनुसार, प्रत्येक अतिरिक्त श्रमिक संसार में केवल खाने के लिए मुँह लेकर ही नहीं आता बल्कि वह दो हाथ लेकर भी आता है जिससे उत्पादन किया जा सकता है। वास्तव में, प्रो० केनन का कथन भी प्रो० सेलिगमेन के कथन की पुष्टि करता है, अर्थात जनसंख्या की समस्या केवल संख्या की समस्या ही नहीं बल्कि कुशल उत्पादन तथा उचित वितरण की भी समस्या है।

(७) प्राकृतिक विपत्तियों (या नैसर्गिक प्रतिबन्धों) का होना अति-जनसंख्या का सूचक नहीं—माल्थस के अनुसार, यदि किसी देश में अति-जनसंख्या है तो वहाँ पर नैसर्गिक प्रतिबन्ध

2 "The problem of population is not one of mere size but of efficient production and equitable distribution."

कार्यशील हो जायेंगे; दूसरे शब्दों मे, नैसर्गिक प्रतिबन्धों का पाया जाना अति-जनसंख्या का सूचक है। परन्तु यह विचारधारा गलत है। जिन देशों में न्यून-जनसंख्या है वहाँ भी नैसर्गिक प्रतिबन्ध अर्थात प्राकृतिक विपत्तियाँ पायी जाती हैं। वास्तव में, प्राकृतिक विपत्तियाँ तो प्राकृतिक हैं। वे उत्पादन की अकुशलता, धन का असमान वितरण, चिकित्सा-विज्ञान का अपर्याप्त विकास इत्यादि के परिणाम हैं न कि अति-जनसंख्या के।

(८) जनसंख्या की वृद्धि सदैव हानिकारक नहीं होती—जनसंख्या में प्रत्येक वृद्धि को माल्थस हानिकारक समझते थे, परन्तु यह विचार गलत था। यदि किसी देश की जनसंख्या, उस देश के प्राकृतिक साधनों की अपेक्षा कम है (अर्थात देश मे न्यून जनसंख्या है) तो जनसंख्या में वृद्धि लाभदायक होगी क्योंकि तभी प्राकृतिक साधनों का भली-भाँति प्रयोग करके उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाया जा सकेगा। यदि देश में अति-जनसंख्या है तो जनसंख्या में वृद्धि हानिकारक होगी।

(९) माल्थस का जनसंख्या का नियम असत्य सिद्ध हुआ—माल्थस का जनसंख्या का नियम है कि जनसंख्या, खाद्यान्न की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ती है। परन्तु इतिहास ने इसको गलत सिद्ध किया। यूरोपीय देशों में एक ओर तो कृत्रिम साधनों के प्रयोग से जनसंख्या तीव्र गति से नहीं बढ़ी, दूसरी ओर कृषि में वैज्ञानिक रीतियों के प्रयोग से खाद्यान्न में बहुत वृद्धि हुई है। आज तो कुछ यूरोपीय देशों (जैसे फ्रांस) मे तो जनसंख्या के कम होने की समस्या उत्पन्न हो रही है। इस प्रकार माल्थस का जनसंख्या का नियम असत्य सिद्ध होने से उसका सारा सिद्धान्त ही व्यर्थ हो जाता है।

(१०) स्थैतिक दृष्टिकोण (Static approach)—माल्थस का नियम उत्पत्ति ह्रास नियम तथा प्राकृतिक साधनों (भूमि) की सीमितता पर आधारित है। इस अर्थ में माल्थस का सिद्धान्त स्थैतिक है क्योंकि किसी एक निश्चित समय पर साधनों की मात्रा स्थिर हो सकती है परन्तु सदैव के लिए नहीं। समय के साथ पश्चिमी देशों में ज्ञान तथा टैक्नोलोजी (technology) में बहुत विकास हुआ है, प्राप्य भूमि तथा अन्य साधनों में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि कृषि योग्य भूमि की मात्रा में वृद्धि महत्त्वपूर्ण नहीं है वरन् अतिरिक्त भूमि का महत्त्व इस बात से मापा जा सकता है कि उससे कितना अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किया जाता है।[3]

कुछ अर्थशास्त्री माल्थस के सिद्धान्त को प्रावैगिक (dynamic) बताते हैं क्योंकि माल्थस का सिद्धान्त एक समयावधि के भीतर (over a period of time) जनसंख्या के विकास (growth) की प्रक्रिया (course) का अध्ययन करता है।

माल्थस के सिद्धान्त की सत्यता (Validity of the Malthusian Theory)

—माल्थस के सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की गयी। प्रश्न यह उठता है कि क्या माल्थस का सिद्धान्त बिलकुल बेकार है तथा उसमें कोई सत्यता नहीं है? क्या आधुनिक समाज के लिए माल्थस के सिद्धान्त का भय (terror) समाप्त हो गया है?

3 "Malthus' argument was based on the law of diminishing returns and the assumption that the supply of natural resources (land) was fixed. It is in this sense that Malthus'

वास्तव में, माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की कड़ी आलोचना होने पर भी उसमें सत्यता का पर्याप्त अंश है। यह कहा जा सकता है कि विकसित तथा उन्नतिशील देशों के लिए माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त सा प्रतीत होता है या बहुत कम हो गया है, परन्तु अविकसित देशों के लिए उनके सिद्धान्त का भय आज भी उपस्थित है अर्थात् उनका सिद्धान्त अविकसित देशों में लागू होता है। निम्न विवरण इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डालता है :

(१) इंगलैण्ड, अमरीका तथा यूरोप के उन्नतिशील देशों में माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त सा प्रतीत होता है अर्थात् माल्थस का सिद्धान्त लागू नहीं होता। इन देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर कम हो गयी है, वैज्ञानिक खोजों तथा आविष्कारों के परिणामस्वरूप औद्योगिक तथा कृषि उत्पादकता में बहुत वृद्धि हुई है, तथा इनमें खाद्यान्न की कमी की समस्या नहीं है। इन देशों में माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या खाद्यान्नों की अपेक्षा तीव्र गति से नहीं बढ़ी। इतना ही नहीं कुछ देशों, जैसे फ्रान्स, इंगलैण्ड, अमरीका इत्यादि, में न्यून-जनसंख्या की समस्या उत्पन्न होने की सम्भावना अनुभव की जाने लग गयी है।

(२) विकसित तथा उन्नत देशों में कृत्रिम साधनों के प्रयोग द्वारा जनसंख्या को कम किया गया है। यह बात परोक्ष रूप से माल्थस के सिद्धान्त की पुष्टि करती है और इस दृष्टि से ये देश भी माल्थस के सिद्धान्त से अप्रभावित नहीं रहे हैं। प्रो० टॉमस के अनुसार, यह तथ्य कि ऊँचे जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए परिवार को सीमित किया जाता है माल्थस के सिद्धान्त की पुष्टि करता है क्योंकि उसके अनुसार, जीवन निर्वाह के साधन इतने पर्याप्त नहीं होते कि जनसंख्या में वृद्धि तथा जीवन स्तर में वृद्धि या एक निश्चित जीवन स्तर को बनाये रखने—इन दोनों के लिए पूरे पड़ जायें। अतः लोग स्वयं अपने परिवारों को सीमित करते हैं ताकि जीवन स्तर [illegible]

है, जनसंख्या का व्यवहार (behaviour) समझने के लिए माल्थस के सिद्धान्त में आज भी तत्व (germs) महत्वपूर्ण हैं।[6]

के सिद्धान्त के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion regarding the Malthusian Theory)

पश्चिमी उन्नत देशों में माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त-सा हो गया है या कम हो गया यह सिद्धान्त इन देशों में लागू नहीं होता, परन्तु अल्पविकसित देशों में माल्थस के का भय अब भी है और यह सिद्धान्त इन देशों में भली-भाँति लागू होता है।

माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त तथा भारत
(MALTHUSIAN THEORY OF POPULATION AND INDIA)

भारत में माल्थस का सिद्धान्त लागू होता है; यह निम्न विवरण से स्पष्ट है—

(१) भारत में जनसंख्या बहुत तीव्र गति से (लगभग २·५ प्रतिशत प्रतिवर्ष) बढ़ रही है, खाद्यान्न की पूर्ति इस दर से नहीं हो रही है। देश को लाखों टन खाद्यान्न प्रति वर्ष विदेशों से मँगाना पड़ता है। (२) देश में सामाजिक तथा धार्मिक दशाएँ आज भी जन्म दर को बढ़ाने में सहायक हैं। भारत में अब भी छोटी आयु में विवाह करने की प्रथा अधिकांश लोगों में प्रचलित है। जन्म दर ही नहीं बल्कि मृत्यु दर भी ऊँची है। (३) यद्यपि कृषि के ढंगों में पहले की अपेक्षा परिवर्तन हुआ है, परन्तु अभी भी कृषि अधिकतर पुराने ढंगों से ही की जाती है। अतः कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम की प्रवृत्ति को नहीं रोका जा सका है। (४) देश की अधिकांश जनता अशिक्षित है, इसलिए जन्म दर को रोकने के लिए निवारक प्रतिबन्धों या कृत्रिम साधनों का प्रयोग कम मात्रा में किया जा रहा है। (५) देश में अभी उद्योग धन्धों का भी पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाया है। देशवासियों का जीवन स्तर बहुत नीचा है। देश में जनसंख्या को रोकने के लिए प्राकृतिक प्रतिबन्ध, जैसे, अकाल, बीमारियाँ, बाढ़, इत्यादि क्रियाशील हैं।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त
(OPTIMUM THEORY OF POPULATION)

परिचय (Introductory)

माल्थस ने देश विशेष की जनसंख्या की तुलना उस देश में उत्पादित खाद्यान्नों से की तथा जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि को हानिकारक समझा। उनका यह दृष्टिकोण उचित नहीं है। सेलिगमैन (Seligman) का यह कथन उचित है कि जनसंख्या की समस्या केवल संख्या या आकार (number or size) की समस्या नहीं है वरन यह कुशल उत्पादन तथा न्यायसंगत वितरण की समस्या है। दूसरे शब्दों में, जनसंख्या में वृद्धि या कमी अर्थात् जनसंख्या के आकार को कुल उत्पादन तथा धन के न्यायपूर्ण वितरण की तुलना में देखना चाहिए। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए जनसंख्या का एक नया सिद्धान्त बनाया जो 'अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। कैनन (Cannan), कार-सॉण्डर्स (Carr Saunders), डाल्टन, रोबिन्स आदि अर्थशास्त्री अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का उद्देश्य (Object of the Optimum Theory)

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त यह बताने का प्रयत्न करता है कि किसी देश के लिए आर्थिक दृष्टि से जनसंख्या का कौन-सा आकार आदर्श (ideal) या अनुकूलतम है। यह जन-

[6] Nevertheless ... still important for understanding ...

वास्तव में, माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की कड़ी आलोचना होने पर भी उसमें सत्यता का पर्याप्त अंश है। यह कहा जा सकता है कि विकसित तथा उन्नतिशील देशों के लिए माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त सा प्रतीत होता है या बहुत कम हो गया है, परन्तु अविकसित देशों के लिए उनके सिद्धान्त का भय आज भी उपस्थित है अर्थात् उनका सिद्धान्त अविकसित देशों में लागू होता है। निम्न विवरण इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डालता है :

(१) इंगलैण्ड, अमरीका तथा यूरोप के उन्नतिशील देशों में माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त सा प्रतीत होता है अर्थात् माल्थस का सिद्धान्त लागू नहीं होता। इन देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर कम हो गयी है, वैज्ञानिक खोजों तथा आविष्कारों के परिणामस्वरूप औद्योगिक तथा कृषि उत्पादकता में बहुत वृद्धि हुई है, तथा इसमें खाद्यान्न की कमी की समस्या नहीं है। इन देशों में माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या खाद्यान्नों की अपेक्षा तीव्र गति से नहीं बढ़ी। इतना ही नहीं कुछ देशों, जैसे फ्रान्स, इंगलैण्ड, अमरीका इत्यादि, में न्यून-जनसंख्या की समस्या उत्पन्न होने की सम्भावना अनुभव की जाने लग गयी है।

(२) विकसित तथा उन्नत देशों में कृत्रिम साधनों के प्रयोग द्वारा जनसंख्या को कम किया गया है। यह बात परोक्ष रूप से माल्थस के सिद्धान्त की पुष्टि करती है और इस दृष्टि से ये देश भी माल्थस के सिद्धान्त से अप्रभावित नहीं रहे हैं। प्रो० टोमस के अनुसार, यह तथ्य कि एक उच्च जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए परिवार को सीमित किया जाता है माल्थस के सिद्धान्त की पुष्टि करता है क्योंकि इसके अनुसार, जीवन निर्वाह के साधन इतने पर्याप्त नहीं होते कि जनसंख्या में वृद्धि तथा जीवन स्तर में वृद्धि या एक निश्चित जीवन स्तर को बनाये रखने—इन दोनों के लिए पूरे पड़ जायें। यदि लोग स्वयं अपने परिवारों को सीमित करते है ताकि जीवन स्तर को बनाये रख सकें, या इसी दृष्टि से शादी को स्थगित करते हैं तो यह कहा जा सकता है कि माल्थस का सिद्धान्त, कि जनसंख्या जीवन-निर्वाह के साधनों द्वारा सीमित है, क्रियाशील होता है।[4]

(३) माल्थस के नियम की इस सत्यता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है कि यदि किसी प्रकार के प्रतिबन्ध न हों तो जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ेगी।

(४) सेम्युलसन (Samuelson) के अनुसार, माल्थस का सिद्धान्त आज भी एक जीवित प्रभाव है। माल्थस के विचार प्रत्यक्ष रूप से उत्पत्ति ह्रास नियम पर निर्भर करते हैं, और उनमें आज भी सत्यता है।[5]

(५) माल्थस का सिद्धान्त भारत, चीन इत्यादि अल्पविकसित देशों में पूरी तरह से क्रियाशील है। इन देशों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, और खाद्यान्न धीमी गति से; दूसरे शब्दों में, इन देशों में खाद्यान्न-पूर्ति तथा जनसंख्या में बहुत असन्तुलन है। सेम्युलसन के शब्दों में, भारत, चीन तथा संसार के अन्य भागों में, जहाँ जनसंख्या और खाद्य पूर्ति में सन्तुलन एक महत्वपूर्ण

समस्या है, जनसख्या का व्यवहार (behaviour) समझने के लिए माल्थस के सिद्धान्त में आज भी सत्यता के तत्व (germs) महत्वपूर्ण हैं।'[6]

माल्थस के सिद्धान्त के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion regarding the Malthusian Theory)

पश्चिमी उन्नत देशो मे माल्थस के सिद्धान्त का भय समाप्त-सा हो गया है या कम हो गया है, अर्थात यह सिद्धान्त इन देशों में लागू नहीं होता, परन्तु अल्पविकसित देशो मे माल्थस के सिद्धान्त का भय अब भी है और यह सिद्धान्त इन देशो मे भली-भांति लागू होता है।

माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त तथा भारत
(MALTHUSIAN THEORY OF POPULATION AND INDIA)

भारत मे माल्थस का सिद्धान्त लागू होता है; यह निम्न विवरण से स्पष्ट है—

(१) भारत मे जनसंख्या बहुत तीव्र गति से (लगभग २.५ प्रतिशत प्रतिवर्ष) बढ़ रही है, जबकि खाद्यान्न की पूर्ति इस दर मे नहीं हो रही है। देश को लाखों टन खाद्यान्न प्रति वर्ष विदेशो से मँगाना पड़ता है। (२) देश मे सामाजिक तथा धार्मिक दशाएँ आज भी जन्म दर को बढ़ाने मे सहायक हैं। भारत मे अब भी छोटी आयु में विवाह करने की प्रथा अधिकांश लोगों मे प्रचलित है। देश में जन्म दर ही नहीं बल्कि मृत्यु दर भी ऊँची है। (३) यद्यपि कृषि के ढगों मे पहले की अपेक्षा थोड़ा परिवर्तन हुआ है, परन्तु अभी भी कृषि अधिकतर पुराने ढगो से ही की जाती है। अतः कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम की प्रवृत्ति को नहीं रोका जा सका है। (४) देश की अधिकांश जनता अशिक्षित है, इसलिए जन्म दर को रोकने के लिए निवारक प्रतिबन्धो या कृत्रिम साधनो का प्रयोग बहुत कम मात्रा में किया जा रहा है। (५) देश मे अभी उद्योग धन्धो का भी पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाया है। देशवासियों का जीवन स्तर बहुत नीचा है। देश मे जनसख्या को रोकने के लिए नैसर्गिक प्रतिबन्ध, जैसे, अकाल, बीमारियाँ, बाढ़, इत्यादि क्रियाशील हैं।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त
(OPTIMUM THEORY OF POPULATION)

प्राक्कथन (Introductory)

माल्थस ने देश विशेष की जनसंख्या की तुलना उस देश में उत्पादित खाद्यान्नों से की तथा सामान्यतया जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि को हानिकारक समझा। उनका यह दृष्टिकोण उचित नहीं था। सेलिगमैन (Seligman) का यह कथन उचित है कि जनसख्या की समस्या केवल सख्या या आकार (number or size) की समस्या नहीं है वरन यह कुशल उत्पादन तथा न्यायसंगत वितरण की समस्या है। दूसरे शब्दो मे, जनसख्या मे वृद्धि या कमी अर्थात् जनसंख्या के आकार को देश के कुल उत्पादन तथा धन के न्यायपूर्ण वितरण की तुलना मे देखना चाहिए। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इस दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुए जनसख्या का एक नया सिद्धान्त बनाया जो 'अनुकूलतम जनसख्या सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। केनन (Cannan), कार-सॉन्डर्स (Carr Saunders), डाल्टन, रोबिन्स आदि अर्थशास्त्री अनुकूलतम जनसख्या के सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का उद्देश्य (Object of the Optimum Theory)

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त यह बताने का प्रयत्न करता है कि किसी देश के लिए आर्थिक दृष्टि से जनसंख्या का कौन-सा आकार आदर्श (ideal) या अनुकूलतम है। यह जन-

6 "Nevertheless, the germs of truth in his doctrines are still important for understanding the population behaviour of India, China, and other parts of the globe where the balance of numbers and food supply is a vital factor."

संख्या में परिवर्तन तथा प्रति व्यक्ति आय में परिवर्तन के बीच सम्बन्ध का अध्ययन करता है और बताता है कि जनसंख्या का वह आकार आदर्श या अनुकूलतम होगा जिस पर प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी।

'अनुकूलतम के विचार का प्रयोग (Application of the 'Concept of Optimum')

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त यह नहीं बताता कि जनसंख्या में क्यों और किस प्रकार से वृद्धि होती है; इस दृष्टि से इसको जनसंख्या का सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता। वास्तव में, **यह सिद्धान्त तो जनसंख्या के क्षेत्र में केवल 'अनुकूलतम के विचार' का प्रयोग करता है** अर्थात **उत्पत्ति के साधनों के मिलाने के अनुकूलतम अनुपात के विचार की सहायता लेता है।** एक उत्पादक विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को अनुकूलतम अनुपात में मिलाता है ताकि उसको अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो। इसी प्रकार से यदि देश के अन्य दिये हुए साधनों के साथ जनसंख्या को अनुकूलतम अनुपात में मिलाया जाता है तो देश का उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी। दूसरे शब्दों में, देश के साधनों को देखते हुए जनसंख्या न कम होनी चाहिए और न अधिक वरन ठीक (just right) या अनुकूलतम होनी चाहिए तभी प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी। स्पष्ट है कि **अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त, जनसंख्या के क्षेत्र में अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध विचार 'अनुकूलतम' का प्रयोग** (Application) है।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Optimum Theory of Population)

यह सिद्धान्त दो मान्यताओं पर आधारित है :

(१) यह मान लिया जाता है कि जनसंख्या में वृद्धि के साथ **कुल जनसंख्या में कार्यवाहक जनसंख्या** (working population) **का अनुपात** स्थिर रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रमिक के औसत उत्पादन (average product) तथा प्रति व्यक्ति आय (per capita income) में सीधा सम्बन्ध रहता है; श्रमिक के औसत उत्पादन के घटने-बढ़ने से प्रति व्यक्ति आय भी घटेगी-बढ़ेगी और जब प्रति श्रमिक औसत उत्पादन अधिकतम होगा तो प्रति व्यक्ति आय भी अधिकतम होगी।

(२) यह भी मान लिया जाता है कि एक समय विशेष पर जनसंख्या में वृद्धि के साथ प्राकृतिक साधनों, तकनीकी ज्ञान, पूंजी इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता इसका अर्थ यह हुआ कि एक बिन्दु के बाद उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जायेगा।

'अनुकूलतम जनसंख्या' की परिभाषा (Definition of 'Optimum Population')

साधनों तथा पूंजी की एक दी हुई मात्रा और तकनीकी ज्ञान की एक दी हुई स्थिति में अनुकूलतम जनसंख्या से अर्थ, सामान्यतया, जनसंख्या के उस आकार से लिया जाता है जिस पर प्रति व्यक्ति आय अधिकतम हो तथा जिसमें थोड़ी सी वृद्धि या कमी होने पर प्रति व्यक्ति आय में कमी हो जाय।

अर्थशास्त्रियों द्वारा अनुकूलतम जनसंख्या की दी गयी परिभाषाओं में थोड़ी भिन्नता पायी जाती है। यह बात निम्न मुख्य परिभाषाओं से स्पष्ट होती है :

(१) **कार सौण्डर्स** (Carr saunders) **के अनुसार,** "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो अधिकतम आर्थिक कल्याण प्रदान करती है। यद्यपि अधिकतम आर्थिक कल्याण तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय आवश्यक रूप में एक समान नहीं हैं परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से दोनों को एक ही समझा जा

सकता है।"[7] केनन (Cannan)[8], हिक्स (Hicks)[9] इत्यादि भी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय को ही अनुकूलतम जनसंख्या का सूचक मानते हैं।

(२) प्रो० बोल्डिंग के अनुसार, "जनसंख्या जिस पर जीवन-स्तर (standard of life) अधिकतम होता है अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है।"[10] प्रो० बोल्डिंग 'रहन-सहन का स्तर' (standard of living) के स्थान पर 'जीवन-स्तर' शब्द का प्रयोग करते है। 'अधिकतम जीवन-स्तर' एक विस्तृत शब्द है जिसके अन्तर्गत 'अधिकतम आय' से प्राप्त भौतिक सुख के अतिरिक्त 'अभौतिक पक्ष' (non material side) या 'गुणात्मक पक्ष' (qualitative aspect) भी आ जाता है अर्थात् इसके अन्तर्गत मनुष्य के चरित्र, अच्छा स्वास्थ्य, इत्यादि पर ध्यान दिया जाता है।

(३) डाल्टन (Dalton) के अनुसार, "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय प्रदान करती है।"[11] रोबिन्स (Robbins) के अनुसार, "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जिससे अधिकतम उत्पादन सम्भव होता है।"[12]

---

7 Optimum population is "that population which produces maximum economic welfare Maximum economic welfare is not necessarily the same as maximum real income per head but for practical purposes they may be taken as equivalent."
—Carr Saunders, *World Population*, p. 330.

8 Cannan के अनुसार, "एक दिये हुए समय पर, अर्थात ज्ञान तथा परिस्थितियाँ समान रहने पर, एक बिन्दु ऐसा होता है जहाँ पर कि अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है, तथा इस स्थिति में श्रम की मात्रा ऐसी होती है कि उसमें वृद्धि तथा कमी दोनों ही उत्पत्ति में कमी लाती हैं।" "At any given time or, what comes to the same thing, knowledge and circumstances remaining the same, there is what may be called a maximum return, when the amount of labour is such that both an increase and a decrease in it would diminish proportionate returns."
—Cannan, *Quoted by J. K. Mehta*

9 हिक्स के अनुसार, "अनुकूलतम जनसंख्या, जनसंख्या का वह स्तर है जिस पर प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिकतम होगा।" Hicks defines, "the optimum population" as that level of population which would make output per head a maximum."
—Hicks, *The Social Framework*, p. 271.

10 "The population at which the standard of life is a maximum is called the optimum population."
—Boulding, *Economic Analysis*, p. 658.

11 "Optimum population is that which gives the maximum income per head."
—Dalton

12 Optimum population is "the population which just makes the maximum returns possible."
—Robbins

डाल्टन तथा रोबिन्स की परिभाषाओं में थोड़ा अन्तर है। डाल्टन के अनुसार, अनुकूलतम जनसंख्या का मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम होना है, अर्थात वह न केवल उत्पत्ति को ही ध्यान में रखते है बल्कि धन के उचित वितरण पर भी बल देते हैं। इस प्रकार डाल्टन का दृष्टिकोण सरल है तथा व्यावहारिकता रखता है। रोबिन्स के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या का मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय का अधिकतम [illegible]
होता है। यदि जनसंख्या बढ़ने से कुल उत्पा[illegible]
जनसंख्या के उपभोग से अधिक होती है, तो [illegible]
अनुसार, जिस जनसंख्या पर देश का कुल उ[illegible]
संख्या होगी। यद्यपि रोबिन्स, डाल्टन की भाँ[illegible]
देते हैं, परन्तु उन्होंने अनुकूलतम जनसंख्या के विचार में उपभोग के विचार को सम्मिलित

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of the Optimum Theory of Population)

जनसंख्या में वृद्धि या कमी के साथ कार्यवाहक जनसंख्या (working population or labour force) में वृद्धि या कमी होगी। यदि किसी देश में जनसंख्या बहुत कम है तो कार्यवाहक जनसंख्या भी कम होगी, इसलिए देश के अधिकांश उत्पादक साधनों का प्रयोग भली-भाँति नहीं हो पायेगा और प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन अर्थात् प्रति व्यक्ति आय कम होगी। जैसे जनसंख्या बढ़ेगी, श्रम विभाजन बढ़ेगा, बड़े पैमाने पर उत्पादन होगा, देश के साधनों का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगेगा, और प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी। दूसरे शब्दों में, प्रारम्भ में जनसंख्या की वृद्धि के साथ श्रम की सीमान्त उत्पादकता (marginal product) तथा औसत उत्पादकता (average product) बढ़ेगी अर्थात उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of increasing returns) लागू होगा। एक विन्दु ऐसा आयेगा जबकि जनसंख्या का, अन्य उत्पत्ति के साधनों के साथ, बिलकुल ठीक (just right) या अनुकूलतम अनुपात स्थापित हो जायेगा; इस स्थान पर प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन (AP) अर्थात प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होगी और यह अनुकूलतम जनसंख्या का विन्दु होगा। इस स्थान पर उत्पत्ति समता नियम (Law of constant returns) क्रियाशील होगा। यदि जनसंख्या में इस बिन्दु के बाद और अधिक वृद्धि होती है तो जनसंख्या का अन्य साधनों के साथ आदर्श या अनुकूलतम अनुपात टूट जायेगा और जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि के साथ श्रम का सीमान्त उत्पादन (MP) तथा औसत उत्पादन (AP) गिरता जायेगा, अर्थात उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of diminishing returns) लागू होने लगेगा।

उपर्युक्त विवरण से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं :

(१) **अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त उत्पति के नियमों** (Laws of returns) से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, यह परिवर्तनशील अनुपातों के नियम (Law of variable proportions) या 'उत्पत्ति ह्रास नियम' (Law of diminishing returns) पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, **अनुकूलतम जनसंख्या वह जनसंख्या है जहाँ पर उत्पत्ति की वृद्धि** (Increasing returns) **समाप्त होती है तथा उत्पत्ति का ह्रास** (decreasing returns) **क्रियाशील होना प्रारम्भ होता है।** इसी बात को इस प्रकार भी कहा जाता है कि बिन्दु से औसत उत्पादन (AP) गिरना प्रारम्भ होता है, उस बिन्दु पर प्रति व्यक्ति औसत आय अधिकतम होगी और जनसंख्या का यह स्तर अनुकूलतम होगा।

(२) अनुकूलतम जनसंख्या से कम जनसंख्या को (अर्थात जब तक उत्पत्ति वृद्धि नियम क्रियाशील है) न्यून जनसंख्या (under population) कहते हैं; तथा अनुकूलतम से अधिक जनसंख्या (अर्थात जब उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है) को 'अति-जनसंख्या' (over population) कहते हैं।

के उसे विस्तृत कर दिया है। रोबिन्स के अनुसार, अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु, डाल्टन ·तम बिन्दु से, बहुत आगे होगा क्योंकि रोबिन्स के अनुसार, जनसंख्या का वह स्तर है जहाँ पर उसका उत्पादन तथा उपभोग दोनों बराबर हों। **यद्यपि रोबिन्स का** धिक विस्तृत है, परन्तु डाल्टन का दृष्टिकोण अधिक सरल तथा **व्यावहारिक है।**

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की उपर्युक्त व्याख्या को हम चित्र नं० ६० द्वारा स्पष्ट करते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि OM अनुकूलतम जनसंख्या है, अनुकूलतम बिन्दु से पहले उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है और 'न्यून-जनसंख्या' रहती है; अनुकूलतम बिन्दु के बाद उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है और 'अति-जनसंख्या' होती है। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि अनुकूलतम जनसंख्या OM वह जनसंख्या है जहाँ पर 'उत्पत्ति की वृद्धि' समाप्त होती है और 'उत्पत्ति का ह्रास' प्रारम्भ होता है।
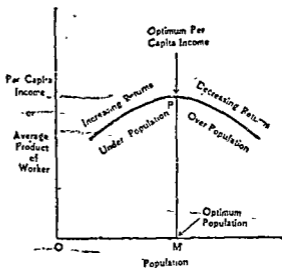
चित्र—६०

'समायोजन-अभाव' की मात्रा (Degree of 'Maladjustment') को मापने का प्रो० डाल्टन का सूत्र

यदि हम किसी देश के लिए अनुकूलतम जनसंख्या ज्ञात कर लें तो समायोजन अभाव की मात्रा (Degree of maladjustment) को ज्ञात किया जा सकता है। समायोजन-अभाव का अर्थ है कि वास्तविक जनसंख्या अनुकूलतम जनसंख्या से कितनी कम या अधिक है अर्थात किस सीमा तक 'न्यून-जनसंख्या' या 'अति-जनसंख्या' है। इस 'समायोजन अभाव' को मापने के लिए प्रो० डाल्टन ने निम्न सूत्र दिया है :

$M=\frac{A-O}{O}$ जबकि, M=समायोजन-अभाव की मात्रा (Maladjustment), A=वास्तविक जनसंख्या (Actual population), O=अनुकूलतम जनसंख्या (Optimum population)

यदि M धनात्मक (Positive) है तो यह अति-जनसंख्या को बताता है; यदि M ऋणात्मक (negative) है तो यह न्यून जनसंख्या का द्योतक है; जब M शून्य (zero) होता है तो वास्तविक जनसंख्या और अनुकूलतम जनसंख्या बराबर होगी।
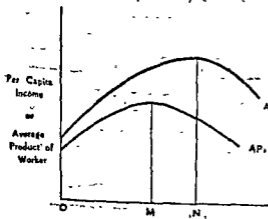
Per Capita Income or Average Product of Worker; AP_2; AP_1; O; M; N

चित्र—६१

अनुकूलतम जनसंख्या के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातें (Some Important Points Regarding the Optimum Population)

(१) अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु स्थिर (fixed) नहीं होता—यह बिन्दु विज्ञान की उन्नति, नये प्राकृतिक साधनों की खोज तथा उत्पादन कला

की नयी रीतियों के अनुसन्धान आदि के साथ बदलता रहता है। अनुकूलतम जनसंख्या के परिवर्तनशील स्वभाव (dynamic nature) को चित्र नं० ६१ द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। किसी देश के लिए विज्ञान तथा उत्पादन कला के दिये हुए ज्ञान की स्थिति में अनुकूलतम जनसंख्या OM है। विज्ञान तथा उत्पादन कला में उन्नति हो जाने के परिणामस्वरूप 'प्रति व्यक्ति आय रेखा' या 'औसत उत्पादन रेखा' (AP_1) ऊपर को खिसक जाती है और अब उसकी नयी स्थिति AP_2 हो जाती है। परिवर्तित स्थिति में अनुकूलतम जनसंख्या ON हो जाती है। OM जनसंख्या जो कि पहले अनुकूलतम थी अब न्यून जनसंख्या हो जाती है।

(२) अनुकूलतम जनसंख्या एक परिमाणात्मक (Quantitative) ही नहीं बल्कि गुणात्मक (qualitative) विचार भी है—कुछ अर्थशास्त्रियों, जैसे बोल्डिंग, पेनरोज (Penrose), डा० राधाकमल मुकर्जी, बाई (R. T. Bye) आदि ने बतलाया है कि अनुकूलतम जनसंख्या एक गुणात्मक विचार भी है। इसी दृष्टि से, प्रो० बोल्डिंग 'प्रति व्यक्ति आय' के स्थान पर 'जीवन-स्तर' या 'जीवन-प्रमाप' (Standard of life) के शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रो० बाई (तथा अन्य अर्थशास्त्री भी) इस बात को अनुभव करते हैं कि गुणात्मक बातों को सम्मिलित करने से एक दिये हुए समय पर किसी देश के लिए सही रूप से अनुकूलतम जनसंख्या को ज्ञात करना लगभग असम्भव हो जाता है।

(३) अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त एक 'वस्तुगत आधार' (objective basis) प्रदान करता है जिसके आधार पर जनसंख्या अनुकूलतम से अधिक है तभी उसकी वृद्धि को रोकना चाहिए अन्यथा नहीं।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Optimum Theory of Population)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) सही अर्थ में यह सिद्धान्त जनसंख्या का सिद्धान्त नहीं है—यह सिद्धान्त तो केवल अर्थशास्त्र के विख्यात विचार 'अनुकूलतम' का प्रयोग जनसंख्या के क्षेत्र में करता है। यह जनसंख्या वृद्धि से सम्बन्धित नियमों के बारे में कुछ नहीं कहता है। इस दृष्टि से यह कहा जाता है कि सही अर्थ में यह जनसंख्या का सिद्धान्त नहीं है।

(२) यह स्थैतिक (Static) विचार है—यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि (i) जनसंख्या में वृद्धि के साथ कार्यवाहक जनसंख्या का अनुपात स्थिर रहता है; तथा (ii) किसी समय विशेष पर, अनुकूलतम जनसंख्या मालूम करने के लिए, प्राकृतिक साधन, तकनीकी ज्ञान इत्यादि अर्थात् वातावरण (environment) स्थिर समझ लिया जाता है। परन्तु ये दोनों मान्यताएँ त्रुटिपूर्ण हैं; वास्तविक संसार गत्यात्मक (dynamic) है; वातावरण तथा परिस्थितियाँ निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं; इनको स्थिर मानने का अर्थ है कि यह सिद्धान्त स्थैतिक है।

परन्तु यह सिद्धान्त यह मानता है कि समय के साथ मनुष्य के स्वभाव, वातावरण तथा परिस्थितियों में परिवर्तन होता है और इसलिए अनुकूलतम बिन्दु में परिवर्तन होता है। इस दृष्टि से कुछ अर्थशास्त्री अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त को प्रावैगिक (dynamic) विचार बताते हैं।

सम्मिलित करते हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करने से अनुकूलतम जनसंख्या के आकार को मालूम करना अधिक कठिन हो जाता है।

(४) यह सिद्धान्त जनसंख्या पर केवल आर्थिक दृष्टि से ही विचार करता है—किसी देश के लिए अनुकूलतम जनसंख्या के आकार को मालूम करने के लिए केवल आर्थिक परिस्थितियों को ही ध्यान में नहीं रखना चाहिए, वरन् देश की सामाजिक, राजनीतिक तथा सैनिक परिस्थितियों को भी दृष्टि में रखना चाहिए। जनसंख्या का एक आकार आर्थिक दृष्टि से अनुकूलतम हो सकता है, परन्तु देश की सैनिक तथा प्रतिरक्षा (defence) की दृष्टि से वह अपर्याप्त हो सकता है।

(५) यह सिद्धान्त सामाजिक उद्देश्यों (social goals) के प्रति संकीर्ण (narrow) दृष्टिकोण रखता है—केवल प्रतिव्यक्ति आय का अधिकतम होना ही पर्याप्त नहीं है। किसी देश की प्रगति के लिए स्वस्थ, शिक्षित, बुद्धिमान (intelligent) तथा उच्च नैतिक स्तर की जनसंख्या का होना भी अति आवश्यक है। अतः यह कहा जाता है कि इस सिद्धान्त का दृष्टिकोण संकुचित है।

इस आलोचना का महत्त्व कम रह जाता है क्योंकि कुछ अर्थशास्त्री, जैसे बोल्डिंग, डाई इत्यादि इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अधिकतम प्रति व्यक्ति आय के अतिरिक्त उपर्युक्त अन्य सब बातों का समावेश करते हैं; परन्तु इन सब गुणात्मक बातों को सम्मिलित करने से जनसंख्या के अनुकूलतम आकार का ठीक-ठीक ज्ञान करना और भी कठिन हो जाता है, वरन् लगभग असम्भव ही हो जाता है।

(६) इस सिद्धान्त का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है—परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ अनुकूलतम का बिन्दु निरन्तर बदलता रहता है, इसलिए इसको ठीक-ठीक मापना बहुत कठिन है; गुणात्मक बातों को सम्मिलित करने से इसे सही रूप से मालूम करने की कठिनाई और भी अधिक बढ़ जाती है। चूंकि अनुकूलतम जनसंख्या को ठीक प्रकार से मालूम करना असम्भव है इसलिए इसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं रह जाता तथा यह आर्थिक नीति (economic policy) के मार्ग-प्रदर्शन की दृष्टि से बेकार हो जाता है।

अनुकूलतम जनसंख्या के सम्बन्ध में निष्कर्ष (Conclusion regarding Optimum Theory of Population)

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का महत्त्व इस बात में निहित है कि इसने 'माल्थूसियन भूत' (Malthusian Devil) को कम करके जनसंख्या को सही रूप में समझाने का दृष्टिकोण दिया। इस सिद्धान्त ने स्पष्टतया बताया कि जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि से डरने की आवश्यकता नहीं है; यदि जनसंख्या की वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तो उसका बढ़ना हितकर है। इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि किसी समय पर अनुकूलतम जनसंख्या को निश्चित रूप से ज्ञात करना बहुत कठिन या लगभग असम्भव है। इसलिए प्रो० हिक्स (Hicks) के शब्दों में, "यह बहुत ही कम व्यावहारिक महत्त्व का विचार है।"[13]

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की माल्थस के सिद्धान्त से तुलना
(COMPARISION OF OPTIMUM THEORY OF POPULATION WITH MALTHUSIAN THEORY)

जनसंख्या के दोनों सिद्धान्तों में बहुत अन्तर है। प्रश्न उठता है कि क्या अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त के ऊपर सुधार है? निम्न आधारों पर अनुकूलतम सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त से श्रेष्ठ कहा जा सकता है :

13 It is "a notion of extremely little practical interest."

(१) माल्थस ने जनसंख्या की तुलना केवल देश में उत्पादित खाद्यान्नों से की। उनके अनुसार, जनसंख्या का खाद्य-सामग्री से अधिक हो जाने पर देश विशेष को बहुत संकट का सामना करना पड़ेगा।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त जनसंख्या की तुलना, खाद्य पूर्ति न करके, देश के कुल उत्पादन से करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या के खाद्य पूर्ति से अधिक हो जाने पर कोई चिन्ता या संकट की बात नहीं होगी यदि देश औद्योगिक दृष्टि से उन्नतिशील है क्योंकि वह औद्योगिक वस्तुओं का निर्यात करके अन्य देशों से खाद्य सामग्री मँगा सकेगा।

(२) माल्थस के अनुसार, जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि हानिकारक है। उनके अनुसार, जनसंख्या सदैव खाद्यान्नों की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ती है। वे जनसंख्या को केवल आकार या संख्या (size or number) की समस्या समझते थे।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के अनुसार यदि जनसंख्या की वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती है, तो जनसंख्या की वृद्धि लाभदायक होगी। जनसंख्या की वृद्धि तभी हानिकारक होगी जबकि वह अनुकूलतम बिन्दु से अधिक हो जाती है अर्थात् जब प्रति व्यक्ति आय गिरने लगती है। इस सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या की समस्या केवल आकार या संख्या की समस्या नहीं है वरन् कुशल उत्पादन तथा उचित वितरण की भी समस्या है।

(३) माल्थस का सिद्धान्त वास्तव में जनसंख्या का सिद्धान्त है क्योंकि यह जनसंख्या के विकास (growth) से सम्बन्धित नियमों तथा उसका समाज पर प्रभाव का अध्ययन करता है।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त सही अर्थ में जनसंख्या का सिद्धान्त नहीं है क्योंकि यह तो केवल 'अनुकूलतम के विचार' का प्रयोग जनसंख्या के क्षेत्र में करता है; यह तो केवल जनसंख्या तथा उत्पादक साधनों (productive resources) के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। परन्तु अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त की श्रेष्ठता इस बात में निहित है कि यह जनसंख्या में वृद्धि या कमी को ठीक व सन्तुलित दृष्टि से समझने में सहायक है।

(४) माल्थस का सिद्धान्त उत्पत्ति ह्रास नियम तथा प्राकृतिक साधनों (भूमि) की सीमितता पर आधारित है। इस अर्थ में माल्थस का सिद्धान्त स्थैतिक (static) है क्योंकि किसी एक निश्चित समय पर साधनों की मात्रा स्थिर हो सकती है, परन्तु सदैव के लिए नहीं। यद्यपि भूमि के कुल क्षेत्रफल को नहीं बढ़ाया जा सकता है परन्तु गहरी खेती तथा वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग करके भूमि की उपज बहुत अधिक बढ़ायी जा सकती है अर्थात 'भूमि की प्रभावोत्पादक पूर्ति (effective supply of land) को बढ़ाया जा सकता है। एक दूसरी दृष्टि से माल्थस का सिद्धान्त प्रावैगिक (dynamic) बताया जाता है। माल्थस का सिद्धान्त एक समयावधि के भीतर (over a period of time) जनसंख्या के विकास की प्रक्रिया (course) का अध्ययन करता है। अतः इस दृष्टि से कुछ अर्थशास्त्री इसे प्रावैगिक सिद्धान्त बताते हैं।

(५) माल्थस का सिद्धान्त जनसंख्या को केवल-परिमाणात्मक (quantitative) दृष्टि से ही देखता है। यह जनसंख्या के गुणात्मक (qualitative) पक्ष अर्थात् जनसंख्या के स्वास्थ्य, बौद्धिक स्तर, ईमानदारी, इत्यादि गुणों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता है।

अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के अन्तर्गत कुछ अर्थशास्त्री (जैसे प्रो० वाई, वोल्डिंग [इ]त्यादि) परिमाणात्मक पक्ष के साथ-साथ गुणात्मक पक्ष का भी समावेश करते हैं। इस सिद्धान्त [के अन]ुसार जनसंख्या के ऐसे आकार को मालूम करने की समस्या होती है जिस पर न केवल प्रति [व्यक्ति आ]य ही अधिकतम हो बल्कि जनसंख्या का स्वास्थ्य, बौद्धिक स्तर, ईमानदारी इत्यादि भी [उच्च]तम स्तर पर हो। परन्तु इन सब बातों को शामिल करने से अनुकूलतम जनसंख्या को ठीक-[ठीक म]ालूम करना लगभग असम्भव हो जाता है।

(६) माल्थस ने 'अति-जनसंख्या' को खाद्य-सामग्री के शब्दों में परिभाषित किया। यदि [कि]सी देश में जनसंख्या खाद्यान्नों से अधिक है तो वहाँ 'अति-जनसंख्या' होगी और उस देश में [प्रा]कृतिक संकटों, जैसे, अकाल, बीमारियाँ, बाढ़, युद्ध, इत्यादि लागू होंगे। दूसरे शब्दों में, माल्थस [के] अनुसार, ये प्राकृतिक संकट 'अति-जनसंख्या' के सूचक हैं।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त 'अति-जनसंख्या' को उत्पादकता (Production) के [श]ब्दों में परिभाषित करता है। जितनी जनसंख्या देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण प्रयोग के लिए [आ]वश्यक है, यदि जनसंख्या इस संख्या से अधिक है तो यह स्थिति 'अति-जनसंख्या' की होगी। [इ]स सिद्धान्त के अनुसार, किसी देश में प्राकृतिक संकटों का पाया जाना 'अति-जनसंख्या' का सूचक [न]हीं है। प्राकृतिक संकटों की अनुपस्थिति में भी 'अति-जनसंख्या' हो सकती है यदि प्रति व्यक्ति [वा]स्तविक आय गिर रही है।

(७) माल्थस का सिद्धान्त निराशावादी (pessimistic) है। माल्थस के अनुसार, जनसंख्या, [ख]ाद्यान्नों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ेगी। इसका परिणाम होगा—अति-जनसंख्या, कष्ट (misery), मृत्यु, थोड़े समय के लिए जनसंख्या तथा खाद्य-पूर्ति में सन्तुलन होगा, तत्पश्चात् पुनः [अ]ति-जनसंख्या होगी। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक देश को 'माल्थसियन चक्र' (Malthusian cycle) [स]े निकलना होगा (माल्थुसियन चक्र के लिए चित्र नं० ६१, देखिए।) इस प्रकार माल्थस ने संसार [क]ा बड़ा अन्धकारमय (gloomy) चित्र प्रस्तुत किया।

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त आशावादी (optimistic) है। इसके अनुसार, जनसंख्या [क]ी वृद्धि से डरने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि वह देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण [क]ी दृष्टि से अधिक न हो। "माल्थस को आने वाले नर्क का डर था; अनुकूलतम सिद्धान्त के प्रतिपादकों [क]ो आने वाले स्वर्ग का गर्व है।"[14] अतः अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त, माल्थुसियन निराशा-वादी दृष्टिकोण के स्थान पर, आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष—सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त, माल्थस के सिद्धान्त के [प्र]कार कई दृष्टियों से सुधार है। माल्थस का सिद्धान्त निराशावादी है तथा जनसंख्या की समस्या के सम्बन्ध में एक संकुचित दृष्टिकोण रखता है। अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त आशावादी है और जनसंख्या के सम्बन्ध में एक सन्तुलित तथा विवेकपूर्ण दृष्टिकोण रखता है। परन्तु अनुकूलतम जनसंख्या के आकार को मालूम करना बहुत कठिन है, इसलिए इस सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्व

---

14 "Malthus was obsessed by the fear of an impending economic 'Hell'; the propounders of the optimum theory are elated with the hopes of a coming 'paradise'." —*K. Chatterji*

अनुपयुक्त रह जाता है। वास्तव में, माल्थस तथा अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त, दोनों ही अपूर्ण तथा भ्रामक हैं।

न्यून-जनसंख्या तथा अति-जनसंख्या
(UNDER-POPULATION AND OVER-POPULATION)

न्यून-जनसंख्या (Under population)—माल्थस के अनुसार, यदि देश में उत्पादित खाद्यान्नों की अपेक्षा जनसंख्या कम है तो इसे न्यून-जनसंख्या कहा जा सकता है। परन्तु यह दृष्टिकोण उचित नहीं है। वास्तव में, माल्थस ने न्यून-जनसंख्या की स्थिति पर विचार ही नहीं किया, उन्होंने तो केवल अति-जनसंख्या की स्थिति का ही अध्ययन किया। अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के अनुसार, यदि जनसंख्या देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण के लिए कम है तो इसे न्यून-जनसंख्या कहा जायेगा। ऐसी स्थिति में जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ेगी वैसे-वैसे देश के उत्पादन साधनों का भली-भाँति प्रयोग होगा, उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा और प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होगी; जब प्रति व्यक्ति आय अधिकतम हो जायेगी तो जनसंख्या अनुकूलतम हो जायेगी। संक्षेप में, **यदि जनसंख्या अनुकूलतम बिन्दु से कम है तो इसे न्यून जनसंख्या कहेंगे।**

अति-जनसंख्या (Over-population)—माल्थस के अनुसार, यदि देश में उत्पादित खाद्यान्नों की अपेक्षा जनसंख्या अधिक है तो इसे अति जनसंख्या कहेंगे। ऐसी स्थिति में यदि मनुष्य जनसंख्या को स्वयं रोकने का प्रयत्न नहीं करता है तो प्राकृतिक प्रकोप (जैसे, अकाल, बीमारियाँ, बाढ़, सूखा इत्यादि) लागू हो जायेंगे। अतः माल्थस के अनुसार, किसी देश में विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक प्रकोपों का पाया जाना अति जनसंख्या का चिन्ह है। यद्यपि माल्थस का सिद्धान्त एक सीमा तक अविकसित तथा पिछड़े हुए देशों में लागू होता है, परन्तु यह दृष्टिकोण पूर्णतया ठीक नहीं है। अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त के अनुसार, यदि जनसंख्या देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण की दृष्टि से अधिक है तो इसे अति जनसंख्या कहा जायेगा। ऐसी स्थिति में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होगा और प्रति व्यक्ति वास्तविक आय गिरेगी। संक्षेप में, **यदि संख्या अनुकूलतम बिन्दु से अधिक है तो इसे अति-जनसंख्या कहेंगे।**

अति-जनसंख्या को रोकने के उपाय (Measures to check over-population)—अति-जनसंख्या के कारण देश में बचत (saving) कम होगी, परिणामस्वरूप विनियोग (investment) कम होगा और देश का आर्थिक विकास रुक जायेगा। देश के निवासियों का जीवन-स्तर बहुत नीचा हो जायेगा। इन सब परिणामों से बचने के लिए आवश्यक है कि जनसंख्या को रोका जाय।

अति-जनसंख्या को रोकने के उपाय बतलाते समय यह ध्यान रखने की बात है कि अति-जनसंख्या की समस्या प्रायः अविकसित देशों की समस्या है। अति-जनसंख्या को रोकने के मुख्य उपाय निम्न हैं :

(१) कृषि उत्पादन में वृद्धि—कृषि की आधुनिक रीतियों के प्रयोग से, भूमि-धारण की [illegible] से, नयी भूमि जोत में लाने से, जोत की नवीन तथा वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग करने से, [illegible] उत्पादन को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाना आवश्यक है।

(२) तीव्र औद्योगीकरण—कॉलिन क्लार्क (Colin Clark), किंग्सले डेविस (Kingsley Davis), इत्यादि ने जनसंख्या को कम करने के लिए तीव्र गति से औद्योगीकरण पर बल दिया है। [illegible] से जनसंख्या को कम करने में सहायक है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप

लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा उठेगा, ऊँचे जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए वे कम बच्चे चाहेंगे और अपना परिवार छोटा रखेंगे।

(३) परिवार नियोजन, लोगों में छोटे परिवार रखने के लाभों का प्रचार करना चाहिए, [illegible] के सम्बन्ध में बड़े पैमाने [illegible] के सम्बन्ध में यह ध्यान [illegible] न्धान (research) की आवश्यकता है ताकि एक विश्वसनीय तथा सस्ता कृत्रिम साधन ज्ञात किया जा सके। वर्तमान समय में 'लूप' (loop) अधिक सस्ता तथा सफल सिद्ध हो रहा है।

(४) सदैव बीमार रहने वाले तथा दिमाग-खराबी वाले व्यक्तियों के विवाहों को रोकना—ऐसा करना आवश्यक है ताकि जनसंख्या का गुणात्मक (qualitative) दृष्टि से स्तर ऊँचा हो अर्थात् जनसंख्या का स्वस्थ तथा बुद्धिमान होना आवश्यक है।

(५) शिक्षा तथा सामाजिक सुधार—अधिक स्कूल तथा कॉलेज खोलकर शिक्षा का प्रसार किया जाय ताकि अधिकाधिक व्यक्ति साक्षर एवं शिक्षित होकर परिवार नियोजन के महत्व को समझ सकें। अविकसित देशों में प्रायः विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुरीतियाँ (जैसे, छोटी उम्र में शादी करना, जाति-वाद, इत्यादि) पायी जाती हैं जो जनसंख्या वृद्धि में सहायक होती हैं। शिक्षा द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर किया जा सकेगा।

(६) जनसंख्या से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करना—किसी देश की उचित जनसंख्या नीति बनाने के लिए आवश्यक है कि वह जनसंख्या के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में तथा विश्वसनीय आँकड़े एकत्रित करे। इस सम्बन्ध में एक दक्ष जन-गणना विभाग होना चाहिए। जन-गणना विभाग का स्थायी होना अधिक अच्छा है ताकि अनुभव प्राप्त कार्यकर्ता उसमें बने रहें।

(७) आर्थिक विकास—वास्तव में, जनसंख्या की समस्या आर्थिक विकास की समस्या है। इसलिए सरकार को देश के बहुमुखी आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित प्रयत्न करने चाहिए। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप रोजगार बढ़ेगा, लोगों की आय बढ़ेगी तथा उनका जीवन स्तर ऊँचा होगा।

निष्कर्ष—अति-जनसंख्या की समस्या को केवल संख्या की समस्या नहीं समझना चाहिए, यह सामाजिक सुधार, कानूनी परिवर्तन, शिक्षा प्रसार तथा आर्थिक उन्नति की समस्या है।

क्या बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव अवांछनीय है ?
(IS INCREASING POPULATION ALWAYS UNDESIRABLE ?)

माल्थस समझते थे कि जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि अथवा बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव हानिकारक है। यह दृष्टिकोण उचित नहीं है क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव अवांछनीय हो। वास्तव में, अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त इस बात पर उचित प्रकाश डालता है। यदि देश की जनसंख्या अनुकूलतम से कम है तो जनसंख्या का बढ़ना देश के लिए हितकर है। जनसंख्या का अनुकूलतम से कम होने का अर्थ है कि वह देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण के लिए कम है। ऐसी स्थिति में जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादक साधनों का भली-भाँति प्रयोग होगा, उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होगा, विशिष्टीकरण सम्भव होगा, बड़े पैमाने पर उत्पादन होगा, प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होगी तथा लोगों का जीवन स्तर ऊँचा होगा। दूसरे शब्दों में, यदि देश में न्यून जनसंख्या है तो जनसंख्या में वृद्धि होना लाभदायक है।

इसके अतिरिक्त यह ध्यान रखने की बात है कि जिन उन्नतिशील देशों में आर्थिक उन्नति का स्तर बहुत ऊँचा हो जाता है, उनमें अति-जनसंख्या का डर बहुत दूर (remote) हो जाता है। अत: ऐसे देशों में एक सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि देश के बाजार (home market) को विस्तृत करती है, विनियोग को प्रोत्साहन मिलता है, बेरोजगारी समाप्त होती है तथा रोजगार का एक ऊँचा स्तर बनाये रखने में सुविधा होती है।

स्पष्ट है कि जनसंख्या की वृद्धि सदैव अवांछनीय नहीं होती; जनसंख्या की वृद्धि हानिकारक तभी होती है जबकि वह अनुकूलतम बिन्दु से अधिक हो।

जनसंख्या का जैविकीय सिद्धान्त—लोजिस्टिक वक्र रेखा
(THE BIOLOGICAL THEORY OF POPULATION--THE LOGISTIC CURVE)

प्राक्कथन (Introductory)

आधुनिक काल में जीवशास्त्रियों (Biologists) तथा अंकशास्त्रियों (Statisticians) ने जनसंख्या के विकास से सम्बन्धित गहन अध्ययन किये हैं। एक ऐसा अध्ययन अमरीका के प्रसिद्ध जीवशास्त्री रेमीण्ड पर्ल (Raymond Pearl) ने किया है जो 'लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त' (Logistic curve theory) के नाम से प्रसिद्ध है। यह लोजिस्टिक वक्र रेखा का सिद्धान्त जनसंख्या के विकास के स्वरूप (Nature) पर प्रकाश डालता है। प्रो० पर्ल ने फल की मक्खियों की संख्या की वृद्धि के स्वरूप का अध्ययन किया, तत्पश्चात इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त का कथन

प्रो० पर्ल ने बताया कि जनसंख्या सदैव तीव्र गति से नहीं बढ़ती है। यदि जनसंख्या के विकास को ग्राफ कर दिया जाय तो अंग्रेजी के अक्षर 'एस' (S) की भाँति एक वक्र रेखा प्राप्त होगी जिसे गणित में 'लोजिस्टिक वक्र रेखा' कहते हैं। इसीलिए इस सिद्धान्त का नाम 'लोजिस्टिक वक्र रेखा सिद्धान्त' पड़ा। यह वह रेखा बताती है कि जनसंख्या पहले बहुत धीमी गति से बढ़ती है, उसके बाद तीव्र गति से बढ़ती है और अन्त में या तो स्थिर हो जाती है या गिरने लगती है, परन्तु कम होने पर भी यह पहले से अधिक रहती है। यह क्रम चलता रहता है। कुल मिलाकर जनसंख्या की प्रवृत्ति बढ़ने की ही रहती है।

सिद्धान्त की व्याख्या

जनसंख्या के विकास के क्रम को चित्र नं० ९२ से स्पष्ट किया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि जनसंख्या प्रारम्भ में, अर्थात A बिन्दु से धीमी गति से बढ़ती है, इसके बाद B बिन्दु से तीव्र गति से बढ़ने लगती है, तत्पश्चात C बिन्दु से स्थिर या गिरने लगती है, परन्तु गिरने पर भी वह पहले से अधिक ही रहती है। जनसंख्या विकास के इस क्रम को निम्न विवरण से स्पष्ट किया जा सकता है : किसी देश के विकास के प्रारम्भिक चरणों में जनसंख्या की वृद्धि में बाधाएँ होती हैं, जैसे खाद्यान्नों की कमी, सुरक्षा की कमी इत्यादि। इन बाधाओं के कारण देश में प्रारम्भ में जनसंख्या बहुत धीमी गति से बढ़ती है। जैसे-जैसे देश का विकास होता जाता है, वे बाधाएँ दूर होती जाती हैं और जनसंख्या तीव्र गति से
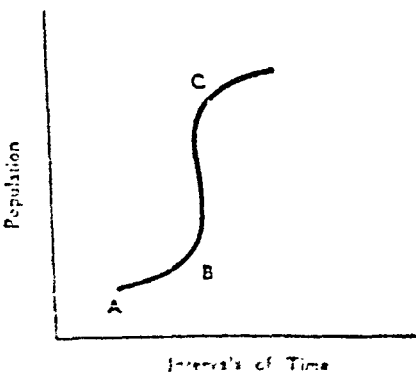
चित्र—९२

बढ़ती है। परन्तु जब देश सभ्यता के उच्चतर चरण (Advanced stage) में पहुँच जाता है तो जनसंख्या या तो स्थिर हो जाती है अथवा गिरने लगती है; यह स्थिति अमरीका, इंगलैण्ड, फ्रांस तथा अन्य यूरोपीय देशों में पायी जाती है।

सिद्धान्त के गुण (Merits of the Theory)

इस सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या घटती बढ़ती है, परन्तु कुल मिलाकर इसकी प्रवृत्ति बढ़ने की होती है। इस दृष्टि से यह माल्थस के सिद्धान्त का समर्थन करती है, क्योंकि माल्थस के अनुसार भी जनसंख्या की प्रवृत्ति बढ़ने की होती है। परन्तु एक दूसरी दृष्टि से यह सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त को खण्डित (contradict) करता है जो निम्न विवरण से स्पष्ट हो जाता है। यह विवरण इस सिद्धान्त के गुणों पर भी प्रकाश डालता है।

(१) माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या सदैव तीव्र गति से बढ़ती है, परन्तु यह सिद्धान्त ऐसा नहीं कहता। इस सिद्धान्त के अनुसार [illegible] धीमी गति से बढ़ती है, फिर तीव्र गति से बढ़ती [illegible]

(२) माल्थस के [illegible] सम्बन्ध होता है, परन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार, इन दोनों में उल्टा सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में, इस सिद्धान्त के अनुसार, किसी देश के सभ्यता के उच्चतर स्तर पर पहुँच जाने पर उसकी जनसंख्या कम होने लगती है, जबकि माल्थस का विचार था कि सभ्यता के विकास तथा आर्थिक सम्पन्नता के साथ जनसंख्या बढ़ती है जो गलत है। इस दृष्टि से यह सिद्धान्त मानव के भविष्य के सम्बन्ध में आशावादी है। उपर्युक्त दोनों दृष्टियों से यह सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त से श्रेष्ठ है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism)

मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं :

(१) इस सिद्धान्त में केवल जैविकीय पक्ष (biological aspect) की ही प्रधानता है; जबकि जनसंख्या के एक पूर्ण सिद्धान्त के लिए अन्य पक्षों, जैसे, सामाजिक तथा आर्थिक पक्षों पर भी उचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

(२) यह सिद्धान्त वातावरण (environment) में परिवर्तन तथा परिणामस्वरूप, मनुष्य के विचारों, स्वभाव, चरित्र इत्यादि में परिवर्तनों पर उचित ध्यान नहीं देता।

निष्कर्ष (Conclusion)

इन आलोचनाओं के होने पर भी व्यावहारिक जीवन में (विशेषतया यूरोपीय देशों में) मोटे रूप से जनसंख्या के विकास का क्रम इस सिद्धान्त के अनुसार ही पाया जाता है। इस सिद्धान्त को बहुत मान्यता प्राप्त हुई है।

शुद्ध पुनरुत्पादन दर का सिद्धान्त
(THEORY OF NET REPRODUCTION RATE)

प्राक्कथन

आधुनिक काल में जीवशास्त्रियों तथा अर्थशास्त्रियों ने जनसंख्या के विकास से सम्बन्धित गहन अध्ययन किये हैं। एक ऐसा अध्ययन प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कुजिन्स्की (Kuczynsky) ने किया है जो 'शुद्ध पुनरुत्पादन दर का सिद्धान्त' के नाम से विख्यात है। यह सिद्धान्त जनसंख्या के मापने की रीति पर प्रकाश डालता है।

प्रो० पर्ल ने किसी देश की जनसंख्या की भविष्य की प्रवृत्ति मापने के लिए एक प्रकार के सूचकांकों (index numbers) का प्रयोग किया जो उनके नाम पर 'Pearl's Vital Index

Number' कहे जाते हैं। उनके अनुसार, यदि किसी देश में एक दिये हुए समय में जन्म-दर मृत्यु-दर से अधिक है तो जनसंख्या में वृद्धि होगी। इसके विपरीत यदि जन्म-दर मृत्यु-दर से कम है तो जनसंख्या में कमी होगी। परन्तु Pearl's Vital Index उतना सन्तोषजनक नहीं है जैसा कि ऊपर से दिखायी पड़ता है।

शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त का कथन (Statement of the Theory of net Reproduction Rate)

कुजिस्की (Kuczynsky) ने बताया है कि किसी देश में जनसंख्या की वृद्धि की दर जन्म-दर तथा मृत्यु-दर के अन्तर पर निर्भर नहीं करती। यह तो उन औरतों की संख्या पर निर्भर करती है जो बच्चे उत्पन्न करने की आयु (child bearing age) की हैं। इस बात को जानने के लिए अर्थात जनसंख्या के विकास की वास्तविक स्थिति को ज्ञात करने के लिए शुद्ध पुनरुत्पादन दर की रीति का प्रयोग किया जाता है। **"जिस दर से स्त्री जाति अपने आपको प्रतिस्थापित करती है वह शुद्ध पुनरुत्पादन दर कहलाती है।"**[15]

शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त की व्याख्या तथा गणना (Explanation and Calculation)

वास्तव में, जन्म-दर तथा मृत्यु-दर के अन्तर के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि जनसंख्या में वृद्धि हो रही है या कमी। कुछ देशों में यह देखा गया कि जन्म-दर मृत्यु-दर से अधिक थी परन्तु देश की जनसंख्या गिर रही थी। इसका कारण यह हो सकता है कि अधिकांश नये बच्चे जन्म लेने के बाद सन्तान उत्पादन की आयु तक पहुँचने से पहले ही मर जाते होंगे। इसके विपरीत यह भी देखा गया कि मृत्यु-दर के जन्म-दर से अधिक होते हुए भी किसी देश की जनसंख्या में कमी होने के स्थान पर वृद्धि होती है; इसका कारण यह हो सकता है कि अधिक मृत्यु बूढ़े लोगों की होती हो। अतः जनसंख्या के विकास की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए शुद्ध पुनरुत्पादन दर निकालनी पड़ती है। शुद्ध पुनरुत्पादन दर की गणना (calculation) निम्न प्रकार से की जाती है :

(१) सर्वप्रथम, उन औरतों की कुल संख्या मालूम कीजिए जो सन्तान उत्पादन आयु (child bearing age) की हों (अर्थात जो १५-५० या १५-४५ वर्ष के अन्तर्गत आती हों); इसके पश्चात उनको उचित (suitable) आयु-वर्गों (जैसे, १५-२०, २०-२५, २५-३० इत्यादि) में बाँट दीजिए।

(२) यह मालूम कीजिए कि प्रत्येक आयु-वर्ग की औरतों के कितनी लड़कियों के उत्पन्न होने की सम्भावना है।

(३) क्रम २ के अन्तर्गत निकाली गयी लड़कियों में से उन लड़कियों की संख्या घटा दीजिए जिनकी सन्तान उत्पन्न करने की आयु प्राप्त करने से पहले ही मृत्यु हो जाने की सम्भावना है या जो अविवाहित रहती हैं या विधवा हो जाती हैं, इसके लिए जन्म-दर तथा मृत्यु-दर के आँकड़ों की सहायता लेनी पड़ेगी।

(४) क्रम ३ से प्राप्त संख्या हमें उन लड़कियों की संख्या बतायेगी जो वास्तव में सन्तान उत्पादन आयु से गुजरती हैं और लड़कियों को जन्म देंगी।

(५) क्रम ४ का क्रम १ से अनुपात (ratio) मालूम कर लिया जाता है और यही अनुपात शुद्ध पुनरुत्पादन दर (NRR) कहलाती है। इसमें तीन निम्न स्थितियाँ हो सकती हैं :

---

15 "The rate at which the female population is replacing itself is the net reproduction rate."

(अ) यदि सन्तान उत्पादन आयु की औरतों की कुल संख्या १,००० है अर्थात् क्रम १=१,००० औरतों के है; तथा माना कि वास्तव में, सन्तान उत्पादन की आयु से गुजरने वाली कुल लड़कियों की संख्या भी १,००० है, अर्थात् क्रम ४=१,००० औरतों के है; क्रम ४ का क्रम १ के

के साथ अनुपात होगा $\frac{१,०००}{१,०००}$=१, इस स्थिति में शुद्ध पुनरुत्पादन दर (NRR) इकाई (unity)

के बराबर हुई, इसका अर्थ है कि वर्तमान जनसंख्या स्वयं को पूर्णतया प्रतिस्थापित (replace) करती है, अर्थात् जनसंख्या स्थिर (stationary) रहेगी।

(ब) यदि क्रम १=१००० औरतों के तथा क्रम ४=६०० औरतों के तो NRR

=$\frac{६००}{१,०००}$=.६ अर्थात् NRR इकाई से कम है और जनसंख्या गिर रही है।

(स) यदि क्रम १=१,००० औरतों के तथा क्रम ४=१,५००० औरतो के, तो NRR

=$\frac{१,५००}{१,०००}$=१'५, अर्थात् NRR इकाई से अधिक है और जनसंख्या में वृद्धि हो रही है।

शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation of the Theory of Net Reproduction Rate)—

(७) यह सिद्धान्त 'सन्तान उत्पादन शक्ति' (fecundity) तथा 'प्रजनन-उर्वरता' (fertility) में स्पष्ट अन्तर करता है। प्रकृति मनुष्य को बहुत अधिक 'सन्तान उत्पादन शक्ति' प्रदान करती है, परन्तु व्यावहारिक जीवन में इस शक्ति में लड़कियों की मृत्यु, विधवापन (widowhood), जन्म-दर को कम करने के लिए कृत्रिम साधनों के प्रयोग इत्यादि के कारण बहुत कमी हो जाती है अर्थात् 'प्रजनन उर्वरता' कम रहती ...
'सन्तान उत्पादन शक्ति' है (fertility is realised ...
अन्तर नहीं किया था जो कि उचित नहीं था।

(२) कई यूरोपीय देशों की शुद्ध पुनरुत्पादन दर (NRR) इकाई से कम है; यह बात भी माल्थस के इस कथन का खण्डन करती है कि जनसंख्या सदैव बढ़ती है।

(३) यह सिद्धान्त जनसंख्या के विकास के माप के लिए एक विवेकपूर्ण (rational) दृष्टिकोण प्रदान करता है; परन्तु यह सिद्धान्त भी जनसंख्या का एक पूर्ण सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह तो केवल जनसंख्या के विकास के मापने की रीति प्रस्तुत करता है और अन्य पहलुओं (aspects) पर चुप है।

जनसंख्या की वृद्धि तथा आर्थिक विकास
(POPULATION GROWTH AND ECONOMIC DEVELOPMENT)

आज के युग में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जनसंख्या का विकास किसी देश के आर्थिक विकास को किस प्रकार प्रभावित करता है। 'अनु-जनसंख्या' (under-population) तथा 'अति-...' ... सामान्यतया, आर्थिक विकास में बाधक है।
... सम्बन्ध पर विचार करेंगे, तत्पश्चात अति-

Number' कहे जाते हैं। उनके अनुसार, यदि किसी देश में एक दिये हुए समय में जन्म-दर मृत्यु-दर से अधिक है तो जनसंख्या में वृद्धि होगी। इसके विपरीत यदि जन्म-दर मृत्यु-दर से कम है तो जनसंख्या में कमी होगी। परन्तु Pearl's Vital Index उतना सन्तोषजनक नहीं है जैसा कि ऊपर से दिखायी पड़ता है।

शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त का कथन (Statement of the Theory of net Reproduction Rate)

कुजिस्की (Kuczynsky) ने बताया है कि किसी देश में जनसंख्या की वृद्धि की दर जन्म-दर तथा मृत्यु-दर के अन्तर पर निर्भर नहीं करती। यह तो उन औरतों की संख्या पर निर्भर करती है जो बच्चे उत्पन्न करने की आयु (child bearing age) की हैं। इस बात को जानने के लिए अर्थात जनसंख्या के विकास की वास्तविक स्थिति को ज्ञात करने के लिए शुद्ध पुनरुत्पादन दर की रीति का प्रयोग किया जाता है। **"जिस दर से स्त्री जाति अपने आपको प्रतिस्थापित करती है वह शुद्ध पुनरुत्पादन दर कहलाती है।"**[15]

शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त की व्याख्या तथा गणना (Explanation and Calculation)

वास्तव में, जन्म-दर तथा मृत्यु-दर के अन्तर के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि जनसंख्या में वृद्धि हो रही है या कमी। कुछ देशों में यह देखा गया कि जन्म-दर मृत्यु-दर से अधिक थी परन्तु देश की जनसंख्या गिर रही थी। इसका कारण यह हो सकता है कि अधिकांश नये बच्चे जन्म लेने के बाद सन्तान उत्पादन की आयु तक पहुँचने से पहले ही मर जाते होंगे। इसके विपरीत यह भी देखा गया कि मृत्यु-दर के जन्म-दर से अधिक होते हुए भी किसी देश की जनसंख्या में कमी होने के स्थान पर वृद्धि होती है; इसका कारण यह हो सकता है कि अधिक मृत्यु बूढ़े लोगों की होती हो। अतः जनसंख्या के विकास की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए शुद्ध पुनरुत्पादन दर निकालनी पड़ती है। शुद्ध पुनरुत्पादन दर की गणना (calculation) निम्न प्रकार से की जाती है :

(१) सर्वप्रथम, उन औरतों की कुल संख्या मालूम कीजिए जो सन्तान उत्पादन आयु (child bearing age) की हों (अर्थात जो १५-५० या १५-४५ वर्ष के अन्तर्गत आती हों); इसके पश्चात उनको उचित (suitable) आयु-वर्गों (जैसे, १५-२०, २०-२५, २५-३० इत्यादि) में बाँट दीजिए।

(२) यह मालूम कीजिए कि प्रत्येक आयु-वर्ग की औरतों के कितनी लड़कियों के उत्पन्न होने की सम्भावना है।

(३) क्रम २ के अन्तर्गत निकाली गयी लड़कियों में से उन लड़कियों की संख्या घटा दीजिए जिनकी सन्तान उत्पन्न करने की आयु प्राप्त करने से पहले ही मृत्यु हो जाने की सम्भावना है या जो अविवाहित रहती हैं या विधवा हो जाती हैं, इसके लिए जन्म-दर तथा मृत्यु-दर के आँकड़ों की सहायता लेनी पड़ेगी।

(४) क्रम ३ से प्राप्त संख्या हमें उन लड़कियों की संख्या बतायेगी जो वास्तव में सन्तान उत्पादन आयु से गुजरती हैं और लड़कियों को जन्म देंगी।

(५) क्रम ४ का क्रम १ से अनुपात (ratio) मालूम कर लिया जाता है और यही अनुपात शुद्ध पुनरुत्पादन दर (NRR) कहलाती है। इसमें तीन निम्न स्थितियाँ हो सकती हैं :

---

15 "The rate at which the female population is replacing itself is the net reproduction rate."

(अ) यदि सन्तान उत्पादन आयु की औरतों की कुल संख्या १,००० है अर्थात् क्रम १=१,००० औरतों के है; तथा माना कि वास्तव में, सन्तान उत्पादन की आयु से गुजरने वाली कुल लड़कियों की संख्या भी १,००० है, अर्थात् क्रम ४=१,००० औरतों के है; क्रम ४ का क्रम १ के

के साथ अनुपात होगा $\frac{१,०००}{१,०००}$=१, इस स्थिति में शुद्ध पुनरुत्पादन दर (NRR) इकाई (unity) के बराबर हुई, इसका अर्थ है कि वर्तमान जनसंख्या स्वयं को पूर्णतया प्रतिस्थापित (replace) करती है, अर्थात् जनसंख्या स्थिर (stationary) रहेगी।

(ब) यदि क्रम १=१००० औरतों के तथा क्रम ४=६०० औरतों के तो NRR

=$\frac{६००}{१,०००}$=.६ अर्थात् NRR इकाई से कम है और जनसंख्या गिर रही है।

(स) यदि क्रम १=१,००० औरतों के तथा क्रम ४=१,५००० औरतों के, तो NRR

=$\frac{१,५००}{१,०००}$=१·५, अर्थात् NRR इकाई से अधिक है और जनसंख्या में वृद्धि हो रही है।

शुद्ध पुनरुत्पादन दर के सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation of the Theory of Net Reproduction Rate)--

(१) यह सिद्धान्त 'सन्तान उत्पादन शक्ति' (fecundity) तथा 'प्रजनन-उर्वरता' (fertility) में स्पष्ट अन्तर करता है। प्रकृति मनुष्य को बहुत अधिक 'सन्तान उत्पादन शक्ति' प्रदान करती है, परन्तु व्यावहारिक जीवन में इस शक्ति में लड़कियों की मृत्यु, विधवापन (widowhood), जन्म-दर को कम करने के लिए कृत्रिम साधनों के प्रयोग इत्यादि के कारण बहुत कमी हो जाती है अर्थात् 'प्रजनन उर्वरता' कम रहती है। दूसरे शब्दों में, 'प्रजनन उर्वरता' प्राप्त 'सन्तान उत्पादन शक्ति' है (fertility is realised fecundity)। माल्थस ने इन दोनों में कोई अन्तर नहीं किया था जो कि उचित नहीं था।

(२) कई यूरोपीय देशों की शुद्ध पुनरुत्पादन दर (NRR) इकाई से कम है; यह बात भी माल्थस के इस कथन का खण्डन करती है कि जनसंख्या सदैव बढ़ती है।

(३) यह सिद्धान्त जनसंख्या के विकास के माप के लिए एक विवेकपूर्ण (rational) दृष्टिकोण प्रदान करता है; परन्तु यह सिद्धान्त भी जनसंख्या का एक पूर्ण सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह तो केवल जनसंख्या के विकास के मापने की रीति प्रस्तुत करता है और अन्य पहलुओं (aspects) पर चुप है।

जनसंख्या की वृद्धि तथा आर्थिक विकास
(POPULATION GROWTH AND ECONOMIC DEVELOPMENT)

आज के युग में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जनसंख्या का विकास किसी देश के आर्थिक विकास को किस प्रकार प्रभावित करता है। 'अनु-जनसंख्या' (under-population) तथा 'अति-जनसंख्या' (over-population) दोनों ही, सामान्यतया, आर्थिक विकास में बाधक है। पहले हम अनु-जनसंख्या तथा आर्थिक विकास के सम्बन्ध पर विचार करेंगे, तत्पश्चात अति-जनसंख्या और आर्थिक विकास पर।

अनु-जनसंख्या तथा आर्थिक विकास (Under Population and Economic Development)

अनु-जनसंख्या का अर्थ है कि जनसंख्या देश के उत्पादक साधनों के पूर्ण शोषण के लिए अपर्याप्त है। प्रो० हिक्स (Hicks) के अनुसार, कम जनसंख्या एक देश की अर्थव्यवस्था के उचित विकास के लिए निम्न दो प्रकार से बाधक होती है :

(१) एक देश में बहुत से ऐसे कार्य होते हैं जिनमें श्रम की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है जैसे—रेलों, पुलों, सड़कों इत्यादि के निर्माण में। जनसंख्या की कमी के कारण इनका निर्माण सम्भव नहीं हो पायेगा या इनका निर्माण बहुत धीमी गति से होगा और इतने लम्बे समय में पूर्ण हो पायेगा कि इनके बनाने वालों को उनके जीवन काल में कोई लाभ नहीं होगा। इन आधारभूत तत्त्वों की अनुपस्थिति में देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन कम होगा और देश के आर्थिक विकास में बाधा पड़ेगी।

(२) देश में जनसंख्या की कमी के कारण विशिष्टीकरण (specialisation) तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं हो पायेगा। श्रमिक विभिन्न प्रकार के कार्यों में विशिष्टीकरण प्राप्त करते हैं, तथा विशिष्ट मशीनों (highly specialised equipment) के प्रयोग से उनकी दक्षता और अधिक बढ़ती है। इस विशिष्टीकरण के कारण ही बड़े पैमाने के उद्योग सम्भव हो सके हैं। परन्तु जनसंख्या की कमी के कारण विशिष्टीकरण सम्भव नहीं होगा और इसलिए बड़े पैमाने के उद्योग स्थापित नहीं किये जा सकेंगे। दूसरे, जनसंख्या की कमी के कारण देश में उत्पादित औद्योगिक वस्तुओं का बाजार संकीर्ण होगा जिससे औद्योगीकरण को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। तीसरे, बड़े तथा आधारभूत उद्योगों की कमी के कारण देश की कृषि भी पिछड़ी अवस्था में रहेगी। उन्नत कृषि के लिए मशीनें, ट्रेक्टर, खाद इत्यादि की आवश्यकता है जो बड़े पैमाने के उद्योगों द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार बड़े पैमाने के उद्योगों की अनुपस्थिति में कृषि भी पिछड़ी अवस्था में रहेगी। संक्षेप में, जनसंख्या की कमी के कारण देश 'बड़े पैमाने की बचतों' से वंचित रहेगा, देश में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन कम होगा तथा देश के आर्थिक विकास में बाधा होगी।

प्रो० हिक्स के अनुसार, कम तथा अनु-जनसंख्या की उपर्युक्त हानियाँ (disadvantages) एक सीमा तक देशों में व्यापार द्वारा कम हो सकती हैं। एक कम जनसंख्या वाला देश अपनी स्थिति के अनुसार कुछ वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण कर सकता है और अतिरिक्त उत्पादन (surplus production) को दूसरे देशों में बेचकर उन देशों से वे वस्तुएँ प्राप्त कर सकता है जिनका उत्पादन वह स्वयं नहीं करता है। परन्तु विदेशी व्यापार द्वारा विशिष्टीकरण की सीमा को अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता है क्योंकि वस्तुओं को एक देश से दूसरे देश को लाने ले जाने में बहुत खर्चा पड़ता है।

उपर्युक्त विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि एक सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि आवश्यक है ताकि विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यों को कार्यान्वित किया जा सके, विशिष्टीकरण तथा बड़े पैमाने के उद्योग सम्भव हो सकें, तथा देश में वस्तुओं के लिए एक अच्छा बाजार मिल सके। स्पष्ट है कि जनसंख्या की वृद्धि सदैव हानिकारक नहीं होती; यदि जनसंख्या अनुकूलतम से अधिक हो जाती है तब उसका बढ़ना उचित नहीं होगा।

अति-जनसंख्या तथा आर्थिक विकास (Over-population and Economic Development)

अति जनसंख्या की कई हानियाँ हैं जो कि एक देश के आर्थिक विकास में बाधक होती हैं। ये निम्न हैं :

(१) उत्पत्ति ह्रास नियम का लागू होना (Law of diminishing returns starts operating)—विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के संयोग से उत्पादन किया जाता है। यदि देश में जनसंख्या बढ़ती जाती है तो श्रम, अन्य उत्पत्ति के साधनों अर्थात् भूमि तथा पूँजी की अपेक्षा बहुत अधिक हो जाता है; परिणामस्वरूप कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है अर्थात् सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन घटने लगते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है। यदि श्रम के साथ-साथ भूमि तथा पूंजी में भी वृद्धि होती है तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू नहीं होगा। पूंजी में वृद्धि हो सकती है परन्तु भूमि में वृद्धि नहीं की जा सकती है क्योंकि वह सीमित है। केवल एक सीमा तक ही गहरी खेती द्वारा भूमि की 'प्रभावोत्पादक पूर्ति' (effective supply) को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार अति-जनसंख्या हानिकारक सिद्ध होती है क्योंकि उसकी वृद्धि के साथ अन्य उत्पत्ति के साधनों, विशेषतया भूमि, को उसी अनुपात में नहीं बढ़ाया जा सकता जिस अनुपात में जनसंख्या बढ़ती है।

(२) जीवन स्तर में गिरावट (Fall in the standard of living)—जनसंख्या में वृद्धि के साथ साथ पदार्थों, वस्त्रों, मकानों इत्यादि की मांग में बहुत अधिक वृद्धि होती है। परन्तु इन वस्तुओं की पूर्ति को उसी अनुपात में नहीं बढ़ाया जा पाता है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील रहता है। परिणामस्वरूप जीवन स्तर गिरने लगता है तथा लोगों को गरीबी तथा कष्टों का सामना करना पड़ता है।

(३) पूंजी निर्माण में बाधा (Hinderance in capital formation)—अविकसित देशों (जैसे भारत) में अधिक जनसख्या पूंजी निर्माण में [illegible] ा के लिए कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्य[illegible] आवश्यकता होती है। अधिक विनियोग के [illegible] हो। परन्तु उच्च जन्म-दर (high birth rate) तथा अति-जनसंख्या बचतों को कम करती है, परिणामस्वरूप पूंजी निर्माण की दर निम्न हो जाती है। अतः अति-जनसंख्या देश के आर्थिक विकास में बहुत बड़ी बाधा है।

परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि जब एक देश इतना अधिक धनवान हो जाता है कि वह अपने साधनों से ही पूंजी-यन्त्र (capital equipment) को तीव्र गति से बढ़ा सकता है तो ऐसे देश में अति-जनसंख्या का डर बहुत दूर (remote) हो जाता है। अतः उन्नतशील देशों (advanced countries) में जनसंख्या वृद्धि लाभदायक सिद्ध होती है। ऐसे देशों में जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होंगी, विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि नये मकानों, नयी मशीनों, इत्यादि की मांग बढ़ेगी, बेकारी दूर होगी और रोजगार को बनाये रखना आसान होगा। परन्तु अविकसित देशों में परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं, इसलिए इनमें उच्च जन्म-दर तथा तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास को रोकती है।

विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन
[SPECIALISATION AND DIVISION OF LABOUR]

आधुनिक समाज में विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। आधुनिक औद्योगीकरण तथा औद्योगिक दक्षता में विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। एक देश जितना अधिक उन्नतशील होगा उसमें विशिष्टीकरण की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। अतः विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता हो गयी है।

श्रम-विभाजन का अर्थ
(MEANING OF DIVISION OF LABOUR)

श्रम-विभाजन उत्पादन की वह प्रणाली है जिसके अन्तर्गत कार्य विशेष को कई विधियों (processes) या उप-विधियों (sub-processes) में बांट दिया जाता है और प्रत्येक विधि या उप-विधि को विभिन्न व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूहों द्वारा पूरा किया जाता है।

'विशिष्टीकरण' (specialisation) तथा 'श्रम-विभाजन' (division of labour) में थोड़ा अन्तर होता है। विशिष्टीकरण का अर्थ है कि कार्य या कार्यों को एक निश्चित क्षेत्र तक ही सीमित रखा जाता है।[1] विशिष्टीकरण एक अधिक विस्तृत शब्द है, श्रम-विभाजन विशिष्टीकरण की केवल एक किस्म है। यदि 'श्रमिकों का विशिष्टीकरण' होता है तो इसे 'श्रम-विभाजन' कहा जाता है। कुछ क्षेत्रों में कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं का ही उत्पादन हो सकता है, इसे 'क्षेत्रों का विशिष्टीकरण' (specialisation of regions or localities) कहा जाता है; संक्षेप में, इसे केवल 'स्थानीयकरण' (localisation) भी कहते हैं। इसी प्रकार आज के युग में 'पूंजी का विशिष्टीकरण' (specialisation of capital) भी होता है; बहुत-सी मशीनें या औजार ऐसे होते हैं जिनको केवल एक ही प्रकार के कार्य में प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार से विशिष्टीकरण एक अधिक उपयुक्त (suitable) शब्द है और अधिक विस्तृत है; श्रम, क्षेत्रों, पूंजी आदि का विशिष्टीकरण हो सकता है; केवल 'श्रम के विशिष्टीकरण' को ही 'श्रम-विभाजन' कहा जाता है।

श्रम-विभाजन के प्रकार
(KINDS OF DIVISION OF LABOUR)

श्रम-विभाजन के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं :

(१) सरल श्रम विभाजन (Simple division of labour)—प्रो० टॉमस के अनुसार "जब कोई कार्य एक व्यक्ति के लिए बहुत बड़ा, कठिन अथवा भारी हो और उसे दो या दो से

---

1 Specialisation means limiting the range of our activity or the limitation of activity within a particular field.

अधिक व्यक्ति एक ही प्रकार से काम करते हुए सम्पन्न करने में सहयोग करें तो इसे सरल श्रम-विभाजन कहा जाता है।"[2] उदाहरणार्थ, कई व्यक्तियों का एक बड़े खेत को जोतना या फसल को काटना, या कई मजदूरों द्वारा किसी भारी बोझ को उठाना, इत्यादि सरल- श्रम विभाजन के अन्तर्गत आते हैं।

कुछ अर्थशास्त्रियों ने सरल श्रम विभाजन को एक दूसरी प्रकार से परिभाषित किया है। इनके अनुसार, जब किसी व्यवसाय का पूरा कार्य प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्रायः एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाय तो इसे सरल श्रम विभाजन कहा जाता है। उदाहरणार्थ, कृषि का सम्पूर्ण कार्य प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कृषक द्वारा करना, एक जुलाहे द्वारा कपड़ा बुनने के सारे कार्य करना, इत्यादि सरल श्रम विभाजन के अन्तर्गत आते है। दूसरे शब्दों मे, सम्पूर्ण समाज विभिन्न व्यवसायो मे बँट जाता है; इसलिए इसे व्यावसायिक श्रम विभाजन (occupational division of labour) भी कहते हैं।

(२) जटिल (या विषम) श्रम विभाजन (Complex division of labour)—प्रो० टॉमस[3] के अनुसार, श्रम विभाजन को जटिल तब कहा जाता है जबकि प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्तियो का समूह कोई ऐसा विशिष्ट कार्य (specialised function) करता है जो अन्तिम उत्पादन मे केवल सहायक मात्र होता है। उदाहरणार्थ, कपड़ा उद्योग में रुई कातने का कार्य व्यक्तियों के एक समूह द्वारा किया जाता है और कपड़ा बुनने का कार्य व्यक्तियों के दूसरे समूह द्वारा; इसे जटिल श्रम विभाजन कहेंगे।

जटिल श्रम विभाजन के निम्नलिखित दो रूप होते हैं :

(अ) पूर्ण विधि श्रम-विभाजन (Division of labour into complete processes)—जब किसी उद्योग में उत्पादन कार्य को कई विधियों में बाँट दिया जाता है तथा प्रत्येक विधि पृथक-पृथक श्रम समूह द्वारा पूरा करते हैं तथा एक श्रम समूह द्वारा उत्पन्न वस्तु दूसरे श्रम-समूह के लिए कच्ची सामग्री की भाँति कार्य करती है, तब इसे 'पूर्ण विधि श्रम-विभाजन' कहा जाता है। चूँकि इसके अन्तर्गत उत्पादन कार्य की विभिन्न विधियाँ अपने मे पूर्ण होती है, इसलिए इसे पूर्ण विधि श्रम विभाजन कहा जाता है। इस प्रणाली मे, जैसा कि स्पष्ट है, विभिन्न श्रम-समूहों मे सहयोग की बहुत आवश्यकता है क्योंकि यदि किसी श्रम-समूह का कार्य रुक जाता है तो समस्त उत्पादन कार्य में बाधा पड जाती है। उदाहरणार्थ, कपड़ा उद्योग को विभिन्न विधियो, परन्तु पूर्ण विधियो, मे बाँट दिया जाता है, जैसे रुई कातना, कपड़ा बुनना, रंगाई इत्यादि।

(ब) अपूर्ण विधि श्रम-विभाजन (Division of labour into incomplete processes)—'अपूर्ण विधि श्रम-विभाजन' के अन्तर्गत किसी उद्योग में उत्पादन कार्य की पूर्ण विधियों को अनेक अपूर्ण उप-विधियों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक उप-विधि विभिन्न विशिष्ट श्रम-समूहों द्वारा सम्पन्न की जाती है; इसमें सामूहिक उत्पादन में सहायता तो मिलती है परन्तु विभिन्न श्रम-समूहों के अंशदान का प्राय. कोई स्वतन्त्र मूल्य नहीं होता। 'पूर्ण विधि श्रम-विभाजन' के अन्तर्गत जो पूर्ण विधि थी वह अब एक पूर्ण उद्योग हो जाती है जिसमे अनेक उप-विधियाँ हो जाती

---

2 "Division of labour is described as *simple* when two or more men, working in the same way, co-operate to perform a single task, too extensive, difficult or burdensome to be carried out effectively by one man alone.."

—S. E. Thomas : *Elements of Economics*, p. 17.

3 "The division (of labour) is described as *complex* when each man or group of men undertakes a specialised function which is contributory only to the final result."

—Thomas, *Elements of Economics*, p. 87.

यह भी आवश्यक है कि साहसी तथा प्रबन्धक योग्य और दक्ष हों तभी श्रम विभाजन की उचित व्यवस्था की जा सकेगी अन्यथा नहीं।

(८) वातावरण का योग (The role of environment)—उचित वातावरण सम्बन्धी तत्त्व श्रम-विभाजन को प्रोत्साहित करते हैं : (i) एक ऐसा मुख्य तत्त्व है कि लोग परिवर्तनों को स्वीकार करने तथा उनके साथ समायोजन करने को तत्पर हों। यदि लोगों का ऐसा दृष्टिकोण नहीं है तो उत्पादन की नयी रीतियों के प्रयोग में बहुत कठिनाई होगी तथा श्रम विभाजन का क्षेत्र बहुत सीमित रह जायेगा। (ii) दूसरा तत्त्व है कि लोगों का जीवन-दर्शन (philosophy of life) वर्तमान जीवन के लिए कार्य करने के हेतु प्रोत्साहन प्रदान करता हो। यदि लोग भाग्यवादी हैं तथा 'दूसरी दुनिया' (next world) की बात पर अधिक ध्यान देते हैं तो वे उत्पादन के क्षेत्र में, नयी रीतियों की खोज तथा आविष्कार पर कम ध्यान देंगे और इस प्रकार श्रम विभाजन का क्षेत्र सीमित रह जायेगा।

श्रम-विभाजन के लाभ
(BENEFITS OF DIVISION OF LABOUR)

श्रम-विभाजन से श्रमिकों, मालिकों, तथा समाज को कई लाभ हैं जो निम्नलिखित हैं :

(१) मानव साधन का अधिक अच्छा प्रयोग (More effective use of human resources)—प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव, योग्यता तथा रुचि (aptitude) भिन्न-भिन्न होती है। कुछ व्यक्ति शारीरिक कार्य अधिक अच्छी तरह से कर सकते हैं जबकि वे पढ़ाने के कार्य के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते। एक जूते के बनाने में कई क्रियाएँ होती हैं; इनमें से सरल क्रियाओं को कुछ व्यक्ति कर सकते हैं जबकि कठिन क्रियाओं को कुछ दूसरे व्यक्ति ठीक प्रकार से कर सकते हैं। श्रम विभाजन द्वारा प्रत्येक मनुष्य को अपने स्वभाव, योग्यता तथा रुचि के अनुसार कार्य मिल जाता है और इस प्रकार मानव साधनों का अधिक अच्छा प्रयोग होता है। इससे उत्पादन बढ़ेगा।

(२) दक्षता में वृद्धि (Increase in efficiency)—श्रम-विभाजन के अन्तर्गत जब एक मनुष्य एक ही कार्य को बार-बार तथा लम्बे समय तक करता रहता है तो उसकी दक्षता में वृद्धि होती है क्योंकि स्पष्ट है कि 'अभ्यास मनुष्य को पूर्ण बनाता है'। श्रमिकों की दक्षता में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है।

(३) कार्यों का सरल होना (Simplification of tasks)—श्रम विभाजन के अन्तर्गत एक जटिल उत्पादन कार्य को कई सरल भागों या उप-विधियों में बाँट दिया जाता है। एक औसत श्रमिक इन सरल भागों या उप-विधियों को आसानी से तथा बहुत कम समय में सीख लेता है। इस प्रकार एक श्रमिक का प्रशिक्षण अवधि बहुत कम हो जाती है और एक श्रमिक बिना लम्बे समय के प्रशिक्षण के किसी भी कारखाने में कार्य प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त, कार्यों के सरल भागों में बँट जाने के कारण मानसिक या शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ व्यक्तियों (handicapped persons) को भी रोजगार मिल जाता है जिससे वे अपने सामाजिक जीवन को सुखी बना सकते हैं।

(४) समय की बचत (Saving of time)—श्रम-विभाजन में एक श्रमिक एक ही कार्य या उप-विधि में लगा रहता है तथा वह एक ही प्रकार के औजार से कार्य करता है या एक ही मशीन पर कार्य करता है। एक कार्य को छोड़कर दूसरे कार्य प्रारम्भ करने तथा एक औजार को छोड़कर दूसरे औजार को उठाने इत्यादि में जो समय नष्ट होता है वह श्रम विभाजन के अन्तर्गत बच जाता है। इस प्रकार श्रम विभाजन में समय की बचत होती है, उत्पादन में निरन्तरता (continuity) बनी रहती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

(५) **यन्त्रों या औजारों की बचत** (Saving of tools)—यदि एक व्यक्ति एक से अधिक कार्य करता है तो उसे यन्त्रों के एक सैट (set) से अधिक सैटों की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु श्रम विभाजन में एक क्रिया को कई सरल क्रियाओं में बाँट देने से प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग यन्त्रों का प्रयोग करता है, उसके लिए सभी प्रकार के यन्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अतः श्रम-विभाजन में औजारों का द्विगुणन (duplication) नहीं होता; इस प्रकार औजारों की बचत हो जाती है।

(६) **मशीनों का अधिक प्रयोग तथा उनका मितव्ययितापूर्ण प्रयोग** (Greater use of machinary and its economical use)—श्रम विभाजन में एक कार्य कई भागों या उपविधियों में बाँट दिया जाता है; जब प्रत्येक भाग या उपविधि का सरलीकरण हो जाता है तो उसको पूरा करने के लिए एक मशीन बना दी जाती है। इस प्रकार श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप मशीनों का अधिक प्रयोग होने लगता है।

श्रम विभाजन के अन्तर्गत मशीनों का मितव्ययितापूर्ण प्रयोग होता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक ही मशीन पर कार्य करता है और वह मशीन बेकार नहीं रहती है। (यदि एक व्यक्ति को कई कार्य करने पड़ते हैं तो उसे कई मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है, ऐसा करने में कुछ समय के लिए एक मशीन बेकार पड़ी रहती है जबकि वह दूसरी मशीन पर कार्य करता है; इस प्रकार मशीनों का मितव्ययिता से प्रयोग नहीं होता है।)

(७) **श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि** (Increase in the mobility of workers)—यह लाभ कार्य के अनेक सरल भागों में बँट जाने के परिणामस्वरूप होता है। बड़े-बड़े कारखानों में प्रायः स्व-चालित या अर्द्ध-स्व-चालित मशीनों (automatic on semi-automatic machines) का प्रयोग होता है। इन सब मशीनों के चलाने के ढंग में पर्याप्त समानता पायी जाती है। अतः श्रमिक एक कारखाने से निकलकर दूसरे कारखाने में आसानी से कार्य कर सकते हैं और इसलिए श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि हो जाती है।

(८) **बड़े पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहन** (Encouragement to large scale production)—अन्य बातों के अतिरिक्त (जैसे, बाजार का विस्तृत होना), बड़े पैमाने का उत्पादन बिना श्रम-विभाजन के सम्भव नहीं है। श्रम विभाजन के कारण ही अधिक मशीनों का प्रयोग होता है और उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है। इससे सन्देह नहीं कि बड़े पैमाने का उत्पादन भी श्रम-विभाजन को प्रोत्साहन देता है।

(९) **अधिक आराम** (More leisure)—श्रम-विभाजन के अन्तर्गत मशीनों के प्रयोग से श्रमिक थोड़े समय में अधिक उत्पादन कर सकते हैं और इस प्रकार अधिक आय प्राप्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, श्रमिकों को कम घण्टे कार्य करना पड़ता है और इस प्रकार उन्हें मानसिक तथा शारीरिक मनोरंजन तथा आराम के लिए अधिक समय प्राप्त हो जाता है।

(१०) **आविष्कारों को प्रोत्साहन** (Encouragement to inventions)—श्रमिक एक ही प्रकार का कार्य करते-करते उससे सम्बन्धित सभी बातों—अच्छाइयों तथा कमजोरियों—को समझ लेते हैं। उस कार्य से सम्बन्धित कमजोरियों तथा कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से वे नयी मशीनों का आविष्कार करते हैं।

(११) **रोजगार के अवसरों में वृद्धि** (Increase in employment opportunities)—श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के उद्योगों की स्थापना होती है। इन उद्योगों में भारी, हल्के, सरल तथा जटिल सभी प्रकार के कार्य होते हैं जिनमें पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों

सभी को कार्य मिल जाता है। इस प्रकार रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है और बेरोजगारी कम होती है।

(१२) श्रमिकों में संगठन का होना (Formation of workers union)—श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है; बड़े-बड़े कारखानों में सैकड़ों तथा हजारों की संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं। ये श्रमिक आपस में संगठित होकर श्रम-संघ बनाते हैं ताकि वे मालिकों के शोषण से बच सकें और अपने कार्य को करने की दशाओं को सुधार सकें तथा अपने हितों की रक्षा कर सकें।

(१३) श्रमिकों का सांस्कृतिक तथा मानसिक विकास (Cultural and mental development of workers)—श्रम-विभाजन के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है; कारखानों में देश के विभिन्न भागों से श्रमिक आकर कार्य करते हैं। इन श्रमिकों के रीति-रिवाज, रहन-सहन इत्यादि में बहुत अन्तर होता है; ये श्रमिक एक-दूसरे के सम्पर्क में आकर नयी-नयी बातें सीखते हैं। इस प्रकार उनका सांस्कृतिक तथा मानसिक विकास होता है।

(१४) उत्पादन में वृद्धि तथा ऊँचा जीवन स्तर (Increase in productivity and higher standard of living)—उपर्युक्त सब बातों का परिणाम यह होता है कि श्रमिकों तथा अन्य लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है।

श्रम-विभाजन की हानियाँ
(DISADVANTAGES OF DIVISION OF LABOUR)

यद्यपि श्रम-विभाजन बहुत लाभदायक है, परन्तु इसकी कुछ हानियाँ भी हैं। श्रम विभाजन एक 'अमिश्रित वरदान' (unmixed blessing) नहीं है। इसकी मुख्य हानियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) नीरसता तथा उचाटपन (Monotony and Boredom)—श्रम विभाजन के अन्तर्गत एक श्रमिक एक कार्य को ही दिन प्रति दिन करता रहता है। ऐसी स्थिति में श्रमिक की रुचि कार्य में कम हो जाती है और वह नीरसता तथा उचाटपन अनुभव करता है।

(२) मनुष्य के विकास पर बुरा प्रभाव (Adverse effect on human development)—एक ही कार्य को निरन्तर करते रहने से श्रमिक के मस्तिष्क के केवल कुछ गुणों (faculties) का विकास होता है, अन्य गुणों का नहीं। कार्य में विभिन्नता श्रमिक के मस्तिष्क का विकास करती है, उसके सोचने तथा निर्णय लेने की शक्ति और किसी कार्य के प्रारम्भ करने की शक्ति (initiative) को प्रोत्साहित करती है। परन्तु एक ही प्रकार के कार्य को दोहराते रहने से श्रमिक का मस्तिष्क संकुचित हो जाता है और श्रमिक के व्यक्तित्व का उचित विकास नहीं होता।

(३) उत्तरदायित्व की भावना में कमी (Loss of the sense of rssponsibility)—श्रम विभाजन के अन्तर्गत प्रत्येक सम्पूर्ण कार्य अनेक श्रमिकों के प्रयत्नों का परिणाम होता है। कोई भी एक श्रमिक या श्रमिकों का एक समूह एक कार्य को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक नहीं करता, वह सम्पूर्ण कार्य के केवल एक भाग को करता है। ऐसी स्थिति में यदि अन्तिम वस्तु (finished product) निम्न कोटि की निकलती है तो इसका उत्तरदायित्व किसी एक श्रमिक या श्रमिकों के एक समूह पर रखना असम्भव हो जाता है। अतः श्रमिकों की उत्तरदायित्व की भावना में कमी आ जाती है।

(४) वर्गवाद को प्रोत्साहन (Encouragement to sectionalism)—श्रम विभाजन विभिन्न प्रकार के विशेषज्ञों (specialists) को जन्म देता है। विशेषज्ञों का प्रत्येक वर्ग अपनी

दुनिया में रहता है तथा वह अन्य विशिष्टों से घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न नहीं करता। प्रत्येक वर्ग अपने हितों तथा स्वार्थों को बनाये रखने में अन्य वर्गों तथा समाज के हितों की चिन्ता नहीं करता है। इस प्रकार समाज को एकता के सूत्र में बाँधने वाले सम्बन्ध (bonds of unity) ढीले पड़ जाते हैं और वर्गवाद को प्रोत्साहन मिलता है।

(५) मशीन तथा कारखाना प्रणाली के सभी दोष (All the drawbacks of machines and factory system)—श्रम विभाजन के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर मशीनों द्वारा उत्पादन होता है, इसलिए मशीनों तथा कारखाना प्रणाली के सभी दोष इसमें आ जाते हैं। मुख्य दोष इस प्रकार हैं:

(अ) स्त्रियों तथा बच्चों का शोषण (Exploitation of woman and children)—श्रम विभाजन में एक जटिल कार्य को कई सरल भागों में बाँट दिया जाता है, इनकी सरलता के कारण इन्हें स्त्रियाँ तथा बच्चे भी कर सकते हैं। उद्योगपति मनुष्यों के स्थान पर स्त्रियों तथा बच्चों को काम पर लगाते हैं ओर उन्हें कम मजदूरी देकर उनका शोषण करते हैं। छोटी आयु से ही बच्चे कारखानों में कार्य करने लगते हैं जिससे उनका शारीरिक विकास रुक जाता है।

(ब) दूषित तथा हानिकारक वातावरण (Unhealthy and harmful environment)—प्राय: कारखानों के चारों ओर का वातावरण गन्दा धूल-मिट्टी वाला, धुएँदार तथा अस्वास्थ्यकर रहता है, मशीनों का बड़ा शोर-गुल रहता है और श्रमिकों को दुर्घटनाओं का सदैव डर रहता है। ऐसे वातावरण का श्रमिकों के मानसिक विकास तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त कारखानों के केन्द्रों में मजदूरों की अत्यधिक भीड़ (over-crowding) होने के कारण मकानों की कमी होती है; ऐसी स्थिति में मजदूर अपने परिवारों को प्राय: गाँवों में छोड़ जाते हैं। इसका प्रभाव श्रमिकों के चरित्र पर बुरा पड़ता है और वे विभिन्न प्रकार की बुराइयों तथा बीमारियों के शिकार बन जाते हैं।

(स) श्रमिकों तथा मालिकों में संघर्ष (Conflict between workers and employers—बड़े-बड़े कारखानों में सैकड़ों तथा हजारों की संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं, परिणामस्वरूप मालिकों का श्रमिकों के साथ निकट का सम्बन्ध नहीं रह जाता है। दो वर्ग हो जाते हैं—एक मालिकों का वर्ग जिनके पास बड़ी आर्थिक शक्ति होती है और दूसरा श्रमिक का वर्ग। श्रमिकों को अपने हितों की रक्षा के लिए निरन्तर मलिकों से संघर्ष करना पड़ता है। औद्योगिक हड़तालों तथा तालाबन्दियों से देश की शान्ति भंग होती है।

(द) अति उत्पादन तथा मन्दी का डर (Over-production and danger of depression)—बड़े पैमाने के उत्पादन में किसी वस्तु का उत्पादन केवल वर्तमान में माँग के अनुसार ही नहीं वरन भविष्य की माँग के अनुसार किया जाता है। यदि वस्तु की माँग अनुमान से कम निकलती है तो उस वस्तु का उत्पादन अधिक हो जाता है और उद्योग विशेष में मन्दी आ जाती है जिसका प्रभाव देश के अन्य उद्योगों तथा अन्य क्षेत्रों में भी पड़ता है। परिणामस्वरूप देश में बेकारी तथा अशान्ति फैल जाती है।

(६) बेरोजगारी का डर (Danger of unemployment)—श्रम विभाजन में एक कार्य को कई सरल भागों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक श्रमिक एक भाग में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेता है। यदि उसका वर्तमान रोजगार छूट जाता तो दूसरी जगह उसे समान कार्य आसानी से नहीं मिलता; इस प्रकार वह बेरोजगार हो जाता है।

(७) पारस्परिक निर्भरता (Interdependence)—श्रम विभाजन व्यक्तियों, समुदायों तथा देशों को एक दूसरे पर अत्यधिक निर्भर बना देता है। देश विशेष में उद्योगों में काम करने

ले अपने खाद्यान्न के लिए कृषकों पर निर्भर करते हैं, यदि किसी कारण कृषि उत्पादन बहुत कम होता है तो उद्योगों में काम करने वाले लोगों तथा कृषि क्षेत्र के बाहर अन्य लोगो को अपने खाने के लिए बड़ी कठिनाई उठानी पड़ेगी। इसी प्रकार कृषक यन्त्रों, कपड़ा इत्यादि वस्तुओं के लिए उद्योगों पर निर्भर करते हैं। इसी प्रकार एक देश दूसरे देश पर बहुत-सी वस्तुओं के लिए निर्भर करता है। इस पारस्परिक निर्भरता के कारण लोगों को कभी-कभी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(८) श्रमिकों की स्वतन्त्रता में कमी (Loss of freedom among workers)—श्रम-विभाजन के अन्तर्गत एक श्रमिक एक ही प्रकार के कार्य को करने के लिए प्रशिक्षित (trained) हो जाता है। यदि उसके वर्तमान व्यवसाय मे स्थिति खराब हो जाती है तो वह आसानी से दूसरे व्यवसायों मे नहीं जा सकता है। इस प्रकार उसकी स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है तथा उसकी गतिशीलता में कमी आ जाती है।

निष्कर्ष—श्रम विभाजन के उपर्युक्त दोषों मे से अधिकांश दोषों या हानियों को कारखानों में कार्य करने की दशाओं में सुधार करके, सरकार की मौद्रिक तथा कर सम्बन्धी नीतियों, सामाजिक सुरक्षा तथा श्रम हितकारी कार्यों की उचित व्यवस्था, इत्यादि द्वारा दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इनके लाभ, दोषों से कहीं अधिक हैं।

श्रम-विभाजन के दोषों को कैसे दूर किया जाय ?
(HOW TO REMOVE THE DISADVANTAGES OF DIVISION OF LABOUR)

श्रम विभाजन की कई हानियाँ हैं, परन्तु इनमे से अधिकांश हानियों को दूर किया जा सकता है। इनको दूर करने के मुख्य उपाय निम्न हैं :

(१) कार्य की नीरसता तथा उचाटपन (monotony and irksomeness) को कारखानों में कार्य करने की दशाओं को सुधार करके दूर किया जा सकता है। आज के युग में अधिकांश बड़े-बड़े उद्योगों मे श्रमिकों को बीच-बीच मे आराम का समय (rest periods) दिया जाता है ताकि वे मानसिक व शारीरिक थकावट दूर करके कार्य को पुनः ताजा दिमाग से कर सकें। इसके अतिरिक्त मानसिक नीरसता को दूर करने के लिए श्रमिकों के कार्य में भी परिवर्तन कर सकते हैं; जब भी अवसर मिले तब मालिक श्रमिकों को एक प्रकार के कार्य से दूसरे प्रकार के कार्य में लगा सकते हैं।

(२) विकसित देशों मे श्रमिकों के विकास पर बुरे प्रभाव को भी दूर किये जाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। विकसित देशों में श्रमिकों के प्रति दिन के कार्य करने के घण्टों मे कमी की जा रही है ताकि उनको आराम तथा मनोरंजन (leisure and recreation) के लिए अधिक समय मिल सके।

(३) श्रमिकों की बेरोजगारी के डर को भी एक सीमा तक दूर किया जा सकता है। यदि श्रमिकों को सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा दी जाय तो वे नये प्रकार के कार्यों को शीघ्रता से समझ सकते हैं। ऐसी स्थिति मे वे अवसर पड़ने पर एक कार्य को छोड़कर दूसरा कार्य कर सकेंगे और उनकी बेरोजगारी का डर कम हो जायगा।

(४) मशीनों तथा कारखाना प्रणाली के अधिकांश दोषों को सरकार श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के कानूनों का निर्माण कर दूर करने का प्रयत्न करती है, जैसे, कारखाना अधिनियम, सामाजिक बीमा योजनाएँ, श्रम हितकारी कार्य, औद्योगिक झगड़ों से सम्बन्धित नियम, इत्यादि।

इसी प्रकार आधुनिक सरकारें निरन्तर इस बात का ध्यान रखती हैं कि देश में व्यापार चक्रों को उपर्युक्त मौद्रिक तथा कर सम्बन्धी नीतियों द्वारा दूर रखा जाय।

श्रम विभाजन के अधिकांश दोष एक सीमा तक दूर किये जा सकते हैं, तथा दोषों की अपेक्षा इसके लाभ कहीं अधिक हैं। आज के युग में देशों की आर्थिक प्रगति के लिए श्रम विभाजन अत्यन्त आवश्यक है।

श्रम विभाजन की सीमाएँ
(LIMITATIONS OF DIVISION OF LABOUR)

किसी भी उद्योग या व्यवसाय में किस सीमा तक श्रम विभाजन किया जा सकता है, यह निम्न तत्त्वों पर निर्भर करता है।

(१) **बाजार का विस्तार** (Extent of market)—एडम स्मिथ का मत था कि श्रम विभाजन बाजार के विस्तार द्वारा सीमित होता है। किसी वस्तु का बाजार जितना अधिक विस्तृत होगा अर्थात जितनी अधिक उस वस्तु की माँग होगी उतना ही अधिक श्रम विभाजन किया जा सकेगा। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु का बाजार संकुचित है तो श्रम विभाजन नहीं हो सकेगा क्योंकि उस वस्तु की माँग बहुत कम होगी और उसे बड़े पैमाने पर उत्पादित नहीं किया जा सकेगा।[4]

यद्यपि यह ठीक है कि श्रम-विभाजन किसी वस्तु के बाजार के विस्तार पर निर्भर करता है या उससे सीमित होता है परन्तु एक **सीमा तक बाजार का विस्तार भी श्रम विभाजन पर निर्भर करता है**। उदाहरणार्थ, भारत जैसे विकासमान देश (developing country) में किसी वस्तु (जैसे, स्कूटरों) की माँग हो सकती है परन्तु उसके उत्पादन की लागत अधिक होने के कारण लोग उसको खरीदने में असमर्थ रहते हैं और इस प्रकार उस वस्तु का बाजार सीमित रह जाता है। ऐसी स्थिति में यदि श्रम-विभाजन द्वारा वस्तु (स्कूटरों) का उत्पादन बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है तो उत्पादन लागत कम होगी और लोग वस्तु को बहुत अधिक मात्रा में खरीदने लग जायेंगे अर्थात वस्तु का बाजार विस्तृत हो जायेगा। स्पष्ट है कि एक सीमा तक श्रम-विभाजन भी बाजार के विस्तार को प्रभावित कर सकता है।

(२) **पूँजी संचय** (Capital accumulation)—श्रम-विभाजन 'पूंजी की प्राप्यता' अर्थात् 'पूँजी संचय' से भी सीमित होता है। अविकसित देशों में पूँजी की कमी होती है, इसलिए इन देशों में श्रम विभाजन तथा उत्पादन के बड़े पैमाने के सभी लाभों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत विकसित देशों में पूँजी संचय बहुत अधिक मात्रा में होती है और इसलिए इन देशों में एक बहुत बड़ी सीमा तक श्रम-विभाजन किया जाता है। तकनीकी प्रगति, विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन को प्रोत्साहित करती है; परन्तु तकनीकी प्रगति तथा खोजें (inventions) तब तक

---

4 यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की यह है कि 'बाजार के विस्तार का अर्थ' बाजार के केवल **भौगोलिक क्षेत्र (geographical area) से नहीं होता है**। यह सम्भव है कि किसी वस्तु का बाजार भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से बहुत बड़ा हो सकता है अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय बाजार हो सकता है, परन्तु उस वस्तु की माँग इतनी कम हो सकती है कि श्रम विभाजन नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत बाजार का भौगोलिक क्षेत्र अपेक्षाकृत कम हो सकता है अर्थात् राष्ट्रीय बाजार हो सकता है परन्तु वस्तु की माँग बहुत अधिक होने से एक बड़ी सीमा तक श्रम-विभाजन सम्भव हो जाता है। **अतः बाजार के विस्तार का अर्थ वस्तु की माँग की मात्रा से लिया जाना है न कि भौगोलिक क्षेत्र से।** किसी वस्तु के बाजार का विस्तार यातायात व संवादवहन के साधनों, जनसंख्या, लोगों की आय इत्यादि पर निर्भर करता है।

सम्भव नहीं है जब तक उन नयी खोजों को व्यावसायिक दृष्टि से लाभदायक बनाने के लिए पर्याप्त मात्रा में पूँजी न हो।

(३) व्यवसाय का स्वभाव (Nature of business)—कुछ व्यवसाय या उत्पादन कार्य ऐसे होते है कि उनको उप विधियों या विभिन्न भागों मे नहीं बाँटा जा सकता। अत: ऐसे व्यवसायों में श्रम विभाजन का क्षेत्र सीमित रहता है; उदाहरणार्थ, कृषि, कलात्मक चित्रो का बनाना इत्यादि।

(४) तकनीकी तत्त्व (Technical factors)—श्रम-विभाजन तकनीकी तत्त्वों द्वारा सीमित होता है। किसी व्यवसाय या उद्योग में जितनी अधिक तकनीकी प्रगति होगी उतना ही अधिक श्रम-विभाजन उसमे हो सकेगा क्योंकि बिना तकनीकी प्रगति के उत्पादन कार्य को सरल उपविभागो में नहीं बाँटा जा सकता है।

(५) देश में व्यापारिक सुविधाएँ (Business facilities in a country)—एक देश में जितनी अधिक व्यापारिक सुविधाएँ जैसे, बैंकिंग तथा बीमा की अच्छी सुविधाएँ, परिवहन तथा संवादवहन के साधनो का पर्याप्त विकास, प्रबन्धकों को योग्य बनाने की प्रशिक्षण सुविधाएँ, इत्यादि होंगी उतना ही श्रम विभाजन को प्रोत्साहन मिलेगा। इनके विपरीत दशाओं में श्रम-विभाजन संकुचित या सीमित रह जायेगा।

उद्योगों का स्थानीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण
(LOCALISATION AND DECENTRALISATION OF INDUSTRIES)

उद्योगों का स्थानीयकरण
(LOCALISATION OF INDUSTRIES)

स्थानीयकरण का अर्थ (Meaning of Localisation)

जब कोई उद्योग विशेष सुविधाओं के कारण, देश के किसी एक क्षेत्र में या एक स्थान पर केन्द्रित हो जाता है, तो इसे 'स्थानीयकरण' (Localisation) या केन्द्रीयकरण (Centralisation) कहते है। इसे 'प्रादेशिक श्रम विभाजन' (territorial division of labour) या 'भौगोलिक विशिष्टीकरण' (geographical specialisation) भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ, जूट उद्योग पश्चिमी बंगाल मे, कपड़ा उद्योग बम्बई मे, चूड़ी उद्योग उत्तर प्रदेश के शहर फीरोजाबाद में केन्द्रित है।

स्थानीयकरण से लाभ (Advantages of Localization)

(१) स्थान तथा वस्तु की प्रसिद्धि (Reputation of the place and the commodity)—जब कोई उद्योग एक स्थान पर केन्द्रित हो जाता है तो वह स्थान उस उद्योग के प्रसिद्ध हो जाता है तथा उद्योग की वस्तु सुगमता से देश विदेशों में बिक जाती है। उदाहरणार्थ, अलीगढ़ के ताले देश के किसी भी कोने में आसानी से बिक जाते हैं। स्विट्जरलैण्ड की हाथ की घड़ियाँ संसार के प्रत्येक देश में सुगमता से बिकती हैं।

(२) श्रमिकों की दक्षता में वृद्धि (Increase in workers' efficiency)—एक स्थान पर एक ही प्रकार का कार्य बराबर करते रहने से श्रमिकों की कुशलता बढ़ जाती है। बच्चे भी बिना अधिक प्रयत्न के कार्य को अपने माता-पिता से सीख लेते हैं। इस प्रकार श्रमिकों की कुशलता पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती जाती है।

(३) कुशल श्रमिकों की नियमित पूर्ति (Regular supply of skilled workers)—स्थानीयकरण के स्थान पर कार्य करने वाले श्रमिक तो सम्बन्धित उद्योग में दक्ष होते ही हैं; इसके अतिरिक्त इस स्थान पर कार्य की तलाश में चारों तरफ से वे ही श्रमिक आते हैं जो उस कार्य को जानते हैं। अतः स्थान विशेष सम्बन्धित उद्योग के कुशल श्रमिकों का एक अच्छा बाजार बन जाता है। इस प्रकार उद्योग के लिए कुशल श्रमिकों की पूर्ति सदैव नियमित रूप से बनी रहती है।

(४) पूँजी की पर्याप्त सुविधाएँ (Adequate facilities of capital)—जब किसी स्थान पर किसी उद्योग या उद्योगों का स्थानीयकरण हो जाता है तो वहाँ पर पर्याप्त संख्या में बैंक, बीमा कम्पनियाँ तथा अन्य आर्थिक संस्थाएँ स्थापित हो जाती हैं। अतः ऐसे स्थान पर उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में तथा उचित दर पर पूँजी प्राप्त होती है।

(५) आधुनिक तथा नवीनतम मशीनों का प्रयोग (Use of modern and latest machinery)—किसी स्थान पर उद्योग विशेष का विकेन्द्रीकरण हो जाने से उद्योग की विभिन्न इकाइयों में स्वस्थ प्रतियोगिता होने लगती है। परिणामस्वरूप प्रत्येक इकाई आधुनिक तथा नवीनतम मशीनों का प्रयोग करके अपनी लागत को कम करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार नवीनतम मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहन मिलता है।

(६) अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण को प्रोत्साहन (Encouragement to research and training)—स्थानीयकरण के स्थान पर उद्योग विशेष की बहुत इकाइयाँ स्थापित हो जाती हैं। इन इकाइयों के मालिक आपस में मिलकर या कुछ बड़ी-बड़ी इकाइयों के मालिक अकेले ही, उद्योग से सम्बन्धित समस्याओं पर अनुसन्धान के लिए धन एकत्रित कर अनुसन्धान प्रयोगशालाओं की स्थापना कर सकते हैं। इसी प्रकार श्रमिकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण संस्थाएँ खोल सकते हैं तथा उद्योग से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कर सकते हैं।

(७) पूरक तथा सहयोग उद्योगों का विकास (Growth of supplementary and subsidiary industries)—जब किसी स्थान पर एक मुख्य उद्योग का स्थानीयकरण हो जाता है तो उससे सम्बन्धित पूरक तथा सहायक उद्योगों की स्थापना भी उस स्थान पर हो जाती है। जहाँ पर कपड़ा उद्योग का स्थानीयकरण हो जाता है, वहाँ पर कपड़े रंगने की अनेक इकाइयाँ खुल जाती हैं; ये इकाइयाँ मुख्य कपड़ा उद्योग की एक प्रकार से पूरक होती हैं। इसी प्रकार कपड़ा उद्योग की मशीनों की मरम्मत करने के लिए कई मरम्मत करने के वर्कशाप खुल जाते हैं।

(८) अवशिष्ट पदार्थों का उचित प्रयोग (Full utilisation of by-products)—जब किसी उद्योग की बहुत-सी इकाइयाँ एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती हैं तो अवशिष्ट पदार्थ

स्थानीयकरण के कारण (Causes of Localisation)

उद्योगों के स्थानीयकरण पर किसी एक तत्त्व का प्रभाव नहीं पड़ता वरन वह प्रा... आर्थिक तथा राजनीतिक तत्त्वों, सरकारी नीति तथा अन्य बातों पर निर्भर करता है। ...नीयकर के कारणों को चार प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है : (I) प्राकृतिक कारण(Natural factors) (II) आर्थिक कारण (Economic factors), (III) राजनीतिक कारण तथा सरकारी ... (Political factors and state's help), (IV) अन्य तत्व (Other factors)।

I. प्राकृतिक कारण (Natural Factors)

स्थानीयकरण के प्राकृतिक कारण निम्न हैं।

(१) **उपयुक्त जलवायु** (Suitable climate)—एक स्थान या क्षेत्र में कुछ उद्यो... इसलिए केन्द्रित हो जाते हैं क्योंकि वहाँ पर उपयुक्त जलवायु पायी जाती है। उदाहरणार्थ, सूती कपड़ा उद्योग के लिए नम जलवायु उपयुक्त होती है क्योंकि नम जलवायु में सूती धागा जल्दी-जल्दी टूटता नहीं है; भारत में सूती कपड़ा उद्योग के बम्बई तथा बंगाल में केन्द्रित होने का एक कारण यह है कि इन क्षेत्रों की जलवायु में नमी है।

(२) **उपयुक्त भूमि** (Suitable soil)—दक्षिण भारत की काली भूमि कपास के उत्पादन के लिए विशेषतया उपयुक्त है; यही कारण है कि बम्बई में सूती कपड़ा उद्योग केन्द्रित है।

(३) **शक्ति की प्राप्यता** (Availability of power)—उद्योगों को चलाने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। अतः उद्योग में शक्ति के स्रोतों के पास केन्द्रित होने की प्रवृति होती है। प्राचीन समय में उद्योग जल-शक्ति या कोयले की खानों के पास ही केन्द्रित होते थे। लोहा तथा इस्पात उद्योग का भारत में जमशेदपुर में, जर्मनी में ऐसन (Essen) नामक क्षेत्र में तथा अमरीका में पेन्सिलवेनिया में केन्द्रित होने का एक मुख्य कारण इन क्षेत्रों में कोयले का पाया जाना है। आधुनिक युग में उद्योग प्रायः उन क्षेत्रों में केन्द्रित होते जा रहे हैं जहाँ पर सस्ती बिजली शक्ति प्राप्य है।

(४) **कच्चे माल की निकटता** (Proximity to raw materials)—कच्चे माल के यातायात व्यय में बचत की दृष्टि से प्रायः उद्योग कच्चे माल के समीप स्थानों पर केन्द्रित होते हैं। इसी कारण जूट उद्योग बंगाल में केन्द्रित है, चीनी उद्योग उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर क्षेत्र में केन्द्रित हैं।

II. आर्थिक कारण (Economic Factors)

स्थानीयकरण के मुख्य आर्थिक कारण निम्नलिखित हैं :

(१) **बाजारों की निकटता** (Proximity to markets)—प्रायः उद्योगों में बाजारों के निकट केन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती है क्योंकि उनको अपने निर्मित माल को मण्डी या बाजार तक ले जाने के यातायात व्यय में बहुत बचत होती है। कलकत्ते के आस-पास जूट उद्योग केन्द्रित होने का एक कारण यह भी है कि कलकत्ता, जो कि एक बन्दरगाह है, से विदेशी क्रेताओं को जूट का माल आसानी से बेचा जा सकता है।

केन्द्रीयकरण की दृष्टि से बाजार तथा कच्चा माल उद्योगों को विपरीत दिशाओं में खींचते हैं। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि यदि कच्चा माल बहुत भारी होता है और उसके द्वारा निर्मित वस्तु वजन में बहुत कम बैठती है तो उद्योग कच्चे माल के स्रोत के पास स्थापित होगा; जैसे, चीनी उद्योग, क्योंकि गन्ने में से १० – १५% चीनी ही निकलती है। इसके विपरीत, यदि

कच्चे माल तथा निर्मित माल में कोई अधिक अन्तर नहीं होता तो उद्योग बाजार के निकट स्थापित होगा, जैसे ईंटों का उद्योग।

(२) श्रम की उपलब्धि (Availability of labour)—जिन क्षेत्रों या स्थानों में सस्ते तथा कुशल श्रम पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं वहाँ उद्योग केन्द्रित होते हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई नया उद्योगपति चूड़ी या तालों का कार्य करना चाहता है तो वह फीरोजाबाद या अलीगढ़ में कार्य करेगा क्योंकि इन स्थानों में उद्योग से सम्बन्धित कुशल श्रम मिलेगा।

(३) पूँजी प्राप्ति की पर्याप्त सुविधाएँ (Adequate facilities of capital)—बड़े पैमाने के उद्योगों में बहुत पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। अतः उद्योग उन स्थानों या क्षेत्रों में केन्द्रित होने की प्रवृत्ति रखते हैं जहाँ पर उचित ब्याज दर पर पर्याप्त मात्रा में पूँजी प्राप्य हो अर्थात् जहाँ पर बैंकों, बीमा कम्पनियों इत्यादि की अच्छी सुविधाएँ हों। यही कारण है कि बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद इत्यादि स्थानों में विभिन्न प्रकार के उद्योग केन्द्रित हैं।

(४) यातायात व संवादवहन की अच्छी सुविधाएँ (Good facilities of transport and communication)—यातायात की सस्ती तथा शीघ्रगामी सुविधाओं की सहायता से कच्चा माल, श्रम, निर्मित माल, औजार, मशीनें इत्यादि एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से भेजे जा सकते हैं। संवादवहन की सहायता से निर्मित माल को बेचने या कच्चे माल को खरीदने में, तथा बाजारों के भावों को शीघ्रता से ज्ञात करने में सुविधा मिलती है। स्पष्ट है जिन स्थानों में ये सब सुविधाएँ अच्छी मात्रा में प्राप्त हैं वहाँ उद्योग केन्द्रित होंगे। यातायात तथा संवादवहन की अच्छी सुविधाओं के कारण ही बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद में विभिन्न प्रकार के उद्योग केन्द्रित हैं।

III. राजनीतिक कारण तथा सरकारी सहायता (Political Factors and State's Help)

प्रायः एक देश की सरकार अपने पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ देती है, जैसे, करों में छूट, कम ब्याज पर ऋण की व्यवस्था, सस्ती यातायात की सुविधाएँ, इत्यादि। जिन क्षेत्रों या स्थानों में सरकार इस प्रकार का प्रोत्साहन देती है वहाँ उद्योगों के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति होती है।

IV. अन्य कारण (Other Factors)

प्राकृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य विविध कारण भी स्थानीयकरण को प्रोत्साहित करते हैं जो निम्नलिखित हैं :

(१) धार्मिक तथा सामाजिक कारण (Religious and social factors)—कुछ उद्योग धन्धे तीर्थ स्थानों तथा सामाजिक क्रिया के केन्द्रों में स्थापित हो जाते हैं। मूर्तियाँ तथा मालाएँ बनाने के उद्योगों का केन्द्रीयकरण बनारस तथा मथुरा में इसी कारण है। (२) सैनिक कारण (Defence factors)—युद्ध से सम्बन्धित सामान बनाने वाले उद्योगों को उन स्थानों पर केन्द्रित किया जाता है जहाँ पर आक्रमण से सुरक्षा हो। (३) 'पूर्व आरम्भ का बल' ('Momentum of an early start')—किसी स्थान पर जब कोई एक उद्योग पहले स्थापित हो जाता है तो वहाँ पर समय के साथ अन्य सुविधाएँ भी विकसित हो जाती हैं और वह स्थान उद्योग विशेष के लिए ख्याति प्राप्त कर लेता है। इन सब बातों के कारण वस्तु विशेष को निर्मित करने वाली फर्में भी वहाँ केन्द्रित हो जाती हैं। अलीगढ़ में ताला उद्योग तथा मेरठ में कैंची उद्योग इसके उदाहरण हैं।

उद्योगों के स्थानीयकरण के कारणों के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी स्थान पर किसी उद्योग का स्थानीयकरण केवल एक कारण से नहीं; वरन् अनेक कारणों के परिणामस्वरूप होता है।

स्थानीयकरण से लाभ (Advantages of Localization)

(१) स्थान तथा वस्तु की प्रसिद्धि (Reputation of the place and the commodity)—जब कोई उद्योग एक स्थान पर केन्द्रित हो जाता है तो वह स्थान उस उद्योग के लिए प्रसिद्ध हो जाता है तथा उद्योग की वस्तु सुगमता से देश विदेशों में बिक जाती है। उदाहरणार्थ, अलीगढ़ के ताले देश के किसी भी कोने में आसानी से बिक जाते हैं। स्विट्‌जरलैण्ड की हाथ की घड़ियाँ संसार के प्रत्येक देश में सुगमता से बिकती हैं।

(२) श्रमिकों की दक्षता में वृद्धि (Increase in workers' efficiency)—एक स्थान पर एक ही प्रकार का कार्य बराबर करते रहने से श्रमिकों की कुशलता बढ़ जाती है। बच्चे भी बिना अधिक प्रयत्न के कार्य को अपने माता-पिता से सीख लेते हैं। इस प्रकार श्रमिकों की कुशलता पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती जाती है।

(३) कुशल श्रमिकों की नियमित पूर्ति (Regular supply of skilled workers)—स्थानीयकरण के स्थान पर कार्य करने वाले श्रमिक तो सम्बन्धित उद्योग में दक्ष होते ही हैं; इसके अतिरिक्त इस स्थान पर कार्य की तलाश में चारों तरफ से वे ही श्रमिक आते हैं जो उस कार्य को जानते हैं। अतः स्थान विशेष सम्बन्धित उद्योग के कुशल श्रमिकों का एक अच्छा बाजार बन जाता है। इस प्रकार उद्योग के लिए कुशल श्रमिकों की पूर्ति सदैव नियमित रूप से बनी रहती है।

(४) पूँजी की पर्याप्त सुविधाएँ (Adequate facilities of capital)—जब किसी स्थान पर किसी उद्योग या उद्योगों का स्थानीयकरण हो जाता है तो वहाँ पर पर्याप्त संख्या में बैंक, बीमा कम्पनियाँ तथा अन्य आर्थिक संस्थाएँ स्थापित हो जाती हैं। अतः ऐसे स्थान पर उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में तथा उचित दर पर पूँजी प्राप्त होती है।

(५) आधुनिक तथा नवीनतम मशीनों का प्रयोग (Use of modern and latest machinery)—किसी स्थान पर उद्योग विशेष का विकेन्द्रीकरण हो जाने से उद्योग की विभिन्न इकाइयों में स्वस्थ प्रतियोगिता होने लगती है। परिणामस्वरूप प्रत्येक इकाई आधुनिक तथा नवीनतम मशीनों का प्रयोग करके अपनी लागत को कम करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार नवीनतम मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहन मिलता है।

(६) अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण को प्रोत्साहन (Encouragement to research and training)—स्थानीयकरण के स्थान पर उद्योग विशेष की बहुत इकाइयाँ स्थापित हो जाती हैं। इन इकाइयों के मालिक आपस में मिलकर या कुछ बड़ी-बड़ी इकाइयों के मालिक अकेले ही, उद्योग से सम्बन्धित समस्याओं पर अनुसन्धान के लिए धन एकत्रित कर अनुसन्धान प्रयोगशालाओं की स्थापना कर सकते हैं। इसी प्रकार श्रमिकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण संस्थाएँ खोल सकते हैं तथा उद्योग से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कर सकते हैं।

(७) पूरक तथा सहयोग उद्योगों का विकास (Growth of supplementary and subsidiary industries)—जब किसी स्थान पर एक मुख्य उद्योग का स्थानीयकरण हो जाता है तो उससे सम्बन्धित पूरक तथा सहायक उद्योगों की स्थापना भी उस स्थान पर हो जाती है। जहाँ पर कपड़ा उद्योग का स्थानीयकरण हो जाता है, वहाँ पर कपड़े रंगने की अनेक इकाइयाँ खुल जाती हैं; ये इकाइयाँ मुख्य कपड़ा उद्योग की एक प्रकार से पूरक होती हैं। इसी प्रकार कपड़ा की मशीनों की मरम्मत करने के लिए कई मरम्मत करने के वर्कशाप खुल जाते हैं।

(८) अवशिष्ट पदार्थों का उचित प्रयोग (Full utilisation of by-products)—जब उद्योग की बहुत-सी इकाइयाँ एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती हैं तो अवशिष्ट पदार्थ

(waste material) बड़ी मात्रा में प्राप्त होता है जिसको उचित प्रयोग में लाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, जिन स्थानों पर चीनी के कारखानों का केन्द्रीयकरण होता है वहाँ पर चीनी के अविशिष्ट पदार्थ शीरा से एलकोहल (alcholhol) बनाने के कारखाने खुल जाते हैं। इससे न केवल अविशिष्ट पदार्थ का ही उचित प्रयोग हो जाता है वरन् चीनी मिल मालिकों की लागत में कमी होती है—प्रथम, उन्हें शीरे के दाम मिल जाते हैं जो बेकार जाता; दूसरे, शीरे को दूर उठवा, कर डलवाने में यातायात लागत बच जाती है।

(९) यातायात व संवादवहन के साधनों का विकास (Development of transport and communications)—जब किसी स्थान पर किसी उद्योग की अनेक इकाइयाँ स्थापित हो जाती हैं तो उद्योग के बहुत बड़ी मात्रा में कच्चे माल लाने तथा निर्मित माल को देश के विभिन्न भागों में पहुँचाने के लिए स्थान विशेष में यातायात की बहुत अच्छी सुविधाएँ हो जाती हैं। इसी प्रकार कच्चे माल खरीदने तथा निर्मित माल को बेचने के लिए टेलीफोन, तार, इत्यादि संवादवहन के साधनों का भी अच्छा विकास हो जाता है।

(१०) लागत में कमी (Reduction in cost)—*स्थानीयकरण के अधिकांश उपर्युक्त* लाभों के कारण वस्तु विशेष की लागत कम हो जाती है। स्थानीयकरण के स्थान पर या क्षेत्र में श्रम, कच्चा माल, पूँजी, इत्यादि पर्याप्त मात्रा में तथा उचित कीमत पर प्राप्त होते है; अविशिष्ट पदार्थों की कीमत उत्पादकों को मिल जाती है, सहायक तथा पूरक उद्योगों की स्थापना तथा यातायात व संचार के साधनों का पर्याप्त विकास, इत्यादि ये सब बातें वस्तु के उत्पादन-व्यय को कम करती हैं।

स्थानीयकरण की हानियाँ (Disadvantages of Localisation)

स्थानीयकरण एक 'अमिश्रित वरदान' (unmixed blessing) नहीं है। इसकी कुछ हानियाँ भी हैं जो निम्नांकित हैं:–

(१) श्रमिकों की कार्यकुशलता का एकांगी विकास (One-sided development of workers' efficiency)—स्थानीयकरण के स्थानों पर या क्षेत्रों में कार्य करने वाले श्रमिक केवल उद्योग विशेष से सम्बन्धित कार्य में दक्ष हो जाते है, जबकि अन्य उद्योगों में वे कार्य नही कर सकते हैं। इस प्रकार श्रमिकों की बुद्धि का एकांगी विकास होता है।

(२) देश का असन्तुलित आर्थिक विकास (Unbalanced economic development of the country)—स्थानीयकरण के कारण देश के कुछ भागों या क्षेत्रों में तो उद्योगों का केन्द्रीयकरण हो जाता है जबकि अन्य भाग या क्षेत्र पिछड़े हुए तथा अविकसित रह जाते हैं। इस प्रकार देश का आर्थिक विकास असन्तुलित होता है तथा धन का क्षेत्रीय वितरण असमान हो जाता है। असन्तुलित आर्थिक विकास देश की एकता में बाधक सिद्ध हो सकता है क्योंकि देश के पिछड़े क्षेत्रों के लोग विकसित क्षेत्रों के प्रति ईर्ष्या-भावना रख सकते हैं।

(३) श्रमिकों की गतिशीलता में कमी (Lack of mobility of workers)—स्थानीयकरण के कारण श्रमिक एक ही प्रकार के कार्य में निपुण हो जाते हैं, जबकि अन्य प्रकार के कार्यों का सामान्य ज्ञान भी उन्हें नहीं हो पाता है। अतः उद्योग विशेष को छोड़कर दूसरे उद्योगों में जाना उनके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है और उनकी गतिशीलता में कमी हो जाती है।

(४) आर्थिक संकट तथा बेरोजगारी का डर (Danger of economic crisis and unemployment)—स्थानीयकरण के कारण जब एक क्षेत्र या स्थान एक विशेष उद्योग पर ही निर्भर करने लगता है तो वह आर्थिक दृष्टि से असुरक्षित हो जाता है। किसी कारणवश यदि

देश के विभिन्न भागों तथा स्थानों में स्थापित करना। यदि उद्योगों को पुराने औद्योगिक केन्द्रों में या नये औद्योगिक केन्द्रों में केन्द्रित न किया जाय बल्कि उन्हें एक न्यायसगत तथा सुनिश्चित योजना के अनुसार देश के विभिन्न स्थानों तथा क्षेत्रों में फैला दिया जाय तो—

(i) औद्योगिक केन्द्रों में मकानों, भीड़-भाड़, गन्दगी इत्यादि की समस्याओं को दूर किया जा सकेगा। (ii) अधिक लोगों को रोजगार मिलेगा, आर्थिक सकट से बचाव होगा तथा उन्हें आर्थिक सुरक्षा मिलेगी। (iii) युद्ध के समय मे उद्योग अधिक सुरक्षित रहेंगे। (iv) उत्पादन लागत मे भी कमी होगी तथा अन्य प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त होंगी। (v) देश का सन्तुलित आर्थिक विकास होगा। इससे लोगों को न केवल आर्थिक सुरक्षा ही प्राप्त होगी वरन् देश के विभिन्न भागो मे रहने वाले लोगो में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या भाव कम होगा और उनमे एकता तथा सहयोग की भावना बढ़ेगी।

इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखने की है कि जो उद्योग पुराने केन्द्रों में स्थापित हो चुके हैं उन्हे उठाकर दूसरे स्थानों या क्षेत्रों मे ले जाना कठिन है। ऐसी स्थिति मे पुराने औद्योगिक केन्द्रों मे स्थानीयकरण के दोषों को श्रमिकों की स्वच्छ बस्तियों का निर्माण, कारखाना कानूनों का उचित पालन, श्रमिक हितकारी कार्यों तथा सामाजिक सुरक्षा की अच्छी व्यवस्था, इत्यादि द्वारा बहुत कुछ दूर किये जा सकते हैं।

औद्योगिक विकेन्द्रीयकरण या विस्थानीयकरण
(INDUSTRIAL DECENTRALISATION OR DELOCALISATION)

उद्योगों का स्थानीयकरण जोखिमपूर्ण होता है तथा इसकी अनेक हानियाँ हैं। इन हानियों को दूर करने की दृष्टि से औद्योगीकरण की आधुनिक प्रवृत्ति उद्योगों को समस्त देश के विभिन्न क्षेत्रों तथा स्थानों पर फैलाने की होती है ताकि देश का सन्तुलित औद्योगिक विकास हो सके। ऐसी नीति देश के हित में होती है।

विकेन्द्रीयकरण का अर्थ (Meaning of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण स्थानीयकरण की विपरीत दशा को बताता है। स्थानीयकरण मे उद्योगों की एक स्थान पर केन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती है, जबकि विकेन्द्रीयकरण मे उद्योग एक जगह पर केन्द्रित न करके देश के विभिन्न भागो मे दूर-दूर तक स्थापित किये जाते हैं। उद्योग के विकेन्द्रीयकरण का अर्थ है उद्योगों का एक स्थान या क्षेत्र में केन्द्रित न होना बल्कि देश में दूर-दूर तक तथा पृथक्-पृथक् स्थानों पर स्थापित होना।

विकेन्द्रीयकरण के कारण (Causes of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण का मुख्य कारण स्थानीयकरण के दोषों को दूर करना तथा देश के सन्तुलित आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना है। इन कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्त्व भी बढ़ती हुई विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी हैं। मुख्य कारण निम्नांकित हैं :

(१) देश का सन्तुलित आर्थिक विकास (Balanced economic development of the country)—लगभग प्रत्येक देश की आधुनिक औद्योगिक नीति उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण की है। स्थानीयकरण के अनेक दोष हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि उद्योगों को देश के विभिन्न भागों तथा स्थानों मे फैला दिया जाय। ऐसा करने से देश का सन्तुलित आर्थिक विकास होगा तथा लोगों मे एकता और सहयोग की भावना जाग्रत होगी।

(२) यातायात व सवादवहन के साधनों का विकास (Development of means of transport and communications)—आज के युग में यातायात तथा सवादवहन के साधनों

का इतना विकास हो चुका है कि उद्योगों को आवश्यक रूप से कच्चे माल के स्थानों तथा बाजारों के निकट स्थापित करना आवश्यक नहीं रह गया है। अब कच्चे माल, निर्मित माल, मशीनों तथा औजारों इत्यादि को देश-विदेश के अन्दर दूर-दूर तक लाया ले जाया जा सकता है। श्रमिकों की गतिशीलता में अत्यन्त सुविधा हो गयी है। परिवहन तथा संचार में विकास के परिणामस्वरूप ही बहुत से विदेशी उद्योगपति भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार के उद्योग खोल सके हैं।

(३) विद्युत शक्ति का विकास (Development of electrtic power)—जब तक बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक उद्योग-धन्धे प्रायः कोयले के क्षेत्रों के आस-पास ही स्थापित होते थे। परन्तु बिजली के उत्पादन से विकेन्द्रीयकरण को बहुत प्रोत्साहन मिला है। बिजली को सस्ती लागत पर देश के अन्दर दूर-दूर तक ले जाया जा सकता है। अतः उद्योगों को विद्युत-शक्ति देश के किसी भाग में भी आसानी से प्राप्त हो सकती है जिससे उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण में सहायता मिलती है।

(४) सामरिक कारण (Strategic and military reasons)—आज की युद्ध प्रणाली में बमबारी द्वारा थोड़े समय में ही बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों को शत्रु द्वारा नष्ट किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक देश की सरकार यह ध्यान रखती है कि उद्योगों को थोड़े से स्थानों पर केन्द्रित न होने दिया जाय। उन्हें देश के विभिन्न भागों में फैला दिया जाय जिससे युद्ध के समय उनके सुरक्षित रहने की सम्भावनाएँ अधिक हो जाती हैं।

(५) पुराने औद्योगिक केन्द्रों की असुविधाएँ (Inconveniences of old industrial centres)—पुराने औद्योगिक केन्द्रों में भूमि की कमी के कारण उनके किराये बहुत बढ़ जाते हैं, स्थानीय कर ऊँचे हो जाते हैं, गन्दे तथा तंग घरों में रहने से श्रमिकों की कार्य क्षमता कम हो जाती है। इन सब कारणों से उद्योगपति के लिए उत्पादन-लागत बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में जहाँ तक सम्भव होता है उद्योगपति पुराने औद्योगिक केन्द्रों में नये उद्योग स्थापित नहीं करते हैं; वे इन केन्द्रों से दूर नये कारखानों को स्थापित करते हैं। स्पष्ट है विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को बल मिलता है।

(६) मशीनों का बढ़ता हुआ प्रयोग (Increasing use of machines)—विभिन्न प्रकार की मशीनों तथा यन्त्रों के बढ़ते हुए प्रयोग ने भी विकेन्द्रीयकरण को बल दिया है। मशीनों के प्रयोग से कई उद्योगों में कुशल श्रमिकों पर अत्यधिक निर्भरता कम हो गयी है और ऐसी स्थिति में यह आवश्यक नहीं रह गया है कि उद्योगों को उन स्थानों पर ही स्थापित किया जाय जहाँ पर कुशल श्रमिकों की पर्याप्त पूर्ति हो। परन्तु अभी भी यह मानना पड़ेगा कि श्रमिकों की पर्याप्त पूर्ति विकेन्द्रीयकरण के मार्ग में एक महत्त्वपूर्ण रुकावट है।

(७) आर्थिक सुरक्षा (Economic security)—बड़े उद्योगों, छोटे तथा कुटीर उद्योगों को देश के विभिन्न भागों में फैलाने से अधिक लोगों को रोजगार मिलेगा और लोगों को आर्थिक सुरक्षा मिलेगी। अतः आर्थिक सुरक्षा की भावना ने भी विकेन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन दिया है।

२९

मशीनों का प्रयोग
[USE OF MACHINERY]

इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् से संसार में मशीनों का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। आज उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी प्रकार की मशीनों का प्रयोग होता है। आधुनिक युग में मशीनों का प्रयोग इतना बढ़ गया है कि इसे 'मशीन युग' (Machine Age) कहते हैं। मशीनों के प्रयोग से अनेक लाभ हैं परन्तु इनकी कुछ हानियाँ भी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुल मिलाकर मशीनों के प्रयोग ने मनुष्य जीवन को अधिक सुखी तथा सम्पन्न बना दिया है।

मशीनों से लाभ

मशीनों के लाभों को निम्न चार मुख्य वर्गों (Broad groups) में बाँटा जा सकता है :

I. उत्पादकों को लाभ, II. श्रमिकों को लाभ, III. उपभोक्ताओं तथा समाज को लाभ, IV. सरकार को लाभ। नीचे हम चारों वर्गों के लाभों का विस्तृत रूप में विवेचन करते हैं।

I. उत्पादकों को लाभ (Benefits to Producers)

(१) उत्पादन में वृद्धि, द्रुत गति तथा नियमितता (Increase in output, fast speed and regularity)—मशीनों की सहायता से नियमित रूप में तथा बहुत अधिक मात्रा में उत्पादन प्राप्त किया जाता है। एक मशीन कई श्रमिकों के बराबर कार्य करती है तथा उत्पादन की गति बहुत तेज होती है। उदाहरणार्थ, एक मशीन प्रति घण्टे २,५०,००० हाथ की घड़ियाँ उत्पादित कर सकती है; एक सिगरेट का कारखाना प्रति मिनट २,५०,००० सिगरेट बना सकता है; एक आधुनिक छापने की मशीन एक घण्टे में १६ पृष्ठों के ८०,००० अखबारों को छापने, मोड़ने (folding) तथा गिनने (counting) की क्षमता रखती है।

(२) प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी (Reduction in per unit cost of production)—मशीनें केवल उत्पादन की ही वृद्धि नहीं करती वरन् वस्तु की प्रति इकाई लागत में भी कमी करती है। इसके मुख्य कारण हैं : (i) मशीनों के कारण विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन सम्भव हो सका है जिससे उत्पादन लागत में कमी होती है। (ii) मशीनों के प्रयोग से बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है जिससे उत्पादकों को आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं जिससे वस्तु की प्रति इकाई लागत घटती है।

(३) सुनिश्चितता तथा प्रमापीकरण (Precision and standardisation)—मशीनें बिलकुल एक रूप (exactly identical) वस्तुओं को बड़ी मात्रा में उत्पादित करती हैं। इस सुनिश्चितता (precision) के कारण प्रमापित वस्तुओं (standardised products) का उत्पादन होता है। मशीनों की मरम्मत बड़ी सुगमता से होती है क्योंकि किसी एक मशीन के विभिन्न भाग बिलकुल एकरूप होते हैं और इसलिए पुराने भागों को नये भागों से बदला जा सकता है।

(४) कोमल तथा सूक्ष्म कार्य सम्भव (Delicate and minute work possible)—मशीनें बहुत बारीक तथा सूक्ष्म कार्य कर सकती हैं। जिन सूक्ष्म तथा बारीक चीजों को नंगी आँख से नहीं देखा जा सकता उनका मशीनों की सहायता से निरीक्षण किया जा सकता है। हाथ की घड़ी के बारीक से बारीक पुर्जों का बनाना मशीनों द्वारा ही सम्भव हो सका है। मशीनों की सहायता से एक इंच का एक हजारवाँ भाग तक नापा जा सकता है तथा ५०० ग्राम के वजन में १/२५०,०००,००० तक की भूल को ज्ञात किया जा सकता है।

(५) हाथ से अस्पर्शित वस्तुओं का उत्पादन (Production of commodities untouched by hand)—स्वास्थ्यकीय (hygienic) दृष्टि से यह आवश्यक है कि बहुत-सी दवाइयों तथा अनेक खाने-पीने की वस्तुओं को बनाते समय हाथ से न छुआ जाय। मशीनों की सहायता से हाथ से अस्पर्शित वस्तुओं का उत्पादन सम्भव हो गया है।

II. **श्रमिकों को लाभ** (Benefit to workers)

(१) भारी, थका देने वाले तथा कठिन कार्यों का, सुगमतापूर्वक उत्पादन (Easy performance of heavy, exhausting and difficult work)—बहुत से कार्य, जो भारी, कठिन तथा थकाने वाले हैं, मशीनों की सहायता से श्रमिक बड़ी आसानी से कर लेते हैं। उदाहरणार्थ, भारी से भारी वजन को क्रेन (crane) की सहायता से जहाजों, रेलों, इत्यादि में लादा जा सकता है, बड़े-बड़े पुल बाँध इत्यादि को बनाते समय भारी-भारी वजनों को श्रमिक मशीनों की सहायता से ही उठाते तथा रखते हैं, पहाड़ों को काटकर सड़क बनाने में भी श्रमिक मशीनों का ही प्रयोग करते हैं।

(२) नीरस तथा गन्दे कार्यों से मुक्ति (Relief from monotonous and dirty or disagreeable work)—बहुत से नीरस कार्यों, जैसे, अखबारों को मोड़ना, मशीनों द्वारा किया जाने लगा है। इसी प्रकार बहुत से गन्दे कार्य मशीनों द्वारा होने लगे हैं, जैसे, मल मूत्र की सफाई का कार्य फ्लश प्रणाली (flush system) द्वारा होने लगा है।

(३) श्रमिकों को अधिक अवकाश (More leisure for workers)—मशीनों की सहायता से थोड़े समय में बहुत अधिक कार्य किया जा सकता है। इसलिए श्रमिकों के कार्य करने के घण्टों में कमी हो गयी है। परिणामस्वरूप श्रमिकों को अधिक अवकाश मिल जाता है जिसे वे अपने बौद्धिक तथा सांस्कृतिक विकास (intellectual and cultural development) में लगा सकते हैं।

(४) श्रमिकों के मानसिक गुणों का विकास (Development of mental faculties of workers)—मशीनों के चलाने के लिए बुद्धि (intelligence), ध्यान, निर्णय तथा उत्तरदायित्व की आवश्यकता पड़ती है। अतः मशीनों को निरन्तर चलाने से श्रमिकों के उपर्युक्त मानसिक गुणों का विकास होता है।

(५) श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि (Increase in the mobility of workers)—मशीनों के प्रयोग के कारण उद्योगों में उत्पादन की प्रक्रियाएँ (processes) बहुत सरल हो गयी हैं। दूसरे, श्रमिकों का एक मशीन का अनुभव दूसरी मशीन की कार्य प्रणाली को समझने में बहुत सहायक होता है अर्थात् वह दूसरी मशीनों पर भी सुगमतापूर्वक कार्य कर सकता है। उपर्युक्त दोनों कारणों के परिणामस्वरूप श्रमिक एक कारखाने या उद्योग से दूसरे कारखाने या उद्योग में आसानी से जा सकते हैं; अर्थात् उनकी गतिशीलता में वृद्धि हो जाती है।

(६) अकुशल श्रमिकों का भी प्रयोग (Use of unskilled labourers)—मशीनों के प्रयोग से उत्पादन की बहुत सी प्रक्रियाएँ इतनी सरल हो गयी हैं कि उन्हें एक सामान्य बुद्धि वाला अकुशल श्रमिक भी थोड़े समय में ही समझकर सुगमता से कर सकता है। इस प्रकार मशीनों के प्रयोग से अकुशल श्रमिकों को भी आसानी से कार्य मिल जाता है।

(७) रोजगार के अधिक अवसर (More opportunities for employment)—मशीनों के प्रयोग से एक देश का औद्योगीकरण तीव्र गति से होता है, विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धे खुलते हैं तथा विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्य होते हैं। इन सब बातों के कारण अधिक श्रमिकों को रोजगार मिलता है।

(८) श्रमिकों की कुशलता तथा पारिश्रमिक में वृद्धि (Increase in the efficiency and wages of workers)—मशीनों के प्रयोग से श्रमिकों की उत्पादन कुशलता बढ़ जाती है। मशीनों की सहायता से एक निश्चित समय में अच्छी किस्म की अधिक मात्रा में वस्तु का उत्पादन किया जा सकता है। जब श्रमिकों की उत्पादन कुशलता बढ़ जाती है तो उनकी मजदूरियाँ भी बढ़ जाती हैं।

III. उपभोक्ताओं तथा समाज को लाभ (Benefits to Consumers and Society)

(१) सस्ती, प्रमापित तथा उत्तम वस्तुओं की प्राप्ति (Availability of cheap, standardised and quality commodities)—मशीनों के प्रयोग से बड़े पैमाने का उत्पादन होता है और बड़े पैमाने के उत्पादन के कारण उपभोक्ताओं को सस्ती, प्रमापित तथा उत्तम वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।

(२) परिवर्तनशील तथा विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति (Satisfaction of changing and different kinds of wants)—सभ्यता के विकास तथा समय के साथ उपभोक्ताओं की आवश्यकताएँ बदलती रहती हैं। विभिन्न प्रकार की तथा शीघ्रता से बदली हुई आवश्यकताओं की पूर्ति विभिन्न प्रकार की मशीनों के प्रयोग द्वारा ही की जाती है।

(३) दूरी में कमी (Distances are shortened)—मशीनों के प्रयोग के कारण ही यातायात तथा संचार के साधनों में बहुत विकास हुआ है। रेलों, जलयानों तथा वायुयानों द्वारा थोड़े समय में ही देश-विदेश में लोगों के बीच सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। रेडियो, टेलीफोन तथा टेलीविजन द्वारा क्षणों में ही समाचार देश-विदेशों के कोने-कोने में प्राप्त हो जाते हैं, इसलिए कहा जाता है कि संसार छोटा हो गया है। इससे अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है।

(४) मानव जीवन में नियमितता (Order and regularity in human life)—मशीनें नियमित रूप से निश्चितता (exactness) तथा अध्यवसाय (persistence) के साथ कार्य करती हैं। मशीनों के साथ कार्य करने से मनुष्य भी अपने जीवन में नियमितता, निश्चितता, तथा अध्यवसाय के पाठ (lessons) सीखता है।

(५) देश के प्राकृतिक साधनों का पूर्ण प्रयोग (Fuller use of the natural resources of a country)—मशीनों की सहायता से ही देश विशेष के प्राकृतिक साधनों, जैसे, जल, खनिज पदार्थ, जंगल इत्यादि, का पूर्ण प्रयोग किया जा सकता है। इससे देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

IV. सरकार को लाभ (Benefits to Government)

मशीनों के प्रयोग से उत्पादन में बहुत वृद्धि होती है जिससे लोगों तथा राष्ट्र की आय में भी वृद्धि होती है। अतः (i) वस्तुओं के अधिक उत्पादन होने तथा अधिक माल बिकने से सरकार

(४) कोमल तथा सूक्ष्म कार्य सम्भव (Delicate and minute work possible)—मशीनें बहुत बारीक तथा सूक्ष्म कार्य कर सकती हैं। जिन सूक्ष्म तथा बारीक चीजों को नंगी आँख से नहीं देखा जा सकता उनका मशीनों की सहायता से निरीक्षण किया जा सकता है। हाथ की घड़ी के बारीक से बारीक पुर्जों का बनाना मशीनों द्वारा ही सम्भव हो सका है। मशीनों की सहायता से एक इंच का एक हजारवाँ भाग तक नापा जा सकता है तथा ५०० ग्राम के वजन में १/२५०,०००,००० तक की भूल को ज्ञात किया जा सकता है।

(५) हाथ से अस्पर्शित वस्तुओं का उत्पादन (Production of commodities untouched by hand)—स्वास्थिकीय (hygienic) दृष्टि से यह आवश्यक है कि बहुत-सी दवाइयों तथा अनेक खाने-पीने की वस्तुओं को बनाते समय हाथ से न छुआ जाय। मशीनों की सहायता से हाथ से अस्पर्शित वस्तुओं का उत्पादन सम्भव हो गया है।

II. **श्रमिकों को लाभ** (Benefit to workers)

(१) भारी, थका देने वाले तथा कठिन कार्यों का, सुगमतापूर्वक उत्पादन (Easy performance of heavy, exhausting and difficult work)—बहुत से कार्य, जो भारी, कठिन तथा थकाने वाले हैं, मशीनों की सहायता से श्रमिक बड़ी आसानी से कर लेते हैं। उदाहरणार्थ, भारी से भारी वजन को क्रेन (crane) की सहायता से जहाजों, रेलों, इत्यादि में लादा जा सकता है, बड़े-बड़े पुल बाँध इत्यादि को बनाते समय भारी-भारी वजनों को श्रमिक मशीनों की सहायता से ही उठाते तथा रखते हैं, पहाड़ों को काटकर सड़क बनाने में भी श्रमिक मशीनों का ही प्रयोग करते हैं।

(२) नीरस तथा गन्दे कार्यों से मुक्ति (Relief from monotonous and dirty or disagreeable work)—बहुत से नीरस कार्यों, जैसे, अखबारों को मोड़ना, मशीनों द्वारा किया जाने लगा है। इसी प्रकार बहुत से गन्दे कार्य मशीनों द्वारा होने लगे हैं, जैसे, मल मूत्र की सफाई का कार्य फ्लश प्रणाली (flush system) द्वारा होने लगा है।

(३) श्रमिकों को अधिक अवकाश (More leisure for workers)—मशीनों की सहायता से थोड़े समय में बहुत अधिक कार्य किया जा सकता है। इसलिए श्रमिकों के कार्य करने के घण्टों में कमी हो गयी है। परिणामस्वरूप श्रमिकों को अधिक अवकाश मिल जाता है जिसे वे अपने बौद्धिक तथा सांस्कृतिक विकास (intellectual and cultural development) में लगा सकते हैं।

(४) श्रमिकों के मानसिक गुणों का विकास (Development of mental faculties of workers)—मशीनों के चलाने के लिए बुद्धि (intelligence), ध्यान, निर्णय तथा उत्तरदायित्व की आवश्यकता पड़ती है। अतः मशीनों को निरन्तर चलाने से श्रमिकों के उपर्युक्त मानसिक गुणों का विकास होता है।

(५) श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि (Increase in the mobility of workers)—मशीनों के प्रयोग के कारण उद्योगों में उत्पादन की प्रक्रियाएँ (processes) बहुत सरल हो गयी हैं। दूसरे, श्रमिकों का एक मशीन का अनुभव दूसरी मशीन की कार्य प्रणाली को समझने में बहुत सहायक होता है अर्थात् वह दूसरी मशीनों पर भी सुगमतापूर्वक कार्य कर सकता है। उपर्युक्त दोनों कारणों के परिणामस्वरूप श्रमिक एक कारखाने या उद्योग से दूसरे कारखाने या उद्योग में आसानी से जा सकते हैं; अर्थात् उनकी गतिशीलता में वृद्धि हो जाती है।

स्वरूप बहुत से कुटीर उद्योग बन्द हो जाते है और उनमें कार्य करने वाले शिल्पकार बेकार हो जाते हैं। ये शिल्पकार कारखानों में कार्य करने लगते हैं। परन्तु एक शिल्पकार केवल मशीन-सेवक (machine tender) बन कर रह जाता है और उसकी कलात्मक रुचि (artistic aptitude) समाप्त हो जाती है।

सरकार द्वारा उचित तथा समन्वित (co-ordinated) औद्योगिक नीति को कार्यान्वित करने से इस दोष को एक सीमा तक दूर किया जा सकता है।

(६) श्रमिक की स्वतन्त्रता तथा व्यक्तित्व का ह्रास (Loss of freedom and personality of workers)—मशीनों के साथ कार्य करने में श्रमिक की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है, उसका कोई व्यक्तित्व नहीं रह जाता है, उसका व्यक्तित्व गिर कर मशीन के स्तर पर पहुंच जाता है और उत्पादक उसके साथ निर्जीव मशीनों की भांति व्यवहार करने लगते है।

इस दोष को सुदृढ़ श्रमिक संघ आन्दोलन, सरकारी कानूनों तथा प्रबुद्ध जनमत (enlightened public opinion) द्वारा दूर किया जा सकता है।

(७) औद्योगिक अशान्ति (Industrial unrest)—मशीनों तथा श्रम विभाजन के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है जिसमें हजारों की संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं। औद्योगिक क्षेत्र दो भागों में बँट जाता है—एक ओर थोड़े से पूंजीपति तथा उद्योगपति होते हैं जिनके हाथों में आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो जाती है तथा दूसरी ओर श्रमिक वर्ग होता है जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होता है। इन दोनों वर्गों में मनमुटाव रहता है जिसके कारण हड़तालें तथा तालेबन्दी होती है और औद्योगिक अशान्ति होती है।

परन्तु यह मशीनों का प्रत्यक्ष दोष नहीं है। यह दोष दूर किया जा सकता है यदि उद्योगपति श्रमिकों के साथ उचित व्यवहार करें, श्रम संघों का अच्छा संगठन हो तथा सरकार उचित कानूनों का निर्माण करे।

(८) अति-उत्पादन का डर (Danger of over-production)—मशीनों के प्रयोग के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। कारखानों द्वारा अधिक माल उत्पादित करने से माँग की अपेक्षा पूर्ति बहुत हो जाती है, परिणामस्वरूप वह बिक नहीं पाती। इस 'अति-उत्पादन' के कारण मन्दी फैल जाती है, बहुत से कारखाने बन्द हो जाते हैं और बेरोजगारी फैल जाती है।

वास्तव में, यह भी मशीनों का प्रत्यक्ष दोष नहीं है। अति-उत्पादन का कारण है उद्योगपतियों की भविष्य की माँग का अनुमान गलत हो जाना। इस दोष को एक सीमा तक सरकार के नियन्त्रण तथा उसकी उचित प्रशुल्क नीतियों द्वारा दूर किया जा सकता है।

(९) मशीनों की विनाशक शक्ति (Destructive power of machines)—मशीन तथा विज्ञान ने एटम तथा हाइड्रोजन बमों को उत्पन्न कर मनुष्य के हाथ में भीषण विनाशकारी शक्ति दे दी है। परन्तु इसमें मशीन तथा विज्ञान का कोई दोष नहीं है वरन् इनके प्रयोग का दोष है। मनुष्य ने अणु शक्ति (atomic power) का प्रयोग शान्ति कार्यों तथा देश की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में भी किया है।

(१०) मशीन तथा बेरोजगारी (Machine and unemployment)—मशीनों का एक बड़ा दोष बताया जाता है कि ये श्रमिकों को बेरोजगार कर देती हैं। प्रायः मशीनें श्रमिक बचत (labour-saving) होती हैं और वे पहले की अपेक्षा बहुत कम श्रमिकों से ही एक निश्चित कार्य करा लेती हैं। यही कारण है कि कारखानों में नयी मशीनों की स्थापना का श्रमिक तीव्र विरोध करते हैं।

अर्थशास्त्रियों का मत है कि अल्पकाल में मशीनों का प्रयोग श्रमिकों को बेरोजगार कर देता है, परन्तु दीर्घकाल में श्रमिकों की माँग बढ़ जाती है और न केवल रोजगार से हटाये गये सभी व्यक्तियों को रोजगार मिल जाता है वरन् कुल रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हो जाती है। दीर्घकाल में मजदूरों की माँग में वृद्धि तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि निम्न प्रकार से होती है :

(i) किसी उद्योग में मशीनों के प्रयोग से लागत घट जाती है अर्थात उद्योग विशेष की वस्तुएँ सस्ती पड़ती हैं और उनकी कीमत कम हो जाती है : (अ) यदि उद्योग की वस्तुओं की माँग लोचदार है तो कीमत कम होने से इन वस्तुओं की माँग बढ़ेगी, उद्योग को बढ़ाया जायेगा और कुछ रोजगार से हटे हुए श्रमिकों को उसी उद्योग में रोजगार मिल जायेगा, (ब) यदि उद्योग विशेष की वस्तुओं की माँग बेलोचदार है तो उपभोक्ताओं के पास अन्य वस्तुओं पर व्यय करने के लिए अधिक द्रव्य बच रहेगा, अन्य वस्तुओं की माँग बढ़ेगी उनका उत्पादन बढ़ाया जायेगा और उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता पड़ेगी तथा बहुत से बेरोजगार श्रमिकों को रोजगार मिल जायेगा।

(ii) मशीनों के प्रयोग से उन श्रमिकों की, जो कि रोजगार में लगे हुए हैं, उत्पादन कुशलता बढ़ेगी, उनकी मजदूरियाँ बढ़ेंगी, वे वस्तुओं को खरीदने में अधिक व्यय करेंगे और बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए वस्तुओं का अधिक उत्पादन होगा जिसके लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता पड़ेगी।

(iii) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की मशीन बनाने वाले उद्योग स्थापित होंगे; इन मशीन निर्माण उद्योगों में कुछ श्रमिकों को रोजगार मिलेगा। यदि मशीनों का निर्माण देश में नहीं होता वरन् वे विदेशों से मँगायी जाती हैं तो श्रमिकों के रोजगार के अवसर में वृद्धि नहीं होगी।

(iv) मशीनों के प्रयोग से देश का औद्योगीकरण तीव्र गति से होता है। इसके परिणाम-स्वरूप यातायात व संवादवहन के साधनों का विकास किया जायेगा और इनके विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ेगी।

स्पष्ट है—(अ) मशीनों के प्रयोग से अल्पकाल में जो श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं, दीर्घकाल में केवल उनको ही रोजगार नहीं मिलता वरन् रोजगार के कुल अवसरों में वृद्धि होती है। (ब) मशीनों के प्रयोग से अल्पकाल में जो बेरोजगारी उत्पन्न होती है—यह तकनीकी बेरोजगारी (technological unemployment) का एक रूप होती है—वह कुल बेरोजगारी का केवल एक छोटा सा भाग होती है। इसलिए बेरोजगारी की समस्या को मशीनों का प्रयोग बन्द कर देने से हल नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से तो देश का कुल उत्पादन तथा कुल राष्ट्रीय आय कम होगी और अन्त में कुल रोजगार में बहुत कमी हो जायेगी जिससे श्रमिकों की दशा पहले से अधिक खराब हो जायेगी।

निष्कर्ष—मशीनों के प्रयोग के अनेक लाभ तथा हानियाँ हैं। परन्तु इसकी हानियों को एक सीमा तक उचित प्रयत्नों द्वारा दूर या कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मशीनों के लाभ, हानियों की अपेक्षा, कहीं अधिक हैं। मशीनों से उत्पादन में वृद्धि हुई है, देशों की कुल राष्ट्रीय आयों में वृद्धि हुई है, उपभोक्ताओं को विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ कम मूल्य पर प्राप्त हो सकी हैं तथा व्यक्तियों को अधिक अवकाश प्राप्त हुआ है। समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि मशीनों ने मानवीय कल्याण में बहुत वृद्धि की है।

उत्पत्ति का पैमाना
[SCALE OF PRODUCTION]

उत्पत्ति के पैमाने से तात्पर्य उत्पत्ति करने वाली इकाई के आकार तथा उत्पत्ति किस मात्रा में की जाती है, से है । अतः आकार तथा मात्रा की दृष्टि से, मुख्यतया आकार की दृष्टि से उत्पादन दो प्रकार से किया जा सकता है—(i) छोटे पैमाने (small scale) पर, तथा (ii) बड़े पैमाने large-scale) पर । प्राचीन समय में उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जाता था । परन्तु आज के युग में उत्पादन की औसत इकाई का आकार बहुत बढ़ गया है और उत्पादन का एक बड़ा भाग बड़े पैमाने पर उत्पादित किया जाता है । उत्पादन किस पैमाने (छोटे पैमाने या बड़े पैमाने) पर किया जायगा इसका निर्णय साहसी कई बातों को ध्यान में रख कर करता है । उत्पादन की तकनीकी स्थिति, पूंजी, कच्चा माल, कुशल श्रम तथा कुशल प्रबन्धकों की उपलब्धि, वस्तु की मांग का विस्तार, इत्यादि अनेक बातों को ध्यान मे रखकर उत्पत्ति का पैमाना निश्चित किया जाता है ।

बड़े पैमाने का उत्पादन
(LARGE SCALE PRODUCTION)

आज का युग बड़े पैमाने के उत्पादन का युग है । सभ्यता के विकास के साथ बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन को बड़े पैमाने पर करना आवश्यक हो गया । श्रम विभाजन, मशीनों का बढ़ता हुआ प्रयोग, उद्योगों का विशिष्टीकरण, नये वैज्ञानिक आविष्कार, प्रमापीकरण (standardisation) इत्यादि तत्वों ने बड़े पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहित किया है । परन्तु यह भी ध्यान रखने की बात है कि ये सब तत्व बड़े पैमाने के उत्पादन के कारण ही नहीं हैं वरन् उसके परिणाम भी हैं ।

बड़े पैमाने की उत्पत्ति का अर्थ (Meaning of Large Scale Production)

जब किसी उद्योग में सामान्यतया उत्पादन इकाइयाँ बड़े आकार की होती हैं तथा वे उत्पत्ति के विभिन्न साधनों (पूंजी, श्रम, कच्चा माल, इत्यादि) को बड़ी मात्रा में प्रयोग करती हैं तब इसे 'बड़े पैमाने का उत्पादन' कहा जाता है । एक उद्योग का आकार दो प्रकार से बढ़ता है—(i) उद्योग मे कार्य करने वाली इकाइयों के आकार मे वृद्धि होने से, तथा (ii) उद्योग में इकाइयों की सख्या मे वृद्धि होने से ।

'बड़े पैमाने का उत्पादन' तथा 'बड़ी मात्रा में उत्पादन' में अन्तर (Distinction between 'Large Scale Production' and 'Mass Production')

'बड़े पैमाने का उत्पादन' तथा 'बड़ी मात्रा मे उत्पादन' की विशेषताएँ मिलती-जुलती हैं परन्तु वे दोनों पूर्णतः एक नहीं हैं; दोनों मे अन्तर है ।

अर्थशास्त्रियों का मत है कि अल्पकाल में मशीनों का प्रयोग श्रमिकों को बेरोजगार कर देता है, परन्तु दीर्घकाल में श्रमिकों की माँग बढ़ जाती है और न केवल रोजगार से हटाये गये सभी व्यक्तियों को रोजगार मिल जाता है वरन् कुल रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हो जाती है। दीर्घकाल में मजदूरों की माँग में वृद्धि तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि निम्न प्रकार से होती है :

(i) किसी उद्योग में मशीनों के प्रयोग से लागत घट जाती है अर्थात उद्योग विशेष की वस्तुएँ सस्ती पड़ती हैं और उनकी कीमत कम हो जाती है : (अ) यदि उद्योग की वस्तुओं की माँग लोचदार है तो कीमत कम होने से इन वस्तुओं की माँग बढ़ेगी, उद्योग को बढ़ाया जायेगा और कुछ रोजगार से हटे हुए श्रमिकों को उसी उद्योग में रोजगार मिल जायेगा, (ब) यदि उद्योग विशेष की वस्तुओं की माँग बेलोचदार है तो उपभोक्ताओं के पास अन्य वस्तुओं पर व्यय करने के लिए अधिक द्रव्य बच रहेगा, अन्य वस्तुओं की माँग बढ़ेगी उनका उत्पादन बढ़ाया जायेगा और उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता पड़ेगी तथा बहुत से बेरोजगार श्रमिकों को रोजगार मिल जायेगा।

(ii) मशीनों के प्रयोग से उन श्रमिकों की, जो कि रोजगार में लगे हुए हैं, उत्पादन कुशलता बढ़ेगी, उनकी मजदूरियाँ बढ़ेंगी, वे वस्तुओं को खरीदने में अधिक व्यय करेंगे और बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए वस्तुओं का अधिक उत्पादन होगा जिसके लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता पड़ेगी।

(iii) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की मशीन बनाने वाले उद्योग स्थापित होंगे; इन मशीन निर्माण उद्योगों में कुछ श्रमिकों को रोजगार मिलेगा। यदि मशीनों का निर्माण देश में नहीं होता वरन् वे विदेशों से मँगायी जाती हैं तो श्रमिकों के रोजगार के अवसर में वृद्धि नहीं होगी।

(iv) मशीनों के प्रयोग से देश का औद्योगीकरण तीव्र गति से होता है। इसके परिणाम-स्वरूप यातायात व संवादवहन के साधनों का विकास किया जायेगा और इनके विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ेगी।

स्पष्ट है—(अ) मशीनों के प्रयोग से अल्पकाल में जो श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं, दीर्घकाल में केवल उनको ही रोजगार नहीं मिलता वरन् रोजगार के कुल अवसरों में वृद्धि होती है। (ब) मशीनों के प्रयोग से अल्पकाल में जो बेरोजगारी उत्पन्न होती है—यह तकनीकी बेरोजगारी (technological unemployment) का एक रूप होती है—वह कुल बेरोजगारी का केवल एक छोटा सा भाग होती है। इसलिए बेरोजगारी की समस्या को मशीनों का प्रयोग बन्द कर देने से हल नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से तो देश का कुल उत्पादन तथा कुल राष्ट्रीय आय कम होगी और अन्त में कुल रोजगार में बहुत कमी हो जायेगी जिससे श्रमिकों की दशा पहले से अधिक खराब हो जायेगी।

निष्कर्ष—मशीनों के प्रयोग के अनेक लाभ तथा हानियाँ हैं। परन्तु इसकी हानियों को एक सीमा तक उचित प्रयत्नों द्वारा दूर या कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मशीनों के लाभ, हानियों की अपेक्षा, कहीं अधिक हैं। मशीनों से उत्पादन में वृद्धि हुई है, देशों की कुल राष्ट्रीय आयों में वृद्धि हुई है, उपभोक्ताओं को विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ कम मूल्य पर प्राप्त हो सकी हैं तथा व्यक्तियों को अधिक अवकाश प्राप्त हुआ है। समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि मशीनों

मानवीय कल्याण में बहुत वृद्धि की है।

आन्तरिक बचतें (Internal Economies)

अर्थ—आन्तरिक बचतें वे बचतें हैं जो कि किसी एक इकाई को आन्तरिक संगठन अच्छा होने के परिणामस्वरूप प्राप्त होती हैं, ये बचतें केवल इकाई विशेष को ही मिलती हैं, अन्य इकाइयाँ सामान्यतया इन बचतों से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकती हैं। ये बचतें प्रत्येक फर्म के लिए उसके आकार के अनुसार भिन्न होती हैं। प्रो० केअरनक्रॉस (Cairncross) के अनुसार, "आन्तरिक बचतें वे हैं जो एक कारखाने या एक फर्म को प्राप्त होती हैं, ये अन्य फर्मों के कार्यों पर आश्रित नहीं होतीं। ये फर्म के उत्पादन के पैमाने में वृद्धि का परिणाम हैं और इनको तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि उत्पादन में वृद्धि न हो। ये किसी भी प्रकार के आविष्कारों का परिणाम नहीं हैं वरन् ये उत्पादन की पूर्व प्रचलित विधियों (known methods of production) का परिणाम हैं जिनको एक छोटी फर्म प्रयोग में लाकर लाभ नहीं उठा सकती।"[2]

कारण—फर्मों को आन्तरिक बचतें प्राप्त होने के मुख्य कारण हैं—(i) अविभाज्यताएँ (indivisibilities), तथा (ii) विशिष्टीकरण (specialisation)।

(i) अविभाज्यताएँ—उत्पत्ति के साधन अविभाज्य (indivisiable) होते हैं। प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की एक निम्नतम सीमा या उसका एक निम्नतम आकार होता है जिसके नीचे हम उसको छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त नहीं कर सकते हैं। मशीन, प्रबन्धक (manager), विपणन (marketing), वित्त (finance), और अनुसन्धान तथा विज्ञान में 'अविभाज्यता का तत्त्व' (element of indivisibility) होता है। फर्मों का आकार बड़ा होने से इन अविभाज्य साधनों का पूरा-पूरा प्रयोग होने लगता है और इसलिए बड़ी फर्मों को छोटी फर्मों की अपेक्षा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं।[3]

---

2 "Internal economies are those which are open to a single factory or a single firm independently of the action of other firms. They result from an increase in the scale of output of the firm, and cannot be achieved unless output increases. They are not the result of inventions of any kind, but are due to the use of known methods of production which a small firm does not find worth while."

3 उदाहरणार्थ, माना कि फाउण्टेनपेन के निबों को बनाने की सबसे छोटी मशीन की लागत १,००० रु० है और इसकी उत्पादन क्षमता (capacity) २०० निब प्रतिदिन की है। यदि मशीन प्रतिदिन १०० निब ही बनाती है तो मशीन की १,००० रु० की स्थिर लागत (fixed cost) १०० निबों पर फैलेगी अर्थात् १० रु० प्रति निब पड़ेगी। यदि वह मशीन पूरी क्षमता प्रयोग करती है अर्थात् २०० निब प्रति दिन बनाती है तो अब मशीन की स्थिर लागत २०० इकाइयों पर फैलेगी अर्थात् मशीन की लागत ५ रु० प्रति निब पड़ेगी; दूसरे शब्दों मे, उत्पादन को बढ़ाने से प्रति इकाई लागत घट जाती है। इस प्रकार मशीन एक अविभाज्य साधन है। इसकी एक निम्न सीमा (अर्थात २०० निब प्रतिदिन बनाने की क्षमता) है जिसके नीचे हम उसके उपविभाग या टुकड़े नहीं कर सकते। १०० निब प्रति दिन बनाने के लिए हम मशीन को काटकर आधा नहीं कर सकते। १०० निब प्रतिदिन बनाने हों या २०० निब प्रतिदिन बनाने हों; उत्पादक को पूरी एक मशीन प्रयोग करनी पड़ेगी और उसकी पूर्ण क्षमता का प्रयोग करने से उत्पादक को वस्तु की लागत कम पड़ेगी। इसी प्रकार एक १,५०० रु० प्रतिमाह प्राप्त करने वाले मैनेजर की देख-रेख में किसी वस्तु की ५०, १००, १५० या ३०० इकाई तक प्रतिदिन उत्पादित की जा सकती है। स्पष्ट है कि ३०० इकाई से कम उत्पादन करने के लिए हम मैनेजर को ½ या ⅓ या ⅔ हिस्सों में नहीं बाँट सकते, कम उत्पादन के लिए पूरा मैनेजर ही प्रयोग में लाना पड़ेगा। अतः अविभाज्य मैनेजर के द्वारा अधिक उत्पादन करने में लागत सस्ती पड़ेगी क्योंकि मैनेजर की वेतन रूपी लागत अधिक इकाइयों पर फैलेगी। स्पष्ट है कि छोटे पैमाने के उत्पादन

(ii) विशिष्टीकरण—आन्तरिक बचतों का दूसरा मुख्य कारण विशिष्टीकरण है। (क) एक छोटे फर्म में एक व्यक्ति को कई कार्य करने पड़ते हैं और परिणामस्वरूप उसकी कार्यक्षमता नीची रहती है। इसके विपरीत जब फर्म का आकार बढ़ता है तो एक व्यक्ति एक कार्य में विशिष्टता प्राप्त कर लेता है, परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है, और वस्तु की लागत कम हो जाती है। (ख) इसी प्रकार फर्म के आकार में वृद्धि होने से 'अविशिष्ट यन्त्रों' (non-specialised equipment) के स्थान पर 'विशिष्ट यन्त्रों' (specialised equipment) का प्रयोग करके उत्पादन कुशलता को बढ़ाया जाता है। (ग) यदि उद्योग का पैमाना बहुत बढ़ जाता है तो उत्पादन की प्रत्येक उप-क्रिया (sub-process) को अलग-अलग फर्में करने लगेंगी जिससे उत्पादन कुशलता में वृद्धि होगी और वस्तु की उत्पादन लागत कम होगी।

आन्तरिक बचतों को पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है। ये पांच वर्ग इस प्रकार हैं। १. तकनीकी बचतें (Technical economies), २. प्रबन्धकीय बचतें (Managerial economies), ३. बाजार या वाणिज्य सम्बन्धी बचतें (Marketing or commercial economies), ४. वित्तीय बचतें (Financial economies), तथा ५. जोखिम उठाने की बचतें (Risk-bearing economies)।

(१) **तकनीकी बचतें** (Technical economies)—ये बचतें उत्पादन की श्रेष्ठ तकनीकी तथा रीति से सम्बन्धित होती हैं। तकनीकी बचतों को निम्न चार भागों में बाँटा जाता है :

(अ) **श्रेष्ठ तकनीकी बचतें** (Economies of superior technique)—बड़ी फर्में ही बड़ी मशीनों तथा तकनीकी दृष्टि से श्रेष्ठ मशीनों का प्रयोग कर सकती हैं क्योंकि इनकी ऊँची कीमतें बड़ी फर्में ही दे सकती हैं, छोटी फर्में नहीं। यद्यपि इन मशीनों की लागत अधिक होती है परन्तु इनके द्वारा बड़ी मात्रा में उत्पादन होने से इनकी लागत अधिक इकाइयों पर फैलती है और उत्पादक को वस्तु की औसत लागत कम पड़ती है। उदाहरणार्थ, इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटिंग मशीनें (electronic computing machines) केवल बड़ी फर्में ही उपयोग कर लाभ उठा सकती हैं।

(ब) **बड़े आयाम की बचतें** (Economies of increased dimensions)—कुछ दशाओं में केवल बड़ी मशीनों के प्रयोग से ही बचतें प्राप्त होती हैं। (i) मशीनों के आयाम (dimension) में वृद्धि से ही यान्त्रिक लाभ (mechanical advantages) प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, एक छोटे तापक (boiler) या एक छोटी भट्टी (furnace) की अपेक्षा एक बड़ा तापक या एक बड़ी भट्टी अधिक सस्ती पड़ती है। (ii) बड़ी मशीन चलाने का खर्चा छोटी मशीन की अपेक्षा कम पड़ता है। उदाहरणार्थ, रेल के एक छोटे इंजन को चलाने में उतने ही व्यक्ति चाहिए जितने बड़े इंजन के लिए, जबकि बड़े इंजन द्वारा अधिक माल तथा यात्री ले जाये जा सकते हैं। (iii) बड़ी मशीनों को बनाना भी अपेक्षाकृत (relatively) सस्ता पड़ता है। उदाहरणार्थ, एक दो-मंजिली बस को बनाना दो बसों की लागत से कम पड़ता है। परन्तु उपर्युक्त विवरण से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि आवश्यक रूप से (necessarily) बड़ी मशीनों का प्रयोग सस्ता पड़ता है। ऐसा कई बातों पर निर्भर करता है।

में 'उत्पत्ति के अभिवाज्य साधनों' का पूरा प्रयोग नहीं हो पाता, जबकि बड़े पैमाने के उत्पादन में इन 'अविभाज्य साधनों' का पूरा-पूरा प्रयोग होता है और इसलिए उत्पादक को आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं।

(स) सम्बद्ध प्रक्रियाओं की बचतें (Economies of linked processes)—बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से सम्बद्ध प्रक्रियाओ को एक ही फर्म या कारखाने के अन्तर्गत किया जा सकता है और बचतें प्राप्त की जा सकती है। (i) जब दो प्रक्रियाओ को, जो कि पहले पृथक-पृथक दो कारखानों द्वारा की जाती थीं, एक ही कारखाने के अन्तर्गत दो विभागो मे की जाने लगती हैं तो समय तथा यातायात की लागतों मे बचत प्राप्त होती है। (ii) कुछ दशाओं मे ईधन तथा शक्ति की भी बचत होती है। (iii) एक विशाल फर्म या कारखाना कच्चे माल के स्रोतो (sources) *पर अपना स्वामित्व करके कच्चे माल की पूर्ति उचित लागत पर तथा नियमित रूप से प्राप्त कर* सकता है। जैसे, चीनी का एक बड़ा कारखाना अपने निजी गन्ने के फार्म रख सकता है। (iv) एक विशाल फर्म या कारखाना अवशिष्ट पदार्थों (by products) का पूरा प्रयोग कर सकता है; वह अपना दूसरा कारखाना खोल कर या बड़ी मात्रा मे प्राप्त अविशिष्ट पदार्थ को बेचकर उचित मूल्य प्राप्त कर सकता है। (v) एक बड़ा फर्म अपना अलग पैकिंग विभाग (packing department) खोल कर पैकिंग की श्रेष्ठ मशीनो का प्रयोग करके लागत मे बचत प्राप्त कर सकता है।

(ब) विशिष्टीकरण में वृद्धि की बचतें (Economies of increased specialisation)—एक बड़ी फर्म मे विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन का अधिक क्षेत्र (scope) रहता है। श्रमिक विभिन्न उप-क्रियाओ मे विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेते है जिससे उत्पादन क्षमता (productive efficiency) बढ़ती है।

ध्यान रहे कि फर्म के एक सीमा तक बढने पर ही तकनीकी बचतें प्राप्त होती हैं इस सीमा या बिन्दु के बाद फर्म में वृद्धि से कोई बचतें प्राप्त नही होती। इस बिन्दु पर फर्म के आकार को 'तकनीकी अनुकूलतम' (technical optimum) कहते हैं। यदि इसी आकार को दोहराया जाय अर्थात इसी आकार की दूसरी या तीसरी फर्म स्थापित की जाय तो कुशलता में बिना किसी हानि के लाभ उठाया जा सकता है।

(२) प्रबन्धकीय बचतें (Managerial economies)—ये बचतें एक कारखाने के आकार को बड़ा कर या अनेक कारखानों को एक व्यवस्था के अन्तर्गत लाकर प्राप्त की जाती हैं। (अ) कार्य को सूक्ष्म बातों को सौंपना (Delegation of details)—एक बडे व्यापार या बड़ी फर्म में एक योग्य प्रबन्धक नित्य क्रियाओं (routine) तथा सूक्ष्म बातों (details) को दफ्तर मे अधीनस्थ पदाधिकारियों (subordinates) को सौंपकर अपना समय फर्म की आवश्यक बातों एव समस्याओ के लिए दे सकता है। इससे फर्म की कुशलता बढ़ेगी। (ब) कार्यात्मक विशिष्टीकरण (Functional specialisation)—बड़ी फर्मों मे 'कार्यात्मक विशिष्टीकरण' की बचतें प्राप्त की जाती हैं। फर्म के कार्य को विभिन्न विभागो मे बाँट दिया जाता है, जैसे लेखांकन तथा लागत विभाग (accounting and costing department), क्रय विभाग, विक्रय विभाग, यातायात विभाग, मशीन तथा बिल्डिंग रक्षण विभाग (machine and building maintenance department), इत्यादि। *प्रत्येक विभाग का एक विशेषज्ञ (expert) नियुक्त किया जाता है।* बड़े विभाग के अनेक उप-विभाग किये जा सकते हैं जिनको अनेक विशेषज्ञों में बाँटा जा सकता है। इस प्रकार का श्रम-विभाजन 'क्षैतिज श्रम-विभाजन' (horizontal division of labour) कहा जाता है। इससे फर्म को अधिक कुशलता प्राप्त होती है। इसी प्रकार सचालक-मण्डल (Board of Directors) मे भी सचालकों को पृथक्-पृथक् विभाग सौंपे जा सकते हैं।

ध्यान रहे कि प्रबन्धकीय बचतों की भी एक सीमा है। यदि फर्म का आकार आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है तो प्रबन्धकीय अबचतें (diseconomies) प्राप्त होने लगती है।

(assets) होती है, इनकी ख्याति दूर तक फैली होती है, तथा इनका पर्याप्त प्रभाव रुपया उधार देने वाली संस्थाओं पर भी होता है। इन सब बातों के कारण बड़ी फर्मों को बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से उचित दर पर तथा पर्याप्त मात्रा में आसानी के साथ ऋण मिल जाता है। इसके अतिरिक्त बड़ी फर्में अपने शेयरों को बेचकर भी ऋण बाजार से आसानी से द्रव्य प्राप्त कर सकती हैं क्योंकि इन फर्मों की ख्याति होती है और शेयर-होल्डर शेयरों की आवश्यकता पड़ने पर बाजार में बेचकर कभी भी नकद रुपया प्राप्त कर सकते हैं। छोटी फर्में इन सब लाभों से वंचित रह जाती हैं।

(५) जोखिम उठाने की बचतें (Risk-bearing economics)—एक बड़ी फर्म को, छो फर्म की अपेक्षा, जोखिम कम होती है क्योंकि वह अपने जोखिम को फैला सकती है। 'जोखिम फैलाने' के सिद्धान्त (spreading the risk) को एक बड़ी फर्म निम्न उपायों से क्रियाशील कर है :—(अ) उत्पादन का विविधीकरण (Diversification of output)—बड़ी फर्म कई वस्तु का उत्पादन कर सकती है। यदि एक वस्तु पर हानि होती है तो वह अन्य वस्तुओं के लाभ द्व पूरी हो जाती है। (ब) बाजारों की विविधता (Diversification of markets)—उत्पादक एक ही बाजार पर निर्भर करना जोखिमपूर्ण है क्योंकि वस्तु की मांग उस बाजार में कम हो ज पर हानि हो सकती है। इसलिए बड़े उत्पादक अपनी निर्मित वस्तु को कई बाजारों में बेचतें ताकि मौका पड़ने पर एक बाजार के नुकसान को अन्य बाजारों के लाभ से पूरा किया जा सके (स) कच्चे माल के स्रोतों का विविधीकरण (Diversification of raw materials)—ब फर्म अपने कच्चे माल की पूर्ति विभिन्न स्रोतों (sources) से करती है। यदि कभी एक जगह कच्चे माल की पूर्ति न मिल पाये तो अन्य जगहों से कच्चे माल की पूर्ति मिलते रहने से उ कार्य चलता रहेगा।

जोखिम को अधिक फैलाने में दो कठिनाइयाँ हैं। प्रथम, जोखिम के अधिक फैलाव कारण प्रवन्धकीय कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। दूसरे, जोखिम का अधिक फैलाव तकनीकी बचतों कम कर सकता है क्योंकि तकनीकी बचतों के लिए यह आवश्यक है कि फर्म एक वस्तु के उत्पा में बहुत अधिक पूँजी का प्रयोग मशीन तथा प्लाण्ट में करे।

(DISADVANTAGES OF LARGE SCALE PRODUCTION)

बड़े पैमाने के अनेक लाभ हैं, परन्तु इसकी अनेक हानियाँ भी हैं। मुख्य हानिय निम्नांकित हैं :

(१) **एकाधिकार की प्रवृत्ति** (Tendency towards monopoly)—बड़े पैमाने उत्पादन में एकाधिकारी के उत्पन्न होने का डर बना रहता है। एक बड़ा उत्पादक आन्तरि बचतों को प्राप्त करने तथा अपने लाभ को बढ़ाने की दृष्टि से उत्पादन के पैमाने को बढ़ाता जात है। छोटे उत्पादक उसकी प्रतियोगिता में नहीं टिक पाते हैं और धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं इस प्रकार बड़ा उत्पादक अपने क्षेत्र में अकेला रह जाता है या कुछ बड़े उत्पादक रह जाते हैं ज आपस में मिलकर ट्रस्ट, कारटेल इत्यादि बना लेते हैं। इस प्रकार बड़े उत्पादक एकाधिकार क स्थिति में हो जाते हैं और वे ऊँची कीमतें लेकर उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं।

(२) **धन का असमान वितरण** (Unequal distribution of wealth)—बड़े पैमाने ोगों के कारण राष्ट्रीय धन थोड़े से बड़े उद्योगपतियों के हाथों में केन्द्रित हो जाता है। इ

'Economies of large scale industry are likely to have the effect of altering the optimu size of the firm, and the reorganisation of the firm to adopt itself to the new optimu size may lend to further economies. These have been described by Mrs. Robertson internal-external economies. They are internal economies, because they depend upo the size of the firm, and external economies because they depend upon the size of th industry."   Mrs. Joan Robinson : *Economics of Imperfect Competition*, pp. 341-4

प्रकार धन के वितरण में विषमता उत्पन्न होती है। इससे देश में आर्थिक असन्तोष फैलता है जो किसी समय भी बढ़कर राजनीतिक क्रान्ति का रूप ले सकता है।

(३) **कारखाने प्रणाली के दोष**—बड़े पैमाने का उत्पादन कारखाना प्रणाली के लगभग सभी दोषों को जन्म देता है :—(i) **गन्दी बस्तियाँ**—बड़े-बड़े उद्योगो में बहुत बड़ी सख्या मे श्रमिक कार्य करते हैं, मकानों की कमी के कारण भीड़-भाड़ की समस्या उत्पन्न होती है तथा गन्दी बस्तियाँ स्थापित होती हैं। सारा वातावरण गन्दा होता है जिसका प्रभाव श्रमिको के मस्तिष्क, शरीर तथा चरित्र पर बुरा पड़ता है। (ii) **श्रम तथा पूँजी का सघर्ष**—मालिकों तथा श्रमिकों में निकट का सम्पर्क नही रह जाता है। परिणामस्वरूप मालिकों तथा श्रमिको मे मन-मुटाव की सम्भावनाएँ अधिक हो जाती हैं। इससे औद्योगिक झगडे, हड़तालें, तालाबन्दियाँ होती रहती हैं। (iii) **अधिक उत्पादन का भय**—बड़े पैमाने का उत्पादन भविष्य की माँग का अनुमान लगा कर किया जाता है। अनुमान गलत हो जाने पर अति-उत्पादन (over-production) हो जाता है जिससे उद्योग विशेष में मन्दी फैल जाती है, इस मन्दी का प्रभाव अन्य उद्योगों पर भी पड़ता है।

(४) **मशीनों के प्रयोग की हानियाँ** (Harmful effects of machines)—बड़े पैमाने के उद्योग में मशीनों का बहुत प्रयोग होता है। मशीनो के अत्यधिक प्रयोग के कारण बेकारी बढ़ सकती है, स्त्री-बच्चो का शोषण हो सकता है, इत्यादि।

(५) **श्रम विभाजन की हानियाँ** (Disadvantages of division of labour)—बड़े पैमाने की उत्पत्ति के साथ श्रम विभाजन की हानियाँ भी जुड़ी रहती हैं, श्रमिको की कुशलता का एकांगी विकास, कार्य मे नीरसता, इत्यादि।

(६) **लघु तथा कुटीर उद्योगों का ह्रास** (Decline of small scale and cottage industries)—बड़े उद्योगो द्वारा निर्मित वस्तुएँ सस्ती होती हैं। इन सस्ती वस्तुओ के मुकाबले मे लघु तथा कुटीर उद्योगो की अपेक्षाकृत महँगी वस्तुएँ नही टिक पाती हैं। विवश होकर बहुत से उद्योग-धन्धे बन्द हो जाते है जिससे बहुत से श्रमिकों मे बेकारी फैल जाती है।

(७) **व्यक्तिगत रुचियो की अवहेलना** (Neglect of individual tastes and preferences)—बड़े उद्योगों द्वारा बहुत बड़ी मात्रा मे वस्तुओ का उत्पादन होता है, इसलिए प्रायः वस्तुओ का प्रमापीकरण (standardisation) करना पड़ता है। इस प्रकार बड़े पैमाने के उद्योग व्यक्तिगत रुचियो पर कोई ध्यान नही दे पाते हैं, वे तो प्रमापित वस्तुओं (standardised goods) का ही उत्पादन करते हैं।

(८) **अन्तरराष्ट्रीय तनाव** (International tension)—बड़े उद्योगो को अपने अतिरिक्त माल (surplus product) को बेचने के लिए प्रायः विदेशी बाजारो पर निर्भर रहना पड़ता है। विदेशों में उन्हें अन्य बड़े उत्पादको से प्रतियोगिता तथा संघर्ष करना पडता है। कभी-कभी यह सघर्ष राजनीतिक रूप धारण कर लेता है। सम्बन्धित देशो की सरकारें भी बीच मे पड़ जाती हैं, तनाव बढ़ जाता है और युद्ध तक की स्थिति आ जाती है।

(९) **राजनैतिक प्रभाव** (Political influence)—बड़े उद्योगपतियो के हाथ मे बड़ी आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो जाती है। प्रजातन्त्र तथा पूँजीवादी देशों मे बड़े उद्योगपति सरकार की आर्थिक नीति को प्रभावित करते है। कुछ दशाओं में ये अफसरों को घूंस देकर भ्रष्टाचार फैलाते हैं।

अर्थात् फर्म के आकार में वृद्धि के परिणामस्वरूप मिलती हैं। बाह्य बचतें समस्त उद्योग को होती हैं और वे उद्योग के आकार पर निर्भर करती हैं अर्थात् वे उद्योग के आकार में वृद्धि तथा उद्योग के स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप मिलती हैं।

वास्तव में, इन दोनों प्रकार की बचतों के बीच अन्तर की एक स्पष्ट तथा निश्चित रे. । खींचना कठिन है। इसके मुख्य कारण हैं: (i) श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, 'बड़े पैमाने के उद्योग की बचतें फर्म के अनुकूलतम आकार (optimum size) को बदल सकती ह और नये अनुकूलतम आकार की दृष्टि से फर्म के आन्तरिक पुनर्संगठन के लिए किये गये प्र. और अधिक आन्तरिक बचतों को जन्म देते हैं। इनको रावर्टसन (Robertson) ने 'आन्तरिक बाह्य बचतें' (internal-external economies) कहा है। ये आन्तरिक बचतें इसलिए हैं कि फर्म के आकार पर निर्भर करती हैं और बाह्य बचतें इसलिए हैं कि ये उद्योग के आकार प. निर्भर करती हैं।"[5] (ii) यह सम्भव है कि एक स्थिति में जो बचतें आन्तरिक हैं, दूसरी ि में बाह्य हो जायँ। उदाहरणार्थ, किसी एक फर्म के आकार में बहुत विस्तार हो जाने के कार बड़ी मात्रा में अवशिष्ट पदार्थ (by-product) प्राप्त हो सकता है। जब इस अवशिष्ट पदार्थ ~ प्रयोग वह फर्म स्वयं करती है तो यह आन्तरिक बचत हुई, जब इस अवशिष्ट पदार्थ का प्रयो अन्य फर्म या फर्में करती हैं तो बाह्य बचत होगी। अत: आर० एफ० काह्न' (R. F. Kahn, का कथन है कि कुछ फर्मों को बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं वे कुछ अन्य फर्मों या उद्योग के लिए आन्तरिक बचतें हो सकती हैं। दूसरे शब्दों में, यदि कई फर्में, जिन्हें बाह्य बचतें प्राप्त हो रही हैं आपस में मिल जाती हैं तो 'बाह्य बचतें' 'आन्तरिक बचतें' हो जायेंगी। प्रो० काह्न ि.ष्कर्ष निकालते हैं कि व्यक्तिगत फर्मों के लिए आन्तरिक तथा बाह्य बचतें हो सकती हैं, परन्तु स. अर्थव्यवस्था के लिए केवल आन्तरिक बचतें ही हो सकती हैं।

बड़े पैमाने की उत्पत्ति की हानियाँ
(DISADVANTAGES OF LARGE SCALE PRODUCTION)

बड़े पैमाने के अनेक लाभ हैं, परन्तु इसकी अनेक हानियाँ भी हैं। मुख्य हानिय निम्नांकित हैं:

(१) **एकाधिकार की प्रवृत्ति** (Tendency towards monopoly)—बड़े पैमाने उत्पादन में एकाधिकारी के उत्पन्न होने का डर बना रहता है। एक बड़ा उत्पादक आन्तरिक बचतों को प्राप्त करने तथा अपने लाभ को बढ़ाने की दृष्टि से उत्पादन के पैमाने को बढ़ाता जा है। छोटे उत्पादक उसकी प्रतियोगिता में नहीं टिक पाते हैं और धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार बड़ा उत्पादक अपने क्षेत्र में अकेला रह जाता है या कुछ बड़े उत्पादक रह जाते हैं जो आपस में मिलकर ट्रस्ट, कारटेल इत्यादि बना लेते हैं। इस प्रकार बड़े उत्पादक एकाधिकार की स्थिति में हो जाते हैं और वे ऊँची कीमतें लेकर उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं।

(२) **धन का असमान वितरण** (Unequal distribution of wealth)—बड़े पैमाने के ..गों के कारण राष्ट्रीय धन थोड़े से बड़े उद्योगपतियों के हाथों में केन्द्रित हो जाता है। इस

"Economies of large scale industry are likely to have the effect of altering the optimum size of the firm, and the reorganisation of the firm to adopt itself to the new optim size may lend to further economies. These have been described by Mrs. Robertson a internal-external economies. They are internal economies, because they depend up the size of the firm, and external economies because they depend upon the size of t industry." Mrs. Joan Robinson : *Economics of Imperfect Competition*, pp. 341-42.

और उनके उत्पादन का पैमाना छोटा रखना ही लाभदायक है। बाजार को सीमित करने वाले दो मुख्य तत्त्व हैं : (i) भौगोलिक (Geographical), तथा (ii) मनोवैज्ञानिक (Psychological)।

(i) भौगोलिक—कुछ उद्योगों का एक स्थान पर बड़े पैमाने का उत्पादन इसलिए कठिन होता है कि उपभोक्ता बहुत दूर-दूर तक फैले रहते हैं और उनके पास तक वस्तु को पहुँचाने की *यातायात लागत बहुत अधिक पड़ती है, जैसे फर्नीचर बनाने का कार्य।* कुछ दशाओं में कच्चा माल बहुत दूर-दूर तक फैला होता है जिसको एक स्थान पर एकत्रित करना बहुत महँगा पड़ता है और इसलिए बड़े पैमाने का उत्पादन कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में उत्पादक कच्चे माल के आसपास छोटे पैमाने पर उत्पादन कर स्थानीय या क्षेत्रीय आवश्यकताओं की ही पूर्ति करते हैं, जैसे चावल की मिलें (rice mills)। इन उद्योगों में उपभोक्ताओं या कच्चे माल की दूरी छोटी फर्मों को प्रतियोगिता की ठण्डी हवाओं से बचाती है।

(ii) मनोवैज्ञानिक—बाजार को सीमित करने वाली मनोवैज्ञानिक कठिनाई है 'उत्पाद-विवेद' (product-differentiation)। एक उद्योग में विभिन्न फर्मों की वस्तुओं में थोड़ी बहुत भिन्नता अवश्य होती है। भिन्नता के लिए प्रत्येक उत्पादक अपना कोई 'ब्रांड' या 'ट्रेड मार्क' रखता है। प्रत्येक उपभोक्ता अपनी रुचि के अनुसार, एक 'ब्राण्ड' की वस्तु को पसन्द कर लेता है। इस प्रकार व्यवहार में एक वस्तु का बाजार उपभोक्ताओं की रुचि, आदतों, तथा धारणाओं (prejudices) के अनुसार उपभोक्ताओं के समूहों (groups) में बँट जाता है। उपभोक्ताओं का एक समूह उत्पादक विशेष की वस्तु की मांग करता है। इसलिए बड़ी फर्में छोटी फर्मों को बाजार से नहीं हटा पाती हैं और कुछ वस्तुओं का उत्पादन छोटे पैमाने पर होता रहता है।

(उत्पादन के पैमाने के विस्तार में बाजार की बाधाओं को दूर करने के लिए दो ढंग अपनाए जा सकते हैं : (i) विभिन्न स्थानों या क्षेत्रों में केन्द्रीय बड़े कारखाने की शाखाएँ खोल दी जायें। ये पहली कठिनाई अर्थात भौगोलिक कठिनाई (दूरी की कठिनाई तथा यातायात के अत्यधिक व्यय की कठिनाई) को दूर करने में सहायक होंगी, तथा (ii) केन्द्रीय कारखाना कई प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करे; यह दूसरी कठिनाई अर्थात् मनोवैज्ञानिक कठिनाई (उत्पाद-विवेद की समस्या) को दूर करने में सहायक होगी। परन्तु इन दोनों में से कोई भी रीति पूर्णतया सन्तोष-जनक नहीं है। जहाँ तक पहली रीति का प्रश्न है, शाखाओं की वृद्धि प्रबन्धकीय कठिनाइयों को जटिल बनाती है। दूसरी रीति में, यदि एक उत्पादक कई प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करता है तो वह एक प्रकार की वस्तु का बड़ा उत्पादक न रह कर सभी प्रकार की वस्तुओं का छोटा उत्पादक हो जायेगा।)

(५) **उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति की कठिनाइयाँ** (Difficulties in the supply of factors)—कुछ दशाओं में उत्पत्ति के पैमाने को बड़ा करने में विभिन्न उत्पत्ति के साधनों का पर्याप्त मात्रा में न मिलना होता है। श्रम, कच्चा माल, भूमि इत्यादि की कमी या इनकी बहुत ऊँची कीमतें उत्पत्ति के पैमाने को बढ़ाने में बाधक होती हैं।

(६) **वित्तीय कठिनाइयाँ या सीमाएँ** (*Financial difficulties or limitations*)—पूँजी की पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करने की कठिनाई उत्पत्ति के पैमाने को बढ़ाने में बाधक होती है। आज के युग में पूँजी की कठिनाई को एक सीमा तक संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ खोलकर दूर कर लिया जाता है। कभी-कभी द्रव्य-पूँजी (money capital) के स्थान पर पूँजीगत वस्तुओं (capital goods) की कमी अधिक बाधक सिद्ध होती है।

छोटे पैमाने का उत्पादन
(SMALL SCALE PRODUCTION)

छोटे पैमाने के उत्पादन का अर्थ (Meaning of small scale production)—ज[ब] किसी उद्योग में कार्य करने वाली इकाइयों का आकार छोटा होता है और प्रत्येक इकाई उत्प[ादन] के साधनों (श्रम, पूंजी, भूमि इत्यादि) की थोड़ी मात्रा का प्रयोग करती है तो इसे छोटे पैमाने [का] उत्पादन कहते हैं। एक छोटे पैमाने की इकाई में पूंजी तथा श्रम की कितनी मात्रा तक प्रयोग कि[या] जायेगा यह बात प्रत्येक देश में परिस्थितियों तथा [illegible] परिभाषा के अनुसार भिन्न होगी। पर[न्तु] सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि किसी इकाई में यदि श्रमिकों की इतनी संख्या है कि व्य[व]स्थापक तथा प्रत्येक श्रमिक के बीच सीधा सम्पर्क हो सकता है तो वह छोटे पैमाने की इकाई क[ही] जायेगी; इसके विपरीत यदि श्रमिकों की संख्या इतनी अधिक है कि व्यवस्थापक तथा प्रत्येक श्रमि[क] में सीधा सम्पर्क सम्भव नहीं है तब यह बड़े पैमाने की इकाई होगी।

छोटे पैमाने के उत्पादन के लाभ (Advantages of Small Scale Production)

छोटे पैमाने के उत्पत्ति के मुख्य लाभ निम्न हैं :

(१) व्यक्तिगत निरीक्षण (Personal supervision)—चूंकि उत्पादन का पैमाना छो[टा] होता है इसलिए उत्पादक अपने व्यवसाय की सभी सूक्ष्म बातों का निरीक्षण कर सकता है; वह दे[ख] सकता है कि श्रमिक ठीक कार्य करते हैं, कच्चे माल की कोई बर्बादी नहीं होती है, इत्यादि। व्या[पार] की प्रत्येक सूक्ष्म बात पर उत्पादक का व्यक्तिगत ध्यान हर प्रकार की बर्बादी (waste) को रोक[ता] है। इसे 'मालिक की आँख की बचतें' (economy of the master's eye) कहते हैं।

(२) धन का उचित वितरण (Equitable distribution of wealth)—बड़े पैमाने [के] उत्पादन में धन थोड़े से लोगों के हाथ में केन्द्रित हो जाता है। परन्तु छोटे पैमाने का उत्पादन [देश] के विभिन्न भागों में होता है जिससे धन का वितरण न्यायसंगत होता है। इससे लोगों में मन-मुट[ाव] की भावना दूर होती है और सहयोग तथा एकता की भावना जाग्रत होती है।

(३) मालिकों तथा श्रमिकों में निकट सम्पर्क (Close contact between employe[rs] and workers)—छोटे उद्योगों में श्रमिकों की संख्या कम होती है। इसलिए मालिकों तथा श्रमि[कों] में निकट सम्पर्क रहता है; मालिक श्रमिकों के दुख-सुख में भाग ले सकते हैं। मालिकों तथा श्रमि[कों] के इस निकट-सम्पर्क के कारण हड़तालें तथा ताले-बन्दी नहीं होती हैं और औद्योगिक शान्ति ब[नी] रहती है। बड़े पैमाने के उत्पादन में स्थिति इसके विपरीत होती है।

(४) ग्राहकों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान (Personal attention towards customers)[—] एक छोटा उत्पादक अपने ग्राहकों की आवश्यकताओं तथा रुचि की ओर व्यक्तिगत ध्यान दे स[कता] है और तदनुसार उनके लिए वस्तुओं का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार उसके अवि[क्रीत] (unsold) स्टॉक की सम्भावना कम रहती है।

(५) कार्य की स्वतन्त्रता तथा सुविधा (Freedom and ease of work)—एक छ[ोटे] उत्पादक को अपने कार्य में पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वह अपने कार्य को घर पर भी कर सकता [तथा] अपने परिवार के सदस्यों की सहायता ले सकता है। आवश्यकता पड़ने पर जब चाहे तब [कुछ] दिनों के लिए कार्य को बन्द भी कर सकता है। कार्य की इतनी स्वतन्त्रता तथा सुविधा एक [बड़े] उत्पादक को कभी भी नहीं हो सकती है।

(६) प्रबन्ध में सरलता (Ease of management)—चूंकि उत्पादन छोटे पैमाने [पर] होता है इसलिए उत्पादक के लिए उसका प्रबन्ध करना आसान होता है। उसे, बड़े उत्पादक

भाँति, लम्बे-चौड़े हिसाब रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सारा काम उत्पादक की निगाह में रहता है और अपव्यय की सम्भावनाएँ कम रहती हैं।

(७) कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन (Production of artistic goods)—छोटे पैमाने के उत्पादन के अन्तर्गत ही कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन हो सकता है क्योंकि ऐसी वस्तुओं में व्यक्तिगत ध्यान की आवश्यकता होती है। आगरे की विख्यात दरियाँ, संगमरमर का कार्य, पेपर मेशी के खिलौने इत्यादि छोटे पैमाने पर ही बनाये जाते हैं।

(८) कारखाना प्रणाली के दोषों का दूर होना (Removal of the defects of factory system)—छोटे उद्योग किसी एक स्थान पर केन्द्रित न होकर देश भर में विभिन्न स्थानों तथा क्षेत्रों में फैले होते हैं तथा इनमें मशीनों का सीमित प्रयोग होता है। इसलिए छोटे उद्योगों में मशीन तथा कारखाना प्रणाली के दोषों, जैसे, भीड़-भाड़, गन्दी बस्तियाँ, दूषित वातावरण, इत्यादि, से मुक्ति मिल जाती है।

(९) श्रमिकों के व्यक्तित्व का विकास (Development of worker's personality)—छोटे उद्योगों में श्रमिकों में ईमानदारी, उत्तरदायित्व तथा स्वाभिमान की भावनाओं को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार श्रमिकों के व्यक्तित्व का विकास होता है।

(१०) लोच (Flexibility)—छोटे उद्योगों का एक महत्त्वपूर्ण गुण उनमें लोच का होना है, अर्थात् बाजार की परिस्थितियों के अनुसार वे स्वयं में परिवर्तन कर सकते हैं तथा नयी परिस्थितियों के साथ समायोजन कर सकते हैं। कुछ वस्तुओं की माँग सीमित तथा परिवर्तनशील हो सकती है, ऐसी वस्तुओं की माँग की पूर्ति केवल छोटे उद्योग ही कर सकते हैं।

छोटे पैमाने के उत्पादन की हानियाँ (Disadvantages of Small Scale Production)

छोटे पैमाने के उद्योगों की मुख्य हानियाँ निम्न हैं :

(१) श्रम विभाजन तथा मशीनों का सीमित क्षेत्र (Scope for division of labour and machines is limited)—छोटे उद्योगों के साधन सीमित होते हैं, इसलिए वे न तो कुशल तथा नवीनतम मशीनों को खरीद सकते हैं और न अधिक संख्या में श्रमिकों को लगा सकते हैं। अतः छोटे उद्योगों को श्रम विभाजन तथा मशीनों की बचतें प्राप्त नहीं होतीं।

(२) पूँजी की अपर्याप्त सुविधाएं (Inadequate facilities of capital)—छोटे उद्योगों के पास सम्पत्ति (assets) कम होती है, उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है। ऐसी स्थिति में उनकी उधार लेने की क्षमता कम होती है; उन्हें पूँजी कठिनाई से तथा ऊँची ब्याज पर उधार मिलती है।

(३) प्रतियोगिता शक्ति की कमी (Weak competitive power)—छोटे उत्पादकों की वस्तु की औसत लागत अपेक्षाकृत अधिक होती है। इसलिए बड़े उद्योगों के मुकाबले छोटे उत्पादकों की प्रतियोगिता शक्ति कमजोर रहती है।

(४) आर्थिक संकट को झेलने की कम शक्ति (Poor capacity to face economic crisis)—छोटे उद्योगों के पास रिजर्व फण्ड (reserve fund) बहुत कम होता है। वे आर्थिक मन्दी के झटके को नहीं झेल पाते हैं और प्रायः अत्यधिक हानियों के कारण बन्द हो जाते हैं।

(५) अवशिष्ट पदार्थों का बेकार जाना (Waste of by-products)—छोटे उद्योगों में अवशिष्ट पदार्थ की बहुत कम मात्रा प्राप्त होती है जिसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है और वह बेकार जाता है। इसके विपरीत बड़े उद्योग में अवशिष्ट पदार्थ की पर्याप्त मात्रा प्राप्त होती है जिसका प्रयोग या तो उद्योग विशेष स्वयं कर सकता है या उसे दूसरे फर्म को बेचकर उचित दाम खड़े कर लेता है।

(६) निम्नकोटि का कच्चा माल (Inferior quality of raw material)—कच्चे माल के विक्रेता सर्वप्रथम अपने माल को बड़े उद्योगों को बेचते हैं क्योंकि उनकी खरीद बड़ी मात्रा मे होती है। बचा हुआ निम्न कोटि का कच्चा माल छोटे उद्योगों के लिए रह जाता है।

(७) बिक्री संगठन में कुशलता की कमी (Lack of efficiency in sales organisation)—छोटे उद्योगों का बिक्री संगठन, बड़े उद्योगों की अपेक्षा, कम कुशल होता है। इसके मुख्य कारण हैं : (i) प्रायः छोटे उद्योग की वस्तु की प्रत्येक इकाई एक-सी तथा प्रमापित (uniform and standardised) नहीं होती। (ii) प्रायः उनकी वस्तु निम्न कोटि की होती है क्योंकि उन्हें बचा हुआ निम्न कोटि का कच्चा माल मिलता है। (iii) वे विज्ञापन तथा प्रचार पर बहुत कम द्रव्य व्यय कर पाते हैं।

(८) अनुसन्धान की कमी (Absence of research)—छोटे उत्पादक के साधन सीमित होते हैं, इसलिए वे उद्योग से सम्बन्धित अनुसन्धान पर कुछ भी व्यय नहीं कर पाते हैं औ इस प्रकार अनुसन्धान के लाभों से वंचित रह जाते हैं।

(९) कुछ उद्योगों में अनुपयुक्तता (Unsuitability in some industries)—कुछ उद्यो ऐसे होते हैं जिनमें छोटे पैमाने पर कार्य हो ही नहीं सकता, जैसे लोहा तथा इस्पात उद्योग, हवा जहाजों तथा जलयानों का निर्माण, इत्यादि।

छोटे पैमाने के उद्योगों का जीवित रहना
(SURVIVAL OF SMALL SCALE INDUSTRIES)

आज का युग बड़े पैमाने के उत्पादन का है, परन्तु फिर भी छोटे पैमाने के उद्योग जीवि हैं। बड़े पैमाने के उद्योगों को आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं जिससे उनके द्वारा निर्मि वस्तु की प्रति इकाई लागत, छोटे उद्योगों की अपेक्षा, कम पड़ती है। छोटे उद्योगों की प्रतियोगित शक्ति कम होती है, परन्तु फिर भी छोटे उद्योग जीवित हैं और भविष्य में भी जीवित रहने क आशा है। अतः प्रश्न उठता है कि वे कौन-से कारण हैं जो छोटे उद्योगों को जीवित रखते हैं इसके मुख्य कारण निम्न हैं :

(१) **प्रवन्धकीय कठिनाइयाँ** (Managerial difficulties)—कई उद्योगों में उत्पत्ति पैमाने को बढ़ाने से प्रबन्धकीय कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं और इसलिए ऐसे उद्योगों क छोटे पैमाने पर ही चलाना पड़ता है। उदाहरणार्थ, कृषि उद्योग में सूक्ष्म निरीक्षण (detaile supervision) की आवश्यकता होती है, कुशलता की दृष्टि से ऐसे निरीक्षण को वेतन पाने वा व्यक्तियों या श्रमिकों पर नहीं छोड़ा जा सकता है।

(२) **व्यवसाय का स्वभाव** (Nature of business)—कुछ उद्योगों में 'शीघ्र निर्णय ने (rapid decision-taking) की आवश्यकता पड़ती है तथा ग्राहकों की व्यक्तिगत रुचियों को ध्या में रखना पड़ता है, जैसे दर्जी या सुनार का कार्य; ऐसे कार्यों को छोटे पैमाने पर ही करना पड़त है। इसी प्रकार कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनमें बड़ी मशीनों के प्रयोग के लिए क्षेत्र (scope) न होता, जैसे, बढ़ई का कार्य, घड़ियों के बनाने का कार्य, इत्यादि। अतः ऐसे उद्योगों को छोटे पैम पर चलाना ही लाभदायक रहता है।

(३) **लोच तथा व्यक्तिगत ध्यान** (Flexibility and personal attention)—एक छो उत्पादक अपने ग्राहकों की आवश्यकताओं तथा रुचियों पर व्यक्तिगत ध्यान देता है जिससे ग्राहक को अधिक सन्तोष मिलता है। इतना ही नहीं छोटा उत्पादक बाजार तथा ग्राहकों की आवश्यकता सार अपनी वस्तु में शीघ्रता से परिवर्तन कर सकता है, बड़े पैमाने के उत्पादन में यह लोच नह

होती। छोटे उत्पादक वस्तु की मात्रा के स्थान पर वस्तु के गुण पर अधिक ध्यान देते हैं, इसलिए कलात्मक वस्तुएँ ये ही बना सकते हैं न कि बड़े उद्योग।

(४) छोटी तथा कुशल मशीनों के आविष्कार (Invention of small and efficient machines)—आज के युग मे विज्ञान की बहुत प्रगति के कारण छोटी और साथ ही साथ कुशल मशीनों का आविष्कार हो चुका है। इन मशीनों का प्रयोग करके छोटा उत्पादक अपनी वस्तु को बड़ी मात्रा (mass production) मे उत्पादित करता है और उसकी प्रतियोगिता शक्ति बढ़ गयी है।

(५) सस्ती विद्युत-शक्ति की उपलब्धता (Availability of cheap hydro-electricity)—बहुत से देशों मे नदियों के पानी द्वारा बिजली पैदा की जा रही है जो बहुत सस्ती पड़ती है और देश में दूर-दूर स्थानों तक ले जायी जा सकती है। इससे छोटे उद्योगों को सस्ती विद्युत शक्ति प्राप्त हो जाती है; यह बात आधुनिक छोटे उद्योगों को प्रोत्साहित करने मे महत्त्वपूर्ण है।

(६) शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएं (Perishable goods)—दूध, शाक-सब्जी, डबल रोटी इत्यादि शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं का उत्पादन प्राय: छोटे पैमाने पर ही किया जाता है क्योंकि इनको आसानी से बहुत दूर क्षेत्रों तक नहीं ले जाया जा सकता है।

(७) यातायात लागत (Cost of transportation)—प्रथम, कुछ वस्तुओं का कच्चा माल बहुत दूर-दूर तक फैला होता है जिनको एक स्थान पर एकत्रित करने मे बहुत अधिक यातायात लागत पड़ती है। जब कच्चे माल को बड़ी मात्रा मे एकत्रित नहीं किया जा सकता है तो बड़े पैमाने का उत्पादन भी नहीं हो सकता है और उत्पादन को छोटे पैमाने पर ही करना पड़ता है। ऐसा एक उदाहरण चावल की मिलो का है। दूसरे, कुछ वस्तुओं के उपभोक्ता बहुत दूर-दूर तक फैले होते हैं, इन वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने मे बहुत यातायात लागत बैठती है। अत: ऐसी वस्तुओं का उत्पादन भी छोटे पैमाने पर ही होता है। ऐसी वस्तुओं के उदाहरण हैं फर्नीचर, बेकरी (bakery) का कार्य, इत्यादि। तीसरे, जब निर्मित वस्तु वजन मे बहुत भारी होती है तो भी उसकी यातायात लागत अधिक होती है और उसे छोटे पैमाने पर ही चलाना पड़ता है, उदाहरणार्थ, ईंटों का उद्योग।

(८) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological reasons)—बहुत से योग्य व्यक्ति बड़े पैमाने के उद्योगों में दूसरे के अधीन वेतन पर कार्य करना पसन्द नहीं करते। वे स्वयं अपना कोई छोटा उद्योग चलाकर स्वतन्त्रता तथा स्वाभिमान के साथ रहना अधिक पसन्द करते है।

(९) छोटे उद्योग 'श्रम-गहन' होते हैं (Small scale industries are labour-intensive)—छोटे उद्योगों में श्रम की अधिक आवश्यकता है और पूंजी की कम। बड़े उद्योग पूंजी-गहन (capital intensive) होते हैं जबकि छोटे उद्योग 'श्रम-गहन' (labour-intensive)। छोटे उद्योग अविकसित देशों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होते है क्योंकि इन देशों मे मनुष्य-शक्ति (manpower) अधिक होती है और पूंजी कम। इन उद्योगों मे अधिक मनुष्यों को रोजगार मिलता है।

(१०) सरकार का प्रोत्साहन (Government's encouragement)—प्रत्येक देश में, विशेषतया अविकसित देशों मे, सरकार छोटे उद्योगों को आर्थिक सहायता तथा अन्य कई प्रकार की सहायता देकर प्रोत्साहित करती है। इसके मुख्य कारण है: (i) इनसे अधिक रोजगार मिलता है, (ii) देश में आय के न्यायसंगत वितरण मे सहायता मिलती है, तथा (iii) देश का सन्तुलित आर्थिक विकास होता है जिससे देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों मे एकता तथा सहयोग की भावना रहती है।

३१ उद्योगों का विवेकीकरण
[RATIONALISATION OF INDUSTRIES]

प्रादुर्भाव (Origin)

विवेकीकरण[1] का अर्थ है कि उद्योग में तकनीकी तथा प्रबन्धकीय सुधारों द्वारा लागत को कम करके उत्पादक-कुशलता को बढ़ाना। अधिकतम विस्तृत तथा सामान्य अर्थ में विवेकीकरण का आशय है सभी मानवीय क्रियाओं को विवेक के आदेशों के अनुरूप लाना ('bringing all human activities into conformity with the dictates of reason')। यदि हम विस्तृत तथा सामान्य अर्थ की दृष्टि से देखें तो हम विवेकीकरण की प्रक्रिया का अस्तित्व मानव जाति के प्रारम्भ से ही मानवीय क्रियाओं के विभिन्न क्षेत्रों में पायेंगे। परन्तु उद्योगों के क्षेत्र में विवेकीकरण का जन्म प्रथम विश्वयुद्ध के विनाशकारी प्रभावों के परिणामस्वरूप यूरोपीय देशों की लड़खड़ाती तथा पराजित अर्थव्यवस्थाओं में हुआ। इन अर्थव्यवस्थाओं में, विशेषतया जर्मनी में, यह बाधित (compelling) आवश्यकता थी कि औद्योगिक अधोगति (degeneration) को रोका जाय। कठोर आर्थिक परिस्थितियों के कारण जर्मनी को अपने उद्योगों का पुनर्संगठन तथा आधुनीकरण करना पड़ा। जर्मनी के द्वारा अपने औद्योगिक पुनर्जन्म (rebirth) के लिए प्रयोग में लायी गयी वैज्ञानिक रीतियों तथा प्रविधियों (techniques) को विवेकीकरण का नाम दिया गया। वाल-टियर मेकिन (Waltier Mackin) ने इसे 'नयी औद्योगिक क्रान्ति' (New Industrial Revolution) का नाम दिया।

विवेकीकरण का अर्थ (Meaning of Rationalisation)

शब्द विवेकीकरण (rationalisation) विवेक (rational) शब्द से बना है जिसका अर्थ है किसी कार्य में विवेक या तर्क या वैज्ञानिक निर्णय का प्रयोग करना।

उद्योगों के विवेकीकरण से अर्थ उद्योग में ऐसे तकनीकी (technical), वित्तीय तथा प्रबन्धकीय सुधार करना है जिससे न्यूनतम लागत तथा प्रयत्न से अधिकतम उत्पादक-कुशलता (productive efficiency) प्राप्त हो। उत्पादन में पाँच 'म' (five M's) योगदान देते हैं जिनके नाम हैं—मनुष्य (man), मशीन (machine), माल (material), मुद्रा (money) तथा मैनेजमेण्ट (management)। एक उद्योग का आदर्श विवेकीकरण वह है जो इन पाँचों पहलुओं में सुधार करे। प्रत्येक की बर्बादी का निराकरण ही विवेकीकरण का सार है।

---

[1] विवेकीकरण के लिए हिन्दी के दो अन्य शब्द; अभिनवीकरण तथा युक्तिकरण भी प्रयोग में लाये जाते हैं।

वास्तव में, विवेकीकरण का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और उसके सम्पूर्ण अर्थ को किसी एक कठोर परिभाषा (rigid definition) की चारों दीवारों के अन्दर भरा जाना कठिन है। इसी कारण विवेकीकरण की अनेक परिभाषाएँ पायी जाती हैं। उनमें से हम केवल एक मुख्य परिभाषा को नीचे देते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ (International Labour Organisation) ने विवेकीकरण की परिभाषा संकुचित, व्यापक, तथा अति व्यापक अर्थों में दी है। परिभाषा निम्न है :

"(i) सकुचित अर्थ में, विवेकीकरण से आशय किसी उद्योग, शासन या अन्य सेवा में, चाहे वह सरकारी हो अथवा गैर-सरकारी, ऐसे सुधारों से है जिनके द्वारा परम्परागत तथा प्राचीन विधियो के स्थान पर नियमित तर्क या विवेक पर आधारित विधियो का प्रयोग किया जाता है। (ii) व्यापक अर्थ में, विवेकीकरण एक ऐसा सुधार है जिसमें व्यावसायिक सस्थाओं के एक समूह को इकाई मान लिया जाता है तथा व्यवस्थित तर्क पर आधारित संगठित क्रिया द्वारा अनियन्त्रित प्रतियोगिता से होने वाली बर्बादी तथा हानि को रोका जाता है। *(iii) अति व्यापक अर्थ में,* विवेकीकरण एक ऐसा सुधार है जिसमे विशाल आर्थिक एवं सामाजिक समुदायों की सामाजिक क्रियाओं पर व्यवस्थित तर्क पर आधारित उपायों तथा विधियों का प्रयोग किया जाता है।"[2]

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि विवेकीकरण संकुचित अर्थ में एक कारखाने पर लागू होती है, व्यापक अर्थ में एक उद्योग पर तथा अति व्यापक अर्थ में सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर लागू होती है।

विवेकीकरण के पहलू (Aspects of Rationalisation)

विवेकीकरण के अर्थ को भलीभाँति समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसके विभिन्न पहलुओं को समझ लिया जाय। विवेकीकरण के मुख्य पहलू निम्न हैं :

(१) तान्त्रिक पहलू (Technological aspect)—विवेकीकरण का एक मुख्य अंग है तकनीकी कुशलता को अधिकतम करना। तान्त्रिक पहलू मे प्रायः निम्न बातें सम्मिलित की जाती हैं।

(i) प्रमापीकरण (Standardisation)—विवेकीकरण में विधियों तथा वस्तुओं का प्रमापीकरण किया जाता है। इससे पूँजी तथा कच्चे माल का अपव्यय कम होता है और प्लाण्ट की *उत्पादन क्षमता बढ़ती है।*

(ii) सरलीकरण (Simplification)—*उत्पादन विधियों को सरल किया जाता है, इससे* अच्छा श्रम-विभाजन होता है, श्रमिकों की कार्य-क्षमता बढ़ती है तथा लागत कम होती है।

(iii) यन्त्रीकरण (Mechanisation)—श्रेष्ठ प्रकार के यन्त्रो तथा मशीनों का प्रयोग करने से श्रमिकों की उत्पादक-क्षमता बढ़ती है, लागत घटती है, उत्पादन तीव्र गति से होता है तथा एक रूप वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।

(iv) गहनता (Intensification)—तकनीकी सुधार किये बिना यन्त्रों तथा श्रमिकों उत्पादन गति में वृद्धि करना गहनता कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वर्तमान मशीनों तथा श्र का अधिकतम प्रयोग करने की दृष्टि से उन्हें तीव्र गति से चलाकर श्रमिकों की कार्य-क्षमता वृद्धि की जाती है। इसमें नयी व श्रेष्ठ मशीनों का प्रयोग नहीं किया जाता, केवल पुरानी मशी की मरम्मत इत्यादि करके या उसमें थोड़ा सुधार करके ही काम चलाया जाता है; इससे श्रमि के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी विवेकीकरण की आड़ में केवल गहनता को ल किया जाता है।

(v) विशिष्टीकरण (Specialisation)—उद्योग विशेष की इकाइयाँ वस्तु के अलग-अ भागों का निर्माण करने में विशिष्टता प्राप्त कर लेती हैं। इससे पूँजी तथा श्रम का अपव्यय न होता और उत्पादक कुशलता में वृद्धि होती है।

(vi) कार्यशीलता (Functionalisation)—इसका अर्थ है उद्योग के आन्तरिक सं में वैज्ञानिक प्रबन्ध को कार्यात्मक रूप देना। कार्य करने की रीतियों को वैज्ञानिक ढंग से निर्धा किया जाता है, श्रमिकों का वैज्ञानिक ढंग से चुनाव किया जाता है तथा श्रमिकों को निश्चित का के अनुसार निश्चित मजदूरी दी जाती है। निरीक्षण कार्य को कई विशिष्ट उपवर्गों (Sub-divisio में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक उपवर्ग का एक कार्यशील निरीक्षक (functional boss) हो है जो उस उपवर्ग के कार्य के लिए पूर्ण उत्तरदायी होता है।

(२) संगठनात्मक पहलू (Organisational aspect)—इस पहलू का अर्थ है उद्योग गलाकाट प्रतियोगिता का निराकरण करना। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि निरर्थक (ineffecti प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप उद्योग की कमजोर इकाइयों का धीमी गति से स्वतः नाश हो जाय वरन् इसमें तो कमजोर इकाइयों को क्षमतावान इकाइयों के साथ मिला दिया जाता है और इ प्रकार बहुत सी मृत लकड़ी (dead wood) काट दी जाती है। बालफोर कमेटी (Balfou Committee) के अनुसार' "उन्नति की तीव्र गति बनाये रखने तथा अधिक कुशल शाखाओं विकास के लिए मृत लकड़ी को काटने का कार्य आवश्यक हो सकता है।"[3] विवेकीकरण संगठनात्मक पहलू का औद्योगिक संयोजन (Industrial Combination) एक महत्त्वपूर्ण भाग है

(३) वित्तीय पहलू (Financial aspect)—विवेकीकरण के तकनीकी तथा संगठनात्म पहलुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्त की व्यवस्था आवश्यक है। वित्तीय संगठन के अन्तर्ग उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में अनावश्यक व्ययों को कम करना तथा पूँजी की उचित व्यवस्था करन जाता है। पूँजी को निम्नतम लागत पर प्राप्त की जाने की चेष्टा की जाती है। उद्योग अ [illegible] में से कोषों (funds) का सृजन करता है ताकि जहाँ तक सम्भव हो पर्याप्त वित्त उद्योग के [illegible]

तत्व को ध्यान में रखना तथा उसको उचित मान्यता देना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा विवेकीकरण अर्थहीन हो जावेगा। मानवीय तत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि विवेकीकरण एक यान्त्रिक विज्ञान ही नहीं वरन् एक मानवीय कला भी है।"[4]

विवेकीकरण के उद्देश्य (Objects of Rationalisation)

उद्योग के क्षेत्र में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं, नयी-नयी रीतियों तथा मशीनों के आविष्कार होते रहते हैं। इन परिवर्तनशील स्थितियों में उद्योगों की उत्पादक कुशलता तथा उनकी प्रतिस्पर्द्धा शक्ति को बनाये रखने के लिए विवेकीकरण की अत्यन्त आवश्यकता है। विवेकीकरण की आवश्यकता इसके उद्देश्यों से स्पष्ट होती है। विवेकीकरण के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं :

(१) प्रत्येक प्रकार के अपव्यय का निराकरण (Elimination of every type of waste)—विवेकीकरण का एक मुख्य उद्देश्य पुरानी रीतियों तथा अप्रचलित (obsolete) मशीनों के स्थान पर वैज्ञानिक रीतियों तथा नयी कुशल मशीनों का प्रयोग करके अपव्यय को दूर करना है। विवेकीकरण दोषपूर्ण संगठन, अनियन्त्रित प्रतिस्पर्द्धा, दोषपूर्ण उत्पादन विधियों, उत्पत्ति के साधनों का दोषपूर्ण समन्वय, शक्ति, कच्चा माल, इत्यादि से सम्बन्धित सभी प्रकार के अपव्ययों को दूर करने का प्रयत्न करता है।

(२) प्रमापीकरण (Standardisation)—विवेकीकरण उत्पादन की किस्मों की विभिन्नता में कमी करता है (यदि उन किस्मों से कोई लाभ न हो) और उनका प्रमापीकरण करके उत्पादन कुशलता में वृद्धि करता है।

(३) उद्योग में स्थित साधनों का अधिकतम प्रयोग (Maximum utilisation of the existing resources in an industry)—विवेकीकरण न केवल नयी रीतियों तथा नयी मशीनों का ही प्रयोग करता है वरन् उद्योग में स्थित मशीनों तथा अन्य साधनों का अधिकतम प्रयोग करने का प्रयत्न करता है।

(४) श्रम कुशलता में वृद्धि (Increase in worker's efficiency)—विवेकीकरण का एक उद्देश्य न्यूनतम प्रयत्नों द्वारा अधिकतम श्रम कुशलता प्राप्त करना है।

(५) वैज्ञानिक वितरण व्यवस्था (Scientific distributive system)—विवेकीकरण अनावश्यक यातायात, भारी वित्तीय किरायों तथा अनावश्यक मध्यस्थों को हटाने का प्रयत्न करता है।

(६) उत्पादकों में आय का अच्छा वितरण (Better distribution of income among producers)—विवेकीकरण उत्पादकों के विभिन्न वर्गों को ऊँची आय तथा उसका उचित और अच्छा वितरण प्राप्त करने में सहायक होता है।

(७) अधिक स्थायित्व (Greater stability)—विवेकीकरण उद्योगों में कार्य कुशलता का एक उच्च स्तर बनाये रखता है और इस प्रकार उनको अच्छा स्थायित्व प्रदान करता है।

(८) उच्च जीवन स्तर (High standard of living)—विवेकीकरण द्वारा उपभोक्ताओं को पर्याप्त मात्रा में तथा आवश्यकताओं के अनुरूप सस्ती कीमतों पर वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार विवेकीकरण का एक मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं तथा समाज के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना भी है।

---

4 "Rationalisation is not merely a mechanical science but also a human art."

विवेकीकरण की विधियाँ (Methods of Rationalisation)

विवेकीकरण का मुख्य उद्देश्य सभी प्रकार के अपव्यय का निराकरण तथा लागत में करके उत्पादक कुशलता को बढ़ाना है। इस दृष्टि से विवेकीकरण के अन्तर्गत निम्न रीतियों प्रयोग किया जाता है :

(१) **आधुनिकीकरण या तान्त्रिक सुधार** (Modernisation or technological impro ment)—उद्योग में घिसी तथा अप्रचलित (obsolete) मशीनों तथा यन्त्रों के स्थान पर तथा आधुनिकतम मशीनों तथा यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार पुरानी रीतियों स्थान पर नवीनतम तथा वैज्ञानिक रीतियाँ अपनायी जाती हैं।

(२) **वित्तीय पुनर्संगठन** (Financial reorganisation)—उचित रीतियों द्वारा उ में 'अति-पूँजीकरण' (over capitalisation) तथा 'न्यून-पूँजीकरण' (under capitalisati के दोषों को दूर किया जाता है।

(३) **वैज्ञानिक प्रबन्ध** (Scientific management)—इस पद्धति के जन्मदाता अमरी निवासी एफ० डब्ल्यू० टेलर (F. W. Taylor) हैं। इसके अन्तर्गत न्यूनतम समय, कम से शारीरिक गति और न्यूनतम थकावट के साथ अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास जाता है। दूसरे शब्दों में, इसमें समय-अध्ययन (time-study), गति अध्ययन (motion stud तथा थकावट अध्ययन fatigue-study) शामिल होते हैं।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के मुख्य तत्त्व इस प्रकार हैं : (i) प्रत्येक कार्य के लिए सर्वश्रेष्ठ श्र को चुना जाता है और तत्पश्चात् प्रशिक्षण द्वारा उसका पूर्ण विकास किया जाता है। (ii) प्र श्रमिक का कार्यक्रम इस प्रकार निश्चित किया जाता है कि अनावश्यक गति के कारण समय श्रम का कोई अपव्यय (waste) न हो। (iii) प्रबन्ध तथा श्रमिकों में कार्य को वैज्ञानिक ढंग बाँटा जाता है। (iv) प्रबन्ध तथा श्रम में अच्छा सहयोग प्राप्त किया जाता है।

इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध एक फर्म को एक इकाई मानकर उसका सर्वश्रेष्ठ संगठन कर है और श्रम उत्पादकता को बढ़ाता है।

(४) **एकीकरण तथा समन्वय** (Integration and co-ordination)—एक उद्योग कुशलता को एकीकरण तथा समन्वय द्वारा बहुत बढ़ाया जा सकता है, उद्योग की विभिन्न स्थानों स्थित अनेक कमजोर इकाइयों को एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत लाकर, अर्थात 'क्षैतिज एकीकर (horizontal integration) द्वारा अकुशल फर्मों का निराकरण किया जाता है और उत्पादन श्रेष्ठ फर्मों में केन्द्रित कर दिया जाता है। दूसरे, एक उत्पादक इकाई में कच्चे माल से लेकर प माल तक तैयार करने के सभी कार्यों का एकीकरण करके, अर्थात 'शीर्ष एकीकरण' (vertic integration) द्वारा कच्चे माल की लागतों तथा प्रबन्ध के खर्चों को कम किया जाता है।

(५) **प्रमापीकरण** (Standardisation)—वस्तुओं तथा प्रक्रियाओं का प्रमापीकरण कि जाता है। यह उत्पादन तकनीक को सरल करता है तथा बिक्री को बढ़ाता है।

(६) **बिक्री-प्रोत्साहन** (Sales promotion)—विज्ञापन, प्रसार तथा बिक्री के अधि अच्छे तरीकों का प्रयोग किया जाता है। निर्यात वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के लिए प्रायः उद्य विशेष की सब इकाइयाँ मिलकर कार्य करती हैं, इससे व्यय में कमी भी होती है।

विवेकीकरण के लाभ
(ADVANTAGES OF RATIONALISATION)

विवेकीकरण के लाभों को हम निम्न चार मुख्य वर्गों (broad groups) में बाँट सकते है

I. उत्पादकों को लाभ, II. श्रमिकों को लाभ, III. उपभोक्ताओं को लाभ, IV. समाज लाभ। उपर्युक्त चारों वर्गों के लाभों की हम नीचे विस्तृत रूप से विवेचना करते हैं।

उत्पादकों को लाभ (Benefits to Producers)

उत्पादकों को निम्न लाभ होते हैं :

(१) उत्पादकता में वृद्धि तथा लागत में कमी (*Higher productivity and reduction in cost*)—*विवेकीकरण के अन्तर्गत आधुनिकतम मशीनों तथा यन्त्रों, नवीनतम तथा सरल क्रियाओं, विशिष्टीकरण तथा प्रमापीकरण का प्रयोग किया जाता है।* उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है जिससे आन्तरिक तथा वाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। उपर्युक्त सब बातों के परिणामस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होती है और उत्पादन लागत में कमी होती है।

(२) प्रत्येक प्रकार के अपव्यय का निराकरण (Elimination of wastages of every kind)—विवेकीकरण दोषपूर्ण संगठन, अनियन्त्रित प्रतिस्पर्द्धा, दोषपूर्ण उत्पादन विधियों, उत्पत्ति के साधनों का दोषपूर्ण समन्वय, शक्ति, कच्चा माल, इत्यादि से सम्बन्धित सभी प्रकार के अपव्ययों को दूर करके उत्पादन लागत में कमी करता है।

(३) पूँजी का अच्छा प्रयोग (*Better utilisation of capital*)—*विवेकीकरण में पूँजी की व्यवस्था उद्योग की आवश्यकतानुसार की जाती है अर्थात इसमें अति-पूँजीकरण* (over-capitalisation) तथा न्यून-पूँजीकरण (under capitalisation) नहीं होता है। इस प्रकार पूँजी का अच्छा प्रयोग होता है।

(४) श्रम तथा प्रबन्ध में सहयोग (Co-operation between labour and management)—विवेकीकरण श्रमिकों की मजदूरियों तथा कार्य करने की दशाओं में सुधार करके श्रम तथा प्रबन्ध में सहयोग स्थापित करने का प्रयत्न करता है। संघर्ष के स्थान पर सहयोग की भावना को *प्रोत्साहन मिलता है और औद्योगिक शान्ति स्थापित होती है।*

(५) *औद्योगिक अनुसन्धान को प्रोत्साहन (Promotion of industrial research)*—विवेकीकरण के कारण उद्योग विशेष की इकाइयों को सामूहिक रूप में अधिक साधन तथा सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक अनुसन्धान को बहुत प्रोत्साहन मिलता है।

(६) उद्योग की प्रतियोगिता-शक्ति में वृद्धि (Increase in the competitive power of industry)—नवीनतम मशीनों तथा प्रक्रियाओं के प्रयोग, प्रत्येक प्रकार के अपव्यय का निराकरण, *आर्थिक साधनों में वृद्धि, इत्यादि के कारण उद्योग की विदेशी प्रतियोगिता का सामना करने* की शक्ति बढ़ जाती है।

(७) उद्योग में स्थायित्व (Stability in the industry)—उत्पादन, क्रय-विक्रय, वित्त व्यवस्था, प्रबन्ध इत्यादि सभी क्षेत्रों में वैज्ञानिक तथा नवीनतम रीतियों का प्रयोग करने से अति-उत्पादन तथा न्यून-उत्पादन की सम्भावना नहीं रह जाती है। इस प्रकार विवेकीकरण व्यापारिक अस्थिरता (business fluctuations) के प्रति बीमा (insurance) का काम करता है।

II. श्रमिकों को लाभ (Benefits to Workers)

(१) कार्यकुशलता में वृद्धि (*Increase in efficiency*)—*श्रमिकों का वैज्ञानिक रीति से चुनाव, कार्य करने के लिए नवीनतम मशीनों तथा यन्त्रों की व्यवस्था, कार्यों का उचित वितरण, कार्य करने की अच्छी दशाओं, इत्यादि द्वारा विवेकीकरण श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि* करता है। (२) अधिक मजदूरियाँ तथा उच्च जीवन-स्तर (More wages and higher stand-

ard of living)—कार्य कुशलता में वृद्धि होने से श्रमिकों को अधिक मजदूरियाँ मिलती हैं औ उनका जीवन-स्तर ऊँचा होता है।

III. **उपभोक्ता को लाभ** (Benefits to Consumers)

विवेकीकरण के परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को **श्रेष्ठ वस्तुएँ कम मूल्य** पर प्राप्त हो जात हैं और इससे उनके **जीवन-स्तर में वृद्धि** होती है।

IV. **समाज को लाभ** (Benefits to Society)

विवेकीकरण से समाज को निम्न लाभ प्राप्त हैं : (१) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि** होती हैं राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से समाज या देश की बचत करने की क्षमता में वृद्धि होती है; अधि बचत होने से देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से किया जा सकता है। (२) देश के **साधनों अधिकतम प्रयोग** किया जाता है; इससे भी समाज की आय में वृद्धि होती है। (३) समस्त समा का **जीवन-स्तर ऊँचा** उठ जाता है।

दोष, खतरे तथा कठिनाइयाँ
(DISADVANTAGES, DANGERS AND DIFFICULTIES)

विवेकीकरण से **उत्पादन के क्षेत्र में, उपभोक्ताओं के लिए, श्रमिकों तथा मालिकों के लि** कुछ दोष, खतरे तथा कठिनाइयाँ होती हैं। इनका विवरण नीचे दिया गया है :

1. **उत्पादन के क्षेत्र में** (In the Field of Production)

विवेकीकरण के कारण उत्पादन के क्षेत्र में निम्न दोष तथा खतरे होते हैं :

(१) **नेतृत्व तथा उपक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव** (Adverse effect on leadership an enterprise)—विवेकीकरण में प्रायः एकीकरण होता है तथा उत्पादन का पैमाना बहुत बढ़ जात है, विशाल संगठनों तथा ट्रस्टों (trusts) की स्थापना हो जाती है। इन विशाल संगठनों के सम युवक व्यक्तियों (young persons) को स्वतन्त्र रूप में व्यापार चलाने के अवसर नहीं मिलते हैं योग्यतम युवकों को इन बड़े-बड़े संगठनों में केवल सामान्य कार्यकर्ताओं की भाँति ही कार्य करन पड़ता है। परिणामस्वरूप नये व्यक्तियों की योग्यताओं का उचित विकास नहीं होता। इस प्रका नेतृत्व तथा उपक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और दीर्घकाल में विवेकीकृत (rationalised उद्योगों के लिए 'उद्योग के कप्तानों' (captains of industries) की पर्याप्त मात्रा में पूर्ति ए समस्या बन सकती है।

(२) **अधिक तकनीकी सुधारों के लिए कम उत्साह** (Less encouragement fo further technical improvement)—विवेकीकरण द्वारा जब किसी उद्योग को एक बार स्थायि प्राप्त हो जाता है तो वह और अधिक तकनीकी सुधारों के लिए कोई प्रवृत्ति या उत्साह नह दिखाता क्योंकि ऐसा करने में नयी मशीनों तथा नयी रीतियों का प्रयोग करना पड़ेगा जिस वर्तमान व्यवस्था गड़बड़ (upset) होगी। वास्तव में, विवेकीकरण एक सतत प्रक्रिया (conti nuous process) है; समयानुसार निरन्तर नवीनतम मशीनों तथा सुधरी हुई रीतियों का प्रयो किया जाना चाहिए। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता क्योंकि यह बहुत मँहगा पड़ता है इस प्रकार उद्योग विशेष में एक स्थैतिक दृष्टिकोण (static approach) आ जाता है।

(३) **बड़े पैमाने की उत्पत्ति के दोष** (Defects of large scale production)—विवेकीकरण में मशीनों के प्रयोग श्रम-विभाजन, विशिष्टीकरण तथा बड़े पैमाने की उत्पत्ति के अनेक दोष पाये जाते हैं।

II. उपभोक्ताओं के लिए (For Consumers)

विवेकीकरण एकाधिकारी प्रवृत्तियों को जन्म देता है। विवेकीकरण में प्रायः उद्योग विशेष की विभिन्न इकाइयों मे एकीकरण (integration) होता है जिससे कारटेल (cartels) तथा ट्रस्टों (trusts) की स्थापना हो जाती है। ये कारटेल तथा ट्रस्ट उत्पादन के एक बहुत बड़े भाग को नियन्त्रित करते हैं, उपभोक्ताओं से ऊँचे मूल्य प्राप्त करते हैं और वस्तु की किस्म तक में गिरावट कर देते है। इस प्रकार उपभोक्ता विवेकीरण के लाभों के वंचित रह जाते हैं और उनका शोषण होता है।

III. श्रमिकों का दृष्टिकोण (Attitude of Workers)

श्रमिक कई दोषों के कारण विवेकीकरण का विरोध करते हैं। श्रमिको के लिए मुख्य हानियाँ, या श्रमिकों द्वारा विरोध करने के मुख्य कारण निम्न हैं :

(१) गहनीकरण का साधनमात्र (Divice for the intensification of work)—यह कहा जाता है कि व्यवहार मे विवेकीकरण केवल गहनीकरण का रूप धारण कर लेता है। श्रमिकों के कार्य करने की अच्छी दशाओ, नवीनतम मशीनो, इत्यादि अन्य बातों का प्रयोग किये बिना ही उत्पादक गहनीकरण को लागू कर देते हैं जिससे श्रमिकों पर बहुत जोर तथा तनाव पड़ता है। इससे श्रमिको के स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव पड़ता है।

(२) विवेकीकरण के लाभों से श्रमिक वंचित रह जाते हैं (Workers are deprived of the gains of rationalisation)—विवेकीकरण के परिणामस्वरूप उत्पादन मे वृद्धि होती है परन्तु उत्पादक उसी अनुपात मे श्रमिकों की मजदूरियो मे वृद्धि नहीं करते। व्यवहार में श्रमिको को अधिक कार्य करना पड़ता है, उनको अपेक्षाकृत मजदूरी कम मिलती है, उनके कार्य करने की दशाओ मे उचित मात्रा मे सुधार नही किया जाता। इस प्रकार श्रमिक विवेकीकरण के लाभों से वंचित रह जाते है।

(३) बेरोजगारी (Unemployment)—विवेकीकरण के परिणामस्वरूप श्रमिकों मे बेरोजगारी फैलती है। श्रमिको द्वारा विवेकीकरण के विरोध करने का यह एक मुख्य कारण है। विवेकीकरण रोजगार को इस प्रकार कम करता है : (i) मशीनो के प्रयोग के परिणामस्वरूप अनावश्यक श्रमिको की छँटनी कर दी जाती है। (ii) उत्पादन को माँग के अनुरूप बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता है, अकुशल औद्योगिक इकाइयो को बन्द करके उत्पादन को केवल कुछ कुशल फर्मों मे केन्द्रित कर दिया जाता है। इस प्रकार बहुत से श्रमिक बेकार हो जाते हैं। दीर्घकाल मे विवेकीकरण बेरोजगारी को दूर करता है तथा रोजगार के कुल अवसरों मे वृद्धि करता है; परन्तु इसमे सन्देह नही कि अल्पकाल मे थोड़ी बेरोजगारी अवश्य होती है। सरकार, मालिकों तथा श्रमिकों के संयुक्त प्रयत्नो द्वारा इस अल्पकालीन तथा अस्थायी बेरोजगार को भी नियन्त्रित किया जा सकता है।

दीर्घकाल मे विवेकीकरण निम्न प्रकार से रोजगार के कुल अवसरो मे वृद्धि करता है : (i) विवेकीरण से उत्पादन लागत घटती है और वस्तु का मूल्य कम हो जाता है। (अ) यदि उद्योग की वस्तुओं की माँग लोचदार है तो मूल्य कम होने से इन वस्तुओं की माँग बढ़ेगी, उद्योग को बढ़ाया जायेगा और कुछ छँटे हुए श्रमिकों को उसी उद्योग मे रोजगार मिल जायेगा। (ब) यदि उद्योग विशेष की वस्तुओं की माँग बेलोचदार है तो उपभोक्ताओं के पास अन्य वस्तुओं पर व्यय करने के लिए अधिक द्रव्य बच रहेगा, अन्य वस्तुओं की माँग बढ़ेगी, उनका उत्पादन बढ़ाया जायेगा तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होगी। (ii) विवेकीकरण

से रोजगार में लगे हुए श्रमिकों की उत्पादन कुशलता बढ़ेगी, उनकी मजदूरियाँ बढ़ेंगी, वे वस्तु को खरीदने में अधिक व्यय करेंगे और बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए वस्तुओं का अधि उत्पादन होगा जिससे अधिक श्रमिकों को रोजगार मिलेगा। (iii) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की मशीन बनाने वाले उद्योग स्थापित होते हैं; इन मशीन-निर्माण उद्योगों में कुछ श्रमिकों को रोजगार मिलेगा। यदि मशीनों का निर्माण देश में नहीं होता बल्कि वे विदेशों से मँगाई जाती हैं तो श्रमिकों के रोजगार के अवसरों में वृद्धि नहीं होगी। (iv) विवेकीकरण तथा मशीनों के प्रयोग से देश का औद्योगीकरण तीव्र गति से होगा। इसके परिणामस्वरूप यातायात व संवादवहन के साधनों का विकास किया जायेगा और इनके विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ेगी।

विवेकीकरण से निःसन्देह अल्पकाल में बेरोजगारी या अस्थायी असमायोजन (temporary maladjustment) होता है। परन्तु रोजगार के दफ्तरों की उचित व्यवस्था, श्रमिकों के पुन: प्रशिक्षण की पर्याप्त और अच्छी व्यवस्था, बेरोजगारी बीमा, इत्यादि अनेक उपायों द्वारा अस्थायी बेरोजगारी को एक सीमा तक दूर किया जा सकता है।

IV. **उत्पादकों या मालिकों का दृष्टिकोण** (Producers' or Employers' Attitude)

श्रमिक ही नहीं वरन् मालिक भी कुछ भयों (dangers) के कारण विवेकीकरण का विरोध करते हैं या वे इसके प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाते। मालिकों के मुख्य भय निम्नलिखित हैं :

(१) **अधिक पूँजी तथा कम प्रतिफल** (Huge capital and low return)—मालिकों या उत्पादकों के अनुसार, विवेकीकरण में बहुत अधिक पूँजी लगती है जबकि उनको प्रतिफल (return) बहुत कम मिलता है। विवेकीकरण से व्यापार की अस्थिरताओं (fluctuaions) को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता है; इसलिए मालिकों को भारी हानि होने का भय बना रहता है।

(२) **बड़ी मात्रा में पूँजी की व्यवस्था की कठिनाई** (Difficulty in managing huge capital)—विवेकीकरण के लिए बहुत बड़ी मात्रा में धन एकत्रित करने में भी उत्पादकों को बहुत कठिनाई होती है। इसके कारण उत्पादक विवेकीकरण को अपनाने में हिचकिचाते हैं।

(३) **श्रमिकों के उचित भाग के निर्धारण में कठिनाई** (Difficulty in determining equitable share of workers)—विवेकीकरण के लाभ के अधिकांश भाग को मालिक लेना चाहते हैं। श्रमिकों को बढ़े हुए उत्पादन में से कितना हिस्सा दिया जाना चाहिए इस सम्बन्ध में प्रायः मालिकों तथा श्रमिकों में झगड़ा रहता है।

(४) **अधिक अनुसन्धानों का डर** (Threats of further researches)—एक बार उद्योग का विवेकीकरण करने के बाद भी उत्पादकों को सदैव इस बात का डर रहता है कि भविष्य में अधिक अनुसन्धानों के परिणामस्वरूप उनकी वर्तमान मशीनें तथा उत्पादन की रीतियाँ बेकार हो जायेंगी।

(५) **राष्ट्रीयकरण का डर** (Danger of nationalisation)—उत्पादकों को यह भी डर रहता है कि उद्योग में बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी लगाने तथा उसका विवेकीकरण करने के बाद कहीं सरकार, एकाधिकारी प्रवृत्ति का बहाना लेकर, उसका राष्ट्रीयकरण न कर दे।

वास्तव में, उत्पादकों के उपर्युक्त भयों तथा कठिनाइयों को सरकार के प्रयत्नों तथा उचित नीति द्वारा दूर किया जा सकता है।

निष्कर्ष—विवेकीकरण के अनेक लाभ हैं, परन्तु इसके कुछ दोष, भय तथा कठिनाइयाँ भी हैं। यह आवश्यक है कि विवेकीकरण की योजना को कार्यान्वित करते समय उत्पादकों, श्रमिकों तथा उपभोक्ताओं, सभी के हितों का ध्यान रखा जाय जिससे, जहाँ तक सम्भव हो, किसी भी वर्ग को कोई कठिनाई न हो या बहुत कम अस्थायी कठिनाइयों का सामना करना पड़े; दूसरे शब्दों में, 'बिना आँसुओं के विवेकीकरण' (rationalisation without tears) को अपनाया जा सके। इस दृष्टि से सरकार का योगदान महत्त्वपूर्ण है। उद्योगों के पुनर्संगठन की उचित योजनाओं को बनवाना, उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सहायता देना, उचित कानूनों का निर्माण करना ताकि श्रमिकों को अस्थायी बेरोजगारी की कठिनाइयों का सामना न करना पड़े तथा उपभोक्ताओं को एकाधिकारी या ऊँची कीमतें न देनी पड़ें, इत्यादि, उपायों द्वारा सरकार, मालिकों तथा श्रमिकों के सहयोग से, 'बिना आँसुओं के विवेकीकरण' को कार्यान्वित कर सकती है।

३२ व्यावसायिक संगठन के प्ररूप
[FORMS OF BUSINESS ORGANISATION]

किसी व्यवसाय या उद्योग का स्वामित्व निजी हाथों में हो सकता है या सरकारी हाथों में। औद्योगिक तथा व्यावसायिक क्रियाओं में परिवर्तनों के साथ उद्योग-धन्धों के स्वामित्व में बहुत परिवर्तन हो गये हैं। आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ व्यावसायिक संगठन के प्ररूपों (forms) को प्रभावित करती रहती हैं।

व्यावसायिक संगठन के मुख्य प्ररूप निम्नांकित हैं: १. एकाकी स्वामित्व (Sole or single proprietorship), २. साझेदारी (Partnership), ३. संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ (Joint stock companies), ४. सहकारिता (Co-operation), ५. सरकारी उपक्रम (Government enterprises), ६. एकाधिकार (Monopoly)। व्यावसायिक संगठनों के विभिन्न प्ररूपों का नीचे संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

एकाकी स्वामित्व
(SOLE OR SINGLE PROPRIETORSHIP)

प्राक्कथन (Introductory)

एकाकी स्वामित्व व्यावसायिक संगठन का सबसे प्राचीन रूप है। विनिमय-प्रणाली के प्रारम्भ के साथ ही इसका जन्म हो गया था। सभ्यता के विकास के साथ उत्पादन की रीतियों में परिवर्तन होने लगा, औद्योगिक क्रान्ति के बाद से उत्पादन प्रणाली अधिक जटिल हो गयी। परिणामस्वरूप व्यावसायिक संगठन के रूप में भी परिवर्तन हुआ—एकाकी व्यवसाय से साझेदारी, साझेदारी से संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली तथा संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली से विशिष्ट व्यावसायिक

संगठनों का जन्म हुआ। इतना होने पर भी कुछ लाभों के कारण एकाकी व्यवसाय का अन्त नहीं हुआ और आज भी उसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

एकाकी स्वामित्व को अन्य नामों से भी पुकारा जाता है; जैसे व्यक्तिगत उपक्रम (individual enterprise), एकल स्वामी (sole owner), व्यक्तिगत साहसी (individual entrepreneur), व्यक्तिगत व्यवस्थापक (individual organiser) तथा एकाकी व्यापारी (sole trader)।

एकाकी स्वामित्व का अर्थ (Meaning of Sole Proprietorship)

एकाकी स्वामित्व व्यवसाय का वह स्वरूप है जिसमें केवल एक ही व्यक्ति व्यवसाय का स्वामी होता है और वही व्यक्ति व्यवसाय के कार्य-संचालन एवं लाभ-हानि के लिए पूर्ण रूप उत्तरदायी होता है।

जेम्स स्टीफेन्सन (James Stephenson) ने एकाकी स्वामित्व को इस प्रकार परिभाषित किया है : "एकाकी व्यापारी वह व्यक्ति है जो व्यवसाय को केवल स्वयं तथा अपने लिए ही करता है। इस प्रकार के व्यवसाय की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह व्यक्ति व्यवसाय को चलाने से सम्बन्धित सभी जोखिमों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। वह व्यवसाय की पूंजी का न केवल मालिक ही होता है वरन् प्रायः संगठनकर्ता तथा प्रवन्धक भी होता है, तथा सब लाभ को प्राप्त करने या हानियों को उठाने के लिए उत्तरदायी होता है।"[1]

एकाकी स्वामित्व की विशेषताएँ (Characteristics of Sole Proprietorship)

(१) व्यवसाय का स्वामित्व केवल एक ही व्यक्ति के हाथ में होता है। (२) स्वामी स्वयं ही व्यवसाय का प्रवन्धक होता है और उसके पूर्ण नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी होता है। लाभ हानि के लिए वह पूर्णतया उत्तरदायी होता है। (३) एकाकी व्यवसाय का असीमित दायित्व (unlimited liability) होता है अर्थात हानि या उधार की रकम को लोग व्यवसाय की सम्पत्ति से ही नहीं वरन स्वामी की निजी सम्पत्ति से वसूल कर सकते हैं। (४) स्वामी प्रायः उत्पत्ति के साधनों को स्वयं ही प्रदान करता है। वह अपनी पूंजी लगाता है, आवश्यकता पड़ने पर दूसरों से उधार भी लेता है। इसी प्रकार प्रायः वह अपनी भूमि का प्रयोग करता है, आवश्यकता पड़ने पर भूमि किराये पर भी लेता है। इसी प्रकार कुछ श्रमिकों को भी लगा सकता है। (५) स्वामी को अपना व्यवसाय स्थापित करने के लिए वैधानिक उपचारों (legal formalities) की आवश्यकता बिलकुल ही नहीं या बहुत कम होती है। (६) पूंजी की सीमित मात्रा तथा प्रवन्ध की सीमितता के कारण एकाकी व्यवसाय का कार्य-क्षेत्र सीमित रहता है। (७) एकाकी व्यवसाय को इच्छानुसार कभी भी प्रारम्भ या समाप्त किया जा सकता है।

एकाकी स्वामित्व के लाभ (Advantages of Sole Proprietorship)

(१) **स्थापना में सुगमता**—एकाकी व्यवसाय को बहुत आसानी से स्थापित किया जा सकता है। इसके मुख्य कारण हैं : (अ) इसकी स्थापना में कोई वैधानिक उपचारों को पूरा करने की आवश्यकता नहीं होती। (ब) यह छोटे पैमाने पर होता है, इसलिए इसे एक सामान्य

---

[1] "A sole trader is a person who carries on business exclusively by and for himself. The leading feature of this kind of concern is that the individual assumes full responsibility for all the risks connected with the conduct of the business. He is not only the owner of the capital of the undertaking, but is usually the organiser and manager and takes all the profits or responsibility for losses."

बुद्धि वाला अशिक्षित व्यक्ति भी सुविधापूर्वक चला सकता है। (स) इसको किसी स्थान पर चलाया जा सकता है, यहाँ तक कि इसे घर के एक भाग में स्थापित किया जा सकता है।

(२) शीघ्र निर्णय—एकाकी व्यवसाय में एक व्यक्ति ही सम्पूर्ण व्यवसाय का मालिक होता है, समस्त कार्य-संचालन के लिए वही उत्तरदायी होता है और कार्य सम्बन्धी बातों में उसे किसी की सलाह या आज्ञा पर निर्भर नहीं करना पड़ता। अतः मालिक परिस्थितियों के अनुसार व्यवसाय के हित में शीघ्र निर्णय ले सकता है। इससे आत्म-निर्भरता की भावना को भी बल मिलता है।

(३) *अधिक रुचि तथा मितव्ययिता—मालिक स्वयं ही प्रबन्धक का कार्य करता है*, इस प्रकार वह प्रबन्धक के वेतन को बचा कर लागत में कमी करता है। दूसरे, चूँकि मालिक पर लाभ-हानि का पूर्ण उत्तरदायित्व होता है, इसलिए मालिक कार्य में अधिक रुचि लेता है, वह कार्य के प्रत्येक भाग का अच्छी प्रकार से निरीक्षण करता है। 'मालिक के आँख की बचत' (economy of master's eye) प्रत्येक प्रकार के अपव्यय को दूर करके उत्पादन-लागत में कमी करती है।

(४) ग्राहकों से व्यक्तिगत सम्पर्क—एकाकी व्यवसाय छोटे पैमाने पर होता है, इसलिए मालिक अपने ग्राहकों के साथ अधिक निकट तथा व्यक्तिगत सम्पर्क रख सकता है। वह ग्राहकों की कठिनाइयों तथा रुचियों पर व्यक्तिगत ध्यान देकर उन्हें अधिक सन्तुष्ट रखता है। एकाकी व्यवसाय की सफलता तथा उसके जीवित रहने का यह एक मुख्य कारण है।

(५) कर्मचारियों से मधुर सम्बन्ध—एकाकी व्यवसाय छोटे पैमाने पर होता है, इसलिए मालिक कर्मचारियों के साथ अधिक निकट सम्पर्क स्थापित कर सकता है, उनके दुख-सुख में सम्मिलित हो सकता है, उनकी कठिनाइयों को समझकर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करता है। परिणामस्वरूप मालिक तथा कर्मचारियों में मधुर सम्बन्ध रहते हैं, हड़ताल तथा ताले-बन्दी की सम्भावना नहीं रहती, सन्तुष्ट कर्मचारी अधिक उत्साह, लगन तथा रुचि से कार्य करते हैं जिससे एकाकी व्यवसाय को सफलता प्राप्त होती है।

(६) गोपनीयता—एकाकी व्यवसाय में एक व्यक्ति मालिक होता है और सम्पूर्ण व्यवसाय पर उसका *नियन्त्रण होता है। इसलिए व्यवसाय की रीतियों, कार्य विधियों तथा भेदों को गोपनीय* रखना सरल होता है।

(७) उधार-साख—यदि मालिक की बाजार में अच्छी ख्याति है तो सुगमता से रुपया उधार मिल जाता है। असीमित उत्तरदायित्व के कारण लोग उधार दिये गये रुपये को मालिक की *निजी सम्पत्ति से वसूल कर सकते हैं।*

(८) व्यक्तिगत गुणों का विकास—एक व्यक्ति ही समस्त व्यवसाय के जोखिम को उठाता तथा समस्त कार्य को सचालित करता है। इससे एकाकी व्यवसायों के मालिकों में सतर्कता, पहलपन (initiative), जोखिम उठाने का साहस, आत्मविश्वास इत्यादि व्यक्तिगत गुणों का विकास होता है।

(९) ऐच्छिक प्रारम्भ तथा अन्त—*एकाकी व्यवसाय को मालिक किसी भी समय प्रारम्भ* या समाप्त कर सकता है क्योंकि उसे किसी प्रकार की कानूनी अड़चनों का सामना नहीं करना पड़ता है।

(१०) सामाजिक महत्त्व—एकाकी व्यवसाय के अन्तर्गत समाज के प्रत्येक व्यक्ति (चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित) को अपनी योग्यता तथा इच्छा के अनुसार व्यवसाय करने का अवसर

मिलता है, व्यक्तिगत गुणों का विकास होता है तथा धन के वितरण में समानता आती है। प्रकार एकाकी व्यवसाय समाज के लिए महत्त्वपूर्ण होता है।

एकाकी स्वामित्व के दोष (Disadvantages of Sole Proprietorship)

(१) **असीमित दायित्व**—असीमित दायित्व के कारण नुकसान या कर्ज को लोग मा की निजी सम्पत्ति से भी वसूल कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में मालिक प्रायः असफलताओं आशंका से भयभीत रहता है और साहसपूर्ण जोखिम (bold risks) नहीं उठा सकता है व्यवसाय के विकास के लिए आवश्यक है।

(२) **सीमित वित्तीय साधन**—एकाकी उपक्रमी के पास पूंजी या वित्तीय साधन सी होते हैं। (अ) वह व्यवसाय के विस्तार के लिए आवश्यक समस्त पूंजी को अपने पास से नहीं सकता। (ब) उसको अधिक रुपया उधार मिलना कठिन होता है क्योंकि उसकी ख्याति का सीमित होता है। (स) यदि उसे पर्याप्त मात्रा में पूंजी मिल भी जाती है तो व्याज के बोझ से दवा रहता है और भयभीत रहता है। वित्तीय साधनों के सीमित रहने के कारण वह अपने साय का विस्तार नहीं कर पाता और अधिक लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

(३) **प्रबन्ध तथा नियन्त्रण की सीमाएँ**—एक व्यक्तिगत स्वामी कितना ही कुशल हो, उसकी प्रबन्ध क्षमता तथा निर्णय-शक्ति सीमित रहती है। मालिक अधिक श्रमिकों की नियुक्ति सकता है तथा अपने व्यवसाय को बढ़ा सकता है, परन्तु वह अकेला उसका उचित नियन्त्रण कर सकता।

(४) **गलत निर्णयों की आशंका**—एक व्यक्तिगत स्वामी को निर्णय लेते समय अन्य ल के परामर्श की सुविधा नहीं होती। वह शीघ्र निर्णय ले सकता है परन्तु उसके गलत होने की व सम्भावना होती है। गलत निर्णय उसके व्यवसाय के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं।

(५) **अनुपस्थिति में अकुशल प्रबन्ध**—एकाकी व्यवसाय में एक ही व्यक्ति मालिक है और वह ही सम्पूर्ण व्यवसाय का प्रबन्धक होता है। उसके बीमार हो जाने या कार्यवश बा जाने पर उसकी अनुपस्थिति में व्यवसाय का भार कर्मचारियों पर पड़ता है और उसमें से कोई व्यक्ति इतना योग्य नहीं होता कि कार्य का उचित प्रबन्ध कर सके। ऐसी स्थिति में प्रबन्ध के बि ड़ने तथा हानि होने की बहुत सम्भावना रहती है।

(६) **सीमित साख-योग्यता**—एक व्यक्तिगत स्वामी के पास अपनी निजी सम्पत्ति व्यवसाय की सम्पत्ति सीमित होती है, इसलिए उसकी साख-योग्यता (credit worthiness) सीमित होती है। दूसरे, एकाकी व्यवसाय की गोपनीयता (secrecy) उधार या साख प्राप्त क की दृष्टि से अच्छी नहीं है। एकाकी व्यवसाय की आर्थिक स्थिति का जब तक बाहरी लोगों सही और पूर्ण ज्ञान नहीं होगा तब तक वे एकाकी व्यवसाय के मालिक को उदारता के साथ नहीं देंगे। आधुनिक संयुक्त-पूंजी कम्पनियाँ अपने लेखों तथा स्थितियों का पूरा विवरण जनत लिए प्रकाशित करती हैं, इससे लोगों में कम्पनी की आर्थिक स्थिति का पता चलता है औ अधिक रुपया उधार देने को तत्पर होते हैं।

(७) **कम प्रतिस्पर्द्धा-शक्ति**—एकाकी व्यवसाय छोटे पैमाने पर होता है, उसके पास सी पूंजी होती है तथा वह श्रम-विभाजन, विशिष्टीकरण तथा बड़े पैमाने के उत्पादन की बचत वंचित रहता है। ऐसी स्थिति में बड़ी इकाइयों के समक्ष उसकी प्रतियोगिता-शक्ति बहुत होती है।

(८) अनिश्चित जीवन-काल—जब तक व्यक्तिगत स्वामी स्वस्थ, क्रियाशील तथा जीवित है, एकाकी व्यवसाय चलता रहता है। परन्तु स्वामी के अस्वस्थ हो जाने या मर जाने पर व्यवसाय की हालत बिगड़ जाती है और जब तक उसके उत्तराधिकारी व्यवसाय को ठीक प्रकार न सम्हालें तब तक वह नष्ट हो सकता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उत्तराधिकारी उतने ही योग्य [illegible] के अनुसार, "प्रायः उत्तराधिकारियों [illegible] तीसरी पीढ़ी में कमजोर हाथों में पड़ जाता है।"[2]

निष्कर्ष—एकाकी स्वामित्व के अनेक दोष होते हुए भी यह प्रणाली समाप्त नहीं हुई है और भविष्य में भी जीवित रहेगी। इसका कारण यह है कि कृषि तथा अनेक कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योग ऐसे हैं जिनमें कम पूंजी लगती है तथा इनका स्वभाव ऐसा है कि एकाकी स्वामित्व के लिए अधिक उपयुक्त है।

साझेदारी
(PARTNERSHIP)

प्राक्कथन (Introductory)

आधुनिक युग में किसी व्यवसाय को चलाने के लिए अधिक पूंजी, अधिक निरीक्षण तथा नियन्त्रण एवं विशिष्टीकरण की आवश्यकता पड़ती है। इन सब दृष्टियों से एकाकी स्वामित्व अत्यन्त अपर्याप्त है। एकाकी स्वामित्व के दोषों तथा सीमाओं ने साझेदारी को जन्म दिया।

साझेदारी का अर्थ (Meaning of Partnership)

एक साझेदारी व्यवसाय वह है जिस पर व्यक्तियों के एक छोटे वर्ग का स्वामित्व होता है। साझेदारी में दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर किसी व्यवसाय को चलाने का इकरार करते हैं। साझेदार मिलकर पूंजी की व्यवस्था करते हैं, व्यवसाय का संगठन और प्रबन्ध करते हैं तथा उसके लाभ-हानि में भाग लेते हैं। किम्बाल एवं किम्बाल (Kimball and Kimball) के अनुसार, "एक साझेदारी या फर्म, जैसा कि इसे कहा जाता है, व्यक्तियों का एक समूह है जिन्होंने किसी उपक्रम को चलाने के लिए पूंजी या सेवाओं को संयुक्त रूप में प्रयुक्त किया है।"[3]

साझेदारी को नियमित तथा नियन्त्रित करने के लिए देश में अधिनियम बनाये जाते हैं और इन अधिनियमों में साझेदारी को परिभाषित किया जाता है। भारतीय साझेदारी अधिनियम, १९३२ (Indian Partnership Act, 1932) के अनुसार, "साझेदारी उन व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध को कहते हैं जो एक व्यवसाय के लाभ को आपस में बांटने के लिए सहमत हुए हों, व्यवसाय सभी व्यक्तियों द्वारा या सभी की ओर से उनमें से किसी एक व्यक्ति द्वारा चलाया जाता है।"[4]

साझेदारी के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् देशों में पृथक्-पृथक् नियम हैं। भारतीय साझेदारी अधिनियम के अनुसार, साझेदारी फर्म में कम से कम २ तथा अधिक से अधिक २० साझेदार हो सकते हैं। बैंकिंग संस्थाओं में अधिकतम संख्या १० रखी गयी है।

---

2 "....But only too often the heirs are lacking in the requisite qualifications and business falls into weak hands in the second and or third generations."

3 "A partnership or firm, as it is often called, is then a group of men who have joined capital for services or the prosecuting of some enterprise."

4 "Partnership is the relation between persons who have agreed to share the profits of a business carried on by all or any of them acting for all."

साझेदारी की विशेषताएँ या लक्षण (Characteristics of Partnership)

विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद साझेदारी की निम्न मुख्य विशेषता निकलती हैं :

(१) दो या दो से अधिक व्यक्ति साझीदार होते हैं। प्रत्येक देश में वहाँ के साझीदा अधिनियम के अन्तर्गत अधिकतम व्यक्तियों की संख्या निश्चित कर दी जाती है। (२) यह आ नहीं है कि सभी व्यक्ति पूँजी को प्रदान करें। कोई भी साझीदार ऐसा हो सक है जो पूँजी को बिलकुल न लगाये वरन् केवल अपनी योग्यता (ability) को प्रदान क अर्थात् व्यवसाय का कुशलता से प्रबन्ध करे। इसके विपरीत कुछ ऐसे साझीदार भी हो सकते जो केवल पूँजी प्रदान करते हैं और व्यवसाय में स्वयं कार्य नहीं करते, ऐसे साझेदारों को 'निष्क्रि या 'सुप्त साझेदार' ('inactive' or 'sleeping' partners) कहते हैं। (३) पूँजी लगाने के हिस्से लाभ-हानि के हिस्सों, इत्यादि के सम्बन्ध में साझेदारों में इकरार (contract) होता है। (साझेदारी का उद्देश्य किसी व्यवसाय को चलाना तथा उससे लाभ कमाने का होता है। कल्याण या परोपकार के लिए की गई साझेदारी को साझेदारों का व्यवसाय नहीं कहा जायेगा (५) व्यवसाय का संचालन तथा प्रबन्ध सभी साझेदारों द्वारा या सबकी ओर से उनमें से किसी ए के द्वारा किया जा सकता है। (५) असीमित साझेदारी (unlimited partnership) हो सकती जिसमें प्रत्येक साझेदार का 'असीमित दायित्व' होता है। 'सीमित साझेदारी' (limited partne ship) भी हो सकती है जिसमें साझेदारों का 'सीमित दायित्व' होता है, सीमित साझेदारी भार में नहीं होती, यह यूरोपीय देशों में बहुत प्रचलित है।

साझेदारी के लाभ (Advantages of Partnership)

(१) **स्थापना में सुगमता**—साझेदारी व्यवसाय की स्थापना सुगमता से हो जाती है क्यों इसमें बहुत कम वैधानिक उपचारों (formalities) का पालन करना पड़ता है। एकाकी व्यवसा की अपेक्षा इसकी स्थापना में कुछ अधिक कठिनाई हो सकती हैं क्योंकि इसमें साझेदारों का चुन करना पड़ता है, साझेदारों में व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न बातों के सम्बन्ध में अनुबन्ध (con ract) होता है, इत्यादि। परन्तु ये कोई बड़ी कठिनाइयाँ नहीं हैं। संयुक्त पूँजी कम्पनियों अपेक्षा साझेदारी की स्थापना बहुत सरल होती है।

(२) **अधिक पूँजी**—साझेदारी व्यवसाय में अधिक पूँजी एकत्रित की जा सकती है। इस कारण हैं : (अ) कई साझेदारों के होने से अधिक पूँजी प्राप्त होती है। (ब) साझेदारों को असीमि दायित्व के कारण बाजार से अधिक साख या उदार पूँजी प्राप्त हो सकती है।

(३) **अधिक कुशल प्रबन्ध**—साझेदारी व्यवसाय में प्रबन्ध अधिक कुशल होता है। इस मुख्य कारण निम्न हैं : (अ) साझेदारों की योग्यताओं के अनुसार **श्रम-विभाजन** तथा **विशिष्टी करण** हो जाता है। (ब) साझेदार निकट सम्पर्क में रहते हैं, इसलिए वे आवश्यक विषयों पर शी **निर्णय** ले सकते हैं। (स) असीमित दायित्व के कारण प्रत्येक साझेदार कार्य में अधिक रुचि लेता तथा उनके द्वारा **अविवेकपूर्ण** (rash) **निर्णय लेने की सम्भावना नहीं** रहती। वास्तव में, झेदार सोच समझकर एक सन्तुलित निर्णय ले सकते हैं। (द) प्रबन्ध में **मितव्ययिता** प्राप्त होत क्योंकि प्रबन्धकों की नियुक्ति नहीं करनी पड़ती और इस प्रकार उनके वेतन की बचत होती है इसके अतिरिक्त प्रत्येक साझेदार अधिक रुचि तथा लगन के साथ कार्य करके प्रत्येक प्रकार के अप व्यय का निराकरण करता है।

(४) **कर्मचारियों से मधुर सम्बन्ध**—साझेदारी व्यवसाय में कर्मचारियों की संख्या सीमित होती है, इसलिए कर्मचारियो और साझेदारों मे मधुर सम्बन्ध रहते हैं।

(५) **ग्राहकों से निकट सम्पर्क**—साझेदारी व्यवसाय में उत्पत्ति का पैमाना बहुत बड़ा नहीं होता है, इसलिए ग्राहकों के साथ भी निकट सम्पर्क रहता है जो व्यवसाय की सफलता के लिए हितकर होता है।

(६) **गोपनीयता**—साझेदारी व्यवसाय के बहीखातो का ज्ञान केवल साझेदारो तक ही सीमित रहता है। फर्म की नीतियो, कार्यविधियो तथा भेदो को गोपनीय रखा जा सकता है जब तक कि साझेदारों मे आपस मे फूट न पड़ जाय।

(७) **प्रजातन्त्रीय आधार पर संचालन**—सभी साझेदारों को व्यवसाय मे समान रूप से हस्तक्षेप करने का अधिकार होता है। सब महत्त्वपूर्ण कार्यों को सभी साझेदारों की सम्मति से किया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि साझेदारी फ़र्म का संचालन प्रजातन्त्रीय आधार पर होता है।

(८) **बड़े पैमाने की कुछ बचतो की प्राप्ति**—अधिक पूँजी की व्यवस्था के कारण साझेदारी फर्म के उत्पादन का पैमाना बड़ा किया जा सकता है और बड़े पैमाने के उत्पादन की कई बचतों को प्राप्त किया जा सकता है, जैसे विशिष्ट मशीनों तथा यन्त्रों का प्रयोग, थोक मे खरीदने के कारण सस्ती कीमत पर श्रेष्ठ कच्चे माल की प्राप्ति, इत्यादि।

(९) **सहकारिता को प्रोत्साहन**—व्यवसाय की सफलता के लिए साझेदारो को प्रेम तथा सहयोग से कार्य करना पड़ता है जिससे सहकारिता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

(१०) **सम्बन्ध-विच्छेद की स्वतन्त्रता**—कोई भी साझेदार उचित समझने पर फर्म से अलग हो सकता है।

(११) **लोच**—व्यापार की स्थितियो मे परिवर्तन हो जाने पर साझेदारी फर्म को उनके अनुकूल किया जा सकता है। इसका कारण है कि साझेदारी फ़र्म मे लाल-फीताशाही (red-tapism) नहीं होता तथा साझेदार शीघ्र निर्णय ले सकते हैं।

साझेदारी के दोष (Disadvantages of Partnership)

(१) **असीमित दायित्व**—असीमित दायित्व के कारण साझेदारों को बहुत जोखिम रहती है; वे प्रायः भयभीत रहते हैं और उनकी नीति अमाहसपूर्ण (unenterprising) हो जाती है। वे उचित जोखिमों (risks) को भी नहीं उठा पाते हैं और इस प्रकार लाभ को बढ़ाने के अवसरों को खो देते हैं। इसके अतिरिक्त एक खराब साझेदार सबको बर्बाद कर सकता है।

(२) **कुशलता में कमी**—कई साझेदारो के कारण व्यवसाय की कुशलता मे कमी आ जाती है। (अ) दिन-प्रतिदिन के कार्यों मे प्रत्येक साझेदार से परामर्श किया जाता है जिससे [illegible] कार्य कुशलता मे [illegible]। ऐसी स्थिति [illegible] न हो सकती है। (स) व्यवसाय का उत्तरदायित्व सभी साझेदारो में बँटा होता है। व्यवहार मे प्रत्येक साझेदार अपने उत्तरदायित्व को दूसरे पर टालने का प्रयत्न करता है। बँटा हुआ उत्तरदायित्व कोई भी उत्तरदायित्व नहीं रह जाता है। प्रो० हैने (Haney) के अनुसार, साझेदारी व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष केन्द्रित संचालन की कमी है।

(३) **सीमित पूंजी**—(अ) एकाकी व्यवस्था की अपेक्षा इसमें पूंजी अधिक होती है। प८ व्यवसाय के पर्याप्त विकास के लिए पूंजी सीमित ही रहती है क्योंकि **साझेदारों के वित्तीय स सीमित होते हैं**। संयुक्त पूंजी कम्पनियों की अपेक्षा साझेदारी व्यवस्था में पूंजी बहुत कम र८ है। (ब) साझेदारी फर्म के लेखों (accounts) को प्रकाशित एवं अंकेक्षित (audit) कर आवश्यक नहीं होता है। इस गोपनीयता के कारण लोगों को फर्म की आर्थिक स्थिति का स ज्ञान नहीं होता, वे उसके प्रति सन्देह की दृष्टि रखते हैं। परिणामस्वरूप साझेदारी व्यवस्था उदार पूंजी कम मिल पाती है।

(४) **अनिश्चत अस्तित्व**—साझेदारी व्यवस्था में बहुत अस्थायी तत्व (element unstability) रहता है। किसी साझेदार के पागल, मृत्यु या दिवालिया हो जाने पर साझेदा को समाप्त करना पड़ जाता है। इनके अतिरिक्त, विपरीत अनुबन्ध (contract) न होने प कोई भी साझेदार नोटिस देकर साझेदारी समाप्त कर सकता है।

निष्कर्ष—साझेदारी व्यवसाय के लाभों तथा दोषों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकल है कि यह उस दशा में उपयुक्त है जब कि व्यवसाय का पैमाना बहुत बड़ा न हो और साझेद में पारस्परिक सहयोग तथा प्रेम हो। बड़े पैमाने के उत्पादन तथा आधुनिक व्यवसायों और उप की आवश्यकताओं को पूरा करने में साझेदारी असमर्थ है। ऐसी स्थिति में साझेदारी का स्थ संयुक्त पूंजी कम्पनियाँ ले लेती हैं।

संयुक्त पूंजी कम्पनी प्रणाली
(JOINT STOCK COMPANY SYSTEM)

प्राक्कथन (Introductory)

आधुनिक उत्पादन प्रायः बड़े पैमाने पर किया जाता है। इसमें बहुत अधिक पूंजी आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों द्वारा नहीं की जा सकती। ऐ स्थिति में व्यावसायिक संगठन के संयुक्त पूंजी कम्पनी वाले रूप का आश्रय लेना पड़ता है। त औद्योगिक विकास की दृष्टि से आधुनिक औद्योगिक ढांचे में संयुक्त पूंजी कम्पनी प्रणाली अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

संयुक्त पूंजी कम्पनी का अर्थ (Meaning of Joint Stock Company)

संयुक्त पूंजी कम्पनी व्यक्तियों का एक ऐच्छिक संघ है जो लाभ कमाने के उद्देश्य से बना जाती है। इसकी पूंजी हस्तान्तरणीय अंशों (transferable shares) में विभाजित की जाती इसका दायित्व सीमित होता है तथा इसका रजिस्ट्रेशन या समामेलन (incorporation) क अधिनियम के अनुसार होता है। **प्रो० एल० एच० हैने** (Prof. L. H. Haney) के अनुसा **संयुक्त पूंजी कम्पनी लाभ कमाने के उद्देश्य से व्यक्तियों का एक ऐच्छिक संघ है जिसकी पूं हस्तान्तरणीय अंशों में विभाजित होती है और जिनका स्वामित्व ही सदस्यता की शर्त होती है**

संयुक्त पूंजी कम्पनी को कुछ देशों (जैसे, अमरीका) में कारपोरेशन (Corporation भी कहते हैं। कारपोरेशन या संयुक्त पूंजी कम्पनी कानून का 'उत्पाद' (creation) है, इसलि इसे **'कृत्रिम व्यक्ति'** (artificial person) या **वैधानिक व्यक्ति'** (legal person) कहते हैं **वैधानिक दृष्टि से संयुक्त पूंजी कम्पनी को इस प्रकार परिभाषित** किया जा सकता है: संयु

---

5 "A joint stock company is a voluntary association of individuals for profit, havin capital divided into transferable shares the ownership of which is the condition membership."

पूँजी कम्पनी कानून द्वारा निर्मित एक ऐसा कृत्रिम व्यक्ति है जिसका अस्तित्व पृथक् हो तथा जिसका निरन्तर उत्तराधिकार (perpetual succession) हो और जिसकी एक सार्वमुद्रा (common seal) हो।"[6]

संयुक्त पूँजी कम्पनी की विशेषताएँ (Characteristics of Joint Stock Company)

संयुक्त पूँजी कम्पनी के अर्थ को भली प्रकार से समझने के लिए उसकी विशेषताओं का समझना आवश्यक है। मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

(१) लाभ के लिए ऐच्छिक संघ (Voluntary association for profit)—कम्पनी व्यक्तियों का ऐच्छिक संघ है जो लाभ कमाने के उद्देश्य से बनायी जाती है। प्राप्त लाभ को निश्चित नियमों के अनुसार अंशधारियों में वितरित कर दिया जाता है।

(२) वैधानिक व्यक्ति (Legal person)—कानून के द्वारा कम्पनी को अपना अस्तित्व प्राप्त होता है। एक व्यक्ति की भांति कम्पनी क्रय-विक्रय कर सकती है, दूसरों पर मुकद्दमा चला सकती है या दूसरे लोग कम्पनी पर मुकद्दमा चला सकते हैं इसलिए कम्पनी को 'कानून द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति' (An artificial person created by law) या केवल 'वैधानिक व्यक्ति' (legal person) कहते हैं।

ce)—कानून के परिणामस्वरूप । इसके विपरीत एकाकी या जुड़ा रहता है, उसे पृथक् नहीं किया जा सकता। कम्पनी पर मुकद्दमा चलने पर या कम्पनी द्वारा दूसरों पर मुकद्दमा चलाने पर या कम्पनी द्वारा कोई अन्य कार्यवाही करने पर उसके सदस्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार कम्पनी का एक पृथक् वैधानिक अस्तित्व होता है, उसके सदस्य उससे पृथक् माने जाते हैं।

(४) सीमित दायित्व (Limited liability)—कम्पनी में सदस्यों का दायित्व अंशों में लगायी गयी पूँजी तक ही सीमित रहता है। इस प्रकार सदस्यों का सीमित दायित्व होता है।

(५) हस्तान्तरणीय अंश (Transferabale shares)—कम्पनी के अंश बड़ी सुगमता से एक सदस्य द्वारा दूसरे सदस्य या व्यक्ति को बेचे या हस्तान्तरित किये जा सकते हैं।

(६) निरन्तर उत्तराधिकार (Perpetual succession)—कुछ सदस्य कम्पनी को छोड़ सकते हैं, कुछ अन्य सदस्यों की मृत्यु हो सकती है तथा कई नये व्यक्ति कम्पनी के सदस्य बन सकते हैं। सदस्यों के इस निरन्तर आवागमन का कम्पनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसका अस्तित्व निरन्तर बना रहता है। इस प्रकार कम्पनी शाश्वत (eternal) होती है।

(७) सार्वमुद्रा (Common seal)—वैधानिक व्यक्ति होने के कारण कम्पनी एक सार्वमुद्रा रखती है। इस सार्वमुद्रा पर कम्पनी का नाम अंकित होता है। यह कम्पनी के अधिकारयुक्त हस्ताक्षर (official signature) का कार्य करती है।

(८) प्रतिनिधि प्रबन्ध (Representative management)—कम्पनी का प्रबन्ध कुछ चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है, ये कम्पनी के संचालक कहे जाते हैं।

---

6 "Joint Stock Company is an artificial person created by law having a separate entity with a perpetual succession and a common seal."

(६) **कानून द्वारा अस्तित्व का अन्त** (End of existence by law)—कम्पनी को अस्तित्व कानून द्वारा प्राप्त होता है, इसलिए उसका स्वतः अन्त नहीं हो सकता। कम्पनी का अन्त या समापन (winding-up) भी कानून द्वारा वैधानिक रीति से किया जाता है।

संयुक्त पूँजी कम्पनी का निर्माण (*Formation of a Joint Stock Company*)

एक कम्पनी के निर्माण में कई अवस्थाएँ (stages) होती हैं। निर्माण की अवस्था निम्न हैं :

(१) **प्रवर्तन की अवस्था** (Stage of promotion)—सर्वप्रथम एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के मस्तिष्क में किसी व्यवसाय को चलाने के लिए एक कम्पनी की स्थापना का विचार आता है। कम्पनी को वैधानिक अस्तित्व प्रदान कराने तथा उसके कार्य को प्रारम्भ कराने की क्रियाओं को प्रवर्तन (promotion) कहते हैं तथा जो व्यक्ति इन क्रियाओं को पूरा कराते हैं वे 'प्रवर्तक' (promoters) कहे जाते हैं। प्रवर्तक व्यवसाय की योजना बनाते हैं, उसका विस्तारपूर्वक निरीक्षण करते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञों की मदद लेते हैं, विभिन्न साधनों को एकत्र कराते हैं, वित्त की व्यवसाय की योजना बनाते हैं अर्थात् सही-सही पूंजी का अनुमान लगाते हैं, शेयरों व ऋणों-पत्रों को निर्गमित करते हैं, *अभिगोपिकों (underwriters) तथा* बैंकों से अनुबन्ध (contract) करते हैं।

(२) **समामेलन की अवस्था** (Stage of incorporation)—इसके अन्तर्गत कम्पनी के लिए वैधानिक अस्तित्व प्राप्त किया जाता है। कम्पनी के वैधानिक अस्तित्व के लिए 'समामेलन प्रमाण-पत्र' (certificate of incorporation) प्राप्त किया जाता है तथा इसके लिए आवश्यक कानूनी कार्यवाही करनी पड़ती है। वास्तव में, समामेलन प्रवर्तन का ही एक भाग है। 'समामेलन प्रमाण पत्र' प्राप्त करने के लिए कई प्रलेख (documents) तैयार किये जाते हैं। मुख्य प्रलेख हैं (i) पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association); (ii) पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association); तथा (iii) प्रविवरण (Prospectus)। इनके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार कुछ अन्य प्रकार के प्रलेख भी तैयार किये जाते हैं।

पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) में कम्पनी का नाम, मुख्य कार्यालय का स्थान, शेयर पूँजी, कम्पनी के उद्देश्य इत्यादि का विवरण होता है। पब्लिक लिमिटेड कम्पनी की दशा में कम से कम ७ व्यक्तियों तथा प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी की दशा में कम से कम २ व्यक्तियों द्वारा पार्षद सीमानियमों पर हस्ताक्षर किये जाने चाहिए। पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association) में कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध के सम्बन्ध में बनाये गये नियमों का उल्लेख होता है। इस प्रलेख पर उन व्यक्तियों को हस्ताक्षर करने पड़ते हैं जिन्होंने पार्षद सीमानियमों पर हस्ताक्षर किये हैं। **संचालकों की एक सूची** (list of directors), जिसमें संचालकों के नाम, पते, इत्यादि होते हैं, तैयार की जाती है। एक **प्रविवरण** (Prospectus) तैयार किया जाता है; प्राइवेट कम्पनी की दशा में इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इन सबके अतिरिक्त कुछ उद्योगों के लिए **लाइसेन्स** भी लेना पड़ता है। भारत में 'उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम, १६५१' के अन्तर्गत एक निर्धारित फार्म भर कर वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्रालय से लाइसेन्स लेना पड़ता है।

उपर्युक्त विभिन्न प्रलेखों या प्रपत्रों को **रजिस्ट्रार** के पास उचित स्टाम्प, नियत समामेलन फीस, इत्यादि के साथ भेज दिया जाता है। यदि रजिस्ट्रार उपर्युक्त विवरण से सन्तुष्ट होता है तो वह उसका रजिस्ट्रेशन करता है और अपने हस्ताक्षर तथा अपने कार्यालय की सील के अन्तर्गत

'समामेलन का प्रमाणपत्र' (certificate of incorporation) दे देता है। इसके प्राप्त हो जाने से कम्पनी का वैधानिक अस्तित्व हो जाता है।

(३) पूंजी प्राप्त करने की अवस्था (Stage of arranging capital)—'समामेलन का प्रमाण-पत्र' प्राप्त करने के बाद कम्पनी के प्रवर्तक जनता में शेयरों को बेचकर पूंजी प्राप्त करते हैं। शेयर मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं: 'अधिमान शेयर' (Preference shares) तथा 'सामान्य शेयर' (Ordinary share)। अधिमान हिस्सेदारों (Preference shareholders) को लाभांश, सामान्य हिस्सेदारों की अपेक्षा, पहले प्राप्त होता है। इनको लाभांश एक निश्चित दर पर दिया जाता है; यदि कम्पनी को अधिक लाभ प्राप्त होता है तो भी इनको लाभांश उसी निश्चित दर पर दिया जायेगा। प्रायः अधिमान हिस्से संचयी (cumulative) होते हैं अर्थात् यदि किसी वर्ष कम्पनी को कम लाभ होता है और इसलिए अधिमान हिस्सेदारों को लाभांश निश्चित दर पर नहीं दिया जाता तो उस वर्ष का शेष लाभांश उन्हें दूसरे वर्ष दे दिया जायेगा। अधिमान हिस्सेदारों को एक दूसरा लाभ यह है कि कम्पनी के समापन (winding-up or liquidation) की अवस्था में अधिमान हिस्सेदारों को, सामान्य हिस्सेदारों की अपेक्षा, पहले पूंजी वापस की जायेगी। स्पष्ट है कि उपर्युक्त अधिमानों के कारण इनको 'अधिमान शेयर' कहते हैं। सामान्य हिस्सेदारों (Ordinary shareholders) को कम्पनी के लाभ के अनुसार लाभांश दिया जा[illegible] .सके विपरीत य[illegible] य हिस्सेदारों को [illegible] का अधिकार हो[illegible] स दी जाती है, [illegible] हिस्सेदारों की पूंजी वापस की जाती है।

कम्पनी पूंजी को केवल अंशों (shares) द्वारा ही प्राप्त नहीं करती वरन् ऋण-पत्रों (debentures) द्वारा भी प्राप्त करती है। ये ऋण-पत्र दीर्घकालीन ऋण को बताते हैं, कम्पनी द्वारा इनका भुगतान १०-२० साल बाद किया जाता है। ऋण-पत्रधारियों को कम्पनी प्रति वर्ष एक निश्चित दर से ब्याज देती है चाहे कम्पनी को लाभ हो या लाभ न हो। स्पष्ट है कि ऋण-पत्रधारी, अंशधारियों (shareholders) की भांति कम्पनी के स्वामी या सदस्य नहीं होते, उनका कम्पनी के प्रबन्ध तथा नीति में कोई हाथ नहीं होता, वे तो कम्पनी के केवल लेनदार (creditors) होते हैं।

कम्पनी की पूंजी को निम्न वर्गों में बांटा जाता है। अधिकृत या रजिस्टर्ड या अभिहित पूंजी (Authorised, registered or nominal capital) अधिकतम पूंजी होती है जिसको कम्पनी एकत्र करने के लिए अधिकृत होती है। निर्गमित पूंजी (issued capital) अंश पूंजी (share capital) का वह भाग है जिसकी पूर्ति के लिए जनता को आमन्त्रित किया जाता है। अभिदत्त पूंजी (subscribed capital) अंश पूंजी का वह भाग है जो वास्तव में जनता को बिक जाता है। प्रदत्त पूंजी (paid-up capital) उस धन को बताती है जिसका अंशधारियों ने वास्तव में भुगतान कर दिया है। याचित पूंजी (called-up capital), प्रायः अंशधारियों से क्रय किये गये अंशों की समस्त पूंजी एक बार में नहीं ली जाती है, उसका कुछ भाग तुरन्त ले लिया जाता है और कुछ बाद के लिए छोड़ दिया जाता है। अंशधारियों से बाद में मांगी जाने वाली पूंजी को 'याचित पूंजी' कहते हैं।

(४) **व्यवसाय प्रारम्भ करने की अवस्था तथा प्रबन्ध** (Stage of starting busines and management)—अन्त में, रजिस्ट्रार, इस बात की पुष्टि करके कि सभी आवश्यक दशा की पूर्ति हो गयी है, 'व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र' (Certificate of Commencemen of Business) निर्गमित कर देता है। इस प्रकार कम्पनी का व्यवसाय प्रारम्भ हो जाता है।

कम्पनी का प्रबन्ध लोकतान्त्रिक ढंग पर होता है। सैद्धान्तिक रूप में कम्पनी का स्वामि तथा प्रबन्ध अंशधारियों के हाथ में होता है। अंशधारी, वार्षिक सामान्य सभा में, स्वयं या अप प्रतिनिधियों द्वारा वोट देकर अपने में से संचालकों को नियुक्त करते हैं। ये संचालक कम्पनी दिन प्रतिदिन के कार्यों को करते हैं। प्रति वर्ष सामान्य सभा में कम्पनी से सम्बन्धित सभी महत्त्व पूर्ण बातों, जैसे आगामी वर्षों की नीति का निर्धारण, लेखों की स्वीकृति, आगामी वर्ष के लि संचालकों का निर्धारण इत्यादि, को निश्चित किया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से कम्पनी क प्रबन्ध लोकतान्त्रिक नहीं रह जाता क्योंकि प्रायः अंशधारियों का एक छोटा सा प्रभावशाली व सारी सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित कर सकने में सफल हो जाता है।

संयुक्त पूँजी कम्पनी तथा साझेदारी में तुलना (Comparison of Joint Stock Company and Partnership)

(१) साझेदारी फर्म में केवल थोड़े से ही व्यक्ति होते हैं जबकि संयुक्त पूँजी कम्पनी में सैकड़ों तथा हजारों व्यक्ति हिस्सेदार होते हैं।

(२) साझेदारी में असीमित दायित्व होता है जबकि संयुक्त पूँजी कम्पनी में दायित्व सीमित होता है अर्थात् कम्पनी के हिस्सेदारों का दायित्व उनके द्वारा खरीदे गये हिस्सों के मूल्य तक ही सीमित रहता है।

(३) संयुक्त पूँजी कम्पनी में स्वामित्व (ownership) तथा प्रबन्ध (control) में पृथक्की-करण (separation) होता है, अर्थात् कम्पनी का स्वामित्व तो अंशधारियों में निहित होता है परन्तु उसका वास्तविक प्रबन्ध संचालकों के बोर्ड द्वारा होता है। इसके विपरीत साझेदारी में स्वा-मित्व तथा प्रबन्ध साथ-साथ रहते हैं, उनमें पृथक्कीकरण नहीं होता, व्यवसाय के स्वामी अर्थात् साझेदार स्वयं ही उसका प्रबन्ध तथा नियन्त्रण करते हैं।

(४) साझेदारी अस्थायी होती है, किसी भी एक साझेदार के अलग हो जाने से साझेदारी फर्म टूट जाती है। इसके विपरीत संयुक्त पूँजी कम्पनी में एक या कुछ अंशधारियों के अलग हो जाने से या कुछ नये अंशधारियों के प्रवेश करने से कम्पनी नहीं टूटती, वह निरन्तर कार्य करती रहती है। इसलिए यह कहा जाता है कि संयुक्त पूँजी कम्पनी शाश्वत (eternal) होती है।

संयुक्त पूँजी कम्पनी के लाभ (Advantages of Joint Stock Company)

क्त पूँजी कम्पनी प्रणाली का आधुनिक औद्योगिक ढाँचे में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। है इसके लाभ। इसके मुख्य लाभ निम्न हैं :

अधिक मात्रा में पूँजी की प्राप्ति ... bility of capital in large amount)—

ी कम्पनी, अन्य व्यावसायिक प्र ... I, अपने व्यवसाय को सुचारु रूप से चलाने

बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी एकत्रित ... कारण हैं :

पब्लिक कम्प ... घा ... कोई रोक नहीं होती है।

ोने से पूँजी अधिक मात्रा में

अधिक लोग अपनी पूँजी

नुकूल होते हैं (Com-

pany's shares suit every pocket)। कम्पनी के अंश छोटी तथा बड़ी राशियाँ (denominations) के होते हैं। परिणामस्वरूप कम आय वाले तथा धनवान, सभी प्रकार के व्यक्ति अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार अंशों को खरीद कर पूंजी प्रदान कर सकते हैं। (iv) इस प्रकार संयुक्त पूंजी कम्पनियाँ यत्र-तत्र बिखरी हुई जनता की अल्प बचतों को एकत्रित करती है और लोगों में बचत की आदत को प्रोत्साहित करती है। (v) कम्पनी के अंश सभी स्वभाव के व्यक्तियों के लिए अनुकूल होते हैं (Company's shares suit persons of all temperaments)। कम्पनी विभिन्न प्रकार के अंश बनाकर जोखिमों का श्रेणीकरण (gradation of risks) कर देती है जिससे कम और अधिक जोखिम उठाने वाले सभी स्वभाव के व्यक्ति अंशों को खरीद सकते हैं।[7] (vi) अंश हस्तान्तरणीय (transferable) होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर शेयर बाजार में उनको बेचकर अंशधारी कभी भी नकद रुपया प्राप्त कर सकता है।

(२) बड़े पैमाने पर उत्पादन (Production on large scale)—अधिक पूंजी की प्राप्ति के कारण कम्पनी में प्रायः बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है। परिणामस्वरूप आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त की जाती हैं, नवीनतम मशीनों और आधुनिकतम रीतियों का प्रयोग किया जाता है तथा विवेकीकरण को अपनाया जा सकता है। इन सब बातों के कारण उत्पादन लागत कम होती है और उत्पादित वस्तु कम कीमत पर उपभोक्ताओं को प्राप्त होती है।

(३) कुशल प्रबन्ध (Efficient management)—संयुक्त पूंजी कम्पनी प्रणाली में स्वामी [illegible]। इसके कारण प्रबन्ध की [illegible] हो सकते हैं अर्थात् बड़ी [illegible] या कुशल प्रबन्धक भी हों; [illegible] व्यवसाय चलाने के लिए [illegible] जी तथा व्यवसाय योग्यता [illegible] और इस प्रकार [illegible] प्राप्त व्यक्तियों [illegible]।

(४) लोकतान्त्रिक आधार पर संगठन (Organisation on democratic basis)—कम्पनी का संगठन तथा प्रबन्ध सदस्यों अर्थात् अंशधारियों के प्रतिनिधियों, जिन्हें तान्त्रिक रूप में (technically) संचालक (directors) कहते हैं, द्वारा होता है। कम्पनी के विधान के अन्तर्गत अंशधारियों को संचालकों को नियुक्त करने या निकालने के पूरे अधिकार होते हैं। परन्तु व्यवहार में प्रायः सारी सत्ता थोड़े से प्रभावशाली अंशधारियों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है।

(५) औद्योगिक अनुसन्धान (Industrial research)—पूंजी की पर्याप्त मात्रा में प्राप्ति तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण औद्योगिक अनुसन्धान को बहुत प्रोत्साहन मिलता है।

---

[7] उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति अधिक जोखिम उठा सकते हैं वे साधारण अंश (ordinary shares) खरीद सकते हैं क्योंकि इन पर कम्पनी के लाभ-हानि की स्थिति के अनुसार लाभांश की दर बदलती रहती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति कम जोखिम को उठाना चाहते हैं वे अधिमान अंशों (preferential shares) को खरीद सकते हैं क्योंकि इन पर एक निश्चित दर से लाभांश मिलता रहता है। इसी प्रकार ऋण-पत्रों (debentures) को खरीदने में भी बहुत कम जोखिम रहती है। कम्पनी के समापन करने पर ऋण-पत्रधारियों तथा अधिमान-अंशधारियों को पहले रुपया वापस दिया जायेगा।

(६) **नये जोखिमों को उठाना आसान** (Easier to undertake new risks)—क[illegible] में विनियोक्ताओं (investors) का दायित्व सीमित होता है, इसलिए साहसी नये जोखिम उठाने के लिए प्रोत्साहित होते हैं और इस प्रकार बहुत से नये उद्योगों की स्थापना होती है।

(७) **निरन्तर अस्तित्व** (Perpetual existence)—कम्पनी का अस्तित्व, अन्य व[illegible]सायिक प्ररूपों की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। कुछ अंशधारी कम्पनी को छोड़ सकते हैं कुछ नये अंशधारी कम्पनी में आ सकते हैं, परन्तु अंशधारियों के आवागमन का कम्पनी के अ[illegible] पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह निरन्तर कार्य करती रहती है। स्थायी अस्तित्व के कारण क[illegible] दीर्घकालीन अनुबन्ध (contracts) कर सकती है तथा दीर्घकालीन योजनाओं को कार्यान्वित [illegible] सकती है।

संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली के दोष (Disadvantages of Joint Stock Company)

(१) **स्थापना कठिन** (Difficult to float a company)—संयुक्त पूँजी कम्पनी [illegible] स्थापना के लिए कई वैधानिक उपचारों (formalities) का पालन तथा अनेक वैधानिक उल[illegible] का सामना करना पड़ता है। इसलिए साधारण व्यक्तियों के लिए कम्पनी की स्थापना कठिन ह[illegible] है, जबकि एकाकी या साझेदारी व्यवसायों को एक अशिक्षित तथा साधारण व्यक्ति भी सुगमत[illegible] स्थापित कर सकता है।

(२) **नियन्त्रण या प्रबन्ध का केन्द्रीयकरण** (Concentration of control)—कम्पनी [illegible] संचालन तथा प्रबन्ध केवल नाम के लिए लोकतान्त्रिक होता है। व्यवहार में नियन्त्रण तथा प्रब[illegible] की सत्ता कुछ थोड़े से प्रभावशाली अंशधारियों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। ऐसा होने के मु[illegible] कारण निम्न हैं :

(i) अंशधारी बहुत अधिक संख्या में होते हैं तथा वे देश में यत्र-तत्र बिखरे रहते हैं। ऐ[illegible] स्थिति में वे एक होकर संचालकों तथा प्रबन्धकों की नियुक्ति को उचित दिशा में प्रभावित नहीं [illegible] पाते। (ii) अधिकांश अंशधारी प्रबन्ध में कोई रुचि नहीं लेते क्योंकि न उनके पास समय होता और न योग्यता। वे तो केवल लाभांश प्राप्त करने की रुचि रखते हैं। ऐसी स्थिति में थोड़े व्यक्ति संचालन तथा प्रबन्ध अपने हाथों में केन्द्रित करने में सफल हो जाते हैं। (iii) व्यवहार [illegible] एक कम्पनी दूसरी कम्पनी पर तथा दूसरी कम्पनी तीसरी कम्पनी पर अधिकार प्राप्त कर ले[illegible] है। इस प्रकार कुछ व्यक्तियों या संचालकों के हाथ में कई कम्पनियाँ आ जाती हैं। इस प्रवृत्ति [illegible] 'स्तूपीकरण' (pyramiding) कहते हैं, इसके कारण थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में आर्थिक [illegible] सत्ता [illegible] हो जाता है। (iv) प्रायः प्रबन्ध अभिकर्ता अपने प्रभाव के कारण संचालक बोर्ड [illegible] अधिकांश संचालक अपने ही व्यक्ति नियुक्त करा लेते हैं। ये प्रबन्ध अभिकर्ता सामान्य अंशधारि[illegible]

(४) प्रबन्ध में ढिलाई (Laxity in management)—कम्पनी प्रणाली में कई कारणों से प्रबन्ध मे ढिलाई आ जाती है जिससे उत्पादन कुशलता गिरती है। प्रबन्ध की कुशलता मे कमी के मुख्य कारण निम्न हैं :

(i) कम्पनी के सचालक तथा प्रबन्ध अपने स्वार्थ की पूर्ति में व्यस्त रहते हैं; उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि सामान्य अंशधारियों को उचित लाभ मिले। इन दोनों वर्गों के हितों में प्रायः संघर्ष रहता है। प्रबन्ध प्रायः अपव्ययपूर्ण (wasteful) रहता है। (ii) कम्पनी का दायित्व सीमित रहता है तथा सचालक और प्रबन्धक दूसरों के रुपयों पर खेलते हैं। वे कभी-कभी अविवेकपूर्ण कार्य (rash enterprises) कर बैठते हैं जिससे कम्पनी अर्थात् अंशधारियों को बहुत हानि उठानी पड़ती है। (iii) कम्पनी प्रणाली मे प्रबन्धकों को आवश्यक बातो को पहले संचालको के समक्ष रखना पड़ता है और तब वे उन पर निर्णय ले पाते है। सचालक की मीटिंग निश्चित समयों पर ही हो पाती है, इससे निर्णय में देर होती है। परिणामस्वरूप प्रबन्ध मे ढिलाई आती है और उत्पादन कुशलता मे कमी। (iv) संचालकों तथा प्रबन्धकों का चुनाव योग्यता के आधार पर नहीं होता है। ये लोग प्रायः दूसरी कम्पनियों के सचालकों तथा प्रबन्धकों के रिश्तेदार होते हैं या धनवान व्यक्ति होते हैं या प्रभावशाली डॉक्टर तथा वकील होते हैं जिनको प्रबन्ध का कोई अनुभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्रबन्ध की कुशलता में कमी आती है।

(५) रुचि, पहलपन तथा उपक्रम में कमी (Loss of interest, initiative and enterprise)—कम्पनी प्रणाली मे स्वामित्व तथा प्रबन्ध का पृथक्कीकरण हो जाता है। परिणामस्वरूप प्रबन्धकों मे, जो स्वामी नहीं होते, कार्य मे अधिक रुचि तथा लगन नहीं होती, वे नये और उचित जोखिमों को उठाकर कम्पनी के लाभ को बढ़ाने के प्रति लापरवाह या उदासीन रहते हैं; उन्हें अपने वेतन से मतलब रहता है। कम्पनी का कार्य निश्चित नियमों (set rules) के अनुसार चलता है और कम्पनी स्थैतिक (static) हो जाती है। इस प्रकार लगन, पहलपन तथा उपक्रम मे कमी आती है।

(६) गोपनीयता का अभाव (Loss of secrecy)—एकाकी व्यवसाय, साझेदारी या अन्य व्यावसायिक रूपों की अपेक्षा कम्पनी प्रणाली मे गोपनीयता बहुत कम होती है। कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पब्लिक कम्पनी को अपने वार्षिक हिसाब-किताब को प्रकाशित करना पड़ता है तथा प्रलेखों की प्रतियाँ रजिस्ट्रार के यहाँ भेजनी पड़ती हैं। इस प्रकार बहुत कम गोपनीयता रह जाती है और यह कभी भी व्यवसाय के लिए अधिक हानिकारक सिद्ध हो सकती है।

(७) अंशों में सट्टेबाजी (Speculation in shares)—कम्पनियों के अंश हस्तान्तरणीय होते हैं और उनका क्रय-विक्रय स्टॉक-एक्सचेंजों में होता है। सचालक कम्पनी के अंशों में प्रायः सट्टे की दृष्टि से विनियोग करते हैं; इस सट्टेबाजी से कम्पनी को कभी-कभी बहुत हानि उठानी पड़ती है।

(८) बड़े पैमाने के उत्पादन के दोष (Defects of large scale production)—कम्पनी प्रणाली मे उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। इसलिए बड़े पैमाने के लगभग सभी दोष पाये जाते हैं, जैसे, श्रमिक कल्याण की उपेक्षा, श्रमिकों तथा प्रबन्धको मे संघर्ष, इत्यादि।

(९) एकाधिकार की ओर प्रवृत्ति (Tendency towards monopoly)—बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ मिलकर छोटे तथा मध्यम उत्पादकों को प्रतियोगिता द्वारा क्षेत्र से निकाल देती हैं। इस प्रकार एकाधिकार का भय सदा बना रहता है। एकाधिकार स्थापित हो जाने से ऊँचे मूल्यों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण होता है।

(१०) राजनीतिक भ्रष्टाचार (Political corruption)—कम्पनी प्रणाली से राजनीतिक जीवन में भ्रष्टाचार फैलता है। कम्पनियों के संचालक राज्य अधिकारियों, संसद राजनीतिक दलों के उच्च नेताओं को रिश्वत देकर कानूनों तथा कार्यवाहियों को अपने बनवाने का प्रयत्न करते हैं। वे राज्य अधिकारियों को बड़ी मात्रा में रिश्वत देकर वाणिज्य सम्बन्धी नीतियों तथा बातों को मालूम करने का प्रयत्न करते हैं।

निष्कर्ष—वास्तव में, संयुक्त पूंजी कम्पनियों के लाभ उनकी हानियों से, अधिक मह है। इसके अतिरिक्त अधिकांश दोषों को सरकार के उचित नियन्त्रण द्वारा एक बड़ी सीमा किया जा सकता है। कम्पनी प्रणाली देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास को प्रेरित कर वास्तव में, आधुनिक युग में एक देश की औद्योगिक तथा आर्थिक उन्नति संयुक्त पूंजी प्रणाली के उचित विकास पर ही निर्भर करती है।

सहकारिता
(CO-OPERATION)

प्राक्कथन (Introductory)

विख्यात नोरवेजियन नाटककार इब्सेन (Norwegian dramatist, Ibsen) ने तथा समाज के बीच संघर्ष (conflict) इन शब्दों में व्यक्त किया था : **"व्यक्तित्व को द आपका कोई जीवन नहीं है। व्यक्तित्व को पूर्ण स्वतन्त्रता दीजिए तो आपको अस्तव्यस्तता युद्ध मिलेगा।"**[8] **सहकारिता इस संघर्ष का उत्तर है। यह व्यक्तित्व तथा सामाजिक सुरक्षा सामंजस्य** (synthesis) है। सहकारिता में ही मानवता को यह अनुभव होगा कि जनतन्त्र (ocracy) तथा सुरक्षा (security) असंगत नहीं हैं वरन् वे मनुष्य के अस्तित्व रूपी सिक्के के वर्ती पक्ष (reverse sides) हैं।[9]

सहकारिता का अर्थ (Meaning of Co-operation)

सहकारिता व्यवसाय या संगठन का वह रूप है जिसमें व्यक्ति ऐच्छिक रूप से आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आपस में मिलकर कार्य करते हैं। कैलवर्ट (H. Calver सहकारिता को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है : **"सहकारिता सगठन का एक प्ररूप है व्यक्ति मनुष्य की भाँति ऐच्छिक रूप से बराबरी के आधार पर अपने आर्थिक हितों को लिए मिलते हैं।"**[10]

उपर्युक्त परिभाषा में स्पष्ट है कि सहकारिता की निम्न विशेषताएँ (characteristics

(१) **ऐच्छिक संगठन** (Voluntary association)—सहकारी संगठन में ... मिलना (association) ऐच्छिक होता है, किसी प्रकार की अनिवार्यता नहीं होती। अपनी स्वे से व्यक्ति एक सहकारी समिति के सदस्य हो सकते हैं या उसकी सदस्यता छोड़ सकते हैं।

(२) **यह मनुष्यों का संगठन** (association of human beings as such) होता कि पूंजी का।

---

8 "Suppress individuality and you have no life. Grant individuality and you have and war."

9 Co-operation provides the answer to the above conflict. It is a complete synthesis individualism and social security. In co-operation humanity would discover that c cracy and security are not incompatable but are the reverse sides of the coin of m existence.

10 Co-operation is "a form of organisation wherein persons voluntarily associate tog as human beings on a basis of equality for the promotion of economic interests of selves."
—H. Calvert, Quoted in the I. L. O. Pamphlet, I.

(३) समानता (Equality)—इसमें प्रत्येक व्यक्ति समानता के आधार पर मिलता है। 'एक व्यक्ति, एक वोट' के सिद्धान्त का पालन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इसका संगठन जनतन्त्र के आधार पर होता है।

(४) सहकारिता का उद्देश्य सदस्यों को सामान्य आर्थिक हित की वृद्धि (promotion of common economic interest) करना होता है।

(५) स्वयं सहायता (Self-help)—आर्थिक दृष्टि से अशक्त व्यक्ति अकेले अपनी आर्थिक आवश्यकताओं (economic nee[illegible] [illegible] में संगठित होकर पारस्परिक सहयोग द्वारा [illegible] (Horace Plunkett) का मत है कि "स[illegible] सहकारिता है (co-operation is "self-help' [illegible] सहकारिता में आर्थिक हित की पूर्ति के साथ मनुष्य के चरित्र के गुणों—जैसे, ईमानदारी, सहयोग की भावना, स्वयं-सहायता, इत्यादि पर भी बहुत बल दिया जाता है।

सहकारी उपक्रम के मुख्य प्रकार (Main Kinds of Co-operative Enterprise)

सहकारी उपक्रम कई प्रकार के होते हैं। अशक्त (weak) तथा आवश्यकताग्रस्त (needy) व्यक्ति आपस में मिल कर किसी भी क्षेत्र में सहकारी समिति स्थापित कर सकते हैं। मुख्य सहकारी उपक्रम निम्न हैं :

(१) उत्पादन सहकारिता (*Producer's Co-operatives*), (२) उपभोक्ता सहकारिता (Consumer's Co-operatives), (३) साख सहकारिता (Credit Co-operatives)। इन तीन मुख्य प्रकार के सहकारी उपक्रमों के अतिरिक्त किसी भी क्षेत्र में सहकारिता का प्रयोग किया जा सकता है, यातायात सहकारिता, गृह निर्माण सहकारिता, विक्रय सहकारिता, बीमा सहकारिता, इत्यादि। नीचे हम केवल तीन मुख्य सहकारी संगठनों की संक्षेप में विवेचना करते हैं।

उत्पादक सहकारिता (Producer's Co-operatives)

इस प्रकार की सहकारिता में श्रमिक स्वयं व्यवसाय के मालिक होते हैं; या व्यवसाय के मालिक स्वयं अपना श्रम भी प्रदान करते हैं अर्थात् स्वयं श्रमिक भी होते हैं। श्रमिक मिल कर स्वयं पूंजी प्रदान करते हैं या आपस में अंशों को खरीद कर पूंजी एकत्रित करते हैं। इस प्रकार उत्पादकों की सहकारिता में पूंजीपति हटा दिया जाता है। श्रमिक स्वयं अपना प्रबन्ध करते हैं। व्यवसाय में प्राप्त लाभ को आपस में बाँट लिया जाता है। वास्तव में श्रमिक को दो प्रकार से धन प्राप्त होता है—एक तो श्रम के बदले में मजदूरी और दूसरे, लगाई गई पूंजी पर लाभ।

यदि उत्पादकों की सहकारिता का आकार बड़ा है तो इसके प्रबन्ध का स्वरूप इस प्रकार होता है। सहकारी समिति के सब सदस्यों को सामूहिक रूप में सामान्य सभा (general body) कहते हैं। यह सामान्य सभा सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय लेती है और व्यवसाय की आर्थिक नीतियों को निर्धारित करती है। सामान्यतया यह साल भर में एक बार मिलती है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर एक से अधिक बार भी मिल सकती है। सदस्यों में से ही कार्य-कारिणी समिति (executive committee) का निर्माण किया जाता है और इसमें एक प्रबन्धक (manager) होता है। कार्य-कारिणी समिति तथा प्रबन्धक सामान्य सभा द्वारा लिए गये निर्णयों तथा निर्धारित की गई आर्थिक नीतियों के अनुसार कार्य करते [illegible] संगठन जनतन्त्र के आधार पर होता है।

इसमें सदस्यों का **दायित्व** सीमित हो सकता है या असीमित। असीमित दायित्व का लाभ यह है कि इससे सदस्यों में सहयोग की भावना बढ़ती है और वे कार्य में अधिक रुचि लेते हैं। वास्तव में, असीमित दायित्व उस दशा में अधिक उपयुक्त होता है जबकि समिति छोटी हो और सदस्य एक-दूसरे को भली-भाँति जानते हों। सीमित दायित्व का लाभ यह है कि बहुत से व्यक्ति सुगमता से समिति के सदस्य बन जाते हैं। स्पष्ट है, सीमित दायित्व बड़ी समितियों के लिए उपयुक्त रहता है क्योंकि अधिक संख्या होने के कारण सदस्य एक-दूसरे को अच्छी प्रकार से नहीं जानते।

उत्पादक सहकारिता के लाभ (Advantages)

(१) **वर्ग-संघर्ष की समाप्ति**—इसमें श्रमिक स्वयं पूँजी प्रदान करते हैं और स्वयं ही व्यवसाय का संचालन तथा प्रबन्ध करते हैं, इसलिए वर्ग-संघर्ष (class struggle) समाप्त हो जाता है। (२) **आत्मनिर्भरता**—सहकारिता में आत्म-निर्भरता पर अधिक बल दिया जाता है। परावलम्बन का स्थान आत्म-निर्भरता ले लेती है। (३) **अपव्यय का निराकरण**—इसमें श्रमिक स्वयं स्वामी होते हैं, स्वयं ही व्यवसाय का संचालन करते हैं, इसलिए वे अधिक रुचि और सहयोग से कार्य करके सभी प्रकार के अपव्ययों का निराकरण करने का प्रयत्न करते हैं। (४) **प्रजातन्त्रात्मक प्रबन्ध**—सदस्यों की सामान्य सभा कार्यकारिणी समिति का निर्माण करती है और इसमें से एक व्यक्ति प्रबन्धक के रूप में कार्य करता है। कार्यकारिणी समिति तथा प्रबन्धक सामान्य सदस्यों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार प्रबन्ध प्रजातन्त्रात्मक होता है। (५) **शैक्षिक महत्व**—इसमें सदस्यों में सहयोग, आत्म-निर्भरता तथा आत्म-सम्मान की भावना का विकास होता है।

उत्पादक सहकारिता की हानियाँ (Disadvantages)

(१) **पूँजी की कमी**—श्रमिकों के आर्थिक साधन सीमित होते हैं, इसलिए अधिक संख्या में भी मिलने पर वे पर्याप्त पूँजी एकत्रित नहीं कर पाते हैं। परिणामस्वरूप व्यवसाय में नई विधियों तथा नई मशीनों का प्रयोग नहीं हो पाता और व्यवसाय की प्रतियोगिता शक्ति दुर्बल रहती है। (२) **प्रबन्ध की कुशलता में कमी**—प्रायः सहकारी समिति का प्रबन्ध कुशल नहीं होता। इस प्रणाली में साहसी तथा योग्य प्रबन्धकों का लोप हो जाता है। श्रमिक स्वयं उतने योग्य प्रबन्धक सिद्ध नहीं होते और पूँजी की अपर्याप्तता के कारण वे अधिक कुशल तथा अनुभवी प्रबन्धकों की सेवाओं से वंचित रह जाते हैं। दूसरे, श्रमिक प्रबन्ध में अधिक हस्तक्षेप करते हैं, इससे प्रशासन तथा प्रबन्ध में ढिलाई आती है।

वास्तव में, उपर्युक्त दोनों हानियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और इसलिए सहकारिता अधिकतर असफल रहती है।

उपभोग सहकारिता (Consumer's Co-operation)

इस प्रणाली के अन्तर्गत स्थान विशेष के उपभोक्ता एकत्रित होकर 'उपभोक्ता सहकारी समिति' का निर्माण करते हैं। उपभोक्ता मिल कर पूँजी प्रदान करते हैं या छोटे-छोटे अंशों को खरीद कर पूँजी एकत्रित करते हैं। यह समिति सीधे थोक व्यापारियों या निर्माताओं से वस्तुएँ खरीद कर बाजार भाव पर उन्हें अपने सदस्यों को बेचती है। इस प्रकार मध्यस्थ का निराकरण हो जाने से उपभोक्ता मध्यस्थ के शोषण से बच जाते हैं। समिति (Society) का लाभ सदस्यों में बाँट दिया जाता है। लाभ बाँटने का आधार सदस्य द्वारा खरीदे गये माल का मूल्य होता है या उसके द्वारा लगाई गई पूँजी की मात्रा।

इसका प्रबन्ध भी प्रजातन्त्रात्मक ढंग पर होता है। सभी उपभोक्ता सदस्यों की 'सामान्य सभा' कार्यकारिणी समिति बनाती है जिसमें से एक व्यक्ति समिति के प्रबन्धक या मैनेजर का कार्य करता है। कार्यकारिणी तथा प्रबन्धक 'सामान्य सभा' के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

उपभोग सहकारिता के लाभ (Advantages)

(१) इस प्रणाली के अन्तर्गत शोषण करने वाले मध्यस्थ निकल जाते हैं। इससे उपभोक्ताओं को एक ओर तो उचित मूल्य पर वस्तुएँ प्राप्त होती हैं तथा दूसरी ओर लाभ में से भाग भी मिलता है। (२) इसे संचालित करने के लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसका प्रबन्धक वेतन प्राप्त करने वाला या अवैतनिक हो सकता है। (३) प्राय. सदस्य सहकारी भण्डार से सामान खरीदते हैं। इसलिए इसे कम प्रतियोगिता करनी पड़ती है तथा विज्ञापन इत्यादि पर बहुत कम या बिलकुल ही व्यय नहीं करना पड़ता है। (४) उपभोग सहकारी समितियों को प्रायः सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की आर्थिक तथा अनार्थिक सहायता प्राप्त हो जाती है।

उपभोग सहकारिता की हानियाँ (Disadvantages)

(१) जिन उपभोग सहकारी समितियों में अवैतनिक (honorary) प्रबन्धक होते हैं उनका

कठिन हो जाता है।

उचित रीति तथा व्यवसाय के सिद्धान्तों के आधार पर चलने से उपभोग सहकारी समितियाँ बहुत अच्छी सफलता प्राप्त कर लेती हैं।

साख सहकारिता (Credit Co-operation)

कुछ व्यक्ति साख की आवश्यकता की पूर्ति के लिए आपस में मिलकर सहकारी साख समिति का निर्माण करते हैं। सभी सदस्य पूंजी के छोटे-छोटे अशो के रूप में अपना भाग देते हैं और इस प्रकार समिति की पूंजी एकत्रित होती है। इस पूंजी में से उचित ब्याज दर पर प्रतिभूतियों (securities) के आधार पर ऋण दिया जाता है। इन समितियों की स्थापना गाँवों अथवा शहरों दोनों क्षेत्रों में हो सकती है। ग्रामों में इनको 'ग्रामीण साख समितियाँ' (rural credit societies) तथा शहरों में 'शहरी सहकारी बैंक' (urban co-operative banks) कहा जाता है।

है तो ये समितियाँ सफल नहीं हो पातीं।

सरकारी उपक्रम
(STATE ENTERPRISES)

प्राक्कथन (Introductory)

अहस्तक्षेप की नीति (*laissez-faire*) सदैव के लिए समाप्त हो चुकी है। आधुनिक युग मे सरकार का हस्तक्षेप कम या अधिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होने लगा है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था में व्यापार तथा उद्योग में सरकार का केवल हस्तक्षेप ही नहीं हो सरकार स्वयं अनेक आधारभूत और महत्त्वपूर्ण उद्योग स्थापित करती है। पूंजीवादी अर्थ-व में भी उद्योग के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण ही नहीं होता वरन् सार्वजनिक दृष्टि से कुछ आधारभूत तथा महत्त्वपूर्ण उद्योग सरकार स्वयं चलाती है, जैसे रेलवे, उत्पादन, तार व डाक विभाग, सड़क, जल तथा वायु यातायात, इत्यादि। साम्यवादी देश उत्पादन के सम्पूर्ण क्षेत्र में सरकार का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है।

सरकारी उपक्रम का अर्थ (Meaning of State Enterprise)

सरकारी उपक्रम के अन्तर्गत वे व्यवसाय आते हैं जिनका स्वामित्व सरकार का होत जिनका स्वामित्व तथा प्रबन्ध दोनों सरकार के आधीन होता है।

सरकारी उपक्रम के अर्थ को पूरी प्रकार से समझने के लिए उसके **संगठन के विभि** की जानकारी आवश्यक है। सरकारी उपक्रम के निम्न संगठनात्मक रूप हो सकते हैं।

(१) उपक्रम का स्वामित्व तथा प्रबन्ध किसी **सरकारी विभाग** के अन्तर्गत हो स जैसे भारत में डाक व तार विभाग तथा रेलवे विभाग। इसका प्रमुख लाभ यह है कि इसमें सामान्य नीतियों पर ही नहीं वरन् प्रबन्ध की सूक्ष्म बातों पर भी प्रत्यक्ष नियन्त्रण रख सक इसका मुख्य दोष यह है कि यह प्रणाली व्यवसाय या व्यापार की दृष्टि से उचित नह क्योंकि इसमें उपक्रम का लेखा (accounts) पृथक् नहीं होता वरन् सरकारी आय तथा साथ मिश्रित रहता है।

(२) सरकारी उपक्रम एक **संयुक्त पूंजी कम्पनी की भाँति** हो सकता है; ऐसी स्थिति कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड होता है और कम्पनी के सब अंशों का या अधिकांश का स्वामित्व सरकार का होता है। भारत में सिंधरी फर्टीलाइज़र कम्पनी (Sindhri Fert Works) इसका एक उदाहरण है।

(३) सरकारी उपक्रम का **वैधानिक निगम** (Statutory Corporation) के द्वारा हो सकता है। वैधानिक निगम एक विशेष नियम के द्वारा बनाया जाता है। इसमें प्रारम्भिक सरकार लगाती है या उधार देती है। निर्माण के बाद सब प्रबन्ध स्वयं निगम करता है, पृथक् हिसाब-किताब रखता है, सरकार केवल सामान्य सिद्धान्तों या नीतियों का निर्माण है तथा सरकार का अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं रह जाता है। इस प्रकार के निगम अमरीका में प्रचलित हैं। भारत में इसके उदाहरण हैं 'दामोदर घाटी निगम' (Damodar Valley Corp tion) तथा रिजर्व बैंक, भारत का औद्योगिक वित्त निगम; परन्तु अमरीका के वैधानिक निगम अपेक्षा में ये बहुत छोटे हैं तथा इन पर भारत सरकार का पूरा नियन्त्रण (control) है।

(४) सरकारी उपक्रम की अन्य **विविध रीतियाँ या रूप** हो सकते हैं, जैसे, (अ) उ सरकार का स्वामित्व हो परन्तु उसका प्रबन्ध एक लम्बे समय के लिए प्राइवेट ऐजेन्सी को दे गया हो; (ब) उपक्रम का प्रबन्ध स्थानीय अधिकारियों (local authorities) द्वारा किया (स) सरकार तथा निजी व्यक्तियों का संयुक्त स्वामित्व तथा प्रबन्ध हो।

सरकारी उपक्रमों से लाभ (Advantages)

(१) पूंजी की पर्याप्त प्राप्ति (Adequate availability of capital)—निजी उ की अपेक्षा सरकारी उपक्रम की साख सदैव अधिक होती है, इसलिए सुगमता से कम ब्याज दर पर्याप्त पूंजी प्राप्त हो जाती है।

(२) प्रबन्ध में कुशलता (Efficiency in management)—सरकारी नौकरी का एक बड़ा आकर्षण (glamour) होता है तथा समाज में उसका बहुत आदर होता है। सरकारी नौकरी अधिक सुरक्षित (secure) होती है। इन सब बातों के परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत कम वेतन पर भी सरकारी उपक्रमों में योग्य व्यक्तियों की सेवाएं प्राप्त हो सकती हैं जिससे प्रबन्ध की कुशलता में वृद्धि होती है।

(३) लोक कल्याण तथा धन का समान वितरण (Public welfare and equitable distribution of wealth)—सरकारी उपक्रमों में लाभ के साथ-साथ लोक-कल्याण पर भी पूरा बल दिया जाता है। प्राप्त लाभ थोड़े से व्यक्तिगत लोगों के हाथों में केन्द्रित नहीं होने पाता वरन् सरकार को प्राप्त होता है। सरकार लाभ की प्राप्त राशि के एक भाग को उपक्रम के विकास पर लगा सकती है तथा शेष समाज के कल्याणकारी कार्यों पर व्यय करती है। इस प्रकार धन के वितरण में समानता आती है।

(४) आधुनिक रीतियों तथा नवीनतम मशीनों का प्रयोग (Use of latest methods and modern machines)—सरकारी उपक्रमों को बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी प्राप्त हो सकती है, अतः उनमें आधुनिक रीतियों तथा नवीनतम मशीनों का प्रयोग करके उत्पादन-कुशलता को बढ़ाया जा सकता है।

(५) श्रमिकों को लाभ (Benefits to workers)—सरकारी उपक्रमों में श्रमिकों के कार्य करने की दशाएं अच्छी होती हैं, उन्हें अच्छे वेतन दिये जाते हैं तथा व्यक्तिगत उपक्रमों की भांति उनका शोषण नहीं होता।

(६) कम लागत पर उत्तम सेवा (Better service at low cost)—एक उपक्रम के साथ सरकार का नाम जुड़ जाने से जनता में उपक्रम के प्रति बहुत विश्वास उत्पन्न हो जाता है। अतः सरकारी उपक्रम को विज्ञापन तथा प्रसार पर कोई विशेष धन व्यय नहीं करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त सरकारी उपक्रम एकाधिकार, की भांति होते हैं और उन्हें एकाधिकार के सभी लाभ प्राप्त होते हैं। परन्तु सरकारी एकाधिकार निजी एकाधिकार के असमान, जनता को कम कीमत पर उत्तम सेवा प्रदान करने का ध्येय रखते हैं।

(७) बुनियादी औद्योगिक ढांचे के लिए आवश्यक (Necessary for industrial infra-structure)—किसी देश, विशेषतया अल्प विकसित देश के तीव्र औद्योगिक विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोहा तथा इस्पात उद्योग, रसायनिक उद्योग, अन्य भारी उद्योग, बिजली उत्पादन, बांधों का निर्माण, सड़क तथा रेल यातायात, इत्यादि का निर्माण तथा विकास किया जाए। इन क्षेत्रों में सरकारी स्वामित्व तथा प्रबन्ध ही उपयुक्त होता है क्योंकि इनमें पूंजी भी बहुत लगती है और अपेक्षाकृत प्रतिफल कम मिलता है; इस कारण व्यक्तिगत उपक्रम इन क्षेत्रों में कार्य को तत्पर नहीं होता है। स्पष्ट है कि देश के बुनियादी औद्योगिक ढांचे के लिए सरकारी उपक्रम अत्यन्त आवश्यक है।

सरकारी उपक्रमों से हानियां (Disadvantages)

(१) प्रबन्ध कुशलता का निम्न स्तर (Low level of efficiency in management)—सरकारी उपक्रमों में व्यक्तिगत व्यवसायों की अपेक्षा, प्रबन्ध की कुशलता का स्तर प्रायः निम्न रहता है। सरकारी उपक्रमों में लाल फीता-शाही (red tapism) का साम्राज्य होता है, इसमें कार्य पूर्व निश्चित ढंग (procedure) में चलता है; फाइलें धीरे-धीरे चलती हैं; निर्णय लेने में अत्यन्त देर लगती है। परिणामस्वरूप व्यवसाय की प्रबन्ध कुशलता निम्न रहती है।

(२) **प्रारम्भन तथा उपक्रम की कमी** (Lack of initiative and enterprise) उपक्रमों के प्रवन्धकों तथा उच्च अधिकारियों के वेतन में वृद्धि, उन्नति (promotion) इत्यादि सब पूर्व निश्चित नियमों के अनुसार होते हैं। व्यक्तिगत उपक्रमों की भाँति इनमें तथा उच्च अधिकारियों की उन्नति उनकी कड़ी मेहनत तथा कुशलता के आधार पर नहीं ऐसी स्थिति में प्रवन्धकों तथा अधिकारियों में प्रारम्भन तथा उपक्रम के लिए कोई उ... रह जाता।

(३) **श्रमिकों की कार्यक्षमता का निम्न स्तर** (Low level of workers' e... सरकारी उपक्रमों के श्रमिकों की कार्य की दशाएँ सुरक्षित रहती हैं तथा वेतन क्रम (pay निश्चित रहता है। उनमें आराम से कार्य करने के दृष्टिकोण का विकास हो जाता है, मेहनत नहीं करना चाहते। वे अपने अधिकारियों की आज्ञा का उल्लंघन तक करने को ... हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनका कुछ विगाड़ा नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में श्रमिकों क्षमता का स्तर निम्न रहता है।

(४) **राजनीतिक भ्रष्टाचार** (Political corruption)—सरकारी उपक्रमों में क की नियुक्ति प्रायः योग्यता (merit) के आधार पर नहीं होती वरन् राजनीतिक वातें (con tions) उनकी नियुक्ति तथा उन्नति को प्रभावित करती है। अधिकारियों की वदलियों fers) में भी राजनीतिक प्रभाव कार्यशील रहता है।

(५) **विशालकाय सार्वजनिक एकाधिकार** (Gigantic public monopolies), उपक्रम वहुत बड़े होते हैं और कई दशाओं में तो वे विशाल एकाधिकार का रूप धारण हैं। इनके सामने उपभोक्ता असहाय (helpless) रहता है। कई दशाओं में सरकारी ... तथा निजी एकाधिकार में कोई अन्तर नहीं रह जाता है।

(६) **श्रमिकों से राजनीतिक पक्ष प्राप्ति के प्रयत्न** (Efforts to secure p... our from workers)—लोकतान्त्रिक देशों में सरकार सरकारी उपक्रमों के श्रमिकों के ... पक्ष में प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। इसके वदले में कभी-कभी श्रमिक ऊँचे वेतन ... घण्टे कार्य करने की माँग को पूरा कराने का प्रयत्न करते हैं। इससे उत्पादन घटता है त... वढ़ती है।

(७) **हानि के कारण करदाताओं पर भार** (Burden on common tax owing to loss)—सरकारी उपक्रमों में हानि होने पर सामान्य करदाताओं पर वोझ क्योंकि उस हानि की पूर्ति अधिक कर की प्राप्ति से पूरी की जाती है।

निष्कर्ष—सरकारी उपक्रमों के लाभों के साथ उनकी अनेक हानियाँ भी हैं। यदि के अधिकारी ईमानदार तथा कुशल हैं तो इनमें से अधिकांश हानियों को उचित नीतियों ... सीमा तक दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त देश के वुनियादी औद्योगिक ढाँचे का करने तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में, जिनमें सार्वजनिक हित अत्यन्त आवश्यक है, सरकारी उपक्र युक्त तथा आवश्यक होते हैं।

एकाधिकार
(MONOPOLY)

एकाधिकार में एक उत्पादक होता है जिसका वस्तु विशेष की सम्पूर्ण पूर्ति पर ... होता है। एकाधिकार कई प्रकार का होता है।

एकाधिकार से जहाँ लाभ हैं वहाँ इससे अनेक हानियाँ भी हैं। इन हानियों से बचने के लिए विभिन्न देशों में एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए प्रयत्न किये जाते है। वास्तव मे बड़े पैमाने के उत्पादन के आधुनिक युग मे एकाधिकार तथा औद्योगिक संघो की समस्याएँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसलिए हम एकाधिकार तथा औद्योगिक संघों का अध्ययन आगे के अध्याय मे पृथक् रूप से करेंगे।

एकाधिकार तथा औद्योगिक संयोगीकरण
[MONOPOLY AND INDUSTRIAL COMBINATION]

एकाधिकार का अर्थ
(MEANING OF MONOPOLY)

एकाधिकार वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण हो। विशुद्ध एकाधिकार (pure monopoly) में प्रतियोगिता शून्य होती है। विशुद्ध एकाधिकार के अस्तित्व के लिए निम्न तीन दशाओं का पूरा होना आवश्यक है—१. वस्तु का एक विक्रेता हो। २. वस्तु के कोई निकट स्थानापन्न (close substitues) न हो। ३. उद्योग में नये उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें (effective barriers) हो।

व्यवहार मे विशुद्ध एकाधिकार नही पाया जाता क्योंकि उपर्युक्त तीन दशाओं का पाया जाना अत्यन्त कठिन है। किसी वस्तु का एक उत्पादक हो सकता है परन्तु प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई स्थानापन्न अवश्य होता है।[1] व्यवहार में एकाधिकार का अर्थ केवल एक उत्पादक से नही होता वरन् उस एक उत्पादक या कुछ उत्पादकों से होता है जो वस्तु की कुल पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादन करते हैं और इसलिए बाजार तथा बाजार की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं। अतः व्यवहार में एकाधिकारी शक्ति का सार बाजार नियन्त्रण है (in practical word the essence of monopoly power is market control)। दूसरे शब्दो मे, व्यवहार मे विशुद्ध एकाधिकारी स्थिति नहीं पायी जाती वरन् श्रीमती जोन रोबिन्सन (Mrs. Joan Robinson) के शब्दों में, 'अपूर्ण प्रतियोगिता' (imperfect competition) की स्थिति या, प्रो० चेम्बरलिन (Prof. Chamberlin) के शब्दो मे, 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' (monopolistic competition) की स्थिति पायी जाती है।[2]

[1] शायद नमक ऐसी वस्तु है जिसका कोई स्थानापन्न नहीं है।

[2] अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारी प्रतियोगिता के अर्थ के लिए पुस्तक के चतुर्थ भाग मे 'बाजार के रूप' नामक अध्याय को देखिए।

एकाधिकार शक्ति के आधार
(FOUNDATIONS OF MONOPOLY POWER)

एक एकाधिकारी की शक्ति इस बात में निहित है कि उसका अपनी वस्तु की पूर्ति पूर्ण नियन्त्रण हो। प्रो० बेन्हम (Benham) के शब्दों में, "एकाधिकार की सफलता की कुं उत्पादन के संकुचन में है।"[3] एक एकाधिकार अपने उत्पादन का संकुचन या पूर्ति पर नियन्त्रण रख सकेगा, जब नये उत्पादकों का उसके क्षेत्र में प्रवेश न होने पाये अर्थात उद्योग में नये ... के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें (effective barriers) हों। दूसरे शब्दों में, वे त (factors) या परिस्थितियाँ (circumstances) जो नये उत्पादकों के प्रवेश को रोकती 'एकाधिकारी शक्ति के आधार' या 'एकाधिकारी शक्ति के स्रोत' (sources of monopo power) हैं। एकाधिकारी शक्ति के आधार, अर्थात नये उत्पादकों के प्रवेश के प्रति ... रुकावटों के कारण निम्न हैं :

(१) **वस्तु विशेष का बाजार संकुचित या सीमित** (narrow or limited) हो सकता और वह एक फर्म से अधिक फर्मों के माल की खपत नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में नयी ... के लिए उस क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए कोई आकर्षण नहीं रह जाता।

(२) **एक उत्पादक के पास ऐसी वस्तु हो सकती है जो उत्पादन के लिए अत्यन्त आ... हो; जैसे, उत्पादक के पास अधिकांश कच्चे माल की पूर्ति का स्वामित्व** हो सकता है। ऐसी स्थि... में, अर्थात कच्चे माल की प्राप्ति के अभाव में नयी फर्म उद्योग में प्रवेश नहीं कर पायेंगी। उदा... हरणार्थ, कनाडा के अन्तरराष्ट्रीय निकिल कारपोरेशन (International Nickel Corporatio of Canada) का संसार की निकिल की अधिकांश खानों का स्वामित्व है। दूसरे, एक अ... डॉक्टर, वकील, एक्टर (actor) इत्यादि अपने **व्यक्तिगत गुणों के कारण** अपने क्षेत्रों में एकाधि कारी की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं।

(३) **कुछ उद्योगों में बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है** जिससे नयी फर्में उस... प्रवेश नहीं कर पाती हैं। उदाहरणार्थ, लोहा तथा इस्पात उद्योग, हवाई जहाज या जल... उद्योग, इत्यादि में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है और इसलिए इन उद्योगों में एकाधिकार प्रवृत्ति देखी जाती है।

(४) यदि उद्योग विशेष में उत्पादक किसी **विशेष रीति या तकनीकी का प्रयोग** करता है जिसका ज्ञान अन्य उत्पादकों को नहीं होता तो वह उत्पादक एकाधिकारी की स्थिति में रहता है

(५) एक फर्म अपनी **मूल्य-नीति** (Price policy) को इस प्रकार निर्धारित कर सकती है जिससे कि अन्य फर्मों के लिए उसके क्षेत्र में प्रवेश करने का आकर्षण बहुत कम रह जाय।

(६) नयी रीतियों तथा अनुसन्धानों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार उत्पादकों को पेटेण्ट्स (patents) तथा ट्रेड मार्क (trade mark) का अधिकार देकर **कानूनी संरक्षण** प्रदान करती है। कानूनी संरक्षण के कारण उस नयी रीति या ट्रेड मार्क का प्रयोग अन्य उत्पादक नहीं कर सकते हैं और इस प्रकार पेटेण्ट प्राप्त फर्म को लगभग एकाधिकारी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

एकाधिकारों का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF MONOPOLIES)

एकाधिकारियों का कई प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है। एकाधिकार के विभिन्न रूपों या विभिन्न प्रकार के वर्गीकरण का विवरण नीचे दिया जाता है :-

"Thus the key to the success of a monopoly is restriction of output."

I. एक वर्गीकरण के अनुसार एकाधिकार के मुख्य रूप हैं : प्राकृतिक (Natural), सामाजिक (Social), वैधानिक (Legal), अस्थायी (Temporary), तथा ऐच्छिक (Voluntary) एकाधिकार

(१) प्राकृतिक एकाधिकार (Natural monopoly)—प्राकृतिक एकाधिकार वे हैं जो प्राकृतिक कारणों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। जब प्रकृति एक देश को किसी वस्तु की बहुत अधिक मात्रा प्रदान करती है तो उस वस्तु के सम्बन्ध में उसका एकाधिकार स्थापित हो जाता है। उदाहरणार्थ, दक्षिणी अफ्रीका को हीरे की उत्पत्ति का एकाधिकार प्राप्त है, विभाजन से पहले भारत में बंगाल में जूट के उत्पादन का एकाधिकार प्राप्त था, इत्यादि।

(२) सामाजिक या सार्वजनिक या आवश्यक एकाधिकार (Social or public or necessary monopolies)—ऐसे एकाधिकार का प्रायः सरकार निर्माण करती है ताकि प्रतियोगिता के अपव्ययों का निराकरण करके समाज को सस्ती दर पर कुछ आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति हो सके; जैसे, बिजली, पानी, डाक-तार, रेल इत्यादि क्षेत्रों में सरकार एकाधिकारी स्थापित करती है। इनको 'सार्वजनिक उपयोगिता सेवाएँ' (public utility services) भी कहा जाता है।

(३) कानूनी या वैधानिक एकाधिकार (Legal monopoly)—जब एकाधिकार कानून द्वारा स्थापित किया जाता है तो इसे कानूनी या वैधानिक एकाधिकार कहते हैं; जैसे पेटेण्ट (patents) तथा कापीराइट (copyrights)।

(४) अस्थायी एकाधिकार (Temporary monopolies)—कभी-कभी सट्टा करने वाले किसी वस्तु की प्राप्त समस्त पूर्ति पर या उसके अधिकांश भाग पर अपना अधिकार करने में सफल हो जाते हैं, जैसे, कार्नर (corner)। परन्तु इस प्रकार की एकाधिकारी स्थिति केवल अल्पकालीन या अस्थायी होती है।

(५) ऐच्छिक एकाधिकार या एकाधिकारी सयोग (Voluntary monopolies or monopolist combination)—एक वस्तु के सभी उत्पादक या अधिकांश उत्पादक अपनी स्वेच्छा से

रीति द्वारा ही एकाधिकार का निर्माण होता है।

II. एक दूसरे वर्गीकरण के अनुसार एकाधिकार के मुख्य दो रूप हैं : (१) पूर्ण या विशुद्ध एकाधिकार (Perfect and pure Monopoly), तथा (२) अपूर्ण एकाधिकार (Imperfect Monopoly)

(१) पूर्ण या विशुद्ध एकाधिकार (Perfect or pure monopoly)—विशुद्ध एकाधिकार में शून्य प्रतियोगिता होती है तथा एक फर्म या एक उत्पादक का वस्तु की सम्पूर्ण पूर्ति पर अधिकार होता है। इसमें नये उत्पादकों के प्रवेश का भय नहीं होता है। विशुद्ध एकाधिकार का व्यावहारिक जीवन में पाया जाना अत्यन्त कठिन है।

(२) अपूर्ण एकाधिकार (Imperfect monopoly)—इसमें एक उत्पादक या कुछ उत्पादक वस्तु की समस्त पूर्ति या उसकी अधिकांश पूर्ति पर नियन्त्रण रख सकते हैं, परन्तु इनमें नये उत्पादकों के प्रवेश, सरकारी नियन्त्रण या नियमन, तथा संगठित जनमत की प्रतिक्रिया (organised public reaction) का भय बना रहता है।

III. एक तीसरे वर्गीकरण के अनुसार एकाधिकार को साधारण एकाधिकार (Simple Mo-
poly) तथा विवेचनात्मक एकाधिकार (Discriminating Monopoly) में बांटा ।

(१) साधारण एकाधिकार (Simple monopoly)—एक साधारण एकाधिकार
जिसमें उपभोक्ताओं के बीच कोई भेद-भाव नहीं किया जाता और सभी को समान कीमत पर
बेची जाती है।

(२) विवेचनात्मक एकाधिकार (Discriminating monopoly)—इसमें एकाधि
अपने ग्राहकों के बीच भेद-भाव करता है और वह विभिन्न ग्राहकों से एक ही वस्तु की भिन्न
प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ, एक बिजली सप्लाई कम्पनी पावर (power) के लिए कम द
बिजली देती है जबकि रोशनी, पंखे आदि के लिए ऊँची दर पर बिजली देती है।

IV. एक चौथे वर्गीकरण (स्थान के आधार पर) के अनुसार एकाधिकार के तीन रूप हो
हैं : (१) स्थानीय एकाधिकार, (२) राष्ट्रीय एकाधिकार, तथा (३) अन्तर्राष्ट्रीय एकाधि

(१) स्थानीय एकाधिकार (Local monopoly)—जब एक एकाधिकार का क्षेत्र
छोटे स्थान तक सीमित रहता है तो इसे 'स्थानीय एकाधिकार' कहते हैं, जैसे, शहर की
सप्लाई कम्पनी।

(२) राष्ट्रीय एकाधिकार (National monopoly)—जब एक एकाधिकार का
समस्त देश में फैला होता है तो इसे 'राष्ट्रीय एकाधिकार' कहते हैं, जैसे, भारत में सरकारी
रेलों का एकाधिकार।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार (International monopoly)—जब एक एकाधि
क्षेत्र समस्त संसार में फैला होता है तो इसे 'अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार' कहते हैं।

V. एक पाँचवें वर्गीकरण (स्वामित्व के आधार पर) के अनुसार एकाधिकार के तीन रूप हो
हैं : (१) व्यक्तिगत एकाधिकार, (२) सार्वजनिक या सरकारी एकाधिकार, तथा (३)
सरकारी एकाधिकार

(१) व्यक्तिगत एकाधिकार (Private monopoly)—जब किसी एकाधिकारी पर
व्यक्तियों का स्वामित्व तथा प्रवन्ध होता है तो इसे 'व्यक्तिगत एकाधिकार' कहते हैं। व्यक्ति
एकाधिकारियों का उद्देश्य प्रायः वस्तु की ऊँची कीमत रखकर अधिक लाभ अर्जित करना होता

(२) सार्वजनिक या सरकारी एकाधिकार (Public or State monopolies)—जब
एकाधिकार पर सरकार का स्वामित्व तथा प्रवन्ध होता है तो इसे 'सार्वजनिक या सरकारी
धिकार' कहते हैं। सार्वजनिक एकाधिकार का उद्देश्य उचित मूल्य पर वस्तुओं का
समाज के कल्याण को बढ़ाना होता है।

(३) अर्द्ध-सरकारी एकाधिकार (Semi-government or quasi-public monop
ऐसे एकाधिकारों में प्रायः सरकार का स्वामित्व होता है और उसका प्रवन्ध व्यक्तिगत लोगों
किया जाता है, इस मिश्रण के कारण ही इन्हें 'अर्द्ध-सरकारी एकाधिकार' कहा जाता है।

एकाधिकार या एकाधिकारी संयोग की ओर विकास के कारण या प्रेरणाएँ
(MOTIVES TO GROWTH TOWARDS MONOPOLY OR MONOPOLISTIC COMBINATION)

आधुनिक युग में प्रायः व्यवसाय के संयोग (Business Combination) द्वारा ही
धिकार का निर्माण होता है। एक प्रकार की वस्तु के अधिकांश निर्माता मिल कर एकाधि
अर्जित करते हैं। इस प्रकार के संयोग को 'एकाधिकारी संयोग' (Monopolistic

bination) कहते हैं। प्रश्न यह उठता है कि बड़ी-बड़ी फर्म आपस में मिल कर क्यों एकाधिकार या एकाधिकारी संयोग का निर्माण करना चाहती हैं? एकाधिकारी संयोग के पीछे क्या प्रेरणाएँ या प्रयोजन (motives) होते हैं? बड़ी-बड़ी फर्मों का एकाधिकार या एकाधिकारी संयोग की ओर विकास के मुख्य कारण या प्रेरणाएँ निम्न हैं:

(१) मितव्ययिता प्रयोजन (Economy motive)—बड़े पैमाने की बचतों को प्राप्त करने तथा लागत को कम करने के प्रयोजन से कई फर्में मिल कर 'एकाधिकारी संयोग' की स्थापना कर सकती हैं।

(२) अत्यधिक लाभ प्रयोजन (Excessive profit motive)—अत्यधिक लाभ प्राप्त करने के प्रयोजन से कुछ फर्में मिल कर एकाधिकार या एकाधिकारी संयोग स्थापित कर सकती हैं।

(३) प्रतियोगिता के जोखिमों को दूर करने का प्रयोजन (Motive for aviodance of risks of competition)—पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादकों को प्रायः गला-काट प्रतियोगिता (cut-throat competition) का सामना करना पड़ता है जिससे सभी फर्मों को हानि उठानी पड़ती है और कुछ फर्में बन्द भी हो जाती हैं। अतः प्रतियोगिता की जोखिमों से बचने के लिए फर्में एकाधिकारी संयोग का निर्माण करती हैं।

(४) आत्म-प्रतिरक्षा प्रयोजन (Self defence motive)—कभी-कभी एकाधिकारी संयोग की स्थापना प्रतिरक्षा में की जाती है। (अ) कभी-कभी देश के कुछ उत्पादक इसलिए मिल जाते हैं ताकि वे आक्रामक विदेशी प्रतियोगिता (aggressive foreign competition) से अपनी रक्षा कर सकें। (ब) कच्चे माल तथा सेवाओं की पूर्ति-कर्त्ताओं के एकाधिकारी संयोग का सामना करने के लिए भी कभी-कभी उत्पादक मिल जाते हैं। (स) नये प्रतियोगियों के प्रवेश को रोकने के लिए भी संयोग का निर्माण होता है।

(५) कानून द्वारा सार्वजनिक हित के प्राप्ति का प्रयोजन (Public interest motive through law)—कभी-कभी एकाधिकारी संयोगों की स्थापना कानून द्वारा की जाती है। उदाहरणार्थ, सार्वजनिक हित की दृष्टि से बिजली पूर्ति के लिए कानून द्वारा एकाधिकार स्थापित किया जाता है ताकि अनावश्यक प्रतियोगिता के अपव्यय को रोका जा सके।

(६) शक्ति तथा प्रतिष्ठा का प्रयोजन (Power and prestige motive)—एकाधिकारी संयोग के पीछे प्रायः आर्थिक शक्ति तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयोजन या प्रेरणा होती है। एक व्यवसाय लाभ प्राप्ति के साथ शक्ति प्राप्त करने का भी साधन होता है। बड़े-बड़े एकाधिकारी व्यवसायों का स्वामित्व तथा नियन्त्रण एक व्यक्ति की गरिमा (importance) की भावना के लिए आनन्ददायक (flattering) होता है, उसे बहुत अधिक श्रमिकों तथा अन्य कर्मचारियों के ऊपर नियन्त्रण तथा नेतृत्व का अवसर मिलता है, बड़े व्यवसाय के नियन्त्रण में उसे एक उद्दीपन (excitement) का अनुभव होता है और वह एक औद्योगिक साम्राज्य (industrial dynansty) की स्थापना करने की आशा से प्रेरित होता है। इस प्रकार एकाधिकारी संयोगों के पीछे आर्थिक शक्ति, प्रतिष्ठा तथा गौरव की प्रबल भावना भी रहती है।

(७) अन्य कारण (Other reasons)—(अ) कुछ उद्योगों में बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है जिससे उसमें नई फर्में प्रवेश नहीं कर पाती हैं और वर्तमान फर्मों को सुगमता से एकाधिकारी स्थिति प्राप्त हो जाती है, जैसे लोहा तथा इस्पात उद्योग, जलयान तथा हवाई जहाज निर्माण उद्योग, इत्यादि। (ब) उद्योगों के स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप फर्मों के लिए आपस में मिल कर एकाधिकारी संयोग की स्थापना करना सुगम हो जाता है।

III. **एक तीसरे वर्गीकरण के अनुसार एकाधिकार को साधारण एकाधिकार** (Simple Monopoly) **तथा विवेचनात्मक एकाधिकार** (Discriminating Monopoly) **में बाँटा जाता है**

(१) **साधारण एकाधिकार** (Simple monopoly)—एक साधारण एकाधिकार वह है जिसमें उपभोक्ताओं के बीच कोई भेद-भाव नहीं किया जाता और सभी को समान कीमत पर वस्तु बेची जाती है।

(२) **विवेचनात्मक एकाधिकार** (Discriminating monopoly)—इसमें एकाधिकारी अपने ग्राहकों के बीच भेद-भाव करता है और वह विभिन्न ग्राहकों से एक ही वस्तु की भिन्न कीमतें प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ, एक बिजली सप्लाई कम्पनी पावर (power) के लिए कम दर पर बिजली देती है जबकि रोशनी, पंखे आदि के लिए ऊँची दर पर बिजली देती है।

IV. **एक चौथे वर्गीकरण (स्थान के आधार पर) के अनुसार एकाधिकार के तीन रूप हो सकते हैं : (१) स्थानीय एकाधिकार, (२) राष्ट्रीय एकाधिकार, तथा (३) अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार**

(१) **स्थानीय एकाधिकार** (Local monopoly)—जब एक एकाधिकार का क्षेत्र किसी छोटे स्थान तक सीमित रहता है तो इसे 'स्थानीय एकाधिकार' कहते हैं, जैसे, शहर की बिजली सप्लाई कम्पनी।

(२) **राष्ट्रीय एकाधिकार** (National monopoly)—जब एक एकाधिकार का क्षेत्र समस्त देश में फैला होता है तो इसे 'राष्ट्रीय एकाधिकार' कहते हैं, जैसे, भारत में सरकार का रेलों का एकाधिकार।

(३) **अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार** (International monopoly)—जब एक एकाधिकार का क्षेत्र समस्त संसार में फैला होता है तो इसे 'अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार' कहते हैं।

V. **एक पाँचवें वर्गीकरण (स्वामित्व के आधार पर) के अनुसार एकाधिकार के तीन रूप हो सकते हैं : (१) व्यक्तिगत एकाधिकार, (२) सार्वजनिक या सरकारी एकाधिकार, तथा (३) अर्द्ध-सरकारी एकाधिकार**

(१) **व्यक्तिगत एकाधिकार** (Private monopoly)—जब किसी एकाधिकारी पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है तो इसे 'व्यक्तिगत एकाधिकार' कहते हैं। व्यक्तिगत एकाधिकारियों का उद्देश्य प्रायः वस्तु की ऊँची कीमत रखकर अधिक लाभ अर्जित करना होता है।

(२) **सार्वजनिक या सरकारी एकाधिकार** (Public or State monopolies)—जब किसी एकाधिकार पर सरकार का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है तो इसे 'सार्वजनिक या सरकारी एकाधिकार' कहते हैं। सार्वजनिक एकाधिकार का उद्देश्य उचित मूल्य पर वस्तुओं का विक्रय कर समाज के कल्याण को बढ़ाना होता है।

(३) **अर्द्ध-सरकारी एकाधिकार** (Semi-government or quasi-public monopoly)–ऐसे एकाधिकारों में प्रायः सरकार का स्वामित्व होता है और उसका प्रबन्ध व्यक्तिगत लोगों द्वारा किया जाता है, इस मिश्रण के कारण ही इन्हें 'अर्द्ध-सरकारी एकाधिकार' कहा जाता है।

एकाधिकार या एकाधिकारी संयोग की ओर विकास के कारण या प्रेरणाएँ
(MOTIVES TO GROWTH TOWARDS MONOPOLY OR MONOPOLISTIC COMBINATION)

आधुनिक युग में प्रायः व्यवसाय के संयोग (Business Combination) द्वारा ही एकाधिकार का निर्माण होता है। एक प्रकार की वस्तु के अधिकांश निर्माता मिल कर एकाधिकारी शक्ति अर्जित करते हैं। इस प्रकार के संयोग को 'एकाधिकारी संयोग' (Monopolistic com-

bination) कहते हैं। प्रश्न यह उठता है कि बड़ी-बड़ी फर्म आपस में मिल कर क्यों एकाधिकार या एकाधिकारी सयोग का निर्माण करना चाहती हैं? एकाधिकारी सयोग के पीछे क्या प्रेरणाएँ या प्रयोजन (motives) होते हैं? बड़ी-बड़ी फर्मों का एकाधिकार या एकाधिकारी संयोग की ओर विकास के मुख्य कारण या प्रेरणाएँ निम्न हैं :

(१) मितव्ययिता प्रयोजन (Economy motive)—बड़े पैमाने की बचतों को प्राप्त करने तथा लागत को कम करने के प्रयोजन से कई फर्में मिल कर 'एकाधिकारी सयोग' की स्थापना कर सकती हैं।

(२) अत्यधिक लाभ प्रयोजन (Excessive profit motive)—अत्यधिक लाभ प्राप्त करने के प्रयोजन से कुछ फर्में मिल कर एकाधिकार या एकाधिकारी सगोग स्थापित कर सकती हैं।

(३) प्रतियोगिता के जोखिमों को दूर करने का प्रयोजन (Motive for aviodance of risks of competition)—[illegible] throat competition) का [illegible] है और कुछ फर्में बन्द भी हो ज [illegible] धिकारी संयोग का निर्माण करती हैं।

(४) आत्म-प्रतिरक्षा प्रयोजन (Self defence motive)—कभी-कभी एकाधिकारी सयोग की स्थापना प्रतिरक्षा में की जाती है। (अ) कभी-कभी देश के कुछ उत्पादक इसलिए मिल जाते हैं ताकि वे आक्रामक विदेशी प्रतियोगिता (*aggressive foreign competition*) से अपनी रक्षा कर सकें। (ब) कच्चे माल तथा सेवाओं की पूर्ति-कर्त्ताओं के एकाधिकारी सयोग का सामना करने के लिए भी कभी-कभी उत्पादक मिल जाते हैं। (स) नये प्रतियोगियों के प्रवेश को रोकने के लिए भी संयोग का निर्माण होता है।

(५) कानून द्वारा सार्वजनिक हित के प्राप्ति का प्रयोजन (Public interest motive through *law*)—कभी-कभी एकाधिकारी सयोगों की स्थापना कानून द्वारा की जाती है। उदाहरणार्थ, सार्वजनिक हित की दृष्टि से बिजली पूर्ति के लिए कानून द्वारा एकाधिकार स्थापित किया जाता है ताकि अनावश्यक प्रतियोगिता के अपव्यय को रोका जा सके।

(६) शक्ति तथा प्रतिष्ठा का प्रयोजन (Power and prestige motive)—एकाधिकारी संयोग के पीछे प्रायः आर्थिक शक्ति तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयोजन या प्रेरणा होती है। एक व्यवसाय लाभ प्राप्ति के साथ शक्ति प्राप्त करने का भी साधन होता है। बड़े-बड़े एकाधिकारी व्यवसायों का स्वामित्व तथा *नियन्त्रण एक व्यक्ति की गरिमा (importance)* की भावना के लिए आनन्ददायक (flattering) होता है, उसे बहुत अधिक श्रमिकों तथा अन्य कर्मचारियों के ऊपर नियन्त्रण तथा नेतृत्व का अवसर मिलता है, बड़े व्यवसाय के नियन्त्रण में उसे एक उद्दीपन (excitement) का अनुभव होता है और वह एक औद्योगिक साम्राज्य (industrial dynansty) की स्थापना करने की आशा से प्रेरित होता है। इस प्रकार एकाधिकारी संयोगों के पीछे आर्थिक शक्ति, प्रतिष्ठा तथा गौरव की प्रबल भावना भी रहती है।

(७) अन्य कारण (Other reasons)—(अ) कुछ उद्योगों में बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है जिससे उसमें नई फर्में प्रवेश नहीं कर पाती हैं और वर्तमान फर्मों को सुगमता से एकाधिकारी स्थिति प्राप्त हो जाती है, जैसे लोहा तथा इस्पात उद्योग, जलयान तथा हवाई जहाज निर्माण उद्योग, इत्यादि। (ब) उद्योगों के स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप फर्मों के लिए आपस में मिल कर एकाधिकारी सयोग की स्थापना करना सुगम हो जाता है।

एकाधिकार के आर्थिक परिणाम
(ECONOMIC CONSEQUENCES OF MONOPOLY)

एकाधिकार के कुछ लाभ हैं, परन्तु इससे अनेक हानियाँ भी हैं। इन हानियों के कारण प्रत्येक देश में एकाधिकार को नियन्त्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय किये जाते हैं। पहले हम एकाधिकार के लाभों और उसके बाद उनकी हानियों का वर्णन करेंगे।

एकाधिकार के लाभ (Merits of Monopoly)

(१) **बड़े पैमाने की उत्पत्ति की बचतें** (Economies of large scale production)—एकाधिकारी उत्पादन बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है, इसलिए इसके अन्तर्गत बड़े पैमाने की सभी बचतें प्राप्त होती हैं। उदाहरणार्थ, एकाधिकारी उत्पादन व्यवस्था का पुनर्संगठन कर सकता है, सूक्ष्म विशिष्टीकरण, नवीनतम मशीनों के प्रयोग, इत्यादि से उत्पादन कुशलता बढ़ा सकता है। संक्षेप में, उसे प्रबन्धकीय, वाणिज्य-सम्बन्धी, जोखिम-उठाने-सम्बन्धी, वित्तीय तथा तकनीकी बचतें प्राप्त होती हैं।

(२) **नीची विक्रय लागतें** (Low selling costs)—एकाधिकारी के लिए विक्रय लागतें भी बहुत कम होती हैं क्योंकि उसे, प्रतियोगिता की अपेक्षा, प्रचार तथा विज्ञापन पर बहुत कम व्यय करना पड़ता है।

(३) **आर्थिक संकट का सामना करने की अधिक सामर्थ्य** (Better capacity to face economic crisis)—एकाधिकारी के पास आर्थिक साधन तथा सुरक्षित कोष (reserve funds) पर्याप्त मात्रा में होते हैं; परिणामस्वरूप आर्थिक संकटों के सामना करने की उसकी योग्यता अधिक होती है।

(४) **अनुसन्धान को प्रोत्साहन** (Encouragement to research)—एकाधिकारियों के पास बहुत बड़ी मात्रा में आर्थिक साधन होते हैं इसलिए वे अनुसन्धान में अधिक धन का प्रयोग कर सकते हैं और तकनीकी प्रगति में योगदान दे सकते हैं।

(५) **सार्वजनिक उपयोगी सेवाएँ** (Public utility services)—सार्वजनिक हित की दृष्टि से कुछ कार्य या सेवाएँ होती हैं जिनमें प्रतियोगिता हानिकारक होती है तथा एकाधिकार आवश्यक तथा हितकर होता है, जैसे बिजली, पानी, गैस, रेल इत्यादि।

एकाधिकार से हानियाँ (Demerits of Monopoly)

(१) **उपभोक्ताओं का शोषण** (Exploitation of consumers)—एकाधिकारी अपने क्षेत्र में एक ही उत्पादक होता है। (अ) इसलिए वह प्रायः अपनी वस्तु की कीमत ऊँची रखता है, वस्तु की किस्म में भी गिरावट कर देता है, और इस प्रकार उपभोक्ताओं का शोषण करता है। (ब) वह कभी-कभी उपभोक्ताओं के बीच भेद-भाव भी करता है तथा कुछ लोगों से वस्तु की कम कीमत तथा कुछ से अधिक कीमत लेता है। (स) एकाधिकारी का उत्पादन प्रतियोगिता की अपेक्षा कम होता है और इस प्रकार उपभोक्ताओं के लिए वस्तु की कुल पूर्ति कम होती है और उन्हें ऊँची कीमतें देनी पड़ती हैं।

(२) **श्रमिकों का शोषण** (Exploitation of workers)—एकाधिकार अपने क्षेत्र में अकेला उत्पादक होता है, इसलिए उसकी सौदा करने की शक्ति बहुत होती है और वह श्रमिकों को कम मजदूरी पर कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता है। दूसरे, श्रमिकों की कुल माँग प्रतियोगिता की अपेक्षा बहुत कम होती है, इसलिए भी श्रमिकों की मजदूरी कम होती है।

(३) **तकनीकी प्रगति में रुकावट** (Hindrance in the technical progress)—प्रतियोगिता के अभाव में एकाधिकारी पुरानी मशीनों से ही काम चलाता है, वह सुधरी हुई तथा

नवीनतम मशीनों के प्रयोग को किया नहीं जाता । इस प्रकार वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति में बाधा पड़ती है ।

(४) नयी पूँजी तथा उपक्रम में बाधा (Obstacle to the new capital and enterprise)—नये उत्पादकों के लिए एकाधिकारी या बड़े संयोग के समक्ष उनके क्षेत्र में प्रवेश करना कठिन होता है । इसके अतिरिक्त एकाधिकारी उचित या अनुचित (fair or unfair) रीतियों द्वारा नव उत्पादकों को प्रवेश करने से रोकता है । इस प्रकार पूँजी निर्माण तथा उपक्रम में बाधा पड़ती है । उद्योग में नये खून (new blood) के प्रवेश न कर सकने से औद्योगिक प्रगति रुकती है ।

(५) अकुशलता की सम्भावना (Possibility of inefficiency)—एकाधिकार अपने क्षेत्र में अकेला होता है और जब उसे अपनी एकाधिकारी शक्ति की सुरक्षा के सम्बन्ध में विश्वास हो जाता है तो वह सुस्त हो जाता है । प्रतियोगिता के अभाव में उसमें मितव्ययिता को प्राप्त करने तथा कुशलता को बढ़ाने के लिए कोई प्रेरणा नहीं रह जाती है ।

(६) फर्मों के संयोग की बुराइयाँ (Evils of the combination of firms)—प्रायः कई फर्मों के संयोग से एकाधिकारी स्थिति उत्पन्न होती है । (i) संयोग में प्रत्येक फर्म को उत्पादन का निश्चित कोटा (quota) दिया जाता है, इस प्रकार संयोग में फर्मों को अपनी पूर्ण क्षमता से कम काम करना पड़ता है और कुछ उत्पादक साधन अप्रयुक्त (unutilised) रह जाते हैं । (ii) दूसरे, कोटा प्रणाली के परिणामस्वरूप संयोग में कई अकुशल फर्में भी काम करती रहती हैं; और कुशल फर्में, अकुशल फर्मों को जीवित रखने के लिए, अपनी पूर्ण क्षमता से कम उत्पादन करती हैं । ऐसी स्थिति समाज के लिए अहितकर है ।

(७) धन का असमान वितरण (Unequal distribution of wealth)—एकाधिकारी के आर्थिक साधन बहुत होते हैं, वे धनवान होते हैं तथा और अधिक धनवान होते जाते हैं । इस प्रकार कुछ एकाधिकारियों के हाथ में धन केन्द्रित हो जाता है और समाज में धन का वितरण असमान हो जाता है ।

(८) राजनीतिक भ्रष्टाचार (Political corruption)—एकाधिकारी प्रायः सरकारी अफसरों को रिश्वत या अन्य प्रलोभन देकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं । इससे राजनीतिक तथा सामाजिक भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है ।

एकाधिकार का नियन्त्रण
(CONTROL OF MONOPOLY)

जहाँ एकाधिकार से लाभ हैं वहाँ इससे हानियाँ भी हैं । समाज के हित में एकाधिकारी प्रवृत्ति को नियन्त्रित करना आवश्यक है । एकाधिकार के नियन्त्रण की कई रीतियाँ हैं, परन्तु उनमें से कोई रीति भी पूर्ण रूप से सफल सिद्ध नहीं हुई है । नियन्त्रण की मुख्य रीतियाँ निम्न हैं :

(१) संयोग-विरोधी या एकाधिकार विरोधी कानून (Anti-combination or anti-monopoly laws)—ऐसे कानूनों के प्रायः दो उद्देश्य होते हैं : (अ) एकाधिकार को स्थापित होने से रोकना, तथा (ब) स्थापित हो जाने की दशा में समाप्त कर उसे छोटी-छोटी इकाइयों में विकेन्द्रित कर देना । इन दोनों उद्देश्यों की दृष्टि में अमरीका में एकाधिकारी-विरोधी कानून बनाये गये हैं, जैसे, शर्मन ऐण्टी ट्रस्ट एक्ट, १८९० (Sherman Anti-trust Act, 1890), क्लेटन एक्ट, १९१४ (Clayton Act, 1914), रोबिन्सन पैकमैन एक्ट, १९३६ (Robbinson Packman Act, 1936), फेडरल ट्रेड एण्ड कॉमर्स एक्ट (Federal Trade and Commerce

Act), इत्यादि । परन्तु इन कानूनों के होने पर भी अमरीका में एकाधिकारी प्रवृत्ति रही है और आज भी है । भारत में भी 'एकाधिकारी जाँच आयोग' (Monopoly Enquiry Commission) की स्थापना कर दी गयी ताकि भविष्य में एकाधिकारी प्रवृत्तियों को नियन्त्रित किया जा सके ।

इसी प्रकार इंगलैण्ड में भी एकाधिकारी प्रवृत्ति को रोकने के लिए नियम बनाये गये हैं । इंगलैण्ड में १९४८ के एक एक्ट के अन्तर्गत एक 'मनोपलीज कमीशन' (Monopolies Commission) की स्थापना की गयी है जो एक-फर्म एकाधिकारी स्थिति (single-firm monopoly) की देखभाल करता है । इसी प्रकार 'रेस्ट्रिक्टिव प्रेक्टिसेज एक्ट, १९५६ (Restrictive Practices Act, 1956) फर्मों को मिलने से रोकता है अर्थात् व्यापारिक समझौतों को रोकने का प्रयत्न करता है ।

परन्तु एकाधिकारी-विरोधी नियमों के होने पर भी एकाधिकारी प्रवृत्ति पनपती रहती है और ये नियम अधिक सफल नहीं हो पाते हैं । इसके कई कारण हैं । जब एक प्रकार का संयोग गैर कानूनी घोषित कर दिया जाता है तो फर्में दूसरे प्रकार का संयोग बना लेती हैं । दूसरे, बड़ी-बड़ी फर्मों के बीच गुप्त समझौते हो जाते हैं और ऐसी एकाधिकारी स्थिति को कानून द्वारा निबटना अत्यन्त कठिन हो जाता है ।

(२) **प्रतियोगिता को बनाये रखने के उपाय** (Measures for maintaining competition)—एकाधिकारी प्रायः अनुचित तथा गैर-कानूनी रीतियों (unfair and illegal practices) द्वारा नयी फर्मों के प्रवेश को रोकता है ताकि एकाधिकारी जड़ें मजबूत बनी रहें । इसलिए यदि ऐसी रीतियाँ अपनायी जायँ जिससे नयी फर्में एकाधिकारी के क्षेत्र में प्रवेश कर सकें तथा इस प्रकार प्रतियोगिता को बनाये रखा जा सके, तो एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ नहीं पनप पायेंगी । इस दृष्टि से निम्न उपाय किये जा सके हैं : (i) **अनुचित रीतियों** (unfair practices) **पर नियन्त्रण किया जाये** । कण्ठ-छेदी प्रतियोगिता (cut-throat competition) द्वारा एकाधिकारी प्रतियोगियों का प्रवेश नहीं होने देते हैं, वे वस्तु की कीमत बहुत गिरा कर प्रतियोगियों को भगा देते हैं और तत्पश्चात् पुनः कीमतें ऊँची करके अपनी हानि को पूरा कर लेते हैं । प्रो० पीगू के अनुसार, इस प्रकार की कुरीतियों (mal-practices) पर कानून द्वारा नियन्त्रण आँशिक सफलता ही प्राप्त कर पाता है । (ii) **प्रो० मीड** (Prof. Meade) **के अनुसार, 'कर तथा आर्थिक सहायता'** (Taxes and Subsidies) **द्वारा प्रतियोगिता की स्थिति को बनाये रखा जा सकता है** । एकाधिकारियों पर कर लगा कर तथा उससे प्राप्त धन को नयी फर्मों को आर्थिक सहायता देकर नयी फर्मों के प्रवेश को प्रोत्साहित किया जा सकता है ।

(३) **उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षित रखने के उपाय** (Measures for safeguarding the interests of the consumers)—इसके अन्तर्गत हम निम्न चार रीतियों का वर्णन करते हैं :

(i) सरकार **एकाधिकारियों के लाभों तथा कीमतों को नियन्त्रित** (Controlling the profits and prices) कर सकती है ताकि उपभोक्ताओं का शोषण न हो सके । परन्तु व्यवहार में एक ऐसी कीमत को निर्धारित करना कठिन होता है जो उपभोक्ताओं तथा एकाधिकारी दोनों के लिए उचित (fair) हो । (ii) सरकार एकाधिकारी को **वस्तु की उचित किस्म** (reasonably good quality) **को बनाये रखने के लिए बाध्य** कर सकती है । परन्तु ऐसा करना भी इतना आसान नहीं है जैसा कि प्रतीत होता है । (iii) सरकार **एकाधिकार की कार्यवाहियों को जनता के लिए प्रकाशित** (publicity about monopolistic activities for the public) करके एका-

धिकारी की अनुचित कार्यवाहियों के प्रति कड़े जनमत (strong public opinion) का निर्माण कर सकती है। (iv) एकाधिकारी के शोषण से बचने तथा अपनी सौदा करने की शक्ति बढ़ाने के के लिए उपभोक्ता 'उपभोक्ता संघ' (Consumers Association) का निर्माण कर सकते हैं। परन्तु व्यवहार में उपभोक्ताओं का एक प्रभावपूर्ण संघ बनाना कठिन होता है।

(५) सरकारी स्वामित्व या राष्ट्रीयकरण (Public ownership or nationalisation)—एकाधिकारी नियन्त्रण का एक प्रभावपूर्ण तरीका एकाधिकारी व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण करना ... यों पर अपना स्वामित्व रखे तथा उन्हें चलाये जिनमें ... को सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं पर अपना स्वामित्व ... ण की नीति का प्रायः उन देशों में आसानी से पालन ... (public sector) हो, जैसे ब्रिटेन, भारत इत्यादि। ... (public monopolies) में ... ती है। सार्वजनिक एकाधिकार ... (Public utility services) में उचित रहते हैं या उन व्यवसायों में ठीक रहते है जिनमें सीधा-साधा कार्य (routine work) रहता है और वस्तु का बाजार सुरक्षित रहता है। दूसरे, यदि सरकार बहुत से क्षेत्रों में एकाधिकारी शक्ति प्राप्त कर लेती है तो इससे लोकतान्त्रिक व्यवस्था को भय हो सकता है।

विकास या विस्तार की रीतियाँ
(METHODS OF GROWTH)

एक फर्म अपने विस्तार या विकास के लिए दो रीतियों का प्रयोग कर सकती है। प्रथम, वह अपने प्लाण्ट (plant) का विस्तार कर सकती है। इस रीति द्वारा वह अपनी उत्पादन-क्षमता (capacity) में वृद्धि करती है; इसके परिणामस्वरूप उद्योग की उत्पादन-क्षमता में भी वृद्धि होती है। दूसरे, एक फर्म दूसरी फर्मों से मिलकर या सयोग (combination) द्वारा अपना विस्तार कर सकती है। इस रीति के अन्तर्गत उद्योग के स्वामित्व तथा नियन्त्रण के स्वरूप (pattern) में परिवर्तन होता है, उद्योग की उत्पादन-क्षमता में परिवर्तन नहीं होता। दोनों रीतियों की अपनी-अपनी समस्याएँ तथा परिणाम हैं। इन दोनों रीतियों में दूसरी रीति अधिक जटिल है। इस रीति द्वारा फर्मों को एक सीमा तक एकाधिकारी शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस कारण प्रत्येक देश में सयोगीकरण (Combination) को रोकने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं तथा कानून बनाये जाते हैं।

संयोगीकरण द्वारा फर्मों के विस्तार की अनेक रीतियाँ हैं अर्थात् सयोगीकरण के अनेक प्रारूप (forms) होते हैं। एक ओर यह अत्यन्त साधारण हो सकता है तथा इसका क्षेत्र सीमित हो सकता है; दूसरी ... विस्तृत हो सकता ...

... understanding or informal agreements)—ढीले या सादा रूप में फर्में 'पारस्परिक सहमति' अथवा 'अनौपचारिक समझौतों' द्वारा मिलकर आपसी प्रतियोगिता को समाप्त करती हैं। (i) सम्मिलित अंशधारियों (Common shareholders), सम्मिलित या संयुक्त निदेशकों (Common directors) इत्यादि द्वारा फर्में एक दूसरे से सम्बन्धित हो सकती हैं। इन 'व्यक्तिगत सम्बन्धों' (personal links) के कारण फर्मों के उत्पादन, मजदूरी तथा कीमतों के सम्बन्ध में एक सी नीतियों (common policies) को अपनाया जा सकता है। (ii) इन 'व्यक्तिगत सम्बन्धों' के अतिरिक्त 'व्याव-

सायिक शिष्टाचार' (Trade etiquetes) या पारस्परिक सहमति के कारण भी फर्में एक सी नीतियों (Common policies) को अपनाती हैं। फर्में 'पारस्परिक सहमति' या 'अनौपचारिक समझौतों' द्वारा यह भी निश्चित कर लेती हैं कि प्रत्येक फर्म विभिन्न बाजारों में वस्तु की कितनी मात्रा की पूर्ति करेगी तथा किस कीमत पर वस्तु को बेचेगी। ये समझौते केवल 'सज्जन व्यक्तियों के समझौतों' (Gentlemen's agreement) की भाँति होते हैं।

इन 'पारस्परिक सहमतियों' तथा 'अनौपचारिक समझौतों' में 'व्यावसायिक संघ' (Trade Associations) महत्त्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। ये संघ व्यापारियों को एक दूसरे के अधिक निकट लाते हैं और 'जीओ तथा जीने दो' (Live and let live) की नीति का पालन करने के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करते हैं। ये संघ लागतों, कीमतों, उत्पादन इत्यादि के सम्बन्ध में फर्मों को सूचना देकर उन्हें उत्पादन को सीमित करने तथा निश्चित कीमतों को बनाये रखने में सहयोग देते हैं; अर्थात् इन सूचनाओं के आधार पर उत्पादन तथा कीमतों के सम्बन्ध में फर्में सामान्य नीतियाँ (common policies) को अपना सकती हैं।

यद्यपि ये समझौते बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं होते, परन्तु एक सीमा तक ये समझौते गला-काट प्रतियोगिता समाप्त कर विनियोजित पूँजी पर उचित लाभों को सुरक्षित रखने में सहायक होते हैं। इन समझौतों द्वारा अकुशल फर्मों तथा उत्पादन की अकुशल रीतियों का निराकरण (elimination) नहीं होता, तथा तकनीकी सुधार नहीं हो पाते हैं। कम उत्पादन कर तथा ऊँची कीमतें रखकर फर्में उपभोक्ताओं का शोषण करती हैं।

संकीर्ण अर्थ में इन समझौतों को 'संयोगीकरण' (Combination) नहीं कहा जा सकता। परन्तु ये समझौते 'नियन्त्रण के केन्द्रीयकरण' (Concentration of Control), जो कि 'संयोगीकरण' की मुख्य विशेषता है, के निकट ले जाते हैं।

(२) **औपचारिक समझौते** (Formal agreements)—कभी कभी फर्में ढीले अथवा सादा या अनौपचारिक समझौते न करके अधिक कड़े तथा 'औपचारिक समझौते' करती हैं। इन औपचारिक समझौतों' के अन्तर्गत विभिन्न फर्में प्रायः बिक्री की कीमतों तथा वस्तु को बेचने के बाजारों के सम्बन्ध में समझौते करती हैं। औपचारिक समझौतों द्वारा फर्में बाजारों का बँटवारा (sharing of markets) कर लेती हैं। इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण **'जहाजरानी सम्मेलन'** (Shipping Conferences) या **'जहाजरानी रिंग'** (Shipping Rings) हैं; इनमें जहाजरानी कम्पनियाँ विभिन्न जलमार्गों पर लिये जाने वाले भाड़ों के सम्बन्ध में ही समझौता नहीं करतीं वरन् प्रत्येक जहाजरानी कम्पनी का क्षेत्र तथा विभिन्न जल-मार्गों पर चलने वाले जहाजों की संख्या निश्चित कर दी जाती है।

औपचारिक समझौतों के अन्तर्गत कभी-कभी कुल उत्पादन को सीमित किया जाता है और प्रत्येक फर्म को कुल उत्पादन का एक निश्चित कोटा (quota) दिया जाता है।

पूल (Pool) भी एक प्रकार का औपचारिक समझौता होता है। (i) इसके अन्तर्गत वस्तु की कीमत तथा लाभ-दर निश्चित कर दी जाती है और प्रत्येक उत्पादक का क्षेत्र या बाजार भी निश्चित कर दिया जाता है। (ii) एक कोष (fund) की स्थापना की जाती है जिसमें सदस्य-फर्में अपनी उत्पत्ति के अनुपात में या निश्चित योजना के अनुसार धनराशि जमा करती हैं। इस धन-राशि को प्रत्येक सदस्य-फर्म में एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार बाँटा जाता है। (iii) अन्य औपचारिक समझौतों की भाँति 'पूल' का उद्देश्य भी प्रतियोगिता को कम करना होता है। ये संयोग सुगमता से बनाये जा सकते हैं और सुगमता से तोड़े जा सकते हैं।

(३) कार्नर (Corner)—यह एक ढीला संयोग होता है जिसमे कुछ फर्में मिलकर वस्तु विशेष की पूर्ति कर इस प्रकार नियन्त्रण करती है कि उसका अधिक मूल्य प्राप्त कर सकें। परन्तु आधुनिक युग में उन्नत यातायात व सवादवहन के साधनों के कारण इस प्रकार के प्रयत्न सफल नही हो पाते हैं; मूल्य के अधिक बढ़ जाने पर अन्य स्थानों से वस्तु मंगा कर वस्तु की पूर्ति कर ली जाती है।

(४) कारटेल (Cartel)—कारटेल जर्मनी में अधिक प्रचलित रहे हैं। कारटेल एक सा व्यवसाय करने वाली स्वतन्त्र फर्मों का संगठन होता है जो कुछ विशेष उद्देश्यो की पूर्ति तथा पारस्परिक संरक्षण और लाभ की दृष्टि से बनाया जाता है। कारटेल प्रायः वस्तु की कीमत का नियन्त्रण तथा सदस्य-फर्मों की उत्पादित वस्तु के विक्रय का कार्य करता है। "वे सघ जो न केवल कीमतें निर्धारित करते हैं या न केवल कोटा का वितरण करते हैं, वरन् विक्रय के व्यवसाय को भी ग्रहण करते हैं, ऐसे सघो को कारटेल कहते हैं।"[4] एक कारटेल अपने सदस्यों के लिए विक्रय एजेन्सी (selling agency) की भांति कार्य करता है, प्राप्त आर्डरो (orders) को एक निश्चित स्वीकृत फार्मूला के अनुसार सदस्य-फर्मों मे बांटता है।

परन्तु कारटेल फर्मों या कम्पनियों के आन्तरिक प्रबन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है। उत्पादन तथा विक्रय कार्य में पृथक्कीकरण (separation) हो जाता है, प्रत्येक फर्म अपना उत्पादन कार्य स्वतन्त्र रूप से अर्द्ध-प्रतियोगिता की दशाओं (semi-competitive conditions) मे करती हैं जबकि सब बिक्री एक एकाधिकारी एजेन्सी के माध्यम से होती है। एकाधिकारी विक्रय (monopoly sales) द्वारा प्राप्त लाभ या हानि को सदस्य-फर्मों मे उत्पादन-मात्रा के अनुपात मे बांट दिया जाता है। भारत मे चीनी तथा सीमेण्ट सिण्डीकेट कारटेल के उदाहरण है।

। ये अस्थायी-सगठन होते हैं। जब अलग-
है तो सदस्य-फर्में कारटेल से पृथक हो जाती
capitalisation) का भय नही होता।

(५) ट्रस्ट (Trusts)—कारटेल, अनौपचारिक तथा औपचारिक समझौते 'वास्तविक संयोगीकरण' (actual combination) नही कहे जा सकते। ये सगठन केवल अस्थायी होते हैं और कभी भी समाप्त किये जा सकते है, जबकि ट्रस्ट एक स्थायी तथा बहुत शक्तिशाली सगठन होता है। ट्रस्ट प्रायः अमरीका में पाये जाते है।

जब कई फर्में वैधानिक रूप से मिलकर एक नयी फर्म को जन्म देती हैं जो इतनी बड़ी तथा शक्तिशाली होती है कि एकाधिकारी शक्ति अर्जित कर लेती है तो ऐसे सयोग या फर्म को ट्रस्ट कहा जाता है।

ट्रस्ट का निर्माण कई प्रकार से हो सकता है। (i) कई फर्मों का पूर्ण रूप से विलयन (merger) होकर; ऐसी स्थिति में मिलने वाली फर्म अपना स्वतन्त्र तथा वैधानिक अस्तित्व खो बैठती हैं और बिलकुल एक नयी फर्म का जन्म होता है। चूंकि फर्में पूर्ण रूप से विलय (merge) कर जाती है, इसलिए इसे विलयन (merger) भी कहते हैं। (ii) कई फर्मों का नियन्त्रण-अधिकार (controlling interest) एक फर्म को हस्तान्तरित होकर भी ट्रस्ट का निर्माण होता है। दूसरे

---

4 "Association which not only fix prices or allot quotas, but also undertake the business of marketing are called cartels."

सायिक शिष्टाचार' (Trade etiquetes) या पारस्परिक सहमति के कारण भी फर्में एक-सी नीतियों (Common policies) को अपनाती हैं। फर्में 'पारस्परिक सहमति' या 'अनौपचारिक समझौतों' द्वारा यह भी निश्चित कर लेती है कि प्रत्येक फर्म विभिन्न बाजारों में वस्तु की कितनी मात्रा की पूर्ति करेगी तथा किस कीमत पर वस्तु को बेचेगी। ये समझौते केवल 'सज्जन व्यक्तियों के समझौतों' (Gentlemen's agreement) की भाँति होते हैं।

इन 'पारस्परिक सहमतियों' तथा 'अनौपचारिक समझौतों' में 'व्यावसायिक संघ' (Trade Associations) महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। ये संघ व्यापारियों को एक दूसरे के अधिक निकट लाते हैं और 'जीओ तथा जीने दो' (Live and let live) की नीति का पालन करने के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करते हैं। ये संघ लागतों, कीमतों, उत्पादन इत्यादि के सम्बन्ध में फर्मों को सूचना देकर उन्हें उत्पादन को सीमित करने तथा निश्चित कीमतों को बनाये रखने में सहयोग देते हैं; अर्थात् इन सूचनाओं के आधार पर उत्पादन तथा कीमतों के सम्बन्ध में फर्में सामान्य नीतियों (common policies) को अपना सकती हैं।

यद्यपि ये समझौते बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं होते, परन्तु एक सीमा तक ये समझौते गला-काट प्रतियोगिता समाप्त कर विनियोजित पूंजी पर उचित लाभों को सुरक्षित रखने में सहायक होते हैं। इन समझौतों द्वारा अकुशल फर्मों तथा उत्पादन की अकुशल रीतियों का निराकरण (elimination) नहीं होता, तथा तकनीकी सुधार नहीं हो पाते हैं। कम उत्पादन कर तथा ऊँची कीमतें रखकर फर्में उपभोक्ताओं का शोषण करती हैं।

संकीर्ण अर्थ में इन समझौतों को 'संयोगीकरण' (Combination) नहीं कहा जा सकता। परन्तु ये समझौते 'नियन्त्रण के केन्द्रीयकरण' (Concentration of Control), जो कि 'संयोगीकरण' की मुख्य विशेषता है, के निकट ले जाते हैं।

(२) **औपचारिक समझौते (Formal agreements)**—कभी कभी फर्में ढीले अथवा सादा या अनौपचारिक समझौते न करके अधिक कड़े तथा 'औपचारिक समझौते' करती हैं। इन औपचारिक समझौतों' के अन्तर्गत विभिन्न फर्में प्रायः बिक्री की कीमतों तथा वस्तु को बेचने के बाजारों के सम्बन्ध में समझौते करती हैं। औपचारिक समझौतों द्वारा फर्में बाजारों का बँटवारा (sharing of markets) कर लेती हैं। इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण 'जहाजरानी सम्मेलन' (Shipping Conferences) या 'जहाजरानी रिंग' (Shipping Rings) हैं: इनमें जहाजरानी कम्पनियाँ विभिन्न जलमार्गों पर लिये जाने वाले भाड़ों के सम्बन्ध में ही समझौता नहीं करतीं वरन् प्रत्येक जहाजरानी कम्पनी का क्षेत्र तथा विभिन्न जल-मार्गों पर चलने वाले जहाजों की संख्या निश्चित क[illegible] जाती है।

[illegible]चारिक समझौतों के अन्तर्गत कभी-कभी कुल उत्पादन को सीमित किया जाता है और [illegible] को कुल उ[illegible]न का एक निश्चित कोटा (quota) दिया जाता है।

पूल (Po[illegible] एक प्रकार का औपचारिक समझौता होता है। (i) इसके अन्तर्गत वस्तु [illegible] त [illegible]-दर निश्चित कर दी जाती है और प्रत्येक उत्पादक का क्षेत्र या बाजार भी [illegible] जाता है। (ii) एक कोष (fund) की स्थापना की जाती है जिसमें सदस्य-फर्में [illegible] के अनुपात में या निश्चित योजना के अनुसार धनराशि जमा करती हैं। इस [illegible] प्रत्येक सदस्य-फर्म में एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार बाँटा जाता है। (iii) अन्य [illegible] समझौतों की भाँति 'पूल' का उद्देश्य भी प्रतियोगिता को कम करना होता है। ये संयोग [illegible]ता से बनाये जा सकते हैं और सुगमता से तोड़े जा सकते हैं।

(३) कार्नर (Corner)—यह एक ढीला संयोग होता है जिसमें कुछ फर्में मिलकर वस्तु शेष की पूर्ति कर इस प्रकार नियन्त्रण करती हैं कि उसका अधिक मूल्य प्राप्त कर सकें। परन्तु आधुनिक युग में उन्नत यातायात व संवादवहन के साधनों के कारण इस प्रकार के प्रयत्न सफल नहीं हो पाते हैं; मूल्य के अधिक बढ़ जाने पर अन्य स्थानों से वस्तु मँगा कर वस्तु की पूर्ति कर दी जाती है।

(४) कारटेल (Cartel)—कारटेल जर्मनी में अधिक प्रचलित रहे हैं। कारटेल एक सा व्यवसाय करने वाली स्वतन्त्र फर्मों का संगठन होता है जो कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति तथा पारस्परिक संरक्षण और लाभ की दृष्टि से बनाया जाता है। कारटेल प्रायः वस्तु की कीमत का नियन्त्रण तथा सदस्य-फर्मों की उत्पादित वस्तु के विक्रय का कार्य करता है। "वे संघ जो न केवल कीमतें निर्धारित करते हैं या न केवल कोटा का वितरण करते हैं, वरन् विक्रय के व्यवसाय को भी ग्रहण करते हैं, ऐसे संघों को कारटेल कहते हैं।"[4] एक कारटेल अपने सदस्यों के लिए विक्रय एजेन्सी (selling agency) की भाँति कार्य करता है, प्राप्त आर्डरों (orders) को एक निश्चित स्वीकृत फार्मूला के अनुसार सदस्य-फर्मों में बाँटता है।

परन्तु कारटेल फर्मों या कम्पनियों के आन्तरिक प्रबन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है। उत्पादन तथा विक्रय कार्य में पृथक्कीकरण (separation) हो जाता है, प्रत्येक फर्म अपना उत्पादन ...) में करती ... (monopoly sales) द्वारा प्राप्त लाभ या हानि को सदस्य-फर्मों में उत्पादन-मात्रा के अनुपात में बाँट दिया जाता है। भारत में चीनी तथा सीमेण्ट सिण्डीकेट कारटेल के उदाहरण हैं।

ट्रस्टों की भाँति कारटेल शक्तिशाली नहीं होते। ये अस्थायी-संगठन होते हैं। जब अलग-अलग लाभ अर्जित करने के अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं तो सदस्य-फर्में कारटेल से पृथक हो जाती हैं। ट्रस्ट की भाँति कारटेल में अति-पूँजीकरण (over-capitalisation) का भय नहीं होता।

(५) ट्रस्ट (Trusts)—कारटेल, अनौपचारिक तथा औपचारिक समझौते 'वास्तविक संयोगीकरण' (actual combination) नहीं कहे जा सकते। ये संगठन केवल अस्थायी होते हैं और कभी भी समाप्त किये जा सकते हैं, जबकि ट्रस्ट एक स्थायी तथा बहुत शक्तिशाली संगठन होता है। ट्रस्ट प्रायः अमरीका में पाये जाते हैं।

जब कई फर्में वैधानिक रूप से मिलकर एक नयी फर्म को जन्म देती हैं जो इतनी बड़ी तथा शक्तिशाली होती है कि एकाधिकारी शक्ति अर्जित कर लेती है तो ऐसे संयोग या फर्म को ट्रस्ट कहा जाता है।

ट्रस्ट का निर्माण कई प्रकार से हो सकता है। (i) कई फर्मों का पूर्ण रूप से विलयन (merger) होकर; ऐसी स्थिति में मिलने वाली फर्में अपना स्वतन्त्र तथा वैधानिक अस्तित्व खो देती हैं और बिलकुल एक नयी फर्म का जन्म होता है। चूँकि फर्में पूर्ण रूप से विलय (merge) कर जाती हैं, इसलिए इसे विलयन (merger) भी कहते हैं। (ii) कई फर्मों का नियन्त्रण-अधिकार (controlling interest) एक फर्म को हस्तान्तरित होकर भी ट्रस्ट का निर्माण होता है। दूसरे

---

[4] "Association which not only fix prices or allot quotas, but also undertake the business of marketing are called cartels."

शब्दों में, एक फर्म या कम्पनी अन्य कम्पनियों के अधिकांश शेयरों को खरीदकर कई कम्पनियों का नियन्त्रण-अधिकार प्राप्त कर लेती है। जो फर्म नियन्त्रण-अधिकार प्राप्त कर लेती है उसे, **होल्डिंग कम्पनी** (holding company) कहा जाता है तथा संयोग की अन्य कम्पनियों को **'सहायक कम्पनियाँ'** (subsidiary companies) कहा जाता है। नियन्त्रण-अधिकारों के एकीकरण द्वारा निर्मित ट्रस्ट के अन्तर्गत सहायक कम्पनियाँ अपना पृथक् वैधानिक अस्तित्व तथा कुछ सीमा तक स्वतन्त्रता को बनाये रख सकती हैं।

कारटेल तथा ट्रस्ट की तुलना (Comparison of Cartels and Trusts)

कारटेल	ट्रस्ट
१. कारटेल का उद्देश्य एकाधिकारी शक्ति द्वारा ऊँची कीमतें प्राप्त कर लाभ को अधिकतम करना होता है।	१. ट्रस्ट का भी यही उद्देश्य होता है।
२. कारटेल **में प्रायः कुशलता का स्तर निम्न** रहता है। कारटेल के अन्तर्गत संयोग में सम्मिलित होने वाली **सभी इकाइयों का स्वतन्त्र अस्तित्व** रहता है तथा अकुशल फर्में भी जीवित रहती हैं। उत्पादन कार्य अलग-अलग कम्पनियों के हाथ में रहता है, केवल वितरण कारटेल द्वारा होता है। इसके अन्तर्गत केवल विपणन सम्बन्धी बचतें (marketing economies) ही प्राप्त की जा सकती हैं। कारटेल उत्पादन का पुनर्संगठन कर कुशलता में अधिक वृद्धि नहीं कर पाता है।	२. ट्रस्ट में **कुशलता का स्तर प्रायः ऊँचा** रहता है। ट्रस्ट के अन्तर्गत संयोग में सम्मिलित होने वाली **कम्पनियों का प्रायः पूर्ण विलयन** (merger) हो जाता है; केवल 'होल्डिंग कम्पनी' (holding company) की दशा में कम्पनियों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व रहता है। ट्रस्ट में उत्पादन तथा वितरण दोनों का कार्य एक नियन्त्रण (single control) में होता है। इसलिए ट्रस्ट अकुशल फर्मों को समाप्त कर सकता है, फर्मों की उत्पादन पद्धति में एकता ला सकता है, नयी उत्पादन विधियों को अपना सकता है, कुछ इकाइयों में विशिष्टीकरण की नीति अपना सकता है। इस प्रकार उत्पादन को अच्छी प्रकार से पुनर्संगठन करके अधिक कुशलता प्राप्त की जाती है। इस प्रकार एक ट्रस्ट, कारटेल की अपेक्षा, प्रायः अधिक कुशल होता है। परन्तु इस कुशलता का नीची कीमतों के रूप में लाभ उपभोक्ताओं को नहीं मिलता, ट्रस्ट के लाभ में वृद्धि हो जाती है।

कारटेल	ट्रस्ट
३. कारटेल में फर्मों का संयोग अस्थायी होता है, मिलने वाली फर्मों का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और इसलिए वे कभी भी पृथक् हो सकती हैं।	३. ट्रस्ट में फर्मों का संयोग प्रायः स्थायी होता है। प्रायः फर्मों का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह जाता है और इसलिए फर्मों के पृथक् होने का प्रश्न ही नहीं रह जाता।
४. कारटेल में उद्योग की प्रायः सभी फर्में सम्मिलित हो जाती हैं। इस दृष्टि से कारटेल अधिक एकाधिकारी शक्ति अर्जित कर लेता है। परन्तु कारटेल के अन्तर्गत बहुत अधिक स्वतन्त्र तथा बिखरी हुई फर्में होती हैं, इसलिए एकाधिकारी शक्ति का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण ढंग से नहीं हो पाता है।	४. ट्रस्ट में उद्योग की सभी फर्में प्रायः सम्मिलित नहीं होतीं। इस दृष्टि से ट्रस्ट की एकाधिकारी शक्ति अपेक्षाकृत कम प्रतीत होती है। परन्तु ट्रस्ट के अन्तर्गत फर्मों का पूर्ण विलयन हो जाता है, एक प्रबन्ध (single control) होता है, इसलिए ट्रस्ट, कारटेल की अपेक्षा, एकाधिकारी शक्ति का अधिक प्रभावपूर्ण तरीके से प्रयोग कर सकता है।
५. कारटेल की स्थापना में अपेक्षाकृत कम खर्चा पड़ता है। एकाधिकारी विक्रय व्यवस्था के लिए फर्मों में समझौता होना आसान होता है और इसमें अधिक खर्चा नहीं पड़ता।	५. ट्रस्ट का निर्माण बहुत अधिक खर्चीला (expensive) होता है। कभी-कभी ट्रस्ट के संगठनकर्ताओं को उन प्रतियोगी फर्मों को, जो संयोग में शामिल होने को प्रस्तुत नहीं होतीं, बहुत ऊँची कीमतें देकर खरीदना पड़ जाता है। प्रतियोगिता को समाप्त करने के लिए कभी-कभी पुरानी मशीनों को प्रयोग करने वाली अकुशल फर्मों को खरीदने में भी बहुत अधिक कीमतें चुकानी पड़ती हैं।

विकास या विस्तार की दिशा
(DIRECTION OF GROWTH)

एक फर्म का विकास दो प्रकार से होता है : (१) प्लाण्ट के विस्तार (plant extension) के द्वारा जिससे उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है : तथा (२) संयोगीकरण (combination) द्वारा। इस सम्बन्ध में 'विकास की दिशा' (direction of growth) को भी समझ लेना आवश्यक है। चाहे फर्म का विकास 'प्लाण्ट के विस्तार' द्वारा हो या 'संयोगीकरण' द्वारा, सामान्यतः, विकास के परिणामस्वरूप फर्म की आकार (size) या फर्म के कार्य करने के क्षेत्र (scope of the operations) में परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों को 'एकीकरण' (integration) या 'पृथक्कीकरण' (disintegration); 'विस्तार' (diffusion) या 'एकत्रीकरण' (concentration) कहते हैं। 'एकीकरण' का अर्थ उन परिवर्तनों से है जिनसे कोई संयु-

तथा नयी उत्पादन विधियों में वृद्धि होती है।[5] जबकि 'पृथक्कीकरण' का अर्थ उन परिवर्तनों से है जिनके परिणामस्वरूप एक फर्म कम प्रकार की वस्तुएँ बनाती हैं या उत्पादन विधियों में कमी करती है।[6] जब फर्म देश के अन्य भागों में कारखानों का निर्माण करने या खरीदने के लिए अधिक संख्या में स्थानों (sites) का प्रयोग करती है तो इसे 'विसरण' (diffusion) कहा जाता है।[7] इसके विपरीत जब एक फर्म देश के अन्य भागों में कुछ कारखानों (establishments) को बन्द करके एक कारखाने का विकास करती है तो इसे 'एकत्रीकरण' (concentration) कहते हैं।[8]

एकीकरण कई दिशाओं में हो सकता है। एक फर्म क्षैतिक रूप से (horizontally) विकसित हो सकती है अर्थात् वह ऐसी फर्मों के साथ मिल सकती है जो एक ही तरह की वस्तुएँ (similar product) बना रही हों। एक फर्म शीर्ष रूप से (vertically) विकसित हो सकती है अर्थात् वर्तमान निर्माण-विधियों से सम्बन्धित ही अन्य विधियों को ही अपनाया जा सकता है। एक फर्म पार्श्व (या तिरछे) रूप से (laterally) विकसित हो सकती है अर्थात् उत्पादित वस्तुओं की सूची में अर्थात वस्तुओं की विविधता में विस्तार कर सकती है। एक फर्म प्रादेशिक रूप से (territorially) विकसित हो सकती है अर्थात् वह एक बड़े क्षेत्र या प्रदेश (wider area) में अपने कार्य को फैला सकती है। 'एकीकरण' की इन विभिन्न विधियों का हम नीचे थोड़े विस्तार से विवेचन करते हैं :

(१) क्षैतिज एकीकरण (Horizontal Integration)

क्षैतिज एकीकरण में फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा में वृद्धि होती है न कि उसकी किस्मों में। **क्षैतिज एकीकरण के अन्तर्गत वस्तु की किस्म या उत्पादन विधि में परिवर्तन हुए बिना प्लाण्ट (plant) के विस्तार द्वारा वस्तु की उत्पत्ति में वृद्धि होती है या इसके अन्तर्गत एक सी वस्तुओं का निर्माण करने वाली फर्मों का संयोग होता है।**"[9] उदाहरणार्थ, एक चीनी फर्म नयी मशीनें इत्यादि लगाकर अपने प्लाण्ट का विस्तार करके चीनी उत्पादन को बढ़ा सकती है या अन्य चीनी मिलों के साथ मिल सकती है और इस प्रकार चीनी उत्पादन को बढ़ा सकती हैं।

जब एक फर्म किसी व्यवसाय विशेष में सफलता प्राप्त करती है तो यह स्वाभाविक है कि वह इसी व्यवसाय को और अधिक बढ़ाये। यदि एक फर्म कीमत-कटौती या व्यवसाय की हानि से सुरक्षा चाहती है तो वह अपने व्यवसाय की अन्य फर्मों से मिलने का प्रयत्न करती है।

क्षैतिज एकीकरण से कई लाभ उत्पादकों को प्राप्त होते हैं। (i) क्षैतिज एकीकरण के अन्तर्गत मिलने वाली फर्मों को बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं। (ii) फर्मों को एकाधिकारी शक्ति प्राप्त होती है। (iii) क्षैतिज एकीकरण प्रभावशाली सिद्ध होता है क्योंकि वह एक सी वस्तु बनाने वाली फर्मों का संगठन होता है। (iv) क्षैतिज एकीकरण सरल होता है और फर्में प्रायः इसे अपनाती हैं।

---

5 "The term 'integration' is applied to changes which add to new products and process."

6 The term disintegration applies to "changes in the direction of few products an processes."

7 "The use of a larger number of sites, when the firm builds or buys factories in othe parts of the country, is called 'diffusion'."

: "The enlargement of one establishment accompanied by the closing down of establis ments in other parts of the country is called 'concentration'."

9 Horizontal integration "may take the form of an extension of plant and an accompan ing increase in output without change of product or process; or, alternatively, it ma consist of the combination of firms making similar products."

(२) शीर्ष एकीकरण (Vertical Integration)

अर्थ (Meaning)—"शीर्ष एकीकरण उन उत्पादन-विधियों के क्रम (equence of processes) का मिलन (union) है जो पहले अलग-अलग फर्मों द्वारा सम्पन्न की जाती थीं।"[10]

तीन प्रकार (Three forms)—शीर्ष एकीकरण के तीन प्ररूप हो सकते है। (i) प्रथम, 'पीछे की ओर एकीकरण' (Backward Integration) या 'आगे की ओर एकीकरण' (Forward integration) हो सकता है। 'पीछे की ओर एकीकरण' का अर्थ है कि फर्म कच्चे माल को उत्पादन की क्रिया (जो कि फर्म के पीछे की ओर कही जा सकती है) को भी सम्मिलित कर लेती है। इसके विपरीत 'आगे की ओर एकीकरण' का अर्थ है कि फर्म अपनी उत्पादित वस्तु का क्रय करने वाली फर्मों के साथ-मिलन (union) स्थापित करती है अर्थात फर्म अपने बाजार (जो कि फर्म के आगे की ओर कहा जा सकता है) का एकीकरण करती है। उदाहरणार्थ, एक इस्पात फर्म उत्पादन की पिछली दशा (previous stage) को अपना सकती है, जैसे अपनी भट्टियाँ (blast furnances) बना सकती है, खानों से कच्चे माल को निकालने की क्रिया स्वयं ले सकती है, यह 'पीछे की ओर एकीकरण' हुआ; या फर्म अपनी रोलिंग मिलें (rolling mills) स्थापित कर सकती है, अपने इस्पात का क्रय करने वाली फर्मों के साथ संयोग स्थापित कर सकती है, यह 'आगे की ओर एकीकरण' हुआ। इस प्रकार के एकीकरण के उद्देश्य भिन्न होते हैं। 'आगे की ओर एकीकरण' का उद्देश्य सामान्यतया बाजार की वृद्धि करना होता है। मन्दी (depression) के समय में आगे की ओर एकीकरण' अधिक लाभदायक होता है तथा तेजी (boom) के समय में 'पीछे की ओर एकीकरण' अधिक हितकर रहता है। (ii) दूसरे, मुख्य वस्तु को बनाने के लिए आवश्यक सहायक वस्तुओं तथा सेवाओं को बाहर से न खरीदकर फर्म उन्हें स्वयं बना सकती है। उदाहरणार्थ, फर्म स्वयं अपनी विद्युत-शक्ति का उत्पादन कर सकती है या मरम्मत के लिए अपनी वर्कशाप तथा अपने निजी डिजाइन या औजार बनाने की व्यवस्था कर सकती है। (iii) तीसरे, अपने माल के विक्रय की पूर्ण व्यवस्था फर्म स्वय कर सकती है।

लाभ (Advantages)—शीर्ष एकीकरण के कई लाभ हैं। (i) शीर्ष एकीकरण कच्चे माल की पूर्ति की अनिश्चितता या असफलता (failure) की जोखिम को दूर करता है। चूंकि कच्चे माल की पूर्ति के साधन स्वयं फर्म के स्वामित्व में होते हैं इसलिए पूर्ति निश्चित तथा नियमित रहती है। (ii) उत्पादन के विभिन्न चरण या विभिन्न कड़ियाँ एक ही स्वामित्व तथा नियन्त्रण में होती हैं, इससे उन्नत उत्पादन विधियों तथा आविष्कारों को अधिक प्रोत्साहन मिलता है। (iii) उत्पादन की एक 'एकीकृत नीति' (integrated policy of production) को अपनाया जा सकता है। उत्पादन के प्रत्येक चरण का पिछले तथा अगले चरणों के साथ उचित सम्बन्ध बनाये रखा जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन के विभिन्न चरणों में एक एकीकृत ताल-मेल (integrated relationship) बना रहता है। (iv) उत्पादन के विभिन्न चरणों का एक नियन्त्रण (single control) होने के कारण फर्म को 'सम्बन्धित विधि' (linked process) की बचतें प्राप्त होती हैं तथा उत्पादन की कुल योजना को अधिक विवेकपूर्ण तरीके से बनाया जा सकता है।

---

10 "Vertical integration is the union of sequence of processes formely carried on by separate firms,".

कठिनाइयाँ (Difficulties)—शीर्ष एकीकरण के अपनाने में कई कठिनाइयाँ होती हैं। (i) उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं की तकनीक की पूरी जानकारी न होने के कारण फर्में शीर्ष एकीकरण को नहीं अपना पाती हैं। (ii) शीर्ष एकीकरण के लिए पूँजी बहुत बड़ी मात्रा में चाहिए जो कि आसानी से नहीं मिलती है। इन कठिनाइयों के कारण शीर्ष एकीकरण की ओर प्रवृत्ति, क्षैतिज एकीकरण की अपेक्षा, कम शक्तिशाली रहती है।

(३) पार्श्वीय एकीकरण (Lateral Integration)

"पार्श्वीय एकीकरण का अर्थ है अन्य प्रकार या अन्य किस्मों की वस्तुओं का उत्पादन।"[11] उदाहरणार्थ, जब रेलवे अपनी बस सर्विस, अपने होटल तथा जल-पान गृह (refreshment room) इत्यादि की व्यवस्था करती है तो ये सेवाएँ पार्श्वीय एकीकरण के अन्तर्गत होंगी; इसके विपरीत यदि रेलवे स्वयं अपना इंजिन बनाती है तो यह क्रिया शीर्ष एकीकरण के अन्तर्गत होगी।

पार्श्वीय एकीकरण के अन्तर्गत ग्राहकों को सहायक सेवाएँ या विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ देकर व्यापारिक सम्बन्धों का अधिकतम लाभ उठाया जाता है। केवल उन उद्योगों को छोड़ कर जिनमें अत्यन्त प्रमापित वस्तुएं (highly standardised products) होती हैं, पार्श्वीय एकीकरण उतना ही प्रचलित है जितना कि क्षैतिज एकीकरण।

---

11 "Lateral integration is the turning out of additional products or styles of products."

३४ आर्थिक प्रणालियाँ
[ECONOMIC SYSTEMS]

आर्थिक प्रणाली का अर्थ
(MEANING OF ECONOMIC SYSTEM)

आर्थिक प्रणाली का अर्थ वैधानिक तथा संस्थात्मक ढाँचे (legal and institutional framework) से है जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाएँ संचालित होती हैं। आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन, विनिमय तथा वितरण से सम्बन्धित क्रियाएँ आती हैं। प्रत्येक देश में मनुष्य के आर्थिक जीवन में कम या अधिक राज्य का हस्तक्षेप भी पाया जाता है। इसलिए आर्थिक प्रणाली का रूप राज्य के हस्तक्षेप की मात्रा तथा सीमा पर भी निर्भर करता है। प्रत्येक समाज में वैधानिक नियम तथा सामाजिक नियम होते हैं जो सम्पत्ति, अधिकार रोज़गार तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं को निर्धारित तथा प्रभावित करते हैं।

आर्थिक प्रणाली के कार्य
(FUNCTIONS OF AN ECONOMIC SYSTEM)

प्रो० सेम्युल्सन (Samuelson) के अनुसार, एक आर्थिक प्रणाली के मुख्य कार्य तीन होते हैं—(i) किन वस्तुओं का उत्पादन होगा और कितनी मात्रा में ? (ii) वस्तुएँ किस प्रकार उत्पादित की जायेंगी ? दूसरे शब्दों में, किसके द्वारा तथा किन साधनों (resources) के प्रयोग से और किस तकनीकी तरीके द्वारा वस्तुएँ उत्पादित की जायेंगी। संक्षेप में यह 'साधनों के वितरण' (resource allocation) की समस्या है। (iii) किसके लिए वस्तुएँ उत्पादित की जायेंगी ? किन लोगों को उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं का लाभ प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में, किस प्रकार विभिन्न साधनों में राष्ट्रीय आय का वितरण (distribution) होगा ?

उपर्युक्त तीनों कार्य प्रत्येक आर्थिक व्यवस्था के लिए सामान्य (common) तथा आधारभूत होते हैं; परन्तु विभिन्न आर्थिक प्रणालियाँ इन कार्यों को भिन्न तरीकों से करती हैं।

मुख्य आर्थिक व्यवस्थाएँ दो प्रकार की होती हैं : 'पूँजीवाद' (capitalism) तथा 'समाजवाद' (socialism)। आधुनिक युग में एक तीसरी अर्थ-व्यवस्था का और जन्म हुआ है जिसे 'मिश्रित अर्थ-व्यवस्था' (mixed economy) कहते हैं, इसमें पूँजीवाद तथा समाजवाद के मुख्य गुणों तथा विशेषताओं का एकीकरण (integration) करने का प्रयत्न किया जाता है।

पूँजीवाद
(CAPITALISM)

पूँजीवाद अत्यन्त प्राचीन आर्थिक प्रणाली है। अठारहवीं शताब्दी के मध्य इगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप पूँजीवाद का जन्म हुआ और उसके पश्चात् यह संसार के अन्य देशों में फैल गया। यद्यपि समय-समय पर पूँजीवाद को भारी धक्के तथा झटके (heavy

blows and jolts) लगे हैं, परन्तु इसमें परिवर्तन हुए और इसने नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजन (adjustment) किया। आज पूँजीवाद विशुद्ध रूप (pure form) में संसार के किसी भी देश में नहीं पाया जाता। आज भी पूँजीवाद न केवल संसार के अधिकांश उन्नतशील देशों में ही पाया जाता है परन्तु यह संसार के सबसे अधिक धनवान तथा शक्तिशाली देश अमेरिका में सफलतापूर्वक तथा कुशलता से कार्य कर रहा है।

पूँजीवाद की परिभाषा (Definition of Capitalism)

पूँजीवादी प्रणाली में उत्पत्ति के साधनों पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति रख सकता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रतियोगिता की स्थिति के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से अपने व्यवसाय को चुनने में स्वतन्त्र होता है।

मुख्य विशेषताओं के आधार पर पूँजीवाद की अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं। यहाँ पर हम केवल दो मुख्य परिभाषाओं को देते हैं। लूक्स तथा हूट्स (Loucks and Hoots) के अनुसार, "पूँजीवाद आर्थिक संगठन की ऐसी प्रणाली है जिसमें निजी सम्पत्ति पाई जाती है तथा मनुष्यकृत और प्राकृतिक पूँजी का प्रयोग निजी लाभ के लिए किया जाता है।"[1] इस परिभाषा में पूँजीवाद की दो मुख्य विशेषताओं 'निजी सम्पत्ति' तथा 'लाभ' पर बल दिया गया है।

पूँजीवाद के आधुनिक रूप की दृष्टि से एक बहुत अच्छी परिभाषा डी० एम० राईट (D. M. Wright) ने दी है जो इस प्रकार है: "पूँजीवाद एक ऐसी प्रणाली है जिसमें, औसत तौर पर, आर्थिक जीवन का अधिकांश भाग तथा विशेषता विशुद्ध नया विनियोग निजी (अर्थात् गैर सरकारी) इकाइयों द्वारा, सक्रिय और पर्याप्त स्वतन्त्र प्रतियोगिता की दशाओं में, किया जाता है, और ऐसा प्रायः लाभ की आशा की प्रेरणा के अन्तर्गत किया जाता है।"[2]

---

1 "Capitalism is a system of economic organisation featured by the private ownership and the use for private profit of man-made and nature-made capital."

2 "Capitalism is a system in which, on average, much the greater portion of economic life and particularly of net new investment is carried on by Private (*i.e.* non-government) units under conditions of active and substantially free competition, and avowedly at least, under the incentive of a hope for profit."

पूँजीवाद की अन्य परिभाषाएँ नीचे दी गयी हैं :

(i) "By the term 'capitalism' or 'capitalistic system' or as we prefer the 'capitalist civilisation' we mean the particular stage in the development of industry and legal institutions in which the bulk of the workers find themselves divorce from the ownership of the instruments of production in such a way as to pass into the position of wage earners whose subsistence, security and personal freedom seem dependent on the will of a relatively small proportion of the nation, namely, those who own and, through their legal ownership, control the organisation of the land, the machinery and the labour forces of the community and do so with the object of making for themselves individual and private gains.
—*Webbs*

यद्यपि इस परिभाषा में पूँजीवाद की अधिकाँश विशेषताओं का वर्णन मिलता है, परन्तु यह इतनी लम्बी है कि यह एक परिभाषा का स्वरूप खो बैठती है।

(ii) Capitalism is "an economic order in which the owners of wealth are free within changing limitations to organise and direct business enterprise for the sake of profit."
—*Farnk T. Carlton*

पूँजीवाद के आधुनिक रूप की दृष्टि से यह एक अच्छी परिभाषा है।

(iii) "A capitalist industry is one in which the material instruments of production are owned or hired by private persons and are operated at their orders with a view to selling at a profit the goods and services that they help to produce. A capitalist economy, or capital system, is one the main part of whose productive resources is engaged in capitalist industry."
—*Pigou*

वास्तव में, पूँजीवाद के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए इसकी विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक है।

पूँजीवाद की विशेषताएँ (Characteristics or Features of Capitalism)

पूँजीवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

(१) **निजी सम्पत्ति का अधिकार (The right of private property)**—पूँजीवाद के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति निजी सम्पत्ति रख सकता है। निजी 'सम्पत्ति का अधिकार' एक व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत निम्न तीन बातें आती हैं—(अ) प्रत्येक व्यक्ति को निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार होता है; (ब) प्रत्येक व्यक्ति निजी सम्पत्ति के प्रयोग करने में स्वतन्त्र होता है। (freedom to use his property), तथा (स) मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति को उत्तराधिकारियों को देने का अधिकार (right of inheritence) रखता है।

पूँजीवाद के अन्तर्गत निजी सम्पत्ति का अधिकार लोगों को अधिक मेहनत तथा उत्पादन करने की प्रेरणा देता है ताकि वे अधिक धन और सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त कर सकें। उत्तराधिकार के अधिकार के कारण लोग अधिक बचत करते हैं, इससे देश मे पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।

उपर्युक्त लाभो के साथ निजी सम्पत्ति के अधिकार के कई दोष भी हैं। इससे धन के वितरण मे असमानता बढ़ती है। दूसरे, इससे राजनीतिक भ्रष्टाचार बढ़ता है क्योंकि धन तथा सम्पत्ति के बल पर चुनावों को प्रभावित किया जाता है।

निजी सम्पत्ति के अधिकार का यह अर्थ नही है कि सम्पत्ति-स्वामियों पर किसी प्रकार का भी प्रतिबन्ध या अंकुश नही होता है, आधुनिक युग में इस अधिकार पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध सरकार द्वारा लगाये जाते हैं। परन्तु सामान्यतया सम्पत्ति-स्वामियों को स्वतन्त्रता होती है।

(२) **आर्थिक स्वतन्त्रता या स्वतन्त्र व्यवसाय का अधिकार (Economic liberty or the right of free enterprise)**—पूँजीवाद के अन्तर्गत लोगो को आर्थिक स्वतन्त्रता होती है, इसका अर्थ है : (अ) लोगों को व्यावसायिक स्वतन्त्रता (freedom of enterprise) होती है, वे अपनी इच्छानुसार सामान्यतया किसी भी व्यवसाय को करने मे स्वतन्त्र होते हैं, (ब) लोगों को ठेका या प्रसंविदा करने की स्वतन्त्रता (freedom to contract) होती है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ किसी भी प्रकार का आर्थिक ठेका करने मे स्वतन्त्र होता है, (स) प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का प्रयोग करने मे भी स्वतन्त्र होता है, इसको हम 'निजी सम्पत्ति के अधिकार' के अन्तर्गत भी बता चुके हैं।

'व्यवसाय की स्वतन्त्रता' (freedom of enterprise) पूँजीवाद का एक मुख्य तत्त्व होता है, इसलिए पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को कभी-कभी 'स्वतन्त्र व्यवसाय अर्थ-व्यवस्था (free enterprise economy) के नाम से भी पुकारते हैं। आधुनिक युग मे, व्यवसाय की स्वतन्त्रता पर सरकार द्वारा कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाते है, परन्तु सामान्यतया लोगों को व्यवसाय की स्वतन्त्रता रहती है।

(३) **उपभोक्ता का प्रभुत्व या उसकी सार्वभौमिकता (consumers sovereignty)**—इसका अर्थ है कि प्रत्येक उपभोक्ता को चुनाव की स्वतन्त्रता होती है, वह किसी भी वस्तु को क्रय कर सकता है और अपनी आय को जिस प्रकार चाहे व्यय कर सकता है। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ यह है कि उपभोक्ता समस्त उत्पादन को निर्धारित तथा नियन्त्रित करता है। उपभोक्ताओं का चुनाव मूल्य मे सतर्कता है, वे जिन वस्तुओं को चाहते हैं उनके लिए अच्छी कीमतें देते हैं, अच्छी कीमतों पर उत्पादकों को अधिक लाभ मिलता है, और इसलिए उत्पादक उन्हीं

वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिन्हें उपभोक्ता माँगते हैं। इसलिए पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता को सम्राट (king) के समान माना जाता है। उत्पादन उपभोक्ताओं की पसन्द के अनुसार हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि मूल्य-यन्त्र (price mechanism) स्वतन्त्र (free) हो।

व्यवहार में उपभोक्ता का प्रभुत्व पूर्ण नहीं होता है। कुछ दशाओं (जैसे, मादक वस्तुओं के प्रयोग) में सरकार अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता के चुनाव को नियन्त्रित करती है। इसके अतिरिक्त उत्पादन पर केवल उपभोक्ता के चुनाव का ही नहीं वरन् अन्य बातों का भी प्रभाव पड़ता है; उपभोक्ता का चुनाव स्वयं विज्ञापन तथा प्रचार द्वारा प्रभावित होता है।

(४) **लाभ-उद्देश्य** (Profit motive)—लाभ-उद्देश्य पूँजीवाद की 'मुख्य संस्था' (key institution) या 'पूँजीवाद की सभी संस्थाओं का हृदय' (heart of all the institutions of capitalism) कहा जाता है। प्रत्येक उत्पादक या व्यवसायी या साहसी केवल उस कार्य को करेगा जिसमें उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है; वह समाज हित के उद्देश्य से नहीं वरन अपने स्वार्थ-हित तथा लाभ के उद्देश्य से प्रेरित होता है।

(५) **मूल्य-यन्त्र** (Price mechanism)—पूँजीवादी प्रणाली का संचालन किसी केन्द्रीय सत्ता या केन्द्रीय नियन्त्रण द्वारा नहीं होता, इसलिए यह कहा जाता है कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में समन्वय की कमी (lack of co-ordination) होती है। वास्तव में, पूँजीवादी-अर्थव्यवस्था में समन्वय तथा नियन्त्रण (co-ordination and control) का कार्य 'मूल्य-यन्त्र' द्वारा होता है। (i) किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन होगा, यह मूल्यों द्वारा ही निर्धारित होगा, जिन वस्तुओं के मूल्य ऊँचे होंगे, उत्पादक उनका अधिक मात्रा में उत्पादन करेंगे क्योंकि उन्हें अधिक लाभ प्राप्त होगा। इसके विपरीत जिन वस्तुओं के मूल्य कम होंगे, उनका बहुत कम उत्पादन किया जायेगा। (ii) उपभोग, बचत तथा विनियोग भी मूल्यों द्वारा प्रभावित होते है। लोग अपनी आय में से कितना उपभोग करेंगे, कितना बचायेंगे तथा किस व्यवसाय में विनियोग करेंगे, ये बातें भी मूल्य-यन्त्र द्वारा ही संचालित होती हैं। इस प्रकार पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का संचालन तथा समन्वय मूल्य-यंत्र द्वारा होता है। इसलिए पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को कभी-कभी 'मूल्य-द्वारा शासन' (government by price) भी कहा जाता है। इसी बात को हम इस प्रकार भी कहते हैं, कि पूँजीवाद 'स्वयंचालित प्रकृति' (automatic character) रखता है क्योंकि इसमें जान-बूझकर (deliberately) कोई केन्द्रिय सत्ता द्वारा नियन्त्रण नहीं होता।

... बातें पूँजीवादी प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ हैं। इन मुख्य विशेषताओं ...

तथा श्रम आपस में प्रतियोगिता करते हैं, परन्तु साथ-साथ वे आपस में मिलकर अपने हितों की रक्षा भी करते हैं। क्रेता मिलकर क्रेता-संघ, श्रमिक मिलकर श्रमिक-संघ तथा उत्पादक या मालिक मिलकर मालिक-संघ (employer's association) बनाते हैं ताकि वे अपने हितों की रक्षा कर सकें। प्रायः उत्पादक संघ अधिक शक्तिशाली होते हैं। इस प्रकार पूँजीवाद के अन्तर्गत प्रतियोगिता तथा संघबन्दी सहगामी होते हैं।

(८) आर्थिक असमानताएँ (Economic inequalities)—थोड़े से उत्पादकों तथा पूँजीपतियों के हाथों में अधिक धन तथा आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो जाती है, जबकि बड़ी मात्रा में कार्य करने वाले श्रमिक गरीब रह जाते हैं। इस प्रकार की असमानता उन्नति के अवसरों में भी असमानता उत्पन्न करती है।

(९) *समाज का विभाजीकरण या वर्ग संघर्ष (Division of society or class conflict)*—पूँजीवाद की एक विशेषता यह है कि समाज मुख्य रूप से दो वर्गों में बँट जाता है—पूँजीपति तथा श्रमिक। पूँजीपतियों तथा श्रमिकों के हितों में अन्तर होता है और दोनों वर्गों में निरन्तर संघर्ष समाज के लिए अहितकर होता है।

(१०) *व्यवसाय का नियन्त्रण तथा जोखिम सहगामी होते हैं (Control of business and risk go together)*—पूँजीवाद में जो व्यक्ति व्यवसाय में पूँजी लगाता है और उसका जोखिम उठाता है वही व्यक्ति व्यवसाय को ठीक प्रकार से चलाने के लिए प्रायः उसका नियन्त्रण भी करता है। इस प्रकार पूँजीवाद में व्यवसाय का नियन्त्रण तथा जोखिम प्रायः साथ साथ चलते हैं। इसको *'पूँजीवादी का सुनहरा नियम' (Golden Rule of Capitalism) कहा गया है।*

पूँजीवाद संसार के किसी भी देश में विशुद्ध रूप में नहीं पाया जाता है अर्थात् पूँजीवाद की ५ आधारभूत विशेषताएँ—निजी सम्पत्ति, स्वतन्त्र व्यवसाय, उपभोक्ता की सार्वभौमिकता, लाभ-उद्देश्य तथा स्वतन्त्र मूल्य-यन्त्र—पूरी प्रकार से सन्तुष्ट नहीं होता है। प्रत्येक देश में समाज के हित में *इन पाँचों मुख्य विशेषताओं पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। जब प्रतिबन्ध* हल्के तथा कम होते हैं और जब उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं की स्वतन्त्रता बनाये रखने की सामान्य प्रवृत्ति होती है तो पूँजीवादी व्यवस्था रहती है।

पूँजीवाद के गुण या पूँजीवाद की सफलताएँ (Merits of Capitalism or Achievements of Capitalism)

पूँजीवाद प्रणाली के गुण तथा सफलताएँ निम्न हैं :

(१) कुशलता तथा अपव्यय का निराकरण (Efficiency and elimination of wastes)—व्यवसाय की स्वतन्त्रता के परिणामस्वरूप उत्पादकों में तीव्र प्रतियोगिता होती है। प्रतियोगिता की तीव्र तथा ठण्डी हवाओं में केवल कुशल उत्पादक ही जीवित रह सकते हैं। प्रत्येक उत्पादक या साहसी इस बात का प्रयत्न करता है कि हर प्रकार के अपव्यय का निराकरण किया जाय, आधुनिकतम यन्त्रों का प्रयोग किया जाय और इस प्रकार लागत को न्यूनतम कर अधिक लाभ प्राप्त करने के साथ उत्पादन-कुशलता बढ़ायी जाय। स्पष्ट है कि निम्न कुशलता वाले उत्पादक बाजार से निकल जाते हैं और केवल *उच्च कुशलता वाले उत्पादक जीवित रहते हैं।* परिणामस्वरूप लागतें और कीमतें निम्न स्तर पर रहती हैं।

(२) व्यक्तियों के गुणों में उन्नति (Improvement in the quality of individuals)—प्रतियोगिता के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में भरसक प्रयत्न करता है। कई प्रयत्न

करने से मनुष्यों के गुणों में उन्नति होती है। प्रतियोगिता तथा स्वतन्त्र व्यवसाय के परिणामस्वरूप ही १९वीं तथा २०वीं शताब्दियों में विभिन्न क्षेत्रों में बहुत प्रगति हुई है।

(३) **स्वतःचालित कार्यकरण** (Automatic working)—पूंजीवाद कीमत-लाभ-यन्त्र (price-profit-mechanism) द्वारा स्वचालित रहता है। इसको चलाने, नियन्त्रित तथा नियमित करने के लिए समाजवाद की भाँति भ्रष्ट तथा अकुशल सरकारी अफसरों और अधिकारियों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जब कभी अर्थ-व्यवस्था में असमायोजन (maladjustment) होता है तो माँग-पूर्ति की शक्तियाँ, कीमत तथा लाभ-यन्त्र उसे सही रास्ते पर ले आता है।

वास्तव में, स्वतःचालिता (automaticity) व्यवहार में उतनी नहीं पायी जाती है जैसा कि सिद्धान्त में समझा जाता है।

(४) **अधिक उत्पादन तथा पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन** (Incentive to more production and capital formation)—पूँजीवाद के अन्तर्गत निजी सम्पत्ति का अधिकार लोगों को अधिक मेहनत तथा उत्पादन करने की प्रेरणा देता है ताकि वे अधिक धन व सम्पत्ति अर्जित कर सकें। उत्तराधिकार के अधिकार के कारण लोग अधिक बचत करते हैं, इससे देश में पूंजी-निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।

(५) **तकनीकी प्रगति** (Technological progress)—लाभ का आकर्षण उत्पादकों तथा साहसियों को बड़े-बड़े जोखिम उठाने तथा परीक्षण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। ऐसा करने में तथा लागत को घटाने की दृष्टि से वे नयी उत्पादन तथा तकनीकी रीतियों की खोज करते हैं। इस प्रकार तकनीकी प्रगति होती है।

(६) **योग्यतानुसार पुरस्कार** (Reward according to capability)—जो साहसी अधिक योग्य तथा जोखिम उठाने वाला होगा वह उतना ही अधिक पुरस्कार प्राप्त कर सकेगा। इस प्रकार साहसियों को योग्यतानुसार पुरस्कार मिलता है।

(७) **अधिकतम सन्तुष्टि** (Maximum satisfaction)—पूंजीवादी प्रणाली के अन्तर्गत वस्तुओं का उत्पादन उपभोक्ताओं की पसन्द तथा चुनाव के अनुसार होता है। इस प्रकार उपभोक्ताओं को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

(८) **उच्च जीवन स्तर** (High standard of living)—पूंजीवादी प्रणाली के कारण उत्पादक तथा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में बहुत बड़ी मात्रा में वृद्धि हुई है। जनसाधारण को सस्ती कीमतों पर पर्याप्त मात्रा में वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्राप्त हो सकी हैं। अमरीका तथा अन्य पूंजीवादी देशों को देखने से स्पष्ट होता है कि लोगों के जीवन स्तर ऊँचा उठाने में पूंजीवाद का बड़ा हाथ है।

(१०) लोचपूर्ण तथा प्रावैगिक स्वभाव (Flexible and dynamic character)—पूँजीवाद में बहुत अधिक लोच है। यह समय तथा परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को बदलता रहा है। आज का पूँजीवाद १९वीं शताब्दी के पूँजीवाद से बहुत भिन्न है। अब पूँजीवादी देशों में निजी सम्पत्ति, स्वतन्त्र व्यवसाय, लाभ उद्देश्य, उपभोक्ताओं की सार्वभौमिकता इत्यादि विचारों में पहले से बहुत परिवर्तन हो गया है; आवश्यकतानुसार इन सब क्षेत्रों में राज्य का हस्तक्षेप होता है। लोचपूर्ण तथा प्रावैगिक स्वभाव पूँजीवाद का एक महान गुण है और इस गुण के कारण यह आज अधिकांश देशों में जीवित है और भविष्य में जीवित रहेगा।

पूँजीवाद के दोष (Defects of Capitalism)

पूँजीवाद के मुख्य दोष तथा न्यूनताएँ निम्न हैं :

(१) सामंजस्य का अभाव तथा व्यापार चक्र (Lack of co-ordination and trade cycles)—पूँजीवाद में हजारों तथा लाखों व्यापारियों और उत्पादकों की कार्यवाहियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं होती। लाखों उत्पादक बिना एक दूसरे के परामर्श तथा जानकारी के वस्तुओं के उत्पादन के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं। इसके परिणामस्वरूप अस्त-व्यस्तता, अति-उत्पादन या कम-उत्पादन तथा व्यापार चक्रों का जन्म होता है। वास्तव में, सामंजस्य का अभाव, प्रतियोगिता, स्वतन्त्र व्यवसाय तथा लाभ-उद्देश्य, इत्यादि पूँजीवादी संस्थाएँ व्यापार चक्र को जन्म देती हैं—अर्थात अर्थ-व्यवस्था में निश्चित समय बाद तेजी (boom) तथा मन्दी (depression) होती रहती है। दूसरे शब्दों में, अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक अस्थायित्व (economic unstability) रहती है। समाजवाद में केन्द्र में सामंजस्य स्थापित करने वाली सत्ता के कारण व्यापार चक्र तथा आर्थिक अस्थायित्व की समस्या नहीं होती है।

आधुनिक काल में पूँजीवादी देशों में 'चक्रीय-विरोध नीतियों' (Anti-cyclical policies) का निर्माण किया गया है, परन्तु इनसे पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

(२) आर्थिक असमानताएँ (Economic inequalities)—(अ) पूँजीवाद में निजी सम्पत्ति का अधिकार, उत्तराधिकार का अधिकार, स्वतन्त्र व्यवसाय तथा मूल्य-यन्त्र आर्थिक असमानताओं को जन्म देते हैं। जो लोग अधिक धन एकत्रित कर लेते हैं उनके पास और अधिक धन एकत्रित होता जाता है। एकाधिकार के अधिकार के कारण धनी व्यक्तियों के पास अधिक सम्पत्ति इकट्ठी होती जाती है। इस प्रकार पूँजीवादी प्रणाली में धनी व्यक्ति अधिक धनी तथा गरीब व्यक्ति और अधिक गरीब होते जाते हैं, अर्थात आर्थिक असमानताएँ बहुत बढ़ जाती हैं।

(ब) आर्थिक असमानताओं के कारण 'अवसरों की असमानताओं' (Inequalities of opportunities) का भी जन्म होता है। धनी व्यक्तियों के बच्चों को प्रारम्भ से ही उन्नति के अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं, जबकि निर्धन व्यक्तियों के बच्चों को इस प्रकार के अच्छे अवसर प्राप्त नहीं होते तथा उनके लिए निर्धनता के गर्त से निकलना कठिन हो जाता है।

(स) आर्थिक असमानताएँ उत्पादन के ढाँचे को बिगाड़ (distort) देती हैं। आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन से साधनों का हस्तान्तरण विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन में किया जाता है ताकि धनी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

(३) वर्ग-संघर्ष (Class conflict)—पूँजीवाद में समाज दो वर्गों में बँट जाता है—'सम्पन्न' (haves) तथा 'असम्पन्न' (haves-not)। एक ओर पूँजीपति होते हैं जिनके पास आर्थिक शक्ति होती है और दूसरी ओर श्रमिक वर्ग होता है जो निर्धन तथा कमज़ोर होता है।

इन दोनों वर्गों के हितों में अन्तर होता है, दोनों वर्गों में निरन्तर संघर्ष चलता रहता है और औद्योगिक तथा सामाजिक अशान्ति बनी रहती है।

(४) **क्षेत्रीय असमानताएँ** (Regional inequalities)—पूँजीवाद केवल आर्थिक असमानताओं को ही नहीं वरन् क्षेत्रीय या प्रादेशिक असमानताओं को भी जन्म देता है। पूँजीपति तथा उद्योगपति देश के केवल उन क्षेत्रों में ही उद्योगों को स्थापित करते हैं जहाँ उन्हें अधिक लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार देश के कुछ क्षेत्रों में बहुत अधिक उद्योगों का केन्द्रीकरण हो जाता है जबकि कुछ क्षेत्र बहुत पिछड़े रह जाते हैं। इस प्रकार देश का असन्तुलित औद्योगिक विकास (unbalanced industrial development) होता है। क्षेत्रीय असमानताएँ राजनीतिक अस्थायित्व को जन्म देती हैं।

(५) **बेरोजगार, असुरक्षा तथा शोषण** (Unemployment, insecurity and exploitation)—पूँजीवाद में श्रमिकों को बेरोजगारी का भय सदैव बना रहता है। एक ओर तो व्यापार चक्रों के कारण 'चक्रीय बेरोजगार' (Cyclical unemployment) की सम्भावना रहती है। दूसरी ओर श्रमिकों को रोजगार के लिए सदैव थोड़े से पूँजीपतियों पर निर्भर रहना पड़ता है। पूँजीपति कभी भी श्रमिकों को रोजगार से अलग कर सकते हैं। इस प्रकार श्रमिक सदैव असुरक्षा का अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं; वे श्रमिकों में प्रतियोगिता तथा उनकी निर्धनता का लाभ उठाकर उनको कम मजदूरी देते हैं। वे कम मजदूरी पर अधिक काम लेकर स्त्रियों तथा बच्चों का भी शोषण करते हैं। कारखानों में प्रायः श्रमिकों के कार्य करने की दशाएँ भी अस्वस्थ तथा खराब रहती हैं।

आधुनिक युग में उन्नतिशील पूँजीवादी देशों में विभिन्न प्रकार के कारखाना अधिनियमों का निर्माण कर श्रमिकों की कार्य-दशाओं में सुधार किया गया है; तथा 'सामाजिक-सुरक्षा योजना' द्वारा श्रमिकों को विभिन्न प्रकार की असुरक्षाओं से मुक्त करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(६) **अनर्जित आय तथा सामाजिक परजीविता** (Unearned income and social parasitism)—पूँजीवादी प्रणाली में समाज के कुछ वर्ग बिना प्रयत्न किये हुए दूसरों के प्रयत्नों से प्राप्त सम्पत्ति पर जीवित रहते हैं। कुछ व्यक्तियों को अपने पूर्वजों से पर्याप्त मात्रा में धन-सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है, वे बिना अपना प्रयत्न किये ब्याज तथा किराया खाते हैं और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार इन व्यक्तियों को 'अनर्जित आय' प्राप्त होती है और वे 'सामाजिक परजीवी' (social parasites) की भाँति रहते हैं।

(७) **उपभोक्ता की सार्वभौमिकता केवल कल्पित बात है** (Consumers sovereignty is a myth)—उपभोक्ताओं का प्रभुत्व केवल नाम मात्र का ही होता है। उनका अपना स्वयं का चुनाव नहीं रह जाता बल्कि वे प्रचार तथा विज्ञापन से अपनी पसन्द में प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त वे एकाधिकारियों से शोषित होते हैं।

(८) **कल्याण-उद्देश्य तथा अधिकतम सन्तुष्टि के सिद्धान्त की अनुपस्थिति** (Absence of

(९) एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ (Monopolistic tendencies)—लाभ को अधिकतम करने तथा प्रतियोगिता से बचने के लिए प्रायः बड़े-बड़े उत्पादक मिलकर औद्योगिक संघ तथा एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं और इस दृष्टि से प्रतियोगिता नाम मात्र को रह जाती है।

(१०) स्वयंचालिता भी एक मिथ्यावाद है (Automaticity is also a myth)—व्यवहार में पूँजीवाद का कार्यकरण स्वतन्त्र मूल्य-यन्त्र तथा उपभोक्ताओं की सार्वभौमिकता द्वारा स्वयंचालित नहीं होता, वरन् बड़े-बड़े उद्योगपति, औद्योगिक संघों तथा एकाधिकारियों द्वारा उनके हितों के अनुसार पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को चलाया जाता है। इस प्रकार स्वयचालिता एक मिथ्यावाद रह जाती है।

(११) पूँजीवाद के अन्तर्गत युद्ध तथा साम्राज्यवाद (War and imperialism under capitalism)—इतिहास बताता है कि पूँजीवादी देशों ने विदेशी बाजारों पर नियन्त्रण करने तथा अपने उद्योगों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से युद्ध किये और अन्य देशों में साम्राज्यवाद स्थापित किया।

परन्तु अब इस प्रकार की स्थिति समाप्त होती जा रही है और धीरे-धीरे पुराने उपनिवेश स्वतन्त्र होते जा रहे हैं। इस समय तो चीन, जो एक साम्यवादी देश है, युद्ध की नीति अपना रहा है और अपने साम्राज्य को एशिया के देशों मे स्थापित करना चाहता है।

(१२) प्रतियोगिता के अपव्यय (Wastes of competition)—प्रतियोगिता के परिणाम-स्वरूप फर्मों द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में धन प्रचार तथा विज्ञापन पर व्यय किया जाता है। बड़ी-बड़ी फर्में प्रतियोगी फर्मों को समाप्त करने में बड़ी मात्रा मे धन का अपव्यय करती हैं। प्रतियोगिता के कारण ही कभी-कभी एक ही प्रकार की वस्तुओ का कई फर्मों द्वारा अनावश्यक उत्पादन किया जाता है। ये सब अपव्यय समाज के हित की दृष्टि से हानिकारक हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)—पूँजीवाद की कमजोरियों तथा दोषों के कारण प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि पूँजीवाद का भविष्य क्या है? इस सम्बन्ध मे यह बात ध्यान रखने की है कि आज का पूँजीवाद १९वीं शताब्दी के पूँजीवाद से नितान्त भिन्न है, यह पूँजीवाद के विशुद्ध सिद्धान्त से मेल नहीं खाता। समय के साथ इसमे बहुत परिवर्तन हो चुके हैं। पूँजीवाद के आज भी जीवित रहने का मुख्य कारण उसमें लोच (flexibility) का होना है। समय के साथ यह अपने आपको परिवर्तित करता रहा है और आज भी कर रहा है। अमरीका, इंगलैण्ड तथा अन्य पूँजीवादी देशों मे राज्य का हस्तक्षेप बढ गया है और पूँजीवादी प्रणाली के अन्दर पर्याप्त सुधार किये जा रहे हैं। आज भी अमरीका, जो एक पूँजीवादी देश है, ससार का सबसे अधिक शक्तिशाली तथा धनवान देश है।

यह स्पष्ट है कि पूँजीवाद का अपने विशुद्ध रूप में कोई भविष्य नहीं है। परन्तु अब पूँजीवादी प्रणाली में पर्याप्त संशोधन हो चुके हैं तथा हो रहे हैं। अधिकांश पूँजीवादी देशों मे :

(१) आधारभूत उद्योगों (basic industries) का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है, उन पर सरकार का पर्याप्त अंकुश रहता है।

(२) स्वतन्त्र बाजार प्रणाली में सरकार का हस्तक्षेप हो गया है तथा उसको सरकार द्वारा नियमित किया जाता है।

(३) आय तथा धन की असमानताओं को गहरी वर्द्धमान कर प्रणाली (steeply progressive taxation), मृत्यु-कर (estate duty), इत्यादि द्वारा दूर किया जा रहा है।

[प्रो० डिकिनसन की परिभाषा में तीन मुख्य विशेषताओं पर बल दिया गया है : (१) समाज या सरकार का उत्पत्ति के साधनों पर स्वामित्व; (२) आर्थिक क्रियाओं को एक सामान्य योजना (planning) के अनुसार करना; तथा (३) राष्ट्रीय आय का व्यक्तियों में न्याययुक्त वितरण। इन विशेषताओं से यह बात भी निकलती है कि उत्पादन लाभ के उद्देश्य से नहीं वरन सामाजिक कल्याण की दृष्टि से किया जाता है तथा श्रमिकों का शोषण नही होता।]

प्रो० लुक्स (Loucks) की परिभाषा भी एक अच्छी परिभाषा है जो इस प्रकार है : "समाजवाद वह आन्दोलन है जिसका उद्देश्य सभी प्रकार की प्रकृति-दत्त तथा मनुष्य-कृत उत्पादन-वस्तुओं का, जोकि बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रयोग की जाती हैं, स्वामित्व तथा प्रबन्ध व्यक्तियों के स्थान पर समस्त समाज मे निहित करना होता है, जिससे बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय का इस प्रकार समान वितरण हो सके कि व्यक्ति की आर्थिक प्रेरणा य. व्यवसाय तथा उपभोग सम्बन्धी चुनावों की स्वतन्त्रता में कोई विशेष हानि न हो।"[7]

[प्रो० लुक्स की परिभाषा भी समाजवाद की कुछ मुख्य विशेषताओं पर जोर देती है जो इस प्रकार है : (१) बड़े पैमाने के उत्पादन मे प्रयोग किये जाने वाले सभी उत्पत्ति के साधनों पर समाज या सरकार का स्वामित्व होता है। इसका अर्थ यह है कि छोटे पैमाने पर उत्पादन लोग व्यक्तिगत रूप से कर सकते हैं अर्थात् सीमित रूप मे निजी क्षेत्र (Private sector) का अस्तित्व [illegible] ३) व्यक्तियो की आर्थिक प्रेरणा या [illegible] रूप से नष्ट नही होती।]

[illegible] core) या हृदय (heart) आर्थिक होता है। समाजवाद की केन्द्रीय बातें (central issues) आर्थिक होती हैं जिनका सम्बन्ध उत्पादक वस्तुओं के स्वामित्व-अधिकार, इन वस्तुओं के बारे में निर्णय तथा उत्पादित वास्तविक आय के वितरण से होता है। इस केन्द्रीय अन्तर्भाग (central core) के चारों तरफ राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य बातों की परिधि (periphery) होती है। परन्तु इनको केन्द्रीय समस्या के साथ सम्भ्रमित (confuse) नही करना चाहिए—केन्द्रीय समस्या है कि समाज किस प्रकार [illegible] था उपभोग करना चाहती है।[8]

[illegible] of Socialism)

(१) उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व (Government's ownership on factors of production)—समाजवाद की एक मुख्य विशेषता इसके अन्तर्गत उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर समाज या सरकार का स्वामित्व होना है। भूमि, खानों, वनों, यातायात व सम्वादवहन के साधनो, कारखानो, बैंको इत्यादि उत्पत्ति के साधनो पर सरकार का स्वामित्व तथा नियन्त्रण होता है।

---

7 "Socialism refers to that movement which aims to vest in society as a whole rather than in individuals, the ownership and management of all nature-made and man-made producer's goods used in large scale production, to the end that an increased national income may be more equally distributed without materially destroying the individual's economic motivation or his freedom of occupational and consumption choices."
—Loucks : *Comparative Economic Systems*, Fifth edition, p. 148.

8 The hard core or heart of socialism is economic. "The central issues of socialism are economic and are related to the property rights in producer's goods, decisions relating to these goods and the distribution of the real income produced." Around [illegible] central core there is a periphery of political, social, religious and other issues, but these should not be confused with the central problem of how society wishes its production, distribution, and consumption of economic goods to be organised.

(४) एकाधिकारियों पर सरकार का कड़ा अंकुश रहता है तथा इस बात के सतत् प्रयत्न किये जा रहे हैं कि भविष्य में एकाधिकारी स्थितियों को उत्पन्न न होने दिया जाय।

(५) प्रशुल्क तथा मौद्रिक नीतियों द्वारा, पर्याप्त एकत्रित आँकड़ों की पृष्ठभूमि में, व्यापार चक्रों को होने से रोकने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(६) 'लाभ-हिस्सा योजना' (Profit-sharing scheme), 'बोनस योजना', 'प्रबन्ध में श्रमिकों की साझेदारी' (workers' participation in management) इत्यादि द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति श्रमिकों के विरोध को कम किया जा रहा है। इस प्रकार से समय के साथ पूंजीवादी प्रणाली के अन्दर बहुत संशोधन किये जा चुके हैं तथा किये जा रहे हैं। एक वाक्य में यह कहा जा सकता है कि आज का पूंजीवाद लगभग मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (mixed economy) में परिणत हो चुका है। इंगलैण्ड तथा अमरीका में, जो पूंजीवाद के गढ़ माने जाते हैं, वास्तव में, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पायी जाती है। इस दृष्टि से पूंजीवाद के भविष्य को पूर्णतया अन्धकारमय कहना, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं, उचित नहीं प्रतीत होता। वास्तव में, पूंजीवाद का भविष्य उसके संशोधित रूप (modified form) अर्थात मिश्रित अर्थ-व्यवस्था तथा उसके प्रावैगिक तथा लोचपूर्ण स्वभाव (dynamic and flexible nature) में निहित है।

समाजवाद
(SOCIALISM)

लुक्स (Loucks) का कथन है कि समाजवाद को बहुत-सी वस्तुएँ कहा गया है और बहुत सी वस्तुओं को समाजवाद कहा गया है।"[3] दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्रियों तथा राजनीतिशास्त्रियों द्वारा समाजवाद के विचार को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है और उनके विभिन्न अर्थ लगाये गये हैं। इसके अर्थ की विभिन्नता के कारण प्रो० जोड (Joad) ने कहा है: "समाजवाद एक ऐसी टोपी है जिसका रूप प्रत्येक व्यक्ति के पहनने के कारण बिगड़ गया है।"[4] इस बात को दूसरी प्रकार से भी व्यक्त किया जाता है: "समाजवाद का अपना कोई रूप नहीं होता, यह एक ऐसी टोपी है जो प्रत्येक सिर पर ठीक बैठ जाती है।"[5] समाजवाद के अर्थ के सम्बन्ध में भ्रम (confusion) होने का एक मुख्य कारण उसका बहु-पक्षीय स्वभाव (many-sided nature) है।

समाजवाद की परिभाषा तथा उसका अर्थ (Definition and Meaning of Socialism)

समाजवाद के अर्थ मे भिन्नता के कारण इसकी अनेक परिभाषाएं पायी जाती हैं। विभिन्न परिभाषाओं में **प्रो० डिकिनसिन** (Dickinson) की परिभाषा बहुत अच्छी मानी जाती है जो इस प्रकार है: "समाजवाद समाज का एक ऐसा आर्थिक संगठन है जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधनों पर समस्त समाज का स्वामित्व होता है तथा उनका संचालन एक सामान्य योजना के अनुसार ऐसी संस्थाओं द्वारा किया जाता है जो समस्त समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा समस्त समाज के प्रति उत्तरदायी होती हैं; समाज के सभी सदस्य समान अधिकारों के आधार पर ऐसे समाजीकृत आयोजित उत्पादन के लाभों के अधिकारी होते हैं।"[6]

---

3 "Socialism has been called many things and many things have been called socialism."

4 "Socialism, in short, is like a hat that has lost its shape because everybody wears it."

5 "Socialism has no shape of its own, it is like a cap which fits every head."

6 "Socialism is an economic organisation of society in which the material means of production are owned by the whole community and operated by organs, representative of and responsible to, the community according to a general plan, all members of the community being entitled to benefits from the results of such socialised planned production on the basis of equal rights." —*Dickinson*

[प्रो० डिकिनसन की परिभाषा में तीन मुख्य विशेषताओं पर बल दिया गया है : (१) समाज या सरकार का उत्पत्ति के साधनों पर स्वामित्व; (२) आर्थिक क्रियाओं को एक सामान्य ... तथा (३) राष्ट्रीय आय का व्यक्तियों में न्याययुक्त वित- ... : कलती है कि उत्पादन लाभ के उद्देश्य से नहीं वरन् सामाजिक कल्याण की दृष्टि से किया जाता है तथा श्रमिकों का शोषण नहीं होता ।]

प्रो० लुक्स (Loucks) की परिभाषा भी एक अच्छी परिभाषा है जो इस प्रकार है : "समाजवाद वह आन्दोलन है जिसका उद्देश्य सभी प्रकार की प्रकृति-दत्त तथा मनुष्य-कृत उत्पादन-वस्तुओं का, जोकि बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रयोग की जाती हैं, स्वामित्व तथा प्रबन्ध व्यक्तियों के स्थान पर समस्त समाज में निहित करना होता है, जिससे बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय का इस प्रकार समान वितरण हो सके कि व्यक्ति की आर्थिक प्रेरणा य. व्यवसाय तथा उपभोग सम्बन्धी चुनावों की स्वतन्त्रता में कोई विशेष हानि न हो ।"[7]

[प्रो० लुक्स की परिभाषा भी समाजवाद की कुछ मुख्य विशेषताओं पर जोर देती है जो इस प्रकार हैं : (१) बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रयोग किये जाने वाले सभी उत्पत्ति के साधनों पर समाज या सरकार का स्वामित्व होता है । इसका अर्थ यह है कि छोटे पैमाने पर उत्पादन लोग ... का अस्तित्व ... प्रेरणा या ... 1) आर्थिक ... न्य उत्पादक वस्तुओं के स्वामित्व-अधिकार, इन वस्तुओं के बारे में निर्णय तथा उत्पादित वास्तविक आय के वितरण से होता है । इस केन्द्रीय अन्तर्भाग (central core) के चारों तरफ राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य बातों की परिधि (periphery) होती है । परन्तु इनको केन्द्रीय समस्या के साथ सम्भ्रमित (confuse) नहीं करना चाहिए—केन्द्रीय समस्या है कि समाज किस प्रकार ... : है ।[8]

... ownership on factoı ... उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर समाज या सरकार का स्वामित्व होता है । भूमि, खानों, वनों, यातायात व सम्वादवहन के साधनों, कारखानों, यंत्रों इत्यादि उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व तथा नियन्त्रण होता है ।

7

8 ... cus and the distribution ... there is a periphery of political, social, religious and other issues, but these should not be confused with the central problem of how society wishes its production, distribution, and consumption of economic goods to be organised.

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि समाजवाद के अन्तर्गत सभी वस्तुओं तथा साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है। प्रो० लुक्स (Prof. Loucks) के अनुसार, केवल बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रयोग होने वाले साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है अर्थात् छोटे पैमाने पर सीमित मात्रा में उत्पादन व्यक्तिगत लोगों द्वारा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मकान, फर्नीचर, रेडियो तथा अन्य घरेलू वस्तुओं पर भी व्यक्तिगत स्वामित्व होता है।

(२) आर्थिक नियोजन (Economic planning)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का संचालन एक निश्चित योजना के अनुसार एक केन्द्रीय संस्था द्वारा किया जाता है। नियोजन समाजवाद की एक मुख्य विशेषता मानी जाती है।

(३) सरकार द्वारा उत्पादन तथा वितरण (Government's control over production and distribution)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में यह बात सरकार निश्चित करती है कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जायेगा तथा उनका किस प्रकार वितरण किया जायेगा। यह कार्य केन्द्रीय नियोजन संस्था द्वारा किया जाता है।

(४) लाभ-उद्देश्य के स्थान पर समाज कल्याण का उद्देश्य (Social welfare in place of profit motive)—पूँजीवाद में उत्पादन लाभ-उद्देश्य से प्रेरित होता है, परन्तु समाजवाद में वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन समस्त समाज के कल्याण की दृष्टि से किया जाता है।

(५) शोषण का निराकरण (Elimination of exploitation)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है, इसलिए समाज का दो वर्गों—पूँजीपति तथा श्रमिकों—में विभाजन नहीं होता। इसके अतिरिक्त उत्पादन समाज कल्याण की दृष्टि से किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में श्रमिकों का शोषण नहीं होता।

(६) अनर्जित आय का अन्त (End of unearned income)—समाजवाद में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार परिश्रम करना पड़ता है; कोई भी व्यक्ति अनर्जित आय प्राप्त कर अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकता है।

(७) प्रतियोगिता की कमी (Lack of competition)—समाजवाद में उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का नियन्त्रण होता है; सरकार ही वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा तथा प्रकार और [illegible] निर्धारित करती है। ऐसी परिस्थितियों में [illegible] है।

पर निर्भर करती है न कि उनकी कुशलता पर। (ग) वे प्रायः भ्रष्ट (corrupt) होते हैं तथा उनमें प्रारम्भन (initiative) की कमी होती है। (घ) सरकारी कार्य में बहुत अधिक लाल-फीताशाही (red-tape) पायी जाती है, परिणामस्वरूप वे शीघ्र निर्णय नहीं ले पाते हैं जो सफल व्यापार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। (ङ) वे जन-आलोचना (public criticism) से बचना चाहते हैं, इसलिए जहाँ तक हो सकता है वे साहसपूर्ण जोखिम (bold risks) नहीं उठाते हैं और साधारण सफलता से सन्तुष्ट रहते हैं। उपर्युक्त सब बातों से समाजवाद में प्रायः कुशलता तथा उत्पादन का स्तर निम्न रहता है।

दूसरे, कुशलता तथा उत्पादकता में कमी का कारण केवल नौकरशाही के दोष ही नहीं हैं बल्कि श्रमिकों के लिए अपर्याप्त प्रेरणाएँ (inadequate incentives for workers) भी हैं। समाजवाद में श्रमिकों की आय मुख्य रूप से उनकी उत्पादक कुशलता पर नहीं बल्कि सरकार द्वारा बनाये गये वितरण के सिद्धान्त पर निर्भर करती है। इस प्रकार कुशल श्रमिकों को कोई आर्थिक प्रेरणा नहीं रह जाती है।

(२) प्रबन्ध तथा प्रशासन की कठिनाइयाँ (Difficulties of management and administration)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का संचालन लाभ-मूल्य-यन्त्र (profit-price mechanism) द्वारा नहीं बल्कि एक केन्द्रीय नियोजन संस्था द्वारा होता है। इस अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन, उपभोग, वितरण, पूँजी का संचय, इत्यादि प्रत्येक बात का निर्णय केन्द्रीय नियोजन संस्था अर्थात् थोड़े से सरकारी अफसरों को ही करना पड़ता है। इस प्रकार समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में थोड़े से व्यक्तियों पर प्रबन्ध तथा प्रशासन का बोझ अत्यधिक हो जाता है जिससे अर्थ-व्यवस्था का संचालन कुशलता से नहीं होता। अतः कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था को चलाने के लिए सामान्य व्यक्ति या अफसर नहीं बल्कि उपदेवता या देवदूत (Demi-gods or Archangels) चाहिए।

(३) उपभोक्ताओं की प्रभुता में कमी (Loss of consumers' sovereignty)—पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता की प्रभुता होती है, उसकी पसन्द तथा चुनाव के अनुसार ही वस्तुओं की मात्रा तथा उनके प्रकार निर्धारित होते हैं। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता की प्रभुता बहुत कम हो जाती है। इस अर्थ-व्यवस्था में सरकार इस बात का निर्णय करती है कि किन-किन वस्तुओं का और कितनी-कितनी मात्रा में उत्पादन होता है। उपभोक्ता केवल उन वस्तुओं का ही उपभोग कर पाते हैं जिन्हें सरकार प्रदान करती है। अतः उपभोक्ताओं की प्रभुसत्ता बहुत कम हो जाती है।

(४) व्यक्तिगत प्रारम्भन तथा प्रेरणा का अभाव (Loss of initiative and incentive)—पूँजीवाद में निजी सम्पत्ति का अधिकार तथा उपक्रम की स्वतन्त्रता व्यक्तियों को कड़ी मेहनत के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं। समाजवाद में इन दोनों की अनुपस्थिति से कार्य की प्रेरणा में कमी होती है। इसी प्रकार समाजवादी व्यवस्था में आविष्कारों तथा खोजों के प्रति भी व्यक्तियों की इच्छा कुन्द (blunt) हो जाती है क्योंकि आविष्कारकों तथा खोजकर्ताओं कोई निजी लाभ प्राप्त नहीं होता।

(५) साधनों का अविवेकपूर्ण वितरण (Irrational allocation of resources)—पूँजीवाद में उत्पत्ति के साधनों का विभिन्न प्रयोगों में उचित वितरण स्वतः ही मूल्य-यन्त्र द्वारा हो जाता है। समाज में जिन वस्तुओं की उपभोक्ता अधिक माँग करेंगे, उनकी कीमतें अपेक्षाकृत ऊँची होंगी, इन वस्तुओं के उत्पादन में उत्पादकों को अधिक लाभ होगा और इन प्रयोगों में साधन

स्वतः ही वितरित हो जावेंगे। इस प्रकार पूँजीवाद के अन्तर्गत विभिन्न प्रयोगों में साधनों का विवेकपूर्ण वितरण स्वसंचालित मूल्य-यन्त्र (automatic price-mechanism) के द्वारा हो जाता है।

समाजवाद में साधनों के वितरण के लिए इस प्रकार का कोई स्वसंचालित यन्त्र नहीं पाया जाता है। माइसेस (Mises), हायेक (Hayek), तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार, समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में साधनों के वितरण का आधार मनमाना (arbitrary) होता है। इस अर्थ-व्यवस्था में लागत-गणना (cost-accounting) का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता और इसके अभाव में साधनों का विवेकपूर्ण वितरण नहीं हो पाता है; सरकार केवल मनमाने ढंग से (arbitrarily) साधनों को वितरित कर देती है।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्री माइसेस, हायेक इत्यादि के उपर्युक्त विचारों से सहमत नहीं हैं। लांगे (Lange), टेलर (Taylor) इत्यादि अर्थशास्त्रियों के अनुसार, समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में भी 'मूल्य-प्रक्रिया' (pricing process) हो सकती है और 'भूल तथा जाँच की रीति' द्वारा साधनों का विवेकपूर्ण वितरण हो सकता है। पीगू के अनुसार, समाजवाद में केवल [illegible] [illegible] के आधार पर साधनों का वितरण हो सकता है, परन्तु [illegible] कठिन है।

सामाजिक दृष्टि से आवश्यक सभी प्रकार के उद्योगो के विकास पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है जिससे साधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग होता है।

(२) व्यापार चक्रों का निराकरण तथा आर्थिक स्थायित्व (Elimination of trade [illegible]

[illegible])

या 'कम उत्पादन' (under-production) की सम्भावनाएं नही रहती और मन्दी तथा तेजी का चक्रीय घटन (occurrance) नहीं होता। इस प्रकार समाजवाद व्यापार चक्रो का निराकरण कर अर्थ-व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करता है।

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक युग की पूंजीवादी व्यवस्थाओ मे मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियो (monetary and fiscal policies) द्वारा व्यापार चक्रों के घटित होने को या उनके दुष्परिणामो को एक सीमा तक रोका जा सकता है। परन्तु समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में व्यापार चक्र उत्पन्न ही नहीं होते।

(३) बेरोजगारी का निराकरण (Elimination of unemployment)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में नियोजित अर्थ-व्यवस्था तथा उत्पत्ति के साधनो और मानव जीवन के विभिन्न पहलुओ पर सरकार का नियन्त्रण होता है, परिणामस्वरूप ऐसी अर्थ-व्यवस्था मे सभी प्रकार के बेरोजगार का अन्त हो जाता है।

परन्तु समाजवाद में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अन्त हो जाता है या उसमे बहुत कमी हो जाती है, रोजगार की दशाओ का निर्धारण केन्द्रीय नियोजन संस्था द्वारा किया जाता है जिसे लोगों को स्वीकार करना पड़ता है। अतः पूंजीवाद के समर्थको का यह मत है कि समाजवाद मे बेरोजगारी का अन्त उसी प्रकार होता है जिस प्रकार जेल मे बेरोजगारी नही रहती है।

(४) धन की असमानताओं में कमी (Reduction in inequalities of income)—समाजवाद मे उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है और वह अर्थ-व्यवस्था का संचालन इस प्रकार करती है कि लोगों मे धन की असमानताएं न रहे। इसके विपरीत पूंजीवाद में थोड़े से लोगों के हाथों मे धन केन्द्रित हो जाता है तथा अधिकांश लोग निर्धन रहते हैं। इसके अतिरिक्त जनतन्त्रीय समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे सरकार धनी लोगों पर अधिक कर लगाती है और इस प्रकार प्राप्त धन को जनसाधारण के कल्याण पर व्यय करके धन की असमानताओ को कम करती है। समाजवाद में सरकार का उद्देश्य होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति के समान अवसर प्राप्त हो।

पूंजीवाद के समर्थकों का मत है कि 'समाजवाद असमानताओ को लगभग समाप्त कर देगा' यह दावा व्यवहार में गलत सिद्ध हो चुका है। व्यवहार मे निश्चित रूप से अधिकांश समाजवादी देशों ने यह अनुभव किया है कि 'आय-अन्तर (income differentials) उत्पादन में प्रेरणा के लिए आवश्यक है। यद्यपि समाजवाद में 'लाभ-उद्देश्य' की बुराई की जाती है, परन्तु 'आय-उद्देश्य' विस्तृत रूप से प्रयोग किया जाता है (While the profit-motive is played down, the income motive is widely used)। रूस जैसे साम्यवादी देश मे भी वर्तमान प्रवृत्ति 'आय-अन्तरों' को बढ़ाने की प्रतीत होती है ताकि उत्पादन को अधिक बढ़ाने मे प्रेरणा मिले।

(५) 'लाभ-उद्देश्य' के स्थान पर 'सामाजिक-कल्याण-उद्देश्य' ('Social welfare motive' in place of 'profit-motive')—समाजवाद में उत्पादन लाभ-उद्देश्य तथा स्वहित से प्रेरित नहीं

होता वरन् लोगों के कल्याण की दृष्टि से किया जाता है। समाजवाद में उन वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जो जन साधारण की आवश्यकताओं (needs) के लिए आवश्यक हैं। समाजवाद में 'सामाजिक कल्याण उद्देश्य', न कि 'लाभ-उद्देश्य', यह निर्धारित करता है कि किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन किया जायेगा। इसके अतिरिक्त, समाजवाद में सरकार देश के सभी नागरिकों के लिए 'सामाजिक सुरक्षा' (social security) की बहुत अच्छी व्यवस्था करती है।

पूंजीवाद के समर्थकों का मत है कि उन्नतिशील पूंजीवादी देशों (जैसे, इंगलैण्ड) में भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामाजिक सुरक्षा की बहुत अच्छी व्यवस्था है और प्रत्येक व्यक्ति को 'जन्म से मरण तक' जीवन की विभिन्न प्रकार की जोखिमों को झेलने के लिए पर्याप्त सुविधाएँ दी जाती हैं। इस प्रकार पूंजीवादी देशों में भी समाज के कल्याण पर ध्यान दिया जाता है।

(६) **सामाजिक परजीविता का अन्त** (End of social parasitism)—पूंजीवाद में बहुत से व्यक्ति अनर्जित आय (unearned income) प्राप्त करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु समाजवाद में इस प्रकार के परजीवियों (parasites) के लिए कोई स्थान नहीं होता, प्रत्येक व्यक्ति परिश्रम करके आय प्राप्त करता है।

(७) **वर्ग संघर्ष का निराकरण** (Elimination of class struggle)—पूंजीवाद में उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत लोगों का स्वामित्व होता है, इसलिए समाज दो वर्गों—पूंजीपतियों तथा श्रमिकों—में बँट जाता है। इन वर्गों में निरन्तर संघर्ष रहता है, हड़तालें तथा तालेबन्दियाँ होती हैं और उत्पादन में कमी होती है; परन्तु समाजवाद में उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है, इसलिए समाज के दो वर्गों में बँटने का प्रश्न ही नहीं उठता। समाजवाद में औद्योगिक अशान्ति नहीं होती और उत्पादन निर्बाध रूप से होता रहता है।

(८) **समाजवाद के प्रति लगाये गये अधिकांश आरोप सही नहीं बताये जाते हैं** (Most of the criticisms levelled against socialism are said to be incorrect)—(क) **सार्वजनिक प्रबन्ध** (public management) **सदैव तथा आवश्यक रूप से अकुशल नहीं होता।** निजी क्षेत्र में कार्य करने वाले अधिकारी भी भ्रष्ट होते हैं तथा बड़ी-बड़ी संयुक्त पूंजी कम्पनियों में भी लाल फीताशाही पायी जाती है। वास्तव में, समाजवाद के अन्तर्गत नौकरशाही के दोषों को बढ़ा-चढ़ा कर बताया जाता है। (ख) **समाजवाद के अन्तर्गत कार्य करने की प्रेरणा पर विपरीत प्रभाव** (adverse effect) **नहीं पड़ता।** समाजवाद में कार्य की प्रेरणा को आयों में अन्तर, विभिन्न प्रकार के सामाजिक सम्मानों तथा पदवियों, तथा दण्डों द्वारा बनाये रखा जाता है। (ग) **पूंजीवाद में उपभोक्ताओं की प्रभुता** (sovereignty) **एक मिथ्यावाद है;** निर्धनता, एकाधिकारियों की उपस्थिति, इत्यादि के कारण उपभोक्ताओं का वास्तविक रूप में कोई प्रभुत्व नहीं रह जाता। इसलिए यह कहना कि समाजवाद में उपभोक्ताओं की प्रभुता समाप्त हो जाती है गलत प्रतीत होता है। (घ) **लांगे** (Lange), **टेलर** (Taylor) **इत्यादि के अनुसार समाजवाद में साधनों का विवेकपूर्ण वितरण सम्भव है।** समाजवाद में साधनों का वितरण आवश्यकता तथा प्रयोग पर निर्भर करता है न कि लाभ-उद्देश्य पर। इस दृष्टि से समाजवाद में साधनों का वितरण श्रेष्ठतर कहा जा सकता है। (ङ) **लोकतान्त्रिक समाजवाद में एक बड़ी सीमा तक व्यक्तियों को स्वतन्त्रता भी प्राप्त होती है।**

(९) **शुम्पीटर** (Schumpeter)—के अनुसार, निम्न विशेषताओं के कारण समाजवाद, पूंजीवाद से श्रेष्ठ है: (क) समाजवाद में अधिक आर्थिक कुशलता प्राप्त की जा सकती है अर्थात् राजकीय प्रबन्ध (state management) के अन्तर्गत अधिक उत्पादकता प्राप्त हो सकती है। (ख) समाजवाद में व्यापार चक्रों का अभाव रहता है। (ग) समाजवाद में एकाधिकारी आचरण

(monopolistic practices) नहीं पाया जाता। (घ) कम असमानता के कारण अधिक कल्याण प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—वास्तव में, पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों के अपने-अपने गुण तथा दोष हैं, कोई भी प्रणाली पूर्ण नहीं है। पूँजीवाद में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है तथा व्यक्तियों को अपने विकास के लिए पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। इसके विपरीत समाजवाद में धन का अधिक समान वितरण प्राप्त किया जाता है तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के स्थान पर सामूहिक विकास तथा कल्याण पर अधिक बल दिया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम इन दोनों प्रणालियों का मिश्रण कर सकें तो ऐसी प्रणाली सर्वश्रेष्ठ होगी। वास्तव में, आधुनिक युग में इस प्रकार के मिश्रण के प्रयत्न किये जा रहे हैं। ब्रिटेन, अमरीका इत्यादि पूँजीवादी देशों में पूँजीवाद का रूप मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (mixed economy) हो गया है, परन्तु इस मिश्रण (mixture) में पूँजीवाद का अनुपात (proportion) अधिक है। इसके विपरीत, भारत तथा अनेक विकासमान देश लोकतान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) को अपना रहे हैं जो पूँजीवाद तथा समाजवाद का ही मिश्रण है; परन्तु इस मिश्रण में समाजवाद के अनुपात को अधिक रखने का उद्देश्य रहता है।

समाजवाद के रूप
(FORMS OF SOCIALISM)

समाजवाद के अनेक रूप हैं। मुख्य रूप में समाजवाद को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है : (१) विकासवादी समाजवाद (Evolutionary socialism), तथा (२) क्रान्तिवादी समाजवाद (Revolutionary socialism)। इन दोनों के उद्देश्य लगभग एक समान ही हैं, परन्तु उन्हें प्राप्त करने की रीतियों में अन्तर रहता है। दोनों में अन्तर इस प्रकार हैं : प्रथम, विकासवादी समाजवाद का उद्देश्य, धीरे-धीरे तथा शान्तिपूर्ण और वैधानिक रीतियों से समाजवाद की स्थापना करना होता है; जबकि क्रान्तिवादी समाजवाद में समाजवाद की स्थापना के लिए हिंसक तथा क्रान्तिकारी रीतियों का प्रयोग किया जाता है। दूसरे, विकासवादी समाजवाद राज्य को समाप्त नहीं करना चाहता वरन् उसे अधिक सम्पन्न बनाना चाहता है ताकि समाज के हितों को भली प्रकार से सुरक्षित रखा जा सके; इसके विपरीत क्रान्तिवादी समाजवाद राज्य को भी शोषण का एक साधन मानता है और इसलिए राज्य को समाप्त करना चाहता है। रूस, चीन इत्यादि साम्यवादी देशों का समाजवाद 'क्रान्तिवादी समाजवाद' है, जबकि ब्रिटेन की लेबर पार्टी का समाजवाद 'विकासवादी समाजवाद' है। इन दोनों प्रकार के समाजवाद के रूपान्तर ही व्यवहार में प्रचलित हैं।

समाजवाद के मुख्य रूप निम्न हैं :

(१) मार्क्सवादी समाजवाद या वैज्ञानिक समाजवाद (Marxian socialism or scientific socialism)—कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद को 'मार्क्सवादी समाजवाद' या केवल 'मार्क्सवाद' कहा जाता है। मार्क्स के पूर्व भी कुछ विद्वानों द्वारा समाजवाद के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये गये थे, परन्तु मार्क्स ने ही सर्वप्रथम १८६७ में अपनी विख्यात पुस्तक 'दास कैपीटल' (Das Capital) में समाजवाद के सिद्धान्त को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का प्रयत्न किया। इसलिए मार्क्सवादी समाज को 'वैज्ञानिक समाजवाद' (Scientific socialism) भी कहा जाता है। इसके प्रतिपादन तथा विकास में मार्क्स ने ऐन्जिल्स (Engels) का भी सहयोग लिया था। मार्क्स तथा ऐन्जिल्स के पश्चात् रूस में लेनिन (Lenin) तथा स्टालिन (Stalin) ने भी इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

मार्क्सवादी समाजवाद के दो मुख्य अंग हैं : (१) 'मूल्य का श्रम सिद्धान्त' (Labour Theory of Value) या 'अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त' (Theory of Surplus Value), तथा (२) 'इतिहास की भौतिक व्याख्या (Materialistic Interpretation of History)।

मार्क्स का 'मूल्य का श्रम सिद्धान्त' बताता है कि किसी वस्तु का उत्पादन श्रमिकों द्वारा किया जाता है, परन्तु उत्पादित वस्तु के मूल्य (value) की अपेक्षा श्रमिकों को मजदूरी के रूप में बहुत कम मिलता है। इस प्रकार वस्तु की लागत पर सारा आधिक्य या अतिरेक (surplus) पूंजीपतियों के पास रह जाता है। मार्क्स के अनुसार, यह मूल्य-अतिरेक (surplus value) श्रमिकों को मिलना चाहिए क्योंकि यह श्रमिकों द्वारा ही उत्पन्न किया जाता है, परन्तु इस समस्त 'अतिरेक' को पूंजीपति हड़प जाते हैं और इस प्रकार वे श्रमिकों का शोषण करते हैं। इसलिए मार्क्स ने पूंजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ को 'लूट तथा शोषण' (robbery and exploitation) कहा। मार्क्स ने बताया कि पूंजीपति मूल्य-अतिरेक को अपने पास रखने में 'निजी सम्पत्ति की संस्था' (institution of private property) के कारण सफल होता है। अतः मार्क्स के अनुसार, निजी सम्पत्ति एक प्रकार की चोरी (theft) है और उसको बिलकुल समाप्त कर देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति तथा उपभोग के समस्त साधनों पर समाज या सरकार का स्वामित्व तथा नियन्त्रण होना चाहिए। यही मार्क्स के समाजवाद का वैज्ञानिक आधार है।

मार्क्स का दूसरा सिद्धान्त 'इतिहास की भौतिक धारणा या व्याख्या' (Materialistic Conception or Interpretation of History) यह बताता है कि सभी ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे आर्थिक तत्त्व होते हैं। प्रत्येक देश में धनवान व्यक्ति (haves) निर्धन व्यक्तियों (haves-not) का शोषण करते हैं और इस प्रकार वर्ग-संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। संसार के सभी देशों में झगड़े, युद्ध तथा राजनीतिक आन्दोलन आर्थिक कारणों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। किसी देश का राजनीतिक संगठन भी आर्थिक संगठन पर आधारित होता है। संक्षेप में, किसी देश के इतिहास का लेखा (record) उसके आर्थिक तत्त्वों तथा आर्थिक संघर्षों का ही लेखा है। इस प्रकार मार्क्स ने 'इतिहास की भौतिक व्याख्या' की। इस सम्बन्ध में मार्क्स ने और आगे बताया कि पूंजीवाद अपने अन्दर ही अपने विनाश के बीज रखता है। कालान्तर में पूँजीपति अधिक धनी होते जायेंगे परन्तु उनकी संख्या कम होती जायेगी क्योंकि जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को हड़प जाती है उसी प्रकार बड़े पूँजीपति छोटे पूँजीपति को हड़प जायेंगे और केवल थोड़े से एकाधिकारी रह जायेंगे; इसके विपरीत श्रमिकों की संख्या बढ़ती जायेगी। वर्ग संघर्ष इतना बढ़ जायेगा कि श्रमिकों की अधिक संख्या पूँजीपतियों की थोड़ी संख्या को समाप्त कर देगी। इस प्रकार पूँजीवाद के अन्दर अपने विनाश के बीज रहते हैं। पूँजीपतियों तथा पूँजीवाद के समाप्त हो जाने पर 'वर्ग-विहीन समाज' (Classless Society) का जन्म होगा और पूर्ण समाजवाद (full-blooded socialism) की स्थापना हो जायेगी।

मार्क्स का 'मूल्य का श्रम सिद्धान्त' तर्कसंगत नहीं (illogical) बताया जाता है। मार्क्स की 'इतिहास की भौतिक व्याख्या' से भी बहुत से अर्थशास्त्री सहमत नहीं हैं, यद्यपि वे इस बात को मानते हैं कि किसी देश के इतिहास में आर्थिक तत्त्व महत्त्वपूर्ण होते हैं। मार्क्स की यह भविष्यवाणी कि पूंजीवाद में एकाधिकारियों का प्रभुत्व बढ़ जायेगा ठीक उतरी, परन्तु उनकी यह भविष्यवाणी कि पूंजीवाद समाप्त हो जायेगा, गलत निकली। पूंजीवाद में पर्याप्त संशोधन हो चुके हैं और संशोधित रूप में वह आज भी कार्य कर रहा है तथा भविष्य में भी उसके समाप्त होने की सम्भावना प्रतीत नहीं होती।

(२) सामूहिकवाद या राजकीय समाजवाद (Collectivism or state socialism)—
र राज्य का अधिकार होता है और यह संसदीय
विश्वास रखता है। राज्य ही समस्त वस्तुओं
अर्थात् धन का उत्पादन करता है और उसका न्यायसंगत (equitable) वितरण करता है। निजी उपक्रम का अन्त हो जाता है। सब उत्पादन राजकीय अधिकारियों द्वारा संचालित होता है तथा सारा लाभ राज्य को प्राप्त होता है जिसे जनता के हित में प्रयुक्त किया जाता है। वास्तव में, इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत पूँजीपति का स्थान राज्य ग्रहण कर लेता है और पूँजीवाद का विनिमय-यन्त्र (अर्थात मूल्य-प्रक्रिया, बाजार, इत्यादि) वैसा ही बना रहता है; इसलिए इसे कभी-कभी 'राजकीय पूँजीवाद' (State Capitalism) भी कहते हैं। 'मार्क्सवादी समाजवाद' तथा 'राजकीय समाजवाद' में मुख्य अन्तर यह है कि 'मार्क्सवाद' हिंसक क्रान्ति द्वारा समाजवाद की स्थापना करना चाहता है जबकि 'राज्य समाजवाद' शान्तिपूर्ण तथा संसदीय रीतियों द्वारा।

(३) फासिज्म (Fascism)—राजकीय समाजवाद का एक भय यह है कि राज्य सर्वशक्तिमान (all-powerful) हो सकता है। राजकीय समाजवाद बिगड़कर 'राष्ट्रीय समाजवाद' (national socialism) का रूप धारण कर सकता है। जर्मनी में हिटलर का नाजीवाद (Nazism) तथा इटली में मुसोलिनी (Mussolini) का फासिज्म राष्ट्रीय समाजवाद के ही रूपान्तर हैं। नाजीवाद तथा फासिज्म के दार्शनिक सिद्धान्त (philosophy) तथा कार्यक्रम लगभग एक समान ही होते हैं।

फासिज्म का राजनीतिक दर्शन (Political philosophy)—यह लोकतन्त्र के विरुद्ध है। फासिस्टों के अनुसार, लोकतन्त्र दोलायमान (vacillating) होता है, उसमें एकता की कमी होती है तथा वह निर्णय लेने में असमर्थ रहता है। अतः फासिज्म राज्य को सर्वशक्तिमान बनाना चाहता है। इसके अन्तर्गत राज्य को व्यक्तियों का योग (sum) नहीं समझा जाता, वरन् राज्य व्यक्ति से बहुत ऊँचा माना जाता है। राज्य से बड़ी कोई शक्ति नहीं मानी जाती और इसलिए आर्थिक, धार्मिक, शिक्षा, विज्ञान, कला इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में राज्य का तीव्र तथा शक्तिशाली हस्तक्षेप होता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का लोप हो जाता है।

आर्थिक क्षेत्र में [illegible]

[illegible] ता है परन्तु [illegible] र की इच्छा-[illegible] इ जाती है।

[illegible] क सामरिक [illegible] लिए उपभोग वस्तुओं के [illegible] उत्पादन में लगाये रखा जाता है। [illegible] युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं पर व्यय किया [illegible] लिए जनसंख्या की वृद्धि पर जोर दिया जाता [illegible] जीवन स्तर बहुत निम्न रहता है। उपर्युक्त [illegible] ण तथा आक्रामक होती है, इसलिए जर्मनी तथा इटली को इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़े; यह अब समाप्त हो गया है और इसका भविष्य अन्धकारमय हो गया है।

(४) शिल्प-समाजवाद (Guild socialism)—इसके अन्तर्गत उत्पादन के साधनों तथा उद्योगों का स्वामित्व तो राज्य के हाथों में रहता है परन्तु उनका प्रबन्ध तथा संचालन श्रमिकों,

मैनेजरों तथा तकनीशियनों के संघों (guilds) के हाथों में रहता है। दूसरे शब्दों में उद्योगों तथा कारखानों में प्रजातन्त्रीय शासन रहता है। राज्य केवल कारखानों का निरीक्षण करता है, वस्तुओं के मूल्यों को निर्धारित करता है तथा उपभोक्ताओं के हितों को ध्यान में रखता है। वास्तव में, शिल्प-समाजवाद केन्द्रीयकरण तथा नौकरशाही के दोषों को दूर करने के लिए विकेन्द्रित व्यवस्था (decentralised system) पर जोर देता है। यह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शान्तिपूर्ण रीतियों को अपनाता है।

(५) **श्रमिक संघवाद** (Syndicalism)—इसका जन्म फ्रान्स में हुआ था। श्रमिक संघवादियों का विश्वास है कि सरकारी अधिकारी अकुशल होते हैं और उनमें नौकरशाही की प्रवृत्ति रहती है। इसलिए इसके अन्तर्गत उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व तथा नियन्त्रण नहीं होता, वरन् प्रत्येक कारखाने के श्रमिकों के संघ (trade unions or syndicates) कारखाने के स्वामी होते हैं और उसका संचालन करते हैं। राजनीतिक सत्ता अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए श्रमिक संघवादी हड़तालों तथा हिंसात्मक रीतियों का प्रयोग करते हैं।

(६) **फेबियन समाजवाद** (Fabian socialism)—इसका जन्म इंगलैण्ड में हुआ। वेब्स (Webbs), जी० डी० एच० कोल (G. D. H. Cole) तथा बर्नार्ड शा (Bernard Shaw) जैसे विद्वान इस विचारधारा के समर्थक हैं। ब्रिटेन, स्वीडन इत्यादि देशों के श्रमिक दल फेबियन समाजवाद की स्थापना करना चाहते हैं।

फेबियन समाजवाद पूँजीवाद तथा राज्य-समाजवाद के बीच समन्वय का प्रयत्न करता है। यह संसदीय, वैधानिक तथा शान्तिपूर्ण रीतियों का प्रयोग करता है। इसके अन्तर्गत (क) मुख्य तथा आधारभूत उद्योगों का धीरे-धीरे राष्ट्रीयकरण किया जाता है ताकि कालान्तर में राज्य का उत्पत्ति के साधनों पर स्वामित्व हो जाय; (ख) सामाजिक सुरक्षा तथा वर्द्धमान कर नीति द्वारा धन के वितरण में अधिक समानता लायी जाती है; तथा (ग) नियोजन को अपनाया जाता है ताकि सामान्य जनता के हित के लिए उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके।

(७) **साम्यवाद** (Communism)—साम्यवाद मार्क्सवाद का उन्नत रूप है; वास्तव में, यह समाजवाद का अधिक उग्र रूप (more extreme form) है। साम्यवाद को सर्वसत्तावादी सामूहिकवाद (Totalitarian Collectivism) भी कहते हैं साम्यवाद के अन्तर्गत उत्पादन तथा उपभोग पर सामूहिक नियन्त्रण (अर्थात् राज्य का स्वामित्व तथा नियन्त्रण) होता है; कालान्तर में द्रव्य, कीमतों, मजदूरियों तथा स्वतन्त्र विनिमय को समाप्त कर दिये जाने का उद्देश्य होता है। 'सामूहिक संगठन' (Collective organisation) अर्थात् राज्य यह निर्धारित करेगा कि किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन किया जायेगा तथा राज्य ही राशनिंग द्वारा वस्तुओं का वितरण करेगा। लोग सरकारी मकानों में रहेंगे, सरकारी भोजनालयों में खाना खायेंगे; प्रत्येक व्यक्ति की शिक्षा तथा चिकित्सा इत्यादि की व्यवस्था सरकार (अर्थात् 'सामूहिक संगठन') करेगी। प्रत्येक व्यक्ति वही कार्य करेगा जो राज्य द्वारा उसे सौंपा जायेगा। समाजवाद का सूत्र है: "प्रत्येक

(Capitalistic Stage), (२) श्रमिकों की तानाशाही (Dictatorship of Proletariat), (३) समाजवादी समाज (Socialist Society), तथा (४) साम्यवादी समाज (Communist Society)। अन्तिम दशा में यह विश्वास किया जाता है कि राज्य 'मुरझा कर समाप्त' (wither away) हो जायेगा और एक वर्गविहीन समाज की स्थापना हो जायेगी। साम्यवाद का भी अराजकतावाद (anarchism) के समान एक अन्तिम उद्देश्य है; अराजकतावादियों का उद्देश्य भी 'राज्य का मुरझा कर समाप्त' हो जाना होता है।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था
(MIXED ECONOMY)

पृष्ठभूमि (Background)

प्राचीन समय मे आर्थिक जीवन में राज्य का हस्तक्षेप बुरा समझा जाता था; राज्य का कर्तव्य केवल न्याय, पुलिस तथा प्रतिरक्षा तक मीमित था। एडम स्मिथ का विचार था कि आर्थिक उन्नति के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता आधारभूत है। जे०बी० से (J. B. Say), रिकार्डो (Recardo), मिल (Mill) इत्यादि प्राचीन अर्थशास्त्री स्वतन्त्र उपक्रम (free enterprise) तथा अहस्तक्षेपनीति (*laissez faire*) के समर्थक थे। परन्तु कालान्तर में इस प्रणाली के दोष स्पष्ट दिखायी देने लगे। प्रथम महायुद्ध से हस्तक्षेप की नीति का ह्रास होने लगा। १९२६ में जे० एम० केन्ज (J. M. Keynes) ने अपनी पुस्तक 'लैसे फेयर का अन्त' (End of *laissez faire*) में अहस्तक्षेप की नीति की कड़ी आलोचना की और 'राज्य के सामान्य निरीक्षण के अन्तर्गत स्वतन्त्र उपक्रम' का समर्थन किया अर्थात मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के विचार को प्रस्तुत किया। १९२९ की महान मन्दी (Great Depression) ने स्वतन्त्र उपक्रम तथा अहस्तक्षेप की नीति के विरुद्ध भावना को और बल दिया।

गलाकाट प्रतियोगिता तथा आर्थिक उतार-चढ़ाव और व्यापार चक्रों के कारण एक देश के बाद दूसरे देश से स्वतन्त्र उपक्रम के प्रति विश्वास उठने लगा। आज प्रत्येक देश मे आर्थिक जीवन में राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक समझा जाता है। परन्तु राजकीय हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण के अंश में देशों में भिन्नता पाई जाती है। समाजवादी देशों में एक बड़ी सीमा तक राज्य का हस्तक्षेप होता है, साम्यवादी देशों मे प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण रूप से राज्य का नियन्त्रण होता है तथा पूँजीवादी देशों में राज्य के हस्तक्षेप का अंश सीमित होता है। पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों प्रणालियों में गुण भी हैं तथा दोष भी। आधुनिक युग में ससार के अधिकांश देशों मे एक ऐसी प्रणाली का निर्माण हो रहा है जिसमें स्वतन्त्र उपक्रम तथा सरकारी नियन्त्रण के मिश्रण तथा सहअस्तित्व द्वारा पूँजीवाद तथा समाजवाद के दोषों को दूर कर उनके गुणों को बनाये रखा जा सके। ऐसी प्रणाली को मिश्रित अर्थ-व्यवस्था कहते हैं।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का अर्थ (Meaning of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का पर्याप्त मात्रा में सहअस्तित्व (Co existence) होता है, दोनों के कार्यक्षेत्र का क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है परन्तु निजी क्षेत्र को प्रमुखता रहती है। दोनों अपने-अपने क्षेत्र में तथा मिल कर इस प्रकार से कार्य करते हैं कि बिना शोषण के देश के सभी वर्गों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो तथा तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त हो सके।

प्रो० हैन्सन (Hansen) इसको 'द्विक अर्थ-व्यवस्था' (Dual Economy) तथा प्रो० लर्नर (Lerner) ... 'नियन्त्रित अर्थ-व्यवस्था' (Controlled Economy) कहते हैं।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अर्थ को भली प्रकार से समझने के लिए, उसकी विशेषताओं (Characteristics) की पूर्ण जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

(१) इस व्यवस्था में पूंजीवाद तथा समाजवाद का सह-अस्तित्व होता है, इसमें दोनों के गुणों का मिश्रण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इसमें निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का साथ-साथ अस्तित्व रहता है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सह-अस्तित्व समाजवाद तथा पूंजीवाद दोनों में पाया जाता है। समाजवाद में सार्वजनिक क्षेत्र बहुत अधिक मात्रा में होता है और निजी क्षेत्र अत्यन्त सीमित मात्रा में होता है। इसके विपरीत, पूंजीवाद में निजी क्षेत्र बहुत अधिक मात्रा में होता है और सार्वजनिक क्षेत्र अत्यन्त सीमित मात्रा में होता है। परन्तु मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। अतः मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की परिभाषा में केवल 'निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सह-अस्तित्व' कहना पर्याप्त नहीं है जब तक कि यह न कहा जाय कि 'दोनों क्षेत्रों का पर्याप्त मात्रा या अंश में सह-अस्तित्व' होता है। परन्तु शब्द 'पर्याप्त मात्रा' किसी निश्चित मात्रा या अंश को नहीं बताता, इसलिए इसको निश्चितता देने के लिए दोनों क्षेत्रों का अलग-अलग क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों तथा संस्थाओं के प्रारम्भ तथा विकास के लिए सरकार उत्तरदायी होती है, तथा इनका स्वामित्व और प्रबन्ध सरकार के हाथों में रहता है। इस क्षेत्र में प्रायः सुरक्षा सम्बन्धी उद्योग, यातायात के साधन, तथा आधारभूत उद्योग (जैसे, लोहा तथा इस्पात उद्योग, कोयला उद्योग, खनिज, तेल उद्योग, इत्यादि) रखे जाते हैं। इसके अन्तर्गत ऐसे उद्योग भी रहते हैं जिनमें पूंजी अधिक लगती है और प्रतिफल कम या देर से प्राप्त होता है, जैसे, बड़े-बड़े बांधों (dams) का निर्माण।

निजी क्षेत्र में उद्योगों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध निजी उद्योगपतियों के हाथों में होता है, परन्तु उन्हें सरकार की व्यापक आर्थिक नीति के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है अर्थात् सरकार अप्रत्यक्ष रूप से थोड़ा अंकुश रखती है। इस क्षेत्र में प्रायः उपभोग-वस्तुओं के उद्योग (Consumer's goods industries) सम्मिलित की जाती हैं, जैसे कपड़ा, चीनी, सीमेन्ट, कागज़ औषधियाँ, बिजली का सामान, इत्यादि।

निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अतिरिक्त दो क्षेत्र और पाये जाते हैं और वे हैं— संयुक्त क्षेत्र (Joint sector) तथा सहकारी क्षेत्र (Co-operative sector)। संयुक्त क्षेत्र में वे उद्योग होते हैं जिनका सरकार तथा निजी उद्योगपति दोनों संयुक्त रूप में संचालन करते हैं, अंश पूंजी सरकार तथा निजी उद्योगपतियों द्वारा प्रदत्त की जाती है, परन्तु अंश पूंजी में प्रायः सरकार का भाग अधिक होता है। संयुक्त क्षेत्र के कार्यकारण द्वारा सरकार निजी उद्योगपतियों की कुशलता तथा अनुभव का प्रयोग देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए करती है। सहकारी क्षेत्र में वे उद्योग आते हैं जो कि सहकारी समितियों द्वारा संचालित होते हैं। इस क्षेत्र में प्रायः छोटे पैमाने के उपभोक्ता-उद्योग रहते हैं, राज्य सहकारी क्षेत्र के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएं देता है।

क्षेत्रों के विभाजन के सम्बन्ध में स्थैतिक दृष्टिकोण (Static approach) नहीं रखा जाता है, परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। एक ही प्रकार का उद्योग निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों में हो सकता है, जैसे, लोहा तथा इस्पात उद्योग, सीमेन्ट उद्योग, इत्यादि।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की उपर्युक्त पहली विशेषता का सारांश इस प्रकार है :

(अ) निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सहअस्तित्व होता है, दोनों क्षेत्र पर्याप्त मात्रा में होते हैं, प्रत्येक क्षेत्र का कार्य क्षेत्र मोटे रूप से निर्धारित कर दिया जाता है, परन्तु प्रमुख स्थान निजी क्षेत्र का ही होता है।

(ब) संयुक्त क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र भी होते हैं।

(स) क्षेत्रों के विभाजन के सम्बन्ध में स्थैतिक दृष्टि नहीं अपनाई जाती है।

(२) इस प्रणाली के अन्तर्गत लाभ-उद्देश्य तथा कीमत यन्त्र रहते हैं और ये ही साधनों के वितरण (allocation) को निर्धारित करते हैं। परन्तु लाभ-उद्देश्य को पूर्ण स्वतन्त्रता से कार्य नहीं करने दिया जाता। पूंजीवाद में लाभ-उद्देश्य प्रमुख भाग लेता है जबकि समाजवाद में उसे समाप्त कर दिया जाता है, परन्तु *मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में लाभ उद्देश्य को केवल उस सीमा तक कार्य* करने दिया जाता है जब तक कि उससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है और आर्थिक विकास में सहयोग मिलता है।

(३) इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता रहती है परन्तु उसे सामाजिक हित की दृष्टि से सीमित किया जाता है।

(४) इसमें धन के अधिक समान वितरण की व्यवस्था की जाती है, आर्थिक असमानताओं को दूर करने के प्रयत्न किये जाते हैं। इस दृष्टि से एकाधिकारी शक्तियों तथा प्रवृत्तियों को नियन्त्रित किया जाता है।

(५) इस प्रणाली के *अन्तर्गत प्रायः आर्थिक नियोजन को अपनाया जाता है ताकि समस्त* अर्थ-व्यवस्था का कार्यकरण सामाजिक कल्याण तथा तीव्र आर्थिक विकास की दृष्टि से हो सके। इंगलैण्ड, फ्रांस, इत्यादि देशों में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था है और इनमें लोकतान्त्रिक नियोजन को अपनाया गया है। सेम्युलसन तथा अनेक प्रमुख अर्थशास्त्री अमरीका की अर्थ-व्यवस्था को मिश्रित अर्थ-व्यवस्था कहते हैं। यद्यपि अमरीका में 'नियोजन' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहाँ पर व्यवहार में सीमित मात्रा में नियोजन को अपनाया जाता है। भारत में भी मिश्रित अर्थ-व्यवस्था है, यद्यपि हमारा दीर्घकालीन उद्देश्य लोकतान्त्रिक समाजवाद की स्थापना है।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के लाभ (Advantages of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में पूंजीवाद तथा समाजवाद का एक सीमा तक मिश्रण होता है, इसलिए इस प्रणाली में हमें पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों के लाभ प्राप्त होते हैं। मुख्य लाभ इस प्रकार हैं :

erty, profit motive
लाभ-उद्देश्य को स्थान
त, कुशलता-वृद्धि तथा
-उद्देश्य के शोषणात्मक

इस प्रणाली में लाभ-उद्देश्य तथा मूल्य-यन्त्र दोनों मिलकर साधनों का कुशल वितरण करते हैं; साथ ही सरकार इन दोनों का सामाजिक कल्याण की दृष्टि से नियन्त्रण करती है।

(२) पर्याप्त स्वतन्त्रता (Adequate freedom)—इस प्रणाली में लोगों को पर्याप्त मात्रा में राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। (अ) उपभोक्ताओं को अपनी आय को व्यय

reduction of economic inequalities)—(क) सरकार पूंजीवादी प्रथाओं को नियंत्रित रख सामान्य जनता को शोषण से बचाती है। यह आर्थिक, औद्योगिक तथा [illegible] नीतियों को सामाजिक कल्याण की दृष्टि से आयोजित करती है। (ख) सरकार [illegible] तथा अन्य [illegible] द्वारा श्रम के [illegible] में [illegible] है। (ग) एकाधिकारी [illegible] तथा प्रवृत्तियों को नियन्त्रित किया जाता है ताकि [illegible] का शोषण न हो सके और धन के वितरण में अधिक असमानताएँ उत्पन्न न हों।

आलोचना या दोष (Criticism or Disadvantages)

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की निम्न आलोचना की जाती है :

(१) व्यवहार में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का कुशल कार्यकरण कठिन है (Efficient operation of mixed economy is difficult in practice)—व्यवहार में निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र का साथ-साथ कार्य करना कठिन होता है। विभिन्न प्रकार के निर्णयों में कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं क्योंकि इसमें न तो पूंजीवाद की भाँति पूर्ण रूप से मूल्य-यन्त्र ही कार्य कर पाता है और न समाजवाद की भाँति व्यापक रूप में नियोजन ही किया जा सकता है। दोनों क्षेत्रों के बीच अच्छा सामंजस्य स्थापित करना अत्यन्त कठिन होता है।

कुछ समाजवादियों के अनुसार, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था 'शब्दों का विरोधाभास' (Contradiction in terms) है और इसके द्वारा पूंजीपति श्रमिकों को अस्थायी रूप से अपने पक्ष में करना चाहते हैं। इसके विपरीत कुछ पूंजीपतियों के अनुसार, इस प्रणाली के अन्तर्गत पूंजीवाद के लाभों ो प्राप्त करना कठिन है। शुम्पीटर के शब्दों में, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था तो 'ऑक्सीजन के शिविर जीवाद' (Capitalism in the oxygen tent) है अर्थात् पूंजीवाद का सहअस्तित्व (Costence) अस्थायी रहता है और मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत स्थायी रूप से पूंजीवाद के भ प्राप्त नहीं किये जा सकते।

परन्तु उपर्युक्त आलोचना में अधिक शक्ति प्रतीत नहीं होती क्योंकि व्यवहार में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में नियोजन द्वारा निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में उचित समन्वय स्थापित किया जा सका है और समाजवाद तथा पूंजीवाद के लाभों को प्राप्त किया जा रहा है। यदि ऐसा नहीं होता तो आधुनिक प्रवृत्ति मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की ओर नहीं होती।

(२) अस्थिरता (Instability)—कुछ आलोचकों का मत है कि मिश्रित अर्थ-व्यवस्था स्थायी रूप धारण नहीं कर सकती। कालान्तर में या तो निजी क्षेत्र प्रबल होकर सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यन्त सीमित कर सकता है और इस प्रकार पुनः पूँजीवाद की स्थापना हो सकती है; या समाजवादी शक्तियाँ अधिक प्रबल होकर निजी क्षेत्र को अत्यधिक सीमित कर सकती हैं और इस प्रकार समाजवाद की स्थापना हो सकती है। इस प्रकार मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का स्थायी रूप ग्रहण करना अत्यन्त कठिन है।

(३) लोकतन्त्र को डर (Danger to democracy)—कुछ आलोचकों के अनुसार, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में सदैव यह डर बना रहता है कि धीरे-धीरे समाजवादी शक्तियाँ प्रबल हो सकती हैं। निजी क्षेत्र लगभग समाप्त हो सकता है और समस्त अर्थ-व्यवस्था पर राज्य का स्वामित्व तथा नियन्त्रण हो सकता है। ऐसी स्थिति में लोकतन्त्र समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार मिश्रित अर्थ- [illegible] है।

[illegible] अनेक लाभ हैं, परन्तु इसकी आलोचनाओं में सत्यता का कुछ अंश अवश्य है। नियोजन, उचित नीतियों तथा सतर्कता द्वारा मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की कठिनाइयों तथा डरों को दूर किया जा सकता है, तथा निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में अच्छा सामजस्य स्थापित हो सकता है। व्यवहार में ऐसा हो रहा है। स्वीडन, स्विट्ज़रलैण्ड, डेनमार्क, फ्रांस, इंगलैण्ड, अमरीका, इत्यादि देशों में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था सफलता के साथ कार्य कर रही है और इन देशों में आर्थिक उन्नति का एक ऊँचा स्तर है। वर्तमान समय में भारत में भी मिश्रित अर्थ-व्यवस्था कार्य कर रही है, यद्यपि भारत का दीर्घकालीन उद्देश्य लोकतान्त्रिक समाजवाद की स्थापना करना है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र अधिक प्रबल रखा जायेगा। अधिकांश अविकसित देश मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को ही अपना रहे हैं ताकि वे पूँजीवाद और समाजवाद दोनों का लाभ उठाकर तीव्र गति से आर्थिक विकास कर सकें। वास्तव में, आधुनिक प्रवृत्ति मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की ओर है।

भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था
(MIXED ECONOMY IN INDIA)

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार ने नियोजन तथा मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को अपनाया ताकि देश का तीव्र आर्थिक विकास किया जा सके और सामान्य लोगों के जीवन-स्तर में वृद्धि हो सके। ६ अप्रैल, १९४८ को भारत सरकार की ओर से डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति के साथ ही भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का जन्म हुआ। इस नीति के अनुसार, उद्योगों को चार श्रेणियों में बाँटा गया। प्रथम श्रेणी में राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण उद्योगों को रखा गया, जैसे प्रतिरक्षा सम्बन्धी शस्त्रों का निर्माण, अणु-शक्ति का उत्पादन तथा नियन्त्रण, रेलवे यातायात, इत्यादि। इस क्षेत्र के उद्योगों पर राज्य को पूर्ण एकाधिकार दिया गया। द्वितीय श्रेणी में आधारभूत उद्योग सम्मिलित किये गये जैसे लोहा तथा इस्पात उद्योग, वायुयानों तथा जलयानों का निर्माण, कोयला, तार, टेलीफोन उद्योग, इत्यादि। इस क्षेत्र के उद्योगों पर सरकार का नियन्त्रण रखा गया, तथा सभी नये आधारभूत उद्योगों का स्वामित्व और संचालन सरकार के लिए सुरक्षित किया गया। तृतीय श्रेणी में उपभोग तथा आवश्यक वस्तुओं के उद्योग रखे गये, जैसे सीमेण्ट, चीनी, वस्त्र, नमक, कागज, इत्यादि। इस क्षेत्र के उद्योगों का स्वामित्व तथा संचालन निजी उद्योगपतियों को दिया गया, परन्तु इन पर सरकार का नियमन तथा नियन्त्रण रखा गया। चौथी श्रेणी में शेष सभी उद्योग रखे गये जो निजी व्यक्तियों द्वारा संचालित होंगे और जिन पर सरकार का सामान्य नियन्त्रण होगा।

३० अप्रैल, १९५६ को थोड़े परिवर्तनों के साथ औद्योगिक नीति का पुनर्निर्माण किया गया। इस नयी नीति के अनुसार, उद्योगों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। प्रथम श्रेणी में शस्त्रों का निर्माण, अणु-शक्ति, लोहा तथा इस्पात उद्योग, वायुयानों का निर्माण, कोयला, खनिज तेल, इत्यादि १७ उद्योग रखे गये। इस क्षेत्र के उद्योगों पर सरकार का पूर्ण एकाधिकार रखा गया। द्वितीय श्रेणी में, मशीन, टूल, अल्यूमीनियम, खाद, फेरोएलोयज, इत्यादि १२ उद्योग रखे गये। भविष्य में इस क्षेत्र के उद्योगों का विकास मुख्य रूप से सरकार पर छोड़ा गया। परन्तु इस क्षेत्र के उद्योगों के विकास के लिए निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के सहयोग पर बल दिया गया। तृतीय श्रेणी में शेष सभी उद्योगों को रखा गया जिनका प्रारम्भ तथा विकास निजी व्यक्तियों पर छोड़ा गया। नयी औद्योगिक नीति के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि औद्योगिक विकास तथा नियन्त्रण अधिनियम, १९५१ (Industrial Development and Regulation Act, 1951) द्वारा सरकार निजी उद्योगों पर पर्याप्त मात्रा में नियन्त्रण रखती है। इसके साथ-साथ सरकार ने निजी उद्योगों के विकास में सहयोग देने की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाएँ खोल रखी हैं।

इस प्रकार भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की स्थापना की गयी है जिसमें निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र के पारस्परिक सहयोग पर बल दिया गया है। सहकारी क्षेत्र को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। यद्यपि वर्तमान समय में भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था है, परन्तु भारत का दीर्घकालीन उद्देश्य 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' रखा गया है जिसमें कालान्तर में सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक विस्तृत तथा प्रबल किया जायेगा।

३५ आर्थिक आयोजन
[ECONOMIC PLANNING]

पृष्ठ-भूमि
(BACKGROUND)

पाश्चात्य देशों में १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'निर्बाधावादी पूँजीवाद' (*Laissez faire Capitalism*) के दोषों को अनुभव किया जाने लगा। इन्हें दूर करने के लिए विद्वानों तथा विचा-[रकों] ने राज्य हस्तक्षेप का समर्थन किया। राज्य हस्तक्षेप के समर्थन को आयोजन के विचार की [प्रार]म्भिक दशा कहा जा सकता है।

प्रथम विश्व-युद्ध काल में जर्मनी ने युद्ध की क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए आयोजन को अपनाया। परन्तु आयोजन को अस्थायी रूप से केवल युद्ध कालीन परिस्थितियों में ही अपनाया गया।

सन् १९२८ में रूस ने आर्थिक आयोजन को स्थायी आधार पर स्वीकार किया और देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाई। कालान्तर में रूस के आर्थिक आयोजन की सफलता का अन्य देशों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सन् १९३० में पूँजीवादी देश 'महान् मन्दी' (Great Depression) की चपेट में आये। मन्दी के परिणामस्वरूप पाश्चात्य देशों की आर्थिक व्यवस्थायें जर्जर हो गयी थीं। पूँजीवाद के मुख्य दोष—व्यापार चक्र, बिना इच्छा के बेरोजगारी (involuntary unemployment), वर्ग संघर्ष इत्यादि—स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे। इनसे मुक्ति पाने के लिए राज्य हस्तक्षेप तथा आयोजन की आवश्यकता अनुभव हुई। इस समय रूस में आयोजन की सफलता ने इस विचार को और बल प्रदान किया। केन्ज के लेखों ने राज्य हस्तक्षेप तथा आयोजन को [illegible]। अम-रीका में 'न्यू डील' (New Deal) तथा फ्रान्स मे 'ब्लम प्रयोग' (Blum Experiment) की नीतियों को अपनाया गया।

द्वितीय युद्ध में सम्बन्धित देशों ने पुनः आयोजन को अपनाया। [illegible] के लिए सम्बन्धित देशों को अपने आर्थिक साधनों का निर्देशित [illegible] करना आवश्यक था।

द्वितीय युद्ध के कारण यूरोपीय देशों की अर्थ-व्यवस्थायें [illegible] के लिए अमरीका ने 'मार्शल प्लान' (Marshall Plan) [illegible] सहायता प्राप्त करने के लिए यूरोपीय देशों को पुनर्निर्माण की [illegible] था। इस प्रकार आयोजन के विचार की जड़ें जम गयीं।

अन्त मे, एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया के देश [illegible] आर्थिक विकास के लिए आयोजन अपनाया।

स्पष्ट है कि प्रथम तथा द्वितीय विश्व-युद्ध की [illegible] जन की सफलता, केन्ज के लेख, अमरीका में न्यू डील (New Deal), [illegible] (Blum Experiment), द्वितीय युद्ध से ध्वसित यूरोप के [illegible] के लिए मार्शल प्लान का कार्यान्वित होना, पूँजीवाद के [illegible] देशों से तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकता, इत्यादि [illegible] प्रोत्साहित किया।

विचारपूर्वक यह निर्णय लिया जाता है कि क्या और कितना उत्पादन किया जायेगा तथा उसका वितरण किस प्रकार किया जायेगा ।"[2]

लीविस लोरविन (Lewis Lorwin) के अनुसार, योजनावद्ध आर्थिक व्यवस्था "आर्थिक संगठन की ऐसी योजना है जिसमें व्यक्तिगत तथा पृथक इकाइयों, उपक्रमों और उद्योगों को एक सम्पूर्ण प्रणाली की समन्वित इकाइयाँ माना जाता है और जिसका उद्देश्य एक निश्चित अवधि में समस्त उपलब्ध साधनों के प्रयोग द्वारा लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करके अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना होता है ।"[3]

श्रीमती वारवरा वूटन (Barbara Wootton) के अनुसार, "आयोजन का अर्थ है एक सार्वजनिक सत्ता द्वारा विचारपूर्वक तथा जानवूझ कर आर्थिक प्राथमिकताओं के वीच चुनाव करना ।"[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि आर्थिक आयोजन संगठन की ऐसी योजना है जिसमें (i) आर्थिक क्षेत्र में राज्य-हस्तक्षेप (state-intervention) तथा राज्य-सहभागिता (state-partnership) होती है; (ii) उद्देश्यों को विचारपूर्वक तथा जानवूझ कर निश्चित किया जाता है; (iii) उद्देश्यों के वीच प्राथमिकताएँ (priorities) निर्धारित की जाती हैं; (iv) उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निश्चित समय निर्धारित किया जाता है; (v) एक केन्द्रीय आयोजन सत्ता होती है जो कि देश के समस्त स्थित तथा सम्भावित साधनों का सर्वेक्षण करती है, योजना वनाती है तथा अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न भागों में समवन्य तथा एकीकरण स्थापित करती है ।

आयोजन की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF PLANNING)

आर्थिक आयोजन का अर्थ अच्छी प्रकार से समझने के लिए उसकी विशेषताओं की पूर्ण जानकारी आवश्यक है । मुख्य परिभाषाओं के आधार पर **आयोजन की विशेष प्रमुख** विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

(१) **केन्द्रीय नियोजन सत्ता**—आयोजन के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था को स्वतः संचालन के लिए नहीं छोड़ा जाता वरन् उसका संचालन और निर्देशन सरकार द्वारा होता है । आयोजन का समस्त कार्य सरकार एक केन्द्रीय आयोजन सत्ता (Central Planning Authority) को सौंप देती है । (अ) केन्द्रीय आयोजन सत्ता देश के समस्त साधनों का सर्वेक्षण करती है । (व) वह पूर्व-निश्चित उद्देश्यों तथा प्राप्य और सम्भावित साधनों के वीच समन्वय (co-ordination) स्थापित करती है । (स) सरकार योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक संगठन या एजेन्सी की व्यवस्था करती है ।

(२) **पूर्व निश्चित उद्देश्य**—आयोजन में विचारपूर्वक तथा जान-वूझ कर उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है । प्रायः उत्पादन-कुशलता में वृद्धि, रोजगार के अवसरों में वृद्धि आर्थिक

---

[2] "Economic planning is the making of major economic decisions—what and how much is to be produced, and to whom it is to be allocated—by the conscious decision of a determinate authority, on the basis of a comprehensive survey of the economic system as a whole."
—H. D. Dickinson : *Economics of Socialism*, p. 14.

[3] Planned economy is "a scheme of economic organisation in which individual and separate plants, enterprises and industries are treated as co-ordinate units of one single system for the purpose of utilising available resources to achieve the maximum satisfaction of the people's needs within a given time."
—Lewis Lorwin, Quoted dy George Frederick in *Reading, Economic Plannings in* p. 153.

[4] "Planning may be defined as the conscious and deliberate choice of economic priorities by some public authority."
—*Barabra Wotton*

सन् १६२८ में रूस ने आर्थिक आयोजन को स्थायी आधार पर स्वीकार किया और देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाई। कालान्तर में रूस में आर्थिक आयोजन की सफलता का अन्य देशों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सन् १६३० में पूँजीवादी देश 'महान् मन्दी' (Great Depression) की पकड़ में आये। मन्दी के परिणामस्वरूप पाश्चात्य देशों की आर्थिक व्यवस्थाएँ जर्जर हो गयी थीं। पूँजीवाद के मुख्य दोष—व्यापार चक्र, बिना इच्छा के बेरोजगारी (involuntary unemployment), वर्ग संघर्ष इत्यादि—स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे। इनसे मुक्ति पाने के लिए राज्य हस्तक्षेप तथा आयोजन की आवश्यकता अनुभव हुई। इस समय रूस में आयोजन की सफलता ने इस विचार को और बल प्रदान किया। केन्ज के लेखों ने राज्य हस्तक्षेप तथा आयोजन को प्रोत्साहन दिया। अमरीका में 'न्यू डील' (New Deal) तथा फ्रान्स में 'ब्लम प्रयोग' (Blum Experiment) की नीतियों को अपनाया गया।

द्वितीय युद्ध में सम्बन्धित देशों ने पुनः आयोजन को अपनाया। युद्ध को कुशलता से चलाने के लिए सम्बन्धित देशों को अपने आर्थिक साधनों का नियोजित तथा विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग करना आवश्यक था।

द्वितीय युद्ध के कारण यूरोपीय देशों की अर्थ-व्यवस्थाएँ ध्वंस हो गयी थीं, इसके पुनर्निर्माण के लिए अमरीका ने 'मार्शल प्लान' (Marshall Plan) बनाया। इस प्लान के अन्तर्गत आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए यूरोपीय देशों को पुनर्निर्माण की निश्चित योजनाएँ बनाना आवश्यक था। इस प्रकार आयोजन के विचार की जड़ें जम गयीं।

अन्त में, एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया के देश स्वतन्त्र हुए। इनमें से कई देशों ने तीव्र आर्थिक विकास के लिए आयोजन अपनाया।

स्पष्ट है कि प्रथम तथा द्वितीय विश्व-युद्ध की परिस्थितियाँ, महान मन्दी, रूस में आयोजन की सफलता, केन्ज के लेख, अमरीका में न्यू डील (New Deal) तथा फ्रांस में ब्लम प्रयोग (Blum Experiment), द्वितीय युद्ध में ध्वंसित यूरोप के देशों की अर्थ-व्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण के लिए मार्शल प्लान का कार्यान्वित होना, पूँजीवाद के मुख्य दोषों से मुक्ति पाने, अविकसित देशों से तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकता, इत्यादि वे तत्त्व हैं जिन्होंने आयोजन के विचार को प्रोत्साहित किया।

आर्थिक आयोजन की परिभाषा तथा अर्थ
(DEFINITION AND MEANING OF ECONOMIC PLANNING)

आधुनिक युग में आयोजन गहरी जड़ें जमा चुका है। परन्तु आयोजन के अर्थ, स्वभाव तथा क्षेत्र के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आयोजन को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। कुछ मुख्य परिभाषाएँ नीचे दी गयी हैं :

हायेक (Hayek) के अनुसार, आर्थिक नियोजन का अर्थ है, "एक केन्द्रीय सत्ता द्वारा उत्पादन क्रियाओं का निर्देशन।"[1]

डिकिनसन (Dickinson) के अनुसार, "प्रमुख आर्थिक निर्णय करने की क्रिया आर्थिक आयोजन है जिसमें समस्त अर्थ-व्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक निर्धारक सत्ता द्वारा

३० अप्रैल, १९५६ को थोड़े परिवर्तनों के साथ औद्योगिक नीति का पुनर्निर्माण किया गया। इस नयी नीति के अनुसार, उद्योगों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। प्रथम श्रेणी में शस्त्रों का निर्माण, अणु-शक्ति, लोहा तथा इस्पात उद्योग, वायुयानों का निर्माण, कोयला, खनिज तेल, इत्यादि १७ उद्योग रखे गये। इस क्षेत्र के उद्योगों पर सरकार का पूर्ण एकाधिकार रखा गया। द्वितीय श्रेणी में, मशीन, टूल, अल्यूमीनियम, खाद, फेरोएलोयज, इत्यादि १२ उद्योग रखे गये। भविष्य में इस क्षेत्र के उद्योगों का विकास मुख्य रूप से सरकार पर छोड़ा गया। परन्तु इस क्षेत्र के उद्योगों के विकास के लिए निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के सहयोग पर बल दिया गया। तृतीय श्रेणी में शेष सभी उद्योगों को रखा गया जिनका प्रारम्भ तथा विकास निजी व्यक्तियों पर छोड़ा गया। नयी औद्योगिक नीति के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि औद्योगिक विकास तथा नियन्त्रण अधिनियम, १९५१ (Industrial Development and Regulation Act, 1951) द्वारा सरकार निजी उद्योगों पर पर्याप्त मात्रा में नियन्त्रण रखती है। इसके साथ-साथ सरकार ने निजी उद्योगों के विकास में सहयोग देने की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाएँ खोल रखी हैं।

इस प्रकार भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की स्थापना की गयी है जिसमें निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र के पारस्परिक सहयोग पर बल दिया गया है। सहकारी क्षेत्र को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। यद्यपि वर्तमान समय में भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था है, परन्तु भारत का दीर्घकालीन उद्देश्य 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' रखा गया है जिसमें कालान्तर में सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक विस्तृत तथा प्रबल किया जायेगा।

३५ आर्थिक आयोजन
[ECONOMIC PLANNING]

पृष्ठ-भूमि
(BACKGROUND)

पाश्चात्य देशों में १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'निर्बाधावादी पूंजीवाद' (*Laissez faire* Capitalism) के दोषों को अनुभव किया जाने लगा। इन्हें दूर करने के लिए विद्वानों तथा विचारकों ने राज्य हस्तक्षेप का समर्थन किया। राज्य हस्तक्षेप के समर्थन को आयोजन के विचार की प्रारम्भिक दशा कहा जा सकता है।

प्रथम विश्व-युद्ध काल में जर्मनी ने युद्ध की क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए आयोजन को अपनाया। परन्तु आयोजन को अस्थायी रूप से केवल युद्ध कालीन परिस्थितियों में ही अपनाया गया।

असमानताओं को दूर करना, देश के आर्थिक विकास की गति को तीव्र करना इत्यादि उद्देश्य निश्चित किये जाते हैं।

(३) प्राथमिकताएँ—आयोजन के अन्तर्गत केन्द्रीय सत्ता उद्देश्यों के बीच प्राथमिकताएँ (priorities) निर्धारित करती हैं क्योंकि साधन सीमित होते हैं और उद्देश्य अनेक तथा प्रतियोगी होते हैं।

(४) समयावधि—उद्देश्यों को प्रायः निर्धारित किये हुए एक निश्चित समय में पूर्ण करने के प्रयत्न किये जाते हैं।

(५) व्यापक क्षेत्र—विकासमान आयोजन (Developmental Planning) में आयोजन का क्षेत्र व्यापक होता है अर्थात् समस्त अर्थ-व्यवस्था का आयोजन किया जाता है ताकि तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त किया जा सके। उन्नतशील देशों (advanced economies) में कभी-कभी केवल कुछ खण्डों (sectors) के विकास के लिए ही आयोजन किया जाता है। संक्षेप में, आयोजन मुख्यतया 'व्यापक दृष्टिकोण' (Macro Approach) रखता है, परन्तु आवश्यकतानुसार 'सूक्ष्म दृष्टिकोण' (Micro Approach) को भी अपनाया जाता है।

(६) संरचनात्मक (Structural) परिवर्तन—विकासमान आयोजन में अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों तथा अंगों का केवल समन्वय तथा एकीकरण ही नहीं किया जाता, वरन् इसके अन्तर्गत कुछ 'संरचनात्मक परिवर्तन' (structural changes) भी किये जाते हैं। केन्द्रीय आयोजन सत्ता अपना ध्यान केवल 'उपस्थित कड़ियों' (existing links) पर ही केन्द्रित नहीं करती वरन् वह 'पिछड़ी महत्वपूर्ण कड़ियों' (backward crucial links) को तोड़ती है और, तत्पश्चात अर्थ-व्यवस्था की विभिन्न 'कड़ियों' का समन्वय तथा एकीकरण (co-ordination and integration) करती है।

(७) दीर्घकालीन (Perspective) दृष्टिकोण—आयोजन एक निरन्तर तथा दीर्घकालीन प्रक्रिया (continuous and long-term process) है। दीर्घकालीन आयोजन अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि तभी यह स्पष्ट होगा कि १५-२५ वर्ष बाद हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं। अल्पकालीन योजनाओं का दीर्घकालीन आयोजन के साथ समन्वय करते रहना आवश्यक है। वास्तव में, दीर्घकालीन आयोजन ही आयोजन प्रक्रिया का सार है।[5]

(८) लोच—यह आवश्यक है कि योजना लोचपूर्ण (flexible) हो। सांख्यिकीय तकनीक, (statistical techniques) कितने ही अच्छे क्यों न हों, परन्तु फिर भी त्रुटि होने की सम्भावनाएँ रहती हैं। इसलिए आयोजन प्रक्रिया में जो कुसंमजन (maladjustment) अनुभव हो, उसे सुधारना आवश्यक है। अतः एक सीमा तक आयोजन लोचपूर्ण होता है और यह आयोजन की एक मुख्य विशेषता है।

(९) मूल्यांकन तन्त्र—आयोजन ठीक प्रकार से हो रहा है या नहीं, उसको आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है या नहीं; इन सब बातों के जानने के लिए एक मूल्यांकन तन्त्र (Evaluation machinery) की व्यवस्था होती है। यह मूल्यांकन तन्त्र आयोजन का सामान्य या विशिष्ट सर्वेक्षण ...ा है।

आर्थिक आयोजन के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF ECONOMIC PLANNING)

सब देशों के लिए समान नहीं होते और न वे एक ही देश के लिए

विचारपूर्वक यह निर्णय लिया जाता है कि क्या और कितना उत्पादन किया जायेगा तथा उसका वितरण किस प्रकार किया जायेगा ।"[2]

लीविस लोरविन (Lewis Lorwin) के अनुसार, योजनाबद्ध आर्थिक व्यवस्था "आर्थिक संगठन की ऐसी योजना है जिसमें व्यक्तिगत तथा पृथक इकाइयों, उपक्रमों और उद्योगों को एक सम्पूर्ण प्रणाली की समन्वित इकाइयाँ माना जाता है और जिसका उद्देश्य एक निश्चित अवधि में समस्त उपलब्ध साधनों के प्रयोग द्वारा लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करके अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना होता है ।"[3]

श्रीमती बारबरा वूटन (Barbara Wootton) के अनुसार, "आयोजन का अर्थ है एक सार्वजनिक सत्ता द्वारा विचारपूर्वक तथा जानबूझ कर आर्थिक प्राथमिकताओं के बीच चुनाव करना ।"[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि आर्थिक आयोजन संगठन की ऐसी योजना है जिसमें (i) आर्थिक क्षेत्र में राज्य-हस्तक्षेप (state-intervention) तथा राज्य-सहभागिता (state-partnership) होती है; (ii) उद्देश्यों को विचारपूर्वक तथा जानबूझ कर निश्चित किया जाता है; (iii) उद्देश्यों के बीच प्राथमिकताएँ (priorities) निर्धारित की जाती हैं; (iv) उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निश्चित समय निर्धारित किया जाता है; (v) एक केन्द्रीय आयोजन सत्ता होती है जो कि देश के समस्त स्थित तथा सम्भावित साधनों का सर्वेक्षण करती है, योजना बनाती है तथा अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न भागों में समवन्य तथा एकीकरण स्थापित करती है ।

आयोजन की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF PLANNING)

आर्थिक आयोजन का अर्थ अच्छी प्रकार से समझने के लिए उसकी विशेषताओं की पूर्ण जानकारी आवश्यक है । मुख्य परिभाषाओं के आधार पर **आयोजन की विशेष प्रमुख** विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

(१) **केन्द्रीय नियोजन सत्ता**—आयोजन के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था को स्वतः संचालन के लिए नहीं छोड़ा जाता वरन् उसका संचालन और निर्देशन सरकार द्वारा होता है । आयोजन का समस्त कार्य सरकार एक केन्द्रीय आयोजन सत्ता (Central Planning Authority) को सौंप देती है । (अ) केन्द्रीय आयोजन सत्ता देश के समस्त साधनों का सर्वेक्षण करती है । (ब) वह पूर्व-निश्चित उद्देश्यों तथा प्राप्य और सम्भावित साधनों के बीच समन्वय (co-ordination) स्थापित करती है । (स) सरकार योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक संगठन या एजेन्सी की व्यवस्था करती है ।

(२) **पूर्व निश्चित उद्देश्य**—आयोजन में विचारपूर्वक तथा जान-बूझ कर उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है । प्रायः उत्पादन-कुशलता में वृद्धि, रोजगार के अवसरों में वृद्धि आर्थिक

---

2 "Economic planning is the making of major economic decisions—what and how much is to be produced, and to whom it is to be allocated—by the conscious decision of a determinate authority, on the basis of a comprehensive survey of the economic system as a whole."
—H. D. Dickinson : *Economics of Socialism*, p. 14.

3 Planned economy is "a scheme of economic organisation in which individual and separate plants, enterprises and industries are treated as co-ordinate units of one single system for the purpose of utilising available resources to achieve the maximum satisfaction of the people's needs within a given time."
—Lewis Lorwin, Quoted dy George Frederick in *Reading, Economic Plannings in* p. 153.

4 "Planning may be defined as the conscious and deliberate choice of economic priorities by some public authority."
—*Barabra Wotton*

आयोजन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें

आयोजन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

(१) प्रायः एक देश एक समय में कई उद्देश्य अपनाता है । परन्तु इन उद्देश्यों का महत्त्व देश विशेष की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। एक देश में एक समय में कुछ उद्देश्यों पर दूसरे देश की अपेक्षा अधिक बल दिया जायेगा।

(२) आयोजन के उद्देश्य केवल आर्थिक या राजनीतिक या सामाजिक ही नहीं होते, वरन् वे प्रायः मिश्रित होते हैं।

(३) अल्पकाल में कुछ उद्देश्य प्रतियोगी तथा परस्पर विरोधी (competitive and conflicting) होते हैं। उदाहरणार्थ, प्रारम्भ में अधिक उत्पादन तथा अधिक रोजगार में थोड़ा विरोध (conflict) होता है। यदि बड़े तथा भारी उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है तो अधिक उत्पादन प्राप्त होगा परन्तु लोगों को अपेक्षाकृत कम रोजगार मिलेगा क्योंकि इन उद्योगों में विवेकीकरण होगा और अधिक मशीनों का प्रयोग होगा। यदि कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है तो लोगों को अधिक रोजगार प्राप्त हो सकेगा परन्तु प्रति व्यक्ति आय और उत्पादन कम होगा। अतः प्रारम्भिक अवस्था में इस प्रकार के परस्पर विरोधी उद्देश्यों के बीच समन्वय स्थापित करना पड़ता है। इसी प्रकार प्रारम्भ में सामाजिक सेवाओं तथा औद्योगीकरण में थोड़ा विरोध रहता है। परन्तु दीर्घकाल में पर्याप्त आर्थिक विकास हो जाने के बाद इस प्रकार का विरोध नहीं रहता या बहुत कम हो जाता है।

(४) वास्तव में, उद्देश्य परस्पर सम्बन्धित तथा निर्भर (inter-linked and inter-dependent) होते हैं। अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आर्थिक तथा सामाजिक समानता—ये सब उद्देश्य एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और परस्पर निर्भर हैं।

नियोजित तथा अनियोजित अर्थ-व्यवस्थाएं—एक तुलना
(PLANNED AND UNPLANNED ECONOMIES—A COMPARISON)

अनियोजित अर्थ-व्यवस्था का अर्थ

सामान्यतया एक अनियोजित अर्थ-व्यवस्था स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था या पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था होती है जिसमें आर्थिक मामलों में राज्य का हस्तक्षेप निम्नतम होता है। (i) अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन, उपभोग, विनिमय तथा वितरण की क्रियाएँ बाजार की स्वतन्त्र शक्तियों पर छोड़ दी जाती हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवसाय को चुनने में स्वतन्त्र होता है। दूसरे शब्दों में, किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन होगा, किन वस्तुओं का उपभोग किया जायेगा, इत्यादि निर्णय तथा विभिन्न क्षेत्रों में समन्वय किसी केन्द्रीय सत्ता द्वारा नहीं किया जाता है। समन्वय तथा निर्णय लेने के कार्य स्वचालित मूल्य-यन्त्र और लाभ-उद्देश्य द्वारा किये जाते हैं। (ii) इसमें समस्त अर्थ-व्यवस्था के लिए उद्देश्यों को विचारपूर्वक पूर्व-निश्चित नहीं किया जाता, केवल व्यक्तिगत उत्पादक लाभ-उद्देश्य से अपने उत्पादन की योजना बनाते हैं। (iii) समाज की दृष्टि से उद्देश्यों के बीच कोई प्राथमिकताएँ निर्धारित नहीं की जातीं। (iv) चूँकि समस्त समाज की दृष्टि से कोई उद्देश्य निर्धारित नहीं किये जाते, इसलिए उनकी पूर्ति के लिए किसी समयावधि के निर्धारण का प्रश्न ही नहीं उठता।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था का अर्थ

नियोजित अर्थ-व्यवस्था ऐसा आर्थिक संगठन है जिसमें (i) आर्थिक क्षेत्र में राज्य हस्तक्षेप तथा राज्य-सहभागिता होती है। एक केन्द्रीय आयोजन सत्ता देश के समस्त स्थित तथा सम्भावित

सब समयों में एक समान रहते हैं। वास्तव में, किसी देश में आर्थिक आयोजन के उद्देश्य उस देश के आर्थिक विकास की दशा, राजनीतिक ढाँचे, सामाजिक-आर्थिक दशाओं इत्यादि द्वारा प्रभावित होते हैं। परन्तु फिर भी कुछ सामान्य आर्थिक उद्देश्य (economic objectives) होते हैं। इन उद्देश्यों को हम निम्न तीन भागों में बाँट सकते हैं :

(अ) आर्थिक उद्देश्य; (ब) सामाजिक उद्देश्य; तथा (स) राजनीतिक उद्देश्य।

(अ) आर्थिक उद्देश्य

(१) देश के समस्त साधनों का पूर्ण प्रयोग करके **राष्ट्रीय आय का अधिकतम** करना ताकि लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा हो सके।

(२) मूल्यों के उतार-चढ़ाव को नियन्त्रित कर **आर्थिक जीवन में स्थिरता लाना**।

(३) बेरोजगारी आर्थिक असमानताओं को जन्म देती है, इससे मानव शक्ति का पूर्ण प्रयोग नहीं होता तथा सामाजिक असन्तुष्टि पनपती है, इसलिए आयोजन का एक मुख्य उद्देश्य **पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करना है।**

(४) **कृषि का विकास** करना ताकि उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में कच्चे माल तथा व्यक्तियों को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न प्राप्त हो सकें।

(५) **तीव्र औद्योगिक विकास** करना; इसके परिणामस्वरूप अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे, देश के उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी तथा कृषि के विकास में सहायता मिलेगी। मुख्यतया कृषि पर निर्भर रहने वाली अर्थ-व्यवस्थाएँ पिछड़ी होती हैं, इसके विकास के लिए तीव्र औद्योगीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

(६) धन के अधिक न्याययुक्त वितरण द्वारा देश में **आर्थिक असमानताओं को दूर करना**। इससे धनी तथा निर्धन व्यक्तियों के बीच खाई (gulf) कम होगी, लोगों के कल्याण में वृद्धि होगी तथा आर्थिक और राजनीतिक स्थायित्व प्राप्त हो सकेगा।

(७) देश विशेष का **सन्तुलित आर्थिक विकास करना**। इसका अर्थ है कि यदि देश मुख्यतया कृषि पर निर्भर करता है तो तीव्र औद्योगिक विकास द्वारा कृषि पर अत्यधिक निर्भरता को समाप्त कर उसका सन्तुलित विकास किया जाय। इसके अतिरिक्त, यदि देश में कुछ क्षेत्र (regions) पिछड़े हुए हों, तो उनका भी विकास किया जाय ताकि क्षेत्रीय असमानताएँ कम हो जायें।

(ब) सामाजिक उद्देश्य

(१) सामाजिक सुरक्षा की अच्छी व्यवस्था।

(२) सामाजिक समानता को प्राप्त करना।

(स) राजनीतिक उद्देश्य

(१) प्रतिरक्षा की दृष्टि से देश को शक्तिशाली बनाना।

(२) आवश्यकता पड़ने पर आक्रमण की दृष्टि से देश के साधनों का नियोजन तथा प्रयोग ना।

(३) शान्ति के लिए; आधुनिक युग में इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि अन्तर-न स्तर पर सब उन्नतिशील राष्ट्र मिल कर अविकसित देशों के विकास में सहयोग दें ताकि शील देशों तथा अविकसित देशों के बीच खाई कम हो और शान्ति के लिए अधिक उपयुक्त वरण उत्पन्न हो।

आयोजन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें

आयोजन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

(१) प्रायः एक देश एक समय में कई उद्देश्य अपनाता है। परन्तु इन उद्देश्यों का महत्त्व देश विशेष की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। एक देश में एक समय में कुछ उद्देश्यों पर दूसरे देश की अपेक्षा अधिक बल दिया जायेगा।

(२) आयोजन के उद्देश्य केवल आर्थिक या राजनीतिक या सामाजिक ही नहीं होते, वरन् वे प्रायः मिश्रित होते हैं।

(३) अल्पकाल में कुछ उद्देश्य प्रतियोगी तथा परस्पर विरोधी (competitive and conflicting) होते हैं। उदाहरणार्थ, प्रारम्भ में अधिक उत्पादन तथा अधिक रोजगार में थोड़ा विरोध (conflict) होता है। यदि बड़े तथा भारी उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है तो अधिक उत्पादन प्राप्त होगा परन्तु लोगों को अपेक्षाकृत कम रोजगार मिलेगा क्योंकि इन उद्योगों में विवेकीकरण होगा और अधिक मशीनों का प्रयोग होगा। यदि कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है तो लोगों को अधिक रोजगार प्राप्त हो सकेगा परन्तु प्रति व्यक्ति आय और उत्पादन कम होगा। अतः प्रारम्भिक अवस्था में इस प्रकार के परस्पर विरोधी उद्देश्यों के बीच समन्वय स्थापित करना पड़ता है। इसी प्रकार प्रारम्भ में सामाजिक सेवाओं तथा औद्योगीकरण में थोड़ा विरोध रहता है। परन्तु दीर्घकाल में पर्याप्त आर्थिक विकास हो जाने के बाद इस प्रकार का विरोध नहीं रहता या बहुत कम हो जाता है।

(४) वास्तव में, उद्देश्य परस्पर सम्बन्धित तथा निर्भर (inter-linked and inter-dependent) होते हैं। अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आर्थिक तथा सामाजिक समानता—ये सब उद्देश्य एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और परस्पर निर्भर हैं।

नियोजित तथा अनियोजित अर्थ-व्यवस्थाएँ—एक तुलना
(PLANNED AND UNPLANNED ECONOMIES—A COMPARISON)

अनियोजित अर्थ-व्यवस्था का अर्थ

सामान्यतया एक अनियोजित अर्थ-व्यवस्था स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था या पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था होती है जिसमें आर्थिक मामलों में राज्य का हस्तक्षेप निम्नतम होता है। (i) अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन, उपभोग, विनिमय तथा वितरण की क्रियाएँ बाजार की स्वतन्त्र शक्तियों पर छोड़ दी जाती हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवसाय को चुनने में स्वतन्त्र होता है। दूसरे शब्दों में, किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन होगा, किन वस्तुओं का उपभोग किया जायेगा, इत्यादि निर्णय तथा विभिन्न क्षेत्रों में समन्वय किसी केन्द्रीय सत्ता द्वारा नहीं किया जाता है। समन्वय तथा निर्णय लेने के कार्य स्वचालित मूल्य-यन्त्र और लाभ-उद्देश्य द्वारा किये जाते हैं। (ii) इसमें समस्त अर्थ-व्यवस्था के लिए उद्देश्यों को विचारपूर्वक पूर्व-निश्चित नहीं किया जाता, केवल व्यक्तिगत उत्पादक लाभ-उद्देश्य से अपने उत्पादन की योजना बनाते हैं। (iii) समाज की दृष्टि से उद्देश्यों के बीच कोई प्राथमिकताएँ निर्धारित नहीं की जाती। (iv) चूँकि समस्त समाज की दृष्टि से कोई उद्देश्य निर्धारित नहीं किये जाते, इसलिए उनकी पूर्ति के लिए किसी समयावधि के निर्धारण का प्रश्न ही नहीं उठता।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था का अर्थ

नियोजित अर्थ-व्यवस्था ऐसा आर्थिक संगठन है जिसमें (i) आर्थिक क्षेत्र में राज्य हस्तक्षेप तथा राज्य-सहभागिता होती है। एक केन्द्रीय आयोजन सत्ता देश के समस्त स्थिर तथा स्वीकारित

साधनों का सर्वेक्षण करती है, योजना बनाती है तथा अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न भागों में समन्वय तथा एकीकरण स्थापित करती है। (ii) उद्देश्यों को विचारपूर्वक तथा जान-बूझकर निश्चित किया जाता है। (iii) उद्देश्यों के बीच प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती हैं। (iv) उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निश्चित समय निर्धारित किया जाता है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के दोष (या अनियोजित अर्थ-व्यवस्था के गुण)

(१) **स्वतन्त्रता का अभाव**—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में शक्ति का केन्द्रीयकरण होता है, परिणामस्वरूप सभी प्रकार की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है या बहुत कम हो जाती है।

(i) इसके अन्तर्गत **व्यक्तियों को अपना व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता नहीं** रहती है, वे केवल केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित व्यवसायों में ही कार्य कर सकते हैं। इसके विपरीत अनियोजित अर्थ-व्यवस्था या स्वतन्त्र-उपक्रम में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुसार व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता रहती है। परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था में भी व्यवसायों का निर्धारण करते समय व्यक्तियों की रुचियों तथा देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है।

(ii) आयोजित अर्थ-व्यवस्था में **उपभोक्ता की प्रभुता या स्वतन्त्रता समाप्त** हो जाती है, वह केवल उन वस्तुओं का ही प्रयोग कर सकता है जिनका उत्पादन सरकार चाहती है। सरकार प्रायः आवश्यक वस्तुओं का राशन करके उपभोग की मात्रा भी निर्धारित कर देती है। परन्तु ध्यान रहे कि अनियोजित अर्थ-व्यवस्था या स्वतन्त्र उपक्रम में भी उपभोक्ता की प्रभुता वास्तविक नहीं है, उत्पादक विज्ञापन तथा प्रसार द्वारा उपभोक्ताओं के चुनाव को प्रभावित करते रहते हैं।

(iii) हायेक (Hayek) के अनुसार, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा आयोजन असंगत (incompatable) हैं, दोनों का सहअस्तित्व नहीं हो सकता। परन्तु बारबरा वूटन का मत है कि लोकतान्त्रिक नियोजित अर्थ-व्यवस्था में स्वतन्त्रता बनी रहती है। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र उपक्रम में अत्यधिक प्रतियोगिता के दोषों को दूर करने के लिए आयोजन की आवश्यकता पड़ती है।

(२) **भ्रष्टाचार तथा अकुशलता**—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में प्रतियोगिता की कमी तथा केन्द्रीय नियन्त्रण और निर्देशन के परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार तथा अकुशलता पायी जाती है।

(i) प्रतियोगिता की कमी के कारण **अधिकारियों में शिथिलता रहती है** जिससे उनकी कुशलता में कमी हो जाती है। आयोजित अर्थ-व्यवस्था में कार्यकरण में देर होती है क्योंकि प्रत्येक कार्य का निर्धारण केन्द्रीय सत्ता द्वारा होता है।

(ii) प्रायः **अधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर नहीं** वरन् राजनीतिक विचारों पर की जाती है।

(iii) सामान्यतया **सरकारी अधिकारी भ्रष्ट** होते हैं। परन्तु ध्यान रहे कि बड़ी-बड़ी निजी कम्पनियों के अधिकारियों में भी भ्रष्टाचार पाया जाता है।

(iv) नियोजित अर्थ-व्यवस्था में **अधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं की बहुत अधिक संख्या में आवश्यकता** पड़ती है, परन्तु शिक्षित, ईमानदार, कुशल तथा प्रशिक्षित कार्यकर्ता इतनी बड़ी संख्या में सुगमता से प्राप्त नहीं होते।

(v) समस्त अर्थ-व्यवस्था के **आयोजन का कार्य अत्यन्त जटिल** तथा गुथा हुआ होता है जिसके लिए सामान्य व्यक्ति नहीं वरन् अर्द्ध-देवता (Demi-gods) चाहिए। अतः आयोजित अर्थ-व्यवस्था में अकुशलता रहती है। इसके विपरीत अनियोजित अर्थ-व्यवस्था या स्वतन्त्र उपक्रम में मूल्य-यन्त्र द्वारा सारा कार्य कुशलता के साथ स्वतः होता है।

(ii) उपर्युक्त सब बातों के कारण कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री, जैसे रोबर्टसन (Robertson), हेरोड (Harrod), इत्यादि एक केन्द्रीय सत्ता द्वारा समस्त उत्पादन तथा वितरण के निर्देशन के विरुद्ध हैं। वे बजट नीति, सामान्य वित्तीय तथा मौद्रिक नियन्त्रणों को ही पर्याप्त समझते हैं।

(३) साधनों का अविवेकपूर्ण वितरण—आयोजित अर्थ-व्यवस्था मे केन्द्रीय सत्ता द्वारा साधनों के वितरण के लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता, प्रायः वितरण (allocation) अविवेकपूर्ण होता है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-यन्त्र साधनों को विभिन्न प्रयोगों मे विवेकपूर्ण ढंग से वितरित करता है। यह मूल्य-यन्त्र नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे अनुपस्थित होता है।

(४) श्रमिकों में प्रेरणा की कमी—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में श्रमिकों के ग्रेड, कार्यदशाएँ, उन्नति के अवसर, इत्यादि एक निश्चित योजना के अनुसार पूर्व-निर्धारित किये जाते हैं जिससे श्रमिकों में अधिक परिश्रम करने की प्रेरणा नहीं रह जाती है।

(५) ऊँची प्रशासन लागत—नियोजन के लिए अधिकारियों, लिपिकों तथा अन्य कार्यकर्ताओं की पूरी फौज रखनी पड़ती है और इस प्रकार प्रशासन लागत (administrative cost) बहुत अधिक पड़ती है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में प्रशासन लागत ऊँची नहीं होती क्योंकि वह मूल्य-यन्त्र द्वारा स्वतः कार्य करती रहती है।

(६) शक्ति का केन्द्रीकरण—कुल नियोजन मे समस्त शक्ति थोडे से व्यक्तियो के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। परिणामस्वरूप एक त्रुटि का प्रभाव समस्त अर्थ-व्यवस्था पर पड़ता है। इसके विपरीत अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में शक्ति के विकेन्द्रीकरण के कारण एक त्रुटि का प्रभाव केवल थोड़े से व्यक्तियों पर ही पड़ता है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के गुण (या अनियोजित अर्थ-व्यवस्था के दोष)

रोबिन्स के शब्दों में, "आर्थिक नियोजन हमारे युग का रामबाण (panacea) है।[6] नियोजन की आवश्यकता या उसके पक्ष में तर्क मुख्यतया दो बातों पर निर्भर है। प्रथम, स्वतन्त्र उपक्रम के दोषों को दूर करने के लिए नियोजन की आवश्यकता है। दूसरे, अविकसित देशों के तीव्र आर्थिक विकास के लिए नियोजन विशेष रूप से आवश्यक है। नियोजन के पक्ष मे तर्क या उसके गुण निम्नलिखित हैं:

(१) साधनों का अधिकतम प्रयोग—(अ) नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे केन्द्रीय सत्ता देश के समस्त साधनो का सर्वेक्षण करती है और प्राथमिकताओ के आधार पर उनका अधिकतम प्रयोग करती है। इसके विपरीत अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे न तो सम्पूर्ण साधनों का कोई वैज्ञानिक सर्वेक्षण ही होता है और न कोई प्राथमिकताएँ ही निर्धारित की जाती हैं। (ब) नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे केन्द्रीय सत्ता द्वारा साधनों में उचित समन्वय स्थापित किया जाता है तथा कर्मचारियो और यन्त्रों का द्विगुण (duplication) नहीं होने पाता। (स) नियोजन प्रतियोगिता को कम करके अपव्यय (waste) को रोकता है। राज्य नियन्त्रण उचित (fair) प्रतियोगिता की व्यवस्था कर सकता है। बाजार यन्त्र के साथ विभिन्न मात्राओ में नियोजन का मिश्रण करके उसके कार्यकरण को अधिक कुशल तथा उपयोगी बनाया जा सकता है।

(२) कल्याण-उद्देश्य—(अ) अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति लाभ-उद्देश्य तथा स्व हित से कार्य करता है और समाज के कल्याण का कोई ध्यान नहीं रखता। इसके विपरीत

6 "Economic planning is a grand panacea of our age." —*Robbins*

नियोजित अर्थ-व्यवस्था में केन्द्रीय सत्ता कल्याण-उद्देश्य (welfare motive) के कार्य करती है। (ब) नियोजित अर्थ-व्यवस्था में इस बात को प्रोत्साहन नहीं मिलता कि समाज के कुछ वर्ग बिना श्रम किये अन्य लोगों के श्रम पर जीवित रहें अर्थात् इसके अन्तर्गत सामाजिक परजीविता (social parasitism) को समाप्त करने के प्रयत्न किये जाते हैं। (स) नियोजित अर्थ-व्यवस्था में श्रमिकों का शोषण नहीं होता और वे अपने श्रम का पूरा परितोषण पाते हैं। (द) अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में अधिकतम लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से उत्पादक मिल कर ट्रस्ट, कारटेल, एकाधिकार, इत्यादि बनाकर वस्तुओं की कृत्रिम कमी (artificial shortage) करते हैं, तथा मूल्य ऊँचे करके उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं। परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ताओं का शोषण नहीं होता क्योंकि वस्तुओं की कृत्रिम कमी नहीं की जा सकती है।

(३) **साधनों का अनुकूलन (optimum) वितरण**—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक शक्तियों को स्वतन्त्र नहीं छोड़ा जाता। इसमें प्राथमिकताओं के आधार पर केन्द्रीय सत्ता साधनों का वितरण (allocation) करती है। इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था में साधनों का अधिक अच्छा वितरण होता है।

(४) **आर्थिक असमानताओं में कमी**—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में स्वचालित मूल्य-यन्त्र (automatic price-mechanism) के कारण धनी और अधिक धनी तथा निर्धन और अधिक निर्धन होते जाते हैं। परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था में केन्द्रीय नियोजन सत्ता के कारण इस प्रकार की आर्थिक असमानताएँ नहीं होतीं वरन् इसके अन्तर्गत धन के अधिक समान वितरण का प्रयत्न किया जाता है।

(५) **आर्थिक स्थायित्व**—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में केन्द्रीय सत्ता द्वारा उत्पादन का समन्वय किया जाता है जिससे अति-उत्पादन (over-production) तथा कम उत्पादन (under production) नहीं होता। इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था में व्यापार-चक्रों (trade cycles) की बुराई से मुक्ति मिलती है।

(६) **नये परिवर्तनों के साथ शीघ्र सामंजस्य**—आधुनिक युग के औद्योगिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में निरन्तर परिवर्तन होते हैं। इन परिस्थितियों में विवेकीकरण (rationalisation) तथा अन्य प्रकार के संरचनात्मक (structural) परिवर्तनों को करना पड़ता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में ही इन परिवर्तनों के साथ सुगमतापूर्वक तथा शीघ्रता से सामंजस्य (adjustment) हो सकता है।

(७) **सामाजिक लागतों का निराकरण**—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था या स्वतन्त्र उपक्रम में औद्योगिक बीमारियों औद्योगिक, दुर्घटनाओं, चक्रीय बेरोजगारी (cyclical unemployment) अत्यधिक भीड़-भाड़ (over crowding), अस्वस्थ दशाओं के रूप में व्यक्तियों को 'सामाजिक लागतों' (social costs) का सामना करना पड़ता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में इन 'सामाजिक लागतों' का निराकरण किया जा सकता है या उनमें बहुत कमी की जा सकती है।

(८) **पूँजी निर्माण की ऊँची दर**—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में पूंजी-निर्माण शीघ्र गति से किया जा सकता है। इसमें सार्वजनिक उद्योग से प्राप्त अतिरेक (surplus) व्यक्तिगत लोगों की [illegible] में नहीं जाता वरन् सरकार को प्राप्त होता है जिससे वह पूंजीगत वस्तुओं का क्रय करती [illegible] इस प्रकार पूंजी-निर्माण अधिक शीघ्र गति से होता है।

(९) **अविकसित देशों के लिए नियोजन विशेष रूप से आवश्यक**—(i) नियोजन के द्वारा [illegible] देशों में साधनों का अधिकतम प्रयोग सम्भव हो सकेगा। (ii) प्राथमिकताओं के आधार

पर साधनों का अधिक अच्छा वितरण होगा। (iii) सिंचाई योजनाओं, यातायात के साधनों विद्युतीकरण की योजनाओं, इत्यादि में निजी व्यक्ति पूंजी नहीं लगाना चाहते हैं। इन क्षेत्रों का नियोजित ढंग से सरकार पूंजी लगा कर विकास कर सकती है ताकि देश का आर्थिक विकास शीघ्रता से हो सके। (iv) इसी प्रकार सरकार लोहा तथा इस्पात उद्योग, भारी रसायन उद्योग तथा अन्य बुनियादी उद्योगों का विकास करके देश के लिए एक सुदृढ औद्योगिक ढांचे का निर्माण कर सकती है। (v) नियोजन द्वारा ही अविकसित देशों में तीव्र गति से पूंजी का निर्माण किया जा सकता है। (vi) नियोजन द्वारा ही अविकसित देशों की तीव्र गति से बढती हुई जनसंख्या को रोका जा सकता है, आर्थिक असमानता को दूर किया जा सकता है, तथा बाधक सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोणों को बदला जा सकता है। स्पष्ट है कि अविकसित देशों में तीव्र आर्थिक विकास के लिए नियोजन अत्यन्त आवश्यक है।

निष्कर्ष—वास्तव में आधुनिक युग में नियोजन के महत्व को स्वीकार किया जा चुका है। अब कोई भी देश 'हस्तक्षेप की नीति' (*laissez-faire*) में विश्वास नहीं करता है। लेविस (Lewis) के शब्दों में "अब हस्तक्षेप की नीति में विश्वास करने वाले नहीं हैं, यदि हैं तो वे पागलों की भांति हैं।"[6] अब इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि नियोजन किया जाय या न किया जाय, मतभेद इस बात पर है कि नियोजन का क्या रूप होना चाहिए। प्रो० लेविस (Lewis) के अनुसार, "नियोजन पर विचार विनिमय में केन्द्रीय बात यह नहीं है कि नियोजन होना चाहिए या नहीं वरन् यह है कि इसका कौन-सा रूप होना चाहिए।"[8]

नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक दशाएँ
(ESSENTIAL CONDITIONS FOR THE SUCCESS OF PLANNING)

(१) साधनों का उचित मूल्यांकन—योजना बनाने से पहले यह आवश्यक है कि देश के समस्त साधनों का सर्वेक्षण (survey) और उनका उचित मूल्यांकन (assessment) किया जाय। इसके लिए राष्ट्रीय आय, कच्चे माल, पूंजीगत वस्तुओं इत्यादि के सम्बन्ध में सही आंकड़े एकत्रित किये जाने चाहिए।

(२) उद्देश्यों, लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण—(अ) देश की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए नियोजन के उद्देश्यों (broad objectives) को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए। (ब) देश के साधनों तथा जनता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उत्पादन के लक्ष्यों (targets) का निर्धारण भी अत्यन्त आवश्यक है। (स) उद्देश्य ऐसे होने चाहिए जिन पर बड़ी मात्रा में एकमत (agreement) हो, तभी अपेक्षित साधनों को जुटाया जा सकेगा और देश की जनता योजना के लिए आवश्यक त्याग तथा प्रयत्न करने को तत्पर रहेगी। (द) किसी भी देश के साधन सीमित होते हैं तथा उद्देश्य अनेक और प्रतियोगी, अतः उद्देश्यों के बीच प्राथमिकताएँ (priorities) निर्धारित करना अत्यन्त आवश्यक है। उद्देश्यों में चुनाव तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण सावधानीपूर्वक होना चाहिए ताकि उनमें कोई असंगति (inconsistency) न हो।

(३) समयावधि का निर्धारण—योजना को कुशलता के साथ सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि उसको पूरा करने के लिए एक निश्चित समय निर्धारित कर दिया जाय।

---

(४) **व्यापक नियोजन**—सफलता के लिए यह आवश्यक है कि नियोजन के अन्तर्गत समस्त आर्थिक क्षेत्र को सम्मिलित किया जाय तथा नियोजन के विभिन्न भागों में उचित समन्वय रखा जाय।

(५) **अच्छी वित्तीय प्रणाली**—यह आवश्यक है कि लोगों की बचतों तथा वित्तीय साधनों को जुटाने के लिए अच्छी और विकसित वित्त प्रणाली हो।

(६) **दीर्घकालीन दृष्टिकोण**—नियोजन एक निरन्तर तथा दीर्घकालीन प्रक्रिया है। नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि दीर्घकालीन दृष्टिकोण रखा जाय। यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि १५-२५ वर्ष बाद हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं। अल्पकालीन योजनाओं का दीर्घकालीन नियोजन के साथ समन्वय रखना आवश्यक है।

(७) **प्रभावशाली तथा कुशल नियोजन सत्ता**—नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्रीय नियोजन सत्ता प्रभावशाली तथा कुशल हो। (अ) जब केन्द्रीय नियोजन सत्ता प्रभावशाली होगी तभी अर्थ-व्यवस्था पर उचित नियन्त्रण रखना सम्भव हो सकेगा। (ब) नियोजन सत्ता या कमीशन का 'अर्द्ध-स्थायी स्वभाव' (semi-permanent character) होना चाहिए अर्थात इसके सदस्यों की नियुक्ति लम्बे समय के लिए होनी चाहिए तथा सदस्यों को क्रम-क्रम से (in rotation) अवकाश प्राप्त (retire) करना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि नियोजन की नीतियों में एक संगति (consistency) बनी रहेगी। (स) सदस्यों के तकनीकी-ज्ञान का स्तर ऊँचा होना चाहिए तभी अच्छी योजनाओं का निर्माण हो सकेगा।

(८) **कुशल परिपालन**—नियोजन की सफलता के लिए अच्छी योजना के निर्माण के साथ-साथ यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसका कुशल परिपालन (implementation) हो। इसके लिए यह आवश्यक है—(i) राजनीतिक स्थायित्व (political stability) हो; तथा (ii) ईमानदार प्रशासन यन्त्र की व्यवस्था हो।

(९) **लोच**—यह आवश्यक है कि नियोजन में लोच (flexibility) हो अर्थात एक सीमा तक आवश्यकतानुसार योजना में थोड़ा परिवर्तन किया जा सके ताकि यदि कोई कुसमायोजन (maladjustment) अनुभव हो तो वह दूर हो सके।

परिशिष्ट १
(APPENDIX 1)

सम-उत्पाद रेखाएँ
(ISOPRODUCT CURVES)

वस्तुओं के उपभोग में तथा साधनों के प्रयोग में कई दृष्टियों से समानता है। जिस प्रकार से उपभोग में कई वस्तुओं का संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार किसी वस्तु के उत्पादन में कई साधनों का संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है। पुनः, वस्तुओं के विभिन्न संयोग समान सन्तुष्टि प्रदान कर सकते हैं। उसी प्रकार उत्पादन में भी, दी हुयी टेक्नीकल दशाओं के अन्तर्गत उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के संयोग समान उत्पादन प्रदान कर सकते हैं, सरलता के लिए हम केवल दो उत्पत्ति के साधनों के संयोग को (जिस प्रकार कि उपभोग में दो वस्तुओं के संयोग को) लेते हैं जो कि समान उत्पादन प्रदान करते हैं; साधनों के ऐसे विभिन्न संयोगों को वक्र-रेखाओं में व्यक्त किया जाता है और ऐसी रेखाओं को 'सम-उत्पाद रेखाएँ' (Isoproduct curves) कहते हैं।

सम-उत्पाद रेखा की परिभाषा तथा उसका अर्थ (Definition and Meaning of an Isoproduct curve)

एक सम-उत्पाद रेखा तटस्थता वक्र रेखा की भाँति होती है। एक तटस्थता वक्र रेखा दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को बताती है जो कि उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। इसी प्रकार एक सम-उत्पाद रेखा दो साधनों के विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे एक फर्म उत्पादन की समान मात्रा उत्पादित करती है। कीरस्टेड (Keirstead) के शब्दों में, "सम-उत्पाद रेखा दो साधनों के उन सब सम्भावित संयोगों को बताती है जो कि एक समान कुल उत्पादन प्रदान करते हैं।"[1]

सम-उत्पादन रेखा (Isoproduct curve or Isoquant or Equal product curve) को कभी-कभी 'उत्पादन तटस्थता रेखा' (Production Indifference Curve) भी कहते हैं क्योंकि यह उपभोग में तटस्थता वक्र-रेखा की भाँति होती है।

कभी-कभी इसे 'उत्पादन का तटस्थता-वक्र विश्लेषण' ('Indifference-curve analysis of production') भी कहा जाता है।

सम-उत्पाद रेखा को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना कि श्रम तथा पूँजी दो उत्पत्ति के साधन हैं। माना कि इन साधनों के विभिन्न संयोग ५०० इकाई के बराबर उत्पादन देते हैं :

---

1 "Isoproduct curve represents all possible combinations of the two factors that give the same total product."—*Keirstead.*

चित्र—१

चित्र—२
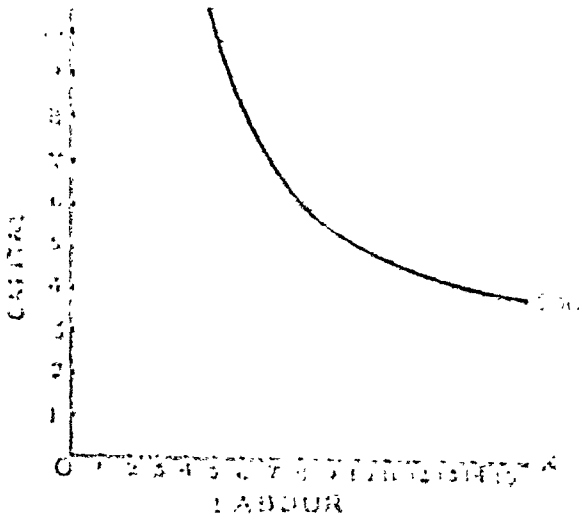
या फर्म के लिए उत्पत्ति की विभिन्न 'समान मात्राओं' को बताती है, एक ही चित्र में दिखाया जाता है तब इस चित्र को 'सम-उत्पाद मानचित्र' (Isoproduct Map) कहते हैं। नीची सम-उत्पाद रेखाएँ उत्पादन की कम मात्रा को तथा ऊँची सम-उत्पाद रेखाएँ उत्पादन की अधिक मात्रा को बताती हैं। एक सम-उत्पाद मानचित्र को चित्र नं० २ में दिखाया गया है।

सम-उत्पाद रेखाओं की मान्यताएँ (Assumptions of Isoproduct Curves)

सम-उत्पाद रेखाओं की मुख्य मान्यताएँ निम्न हैं :

(१) सम-उत्पाद रेखाओं को खींचते समय सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि उत्पत्ति के दो साधन किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त किए जा रहे हैं।

(जब दो से अधिक साधन प्रयोगों में लाये जाते हैं तो सम-उत्पाद रेखा की सरलता समाप्त हो जाती है। तीन साधनो के लिए हमें तीन माप (three dimensions) की आवश्यकता पड़ेगी तथा तीन से अधिक साधनो के लिए रेखागणित (Geometry) हमारा साथ छोड देती है और हमे या तो बीजगणित (Algebra) की सहायता लेनी पड़ती है या हम शब्दो मे व्यक्त करते हैं। परन्तु सम-उत्पाद विश्लेषण (Isoproduct analysis) अप्रभावित रहता है।)

(२) यह मान लिया जाता है कि उत्पादन की टेक्नीकल दशाएँ (technical production conditions) दी हुयी हैं तथा स्थिर (constant) हैं।

(३) यह मान लिया जाता है कि उत्पत्ति के साधन छोटी-छोटी इकाइयों मे विभाज्यनीय (divisible) हैं। इस मान्यता के परिणामस्वरूप ही हम समतल सम-उत्पाद रेखाएँ (smooth isoproduct curves) खींच पाते हैं।

(४) यह मान लिया जाता है कि दी हुयी 'उत्पादन की टेक्नीकल दशाओं' के अन्तर्गत प्रयुक्त किये जाने वाले साधन पूरी कुशलता के साथ मिलाए जाते हैं जितना कि सम्भव है।[2]

तटस्थता वक्र रेखाओं तथा सम-उत्पाद रेखाओं में अन्तर (Difference between Indifference Curves and Iso-product Curves)

दोनों मे मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं :

(१) तटस्थता वक्र रेखाओं को केवल एक क्रम (order) मे रखा जा सकता है; हम केवल यह कह सकते हैं कि एक तटस्थता वक्र रेखा दूसरे की अपेक्षा सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर को बताती है परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि सन्तुष्टि कितनी अधिक है। दूसरे शब्दो मे, एक तटस्थता वक्र रेखा को परिमाणात्मक मूल्य (numerical value) प्रदान नहीं कर सकते क्योंकि सन्तुष्टियों को परिमाणात्मक रूप से मापने के लिए कोई भौतिक इकाई (physical unit) नहीं है। परन्तु सम-उत्पाद रेखाओं को परिमाणात्मक मूल्य प्रदान किये जा सकते हैं क्योंकि साधनो के सयोग द्वारा उत्पादित वस्तु को भौतिक इकाइयो मे मापा जा सकता है।[3]

(२) एक दिये हुए समय के अन्तर्गत एक उपभोक्ता का व्यय लगभग उसकी द्राव्यिक आय द्वारा सीमित होता है, परन्तु एक उत्पादक या व्यापारी उत्पादन के साधनो पर अपने व्यय को, एक सीमा तक, परिवर्तित कर सकता है।[4]

सम-उत्पाद रेखाओं की विशेषताएँ या गुण
(CHARACTERISTICS OR PROPERTIES OF ISOPRODUCT CURVES)

सम-उत्पाद रेखाओं की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

(१) सम-उत्पाद रेखाएँ कभी एक दूसरे को काटती नहीं हैं या वे एक दूसरे को स्पर्श नहीं करती हैं अर्थात वे एक दूसरे के लिए स्पर्श-रेखाएँ (tangents) नहीं होतीं। यदि एक सम-

2 It is assumed that under given 'technical production conditions' the factors used are being combined as efficiently as possible.

3

4 The expenditure of the consumer is almost limited by his money income during a given period of time; whereas the producer or businessman can change, to a certain extent, his expenditure on factors of production hired to produce a commodity.

उत्पाद रेखा दूसरी को काटती है या दूसरी को स्पर्श करती है तो इसका अर्थ है कि कटाव का विन्दु (point of intersection) या स्पर्श-बिन्दु (point of tangency) दो सम-उत्पाद रेखाओं पर होगा। जब इस बिन्दु को नीचे की सम-उत्पाद रेखा की दृष्टि से देखेंगे तो यह उत्पादन की कम मात्रा को बतायेगा; यदि इसे दूसरी ऊँची सम-उत्पाद रेखा की दृष्टि से देखेंगे तो वही बिन्दु उत्पादन की अधिक मात्रा को बतायेगा। परन्तु एक ही बिन्दु दो साधनों के दो विभिन्न संयोगों को नहीं बता सकता और न ही वह एक बिन्दु उत्पत्ति की दो भिन्न मात्राओं को बता सकता है।[5]

(२) तटस्थता वक्र रेखा की भाँति **एक सम-उत्पाद रेखा बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती हुयी होती है अर्थात उसका ढाल ऋणात्मक होता है।** एक सम-उत्पाद रेखा का बायें से दायें नीचे की ओर ढाल एक साधन का दूसरे साधन के लिए टेक्नीकल स्थानापन्नता (technical substitutability) पर निर्भर करता है, अर्थात उत्पादन प्रक्रिया में एक साधन को दूसरे से प्रतिस्थापित करने की योग्यता पर निर्भर करता है।[6] एक सम-उत्पाद रेखा के ऋणात्मक ढाल का कारण यह है कि यदि एक फर्म एक साधन 'L' की इकाइयाँ बढ़ाती है तो उसे दूसरे साधन 'C' की इकाइयाँ घटानी पड़ेंगी तभी उसे इन दो साधनों के विभिन्न संयोगों से समान उत्पादन मिलेगा। **लेफ्टविच** (Leftwich) के शब्दों में, "जब साधन टेक्नीकल स्थानापन्न (Technical substitutes) होते हैं, तब एक साधन की कम मात्रा प्रयुक्त करने पर हानि-पूर्ति के लिए दूसरे साधन की अधिक मात्रा प्रयुक्त करनी पड़ेगी यदि कुल उत्पादन समान रहता है।"[7]

[यदि फर्म एक साधन की मात्रा स्थिर रखकर दूसरे की मात्रा बढ़ाती है तो उसे या तो बढ़ता हुआ प्रतिफल (increasing returns) या घटता हुआ प्रतिफल (decreasing returns) प्राप्त होगा। इसी प्रकार यदि वह दोनों साधनों की मात्रा को बढ़ाता है तो उसे उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त नहीं होगी। उत्पादन की समान मात्रा तभी प्राप्त होगी जबकि एक साधन को बढ़ाने पर दूसरे को घटाया जाता है। दूसरे शब्दों में, सम-उत्पाद रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुयी होनी चाहिए।]

(३) **सम-उत्पाद रेखा मूल विन्दु के प्रति उन्नोतर** (convex to the origin) होती है। सम-उत्पाद रेखा के मूल विन्दु की ओर उन्नतोदर होने का अर्थ है कि जब उत्पादक एक सम-उत्पाद रेखा पर बायें से दायें नीचे की ओर चलता है (अर्थात उत्पादन की मात्रा समान रखी जाती है) तो वह साधन L (जो कि x-axis पर दिखाया गया है) की प्रत्येक इकाई को साधन C (जो कि y-axis पर दिखाया गया है) की घटती हुयी मात्रा से प्रतिस्थापित करता है। दूसरे शब्दों में, सम-उत्पाद रेखा का उन्नतोदर आकार 'घटती हुयी सीमान्त टेक्नीकल प्रतिस्थापन दर' (Diminishing marginal rate of technical substitution) को बताता है।

---

5 But one given point cannot indicate two different combinations of the two factors nor can the same point below hot and cold and represent two different quantities of the product

6 "The downward slope of an Isoquant from left to right depends upon the technical substitutability of one resource for the other, that is, upon the ability of one resource to substitute for the other in the productive process"

7 "When resources are technical substitutes, if less of one is used more of the other must be used to compensate for its loss if total product is to remain constant."

यह बात चित्र नं० ३ द्वारा स्पष्ट होती है। उत्पादक सम-उत्पाद रेखा IP के K बिन्दु से Q बिन्दु की ओर चलता है अर्थात बायें से दायें नीचे की ओर चलता है। साधन L (अर्थात श्रम) की एक इकाई AB साधन C (अर्थात पूँजी) की EF इकाइयों को प्रतिस्थापित करती है। इसी प्रकार यदि साधन L को एक और इकाई BC द्वारा बढ़ाया जाता है तो साधन L की यह इकाई BC साधन C की FG मात्रा को प्रतिस्थापित करती है। इसी प्रकार साधन L की एक और अतिरिक्त इकाई CD साधन C की GH इकाइयों को प्रतिस्थापित करती है। अतः चित्र से स्पष्ट है कि साधन L की प्रत्येक इकाई को साधन C की घटती हुयी मात्रा (GH<FG<EF) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इस को साधन L की साधन C के लिए 'घटती हुयी टेक्नीकल सीमान्त प्रतिस्थापन दर' (Diminishing marginal rate of technical substitution) कहते हैं।
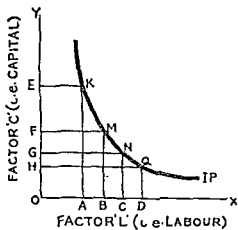
चित्र—३

(४) सम-उत्पाद रेखाओं की वक्रता (curvature) उस सुगमता (ease) को बताती है जिससे कि साधन एक दूसरे से प्रतिस्थापित किये जा सकते हैं। यदि दो साधन एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न हैं तो सम-उत्पाद रेखा एक सरल रेखा (straight line) होगी; वास्तव में वे एक ही साधन होंगे। जैसे-जैसे प्रतिस्थापन कठिन होता जाता है वैसे-वैसे सम-उत्पाद रेखाएँ मूल बिन्दु की ओर अधिक झुकती जाती हैं।[8] इस विवरण को नीचे थोड़े विस्तार से समझाया गया है।

जब साधन पूर्ण स्थानापन्न हैं तो सम-उत्पाद रेखा एक सरल रेखा होगी जैसा कि चित्र नं० ४ में दिखाया गया है। चित्र में I P सरल रेखा बताती है कि दो साधनो L तथा C में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (marginal rate of substitution) समान या स्थिर रहती है। उदाहरणार्थ, यदि उत्पादक साधन L की एक अतिरिक्त इकाई प्रयुक्त करता है तो वह साधन C की एक इकाई का परित्याग करेगा। यहाँ पर L तथा C में प्रतिस्थापन दर १ : १ की है। व्यवहार में कोई भी दो साधन पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते, दो साधनो के पूर्ण स्थानापन्न होने का अर्थ है कि वे एक ही हैं।
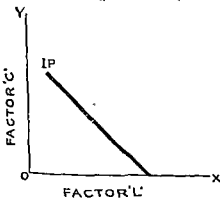
चित्र—४

8 ... *with which the two factors can be* ...erfect substitutes, the isoproduct ... the same factor. As substitution ... curves bend in more towards the origin.

चित्र—५

जैसे-जैसे प्रतिस्थापन कठिन होता जाता है वैसे-वैसे सम-उत्पादन रेखाएँ मूल बिन्दु की ओर अधिक झुकती हैं जैसा कि चित्र नं० ५ में I P_1 तथा I P_2 रेखाएँ बताती हैं।
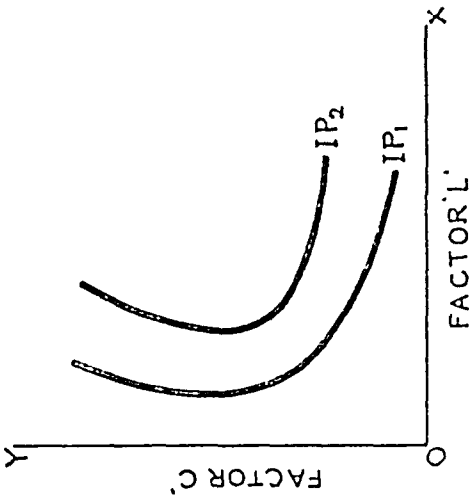
जब दो साधनों के बीच में प्रतिस्थापन्न पूर्णतया कठिन हो जाता है अर्थात उनके बीच प्रतिस्थापन नहीं किया जा सकता है, अर्थात उत्पादन की विशिष्ट मात्रा को प्राप्त करने के लिए जब साधन एक निश्चित अनुपात (fixed proportion) में मिलाए जा सकते हैं तो सम-उत्पाद रेखा का आकार समकोण (right angle) की भाँति होता है जसा कि चित्र नं० ६ में IP_1 तथा I P_2 रेखाएँ बताती हैं। उदाहरणार्थ, वस्तु विशेष की १०० इकाइयाँ प्राप्त करने के लिए साधन L की तीन इकाइयों तथा साधन C की दो इकाइयों को मिलाना पड़ता है जैसा कि चित्र नं० ६ में I P_1 का बिन्दु A बताता है; दोनों साधनों के मिलने का अनुपात स्थिर (fixed) है। साधन C की मात्रा स्थिर रखकर साधन L की मात्रा बढ़ाने से कोई अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त नहीं किया जा सकता है; इसी प्रकार साधन L की मात्रा स्थिर रखकर साधन C की मात्रा के बढ़ाने से कोई अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त नहीं होगा। अतः, एक साधन में वृद्धियाँ, बिना दूसरे साधन के वृद्धियों के बेकार होंगी।[9] यदि हम L तथा C के मिलने के स्थिर अनुपात को ध्यान में रखकर साधनों की मात्राओं को दुगना (अर्थात ६ इकाई L की तथा ४ इकाई C की) कर देते हैं तो वस्तु का दुगना उत्पादन (अर्थात २०० इकाइयाँ) प्राप्त होगा जैसा कि चित्र नं० ६ में I P_2 सम-उत्पाद रेखा बनाती है।

चित्र—६

(५) रिज रेखाएँ[10] : उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमाएँ (Ridge Lines : Boundaries for the economic region of production)—

सम-उत्पाद रेखाओं की एक पाँचवीं विशेषता और है जो कि उत्पादन प्रक्रिया (production process) में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सम-उत्पाद रेखाएँ अपने ऊपर पीछे की ओर झुकती हैं' ('bend back upon themselves') अथवा यह कहिये कि उनके 'ऊपर को चढ़ते हुये भाग' ('positively sloped segments') होते हैं; जैसा कि चित्र नं० ७ में दिखाया गया है। चित्र में, I P_1 सम-उत्पाद रेखा D तथा A बिन्दुओं, IP_2 रेखा E तथा B बिन्दुओं और I P_3 रेखा F तथा C बिन्दुओं पर पीछे की ओर झुकती हुई हैं। A, B तथा C बिन्दुओं को मिला देने से

---

9 Increases in one factor unaccompanied by increments in the other would be useless."

10 Ridgs lines के हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार हो सकते हैं 'मेंड़ रेखाएँ' या 'कूटक रेखाएँ'।

OR रेखा प्राप्त होती है तथा D, E और F बिन्दुओं को मिला देने से OL रेखा प्राप्त होती है; OR तथा OL रेखाएँ 'रिज रेखाएं' हैं। ये रिज-रेखाएँ उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमाएँ हैं। सम उत्पाद रेखाओं के केवल वे भाग जो कि रिज-रेखाओं के बीच में हैं उत्पादन के लिए उपयुक्त हैं।[11]

चित्र नं०—७

चित्र नं० ७ में x-axis पर साधन x (मात्रा श्रम) की विभिन्न मात्राओं a_1, a_2, a_3, a_4 इत्यादि को दिखाया गया है तथा y-axis पर साधन Y (मात्रा पूँजी) की विभिन्न मात्राओं b_1, b_2 इत्यादि को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि साधन X की a_4 मात्रा तथा साधन Y की b_1 मात्रा का प्रयोग उत्पादन की IP_3 मात्रा की उत्पत्ति करता है। यदि सम-उत्पाद रेखा IP_3 पर नीचे की ओर चलें तो हम साधन X का प्रतिस्थापन (substitution) करते जायेंगे अर्थात साधन X की मात्रा को बढ़ाते जायेंगे और साधन Y का त्याग करते जायेंगे जब तक हम साधन Y की b_1 मात्रा पर न पहुँच जायें; और ऐसा करने मे उत्पादन की मात्रा या उत्पादन-स्तर IP_3 मे कोई कमी नहीं होगी। मात्रा b_1 साधन Y की न्यूनतम मात्रा है जो कि उत्पादन के IP_3 स्तर की उत्पत्ति के लिए प्रयोग की जा सकती है। साधन Y की b_1 मात्रा को स्थिर रखते हुये, यदि बिन्दु C पर हम साधन X की मात्रा को और अधिक बढ़ायें तो कुल उत्पादन गिरेगा; जैसे यदि साधन X की a_4 मात्रा को बढाकर a_5 मात्रा कर दी जाये, और जबकि साधन Y की b_1 मात्रा को स्थिर रखा जाता है, तो हम चित्र मे बिन्दु T पर होंगे जो कि उत्पादन स्तर IP_3 से नीचे है, स्पष्ट है कि पहले की अपेक्षा कुल उत्पादन गिर जाता है। इसका अभिप्राय है कि बिन्दु C के बाद साधन X की सीमान्त उत्पादकता (अर्थात MP_x) ऋणात्मक (negative) है तभी साधन X की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करने से कुल उत्पादन घटता है। दूसरे शब्दों में, बिन्दु C पर $MP_x = 0$; बिन्दु C के बायें ओर यदि हम साधन X की मात्रा बढ़ाते हैं, जबकि साधन Y की मात्रा b_1 पर स्थिर रखते हैं, तो साधन X की वृद्धि हमे ऊँची तथा और ऊँची सम-उत्पाद रेखा पर ले जायेगी और इस प्रकार MP_x धनात्मक (positive) होगा। चित्र से स्पष्ट है कि यदि साधन X की मात्रा a_1 है तो हम G बिन्दु पर होंगे और G बिन्दु से एक सम-उत्पाद रेखा खींची जा सकेगी जो कि IP_1 से ऊँची होगी; इसी प्रकार यदि साधन X की मात्रा बढ़ा कर a_2, a_3 तथा a_4 कर दी जाती है तो हम क्रमश: V, H तथा C बिन्दुओं पर पहुँच जायेंगे और बिन्दु C से होती हुयी सम-उत्पाद रेखा ऊँची होगी बिन्दु H से गुजरने वाली सम-उत्पाद रेखा से और यह ऊँची होगी बिन्दु V से गुजरती हुयी सम-उत्पाद रेखा से। संक्षेप मे, बिन्दु C के बायें को साधन X की सीमान्त उत्पादकता (अर्थात MP_x) धनात्मक (positive) है, बिन्दु C पर $MP_x = 0$ है, तथा बिन्दु C के बाद MP_x ऋणात्मक (negative) है। यदि हम चाहते हैं कि बिन्दु C के बाद साधन X की मात्रा को बढ़ाने से कुल उत्पादन मे कमी न हो तो हमें साधन Y की मात्रा को b_1 से ऊपर बढ़ाना होगा तभी हम बिन्दु S पर पहुँचेंगे जो IP_3 सम-उत्पाद रेखा पर है; दूसरे शब्दों में, बिन्दु C के
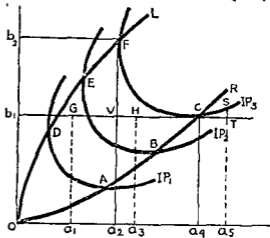
---

11 विद्यार्थियों के लिए नोट—परीक्षा मे, प्रश्न विशेष के स्वभाव को देखते हुए, यदि सम-उत्पाद रेखाओं की विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण देना है, तो विद्यार्थियों को यहीं तक ही विषय-सामग्री लिखना पर्याप्त होगा। यदि प्रश्न मे स्पष्ट रूप से 'रिज-रेखाओं' के बारे में पूछा गया है तो इसके आगे दिये गये व्याख्यात्मक विवरण को अवश्य लिखना चाहिए।

बाद पहले के समान उत्पादन स्तर IP_3 को प्राप्त करने के लिए हमें दोनों साधनों X तथा Y की मात्रा में वृद्धि करनी होगी जिसके परिणामस्वरूप अनावश्यक रूप से उत्पादन लागत बढ़ जायेगी और ऐसी स्थिति 'आर्थिक मूर्खता' (economic nonsense) की होगी। अतः, सम-उत्पाद रेखा IP_3 के सन्दर्भ में बिन्दु C उत्पत्ति के साधनों (X तथा Y) के विवेकपूर्ण संयोग (rational combination) की सीमा (boundary) होगी क्योंकि इस बिन्दु पर $MP_x = o$ है और इसके आगे फर्म साधनों का कोई भी संयोग प्रयोग में नहीं लायेगी अर्थात बिन्दु C के बाद 'उत्पादन का अनार्थिक क्षेत्र ('uneconomic region of production') होगा। दूसरे शब्दों में, बिन्दु C के बाद **सम-उत्पाद रेखा का 'पीछे को झुकने वाला भाग' या 'ऊपर को चढ़ता हुआ भाग' यह बताता है कि उत्पादन के एक निश्चित स्तर को प्राप्त करने के लिए दोनों साधनों की मात्राओं को बढ़ाना होगा और ऐसी स्थिति 'आर्थिक मूर्खता' को या 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' को बतायेगी।**

इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा IP_3 के सन्दर्भ में बिन्दु F पर साधन Y की सीमान्त उत्पादकता शून्य होगी अर्थात $MP_y = o$, और फर्म बिन्दु F के आगे साधनों के किसी भी संयोग को प्रयोग में नहीं लायेगी क्योंकि ऐसा करने से उसे, उत्पादन का IP_3 स्तर प्राप्त करने के लिए, दोनों साधनों Y तथा X की मात्रा बढ़ानी होगी, जिससे उत्पादन-लागत बढ़ जायेगी तथा ऐसी स्थिति 'आर्थिक मूर्खता' की होगी और फर्म 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' में प्रवेश करेगी, दूसरे शब्दों में बिन्दु F के बाद सम-उत्पाद रेखा का 'पीछे को झुकता हुआ भाग' या 'ऊपर को चढ़ता हुआ भाग' दोनों साधनों की वृद्धि को या 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' को बताता है। स्पष्ट है कि बिन्दु F 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमा' ('boundary for economic region of production') को बताता है।

इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा IP_2 बिन्दु E तथा B पर 'अपने ऊपर पीछे को झुकती' है। बिन्दु B पर $MP_x = o$, तथा बिन्दु E पर $MP_y = o$ है। इसी प्रकार सम-उत्पाद रेखा IP_1 बिन्दु D तथा A पर पीछे की ओर झुकती है, बिंदु A पर $MP_x = o$ तथा बिन्दु B पर $MP_y = o$ है।

यदि बिन्दु A, B तथा C को मिला दिया जाये तो हमें **रिज-रेखा OR** प्राप्त हो जायेगी—(i) **रिज रेखा OR साधन Y की न्यूनतम मात्राओं को बताती है** जो कि उत्पादन की विभिन्न **मात्राओं के लिए आवश्यक है।** (ii) **रिज रेखा OR उन बिन्दुओं का मार्ग** (locus) है जहाँ पर कि $MR_x = o$ है; क्योंकि बिन्दु A, B, तथा C पर साधन X की सीमान्त उत्पादकता (MP_x) शून्य है। (iii) **रिज रेखा OR 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमा'** ('boundary line for economic region of production) है; क्योंकि रिज-रेखा OR के एक तरफ साधन X तथा Y के वे संयोग हैं जो कि एक फर्म उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की उत्पत्ति के लिए प्रयोग में लायेगी, तथा दूसरी ओर दोनों साधनों के वे संयोग हैं जो कि फर्म प्रयोग में नहीं लायेगी। संक्षेप **में, रिज-रेखा 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र' को 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' से** पृथक करती है।

यदि बिन्दु D, E, तथा F को मिला दिया जाये तो हमें रिज-रेखा OL प्राप्त हो जायेगी—(i) **रिज रेखा OL साधन X की न्यूनतम मात्राओं को** बताती है जो कि उत्पादन की विभिन्न **मात्राओं के लिए आवश्यक हैं।** (ii) **रिज रेखा OL उन बिन्दुओं का मार्ग** (locus) है जहाँ पर **कि** $MR_y = o$ है; क्योंकि बिन्दु D, E तथा F पर साधन Y की सीमान्त उत्पादकता (MP_y) शून्य है। (iii) **रिज रेखा OL 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमा' है;** क्योंकि रिज-रेखा OL के एक तरफ साधन X तथा Y के वे संयोग हैं जो कि एक फर्म उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की उत्पत्ति के लिए प्रयोग में लायेगी, तथा दूसरी ओर दोनों साधनों के वे संयोग हैं जो कि फर्म प्रयोग में नहीं लायेगी। संक्षेप में, **रिज रेखा 'उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र' को 'उत्पादन के अनार्थिक क्षेत्र' से पृथक करती है।**

समग्र रूप में, साधन X तथा Y के सभी विवेकपूर्ण संयोग (rational combinations) **रिज रेखाओं के बीच में होंगे; दूसरे शब्दों में, सम-उत्पाद रेखाओं के केवल वे भाग जो कि दोनों रिज रेखाओं के बीच में होते हैं वे ही उत्पादन के लिए उपयुक्त** (relevant) **होंगे।**

वस्तु-मूल्य निर्धारण
[PRODUCT PRICING OR COMMODITY PRICING]

चतुर्थ भाग

१

बाजार
[MARKET]

साधारण बोलचाल की भाषा में बाजार शब्द का प्रयोग उस स्थान अथवा बिल्डिंग के लिए किया जाता है जहाँ पर कि वस्तु, क्रेता तथा विक्रेता भौतिक रूप से (physically) उपस्थित होते हैं तथा क्रय-विक्रय का कार्य करते है। परन्तु आर्थिक दृष्टि में यह बाजार की एक आवश्यक विशेषता नहीं है। वस्तुओं का क्रय-विक्रय एजेण्टों या नमूनों द्वारा हो सकता है। वस्तु के खरीदने का आदेश (order) पत्र, टेलीफोन या तार द्वारा किया जा सकता है। वस्तु का स्टॉक तथा उसकी डिलीवरी एक स्थान पर हो सकती है जबकि उसका सौदा दूसरे स्थान पर। इस प्रकार बाजार का सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से होना आवश्यक नहीं है। क्रेता तथा विक्रेता एक बड़े क्षेत्र या देश में फैले हुए हो सकते है और कई दशाओं में यह क्षेत्र पूरा संसार हो सकता है।

अर्थशास्त्र में बाजार का अर्थ
(MEANING OF MARKET IN ECONOMICS)

अर्थशास्त्र में बाजार का सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से होना आवश्यक नहीं। आर्थिक दृष्टि से, सामान्यतया, बाजार का अर्थ उस समस्त क्षेत्र से लिया जाता है जिसमें क्रेता तथा विक्रेता फैले हुए हों और उनमें प्रतिस्पर्द्धात्मक सम्पर्क हो।

वास्तव में, अर्थशास्त्री बाजार शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में पूर्णतया एकमत नहीं है, उनमें थोड़ा मतभेद पाया जाता है। बाजार शब्द की कुछ मुख्य परिभाषाएँ निम्न है :

(१) कूर्नो (Cournot) के अनुसार, "अर्थशास्त्री बाजार शब्द का अर्थ किसी स्थान विशेष से नहीं लेते जहाँ पर कि वस्तुएँ खरीदी तथा बेची जाती हैं बल्कि इसका अर्थ उस समस्त क्षेत्र से लेते हैं जिसमें क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच इस प्रकार स्वतन्त्र सम्पर्क होता है कि एक वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति सुगमता से तथा शीघ्रता से समान होने की पायी जाती है।"[1]

(२) स्टोनियर तथा हेग (Stonier and Hague) के अनुसार, "अर्थशास्त्री बाजार का अर्थ एक ऐसे संगठन (organisation) से लेते हैं जिसमें कि किसी वस्तु के क्रेता तथा विक्रेता एक दूसरे के निकट सम्पर्क में रहते हैं।"[2]

---

1 "Economists understand by the term market not any particular market place in which things are bought and sold, but the whole of any region in which buyers and sellers are in such free intercourse with one another that the price of the same goods tends to equality easily and quickly." —Cournot

2 "... by a market economists mean any organisation whereby buyers and sellers of a good are kept in close touch with each other." —Stonier and ''

(३) केअरनक्रॉस (Cairncross) के अनुसार, "बाजार का अर्थ क्रेताओं तथा विक्रेता के बीच किसी साधन (factor) या वस्तु (product) के **लेनदेन का जालसूत्र** (a network dealings) है।"[3] प्रो० केअरनक्रॉस की परिभाषा एक अच्छी परिभाषा मानी जाती है।

(४) **प्रो० जे० के० मेहता** के अनुसार, "बाजार एक **स्थिति** (state) को बताता जिसमें कि एक वस्तु की माँग ऐसे स्थान पर होती है जहाँ उसे विक्रय के लिए प्रस्तुत जाय।"[4] इस परिभाषा की मुख्य विशेषता यह है कि किसी वस्तु का केवल एक विक्रेता तथा क्रेता होने पर भी बाजार कहा जायेगा।

उपर्युक्त परिभाषाओं में बाजार के विभिन्न पक्षों (aspects) पर जोर दिया गया इन परिभाषाओं से बाजार की निम्न **विशेषताएँ** स्पष्ट होती हैं :

(१) एक **वस्तु** जिसका सौदा किया जाता है।

(२) **क्रेताओं तथा विक्रेताओं** का अस्तित्व (existence)। प्रो० मेहता के अनुसार के एक क्रेता तथा एक विक्रेता के होने से भी बाजार कहा जायेगा।

(३) कूरनो के अनुसार यह एक **'क्षेत्र'** है; स्टोनियर तथा हेग के अनुसार यह **'संगठन'** है; प्रो० केअरनक्रॉस के शब्दों में यह **'लेनदेन का एक जालसूत्र'** है; प्रो० मेहता अनुसार यह एक **'स्थिति'** (state) है।

(४) क्रेताओं तथा विक्रेताओं में निकट का सम्पर्क होता है अर्थात् **प्रतियोगिता** होत जिसके कारण **वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति समान** रहने की पायी जाती है।

उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि सामान्यतया बाजार शब्द के पीछे 'स्पर्द्धात दशाओं' (competitive conditions) की मान्यता होती है।

बाजार का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF MARKETS)

विभिन्न तत्वों के आधार पर बाजारों का वर्गीकरण किया जाता है और ये मुख्य आध इस प्रकार हैं : I. क्षेत्र के आधार पर; II. कार्य के आधार पर; III. प्रतियोगिता के आधार प तथा IV. समय के आधार पर।

I. क्षेत्र के आधार पर (On the Basis of Area or Space)

(१) **स्थानीय बाजार** (Local market)—जब किसी वस्तु की माँग स्थानीय होती अर्थात् उसके क्रेता तथा विक्रेता एक छोटे क्षेत्र या स्थान विशेष तक ही सीमित होते हैं तो वस्तु के बाजार को स्थानीय बाजार कहते हैं। शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं, जैसे साग-स मछली, दूध, इत्यादि के बाजार भी स्थानीय होते हैं। मूल्य की अपेक्षा भारी वस्तुओं, जैसे, इत्यादि के बाजार भी स्थानीय होते हैं। (२) **प्रादेशिक बाजार** (Regional market)—जब कि वस्तु की मांग एक बड़े क्षेत्र या प्रदेश तक सीमित होती है तो उस वस्तु के बाजार को प्रादेि बाजार कहा जाता है। उदाहरणार्थ, लाख की चूड़ियों का बाजार प्रादेशिक है क्योंकि इनकी मां राजस्थान के प्रदेश तक सीमित है। (३) **राष्ट्रीय बाजार** (National market)—जब कि वस्तु के क्रेता तथा विक्रेता समस्त देश में फैले होते हैं और उसकी देश-व्यापी मांग होती है ऐसी वस्तु के बाजार को राष्ट्रीय बाजार कहते हैं। उदाहरणार्थ, धोतियों, साड़ियों तथा [illegible]

का बाजार राष्ट्रीय है क्योंकि इसकी मांग पूरे देश में है। (४) अन्तरराष्ट्रीय बाजार (International market)—जब किसी वस्तु के क्रेता तथा विक्रेता संसार के विभिन्न देशों में फैले हों अर्थात् उसकी मांग विश्वव्यापी हो तो ऐसी वस्तु के बाजार को अन्तरराष्ट्रीय बाजार कहते हैं। उदाहरणार्थ, सोना, चांदी इत्यादि का बाजार अन्तरराष्ट्रीय बाजार है।

II. कार्य के आधार पर (On the Basis of Function)

(१) मिश्रित या सामान्य बाजार (Mixed or general market)—जब एक ही बाजार में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ खरीदी या बेची जाती हैं तो ऐसे बाजार को मिश्रित या सामान्य बाजार कहते हैं। प्रायः शहरों में एक ही बाजार में उपभोक्ता विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ खरीद सकते हैं; कुछ बड़े-बड़े शहरों में एक ही स्टोर पर उपभोक्ताओं को सभी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं। (२) विशिष्ट बाजार (Specialised market)—जब केवल एक ही वस्तु का बाजार एक स्थान या एक छोटे क्षेत्र में केन्द्रित हो जाता है तो उसे विशिष्ट बाजार कहते हैं। प्रायः बड़े शहरों में विभिन्न वस्तुओं के बाजार विभिन्न स्थानों या क्षेत्रों में केन्द्रित हो जाते हैं, जैसे, सुनारों का बाजार, कपड़े का बाजार, किताबों का बाजार, बर्तनों का बाजार इत्यादि। (३) ग्रेडों द्वारा बिक्री (Marketing by grades)—कुछ वस्तुओं के विभिन्न प्रकारों को कई वर्गों या ग्रेडों में बांट दिया जाता है। इन ग्रेडों के आधार पर ही वस्तु का क्रय-विक्रय होता है। उदाहरणार्थ, बहुत से देशों में गेहूं को कई ग्रेडों में बांट दिया जाता है और ग्रेड को बताने से ही सौदा हो जाता है; इसी प्रकार टीन की चद्दरों का क्रय-विक्रय ग्रेडों के आधार पर ही होता है। (४) नमूनों द्वारा बिक्री (Marketing by sampling)—बहुत-सी वस्तुओं का क्रय-विक्रय नमूनों द्वारा किया जाता है। ऊनी कपड़े की मिलें प्रायः 'नमूने की किताबें' (sample booklets) बनाती हैं और ऊनी कपड़ों का थोक क्रय-विक्रय इन नमूनों के आधार पर होता है।

III. प्रतियोगिता के आधार पर (On the Basis of Competition)

(१) पूर्ण बाजार (Perfect market)—जब किसी वस्तु के बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है तो उसे 'पूर्ण बाजार' या 'पूर्ण प्रतियोगिता का बाजार' (perfectly competitive market) कहते हैं। पूर्ण बाजार में निम्न दशाओं का पूरा होना आवश्यक है :

(i) क्रेताओं तथा विक्रेताओं की बहुत अधिक संख्या होती है।

(ii) क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है। सभी क्रेताओं तथा विक्रेताओं को इस बात की जानकारी रहती है कि बाजार के विभिन्न भागों में क्या हो रहा है।

(iii) क्रेताओं तथा विक्रेताओं में आपस में कोई स्नेह (attachment) नहीं होता। यदि कोई स्नेह होता है तो वह केवल कीमत से। यदि कोई विक्रेता कीमत गिराता है तो सभी क्रेता उसी से वस्तु खरीदेंगे।

(iv) वस्तु एक रूप (homogeneous) होती है; दूसरे शब्दों में, 'वस्तु-विभेद' (product-differentiation) नहीं होता।

(v) क्रेता तथा विक्रेता अत्यन्त निकट होते हैं जिसके कारण यातायात की लागतों को छोड़ा जा सकता है। उपर्युक्त सब बातों का परिणाम यह है कि किसी वस्तु की कीमत बाजार में एक ही होगी। मार्शल के अनुसार, पूर्ण बाजार में यातायात की लागतों के अन्तर के बराबर वस्तु की कीमत में अन्तर हो सकता है। परन्तु कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह मानना ठीक होगा कि क्रेता तथा विक्रेता इतने निकट हैं कि यातायात की लागत में कोई अन्तर नहीं होता और इस प्रकार वस्तु की एक ही कीमत होती है।

(२) **अपूर्ण बाजार** (Imperfect market)—जब किसी वस्तु के बाजार में पूर्ण योगिता नहीं होती तो इसे 'अपूर्ण बाजार' या 'अपूर्ण प्रतियोगिता का बाजार' (imperfe competitive market) कहते हैं। अपूर्ण बाजार में निम्न दशाएँ होती हैं :

(i) **विक्रेताओं तथा क्रेताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम** होती है।

(ii) क्रेताओं तथा विक्रेताओं को **बाजार का ज्ञान नहीं** होता। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं होती कि बाजार के विभिन्न भागों में किन कीमतों पर वस्तु का क्रय-विक्रय रहा है। परिणामस्वरूप, एक वस्तु की कीमत में भिन्नता रहती है।

(iii) **वस्तु-विभेद** (Product differentiation) रहता है। दूसरे शब्दों में, वस्तु रूप नहीं होती, विभिन्न उत्पादकों द्वारा उत्पादित एक-सी वस्तु में भिन्नता रहती है। परिण स्वरूप, वस्तु की एक ही कीमत नहीं रहती।

IV. **समय के आधार पर** (On the Basis of Time)

समय के अनुसार बाजार को निम्न चार वर्गों में बाँटा जाता है :

(१) **अति अल्पकालीन बाजार या दैनिक बाजार** (Very short period market daily market)—अति अल्पकालीन बाजार वह है जिसमें कि वस्तु की पूर्ति गोदामों में तक ही सीमित होती है अर्थात् वस्तु की पूर्ति लगभग स्थिर होती है; समय इतना कम होत कि वस्तु की पूर्ति को घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में वस्तु के मूल्य निर्धार मुख्य प्रभाव माँग-शक्ति का पड़ता है; माँग में वृद्धि या कमी के अनुसार ही मूल्य में वृद्धि कमी होगी। इस काल के मूल्य को 'बाजार मूल्य' (market price) कहते हैं। सब्जी, मछ दूध इत्यादि शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं का बाजार 'अति अल्पकालीन बाजार' या 'दैि बाजार' होता है।

(२) **अल्पकालीन बाजार** (Short period market)—अल्पकालीन बाजार वह बाज है जिसमें वस्तु की पूर्ति को केवल वर्तमान साधनों की सहायता से एक सीमा तक बढ़ाया सकता है; इसमें इतना समय नहीं होता कि उत्पादक अपने स्थिर यन्त्र या प्लाण्ट को बदल सके इस काल में पूर्ति को वर्तमान यन्त्रों की क्षमता (capacity) तक ही बढ़ाया जा सकता दूसरे शब्दों में, इस काल में उत्पादन स्थिर नहीं होता बल्कि उत्पादन-क्षमता (producti capacity) स्थिर होती है।[5] इस प्रकार यद्यपि इसमें पूर्ति को वर्तमान साधनों की सहायता एक सीमा तक बढ़ाया जा सकता है परन्तु उसे पूर्ण रूप से माँग के अनुरूप नहीं किया जा सकता इसलिए इस काल में भी मूल्य निर्धारण में पूर्ति की अपेक्षा माँग का प्रभाव अधिक पड़ता माँग में वृद्धि या कमी से मूल्य में वृद्धि या कमी होगी परन्तु उतनी नहीं जितनी कि अति अ कालीन बाजार में होगी। इस बाजार के मूल्य को 'अल्पकालीन' मूल्य' (short period pric या 'अल्पकालीन सामान्य मूल्य' (short period normal price) कहते हैं।

(३) **दीर्घकालीन बाजार** (Long period market)—दीर्घकालीन बाजार वह बाज है जिसमें इतना लम्बा समय होता है कि पूर्ति को न केवल वर्तमान यन्त्रों तथा साधनों बल्कि न यन्त्रों और साधनों की सहायता से पूर्ण रूप से बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में इस बाज में समय इतना पर्याप्त होता है कि उत्पादन-क्षमता में माँग के साथ पूरा-पूरा समन्वय (adju ment) किया जा सकता है, अर्थात् नये यन्त्रों तथा प्लाण्टों में वृद्धि या वर्तमान यन्त्रों तथा ...

---

5 In the short period, it is the productive capacity and not the output which

में कमी की जा सकती है।[6] अतः इस काल में पूर्ति को पूर्ण रूप से माँग के अनुरूप किया जा सकता है। इसमें वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग का प्रभाव प्रमुख नहीं रह जाता बल्कि पूर्ति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस काल के मूल्य को 'दीर्घकालीन मूल्य' (long period price) या 'सामान्य मूल्य' (normal price) कहते हैं।

(४) अति दीर्घकालीन बाजार (Very long period market or secular market)—अति दीर्घकालीन बाजार वह बाजार है जिसमें माँग तथा पूर्ति दोनों में बहुत अधिक (wide) परिवर्तन होते हैं। माँग पक्ष में जनसंख्या में वृद्धि तथा उपभोक्ताओं की रुचियों और फैशनों में परिवर्तन हो सकते हैं; इन दीर्घकालीन तत्वों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में बहुत परिवर्तन हो सकता है। इसी प्रकार पूर्ति पक्ष में; नयी खोजें हो सकती हैं, उत्पादन की तकनीक तथा रीतियों में विस्तृत परिवर्तन हो सकते हैं जिनके परिणामस्वरूप लागत में बहुत कमी हो सकती है और इसलिए पूर्ति में विस्तृत परिवर्तन हो सकते है। इसमें इतना लम्बा समय होता है कि "किसी वस्तु के उत्पत्ति के साधनों को उत्पन्न करने वाले साधनों' में भी परिवर्तन किया जा सकता है।[7] इस प्रकार अति दीर्घकालीन बाजार में इतना लम्बा समय होता है कि माँग तथा पूर्ति दोनों में बहुत विस्तृत परिवर्तन होते रहते हैं और माँग तथा पूर्ति में समन्वय की प्रक्रिया (process) चलती रहती है। इस बाजार या काल के मूल्य को 'अति दीर्घकालीन मूल्य' (very long period or secular price) कहते हैं।

कुछ अन्य आधारों पर भी बाजार का वर्गीकरण किया जाता है। क्रय-विक्रय की जाने वाली वस्तुओं के आधार पर बाजार को उपज विनिमय (Produce Exchanges), स्कन्ध विनिमय (Stock Exchanges), इत्यादि में बाँटा जाता है। कभी-कभी बाजार को वस्तु विशेष के लिए किये जाने वाले मूल्य के औचित्य के आधार पर बाँटा जाता है। जब बाजार में किसी वस्तु का विक्रय सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही किया जाता है तो इसे 'उचित बाजार' (Fair Market) कहते हैं; और जब छिपे रूप में उससे अधिक मूल्य लिया जाता है तो इसे 'चोर बाजार' (Black Market) कहते हैं।

बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्व
(FACTORS AFFECTING THE EXTENT OF MARKET)

किसी वस्तु का बाजार संकीर्ण (narrow) या विस्तृत (wide) हो सकता है। आधुनिक युग में कई कारणों से वस्तुओं के बाजारों के विस्तृत होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। किसी वस्तु के बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्वों को मोटे रूप में दो वर्गों में बाँटा जा सकता है: I. वस्तु की विशेषताएँ, तथा II. देश का वातावरण तथा उसकी आन्तरिक दशाएँ।

I. वस्तु की विशेषताएं (Characteristics of the Commodity)

(१) व्यापक माँग (Wide demand)—यह स्वाभाविक है कि जिस वस्तु की माँग अधिक और व्यापक होगी उसका बाजार भी व्यापक होगा; इसके विपरीत जिस वस्तु की माँग कम होगी उसका बाजार संकीर्ण होगा। उदाहरणार्थ, गेहूँ, सोना, चाँदी, इत्यादि की विश्वव्यापी माँग है इसलिए उन वस्तुओं का बाजार अत्यन्त विस्तृत होता है।

---

6 "There is time enough to adjust productive capacity to demand, *i.e.*, to add new equipments and plants or to reduce the existing ones.

7 In this period there is enough time to change the factors of production of the factors of production of a commodity.

(२) **वहनीयता** (Portability)—कम भार तथा अधिक मूल्य वाली वस्तुओं का बा अत्यन्त विस्तृत होता है; इसके विपरीत गुण वाली वस्तुओं का बाजार संकीर्ण होता है। उदा णार्थ, सोना, चाँदी में कम भार तथा अधिक मूल्य होता है, इसलिए इनका बाजार बहुत वि होता है; इसके विपरीत ईंटों का भार बहुत अधिक तथा मूल्य कम होता है, इसलिए इनका बा बहुत सीमित होता है।

(३) **टिकाऊपन** (Durability)—जो वस्तुएँ टिकाऊ तथा शीघ्र नष्ट होने वाली होतीं उनका बाजार विस्तृत होता है; उदाहरणार्थ, कपड़ा, मशीनें, यन्त्र, सोना, चाँदी इत्या टिकाऊ वस्तुओं का बाजार व्यापक होता है। इसके विपरीत नाशवान वस्तुओं, जैसे सब्जी, दूध, मछली इत्यादि का बाजार संकीर्ण होता है। परन्तु आधुनिक युग में वैज्ञानिक आविष्का तेज यातायात के साधनों तथा प्रशीतक व्यवस्था (refrigerative system) के कारण नाश वस्तुओं का बाजार भी विस्तृत हो गया है।

(४) **नमूने या ग्रेड बनाने की उपयुक्तता** (Suitability for sampling and grading) जिन वस्तुओं के नमूने बनाये जा सकते हैं या जिनको ग्रेडों या वर्गों में बाँटा जा सकता है उन बाजार विस्तृत होगा। उदाहरणार्थ, गेहूँ को कई ग्रेडों में विभाजित किया जा सकता है, परिणा स्वरूप, उसका क्रय-विक्रय सुगमता से होता है और उसका बाजार विस्तृत होता है। इसी प्रा ऊनी कपड़े का नमूनों द्वारा सुगमता से सौदा होता है और इसलिए इसका बाजार विस्तृत हो है। इसके विपरीत सब्जी, दूध, मछली इत्यादि में ये गुण नहीं होते, इसलिए इनके बाजार संकी होते हैं।

(५) **पूर्ति की पर्याप्तता** (Adequacy of supply)—जिस वस्तु की पूर्ति पर्याप्त मा में प्राप्त होती है तथा आवश्यकतानुसार बढ़ायी जा सकती है उसका बाजार विस्तृत होगा। य वस्तु विशेष की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं है तो उपभोक्ता उसके स्थान पर अन्य वस्तु का प्रयो करने लग जायेंगे और इस प्रकार उसका बाजार सीमित हो जायेगा।

II. देश का वातावरण तथा उसकी आन्तरिक दशाएँ (Country's Environment and Inter nal Conditions)

(१) विकसित यातायात व संवादवहन के साधन (Developed means of transpo

(४) विक्रय की नयी तथा वैज्ञानिक रीतियाँ (New and scientific methods of sales)—यदि वस्तुओं के विक्रय के लिए वैज्ञानिक तथा आधुनिक रीतियों, विज्ञापन, प्रदर्शनी इत्यादि का प्रयोग किया जाता है तो बाजार का विस्तार होगा।

(५) सरकार की कर तथा व्यापार नीति (Government's tax and commercial policy)—यदि सरकार कुछ वस्तुओं के निर्यात पर भारी 'निर्यात कर' (export duties) लगाती है तो उनका निर्यात बहुत कम हो जायेगा या बन्द हो जायेगा और इस प्रकार उनका बाजार देश तक ही सीमित रह जायेगा। इसके विपरीत यदि सरकार कुछ वस्तुओं के निर्यात के लिए अधिक आर्थिक सहायता (subsidies) तथा अन्य प्रकार की प्रेरणाएँ (incentive) देती है तो उनका बाजार अन्तरराष्ट्रीय हो जायेगा।

(६) शान्ति तथा सुरक्षा (Peace and security)—यह स्पष्ट है कि वस्तुओं के विस्तृत बाजार के लिए यह आवश्यक है कि देश विशेष में शान्ति हो तथा व्यापार की सुरक्षित दशाएँ हों। संसार के विभिन्न देशों में भी शान्ति और सुरक्षा होनी चाहिए तभी अन्तरराष्ट्रीय व्यापार बड़ी मात्रा में हो सकेगा।

२ बाजार के रूप
[MORPHOLOGY OF THE MARKET]

एक फर्म अपनी वस्तु का कितना उत्पादन करेगी और उसे किस कीमत पर बेचेगी यह बात बाजार के रूप पर निर्भर करेगी। बाजार स्थितियाँ या बाजार के रूप कई बातों पर निर्भर करते हैं : (i) वस्तु का स्वभाव अर्थात् वस्तु एकरूप (homogeneous) है या भेदित (differentiated); (ii) क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक है या कम; (iii) क्रेताओं तथा विक्रेताओं में पारस्परिक निर्भरता का अंश। संक्षेप में, बाजार के रूप प्रतियोगिता के अंश पर निर्भर करते हैं। मोटे तौर पर दो स्थितियाँ होती हैं : (i) पूर्ण प्रतियोगिता (perfect competition); कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री 'पूर्ण प्रतियोगिता' तथा 'विशुद्ध प्रतियोगिता' (pure competition) में भेद करते हैं; तथा (ii) अपूर्ण प्रतियोगिता (imperfect competition), इसके कई रूप हो सकते हैं, जैसे एकाधिकारी प्रतियोगिता (monopolistic competition), अल्पाधिकार (oligopoly), द्वयधिकार (duopoly); या एकाधिकार (monopoly)। बाजार के रूपों में दो सिरे की स्थितियाँ (two extreme situations) हैं—एक सिरे पर 'पूर्ण प्रतियोगिता' या 'विशुद्ध प्रतियोगिता' तथा दूसरे सिरे पर 'विशुद्ध एकाधिकार'; इन दोनों के बीच बाजार की विभिन्न स्थितियाँ होती हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता
(PERFECT COMPETITION)

पूर्ण प्रतियोगिता का सार (essence) यह है कि इसमें कोई भी एक क्रेता या विक्रेता व्यक्तिगत रूप से बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता है; वस्तु का एक ही मूल्य होता है।

पूर्ण प्रतियोगिता की परिभाषा (Definition of Perfect Competition)

श्रीमती जोन रॉबिन्सन के अनुसार, "पूर्ण प्रतियोगिता उस दशा में पायी जाती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन की माँग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका अर्थ है : प्रथम, विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है जिससे किसी एक उत्पादक का उत्पादन वस्तु के कुल उत्पादन का एक बहुत ही थोड़ा भाग होता है, तथा दूसरे, सभी क्रेता, प्रतिद्वन्द्वी विक्रेताओं के बीच चुनाव करने की दृष्टि से, समान होते हैं जिससे बाजार पूर्ण हो जाता है।"[1]

पूर्ण प्रतियोगिता के लिए दशाएँ (Conditions for the Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता के लिए निम्न दशाओं का पूरा होना आवश्यक है :

(१) स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अधिक संख्या (Large number of independently acting sellers and buyers)—(i) पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है और वे छोटे (small) होते हैं। अतः प्रत्येक विक्रेता वस्तु की कुल पूर्ति का इतना थोड़ा भाग उत्पादित करता है कि उत्पादन में कमी या वृद्धि करके वह व्यक्तिगत रूप से बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता। इसी प्रकार प्रत्येक क्रेता कुल पूर्ति का बहुत ही थोड़ा भाग खरीदता है और इसलिए अपनी क्रय की मात्रा को कम या अधिक करके वह व्यक्तिगत रूप से मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता।

(ii) क्रेता तथा विक्रेता स्वतन्त्र रूप से (independently) कार्य करते हैं। विक्रेताओं में कोई समझौता (agreement) या गुप्त-सन्धि (collusion) नहीं होती और इस प्रकार वे व्यक्तिगत रूप से बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकते। इसी प्रकार क्रेता भी स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं और उनमें कोई समझौता या गुप्त-सन्धि नहीं होती।

(iii) यद्यपि व्यक्तिगत रूप से कोई विक्रेता या उत्पादक अपने उत्पादन में वृद्धि या कमी करके वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता, परन्तु ध्यान रहे कि एक स्पर्द्धात्मक उद्योग (competitive industry) में समस्त उत्पादक एक समूह (group) के रूप में बाजार मूल्य को प्रभावित कर सकते हैं।[2]

---

1 "Perfect competition prevails when the demand for the output of each producer is perfectly elastic. This entails, first, that the number of sellers is large, so that the output of any one seller is a negligibly small proportion of the total output of the commodity, and second, that buyers are all alike in respect of their choice between rival sellers, so that the market is perfect."

—Mrs. Joan Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, p. 18.

2 यदि उद्योग विशेष में ४,००० फर्में हैं और प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन को १०० इकाइयों से घटा देती है तो कुल उत्पादन ४०००×१००=४,००,००० इकाइयों से घट जायेगा, परिणामस्वरूप बाजार मूल्य बढ़ जायेगा। अतः एक व्यक्तिगत उत्पादक मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता, परन्तु सब उत्पादक एक समूह के रूप में मूल्य को प्रभावित कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि वस्तु का मूल्य एक फर्म के लिए निश्चित (fixed) रहता है, परन्तु कुल पूर्ति अर्थात् कुल उत्पादन में परिवर्तनों के कारण मूल्य में वृद्धि या कमी होती है। इसी प्रकार यद्यपि एक क्रेता व्यक्तिगत रूप से मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता, परन्तु सभी क्रेताओं द्वारा वस्तु की कुल माँग में वृद्धि या कमी के परिणामस्वरूप बाजार मूल्य में अवश्य परिवर्तन होगा।

(2) एकरूप वस्तु तथा वस्तु-विभेद की पूर्ण अनुपस्थिति (Homogeneous product and complete absence of product differentiation)—(i) वस्तु विशेष एकरूप होती है चाहे वह किसी भी फर्म द्वारा उत्पादित की जाए या किसी भी विक्रेता द्वारा बेची जाय। दूसरे शब्दों में, वस्तु का प्रमापीकरण (standardisation) होता है तथा वस्तु की इकाइयाँ, चाहे वह किसी भी फर्म द्वारा उत्पादित हो, एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होती है। अतः कोई भी उत्पादक या विक्रेता प्रचलित कीमत से ऊँची कीमत नहीं ले सकेगा क्योंकि यदि वह ऐसा करता है तो क्रेता वही वस्तु दूसरे उत्पादक या विक्रेताओं से कम कीमत पर खरीद लेगा।

(ii) केवल वस्तु का ही नहीं बल्कि विक्रेताओं का भी प्रमापीकरण होना चाहिए ताकि क्रेताओं द्वारा एक विक्रेता की अपेक्षा दूसरे को पसन्द करने का कोई कारण न मिले। विभिन्न विक्रेताओं के व्यक्तित्व (personality) में, उनकी ख्याति (reputation) में तथा उनके विक्रय स्थानों (localities) में कोई ऐसी बात नहीं होनी चाहिए कि क्रेता एक विक्रेता की अपेक्षा दूसरे को पसन्द करें।

(iii) चूंकि फर्में प्रमापित वस्तु (standardised commodity) का उत्पादन करती है इसलिए 'गैर-कीमत प्रतियोगिता' (non-price competition) के लिए कोई जगह नहीं होती, अर्थात् वस्तु के गुण मे अन्तर, विज्ञापन या विक्रय-वर्धन (sales promotion) के आधार पर कोई प्रतियोगिता नहीं होती। विक्रेता विज्ञापन तथा प्रसार द्वारा क्रेताओं के मस्तिष्क में कोई वस्तु-विभेद (product differentiation) उत्पन्न नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में, 'विज्ञापन तथा प्रसार पर व्यय' अर्थात् 'विक्रय लागतों' (selling costs) की अनुपस्थिति होती है।

(3) फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश तथा बहिर्गमन (Free entry and exit of firms)—पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों को उद्योग में प्रवेश या उसमें से बहिर्गमन की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। इसके अभिप्राय निम्न हैं :

(i) यदि किसी फर्म या कुछ फर्मों की प्रवृत्ति उत्पत्ति के साधनों पर एकाधिकार शक्ति प्राप्त करके वस्तु की पूर्ति पर एकाधिकारी शक्ति अर्जित करने की है तो उद्योग में फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश के कारण ऐसा नहीं हो सकेगा।

(ii) इसके अतिरिक्त इस दशा का अर्थ है कि दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ (normal profit) ही होगा। यदि फर्मों को अधिक लाभ (excess profit) प्राप्त हो रहा है अर्थात् कीमत अधिक है लागत से, तो लाभ के आकर्षण से नयी फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी, पूर्ति बढ़ेगी, कीमत घटकर ठीक लागत के बराबर हो जायेगी और फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। यदि कुछ फर्मों को हानि हो रही है तो वे उद्योग को छोड़ देंगी, पूर्ति घटेगी, कीमत बढ़कर ठीक लागत के बराबर हो जायेगी और फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। अतः फर्मों को दीर्घकाल में न लाभ होगा और न हानि बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

(4) बाजार का पूर्ण ज्ञान (Perfect knowledge of the market)—पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेताओं को बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है यथा, बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों में 'क्रेताओं तथा विक्रेताओं में निकट सम्पर्क' (close contact of buyers and sellers) होता है। इसका अर्थ है कि क्रेताओं तथा विक्रेताओं को इस बात का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए कि बाजार में किन कीमतों पर लेन-देन (transaction) हो रहे हैं और अन्य क्रेता तथा विक्रेता किन कीमतों पर क्रय या विक्रय करने को तत्पर हैं। इस प्रकार के पूर्ण ज्ञान के परिणामस्वरूप बाजार में वस्तु विशेष की एक ही कीमत प्रचलित रहेगी।

(५) क्रेताओं तथा विक्रेताओं का सभी प्रकार की बाधाओं से स्वतन्त्र होना (Freedom of buyers and sellers from all kinds of restraints)—इसका अर्थ है कि क्रेताओं व विक्रेताओं में पूर्ण गतिशीलता होनी चाहिए, उनके क्रय तथा विक्रय में किसी प्रकार की बाधा नहीं होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच किसी तरह का स्नेह (attachment) नहीं होना चाहिए, उन्हें केवल कीमत से ही स्नेह होना चाहिए क्योंकि केवल ऐसी स्थिति में क्रेताओं की प्रवृत्ति सबसे कम कीमत पर बेचने वाले विक्रेता से खरीदने की तथा विक्रेताओं की प्रवृत्ति सबसे अधिक कीमत पर खरीदने वाले क्रेता को बेचने की होगी। इस दशा के कारण भी वस्तु की एक ही कीमत रहेगी।

(६) उत्पत्ति के साधनों का पूर्णतया गतिशील होना (Perfect mobility of factors of production)—पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पत्ति के साधन एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में पूर्णतया गतिशील होते हैं। सरकार की ओर से या किसी अन्य प्रकार की रुकावट उनकी गतिशीलता में बाधक नहीं होती है।

(७) समस्त उत्पादकों या फर्मों का बहुत समीप होना (All the producers are sufficiently close to each other)—कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, पूर्ण प्रतियोगिता में यह भी मान लिया जाता है कि समस्त उत्पादक बहुत समीप हों जिससे कि कोई परिवहन लागतें न हों।[3] परिणामस्वरूप, बाजार में वस्तु की कीमत एक ही होगी, उनमें परिवहन लागतों के कारण अन्तर नहीं होगा। मार्शल के अनुसार, वस्तु की कीमत में परिवहन लागतों के बराबर तक अन्तर हो सकता है और फिर भी बाजार पूर्ण प्रतियोगिता का बाजार कहा जायेगा। परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अधिक उपयुक्त बताया जाता है कि परिवहन लागतें न हों ताकि वस्तु की एक ही कीमत रहे।

पूर्ण प्रतियोगिता की सब दशाओं का सार है कि इसके अन्तर्गत वस्तु की कीमत एक ही होती है। टेक्नीकल शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत विक्रेता या उत्पादक या फर्म के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) होती है, अर्थात् माँग रेखा एक पड़ी हुई रेखा होती है। कोई भी क्रेता या विक्रेता अपनी कार्यवाहियों से वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में, एक **उत्पादक या फर्म की अपनी कोई मूल्य नीति नहीं होती; प्रत्येक फर्म 'मूल्य-ग्रहण करने वाली' ('price-taker') होती है, 'मूल्य-निर्धारित करने वाली' (price-maker) नहीं; प्रत्येक फर्म मूल्य को दिया हुआ मानकर उसके अनुसार वस्तु के उत्पादन की मात्रा निर्धारित करती है, अर्थात् प्रत्येक फर्म 'मात्रा-समायोजित करने वाली' ('quantity-adjuster') होती है।**

विशुद्ध प्रतियोगिता या परमाणुवादी प्रतियोगिता
(PURE COMPETITION OR ATOMISTIC COMPETITION)

प्रो० चेम्बरलिन (Chamberlin) 'पूर्ण प्रतियोगिता' (perfect competition) तथा 'विशुद्ध प्रतियोगिता' (pure competition) के बीच अन्तर करते हैं। कुछ अर्थशास्त्री 'विशुद्ध प्रतियोगिता' के लिए 'परमाणुवादी प्रतियोगिता' (atomistic competition) शब्द का भी प्रयोग करते हैं।

[3] "It is also convenient when discussing perfect competition to make the assumption that all producers work sufficiently close to each other, for there to be no transport costs."
—Stonier and Hague, *A Textbook of Economic Theory*, p. 126

प्रतियोगिता एकाधिकारी तत्त्वों से पूर्णतया स्वतन्त्र होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा यह अधिक ... पूर्ण प्रतियोगिता मे केवल 'एकाधिकारी तत्त्व की अनुपस्थिति की पूर्णता' (perfection) ही नहीं बल्कि कई अन्य प्रकार की पूर्णता भी पायी जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता में साधनों की पूर्ण प्रवाहिता (fluidity) या गतिशीलता (mobility) के अर्थ मे घर्षण (friction) की अनुपस्थिति हो सकती है। इसमे भविष्य के बारे मे पूर्ण ज्ञान हो सकता है और परिणामस्वरूप अनिश्चितता की अनुपस्थिति हो सकती है। इसमे और भी ऐसी पूर्णता हो सकती है जिसे कि एक अर्थशास्त्री अपनी समस्या के लिए सुविधाजनक तथा लाभदायक पाता है।[4] दूसरे शब्दो मे, पूर्ण प्रतियोगिता मे पायी जाने वाली कई दशाएँ, जैसे, बाजार की पूर्ण जानकारी, उत्पत्ति के साधनों की पूर्ण गतिशीलता, इत्यादि विशुद्ध प्रतियोगिता मे नही होती हैं।

विशुद्ध प्रतियोगिता के लिए केवल तीन दशाओ का होना आवश्यक है—(i) स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले क्रेताओं तथा विक्रेताओ की अधिक संख्या होती है। (ii) एकरूप वस्तु होती है तथा वस्तु-विभेद की पूर्ण अनुपस्थिति रहती है। (iii) उद्योग मे फर्मों का प्रवेश तथा उसमें से बहिर्गमन स्वतन्त्र होता है। ये तीनो दशाएँ पूर्ण प्रतियोगिता की प्रथम तीन दशाएँ है; पूर्ण प्रतियोगिता की अन्य दशाएँ विशुद्ध प्रतियोगिता मे शामिल नही होती। (इन तीनों दशाओ के अर्थों implications) के बारे में हम पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विस्तृत रूप से लिख चुके है, इसलिये यहाँ पर उनका विस्तृत विवरण नही दिया गया है।)

स्पष्ट है कि विशुद्ध प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा अधिक सरल है तथा कम विस्तृत (less inclusive) है। ध्यान रहे कि 'विशुद्ध प्रतियोगिता' तथा पूर्ण 'प्रतियोगिता' में कोई आधारभूत अन्तर नहीं है, अन्तर केवल मात्रा (degree) का है; दोनो मे आधारभूत बातें एक ही है। विशुद्ध प्रतियोगिता में भी, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता वस्तु की 'कीमत ग्रहण करने वाला' (price-taker) होता है, 'कीमत निर्धारित करने वाला' (price-maker) नहीं। प्रत्येक उत्पादक के लिए कीमत दी हुई होती है और तदनुसार वह उत्पादन की मात्रा समायोजित करता है। अतः प्रत्येक उत्पादक 'मात्रा समायोजित करने वाला' (quantity-adjuster) होता है; उसकी अपनी कोई 'मूल्य नीति' (price-policy) नहीं होती। पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, विशुद्ध प्रतियोगिता में भी एक व्यक्तिगत उत्पादक के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है; अर्थात् माँग रेखा पड़ी हुई रेखा (horizontal line) होती है।[5]

---

4 ... convenient and useful to his problem."

—Edward Chamberlin, *The Theory of Monopolistic Competition*, p. 6.

5 ... के शब्द का प्रयोग करते है परन्तु अमरीकन ... प्रयोग करना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि इसमे, ... मान्यताएँ होती है।

पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता का औचित्य
(THE JUSTIFICATION OF PERFECT OR PURE COMPETITION)

विशुद्ध प्रतियोगिता या पूर्ण प्रतियोगिता की दशाएं वास्तविक जीवन में नहीं पायी जाती हैं : (i) सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक नहीं होती। व्यवहार में कई वस्तुओं का उत्पादन केवल थोड़े से उत्पादक करते हैं जो वस्तु के मूल्य को प्रभावित कर सकते हैं। इसी प्रकार कुछ वस्तुओं के क्रेता अत्यन्त बड़े तथा प्रभावशाली होते हैं। (ii) वास्तविक जीवन में विभिन्न उत्पादकों द्वारा उत्पादित वस्तु मिलती-जुलती (similar) होती हैं परन्तु एक रूप (exactly identical or homogeneous) नहीं होती। विज्ञापन तथा प्रसार द्वारा क्रेताओं के मस्तिष्क में वस्तु-विभेद (product differentiation) उत्पन्न किया जाता है। (iii) उद्योग विशेष में फर्मों का प्रवेश स्वतन्त्र नहीं होता, उसमें कई प्रकार की बाधाएँ रहती हैं। (iv) यद्यपि यातायात तथा संवादवहन के साधनों में पर्याप्त विकास हुआ है परन्तु फिर भी क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। (v) उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता नहीं पायी जाती; इत्यादि। अतः वास्तविक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता का अभाव रहता है। अतः यह कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है।

यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि जब विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है तथा वास्तविक जीवन में नहीं पायी जाती तो हम इसका अध्ययन ही क्यों करते हैं? क्या पूर्ण प्रतियोगिता एक मिथ्यावाद (myth) है? पूर्ण प्रतियोगिता के अध्ययन का क्या औचित्य है?

यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसका अध्ययन बेकार है। पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन निम्न बातों के कारण आवश्यक तथा उचित है :

(१) **वास्तविकता की ओर उत्तरोत्तर जाने में एक आवश्यक अवस्था** (An essential stage in gradual approach to reality)—पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन वास्तविक अर्थव्यवस्था के जटिल कार्यकरण को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वास्तविक संसार जटिल है, हम उसके समस्त आर्थिक तत्वों तथा आर्थिक शक्तियों के कार्यकरण को एक साथ नहीं समझ सकते। हमें वास्तविकता से दूर हट कर कुछ शक्तियों या तत्वों को पृथक (isolate) करके उनका अध्ययन करना होगा। हमें धीरे-धीरे चलना होगा, पहले सरल स्थितियों (cases) को लेना होगा, तत्पश्चात क्रमशः नये तत्वों तथा अधिक जटिल स्थितियों को समाविष्ट (introduce) करना होगा। इस प्रकार की सरलीकरण (simplification) की प्रक्रिया (process) द्वारा ही वास्तविक जगत की जटिल आर्थिक समस्याओं को समझा और सुलझाया जा सकता है।

(२) **वास्तविक अर्थव्यवस्था के लिए 'आधारभूत विश्लेषणात्मक यन्त्रों' तथा 'अन्तर्दृष्टियों' को प्रदान करता है** (Provides basic analytical tools and insights for real economy)—वास्तविक जीवन में 'अपूर्ण प्रतियोगिता' या 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' (monopolistic competition) पायी जाती है, इसमें 'एकाधिकार' तथा 'प्रतियोगिता' दोनों के तत्वों का मिश्रण होता है। स्पष्ट है कि ऐसी वास्तविक स्थिति को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता को समझना आवश्यक है। 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की वास्तविक स्थिति में लगभग उन्हीं आधारभूत विश्लेषणात्मक यन्त्रों (basic analytical tools) का प्रयोग किया जाता है जो कि पूर्ण प्रतियोगिता में प्रयुक्त होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता के अध्ययन से प्राप्त अन्तर्दृष्टियों (insights) का प्रयोग वास्तविक जगत की स्थितियों को समझने के लिए आवश्यक है।

(३) व्यवहार में प्रतियोगिता क्यों पूर्ण प्रतियोगिता से कम होती है—प्रतियोगिता आर्थिक इकाइयों को बाध्य कर देती है कि वे समाज के लाभ के लिए कार्य करें। प्रतियोगिता वस्तुओं की कीमतों को कम करके उत्पादकों या व्यापारियों के लाभों को कम करती है। इसलिए वास्तविक जगत में व्यापारियों तथा उत्पादकों के लिए यह अधिक लाभदायक होता है कि वे जहाँ तक हो सके प्रतियोगिता से बचें या उसे हटायें। अतः पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन इस बात की व्याख्या करता है कि व्यवहार में प्रतियोगिता क्यों 'पूर्ण प्रतियोगिता' से कम होती है।

(४) अपूर्णता की मात्राओं को ज्ञात करने के लिए एक आदर्श मापदण्ड (Provides an ideal standard for knowing the varying degrees of imperfections)—बहुत से अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता का चित्र एक ऐसी 'आदर्श स्थिति' (ideal state) को बताता है कि किस प्रकार एक स्वतन्त्र-उपक्रम व्यवस्था (free enterprise economy) को कार्य करना चाहिए। वास्तविक जगत मे विभिन्न स्थितियों में प्रतियोगिता की कितनी कमी है अर्थात् उनमें कितनी अपूर्णता (imperfection) है, यह 'पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति' से तुलना करके ज्ञात किया जा सकता है। अतः वास्तविक बाजारों के अध्ययन के लिए पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता एक आधार (base or benchmark) का कार्य करती है।

विशुद्ध एकाधिकार
(PURE MONOPOLY)

एकाधिकारी वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण हो। विशुद्ध एकाधिकार में प्रतियोगिता शून्य होती है। विशुद्ध एकाधिकार के अस्तित्व के लिए निम्न तीन दशाओं का पूरा होना आवश्यक है :

(१) वस्तु का एक विक्रेता हो या उसका उत्पादन केवल एक फर्म द्वारा हो। दूसरे शब्दों में एकाधिकारी 'एक-फर्म उद्योग' (one-firm industry) होता है।

(२) वस्तु के कोई निकट या अच्छे स्थानापन्न (close or good substitutes) न हों। दूसरे शब्दों में, वस्तु की मांग की आड़ी लोच शून्य होती है।

(३) उद्योग में नये उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें (effective barriers) हों।

टेकनीकल शब्दों में, विशुद्ध एकाधिकार एक-फर्म उद्योग होता है और इस फर्म की वस्तु तथा अर्थव्यवस्था मे किसी भी अन्य वस्तु के बीच की मांग की आड़ी लोच (cross-elasticity of demand) शून्य होती है।[6] $C_e = O$.

एकाधिकारी के अर्थ या अभिप्रायों को भली-भाँति समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

(i) उपर्युक्त तीनों दशाओं के कारण एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है और इसलिए वह मूल्य को प्रभावित कर सकता है। इसके विपरीत विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता में कोई भी विक्रेता या उत्पादक वस्तु के बाजार मूल्य को प्रभावित नही कर सकता।

(ii) एकाधिकार के अन्तर्गत विज्ञापन तथा प्रसार की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि प्रतियोगी उत्पादक नही होते। यदि विज्ञापन किया भी जाता है तो वह केवल जनता से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए किया जाता है।

6 In technical language, the pure monopoly is one-firm industry where cross-elasticity of demand between the product of the monopoly firm and any other product in the economy is zero.

(iii) यद्यपि एक एकाधिकारी मिलती-जुलती तथा निकट रूप से सम्बन्धित वस्तु' **प्रत्यक्ष प्रतियोगिता** से पृथक रहता है; परन्तु उसे **अप्रत्यक्ष प्रतियोगिता** का सामना करना है जो कि कभी-कभी बहुत तीव्र हो सकती है।"[7]

(iv) कुछ विशुद्ध एकाधिकारियों को 'सम्भावित प्रतियोगिता' (potential competit का सामना करना पड़ सकता है जिससे उनकी कीमत तथा उत्पादन नीतियों पर प्रभाव पड़ता

(v) व्यवहार में विशुद्ध एकाधिकारी नहीं पाया जाता क्योंकि उसकी तीनों दशाएं पूर्ण रूप से पाया जाना अत्यन्त कठिन है। किसी वस्तु का एक उत्पादक हो सकता है परन्तु प्र वस्तु का कोई न कोई स्थानापन्न अवश्य होता है और उस एक उत्पादक को अप्रत्यक्ष प्रतियो का सामना सदैव करना पड़ता है। जिस प्रकार पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगता एक सिरे (extren की स्थिति को बताता है, उसी प्रकार विशुद्ध एकाधिकार दूसरे सिरे की स्थिति को बताता है।

वास्तव में व्यावहारिक जगत में एकाधिकार का अर्थ केवल एक उत्पादक से नहीं है बल्कि उस उत्पादक या कुछ उत्पादकों से होता है जो कि वस्तु की कुल पूर्ति का एक बड़ा उत्पादन करते हैं और इसलिए बाजार तथा बाजार की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं। अ **व्यवहार में एकाधिकारी शक्ति का सार बाजार नियन्त्रण है।** दूसरे शब्दों में, विशुद्ध एकाधिका की स्थिति नहीं पायी जाती बल्कि, श्रीमती जोन रोबिन्सन के शब्दों, में 'अपूर्ण प्रतियोगिता स्थिति' या, प्रो० चेम्बरलिन के शब्दों में, 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की स्थिति पायी जाती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता
(IMPERFECT COMPETITION)

परम्परागत मूल्य सिद्धान्त ने दो सिरे की स्थितियों—एक ओर पूर्ण प्रतियोगिता तथ दूसरी ओर विशुद्ध एकाधिकार—पर ध्यान दिया। ये दोनों स्थितियाँ वास्तविक संसार में नहीं पायी जाती हैं। श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, वास्तविक जगत में 'अपूर्ण प्रतियोगिता' होती है, जबकि प्रो० चेम्बरलिन के अनुसार, 'एकाधिकारी प्रतियोगिता'।

अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ (Meaning of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ है पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता में अपूर्णताओं की उपस्थिति। दूसरे शब्दों में, जब **पूर्ण प्रतियोगिताओं की दशाओं में से किसी भी दशा का अभाव होता है तो अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।**[8] यदि क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक नहीं है; या क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या तो अधिक है परन्तु वस्तु एक रूप नहीं है, अर्थात् उसमें विभिन्नता है; या क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं है, तो प्रत्येक दशा में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

टेक्नीकल शब्दों में, अपूर्ण प्रतियोगिता तब होती है जबकि एक व्यक्तिगत फर्म की वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार नहीं होती;[9] अथवा, **प्रो०** लार्नर (Lerner) के शब्दों में, "अपूर्ण

---

7 "Consequently, while a monopoly is isolated from *direct competition* with producers of identical or closely related commodities, it is nevertheless subject to *indirect competition* that is sometimes very keen."

8 Imperfect competition implies imperfections in perfect or pure competition. In other words, imperfect competition prevails when any of the conditions of perfect competition is absent.

9 Imperfect competition prevails when the demand for the individual firm's product is not perfectly elastic.

प्रतियोगिता तब पायी जाती है जबकि एक विक्रेता अपनी वस्तु के लिए एक गिरती हुई मांग रेखा का सामना करता है।[10]

अपूर्ण प्रतियोगिता एक विस्तृत शब्द है और यह पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकार के बीच समस्त क्षेत्र को बताता है; अर्थात् इसके अन्तर्गत 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' (monopolistic competition), 'अल्पाधिकार' (oligopoly) तथा 'द्वयधिकार' (duopoly) की स्थितियाँ भी शामिल होती हैं। अतः पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति अपूर्ण प्रतियोगिता की कोई एक अकेली प्रतिनिधि स्थिति नहीं होती।[11] स्टोनियर तथा हेग ने अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति को बहुत अच्छी प्रकार से इन शब्दों में व्यक्त किया है, "यद्यपि अपूर्ण प्रतियोगिता की आधारभूत

ge revenue

और विभिन्न

सकने वाली

ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं जहाँ पर कि फर्म की औसत आगम रेखा नीचे की ओर केवल बहुत धीमी गति से गिरती है और जहाँ पर कि प्रतियोगिता लगभग पूर्ण हो; तथा अन्य स्थितियों में रेखा का ढाल अत्यन्त गहरा (steep) हो सकता है तथा प्रतियोगिता अत्यन्त अपूर्ण हो सकती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की कोई एक अकेली स्थिति नहीं होती है, बल्कि यह एक सम्पूर्ण क्षेत्र या स्थितियों की एक शृंखला (series) होती है जो कि उत्तरोत्तर (progressively) अधिकाधिक अपूर्ण प्रतियोगिता को बताती है।"[12]

अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण (Causes of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता के उत्पन्न होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं .

(१) क्रेताओं तथा विक्रेताओं की कम संख्या (Small number of buyers and sellers)—क्रेताओं तथा विक्रेताओं की कम संख्या होने के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता हो सकती है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत क्रेता तथा विक्रेता अपने कार्यों से वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकेंगे।

(२) विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अज्ञानता (Ignorance of sellers and buyers)—विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अज्ञानता के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक हो सकती है परन्तु यदि उन्हें बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान नहीं है अर्थात् उन्हें बाजार की कीमतों तथा मात्राओं की जानकारी नहीं है तो एक वस्तु की विभिन्न कीमतें होंगी और प्रतियोगिता अपूर्ण होगी।

---

10 Imperfect competition obtains when the seller is "confronted with a falling demand curve for his product."

11 Thus, there is no single representative case of imperfect competition as there is of perfect competition.

12

etition." —Stonier and Hague, *A Textbook of Economic Theory*, p. 164.

(३) **वस्तु की इकाइयों में वास्तविक व काल्पनिक अन्तर** (Real or imagi- differences in the units of a commodity)—जब विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु विभिन्न विक्रेताओं द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं में अन्तर होगा तो वस्तु की कई कीमतें और प्रतियोगिता अपूर्ण हो जायेगी। वस्तु की इकाइयों में अन्तर वास्तविक हो सकता है काल्पनिक।

अन्तर के कारण निम्न हो सकते हैं : (i) विभिन्न विक्रेताओं की **वस्तु के गुण** (mat- content) **में वास्तविक अन्तर** हो सकता है। (ii) कुछ विक्रेताओं का **स्थान** (location) दू की अपेक्षा अच्छा हो सकता है। उदाहरणार्थ, धनवान व्यक्ति स्वच्छ तथा फैशनेबल स्थान पर वि विक्रेता की दुकान से वस्तु का खरीदना पसन्द करेंगे चाहे उन्हें कुछ ऊँची कीमत देनी प (iii) प्रायः क्रेता वस्तु को उन विक्रेताओं से खरीदना पसन्द करेंगे जिनका **व्यवहार** अच्छा है उन्हें वस्तु के लिए कुछ ऊँची कीमत देनी पड़े। (iv) जो विक्रेता अपने ग्राहकों को साख **सुविधाएँ** प्रदान करता है वह अधिक ग्राहक आकर्षित करेगा तथा अन्य विक्रेताओं की अपेक्षा वस्तु की ऊँची कीमत प्राप्त कर सकेगा। (v) **विज्ञापन तथा प्रसार** द्वारा विक्रेता क्रेताओं मस्तिष्क में यह धारणा उत्पन्न कर सकते हैं कि उनकी वस्तु अन्य विक्रेताओं की अपेक्षा अधि श्रेष्ठ है (चाहे वह वास्तव में श्रेष्ठ हो या न हो) और इसलिए वस्तु की कीमत में भिन्नता जाती है।

ध्यान रहे कि यद्यपि श्रीमती जोन रोबिन्सन अपूर्ण प्रतियोगिता में 'वस्तु-विभेद' (product differentiation) शब्द का प्रयोग नहीं करती हैं, परन्तु उपर्युक्त सब दशाएँ लगभग वही हैं जो कि प्रो० चेम्बरलिन वस्तु-विभेद के लिए बताते हैं।

(४) **क्रेताओं की सुस्ती तथा अगतिशीलता** (Inertia or immobility of buyers) यह सम्भव है कि क्रेताओं को विभिन्न विक्रेताओं के द्वारा ली जाने वाली कीमतों का ज्ञान हो परन्तु केवल सुस्ती तथा लापरवाही के कारण वे कम कीमत पर बेचने वाले विक्रेताओं से वस्तु नहीं खरीदते। इस कारण वस्तु की कई कीमतें प्रचलित रह सकती हैं।

(५) **ऊँचा यातायात व्यय** (High transport cost)—यदि वस्तु को विभिन्न स्थानों पर लाने-ले-जाने में ऊँची यातायात लागत पड़ती है तो विभिन्न स्थानों तथा क्षेत्रों में वस्तु की कीमत में अन्तर रहेगा और अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो जायेगी।

एकाधिकारी प्रतियोगिता
(MONOPOLISTIC COMPETITION)

'एकाधिकारी प्रतियोगिता' अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म (leading type) है; अतः ढीले रूप में (loosely) 'अपूर्ण प्रतियोगिता' तथा 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' प्रायः एक दूसरे के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की परिभाषा (Definition of Monopolistic Competition)

प्रो० चेम्बरलिन ने एकाधिकारी प्रतियोगिता के विचार को प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि व्यावहारिक जीवन में न पूर्ण प्रतियोगिता और न विशुद्ध एकाधिकार पाया जाता है बल्कि इन दोनों के मध्य की स्थिति पायी जाती है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता बाजार का वह रूप है जिसमें कि बहुत सी छोटी फर्में होती हैं और उनमें से प्रत्येक फर्म मिलती-जुलती (similar) वस्तुएँ बेचती है परन्तु वस्तुएँ एक रूप (homogeneous or exactly identical) नहीं होतीं, वस्तुओं में थोड़ी भिन्नता या भेद (differentiation) होता है। वस्तु-विभेद (product differentiation) के कारण प्रत्येक विक्रेता

एक सीमा तक वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है और इस प्रकार वह अपने क्षेत्र में एक छोटा सा एकाधिकारी होता है; परन्तु इन एकाधिकारी विक्रेताओं में बडी तीव्र प्रतियोगिता भी होती है। अत: ऐसी स्थिति को प्रो० चेम्बरलिन ने 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' कहा क्योंकि इसमें एकाधिकार तथा प्रतियोगिता दोनों की विशेषताओं का मिश्रण होता है। एकाधिकारी प्रतियोगिता को 'समूह सन्तुलन' (group equilibrium) भी कहा जाता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की विशेषताएँ (Characteristics of Monopolistic Competition)

एकाधिकारी प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताएँ या दशाएँ निम्न हैं :

(१) स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओं की अधिक संख्या (Large number of independently acting sellers)—(i) पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति एकाधिकारी प्रतियोगिता में भी विक्रेताओं या उत्पादकों की अधिक संख्या होती है, प्रत्येक विक्रेता या उत्पादक छोटा (small) होता है और कुल उत्पत्ति का बहुत थोड़ा भाग उत्पादित करता है।

(ii) उत्पादकों या विक्रेताओं में प्रतियोगिता होती है, वे स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं, उनमें कोई समझौता (agreement) या गुप्त सन्धि (collusion) नहीं होती।

(२) वस्तु-विभेद या वस्तु-भिन्नता (Product differentiation or product heterogeneity)—पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु एक रूप या प्रमापित (standardised) होती है। इसके विपरीत एकाधिकारी प्रतियोगिता में वस्तुएँ मिलती-जुलती (similar) होती है परन्तु एक रूप नहीं होती, उनमें थोड़ा भेद या भिन्नता रहती है। 'वस्तु-विभेद' या 'वस्तु-भिन्नता' एकाधिकारी प्रतियोगिता की एक आधारभूत प्रभेदक (distinguishing) विशेषता होती है; यह विशेषता ही इसे पूर्ण प्रतियोगिता से प्रभेदित (differentiate) करती है; यदि वस्तु-विभेद की दशा को निकाल दिया जाय तो हम लगभग विशुद्ध प्रतियोगिता या पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में पहुँच जायेंगे।

(अ) वस्तु-विभेद के अभिप्राय इस प्रकार है :

(i) वस्तु-विभेद के कारण 'एकाधिकार तत्त्व' (monopoly element) उत्पन्न होता है। चूँकि वस्तु में थोड़ी भिन्नता होती है इसलिए प्रत्येक उत्पादक एक छोटे एकाधिकारी की भाँति होता है और एक सीमा तक अपनी वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है।

(ii) यद्यपि वस्तु-विभेद उपस्थित होता है परन्तु वस्तुएँ मिलती-जुलती भी होती हैं। दूसरे शब्दों में, वस्तुएँ एक दूसरे की निकट स्थानापन्न (close substitutes) होती हैं, पर पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नहीं होती। इसका अर्थ है कि उत्पादकों में प्रतियोगिता होती है और एक उत्पादक के कीमत-उत्पादन निर्णय (price-output decision) दूसरे उत्पादक के कीमत-उत्पादन निर्णय को प्रभावित करते हैं।

वस्तु-विभेद के दोनों अभिप्रायों (implications) को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है : "जिस प्रकार की फर्मों की अधिक संख्या की उपस्थिति प्रतियोगिता को जन्म देती है, उसी प्रकार से वस्तु-विभेद एक सीमा तक एकाधिकारी शक्ति को उत्पन्न करता है। नि:सन्देह, एकाधिकारी प्रतियोगिता को कभी-कभी 'विभेदकरण' (differentiation) तथा 'अधिक संख्या की स्थिति' कहा जाता है।"[13]

(ब) वस्तु-विभेद निम्न कारणों से उत्पन्न हो सकता है :

---

13 "Just as the presence of a relatively large number of firms makes for competition, product differentiation gives rise to a measure of monopoly power. Indeed, monopolistic competition is sometimes called *the case of differentiation and large numbers.*"

(i) **वस्तु की भौतिक विशेषताओं** (Physical characteristics) **में अन्तर के क**
जैसे, वस्तु के गुण, ट्रेडमार्क, पेकिंग, डिजाइन, रंग, इत्यादि में अन्तर होने के कारण वस्तु-
उत्पन्न हो जाता है।

(ii) **वस्तु की वेचने की दशाओं में अन्तर के कारण**; जैसे, अच्छा विक्रय स्थान (local
नम्र आचरण के साथ सेवा (courteous service), उधार की सुविधाएँ, वेचने वाली सुन्दर
कियाँ (charming sales girls), इत्यादि के कारण क्रेता एक विक्रेता से वस्तुएँ खरीदना
करेंगे अपेक्षाकृत दूसरे के। इस प्रकार विक्रय दशाओं में अन्तर के कारण वस्तु-विभेद उत्प
जाता है।

(iii) **विज्ञापन तथा प्रसार के कारण**; निरन्तर विज्ञापन तथा प्रसार की आधुनिक रीं
द्वारा एक विक्रेता क्रेताओं में इस वात का विश्वास उत्पन्न करता है कि उसकी वस्तु अन्य वि
ताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। इस प्रकार क्रेताओं के मस्तिष्क में वस्तु-विभेद उत्पन्न कि
जाता है। यह **वस्तु-विभेद वास्तविक** (real) **हो सकता** है अर्थात् वस्तु विशेष वास्तव में
श्रेष्ठ हो सकती है; या **वस्तु-विभेद काल्पनिक** (imaginary) **हो सकता** है अर्थात् वस्तुओं के
में वास्तविक अन्तर नहीं होता वल्कि केवल ट्रेड मार्क, पेकिंग, डिजाइन, रंग, इत्यादि में अ
करके विज्ञापन द्वारा क्रेताओं के मस्तिष्कों में यह धारणा दृढ़ कर दी जाती है कि वस्तु विशेष
की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। दूसरे शब्दों में, वस्तु विशेष के लिए चाहे क्रेताओं की पसन्द विवे
(rational) हो या अविवेकपूर्ण (irrational), दोनों दशाओं में वस्तु-विभेद उत्पन्न हो जाता है।

(३) **फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश** (Free entry of firms)—एकाधिकारी प्रतियोगिता के अ
र्गत उद्योगों में पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति नयी फर्में स्वतन्त्र रूप से प्रवेश कर सकती हैं, परन्तु पू
प्रतियोगिता की तुलना में इनका प्रवेश कुछ कठिन होता है; इसका कारण है वस्तु-विभेद का होना
एक नयी फर्म को न केवल पर्याप्त पूँजी की ही आवश्यकता पड़ती है, बल्कि उसमें वर्तमान फर्मों
ग्राहकों को भी तोड़ सकने की क्षमता होनी चाहिए। इसका अर्थ है कि नयी फर्मों को अनुसन्धा
तथा वस्तु-विकास (research and product development) पर पर्याप्त धन व्यय करना पड़ेग
ताकि उनकी वस्तु की विशेषताएँ वाजार में स्थित अन्य वस्तुओं से भिन्न हों। साथ ही अपनी नयी
ब्राण्ड की वस्तु की उपस्थिति तथा नयी वस्तु के प्रति ग्राहकों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए उन्हें
विज्ञापन तथा प्रसार पर पर्याप्त मात्रा में धन व्यय करना पड़ेगा। संक्षेप में, पूर्ण प्रतियोगिता की
अपेक्षा, एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्मों को उद्योग में प्रवेश के लिए अधिक वित्तीय बाधाओं का
सामना करना होगा।

चूँकि एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्मों का प्रवेश स्वतन्त्र होता है, इसलिए दीर्घकाल में
एकाधिकारी प्रतियोगिता में भी, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, फर्मों को साधारणतया केवल 'सामान्य
लाभ' (normal profit) ही प्राप्त होता है क्योंकि अतिरिक्त लाभ (surplus profit) या नुक-
सान प्रतियोगिता तथा फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश या वहिर्गमन (exit) के कारण समाप्त हो जाता है।

(४) **गैर-मूल्य प्रतियोगिता** (Non-price competition)—एकाधिकारी प्रतियोगिता में
वस्तुएँ प्रभेदित (differentiated) होती हैं, इसलिए फर्मों में तीव्र (vigorous) गैर-मूल्य प्रति-
योगिता होती है। इसका अर्थ है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता में स्पर्द्धा केवल मूल्य पर ही आधा-
रित नहीं होती वल्कि वस्तु के गुण (product quality), वस्तु के विक्रय से सम्बन्धित दशाओं
या सेवाओं, विज्ञापन इत्यादि पर भी आधारित होती है; ऐसी स्पर्द्धा या प्रतियोगिता को 'गैर-मूल्य
प्रतियोगिता' कहते हैं। ट्रेडमार्क तथा ब्राण्ड-नामों पर अधिक बल दिया जाता है और इनके द्वारा

विक्रेता क्रेताओं के मस्तिष्कों में यह बात जमाने का प्रयत्न करते हैं कि उनके ट्रेडमार्क या ब्राण्ड की वस्तु दूसरे विक्रेताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है।

नि:सन्देह, 'गुण तथा विज्ञापन प्रतियोगिता' दोनों साथ-साथ चलते हैं। विज्ञापन वस्तु के गुण के वास्तविक अन्तरों को, और यदि सम्भव है तो उनको बढ़ा-चढ़ा कर, बताता है। गुण सम्बन्धी प्रतियोगिता फर्म की वस्तु के सम्बन्ध में कारस्तानी (manipulation) करती है, जबकि विज्ञापन तथा विक्रय-प्रवर्तन उपभोक्ताओं के सम्बन्ध में कारस्तानी करते हैं।[14]

एकाधिकारी प्रतियोगिता की आधारभूत प्रभेदक विशेषता (distinguishing feature) वस्तु-विभेद है जो कि इसको पूर्ण प्रतियोगिता से भेदित (differentiate) करती है। यद्यपि एकाधिकारी प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है परन्तु, जैसा कि एकाधिकारी प्रतियोगिता की दशाओं से स्पष्ट है, यह पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है। इसलिए यह कहा जाता है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता 'अपूर्ण प्रतियोगिता का न्यूनतम अपूर्ण रूप' है।[15]

अल्पाधिकार

'अल्पाधिकार' अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है। पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता की अपेक्षा 'अल्पाधिकार' को अर्थशास्त्री कम निश्चित रूप से परिभाषित करते हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं—अल्पाधिकार में बाजार-ढाँचों (market structures) का अधिक विस्तृत क्षेत्र (range) शामिल होता है; वास्तव में, इसमें बाजार की वे सब स्थितियाँ शामिल होती हैं जो कि पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थितियों में उपयुक्त (fit) नहीं बैठती। (ii) अल्पाधिकार की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं (जिनका अध्ययन हम आगे करेंगे) जिनके कारण 'अल्पाधिकारी उद्योगों' (oligopolistic industries) के व्यवहार के सम्बन्ध में निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता है।

अल्पाधिकार का अर्थ (Meaning of Oligopoly)

अल्पाधिकार का अर्थ है थोड़े विक्रेताओं (few sellers) में प्रतियोगिता, अर्थात् अल्पाधिकार उस समय उत्पन्न होता है जबकि केवल थोड़े से विक्रेता होते हैं। यह 'एकाधिकार' तथा 'पूर्ण प्रतियोगिता' और 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' दोनों से भिन्न होता है—एकाधिकार में केवल एक विक्रेता होता है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकारी प्रतियोगिता में विक्रेताओं की अधिक संख्या होती है।[16]

अल्पाधिकार की विशेषताएँ (Characteristics of Oligopoly)

अल्पाधिकार की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

---

14 No doubt, quality and advertising competition go together. Advertising declares, and if possible, magnifies real differences in product quality. Quality competition manipulates the firm's product, whereas advertising and sales promotion attempt to manipulate the consumer.

15 Monopolistic competition is said to be the "least imperfect form of imperfect competition."

और इसमें पूर्णता
गिता का अधिक-
है।

16 ere there are only
seller, and from

(१) **विक्रेताओं का थोड़ा होना** (Fewness of sellers)—अल्पाधिकार की विशेषता है कि इसमें थोड़े से विक्रेता होते हैं। थोड़े विक्रेताओं के होने के अभिप्राय इस

(i) थोड़े विक्रेता होने के कारण प्रत्येक विक्रेता कुल पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादन है और **पूर्ति के एक बड़े भाग पर नियन्त्रण** (control) होने के कारण वह बाजार में कीमत को प्रभावित कर सकता है।

(ii) चूंकि विक्रेता थोड़े होते हैं, इसलिए एक विक्रेता की क्रियाओं तथा नीतियों का प्र दूसरे प्रतियोगी विक्रेताओं (rivals) की कीमत तथा उत्पादन नीति पर पड़ता है। अतः प्र फर्म या विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत, उत्पादन की मात्रा, विज्ञापन व्यय, वस्तु के गुण (prod quality) इत्यादि में परिवर्तन करने से पहले प्रतियोगी विक्रेताओं की सम्भावित प्रतिक्रिया (expected reactions) पर सावधानीपूर्वक विचार करता है। दूसरे शब्दों में, विक्रेताओं स्पष्ट रूप से **'पारस्परिक निर्भरता'** (mutual interdependence) होती है। अतः अल्पाधि की **एक मुख्य विशेषता विक्रेताओं की 'पारस्परिक निर्भरता'** है जो कि पूर्ण प्रतियोगिता त एकाधिकारी प्रतियोगिता में नहीं पायी जाती। "निःसन्देह, यह कहा जा सकता है कि अल्पाधिका **उस समय उपस्थित हो जाता है जब विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि एक की क्रिय का स्पष्ट तथा महत्त्वपूर्ण प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। एक अल्पाधिकारी उद्योग की सभी एक ही नाव में होती हैं। यदि एक फर्म नाव को हिलाती है तो दूसरी फर्में प्रभावित होंगी औ प्रायः वे सम्बन्धित फर्म को पहचान लेंगी तथा वे उससे बदला ले सकती हैं।**"[17]

(iii) चूंकि विक्रेताओं में पारस्परिक निर्भरता होती है और एक अल्पाधिकारी प्रतियोगी विक्रेताओं के सम्भावित व्यवहार तथा प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध में विभिन्न मान्यताओं को आधार मानकर चल सकता है, इसलिए **अल्पाधिकारी बाजारों के सम्बन्ध में साधारणीकरण** (generalisation) **करना अत्यन्त कठिन है; अल्पाधिकार का सिद्धान्त विशेष स्थितियों तथा व्यवहार-रूपों** (special cases and behaviour patterns) **का एकत्रीकरण होता है।** अल्पाधिकारी यह अनुभव करते हैं कि प्रतियोगियों द्वारा आक्रामक-मूल्य-कमी (agressive price-cutting) का कोई अच्छा परिणाम नहीं निकलता। अतः यह अधिक अच्छा है कि शान्ति (peace) स्थापित की जाय। शान्ति स्थापित करने के विभिन्न तरीकों के आधार पर विभिन्न प्रकार के अल्पाधिकारी संगठनों का जन्म हो जाता है।

(२) **लगभग प्रमापित वस्तु या भेदित वस्तु** (virtually standardised products or differentiated products)—अल्पाधिकारी लगभग एकरूप या प्रमापित वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं; या भेदित वस्तु (differentiated product) का। इस आधार पर अल्पाधिकारी को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—'विशुद्ध अल्पाधिकारी' (pure oligopoly)[18] तथा भेदित

---

17 Indeed, it can be said that oligopoly exists whenever the number of sellers is so few that the actions of one will have obvious and significant repercussions on the others. The firms of an oligopolistic industry are all in the same boat. If one rocks the boat, the others will be affected and in all probability will know the identity of the responsible firm and can retaliate."

18 'विशुद्ध अल्पाधिकार' (pure oligopoly) को 'एकरूप अल्पाधिकार' (homogeneous oligopoly) या 'अभेदित अल्पाधिकार' (undifferentiated oligopoly) या 'बिना वस्तु-विभेद के अल्पाधिकार' (oligopoly without product differentiation) के अन्य नामों से भी पुकारा जाता है।

अल्पाधिकारी' (defferentiated oligopoly)। 'विशुद्ध अल्पाधिकार' में विक्रेताओं की वस्तु एकरूप होती है। 'भेदित अल्पाधिकार' या 'वस्तु-विभेद के साथ अल्पाधिकार' (oligopoly with product differentiation) में विक्रेताओं की वस्तु मिलती-जुलती (similar) होती है, परन्तु एकरूप नहीं, उसमें कुछ अन्तर या भिन्नता रहती है।

यह सुगमता से समझा जा सकता है कि 'वस्तु-विभेद के साथ अल्पाधिकार' (oligopoly with product differentiation) वास्तव में 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की ही एक विशेष स्थिति (special case) है। मुख्य अन्तर यह है कि 'भेदित अल्पाधिकार' में चूँकि विक्रेताओं की संख्या कम होती है इसलिए प्रतियोगियों (rivals) की क्रियाओं के लिए अधिक सावधानी तथा व्यक्तिगत ध्यान की आवश्यकता पड़ती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता के बड़े समूह (large group) में प्रतियोगियों को, जिनकी संख्या अधिक होती है, इकट्ठे रूप में (*en mass*) देखा जा सकता है। चूँकि 'वस्तु-विभेद के साथ अल्पाधिकार' में प्रतियोगियों (competitors) की संख्या कम होती है इसलिए उनकी प्रतिक्रियाओं (reactions) को सुगमता से देखा तथा समझा जा सकता है तथा वे अधिक महत्त्वपूर्ण भी होती हैं अपेक्षाकृत एकाधिकारी प्रतियोगिता के।[19]

(३) मूल्य पर नियन्त्रण (Control over price)—अल्पाधिकार की एक मुख्य विशेषता 'पारस्परिक निर्भरता' है; एक अल्पाधिकारी फर्म का वस्तु के मूल्य पर नियन्त्रण इस 'पारस्परिक निर्भरता' के कारण सीमित रहता है। यदि एक फर्म अपनी वस्तु की कीमत को घटाती है तो प्रतियोगी फर्मों के ग्राहक टूट कर इसकी ओर आकर्षित होंगे और इसकी बिक्री बढ़ेगी; बदले में प्रतियोगी फर्में (rivals) कीमतें घटा देंगी। परिणामस्वरूप, कीमत-युद्ध (price-war) होगा और सभी फर्मों को हानि होगी। इसके विपरीत यदि एक अल्पाधिकारी अपनी कीमत बढ़ाता है तो प्रतियोगी फर्मों को अपनी वर्तमान कीमतों पर ही बिक्री तथा लाभ में वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में, 'एक कीमत-वृद्धि करने वाले अल्पाधिकारी को ऊँची कीमत के कारण स्वयं बाजार से निकलने का भय रहता है और इससे उसके प्रतियोगियों को लाभ होता है।"[20] उपर्युक्त कारणों से अल्पाधिकारी बाजार में फर्मों की यह प्रबल प्रवृत्ति रहती है कि कीमतों को बार-बार (frequently) न बदला जाय। कीमत-युद्ध से बचने के लिए अल्पाधिकार में प्रायः फर्में किसी न किसी प्रकार की गुप्त-सन्धि (collusive agreement) कर लेती हैं और सब फर्में एक समूह के रूप में ही कीमतें घटाती या बढ़ाती हैं; जब फर्में इस प्रकार से मिलकर कार्य करती हैं तो लगभग एकाधिकारी की स्थिति हो जाती है।

(४) फर्मों का प्रवेश तथा बहिर्गमन कठिन (Difficult entry and exit of firms)—अल्पाधिकारी उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश अत्यन्त कठिन होता है। अल्पाधिकारी फर्मों के पास आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति के अधिकांश भाग का स्वामित्व हो सकता है, उनकी वस्तुएँ पेटेन्ट द्वारा सुरक्षित हो सकती हैं, आरम्भ से ही नयी फर्म को स्थापित करने के लिए बड़ी मात्रा में विनियोग की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि अल्पाधिकार फर्मों की संख्या कम होती है और वे

19 ... lately be ... product ... be easily

20 ... market"

बहुत बड़ी होती हैं। उपर्युक्त बाधाओं के कारण अल्पाधिकारी उद्योग में नयी फर्मों का बहुत कठिन होता है, परन्तु एकाधिकार की भांति असम्भव नहीं होता। इसी प्रकार फर्मों आकार बहुत बड़ा होने तथा बहुत बड़ी मात्रा में विनियोग होने के कारण फर्मों के लिए उ में से बाहर निकलना भी कठिन होता है। जब तक जीवित रहने (survival) के सभी साधन तरीके (technique) समाप्त नहीं हो जाते तब तक कोई भी फर्म उद्योग को नहीं छोड़ेगी। स है कि अल्पाधिकारी उद्योग में फर्मों का प्रवेश तथा बहिर्गमन आसान नहीं होता।

(५) विज्ञापन तथा विक्रय प्रवर्तन की क्रियाएँ (Advertisement and sales promotion activities)—अल्पाधिकारी उद्योग विज्ञापन तथा विक्रय प्रवर्तन की क्रियाओं पर प्रा बहुत धन व्यय करते हैं। परन्तु विज्ञापन की मात्रा तथा किस्म इस बात पर निर्भर करती है फर्में प्रमापित वस्तुएँ या भेदित वस्तुएँ उत्पन्न कर रही हैं। उन अल्पाधिकारियों द्वारा विज्ञाप प्रतियोगिता पर अधिक धन व्यय किया जाता है जो कि भेदित वस्तुओं का उत्पादन करते हैं भेदित वस्तुओं का उत्पादन करने वाले अल्पाधिकारियों में 'गुण प्रतियोगिता' (quality competition) भी प्रबल होती है। वस्तु के विक्रय प्रवर्तन के लिए वस्तु के गुण में सुधार अतिरिक्त डिजाइन, अनुसन्धान, इत्यादि पर पर्याप्त धन व्यय किया जाता है जिसके सम्भावित प्रतियोगियों के प्रवेश को एक बड़ी सीमा तक रोका जाता है।

द्वि-अल्पाधिकार या द्वयधिकार
(DUOPOLY)

द्वि-अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें दो विक्रेता होते हैं और दोनों एक ही वस्तु बेचते हैं। दोनों विक्रेताओं की वस्तु प्रायः एकरूप (identical or homogeneous) होती है ऐसी स्थिति में दोनों की वस्तुओं की एक ही कीमत होगी। दोनों विक्रेताओं की वस्तुओं में बहुत थोड़ा अन्तर भी हो सकता है, ऐसी स्थिति में कीमत में थोडा अन्तर होगा। सामान्यतया द्वि-अल्पाधिकार में वस्तुएँ लगभग एकरूप ही होती हैं। जब दो विक्रेता एकरूप वस्तु बेचते हैं तो इसे 'विशुद्ध द्वि-अल्पाधिकार' (pure duopoly) कहते हैं। विशुद्ध द्वि-अल्पाधिकार, विशुद्ध एकाधिकार की भाँति, बहुत कम पाया जाता है; यद्यपि कभी-कभी तो विक्रेता एक बड़े समूह पर इस प्रकार प्रभुत्व (domination) रखते हैं कि लगभग द्वि-अल्पाधिकार की स्थिति उपस्थित हो जाती है।

अल्पाधिकार (oligopoly) में थोड़े विक्रेता होते हैं और जब इन थोड़े विक्रेताओं की संख्या केवल दो होती है तो द्वि-अल्पाधिकार उत्पन्न हो जाता है। अतः **अल्पाधिकार की सरलतम स्थिति (simplest case) ही द्वि-अल्पाधिकार है।**

अब हम **द्वि-अल्पाधिकार में मूल्य पर नियन्त्रण के सम्बन्ध में** विचार करते हैं। अल्पाधिकारी की भाँति, द्वि-अल्पाधिकार में दोनों विक्रेताओं में 'पारस्परिक निर्भरता' होती है। यदि एक विक्रेता कीमत को घटाता है तो दूसरा भी कीमत को घटायेगा; इस प्रकार कीमत-युद्ध छिड़ जायेगा जिससे किसी भी विक्रेता को लाभ नहीं होगा। इसके विपरीत यदि एक विक्रेता कीमत को ऊँचा करता है तो उसके ग्राहक टूट कर दूसरे के पास चले जायेंगे। अतः 'द्वि-अल्पाधिकार' में अल्पाधिकार की भाँति कीमत में स्थायित्व की प्रवृत्ति रहती है। परन्तु दोनों विक्रेताओं में [illegible] की सम्भावना अधिक होती है; दोनों विक्रेता समझौता करके एक समूह के रूप में कीमत घटा-बढ़ा सकते हैं। समझौते द्वारा प्रायः विक्रेता वस्तु की कीमत को ऊँचा रखते हैं, बाजार को आपस में बाँट लेते हैं और अधिक लाभ प्राप्त करते हैं।

यदि द्वि-अल्पाधिकार के अन्तर्गत वस्तु मे थोड़ा-सा अन्तर होता है तो प्रत्येक विक्रेता का अपना बाजार होता है, प्रत्येक अपने क्षेत्र मे एक एकाधिकारी की भाँति होता है और वस्तु का मूल्य एकाधिकारी की भाँति निर्धारित करता है।

पूर्ण प्रतियोगिता से लेकर एकाधिकार तक की स्थितियाँ संक्षेप मे निम्न तालिका द्वारा दिखायी गयी हैं।

	प्रतियोगिता के प्रकार (Kinds of Competition)			
विशेषताएँ (Characteristics)	पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता (Perfect or pure competition	एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopolistic competition)	अल्पाधिकार (Oligopoly) [नोट—द्वयधिकार (Duopoly) अल्पाधिकार की एक सरलीकृत स्थिति है, अत. द्वयधिकार को पृथक नही दिखाया जाता है।]	विशुद्ध एकाधिकार (Pure monopoly)
१	२	३	४	५
१. विक्रेताओं या उत्पादकों की संख्या	बहुत अधिक	अधिक	थोड़े, परन्तु दो से कम नही	एक
२. वस्तु का प्रकार अर्थात् वस्तु-विभेद की मात्रा	प्रमापित या एक-रूप	भेदित (differentiated)	प्रमापित या भेदित (standardised or differentiated)	सर्वथा भिन्न, कोई निकट स्थानापन्न नही
३. फर्म के लिए मांग रेखा	पूर्ण लोचदार अर्थात् पड़ी हुई रेखा (perfectly elastic, i.e. horizonal line)	पूर्ण लोचदार से कम, अर्थात् गिरती हुई रेखा	पूर्ण लोचदार से कम अर्थात् गिरती हुई रेखा (less than perfectly elastic, i.e., falling curve)	पूर्ण लोचदार से कम अर्थात् गिरती हुई रेखा (less than perfectly elastic, i.e., falling curve)
४. जानकारी की पूर्ण प्राप्यता	हाँ	नही	नही	नहीं
५. मूल्य पर नियन्त्रण की मात्रा	बिलकुल नहीं	कुछ	पारस्परिक निर्भरता के परिणाम-	पर्याप्त या पूर्ण

क्रेताओं की दृष्टि से बाजार की स्थितियाँ
(MARKET SITUATIONS ACCORDING TO BUYERS)

ऊपर हम विक्रेताओं की दृष्टि से बाजार की स्थितियों का अध्ययन कर चुके हैं। इसी प्रकार क्रेताओं की दृष्टि से अर्थात् क्रेताओं की संख्या के आधार पर भी बाजार के कई रूप होते हैं।

जब क्रेताओं की संख्या पर्याप्त होती है तो ऐसी स्थिति को 'क्रेता-एकाधिकारी-प्रतियोगिता' (monoposonistic competition) कहते हैं।

जब क्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है तो बाजार की ऐसी स्थिति को 'पूर्ण प्रतियोगिता' (perfect competition) कहते हैं।

जब केवल एक क्रेता (तथा अनेक विक्रेता) होता है तो बाजार की ऐसी स्थिति को 'क्रेता-एकाधिकार' (Monopsony) कहा जाता है। चूँकि क्रेता एक होता है, इसलिए यह मूल्य पर प्रबल प्रभाव रखता है।

बाजार में जब क्रेताओं की संख्या कम, सीमित या थोड़ी होती है तो ऐसी स्थिति को 'क्रेता-अल्पाधिकार' (Oligopsony) कहा जाता है। चूँकि 'क्रेता-अल्पाधिकार' में क्रेताओं की संख्या कम होती है इसलिए उनमें समझौते की सम्भावना अधिक रहती है और समझौते द्वारा क्रेता बाजार मूल्य को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित कर सकते हैं।

जब केवल दो क्रेता होते हैं तो ऐसी स्थिति को 'द्विक्रेता अल्पाधिकार' (Duopsony) [illegible] हैं।

विक्रेताओं तथा क्रेताओं की दृष्टि से बाजार की स्थितियों को संक्षेप में निम्न चार्ट में [illegible] गया है।

बाजार का विक्रेताओं (अर्थात् पूर्ति) का पक्ष [Sellers side (i.e. supply side) of the market]	बाजार का क्रेताओं (अर्थात् माँग) का पक्ष [Buyers side (i. e., demand side) of the market]
विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता (Pure or perfect competition)	विशुद्ध या पूर्ण प्रतियोगिता (Pure or perfect competition)
एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopolistic competition)	क्रेता-एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopsonistic competition)
अल्पाधिकार (Oligopoly)	क्रेता-अल्पाधिकार (Oligopsony)
द्वि-अल्पाधिकार (Duopoly)	द्विक्रेता-अल्पाधिकार (Duopsony)
विशुद्ध एकाधिकार (Pure Monopoly)	क्रेता-एकाधिकार (Monopsony)

पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता का तुलनात्मक अध्ययन
(A COMPARATIVE STUDY OF PERFECT AND IMPERFECT COMPETITION)

(१) पूर्ण या विशुद्ध प्रतियोगिता में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है; परिणामस्वरूप प्रत्येक विक्रेता छोटा होता है और कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग उत्पादित करता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में सामान्यतया विक्रेताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता में तो विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है और प्रत्येक विक्रेता के पास कुल पूर्ति का थोड़ा भाग होता है; परन्तु अल्पाधिकार में विक्रेता थोड़े होते हैं और प्रत्येक विक्रेता कुल पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादित करता है। द्वि-अल्पाधिकार में केवल दो विक्रेता ही होते हैं।

(२) पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु प्रमापित या एकरूप होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु सामान्यतया भिन्न होती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता, जो कि अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है, की आधारभूत प्रभेदक विशेषता (fundamental distinguishing characteristic) वस्तु-विभेद होती है। वस्तु के गुण, ट्रेडमार्क, पैकिंग, डिजाइन, भौतिक विशेषताओं (physical characteristics) में अन्तर, उच्च विक्रय स्थान, उधार की सुविधाएँ, विक्रेता का नम्र आचरण, इत्यादि, विक्रय की दशाओं में अन्तर तथा विज्ञापन और प्रसार के कारण क्रेताओं के मस्तिष्क में वस्तु-विभेद उत्पन्न हो जाता है। अल्पाधिकार में वस्तु एकरूप हो सकती है या भेदित (differentiated); पहली स्थिति को 'विशुद्ध अल्पाधिकार' तथा दूसरी को 'भेदित अल्पाधिकार' कहा जाता है।

(३) पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है तथा वस्तु एकरूप होती है, इसलिए कोई भी विक्रेता व्यक्तिगत रूप से वस्तु की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता; वस्तु की कीमत एक ही होती है। उद्योग विशेष में कीमत कुल माँग तथा कुल पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित हो जाती है और प्रत्येक फर्म या विक्रेता इस कीमत को दिया हुआ मान लेता है तथा इसके अनुसार अपने उत्पादन को समायोजित (adjust) करता है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक विक्रेता 'मात्रा-समायोजित करने वाला' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, पूर्ण

प्रतियोगिता में प्रत्येक विक्रेता 'कीमत मान लेने वाला' (price-taker) होता है 'कीमत निर्धारि करने वाला' (price-maker) नहीं होता।

अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारी प्रतियोगिता में वस्तु-विभेद होता है, इसलिए विक्रेता अपने क्षेत्र में एक छोटे एकाधिकारी की भाँति होता है तथा एक सीमा तक वस्तु की की को प्रभावित कर सकता है। अल्पाधिकार (oligopoly) में विक्रेताओं में 'पारस्परिक-निर्भरता' होत है जिसके कारण कीमत को प्रभावित करने की उनकी शक्ति सीमित हो जाती है परन्तु यदि उन समझौता (collusion) होता है तो वे पर्याप्त मात्रा में वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं।

(४) पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए मांग-रेखा या औसत आगम रेखा (Average Revenue Curve) पूर्णतया लोचदार होती है अर्थात् पड़ी रेखा (horizontal line) होती है। इसका अर्थ होता है कि एक विक्रेता दी हुई कीमत (AR) पर वस्तु की कितनी ही मात्रा बेच सकता है, उसे वस्तु की अधिक इकाइयों को बेचने के लिए कीमत (अर्थात् AR) घटानी नहीं पड़ती। दूसरे शब्दों में, एक विक्रेता को अतिरिक्त इकाई को बेचने से जो धन (अर्थात् Marginal Revenue) प्राप्त होता है वह वस्तु की कीमत (अर्थात् Average Revenue) के बराबर होता है; इसका अर्थ है कि पूर्ण प्रतियोगिता में AR=MR के होता है।[21]

अपूर्ण प्रतियोगिता में मांग रेखा (अर्थात् AR-curve), 'पूर्ण लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) होती है अर्थात् बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक विक्रेता को अपनी वस्तु की अधिक इकाइयों को बेचने के लिए कीमत (AR) को घटाना पड़ेगा। परिणामस्वरूप, एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से जो धन (अर्थात MR) उसे प्राप्त होगा, वह कीमत (AR) से कम होगा, अतः अपूर्ण प्रतियोगिता में MR<AR।

(५) पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश या बहिर्गमन बहुत आसान (very easy) होता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग में भी फर्मों का प्रवेश या बहिर्गमन आसान होता है, यद्यपि बहुत आसान नहीं है। अल्पाधिकार में फर्मों के प्रवेश में अनेक महत्त्वपूर्ण बाधाएँ होती हैं और इसलिए प्रवेश कठिन होता है, परन्तु विशुद्ध एकाधिकार की भाँति, पूर्णतया असम्भव नहीं होता।

(६) पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान (perfect knowledge) होता है, जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में ऐसा नहीं होता।

(७) पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता (perfect mobility) होती है और इसलिए प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को सीमान्त उत्पत्ति (marginal productivity) के बराबर पुरस्कार मिलता है; परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में साधनों की गतिशीलता में कई प्रकार की बाधाएँ रहती हैं।

(८) पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म 'अनुकूलतम फर्म' (optimum firm) के आकार को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक फर्म 'अनुकूलतम आकार' (optimum size) को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। यदि अपूर्ण प्रति

AR, MR, MC, तथा AC के विचारों के अधिक विस्तृत विवरण के लिए पुस्तक के इस खंड अर्थात् 'वस्तु मूल्य निर्धारण' खंड के अध्याय ६ को देखिये।

योगिता में कोई फर्म 'अनुकूलतम आकार' से कम है, तो 'अनुकूलतम आकार' को प्राप्त करने के लिए वह विस्तार कर सकती है, उत्पादन बढ़ेगा परन्तु बढ़े हुए उत्पादन को उसे पहले की अपेक्षा कम कीमत पर बेचना पड़ेगा; *अतः ऐसी स्थिति में वह अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने* के लिए प्रयत्न नहीं करती।

(९) पूर्ण प्रतियोगिता में गैर-कीमत प्रतियोगिता (non-price competition) नहीं होती अर्थात् विज्ञापन तथा प्रसार इत्यादि के लिए धन व्यय नहीं किया जाता क्योंकि वस्तु एकरूप या प्रमापित होती है। इसके विपरीत अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु-विभेद पाया जाता है, इसलिए विज्ञापन तथा प्रसार इत्यादि पर विक्रेता बहुत अधिक धन व्यय करते हैं, इस प्रकार के व्यय या लागत को 'विक्रय लागतें' (selling costs) के नाम से पुकारा जाता है।

(१०) पूर्ण प्रतियोगिता व्यावहारिक जीवन में नहीं पायी जाती, यह काल्पनिक है। इसके विपरीत अपूर्ण प्रतियोगिता व्यवहार में पायी जाती है और यह वास्तविक है। यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता काल्पनिक है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका अध्ययन बेकार है; वास्तव में, वास्तविक जगत के जटिल कार्यकरण को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन आवश्यक है।

बाजार मूल्य का सामान्य सिद्धान्त
[GENERAL THEORY OF MARKET PRICE]

१. प्राक्कथन (Introductory)

पूर्ण प्रतियोगिता में किसी वस्तु का मूल्य निर्धारण किस प्रकार होता है? इस सम्बन्ध में प्राचीन अर्थशास्त्रियों में काफी मतभेद तथा विवाद था। मुख्यतया दो विचारधाराएँ प्रचलित थीं। एक विचार के समर्थक एडम स्मिथ, रिकार्डो इत्यादि थे, जिनके अनुसार, किसी वस्तु का मूल्य उसकी उत्पादन-लागत द्वारा निर्धारित होता है अर्थात् वस्तु के उत्पादन की जितनी लागत होगी उसका उतना ही मूल्य होगा। इनके विपरीत दूसरी विचारधारा के समर्थकों, वालरस (Walras), जेवन्स (Jevons) इत्यादि के अनुसार, किसी वस्तु का मूल्य उसकी उत्पादन लागत पर नहीं बल्कि उसकी उपयोगिता अर्थात् सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर करता है।

प्रो० मार्शल ने इस मतभेद को समाप्त किया। उन्होंने बताया कि दोनों मत एक-पक्षीय (one-sided) हैं। किसी वस्तु का मूल्य केवल उत्पादन-लागत (अर्थात् पूर्ति) द्वारा या केवल उपयोगिता (अर्थात् माँग) द्वारा निर्धारित नहीं होता, बल्कि दोनों संयुक्त रूप से मूल्य को निर्धारित करते हैं। मार्शल के अनुसार, "हम यह विवाद (dispute) कर सकते हैं कि कैंची का ऊपर का

ीचे का फलका (blade) कागज को काटता है जिस प्रकार कि मूल्य उपयोगिता से या उत्प।
ागत से निर्धारित होता है।"[1]

वास्तव में, कागज को काटने के लिए ऊपर का तथा नीचे का दोनों फलकें आवश्यक हैं, भी एक फलका अकेले काटने का कार्य नहीं कर सकता। इसी प्रकार किसी वस्तु के मूल्य- ारण में वस्तु की उपयोगिता (अर्थात् माँग) तथा वस्तु की उत्पादन-लागत (अर्थात् पूर्ति) दोनों ्याँ आवश्यक हैं, कोई भी शक्ति अकेले मूल्य को निश्चित नहीं कर सकती। यह सम्भव है कि दशाओं में उपयोगिता (या माँग) सक्रिय पार्ट (active role) अदा करे और उत्पादन-लागत पूर्ति) निष्क्रिय पार्ट (passive role); या लागत सक्रिय पार्ट तथा उपयोगिता निष्क्रिय पार्ट करे; परन्तु मूल्य निर्धारण में माँग तथा पूर्ति दोनों का सहयोग आवश्यक है।

सन्तुलन मूल्य (Equilibrium Price)

वस्तु विशेष का मूल्य उस विन्दु पर निश्चित होगा जहाँ पर कि उसकी माँग तथा पूर्ति ं बराबर हो जाती हैं। इस मूल्य को **'सन्तुलन मूल्य'** (equilibrium price) कहा जाता है; तथा पूर्ति की मात्राओं को **'सन्तुलन मात्राएँ'** (equilibrium amounts) कहा जाता है; तथा **ार सन्तुलन की स्थिति** में कहा जाता है।

'सन्तुलन मूल्य' वह मूल्य है जिस पर कि वस्तु की मात्रा जो कि विक्रेता बेचने को इच्छुक स मात्रा के बराबर होती है जो कि क्रेता खरीदना चाहते हैं। यह वह मूल्य है जो कि बाजार ाफ कर देता है।[2]

किसी वस्तु का मूल्य माँग तथा पूर्ति दोनों शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। यहाँ पर यह श्यक है कि 'माँग शक्ति' तथा 'पूर्ति शक्ति' दोनों के अर्थों को स्पष्ट तथा विस्तृत रूप से समझ ा जाय।

माँग शक्ति (Demand Force)

किसी वस्तु की माँग क्रेताओं या उपभोक्ताओं द्वारा की जाती है। वस्तु में उपयोगिता होने ारण एक क्रेता उसकी माँग करता है। एक क्रेता किसी वस्तु की कितनी मात्रा खरीदेगा यह की सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर करेगी, वह वस्तु के लिए सीमान्त उपयोगिता (अर्थात् अन्तिम ई से प्राप्त उपयोगिता) से अधिक मूल्य नहीं देगा। इस प्रकार क्रेता के लिए वस्तु के मूल्य की कतम सीमा सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होती है।

किसी वस्तु की माँग 'माँग के नियम' द्वारा नियन्त्रित होती है, अर्थात् ऊँची कीमत पर ; की कम मात्रा तथा नीची कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा माँगी जाती है। जिस कीमत पर ; की एक निश्चित मात्रा क्रेता खरीदने को तैयार होता है उसे **'माँग मूल्य'** (Demand ce) कहते हैं। प्रत्येक क्रेता की एक 'माँग अनुसूची' (demand shedule) होती है जो कि ती है कि विभिन्न मूल्यों पर वह वस्तु की कितनी-कितनी मात्राएँ खरीदेगा; अर्थात् माँग- ी माँग-मूल्यों को बताती है। बाजार में 'व्यक्तिगत माँग-अनुसूचियों' को जोड़ देने से

might as reasonably dispute whether it is the upper or the under blade of a pair of rs that cuts a piece of paper, as whether value is governed by utility or cost of uction."

'equilibrium price' is the price at which the quantity of a good which the sellers are ing to offer is equal to the quantity which the buyers want to purchase. It is that ce which clears the market.

'बाजार की माँग-अनुसूची' (market demand schedule) प्राप्त हो जाती है जो यह बताती है कि विभिन्न कीमतों पर बाजार में वस्तु की कितनी मात्राएँ माँगी जाती हैं। यदि 'बाजार की माँग अनुसूची' को रेखा द्वारा व्यक्त कर दिया जाय तो हमें 'बाजार की माँग रेखा' (market demand curve) प्राप्त हो जाती है। बाजार माँग रेखा को चित्र संख्या १ में दिखाया गया है। बाजार माँग रेखा दो बातों को बताती है : (i) माँग रेखा का प्रत्येक बिन्दु एक निश्चित कीमत पर वस्तु की क्रय की जाने वाली कुल मात्रा को बताता है; तथा (ii) माँग रेखा का प्रत्येक बिन्दु वस्तु की निश्चित मात्रा से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को भी बताता है। चित्र संख्या १ से स्पष्ट है :

यदि मूल्य PQ है तो क्रय की कुल मात्रा OQ है तथा सीमान्त उपयोगिता PQ है।

यदि मूल्य P_1Q_1 है तो क्रय की कुल मात्रा OQ_1 है तथा सीमान्त उपयोगिता P_1Q_1 है।
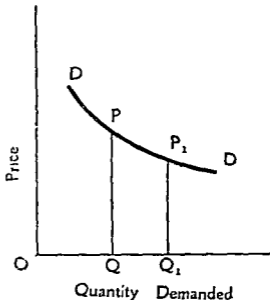
चित्र—१

४. पूर्ति शक्ति (Supply Force)

किसी वस्तु की पूर्ति उत्पादकों या विक्रेताओं द्वारा की जाती है। चूँकि किसी वस्तु के उत्पादन में कुछ न कुछ लागत आती है, इसलिए प्रत्येक उत्पादक या विक्रेता अपनी वस्तु का मूल्य कम से कम सीमान्त लागत (अन्तिम इकाई के उत्पादन की लागत) के बराबर अवश्य लेगा; दीर्घकाल में यदि वस्तु का मूल्य सीमान्त लागत से कम है तो वह वस्तु का उत्पादन बन्द कर देगा। इस प्रकार पूर्ति-पक्ष की ओर से वस्तु के मूल्य की निचली सीमा सीमान्त लागत द्वारा निर्धारित होती है।

किसी वस्तु की पूर्ति 'पूर्ति के नियम' द्वारा नियन्त्रित होती है, अर्थात् ऊँची कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा तथा नीची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा बेची जायेगी। जिस कीमत पर विक्रेता वस्तु की एक निश्चित मात्रा को बेचने को तत्पर होता है उसे 'पूर्ति-मूल्य' (supply price) कहा जाता है। प्रत्येक विक्रेता की एक 'पूर्ति-अनुसूची' (supply schedule) होती है जो कि बताती है कि विभिन्न मूल्यों पर वह वस्तु की कितनी-कितनी मात्राएँ बेचेगा; अर्थात् 'पूर्ति-अनुसूची' 'पूर्ति मूल्यों' (supply prices) को बताती है। बाजार में 'व्यक्तिगत पूर्ति-अनुसूचियों' को जोड़ देने से 'बाजार की 'पूर्ति-अनुसूची' (market supply schedule) प्राप्त हो जाती है जो कि बताती है कि विभिन्न कीमतों पर कितनी मात्राएँ बेची जायेंगी। यदि 'बाजार की पूर्ति-अनुसूची' को रेखा द्वारा व्यक्त कर दिया जाये तो हमें 'बाजार की पूर्ति रेखा' (market supply curve) प्राप्त हो जाती है। 'बाजार पूर्ति-रेखा' को चित्र संख्या २ में दिखाया गया है।

'बाजार पूर्ति रेखा' दो बातों को बताती है : (i) एक निश्चित कीमत पर पूर्ति की जाने व मात्रा; तथा (ii) उस मात्रा के उत्पादन की सीम लागत। चित्र संख्या २ से स्पष्ट है :
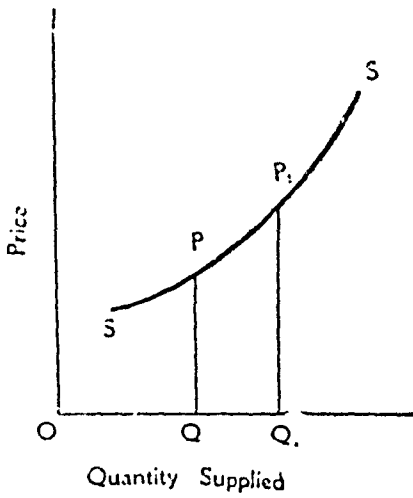
यदि मूल्य PQ है तो विक्रय की कुल मात्रा (है तथा सीमान्त लागत PQ है।

यदि मूल्य P_1Q_1 है तो विक्रय की कुल मा OQ_1 है तथा सीमान्त लागत P_1Q_1 है।

चित्र—२

५. मूल्य-निर्धारण—मांग तथा पूर्ति का बराबर हो (Price Determination–Equation of Deman and Supply)

क्रेताओं की दृष्टि से मूल्य की अधिकतम सी. सीमान्त उपयोगिता होती है, जबकि विक्रेताओं की से मूल्य की निम्नतम सीमा सीमान्त लागत होती है। इन दोनों सीमाओं के भीतर निर्धारित होता है। प्रत्ये क्रेता इस बात का प्रयत्न करता है कि वह वस्तु का कम कम मूल्य दे; इसके विपरीत प्रत्येक विक्रेता इस बात का प्रयत्न करता है कि वह वस्तु का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करे। इस प्रकार क्रेताओं तथा विक्रेताओं में सौदेबाजी (bargaining) तथा संघर्ष चलता रहता है; माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ विपरीत दशाओं में कार्य करती हैं। अन्त में, वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ पर कि वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा उसकी पूर्ति की जाने वाली मात्रा के ठीक बराबर हो जाती है। इसे **'सन्तुलन मूल्य'** कहा जाता है। इस मूल्य पर बाजार साफ (clear) हो जाता है क्योंकि कोई अतिरिक्त माँग (excess demand) या अतिरिक्त पूर्ति (excess supply) नहीं रहती।

६. उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—निम्न तालिका विभिन्न मूल्यों पर गेहूँ की प्रति सप्ताह माँग तथा पूर्ति को बताती है तथा स्पष्ट करती है कि बाजार में गेहूँ का 'सन्तुलन मूल्य' कैसे निर्धारित होता है :

बाजार में गेहूँ की पूर्ति और माँग तथा सन्तुलन मूल्य

गेहूँ की कुल पूर्ति प्रति सप्ताह (क्विंटल में)	मूल्य प्रति क्विंटल	गेहूँ की कुल माँग प्रति सप्ताह (क्विंटल में)	विशेष विवरण ['अतिरिक्त पूर्ति' (excess supply) तथा 'अतिरिक्त माँग' (excess demand) का मूल्य पर प्रभाव तीरों द्वारा दिखाया गया है।]
१०००	१४० रु०	२००	↓ ८०० क्विंटल 'अतिरिक्त पूर्ति' (excess supply)
८००	१३०	४००	↓ ४०० क्विंटल 'अतिक्ति पुर्ति'
५००	१२०	५००	'सन्तुलन मूल्य' तथा पूर्ति और माँग की सन्तुलन मात्राएँ ↑ (सन्तुलन मूल्य १२० रु० पर बाजार साफ हो जाता ↑ है, कोई अतिरिक्त पूर्ति या माँग नहीं रहती।
४००	१००	९००	↑ ५०० क्विंटल 'अतिरिक्त माँग' (excess demand)
२००	९०	११००	↑ ९०० क्विंटल 'अतिरिक्त माँग'

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि बाजार में सन्तुलन मूल्य १२० रुपये निश्चित होगा क्योंकि इस मूल्य पर माँग तथा पूर्ति दोनों ४०० क्विटल के बराबर है।

यदि मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' से अधिक है अर्थात् १४० रु० या १३० रु० है तो अतिरिक्त पूर्ति ८०० क्विटल या ४०० क्विटल होगी; यह 'अतिरिक्त पूर्ति' मूल्य को नीचे की ओर ढकेलेगी (जैसा कि तालिका में ऊपर से नीचे की ओर जाते हुए तीर बताते हैं) और मूल्य घटकर सन्तुलन मूल्य १२० रु० के बराबर हो जायेगा। यदि मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' से कम है अर्थात् ९० रु० या १०० रु० है तो ६०० क्विटल या ५०० क्विटल 'अतिरिक्त माँग' होगी जो कि मूल्य को ऊपर की ओर ढकेलेगी (जैसा कि तालिका में नीचे से ऊपर की ओर जाते हुए तीर बताते हैं) और मूल्य बढ़कर सन्तुलन मूल्य १२० रु० के बराबर हो जायेगा। स्पष्ट है कि अस्थायी रूप से मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' से कम या अधिक हो सकता है, परन्तु उसकी प्रवृत्ति सदैव 'सन्तुलन मूल्य' की ओर जाने की होगी।

७. रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagramatic representation)—सन्तुलन मूल्य निर्धारण को चित्र संख्या ३ में दिखाया गया है। चित्र में DD रेखा बाजार की माँग तथा SS रेखा बाजार की पूर्ति को बताती है। वस्तु विशेष (यहाँ पर गेहूँ) का मूल्य उस विन्दु पर निश्चित होगा जहाँ पर कि माँग तथा पूर्ति बराबर है। चित्र संख्या ३ में DD तथा SS रेखाएँ 'E' बिन्दु पर काटती हैं; अतः,

सन्तुलन मूल्य = EQ अथवा PO

माँग = पूर्ति = OQ अथवा PE

चित्र—३

माना कि बाजार में सन्तुलन मूल्य OP नहीं है बल्कि OP_1 है, तो इस मूल्य पर माँग तथा पूर्ति बराबर नहीं हैं। OP_1 मूल्य पर,

पूर्ति $= P_1L$

माँग $= P_1K$

अतिरिक्त पूर्ति

(Excess Supply) $= P_1L - P_1K$

$= KL$

यह 'अतिरिक्त पूर्ति' (KL) मूल्य को घटायेगी और मूल्य घटकर 'E' विन्दु पर पहुँच जायेगा (जैसा कि चित्र में 'नीचे को सन्तुलन विन्दु E की ओर जाते हुए तीरों' द्वारा दिखाया गया है), अर्थात् 'सन्तुलन मूल्य' EQ स्थापित हो जायेगा।

यदि बाजार में मूल्य OP_2 है तो इस मूल्य पर

माँग $= P_2T$

पूर्ति $= P_2R$

अतिरिक्त माँग (Excess Supply) $= P_2T - P_2R = RT$

'बाजार पूर्ति रेखा' दो बातों को बताती है : (i) एक निश्चित कीमत पर पूर्ति की जाने व मात्रा; तथा (ii) उस मात्रा के उत्पादन की सीम लागत। चित्र संख्या २ से स्पष्ट है :

चित्र—२

यदि मूल्य PQ है तो विक्रय की कुल मात्रा (है तथा सीमान्त लागत PQ है।

यदि मूल्य P_1Q_1 है तो विक्रय की कुल मा OQ_1 है तथा सीमान्त लागत P_1Q_1 है।

५. मूल्य-निर्धारण—मांग तथा पूर्ति का बराबर हो (Price Determination–Equation of Demar and Supply)

क्रेताओं की दृष्टि से मूल्य की अधिकतम सी सीमान्त उपयोगिता होती है, जबकि विक्रेताओं की दृ से मूल्य की निम्नतम सीमा सीमान्त लागत होती है। म इन दोनों सीमाओं के भीतर निर्धारित होता है। प्रत्ये क्रेता इस बात का प्रयत्न करता है कि वह वस्तु का कम कम मूल्य दे; इसके विपरीत प्रत्येक विक्रेता इस बात का प्रयत्न करता है कि वह वस्तु का अधि से अधिक मूल्य प्राप्त करे। इस प्रकार क्रेताओं तथा विक्रेताओं में सौदेबाजी (bargaining) त संघर्ष चलता रहता है; माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ विपरीत दशाओं में कार्य करती हैं। अन्त में, वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ पर कि वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा उसकी पूर्ति की जाने वाली मात्रा के ठीक बराबर हो जाती है। इसे 'सन्तुलन मूल्य' कहा जाता है। इस मूल्य पर बाजार साफ (clear) हो जाता है क्योंकि कोई अतिरिक्त माँग (excess demand) या अतिरिक्त पूर्ति (excess supply) नहीं रहती।

६. उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—निम्न तालिका विभिन्न मूल्यों पर गेहूँ की प्रति सप्ताह माँग तथा पूर्ति को बताती है तथा स्पष्ट करती है कि बाजार में गेहूँ का 'सन्तुलन मूल्य' कैसे निर्धारित होता है :

बाजार में गेहूँ की पूर्ति और माँग तथा सन्तुलन मूल्य

गेहूँ की कुल पूर्ति प्रति सप्ताह (क्विंटल में)	मूल्य प्रति क्विंटल	गेहूँ की कुल माँग प्रति सप्ताह (क्विंटल में)	विशेष विवरण ['अतिरिक्त पूर्ति' (excess supply) तथा 'अतिरिक्त माँग (excess demand) का मूल्य पर प्रभाव तीरों द्वारा दिखाया गया है।]
१०००	१४० रु०	२००	↓ ८०० क्विंटल 'अतिरिक्त पूर्ति' (excess supply)
८००	१३०	४००	↓ ४०० क्विंटल 'अतिक्ति पुति'
५००	१२०	५००	'सन्तुलन मूल्य' तथा पूर्ति और माँग की सन्तुलन मात्राएँ ↑ (सन्तुलन मूल्य १२० रु० पर बाजार साफ हो जाता ↑ है, कोई अतिरिक्त पूर्ति या माँग नहीं रहती।
४००	१००	९००	↑ ५०० क्विंटल 'अतिरिक्त माँग' (excess demand)
२००	६०	११००	↑ ९०० क्विंटल 'अतिरिक्त माँग'

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि बाजार में सन्तुलन मूल्य १२० रुपये निश्चित होगा क्योंकि इस मूल्य पर माँग तथा पूर्ति दोनों ४०० क्विटल के बराबर हैं।

यदि मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' से अधिक है अर्थात् १४० रु० या १३० रु० है तो अतिरिक्त पूर्ति ८०० क्विटल या ४०० क्विटल होगी, यह 'अतिरिक्त पूर्ति' मूल्य को नीचे की ओर ढकेलेगी (जैसा कि तालिका में ऊपर से नीचे की ओर जाते हुए तीर बताते हैं) और मूल्य घटकर सन्तुलन मूल्य १२० रु० के बराबर हो जायेगा। यदि मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' से कम है अर्थात् ९० रु० या १०० रु० है तो ९०० क्विटल या ५०० क्विटल 'अतिरिक्त माँग' होगी जो कि मूल्य को ऊपर की ओर ढकेलेगी (जैसा कि तालिका में नीचे से ऊपर की ओर जाते हुए तीर बताते है) और मूल्य बढ़कर सन्तुलन मूल्य १२० रु० के बराबर हो जायेगा। स्पष्ट है कि अस्थायी रूप से मूल्य 'सन्तुलन मूल्य' से कम या अधिक हो सकता है, परन्तु उसकी प्रवृत्ति सदैव 'सन्तुलन मूल्य' की ओर जाने की होगी।

७. रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagramatic representation)—सन्तुलन मूल्य निर्धारण को चित्र संख्या ३ में दिखाया गया है। चित्र में DD रेखा बाजार की माँग तथा SS रेखा बाजार की पूर्ति को बताती है। वस्तु विशेष (यहाँ पर गेहूँ) का मूल्य उस बिन्दु पर निश्चित होगा जहाँ पर कि माँग तथा पूर्ति बराबर है। चित्र संख्या ३ में DD तथा SS रेखाएँ 'E' बिन्दु पर काटती हैं; अतः,

सन्तुलन मूल्य = EQ अथवा PO

माँग = पूर्ति = OQ अथवा PE

चित्र—३

माना कि बाजार में सन्तुलन मूल्य OP नहीं है बल्कि OP_1 है, तो इस मूल्य पर माँग तथा पूर्ति बराबर नहीं हैं। OP_1 मूल्य पर,

$$\text{पूर्ति} = P_1L$$
$$\text{माँग} = P_1K$$

अतिरिक्त पूर्ति

$$(\text{Excess Supply}) = P_1L - P_1K = KL$$

यह 'अतिरिक्त पूर्ति' (KL) मूल्य को घटायेगी और मूल्य घटकर 'E' बिन्दु पर पहुँच जायेगा (जैसा कि चित्र में 'नीचे की सन्तुलन बिन्दु E की ओर जाते हुए तीरों' द्वारा दिखाया गया है), अर्थात् 'सन्तुलन मूल्य' EQ स्थापित हो जायेगा।

यदि बाजार में मूल्य OP_2 है तो इस मूल्य पर

$$\text{माँग} = P_2T$$
$$\text{पूर्ति} = P_2R$$

अतिरिक्त माँग (Excess Supply) $= P_2T - P_2R = RT$
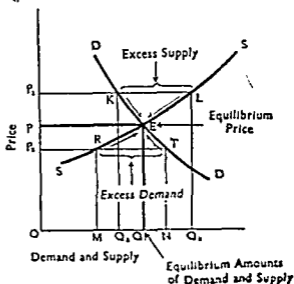
जैसा कि प्रो० जे० के० मेहता का कथन है कि हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि उत्पादन व्यय स्वयं उत्पत्ति के साधनों की सीमान्त उपयोगिताओं (अर्थात् सीमान्त उत्पादकताओं) द्वारा निर्धारित होता है।[5] दूसरे, मूल्य निर्धारण की एक सीमा सीमान्त उपयोगिता तथा दूसरी सीमान्त उत्पादन-व्यय द्वारा निर्धारित होती है और मूल्य इन दोनों सीमाओं के बीच निर्धारित होता है। 'सन्तुलन-मूल्य पर दोनों सीमाएँ बराबर होती हैं।' अर्थात् मूल्य, सीमान्त उत्पादन व्यय तथा सीमान्त उपयोगिता दोनों के बराबर होता है। अतः सन्तुलन की स्थिति में सब सीमान्त उपयोगिताएँ बराबर होती हैं और मूल्य इन सीमान्त उपयोगिताओं के बराबर होता है।

३. सीमान्त प्रयोग तथा लागत एवं मूल्य मांग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होते हैं

यह कहा जा चुका है कि किसी वस्तु की सीमान्त इकाई की उपयोगिता वस्तु के मूल्य को निर्धारित करती है। परन्तु कहने का यह ढंग पूर्ण रूप से उचित नहीं है। इस सम्बन्ध में मार्शल ने कहा है कि "सीमान्त प्रयोग (marginal uses) तथा लागत मूल्य को नियन्त्रित नहीं करते बल्कि वे, मूल्य के साथ, मांग तथा पूर्ति के सामान्य सम्बन्धों द्वारा निर्धारित होते हैं।"[6] इसका अर्थ है कि सीमान्त (margins) कभी भी मूल्य के कारण (cause) नहीं होते; बल्कि सीमान्त, मूल्य के साथ, मांग तथा पूर्ति की शक्तियों की पारस्परिक क्रिया द्वारा निर्धारित होते है। मांग तथा पूर्ति रेखाओं के मिलने के बिन्दु पर, मांग तथा पूर्ति की शक्तियाँ सीमान्त तथा मूल्य दोनों को निर्धारित करती हैं।

सीमान्त उपयोगिता तथा मूल्य के सम्बन्ध मे मार्शल के उपर्युक्त कथन को यहाँ पर हम और स्पष्ट करते हैं। सीमान्त एक स्थिर बिन्दु नहीं होता। यदि पूर्ति मे विस्तार होता है तो सीमान्त (margin) आगे बढ़ जायेगा क्योंकि अब वस्तु कम आवश्यक प्रयोगों में भी प्रयोग होने लगेगी। दूसरी ओर यदि पूर्ति मे संकुचन होता है तो सीमान्त पीछे हटता जायेगा क्योंकि अब वस्तु का प्रयोग केवल अधिक आवश्यक प्रयोगों तक ही सीमित रहेगा। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत घटती है तो उसकी मांग बढ़ेगी, मांग बढ़ने पर सीमान्त आगे बढ़ जायेगा; वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी मांग घटेगी, मांग घटने पर सीमान्त पीछे हट जायेगा। स्पष्ट है कि सीमान्त का निर्धारण मांग और पूर्ति की शक्तियो द्वारा होता है। मूल्य कुल मांग तथा कुल पूर्ति के सन्तुलन द्वारा निर्धारित होता है। अतः केवल सीमान्त इकाई की उपयोगिता मूल्य को नियन्त्रित नहीं करती, बल्कि, अन्य इकाइयों की मांग+सीमान्त इकाई की मांग मिलकर मूल्य को नियन्त्रित करती है। इस प्रकार कुल मांग तथा कुल पूर्ति सीमान्त तथा मूल्य को निर्धारित करते हैं। वास्तव में, सीमान्त वह बिन्दु है जिस पर न कि जिसके द्वारा मूल्य निर्धारित होता है।

४. निष्कर्ष

परन्तु उपर्युक्त विवरण का यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि सीमान्त इकाई का मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। (1) यदि सीमान्त इकाई नहीं है तो वस्तु की कुल पूर्ति में उस सीमा तक कमी हो जायेगी और मूल्य मे अन्तर आ जायेगा। दूसरे शब्दो मे सीमान्त इकाई, अन्य इकाइयों की भांति, कुल पूर्ति का एक भाग है और इसलिए वह मूल्य को उसी सीमा तक प्रभा-

---

5 [illegible] hief deter- [illegible] he cost of

6 [illegible] value by the general relations of demand and supply."

—Marshall, *Principles of Economics*, pp. 339-340

वित करती है। (ii) इसके अतिरिक्त सीमान्त का महत्त्व इस बात में निहित है कि मूल्य में वर्तन उत्पन्न करने वाली शक्तियों का प्रभाव मुख्यतया सीमान्त पर ही अनुभव किया जाता अतः मार्शल का कथन है कि सीमान्त वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ पर मूल्य को प्रभावित करने व शक्तियों के प्रभाव को जानने के लिए हमें जाना पड़ता है।[7]

मूल्य का विरोधाभास—पानी तथा हीरों का उदाहरण
(THE PARADOX OF VALUE—EXAMPLE OF WATER AND DIAMONDS)

१. प्राक्कथन (Introduction)—जेवन्स (Jevons), मेन्जर (Manger) तथा वा॰ (Walras) के द्वारा १८७० में आधुनिक उपयोगिता सिद्धान्त (Modern Utility Theory) प्रतिपादन किया गया। प्राचीन अर्थशास्त्रियों को उपयोगिता-विचार (utility concept) द्वा कीमतों की व्याख्या करने के सम्बन्ध में एक भ्रम था जो कि आधुनिक उपयोगिता सिद्धान्त ने किया। यद्यपि वहुत सी वस्तुओं की कीमतें उपयोगिता की सापेक्षिक मात्राओं (relative deg.. of utility) को बताती हैं, परन्तु प्राचीन अर्थशास्त्री इस बात से परेशान थे कि कुछ वस्तुओं सम्बन्ध में उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि कीमतों की यह (अर्थात् उपयोगिता) व्याख्या लागू न होती। उदाहरणार्थ, हीरा पानी की अपेक्षा मानव जीवन के लिए बहुत कम महत्त्वपूर्ण या उपयो होता है, परन्तु फिर भी हीरों की कीमत, पानी की अपेक्षा, बहुत अधिक होती है; दूसरे शब्दों पानी की कीमत, हीरों की कीमत की अपेक्षा नगण्य (negligible) है। प्राचीन अर्थशास्त्री इ विरोधाभास को नहीं समझा पाये।

इस विरोधाभास (paradox) को 'आधुनिक उपयोगिता सिद्धान्त' द्वारा सुगमता से ह किया जा सकता है। इस समस्या या विरोधाभास का उत्तर इन शब्दों में है—**"पानी की तथा माँग रेखाएँ इस प्रकार की होती हैं कि वे बहुत नीची कीमत पर काटती (intersect) जबकि हीरों की पूर्ति तथा माँग रेखाएँ ऐसी होती हैं कि वे ऊँची कीमत पर काटती हैं।"** यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि पानी की पूर्ति तथा माँग रेखाएँ क्यों बहुत नीची कीमत प काटती हैं?

इसके उत्तर को दो भागों—पूर्ति पक्ष तथा माँग पक्ष—में बाँटा जा सकता है।

२. पूर्ति पक्ष—हीरे बहुत सीमित (scarce) होते हैं, हीरों की अतिरिक्त इकाइयों (additional or extra units) को प्राप्त करने की लागत ऊँची होती है, इसलिए हीरों की कीमत ऊँची होती है; जबकि पानी की बहुलता (abundance) होती है और उसकी अतिरिक्त मात्रा को प्राप्त करने की लागत बहुत कम होती है, इसलिए पानी की कीमत बहुत नीची होती है।

३. माँग पक्ष—प्राचीन अर्थशास्त्रियों के भ्रम (confusion) का एक मुख्य कारण यह था कि वे 'कुल उपयोगिता' तथा 'सीमान्त उपयोगिता' को पृथक (separate) नहीं कर सके। वे इस बात को स्पष्ट रूप से नहीं समझ सके कि किसी वस्तु का मूल्य उसकी 'कुल उपयोगिता' द्वारा नहीं बल्कि 'सीमान्त उपयोगिता' (अर्थात् एक अतिरिक्त इकाई की उपयोगिता) द्वारा निर्धारित होता है। बाजार में पानी या हीरों का मूल्य इस बात पर निर्भर करेगा कि पानी की थोड़ी अति-

---

7 "...we must go to the margin to study the action of those forces which govern the value of the whole...." —*Ibid.*, pp. 339-340.

8 "The supply and demand curves for water are such that they intersect at a vary low price, while the supply and demand curves for diamonds are such that they intersect at a high price."

रिक्त मात्रा से, या हीरों की कुछ अतिरिक्त इकाइयों में कुल उपयोगिता में कितनी वृद्धि होती है, अर्थात् सीमान्त उपयोगिता मूल्य की निर्धारक होती है। चूंकि हीरे बहुत सीमित (scarce) होते हैं इसलिए उनकी सीमान्त उपयोगिता (अर्थात् हीरों की कुछ अतिरिक्त इकाइयों की उपयोगिता) अधिक होती है और उनका मूल्य ऊँचा होता है; इसके विपरीत पानी बहुतायत से पाया जाता है जिसके कारण उसकी सीमान्त उपयोगिता बहुत कम होती है और इसलिए उसका मूल्य भी बहुत कम होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि पानी की पूर्ति तथा मांग रेखाएँ बहुत नीची कीमत पर तथा हीरों की पूर्ति तथा मांग रेखाएँ बहुत ऊँची कीमत पर क्यों काटती हैं।

४. यदि परिस्थितियां भिन्न हो जाती हैं तो पानी की सीमान्त उपयोगिता हीरों की सीमान्त उपयोगिता से अधिक हो सकती है, और परिणामस्वरूप पानी की कीमत भी हीरों से कहीं ऊँची हो सकती है। उदाहरणार्थ, यदि एक रेगिस्तान में जहाँ पर पानी बहुत सीमित है, एक *प्यासे हीरों के मालिक (owner) को पानी की थोड़ी मात्रा रखने वाले व्यक्ति से सौदा करना पड़ता है तो ऐसी परिस्थितियों में,* सामान्य परिस्थितियों की अपेक्षा, पानी की सीमान्त उपयोगिता बहुत अधिक होती है और उनकी कीमत हीरों से कहीं अधिक होगी।

[illegible] ...त सीमित होते हैं।

[illegible] है, परन्तु पानी की बहुलता के कारण उसकी सीमान्त उपयोगिता बहुत कम होती है अपेक्षाकृत सीमित हीरों की सीमान्त उपयोगिता के। चूंकि मूल्य सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है, इसलिए अधिक *सीमान्त उपयोगिता वाले हीरों की कीमत* कम सीमान्त उपयोगिता वाले पानी की कीमत की अपेक्षा बहुत अधिक होती है।

चित्र—१०

५. रेखा चित्र द्वारा स्पष्टीकरण— इस बात को चित्र संख्या १० द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में AB तथा CD क्रमशः पानी तथा हीरों की सीमान्त उपयोगिता रेखाएँ हैं। चूंकि पानी बहुत अधिक मात्रा में प्राप्य है इसलिए पानी की अधिक मात्रा OS की सीमान्त उपयोगिता TS या OM के बराबर है। इसके विपरीत हीरे बहुत सीमित होते हैं, इसलिए हीरों की *सीमित मात्रा* OQ की *सीमान्त उपयोगिता* LQ या ON के बराबर है जो कि पानी की सीमान्त उपयोगिता (TS) से बहुत अधिक है; यद्यपि पानी की मात्रा OS की कुल उपयोगिता OSTA कहीं अधिक है हीरों की मात्रा OQ की कुल उपयोगिता OQLC से। मूल्य सीमान्त उपयोगिता निर्धारित करती है न कि कुल उपयोगिता; चूंकि हीरों की सीमान्त उपयोगिता (LQ) पानी की सीमान्त उपयोगिता (TS) से कहीं अधिक है, इसलिए हीरों का मूल्य पानी से कहीं अधिक होता है।
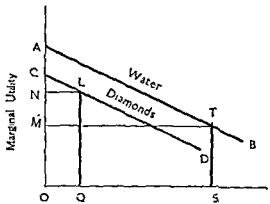
अध्याय ३ की परिशिष्ट : 'संतुलन मूल्य' (या मूल्य) पर तथा पूर्ति में परिवर्तनों का :

[APPENDIX TO CHAPTER 3]

(EFFECT OF CHANGES IN DEMA AND SUPPLY ON 'EQUILIBRIUM PRICE' OR PRICE)

किसी वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहां पर कि उसकी मांग पूर्ति बराबर हो जाती है; इसे 'सन्तुलन मूल्य' कहते हैं। बाजार मूल्य इस सन्तुलन मूल्य से ऊँचा या नीचा हो सकता है परन्तु उसकी प्रवृत्ति उस सन्तुलन मूल्य की ओर आने की रहती

परन्तु मांग तथा पूर्ति के परिवर्तनों के परिणामस्वरूप एक 'सन्तुलन मूल्य' भंग हो दूसरा 'सन्तुलन मूल्य' स्थापित हो जाता है। मांग तथा पूर्ति में परिवर्तनों का अध्ययन हम भागों में कर सकते हैं (i) मांग में परिवर्तन अर्थात मांग में वृद्धि या कमी, जबकि पूर्ति तालि (supply schedule) या पूर्ति रेखा समान (same or constant) रहती है; (ii) पूर्ति में परि वर्तन अर्थात् पूर्ति में वृद्धि या कमी, जबकि मांग तालिका (demand schedule) या माँग रे समान रहती है; तथा (iii) मांग तथा पूर्ति दोनों में परिवर्तन होते हैं।

मांग में परिवर्तनों का मूल्य पर प्रभाव (Effects of Changes in Demand on Price)

हम यह मान लेते हैं कि मांग में परिवर्तन होते हैं, परन्तु 'पूर्ति तालिका' या 'पूर्ति रेखा समान या स्थिर रहती है।

(अ) **मांग में परिवर्तन 'मूल्य' (price) तथा 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' (quantity exchanged) को उसी दिशा में परिवर्तित करेगा जिस दिशा में कि माँग परिवर्तित है। दूसरे शब्दों में,**

यदि माँग बढ़ती है तो 'मूल्य' में वृद्धि होगी तथा 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' में वृद्धि होगी; अर्थात् माँग में वृद्धि के दो प्रभाव होंगे—**'मूल्य-वर्द्धमान प्रभाव'** (price increasing effect) तथा 'मात्रा वर्द्धमान प्रभाव' (quantity increasing effect)।

(ii) **यदि माँग घटती है** तो 'मूल्य' में कमी होगी तथा 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' में कमी होगी; अर्थात् माँग में कमी के दो प्रभाव होंगे—**'मूल्य-ह्रासी प्रभाव'** (price- decreasing effect) तथा 'मात्रा-ह्रासी प्रभाव' (quantity-decreasing)।

संक्षेप में, 'माँग में परिवर्तन' तथा उसके परिणामस्वरूप 'सन्तुलन मूल्य और मात्रा में परिवर्तन' के बीच सीधा सम्बन्ध (direct relation) **होता है।**[9]

(ब) **परन्तु माँग में परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'मूल्य' तथा 'मात्रा' में कितना परिवर्तन होगा यह बात 'पूर्ति की लोच'** (elasticity of supply) **पर निर्भर करेगी :**

(i) माना **माँग में वृद्धि** होती है तथा **पूर्ति रेखा अत्यधिक लोचदार** (*highly elastic supply curve*) है; तो मूल्य बढ़ेगा परन्तु अपेक्षाकृत (relatively) कम बढ़ेगा।

यदि **माँग में वृद्धि** होती है और **पूर्ति बेलोचदार** (inelastic) है; तो माँग में वृद्धि के साथ पूर्ति की मात्रा अधिक नहीं बढ़ायी जा सकेगी, इसलिए मूल्य अधिक बढ़ेगा अपेक्षाकृत जबकि पूर्ति अत्यधिक लोचदार है।

---

9 In brief, there is a direct relationship between a change in demand and the resulting changes in equilibrium price and quantity.

(ii) माना माँग में कमी होती है तथा पूर्ति रेखा अत्यधिक लोचदार है; तो मूल्य घटेगा परन्तु अपेक्षाकृत (relatively) कम घटेगा। चूँकि पूर्ति अत्यधिक लोचदार है, इसलिए माँग घटने पर 'पूर्ति की मात्रा' भी बहुत घट जायेगी, स्पष्ट है कि मूल्य घटेगा परन्तु अपेक्षाकृत कम घटेगा।

यदि माँग में कमी होती है तथा पूर्ति रेखा बेलोचदार है; तो मूल्य अधिक घट जायेगा अपेक्षाकृत जबकि पूर्ति लोचदार है। चूँकि पूर्ति, बेलोचदार है इसलिए माँग घटने पर पूर्ति की मात्रा को ज्यादा नहीं घटाया जा सकेगा, परिणामस्वरूप मूल्य में अधिक कमी हो जायेगी।

(iii) सिरे की स्थितियों (extreme cases) में पूर्णतया लोचदार हो सकती है या पूर्णतया बेलोचदार। यदि पूर्ति पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) है तो पूर्ति रेखा आधार रेखा के समानान्तर (parallel) होगी, ऐसी स्थिति में माँग में वृद्धि या कमी के परिणामस्वरूप पूर्ति की मात्रा में पूरी-पूरी वृद्धि या कमी होगी; परन्तु मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होगा, वह समान रहेगा (देखिए चित्र संख्या ६)। यदि पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार (perfectly inelastic) है तो पूर्ति रेखा खड़ी रेखा (vertical line) होगी, ऐसी स्थिति में माँग में वृद्धि या कमी के परिणामस्वरूप पूर्ति की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होगा, वह स्थिर रहेगी, परन्तु मूल्य में वृद्धि या कमी होगी (देखिए चित्र संख्या ५)।

व्यावहारिक जीवन में पूर्ति की पूर्णतया लोचदार तथा पूर्णतया बेलोचदार की स्थितियाँ नहीं पायी जाती हैं, इसलिए इन सिरे की स्थितियों का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है, केवल सैद्धान्तिक महत्त्व ही है।

माँग में परिवर्तनों (वृद्धि तथा कमी) का 'मूल्य' तथा 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' पर प्रभाव चित्र संख्या ४, ५, तथा ६ द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चित्र संख्या ४ में DD मूल माँग रेखा (original demand curve) है। SS पूर्ति रेखा अधिक लोचदार है, जबकि S_1S_1 पूर्ति रेखा बेलोचदार है। दोनों पूर्ति रेखाएँ (SS तथा S_1S_1) माँग रेखा DD को एक ही बिन्दु P पर काटती हुई दिखायी गयी हैं; ये पूर्ति रेखाएँ इस प्रकार इसलिए खींची गयी हैं ताकि माँग में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप प्रभावों की तुलना आसानी से की जा सके। मूल सन्तुलन कीमत (original equilibrium price) PQ है चाहे हम SS पूर्ति रेखा को लें या S_1S_1 पूर्ति रेखा को।

चित्र—४

चित्र संख्या ४ में जब माँग बढ़ कर D_1D_1 हो जाती है तो (i) 'मूल्य' तथा 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' दोनों में वृद्धि होती है। (ii) परन्तु दोनों में वृद्धि की मात्रा इस बात पर निर्भर करेगी कि कौन-सी पूर्ति रेखा पर विचार किया जाता है। यदि पूर्ति बेलोचदार है जैसा कि पूर्ति रेखा S_1S_1 बताती है तो नया सन्तुलन मूल्य P_2Q_2 अधिक ऊँचा होगा तथा मात्रा में कम वृद्धि QQ_2 होगी। इसके विपरीत यदि पूर्ति अधिक लोचदार है जैसा कि पूर्ति रेखा
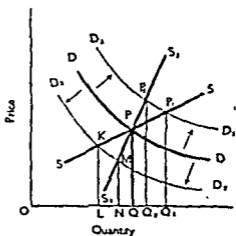
SS बताती है तो नया सन्तुलन मूल्य P_1Q_1 अपेक्षाकृत कम ऊँचा होगा तथा मात्रा में अधि QQ_1 होगी।

चित्र—५

चित्र संख्या ४ में जब माँग घटकर हो जाती है तो (i) 'मूल्य' तथा 'विनि जाने वाली मात्रा' दोनों में कमी होत (ii) परन्तु दोनों में कमी की मात्रा इस पर निर्भर करेगी कि कौन-सी पूर्ति पर विचार किया जाता है। यदि पूर्ति रेखा S_1S_1 को लें तो नया मूल्य MN बहुत कम होगा और मा कम ह्रास (QN) होगा। इसके वि यदि अधिक लोचदार पूर्ति रेखा SS को तो नया सन्तुलन मूल्य KL अपे कम नीचा होगा और मात्रा में अधिक QL होगी।
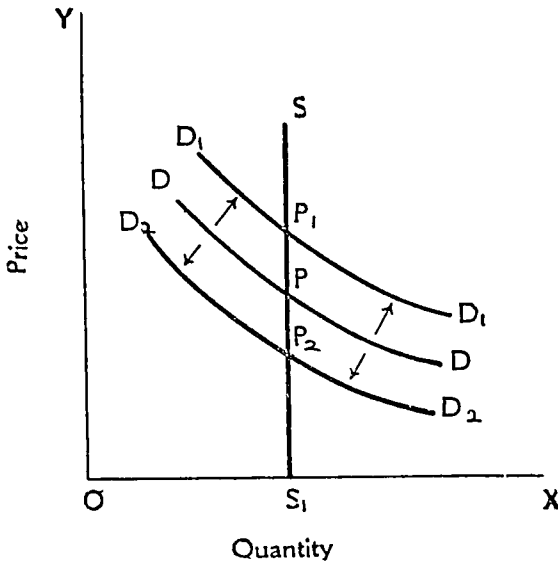
चित्र संख्या ५ में DD रेखा माँग रेखा है। SS पूर्णतया बेलोच पूर्ति रेखा है। यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो मूल्य बढ़कर P_1S हो ज और यदि माँग घटकर D_2D_2 हो जाती है तो मूल्य घटकर P_2S_1 हो जाता है; परन्तु दोनों दशाओं में पूर्ति-मात्रा स्थिर रहती है क्योंकि पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार है।

चित्र—६

चित्र संख्या ६ में DD मूल माँग रेखा है तथा SS पूर्णतया लोचदार पूर्ति रेखा है। यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है या माँग घटकर D_2D_2 हो जाय, तो दोनों दशाओं में मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता ($PQ= P_1Q_1=P_2Q_2$); परन्तु पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन होता है। माँग में वृद्धि के साथ पूर्ति में QQ_1 के बराबर वृद्धि होती है; तथा माँग में कमी के साथ पूर्ति में QQ_2 के बराबर कमी हो जाती है।
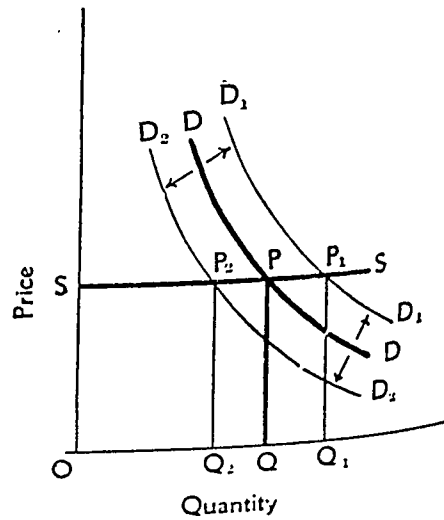
पूर्ति में परिवर्तनों का मूल्य पर प्रभाव (Effect of Changes in Supply on Price)

हम यह मान लेते हैं कि पूर्ति में परिवर्तन होते हैं परन्तु माँग अनुसूची (demand schedule) अर्थात् माँग रेखा समान या स्थिर रहती है।

(अ) **पूर्ति में परिवर्तन 'विनिमय की जाने वाली मात्रा'** (quantity exchanged) **को उसी दिशा में परिवर्तित करेगा जिसमें कि पूर्ति परिवर्तित होती है, परन्तु मूल्य विपरीत दिशा** (opposite direction) **में परिवर्तित होगा। दूसरे शब्दों में,**

(i) यदि पूर्ति बढ़ती है तो 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' में वृद्धि होगी परन्तु मूल्य में कमी होगी : अर्थात् 'पूर्ति में वृद्धि' के दो प्रभाव होंगे—'मूल्य-ह्रासी प्रभाव' (price-decreasing effect) तथा 'मात्रा-वर्द्धमान प्रभाव' (quantity increasing effect)।

(ii) यदि पूर्ति घटती है तो 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' में कमी होगी तथा 'मूल्य' में वृद्धि होगी; अर्थात्, 'पूर्ति में कमी' के दो प्रभाव होंगे—'मूल्य-वर्द्धमान प्रभाव' (price-increasing effect) तथा 'मात्रा-ह्रासी प्रभाव' (quantity-decreasing effect)।

संक्षेप में, 'पूर्ति में परिवर्तन' तथा उसके परिणामस्वरूप 'सन्तुलन मूल्य में परिवर्तन' के बीच उल्टा सम्बन्ध (inverse relation) होता है, परन्तु 'पूर्ति में परिवर्तन' तथा उसके परिणामस्वरूप 'सन्तुलन मात्रा में परिवर्तन' के बीच सीधा सम्बन्ध (direct relation) होता है।[5]

(ब) परन्तु पूर्ति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप 'मूल्य' तथा 'मात्रा' में कितना परिवर्तन होगा यह बात 'माँग की लोच' (elasticity of demand) पर निर्भर करेगी :

(i) माना पूर्ति में वृद्धि होती है तथा माँग रेखा अधिक लोचदार (highly elastic demand curve) है, तो 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' (quantity exchanged) बढ़ेगी, परन्तु अपेक्षाकृत अधिक बढ़ेगी और मूल्य घटेगा परन्तु कम। इसका कारण स्पष्ट है—चूंकि माँग लोचदार है, इसलिए पूर्ति में वृद्धि के साथ माँग में भी पर्याप्त वृद्धि होगी, परिणामस्वरूप मूल्य घटेगा परन्तु अपेक्षाकृत कम घटेगा (देखिए चित्र संख्या ७)।
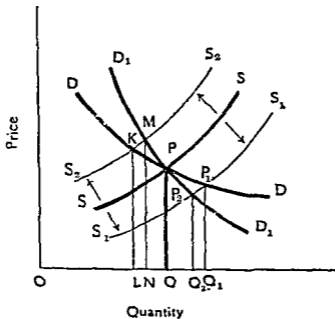
चित्र—७

10 In brief there is an inverse relationship between a change in supply and the resulting change in equilibrium price, but the relationship between a change in supply and the resulting change in equilibrium quantity is direct.

यदि पूर्ति में वृद्धि होती है और मांग बेलोचदार (inelastic demand) है, तो की जाने वाली मात्रा बढ़ेगी परन्तु अपेक्षाकृत कम बढ़ेगी; मूल्य घटेगा परन्तु अपेक्षाकृत घटेगा। इसका कारण स्पष्ट है—चूंकि मांग बेलोचदार है, इसलिए पूर्ति में वृद्धि के साथ पर्याप्त वृद्धि नहीं होगी. परिणामस्वरूप मूल्य अधिक घटेगा अपेक्षाकृत जबकि माँग (देखिए चित्र संख्या ७)।

(ii) माना **पूर्ति में कमी** होती है तथा **मांग रेखा अत्यधिक लोचदार है,** तो 'वि जाने वाली मात्रा' अपेक्षाकृत अधिक घटेगी, तथा मूल्य अपेक्षाकृत कम घटेगा। कारण स्पष्ट चूंकि माँग अधिक लोचदार है, इसलिए पूर्ति में कमी के साथ मांग में पर्याप्त कमी होगी, स्वरूप मूल्य अपेक्षाकृत कम घटेगा (देखिए चित्र-संख्या ७)।

माना **पूर्ति में कमी** होती है तथा **माँग रेखा बेलोचदार है,** तो 'विनिमय की जाने मात्रा' अपेक्षाकृत कम घटेगी और मूल्य अधिक बढ़ेगा अपेक्षाकृत जबकि माँग लोचदार कारण स्पष्ट है—चूंकि माँग बेलोचदार है, इसलिए पूर्ति में कमी के साथ माँग में कमी होगी, परिणामस्वरूप मूल्य अपेक्षाकृत अधिक बढ़ेगा। (देखिए चित्र संख्या ७)।

चित्र संख्या ७ में SS मूल पूर्ति रेखा (original supply curve) है। माँग रेखा अधिक लोचदार है जबकि D_1D_1 माँग रेखा बेलोचदार है। दोनों माँग रे (DD तथा D_1D_1) पूर्ति रेखा SS को एक ही विन्दु P पर काटती हुई दिखायी गयी हैं; ये रेखाएँ इस प्रकार इसलिए खींची गयी हैं ताकि पूर्ति में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप प्र तुलना आसानी से की जा सके। मूल सन्तुलन कीमत (original equilibrium price) P चाहे हम DD माँग रेखा को लें या D_1D_1 माँग रेखा को।

चित्र संख्या ७ में **जब पूर्ति बढ़कर S_1S_1 हो जाती है** तो (i) 'विनिमय की जाने व मात्रा' में वृद्धि होगी और 'मूल्य' में कमी होगी। (ii) परन्तु दोनों में परिवर्तन की मात्रा इस पर निर्भर करेगी कि कौन-सी माँग रेखा पर विचार किया जाता है। यदि अधिक लोचदार रेखा DD को लें, तो 'नया सन्तुलन मूल्य' P_1Q_1 अपेक्षाकृत कम घटेगा और 'विनिमय की वाली मात्रा' में अधिक वृद्धि (QQ_1) होगी। इसके विपरीत यदि बेलोचदार माँग रेखा D_1D_1 लिया जाय, तो पूर्ति बढ़ने पर नया सन्तुलन मूल्य P_2Q_2 अपेक्षाकृत अधिक घटेगा और मात्रा अपेक्षाकृत कम वृद्धि (QQ_2) होगी।

चित्र संख्या ७ में **जब पूर्ति घटकर S_2S_2 हो जाती है** तो (i) 'विनिमय की जाने व मात्रा' में कमी होगी तथा 'मूल्य' में वृद्धि होगी। (ii) परन्तु दोनों में परिवर्तन की मात्रा बात पर निर्भर करेगी कि कौन-सी माँग रेखा पर विचार किया जाता है। यदि अधिक लोचदा माँग रेखा DD को लें, तो नया सन्तुलन मूल्य KL अपेक्षाकृत कम बढ़ेगा तथा मात्रा में अपेक्ष कृत अधिक कमी QL होगी। इसके विपरीत यदि बेलोचदार माँग रेखा D_1D_1 को लिया तो पूर्ति घटने पर नया सन्तुलन मूल्य MN अपेक्षाकृत अधिक बढ़ेगा तथा मात्रा में अपेक्षाकृत कमी होगी।

(iii) सिरे की स्थितियों (extreme cases) में माँग 'पूर्णतया लोचदार' हो सकती या 'पूर्णतया बेलोचदार'। **यदि माँग पूर्णतया लोचदार** (perfectly elastic) है तो माँग रे आधार-रेखा (X-axis) के समानान्तर होगी। ऐसी स्थिति में पूर्ति में वृद्धि या कमी के परिणाम-स्वरूप 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' में पूरी-पूरी वृद्धि या कमी होगी, परन्तु मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होगा, वह समान रहेगा। यह बात चित्र संख्या ८ से स्पष्ट होती है।

चित्र संख्या ८ में DD माँग रेखा पूर्णतया लोचदार है, तथा मूल पूर्ति रेखा SS है। मूल सन्तुलन मूल्य PQ है। यदि पूर्ति बढ़ कर S_1S_1 हो जाती है तो 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' में QQ_1 के बराबर वृद्धि होती है परन्तु नया सन्तुलन मूल्य P_1Q_1 मूल सन्तुलन मूल्य PQ के बराबर ही रहता है अर्थात् मूल्य में कोई वृद्धि नहीं होती है। यदि पूर्ति घटकर S_2S_2 हो जाती है तो 'मात्रा' में QQ_2 के बराबर कमी हो जाती है परन्तु नया मूल्य P_2Q_2 मूल मूल्य PQ के बराबर ही रहता है अर्थात् मूल्य में कोई कमी नहीं होती।

चित्र—८

यदि माँग पूर्णतया बेलोचदार है तो माँग रेखा (DD) खड़ी रेखा होगी जैसा कि चित्र संख्या ९ में दिखाया गया है। ऐसी स्थिति में पूर्ति के बढने या घटने से मूल्य में वृद्धि या कमी होगी परन्तु 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' में कोई परिवर्तन नहीं होगा। चित्र संख्या ९ में SS मूल पूर्ति रेखा है तथा DD पूर्णतया बेलोचदार माँग रेखा है; मूल सन्तुलन मूल्य PD है। यदि पूर्ति बढ़कर S_1S_1 हो जाती है तो मूल्य घटकर P_1 D हो जाता है परन्तु 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' (OD) में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसी प्रकार यदि पूर्ति घटकर S_2S_2 हो जाती है तो मूल्य बढ़कर P_2D हो जायेगा परन्तु 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' (OD) में कोई परिवर्तन नहीं होगा।
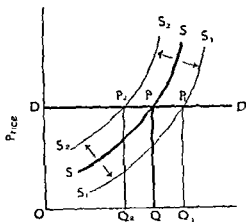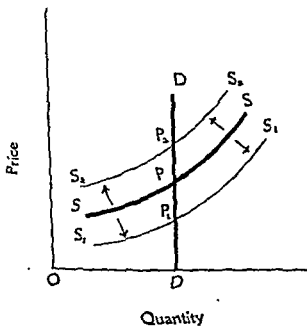
चित्र—९

माँग तथा पूर्ति में परिवर्तनों के प्रभाव (Effects of Changes in Demand and Supply)

अभी हमने एक एक समय में माँग तथा पूर्ति में से केवल एक को ही परिवर्तनशील रख कर मूल्य पर प्रभाव का अध्ययन किया है। माँग तथा पूर्ति दोनों में एक साथ परिवर्तन हो सकते हैं, ऐसी स्थिति में मूल्य पर प्रभाव का अध्ययन कुछ अधिक जटिल हो जाता है तथा अनेक कठिन

स्थितियाँ (complex cases) उत्पन्न होती हैं। यहाँ पर हम केवल कुछ मुख्य स्थितिय विचार करेंगे :

(अ) **माना कि मांग तथा पूर्ति दोनों विपरीत दशाओं (opposite direction) वर्तित होते हैं।** इसके अन्तर्गत दो दशाएँ सम्भव हैं—(i) पूर्ति बढ़े और माँग घटे; त पूर्ति घटे और माँग बढ़े।

(i) **माना कि पूर्ति बढ़ती है तथा मांग घटती है।** इनका प्रभाव 'सन्तुलन मूल्य' प पड़ेगा ? पूर्ति बढ़ने से मूल्य घटेगा तथा मांग घटने से भी मूल्य घटेगा। अतः पूर्ति में वृ माँग में कमी दोनों के संयुक्त कार्यकरण (operation) से 'दो मूल्य-ह्रासी प्रभाव' (two decreasing effects) होंगे तथा 'कुल परिणाम' (net result) यह होगा कि मूल्य में कमी होगी अपेक्षाकृत पृथक रूप से किसी एक में परिवर्तन के। 'सन्तुलन मात्रा' या 'विनि जाने वाली मात्रा' (quantity exchanged) पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? पूर्ति में वृद्धि मात्रा' को बढ़ायेगी; परन्तु माँग में कमी 'सन्तुलन मात्रा' को घटायेगी, अर्थात् पूर्ति में वृद्धि माँग में कमी 'सन्तुलन मात्रा' को विपरीत दिशाओं में प्रभावित करेंगे—मात्रा में वास्तविक वर्तन की दिशा (direction of net change in the quantity) पूर्ति तथा माँग में स परिवर्तन के आकार पर निर्भर करेगा।

(ii) **दूसरी सम्भावना है कि पूर्ति में कमी हो तथा माँग में वृद्धि।** पूर्ति में कमी माँग में वृद्धि दोनों मूल्य को बढ़ायेंगे। अतः ऐसी स्थिति में 'दो मूल्य-वर्द्धमान प्रभाव' (price-increasing effects) होंगे। परिणामस्वरूप मूल्य में अधिक वृद्धि होगी अपेक्षाकृत के पूर्ति में कमी के या केवल माँग में वृद्धि के। 'सन्तुलन मात्रा' या 'विनिमय की जाने वाली मा पर क्या प्रभाव होगा ? पूर्ति में कमी 'सन्तुलन मात्रा' को घटायेगी जब कि माँग में वृद्धि मा को बढ़ायेगी—दोनों परिवर्तन सन्तुलन मात्रा को विपरीत दिशाओं में प्रभावित करेंगे, 'वास्त परिणाम' (net result) पूर्ति तथा माँग में परिवर्तनों के सापेक्षिक आकार (size) पर करेगा।

(ब) **माना कि पूर्ति तथा माँग में एक ही दिशा (same direction) में परिवर्तन होते हैं** इसके अन्तर्गत भी दो दशाएँ सम्भव हैं—(i) पूर्ति और माँग दोनों में वृद्धि हो; तथा (ii) पूर्ति माँग दोनों में कमी हो।

(i) **माना कि पूर्ति तथा माँग दोनों में वृद्धि होती है।** 'सन्तुलन मूल्य' पर क्या होगा। पूर्ति में वृद्धि के कारण 'मूल्य-ह्रासी प्रभाव' (price-decreasing effect) होगा, जब माँग में वृद्धि के कारण 'मूल्य-वर्द्धमान प्रभाव (price-increasing effect) होगा; अर्थात् द विरोधी प्रभाव (conflicting effects) होंगे। यदि पूर्ति में वृद्धि माँग में वृद्धि की अपेक्षा अधिक है, तो वास्तविक परिणाम (net result) यह होगा कि सन्तुलन मूल्य घटेगा। यदि इसके विपरीत दशा लागू होती है, (अर्थात् माँग में वृद्धि पूर्ति में वृद्धि की अपेक्षा अधिक है), तो सन्तुलन मूल्य में वृद्धि होगी। 'सन्तुलन मात्रा' या 'विनिमय की जाने वाली मात्रा' पर क्या प्रभाव होगा ? पूर्ति तथा माँग दोनों में वृद्धि के कारण 'मात्रा वर्द्धमान प्रभाव' (quantity-increasing effects) होंगे। परिणामस्वरूप 'सन्तुलन मात्रा' अधिक बढ़ेगी अपेक्षाकृत केवल पूर्ति में वृद्धि के या केवल माँग में वृद्धि के :

(ii) **माना कि पूर्ति तथा माँग दोनों में कमी होती है।** पूर्ति में कमी के कारण 'मूल्य-वर्द्धमान प्रभाव' (price-increasing effect) होगा, जबकि माँग में कमी के कारण मूल्य-ह्रासी

प्रभाव' (price-decreasing effect) होगा। यदि पूर्ति में कमी माँग मे कमी की अपेक्षा अधिक है, तो सन्तुलन मूल्य बढ़ेगा। यदि इसके विपरीत दशा लागू होती है तो मूल्य घटेगा। 'सन्तुलन मात्रा' पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? पूर्ति तथा माँग दोनों मे कमी के कारण 'मात्रा-ह्रासी प्रभाव' (quantity-decreasing effects) होंगे तथा सन्तुलन मात्रा अपेक्षाकृत अधिक कम हो जायेगी।

मूल्य निर्धारण में समय-तत्त्व
[TIME FACTOR IN PRICE DETERMINATOIN]

मूल्य निर्धारण पर समय का प्रभाव
(INFLUENCE OF TIME ON PRICE DETERMINATION)

१. प्राक्कथन (Introductory)

मार्शल प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि किसी वस्तु के मूल्य निर्धारण मे 'समय' का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। किसी वस्तु का मूल्य माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है, परन्तु उनका मूल्य पर सापेक्षिक प्रभाव (relative influence) विचाराधीन समय पर निर्भर करता है। यदि वस्तु विशेष की माँग मे परिवर्तन (वृद्धि या कमी) हो जाती है तो पूर्ति को माँग के अनुरूप एकदम परिवर्तित नहीं किया जा सकता है; उत्पादन-यन्त्र (productive-equipment) को बदलने मे कुछ समय लगेगा और इसलिए पूर्ति का माँग के साथ समायोजन (adjustment) करने मे भी कुछ समय अवश्य लगेगा। स्पष्ट है समय का प्रभाव मूल्य निर्धारण पर पडेगा। सामान्यतया, समय जितना कम होगा मूल्य पर माँग का प्रभाव उतना ही अधिक होगा और पूर्ति का कम; इसके विपरीत समय जितना अधिक होगा मूल्य पर पूर्ति का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक होगा और माँग का कम।

मूल्य निर्धारण पर समय के प्रभाव के अध्ययन की दृष्टि से मार्शल ने समय को चार भागों मे बाँटा—(i) अति अल्पकालीन समय (ii) अल्पकाल (iii) दीर्घकाल तथा (iv) अति दीर्घकाल। आधुनिक अर्थशास्त्री इनमें से केवल प्रथम तीन को मान्यता देते हैं, चौथे समय अर्थात् 'अति दीर्घकाल' का मूल्य निर्धारण की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नही समझा जाता।

२. विभिन्न समय-अवधियो का अन्तर 'घड़ी के समय' (Cloak-time) पर नहीं बल्कि 'क्रियात्मक समय (Operational-Time) पर आधारित होता है

ध्यान रहे कि ये समय-अवधियाँ (time periods) कोई निश्चित समयो या अवधियो (जैसे १ हफ्ता, २ महीनो या ४ साल) को नही बताती। दूसरे शब्दो में, इन विभिन्न समय-

अवधियों का अन्तर (distinction) **'घड़ी के समय'** (Clock-time) या **'कलेण्डर समय'** (Calender-time) पर आधारित नहीं होता बल्कि **'क्रियात्मक समय'** (Operational time) पर आधारित है। **'क्रियात्मक समय से अर्थ उस समय से है जो कि पूर्ति माँग की परिवर्तित दशाओं से समायोजन** (adjustment) **करने में लेती है।** एक स्थिति में अल्पकाल दूसरी स्थिति के दीर्घकाल से अधिक हो सकता है।[1]

३. **अति अल्पकाल** (Very Short Period)

'अति अल्पकाल' या 'तात्कालिक समय' (Immediate Period) वह अवधि है जिसमें **कुल पूर्ति लगभग स्थिर रहती है। अति अल्पकाल ऐसी स्थिति को बताता है जिसमें किसी वस्तु का पहले से उत्पादन हो जाता है और जिसमें समय इतना कम होता है कि वस्तु के उत्पादन को और अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इस काल में उत्पादन की दर को नहीं बदला जा सकता है।**[2] ऐसी स्थिति में यदि वस्तु की माँग बढ़ती है तो गोदामों में पहले से रखे हुए स्टॉक में से निकाल कर ही वस्तु की पूर्ति को बहुत सीमित मात्रा में बढ़ाया जा सकेगा। इसी प्रकार यदि वस्तु की माँग घटती है तो वस्तु की कुछ पूर्ति को वापस गोदामों में स्टॉक किया जा सकेगा। अतः यह कहा जाता है कि अति अल्प**काल वह अवधि है जिसमें पूर्ति गोदामों में रखे हुए स्टाक तक सीमित होती है।**

चित्र—११
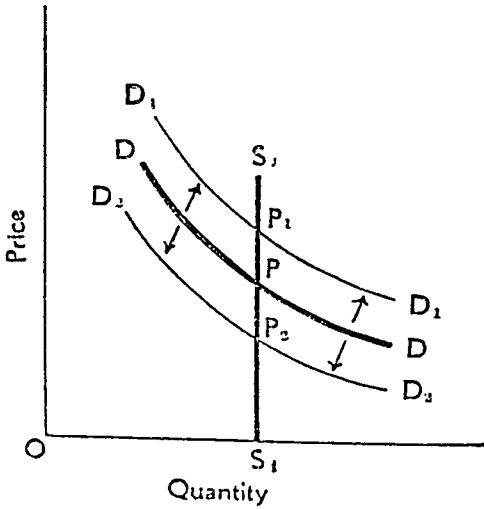
चूँकि अति अल्पकाल में पूर्ति लगभग स्थिर रहती है, इसलिए मूल्य मुख्यतया माँग द्वारा निर्धारित होता है। यदि माँग में वृद्धि हो जाती है तो मूल्य बढ़ जायेगा; और यदि माँग में कमी हो जाती है तो मूल्य घट जायेगा। इस बात को चित्र संख्या ११ में दिखाया गया है। चूँकि इस काल में पूर्ति स्थिर रहती है, इसलिए चित्र संख्या ११ में पूर्ति को खड़ी रेखा (vertical line) SS_1 द्वारा दिखाया गया है। माँग रेखा DD पूर्ति रेखा SS_1 को P बिन्दु पर काटती है, इसलिए मूल्य PS_1 होगा। यदि माँग बढ़ कर D_1D_1 हो जाती है तो मूल्य भी बढ़ जायेगा और वह P_1S_1 के बराबर होगा। यदि माँग घट कर D_2D_2 हो जाती है तो मूल्य भी घट जायेगा और वह P_2S_1 के बराबर होगा। अति अल्पकाल के मूल्य को मार्शल

---

1 उदाहरणार्थ, फलों की माँग बढ़ जाने पर नये बाग लगाये जायेंगे और पूर्ति को बढ़ाने का प्रयत्न किया जायेगा, परन्तु इन नये बागों से ८-१० साल तक फलों की पूर्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी, अर्थात् फलों के सम्बन्ध में ८-१० साल का समय अल्पकाल कहा जायेगा क्योंकि इस समयावधि में फलों की पूर्ति लगभग स्थिर रहेगी या बहुत सीमित मात्रा में बढ़ायी जा सकेगी। इसके विपरीत कारों के उत्पादन को २ साल के अन्दर ही नये यन्त्रों को लगा कर बहुत बढ़ा कर माँग के अनुरूप किया जा सकता है और इस प्रकार कारों के लिए २ साल का समय दीर्घकाल है।

2 The very short period refers to a situation in which the goods are already produced and in which the time interval is too short to produce any more. In other words, within this period the rate of production cannot be changed.

'बाजार मूल्य' (market price) कहा। यह मूल्य माँग तथा पूर्ति के अस्थायी साम्य द्वारा र्धारित होता है और दिन में माँग में परिवर्तन के अनुसार कई बार बदल सकता है।

. अल्पकाल (Short Period)

अल्पकाल वह अवधि है जिसमें वस्तु की उत्पादित मात्रा को परिवर्तित किया जा सकता , परन्तु स्थिर प्लाण्ट की क्षमता को नहीं।[3] इसमें स्थिर प्लाण्ट क्षमता के साथ परिवर्तनशील त्वों (जैसे, कच्चा माल, मानव शक्ति इत्यादि) में परिवर्तन करके वस्तु की उत्पादित मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इस काल में वर्तमान प्लाण्ट क्षमता का अधिक गहराई के साथ (more intensively) प्रयोग करके वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जाता है, परन्तु प्लाण्ट की क्षमता स्थिर रहती है, उसके आकार को बढ़ा कर वस्तु के उत्पादन में वृद्धि नहीं की जा सकती है और नयी फर्में उद्योग में प्रवेश नहीं कर सकती हैं। चूँकि अल्पकाल में प्लाण्ट की क्षमता स्थिर रहती है, इसलिए इसे, 'स्थिर प्लाण्ट समयावधि' (fixed plant time pariod) भी कहा जाता है।

इस काल में भी मूल्य पर मुख्य प्रभाव माँग का ही पड़ता है क्योंकि पूर्ति को केवल वर्तमान प्लाण्टों के अधिक गहराई से प्रयोग करके सीमित मात्रा में ही बढ़ाया जा सकता है, उसे पूरी प्रकार से माँग के अनुरूप नहीं किया जा सकता। यद्यपि इस काल में मूल्य पर माँग का ... इसमें पूर्ति का प्रभाव अधिक पड़ता ... कि अल्पकाल में उसे वर्तमान प्लाण्ट

... मात्रा में बढ़ाया जा सकता है। इस काल के मूल्य को 'अल्पकालीन मूल्य' (short period price) या 'अल्पकालीन सामान्य मूल्य' (short run normal price) कहा जाता है।

चित्र—१२

अल्पकाल में मूल्य निर्धारण को चित्र संख्या १२ द्वारा दिखाया गया है। चित्र में MSC अति अल्पकालीन पूर्ति रेखा अर्थात् बाजार पूर्ति रेखा (market supply curve) को बताती है; चूँकि अति अल्पकाल में पूर्ति रेखा लगभग स्थिर होती है, इसलिए MSC एक खड़ी रेखा (vertical line) है। MSC मूल माँग रेखा (original) demand curve) DD को P बिन्दु पर काटती है, इसलिए 'बाजार मूल्य' PQ होगा। चित्र १२ में SPS अल्पकाल पूर्ति रेखा (short period supply curve) है, यह भी मूल माँग रेखा DD को P बिन्दु पर ही काटती है, इसलिए 'अल्पकालीन मूल्य' या 'अल्पकालीन
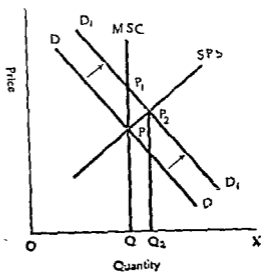
3 The short period is one in which the amount of goods produced can be varied, but not the capacity of fixed plant.

सामान्य मूल्य' भी PQ हुआ । अध्ययन की सुविधा के लिए हम मान लेते हैं कि 'बा
तथा 'अल्पकालीन मूल्य' दोनों PQ के बराबर हैं ।

यदि माँग बढ़ कर D_1D_1 हो जाती है तो 'अल्पकालीन मूल्य' P_2Q_2 होगा जो बाजार मूल्य PQ से ऊँचा है । परन्तु अल्पकालीन मूल्य P_2Q_2 नये बाजार मूल्य P_1Q है; इसका कारण है कि अल्पकाल में पूर्ति को, थोड़ा बढ़ाया जा सकता है, जबकि अति में पूर्ति लगभग स्थिर रहती है ।

५. दीर्घकाल (Long Period)

दीर्घकाल वह अवधि है जिसमें कि किसी वस्तु की पूर्ति को वर्तमान प्लाण्ट की को बढ़ा कर या उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा बढ़ाया जा सकता है । इसी प्रकार इ में वर्तमान प्लाण्ट की क्षमता को कम करके या उद्योग में से कुछ फर्मों के वहिर्गमन (exit **पूर्ति को घटाया जा सकता है ।** संक्षेप में, दीर्घकाल में इतना पर्याप्त समय होता है **साधन परिवर्तित किये जा सकते हैं ।**[3] चूँकि इस काल में प्लाण्ट की क्षमता को परिवर्तित (या घटाया) जा सकता है, इसलिए दीर्घकाल को **'परिवर्तनशील प्लाण्ट समयावधि'** (Vai plant time period) भी कहा जाता है ।

इस प्रकार दीर्घकाल में पूर्ति को पूरी प्रकार से (fully) माँग की दशाओं के अनुरूप जा सकता है । **इस काल में मूल्य पर माँग का प्रभाव मुख्य नहीं रह जाता, बल्कि पू प्रभाव पूरा-पूरा पड़ता है ।** दीर्घकाल के मूल्य को 'दीर्घकालीन मूल्य' (Long period p या 'दीर्घकालीन सामान्य मूल्य'. (l period normal price) या 'सामान्य मूल्य' (normal price) जाता है ।
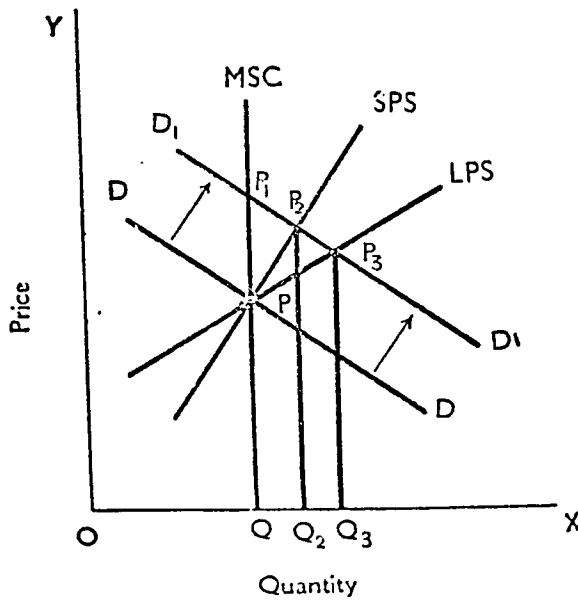
चित्र—१३

चित्र संख्या १३ में DD (original) माँग रेखा है; MSC बा पूर्ति रेखा, SPS अल्पकालीन पूर्ति रे तथा LPS दीर्घकालीन पूर्ति रेखा (lo period supply curve) हैं । दीर्घ लीन पूर्ति रेखा LPS, अल्पकालीन पू रेखा SPS के नीचे है क्योंकि दीर्घका में लागतें अपेक्षाकृत नीची होती हैं ।

माँग रेखा DD तथा दीर्घकाली पूर्ति रेखा LPS एक दूसरे को P बिन्दु प काटती हैं, इसलिए PQ 'सामान्य मूल्य होगा । MSC तथा SPS रेखाएँ भी DD को P बिन्दु पर काटती हैं अर्थात् PQ मूल्य 'बाजार मूल्य' तथा 'अल्पकालीन मूल्य' भी है । दूसरे शब्दों में, अध्ययन की सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि प्रारम्भ में

3 In the long period time is long enough to enable all factors to be varied.

बाजार मूल्य, अल्पकालीन मूल्य तथा दीर्घकालीन सामान्य मूल्य सब PQ के बराबर हैं। यदि माँग बढ़ कर D_1D_1 हो जाती है तो 'दीर्घकालीन सामान्य मूल्य' (long period normal price) बढ़ कर P_3Q_3 हो जायेगा, यह नये अल्पकालीन मूल्य P_2Q_2 तथा नये बाजार मूल्य P_1Q से कम है। माँगी जाने वाली तथा पूर्ति की जाने वाली दीर्घकालीन सन्तुलन मात्रा OQ_3 है जो कि अल्पकालीन मात्रा OQ_2 तथा बाजार काल की मात्रा OQ से अधिक है। मार्शल के अनुसार, बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सदैव दीर्घकालीन सामान्य मूल्य की ओर जाने की रहती है।

६. अति दीर्घकाल (Very Long Period or Secular Period or the Historical Long Period)

उपर्युक्त तीनों 'क्रियात्मक समयावधियों' (operational time periods) के अतिरिक्त मार्शल ने एक चौथी समयावधि, जिसे 'अति दीर्घकालीन' या 'चिरकाल' या 'ऐतिहासिक दीर्घकाल' कहते हैं, पर भी विचार किया।

अति दीर्घकाल अत्यन्त लम्बा समय होता है, इसमें माँग तथा पूर्ति दोनों पक्षों में आधारभूत परिवर्तन होते हैं। इसमें न केवल वे सब परिवर्तन होते हैं जो कि साधारण दीर्घकाल में होते हैं, बल्कि इसमें सभी अन्तर्निहित आर्थिक तत्वों (underlying economic factors), जैसे, माँग पक्ष की ओर, जनसंख्या का आकार, लोगों की आदतें तथा स्वभाव, इत्यादि, तथा पूर्ति पक्ष की ओर, पूँजीगत वस्तुओं की लागतों, कच्चे माल की पूर्ति, उत्पादन की रीतियाँ, पूँजी की पूर्ति की सामान्य दशाओं, इत्यादि के बदलने के लिए समय होता है। इन विस्तृत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मूल्यों में परिवर्तनों को मार्शल ने 'मूल्य में चिरकालीन परिवर्तन' (secular change in value) कहा। वास्तव में, अति दीर्घकाल एक ऐतिहासिक काल (historical period) है।

७. 'मूल्य निर्धारण में समय-तत्व' के सम्बन्ध में सामान्य निष्कर्ष (General conclusions regarding 'the time-element in price-determination')

(i) विभिन्न समयावधियों के बीच अन्तर 'घड़ी के समय' (clock time) या 'कलेण्डर के समय' (calender-time) पर नहीं बल्कि 'क्रियात्मक समय' (operational time) पर आधारित है। 'क्रियात्मक समय' वह समय है जो कि पूर्ति माँग की दशाओं के अनुरूप (adjust) होने में लेती है।

(ii) विभिन्न उद्योगों के लिए 'क्रियात्मक समय' भिन्न होता है। एक स्थिति में अल्पकाल दूसरी स्थिति में दीर्घकाल से लम्बा हो सकता है। वास्तव में, इन अवधियों के बीच अन्तर केवल एक विश्लेषणात्मक अन्तर है।[4]

(iii) समय कम होने पर मूल्य पर माँग का प्रभाव अधिक पड़ेगा और समय जितना अधिक होगा उतना ही पूर्ति का प्रभाव अधिक पड़ेगा। मार्शल के शब्दों में, "सामान्यतया, विचाराधीन अवधि जितनी कम होगी, मूल्य पर माँग के प्रभाव के प्रति दिया जाने वाला हमारा ध्यान भी उतना ही अधिक होगा; तथा समयावधि जितनी लम्बी होगी उतना ही अधिक उत्पादन-लागत का प्रभाव मूल्य पर पड़ेगा।"[5]

---

[4] A short run in one case may be longer than a long run in another. The distinction between the different time-periods is essentially an analytical one.

[5] Thus we may conclude that, *as a general rule*, the shorter the period which we are considering the greater must be the share of our attention which is given to the influence of demand on value; and the longer the period, the more important will be the influence of cost of production on value." —Marshall, *Principles of Economics*, p. 291.

बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य
(MARKET PRICE AND NORMAL PRICE)

बाजार मूल्य का अर्थ (Meaning of Market Price)

बाजार मूल्य अति अल्पकालीन साम्य मूल्य (very short period equilibrium होता है। अति अल्पकाल वह समयावधि है जिसमें पूर्ति लगभग स्थिर रहती है या गोदामों हुए स्टॉक तक सीमित होती है। बाजार मूल्य किसी समय विशेष में बाजार में वास्तव में होता है। माँग में अस्थायी परिवर्तनों के कारण यह दिन में कई बार बदल सकता है। दूस में, बाजार मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों का अस्थायी सन्तुलन (temporary equili होता है। चूंकि अति अल्पकाल में पूर्ति लगभग स्थिर रहती है या गोदामों में रखे माल तक होती है, इसलिए बाजार मूल्य निर्धारण में मुख्य तथा सक्रिय प्रभाव (dominant and influence) माँग का पड़ता है अर्थात् माँग के घटने-बढ़ने से मूल्य घटता-बढ़ता है, जबकि प्रभाव केवल निष्क्रिय (passive) होता है। स्पर्द्धात्मक दशाओं में बाजार मूल्य की प्रवृ दीर्घकालीन साम्य मूल्य अर्थात् 'सामान्य मूल्य' की ओर जाने की होती है।

सामान्य मूल्य (Normal Price)

प्रायः 'दीर्घकालीन साम्य मूल्य' (Long period equilibrium price) को ' मूल्य' कहा जाता है। 'अल्पकालीन सामान्य मूल्य (short-run normal price) से अन्तर के लिए इसे 'दीर्घकालीन सामान्य मूल्य' (long-run normal price) भी कहते हैं। दी वह अवधि है जिसमें कि वर्तमान प्लाण्ट की क्षमता को घटा-बढ़ा कर या नयी फर्मों के (entry) या बहिर्गमन (exit) द्वारा पूर्ति को पूरी प्रकार से बढ़ा कर या घटा कर माँग की के अनुरूप किया जा सकता है।

'सामान्य मूल्य' वह मूल्य है जो कि सन्तुलन की स्थिति में विद्यमान होगा, यदि सब कारक प्रभाव, जो कि स्थायी मूल्य-समायोजन में निरन्तर बाधा डालते रहते हैं, हटाये जा स चूंकि इस प्रावैगिक संसार (dynamic world) में विघ्नकारक प्रभाव निरन्तर कार्य करते हैं तथा उन्हें हटाया नहीं जा सकता, इसलिये 'सामान्य मूल्य' काल्पनिक (imaginary) अमूर्त (abstract) है जो कि वास्तव में किसी समय विशेष में प्रचलित नहीं होता या प्राप्त किया जा सकता। जब तक कि इतना समय मिल पाये कि दीर्घकालीन साम्य (अर्थात् ' मूल्य स्थापित हो सके, उससे पहले ही प्रायः अन्तर्निहित (underlying) दशाओं में से कु परिवर्तन हो जायेगा और पहला सम्भावित सामान्य मूल्य दूसरे सम्भावित सामान्य मूल्य की गतिशील हो जायेगा। दीर्घकाल, कल की भाँति, कभी नहीं आता।[7] दूसरे शब्दों में प्रावै समाज में सामान्य मूल्य एक 'गतिशील लक्ष्य' (moving target) है जिसकी ओर बाजार निरन्तर जाने की प्रवृत्ति रखता है परन्तु वास्तव में वह कभी वहाँ पहुँच नहीं सकता।[8]

---

6 'Normal price' is the price which would exist in a state of equilibrium, if all the di rbing influences which are continually interfering with stable price adjustment co be removed.

7 There will usually be a change in some of the conditions underlying the long pe equilibrium before it has had time to come into being; and the first expected nor price would have shifted to another expected normal price. The long run, like to rrow, never comes.

8 In other words, in a dynamic society normal price is a 'moving target', towards wh market price tends to approach but may never actually reach.

ध्यान रहे कि 'सामान्य मूल्य' बाजार मूल्यों का एक सांख्यिकीय औसत (statistical average) नहीं होता। बाजार मूल्य वर्तमान माँग तथा पूर्ति की शक्तियों का अस्थायी साम्य होता है। सामान्य मूल्य अन्तिम (final) सन्तुलन होता है जबकि माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ बिना किसी परिवर्तन के कार्य करती रहें।

यद्यपि सामान्य मूल्य मे अमूर्तता (abstraction) होती है, परन्तु फिर भी उसमें इस दृष्टि से वास्तविकता (reality) होती है कि यह एक 'केन्द्र विन्दु' (focal point) या 'आदर्श' (norm) की भाँति होता है जिसके चारो तरफ बाजार मूल्य वास्तव मे घूमता रहता है।

बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य की तुलना
(COMPARISON OF MARKET PRICE AND NORMAL PRICE)

बाजार मूल्य	सामान्य मूल्य
१	२
१. बाजार मूल्य अति अल्पकालीन मूल्य है।	१. सामान्य मूल्य दीर्घकालीन मूल्य है।
२. बाजार मूल्य किसी समय विशेष में वास्तव मे प्रचलित होता है।	२ सामान्य मूल्य काल्पनिक या अमूर्त है जो कि वास्तव मे किसी समय विशेष में प्रचलित नही होता। परन्तु सामान्य मूल्य में इस दृष्टि से वास्तविकता होती है कि यह एक 'केन्द्र विन्दु' की भाँति होता है जिसके चारो तरफ बाजार मूल्य घूमता रहता है।
३. बाजार मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों का अस्थायी सन्तुलन (temporary equilibrium) होता है; परिणामस्वरूप यह दिन मे कई बार बदल सकता है।	३. सामान्य मूल्य 'अन्तिम सन्तुलन' (final equilibrium) होता है जबकि माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ बिना किसी परिवर्तन के (undisturbed) कार्य करती रहें। प्रावैगिक समाज में सामान्य मूल्य एक स्थिर विन्दु नही होता, वल्कि यह एक 'गतिशील विन्दु' (moving point) या 'गतिशील लक्ष्य' (moving target) होता है, जिसकी ओर बाजार मूल्य निरन्तर जाने की प्रवृत्ति रखता है परन्तु वास्तव मे वहाँ पहुँच नही पाता।
४. बाजार मूल्य के निर्धारण मे माँग का मुख्य तथा सक्रिय प्रभाव होता है, जबकि पूर्ति का निष्क्रिय पार्ट (passive role) होता है क्योंकि पूर्ति लगभग स्थिर होती है।	४. सामान्य मूल्य के निर्धारण मे माँग का प्रभाव मुख्य नहीं रह जाता। वहाँ पर पूर्ति का पार्ट निष्क्रिय न रहकर सक्रिय हो जाता है क्योंकि पूर्ति को पूरी प्रकार से परिवर्तित किया जा सकता है।
५. सभी प्रकार की वस्तुओं का, चाहे वे निरुत्पादनीय वस्तुएँ (Non-reproducible goods) हों या पुनरुत्पादनीय वस्तुएँ	५. सामान्य मूल्य केवल पुनरुत्पादनीय वस्तुओं का ही होता है। यदि वस्तु पुनरुत्पादनीय है तभी उसकी पूर्ति में पूरी प्रकार से

१	२
(reproducible goods) हों, बाजार मूल्य होता है।	परिवर्तन करके उसे माँग की दशा अनुरूप किया जा सकेगा अन्यथा यदि वस्तु निरुत्पादनीय है तो दीर्घ में उसकी पूर्ति में परिवर्तन नहीं किया सकता और इसलिए ऐसी वस्तु के सा मूल्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बाजार मूल्य का निर्धारण (Determination of Market Price)

किसी वस्तु का बाजार मूल्य 'अति अल्पकाल' या 'बाजार समय' (market period) माँग तथा पूर्ति के साम्य द्वारा निर्धारित होता है। वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं—(अ) पुनरुत्पादनीय वस्तुएँ (reproducible commodities), अर्थात् जिन्हें दुबारा उत्पादित किया सके। पुनरुत्पादनीय वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं : (i) शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएँ (perishable commodities), तथा (ii) शीघ्र नष्ट न होने वाली वस्तुएँ या टिकाऊ वस्तुएँ (non-perishable commodities or durable commodities)। (ब) निरुत्पादनीय वस्तुएँ (non-reproducible goods), अर्थात् जिन्हें दुबारा उत्पादित नहीं किया जा सकता है, जैसे, कलात्मक तस्वीरें, पुरानी हस्तलिपियाँ (manuscripts) इत्यादि।

शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं तथा निरुत्पादनीय वस्तुओं का बाजार मूल्य निर्धारण—दोनों प्रकार की वस्तुओं को एक साथ लेने का कारण है कि इन दोनों की पूर्ति स्थिर रहती है। शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं, जैसे, हरी सब्जियाँ, मछली, दूध, इत्यादि, को रोका नहीं जा सकता। इनकी पूर्ति जितनी बाजार में है वह सब उसी दिन बाजार में बिक जानी चाहिए अन्यथा दूसरे दिन वे खराब हो जायेंगी। यहाँ हम यह मान लेते हैं कि प्रशीतन प्रक्रिया (process of refrigeration) का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। अतः शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं की पूर्ति स्थिर होती है इसी प्रकार निरुत्पादनीय वस्तुओं, (हस्तलिपियाँ, कलात्मक तस्वीरें, इत्यादि) की पूर्ति भी स्थिर होती है। स्पष्ट है कि निरुत्पादनीय वस्तुओं तथा शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं की पूर्ति रेखा एक खड़ी रेखा होगी जैसा कि चित्र संख्या १४ में SKM रेखा द्वारा दिखाया गया है। इन वस्तुओं के बाजार मूल्य निर्धारण में पूर्ति या उत्पादन-लागत का प्रभाव निष्क्रिय (passive) होगा; मुख्य तथा सक्रिय प्रभाव माँग का पड़ेगा जैसा कि चित्र संख्या १४ में दिखाया गया है। चित्र संख्या १४ में D_1D_1 माँग रेखा पूर्ति रेखा SKM को P_1 बिन्दु पर काटती है, अतः सन्तुलन मूल्य P_1M (या L_1) निर्धारित होगा और इस मूल्य पर बाजार में सम्पूर्ण पूर्ति OM बिक जायगी। यदि माँग बढ़कर D_2D_2 हो जाती है तो बाजार मूल्य बढ़कर
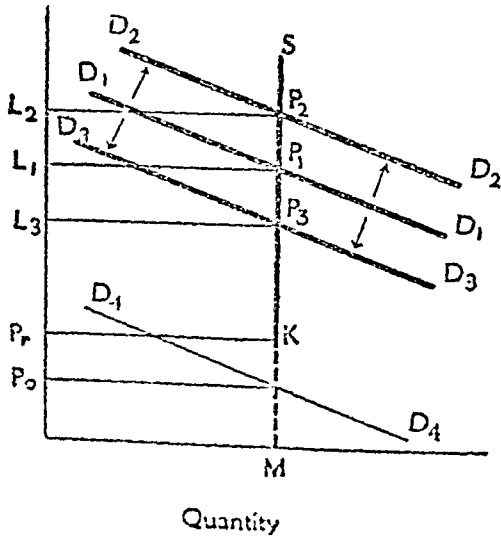
चित्र—१४

P_2M (या L_2) हो जायेगा और इस मूल्य पर बाजार की समस्त पूर्ति बिक जायेगी। यदि माँग घटकर D_3D_3 हो जाती है तो मूल्य घटकर P_3M (या L_3) हो जायेगा और इस मूल्य पर बाजार की समस्त पूर्ति बिक जायेगी।

यदि माँग D_3D_3 से और नीचे गिरती है तो मूल्य भी और नीचे गिरेगा। परन्तु यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखने की है कि एक निम्नतम कीमत (minimum price) होगी जिसके नीचे उत्पादक या विक्रेता अपनी वस्तु को नहीं बेचना चाहेंगे। इस निम्नतम मूल्य को अर्थशास्त्री 'सुरक्षित मूल्य' (reserve price) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, सुरक्षित मूल्य वह निम्नतम मूल्य है जिस पर कि उत्पादक या विक्रेता अपनी वस्तु को स्वयं माँगने लगता है अर्थात् उसे बेचने से मना कर देता है।[9] चित्र संख्या १४ में विक्रेताओं के लिए 'सुरक्षित मूल्य' P_r है (यहाँ यह मान लेते हैं कि सभी विक्रेताओं के लिए सुरक्षित मूल्य एक ही है, जबकि ऐसा होना आवश्यक नहीं है) *यदि माँग गिरकर D_4D_4 हो जाती है तो मूल्य P_0 होगा,* परन्तु इस पर विक्रेता अपनी वस्तु नहीं बेचेंगे क्योंकि मूल्य 'सुरक्षित मूल्य' P_r से कम है। सुरक्षित मूल्य से नीचे (अर्थात् K बिन्दु से नीचे) पूर्ति रेखा को 'टूटी लाइन' द्वारा दिखाया गया है जो कि यह बताती है कि (सुरक्षित मूल्य से नीचे) वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा शून्य होगी।

सुरक्षित मूल्य कई तत्त्वों पर निर्भर करता है—(i) विक्रेता के लिए नकद रुपये की आवश्यकता की तीव्रता सुरक्षित मूल्य को प्रभावित करती है। यदि नकद रुपये की आवश्यकता अधिक है तो सुरक्षित मूल्य नीचा होगा; इसके विपरीत दशा में ऊँचा होगा। (ii) सुरक्षित मूल्य इस बात पर निर्भर करेगा कि विक्रेता भविष्य में मूल्यों के बारे में क्या आशा रखता है। यदि भविष्य में मूल्य के ऊँचे होने की आशा है तो उसका सुरक्षित मूल्य ऊँचा होगा; इसके विपरीत दशा में नीचा होगा। (iii) यह भविष्य की लागतों पर भी निर्भर करता है। यदि भविष्य में लागतों के बढ़ने की आशा है तो सुरक्षित मूल्य ऊँचा होगा; इसके विपरीत दशा में नीचा होगा। (iv) यह वस्तु के टिकाऊपन (durability) पर भी निर्भर करता है। वस्तु जितनी अधिक टिकाऊ होगी उतना ही अधिक सुरक्षित मूल्य होगा। शीघ्र नष्ट हो जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में सुरक्षित मूल्य बहुत नीचा होता है और कुछ दशाओं में यह शून्य हो जाता है।

शीघ्र नष्ट न होने वाली या टिकाऊ वस्तुओं का बाजार मूल्य निर्धारण—यदि वस्तु टिकाऊ है तो अति अल्पकाल में उसकी पूर्ति को थोड़ा परिवर्तित किया (अर्थात् बढ़ाया-घटाया) जा सकता है, परन्तु पूर्ति के परिवर्तन की अधिकतम सीमा वस्तु के मौजूद (existing) स्टॉक तक सीमित रहती है। टिकाऊ वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में भी मुख्य प्रभाव माँग का ही पड़ता है पूर्ति या लागत का प्रभाव बहुत कम होता है। यदि वस्तु की माँग बढ़ जाती है तो विक्रेता गोदामों में से स्टॉक निकाल कर थोड़ी पूर्ति बढ़ा सकेंगे परन्तु उसे माँग के अनुरूप नहीं किया जा सकेगा; अतः माँग बढ़ने पर मूल्य भी बढ़ जायेगा। *इसी प्रकार यदि माँग घटती है तो कुछ पूर्ति को बाजार से* निकाल कर गोदामों में स्टाक कर दिया जायेगा, परन्तु उसे घटाकर पूर्णतया माँग के अनुरूप नहीं किया जा सकेगा; अतः माँग घटने पर वस्तु का मूल्य भी घटेगा।

यहाँ पर एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि विक्रेता एक निम्नतम मूल्य अर्थात् 'सुरक्षित मूल्य' के नीचे वस्तु को नहीं बेचेंगे; इसके विपरीत एक अधिकतम मूल्य मिलने पर वे अपने समस्त स्टॉक को बेच देंगे। इस निम्नतम मूल्य तथा अधिकतम मूल्य के बीच पूर्ति रेखा बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ती हुई होगी, *और अधिकतम मूल्य के विन्दु के बाद से पूर्ति रेखा*

9 Reserve price is the minimum price below which a seller would demand his commodity himself, i. e., he would refuse to sell it.

खड़ी रेखा (vertical line) हो जायेगी क्योंकि पूर्ति बाजार में स्थित कुल स्टॉक से अ हो सकती। ऐसी पूर्ति रेखा को चित्र संख्या १५ में SKS_1 रेखा द्वारा दिखाया गया है। माँग रेखा DD पूर्ति रेखा SKS_1 को L पर काटती है, अतः सन्तुलन मूल्य LQ य निर्धारित होगा। इस मूल्य पर उत्पाद विक्रेता कुल पूर्ति OQ_1 में से बाजार में बेचेंगे तथा QQ_1 स्टॉक में रखेंगे। यदि बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो मूल्य OP_1 KQ_1) होगा और इस मूल्य पर पूरा OQ_1 बिक जायेगा। यदि माँग और बढ़ D_2D_2 हो जाती है तो मूल्य बढ़ कर OP जायेगा और बेची जाने वाली मात्रा कुल OQ_1 के बराबर ही रहेगी क्योंकि उसे नहीं जा सकता। यदि माँग घट कर D_3D_3 जाती है तो मूल्य घट कर OP_3 हो जायेगा इस नीचे मूल्य पर कुल स्टॉक OQ_1 में से OQ_2 बेचा जायेगा तथा Q_2Q_1 स्टॉक में रोक लिया जायेगा। OS मूल्य या इससे मूल्य पर विक्रेता वस्तु को बिलकुल नहीं बेचेंगे। OS मूल्य निम्नतम मूल्य है अर्थात् सुर मूल्य है जिस पर या जिससे नीचे विक्रेता वस्तु को बेचने से मना कर देंगे।
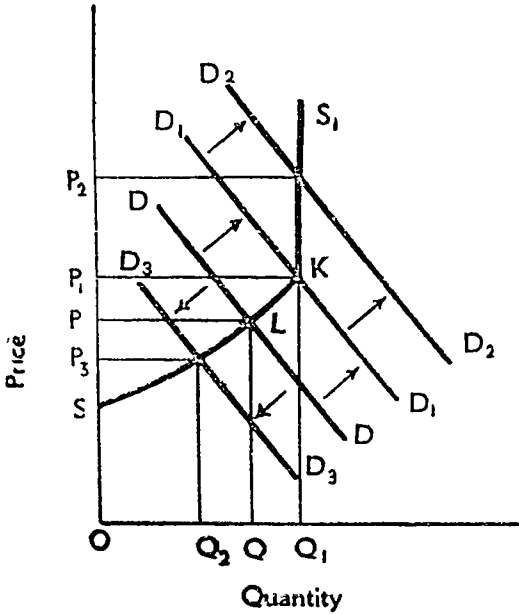
चित्र—१५

सामान्य मूल्य का निर्धारण (Determination of Normal Price)

सामान्य मूल्य दीर्घकालीन मूल्य होता है। अतः यह माँग तथा पूर्ति के दीर्घकालीन साम्य (long period equilibrium) द्वारा निर्धारित होता है। दीर्घकाल में इतना समय होता है कि वर्तमान प्लाण्ट के आकार को बढ़ा-घटा कर तथा उद्योगों में नयी फर्मों के प्रवेश या उसमें से पुरानी फर्मों के बहिर्गमन द्वारा पूर्ति को बढ़ा-घटा कर पूरी प्रकार माँग की दशाओं के अनुरूप किया जा सकता है।

चित्र संख्या १६ में DD दीर्घकालीन माँग रेखा तथा SS दीर्घकालीन पूर्ति रेखा है, ये दोनों P बिन्दु पर काटती है। अतः PQ 'दीर्घकालीन साम्य मूल्य' अर्थात् 'सामान्य मूल्य' हुआ और OQ माँग तथा पूर्ति की 'साम्य मात्राएँ' हुई। बिन्दु P माँग रेखा DD पर है, इसलिए PQ सीमान्त उपयोगिता (marginal utility) को बताता है। चूँकि बिन्दु P पूर्ति रेखा SS पर भी है, इसलिए PQ सीमान्त लागत (marginal cost)

चित्र—१६

को भी बताता है। स्पष्ट है कि सामान्य मूल्य PQ, सीमान्त उपयोगिता तथा सीमान्त लागत दोनों के बराबर है। अतः 'सामान्य मूल्य' के लिए एक आवश्यक दशा है :

मूल्य	=	सीमान्त-लागत	=	सीमान्त उपयोगिता
(Price)		(Marginal cost)		(Marginal utility)

पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में तथा दीर्घकाल में वस्तु के मूल्य की प्रवृत्ति सामान्य मूल्य तक **पहुँचने की होती है और वहाँ स्थिर (stable) रहने की होती है।** यदि मूल्य P_1Q_1 है तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह मूल्य सीमान्त लागत MQ_1 से अधिक है। ऐसी स्थिति में विक्रेता वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उत्पादन करके अपने लाभ को बढ़ा सकेंगे। अत. वस्तु का उत्पादन OQ_1 से अधिक बढ़ाया जायेगा, उत्पादन (अर्थात् पूर्ति) के बढ़ने से मूल्य गिरेगा और वह गिर कर 'सामान्य मूल्य' PQ के बराबर हो जायेगा जैसा कि चित्र में तीर द्वारा दिखाया गया है। यदि मूल्य P_2Q_2 है तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह मूल्य सीमान्त लागत LQ_2 से कम है। ऐसी स्थिति में विक्रेता वस्तु के उत्पादन को कम करके अपने नुकसान को कम करेंगे। अतः वस्तु का उत्पादन OQ_2 से घटाया जायेगा, उत्पादन के घटने से मूल्य बढ़ेगा और वह बढ़कर 'सामान्य मूल्य' PQ के बराबर हो जायेगा।

सामान्य मूल्य के लिए केवल यह ही आवश्यक नहीं है कि वह सीमान्त उपयोगिता तथा सीमान्त लागत के बराबर हो, बल्कि उसके लिए नीचे दी गयी एक दूसरी दशा भी आवश्यक है।

सामान्य मूल्य=औसत लागत (average cost) और इस दशा के परिणामस्वरूप उद्योग में प्रत्येक उत्पादक या फर्म को केवल सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त होता है।

इस दूसरी दशा का कारण इस प्रकार है। यदि सामान्य मूल्य औसत लागत से अधिक है तो उत्पादकों को अधिक लाभ (excess profit) होगा। इस लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी, पूर्ति बढ़ेगी और मूल्य घट कर ठीक औसत लागत के बराबर हो जायेगा। यदि सामान्य मूल्य औसत लागत से कम है तो उत्पादकों को हानि होगी, हानि के कारण कुछ उत्पादक (या फर्में) उद्योग को छोड़ देंगी, पूर्ति कम होगी, और मूल्य बढ़कर औसत लागत के बराबर हो जायेगा। इस प्रकार दीर्घकाल में मूल्य औसत लागत के बराबर होगा। औसत लागत में सामान्य लाभ[10] शामिल होता है और चूँकि दीर्घकाल में मूल्य औसत लागत के बराबर होता है तो इसका अर्थ हुआ कि उत्पादकों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में 'दीर्घकालीन मूल्य' अर्थात् 'सामान्य मूल्य' के लिए निम्न दो दशाओं का पूरा होना आवश्यक है :

(i) मूल्य=सीमान्त लागत=सीमान्त उपयोगिता

(ii) मूल्य=औसत-लागत

सामान्य मूल्य तथा उत्पत्ति के नियम (Normal Price and the Laws of Returns)

सामान्य मूल्य पर उत्पत्ति के नियमों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सामान्य मूल्य लागत के बराबर होता है अर्थात् लागत से प्रभावित होता है और लागत पर उत्पत्ति के नियमों का प्रभाव पड़ता है। नीचे हम तीनों उत्पत्ति के नियमों के अन्तर्गत सामान्य मूल्य के निर्धारण की विवेचना करते हैं।

---

10 'सामान्य लाभ' लाभ का वह निम्नतम स्तर है जिस पर उत्पादक उद्योग विशेष में कार्य करने को तत्पर रहते हैं। अर्थशास्त्र में 'सामान्य लाभ' लागत का अंग माना जाता है।

चित्र—१७

सामान्य-मूल्य 'उत्पत्ति ह्रास अर्थात् 'लागत वृद्धि नियम' के चूँकि उत्पादन 'लागत वृद्धि नि अन्तर्गत हो रहा है, इसलिए पूर्ति बायें से दायें को ऊपर की ओर संख्या १७ में SS रेखा द्वारा गया है। माँग रेखा DD पूर्ति रे P बिन्दु पर काटती है, अत: PQ निर्धारित होगा।

यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो है तो पूर्ति बढ़ती जायेगी जिससे बढ़ेगी और परिणामस्वरूप मूल्य भी P_1Q_1 हो जायेगा। यदि माँग D_1D_1 हो जाती है तो पूर्ति जायगी जिससे लागत घटेगी परिणामस्वरूप मूल्य भी घटकर P_2 जायेगा।
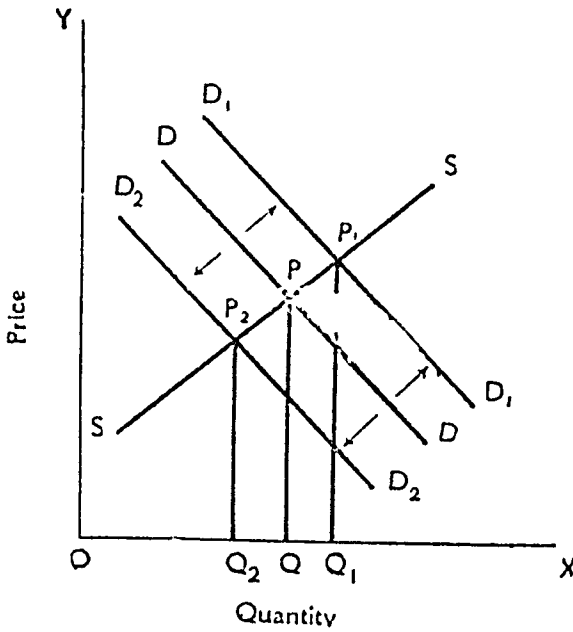
सामान्य मूल्य 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' अर्थात् 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत— चूँकि उत्पादन 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत हो रहा है, इसलिए पूर्ति रेखा बायें से दायें नीचे को गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र संख्या १८ में SS रेखा द्वारा दिखाया गया है। माँग रेखा DD पूर्ति रेखा SS को P बिन्दु पर काटती है, अत: मूल्य PQ निर्धारित होता।

यदि माँग बढ़ कर D_1D_1 हो जाती है तो मूल्य बढ़ता नहीं वल्कि वह घटकर P_1Q_1 हो जाता है; इसका कारण है लागत ह्रास नियम। माँग बढ़ने से पूर्ति बढ़ायी जायेगी; चूँकि उत्पादन 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत हो रहा है, इसलिए पूर्ति बढ़ने से लागत कम होती है और लागत कम होने से मूल्य (माँग बढ़ने पर भी) घट जाता है। **यदि माँग घटकर D_2D_2** हो जाती है तो मूल्य घटता नहीं वल्कि वढ़कर P_2 हो जाता है। माँग घटने से पूर्ति घटायी जायेगी, पूर्ति घटने से लागत वढ़ेगी (क्योंकि 'लागत-वृद्धि नियम' के अन्तर्गत हो रहा है) और लागत बढ़ने से (माँग घटने पर भी) मूल्य जाता है।

चित्र—१८

लागत ह्रास नियम (या उत्पत्ति वृद्धि नियम) के अन्तर्गत सामान्य मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में दो कठिनाइयाँ ध्यान रखने योग्य हैं :

(i) माँग रेखा तो बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है ही, परन्तु लागत ह्रास नियम के कारण पूर्ति रेखा भी बायें से दायें नीचे की ओर गिरती है। ऐसी दशा में, सिद्धान्त रूप में, यह सम्भव है कि दोनों रेखाएँ दो या दो से अधिक बिन्दुओं पर काटें। अतः उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत यह सम्भव है कि एक से अधिक सन्तुलन बिन्दु हों।

(ii) ध्यान रहे कि मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में हम पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति को मानकर चले हैं। उत्पत्ति वृद्धि नियम (अर्थात् लागत ह्रास नियम) के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में एक मुख्य समस्या यह है कि क्या 'पूर्ण प्रतियोगिता' का 'बढ़ती हुई उत्पत्ति' (increasing returns) के साथ मेल खाता (compatible) है? अर्थात् क्या इन दोनों का सह-अस्तित्व (co-existence) हो सकता है? उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत फर्म अपने उत्पादन के पैमाने को लगातार बढ़ाकर बचतें (economies) प्राप्त कर लागतों में बहुत कमी प्राप्त कर सकती है। लागतों में बहुत कमी होने के परिणामस्वरूप यह फर्म अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में नष्ट कर सकती है और ऐसी परिस्थिति में या तो एकाधिकार (monopoly) या अल्पाधिकार (oligopoly) की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति समाप्त हो जायेगी। अतः यह कहा जाता है कि 'बढ़ती हुई उत्पत्ति' (increasing returns) पूर्ण प्रतियोगिता के साथ मेल नहीं खाती।

सामान्य मूल्य 'लागत स्थिरता नियम' अर्थात् 'उत्पत्ति स्थिरता नियम' के अन्तर्गत— चूँकि उत्पादन 'लागत स्थिरता नियम' के अन्तर्गत हो रहा है, इसलिए पूर्ति रेखा एक पड़ी हुई रेखा होगी जैसा कि चित्र संख्या १६ में SS_1 रेखा द्वारा दिखाया गया है। माँग रेखा DD पूर्ति रेखा SS_1 को P बिन्दु पर काटती है, अतः PQ मूल्य निर्धारित होगा।

चित्र—१६

यदि माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो मूल्य बढ़ता नहीं बल्कि उतना ही ($P_1Q_1 = PQ$) रहता है। माँग बढ़ने पर पूर्ति बढ़ायी जाती है परन्तु पूर्ति बढ़ने पर लागत समान रहती है और चूँकि लागत समान रहती है इसलिए (माँग बढ़ने पर भी) मूल्य समान रहता है। यदि माँग घटकर D_2D_2 हो जाती है तो मूल्य घटता नहीं बल्कि उतना ही ($P_2Q_2 =$ PQ) रहता है। माँग घटने पर पूर्ति घटायी जाती है, परन्तु पूर्ति घटने पर लागत समान रहती है और चूँकि लागत समान रहती है इसलिए (माँग घटने पर भी) मूल्य समान रहता है।
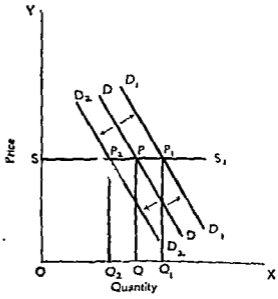
बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य में सम्बन्ध
(RELATION BETWEEN MARKET PRICE AND NORMAL PRICE)

बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सदैव सामान्य मूल्य की ओर जाने की होती है। बा
सामान्य मूल्य के चारों तरफ चक्कर लगाता रहता है; वह लम्बे समय तक सामान्य मूल्य से ऊँचा या नीचा नहीं रह सकता। सामान्य मूल्य लागत के बराबर होता है। अ
अस्थायी कारणों के परिणामस्वरूप बाजार मूल्य में, समुद्र में लहरों की भाँति, उतार-चढ़ाव रहते हैं; परन्तु इन उतार-चढ़ाव के होने पर भी लहरों रूपी बाजार मूल्य बहुत समय तक
या नीचा नहीं रह सकता, उसकी प्रवृत्ति सामान्य मूल्य रूपी समुद्र की जल-सतह की ओर की रहती है।
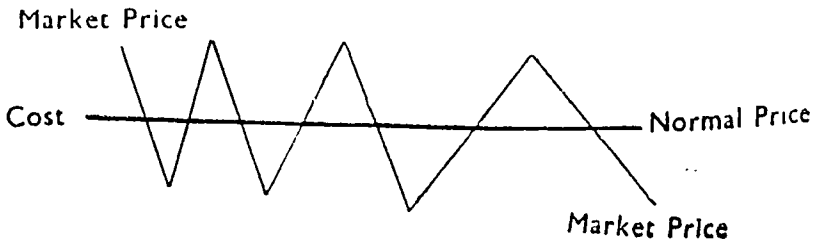
चित्र—२०

चित्र संख्या २० में सामान्य मूल्य को एक पड़ी रेखा द्वारा दिखाया गया है, पड़ी
एक सिरे पर लागत को दिखाया है क्योंकि सामान्य मूल्य लागत के बराबर होता है।
तथा अस्थायी कारणों के परिणामस्वरूप यदि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य (तथा लागत) से
है, तो इससे उत्पादकों को लाभ होगा, समय पाकर लाभ से आकर्षित होकर उत्पादक
उत्पादन को बढ़ायेंगे, पूर्ति बढ़ेगी, पूर्ति बढ़ने से बाजार मूल्य गिरेगा और वह सामान्य मूल्य
लागत के बराबर हो जायेगा, यदि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य (तथा लागत) से कम है,
इससे उत्पादकों को हानि होगी, हानि के कारण उत्पादक अपने उत्पादन को घटायेंगे, पूर्ति
होगी, पूर्ति कम होने से समय पाकर बाजार मूल्य बढ़ेगा और वह सामान्य मूल्य तथा लागत
बराबर हो जायेगा। स्पष्ट है कि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य के चारों तरफ चक्कर लगाता रह
है और वह बहुत समय तक सामान्य मूल्य से अधिक ऊँचा या अधिक नीचा नहीं रह सकता
उसकी प्रवृत्ति सदैव सामान्य मूल्य की ओर आने की होती है।

प्रतिनिधि फर्म, साम्य फर्म तथा अनुकूलतम फर्म

[REPRESENTATIVE FIRM, EQUILIBRIUM FIRM AND OPTIMUM FIRM]

प्रतिनिधि फर्म
(REPRESENTATIVE FIRM)

प्रतिनिधि फर्म की आवश्यकता तथा पृष्ठभूमि

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत वस्तु के दीर्घकालीन सामान्य मूल्य के निर्धारण से सम्बन्धित कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से मार्शल ने 'प्रतिनिधि फर्म' के विचार को प्रतिपादित किया।

मार्शल के अनुसार बढ़ते हुए प्रतिफल (increasing returns) के अन्तर्गत प्रतिस्पर्द्धात्मक दशाएँ उपस्थित रह सकती हैं क्योंकि उद्योग के अन्दर सभी फर्मों का एक साथ विकास सम्भव नहीं हो सकता।[1] अतः बढ़ते हुए प्रतिफल तथा पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मार्शल ने यह माना कि उद्योग विशेष में फर्मों की एक बहुत बड़ी सख्या होगी, तथा उनमें से प्रत्येक विकास की विभिन्न स्थितियों में होगी। इस सम्बन्ध में मार्शल ने एक वन के वृक्षों का उदाहरण दिया। एक वन में कुछ नये वृक्षों का विकास होता है, कुछ वृक्ष विकास की चरम सीमा पर पहुँच चुके होते हैं, तथा कुछ का ह्रास होता है। इसी प्रकार उद्योग विशेष में विभिन्न फर्मों का एक निश्चित जीवन-चक्र (life cycle) होता है। कुछ फर्मे नयी होती हैं जो अपने जीवन के लिए सघर्ष करती हुई बढ़ती हैं, कुछ फर्मे विकास की चरम सीमा पर पहुँच कर ह्रास की अवस्था मे होती हैं।[2]

यदि फर्मों की एक बड़ी सख्या विद्यमान है और प्रत्येक के विकास की स्थिति भिन्न है तो एक कठिनाई यह उपस्थित होती है कि कौन सी फर्म की लागत के द्वारा मूल्य निर्धारित होगा? क्या सबसे अधिक कुशल फर्म (अर्थात् जिसकी लागत न्यूनतम है) की औसत लागत द्वारा मूल्य

---

1 [illegible] आपस मे मेल नही खावे; बढ़ते हुए [illegible] हो जाती है। इसका कारण यह है [illegible], अपने विस्तार के साथ, बनते प्राप्त [illegible]। यह विकासमान फर्म लागत में ह्रास [illegible], अन्य फर्मों को [illegible] में नहीं टिकने देती; धीरे-धीरे फर्मों की सख्या कम होती जाती है और अल्पाधिकार (Oligopoly) या एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार बढ़ता हुआ प्रतिफल तथा स्पर्द्धात्मक दशाएँ साथ-साथ उपस्थित नहीं रह सकतीं; परन्तु मार्शल ने यह माना कि इन दोनों का सहअस्तित्व हो सकता है।

2 Marshall, *Principles of Economics*, p. 263.

निर्धारित होगा या सबसे कम कुशल फर्म (अर्थात् जिसकी लागत अधिकतम है) की ओर द्वारा ? सबसे कुशल फर्म की औसत लागत द्वारा मूल्य निर्धारित नहीं हो सकता क्योंकि की लागत न्यूनतम होगी जबकि अन्य कम कुशल फर्मों की लागत अधिक होगी और फर्मों को हानि होगी, जबकि दीर्घकाल में फर्मों को हानि या लाभ नहीं हो सकता है, उ सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। इसी प्रकार मूल्य सबसे कम कुशल फर्म की औसत लागत बर नहीं हो सकता क्योंकि इस फर्म की लागत सबसे अधिक होगी और अन्य अधिक कुश की लागत इससे कम होगी जिससे उन्हें लाभ होगा। परन्तु दीर्घकाल में फर्मों को लाभ सकता, वे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर सकती हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठत दीर्घकाल में कौन सी फर्म की लागत के बराबर मूल्य निर्धारित होगा ? इस कठिनाई करने के लिए मार्शल ने बताया कि दीर्घकाल में मूल्य उस फर्म की लागत के द्वारा निर्धारि जो कि सामान्यतया उद्योग में प्रचलित परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करती है और ऐसी मार्शल ने 'प्रतिनिधि फर्म' कहा।

प्रतिनिधि फर्म की परिभाषा तथा उसके अभिप्राय

। अधिक) ऐसी फर्म का चुनाव कर सकते हैं जो कि, हमारे सर्वोत्तम अनुमान के अनुसार, इस विशेष प्रकार की औसत फर्म को बतायेगी।"[6]

स्थैतिक दशा (Static or Stationary conditions)[7] के अन्तर्गत उद्योग में प्रतिनिधि फर्म एक ही आकार की रहती है, न उसका विस्तार होता है और न संकुचन। मार्शल के शब्दों में, "निस्सन्देह हम यह मान सकते हैं कि स्थिर स्थिति में व्यवसाय की प्रत्येक इकाई का आकार समान रहता है तथा उसके व्यापारिक सम्बन्ध समान रहते हैं। परन्तु हमें इस सीमा तक जाने की आवश्यकता नहीं है। यह मान लेना पर्याप्त होगा कि फर्मों का आकार बढता है तथा कम होता है, परन्तु प्रतिनिधि फर्म का आकार उसी भाँति सदैव लगभग समान रहता है जिस प्रकार कि एक तरुण वन के प्रतिनिधि वृक्ष का आकार समान रहता है''''''।"[8]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक प्रतिनिधि फर्म की मुख्य विशेषताएँ निम्न है :

(i) यह दीर्घकालीन औसत फर्म होती है, परन्तु यह वर्तमान फर्मों की औसत फर्म नही होती। यह एक ऐसी औसत फर्म है जिसका अध्ययन करके हम यह जान सकते हैं कि उद्योग में बड़ी मात्रा की उत्पादन की आन्तरिक तथा वाह्य बचतें कहाँ तक उपलब्ध हो चुकी हैं।

(ii) यह न बहुत पुरानी होती है और न बहुत नयी।

(iii) इसका प्रबन्ध समान योग्यता वाले व्यक्ति द्वारा होता है।

(iv) स्थैतिक स्थिति में इसका न विस्तार होता है और न सकुचन।

(v) इसको न लाभ होता है और न हानि, बल्कि सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

(vi) ऐसी फर्म एक या एक से अधिक हो सकती है।

प्रतिनिधि फर्म की आलोचना (Criticism of Representative Firm)

पीगू, साफा (Sraffa), यग, रोबिन्स इत्यादि ने प्रतिनिधि फर्म की कड़ी आलोचनाएँ की है जिनमें मुख्य निम्न हैं :

(१) यह विचार अस्पष्ट (vague) है। रोबिन्स पूछते हैं—क्या यह फर्म एक 'प्रतिनिधि प्लाण्ट' (representative plant) है, या एक 'प्रतिनिधि तान्त्रिक उत्पादन इकाई' (representative technical production unit) या एक 'प्रतिनिधि व्यावसायिक संगठन' (representative business organisation) है? प्रतिनिधि फर्म से कौनसा अर्थ लिया जाय, यह बात मार्शल ने पूर्णतया स्पष्ट नहीं की।

परन्तु रोबिन्स का कहना है कि कुल मिलाकर मार्शल के विवरण से ऐसा लगता है कि प्रतिनिधि फर्म से उनका अर्थ 'प्रतिनिधि व्यावसायिक संगठन या इकाई' से था। इस प्रकार प्रति-

---

6 "We cannot see this by looking at one or two firms taken at random; but we can see it fairly well by selecting, after a broad survey, a firm, whether in private or joint stock mangement (or better still, more than one), that represents, to the best of our judgement, this particular average." —Marshall, *op. cit.*, p. 265.

7 यद्यपि स्थैतिक या स्थिर दशा में सभी प्रकार के परिवर्तन की अनुपस्थिति मानी जाती है, अर्थात् व्यवसाय की सभी इकाइयों के आकार को स्थिर मानना चाहिए; परन्तु मार्शल का कथन है कि ऐसा मान लेना आवश्यक नहीं है; उनके अनुसार स्थैतिक दशा में कुछ फर्मों का सकुचन तथा विस्तार हो सकता है, परन्तु प्रतिनिधि फर्म लगभग एक आकार की ही रहती है।

8 "[illegible] business remained always [illegible] it we need not go so far as [illegible] that the 'representative' firm [illegible] always of about the same size, as does the representative tree of virgin forest..." —Marshall, *op. cit.*, p. 305.

योगिता में नही टिकने देगी, धीरे-धीरे फर्मों की संख्या कम होती जायेगी तथा अल्पाधिकार (Oligopoly) या एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। ऐसी स्थिति मे मूल्य अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार के अन्तर्गत निर्धारित होगा। स्पष्ट है कि स्पर्द्धात्मक दशाएँ तथा बढ़ता हुआ प्रतिफल दीर्घकाल में साथ-साथ उपस्थित नही रह सकते; मार्शल की यह मान्यता गलत थी कि इन दोनो का सहअस्तित्व हो सकता है। स्पष्ट है कि यह आलोचना मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की जड़ों को काटती है।

निष्कर्ष—वास्तव में, मूल्य सिद्धान्त मे प्रतिनिधि फर्म का कोई महत्त्व नही रह जाता है। दीर्घकाल में बढ़ते हुए प्रतिफल तथा स्पर्द्धात्मक दशाओं का सहअस्तित्व नहीं हो सकता। यदि दीर्घकाल मे स्पर्द्धात्मक दशाएँ उपस्थिति रहती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि 'बढ़ते हुए प्रतिफल की प्रवृत्ति' ने अपने आपको पूर्णतया समाप्त कर दिया होगा, और तब प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार की होगी जो कि निम्नतम लागत पर वस्तु का उत्पादन करेगी तथा मूल्य इस लागत के बराबर निर्धारित होगा।

साम्य या सन्तुलन फर्म
(EQUILIBRIUM FIRM)

मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की आलोचना करते हुए पीगू ने उससे मिलता-जुलता अपना एक पृथक विचार प्रस्तुत किया। पीगू के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता तथा बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थिति में दीर्घकाल मे मूल्य प्रतिनिधि फर्म की लागत द्वारा नही बल्कि 'साम्य फर्म' की लागत के द्वारा निर्धारित होता है। पीगू अपने साम्य फर्म के विचार को मार्शल की प्रतिनिधि फर्म के ऊपर सुधार समझते थे, जबकि वास्तव मे ऐसा कहना कठिन है।

साम्य फर्म की परिभाषा तथा अर्थ

एक उद्योग साम्य या सन्तुलन की स्थिति मे तब कहा जायेगा जबकि उसका कुल उत्पादन अपरिवर्तित रहता है, अर्थात् एक दिये हुए समय मे वह एक निश्चित मात्रा का ही नियमित रूप से उत्पादन करता है।

पीगू के अनुसार, एक उद्योग साम्य की अवस्था मे हो सकता है तो यह आवश्यक नहीं है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में भी साम्य की अवस्था मे हों, कुछ फर्मों का विकास हो सकता है तथा कुछ का संकुचन, परन्तु विस्तार (अर्थात् उत्पादन मे कुल वृद्धि) ठीक संकुचन (अर्थात् उत्पादन में कुल कमी) के बराबर हो सकता है, और प्रकार उद्योग का कुल उत्पादन समान रह सकता है। परन्तु उद्योग के साम्य की स्थिति में रहने पर एक फर्म ऐसी हो सकती है जो स्वयं भी साम्य की स्थिति मे हो अर्थात् जिसका न विकास हो रहा हो और न संकुचन; ऐसी फर्म को पीगू ने 'साम्य फर्म' कहा।

पीगू के शब्दों में साम्य फर्म की परिभाषा इस प्रकार है: "साम्य फर्म का अभिप्राय है कि जब समस्त उद्योग इस अर्थ में साम्य की स्थिति में हो कि वह नियमित रूप से y मात्रा का उत्पादन एक सामान्य पूर्ति p के प्रत्युत्तर मे कर रहा हो, तो इस स्थिति मे कोई एक ऐसी फर्म विद्यमान हो सकती है जो स्वयं भी व्यक्तिगत रूप मे एक नियमित मात्रा x के उत्पादन के साथ साम्य मे हो।"[13]

13 [illegible] whenever the industry [illegible] regular output y in [illegible] in equilibrium with [illegible] regular output x_e."

साम्य फर्म के अर्थ को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। माना सीमेण्ट में ६ फर्में—E, F, G, H, I तथा J हैं। निम्न तालिका में इन फर्मों का १६४५ तथा १६ सीमेण्ट उत्पादन दिखाया है :

सीमेण्ट उद्योग

फर्मों का नाम	१६४५ का उत्पादन	१६४६ का उत्पा
E	१००	२६०
F	२००	२५०
G	६००	७००
H	४००	४००
I	२५०	१००
J	५५०	३६०
कुल उत्पादन	२१००	२१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सीमेण्ट उद्योग साम्य की स्थिति में है क्योंकि १ तथा १६४६ दोनों वर्षों में कुल उत्पादन समान अर्थात् २१०० टन के बराबर रहता है। तथा G फर्मों का विकास हो रहा है और I तथा J फर्मों का संकुचन; परन्तु 'H' फर्म ऐ जिसका न विकास हो रहा है और न संकुचन (इसका उत्पादन ४०० टन के बराबर रहता अतः फर्म 'H' 'साम्य फर्म' है। E, F तथा G फर्मों के उत्पादन में वृद्धि I और J फ उत्पादन में कमी के ठीक बराबर है, परिणामस्वरूप उद्योग का कुल उत्पादन समान रहता अर्थात् उद्योग साम्य की स्थिति में रहता है।

पीगू के अनुसार मूल्य इस साम्य फर्म की (i) सीमान्त लागत (marginal cost) **(ii) औसत लागत** (average cost) **के बराबर होगा।** (i) यदि मूल्य साम्य फर्म की सीमा लागत से कम होता है तो इस फर्म को नुकसान होगा और यह उद्योग में से निकल जायेग यदि मूल्य साम्य फर्म की सीमान्त लागत से अधिक है तो इस फर्म का लाभ होगा और फर्म साम्य फर्म नहीं रह जायेगी। (ii) दूसरे; यदि मूल्य साम्य फर्म की 'औसत लागत' से है, तो हानि होगी और फर्म अपना संकुचन करेगी जिससे उद्योग के सन्तुलन में गड़बड़ जायेगी : यदि मूल्य साम्य फर्म की औसत लागत से अधिक है तो लाभ होगा जिससे उद्य में नयी फर्मों का प्रवेश होगा और इसलिए साम्य फर्म अपनी स्थिति से हट जायेगी और दूस फर्म साम्य फर्म हो जायेगी। अतः मूल्य साम्य फर्म की सीमान्त लागत तथा औसत लागत दो के बराबर होगा।

साम्य फर्म की आलोचना (Criticism of the Equilibrium Firm)

साम्य फर्म की लगभग वे ही आलोचनाएँ हैं जो कि प्रतिनिधि फर्म की हैं। यद्यपि पी का कथन है कि साम्य फर्म प्रतिनिधि फर्म के ऊपर सुधार है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है साम्य फर्म की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) **साम्य फर्म का विचार अवास्तविक है तथा यह व्यवहार में नहीं पायी जाती।** उद्यो के साम्य की अवस्था में पीगू यह मानते हैं कि (साम्य फर्म को छोड़ कर) कुछ फर्मों का विका हो सकता है तथा कुछ का संकुचन, परन्तु उत्पादन में वृद्धि तथा संकुचन बराबर रहते हैं ता

उद्योग का कुल उत्पादन समान रहता है, अर्थात् उद्योग साम्य की स्थिति में रहता है। परन्तु यह मान्यता अवास्तविक है क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि उत्पादन में जितना विस्तार हो ठीक उसके बराबर ही सकुचन भी हो।

(२) साम्य फर्म भी, प्रतिनिधि फर्म की भांति, अनावश्यक बतायी जाती है।

(३) स्पर्द्धात्मक दशाएँ तथा बढ़ता हुआ प्रतिफल असंगत (incompatible) हैं। साम्य फर्म का विचार भी, प्रतिनिधि फर्म की भांति, निम्न मान्यताओं पर आधारित है: (i) पूर्ण प्रतियोगिता की उपस्थिति; (ii) अनेक फर्मों की उपस्थिति, तथा (iii) बढ़ते हुए प्रतिफल का होना। परन्तु ये मान्यताएँ गलत हैं: स्पर्द्धात्मक दशाएँ तथा बढ़ते हुए प्रतिफल का दीर्घकाल में सहअस्तित्व नहीं हो सकता है।

अनुकूलतम फर्म
(OPTIMUM FIRM)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने 'अनुकूलतम फर्म' के विचार को प्रस्तुत किया है। केवल 'अनुकूलतम' शब्द का अर्थ है "किसी वस्तु की सर्वोत्तम मात्रा या दशा, वे दशाएँ जो कि सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न करती हैं।"[14] यदि शब्द अनुकूलतम को जनसंख्या के साथ जोड़ दिया जाता है तो इसका अर्थ है वह जनसंख्या जो कि देश के प्राकृतिक साधनों तथा विकास की स्थिति को देखते हुए सर्वोत्तम हो। इसी प्रकार यदि 'अनुकूलतम' शब्द को फर्म के साथ जोड़ दिया जाये, तो 'अनुकूलतम फर्म' का अर्थ ऐसी व्यावसायिक इकाई से लिया जाता है जो कि किसी दिये हुए समय में उद्योग विशेष की दशाओं के अनुसार सर्वोत्तम हो। दूसरे शब्दों में, अनुकूलतम फर्म उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को अनुकूलतम अनुपात में मिलाकर न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन करती है।

अनुकूलतम फर्म की परिभाषा तथा उसके अभिप्राय

प्रो० बाई के शब्दों में अनुकूलतम फर्म "व्यावसायिक उपक्रम का वह संगठन है जो, टेकनोलोजी तथा वस्तु के बाजार की दी हुई परिस्थितियों के अन्तर्गत, दीर्घकाल में न्यूनतम औसत लागत पर अपनी वस्तु को उत्पादित कर सके।"[15]

दूसरे शब्दों में, किसी उपक्रम के उस पैमाने को जिस पर उत्पत्ति के साधनों के अनुकूलतम अनुपात में संयोजन के परिणामस्वरूप औसत लागत न्यूनतम होती है, 'अनुकूलतम पैमाना' (optimum scale) कहते हैं तथा इस पैमाने पर कार्य करने वाली फर्म को 'अनुकूलतम फर्म' कहते हैं। संक्षेप में, निम्नतम 'न्यूनतम लागत संयोग' (lowest least-cost-combination) वाली फर्म को 'अनुकूलतम फर्म कहा जाता है।

'अनुकूलतम फर्म' को चित्र नं० २१ द्वारा दिखाया गया है।

उपक्रम के विभिन्न पैमानों से सम्बन्धित विभिन्न 'न्यूनतम-लागत-संयोग' होंगे। चित्र संख्या २१ में उपक्रम के विभिन्न पैमानों से सम्बन्धित न्यूनतम-लागत-संयोग को औसत लागत रेखाओं (Average cost curves or A C-curves) के न्यूनतम बिन्दुओं को E, L तथा F द्वारा दिखाया गया है। चित्र में स्पष्ट है कि उपक्रम का वह पैमाना जो कि AC_2 रेखा द्वारा व्यक्त किया गया

---

14 The word optimum, standing alone, means "The most favourable degree or condition of anything; the conditions that produce the best result."

15 Optimum firm may be defined as "that organisation of business enterprise which, in given circumstances of technology and the market for its product, can produce its goods at the lowest average unit costs in the long run." —Prof. Bye

है, 'अनुकूलतम पैमाना' है और इस पैमाने पर कार्य करने वाली फर्म 'अनुकूलतम फर्म' इसकी औसत लागत LM सबसे कम है; उत्पादन की 'अनुकूलतम मात्रा' OM है।
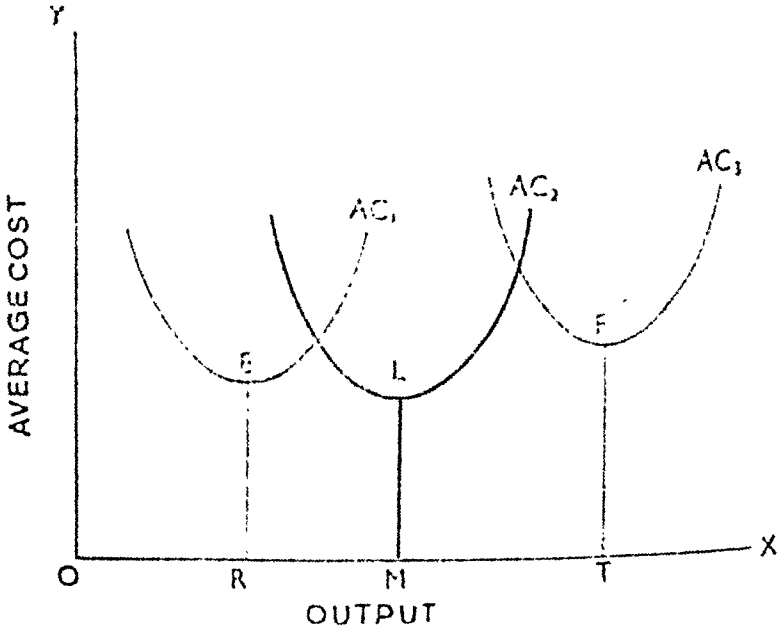
चित्र—२१

अनुकूलतम फर्म के अभिप्रायों (implications) को निम्न विवरण से स्पष्ट किया

(१) स्पर्द्धात्मक दशा में अनुकूलतम फर्म न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन ... दूसरे शब्दों में, अनुकूलतम फर्म वह फर्म है जिसे उत्पत्ति के पैमाने की बचतें पूर्णतया ... चुकी हैं (ताकि औसत लागत न्यूनतम हो जाती है) तथा पैमाने की अवचतों का प्रार... हुआ है। (चित्र न० २१ में AC_2 रेखा पर L बिन्दु इस स्थिति को बताता है।)

(२) अनुकूलतम फर्म एक 'आर्थिक आदर्श' (economic norm) या उपक्रम 'आदर्श पैमाना' (ideal scale) है जिसके सन्दर्भ में अन्य फर्मों को आँका जा स... स्पर्द्धात्मक दशाओं में प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। कई कारणों से (जिनका वर्णन आगे किया गया है) सभी फर्में अनुकूलतम आकार को प्राप्त... कर पाती हैं; उद्योग विशेष में कुछ फर्में अनुकूलतम आकार से छोटी होती हैं तथा कुछ ... यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि सभी फर्में अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने का प्रय... करती हैं? स्पर्द्धात्मक उद्योग में उन फर्मों को जोकि अनुकूलतम आकार से छोटी या ब... शीघ्र या देर से उद्योग से निकल जाने का भय बना रहेगा क्योंकि इन फर्मों के उत्पाद... औसत लागत अपेक्षाकृत अधिक होगी तथा उत्पादन कुशलता कम; इसके विपरीत, वे फर्में ... अनुकूलतम आकार के निकट होंगी, व्यवसाय या उयोग में टिक सकेंगी। अतः दीर्घकाल में उत्पादन-कला की दी हुई स्थिति के अन्तर्गत स्पर्द्धात्मक उद्योग में सभी फर्में अनुकूलतम आका... ओर जाने की प्रवृत्ति रखती हैं, यद्यपि किसी समय विशेष पर यह प्रवृत्ति पूर्ण रूप से सफलता ... नहीं कर पाती। अस्पर्द्धात्मक उद्योगों (non-competitive industries) में, फर्मों को अनुकू... आकार की ओर ले जाने वाली शक्तियाँ, स्पर्द्धात्मक उद्योगों की अपेक्षा, बहुत कम बलवान होती...

(३) अनुकूलतम फर्म तथा पूर्ण प्रतियोगिता असंगत (incompatible) नहीं है, उनका सहअस्तित्व होता है; तथा स्पर्द्धात्मक दशा में अनेक अनुकूलतम फर्म हो सकती हैं। उपक्रम के पैमाने को बढ़ाते जाने से एक स्थिति ऐसी आती है जहाँ पर पैमाने की बचतें पूर्णतया प्राप्त हो जाती हैं और औसत लागत निम्नतम हो जाती है। इसके बाद यदि पैमाने को और बढ़ाया जाता है तो अबचतें प्राप्त होने लगती हैं और फर्म अनुकूलतम आकार की नहीं रह जाती। यदि पैमाने की प्रत्येक वृद्धि के साथ लागत घटती जाती तो फर्म विशेष अन्य फर्मों को प्रतियोगिता में न टिकने देती तथा एकाधिकार की स्थिति प्राप्त कर लेती और इस प्रकार अनुकूलतम फर्म तथा प्रतियोगिता असंगत हो जाते। चूँकि विकास के बाद के चरण (phase) में अबचतें प्राप्त होने लगती हैं, इसलिए अनेक फर्म अनुकूलतम आकार की होती हैं तथा अनुकूलतम फर्म और प्रतियोगिता सगत (compatible) होते हैं।

(४) आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अनुकूलतम फर्म का 'जैविकीय दृष्टिकोण' (biological view) लेना चाहिए, न कि 'यान्त्रिक दृष्टिकोण' (mechanical view)। औद्योगिक वातावरण तथा बाजार की दशाओं से पृथक करके अनुकूलतम फर्म पर 'यान्त्रिक दृष्टिकोण' से विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि फर्में अन्य फर्मों के सगर्ग (association) में तथा अन्य फर्मों के साथ प्रतियोगिता में होती हैं। जिस प्रकार से जीव (organisms) का विकास वशगत गुणों (hereditary endowment) पर वातावरण के कार्यकरण द्वारा प्रभावित होता है, उसी प्रकार फर्मों का विकास प्रबन्धकीय योग्यता, वित्तीय शक्ति, इत्यादि पर अवसरों के कार्यकरण द्वारा प्रभावित होता है। समन्वय तथा प्रगुणन (grafting and proliferation) द्वारा फर्मों का विकास होता है, न कि एक रूप इकाइयों के साथ उसी प्रकार की इकाइयों को यान्त्रिक ढंग से जोड़ देने से।[16]

अतः अनुकूलतम फर्म को पृथक न की जा सकने वाली बाजार की दशाओं की पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में जैविकीय दृष्टिकोण से देखना चाहिए। उसकी लागतें केवल इस बात पर निर्भर नहीं करतीं कि वह किस प्रकार कार्य करती है (अर्थात् इस बात पर निर्भर नहीं करती कि फर्म के अन्दर क्या हो रहा है), बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसे क्या करना है, और यह निर्भर करता है औद्योगिक वातावरण पर। अनुकूलतम फर्म का आकार उद्योग के विशिष्ट सगठन पर, जिसमें कि उसे कार्य करना है, निर्भर करता है। यदि वातावरण परिवर्तित होता है तो अनुकूलतम भी परिवर्तित होता है, तथा स्वयं फर्म का विकास वातावरण को बदलने के लिए पर्याप्त हो सकता है।[17]

16

17 ... optimum firm depends upon particular organisation of industry into which it has to fit. If the environment changes, the optimum changes, and the growth of the firm of itself may be sufficient to alter the environment."

अनुकूलतम फर्म, प्रतिनिधि फर्म तथा साम्य फर्म

अनुकूलतम फर्म मार्शल की प्रतिनिधि फर्म से भिन्न है : (i) मार्शल की प्रति एक दीर्घकालीन औसत फर्म है जबकि अनुकूलतम फर्म न्यूनतम-लागत फ़र्म है जिसे, दशाओं में, दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। (ii) उद्योग के अवस्था में होने पर केवल प्रतिनिधि फर्म ही साम्य अवस्था में होती है तथा अन्य फर्में नहीं होतीं। इसके विपरीत, अनुकूलतम फर्म का विचार बताता है कि उद्योग विशेष में अवस्था में सभी फर्में अनुकूलतम आकार की ही होंगी।

अनुकूलतम फर्म पीगू की साम्य फर्म से भी भिन्न है—(i) साम्य फर्म काल्पनि कि व्यवहार में नहीं पायी जाती; यह केवल एक विश्लेषणात्मक यन्त्र (analytical tc इसके विपरीत, अनुकूलतम फर्म एक वास्तविक फर्म है; यह केवल एक विश्लेषणात्मक यन्त्र यह अनुकूलतम आकार को बताती है जिसको, स्पर्द्धात्मक दशाओं के अन्तर्गत, दीर्घकाल फर्म प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। (ii) उद्योग विशेष में केवल एक ही साम्य है, जबकि अनुकूलतम फर्म अनेक होती हैं तथा प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार की ओर प्रवृत्ति रखती है।

अनुकूलतम आकार कितना बड़ा होता है ? (अथवा अनुकूलतम आकार को प्रभावित करने

अनुकूलतम फर्म का आकार कितना बड़ा होगा यह उद्योग विशेष की दशाओं प करेगा। उद्योग की दी हुई दशाओं तथा दिये हुए वातावरण में कोई एक अनुकूलतम होगा; परन्तु दशाओं और वातावरण में परिवर्तन के साथ अनुकूलतम आकार भी परिव जायेगा। इसके अतिरिक्त विभिन्न उद्योगों की परिस्थितियों के अनुसार उनमें अनुकुलतम आकार भिन्न होगा। अनुकूलतम आकार निम्न बातों पर निर्भर करता है :

(१) **टेकनोलोजी** (Technology)—उन सब उद्योगों में अनुकूलतम फर्म का बड़ा होगा जिनमें विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन की अधिक सम्भावना होती है, तथा मँहगी मशीनों का प्रयोग (जैसे, लोहा तथा इस्पात उद्योग में) होता है, अवशिष्ट प product) का प्रयोग किया जाता है, इत्यादि। इसके विपरीत दशाओं में अनुकूलतम आकार छोटा होगा।

(२) **प्रबन्ध** (Management)—जिन उद्योगों में प्रबन्धकीय कुशलता का तथा प्रबन्धकीय विशिष्टीकरण बड़ी सीमा तक प्राप्त किया जा सकेगा उनमें अनुकूलतम आकार बड़ा होगा। इसके विपरीत, जिन उद्योगों में प्रबन्धकीय विशिष्टीकरण प्राप्त नहीं जा सकता उनमें अनुकूलतम आकार छोटा होगा। प्रबन्धकीय कुशलता तथा विशिष्टीकरण कूलतम फर्म के आकार को निर्धारित करते हैं।

(३) **विपणन के अवसर** (Marketing opportunities)—जिन उद्योगों की व का बाजार विस्तृत होता है उनमें अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होगा; इसके विपरीत, बाजार संकुचित है तो अनुकूलतम फर्म का आकार छोटा होगा। विपणन के अवसर फर्म के अ को सीमित करते हैं।

(४) **वित्तीय सुविधाएँ** (Financial facilities)—जिन उद्योगों को अच्छी वि सुविधाएँ प्राप्त हैं उनमें अनुकूलतम फर्म का आकार अपेक्षाकृत बड़ा होगा अन्यथा छोटा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है :

(i) अनुकूलतम आकार कोई एक आकार नहीं होता बल्कि वह प्रत्येक उद्योग में भिन्न होता है। कुछ उद्योगों (जैसे, मोटर कारों तथा ट्रकों का उद्योग, लोहा तथा इस्पात उद्योग, सिगरेट उद्योग, इत्यादि) में अनुकूलतम फर्म का आकार बड़ा होता है; जबकि कुछ अन्य उद्योगों में अनुकूलतम फर्म का आकार बीच का या छोटा है। हम यह नहीं कह सकते कि कोई एक विशेष आकार अनुकूलतम आकार होता है; विभिन्न प्रकार के उत्पादनों में अनुकूलतम आकार भिन्न होता है।[18]

(ii) अनुकूलतम फर्म का आकार उद्योग विशेष के संगठन तथा वातावरण पर, जिसमें उसे कार्य करना है, निर्भर करता है। यदि औद्योगिक वातावरण परिवर्तित होता है तो अनुकूलतम भी परिवर्तित होता है, तथा स्वयं फर्म का विकास वातावरण को बदलने के लिए पर्याप्त हो सकता है।[19]

एक उद्योग के अन्तर्गत सभी फर्में अनुकूलतम आकार की क्यों नहीं होतीं ?

यद्यपि स्पर्द्धात्मक उद्योग में प्रत्येक फर्म अनुकूलतम आकार को प्राप्त करने की प्रवृत्ति रखती है, परन्तु व्यवहार में सभी फर्में अनुकूलतम आकार को प्राप्त नहीं कर पातीं, फर्मों के आकारों में बहुत भिन्नता पायी जाती है। प्रश्न यह उठता है कि सभी फर्में अनुकूलतम पैमाने पर कार्य क्यों नहीं करतीं ? इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(१) **यह आवश्यक नहीं है कि अनुकूलतम पैमाना सबसे लाभदायक हो (The optimum scale may not necessarily be the most profitable one)**—अनुकूलतम फर्म उद्योग विशेष में न्यूनतम-लागत के पैमाने को बताती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी दशाओं में वह अधिकतम लाभ का पैमाना भी हो। कई दशाओं में बाजार इतना बड़ा नहीं होता कि सभी फर्में अनुकूलतम पैमाने पर कार्य कर सकें। ऐसी स्थिति में फर्में बड़े प्लाण्ट का प्रयोग करके औसत लागत को न्यूनतम रखकर अनुकूलतम आकार को प्राप्त नहीं कर पायेंगी बल्कि वे छोटे प्लाण्ट का प्रयोग करेंगी (जिसकी औसत लागत अनुकूलतम आधार की अपेक्षा अधिक होगी) क्योंकि वस्तु का बाजार विस्तृत नहीं है और तभी अधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगी।

(२) **उद्योग विशेष में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने की दृष्टि से कुछ फर्में अनुकूलतम आकार से बड़ी हो सकती हैं (Some firms may be larger than optimum size in order to attain dominance in the industry)**—कुछ फर्में उद्योग में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने की दृष्टि से कहीं अधिक बड़ा आकार प्राप्त करती हैं। ऐसी फर्में अपने हित में क्रय तथा विक्रय की कीमतों को प्रभावित करके अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति का लाभ उठाती है। (उदाहरणार्थ, सिगरेट बनाने वाली बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण सिगरेट की कीमतों को प्रायः लगभग स्थिर रख पाती हैं और तम्बाकू उत्पन्न करने वाले कृषकों को नीची कीमतें देती हैं।)

---

18 We cannot say that some particular size is optimal, different sizes are optimal in different types of production.

19

(३) औद्योगिक साम्राज्य का स्वप्न (Dream of an industrial empire) लाभ प्राप्त करने के अतिरिक्त कुछ फर्में औद्योगिक साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न . अतः बड़े होने तथा अधिक आदर प्राप्त करने की भावना से कुछ फर्में अनुकूलतम आका. आकार को प्राप्त करती हैं।

परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि सरकार एकाधिकारी ... रोकने के लिए कार्यवाही करती है और सरकार के इस डर से कुछ फर्में जितना बड़ा चाहती हैं उतना बड़ा आकार प्राप्त नहीं कर पातीं।

(४) नयी परिस्थितियां तथा तेज परिवर्तनशील आर्थिक प्रक्रिया (New con and fast changing economic process)—नयी टैकनोलोजी, भविष्य में मजदूरी- मालों (materials) की कीमतों, प्राप्य बाजार के आकार, प्रबन्धकीय विशेषताओं, इ सम्बन्ध में बहुत-सी फर्में उचित व सही निर्णय नहीं ले पाती हैं तथा वे नयी परिस्थितियों धीमी गति से समन्वय कर पाती हैं। ऐसी फर्में अनुकूलतम आकार से छोटी रह जाती हैं यह मान लिया जाये कि फर्में उचित व सही निर्णय ले सकती हैं, तो भी बहुत-सी फर्में अनु आकार से छोटी रह जायेंगी क्योंकि नयी स्थितियों और नये बाजारों का उत्पन्न होना व टैकनीकल परिवर्तन तेजी से और निरन्तर होते रहते हैं; व्यवहार में इन तेज परिव परिस्थितियों के साथ फर्में शीघ्रता से समायोजन नहीं कर पातीं और वे अनुकूलतम अ छोटे आकार की रह जाती हैं।

लागत तथा आगम के विचार

[THE CONCEPTS OF COST AND REVENUE]

एक दी हुई कीमत पर कोई उत्पादक वस्तु विशेष का कितना उत्पादन करेगा यह व उत्पादन लागत पर निर्भर करेगी। उत्पादन लागत प्रायः तीन अर्थों में प्रयुक्त की जाती है (i) द्राव्यिक लागत, (ii) वास्तविक लागत; तथा (iii) अवसर लागत। नीचे इसमें से प्रत्येक अर्थ तथा अभिप्रायों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

द्राव्यिक लागत
(MONEY COST)

साधारणतया किसी वस्तु के उत्पादन में विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के प्रयोग के लिए उत्पादक जो द्रव्य व्यय करता है उसे उत्पादन की 'द्राव्यिक लागत' कहते हैं। परन्तु अर्थशास्त्री की दृष्टि से यह परिभाषा पूर्ण नहीं है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'द्राव्यिक लागतों' में निम्न तीन प्रकार की मदें (items) शामिल होती हैं :

(१) स्पष्ट लागतें (Explicit costs)[1]—यह वे लागतें हैं जो कि एक उत्पादक स्पष्ट रूप से विभिन्न साधनों (inputs) को खरीदने में व्यय करता है। 'स्पष्ट लागतों' के अन्तर्गत निम्न प्रकार के व्यय शामिल होते हैं : (i) उत्पादन लागतें (production costs)—कच्चे माल की लागत, श्रमिकों की मजदूरियाँ, उधार ली गयी पूँजी का ब्याज, भूमि तथा बिल्डिंगों का किराया, मशीनों (अर्थात् स्थिर पूँजी) का घिसाई व्यय (depreciation charges), इत्यादि। (ii) विक्रय लागतें (selling costs)—विज्ञापन तथा प्रचार पर किया गया व्यय। (iii) अन्य लागतें (other costs)—सरकार तथा स्थानीय अधिकारियों को दिये गये कर, बीमा-व्यय, इत्यादि।

(२) अस्पष्ट लागतें या सन्निहित लागतें (Implicit costs)[2]—इसमें उन साधनों तथा सेवाओं का मूल्य शामिल होता है जिनका उत्पादक या साहसी प्रयोग करता है, पर प्रत्यक्ष रूप में उनकी कीमतें नहीं चुकाता अर्थात्, साहसी के स्वयं के साधनों (self-owned resources) के बाजार दर पर पुरस्कारों को 'अस्पष्ट लागतें' कहते हैं।[3] यदि साहसी स्वयं के साधनों को अपने व्यवसाय में नहीं लगाता है तो वह उन्हें किसी दूसरे व्यवसाय में लगाकर उनके मालिक के रूप में बाजार दर पर पुरस्कार प्राप्त कर सकता है। अतः अर्थशास्त्रियों के अनुसार व्यवसाय में साहसी के स्वयं के साधनों के (बाजार दर पर) पुरस्कारों को लागत का अंग मानना चाहिए। व्यावहारिक जीवन में प्रायः एकाउण्टेन्ट या उद्योगपति 'अस्पष्ट लागतों' को 'द्राव्यिक लागत' में शामिल नहीं करते।

(३) सामान्य लाभ (Normal profit)—अर्थशास्त्री द्राव्यिक लागत में 'सामान्य लाभ' भी शामिल करते हैं। किसी उद्योग में साहसी के लिए "सामान्य लाभ' लाभ का वह स्तर (level) है जो कि साहसी को उद्योग में बनाए रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र है।"[4] यदि साहसी को उद्योग विशेष में दीर्घकाल में लाभ का न्यूनतम स्तर अर्थात् सामान्य लाभ प्राप्त नहीं होता तो साहसी उद्योग विशेष में कार्य नहीं करेगा और किसी दूसरे उद्योग में हस्तांतरित हो जायेगा। इस प्रकार सामान्य लाभ साहसी को उद्योग विशेष में बनाये रखने की लागत है और अर्थशास्त्री उसे द्राव्यिक लागत का अंश मानते हैं।

---

[1] स्पष्ट लागतों को 'भुगतान की गयी लागतें' (Paid-out costs) या 'व्यय लागतें' (Expenditure costs) या 'परिव्यय लागतें' (Outlay costs) भी कहते हैं।

[2] Implicit Cost को Non-expenditure Costs भी कहते हैं।

[3] यदि एक साहसी स्वयं प्रबन्धक के रूप में कार्य करता है, कुछ अपनी पूँजी भी लगाता है, तथा कुछ अपनी भूमि भी देता है, तो बाजार दर पर इन सब साधनों के मालिक के रूप में उसे पुरस्कार (अर्थात् वेतन, ब्याज तथा लगान) मिलने चाहिए और ये उत्पादन-लागत के अंग होने चाहिए।

[4] "Normal profit, for an entrepreneur in any industry, is that level of profit which is just sufficient to induce him to stay in the industry."

स्पष्ट है कि व्यावहारिक जीवन में एकाउण्टेन्ट की द्राव्यिक लागत तथा अर्थ द्राव्यिक लागत भिन्न हैं। एकाउण्टेन्ट द्राव्यिक लागत में केवल 'स्पष्ट लागतें' ही शा है; जबकि अर्थशास्त्र में द्राव्यिक लागत में 'स्पष्ट लागतों' के अतिरिक्त 'अस्पष्ट ल 'सामान्य लाभ' भी शामिल किये जाते हैं।

वास्तविक लागत
(REAL COST)

वास्तविक लागत का अर्थ

क्लासीकल अर्थशास्त्रियों ने वास्तविक लागत का विचार प्रस्तुत किया। उनके किसी वस्तु की कीमत अन्त में उसकी वास्तविक लागत पर निर्भर करती है।

क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'वास्तविक लागत' का अर्थ उन सब कष्ट (exertions) तथा त्याग से है जो कि किसी वस्तु के उत्पादन में उठाने पड़ते हैं। श्र परिश्रम के रूप में कष्ट तथा त्याग उठाना पड़ता है; पूंजीपतियों को उपभोग-त्याग (abs या 'प्रतीक्षा' (waiting) के रूप में कष्ट तथा त्याग उठना पड़ता है क्योंकि पूंजी का संच तथा 'उपभोग' स्थगित करने अर्थात् 'प्रतीक्षा' का परिणाम होता है। ये सब कष्ट तथा त कर वास्तविक लागत को बताते हैं। वास्तविक लागत को 'सामाजिक लागत' (Social c कहते हैं क्योंकि वस्तुओं के उत्पादन में समाज को कष्ट तथा त्याग का सामना करना पड़

मार्शल द्वारा वास्तविक लागत की परिभाषा—"किसी वस्तु के निर्माण में विभि के श्रमिकों को जो प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रयत्न करने पड़ते हैं, तथा साथ ही वस्तु के उत्पादन की जाने वाली पूंजी को बचाने में जो संयम या प्रतीक्षा आवश्यक होती है, यह सब प्र त्याग मिलकर वस्तु की वास्तविक लागत कहे जाते हैं।"[5]

वास्तविक लागत के इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु की कीमत उस वस्तु के में जो कुल कष्ट तथा त्याग होता है उसके बराबर होगी। इस सिद्धान्त का अभिप्राय सं में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है : वस्तु 'अ' के उत्पादन में वस्तु 'ब' के उत्पादन को तिगुना कष्ट तथा त्याग होता है तो वस्तु 'अ' की कीमत वस्तु 'ब' की कीमत की तिगुनी

वास्तविक लागत के विचार की कमजोरियां या आलोचना (Weaknesses or Critic the Concept of Real Cost)

(२) वास्तविक लागत के विचार का अभिप्राय है कि किसी वस्तु या सेवा का मूल्य प्रत्यक्ष रूप से कष्ट तथा त्याग द्वारा निर्धारित होता है; परन्तु यह ठीक नहीं है। व्यावहारिक जीवन में हम देखते हैं कि एक कुली या मजदूर का 'कष्ट तथा त्याग' बहुत अधिक होता है अपेक्षाकृत एक मैनेजर या फिल्म स्टार के; परन्तु फिर भी कुली या मजदूर को अपेक्षाकृत बहुत कम द्रव्यिक पुरस्कार मिलता है।

उपर्युक्त कमजोरियों या कठिनाइयों के कारण आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने वास्तविक लागत के इस विचार को त्याग दिया। हेन्डरसन के अनुसार "वास्तविक लागत का सिद्धान्त हमें सन्देहात्मक विचार तथा अवास्तविकता के दलदल में डाल देता है।"[6]

अवसर लागत
(OPPORTUNITY COST)

१. प्राक्कथन (Introductory)

कष्ट तथा त्याग पर आधारित बनामीकल अर्थशास्त्रियों के सन्देहात्मक (dubious) तथा दोषपूर्ण 'वास्तविक लागत' के विचार को आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने छोड़ दिया। आधुनिक अर्थशास्त्र में वास्तविक लागत को 'अवसर लागत' (opportunity cost) या 'त्याग किया गया विकल्प' (alternative forgone) या 'वैकल्पिक लागत' (alternative cost) या 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) के शब्दों में व्यक्त किया जाता है।

२. अवसर लागत का अर्थ (Meaning of opportunity cost)

(अ) अवसर लागत वास्तविक लागत के रूप में (Opportunity cost as real cost)—लगभग प्रत्येक साधन के कई सम्भावित प्रयोग होते हैं। चूंकि प्रत्येक साधन सीमित होता है, इसलिए उसको सभी प्रयोगों में पूर्णरूप से प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। समाज की दृष्टि से उसको किसी एक उद्देश्य के लिए प्रयोग करने का अर्थ है कि उसको अन्य उद्देश्यों में प्रयोग करने के अवसर को त्याग करना पड़ेगा। किसी वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत वह वस्तु है जिसका त्याग किया जाता है।[7] इस दृष्टि से, किसी वस्तु की वास्तविक उत्पादन लागत का अर्थ उस वस्तु के उत्पादन में लगे प्रयत्नों, कष्टों तथा त्यागों से नहीं होता बल्कि दूसरे सर्वश्रेष्ठ विकल्प के त्याग (next best alternative forgone) से होता है। दूसरे शब्दों में, वस्तु Y की एक इकाई की वास्तविक उत्पादन लागत अर्थात् 'अवसर लागत' वस्तु Z की त्यागी गयी मात्रा के बराबर है।[8] इसे 'अवसर लागत' या 'त्याग किया गया विकल्प' या 'वैकल्पिक लागत' इसलिए कहते हैं क्योंकि समाज की दृष्टि से एक वस्तु के उत्पादन का अर्थ है दूसरी वस्तु के उत्पादन के अवसरों या दूसरे विकल्पों (alternatives) का त्याग।

'वास्तविक लागत के रूप में अवसर लागत के विचार' को एक चित्र द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है। सुविधा के लिए हम निम्न मान्यताओं को लेकर चलते हैं—(i) अर्थ-व्यवस्था में एक दी हुयी समयावधि में साधनों की कुल मात्रा स्थिर रहती है; (ii) अर्थव्यवस्था में केवल दो

---

6 The doctrine of real cost would "lead us into a quagmire of unreality and dubious hypothesis." —Handerson, *Supply and Demand*, p. 964.

7 The real cost of production of a commodity is the commodity that is sacrificed.

8 The real cost of production, that is, opportunity cost, of one unit of Y is equal to the amount of Z that must be foregone.

चित्र—२२

वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन हो है; तथा (iii) पूर्ण प्रतियोगिता और रोजगार की स्थिति है। एक समय में अर्थव्यवस्था में दो वस्तुओं X तथा के उत्पादन के विभिन्न सम्भावित संय (combinations) को चित्र नं० २२ में रेखा द्वारा दिखाया गया है। AB रे पर C बिन्दु बताता है कि अर्थव्यवस में एक समयावधि में X वस्तु की O मात्रा तथा Y वस्तु की OG मात्रा उत्पादन होता है। इसी प्रकार से I बिन्दु बताता है कि अर्थव्यवस्था में वस्तु की OK मात्रा तथा Y वस्तु क OH मात्रा का उत्पादन होता है। य अर्थव्यवस्था 'C' बिन्दु से 'D' बिन्दु पर आती है तो इसका अभिप्राय है कि X वस्तु की अतिरिक्त मात्रा ED (या FK) का उत्पादन करने के लिए अर्थव्यवस्था (या समाज) को Y वस्तु की CE (या GH) मात्रा के उत्पादन का त्याग, अथवा Y वस्तु की C E मात्रा को उत्पादित करने के 'अवसर' (opportunity) का त्याग, करना पड़ेगा। अतः, X वस्तु की ED मात्रा की अवसर लागत दूसरी वस्तु Y की CE मात्रा है जिसके उत्पादन के अवसर का समाज को त्याग करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में बिन्दु 'C' और बिन्दु 'D' समाज को प्राप्य आर्थिक उत्पादन के विकल्पों (alternatives) को बताते हैं, तथा बिन्दु 'C' से 'D' तक जाने पर दूरी CE अवसर लागत को बताती है।[9]

AB रेखा को अर्थशास्त्री 'परिवर्तन रेखा' (**Transformation Line**) कहते हैं क्योंकि इस रेखा पर एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर जाने पर वास्तव में एक वस्तु का दूसरे वस्तु में परिवर्तन (transformation) होता है। चित्र में जब हम 'C' बिन्दु से 'D' पर जाते हैं तो हम एक की दी हुई समयावधि में Y वस्तु की CE मात्रा को X वस्तु की ED मात्रा में परिवर्तित (transform) करते हैं।

(ब) द्रव्य के शब्दों में अवसर लागत (Opportunity cost in terms of money)—किसी वस्तु Y की उत्पादन लागत द्रव्य की वह मात्रा है जो कि उत्पत्ति के साधनों को दूसरे वैकल्पिक प्रयोगों से हटा कर Y के उत्पादन में लगाने के लिए आवश्यक है।[10] दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु के उत्पादन की द्राव्यिक लागत 'त्याग की गयी वैकल्पिक वस्तुओं' (displaced alternative products) का मूल्य है। द्रव्य के शब्दों में व्यक्त की गयी अवसर लागत निर्भर करती है—(i) वैकल्पिक वस्तुओं (alternative commodities) के बाजार मूल्य पर; तथा (ii) विभिन्न प्रयोगों में साधनों की भौतिक उत्पादकता (physical productivity) पर।

अवसर लागत को 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) या 'हस्तान्तरण मूल्य' (transfer price) भी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति के साधनों को उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिए कम से कम इतना द्रव्य अवश्य मिलना चाहिए जितना कि उन्हें दूसरे वैकल्पिक प्रयोगों में मिल सकता है, अन्यथा ये साधन दूसरे प्रयोगों में हस्तान्तरित हो जायेंगे।

अवसर लागत के विचार के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है कि इसके अन्तर्गत द्रव्य की उन अनुमानित मात्राओं को भी शामिल किया जाता है जो कि मालिक या साहसी अपने साधनों (अर्थात् अपनी पूँजी, अपना श्रम, अपनी भूमि तथा अपनी प्रबन्ध की योग्यता) को अपने व्यवसाय में न लगा कर अन्य वैकल्पिक प्रयोगों में लगा कर प्राप्त कर सकता था। दूसरे शब्दों में, अवसर लागत के अन्तर्गत 'अस्पष्ट लागतें' भी शामिल होती हैं जिन्हें व्यावहारिक जीवन में एकाउन्टेन्ट या व्यापारी तथा उद्योगपति द्राव्यिक लागत निकालते समय शामिल नहीं करते। अतः द्रव्य में व्यक्त अवसर लागत के अन्तर्गत 'स्पष्ट लागतें' तथा 'अस्पष्ट लागतें' दोनों होती हैं।

प्रो० बेनहम ने अवसर लागत या हस्तान्तरण आय की परिभाषा इन शब्दों में की है : "द्रव्य की वह मात्रा जो कि कोई एक इकाई सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में प्राप्त कर सकती है, उसे कभी-कभी हस्तान्तरण आय कहते हैं।"[11] इसी विचार को श्रीमती जोन रोबिन्सन इन शब्दों में व्यक्त करती हैं : "एक उद्योग की दृष्टि से साधन की किसी एक इकाई की लागत उस पुरस्कार से निर्धारित होती है जो कि वह इकाई किसी अन्य उद्योग में प्राप्त कर सकती है।"[12] इन परिभाषाओं का अभिप्राय यह है कि यदि हम किसी उत्पत्ति के साधन को उद्योग विशेष में बनाये रखना चाहते हैं तो उसे कम से कम द्रव्य की इतनी मात्रा अवश्य मिलनी चाहिए जो कि वह दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में प्राप्त कर सकता है। यदि ऐसा नहीं है तो वह पहले उद्योग में काम नहीं करेगा, बल्कि दूसरे उद्योग में हस्तान्तरित हो जायेगा। इस दृष्टि से श्रीमती जोन रोबिन्सन 'अवसर लागत' व 'हस्तान्तरण आय' को इन शब्दों में व्यक्त करती हैं। "वह मूल्य जो कि साधन की एक दी हुई इकाई को किसी उद्योग में बनाये रखने के लिए आवश्यक है, हस्तान्तरण आय या हस्तान्तरण मूल्य कहा जाता है।"[13]

३. अवसर लागत का महत्त्व (Significance)

अवसर लागत का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एक है। इसका महत्त्व निम्न से स्पष्ट होता है :

(१) उत्पत्ति के साधनों के वितरण में सहायक (Helpful in the allocation of scarce resources)—सीमित साधनों को प्रतियोगी प्रयोगों में माँगा जाता है। अवसर लागत का सिद्धान्त बताता है कि एक प्रयोग में उत्पत्ति के साधनों को कम से कम इतना अवश्य मिलना चाहिए, जितना कि उन्हें वैकल्पिक प्रयोगों में मिल सकता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के आधार पर साधनों का विभिन्न प्रयोगों में वितरण (allocation) होता है। 'मूल्य प्रक्रिया' (pricing

---

11 "The amount of money which any particular unit could earn in its best paid alternative use is sometimes called its transfer earnings." —Benham, *Economics*, p. 328

12 "The cost of any unit of a factor, from the point of view of one industry, is therefore determined by the reward which that unit can earn in some other industry." —Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*, p. 104.

13 "The price which is necessary to retain a given unit of a factor in a certain industry may be called its transfer earnings or transfer price." —*Ibid.*, p. 104.

process) या 'मूल्य-यन्त्र' (price-mechanism) का एक मुख्य कार्य सीमित साधनों का योगी प्रयोगों में वितरण करना है। इस कार्य में अवसर लागत का सिद्धान्त सहायता करता इस प्रकार, प्रो० बाई के शब्दों में, "अवसर लागत का सिद्धान्त मूल्य प्रणाली का केन्द्र बिन्दु र्थशास्त्र के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों में से है।"[14]

(२) **यह लागत में परिवर्तन पर प्रकाश डालता है** (It throws light on the on in the cost of production)—**प्रो० बेनहम** के अनुसार, "हस्तान्तरण आय का दृष्टि से लाभदायक है कि यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि एक उद्योग की लागत मा तक अपने उत्पादन के साथ परिवर्तित हो सकती है। उदाहरणार्थ, उन विशेष श्रमिकों र साधनों की इकाइयों को, जो कि वर्तमान व्यवसाय में पर्याप्त ऊँची आय प्राप्त कर रह र्षित करके यदि अल्पकाल में एक उद्योग को पर्याप्त रूप से बढ़ाया जा सकता है, तो ोग में कार्य करने के लिए साधनों को और अधिक देना होगा। इसका अर्थ है कि अल्प उद्योग में उत्पादन को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाने से औसत तथा सीमान्त लागतें बहुत ऊँची कि इन साधनों की इकाइयों को तथा इसी प्रकार की पहले से कार्य कर रही इकाइयों को ा देने पड़ेंगे।"

(३) **लगान के निकालने में सहायक** (Helpful in the calculation of rent) ान का आधुनिक सिद्धान्त बताता है कि लगान अवसर लागत के ऊपर अतिरेक (surpl यदि किसी साधन (माना श्रम) का पुरस्कार ५० रु० है और उसकी अवसर लागत ४० रु० उसके ५० रु० के पुरस्कार में लगान=(५०−४०)=१० रु०। अतः लगान को ज्ञात करने साधन की अवसर लागत की सहायता ली जाती है।

अवसर लागत की सीमाएँ या आलोचनाएँ (Limitations or criticism of opportuni cost)

अवसर लागत की मुख्य सीमाएँ निम्न हैं :

(१) **अवसर लागत का विचार 'विशिष्ट साधनों'** (Specific factors) **के सम्बन्ध नहीं होता।** विशिष्ट साधन वह साधन है जो केवल एक प्रयोग में ही काम में लाया ज ा हो। अतः विशिष्ट साधनों की अवसर लागत शून्य होती है क्योंकि उसको दूसरे प्रयोगों में नहीं लाया जा सकता है। ऐसे विशिष्ट साधनों के प्रयोग के लिए जो पुरस्कार मिलता ागान होता है। (विशिष्ट साधनों को दिये गये पुरस्कार के लिए **प्रो० स्टिगलर** 'विना (non-cost outlay) शब्द का प्रयोग करते हैं)। व्यावहारिक जीवन में अधिकांश साध क रूप में विशिष्ट होते हैं और आंशिक रूप में अविशिष्ट (non-specific) होते हैं। अतः ांश साधनों के पुरस्कार में लगान तथा अवसर लागत दोनों होते हैं।

(२) **अवसर लागत का सिद्धान्त यह मान लेता है कि उत्पत्ति के साधन किसी कार्य के लिए विशेष रुचि या अधिमान** (preference) **नहीं रखते या उनमें गतिशीलता के लिए कोई सुस्ती** tia) **नहीं होती, जबकि व्यवहार में ये मान्यताएँ गलत हैं।** यदि एक श्रमिक किसी कार्य को रूप से पसन्द करता है, तो उसको किसी दूसरे कार्य में 'हस्तान्तरण करने की लागत' ा वास्तविक 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण मूल्य' से अधिक होगी।

It (i. e., opportunity cost) lies, indeed, at the very heart of the price system and is one the most important principles in economics." —*Prof. Bye*

(३) अवसर लागत का सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है, जबकि व्यावहारिक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है।

५. निष्कर्ष :

इन सब सीमाओं के होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि अवसर लागत का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एक है।

स्थिर (या पूरक) तथा परिवर्तनशील (या प्रमुख) लागतें
(FIXED OR SUPPLEMENTARY AND VARIABLE OR PRIME COSTS)

१. प्राक्कथन (Introductory)

कुल लागत को दो भागों में बाँटा जा सकता है : (i) स्थिर या पूरक लागत, तथा (ii) परिवर्तनशील या प्रमुख लागत; अर्थात्, कुल लागत=स्थिर लागत+परिवर्तनशील लागत।

२. स्थिर या पूरक लागत का अर्थ (Meaning of fixed cost)

किसी व्यवसाय के कार्यकरण की स्थिर लागत वह लागत है जो कि स्थिर साधनों (fixed factors) को प्रयोग में लाने के लिए की जाती है। स्थिर साधन वे हैं जिनकी मात्रा बहुत शीघ्रता से परिवर्तित नहीं की जा सकती (जैसे फर्म की स्थिर पूंजी अर्थात् मशीन, यन्त्र, भूमि, बिल्डिंग, इत्यादि)। स्थिर लागत को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है स्थिर लागतें वे लागतें हैं जो कि अल्पकाल में उत्पादन में परिवर्तन होने पर परिवर्तित नहीं होतीं, बल्कि स्थिर रहती हैं। यदि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि या कमी होती है तो ये लागतें स्थिर रहेंगी। यदि अस्थायी रूप से उत्पादन बन्द हो जाता है अर्थात् उत्पादन की मात्रा शून्य हो जाती है तो भी फर्म को इन लागतों को उठाना पड़ेगा। स्थिर लागतों के अन्तर्गत प्रायः इन मदों को शामिल किया जाता है : बिल्डिंग का किराया, स्थायी उच्च अफसरों के वेतन, दीर्घकालीन ऋणों पर ब्याज, घिसाई व्यय, इत्यादि।

स्थिर लागतों को 'सामान्य लागतें' (general costs), 'पूरक लागतें' (supplementary costs) या 'अप्रत्यक्ष लागतें' (indirect costs) भी कहते हैं क्योंकि फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा इन लागतों पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर नहीं करती। व्यापार की भाषा में इनको 'ऊपर की लागतें' या 'उपरिव्यय' (overhead costs) कहा जाता है।

३. परिवर्तनशील या प्रमुख लागत का अर्थ (Meaning of variable cost)

किसी व्यवसाय के कार्यकरण की परिवर्तनशील लागतें वे लागतें हैं जो कि परिवर्तनशील साधनों (variable factors) को प्रयोग में लाने के लिए की जाती हैं। परिवर्तनशील साधन वे हैं जिनकी मात्रा शीघ्रता से परिवर्तित की जा सकती है। परिवर्तनशील लागतों को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है : परिवर्तनशील लागतें वे लागतें हैं जो कि उत्पादन में परिवर्तन होने के साथ परिवर्तित होती हैं। कच्चे माल की लागत, सामान्य श्रमिकों की मजदूरियाँ, इत्यादि परिवर्तनशील लागत के अन्तर्गत आती हैं। उत्पादन के बढ़ने या घटने से ये लागतें भी बढ़ेंगी या घटेंगी। यदि उत्पादन अस्थायी रूप से बन्द हो जाता है, अर्थात् उत्पादन की मात्रा शून्य हो जाती है तो परिवर्तनशील लागतें भी समाप्त हो जाती हैं। परिवर्तनशील लागतें तभी होती हैं जबकि एक समय में कुछ निश्चित उत्पादन होता है, परिवर्तनशील लागतों की मात्रा उत्पादन के स्तर पर निर्भर करती है।

परिवर्तनशील लागतों को 'प्रमुख लागत' (prime cost) या 'प्रत्यक्ष लागत' (direct cost) भी कहा जाता है क्योंकि फर्म की उत्पादित वस्तु की मात्रा प्रत्यक्ष रूप से इन लागतों पर निर्भर करती है।

४. स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों का चित्र द्वारा निरूपण (Diagramatic Representation)
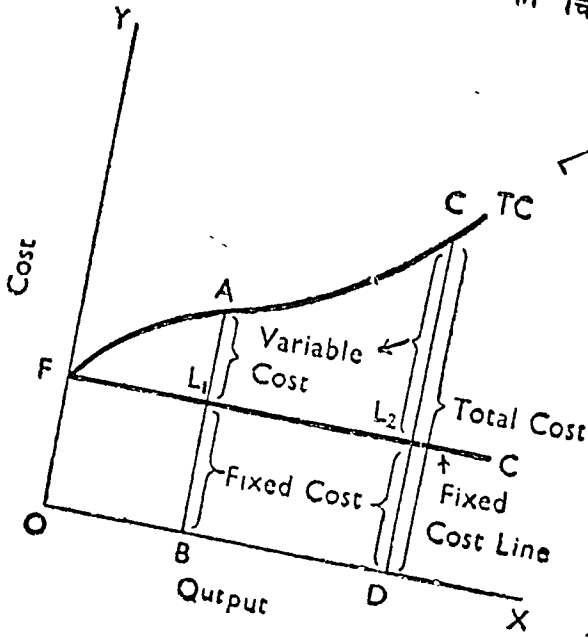
चित्र नं० २३ में स्थिर तथ वर्तनशील लागतों को दिखाया गय स्थिर लागत को पड़ी रेखा FC दिखाया गया है क्योंकि उत्पादन में वर्तन होने पर स्थिर लागत में परिवर्तन नहीं होता। TC कुल रेखा है। स्थिर लागत रेखा FC कुल लागत रेखा TC के बीच की परिवर्तनशील लागत को बताती है। उत्पादन का स्तर OB है, तो लागत $=BL_1$ तथा परिवर्तनशील ल $=L_1A$; कुल लागत $=BL_1+L_1A$ AB

के बराबर होगी, अर्थात् TC रेखा बिन्दु F से निकलती है। परिवर्तनशील लागत रेखा तथा कुल लागत रेखा के बीच स्थिर लागत के बराबर अन्तर बना रहेगा; अतः दोनों रेखाएँ समानान्तर होंगी।

५. स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के बीच अन्तर के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बातें (Some Important Points)

स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के अर्थ तथा अन्तर को भली-भाँति समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है :

(i) दोनों लागतें साथ-साथ रहती हैं; उत्पादन दोनों का सम्मिलित परिणाम है। (ii) स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के बीच अन्तर केवल अल्पकाल में ही लागू होता है। दीर्घकाल में फैक्टरी की बिल्डिंग, मशीनों, यन्त्रों, स्थायी कर्मचारियों इत्यादि सब में परिवर्तन हो जायेगा, इनमें से कुछ भी स्थिर नहीं रहेगा। दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं। (iii) *इन दोनों प्रकार की लागतों में कोई निश्चित तथा स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती।* कुछ लागतें परिवर्तनशील तथा स्थिर दोनों होती हैं; मैनेजरों के वेतन तथा कुल आफिस के खर्चे इस प्रकार के होते हैं। ये इस अर्थ में परिवर्तनशील हैं कि जब भी फर्म उत्पादन करेगी तो उसे इन खर्चों को करना होगा; परन्तु वे इस अर्थ में स्थिर है कि जब एक बार उनको उठा लिया जाता है तो ये प्रायः उत्पादन पर निर्भर नहीं करते। ऐसी लागतों को अर्थशास्त्री कभी-कभी 'स्थिर-चालन-लागतें' ('Fixed operating costs)' कहते है।[15] (iv) स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों में अन्तर केवल मात्रा (degree) का है, न कि किस्म (kind) का। दूसरे शब्दों में, स्थिर लागतें एक समयावधि के सदर्भ में ही स्थिर होती हैं।[16]

६. स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतो के अन्तर का मूल्य-सिद्धान्त में महत्व (Significance of the distinction between fixed and variable costs in the Theory of Value)

मूल्य सिद्धान्त मे यह अन्तर दो प्रकार से महत्त्वपूर्ण (useful) है :

(i) आर्थिक विश्लेषण में यह विचाराधीन समय अवधि में परिवर्तन करने से पूर्ति की दशाओं में उत्पन्न अन्तर की व्याख्या करने में सहायक होता है।[17] अर्थशास्त्री समय को 'अल्पकाल' तथा 'दीर्घकाल' मे विभाजित करते हैं। अल्पकाल में इतना कम समय होता है कि केवल 'परिवर्तनशील साधनो' (variable factors) मे परिवर्तन करके ही पूर्ति को समायोजित (adjust) करना सम्भव होता है: 'स्थिर साधनों' में परिवर्तन करके पूर्ति को समायोजित करने के लिए समय नहीं होता। इस प्रकार अल्पकाल मे चूँकि कुछ साधन स्थिर होते है (अर्थात् 'स्थिर लागतें' होती हैं)

---

15 ... : but ... ident

16 ...

उदाहरणार्थ, यदि एक फर्म सभी श्रमिकों को ३ साल के ठेके (contract) पर नियुक्त करती है तो इन सामान्य श्रमिकों का वेतन स्थिर लागत के अन्तर्गत आयेगा क्योंकि इन तीन वर्षों में यदि कुछ समय के लिए उत्पादन बन्द भी हो जाता है तो भी फर्म को ठेके के अनुसार इन श्रमिकों को वेतन देना पड़ेगा। यदि ठेका नहीं होता तो उत्पादन बन्द होने पर इन श्रमिकों को नौकरी से हटाया जा सकता था और ऐसी स्थिति में उनका वेतन परिवर्तनशील लागत के अन्तर्गत आता है।

17 In economic analysis it helps in distinguishing between differences in the conditiosn fo supply which arise as we vary the period of time under consideration.

है। औसत लागतें तीन प्रकार की होती है : 'औसत स्थिर लागत' (Average Fixed Cost i. e., AFC), 'औसत परिवर्तनशील लागत' (Average Variable Cost, i e., AVC), तथा 'औसत कुल लागत' या 'औसत लागत' (Average Total Cost, i. e., ATC or Average Cost, i. e, AC)। नीचे हम इन औसत लागतों का विवेचन अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों दृष्टियों से करते हैं।

अल्पकाल में औसत लागतें
(AVERAGE COSTS IN THE SHORT PERIOD)

औसत लागतों को निम्न तालिका मे दिखाया गया है :

कुल लागत (Total Costs)				औसत लागतें (Average Costs)			
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)
कुल उत्पादन (Total Product)	कुल स्थिर लागत (Total Fixed Cost)	कुल परिवर्तनशील लागत (Total Variable Cost)	कुल लागत (Total Cost) (२)+(३)	औसत स्थिर लागत (Average Fixed Cost) (२)÷(१)	औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost) (३)÷(१)	औसत कुल लागत (Average Total Cost) (४)÷(१)	सीमान्त लागत (Marginal Cost)
	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०
०	१००	०	१००	—	—	—	—
१	१००	९०	१९०	१००	९०	१९०	९०
२	१००	१७०	२७०	५०	८५	१३५	८०
३	१००	२४०	३४०	३३·३३	८०	११३·३३	७०
४	१००	३००	४००	२५	७५	१००	६०
५	१००	३७०	४७०	२०	७४	९४	७०
६	१००	४५०	५५०	१६·६७	७५	९१·६७	८०
७	१००	५४०	६४०	१४·२९	७७·१४	९१·४३	९०
८	१००	६५०	७५०	१२·५०	८१·२३	९३·७३	११०
९	१००	७८०	८८०	११·११	८६·६७	९७·७८	१३०
१०	१००	९३०	१,०३०	१०	९३	१०३	१५०

औसत स्थिर लागत (Average Fixed Cost, i.e., AFC)

कुल स्थिर लागत (TFC) में सम्बन्धित उत्पादन (corresponding output) का भाग देने से औसत स्थिर लागत (AFC) प्राप्त होती है।

संक्षेप में,

$$\text{औसत स्थिर लागत (AFC)} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत (TFC)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$$

कुल स्थिर लागत तो अल्पकाल में स्थिर रहती है, परन्तु औसत स्थिर लागत (AFC) स्थिर नहीं रहती बल्कि वह उत्पादन में प्रत्येक वृद्धि के साथ घटती जाती है। इसका कारण है कि जैसे उत्पादन बढ़ता है वैसे कुल स्थिर लागत अधिक इकाइयों पर फैलती जाती है, परिणाम-

स्वरूप औसत स्थिर लागत (AFC) गिरती जाती है। [पृष्ठ ८१ पर तालिका से ८५ जब उत्पादन १ इकाई है स्थिर लागत' तथा औसत लागत' दोनों १०० रु० के हैं। जब उत्पादन २ ... जाता है तो औसत स्थिर (AFC)=१००/२=५० जाती है। जब उत्पादन ३ है, तो AFC घटकर १०० ३३·३३ रु० हो जाती है प्रकार उत्पादन बढ़ने से लागत अधिक इकाइयों पर जाती है, अर्थात् AFC जाती है।] अतः AFC बायें से दायें को नीचे को गिरती हुई होगी जैसा कि नं० २५ में दिखाया गया
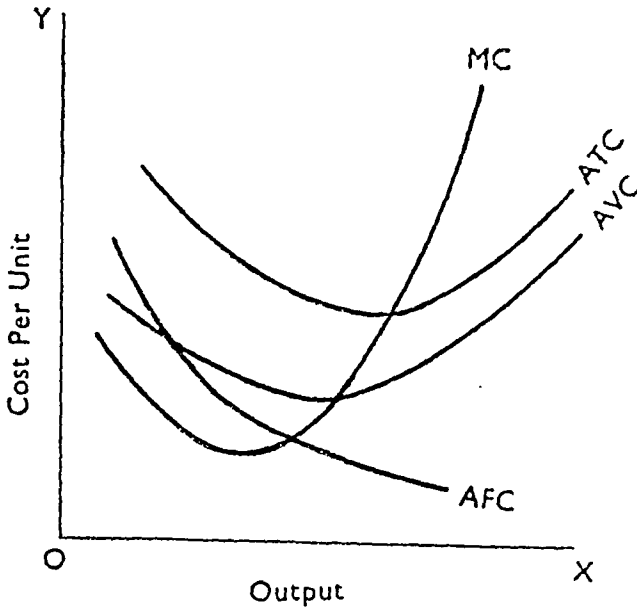
चित्र—२५

ध्यान रहे कि यद्यपि AFC रेखा, उत्पादन में वृद्धि के साथ, गिरती जाती है, परन्तु नहीं होती, अर्थात् वह X-axis को काट नहीं सकती। दूसरे शब्दों में AFC रेखा की शक्ल rectangular hyperbola की होती है जिसके दोनों सिरों को बढ़ाने पर वे Y-ax X-axis को काटते नहीं हैं।

औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost i e., AVC)

कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) में सम्बन्धित उत्पादन का भाग देने से औसत वर्तनशील लागत (AVC) प्राप्त होती है। संक्षेप में,

$$\text{औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)} = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत (TVC)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$$

यदि उत्पादन की मात्रा थोड़ी या कम है, तो औसत परिवर्तशील लागत (AV उत्पादन में वृद्धि के साथ, प्रारम्भ में गिरेगी। साधारणतया किसी फर्म को स्थापित करते उसके 'उत्पादन की सामान्य क्षमता' (normal capacity of production) का अनुमान लिया जाता है और इसी दृष्टि से उसका संगठन किया जाता है। यदि फर्म का उत्पादन 'सामान्य उत्पादन क्षमता' (normal capacity of production) से कम है तो उत्पादन में के साथ औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) गिरेगी; पर ऐसा क्यों होता है? वास्तव में, उत्पादन क्षमता' (full capacity production) से कम उत्पादन में श्रम तथा अन्य उत्प के साधनों की पूर्ण उत्पादन शक्ति का प्रयोग नहीं हो पाता है। इसलिए जब उत्पादन में वृ होने लगती है, तो उत्पत्ति के साधनों की लगभग पूर्व मात्रा ही इस वृद्धि के लिए पर्याप्त क्योंकि साधनों की उत्पादन शक्ति का अब अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगता है। परन्तु उत्पादन फर्म की 'पूर्ण उत्पादन क्षमता' तक पहुँच जाता है तब इसके बाद उत्पादन में और अ

लागू होता है; AC रेखा के निम्नतम बिन्दु पर 'स्थिर लागत नियम' (या उत्पत्ति स्थिरता नियम) लागू होता है; तथा इस बिन्दु के बाद से 'लागत वृद्धि नियम' (या उत्पत्ति ह्रास नियम) लागू होता है।

सीमान्त लागत (Marginal Cost)

एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) के उत्पादन से कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त लागत कहते हैं। दूसरे शब्दों में, एक अधिक इकाई के उत्पादन की अतिरिक्त लागत (additional cost) को सीमान्त लागत कहते हैं। माना किसी वस्तु की २ इकाइयों के उत्पादन की कुल लागत २७० रु० है; सीमान्त लागत (MC) को मालूम करने के लिए एक और इकाई अर्थात् तीसरी इकाई का उत्पादन किया जाता है; तीन इकाइयों की कुल लागत ३४० रु० है (देखिए तालिका पृष्ठ ८१ पर)। अतः एक अतिरिक्त इकाई अर्थात् तीसरी इकाई की अतिरिक्त लागत (३४० रु०—२७० रु०)=७० रु०। यह सीमान्त लागत हुई।

सीमान्त लागत को अल्पकाल में कुल परिवर्तनशील लागत द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है। जब एक अतिरिक्त इकाई या अधिक इकाइयाँ उत्पादित की जाती हैं तो केवल परिवर्तनशील लागत में ही परिवर्तन होगा क्योंकि अल्पकाल में स्थिर लागतें तो स्थिर रहती हैं। अतः हम 'कुल परिवर्तनशील लागत' (total variable cost) के शब्दों में सीमान्त लागत को परिभाषित कर सकते हैं। अल्पकाल में, एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त लागत कहते हैं। [पृष्ठ ८१ पर दी गयी तालिका से स्पष्ट है कि यदि दो इकाइयों का उत्पादन किया जाता है तो TVC=१७० रु० और तीन इकाइयों की TVC=२४० रु०, इसलिए सीमान्त लागत (MC)=२४० रु०—१७० रु०=७०। कुल लागत (TC) की सहायता से भी सीमान्त लागत (MC) ७० रु० ही आती है।]

सीमान्त लागत रेखा (MC-Curve) भी U-आकार की होती है, जैसा कि चित्र नं० २५ में दिखाया गया है। MC-रेखा के U-आकार के होने की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: सीमान्त लागत (MC) कुल लागत (TC) या कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) में परिवर्तन को बताती है। उत्पादन में वृद्धि के साथ प्रारम्भ में TC तथा TVC घटती दर से बढ़ते हैं (देखिए चित्र न० २४)। इसका अर्थ है कि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात MC) पिछली इकाइयों की लागतों की अपेक्षा कम होती जाती है; अतः प्रारम्भ में MC गिरती है। जब TC तथा TVC की वृद्धि रुक जाती है तो इसका अर्थ है कि MC का कम होना रुक जाता है और वह न्यूनतम बिन्दु पर पहुँच जाती है। अन्त में, TC तथा TVC बढ़ती हुई दर से बढते हैं, अर्थात प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की लागत (MC) पिछली इकाइयों की लागत से अधिक होती है, इसका अर्थ है कि MC बढ़ती है। इस प्रकार MC रेखा प्रारम्भ में गिरती है, न्यूनतम बिन्दु पर पहुँचती है और अन्त में बढ़ने लगती है, अर्थात् MC रेखा U-आकार की होती है।

MC-रेखा के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान रखनी चाहिए: (i) MC-रेखा AVC तथा ATC की अपेक्षा उत्पादन की कम मात्रा पर ही अपने निम्नतम बिन्दु पर पहुँच जाती है तथा (ii) MC-रेखा AVC तथा ATC रेखाओं को नीचे से उनके निम्नतम बिन्दुओं पर काटती हुई गुजरती है। [न० (i) तथा (ii) के समझने के लिए देखिए चित्र न० २५। MC तथा ATC (या AVC) के सम्बन्ध की विस्तृत व्याख्या आगे की गयी है।]

सीमान्त लागत तथा औसत लागत में सम्बन्ध (Relation between Marginal Cost Average Cost)
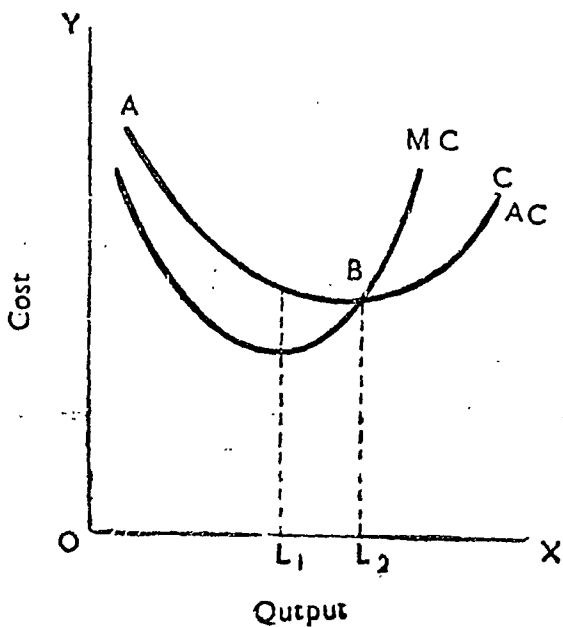
चित्र—२६

सीमान्त लागत (MC) तथा लागत (AC) घनिष्ठ रूप से सम्ब होती हैं; इनके सम्बन्ध को चित्र नं० दिखाया गया है। दोनों में सम्बन्ध प्रकार है :

(i) जब AC गिरती है तो कम होगी AC से। चित्र नं० २६ में रेखा A से B तक गिर रही है, अतः समस्त क्षेत्र में MC, AC से नीचे अ कम है। दूसरे शब्दों में, जब तक M AC से कम है, तब तक (उत्पादन में के साथ) AC गिरती जायेगी।

(ii) जब AC बढ़ती (rising तो MC भी बढ़ती है और वह A अधिक होती है। चित्र नं० २६ में B C तक AC चढ़ रही है, अतः MC, के ऊपर (अर्थात उससे अधिक) है। दूसरे शब्दों में, जब तक MC, AC से अधिक होगी, तब AC में भी वृद्धि होगी।

नोट—परन्तु उपर्युक्त सम्बन्धों के बारे में एक बात ध्यान रखने की है। जब औसत ल (AC) बढ़ रही हो तो यह आवश्यक नहीं है कि MC भी सदैव जरूर बढ़ेगी। इसी प्रकार AC गिर रही हो तो यह आवश्यक नहीं है कि MC भी सदैव जरूर गिरेगी। चित्र नं० २६ OL_1 तथा OL_2 उत्पादन की मात्राओं के बीच (अर्थात L_1L_2 उत्पादन मात्रा पर) AC गिर है, परन्तु MC गिरती नहीं बल्कि बढ़ रही है, परन्तु MC बढ़ने पर भी AC से कम है।

(iii) यदि AC स्थिर (constant) है, तो MC=AC, तथा MC रेखा AC रेखा नीचे से उसके निम्नतम विन्दु (lowest point) पर काटेगी। चित्र नं० २६ में 'B' विन्दु पर A क्षणिक रूप से स्थिर (momentarily constant) है, अर्थात 'B' विन्दु पर AC एक पड़ी (horizontal line) होगी, अतः इस विन्दु पर MC=AC। चित्र से स्पष्ट है कि MC, A(को उसके निम्नतम विन्दु B पर काटती है।

MC तथा AVC में भी उपर्युक्त तीनों सम्बन्ध पाये जाते हैं।

अब हम उपर्युक्त तीनों सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं :

(i) पहले सम्बन्ध को लीजिए। पहला सम्बन्ध है कि जब MC, AC से कम है, तो AC ी है। MC का AC से कम होने का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई की लागत के परि- ़ रूप कुल लागत में जो वृद्धि होती है वह पिछली औसत लागत (previous average cost) से कम है। परन्तु जब कोई संख्या जो कि पिछले औसत से कम है, संख्याओं के एक समूह में जोड़ी जाती है और नया औसत निकाला जाता है, तो नया औसत पिछले औसत से कम होगा। इसी

कारण जब MC, AC से कम होती है तो AC गिरती है ।[20] [एक संख्यात्मक उदाहरण लीजिए। माना एक व्यक्ति क्रिकेट के तीन खेलों में से प्रत्येक में १० रन बनाता है, तो तीन खेलों के रनों का औसत=(१०+१०+१०)/३=१० रन। यदि वह चौथे खेल में ४ रन बनाता है, जो कि पिछले औसत से कम हैं, तो अब नया औसत=(१०+१०+१०+४)/४=८.५ रन। स्पष्ट है कि नया औसत पिछले औसत से कम है। इसी प्रकार जब तक MC, AC से कम रहेगी तब तक AC गिरेगी।]

(ii) दूसरा सम्बन्ध है कि जब MC, AC से अधिक है, तो AC बढ़ेगी। MC का AC से अधिक होने का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई की लागत के परिणामस्वरूप कुल लागत में जो वृद्धि होती है वह पिछली औसत लागत से अधिक है। परन्तु जब कोई संख्या जो कि पिछले औसत से अधिक है, सख्याओं के एक समूह में जोड़ी जाती है और नया औसत निकाला जाता है, तो नया औसत पिछले औसत से अधिक होगा। इसी कारण जब MC, AC से अधिक होती है, तो AC बढ़ती हुई होती है।[21] (उदाहरणार्थ, माना कि एक व्यक्ति के तीन खेलों के रनों का औसत=(१०+१०+१०)/३=१० रन। यदि वह चौथे खेल में १८ रन बनाता है, जो कि पिछले औसत से अधिक है, तो नया औसत=(१०+१०+१०+१८)/४=१२ रन। स्पष्ट है नया औसत पुराने औसत से अधिक है। इस प्रकार जब तक MC, AC से अधिक है, तब तक AC बढ़ेगी)।

(iii) जब MC=AC, तो इसका अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई की लागत के परिणामस्वरूप कुल लागत में जो वृद्धि होगी वह पिछली औसत लागत के बराबर होगी। ऐसी स्थिति में पुरानी औसत लागत तथा नयी औसत लागत समान होगी; अर्थात ऐसी स्थिति में AC रेखा एक पड़ी रेखा होगी और यही पड़ी रेखा MC को भी व्यक्त करेगी क्योंकि MC=AC।

[औसत तथा सीमान्त लागत के सम्बन्ध को याद रखने के लिए एक चित्र भी दिया जाता है। चित्र न० २७ में जब MC, AC के ऊपर (अर्थात अधिक) है तो AC बढ़ेगी, क्योंकि MC, AC को ऊपर को अपनी ओर खींचती है। इसी प्रकार जब MC, AC के नीचे (अर्थात कम) है तो AC गिरेगी, क्योंकि MC, AC को नीचे को अपनी ओर खींचती है। जब MC वही है जो कि AC, तो AC पहले समान ही रहती है, क्योंकि MC, AC को अपनी ओर सीधे (horizontally) खींचती है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिए कि जब AC बढ़ रही हो या घट रही हो तो यह सदैव आवश्यक नहीं है कि MC भी बढ़े या घटे, यद्यपि सामान्यतया ऐसा ही होता है।]
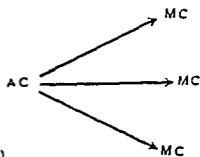
चित्र—२७

(iv) तीसरे सम्बन्ध के बारे में एक बात और है कि सीमान्त लागत (MC), AC को सदैव उसके निम्नतम बिन्दु पर काटती है। ऐसा क्यों होता है? इसको साधारण रूप से इस प्रकार

20 "When a number less than the old average is added to a group of figures and a new average calculated, the new average is less than the old average. For this reason, when MC is less than AC, AC must fall."

21 When a number greater than the old average is added to a group of figures and a new average calculated, the new average exceeds the old average. For this reason, when MC is greater than AC, AC must be rising or increasing.

समझाया जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि जब AC गिर रही है तो MC, AC के नी·
है। इसी प्रकार से जब AC बढ़ रही है तो MC, AC से अधिक होती है। अतः उस
जबकि AC गिरना बन्द कर देती है, परन्तु उसने अभी बढ़ना आरम्भ नहीं किया है, तो
AC रेखा के निम्नतम बिन्दु से होकर गुजरती है ताकि वह AC से ऊपर रह सके जब
बढ़ना प्रारम्भ करे।[22]

सीमान्त लागत का महत्व

मूल्य-सिद्धान्त (price-theory) में M C के विचार का आधारभूत महत्त्व है।
आय (MR)[23] के साथ MC का विचार यह बताता है कि किस बिन्दु पर एक फर्म अपन
का मूल्य तथा उत्पादन निश्चित करेगी। प्रत्येक फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम
होता है। इस दृष्टि से फर्म अपनी वस्तु को उस बिन्दु तक उत्पादित करेगी जहाँ पर
अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आय अर्थात (MR), उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन
(अर्थात MC) के बराबर हो जाये। यहाँ पर उसके लिए लाभ को अधिकतम करने क
सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। संक्षेप में, प्रत्येक उत्पादक उस बिन्दु पर मूल्य तथा उ
निश्चित करेगा जहाँ पर MR, MC के बराबर हो जाती है।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, MC का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं होता
व्यवहार में व्यापारी तथा उद्योगपति इस विचार को नहीं जानते और न इसका प्रयोग कर
इस विचारधारा के प्रवर्तक (propounders) ऑक्सफोर्ड के अर्थशास्त्री **हाल तथा हिच** (
and Hitch) हैं। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, व्यापारी तथा उद्योगपति मूल्य तथा उ
निर्धारित करते समय सीमान्त लागत (MC) को नहीं बल्कि 'पूर्ण औसत लागत' (full ave
cost) को ध्यान में रखते हैं; इस विचारधारा को 'पूर्ण लागत सिद्धान्त' (Full Cost Princ
के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु इस सिद्धान्त का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है।
भी अधिकांश अर्थशास्त्री मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण में सीमान्त लागत (MC) के विचार को
मान्यता देते हैं।

दीर्घकालीन लागतें
(LONG-RUN COSTS)

दीर्घकालीन औसत लागत रेखा

दीर्घकाल वह समय है जिसमें उत्पादन-यन्त्रों तथा उत्पादन के पैमाने को बदला जा
है। अतः दीर्घकाल में कोई स्थिर लागतें नहीं रहतीं, सब लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं।
दीर्घकाल में केवल कुल औसत लागत रेखा (ATC or AC-Curve) तथा सीमान्त लागत
(MC Curve) ही रह जाती हैं।

अल्पकाल में स्थिर साधनों के समूह या स्थिर प्लाण्ट (fixed plant) के साथ परिवर्त
शील साधनों का अधिक प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। अल्पकाल में एक
प्लाण्ट से सम्बन्धित एक निश्चित उत्पादन के लिए एक अल्पकालीन औसत लागत रेखा (sho
run average cost curve अर्थात SAC-Curve) होगी; इसी प्रकार से प्रत्येक स्थिर प्लाण्ट

---

22 "As we have seen, when average cost is falling, marginal cost is below average. Similarly, when average cost is rising, marginal cost is greater than average cost. So the moment when average cost stops falling but has not yet begun to rise, the margin cost curve passes through the average cost curve (at its lowest point) in order to be abo it when average cost starts to rise again."

23 सीमान्त आय (marginal revenue) के विचार की व्याख्या इसी अध्याय में आगे की गयी है

सम्बन्धित उत्पादन के लिए भिन्न-भिन्न अल्पकालीन औसत लागत रेखाएँ होंगी। अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं को (SAC_1, SAC_2, तथा SAC_3) चित्र नं० २८ में दिखाया गया है। (सुविधा के लिए केवल तीन SAC रेखाएँ ही दिखायी गयी हैं, वास्तव में उनकी संख्या बहुत अधिक होती है।)

अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं (SAC-Curves) को स्पर्श करती हुई यदि एक रेखा खींची जाये तो 'दीर्घकालीन औसत लागत रेखा' प्राप्त हो जाती है। चित्र नं० २८ में LAC रेखा दीर्घकालीन लागत रेखा है। दीर्घकालीन औसत लागत रेखा यह बताती है कि उत्पादन के पैमाने (scale of production) में परिवर्तन होने से औसत लागत किस प्रकार परिवर्तित होती है।
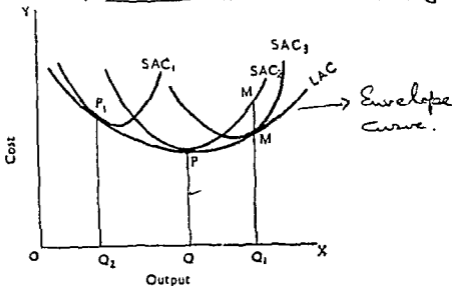
चित्र—२८

दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC) के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान रखनी चाहिए :

(१) चूंकि दीर्घकालीन औसत रेखा (LAC) सब अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं (SAC-Curves) को ढक लेती है (अर्थात envelope कर लेती है) -इसलिए इसको 'लिफाफा' या 'आवरण' (envelope) भी कहते हैं।

यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC) केवल एक अल्पकालीन औसत लागत रेखा को छोड़कर अन्य सभी अल्पकालीन औसत रेखाओं (SAC-Curves) को उनके निम्नतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करती। चित्र नं० २८ में LAC रेखा केवल एक अल्पकालीन औसत लागत रेखा SAC_2 को उसके निम्नतम बिन्दु P पर स्पर्श करती है।

एक दृष्टि से 'आवरण' या 'लिफाफा' शब्द भ्रामक है क्योंकि लिफाफा उसके अन्दर रखे हुए पत्र से बिलकुल भिन्न होता है। परन्तु दीर्घकालीन औसत लागत रूपी आवरण पर प्रत्येक बिन्दु किसी न किसी अल्पकालीन औसत लागत रेखा पर भी होता है।[24]

(२) दीर्घकालीन नीति को निर्धारित करते समय एक फर्म भविष्य में सम्भावित व्यापार को ध्यान में रखते हुए न्यूनतम प्लाण्ट का निर्माण करने की योजना (plan) बनाना चाहेगी।

[24] "In a sense the term 'envelope' is misleading. An envelope is physically distinct from the letter which it contains. But every point on an 'envelope' long-run cost curve is also a point on one of the short-run cost curves which is envelops."

इस दृष्टि से दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC-Curve) यह बताती है कि सर्वश्रेष्ठ स नाएँ क्या हैं। अतः इसको कभी-कभी 'योजना रेखा' (planning curve) भी कहते हैं।

(३) अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं की भाँति **दीर्घकालीन औसत लागत** भी U-आकार की होती हैं; परन्तु वे अपेक्षाकृत अधिक चपटी (flat) होती हैं। जितना समय होगा उतना ही औसत लागत रेखा का U-आकार कम गहरा (less pronounced) अर्थात चपटा होगा। दीर्घकालीन औसत लागत रेखा (LAC) के अधिक चपटे (flat) हे अर्थ है कि लागतों में वृद्धि या कमी की दर, अल्पकाल में लागतों की अपेक्षा, कम होती है।

दीर्घकालीन औसत लागत रेखा का प्रारम्भिक भाग बड़े पैमाने की 'आन्तरिक बचत कारण नीचे को गिरता है, एक बिन्दु (चित्र नं० २८ में P बिन्दु) पर वह न्यूनतम हो जा तत्पश्चात वह चढ़ने लगती है। ऊपर चढ़ने का कारण है बड़े पैमाने की 'आन्तरिक अबचत प्राप्त होना।

(४) दीर्घकाल में सभी उत्पादन के साधन परिवर्तनशील होते हैं और फर्मों के लिए के आकारों को पूर्णतया समायोजित (adjust) करने का समय रहता है, इसलिए दी **औसत लागत रेखा विभिन्न मात्राओं (output) के उत्पादन की सम्भावित न्यूनतम औसत को बताती है।** (यह बात इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है। माना कि किसी समय प उत्पादक लागत रेखा SAC_2 के अन्तर्गत OQ मात्रा का उत्पादन कर रहा है। वह उत्प OQ से बढ़ा कर OQ_1 करना चाहता है। वह यदि उत्पादन के पुराने पैमाने (अर्थात SAC अन्तर्गत ही उत्पादन करता है तो औसत लागत MQ_1 होगी। माना कि वह उत्पादन के को बदल देता है और नयी अल्पकालीन लागत रेखा SAC_3 है। SAC_3 के अनुसार OQ_1 उ दन M_1Q_1 औसत लागत पर किया जा सकेगा जो कि MQ_1 से कम है। M_1 बिन्दु LAC भी है क्योंकि इस बिन्दु पर SAC_3 तथा LAC स्पर्श करते हैं, स्पष्ट है कि LAC रेखा उत्पादन की न्यूनतम लागत को बताती है। इस प्रकार दीर्घकालीन औसत लागत रेखा अ सम्भावित उत्पादन की मात्रा के न्यूनतम सम्भावित लागत (l w possible cost) को बताती है।)

चित्र—२९
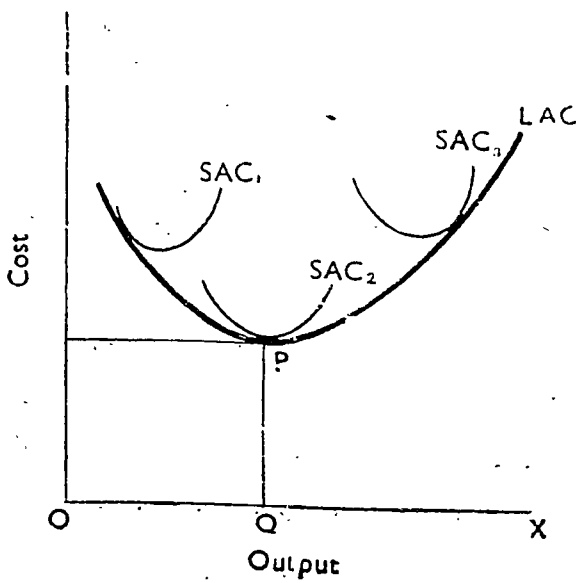
(५) LAC के कुछ अन्य (other forms) भी हो सकते हैं :

(i) चित्र नं० २९ में LAC आकार एक ऐसी फर्म का द्योतक जिसका 'अनुकूलतम आकार' (op size) छोटा है। दूसरे शब्दों में, को उत्पादन के थोड़े क्षेत्र (range) ही 'बचतें' (economies) प्राप्त होत हैं और न्यूनतम दीर्घकालीन अ लागत (minimum long run average cost), जो कि चित्र में P बिन्दु बताता है, शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है; उत्पादन की थोड़ी मात्रा के बाद ह

औसत लागत बढ़ने लगती है। इसके उदाहरण हैं कृषि तथा भूमि से निकालने वाले व्यवसाय (extractive industries)।

(ii) चित्र न० ३० में LAC रेखा का आकार एक ऐसी फर्म का द्योतक है जिसका 'अनुकूलतम आकार' बड़ा है। दूसरे शब्दों में, फर्म को उत्पादन के एक बड़े क्षेत्र (over a wide range of production) तक 'पैमाने की बचतें' प्राप्त होती हैं और न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत, जो कि चित्र में P बिन्दु बताता है, बहुत देर से प्राप्त होती है; उत्पादन की बहुत बड़ी मात्रा के बाद ही औसत लागत बढ़ना शुरू होती है।

चित्र—३०
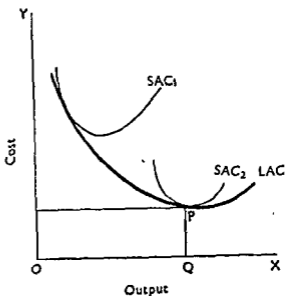
(iii) LAC रेखा एक पड़ी हुई रेखा भी हो सकती है जैसा कि चित्र न० ३१ में दिखाया गया है। इसका अर्थ है कि उत्पादन 'लागत समता नियम' (Law of Constant Cost) के अन्तर्गत हो रहा। पड़ी हुई LAC रेखा का थोड़ा भिन्न रूप भी हो सकता है जैसा कि चित्र न० ३२ में दिखाया गया है।

दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा दीर्घकालीन औसत लागत के सम्बन्ध (Relation between Long-run Marginal Cost and Long-run Average Cost)

दीर्घकालीन सीमान्त लागत (long run marginal cost अर्थात LMC) रेखा भी U-आकार की होती है। दीर्घकालीन में स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत का
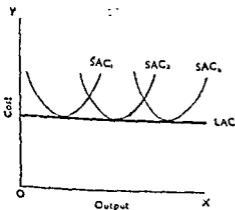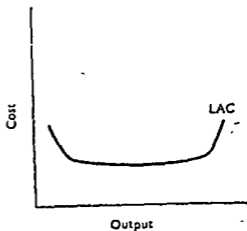
चित्र—३१ चित्र—३२

अन्तर समाप्त हो जाता है; सभी लागतें परिवर्तनशील होती हैं; कुल परिवर्तनशील ल कुल लागत एक ही हो जाती हैं। अतः दीर्घकाल में सीमान्त लागत (MC) को लागत (VC) के शब्दों में व्यक्त या परिभाषित नहीं किया जा सकता। दीर्घकाल इकाई के उत्पादन से कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे दीर्घकालीन सीमान्त लागत कहते हैं।

दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) तथा दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) में वही सम्बन्ध होता है जो कि अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) तथा अल्पकालीन औ (SAC) में होता है। चित्र न० ३३ से स्पष्ट है कि जब LAC गिरती है तो LMC उ होती है, LAC के न्यूनतम विन्दु P पर LMC बराबर हो जाती है, तथा इसके पश्च
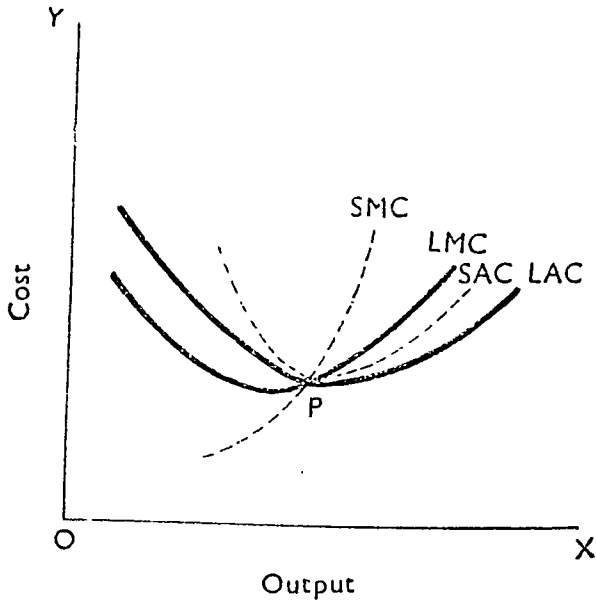
चित्र—३३

बढ़ती है और LMC उससे अधिक रहती है। चित्र नं० ३३ में SAC तथा SMC अल्पक औसत लागत और अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखाएँ हैं। चित्र से स्पष्ट है कि P विन्दु LAC=LMC=SAC=SMC।

आगम (या आय) का विस्तार
(THE CONCEPT OF REVENUE)

प्रत्येक उत्पादक या फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। चूँकि उत्पादन लागत तथा विक्रय राशि के अन्तर के बराबर होता है, इसलिए अधिकतम लाभ बात पर निर्भर करेगा कि यथासम्भव लागत कम की जाये तथा विक्री अधिक। यदि लागत हुई है तो लाभ बिक्री से प्राप्त कुल आय या आगम पर निर्भर करेगा; जितनी अधिक बिक्री हो और जितना अधिक आय या आगम (revenue) प्राप्त होगा, उतना ही अधिक लाभ अ किया जा सकेगा। अर्थशास्त्री 'आगम' (revenue) शब्द को प्रायः तीन अर्थों में प्रयोग करते कुल आगम (total revenue), 'औसत आगम' (average revenue) तथा 'सीमान्त आग (marginal revenue)।

कुल आगम, औसत आगम तथा सीमान्त आगम को निम्न तालिका में व्यक्त किया गया है :

उत्पादन की मात्रा (Output)	कुल आगम (Total Revenue) रु० में	औसत आगम (Average Revenue) रु० में	सीमान्त आगम (Marginal Revenue) रु० में
१	१०	१०	१०
२	१८	९	८
३	२४	८	६
४	२८	७	४
५	३०	६	२
६	३१	५·१६	१

कुल आगम (Total Revenue)

एक फर्म अपने उत्पादन की एक निश्चित मात्रा को बेचकर जो कुल धन-राशि (sale-proceeds or receipts) प्राप्त करती है उसे कुल आगम (Total Revenue, i.e. TR) कहते हैं। यदि फर्म ३ इकाइयों को बाजार में बेचकर २४ रु० प्राप्त करती है (देखिए उक्त तालिका) तो २४ रु० कुल आगम (TR) होगा ; यदि वह ५ इकाइयों को बेचकर ३० रु० प्राप्त करती है तो ३० रु० कुल आगम होगा।

'कुल आगम' को एक दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है : वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा को कीमत से गुणा करके कुल आगम (TR) प्राप्त किया जाता है। उदाहरणार्थ, वस्तु की तीन इकाइयाँ बेची जाती हैं और प्रति इकाई कीमत ८ रु० है तो कुल आगम=३×८ =२४ रु० है। अतः

कुल आगम (Total revenue)=वस्तु की मात्रा (Quantity)×कीमत (Price)

औसत आगम (Average Revenue)

बिक्री से प्राप्त कुल आगम (TR) में वस्तु की कुल बेची गयी मात्रा का भाग देने से 'औसत आगम' (AR) प्राप्त होता है। संक्षेप में,

$$\text{औसत आगम (AR)} = \frac{\text{कुल आगम (TR)}}{\text{उत्पादन की मात्रा (Output)}}$$

उदाहरणार्थ, यदि ३ इकाइयों का कुल आगम (TR) २४ रु० है तो औसत आगम (AR) $= \frac{२४}{३} =$ ८ रु०। वास्तव में, यह ८ रु० एक इकाई की कीमत (price) हुई। अतः 'औसत आय' (AR) तथा वस्तु की 'कीमत' एक ही बात है। इस प्रकार औसत आगम (AR) उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर वस्तु की कीमत बताता है। (उक्त तालिका में स्पष्ट है कि यदि उत्पादन का स्तर ३ इकाई है तो AR अर्थात् कीमत ८ रु० है; यदि उत्पादन का स्तर ५ इकाई है तो AR या कीमत ६ रु० है।)

औसत आगम रेखा (AR-curve) को माँग रेखा (Demand curve) भी कहा जाता है। माँग रेखा वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा तथा कीमत में सम्बन्ध को बताती है। एक क्रेता किसी वस्तु के लिए जो 'कीमत' देता है वह फर्म की दृष्टि से 'औसत आगम' (AR) है।

AR-रेखा यह बताती है कि फर्म की वस्तु की विभिन्न मात्राओं को बेचने से कितनी औसत आगम मिलेगा; अतः AR-रेखा को माँग रेखा कहा जाता है। **कुछ अर्थशास्त्री A माँग-रेखा के स्थान पर 'विक्रय-रेखा'** (sales curve) **कहना अधिक पसन्द करते हैं,** विभिन्न कीमतों (या औसत आगमों) पर फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की बिक्री की म बताती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect competition) **में,** चाहे उसका कोई भी रूप, ए प्रतियोगिता, अल्पाधिकार, या एकाधिकार हो, **AR-रेखा नीचे को गिरती हुई होती है** चित्र न० ३४ में दिखाया गया है। गिरती हुई AR-रेखा बताती है कि अपूर्ण प्रतियोगि एक फर्म अपनी वस्तु की अधिक इकाइयाँ बेचना चाहती है तो वह पहले की अपेक्षा क पर बेच पायेगी; अर्थात अधिक उत्पादन बेचने के लिए फर्म को अपनी वस्तु की की करनी पड़ेगी।[25]
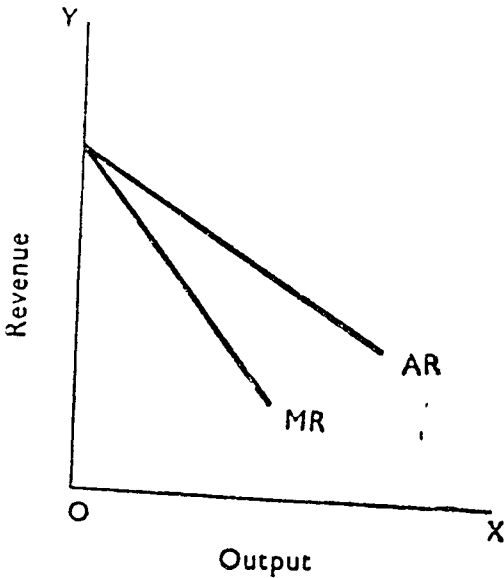
चित्र—३४
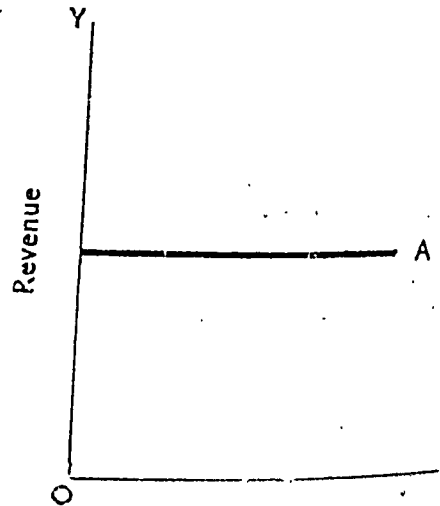
चित्र—३५

पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect competition) **में AR-रेखा पड़ी रेखा** (*horizontal*) होती है जैसा कि चित्र न० ३४ में दिखाया गया है। पड़ी हुई AR-रेखा का अर्थ है कि ए हुई कीमत पर फर्म अपनी वस्तु की कितनी ही मात्रा बेच सकती है, अधिक मात्रा बेचने के उसे कीमत कम नहीं करनी पड़ती। (पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु एक-रूप होती है तथा क्रेताओं विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है, इसलिए कोई भी विक्रेता अपनी कार्यवाहियों से की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता, वह कीमत को दिया हुआ मान लेता है और उस की पर जितनी मात्रा बेचना चाहे, बेच सकता है।)

25 इसका कारण अपूर्ण प्रतियोगिता के अर्थ में ही निहित है। अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म या तो पूर्ति का एक बड़ा भाग उत्पादित करती है अथवा किसी विशेष प्रकार की वस्तु उत्पादित करती है; ऐसी स्थिति में यदि वस्तु की अधिक मात्रा बेचना चाहती है उसे कीमत कम करनी पड़ेगी अन्यथा वह वस्तु की अधिक मात्रा नहीं बेच पायेगी।

औसत आगम (AR) के सम्बन्ध में सारांश (summary) इस प्रकार है :

१. औसत आगम $AR = \frac{\text{कुल आगम (TR)}}{\text{उत्पादन (Output)}}$

२. औसत आगम (AR) तथा कीमत (price) एक ही बात है।

३. औसत आगम रेखा (AR-curve) 'मांग-रेखा' होती है; यद्यपि कुछ अर्थशास्त्री इसको 'विक्रय-रेखा' (sales curve) कहना अधिक पसन्द करते हैं।

४. अपूर्ण प्रतियोगिता में AR-रेखा नीचे को गिरती हुई होती है; और पूर्ण प्रतियोगिता में यह पड़ी हुई रेखा होती है।

सीमान्त आगम (Marginal Revenue)

एक अतिरिक्त इकाई (additional unit) को बेचने से कुल आगम (TR) में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम (MR) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, सीमान्त आगम कुल आगम में परिवर्तन की दर को बताता है। माना किसी वस्तु की ३ इकाइयों का कुल आगम (TR) २४ रुपये है और यदि ४ इकाइयां बेची जाती हैं तो कुल आगम (TR) २८ रुपये है (पृष्ठ ९३ पर तालिका देखिए) तो चौथी इकाई अर्थात एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम में (२८—२४)=४ रुपये की वृद्धि हुई और यह ४ रुपये सीमान्त आगम (MR) है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम (MR) नीचे को गिरती हुई रेखा होती है तथा सीमान्त आगम (MR) औसत आगम (AR) से कम होती है, जैसा कि चित्र न० ३४ में दिखाया गया है। MR-रेखा AR-रेखा की अपेक्षा अधिक तेजी से गिरती है। प्रश्न यह उठता है कि MR, AR से कम क्यों होता है और MR अपेक्षाकृत तेजी से क्यों गिरता है? अपूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए कीमत (अर्थात् AR) घटानी पड़ेगी, अतः MR, AR से कम होगा। दूसरे शब्दों में, अपूर्ण प्रतियोगिता में जब एक फर्म अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए कीमत कम करती है तो कीमत में यह कमी केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नहीं होगी बल्कि पिछली सभी इकाइयों पर भी करनी होगी।

इस बात को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। माना कि एक फर्म ४ इकाई ७ रु० प्रति इकाई ५ इकाई ६ रुपये प्रति इकाई के हिसाब से बेच सकती है। माना वह ५ इकाई बेचती है। जब ५वीं इकाई बेची जाती है तो ६ रुपये प्राप्त होते हैं। यह ६ रुपये कुल आगम (TR) में वृद्धि (अर्थात् MR) कही जा सकती है जबकि ऐसा कहना उचित नहीं है। इसका कारण है कि ५वीं इकाई को बेचने के लिए फर्म को पिछली सभी इकाइयों अर्थात् पिछली ४ इकाइयों पर उसे १ रुपये प्रति इकाई कीमत घटानी पड़ेगी। अतः

सीमान्त आगम (MR) = ६वीं इकाई से प्राप्त अतिरिक्त आगम—
पिछली ४ इकाइयों पर १ रुपये प्रति इकाई के हिसाब से कमी
= ६ रुपये — ४ रुपये
= २ रुपये

(यदि पृष्ठ ९३ पर तालिका को देखा जाये तो स्पष्ट होगा कि ५वीं इकाई का सीमान्त आगम २ रुपये ही है।)

पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम (MR), औसत आगम (AR) के बराबर होता है। चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता में (AR) पड़ी हुई रेखा होती है इसलिए MR रेखा भी पड़ी हुई होती

है तथा दोनों एक रेखा द्वारा ही व्यक्त किये जाते हैं, जैसा कि चित्र न० ३५ में दिखाया पूर्ण प्रतियोगिता में कोई भी विक्रेता अकेले अपनी कार्यवाहियों से कीमत को प्रभावित सकता, वह दी हुई कीमत पर अपनी वस्तु की कितनी ही मात्रा को बेच सकता है; अत: या उत्पादक को एक अतिरिक्त इकाई के बेचने से जो आगम (अर्थात् MR) प्राप्त कीमत (अर्थात् AR) के बराबर होगा। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में MR=AR price)।

अध्याय ६ की परिशिष्ट : सीमान्त आगत, औसत आगम तथा लोच[26]

[APPENDIX TO CHAPTER 6]

(MARGINAL REVENUE, AVERA REVENUE AND ELASTICITY)

सीमान्त आगम तथा औसत आगम में सम्बन्ध (Relation between Marginal Rev and Average Revenue)

सीमान्त आगम (MR) तथा औसत आगम (AR) के सम्बन्ध के बारे में निम्न बातें रखनी चाहिए।

(i) जब तक औसत आगम रेखा (AR-curve) गिरती है तब तक सीमान्त (MR) औसत आगम (AR) से होगी। MR-रेखा, परिस्थितियों के सार, स्वयं बढ़ती हुई (rising), हुई या पड़ी हुई (horizontal) हो स है, परन्तु सामान्यतया वह भी गिरेगी
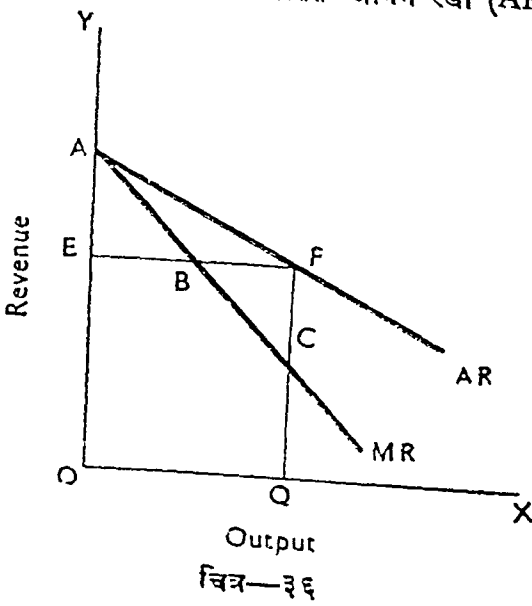
चित्र—३६

(ii) जब AR तथा MR गिरती हुई सीधी रेखाएँ (falling straight lines) होती हैं तो AR-रेखा के किसी भी विन्दु से Y-axis पर डाले गये लम्ब (perpendicular) को MR-रेखा मध्य में काटेगी। चित्र नं० ३६ में FE को MR रेखा उसके मध्य-विन्दु पर काटती है। इस सम्बन्ध को गणित द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

[26] अध्यापक तथा विद्यार्थियों के लिए नोट—विभिन्न विश्वविद्यालयों के (डिग्री तथा आनर्स के पाठ्यक्रमों के अनुसार परिशिष्ट की विषय-सामग्री को विद्यार्थियों द्वारा छोड़ा जा सकता या पढ़ा जा सकता है।

(iii) जब AR-रेखा मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave to the origin) होती है (जैसा कि चित्र नं० ३७ में दिखाया गया है), तो Y-axis पर खींचे गये किसी भी लम्ब को MR-रेखा AR-रेखा की ओर आधी दूर से कम (less than half way to the AR-curve) पर काटती है। चित्र नं० ३७ में लम्ब FE को MR-रेखा B बिन्दु पर काटती है, B बिन्दु Y-axis से AR-रेखा की ओर आधी दूरी से कम है
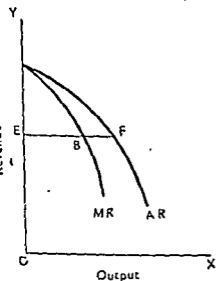
चित्र—३७
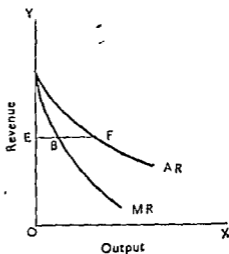
चित्र—३८

(iv) जब AR-रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex to the origin) होती है (जैसा कि चित्र नं० ३८ में दिखाया गया है), तो Y-axis पर खींचे गये किसी भी लम्ब को MR-रेखा AR-रेखा की ओर आधी दूरी से अधिक (more than half way to the AR-curve) पर काटती है। चित्र नं० ३८ में लम्ब FE को MR-रेखा B बिन्दु पर काटती है, B बिन्दु Y-axis से AR रेखा की ओर आधी दूरी से अधिक है।

चित्र—३९

औसत आगम, सीमान्त आगम तथा मांग की लोच में सम्बन्ध (Relation amongst Average Revenue, Marginal Revenue and Elasticity of Demand)

उत्पादन के किसी भी स्तर पर औसत आगम, सीमान्त आगम तथा मांग की लोच में सम्बन्ध मालूम किया जा सकता है। यह सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है।
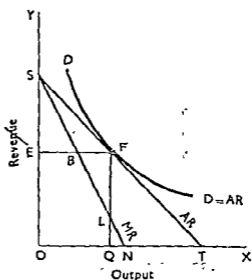
चित्र न० ३६ में DD माँग-वक्र या AR-वक्र है। इसके किसी विन्दु F पर रेखा खींची गयी है। ST रेखा को भी माँग रेखा या AR-रेखा माना जा सकता है; तथ पर DD तथा ST दोनों की माँग की लोच समान होगी। AR-रेखा से सम्बन्धित SN है।

विन्दु F पर (जोकि OQ मात्रा से सम्बन्धित है) माँग की लोच

$$e = \frac{\text{नीचे का भाग (lower sector)}}{\text{ऊपर का भाग (upper sector)}}$$

$$= \frac{FT}{FS}$$

$$= \frac{FQ}{SE}$$ [∵ $\triangle^s$ ESF तथा QFT समकोणीय (equi-ang

$$= \frac{FQ}{FL}$$ [∵ $\triangle^s$ SEB तथा BFL सब तरह से समान है,

∴ $SE = FL$]

$$= \frac{FQ}{FQ - LQ}$$

$$= \frac{\text{Average Revenue}}{\text{Average Revenue} - \text{Marginal Revenue}}$$

अर्थात् $e = \frac{A}{A - M}$ जबकि, A = Average Revenue,
M = Marginal Revenue,
e = elasticity of demand

या $eA - eM = A$

या $-eM = A - eA$

या $eM = eA - A$

या $M = \frac{eA - A}{e}$

या $M = A \times \frac{e - 1}{e}$

ऊपर एक स्थान पर हम देखते हैं कि

$eM = eA - A$

या $eA - A = eM$

या $A(e-1)=eM$

या $$A=M\times\frac{e}{e-1}$$

उपर्युक्त तीन मुख्य समीकरण इस प्रकार है :

1. $$e=\frac{A}{A-M}$$

2. $$M=A\times\frac{e-1}{e}$$

3. $$A=M\times\frac{e}{e-1}$$

उपर्युक्त समीकरणों से स्पष्ट है कि e (माँग की लोच), M (सीमान्त आगम) तथा A (औसत आगम) में से कोई भी दो मूल्य (values) दिये हैं तो तीसरा मालूम किया जा सकता है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म का साम्य

[EQUILIBRIUM OF A FIRM UNDER PERFECT COMPETITION]

१. पूर्ण प्रतियोगिता के अभिप्राय
(IMPLICATIONS OF PERFECT COMPETITION)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उत्पादक या फर्म के लिए उसकी वस्तु की माँग रेखा पूर्णतया लोचदार होती है अर्थात् वह पड़ी हुई रेखा (horizontal line) होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के कारण कोई भी फर्म व्यक्तिगत रूप से अपने कार्यों द्वारा वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकती। उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति तथा उसकी कुल माँग द्वारा जो मूल्य निर्धारित हो जाता है उसे प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है और इस दिये हुए मूल्य के अनुसार अपने उत्पादन को समायोजित (adjust) करती है। अतः यह कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म 'मूल्य ग्रहण करने वाली' (price-taker) होती है, 'मूल्य-निर्धारक' (price-maker)

नहीं; वह दिये हुए मूल्य पर केवल 'उत्पादन की मात्रा का समायोजन करने वाली' adjuster) होती है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म की अपनी कोई (price-policy) नहीं होती।

२. फर्म के साम्य का अर्थ
(MEANING OF EQUILIBRIUM OF A FIRM)

आधुनिक अर्थशास्त्री किसी वस्तु के मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण को 'फर्म के शब्दों में व्यक्त करते हैं। इससे पहले कि हम फर्म के साम्य की दशाओं का अध्ययन करें श्यक है कि 'फर्म के साम्य' के अभिप्राय को समझ लिया जाये। साम्य[2] का अर्थ है 'प अनुपस्थिति' (absence of change)। इस प्रकार एक फर्म साम्य की स्थिति में तब ह उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं होता है, अर्थात् कुल उत्पादन समान रहता है अपने उत्पादन में तब कोई परिवर्तन (वृद्धि या कमी) नहीं करेगी जबकि उसको अधिकत रहा हो। अतः **एक फर्म साम्य की स्थिति में तब कही जायेगी जबकि उसके उत्पादन परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं हो अर्थात् साम्यावस्था में फर्म उत्पादन की वह मा करेगी जिस पर उसको 'अधिकतम लाभ' या 'अधिकतम शुद्ध आय'** (maximum net **प्राप्त हो।**

३. दो रीतियाँ
(TWO APPROACHES)

अधिकतम लाभ प्राप्ति की स्थिति अर्थात् एक फर्म के साम्य की स्थिति को दो प्रका किया जा सकता है :

(१) **कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं द्वारा** (Total revenue and to curves approach)—जहाँ पर कुल आगम तथा कुल लागत का अन्तर अधिकतम होगा फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

(२) **सीमान्त तथा औसत रेखाओं द्वारा** (Marginal and average curves ap —जहाँ पर सीमान्त आगम (MR)=सीमान्त लागत (MC) के होगा, वहाँ पर फर्म को तम लाभ प्राप्त होगा, फर्म को कितना लाभ (या हानि) प्राप्त होगा, यह बात औसत आगम तथा औसत लागत (AC) रेखाओं के बीच अन्तर या खड़ी दूरी (vertical distanc बतायी जा सकेगी।

आगे इन दोनों रीतियों का विवेचन किया गया है। परन्तु इन दोनों रीतियों का करने से पहले 'मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण' अर्थात 'फर्म के साम्य' से सम्बन्धित मान्यत जान लेना आवश्यक है।

---

[1] किसी उद्योग का कुल उत्पादन उसमें कार्य करने वाली व्यक्तिगत फर्मों के उत्पादन पर करता है। मार्शल तथा अन्य प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने व्यक्तिगत फर्मों के मूल्य तथा उ निर्धारण पर उचित ध्यान न देकर कुल उद्योग के मूल्य तथा उत्पादन नीति पर ही ध्यान दिया। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री व्यक्तिगत फर्म की मूल्य तथा उत्पादन नी विशेष ध्यान देते हैं और इस बात को वे 'फर्म के साम्य' के शब्दों में व्यक्त करते हैं।

[2] साम्य के विस्तृत अर्थ, उसके प्रकार, एवं महत्व, इत्यादि के पूर्ण विवरण के लिए पु प्रथम भाग के अध्याय ६ को देखिए।

४. मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS)

(i) यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक फर्म के साहसी का व्यवहार विवेकपूर्ण (rational) होता है, अर्थात् प्रत्येक साहसी या उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम द्राव्यिक लाभ को प्राप्त करना होता है।

(ii) उत्पादन की दी हुई तकनीकी दशाओं के अन्तर्गत प्रत्येक साहसी, जहाँ तक सम्भव है, अपने उत्पादन की द्राव्यिक लागत को न्यूनतम रखेगा।

(iii) सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि एक फर्म केवल एक ही वस्तु का उत्पादन करती है।

(iv) हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की सभी इकाइयाँ एक समान कुशल होती हैं तथा अपने वर्तमान मूल्य पर सभी उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति असीमित लोचदार (infinitely elastic supply) होती है, अर्थात् प्रत्येक साहसी वर्तमान मूल्य पर किसी भी साधन की जितनी इकाइयाँ चाहे प्रयोग कर सकता है।

५. फर्म का साम्य—कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति
(EQUILIBRIUM OF A FIRM—TOTAL REVENUE AND TOTAL COST CURVES APPROACH)

उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर फर्म के लाभ को ज्ञात करने के लिए फर्म की 'कुल आगम रेखा' (TR-curve) तथा कुल लागत रेखा (TC-curve) को एक चित्र में एक साथ खींचा जाता है। चित्र नं० ४० में TR-रेखा 'कुल आगम रेखा' है तथा TC-रेखा 'कुल लागत रेखा' है; उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर इन दोनों रेखाओं के बीच खड़ी दूरी (vertical distance) लाभ को बताती है। q_1 से कम उत्पादन पर फर्म को हानि होगी क्योंकि O से q_1 तक के क्षेत्र में TC-रेखा, TR-रेखा के ऊपर रहती है। यदि फर्म q_1 इकाइयों का उत्पादन करती है अर्थात् वह A बिन्दु पर है तो कुल लाभ शून्य होगा क्योंकि इस उत्पादन-स्तर पर TR=TC के, अर्थात् फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। यदि फर्म B बिन्दु पर है अर्थात् वह q_2 इकाइयों का उत्पादन करती है तो भी कुल लाभ शून्य होगा क्योंकि इस उत्पादन स्तर पर भी TR=TC के। 'A' तथा 'B' बिन्दुओं को 'break-even points' कहा जाता है क्योंकि इन बिन्दुओं पर TR तथा TC बराबर (break-even) होते हैं और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। 'B' बिन्दु के बाद TC रेखा TR रेखा के ऊपर रहती है, इसलिए q_2 उत्पादन के बाद उत्पादन के सभी स्तरों पर फर्म को हानि होगी। q_1 तथा q_2 के बीच उत्पादन के किसी भी स्तर पर फर्म को धनात्मक लाभ (positive profit) प्राप्त होगा। चित्र से स्पष्ट है कि उत्पादन की मात्रा q पर TR तथा TC के बीच खड़ी दूरी MP सबसे अधिक है जो कि अधिकतम लाभ को बताती है। अतः फर्म उत्पादन की मात्रा q पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि उत्पादन के इस स्तर पर उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।
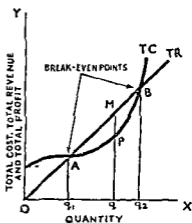
चित्र—४०

आलोचना—चित्र नं० ४० द्वारा फर्म के साम्य को दिखाना पूर्णत एक बहुत भद्दा (cumbersome) तरीका है। इसके दो कारण हैं : (i) में खड़ी दूरी को एक निगाह डाल कर सदैव आसानी से ज्ञात नहीं किया जा निगाह में वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ज्ञात करना असम्भव है, केवल ही देख कर बताया जा सकता है। जैसे चित्र नं० ४० में Oq उत्पादन प्रति इकाई कीमत को ज्ञात करने के लिए कुल आगम Mq को उत्पादन देकर ज्ञात करना पड़ेगा।

६. फर्म का साम्य—सीमान्त तथा औसत रेखाओं की (EQUILIBRIUM OF A FIRM—MARGINAL AND AVERAGE CURV

१. फर्म के साम्य की सामान्य दशा : MR=MC (and MC must b. must cut MR from below)

एक फर्म साम्य की स्थिति में तब होगी जब उसके कुल उत्पादन में होता। फर्म अपने कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन (वृद्धि या कमी) तब नहीं 'अधिकतम लाभ' प्राप्त हो रहा हो। फर्म को अधिकतम लाभ तब प्राप्त होगा के हो। फर्म के साम्य की यह दशा बाजार की सभी स्थितियों में, चाहे पूर्ण एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता, लागू होती है, इसलिए इस दशा को फर्म के दशा (general condition of equilibrium) कहते हैं।

माना कि MR अधिक है MC से जैसा कि चित्र नं० ४१ में विन्दु A के आगे है MC रेखा के, तो फर्म अ बढ़ायेगी (जैसा कि चित्र में है) क्योंकि इस दशा में फर्म अप बढ़ा कर अपने लाभ में वृद्धि परन्तु जब फर्म विन्दु B पर पहुँच वह उत्पादन को नहीं बढ़ायेगी MR=MC के है; अर्थात विन्दु को अधिकतम करने की सब सम्भा हो जाती हैं;[4] विन्दु B 'अधिकतम विन्दु' ('Point of Maximum I
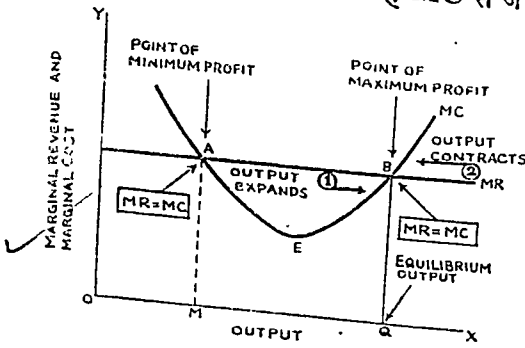
चित्र—४१

---

3 जब MR, MC से अधिक होती है तो इसका अभिप्राय है कि एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम (अर्थात MR) अधिक होगा उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत MC) से; स्पष्ट है कि फर्म को अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करके बेचने से ला दूसरे शब्दों में, जब तक MR अधिक रहती है MC से, तब तक फर्म अपने उत्पादन कर लाभ में वृद्धि कर सकेगा।

4 जब MR=MC के हो जाती है तो इसका अभिप्राय है कि एक अतिरिक्त इकाई को करके बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात MR) उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत MU) के बराबर हो जाता है और ऐसी स्थिति में फर्म अपने उत्पादन को बढ़ा कर अधिकतम नहीं कर सकती; अतः विन्दु B पर जब MR=MC के हो जाती है तो लिए लाभ को अधिकतम करने की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

अर्थात 'फर्म के साम्य की स्थिति' को बताता है और OQ 'उत्पादन की साम्य मात्रा' ('equilibrium output') को बताता है। चित्र से स्पष्ट है कि अधिकतम लाभ के बिन्दु B (जहां पर MR=MC के है) पर MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है अथवा MC-रेखा चढती हुई (rising) है।

माना कि MR कम है MC से जैसा कि चित्र नं० ४१ में बिन्दु B के बाद मे MR-रेखा MC-रेखा के नीचे है, तो फर्म अपने उत्पादन को घटायेगी[5] जैसा कि चित्र मे तीर नं० २ बताता है और वह उत्पादन को घटा कर हानि को कम करती जायेगी, उत्पादन का घटना (contraction) बिन्दु B पर समाप्त हो जायेगा क्योंकि बिन्दु B पर MR=MC के है और यहां पर अधिकतम लाभ प्राप्त होने से फर्म साम्य की स्थिति मे आ जायेगी।

चित्र न० ४१ मे बिन्दु A पर भी MR=MC के है, परन्तु यह बिन्दु है 'निम्नतम लाभ का बिन्दु' ('Point of Minimum Profit') है। बिन्दु A पर MC-रेखा MR-रेखा को ऊपर से काटती है, इसका अभिप्राय है कि यदि फर्म अपने उत्पादन को 'A' बिन्दु के आगे बढाती है अर्थात OM मात्रा से अधिक बढाती है तो सीमान्त लागत (MC) घटती जाती है और E बिन्दु पर निम्नतम हो कर बढ़ने लगती है, परन्तु बिन्दु 'A' से बिन्दु 'B' तक के क्षेत्र (range) मे अर्थात उत्पादन के M से Q तक के क्षेत्र मे MR-रेखा MC रेखा के ऊपर रहती है अर्थात इस क्षेत्र मे फर्म अपने उत्पादन को बढा कर लाभ को अधिकतम कर सकती है; 'B' बिन्दु पर उसे 'अधिकतम लाभ' प्राप्त होगा तथा बिन्दु 'B' से आगे जाने पर उसे हानि होने लगेगी।

स्पष्ट है कि एक फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त करने या फर्म के साम्य के लिए MC-रेखा को MR-रेखा को ऊपर से नही बल्कि नीचे से काटना चाहिए। संक्षेप में, एक फर्म के साम्य के लिए—

MR=MC (and MC must cut MR from below or MC must be rising)

२. पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए अपनी वस्तु की मांग रेखा अर्थात् औसत आगम रेखा (AR-curve) एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा AR, MR के बराबर होती है। उद्योग में वस्तु की कुल पूर्ति तथा उसकी कुल मांग द्वारा वस्तु का जो मूल्य निर्धारित होता है उसे प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है और इस प्रकार एक फर्म के लिए AR-रेखा पड़ी हुई रेखा होती है। पडी हुई AR-रेखा का अर्थ है कि दिये हुए मूल्य पर एक फर्म अपनी वस्तु की कितनी ही मात्रा (कम या अधिक) बेच सकती है। यह चित्र नं० ४२ मे दिखाया गया है।

चित्र न० ४२ से स्पष्ट है कि उद्योग की पूर्ति रेखा SS तथा मांगरेखा DD_1 है, दोनों P_1 बिन्दु पर काटती हैं; अतः उद्योग की वस्तु का मूल्य P_1Q_1 निर्धारित होता है। फर्म इस मूल्य P_1Q_1 को दिया हुआ मान लेगी अर्थात् फर्म के लिए मूल्यरेखा (Price-line) या मांग रेखा (Demand curve) या औसत आगम रेखा (AR-curve) पड़ी हुई रेखा P_1L_1 होगी; इस दी हुई कीमत P_1O (अर्थात् P_1Q_1) को फर्म दिया हुआ मान लेगी और इसके अनुसार अपने उत्पादन को निश्चित करेगी; इस दी हुई कीमत पर वह उत्पादन की कितनी ही मात्रा q_1 या q_2 या q_3 बेच सकेगी। यदि उद्योग की वस्तु की कुल मांग कम हो जाती है तथा मांग रेखा

[5] यदि MR कम है MC से, तो इसका अभिप्राय है कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात MR) कम है उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत (अर्थात MC) से, स्पष्ट है कि फर्म को अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से हानि होगी; अतः फर्म उत्पादन को घटाती जायेगी जब तक कि MR बराबर MC के न हो जाये।

गिरकर DD_2 हो जाती है तो अब नया मूल्य P_2Q_2 होगा; इस स्थिति में फर्म की
P_2L_2 हो जायेगी। माँग और कम हो जाने से उद्योग की माँग रेखा DD_3 हो जाती
मूल्य गिरकर P_3Q_3 हो जाता है। जब फर्म की AR-रेखा P_3L_3 हो जायेगी।
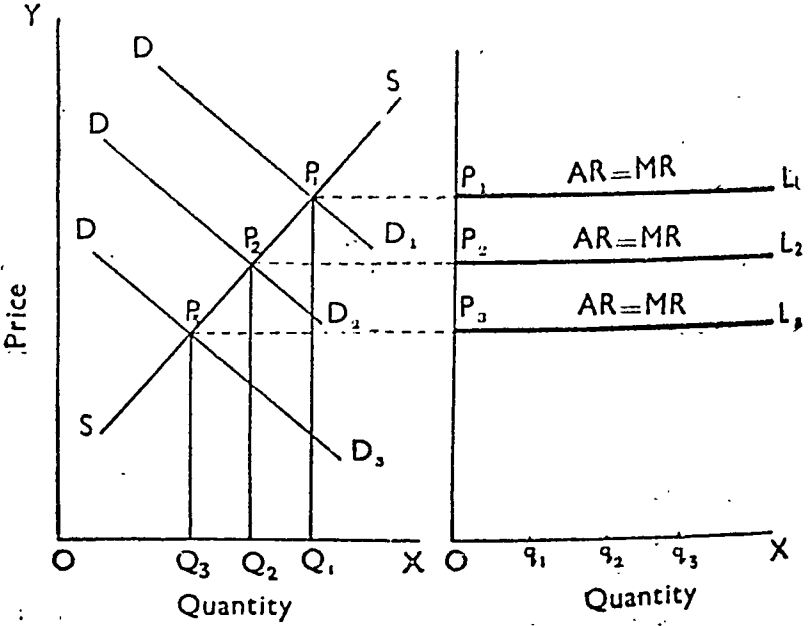
चित्र—४२

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की कीमत एक ही रहती है और दी हुई की
फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। अतः **वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम (MR) वही होगा जो कि वस्तु की कीमत (AR) है, अर्थात्** AR,
बराबर होगी।

२. पूर्ण प्रतियोगिता में AR (कीमत) MC के बराबर होती है। हम देख चु
फर्म के साम्य के लिए MR=MC की दशा का होना आवश्यक है, तथा पूर्ण प्रतियो
स्थिति में AR=MR के होती है। चूँकि AR=MR तथा MR=MC, इसलिए :

$$AR=MR=MC$$

$$\text{या } AR\ (Price)=MC$$

स्पष्ट है कि **पूर्ण प्रतियोगिता में** AR अर्थात् कीमत, सीमान्त लागत (MC) के
होती है। यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि जब कीमत (AR) सीमान्त लागत (
के बराबर है तो सीमान्त लागत चढ़ती हुई होनी चाहिए; अर्थात्,

Price (AR)=Marginal Cost (and Marginal Cost must be rising)[6]

---

6 हम पहले देख चुके हैं कि अधिकतम लाभ की प्राप्ति (अर्थात् फर्म के सन्तुलन की स्थि
लिए MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है अर्थात् MC-रेखा चढ़ती हुयी होती है
प्रतियोगिता में चूँकि MR तथा AR बराबर होती है तथा एक ही पड़ी रेखा द्वारा व्यक्त
जाती हैं इसलिए यह भी कहा जाता है कि MC-रेखा AR-रेखा (या कीमत रेखा) को
से काटती है; अर्थात् जब कीमत (AR) बराबर होती है MC के, तो MC-रेखा चढ़ती
होगी।

४. अल्पकाल में फर्म का साम्य (Equilibrium of a firm in the short-run)

अल्पकाल में इतना समय नहीं होता कि उत्पत्ति या पूर्ति को घटा-बढ़ा कर पूर्णतया माँग के अनुरूप किया जा सके; इसलिए अल्पकाल में एक फर्म को लाभ या शून्य लाभ (अर्थात सामान्य लाभ) या हानि हो सकती है। इन तीनों स्थितियों का विवरण नीचे दिया गया है।

लाभ की स्थिति : पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म की कोई मूल्य-नीति नहीं होती, वह उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को दिया हुआ मान लेती है; अर्थात फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' या 'माँग-रेखा' या 'AR-रेखा' या 'AR=MR रेखा' एक पड़ी हुई रेखा होती (जैसा कि पहले हम चित्र नं० ४२ में बता चुके हैं)। माना कि चित्र नं० ४३ में एक फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' (जो कि उद्योग द्वारा निर्धारित होती है) की स्थिति TL है। फर्म इस कीमत-रेखा को दिया हुआ मान लेगी और वस्तु के उत्पादन की वह मात्रा निर्धारित करेगी जहाँ पर कि MR=MC के है। चित्र नं० ४३ से स्पष्ट है कि

चित्र—४३
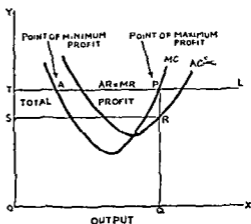
विन्दु 'A' तथा विन्दु 'P' पर MR=MC के है परन्तु विन्दु 'A' पर MC-रेखा MR-रेखा को ऊपर से काटती है या MC-रेखा गिरती हुयी है, इसलिए विन्दु 'A' 'न्यूनतम लाभ का विन्दु' (Point of Minimum Profit) होगा तथा फर्म के साम्य की स्थिति को नहीं बतायेगा। विन्दु 'B' पर MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है अर्थात MC-रेखा चढ़ती हुयी (rising) है, इसलिए विन्दु 'B' 'अधिकतम लाभ का बिन्दु' (Point of Maximum Profit) होगा तथा फर्म के साम्य की स्थिति को बतायेगा। फर्म को कितना लाभ होगा इस बात को जानने के लिए हम AR (अर्थात कीमत) तथा AC रेखाओं के बीच खड़ी दूरी को ज्ञात करते हैं। चित्र न० ४३ में AR तथा AC रेखाओं के बीच खड़ी दूरी PR है जो कि प्रति इकाई लाभ को बताती है; कुल लाभ को ज्ञात करने के लिए PR को कुल उत्पादन OQ या SR से गुणा कर दिया जाता है; अर्थात कुल लाभ=PR×SR=आयत (rectangle) SRPT का क्षेत्रफल (area)। अतः, जब फर्म की 'कीमत-रेखा' या 'AR=MR रेखा' की स्थिति TP है, तो—

कीमत (Price)=PQ
उत्पादन (Output)=OQ
कुल लाभ(Total Profit)=SRPT

शून्य लाभ या सामान्य लाभ की स्थिति—चित्र न० ४४ में माना कि फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' की स्थिति (जो कि उद्योग द्वारा निर्धारित होती है) RT है। फर्म 'P' विन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि इस विन्दु पर MR=MC के है तथा तथा MC रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है। इस स्थिति में फर्म को लाभ होगा या हानि, इसको जानने के लिए हम AR तथा AC रेखाओं की तुलना करते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि AR-रेखा AC-रेखा को निम्नतम विन्दु पर स्पर्श

करती है, अर्थात P बिन्दु पर AR (कीमत)=AC के है; चूँकि कीमत (AR) ठीक ... (AC) के बराबर है, इसलिए फर्म को अतिरिक्त लाभ (excess profit) ... होता अर्थात उसे 'शून्य लाभ' प्राप्त ... ध्यान रहे कि अर्थशास्त्र में औसत (AC) के अन्तर्गत 'सामान्य लाभ'[7] होता है, इसलिए जब कीमत (AR) लागत (AC) के बराबर होती है तो ... अर्थ है कि फर्म को केवल 'सामान्य ... प्राप्त होता है। अतः बिन्दु P को 'शू... बिन्दु' या 'सामान्य लाभ बिन्दु' कह... संक्षेप में, जब फर्म के लिए 'कीमत ... AR-रेखा की स्थिति RT है, तो—
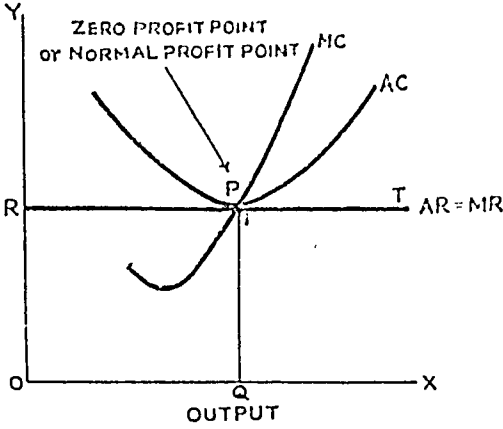
चित्र—४४

मूल्य (Price)=PQ
उत्पादन (Output)=OQ

फर्म को केवल 'सामान्य लाभ' (या शून्य लाभ) प्राप्त होता है।

हानि की स्थिति—हानि को न्यूनतम करना (Minimisation of loss)—... चित्र नं० ४५ में फर्म के लिए 'कीमत-रेखा' या 'AR-रेखा' या 'AR=MR रेखा' (जो कि ... द्वारा निर्धारित होती है) की स्थिति T C है। फर्म P बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी ... इस बिन्दु पर MR=MC के है तथा MC-रेखा MR-रेखा को नीचे से काटती है या M... कटाव के बिन्दु P पर चढ़ती हुई है। इस स्थिति में फर्म को लाभ होगा या हानि इसको ज... लिए हम AR तथा AC रेखाओं की तुलना करते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि औसत लागत (AC) रेखा ऊपर है कीमत (AR) रेखा TC के, इसलिए फर्म को हानि होगी। AC-रेखा तथा AR-रेखा TC के बीच खड़ी दूरी RP प्रति इकाई हानि को बताती है ; कुल हानि को ज्ञात करने के लिए हम प्रति इकाई हानि RP को कुल उत्पादन O Q या TP से गुणा करते हैं, अर्थात् कुल हानि=RP×TP= TPRL। संक्षेप में, **यदि फर्म की कीमत रेखा की** स्थिति TC है तो—
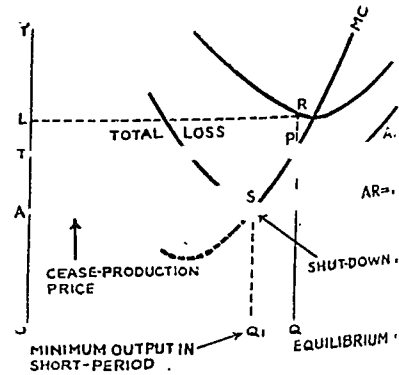
चित्र—४५

---

7 'सामान्य लाभ' लाभ का वह न्यूनतम स्तर है जो कि एक साहसी को व्यवसाय वि... बनाये रखने के लिए आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, सामान्य लाभ व्यवसाय विशेष में ... के कार्य करते रहने की न्यूनतम लागत है और इसलिए अर्थशास्त्री 'सामान्य लाभ' को ... का अंग मानते हैं, अर्थात् लागत में शामिल करते हैं। 'सामान्य लाभ' के विस्तृत विवरण ... लिए इस पुस्तक के खंड 'वितरण' के अध्याय ५ को देखिए।

मूल्य (Price) = PQ
उत्पादन (Output) = OQ
कुल हानि (Total loss) = TPRL

परन्तु यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि क्या फर्म हानि होने पर भी उत्पादन को जारी रखेगी ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हम AVC-रेखा का सहारा लेते है। दीर्घकाल मे एक उत्पादक वस्तु को उस कीमत पर बेचेगा जिस पर उसकी कुल लागत (अर्थात स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत) निकल आये, यदि कीमत कम है और दीर्घकाल मे उसकी कुल लागत नही निकलती तो वह उत्पादन बन्द कर देगा। परन्तु अल्पकाल मे यदि एक उत्पादक की कुल लागत में से केवल परिवर्तनशील लागत निकल आती है (और स्थिर लागत बिलकुल नही निकलती या आशिक रूप से निकलती है) तो फर्म हानि की स्थिति मे भी उत्पादन जारी रखेगा। चित्र नं० ४५ मे यदि 'कीमत-रेखा' या 'AR-रेखा' की स्थिति AB हो जाती है तो वस्तु की कीमत (AR) ठीक AVC के बराबर होगी जैसा कि चित्र में 'S' बिन्दु बताता है। इस बिन्दु से नीचे कीमत होने पर फर्म अल्पकाल में भी उत्पादन बन्द कर देगी (क्योंकि उसकी परिवर्तनशील लागत भी नहीं निकलेगी), इसलिए बिन्दु 'S' को 'उत्पादन बन्द होने का बिन्दु' ('Shut-down point') कहते हैं तथा कीमत OA या कीमत-रेखा AB 'उत्पादन बन्द होने की कीमत' ('Cease-production Price') को बताती है। OQ_1 'अल्पकाल में न्यूनतम उत्पादन-मात्रा' ('Minimum Output in Short Period') को बताता है।

अल्पकाल में AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु द्वारा बताये गये उत्पादन से कम (अर्थात् OQ उत्पादन से कम) उत्पादन की मात्रा की पूर्ति नहीं की जायेगी। इसलिए अल्पकाल में एक फर्म की पूर्ति रेखा MC-रेखा का चढ़ता हुआ वह भाग होगा जो कि AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु (चित्र में 'S' बिन्दु) के ऊपर है; 'S' बिन्दु के नीचे MC-रेखा को टूटी रेखा द्वारा दिखाया गया है जिसका अर्थ है कि 'S' बिन्दु से नीचे वस्तु की कोई पूर्ति नही होगी।

५. दीर्घकाल में फर्म का साम्य (Equilibrium of a firm in the long period)

दीर्घकाल मे इतना लम्बा समय होता है कि वस्तु की पूर्ति को घटा-बढ़ा कर पूर्णतया माँग के अनुरूप किया जा सकता है। अतः, दीर्घकाल में एक फर्म को न लाभ होगा और न हानि बल्कि केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होगा। यदि फर्म को दीर्घकाल में लाभ प्राप्त होता है अर्थात् AR (कीमत) अधिक है AC से, तो लाभ मे आकर्षित होकर अन्य फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी, परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी और कीमत (AR) घटकर ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। यदि फर्म को हानि होती है अर्थात् कीमत (AR) कम है औसत लागत (AC) से, तो इस हानि के कारण कई फर्में उद्योग को छोड़ देंगी, परिणामस्वरूप पूर्ति कम होगी और कीमत (AR) बढ़कर ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। स्पष्ट है कि दीर्घकाल में एक फर्म को केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होगा; अर्थात् दीर्घकाल में AR=AC के होगी। इसके अतिरिक्त फर्म के साम्य के लिए MR=MC (and MC must cut MR from below or MC must be rising) की दशा तो पूरी होनी ही चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य के लिए निम्न दोहरी दशा (double condition) पूरे होनी चाहिए—

(i) MR=MC
(ii) AR=AC

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता में AR=MR के होती है, इसलिए फर्म के दीर्घकालीन स
उपयुक्त दोहरी दशा को निम्न प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है—

AR (Price)=MR=MC=AC

अर्थात्

Price=Marginal Cost=Average Cost

चूंकि दीर्घकाल में AR, MR, MC तथा AC सब बराबर होती हैं, इसलिए
जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य के लिए '
बराबर होती हैं' ('everything is equal')।
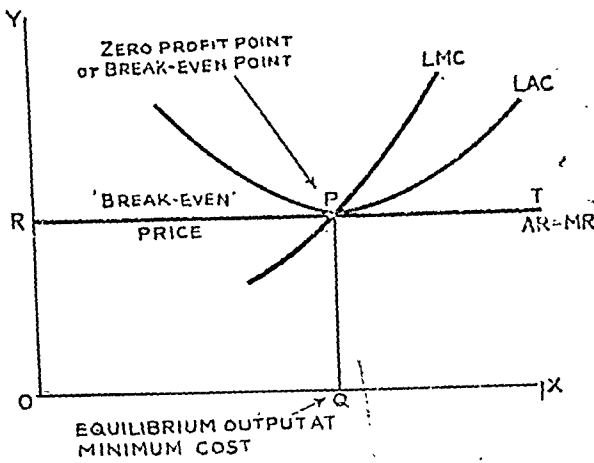
चित्र—४६

फर्म के दीर्घकालीन
चित्र नं० ४६ द्वारा दिखाया ग
LAC दीर्घकालीन औसत लागत
(Long-run average cost c
है, तथा LMC दीर्घकालीन
लागत रेखा (Long-run ma
cost curve) है। AR-रेखा
रेखा के न्यूनतम विन्दु P पर स्प
(tangent) है अर्थात् P वि
AR=AC के हैं; तथा P वि
MR=MC के भी है। स्पष्ट
**विन्दु 'P' पर साम्य की दुहरी दश
होती है; अत:**

मूल्य (Price)=PQ

उत्पादन की साम्य मात्रा (न्यूनतम लागत पर) (Equilibrium Output at mini
cost)=OQ **फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त है।**

चूंकि 'P' बिन्दु पर 'शून्य लाभ' या 'सामान्य लाभ' प्राप्त होता है, इसलिए इस
को 'शून्य लाभ बिन्दु' (Zero Profit Point) या 'सामान्य लाभ विन्दु' (Normal P
Point) कहते हैं। चूंकि विन्दु P पर AR तथा AC बराबर (break-even) हैं, इसलि
विन्दु को 'Break-even Point' भी कहते हैं तथा कीमत OR या कीमत रेखा RT 'Br
even Price' को बताती है।

चित्र से स्पष्ट है कि 'P' बिन्दु पर AC न्यूनतम है और कीमत (AR) इस न्यूनतम
के बराबर है; दूसरे शब्दों में, **दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साम्य की अवस्था
फर्म 'न्यूनतम-लागत-फर्म'** (least-cost firm) **होगी।** ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण
पूर्ण प्रतियोगिता में AR-रेखा (या price line) पड़ी हुई (horizontal) रेखा होती है, इ
AC-रेखा के निम्नतम विन्दु पर ही AR-रेखा स्पर्श-रेखा (tangent) होगी; अर्थात् AR (pr
बराबर होगी न्यूनतम औसत लागत के। स्पष्ट है कि दीर्घकाल में एक फर्म 'न्यूनतम-लागत-
होगी।

एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन
[PRICE AND OUTPUT UNDER MONOPOLY]

१. एकाधिकारी के अभिप्राय
(IMPLICATIONS OF MONOPOLY)

एकाधिकारी के लिए तीन बातों का होना आवश्यक है—(i) एकाधिकारी अपने क्षेत्र में एक ही उत्पादक होता है, अर्थात् फर्म तथा उद्योग एक ही होते हैं। एकाधिकारी एक-फर्म-उद्योग (one-firm-industry) है। (ii) एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती। टेकनीकल शब्दों में, उसके वस्तु की माँग की आड़ी-लोच (cross-elasticity of demand) शून्य होती है। (iii) एकाधिकारी क्षेत्र में फर्मों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें होती हैं।

उपर्युक्त तीनों बातों के परिणामस्वरूप एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है; और वह पूर्ति को घटा-बढ़ा कर वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है, अर्थात् एकाधिकारी की अपनी मूल्य नीति (Price-policy) होती है।

२. मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS)

एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन के निर्धारण का अध्ययन करते समय हम निम्न मुख्य बातें मान कर चलते हैं :

(i) एकाधिकारी के सम्बन्ध में भी (पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति) हम 'आर्थिक विवेकशीलता' (economic rationality) की आधारभूत मान्यता रखते हैं। इसका अर्थ है कि एक एकाधिकारी भी, किसी भी अन्य उत्पादक की भाँति अपने लाभ को अधिकतम करेगा।

(ii) एकाधिकार में उत्पादक एक होता है अर्थात् उत्पादकों में परस्पर प्रतियोगिता का प्रश्न ही नहीं उठता, वह शून्य होती है; परन्तु यह मान लिया जाता है कि क्रेताओं या उपभोक्ताओं में प्रतियोगिता होती है तथा उनकी संख्या बहुत अधिक होती है; परिणामस्वरूप कोई भी क्रेता व्यक्तिगत रूप से वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता, एक क्रेता की दृष्टि से वस्तु की कीमत दी हुई होती है।

(iii) प्रत्येक क्रेता (या उपभोक्ता) विवेकपूर्ण (rational) होता है; वह वस्तु को अपने अधिमान के एक क्रम (a scale of preferences) के आधार पर खरीदता है। इस प्रकार विभिन्न कीमतों पर उसके द्वारा माँगी जाने वाली मात्राओं का अनुमान लगाया जा सकता है, अर्थात् प्रत्येक क्रेता की माँग रेखा खींची जा सकती है; इन व्यक्तिगत माँग-रेखाओं को जोड़ कर (एकाधिकारी की वस्तु की) कुल माँग ज्ञात की जा सकती है। दूसरे शब्दों में; एकाधिकारी अपनी वस्तु की कुल माँग का अनुमान लगा सकता है।

३. एकाधिकारी का उद्देश्य
(OBJECT OR GOAL OF A MONOPOLIST)

किसी भी अन्य उत्पादक की भाँति एकाधिकारी का उद्देश्य अपने 'लाभ' या 'शुद्ध . आगम' (net monopoly revenue) को अधिकतम करना होता है। अधिकतम लाभ 'प्रति इकाई लाभ को अधिकतम करने से नहीं है, बल्कि 'कुल लाभ को अधिकतम' कर है। एक एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को नीचा रखकर प्रति इकाई कम लाभ सकता है, परन्तु वस्तु को अधिक माला में बेचकर कुल लाभ को अधिकतम कर सकता है विपरीत, यह सम्भव है कि वस्तु की प्रति इकाई कीमत ऊँची हो और इस प्रकार प्रति इ अधिक हो, परन्तु ऐसी स्थिति में वस्तु की माला बहुत कम बिक सकती है और परिणा लाभ पहले की अपेक्षा कम हो सकता है। (ये स्थितियाँ माँग की दशा अर्थात् माँग पर निर्भर करेंगी।) गणित की भाषा में, अधिकतम लाभ का अर्थ है 'प्रति इकाई लाभ की गयी माला' (profit per unit × quantity sold) को अधिकतम करना। संक्षेप में, कारी 'अधिकतम कुल लाभ' को प्राप्त करना चाहता है, न कि 'अधिकतम प्रति इकाई ला

४. एकाधिकारी एक साथ कीमत तथा पूर्ति की माला दोनों को निश्चित नहीं कर सकता
(A MONOPOLIST CANNOT FIX BOTH PRICE AND OUTPUT SIMULTANE

यद्यपि एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है, परन्तु माँग प कोई अंकुश नहीं होता। इसलिए वह मूल्य तथा पूर्ति की माला दोनों को एक साथ नि कर सकता; एक समय पर इन दोनों में से वह किसी एक को—कीमत को या पूर्ति को—ही निश्चित कर सकता है। यदि वह पूर्ति की माला निश्चित करता है तो दशा के अनुसार उसे वस्तु की कीमत निर्धारित करनी पड़ेगी। इसके विपरीत, यदि निश्चित करता है तो इस निश्चित की गयी कीमत पर माँग के अनुसार उसे पूर्ति निर्धारित करनी पड़ेगी। **प्रायः एकाधिकारी कीमत को निश्चित करता** है क्योंकि इस की गयी कीमत पर वस्तु की जितनी माँग होगी उसके अनुसार वह सुगमता से वस्तु की माला निर्धारित कर लेगा। इसके विपरीत, वह पूर्ति की माला भी निश्चित कर सकता माँग की दशा के अनुसार कीमत निर्धारित हो सकती है, परन्तु माँग की दशा अनिश्चित तथा उस पर एकाधिकारी का कोई नियन्त्रण नहीं होता। यह सम्भव है कि माँग में अधि होने पर उसकी निश्चित की हुई कुल पूर्ति की माला न बिके और उसे हानि उठानी पड़े। **पूर्ति की माला तथा कीमत में उसके लिए कीमत को निश्चित करना अधिक सुरक्षित और वह प्रायः कीमत ही निश्चित करता है।**

५. दो रीतियाँ
(TWO APPROACHES)

एकाधिकारी के साम्य के लिए अर्थात् एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन-f के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जा सकता है :

(i) **कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति** (Total revenue and total urves approach)—इस रीति के अन्तर्गत जिस स्थान पर कुल आगम (TR) तथा कुल C) के ड़ी दूरी अधिकतम होगी वहाँ पर एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त त् ति में होगा।

s 'maximum total profit,' not 'maximum unit profit.'

1

(ii) सीमान्त विश्लेषण रीति (Marginal analysis approach) अर्थात् सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति (Marginal and Average Curves Approach)—इस रीति द्वारा एकाधिकारी साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि सीमान्त आगम (MR)=सीमान्त लागत (MC) के।

नीचे उपर्युक्त दोनों रीतियों का विवेचन किया गया है।

६. कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति
(TOTAL REVENUE AND TOTAL COST CURVES APPROACH)

उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल आगम रेखा (TR) तथा कुल लागत रेखा (TC) की तुलना करके अधिकतम लाभ की स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है। एकाधिकारी वस्तु की वह मात्रा उत्पादित करेगा जहाँ पर कि TR तथा TC के बीच खड़ी दूरी सबसे अधिक हो क्योंकि इस स्थिति में ही उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

चित्र नं० ४७ में OM से कम या ON से अधिक उत्पादन करने से फर्म को ऋणात्मक लाभ (negative profit) अर्थात् हानि होगी क्योंकि इन दोनों स्थितियों में TC-रेखा ऊपर है TR-रेखा के। MN के बीच उसको धनात्मक लाभ (positive profit) होगा; फर्म OQ मात्रा उत्पादन करेगी क्योंकि इस मात्रा पर उसको अधिकतम लाभ जो कि EF है, प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में साम्य की अवस्था में फर्म OQ मात्रा उत्पादन करेगी। बिन्दु 'A' तथा बिन्दु 'B' पर TR और TC बराबर (break-even) है अर्थात् इन बिन्दुओं पर एकाधिकारी को शून्य लाभ (या सामान्य लाभ) प्राप्त होता है; इन बिन्दुओं को 'Break-even points' कहते हैं।
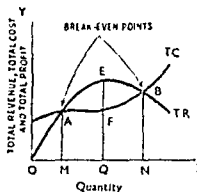
चित्र—४७

आलोचना—यह रीति बहुत भद्दी (cumbersome) है। इसके कारण है : (i) TR तथा TC के बीच अधिकतम खड़ी दूरी को एक ही निगाह में प्रायः ठीक प्रकार से ज्ञात करना कठिन हो जाता है; तथा (ii) चित्र को देखकर प्रत्यक्ष रूप से वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ज्ञात नहीं किया जा सकता है, कुल आगम (चित्र में EQ) में कुल उत्पादन (चित्र में OQ) का भाग देने पर ही प्रति इकाई कीमत मालूम की जा सकती है।

इन कमियों के कारण दूसरी रीति अर्थात् 'सीमान्त और औसत रेखाओं की रीति' अधिक अच्छी समझी जाती है।

७. सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति
(MARGINAL AND AVERAGE CURVES APPROACH)

१. एक एकाधिकारी के साम्य के लिए, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) का बराबर होना आवश्यक है। एकाधिकारी साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन (वृद्धि या कमी) न हो रहा हो। उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन तब नहीं होगा जबकि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो; अधिकतम लाभ तब प्राप्त होगा जबकि MR=MC के हो।

सीमान्त आगम (MR) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल (TR) में वृद्धि, तथा सीमान्त लागत (MC) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत (TC) में वृद्धि। यदि (MR) अधिक है MC से, तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक इकाई को बेचने से कुल आगम में वृद्धि अधिक है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में वृद्धि के; अर्थात् एकाधिकारी को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके लाभ होगा। इस प्रकार जब तक MR अधिक है MC से, तो एकाधिकारी अतिरिक्त उत्पादन करके अपने लाभ को बढ़ा सकेगा, परन्तु जब MR, MC के बराबर हो जाएगा तो अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम ठीक उस अतिरिक्त इकाई की लागत के बराबर होगा तथा एकाधिकारी के लिए अब उत्पादन को और बढ़ा कर लाभ को अधिकतम करने की सभी सम्भावनाएं समाप्त हो जाती है। यदि MR कम है MC से, तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त इकाई बेचने से कुल आगम में वृद्धि कम है अपेक्षाकृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में वृद्धि के; अर्थात् एकाधिकारी को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से हानि। अतः एकाधिकारी उत्पादन को केवल उस सीमा तक ही करेगा जहाँ पर कि अतिरिक्त इकाई बेचने से प्राप्त आगम बराबर है उस अतिरिक्त इकाई की लागत के, अर्थात् जहाँ पर MR = MC हो। स्पष्ट है कि एकाधिकारी के साम्य के लिए MR = MC के होना आवश्यक है।

२. मांग पक्ष (Demand Side) : एकाधिकार के लिए अपनी वस्तु की मांग रेखा AR-रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है तथा सीमान्त आगम (MR) कीमत (AR) होता है।

नीचे को गिरती हुई AR-रेखा का अर्थ है कि एकाधिकारी को वस्तु की अधिक मात्रा के लिए कीमत घटानी पड़ेगी। चूंकि एकाधिकारी के पास ही वस्तु की कुल पूर्ति होती है, इस वस्तु की पूर्ति की मात्रा घटाने-बढ़ाने से उसकी कीमत प्रभावित होगी, वस्तु की अधिक मात्रा के लिए उसको कीमत घटानी पड़ेगी। स्पष्ट है कि एकाधिकारी की अपनी एक मूल्य-नीति होती जबकि पूर्ण प्रतियोगिता में एक उत्पादक या फर्म की अपनी कोई कीमत-नीति नहीं होती उसके लिए AR-रेखा (अर्थात मांग रेखा) पड़ी हुई रेखा होती है जिसका अर्थ है कि दी हुई कीमत पर वह वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकता है।

एकाधिकार में सीमान्त आगम (MR), कीमत (AR) से कम होता है। एकाधिकारी को की बिक्री बढ़ाने के लिए कीमत कम करनी पड़ती है। यह तत्त्व, उत्पादन की प्रथम इकाई प्रथम स्तर) को छोड़कर उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर, सीमान्त आगम (MR) को कीमत (अ AR) से कम रखता है।[2] एकाधिकारी जब एक अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए कीमत है तो उसे कीमत की कटौती केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नहीं बल्कि पिछली सब इकाइयों करनी पड़ती है,[3] इसलिए अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) कम होता है क (अर्थात् AR) से।

---

2 The fact that the monopolist must lower price to boost up sales causes marginal reve to be less than price (average revenue) for every level of output except the first.

3 इस बात को एक उदाहरण द्वारा पूर्ण रूप से स्पष्ट किया जा सकता है। माना एकाधिक १० इकाइयों को १ रुपया प्रति इकाई की दर से बेच सकता था, यदि वह १० इकाइयाँ न कर ११ इकाइयाँ बेचता है तो उसे कीमत घटानी पड़ेगी, माना कि वह अब ९५ पैसे प्र इकाई की दर से वस्तु को बेचता है। अतः

एकाधिकारी को कीमत निश्चित करते समय माँग की लोच को भी ध्यान में रखना पड़ता है। यदि उसकी माँग की लोच अधिक है तो वह वस्तु की कीमत अपेक्षाकृत कम रख कर बहुत अधिक मात्रा बेचेगा, ऐसा करने से उसका प्रति इकाई लाभ कम होगा परन्तु कुल लाभ (अर्थात् प्रति इकाई लाभ × बिक्री की गयी मात्रा) अधिकतम होगा। इसके विपरीत, यदि माँग बेलोचदार है तो वह वस्तु की ऊँची कीमत रख सकेगा क्योंकि ऐसा करने से उसकी माँग में कोई विशेष कमी नहीं होगी और वह अपने लाभ को अधिकतम कर सकेगा।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखने की बात है कि "MR-रेखा माँग की लोच पर प्रकाश डालती है तथा MC-रेखा लागत के व्यवहार को बताती है। MR तथा MC के बराबर करने में एकाधिकारी इन दोनों (अर्थात् माँग की लोच तथा लागत) पर ध्यान दे देता है।"[4]

३. पूर्ति पक्ष (Supply Side) : एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूरा या बहुत नियन्त्रण होता है। लागत रेखाओं की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, एकाधिकार के अन्तर्गत अल्पकाल में स्थिर लागत (fixed cost) तथा परिवर्तनशील लागत (variable cost) दोनों होती हैं और दीर्घकाल में केवल परिवर्तनशील लागत ही होती है।

४. अल्पकाल में एकाधिकारी का साम्य (Equilibrium of a monopolist in the short period)—एकाधिकारी वह मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करेगा जहाँ पर कि MR = MC के है। अल्पकाल में एकाधिकारी को 'लाभ' या 'शून्य लाभ' (अर्थात् केवल 'सामान्य लाभ') प्राप्त हो सकता है तथा उसे 'हानि' भी हो सकती है। एकाधिकारी के सम्बन्ध में एक सामान्य धारणा है

सीमान्त आगम (MR)

= ११वीं इकाई से प्राप्त आगम – पिछली १० इकाइयों पर ५ पैसे प्रति इकाई की दर से कीमत की कुल कटौती

= ९५ पैसे – ५० पैसे = ४५ पैसे

११वीं अतिरिक्त इकाई को ९५ पैसे में बेचा जाता है, इसलिए प्रकट रूप से (apparently) ऐसा प्रतीत होता है कि ९५ पैसे ही सीमान्त आगम (MR) है, परन्तु यह MR नहीं है; इस ९५ पैसे में से पिछली १० इकाइयों पर ५ पैसे प्रति इकाई की दर से कीमत में कमी के कारण (९५ – ५०) = ४५ पैसे सीमान्त आगम होगा।

एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम (TR) में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम (MR) कहते हैं; यदि इस मूल परिभाषा को ध्यान में रखें तो भी MR ४५ पैसे के बराबर आयेगा; यह निम्न से स्पष्ट है :

११ इकाइयों को बेचने से कुल आगम	= ११ × ९५ पैसे	= १०·४५ रु०
१० इकाइयाँ (यदि १० इकाइयाँ बेची जाती) के बेचने से कुल आगम	= १० × १ रु०	= १०·०० रु०
अतः ११वीं अतिरिक्त इकाई के बेचने से कुल आगम में वृद्धि (अर्थात् MR) =		४५ पैसे

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि MR (जो कि ४५ पैसे है), AR (जो कि ९५ पैसे है) से कम है।

4 "Elasticity of demand is reflected in the marginal revenue curve, and the behaviour of costs in the marginal costs curve. In equalising marginal revenue and marginal cost the monopolist shall have taken account of both these factors".

कीमत (Price) = PQ
उत्पादन की मात्रा (Output) = OQ
कुल लाभ (Total Profit) = PLMN

चित्र नं० ४९ में एकाधिकारी को शून्य लाभ प्राप्त होता है। एकाधिकारी की वस्तु की मांग कमजोर हो सकती है और ऐसी दशा में कीमत (AR) ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो सकती है; अतः एकाधिकारी को शून्य लाभ प्राप्त होगा।[7] चित्र नं० ४९ में E बिन्दु पर MR = MC के, इस बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा AR को P बिन्दु पर तथा X-axis को Q बिन्दु पर मिलती हैं। बिन्दु P पर AR = AC के अतः,

चित्र—४९

कीमत = PQ,
उत्पादन की मात्रा = OQ

एकाधिकारी को 'शून्य लाभ' या 'सामान्य लाभ' प्राप्त होता है।

चित्र नं० ५० में एकाधिकारी को हानि हो रही है। एकाधिकारी की वस्तु की मांग बहुत कमजोर होने के कारण कीमत (AR) औसत लागत (AC) से कम हो सकती है और इस स्थिति में एकाधिकारी को हानि होगी, परन्तु हानि दीर्घकाल में समाप्त हो जायेगी और उसे लाभ प्राप्त होगा। सामान्यतया अल्पकाल में भी एकाधिकार के लिए हानि की सम्भावना बहुत कम रहती है। बिन्दु E पर MR = MC के। इस बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा AR-रेखा को P बिन्दु पर मिलती है। अतः PQ कीमत को बतायेगी तथा OQ उत्पादन होगा। AC, AR के ऊपर है, इसलिए इन दोनों के बीच खड़ी रेखा PL प्रति इकाई हानि को बताती है, कुल हानि आयत PLMN के बराबर होगी। चूंकि कीमत (AR), AVC
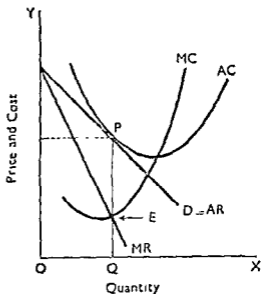
चित्र—५०
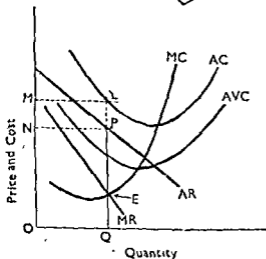
7 (normal profit) शामिल होता है, इसलिए जब एकाधिकारी को सामान्य लाभ प्राप्त होता है। होता, इसलिए यह कहा जाता है कि उसे शून्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

से अधिक है, इसलिए एकाधिकारी अल्पकाल में हानि होने पर भी उत्पादन जारी रखेगा। दीर्घकाल में उसकी यह हानि समाप्त हो जायेगी और उसको लाभ प्राप्त होगा। यदि कीम औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से कम होती तो एकाधिकारी अल्पकाल में उत्पादन कर देता। संक्षेप में,

कीमत=PQ

उत्पादन की मात्रा=OQ

कुल हानि=PLMN

५. **दीर्घकाल में एकाधिकारी का साम्य** (Equilibrium of a monopolis long-run)—दीर्घकाल में एकाधिकारी को निश्चित रूप से लाभ प्राप्त होता है। (इसके पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म को दीर्घकाल में कोई लाभ प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसे सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।)

अल्पकाल में तो एकाधिकारी केवल स्थित प्लाण्ट या प्लाण्टों (existing plants) को धीमी या तेज गति से चला कर ही उत्पादन को माँग के अनुरूप करता है दीर्घकाल में वह स्थित प्लाटों में से कुछ को बेकार उत्पादन क्षमता (productive ca कम कर सकता है या नये प्लाण्टों को लगाकर उत्पादन क्षमता बढ़ा सकता है, और इस उत्पादन को माँग के अनुरूप कर सकता है। दीर्घकाल में एकाधिकारी-उद्योग के विस संकुचन के कारण, एकाधिकारी के लिए कुछ उत्पत्ति के साधनों की लागत में वृद्धि या सकती है और परिणामस्वरूप एकाधिकारी उद्योग, दीर्घकाल में बढ़ती हुई, घटती हुई लागत के अन्तर्गत उत्पादन करेगा। दूसरे शब्दों में, 'बढ़ती हुई लागत के नियम' (Increasing Cost), 'घटती हुई लागत के नियम' (Law of Decreasing Cost) तथा स्थिरता नियम' (Law of Constant Cost) के अन्तर्गत एकाधिकारी मूल्य तथा उत्प निर्धारण को नीचे हम चित्रों स्पष्ट करते हैं।
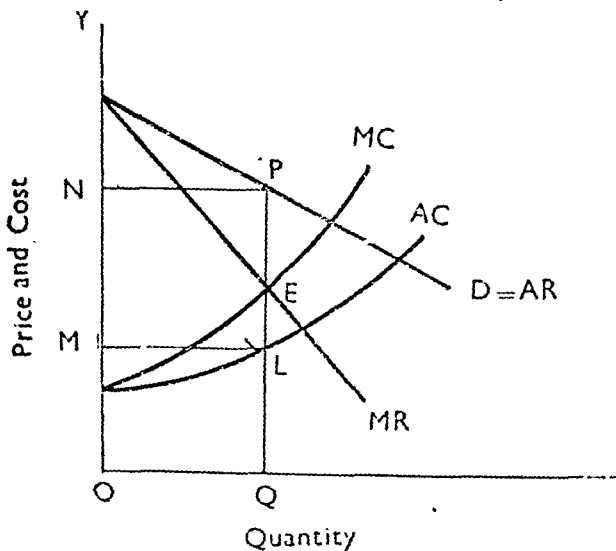
चित्र—५१

चित्र नं० ५१ में कारी 'लागत वृद्धि नियम' के र्गत कार्य कर रहा है, लागत रेखाएँ (AC तथा ऊपर को चढ़ती हुई है। पर MR=MC के; इस होती हुई खड़ी रेखा क (अर्थात् AR-रेखा) को P पर तथा X-axis को Q पर मिलती है; अतः PQ हुई। लाभ के लिए AR तथा रेखाओं की तुलना की जात AR, AC के ऊपर है तथा

के बीच खड़ी दूरी PL प्रति इकाई लाभ को बताती है; कुल लाभ=PL ×LM अर्थात आयत PLMN के क्षेत्रफल के बराबर है। संक्षेप में,

कीमत=PQ

उत्पादन की मात्रा=OQ

कुल लाभ=PLMN

चित्र नं० ५२ में एकाधिकारी 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत कार्य कर रहा है, इसलिए AC तथा MC लागत रेखाएँ नीचे को गिरती हुई हैं। E बिन्दु पर MR=MC; इस बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा PQ कीमत को बताती है। AR तथा AC के बीच खड़ी रेखा PL प्रति इकाई लाभ को बताती है। अतः

कीमत=PQ

उत्पादन की मात्रा=OQ

कुल लाभ=PLMN

चित्र नं० ५३ में एकाधिकारी 'लागत स्थिरता नियम' के अन्तर्गत कार्य कर रहा है, इसलिए लागत रेखाएँ पड़ी हुई रेखा AC=MC के द्वारा दिखायी गयी हैं। बिन्दु E पर MR=MC है। अतः

कीमत=PQ

उत्पादन की मात्रा=OP

कुल लाभ=PEMN
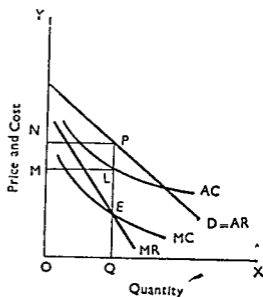
चित्र—५२
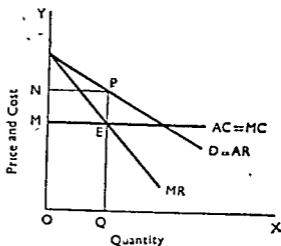
चित्र—५३

क्या एकाधिकारी कीमत सदैव स्पर्द्धात्मक कीमत से ऊँची होती है ?
(IS MONOPOLY PRICE ALWAYS HIGHER THAN COMPETITIVE PRICE)

एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला होता है, इसका पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है तथा वह अपने लाभ को अधिकतम करने का पूरा प्रयत्न करता है। अतः हम यह सोचते हैं कि एकाधिकारी कीमत स्पर्द्धात्मक कीमत से बहुत अधिक ऊँची है। यद्यपि कुछ स्थितियों में, अल्पकाल में, एकाधिकारी की कीमत नीची हो सकती है और उसे केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो सकता है या हानि भी हो सकती है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रायः एकाधिकारी कीमत स्पर्द्धात्मक कीमत से ऊँची होती है और एकाधिकारी अतिरिक्त लाभ अर्जित करता है।

एकाधिकारी की कीमत कितनी ऊँची होगी यह बात माँग की लोच तथा व्यवहार पर निर्भर करेगी। यदि एकाधिकारी वस्तु की माँग बेलोचदार है, तो एकाधि वस्तु की कीमत ऊँची रख सकेगा और ऐसा करने से उसकी बिक्री की मात्रा में कोई नहीं होगी। इसके विपरीत, यदि माँग अत्यधिक लोचदार है तो एकाधिकारी को वस्तु नीची रखनी पड़ेगी ताकि वस्तु की अधिक मात्रा बेचकर वह अपने लाभ को अधिकतम क

कुछ दशाओं में एकाधिकारी वस्तु की कीमत को स्पर्द्धात्मक कीमत से नीचा है : (i) यदि AC तथा MC रेखाएँ तेजी से नीचे को गिर रही हैं, अर्थात एकाधिका ह्रास नियम' (अर्थात् 'उत्पत्ति वृद्धि नियम') के अन्तर्गत उत्पादन कर रहा है, तो वह की अपेक्षाकृत नीची कीमत रखकर लाभ को अधिकतम करेगा। (ii) यदि किसी क्षेत्र के बड़े पैमाने की बचतों के परिणामस्वरूप एकाधिकारी स्थिति प्राप्त की जा सकती है, धिकारी वस्तु का उत्पादन बड़े पैमाने पर करके अत्यन्त निम्न प्रति इकाई लागत परिणामस्वरूप स्पर्द्धात्मक दशाओं की अपेक्षा नीची कीमत रखेगा।

परन्तु कुल मिला कर एकाधिकारी वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति स्पर्द्धात्मक कीमत रहने की होती है।

एकाधिकारी शक्ति की सीमाएँ[8]
(LIMITATIONS OF THE MONOPOLY POWER)

व्यवहार में विशुद्ध या पूर्ण एकाधिकार नहीं पाया जाता। यद्यपि एकाधिकारी तथा मूल्य पर एक बड़ी सीमा तक नियन्त्रण होता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि में एकाधिकारी सदैव बहुत ऊँचा मूल्य रख सकता है। यद्यपि एकाधिकारी अपने क्षेत्र होता है तथा पूर्ति पर उसका लगभग पूर्ण नियन्त्रण होता है, परन्तु माँग पर उसका नहीं होता। यदि उसकी वस्तु की माँग की लोच कम है तो वह ऊँची कीमत रखकर मात्रा बेचकर अपने लाभ को अधिकतम करेगा। इसके विपरीत, यदि उसकी वस्तु अत्यधिक लोचदार है तो उसे कीमत नीची रखनी पड़ेगी और वस्तु की अधिक मात्रा पड़ेगी।

निम्न तत्त्व एकाधिकारी शक्ति को सीमित करते हैं :

(१) **सम्भावित प्रतिद्वन्दियों का भय** (Fear of potential rivals)—यदि एका अपनी वस्तु का मूल्य ऊँचा रखकर बहुत अधिक लाभ अर्जित करता है तो इस लाभ से होकर कुछ शक्तिशाली प्रतिद्वन्दी उसके क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं और इस प्रकार उस धिकार समाप्त हो सकता है। ये प्रतिद्वन्दी देश के अन्दर से उत्पन्न हो सकते हैं या देश से। अत: सम्भावित प्रतिद्वन्दियों के भय से एकाधिकारी अपने मूल्य को अधिक ऊँचा पाता है।

(२) **राज्य का हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण** (Government's intervention and trol)—यदि एकाधिकारी मूल्य अधिक ऊँचा है तो सरकार, सामाजिक हित को ध्यान

---

8 एकाधिकारी शक्ति के आधार या स्रोत, एकाधिकारों का वर्गीकरण, एकाधिकार के परिणाम, एकाधिकार का नियन्त्रण, इत्यादि के लिए इस पुस्तक के प्रथम भाग के अध्या 'एकाधिकार तथा औद्योगिक संयोगीकरण' को देखिये।

हुए हस्तक्षेप कर सकती है और एकाधिकारी को उचित कीमत रखने को बाध्य कर सकती है। सरकार सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं (जैसे, बिजली, गैस इत्यादि) को या तो स्वयं अपने स्वामित्व में रखती है या व्यक्तिगत एकाधिकारियों के लिए कीमत निर्धारित कर देती है। अतः सरकारी हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण के भय से एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत सदैव ऊँची नहीं रख पाता।

(३) नयी स्थानापन्न वस्तुओं की सम्भावना (Possibility of new close substitutes)—यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु की ऊँची कीमत रखकर अधिक लाभ प्राप्त कर रहा है, तो इस बात की सम्भावना रहती है कि एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु की खोज या आविष्कार हो जाये और इसके उत्पादन से एकाधिकार को आघात पहुँचे।

(४) जनमत (Public opinion)—यदि एकाधिकारी ऊँची कीमत रखकर उपभोक्ताओं का शोषण करता है तो उपभोक्ता आपस में संगठित होकर 'उपभोक्ता संघ' बना सकते हैं तथा एकाधिकार के विरुद्ध एक कड़ा जनमत उत्पन्न हो सकता है। परिणामस्वरूप, सरकार हस्तक्षेप करने को बाध्य हो सकती है और एकाधिकारी उद्योग का राष्ट्रीयकरण भी कर सकती है। अतः कड़े जनमत के उत्पन्न हो जाने के डर से एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को अधिक ऊँचा रखने से डरता है।

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य और उत्पादन की तुलना
(COMPARISON OF PRICE AND OUTPUT UNDER PERFECT COMPETITION AND MONOPOLY)

१. पूर्ण प्रतियोगिता के लिए निम्न दशाओं का होना आवश्यक है : *(i)* क्रेता तथा विक्रेताओं की बहुत अधिक संख्या; *(ii)* एक रूप वस्तु; *(iii)* उद्योग में फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश, (iv) बाजार का पूर्ण ज्ञान; तथा (v) उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता।

एकाधिकारी की दशाएँ निम्न हैं : (i) एक उत्पादक होता है; (ii) एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती; तथा (iii) एकाधिकारी क्षेत्र में फर्मों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें होती हैं।

२. एकाधिकार तथा स्पर्द्धात्मक उत्पादक दोनों अपने लाभ को अधिकतम करते हैं। इस दृष्टि से दोनों अपना मूल्य तथा उत्पादन उस बिन्दु पर निर्धारित करते हैं जहाँ पर कि MR, MC के बराबर होगी। यदि MR, MC से अधिक है, तो इसका अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम में वृद्धि उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन-लागत से अधिक है। दूसरे शब्दों में, जब तक MR, MC से अधिक है, तब तक उत्पादन को बढ़ा कर लाभ को बढ़ाने की सम्भावना रहती है, और जब MR, MC के बराबर हो जाती है तो लाभ को अधिकतम करने की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। अतः एकाधिकारी तथा स्पर्द्धात्मक उत्पादक दोनों ही ला[भ] अधिकतम करने का आधारभूत तथा सामान्य सिद्धान्त MR=MC का पालन करते हैं।

परन्तु फिर भी दोनों के मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण में अन्तर है। इसका कारण एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में अन्तर का होना। एकाधिकार में एक [illegible] होता है तथा पूर्ण प्रतियोगिता में अनेक उत्पादक होते हैं, एवं अन्य बातों में भी अन्तर है। अतः लाभ को अधिकतम करने का आधारभूत तथा सामान्य सिद्धान्त (MR=M[C]) [illegible] स्थितियों में भिन्न परिणामों को जन्म देता है।

३. **पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए मांग रेखा अर्थात् AR-रेखा पूर्णत** **होती है।** सरल शब्दों में, AR-रेखा एक पड़ी हुई रेखा होती है। पड़ी हुई AR-रे है कि फर्म दी हुई कीमत में वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। उद्योग में व पूर्ति तथा कुल मांग की शक्तियों द्वारा जो कीमत निर्धारित हो जाती है उसे प्रत्येक हुआ मान लेनी है। एक फर्म व्यक्तिगत रूप से अपनी क्रियाओं से कीमत को प्रभावि सकती; वह दी हुई कीमत के अनुसार अपने उत्पादन को समायोजित करती है। जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म 'मूल्य ग्रहण करने वाली' (price-taker 'मूल्य निर्धारक' (price-maker) नहीं होती; वह केवल 'मात्रा समायोजित (quantity-adjuster) होती है। दूसरे शब्दों में, एक फर्म की कोई 'मूल्य-नीति' ध्यान रहे कि पूर्ण प्रतियोगिता में यद्यपि एक फर्म के लिए मांग रेखा (या AR- रेखा होती है, परन्तु सम्पूर्ण उद्योग के लिए मांग रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है

एकाधिकारी के लिए अपनी वस्तु की मांग रेखा या AR-रेखा नीचे को गिरत **होती है।** इसका अर्थ है कि यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु की अधिक मात्रा को वे है तो उसे कीमत घटानी पड़ेगी। चूंकि एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला उत्पा इसलिए वस्तु की पूर्ति को घटाने या बढ़ाने से कीमत अवश्य प्रभावित होगी। एकाधिकारी की अपनी 'मूल्य-नीति' होती है।

४. **पूर्ण प्रतियोगिता में** सीमान्त आगम (MR) बराबर होता है औ (AR) के। दूसरे शब्दों में, **सीमान्त आगम (MR) तथा मूल्य** (Price) **दोनों बराबर** पूर्ण प्रतियोतिता में वस्तु की कीमत (AR) दी हुई होती है, इसलिए एक फर्म उसी वस्तु की कितनी ही मात्रा बेच सकती है; अर्थात् वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को बेचने आगम (MR) वही होगा जो कि वस्तु की कीमत (AR) है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतिय MR, AR (price) के बराबर होती है; दोनों को एक ही पड़ी रेखा द्वारा व्यक्त किया

एकाधिकार में MR कम होती है AR (कीमत) से। यदि एकाधिकारी वस्तु की रिक्त इकाई बेचना चाहता है तो उसे कीमत (AR) घटानी पड़ेगी, परिणामस्वरूप सीमान्त (MR), कीमत (AR) से कम होगा; इसलिए MR रेखा को AR रेखा के नीचे गिरती द्वारा व्यक्त किया जाता है।

५. **पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा सामान्यतया एकाधिकारी मूल्य ऊँचा तथा उत्प** **होता है।** दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य (AR)=सीमान्त लागत (MC) के, एकाधिकार में मूल्य (AR) अधिक होता है सीमान्त लागत (MC) से। इन दशाओं क विवरण से स्पष्ट किया जाता है :

पूर्ण प्रतियोगिता में AR=MR के और फर्म के साम्य की स्थिति में MR=M इसलिए AR=MR=MC के हुआ। दूसरे शब्दों में, कीमत (AR)=MC के।

एकाधिकार में AR अधिक होती है MR से और एकाधिकारी के साम्य की स्थि MR=MC के होती है; इसलिए AR (कीमत) अधिक होगी सीमान्त लागत (MC) से।

उपर्युक्त विवरण को हम चित्र नं० ५४ द्वारा भी समझा सकते हैं। यह ध्यान चाहिए कि MC-रेखा पूर्ति रेखा को बताती है। पूर्ण प्रतियोगिता में कार्य करने वाली फर्मों की MC-रेखाओं को जोड़ने से सम्पूर्ण उद्योग की पूर्ति रेखा (अर्थात् MC-रेखा) की जा सकती है। चित्र नं० ५४ में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सम्पूर्ण उद्योग की मांग

(अर्थात् AR-रेखा) 'D=AR' द्वारा व्यक्त की गयी है।[9] हम यह मान लेते हैं कि माँग तथा लागत की दशाओं में कोई अन्तर नहीं होता और यह स्पर्द्धात्मक उद्योग एकाधिकारी उद्योग हो जाता है, तो एकाधिकारी के लिए ये ही AR तथा MC रेखाएँ रहती हैं।

हम देख चुके हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता में AR=MR=MC के अर्थात् AR (कीमत) =MC के होती है; जबकि एकाधिकारी कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित करता है जहाँ पर MR=MC के होती है। चित्र नं० ५४ से स्पष्ट है कि स्पर्द्धात्मक उद्योग की माँग रेखा 'D=AR' उसकी पूर्ति रेखा 'MC=S' को 'P' बिन्दु पर काटती है, अतः पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य PQ निर्धारित होगा। एकाधिकारी के लिए K बिन्दु पर, MR=MC के, इसलिए एकाधिकारी मूल्य MT होगा। स्पष्ट है—
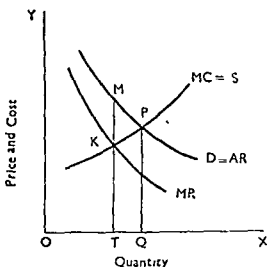
चित्र—५४

एकाधिकारी मूल्य MT अधिक है स्पर्द्धात्मक मूल्य PQ से; एकाधिकारी उत्पादन OT कम है स्पर्द्धात्मक उत्पादन OQ से।

(६) अन्त में, एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में लाभ की स्थिति की तुलना करते हैं। अल्पकाल में, पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों में फर्म को लाभ, शून्य लाभ (अर्थात् सामान्य लाभ) तथा हानि—तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं, परन्तु एकाधिकार में शून्य लाभ तथा हानि की प्रवृत्ति बहुत कम रहती है। दीर्घकाल में स्पर्द्धात्मक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है जबकि एकाधिकारी उद्योग में फर्म को 'लाभ अर्थात् अतिरिक्त लाभ' (excess profit) प्राप्त होना प्रायः निश्चित है।

विभेदकारी एकाधिकारी अथवा मूल्य विभेद
(DISCRIMINATING MONOPOLY OR PRICE DISCRIMINATION)

कई परिस्थितियों में एक एकाधिकारी विभिन्न क्रेताओं को एक ही वस्तु विभिन्न मूल्यों पर बेचना सम्भव तथा लाभदायक पाता है।

मूल्य विभेद की परिभाषा (Definition of Price Discrimination)

श्रीमती जोन रोबिन्सन ने विभेदकारी एकाधिकारी अथवा मूल्य विभेद की परिभाषा इस प्रकार दी है, "एक ही नियन्त्रण के अन्तर्गत उत्पादित एक ही वस्तु को विभिन्न क्रेताओं को विभिन्न कीमतों पर बेचने का कार्य मूल्य विभेद कहा जाता है।"[10]

---

9 ध्यान रहे कि हम एक स्पर्द्धात्मक उद्योग (competitive industry), न कि एक स्पर्द्धात्मक फर्म (competitive firm), की तुलना एकाधिकारी (या एकाधिकारी उद्योग) से कर रहे हैं। स्पर्द्धात्मक उद्योग के लिए माँग-रेखा (या AR-रेखा या 'D=AR' रेखा) गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

10 "The act of selling the same article, produced under a single control, at different prices to different buyers is known as *price discrimination*."
—Mrs. John Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, p. 179.

मूल्य विभेद के लिए दशाएँ (Conditions for Price Discrimination)

पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं के बीच विभेदीकरण (discrimination) सम्भव मूल्य विभेद तथा पूर्ण प्रतियोगिता असंगत (incompatible) हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु बेचने वाले विक्रेता बहुत अधिक संख्या में होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में यदि एक किसी क्रेता या कुछ क्रेताओं से अन्य क्रेताओं की अपेक्षा अपनी वस्तु की अधिक कीमत लेत वह क्रेता या वे कुछ क्रेता, उस विक्रेता को छोड़कर, अन्य विक्रेताओं से वही वस्तु खरीद इस प्रकार विभेदीकरण तथा पूर्ण प्रतियोगिता का सह-अस्तित्व नहीं हो सकता है। f केवल अपूर्ण प्रतियोगिता में ही सम्भव है, परन्तु यह भी ध्यान रखने की बात है वि प्रतियोगिता में भी सदैव मूल्य विभेद सम्भव नहीं होगा।

यहाँ पर हम एकाधिकार जो कि अपूर्ण प्रतियोगिता का अधिकतम अपूर्ण रूप imperfect form of imperfect competition) है, के अन्तर्गत मूल्य विभेद की दशा अध्ययन करेंगे।

मूल्य-विभेद के **सम्भव** तथा **लाभदायक** (profitable) होने के लिए निम्न दशा होना आवश्यक है। प्रथम दशा मूल्य विभेद **सम्भव** होने को तथा दूसरी दशा उसके ला होने को बताती है।

१. बाजारों का पृथक्कीकरण (Separation of Markets)

यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिन बाजारों में एकाधिकारी मूल्य विभेद अपनाता बिलकुल पृथक रहें। यदि इन बाजारों में सम्पर्क (contact or communication) रह तो सस्ते बाजार में से लोग एकाधिकारी वस्तु को खरीद कर महँगे बाजार में उसे बेचकर उठायेंगे और कुछ समय में ही दोनों बाजारों में वस्तु की कीमत में अन्तर समाप्त हो ज तथा मूल्य विभेद टूट जायेगा। स्पष्ट है कि मूल्य विभेद के लिए यह आधारभूत दशा है वि उपभोक्ता द्वारा दूसरे उपभोक्ता को पुनः बिक्री (resale) की कोई सम्भावना नहीं चाहिए।[11]

"अतः यदि मूल्य विभेद को सफल होना है तो एकाधिकारी बाजार के विभिन्न भा क्रेताओं के बीच सम्पर्क बिलकुल असम्भव होना चाहिए या कम से कम अत्यन्त कठिन चाहिए। टेकनीकल भाषा में, विभेदकारी एकाधिकारी के विभिन्न बाजारों में कोई 'रिसन 'टपकन' (seepage) नहीं होनी चाहिए।"[12]

कई तत्वों या दशाओं के कारण एकाधिकारी विभिन्न बाजारों को पृथक रख सकता विभिन्न बाजारों या बाजार के विभिन्न भागों को पृथक रखने वाले तत्त्व या कारण निम्न हैं :

(अ) उपभोक्ताओं की विशेषताओं के कारण (Owing to the peculiarities consumers)—(i) मूल्य विभेद तब सम्भव है जबकि उपभोक्ता इस बात से अनभिज्ञ रहें कि बाजार के एक भाग में दूसरे भाग की अपेक्षा वस्तु का मूल्य कम है।

---

11 The fundamental condition for price discrimination is that there should be no possibl of resale from one consumer to another.

12 "So, if price discrimination is to succeed, communication between buyers in differ sections of the monopolist's market must be impossible, or at any rate extremely diffic In technical language there must be no 'seepage' between the discriminating monop list's different markets."

(ii) मूल्य विभेद तब सम्भव है जबकि बाजार के एक भाग में उपभोक्ताओं में यह अविवेकपूर्ण धारणा (irrational feeling) हो कि वे वस्तु की ऊँची कीमत इसलिए दे रहे हैं कि वस्तु अधिक अच्छी है।

(iii) मूल्य विभेद उस समय हो सकता है जबकि मूल्य में अन्तर बहुत थोड़े हों और उपभोक्ता इन छोटे अन्तरों की कोई चिन्ता न करते हों।

(ब) वस्तु के स्वभाव के कारण (Owing to the nature of the commodity)—मूल्य विभेद तब सम्भव है जबकि वस्तु एक प्रत्यक्ष सेवा (direct service) हो; जैसे एक डाक्टर एक ही प्रकार की सेवा के लिए धनी व्यक्तियों से अधिक मूल्य (अर्थात फीस) तथा निर्धनों से कम मूल्य ले सकता है। इस प्रकार की प्रत्यक्ष सेवाओं की पुनः बिक्री सम्भव नहीं हो सकती, इसलिए मूल्य विभेद बना रहता है।

(स) दूरियों तथा सीमा की बाधाओं के कारण (Owing to distances and frontier barriers)—मूल्य विभेद तब सम्भव हो सकता है जबकि उपभोक्ता बहुत दूरी के कारण पृथक रहते हैं; या उपभोक्ताओं के बीच प्रशुल्क दीवारें (tariff walls) खड़ी कर दी गयी हों। यदि देश के बाजार (home market) में विदेशों से वस्तु के आने पर ऊँचे प्रशुल्क लगे हों और संसार के अन्य देशों में एकाधिकारी वस्तु के प्रति कोई प्रशुल्क नहीं है तो एकाधिकारी देश के सुरक्षित बाजार में ऊँची कीमत तथा संसार के अन्य देश या देशों में अत्यन्त नीची कीमत रखकर दोनों बाजारों का लाभ उठायेगा।

(द) कानूनी स्वीकृति के कारण (Owing to legal sanction)—कुछ दशाओं में सरकार एकाधिकारी को वस्तु या सेवा की विभिन्न कीमतों के लेने की कानूनी स्वीकृति दे देती है; जैसे, एक बिजली कम्पनी रोशनी तथा पंखों के लिए ऊँची दर तथा औद्योगिक प्रयोजनों के लिए नीची दर लेती है क्योंकि उसे कानूनी स्वीकृति मिली होती है।

२. मांग की लोच में अन्तर (Difference in the Elasticity of Demand)

यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु के विभिन्न बाजारों को पृथक रख सकता है तो मूल्य विभेद सम्भव (possible) होगा; परन्तु मूल्य विभेद के लाभदायक (profitable) होने के लिए यह आवश्यक है कि मांग विभिन्न बाजारों में एक समान न हो।[13] जिस बाजार में मांग की लोच कम है वहाँ एकाधिकारी ऊँची कीमत रखेगा और वस्तु की कम मात्रा बेचेगा। इसके विपरीत, जिस बाजार में मांग की लोच अधिक है उसमें वह कीमत कम रखेगा और वस्तु की अधिक मात्रा बेचेगा। इस प्रकार विभेदकारी एकाधिकारी इन दोनों बाजारों में मांग की लोच में अन्तर का लाभ उठायेगा। यदि दोनों बाजारों में मांग की लोच समान है तो कीमतों को भिन्न रखने में उसको कोई लाभ नहीं होगा।

विभेदकारी एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price under Discriminating Monopoly)

मूल्य विभेद का मुख्य उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, मूल्य विभेद के लिए दो दशाओं का होना आवश्यक है—(i) मूल्य विभेद तब सम्भव होगा जबकि विभिन्न बाजारों को या बाजार के विभिन्न भागों को पृथक रखा जा सके। (ii) मूल्य

13 "If it is possible for a monopolist to sell the same commodity in separate markets it will clearly be to his advantage to charge different prices in the different markets, provided that the elasticities of demand in the separate markets are not equal."
—Mrs. Joan Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, p. 181.

विभेद तब लाभदायक होगा जबकि विभिन्न बाजारों या बाजार के विभिन्न भागों में माँग में अन्तर हो अर्थात कुछ बाजारों में माँग अत्यधिक लोचदार हो और कुछ में बेलोचदार।

एक विभेदकारी एकाधिकारी के साम्य के लिए (अर्थात मूल्य तथा उत्पादन नि लिए) निम्न दो दशाओं का पूरा होना आवश्यक है :

(i) साम्य की सामान्य दशा अर्थात कुल उत्पादन का सीमान्त आगम (M' उत्पादन की सीमान्त लागत (MC) के। यह दशा एकाधिकारी, विभेदकारी या स्पर्द्धात्मक सभी के साम्य के लिए पूरी होनी आवश्यक होती है, इसलिए इस दशा को साम्य की ... कहते हैं।

(ii) प्रत्येक बाजार का सीमान्त आगम आपस में बराबर हो तथा प्रत्येक ब' सीमान्त आगम कुल उत्पादन की सीमान्त लागत के भी बराबर हो। यदि बाजार सीमान्त आगम को MR_1 बाजार नं० २ के सीमान्त आगम को MR_2 तथा कुल ... सीमान्त लागत को MC द्वारा व्यक्त किया जाय, तो इस दशा को संक्षेप में इस क सकते हैं :

$$MR_1 = MR_2 = MC$$

यदि बाजार नं० १ का सीमान्त आगम कम है जबकि बाजार नं० २ का सीमान्त अधिक है, तो ऐसी दशा में विभेदकारी एकाधिकारी वस्तु की कुछ मात्रा को बाजार नं हटा कर बाजार नं० २ में बेचकर अपने लाभ को बढ़ा सकेगा; इस प्रकार का हस्त (transfer) तब तक चलता रहेगा जब तक कि दोनों बाजारों का सीमान्त आगम बरा हो जाय। दूसरे शब्दों में, वह उन बाजारों में ऊँची कीमत लेगा जिनमें माँग बेलोचदार है उन बाजारों में नीची कीमत लेगा जिनमें माँग लोचदार है। ऐसा करने में वह यह ध्यान

(अ) (ब) (स)

चित्र—५५
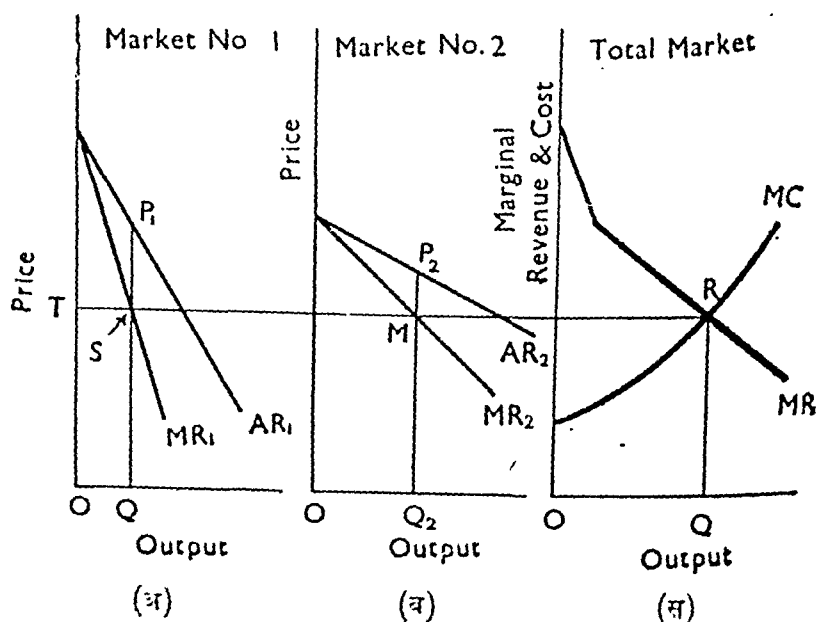
कि प्रत्येक बाजार में अन्तिम इकाई के बेचने से प्राप्त अतिरिक्त आगम (अर्थात् सीमान्त आगम) बराबर हो।

विभेदकारी एकाधिकारी के मूल्य निर्धारण को चित्र नं० ५५ द्वारा व्यक्त किया जाता है। चित्र नं० ५५ (अ) में बाजार नं० १ की औसत आगम तथा सीमान्त आगम रेखाएँ AR_1 तथा MR_1 है, इस बाजार में माँग की लोच कम है; चित्र नं० ५५ (ब) में बाजार नं० २ की औसत आगम तथा सीमान्त आगम रेखाएँ AR_2 तथा MR_2 हैं, इस बाजार में माँग की लोच अधिक है। MR_1 तथा MR_2 को जोड़ने से कुल सीमान्त आगम रेखा (total marginal revenue curve) MR प्राप्त हो जाती है जो कि चित्र नं० ५५ (स) में दिखायी गयी है, चित्र नं० ५५ (स) में कुल उत्पादन की सीमान्त लागत रेखा MC है।

एकाधिकारी उत्पादन की कुल मात्रा वहाँ पर निर्धारित करेगा जहाँ पर कि कुल आगम और सीमान्त लागत बराबर हैं; चित्र नं० ५५ (स) में R बिन्दु पर MR=MC के है, इसलिए एकाधिकारी OQ के बराबर कुल उत्पादन करेगा। (यह विभेदकारी एकाधिकारी के साम्य की पहली दशा है)। इस कुल उत्पादन को वह बाजार नं० १ तथा बाजार नं० २ में इस प्रकार बाँटेगा कि प्रत्येक में सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर हो तथा दोनों बाजारों में सीमान्त आगम आपस में भी बराबर हो (यह विभेदकारी एकाधिकारी के साम्य की दूसरी दशा है)। यदि बिन्दु R से एक पड़ी रेखा RT खींच दी जाये तो साम्य की दूसरी दशा पूरी हो जाती है। चित्र नं० ५५ (अ) में S बिन्दु पर $MR_1=SQ_1=MC$ के, चित्र नं० ५५ (ब) में बिन्दु 'M' पर $MR_2=MQ_2=MC$ के; यदि इन दोनों को एक साथ देखें तो स्पष्ट है कि $MR_1=MR=MC$ के। चित्रों से स्पष्ट है :

बाजार नं० १ में,

$$\text{कीमत}=P_1Q_1$$

$$\text{बिक्री की मात्रा}=OQ_1$$

बाजार नं० २ में,

$$\text{कीमत}=P_2Q_2$$

$$\text{बिक्री की मात्रा}=OQ_2$$

$$\text{कुल मात्रा}=OQ_1+OQ_2$$

$$=OQ$$

चूँकि बाजार नं० १ में, बाजार नं० २ की अपेक्षा, माँग की लोच कम है, इसलिए बाजार नं० १ में मूल्य ऊँचा और बिक्री की मात्रा कम है।

राशिपतन
(DUMPING)

मूल्य विभेद का एक विशेष रूप ही राशिपतन होता है। राशिपतन का अर्थ विदेशी बाजार में वस्तु को बहुत नीची कीमत पर तथा देशी बाजार में बहुत ऊँची कीमत पर बेचने के कार्य से लिया जाता है। राशिपतन के लिए यह आवश्यक दशा है कि देशी बाजार में एकाधिकारी वस्तु की माँग बेलोच हो तथा विदेशी बाजार में अधिक लोचदार हो। प्रायः देशी बाजार में एकाधिकारी वस्तु से मिलती-जुलती विदेशी वस्तुओं के आने पर रोक रहती है, इसलिए एकाधिकारी के लिए देशी बाजार सुरक्षित (protected) रहता है। विदेशी बाजार में अपनी वस्तु की माँग को उत्पन्न करने के लिए कभी-कभी एकाधिकारी अपनी वस्तु को औसत लागत से भी कम पर विदेशी बाजार

में बेचता है, तथा अपनी वस्तु से विदेशी बाजार को पाट देता है, अर्थात अपनी वस्तु बड़ी मात्रा में वहाँ डम्प (dump) कर देता है, इसलिए इसका नाम डम्पिंग पड़ गया। व बाजार की हानि को सुरक्षित देशी बाजार में बहुत ऊँची कीमत लेकर पूरा कर लेता है।

राशिपतन के प्रयोजन या उद्देश्य (Motives or objects of dumping) के प्रमुख प्रयोजन या उद्देश्य निम्न हैं :

(i) **विदेशी बाजार में कड़ी प्रतियोगिता का सामना करने के लिए** एकाधिकारी पतन का सहारा ले सकता है। वह अपनी वस्तु की कीमत बहुत नीची रखकर विदे योगिताओं को हतोत्साहित करता है और इस प्रकार **अपनी वस्तु की माँग विदेशी उत्पन्न करता है।**

(ii) **बढ़ते हुए प्रतिफल** (increasing returns) **का लाभ उठाने के लिए** एक राशिपतन का प्रयोग कर सकता है। एकाधिकारी अपने उत्पादन के पैमाने को बढ़ाकर लागत (अर्थात बढ़ते हुए प्रतिफल) को प्राप्त कर सकता है और बढ़ी हुई उत्पादन की म विदेशी बाजार में बेच सकता है।

(iii) **राशिपतन का प्रयोग अतिरिक्त उत्पादन** (surplus production) **को लिए किया जाता है।** माँग का गलत अनुमान लगाने के कारण वस्तु का उत्पादन बहुत अ सकता है। ऐसी दशा में उत्पादक अतिरिक्त उत्पादन को विदेशी बाजार में कम कीम बेचेगा।

मूल्य विभेद का औचित्य
(JUSTIFICATION OF PRICE DISCRIMINATION)

प्राय: एक प्रश्न उठाया जाता है—क्या मूल्य विभेद को उचित कहा जा सकता है प्रश्न के उत्तर के लिए इस बात पर ध्यान देना होगा कि क्या मूल्य विभेद उपभोक्ताओं के लाभदायक है या हानिकारक?

प्रकट रूप से यह कहा जा सकता है कि मूल्य विभेद सामाजिक न्याय (social ju की दृष्टि से अच्छा नहीं है क्योंकि यह उपभोक्ताओं के बीच भेद-भाव करता है। परन्तु ध्या कि कुछ परिस्थितियों में उपभोक्ताओं के बीच भेद-भाव करने से अधिक अच्छा सामाजिक प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में, इस प्रकार का सामान्य कथन पूर्णतया सही नहीं मूल्य विभेद सदैव सामाजिक हित के विरुद्ध होता है। मूल्य विभेद की प्रत्येक परिस्थिति को गुणों के आधार पर आँकना पड़ेगा और तभी यह कहा जा सकेगा कि मूल्य विभेद न्याययु या नहीं।

वास्तव में, कई दशाओं में मूल्य विभेद को उचित कहा जा सकता है। ये दशाएँ नि

(i) सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं के सम्बन्ध में मूल्य विभेद को उचित कहा जा सकता है। आफिस पोस्ट कार्ड की कीमत नीची रखता है क्योंकि निर्धन व्यक्ति इसका अधिक प्रयोग करते परन्तु पोस्ट आफिस मूल्य विभेद के कारण ही ऐसा कर सकता है, वह अपनी अन्य वस्तुओं ऊँची कीमत लेता है ताकि पोस्ट कार्ड की कीमत कम रख सके। इसी प्रकार रेलवे प्रथम श्रेणी मुसाफिरों से बहुत अधिक किराया लेकर तृतीय श्रेणी के किरायों को नीचा रखती है।

(ii) मूल्य विभेद तब उचित कहा जायेगा जबकि देश के अतिरिक्त उत्पादन को विदेश बेचना पड़ता है। अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिए विदेशों में वस्तु की कीमत नीची र पड़ेगी तथा देश में अपेक्षाकृत ऊँची कीमत लेनी पड़ेगी। यदि विदेशों में अतिरिक्त उत्पादन [illegible] जाता तो देश के कई साधनों का पूर्ण प्रयोग नहीं हो पायेगा तथा उद्योग विशेष को

पैमाने की बचतें भी पूर्णतया प्राप्त नहीं हो पायेगी। अतः स्पष्ट है कि यदि मूल्य विभेद के कारण देश के उत्पादन तथा उत्पादन-क्षमता को बढ़ाया जा सकता है तो वह उचित है।

परन्तु कुछ दशाओं में मूल्य विभेद समाज के लिए हानिकारक भी है: (i) इसके कारण उत्पत्ति के साधनों का अधिक न्याययुक्त प्रयोगों में हस्तान्तरण नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी अविकसित देश में एक विभेदकारी एकाधिकारी विलासिता की वस्तु का बड़ी मात्रा में उत्पादन कर रहा है तो यह देश के हित में नहीं होगा। इस प्रकार मूल्य विभेद साधनों का अनुचित वितरण (maldistribution) कर सकता है। (ii) सिद्धान्त के आधार पर मूल्य विभेद उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि विभेदकारी एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए देश में वस्तु की कम मात्रा बेचता है तथा ऊँची कीमत लेता है।

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मूल्य विभेद सभी दशाओं में उचित नहीं है। मूल्य विभेद की प्रत्येक परिस्थिति को उसके गुणों पर आंकना होगा और तभी मूल्य विभेद को उचित या अनुचित कहा जा सकेगा; कुछ परिस्थितियों, जैसे, सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं में मूल्य विभेद उचित है।

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन

[PRICE AND OUTPUT UNDER MONOPOLISTIC COMPETITION]

प्रो० चेम्बरलिन (Chamberlin) ने 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' तथा श्रीमती जोन रोबिन्सन ने 'अपूर्ण प्रतियोगिता' के विचार प्रस्तुत किये। दोनों में थोड़ा अन्तर होते हुए ढीले रूप में (loosely) दोनों एक ही मान लिये जाते है।

पूर्ण प्रतियोगिता की किसी भी दशा के अनुपस्थित होने से अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एक सिरे की स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता तथा दूसरे सिरे की स्थिति पूर्ण एकाधिकार है, इन दोनो स्थितियों के बीच के समस्त क्षेत्र को आधुनिक अर्थशास्त्री अपूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं। 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' अपूर्ण प्रतियोगिता की एक किस्म है। परन्तु प्रायः इन दोनों को एक दूसरे के लिए प्रयुक्त किया जाता है, यद्यपि प्रो० चेम्बरलिन इन दोनों के अन्तर पर जोर देते हैं। दोनों को एक ही मान लेने के मुख्य कारण निम्न हैं—(i) यद्यपि एकाधिकृत प्रतियोगिता पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट है, परन्तु वह अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म (leading

type of imperfect competition) है; अतः दोनों ढीले रूप में एक ही मान लिये
(ii) यद्यपि श्रीमती जोन रोबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता में 'वस्तु विभेद' (product di
tiation) शब्द का प्रयोग नहीं किया है, परन्तु उनके द्वारा अपूर्ण प्रतियोगिता के व
कारणों में लगभग वे सब बातें उपस्थित हैं जो कि प्रो० चेम्बरलिन 'वस्तु-विभेद' के लि
हैं। उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्री प्रायः 'एकाधिकृत प्रतियोगिता'
प्रतियोगिता' को एक ही मान लेते हैं। इस प्रकार 'अपूर्ण प्रतियोगिता' तथा 'एकाधिकृत प्रति
के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण में कोई अन्तर नहीं होगा।

१. एकाधिकृत प्रतियोगिता के अभिप्राय
(IMPLICATIONS OF MONOPOLISTIC COMPETITION)

एकाधिकृत प्रतियोगिता में—(i) स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले विक्रेताओं की
संख्या होता है (पूर्ण प्रतियोगिता में यह संख्या 'बहुत अधिक' होती है); (ii) वस्तु
(product differentiation) होता है; वस्तुएँ मिलती-जुलती (similar) होती हैं
कुल एक रूप (exactly identical) नहीं होतीं, उनमें थोड़ा अन्तर अवश्य होता है (यह
वस्तु की भौतिक विशेषताओं में अन्तर, वस्तु की बेचने की दशाओं में अन्तर एवं
प्रसार के कारण हो सकता है।) 'वस्तु विभेद' एकाधिकृत प्रतियोगिता की एक आधारभूत
विशेषता (fundamental distinguishing feature) है; (ii) फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश
है, परन्तु वस्तु-विभेद के कारण यह प्रवेश उतना सुगम नहीं होता जितना कि पूर्ण प्रतियो
होता है। (iv) गैर-मूल्य प्रतियोगिता (non-price competition) भी होती है।

वस्तु-विभेद के कारण एक विक्रेता की वस्तु दूसरे के स्थान पर पूर्ण रूप से प्रति
नहीं की जा सकती। अतः प्रत्येक उत्पादक एक सीमा तक एकाधिकारी तत्त्व (mono
element) प्राप्त कर लेता है; अर्थात् प्रत्येक उत्पादक एक सीमा तक एक छोटा-सा एकाधि
होता है, परन्तु इन एकाधिकारियों में कड़ी प्रतियोगिता होती है; अतः ऐसी स्थिति को 'ए
कृत प्रतियोगिता' कहा जाता है।

प्रायः अर्थशास्त्री एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'समूह' (group) शब्द का
'उद्योग' (Industry) के लिए करते हैं। प्रायः एक रूप वस्तु का उत्पादन करने वाली फर्में
कर एक उद्योग का निर्माण करती हैं। चूंकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में कोई भी दो फर्में
रूप वस्तु नहीं बनातीं (उनमें अन्तर होता है यद्यपि वे मिलती-जुलती होती हैं), इस
एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'उद्योग' के [illegible]र का महत्त्व लगभग समाप्त हो जाता
ऐसी परिस्थिति में अर्थशास्त्री 'उद्योग' शब्द के स्थान पर 'समूह' शब्द का प्रयोग करते हैं
पर्याप्त रूप से मिलती-जुलती वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्में 'एक समूह' में समझी
सकती हैं, इसी भांति दूसरी प्रकार की मिलती-जुलती वस्तुएँ दूसरे समूह में रखी जा सकती
अतः यह ध्यान रखने की बात है कि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अर्थशास्त्री 'उद्योग' के स्थान
'समूह' शब्द का प्रयोग करते हैं।

२. एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के साम्य का अर्थ
(MEANING OF EQUILIBRIUM OF A FIRM UNDER MONOPOLISTIC COMPETITION)

प्रतियोगिक फर्म तथा एकाधिकारी की भांति 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' के अन्तर्गत एक फ
का उद्देश्य भी अपने लाभ या 'विशुद्ध आगम' (net revenue) को अधिकतम करना होता है
[illegible] का अर्थ है परिवर्तन की अनुपस्थिति। एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म [illegible]

की स्थिति में तब होगी जबकि उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो; उसके कुल उत्पादन में परिवर्तन तब नहीं होगा जबकि फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो। दूसरे शब्दों में, एक फर्म अपनी वस्तु का यह मूल्य तथा उसकी वह मात्रा निर्धारित करेगी जहाँ पर उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।

३. दो रीतियाँ
(TWO APPROACHES)

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'फर्म के साम्य' के लिए (अर्थात अधिकतम लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से) उसकी वस्तु के मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जा सकता है :

(i) 'कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति' (Total revenue and total cost curves approach)। (ii) 'सीमान्त विश्लेषण रीति' (Marginal analysis approach) अर्थात 'सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति' (Marginal and average curves approach)।

नीचे उपर्युक्त दोनो रीतियों का अलग-अलग विवेचन किया गया है।

४. कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओं की रीति
(TOTAL REVENUE AND TOTAL COST CURVES APPROACH)

TR-रेखा तथा TC-रेखा के बीच खड़ी दूरी लाभ को बतायेगी। अतः एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म वस्तु की वह मात्रा उत्पादित करेगी जहाँ पर कि TR तथा TC रेखाओं के बीच खड़ी दूरी सबसे अधिक हो क्योंकि इस स्थिति में ही उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। चित्र नं० ५६ में OM से कम या ON से अधिक उत्पादन करने से फर्म को ऋणात्मक लाभ अर्थात् हानि प्राप्त होगी क्योंकि इन दोनों स्थितियों में TC-रेखा ऊपर है TR-रेखा के। M तथा N के बीच फर्म को धनात्मक लाभ होगा; OQ उत्पादन की मात्रा पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा क्योंकि इस मात्रा पर TR तथा TC के बीच खड़ी दूरी EF अधिकतम है। बिन्दु 'A' तथा बिन्दु 'B' पर TR तथा TC बराबर हैं अर्थात् इन बिन्दुओं पर फर्म

चित्र—५६

को शून्य लाभ (अर्थात् सामान्य लाभ) प्राप्त होता है, इन बिन्दुओं को 'break-even points' कहते हैं।
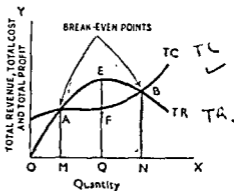
आलोचना—परन्तु यह रीति बहुत भद्दी है। इसके कारण हैं : (i) TR तथा TC के बीच अधिकतम खड़ी दूरी को एक ही निगाह में प्रायः ठीक प्रकार से ज्ञात करना कठिन हो जाता है; तथा (ii) चित्र को देखकर प्रत्यक्ष रूप से वस्तु की प्रति इकाई कीमत को ज्ञात नहीं किया जा सकता है, कुल आगम (चित्र में EQ) में कुल उत्पादन (चित्र में OQ) का भाग देने पर ही प्रति इकाई कीमत मालूम की जा सकती है। अतः 'सीमान्त और औसत रेखाओं की रीति' अधिक अच्छी समझी जाती है।

५. सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति
(MARGINAL AND AVERAGE CURVES APPROACH)

१. स्पर्द्धात्मक फर्म तथा एकाधिकारी की भाँति, **एकाधिकृत प्रतियोगिता के** :
फर्म के साम्य के लिए सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) का व
आवश्यक है। एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म साम्य की स्थिति में तव ॰
उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो रहा हो। उसके कुल उत्पादन में कोई प
नहीं होगा जबकि उसको अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो। उसको अधिकतम लाभ
होगा जबकि MR=MC के हो। इसकी व्याख्या निम्न विवरण से स्पष्ट है।

सीमान्त आगम (MR) का अर्थ है एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आ
में वृद्धि, तथा सीमान्त लागत (MR) का अर्थ है कि एक अतिरिक्त इकाई के उत्पा
लागत (TC) में वृद्धि। **यदि MC अधिक है MR से** तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक
इकाई को बेचने से कुल आगम में वृद्धि अधिक है अपेक्षाकृत' उस अतिरिक्त इकाई के
कुल लागत में वृद्धि के; अर्थात् फर्म को अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करके बेचने से ला
इस प्रकार जब तक MR अधिक है MC से, फर्म अतिरिक्त उत्पादन करके अपने ला
सकेगी, परन्तु जब MR, MC के बराबर हो जायेगी तो अतिरिक्त इकाई से प्राप्त आगम
अतिरिक्त इकाई की लागत के बराबर होगा तथा फर्म के लिए अब उत्पादन को और
लाभ को अधिकतम करने की सभी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। **यदि MR कम है**
तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम में वृद्धि कम है
कृत उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में वृद्धि के; अर्थात् फर्म को अतिरि
का उत्पादन करके बेचने से हानि होगी। अतः फर्म वस्तु की मात्रा उस सीमा से अधिक
नहीं करेगी जहाँ पर MR=MC के हो।

२. एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के लिए अपनी वस्तु की म
अर्थात् AR-रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा होती है तथा सीमान्त आगम (MR) कीमत (
कम होता है।

(i) **नीचे को गिरती हुई माँग रेखा (अर्थात् AR-रेखा) का अर्थ है** कि यदि ए
स्पर्द्धात्मक फर्म (monopolistically competitive firm) वस्तु की अधिक मात्रा बेचना
है तो उसे कीमत घटानी पड़ेगी। गिरती हुई माँग रेखा के दो कारण हैं—प्रथम, पूर्ण प्रति
की भाँति वस्तु एक रूप नहीं होती; वे मिलती-जुलती तो होती हैं परन्तु उनमें कुछ अन्तर
होता है। दूसरे, मिलती-जुलती (similar) वस्तुओं को उत्पादित करने वाले 'समूह' में प
संख्या उतनी अधिक नहीं होती जितनी कि स्पर्द्धात्मक उद्योग में होती है।

(ii) गिरती हुई माँग रेखा (AR-रेखा) कम समतल (less flat) हो सकती है या
समतल; अर्थात् उसकी माँग की लोच कम हो सकती है या अधिक। दूसरे शब्दों में, AR-
अन्दर निहित माँग की लोच की मात्रा[1] निम्न दो बातों पर निर्भर करती है :

प्रथम, विक्रेताओं की संख्या; यदि 'समूह' में विक्रेताओं की संख्या अधिक है तो AR
अधिक लोचदार होगी; इसके विपरीत, यदि विक्रेताओं की संख्या कम है तो AR-रेखा
लोचदार होगी (अर्थात् कम समतल होगी) दूसरे, वस्तु-विभेद की लोच की मात्रा अर्थात्

---

1 "The degree of the elasticity of demand embodied in the average revenue curve."

रेखा की शक्ल को निर्धारित करता है। (यदि वस्तु विशेष अन्य मिलती-जुलती वस्तुओं से कम भेदित (less differentiated) है अर्थात उसकी अधिक निकट स्थानापन्न वस्तुएँ उपस्थित हैं तो वस्तु की माँग अधिक लोचदार होगी; दूसरे शब्दों में AR-रेखा अधिक समतल (more flat) होगी। इसकी विपरीत दशाओं में माँग की लोच कम होगी और AR-रेखा कम समतल (less flat or more steep) होगी।)

(iii) चूँकि एक 'समूह' में एक-सी वस्तु उत्पन्न करने वाली अनेक फर्में कार्य करती हैं, इसलिए किसी भी एक फर्म की वस्तु की मांग उसकी प्रतियोगी फर्म की कीमत तथा उत्पादन पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, "एक फर्म की औसत आगम की शक्ल केवल उपभोक्ताओं की रुचियों तथा तरंगों से नहीं बल्कि प्रतियोगी उत्पादकों के मूल्य-उत्पादन निर्णयों द्वारा भी निर्धारित होती है।"[2]

(iv) सीमान्त आगम (MR), औसत आगम अर्थात कीमत (AR or price) से कम होता है। इसका कारण यह है कि अतिरिक्त इकाइयों को बेचने के लिए फर्म को कीमत (AR) घटानी पड़ती है। दूसरे शब्दों में, अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए फर्म कीमत को केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नहीं घटाती बल्कि पिछली सब इकाइयों पर उसे कीमत घटानी पड़ती है, (इस बात को ठीक उसी प्रकार तथा उसी उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है जो कि एकाधिकार के सम्बन्ध में दिया गया है), और इसलिए MR कम होता है AR से।

३. *माँग पक्ष का अध्ययन करने के पश्चात हम अब लागत की दशाओं पर ध्यान देते हैं।* लागत के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान रखने की हैं :

(i) एकाधिकृत प्रतियोगिता में बहुत-सी प्रतियोगी फर्में एक-सी वस्तुएँ उत्पादित करती हैं, इसलिए वे लगभग एक ही प्रकार के उत्पत्ति के साधनों का प्रयोग करती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि फर्मों की लागत रेखाएँ एक-दूसरे से थोड़ी-बहुत सम्बन्धित अवश्य होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, 'समूह' में फर्मों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पत्ति के साधनों की माँग बढ़ेगी जिससे कुछ फर्मों के लिए इन उत्पत्ति के साधनों की कीमतें बढ़ जायेंगी और इस प्रकार उनकी लागत रेखाएँ प्रभावित होंगी। अतः एकाधिकारी की भाँति स्वतन्त्र लागत रेखाओं (independent cost curves) का विचार एकाधिकृत प्रतियोगिता में सन्तोषजनक नहीं है।

परन्तु फिर भी विश्लेषण की सरलता के लिए हम यह मान लेते हैं कि एकाधिकृत स्पर्द्धात्मक फर्मों के एक समूह की सभी फर्मों की लागत रेखाएँ बिलकुल एक रूप होती हैं और ये रेखाएँ एक स्तर पर ही रहती हैं (अर्थात लागतों में कोई वृद्धि या कमी नहीं होती) चाहे समूह के फर्मों की संख्या कुछ भी हो। दूसरे शब्दों में, हम यह मान लेते हैं कि एकाधिकृत समूह के लिए उत्पत्ति के साधन बिलकुल एक रूप होते हैं तथा उस समूह के लिए उनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है।[3]

---

2 "The shape of the firm's average revenue curve will be determined not only by the tastes and whims of consumers, but also by the price-output decisions of rival pro-

3 [illegible] all firms in the same [illegible] curves and that these [illegible] ms in the group. In [illegible] eneous and in perfect

(ii) हम यह भी मान लेते हैं कि एकाधिकृत स्पर्द्धात्मक समूह में फर्मों की संख्या होने पर उत्पादन की कोई वाह्य बचतें या अवचतें नहीं होतीं। प्रो० चेम्बरलिन इस मा एक 'बहादुरी की मान्यता' कहते हैं।[4]

(iii) एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्में वस्तु की बिक्री को बढ़ाने के लिए (केवल कमी नहीं करतीं बल्कि) 'गैर-मूल्य प्रतियोगिता' (non-price competition) को भी अर्थात अपनी वस्तु की बिक्री को बढ़ाने के लिए वे विज्ञापन, प्रचार, अच्छे विक्रयकर्ता men), इत्यादि पर बहुत बड़ी मात्रा में व्यय करती हैं। इस प्रकार के खर्चों को टेकनीकल भाषा में **'विक्रय लागतें'** (selling costs) कहते हैं। ये विक्रय-लागतें कुल लागतों (production costs) की अंग होती हैं। दूसरे शब्दों में, **एकाधिकृत अन्तर्गत फर्म के लाभ का अर्थ है :**

Profit or Net Revenue = Total Revenue − Total Cost
= (Price × Output) − (Production Costs
Costs)

दूसरे शब्दों में, 'विक्रय लागतें' सीमान्त लागत (MC) तथा औसत लागत (AC होती हैं।

(४) **फर्म का अल्पकालीन साम्य** (Short-run equilibrium of a firm) — में फर्म के लिए लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं। यदि फर्म की माँग प्रबल है और अन्य फर्मों द्वारा उत्पादित मिलती-जुलती वस्तुएँ उसकी अधिक निकट पन्न (close substitute) नहीं हैं तो फर्म ऊँची कीमत रखकर लाभ प्राप्त कर सकेगी; कुछ कमजोर है तो फर्म केवल लाभ (या शून्य लाभ) ही प्राप्त है; यदि माँग बहुत कमजोर है तो हानि उठानी पड़ सकती है। चू काल में फर्म अपनी उत्पादन क्ष माँग के अनुरूप पूरी प्रकार से पाती है, इसलिए तीनों स्थितिया हैं। इन तीनों स्थितियों को सहायता से स्पष्ट किया गया है।

चित्र—५७
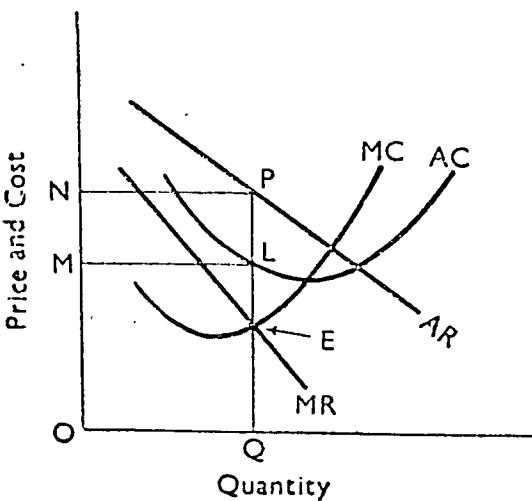
चित्र नं० ५७ लाभ को बताता है। फर्म के साम्य के लि MC के बराबर होनी चाहिए। पर MR तथा MC बराबर हैं, E होती हुई खड़ी रेखा को खींचने AR-रेखा को 'P' बिन्दु पर मिलती है। चूंकि AR (कीमत), AC के ऊपर है, इसलिए PL प्रति इकाई लाभ होगा। अतः

---

4 "We also assume that there are no external economies or diseconomies of pro when the number of firms in the group increases. Professor Chamberlin m assumption—an 'heroic' assumption as he calls it—though he later relaxes it."

मूल्य=PQ
उत्पादन की मात्रा=OQ
कुल लाभ=PLMN

चित्र नं० ५८ में फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। E बिन्दु पर MR=MC के है। E बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा AR-रेखा को P बिन्दु पर काटती है। P बिन्दु पर AR-रेखा AC-रेखा को स्पर्श करती हुई निकलती है, इसलिए P बिन्दु पर AR=AC के, अर्थात कीमत ठीक औसत लागत के बराबर है जिसका अर्थ है कि फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। अतः,

चित्र—५८

मूल्य=PQ
उत्पादन की मात्रा=OQ
फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

चित्र नं० ५६ हानि की स्थिति को बताती है। E बिन्दु पर MR=MC के है। E बिन्दु से होती हुई खड़ी रेखा AR-रेखा को P बिन्दु पर मिलती है, इसलिए कीमत PQ हुई, चूँकि AC-रेखा ऊपर है AR-रेखा (अर्थात कीमत) के, इसलिए फर्म को खड़ी दूरी PL के बराबर प्रति इकाई हानि होगी। कुल हानि PLNM के बराबर होगी। चूँकि कीमत PQ, AVC से अधिक है, इसलिए अल्पकाल में हानि होने पर भी फर्म उत्पादन को जारी रखेगी। संक्षेप में,

चित्र—५६

मूल्य=PQ
उत्पादन की मात्रा=OQ
कुल हानि=PLNM
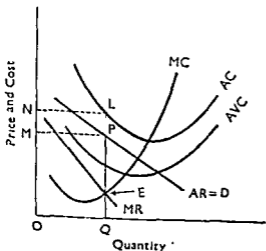
(५) दीर्घकालीन साम्य—'समूह साम्य' (Long-run equilibrium—Group equilibrium)—दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। यदि अल्पकाल में 'समूह' की कुछ फर्मों को लाभ प्राप्त होता है तो दीर्घकाल में इस लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्में 'समूह' (या उद्योग) में प्रवेश करेंगी और अतिरिक्त लाभ अर्जित करने वाली फर्मों की वस्तुओं के अधिक निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन बढ़ायेंगी। पुरानी फर्में (जिन्हें लाभ प्राप्त नहीं हो रहा था) भी ऐसा ही

करेंगी। पुरानी तथा नयी फर्मों की इस स्पर्द्धा के कारण अतिरिक्त लाभ समाप्त हो फर्मों को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

अतः पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, एकाधिकृत प्रतियोगिता में भी फर्म के दीर्घकालीन साम्य के दशा' (double condition) चाहिए :

(i) MR
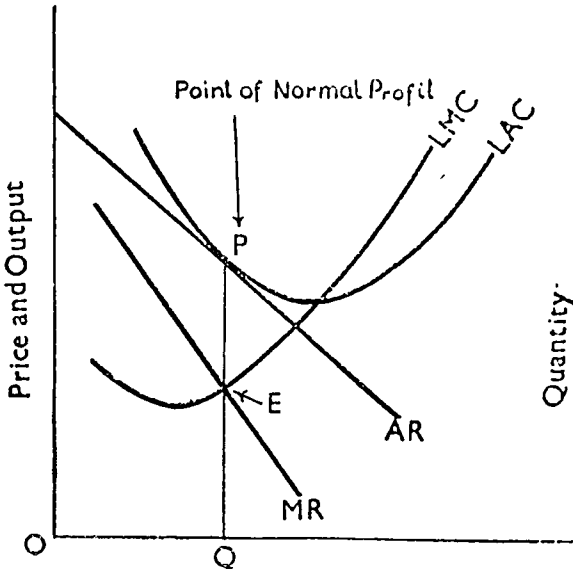
(ii) AR=

चित्र—६०

दूसरी दशा के पूरे है सामान्य लाभ का प्राप्त हो नं० ६० में E विन्दु पर M के; विन्दु E से होती हुई AR-रेखा को P विन्दु पर अतः कीमत PQ हुई। P LAR-रेखा LAC-रेखा के रेखा (tangent) है, इसलिए पर AR=AC के हुई। यदि कीमत PQ है तब ही पूरी होगी। संक्षेप में,

मूल्य=PQ

उत्पादन की मात्रा=OQ

फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

उपर्युक्त दीर्घकालीन साम्य विश्लेषण के सम्बन्ध में निम्न दो बातें ध्यान रखनी

(i) एकाधिकृत प्रतियोगिता में AR-रेखा गिरती हुई रेखा होती है जबकि पूर्ण में AR-रेखा एक पड़ी हुई रेखा होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में पड़ी हुई AR-रेखा U-आ AC-रेखा को उसके निम्नतम विन्दु पर स्पर्श करती है। इसका अर्थ है कि पूर्ण प्रतियो फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होता है और वह वस्तु की मात्रा को न्यूनतम औसत ला उत्पादित करती है। न्यूनतम औसत लागत पर वस्तु की उत्पादित मात्रा को टेकनीकल हम 'अनुकूलतम मात्रा' (optimum output) कहते हैं। एकाधिकृत प्रतियोगिता में चूँ रेखा एक गिरती हुई रेखा होती है इसलिए वह AC-रेखा को उनके न्यूनतम विन्दु से को किसी विन्दु पर स्पर्श करेगी, जैसा कि चित्र नं० ६० में AR-रेखा LAC-रेखा को P मिलती है। इसका अर्थ यह हुआ कि **एकाधिकृत प्रतियोगिता में दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म 'अ मात्रा' से कम मात्रा उत्पादित करती है और इस प्रकार प्रत्येक फर्म के पास 'अप्रयुक्त** (unutilised capacity) **या 'अतिरिक्त क्षमता'** (excess capacity) **रहती है।**

(ii) अपने विश्लेषण में हम यह मान कर चले हैं कि एक 'समूह' की विभिन्न लागत की दशाएँ एक समान (identical) हैं। इस मान्यता को प्रो० चेम्बरलिन ने 'व की मान्यता' (heroic assumption) कहा है : (अ) यदि इस मान्यता को ढीला कर जाये तो एक समूह के अन्तर्गत फर्मों की लागतों में थोड़ा अन्तर होगा और दीर्घकाल में भी

को 'थोड़ा अतिरिक्त लाभ' (small excess profit) प्राप्त हो सकता है। (ब) कुछ फर्में कार या वस्तु-विभेद प्राप्त कर सकती हैं कि दीर्घकाल में भी अन्य फर्में उनकी वस्तु की स्थानापन्न न बना सकें, तो ऐसी स्थिति में भी दीर्घकाल में कुछ फर्मों को थोड़ा अतिरिक्त प्राप्त होता रहेगा। परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी कुल मिला कर दीर्घकाल में 'सामान्य प्राप्त होने की स्थिति (चित्र नं० ६०) सही है और वास्तविकता (reality) का लगभग त चित्रण (reasonable portrayal) करती है।

(१) एकाधिकृत प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म है, परन्तु यह पूर्ण योगिता के अधिक निकट है।

पूर्ण प्रतियोगिता की कई मुख्य दशाएँ एकाधिकृत प्रतियोगिता में होती हैं। विशेषतया, ताओं (या फर्मों) की अधिक संख्या, मूल्य प्रतियोगिता तथा फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश—ये ईं पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता दोनों में उभयनिष्ठ (common) हैं। दोनों मुख्य अन्तर वस्तु-विभेद में निहित है। पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु एक रूप होती है; जबकि धिकृत प्रतियोगिता में वस्तु-विभेद होता है, वस्तुएँ मिलती-जुलती होती है, परन्तु पूर्णतया रूप नहीं होती, उनमें थोड़ा अन्तर अवश्य होता है। वस्तु-विभेद के कारण ही एकाधिकृत योगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म एक सीमा तक एकाधिकारी तत्त्व (monopoly element) त (acquire) कर लेती है। स्पष्ट है कि एकाधिकृत प्रतियोगिता की आधारभूत प्रभेदक ता (fundmental distinguishing feature) 'वस्तु-विभेद' है। यदि इसमें से 'वस्तु-द' को निकाल दिया जाय और उसके स्थान पर 'वस्तु की एकरूपता' (homogeneity) को दिया जाय तो हम लगभग पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में पहुँच जायेंगे। चूंकि एकाधिकृत योगिता अपूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य किस्म होते हुए भी पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक ट है, इसलिए यह कहा जाता है कि 'एकाधिकृत प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता का सबसे कम ं रूप है।'[5]

(२) एकाधिकृत प्रतियोगिता में मांग रेखा अर्थात् AR-रेखा नीचे को गिरती हुई रेखा है, जबकि पूर्ण प्रतियोगिता में AR-रेखा पड़ी हुई रेखा होती है।

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत गिरती हुई AR-रेखा का अर्थ है कि फर्म को वस्तु अधिक इकाइयाँ बेचने के लिए कीमत घटानी पडेगी, अर्थात् फर्म की अपनी 'मूल्य-नीति' होती पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत पडी हुई AR-रेखा का अर्थ है कि फर्म दी हुई कीमत पर वस्तु जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म ग द्वारा निर्धारित कीमत को दिया हुआ मान लेती है। वह 'मूल्य ग्रहण करने वाली' (price-er) होती है, न कि 'मूल्य-निर्धारक' (price-maker)। उसकी अपनी कोई 'मूल्य-नीति' नहीं ; वह दी हुई कीमत पर केवल अपने उत्पादन की मात्रा को समायोजित करती है, इसलिए 'मात्रा समायोजित करने वाली' (quantity-adjuster) कहा जाता है।

(३) पूर्ण प्रतियोगिता में AR (कीमत) MR के बराबर होती है; जबकि एकाधिकृत योगिता में AR (कीमत) MR से अधिक होती है।

Monopolistic competition is the most imperfect form of imperfect cempetition.'

पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए वस्तु की कीमत दी हुई होती है, अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम (अर्थात् MR) वही होगा जो कि ... (अर्थात् AR) है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में AR, MR के बराबर होती है।

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म यदि वस्तु की एक अतिरिक्त इ... चाहती है तो उसे कीमत (AR) घटानी पड़ेगी, परिणामस्वरूप सीमान्त आगम ... होगा कीमत (AR) से; दूसरे शब्दों में, AR > MR।

(४) पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत (AR) सीमान्त लागत (MC) के बराबर ... कि एकाधिकृत प्रतियोगिता में कीमत (AR) सीमान्त लागत (MC) से अधिक होती है

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के साम्य के लिए MR = MC के हैं, तथा पूर्ण प्रति... AR = MR के है, इन दोनों को मिलाने से हमें यह सम्बन्ध प्राप्त होता है : AR = M... अर्थात AR (कीमत) = MC (सीमान्त लागत) के।

एकाधिकृत प्रतियोगिता में भी फर्म के साम्य के लिए MR = MC के, परन्तु ... प्रतियोगिता में AR > MR, और चूंकि MR = MC के, इस लिए AR > MC, अ... (AR) अधिक है MC (सीमान्त लागत) से।

(५) अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता दोनों के अ... फर्म के लिए लाभ, सामान्य लाभ (या शून्य लाभ) तथा हानि, तीनों दशाएँ सम्भव हैं।

(६) दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता दोनों के ... फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। इसका कारण है कि दोनों स्थितियों में ... तथा फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश होने की दशाएँ मौजूद होती हैं। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता **दीर्घकाल में उत्पादन न्यूनतम औसत लागत पर होता है अर्थात 'अनुकूलतम मात्रा' (o... output) का उत्पादन किया जाता है तथा कीमत कम होती है, जबकि एकाधिकृत ... उत्पादन 'अनुकूलतम मात्रा' से कम होता है और कीमत अपेक्षाकृत ऊँची होती है।**

उपर्युक्त कथन को हम चित्र नं० ६१ से स्पष्ट कर सकते हैं। तुलनात्मक अध्य... सरलता के लिए यहाँ पर यह ... गया है कि पूर्ण प्रतियोगिता ... धिकृत प्रतियोगिता दोनों के ... लागत तथा माँग दशाएँ समान हैं ... नं० ६१ में एकाधिकृत प्रतियोगिता ...र्गत माँग रेखा 'AR = D' द्वारा ... गयी है। यदि पूर्ण ... स्थिति होती तो माँग रेखा प... होती, चित्र में इसको टूटी रेखा (... line) 'AR = MR' द्वारा दि... है। चित्र से स्पष्ट है :
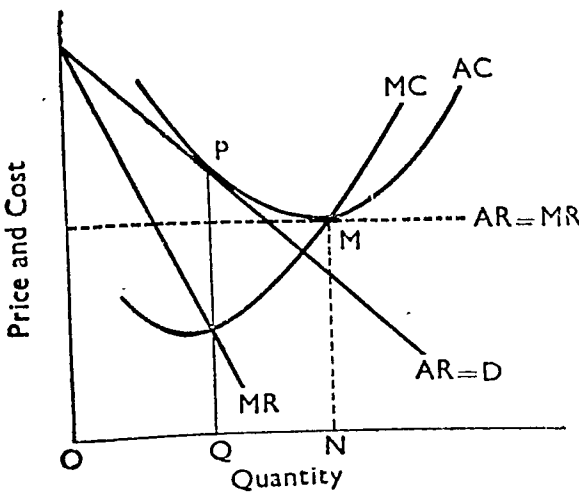
एकाधिकृत मूल्य PQ > ...द्धात्मक MN तथा एकाधिकृत मात्रा स्पर्द्धात्मक मात्रा ON।

चित्र—६१

परस्पर सम्बन्धित कीमतें
[INTERDEPENDENT PRICES]

व्यक्तिगत वस्तुओं की कीमत निर्धारक शक्तियों का अध्ययन करते समय अभी तक हमने यह मान लिया था कि किसी एक वस्तु की कीमत अन्य वस्तुओं की कीमतों से स्वतन्त्र (independent) होती है। परन्तु यह मान्यता या धारणा पूर्णतया सही नहीं है। वास्तव में, कीमतें एक संगठन या व्यवस्था (system) की भाँति है जिसमें प्रत्येक कीमत अन्य सभी कीमतों में कम या अधिक मात्रा में सम्बन्धित होती है।[1] अतः वैज्ञानिक दृष्टि से एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अन्य सभी वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन हो सकता है। परन्तु अधिकांश स्थितियों में अन्य वस्तुओं की कीमतों पर प्रभाव इतना कम होता है कि इस मान्यता में बहुत थोड़ी गलती होगी कि एक वस्तु की कीमत, बिना अन्य वस्तुओं की कीमतों से प्रभावित हुए, स्वतन्त्र रूप में परिवर्तित होती है। परन्तु कुछ स्थितियों में दो या दो से अधिक वस्तुओं की कीमतें इतनी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती हैं कि किसी एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन अन्य वस्तुओं की कीमतों पर महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभाव डालता है। इस अध्याय में इस प्रकार से निकट सम्बन्धित वस्तुओं के मूल्यों का अध्ययन किया गया है।

संयुक्त माँग
(JOINT DEMAND)

संयुक्त माँग का अर्थ

किसी आवश्यकता की पूर्ति या किसी वस्तु के उत्पादन के लिए जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ एक साथ माँगी जाती हैं तो उनकी माँग को 'संयुक्त माँग' कहा जाता है।

माँग के पारस्परिक सम्बन्ध मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं—प्रतिस्थापनात्मक (substitutive), तथा पूरक (complementary)। दो वस्तुएँ प्रतिस्थापनात्मक या स्थानापन्न (substitutes) होती हैं जबकि एक वस्तु की माँग में वृद्धि (या कमी) के परिणामस्वरूप दूसरी वस्तु की माँग में कमी (या वृद्धि) होती है। दूसरे शब्दों में, प्रतिस्थापनात्मक वस्तुओं में से एक वस्तु की माँग में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में विपरीत दिशा में परिवर्तन उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ, चाय तथा कॉफी, चीनी तथा गुड़, इत्यादि; यदि हम चीनी की अधिक माँग करते हैं तो गुड़ की माँग कम होगी। दो वस्तुएँ पूरक होती हैं जबकि एक वस्तु की माँग में वृद्धि (या कमी) के परिणामस्वरूप दूसरी वस्तु की माँग में भी वृद्धि (या कमी) होती है। दूसरे शब्दों में, पूरक वस्तुओं में से एक वस्तु की माँग में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में उसी प्रकार का परि-

---

1 The prices are like a system in which each is related to all the rest in greater or less degree.

वर्तन उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ, डबल रोटी तथा मक्खन; यदि डबल रोटी की (या घटती) है तो मक्खन की माँग भी बढ़ेगी (या घटेगी)।

अतः टेकनीकल शब्दों में, संयुक्त माँग को इस प्रकार भी परिभाषित करते हैं— **दो से अधिक वस्तुएँ निकट रूप में पूरक होती हैं तो उनकी माँग को 'संयुक्त माँग' कहा**

चूँकि पूरक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु की माँग में परिवर्तन दूसरी वस्तु उसी प्रकार का परिवर्तन करता है, इसलिए 'संयुक्त माँग' को कुछ अर्थशास्त्री निम्न परिभाषित करते हैं—**जब दो या दो से अधिक वस्तुओं को एक साथ प्रयोग किया जा जब एक वस्तु की माँग में परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग में निश्चित रूप से उसी प्रकार वर्तन करता है, तो ऐसी वस्तुओं की माँग को 'संयुक्त माँग' कहा जाता है।**[3]

संयुक्त माँग प्रायः 'निकाली हुई माँग' या 'व्युत्पन्न माँग' (derived den **सम्बन्धित होती है।** किसी अन्तिम वस्तु (final commodity) के उत्पादन में कई साधनों की माँग एक साथ होती है इसलिए इनकी माँग 'संयुक्त माँग' हुई, परन्तु इन साधनों की माँग 'व्युत्पन्न माँग' भी होती है; इसलिए ऐसी संयुक्त माँग को 'व्युत्पन्न सं (derived joint demand) कहते हैं।

परन्तु ध्यान रहे कि 'संयुक्त माँग' तथा 'व्युत्पन्न माँग' दोनों के अर्थ अलग-अल के अर्थों के सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। "व्युत्पन्न माँग इस बात से उत्पन्न कि अन्तिम उपभोक्ताओं को उत्पादन की बाद की अवस्थाओं में वस्तुओं की आवश्यकता प यह उत्पादन की उत्तरोत्तर या अनुगामी अवस्थाओं (successive stages) को व संयुक्त माँग इस बात को बताती है कि कई वस्तुएँ एक समय में (simultaneously) f अवस्था में माँगी जाती हैं या उपभोक्ता उनकी माँग स्वयं करता है। अतः इन दोनों में गमन (succession) तथा समसामयिकता (simultaneity) के अन्तर में निहित है।"[5]

संयुक्त माँग के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Pricing Under Joint Demand)

किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (अर्थात माँग) तथा सीमा (अर्थात पूर्ति) द्वारा निर्धारित होता है। संयुक्त माँग की वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के म एक मुख्य कठिनाई यह है कि प्रत्येक वस्तु की सीमान्त लागत पृथक-पृथक होती है पर

---

2 *When two or more goods are closely complementary, they are said to be und* demand.'

3 When two or more products are used together, and when a change in the den one comm... *efinitely causes a similar change in the demand for the other, th* nder 'joint demand'.

उत्पत्ति के साधन की माँग अप्रत्यक्ष रूप में अन्तिम तथा पूर्ण वस्तु commodity) की प्रत्यक्ष माँग के कारण उत्पन्न होती है तो ऐसी या 'उत्पन्न माँग' (derived demand) कहते हैं। उदाहरणार्थ उप नों की माँग 'प्रत्यक्ष माँग' (direct demand) होती है। परन्तु म णि के लिए श्रम, ईंट, चूना, सीमेण्ट इत्यादि साधनों की माँग होती है; इन साधनों की माँग अन्तिम वस्तु (मकान) की माँग के कारण उत्पन्न होती है, इसलिए इन के साधनों की माँग को 'व्युत्पन्न माँग' कहा जाता है।

5 Derived demand arises from the fact that goods at *more or less remote stages of* ction are led by the final consumer. It refers to *the successive stages of prod* Joint s to the fact that several articles *may be demanded simulta* by the consumer *himself. The distinction between the tw* between succession and simultaneity."

की सीमान्त उपयोगिता अलग-अलग मालूम नहीं होती; एक उपभोक्ता तो 'वस्तुओं के संयोग की उपयोगिता' (utility of the combination of commodities) को ही जानता है, वस्तुओं की अलग-अलग सीमान्त उपयोगिता को नही।

उदाहरणार्थ, डबल रोटी तथा मक्खन की सीमान्त लागतें अलग-अलग मालूम होती हैं जिनके आधार पर इनकी पूर्ति रेखाएँ खींची जा सकती हैं; तथा उपभोक्ताओं को 'डबल रोटी तथा मक्खन के संयोग' से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता भी मालूम होती है, परन्तु उपभोक्ता यह नही जानता कि उसे डबल रोटी से पृथक रूप मे तथा मक्खन से पृथक रूप मे कितनी सीमान्त उपयोगिता मिलती है, अर्थात इन दोनों वस्तुओं की पृथक-पृथक माँग रेखाएँ नही खींची जा सकतीं।

यदि हम किसी तरह से संयुक्त माँग वाली प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को पृथक रूप से मालूम कर सकें तो मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का प्रयोग करके प्रत्येक वस्तु का मूल्य निश्चित किया जा सकता है।

संयुक्त माँग वाली किसी भी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को पृथक रूप मे ज्ञात करने के लिए अर्थशास्त्री एक रीति का प्रयोग करते है जिसे 'सीमान्त विश्लेषण रीति' (Marginal Analysis Method) कहा जा सकता हैं। इस रीति मे सर्वप्रथम हम संयुक्त माँग वाली वस्तुओं के एक संयोग को लेकर चलते हैं। इस संयोग से उपभोक्ता को एक निश्चित मात्रा मे उपयोगिता प्राप्त होती है। अब इनमें से एक वस्तु को थोड़ी मात्रा (या १ इकाई) से बढाते हैं, जबकि दूसरी वस्तु (या वस्तुओं) की मात्रा को स्थिर या सीमित रखते हैं, इस दूसरे संयोग से उपभोक्ता को पहले संयोग की अपेक्षा कुछ बढ़ी हुई उपयोगिता प्राप्त होगी; यदि हम दूसरे संयोग की उपयोगिता में से पहले संयोग की उपयोगिता घटा दें तो परिवर्तनशील वस्तु की सीमान्त उपयोगिता ज्ञात हो जायेगी। इस बात को संक्षेप में निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

१ डबल रोटी + २ मक्खन = ३ रु० के बराबर उपयोगिता
१ डबल रोटी + ३ मक्खन = ४·२५ रु० के बराबर उपयोगिता
अतः, मक्खन की एक अतिरिक्त
इकाई की उपयोगिता = १·२५ रु० के बराबर

उपर्युक्त उदाहरण मे मक्खन की सीमान्त उपयोगिता १·२५ रु० के बराबर है। इसी प्रकार से हम डबल रोटी की सीमान्त उपयोगिता भी ज्ञात कर सकते हैं यदि मक्खन की मात्रा स्थिर रखें तथा डबल रोटी की मात्रा को एक इकाई से बढायें।

इसी प्रकार से सीमान्त विश्लेषण की सहायता से उत्पत्ति के साधनों की संयुक्त माँग मे किसी भी एक साधन की सीमान्त उपयोगिता अर्थात सीमान्त उत्पादकता ज्ञात की जा सकती है; ध्यान रहे कि उत्पत्ति के साधनों के सम्बन्ध मे हम सीमान्त उपयोगिता के स्थान पर सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) शब्द का प्रयोग करते है। उदाहरणार्थ :

१० श्रम + ५० क्विंटल कच्चा माल + १,००० रु० पूंजी = २० क्विंटल
जिसका मूल्य है, २००० रु०
११ श्रम + ५० क्विंटल कच्चा माल + १,००० रु० पूंजी = २२ क्विंटल
जिसका मूल्य है २,०२० रु०
अतः १ अतिरिक्त श्रम की सीमान्त उत्पादकता = २ क्विंटल
जिसका मूल्य है २० रु०

स्पष्ट है कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता २० रु० के बराबर है। इसी प्रका भी एक साधन को परिवर्तनशील रखकर तथा अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्त की पृथक रूप में सीमान्त उत्पादकता ज्ञात कर सकते हैं।

इस प्रकार 'सीमान्त विश्लेषण रीति' की सहायता से संयुक्त माँग की वस्तुओं या साधनों की पृथक-पृथक सीमान्त उपयोगिताएँ या सीमान्त उत्पादकताएँ ज्ञात हो जाती उनकी पृथक-पृथक माँग रेखाएँ खींची जा सकती हैं) तथा उनकी सीमान्त लागतें हमें ज्ञा हैं (अर्थात् उनकी पूर्ति रेखाएँ खींची जा सकती हैं), अत: इन वस्तुओं या साधनों का विन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर सीमान्त उपयोगिता (या सीमान्त उत्पादकता) औ लागत बराबर होती है।

यहाँ पर ध्यान रखने की बात है कि यदि संयुक्त माँग वाले साधनों के मिलने को टेकनीकल कारणों से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है तो ऐसी दशा में पृथक रूप की सीमान्त उपयोगिताएँ अर्थात् सीमान्त उत्पादकताएँ ज्ञात नहीं की जा सकतीं।

अब हम यह देखेंगे कि **माँग तथा पूर्ति में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप संयुक्त म वस्तुओं की कीमतों पर पृथक रूप से क्या प्रभाव पड़ेगा।** (i) माँग में परिवर्तन दोनों व कीमतों को एक ही दिशा में परिवर्तित करेगा; अर्थात् उपर्युक्त उदाहरण में, माँग बढ़ने रोटी तथा मक्खन दोनों की कीमतें बढ़ेंगी। (ii) यदि एक वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन होने णामस्वरूप उसकी कीमत परिवर्तित होती है, तो दूसरी वस्तु की कीमत विपरीत दिशा में होगी। उदाहरणार्थ, यदि गेहूँ की कमी के कारण डबल रोटी की पूर्ति कम हो जाती परिणामस्वरूप डबल रोटी की कीमत बढ़ जाती है तो डबल रोटी की माँग कम होगी; डब की माँग कम होने से मक्खन की माँग भी कम होगी, परिणामस्वरूप मक्खन की कीमत जायेगी। स्पष्ट है कि डबल रोटी की पूर्ति में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप उसकी क परिवर्तन दूसरी वस्तु (मक्खन) की कीमत को विपरीत दिशा में परिवर्तित करता है।

उत्पत्ति के साधनों की संयुक्त माँग या व्युत्पन्न संयुक्त माँग (derived joint de **के सम्बन्ध में मार्शल ने एक विशेष स्थिति की विवेचना की है।** यदि संयुक्त माँग वाले उत्प साधनों में से एक साधन ऊँचा पारितोषण माँगता है, तो क्या वह साधन अपने उद्देश्य में स सकेगा?[6] 'मार्शल' के अनुसार, यह साधन ऊँची कीमत प्राप्त करने में तब सफल हो सकेगा निम्न ४ दशाएँ पूरी हों :

(i) वह साधन वस्तु विशेष के उत्पादन के लिए अत्यन्त आवश्यक होना चाहिए साधन का अच्छा स्थानापन्न (substitute) कम कीमत (moderate price) पर प्राप्त होना चाहिए।

(ii) वह साधन अन्य साधनों के साथ जिस वस्तु को उत्पादित करता है, उस की माँग बेलोचदार होनी चाहिए।

(iii) उस साधन का मूल्य (अर्थात पारितोषण) कुल उत्पादन-लागत का केवल थोड़ा भाग होना चाहिए।

---

6 Marshall puts the question as follows: "Let us inquire what are the conditions under which a check to the supply of a thing that is wanted not for direct use, but as a factor of production of some commodity, may cause a great rise in its price." For this he lays down four conditions.

—See Marshall's, *Principles of Economics*, pp. 3[illegible]

(iv) सहयोग करने वाले अन्य साधनों को दबाया (squeeze) जा सके, दूसरे शब्दों में, अन्य साधनों को कम पुरस्कार दिया जा सके। यदि साधन विशेष, ऊँची कीमत प्राप्त करने की दृष्टि से, अपनी पूर्ति कम करता है, तो अन्य सहयोग करने वाले साधनों की माँग बहुत कम हो जानी चाहिए ताकि उनको कम पुरस्कार दिया जा सके और इस प्रकार से जो बचत हो उसे साधन विशेष को ऊँची कीमत के रूप में दिया जा सके।

यदि एक उत्पत्ति का साधन उपर्युक्त चारों दशाओं को पूरा करता है तो वह ऊँची कीमत प्राप्त करने में सफल होगा।

संयुक्त पूर्ति या संयुक्त लागत
(JOINT SUPPLY OR JOINT COST)

संयुक्त पूर्ति का अर्थ

कई दशाओं में एक वस्तु के उत्पादन में साथ-साथ कुछ अन्य वस्तुएँ भी स्वतः (automatically) प्राप्त हो जाती हैं। यद्यपि इन वस्तुओं की माँग पृथक्-पृथक् होती है परन्तु उनका उत्पादन एक साथ ही होता है; इसलिए ऐसी वस्तुओं की पूर्ति संयुक्त होती है।

संयुक्त पूर्ति को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ एक साथ, एक ही उत्पादन प्रक्रिया (process) में, स्वतः प्राप्त होती हैं तो ऐसी स्थिति को 'संयुक्त पूर्ति' या 'संयुक्त लागत' कहा जाता है। संयुक्त लागतों के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं को प्रायः 'संयुक्त वस्तुएं' (Joint products) कहा जाता है।[7] संयुक्त पूर्ति के उदाहरण हैं—रुई तथा बिनौला, भेड़ से ऊन तथा गोश्त, पत्थर का कोयला तथा गैस इत्यादि।

ढीले रूप में, 'संयुक्त वस्तुओं' के अन्तर्गत प्रायः 'उप-उत्पादकों' (by-products) को भी शामिल कर लिया जाता है, यद्यपि कड़े (strictly) रूप में ऐसा ठीक नहीं है। कड़े रूप में गैसोलीन, मिट्टी का तेल तथा चिकनाने वाले तेल वास्तव में संयुक्त वस्तुएँ नहीं हैं। पेट्रोलियम की सफाई (refining) करने में सर्वप्रथम गैसोलीन उत्पादित होती है, परन्तु इस प्रक्रिया में मिट्टी का तेल तथा चिकनाने वाले तेल स्वतः नहीं निकलते, बल्कि इनको प्राप्त करने के लिए और अधिक प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है और ऐसा करने में विशेष लागतें (special costs) उठानी पड़ती हैं। चूँकि 'उप-उत्पादों' को प्राप्त करने में विशेष लागतें उठानी पड़ती हैं, इसलिए दीर्घकाल में इन उप-उत्पादों को बेचने से इतना आगम (revenue) अवश्य प्राप्त हो जाना चाहिए जिससे कि ये विशेष लागतें निकल आयें।

संयुक्त पूर्ति के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price Determination Under Joint Supply)

संयुक्त वस्तुओं के उत्पादन की कुल लागत तो ज्ञात होती है, परन्तु उनकी लागतें अलग-अलग ज्ञात नहीं होतीं; संयुक्त वस्तुओं का उत्पादन एक साथ होता है, इसलिए उनकी लागतों को पृथक करना कठिन है। ऐसी परिस्थितियों में प्रश्न यह उठता है कि संयुक्त वस्तुओं की कीमतें किस प्रकार निर्धारित की जायें?

मूल्य निर्धारण के विश्लेषण की दृष्टि से संयुक्त वस्तुओं को प्रायः दो वर्गों में बाँटा जाता है—(i) ऐसी संयुक्त वस्तुएँ जिनके अनुपातों को परिवर्तित किया जा सकता है; इसका एक उदाहरण प्रायः ऊन तथा गोश्त का दिया जाता है, हम ऐसी भेड़ों को पाल (rear) सकते हैं जो

---

7 ... ed at the same time in a single ... supply' or 'joint cost'. Articles ... called as 'joint products'.

स्पष्ट है कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता २० रु० के बराबर है। इसी भी एक साधन को परिवर्तनशील रखकर तथा अन्य साधनों को स्थिर रखकर की पृथक रूप में सीमान्त उत्पादकता ज्ञात कर सकते हैं।

इस प्रकार 'सीमान्त विश्लेषण रीति' की सहायता से संयुक्त माँग की वस्तुओं साधनों की पृथक-पृथक सीमान्त उपयोगिताएँ या सीमान्त उत्पादकताएँ ज्ञात हो जात उनकी पृथक-पृथक माँग रेखाएँ खींची जा सकती हैं) तथा उनकी सीमान्त लागतें हमें हैं (अर्थात् उनकी पूर्ति रेखाएँ खींची जा सकती हैं), अतः इन वस्तुओं या साधनों बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर सीमान्त उपयोगिता (या सीमान्त उत्पादकता) लागत बराबर होती है।

यहाँ पर ध्यान रखने की बात है कि यदि संयुक्त माँग वाले साधनों के मिल को टेकनीकल कारणों से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है तो ऐसी दशा में पृथक की सीमान्त उपयोगिताएँ अर्थात् सीमान्त उत्पादकताएँ ज्ञात नहीं की जा सकतीं।

अब हम यह देखेंगे कि **माँग तथा पूर्ति में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप संयुक्त वस्तुओं की कीमतों पर पृथक रूप से क्या प्रभाव पड़ेगा।** (i) माँग में परिवर्तन दोनों कीमतों को एक ही दिशा में परिवर्तित करेगा; अर्थात् उपर्युक्त उदाहरण में, माँग रोटी तथा मक्खन दोनों की कीमतें बढ़ेंगी। (ii) यदि एक वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन ह णामस्वरूप उसकी कीमत परिवर्तित होती है, तो दूसरी वस्तु की कीमत विपरीत दिशा होगी। उदाहरणार्थ, यदि गेहूँ की कमी के कारण डबल रोटी की पूर्ति कम हो ज परिणामस्वरूप डबल रोटी की कीमत बढ़ जाती है तो डबल रोटी की माँग कम होगी; की माँग कम होने से मक्खन की माँग भी कम होगी, परिणामस्वरूप मक्खन की क जायेगी। स्पष्ट है कि डबल रोटी की पूर्ति में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप उसक परिवर्तन दूसरी वस्तु (मक्खन) की कीमत को विपरीत दिशा में परिवर्तित करता है।

उत्पत्ति के साधनों की संयुक्त माँग या व्युत्पन्न संयुक्त माँग (derived joint **के सम्बन्ध में मार्शल ने एक विशेष स्थिति की विवेचना की है।** यदि संयुक्त माँग वाले साधनों में से एक साधन ऊँचा पारितोषण माँगता है, तो क्या वह साधन अपने उद्देश्य में सकेगा ?[6] 'मार्शल' के अनुसार, यह साधन ऊँची कीमत प्राप्त करने में तब सफल हो सक निम्न ४ दशाएँ पूरी हों :

(i) वह साधन वस्तु विशेष के उत्पादन के लिए अत्यन्त आवश्यक होना चा साधन का अच्छा स्थानापन्न (substitute) कम कीमत te price) पर होना चाहिए।

(ii) वह साधन अन्य साधनों के साथ दित करता है, उस माँग बेलोचदार होनी चाहिए।

(iii) उस साधन का मूल्य (अ न उत्पादन-ल भाग होना चाहिए।

---

6 Marshall puts the quest us in which a check to the s is wanted of production of so use a lays down four co

किरायों की दरों को इसी सिद्धान्त द्वारा निर्धारित करती है; ये हल्की तथा मूल्यवान वस्तुओं के लिए भाड़े की दर अधिक रखती है क्योंकि ये वस्तु ऊँची दरों को सहन कर सकती है।

(ख) यह सम्भव हो सकता है कि संयुक्त वस्तुओं में से प्रत्येक वस्तु को बाजार में बेचने योग्य बनाने के लिए कुछ विशेष लागतें (special costs) या परिवर्तनशील लागतें (variable cost or prime cost) उठानी पड़ें। ऐसी दशा में वस्तु को बेचने से, अल्पकाल में, कम से कम ये विशेष लागतें या परिवर्तनशील लागतें, अवश्य निकल आनी चाहिए; इस दृष्टि से ये लागतें वस्तु की निचली सीमा को निर्धारित करती हैं।

अब हम माँग में परिवर्तनों के प्रभाव का अध्ययन करेंगे। माना कि दो संयुक्त वस्तुएँ हैं। अन्य बातों के समान रहते हुए, संयुक्त वस्तुओं में से एक वस्तु की माँग में परिवर्तन उस वस्तु की कीमत में उसी प्रकार परिवर्तन करेगा, परन्तु दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन विपरीत दिशा में होगा। इस सामान्य सिद्धान्त को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं। हम 'रुई तथा बिनौला' को संयुक्त वस्तुओं का उदाहरण लेते हैं। माना कि अल्पकाल में रुई की माँग में अधिक वृद्धि हो जाती है, तो रुई की कीमत में उसी प्रकार का परिवर्तन होगा अर्थात् उसकी कीमत भी बढ़ेगी, रुई पर अधिक लाभ प्राप्त होने लगेगा, परिणामस्वरूप रुई का उत्पादन बढ़ेगा; परन्तु रुई के उत्पादन में वृद्धि के साथ बिनौले का उत्पादन भी बढ़ेगा अर्थात् बिनौले की पूर्ति बढ़ेगी जबकि उसकी माँग पहले के समान ही रहती है। ऐसी स्थिति में बिनौलों की कीमत कम हो जायेगी। स्पष्ट है कि रुई की माँग में वृद्धि से रुई की कीमत में भी वृद्धि होती है परन्तु दूसरी वस्तु (बिनौले) की कीमत घटती है।

मिश्रित या प्रतिद्वन्द्वी माँग
(COMPOSITE OR RIVAL DEMAND)

मिश्रित या प्रतिद्वन्द्वी माँग का अर्थ

जब एक वस्तु दो या दो से अधिक प्रयोगों में माँगी जाती है, तो ऐसी माँग को मिश्रित माँग कहते हैं।[8] वस्तु की सीमितता के कारण विभिन्न प्रयोग वस्तु को अपनी ओर खींचने के लिए प्रतियोगिता करते हैं, इसलिए ऐसी माँग को 'प्रतिद्वन्द्वी माँग' या 'प्रतियोगी माँग' भी कहते हैं। उदाहरणार्थ, बिजली की रोशनी, पंखे, उद्योगों के चलाने इत्यादि कई प्रयोगों में माँगा जाता है, इसलिए इसकी माँग मिश्रित माँग हुई। लगभग सभी कच्ची वस्तुओं (raw materials), जैसे, कोयला, चमड़ा, ऊन, लोहा, चाँदी, इत्यादि की मिश्रित माँग होती है। इसी प्रकार लगभग सभी उत्पत्ति के साधनों (जैसे श्रम, भूमि, पूँजी) की माँग मिश्रित माँग होती है।

मिश्रित माँग वाली वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में कोई कठिनाई नहीं होती। विभिन्न प्रयोगों में वस्तु की माँगों को जोड़ कर कुल माँग ज्ञात कर ली जाती है अर्थात् वस्तु की कुल माँग रेखा खींची जा सकती है। वस्तु की सीमान्त लागत अर्थात् पूर्ति रेखा ज्ञात रहती है। अतः वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारण होगा जहाँ पर कि माँग तथा पूर्ति रेखाएँ काटती हैं।

मिश्रित अथवा प्रतिद्वन्द्वी पूर्ति
(COMPOSITE OR RIVAL SUPPLY)

जब किसी आवश्यकता की पूर्ति कई वस्तुओं द्वारा की जा सकती है तो ऐसी वस्तुएँ मिश्रित पूर्ति में कही जाती हैं। दूसरे शब्दों में, जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ एक दूसरे की

---

8 When a commodity is demanded for two or more different uses, the demand is said to be composite.

स्थानापन्न (substitutes) होती हैं तो वे मिश्रित पूर्ति में कही जाती हैं। मिश्रित पूर्ति मांग की उल्टी होती है। मिश्रित मांग में एक वस्तु होती है जो कि दो या दो से अधि में प्रयोग की जाती है। मिश्रित पूर्ति में दो या दो से अधिक वस्तुएँ होती हैं जो कि एक लिए प्रयोग की जाती हैं।[9] मिश्रित पूर्ति वाली वस्तुएँ किसी एक आवश्यकता की पू आपस में प्रतियोगिता करती हैं, इसलिए इनको प्रतियोगी वस्तुएँ (competitive go कहा जाता है। ये प्रतिद्वन्दी पूर्ति (rival supply) में होती हैं। उदाहरणार्थ, पीने की अ को चाय, कॉफी, या कोको द्वारा पूरा किया जा सकता है, अतः ये वस्तुएँ मिश्रित पूर्ति में

प्रतिस्थापन के सिद्धान्त (principle of substitution) के अनुसार प्रतियोगी बिन्दु तक प्रयोग की जायेंगी जहाँ पर सीमान्त उपयोगिताएँ (marginal utilities) वास्तविक उत्पादकताएँ (marginal net products) उनकी कीमतों के बराबर हों। द् में, प्रत्येक की कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता या सीमान्त वास्तविक उत्पादकता के होगी। चूँकि प्रत्येक वस्तु की सीमान्त लागत ज्ञात होती है इसलिए मिश्रित पूर्ति की वस कीमत उनकी सीमान्त लागत तथा सीमान्त उपयोगिता या सीमान्त वास्तविकता उत्पादक निर्धारित होती हैं।

११ सट्टा [SPECULATION]

सट्टे का विषय एक आकर्षक (fascinating) विषय है; यह माँग तथा पूर्ति के पूर्ण प्रयोग को बताता है; परन्तु साथ ही यह एक जटिल विषय है।

सट्टे का अर्थ (MEANING OF SPECULATION)

सट्टे के अन्तर्गत वर्तमान में क्रय या विक्रय तथा इसके बाद, मूल्यों में परिवर्तन के णामस्वरूप लाभ प्राप्त करने की आशा से, भविष्य में विक्रय या क्रय किया जाता है।[1]

जब एक सटोरिया भविष्य में किसी वस्तु, सिक्योरिटी (security) या शेयर के मू वृद्धि की आशा करता है तो वह उसको वर्तमान में खरीदता है और भविष्य में उसे बेचकर उठाता है। यदि उसका अनुमान है कि वस्तु विशेष का मूल्य भविष्य में गिरेगा तो वह वर्तमा

9 Composite supply is the opposite of composite demand. In composite demand the one product used for two or more purposes. In composite supply there are two or product used for one purpose.

1 "Speculation is a purchase or sale in the present, followed by a sale or purchase i future, in the expectation of marking a profit from a price change in the meantime."

वस्तु को बेचेगा और भविष्य में खरीदकर लाभ उठायेगा। सटोरिये के लाभ की मात्रा उनके सही अनुमान पर निर्भर करेगी, यदि उनके अनुमान गलत सिद्ध होते है तो उनको हानि होगी।

संगठित सट्टे का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष (aspect) यह है कि इसके अन्तर्गत भविष्य मे डिलीवरी (future delivery) के लिए पहले से ही किसी एक तय की हुई कीमत पर वस्तुओ का क्रय तथा विक्रय किया जाता है। इसलिए सट्टे को 'भविष्य में व्यवसाय' (futures trading) कहते हैं।[2] इसे 'फ्यूचर में लेन-देन' (dealing in future) या केवल 'फ्यूचर' (future) कहते हैं।

सट्टे के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने के लिए निम्न बातों को ध्यान मे रखना चाहिए :

(i) किसी वस्तु का सौदा वर्तमान मे किया जाता है और उसका निपटारा (settlement) भविष्य में पहले से निर्धारित की हुई किसी तिथि पर होता है।

(ii) इस प्रकार का सौदा केवल लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से किया जाता है। चूंकि सट्टे के अन्तर्गत दो समयो के बीच मूल्य मे अन्तर होने के कारण लाभ प्राप्त होता है, इसलिए सट्टे को 'समयावधि में लाभ' अर्थात 'समयावधि में आरबिट्रेज' (arbitrage through time) भी कहा जाता है। इसलिए सटोरियों (speculators) को 'आरबिट्रेजर्स' (arbitragers) भी कहा जाता है।

[एक ही समय मे दो स्थानो मे किसी वस्तु के मूल्य मे अन्तर के परिणामस्वरूप जो लाभ होता है उसे अर्थशास्त्र में टेकनीकल भाषा मे आरबिट्रेज (arbitrage) कहा जाता है। इसके सम्बन्ध मे थोड़ा विस्तार से आगे बताया गया है।]

(iii) एक सटोरिया प्रायः वस्तुओं का भौतिक रूप से (physically) क्रय तथा विक्रय नही करता अर्थात वह वास्तविक वस्तुओं (actual commodities) का प्रायः लेन-देन नही करता है; वह केवल *भविष्य के वायदो (future contracts) मे लेन-देन करता है। दूसरे शब्दों मे,* वह 'कागज के टुकड़ो' (bits of paper) का क्रय तथा विक्रय करता है; इन 'कागज के टुकड़ों' को 'वस्तु फ्यूचर्स' (commodity futures) *कहा जाता है। ये 'वस्तु फ्यूचर्स' वे अनुबन्ध (contracts) होते है जिनमे संगठित सट्टा बाजार मे दलाल लेन-देन करते है।*[3] *इसीलिए सट्टे* को 'फ्यूचर मे लेन-देन' या फ्यूचर भी कहते है।

संक्षेप में, एक सटोरिया प्रायः वस्तुओ को नही छूता, वह जोखिमों मे लेन-देन करता है। और इसलिए वह 'व्यावसायिक जोखिम उठाने वाला' (professional *risk* taker) कहा जाता है। एक सटोरिया वस्तुओ का नहीं बल्कि जोखिमों का व्यवसायी होता है।[4]

सट्टा तथा आरबिट्रेज
(SPECULATION AND ARBITRAGE)

हम सट्टे को 'समयावधि में आरबिट्रेज' (arbitrage through time) कहते हैं, केवल 'आरबिट्रेज' (arbitrage) नही कहते क्योकि आरबिट्रेज तथा सट्टा एक ही बात नही है। आरबिट्रेज तथा सट्टे मे निम्न अन्तर है :

---

2 An important aspect of organised speculation is the practice of buying and selling goods for future delivery at a price agreed upon some time in advance. This is known as 'futures trading.'

3 "These bits of paper are called 'commodity futures', they are contracts that brokers deal with on organised commodity exchanges."

4 A speculator "is a dealer, not in goods, but in risks."

(i) सट्टे के अन्तर्गत किसी वस्तु को एक समय में खरीदा जाता है और दू
बेचा जाता है और इस प्रकार दो समयों के बीच मूल्यों के अन्तर से लाभ अर्जित किया
आरबिट्रेज के अन्तर्गत एक ही वस्तु का एक ही समय में दो विभिन्न बाजारों
विक्रय किया जाता है और इस प्रकार एक समय पर ही दो स्थानों के बीच मूल्यों
लाभ अर्जित किया जाता है।

(ii) सट्टा वस्तु की पूर्ति तथा कीमत को एक समय-अवधि (over a period
में स्थायी (stabilise) करने में सहायक होता है और इस प्रकार सट्टा समय उपयोगि
utility) को उत्पन्न करता है।

आरबिट्रेज दो स्थानों पर (मांग के अनुसार) वस्तु की पूर्ति को स्थायी करता है
प्रकार 'स्थान उपयोगिता' (place utility) को उत्पन्न करता है।

आरबिट्रेज तथा सट्टा दोनों के कार्य संगठित प्रोड्यूस तथा स्टॉक ऐक्सचेन्जों (o
produce and stock exchanges) के द्वारा बहुत अधिक सुगम हो जाते हैं तथा इन
के व्यापारी प्राय: आरबिट्रेज तथा सट्टा दोनों प्रकार के लेन-देन करते हैं।

सट्टा तथा जुआ
(SPECULATION AND GAMBLING)

जुआ तथा सट्टा दोनों में अनिश्चितता तथा जोखिम (uncertainty and
परिणामस्वरूप लाभ प्राप्त होता है, परन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। जुआ, अपने स्वभाव (
तथा सामाजिक परिणामों (social conseqences) दोनों दृष्टियों से सट्टे से भिन्न है।
दोनों में अन्तर निम्नलिखित है :

(i) जुए में जोखिम जान-बूझ कर उत्पन्न की जाती है और यह जोखिम अन
(unnecessary) होती है क्योंकि इसका उत्पादन प्रक्रिया (productive process)
सम्बन्ध नहीं होता। जुए में एक पक्ष को धन का लाभ होता है तथा दूसरे को धन की
इससे समाज को कोई वास्तविक लाभ (net gain) नहीं होता। उदाहरणार्थ, जुआरी प्र
मैचों के सम्बन्ध में एक पक्ष की हार या जीत पर शर्त (bet) लगा सकते हैं; किसी दिन के
की मात्रा पर शर्त लगा सकते हैं; एक सड़क के किनारे पर बैठ कर इस बात की शर्त लगा
हैं कि पहले कार बायीं ओर से गुजरेगी या दायीं ओर से; इत्यादि। इन सब उदाहर
उत्पादन प्रक्रिया की दृष्टि से कोई जोखिम नहीं है, इनमें जोखिम को जान-बूझ कर उत्पन्न
जाता है ताकि लाभ-हानि हो सके।

इसके विपरीत, उचित सट्टे (genuine speculation) में एक सटोरिया आवश्यक
प्राकृतिक जोखिमों को उठाता है। उदाहरणार्थ, छः महीने या एक साल बाद रुई की म
सकती है या घट सकती है; स्पष्ट है कि यहाँ पर जोखिम मौजूद है जिसको किसी को उ
चाहिए ताकि रुई का उत्पादन ठीक रहे।

(ii) सामाजिक प्रभावों की दृष्टि से भी सट्टे तथा जुए में अन्तर है :

(अ) सट्टा उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग देता है। सट्टे के द्वारा व्यावसायिक जोखि
एक सामान्य उत्पादक जो कि उसको सहन करने की उचित क्षमता नहीं रखता, से एक विशे
को हस्तान्तरण सम्भव है जो कि अपनी विशिष्टता (specialisation) के कारण उसको स
करने की अच्छी क्षमता रखता है। इस प्रकार, यदि सट्टा उचित समझदारी (intelli
rstanding) पर आधारित है, तो वह व्यवसाय के चलन (conduct of business)

सुगम करता है तथा समस्त उद्योग में अनिश्चितता को कम करता है, (परन्तु जब सट्टा उचित जानकारी पर आधारित नहीं होता और अनुचित रीति से किया जाता है तो वह जुए के समान ही हो जाता है)।

(ब) जुआ उत्पादक कार्य में कोई सहयोग नहीं देता। प्रथम, आसानी से धन को प्राप्त करने के लालच से जुआ बहुत से व्यक्तियों को उत्पादक कार्यों से हटा देता है, और इस प्रकार सामाजिक आय (social income) को कम कर देता है। दूसरे, जुआ आयों में असमानताओं तथा अस्थायित्व (inequality and instability of incomes) को बढ़ावा देता है। जुए की मेज पर जो व्यक्ति एक समान धन की मात्रा लेकर बैठते हैं तथा वे धन की मात्रा में बहुत अन्तर के साथ मेज को छोड़ कर जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जुआ, अपने स्वभाव तथा सामाजिक परिणामों दोनों दृष्टियों से, सट्टे से अन्तर रखता है।

सट्टा बाजार के विकास के लिए दशाएँ
(CONDITIONS FOR GROWTH OF SPECULATIVE MARKET)

अथवा

सट्टे के लिए वस्तुओं की उपयुक्तता
(SUITABILITY OF COMMODITIES FOR SPECULATION)

सामान्यतया कोई भी वस्तु जिसके भविष्य में अनिश्चितता का तत्त्व हो, सट्टे के लिए उपयुक्त हो सकती है, परन्तु इतना कहना पर्याप्त नहीं है। सट्टा बाजार के विकास के लिए या सट्टे के हेतु वस्तुओं की उपयुक्तता के लिए निम्न दशाओं का होना आवश्यक है :

(१) वस्तु टिकाऊ (durable) होनी चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार उसका संचय किया जा सके। यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली (perishable) है (जैसे साग-सब्जी, दूध, इत्यादि) तो वह सट्टे के लिए उपयुक्त नहीं होगी।

(२) वस्तु ऐसी होनी चाहिए जिसकी माँग विस्तृत तथा नियमित हो, अन्यथा सटोरिया उसको भविष्य में बेचने के सम्बन्ध में निश्चित (sure) नहीं हो सकता।

(३) वस्तु ऐसी होनी चाहिए जिसका प्रमापीकरण (standardisation) हो सके तथा जिसे शीघ्रता से पहचाना (easily cognizable) जा सके। सोना, चाँदी, शेयर, गेहूँ इत्यादि ऐसी वस्तुएँ हैं।

(४) वस्तु ऐसी होनी चाहिए जिसकी पर्याप्त पूर्ति सामान्यतः प्राप्य हो अन्यथा सटोरियों को उस वस्तु को भविष्य में प्राप्त करने में कठिनाई होगी। परन्तु वस्तु की पूर्ति नियमित (regular) नहीं होनी चाहिए तभी अनिश्चितता का तत्त्व होगा और सट्टे के लिए वह वस्तु उपयुक्त होगी। प्रायः कृषि की वस्तुएँ, जैसे—रुई, ऊन, गेहूँ, जूट इत्यादि, इस गुण को पूरा करती हैं।

सट्टे के प्रकार
(KINDS OF SPECULATION)

सट्टा कई प्रकार का हो सकता है। प्रायः सट्टे के दो मुख्य रूप होते हैं जो निम्नलिखित हैं :

(१) 'उचित' या 'उत्पादक' अथवा 'सरल' या 'स्पर्द्धात्मक सट्टा' ('Legitimate' or 'productive' or 'competitive' speculation)—जब निपुण तथा अनुभवी व्यापारियों द्वारा सोच समझ कर तथा उचित जानकारी के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से सट्टा किया जाता है तो इसे 'उचित सट्टा' कहा जाता है। उचित सट्टे में अनुभवी व्यापारी या सटोरिये वस्तु की

माँग तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाली बातों का उचित ज्ञान प्राप्त करके वस्तु के मू
अनुमान लगाने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार लाभ प्राप्त करते हैं।

उचित सट्टे को प्रो० लर्नर (Prof. Lerner) ने 'उत्पादक' या 'सरल' (
or simple) सट्टा कहा है। वह व्यक्ति जो कि यह सोचता है कि बाजार मूल्य
अपना कोई प्रभाव नहीं होता और जो कि यह विश्वास रखता है कि मूल्य में वृ
उसके अपने कार्यों से स्वतन्त्र होकर होती है तथा जो क्रय या विक्रय का प्रयास लाभ
के लिए करता है ऐसे व्यक्ति को 'सरल' या 'स्पर्द्धात्मक' सटोरिया कहते हैं। सरल य
सटोरिया, यदि वह सफल होता है, सस्ता खरीदता है तथा मँहगा बेचता है और इस
लिए लाभ प्राप्त करता है। परन्तु वह अपने इन कार्यों से वस्तुओं को उन विन्दुओं
वे सापेक्षिक रूप से बहुतायत में हैं, हटाकर उन विन्दुओं पर ले जाता है जहाँ पर कि
रूप से कम हैं और इस प्रकार वह समाज को एक महत्त्वपूर्ण सेवा प्रदान करता है।[5]

(२) **'अनुचित' या 'आक्रमक' या 'एकाधिकृत' सट्टा** ('Illegitimate' or 'ag
or 'monopolistic' speculation)—जब सट्टा उन व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जं
की माँग तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाली शक्तियों से अनभिज्ञ होते हैं और फिर भी
प्राप्त करना चाहते हैं तो ऐसे सट्टे को 'अनुचित सट्टा' (Illegitimate speculatic
जाता है। जब किसी वस्तु का प्रमापीकरण हो जाता है तो उसमें सट्टा करना सुगम होत
सट्टे के लाभ से आकर्षित होकर सामान्य तथा अनुभवहीन व्यक्ति सट्टे में अनाड़ी ढंग
(dabble) करने लगते हैं और हानि उठाते हैं। ऐसे व्यक्ति अफवाहों से प्रभावित होते हैं
हुए कार्य करते हैं। वे अपनी वस्तुएँ उस समय बेचते हैं जबकि अनुभवी तथा कुशल विशे
अपने पास रोकते हैं, और वे वस्तुओं को उस समय खरीदते हैं जबकि अनुभवी तथा कुशल
उनको बेचते हैं। इस प्रकार इन अनाड़ी सटोरियों (dabblers in speculation) के
मूल्यों का उतार-चढ़ाव (fluctuations) पहले की अपेक्षा और अधिक हो जाता है।
इस प्रकार का अनुचित सट्टा जुए के समान ही हो जाता है।

अनुचित सट्टे का एक रूप 'आक्रमक सट्टा' (aggressive speculation) या 'ए
सट्टा' (monopolistic speculation) होता है। 'आक्रमक सट्टा' थोड़े से धना
शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जो कि आपस में मिलकर एकाधिकृत संयोग (
polistic combination) का निर्माण कर प्रतियोगिता को हटाने तथा बाजार के मूल्य प
नियन्त्रण करने का प्रयत्न करते हैं ताकि उनको अत्यधिक लाभ प्राप्त हो सके। ऐसे सटोरि
अनुचित रीतियों से बाजार के मूल्य को नियन्त्रित करते हैं। उदाहरणार्थ, वे प्रकट रू
दिखाते हैं कि वस्तु की कीमत गिरने वाली है और इसलिए वस्तु को अधिक मात्रा में
दिखावा करते हैं जबकि अप्रत्यक्ष रूप से उनके अन्य साथी वस्तु को खरीदते जाते हैं। इस
वे वस्तु की अधिकांश पूर्ति पर नियन्त्रण करके वस्तु को ऊँची कीमत पर बेचते हैं और अधिक
उठाते हैं।

आक्रमक सट्टा साधनों का अनुकूलतम वितरण नहीं करता। यह वस्तुओं के अन्तरों को कम (iron out) नहीं करता बल्कि उन अन्तरों को और अधिक बढ़ा देता है।

सट्टे के आर्थिक कार्य
(ECONOMIC FUNCTIONS OF SPECULATION)
अथवा
सट्टे का आर्थिक महत्त्व
(ECONOMIC SIGNIFICANCE OF SPECULATION)

उचित जानकारी पर आधारित सट्टा महत्त्वपूर्ण आर्थिक कार्य करता है। सट्टे का आर्थिक महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट होता है :

१. मूल्यों का स्थायित्व (*Stabilisation of Prices*)

सट्टा वस्तु की माँग तथा पूर्ति के अन्तर (gap) को कम करके मूल्यों में स्थिरता लाता है :

(अ) **पूर्व अनुमान लग सकने योग्य मूल्यों के उतार-चढ़ाव में स्थिरता लाना** (Stabilising foreseeable fluctuations in prices)—जब सटोरियों का यह अनुमान होता है कि वस्तु विशेष की पूर्ति भविष्य में कम होगी और उसका मूल्य ऊँचा होगा तो वे लाभ अर्जित करने की दृष्टि से भविष्य में वस्तु की डिलीवरी करने के लिए उसे वर्तमान में खरीदेंगे; ऐसा करने से परिणामों की निम्न प्रक्रिया (process) होगी—(i) वस्तु की वर्तमान पूर्ति में कमी, (ii) वर्तमान कीमत में वृद्धि, (iii) वस्तु के स्टॉक में वृद्धि, (iv) भविष्य की पूर्ति में वृद्धि, तथा (v) भविष्य में कीमत में कमी। स्पष्ट है कि सट्टे की अनुपस्थिति में वस्तु का मूल्य वर्तमान में
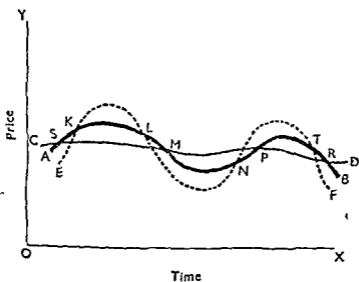
चित्र—६२

बहुत कम होता तथा भविष्य में बहुत ऊँचा, परन्तु सट्टे के कारण वस्तु का मूल्य वर्तमान में उतना नीचा नहीं होगा जितना कि वह होता और भविष्य में मूल्य उतना ऊँचा नहीं होगा जितना कि वह होता; इस प्रकार सट्टा मूल्यों के उतार-चढ़ाव में स्थिरता लाता है। उचित सट्टे (*Sound speculation*) द्वारा मूल्यों में स्थिरता लाने की स्थिति को चित्र न० ६२ में दिखाया गया है।

चित्र नं० ६२ में मोटी रेखा AB बिना सट्टे के कीमतों के रास्ते (course)
है। कम मोटी रेखा CD उचित व सही सट्टे (sound speculation) के परिणामस्व
के रास्ते को बताती है। उचित सट्टे के अन्तर्गत सटोरिये बिन्दु 'S' तथा बिन्दु 'P' पर
बेचेंगे (ताकि कीमतें अधिक न बढ़ें) और बिन्दु 'M' तथा बिन्दु 'R' पर वस्तु को खरीद
कीमतें अधिक न घटें) और इस प्रकार कीमतों का उतार-चढ़ाव बहुत कम हो जायेगा;
कारण कीमतों का रास्ता कम मोटी रेखा CD बताती है जिसको देखने से स्पष्ट होता है
में स्थिरता है अर्थात उतार-चढ़ाव बहुत कम है। यदि सट्टा अनुचित या गलत (perve
ऐसी स्थिति में कीमतों का रास्ता टूटी रेखा (dotted line) EF बताती है। गलत स
र्गत सटोरिये बिन्दु 'K' तथा बिन्दु 'N' पर खरीदना शुरू करेंगे, (जिससे कीमतें और
जायेंगी) तथा वे बिन्दु 'L' और बिन्दु 'T' पर बेचना शुरू करेंगे (जिससे कीमतें और
गिरेंगी)। इस प्रकार गलत सट्टा कीमतों के उतार-चढ़ाव को कम करने के स्थान
अधिक बढ़ा देता है।

(ब) **मूल्यों के मौसमी उतार-चढ़ाव में स्थिरता लाना** (Stabilising seasonal
ations of prices)—बहुत-सी वस्तुओं (जैसे, गेहूँ, चावल इत्यादि) की कीमतों में मौस
वर्तन होते हैं। फसल के समय वस्तु विशेष की अधिक पूर्ति होने के कारण कीमत नीची
तथा कुछ महीनों बाद (जब फसल का समय नहीं होता) उस वस्तु की पूर्ति कम और कीम
ऊँची हो जाती है। कुशल सटोरिये लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से वस्तु को फसल के सम
कीमत पर खरीदते हैं और कुछ महीनों बाद ऊँची कीमत पर बेचते हैं। ऐसा करने में व
निम्नतम तथा उच्चतम कीमत के बीच के अन्तर को कम करते हैं और इस प्रकार मू
मौसमी उतार-चढ़ाव में कमी होती है।

२. जोखिम में कमी (Reduction or Spreading of Risk)

सट्टा उत्पादकों के जोखिम को कम करता है, उत्पादक अपने जोखिम को सटोरि
कन्धे पर डाल सकते हैं। सटोरिये अपने कन्धों पर जोखिम उठाने को तत्पर रहते हैं औ
प्रकार वे दूसरों को जोखिम से बचाने में सहायक होते हैं। उत्पादक अपने आपको जोि
मुक्त **'दोहरे रक्षण की प्रक्रिया'** (process of hedging) द्वारा करते हैं। इसको निम्न उदा
द्वारा स्पष्ट किया गया है।

माना कि एक तेल मिल का मालिक कच्चे माल (अर्थात सरसों) के मूल्य में परिवर्तन
जोखिम से बचना चाहता है। माना कि तेल मिल का मालिक तेल निकालने के लिए २०
क्विटल सरसों ५० रु० प्रति क्विटल की दर से एक दिन खरीदकर ३ महीने के लिए स्टॉक क
है। इस के साथ ही वह उसी दिन सट्टे बाजार में ५० रु० क्विटल की दर से ३ महीने के व
से २,००० क्विटल सरसों बेच भी देता है। इस दोहरे व्यापार द्वारा वह अपने आपको सरसों
मूल्य में परिवर्तन होने के कारण जोखिम से बचा लेता है। यदि तीन महीने बाद सरसों की की
घट कर ४५ रु० हो जाती है तो उसे अपने सरसों के स्टॉक पर ५ × २,००० = १०,००० रु०
हानि होगी; परन्तु सट्टेबाजार में बेची गयी २,००० क्विटल सरसों पर उसे १०,००० रु०
लाभ हो जायेगा क्योंकि वह बाजार से ४५ रु० प्रति क्विटल की दर से सरसों खरीदकर सटोि
को ५० रु० प्रति क्विटल की दर से देकर अपनी डिलीवरी को पूरा करेगा। इस प्रकार एक अ

जो हानि होती है वह दूसरी ओर लाभ से पूरी हो जाती है। स्पष्ट है कि 'दोहरे रक्षण' (hedging) द्वारा उत्पादक अपने जोखिम को सटोरिये के कन्धों पर डाल देते हैं।

३. सट्टा पूँजी के विनियोग का मार्ग-दर्शन करता है (Speculation Guides the Investments of Capital)

सटोरिये शेयरों, प्रतिभूतियों (securities) तथा अन्य वस्तुओं का बहुत सोच-समझ कर तथा पर्याप्त जानकारी के आधार पर क्रय या विक्रय करते हैं। यदि स्टॉक-ऐक्सचेंज में किसी शेयर की कीमत दृढ़ (steady) रहती है या दृढ़ रूप में (steadily) बढ़ती है तो इसका अर्थ है कि लोग उन शेयर को खरीदने में अपनी पूँजी का विनियोग सुरक्षित समझेंगे। इस प्रकार सट्टा पूँजी के विनियोग का मार्ग-दर्शन कर सकता है।

४. सट्टा साधनों के अधिक अच्छे वितरण में सहायक है (Speculation Leads to Better Allocation of Resources)

अनुभवी सटोरिये किसी वस्तु की माँग का पूर्व अनुमान लगा लेते हैं। यदि वे समझते हैं कि वस्तु की माँग भविष्य में बढ़ेगी तो वे उसे तुरन्त खरीदने लगते हैं। इससे वस्तु की कीमत बढ़ती है और उत्पादक वस्तु के उत्पादन को बढ़ाने लगते हैं। इस प्रकार सटोरियों के कार्यों से उत्पत्ति के साधनों का उन वस्तुओं के उत्पादन में हस्तान्तरण होता है जिनकी माँग अधिक होती है। इस प्रकार उत्पत्ति के साधनों का अधिक उचित वितरण (allocation) होता है।

सट्टे के दोष
(EVILS OF SPECULATION)

यदि सट्टा उचित है तथा पर्याप्त जानकारी पर आधारित है तो वह लाभदायक होगा, अन्यथा नहीं। दूसरे शब्दों में, सट्टे में हानि निम्न दशाओं में होती है—(i) जब सट्टा भविष्य की कीमतों के सम्बन्ध में उचित जानकारी (intelligent understanding) पर आधारित नहीं होता, (ii) जब सटोरिये कुरीतियों (malpractices) का प्रयोग करते हैं तथा सट्टे का रूप आक्रमक (aggressive) हो जाता है; तथा (iii) जब सट्टा जुए का रूप धारण कर लेता है।

सट्टे के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं :

(१) अनुचित सट्टा मूल्यों के उतार-चढ़ाव को बढ़ा देता है (Unsound speculation widens the price fluctuations)—अनुभवहीन सटोरिये जब वस्तु की कीमत बढ़ती है तब उसे खरीदते हैं तथा जब उसकी कीमत गिरती है तब उसे बेचते हैं। इस प्रकार के मूल्यों के उतार-चढ़ाव (fluctuations) को और बढ़ा देते हैं। इसके दो परिणाम होते हैं : (i) उत्पादकों के लिए जोखिम बढ़ जाता है; तथा (ii) आयों में असमानता तथा अस्थायित्व (inequality and instability of income) उत्पन्न हो जाता है।

(२) सटोरिये कभी-कभी कुरीतियों को अपनाते हैं (Speculators sometimes adopt malpractices)—कभी-कभी सटोरिये जान-बूझकर कुरीतियाँ अपनाकर अत्यधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। कुछ शक्तिशाली सटोरिये कम्पनियों के डायरेक्टरों को घूस देकर अन्दर की वास्तविक स्थिति का ज्ञान कर लेते हैं और फिर वे गलत अफवाहें फैलाकर अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी कुछ शक्तिशाली सटोरिये आपस में मिल जाते हैं और अनुचित तरीकों द्वारा वे वस्तु की अधिकांश पूर्ति को 'कॉर्नर' (corner) करके अत्यधिक लाभ प्राप्त करते हैं।

(३) जुए की किस्म का सट्टा हानिकारक होता है (Speculation of the type is harmful)—जब सट्टा जुए का रूप धारण कर लेता है तो ऐसी स्थिति का जोखिम बढ़ जाता है। बिना सोचे-समझे तथा केवल अवसर (chance) पर निर्भर सटोरियों के कार्यों से कीमतों में उतार-चढ़ाव बढ़ जाता है। इससे उद्योगों में विनियो है; विनियोग कम होने से बेरोजगारी बढ़ती है। स्टॉक ऐक्सचेन्जों में जुए की भाँति स न्ध में लार्ड जे० एम० कैंज (Lord J. M. Keynes) का निम्न कथन महत्त्वपूर्ण है :

"उपक्रम की नियमित धारा पर बुलबुलों (bubbles) की भाँति सटोरिये कोई करते। परन्तु उस समय स्थिति गम्भीर हो जाती है जबकि उपक्रम सट्टे की भंवर (w पर बुलबुला बन जाता है।"[6]

सट्टे का नियमन तथा नियन्त्रण
(REGULATION AND CONTROL OF SPECULATION)

सट्टे के दोषों को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि सट्टे को नियन्त्रित क सट्टे को नियन्त्रित करने की निम्न रीतियाँ बतायी जाती हैं :

(१) **कानून द्वारा** (By legislation)—अनुचित सट्टे को सरकार कानून द्व का प्रयत्न कर सकती है। अधिकांश देशों में सरकारों ने अनुचित सट्टे को रोकने के क रखे हैं। भारत में Forward Contracts Regulation Act of 1952 भविष्य के व (स्टॉक ऐक्सचेंजों के उचित वायदों को छोड़कर) नियन्त्रण करने का अधिकार सरका है। परन्तु इस प्रकार के सट्टा विरोधी नियमों (anti-speculation laws) के सम्बन्ध कठिनाइयाँ रहती हैं : (i) प्रायः अनुचित तथा उचित सट्टे के बीच भेद करना कठिन हो और व्यवहार में अनुचित सट्टे को रोकने वाले नियम लाभकारी उचित सट्टे को भी रोक कि ठीक नहीं है। (ii) प्रायः इन नियमों में कुछ त्रुटियाँ रह जाती हैं या सटोरिये सहायता से नियमों में कुछ कमजोरियों (loopholes) को ज्ञात कर लेते हैं और इस नियमों के रहते हुए भी अनुचित सट्टा होता रहता है। स्पष्ट है कि केवल कानून द्वारा सट्टे को रोकना अपर्याप्त तथा कठिन है।

(२) **स्टॉक एक्सचेन्जों के नियमों द्वारा** (By the rules and regulations f by stock exchanges)—स्टॉक एक्सचेन्जों के नियमों द्वारा सट्टे को अपेक्षाकृत अधिक प्रकार से नियमित किया जा सकता है—(i) स्टॉक ऐक्सचेन्जों को अपने बनाये गये नय प्रकाशित करना चाहिए। ऐसा करने के लिए सरकार स्टॉक ऐक्सचेन्जों के प्रबन्धकों को कर सकती है। (ii) नयी परिस्थितियों के अनुसार, नियमों को समय-समय पर बदलते चाहिए तथा उनका उचित कड़ाई से पालन होना चाहिए।

(३) **कड़े जनमत का निर्माण तथा व्यावसायिक नैतिकता** (Formation of st public opinion and sound business morality)—अनुचित सट्टे की बुराइयों को स प्रकाशित कर सकती है ताकि अनुचित सट्टे के प्रति एक कड़ा जनमत बन सके जो कि अ रूप से उसे नियन्त्रित कर सकता है। इसके अतिरिक्त देश में एक अच्छी व्यावसायिक भी सट्टे की बुराइयों को एक बड़ी सीमा तक दूर कर सकती है। परन्तु व्यावहारिक जीव उपर्युक्त दोनों बातें सफल नहीं हो पाती हैं।

---

[6] ulators may do no harm as bubbles on a steady stream of enterprise. But the p serious when enterprise becomes the bubble on a whirlpool of speculation."

(४) 'सट्टे के प्रति सट्टे द्वारा' (By counter-speculation)—प्रो० लर्नर (Lerner) के अनुसार, सट्टे की बुराइयाँ 'सट्टे के प्रति सट्टे' के करने से रोकी जा सकती हैं। इसलिए सरकार, एक विशिष्ट एजेन्सी नियुक्त कर सकती है जिसे वस्तुओं के मूल्यों के सम्बन्ध में उचित ज्ञान हो तथा उसके पास पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधन हों। ये एजेन्सी आवश्यकतानुसार 'सट्टे के प्रति सट्टा' करके सट्टे की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न कर सकती हैं। परन्तु व्यवहार में इस रीति का प्रयोग करना भी कठिन होता है।

पूर्ण सट्टा अपने आपको नष्ट कर देता है
(PERFECT SPECULATION DESTROYS ITSELF)

पूर्ण सट्टा अपने आपको नष्ट करने की प्रवृत्ति (tendency) रखता है। पूर्ण सट्टे का अर्थ है कि सभी सटोरिये पूर्ण ज्ञानी या बुद्धिमान (perfectly wise) होते हैं और इसलिए मूल्यों के परिवर्तनों के सम्बन्ध में सही अनुमान लगा लेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि मूल्यों में उतार-चढ़ाव बिलकुल समाप्त हो जायेंगे; और जब मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं होंगे तो सट्टे के होने का प्रश्न [illegible] है।

[illegible]
(SOME [illegible] STOCK EXCHANGES)

तेजड़िया तथा मन्दड़िया (Bulls and Bears)

जब सटोरिये किसी वस्तु को इस आशा में खरीदते हैं कि भविष्य में उसकी कीमत ऊँची होगी तो उन्हें 'तेजड़िया' या 'तेजी लगाने वाले' (bulls) कहते है। (bull जानवर अपने शिकार को ऊपर फेंक कर मारता है, इसलिए 'bull' शब्द कीमतों के ऊँचे होने अर्थात 'तेजड़िया' के अर्थ में प्रयोग किया जाता है)। जब बाजार की प्रवृत्ति तेजी की होती है तो ऐसे बाजार को 'तेजी वाला बाजार' (bullish market) कहते हैं।

जब सटोरिये किसी वस्तु को इस आशा में वर्तमान में बेचते हैं कि भविष्य में कीमतें घट जायेंगी तो उन्हें 'मन्दड़िये' या 'मन्दी लगाने वाले' (bears) कहते हैं। (bear जानवर अपने शिकार को नीचे पटक कर मारता है, इसलिए 'bear' शब्द कीमतों के कम होने अर्थात 'मन्दड़िया' के अर्थ में प्रयोग किया जाता है)। जब बाजार की प्रवृत्ति मन्दी की होती है तो ऐसे बाजार को 'मन्दी वाला बाजार' (bearish market) कहते हैं।

दोहरा रक्षण (Hedging)

इसके अर्थ को हम सट्टे के लाभों का विवेचन करते समय समझा चुके हैं।

(३) जुए की किस्म का सट्टा हानिकारक होता है (Speculation of the gambling type is harmful)—जब सट्टा जुए का रूप धारण कर लेता है तो ऐसी स्थिति में उत्पादकों का जोखिम बढ़ जाता है। बिना सोचे-समझे तथा केवल अवसर (chance) पर निर्भर करने वाले सटोरियों के कार्यों से कीमतों में उतार-चढ़ाव बढ़ जाता है। इससे उद्योगों में विनियोग कम होता है; विनियोग कम होने से बेरोजगारी बढ़ती है। स्टॉक ऐक्सचेन्जों में जुए की भाँति सट्टे के सम्बन्ध में लार्ड जे० एम० कैंज (Lord J. M. Keynes) का निम्न कथन महत्त्वपूर्ण है :

"उपक्रम की नियमित धारा पर बुलबुलों (bubbles) की भाँति सटोरिये कोई हानि नहीं करते। परन्तु उस समय स्थिति गम्भीर हो जाती है जबकि उपक्रम सट्टे की भंवर (whirlpool) पर बुलबुला बन जाता है।"[6]

सट्टे का नियमन तथा नियन्त्रण
(REGULATION AND CONTROL OF SPECULATION)

सट्टे के दोषों को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि सट्टे को नियन्त्रित किया जाय। सट्टे को नियन्त्रित करने की निम्न रीतियाँ बतायी जाती हैं :

(१) कानून द्वारा (By legislation)—अनुचित सट्टे को सरकार कानून द्वारा रोकने का प्रयत्न कर सकती है। अधिकांश देशों में सरकारों ने अनुचित सट्टे को रोकने के कानून बना रखे हैं। भारत में Forward Contracts Regulation Act of 1952 भविष्य के वायदों पर (स्टॉक ऐक्सचेंजों के उचित वायदों को छोड़कर) नियन्त्रण करने का अधिकार सरकार को देता है। परन्तु इस प्रकार के सट्टा विरोधी नियमों (anti-speculation laws) के सम्बन्ध में निम्न कठिनाइयाँ रहती हैं : (i) प्रायः अनुचित तथा उचित सट्टे के बीच भेद करना कठिन हो जाता है और व्यवहार में अनुचित सट्टे को रोकने वाले नियम लाभकारी उचित सट्टे को भी रोकते हैं जो कि ठीक नहीं है। (ii) प्रायः इन नियमों में कुछ त्रुटियाँ रह जाती हैं या सटोरिये वकीलों की सहायता से नियमों में कुछ कमजोरियों (loopholes) को ज्ञात कर लेते हैं और इस प्रकार इन नियमों के रहते हुए भी अनुचित सट्टा होता रहता है। स्पष्ट है कि केवल कानून द्वारा अनुचित सट्टे को रोकना अपर्याप्त तथा कठिन है।

(२) स्टॉक एक्सचेन्जों के नियमों द्वारा (By the rules and regulations framed by stock exchanges)—स्टॉक एक्सचेन्जों के नियमों द्वारा सट्टे को अपेक्षाकृत अधिक अच्छी प्रकार से नियमित किया जा सकता है—(i) स्टॉक ऐक्सचेन्जों को अपने बनाये गये नियमों को प्रकाशित करना चाहिए। ऐसा करने के लिए सरकार स्टॉक ऐक्सचेन्जों के प्रबन्धकों को बाध्य कर सकती है। (ii) नयी परिस्थितियों के अनुसार, नियमों को समय-समय पर बदलते रहना चाहिए तथा उनका उचित कड़ाई से पालन होना चाहिए।

(३) कड़े जनमत का निर्माण तथा व्यावसायिक नैतिकता (Formation of strong public opinion and sound business morality)—अनुचित सट्टे की बुराइयों को सरकार प्रकाशित कर सकती है ताकि अनुचित सट्टे के प्रति एक कड़ा जनमत बन सके जो कि अप्रत्यक्ष रूप से उसे नियन्त्रित कर सकता है। इसके अतिरिक्त देश में एक अच्छी व्यावसायिक नैतिकता भी सट्टे की बुराइयों को एक बड़ी सीमा तक दूर कर सकती है। परन्तु व्यावहारिक जीवन में उपर्युक्त दोनों बातें सफल नहीं हो पाती हैं।

---

6 "Speculators may do no harm as bubbles on a steady stream of enterprise. But the position is serious when enterprise becomes the bubble on a whirlpool of speculation."

(४) 'सट्टे के प्रति सट्टे द्वारा' (By counter-speculation)—प्रो० लर्नर (Lerner) के अनुसार, सट्टे की बुराइयाँ 'सट्टे के प्रति सट्टे' के करने से रोकी जा सकती हैं। इसलिए सरकार, एक विशिष्ट एजेन्सी नियुक्त कर सकती है जिसे वस्तुओं के मूल्यों के सम्बन्ध में उचित ज्ञान हो तथा उसके पास पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधन हों। ये एजेन्सी आवश्यकतानुसार 'सट्टे के प्रति सट्टा' करके सट्टे की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न कर सकती है। परन्तु व्यवहार में इस रीति का प्रयोग करना भी कठिन होता है।

पूर्ण सट्टा अपने आपको नष्ट कर देता है
(PERFECT SPECULATION DESTROYS ITSELF)

पूर्ण सट्टा अपने आपको नष्ट करने की प्रवृत्ति (tendency) रखता है। पूर्ण सट्टे का अर्थ है कि सभी सटोरिये पूर्ण ज्ञानी या बुद्धिमान (perfectly wise) होते हैं और इसलिए मूल्यों के परिवर्तनों के सम्बन्ध में सही अनुमान लगा लेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि मूल्यों में उतार-चढ़ाव बिलकुल समाप्त हो जायेंगे; और जब मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं होंगे तो सट्टे के होने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। स्पष्ट है कि पूर्ण सट्टा अपने आपको नष्ट कर देता है।

सट्टे तथा स्टाक ऐक्सचेन्जों से सम्बन्धित कुछ टेकनीकल शब्द
(SOME TECHNICAL WORDS RELATING TO SPECULATION AND STOCK EXCHANGES)

तेजड़िया तथा मन्दड़िया (Bulls and Bears)

जब सटोरिये किसी वस्तु को इस आशा में खरीदते हैं कि भविष्य में उसकी कीमत ऊँची होगी तो उन्हें 'तेजड़िया' या 'तेजी लगाने वाले' (bulls) कहते हैं। (bull जानवर अपने शिकार को ऊपर फेंक कर मारता है, इसलिए 'bull' शब्द कीमतों के ऊँचे होने अर्थात 'तेजड़िया' के अर्थ में प्रयोग किया जाता है)। जब बाजार की प्रवृत्ति तेजी की होती है तो ऐसे बाजार को 'तेजी वाला बाजार' (bullish market) कहते हैं।

जब सटोरिये किसी वस्तु को इस आशा में वर्तमान में बेचते हैं कि भविष्य में कीमतें घट जायेंगी तो उन्हें 'मन्दड़िये' या 'मन्दी लगाने वाले' (bears) कहते हैं। (bear जानवर अपने शिकार को नीचे पटक कर मारता है, इसलिए 'bear' शब्द कीमतों के कम होने अर्थात 'मन्दड़िया' के अर्थ में प्रयोग किया जाता है)। जब बाजार की प्रवृत्ति मन्दी की होती है तो ऐसे बाजार को 'मन्दी वाला बाजार' (bearish market) कहते हैं।

दोहरा रक्षण (Hedging)

इसके अर्थ को हम सट्टे के लाभों का विवेचन करते समय समझा चुके हैं।

अध्याय ७ की परिशिष्ट : पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग का साम्य

[APPENDIX TO CHAPTER 7]

(EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY UNDER PERFECT COMPETITION)

१. पूर्ण प्रतियोगिता में एक उद्योग का अर्थ
(MEANING OF AN INDUSTRY UNDER PERFECT COMPETITION)

एक उद्योग ऐसी फर्मों का समूह या एकत्रीकरण है जो कि एक रूप वस्तु उत्पादित करती हैं।[1] इसी बात को **श्रीमती जोन रोवन्सिन** इन शब्दों में व्यक्त करती हैं : "**एक उद्योग ऐसी फर्मों का समूह है जो कि केवल एक वस्तु का उत्पादन करती हैं।**"[2] दूसरे शब्दों में एक स्पर्द्धात्मक उद्योग (competitive industry) वह है जिसमें, माँग की तुलना में, फर्म इतनी छोटी होती है कि उनमें से कोई भी अकेले अपने उत्पादन-स्तर में परिवर्तन करके कीमत पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकतीं; अर्थात् एक फर्म के लिए कीमत-रेखा या माँग-रेखा एक पड़ी हुई रेखा होगी।

२. एक उद्योग के साम्य का अर्थ
(THE CONCEPT OF EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY)

एक उद्योग के साम्य की सामान्य दशा (general condition of equilibrium of an industry) को **प्रो० बोल्डिंग** इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—"**एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब कहा जाता है जबकि उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।**"[3] इसका अभिप्राय है कि एक उद्योग साम्य की दशा में तब होगा जबकि उसमें 'न्यूनतम लाभ प्राप्त करने वाली फर्म' ('least profitable firm'), जिसे प्रायः 'सीमान्त फर्म' (marginal firm) कहा जाता है, को केवल 'समान्य लाभ' प्राप्त होता है। यदि 'सीमान्त फर्म' को सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त होता है तो इसका अर्थ है कि उद्योग में प्रवेश करने वाली नयी फर्म को भी सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त होगा। अतः उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश होगा, उद्योग के कुल उत्पादन में वृद्धि होगी, परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत गिरेगी, वर्तमान फर्मो के लाभ कम होंगे, नयी फर्मों के प्रवेश का आकर्पण कम होता जायेगा और जैसे ही सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होने लगेगा वैसे ही उद्योग पुनः साम्य की स्थिति में आ जायेगा। दूसरी ओर, यदि सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ से कम लाभ प्राप्त होता है, तो यह फर्म तथा इस स्थिति में अन्य फर्में उद्योग को छोड़ देंगी, परिणामस्वरूप उद्योग का कुल उत्पादन घटेगा, वस्तु की कीमत बढ़ेगी, उद्योग में शेप फर्मों के लाभ बढ़ेंगे; फर्में उद्योग से निकलती जायेंगी जब तक कि सीमान्त फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त न होने लगें, और ऐसी स्थिति में उद्योग पुनः साम्य की स्थिति में आ जायेगा।

एक उद्योग के साम्य की सामान्य दशा को दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—**एक दी हुयी कीमत पर एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (अर्थात् 'S') उसकी कुल माँग (अर्थात D) के बराबर होती है। संक्षेप में, एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि S=D के हो।** एक उद्योग के साम्य की सामान्य

---

1 An industry is a group or collection of firms producing a homogeneous commodity.

2 "An *Industry* is any group of firms producing a single commodity."

—Mrs. Joan Robinson

3 "An industry is said to be in equilibrium when there is no tendency for it to expand or contract.".

—Boulding

दशा के लिए मुख्य बात यह है कि उसके कुल उत्पादन (अर्थात् कुल पूर्ति) में कोई विस्तार या संकुचन नहीं होना चाहिए। यदि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल माँग उसकी कुल पूर्ति से अधिक है तो वस्तु की कुल पूर्ति के विस्तार या बढ़ने की प्रवृत्ति होगी। इसके विपरीत यदि वस्तु की माँग उसकी पूर्ति की तुलना में कम है तो वस्तु की कुल पूर्ति के संकुचन या कमी की प्रवृत्ति होगी। अतः एक उद्योग के साम्य के लिए S=D के होनी चाहिए।

अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में एक उद्योग के साम्य के लिए S=D की दशा पूरी होती है, परन्तु दोनों कालों में S=D की दशा के अभिप्रायों (implications) में अन्तर होता है। अल्पकाल में इतना समय नहीं होता कि उद्योग में स्थिर साधनों (fixed factors, like machine, equipment etc.) को परिवर्तित किया जा सके अर्थात अल्पकाल में उत्पादन-क्षमता (productive capacity) स्थिर होती है, अथवा यह कहिए कि उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित नहीं किया जा सकता अर्थात् उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश (entry) तथा उसमें से पुरानी फर्मों का बहिर्गमन (exit) नहीं हो सकता; दूसरे शब्दों में, उद्योग में फर्मों की संख्या स्थिर रहती है। अल्पकाल में तो केवल परिवर्तनशील साधनों (variable factors) में ही परिवर्तन करके उद्योग की पूर्ति को सीमित मात्रा में घटा-बढ़ा कर माँग के बराबर करके उद्योग का साम्य प्राप्त होता है। इसके विपरीत दीर्घकाल में सभी साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है अर्थात् उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित करके, अथवा यह कहिए कि नयी फर्मों के प्रवेश या पुरानी फर्मों के बहिर्गमन द्वारा पूर्ति को बढ़ा-घटाकर, माँग के बराबर करके उद्योग के साम्य की स्थिति प्राप्त की जाती है।

३. एक उद्योग का अल्पकालीन साम्य
(SHORT-RUN EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY)

१. एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के अभिप्राय (Implications of short-run equilibrium of an industry)

(i) अल्पकाल में एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग का उत्पादन स्थिर रहता है, उसमें वृद्धि या कमी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। (ii) इसका अभिप्राय है कि यदि उद्योग में अल्पकाल में सभी फर्में साम्य की स्थिति में हैं (अर्थात् प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन को न घटाती और न बढ़ाती है बल्कि स्थिर रखती है) तो उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर (constant or steady) रहेगा और उद्योग साम्य की स्थिति में होगा। प्रत्येक फर्म के साम्य के लिए MR=MC की दशा पूरी होनी चाहिए : अतः, एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए यह आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में अल्पकालीन साम्य की स्थिति में हों। (iii) यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की है कि अल्पकाल में एक फर्म MR=MC की दशा को पूरा करते हुये साम्य की स्थिति में हो सकती है परन्तु उसे लाभ या केवल सामान्य लाभ या हानि भी हो सकती है। दूसरे शब्दों में एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के साथ बहुत अधिक लाभ या बहुत अधिक हानि का सहअस्तित्व (co-existence) हो सकता है।[4] (iv) एक उद्योग के लिए 'अल्पकालीन साम्य कीमत' पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल माँग अर्थात् ('D') उसकी कुल पूर्ति (अर्थात 'S') के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में; एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए S=D की दशा पूरी होनी चाहिए, परन्तु अल्पकालीन साम्य के लिए केवल परिवर्तनशील साधनों' (variable factors) को परिवर्तित करके पूर्ति (S) को माँग (D) के बराबर किया

4 Widespread profits or widespread losses may co-exist with the short-run equilibrium of an industry.

जाता है, क्योंकि अल्पकाल में इतना समय नहीं होता है कि 'स्थिर साधनों' को परिवर्तित किया जा सके या उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित किया जा सके।

२. उद्योग की अल्पकालीन पूर्ति रेखा का निर्माण (Construction of Short-run Industry Supply Curve)

एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (S) बराबर होनी चाहिए उसकी कुल माँग (D) के। उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की 'बाजार या उद्योग माँग रेखा' व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की माँग रेखाओं का क्षैतिज योग (horizontal sum) होती है। माँग रेखा को ज्ञात करने के पश्चात, **साम्य के निर्धारण के लिए उद्योग की पूर्ति रेखा का बनाना** आवश्यक है। एक उद्योग की पूर्ति रेखा बताती है कि विभिन्न सम्भावित कीमतों पर सभी फर्में वस्तु की कितनी कितनी मात्राएँ बाजार में बेचने को तत्पर हैं। स्पष्ट है कि मोटे रूप से (approximately) उद्योग की पूर्ति रेखा व्यक्तिगत फर्मों की पूर्ति रेखाओं का क्षैतिज योग है। अतः **एक उद्योग की अल्पकालीन पूर्ति रेखा के निर्माण के लिए एक फर्म की पूर्ति रेखा को ज्ञात करना** प्रथम कदम (first step) है।

एक फर्म की पूर्ति रेखा MC-रेखा का वह भाग है जो कि AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु से ऊपर होता है। यह बात निम्न विवरण से स्पष्ट होती है। एक फर्म की पूर्ति रेखा विभिन्न कीमतों पर वस्तु की पूर्ति प्रस्तुत की जाने वाली विभिन्न मात्राओं को बताती है। पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के साम्य के लिए 'MR (या AR अर्थात् कीमत)=MC की दशा पूरी होनी चाहिए। चित्र नं० १ में यदि कीमत P_1 है (या कीमत-रेखा $P_1 T_1$ है) तो फर्म 'S' बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी (क्योंकि S बिन्दु पर MR या AR=MC के है); चूँकि 'S' बिन्दु AVC का निम्नतम बिन्दु है, इसलिए कीमत P_1 ठीक AVC के बराबर है। यदि कीमत P_1 से कम होती अर्थात कीमत AVC से कम होती तो फर्म अल्पकाल में भी उत्पादन को बन्द कर देती और पूर्ति शून्य हो जाती; बिन्दु
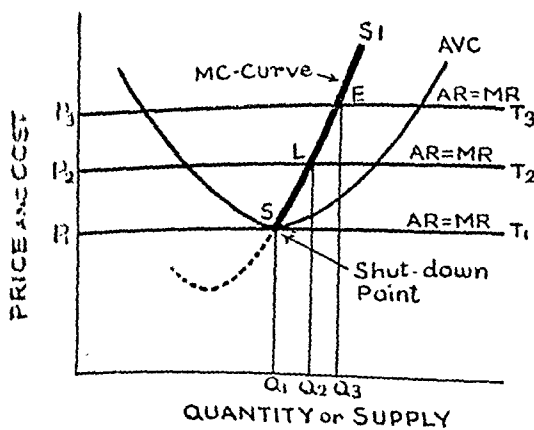
चित्र—१

'S' 'उत्पादन बन्द होने का बिन्दु' (Shut-down point) है। P_1 कीमत पर फर्म OQ_1 मात्रा की पूर्ति करने को तत्पर है। यदि कीमत P_2 है (या कीमत रेखा $P_2 T_2$ है) तो फर्म L बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी, अर्थात P_2 कीमत पर फर्म OQ_2 मात्रा की पूर्ति करेगी। इसी प्रकार यदि कीमत P_3 है तो फर्म OQ_3 मात्रा की पूर्ति करेगी। **स्पष्ट है कि चित्र नं० १ में फर्म की MC-रेखा का SS_1 भाग जो कि AVC-रेखा के निम्नतम बिन्दु S के ऊपर है फर्म की पूर्ति रेखा को बताता है क्योंकि SS_1 के विभिन्न बिन्दु यह बताते हैं कि विभिन्न कीमतों पर फर्म अपनी वस्तु को कितनी कितनी मात्रा की पूर्ति करने को तत्पर है**; 'S' बिन्दु से नीचे पूर्ति शून्य होगी, इसलिए 'S' बिन्दु से नीचे MC-रेखा के भाग को टूटी-रेखा (dotted line) द्वारा दिखाया गया है।

एक फर्म की पूर्ति रेखा ज्ञात करने (और इस प्रकार सभी व्यक्तिगत फर्मों की पूर्ति रेखाओं को ज्ञात करने) के पश्चात हम उद्योग की पूर्ति रेखा ज्ञात कर सकते हैं। सुविधा के लिए तथा उदाहरणार्थ माना कि एक उद्योग में केवल २ फर्में 'A' तथा 'B' हैं। जब कीमत १ रु० है तो फर्म 'A' ४ इकाई तथा फर्म 'B' ८ इकाई बेचने को तत्पर है। अतः १ रु० कीमत पर बाजार में उद्योग की कुल पूर्ति $=(४+८)=१२$ इकाई। जब कीमत २ रु० है तो फर्म A है ८ इकाई तथा फर्म B १२ इकाई बेचने को तत्पर हैं। अतः २ रु० कीमत पर उद्योग को पूर्ति$=(८+१२)=$ २० इकाई। उपर्युक्त विवरण से उद्योग की पूर्ति रेखा (जो कि व्यक्तिगत फर्मों की पूर्तियों का क्षैतिज योग है) के दो बिन्दु प्राप्त होते हैं—१ रु० कीमत पर उद्योग १२ इकाइयाँ तथा २ रु० कीमत पर २० इकाइयाँ बेचने को तत्पर है; अतः उद्योग की पूर्ति रेखा खींची जा सकती है।
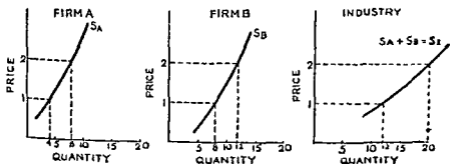
चित्र—२

चित्र नं० २ में फर्म A की पूर्ति रेखा S_A तथा फर्म B की पूर्ति रेखा S_B हैं। उद्योग की पूर्ति रेखा (S_I) इन दोनों रेखाओं का क्षैतिज योग है, अर्थात $S_I = S_A + S_B$। उद्योग की पूर्ति रेखा S_I को चित्र में दायें सिरे पर दिखाया गया है।

३. अल्पकालीन साम्य (Short-run Equilibrium)

अल्पकाल में एक उद्योग के साम्य के लिए $S=D$ की दशा पूरी होनी चाहिए। चित्र नं० ३ में उद्योग की माँग रेखा DD तथा उसकी पूर्ति रेखा SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काटती हैं। बिन्दु E उद्योग के अल्पकालीन साम्य को बताता है क्योंकि यहाँ पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति और उसकी माँग दोनों बराबर हैं (OQ के)। उद्योग के वस्तु की साम्य कीमत (equilibrium price) P या EQ है तथा साम्य मात्रा (equilibrium quantity) OQ है।

चित्र नं० ३ के दायें भाग में उद्योग के अल्पकालीन साम्य के अन्तर्गत एक प्रतिनिधि फर्म (typical or representative firm) की स्थिति को दिखाया गया है। उद्योग के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म कीमत P को स्वीकार कर लेगी अर्थात् प्रत्येक फर्म के लिए 'कीमत रेखा' या 'माँग-रेखा' या 'AR=MR रेखा' पड़ी हुयी रेखा P T होगी। माना कि एक फर्म की लागत रेखाएँ AC_1 तथा MC_1 हैं; यह फर्म A बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MR=MC के है; यह फर्म Oq_1 मात्रा का उत्पादन करेगी इसे प्रति इकाई लाभ AM के बराबर होगा। यदि फर्म की लागत रेखाएँ AC_2 तथा MC_2 हैं तो फर्म B बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि यहाँ पर MR=MC के है, यह Oq_2 मात्रा का उत्पादन करेगी इसे प्रति L B प्रति इकाई हानि होगी। स्पष्ट है कि एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए प्रत्येक फर्म

साम्य की स्थिति में होगी ; परन्तु एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के साथ 'अतिरिक्त ल (excess profit) या 'हानि' का सहअस्तित्व (co-existence) हो सकता है।
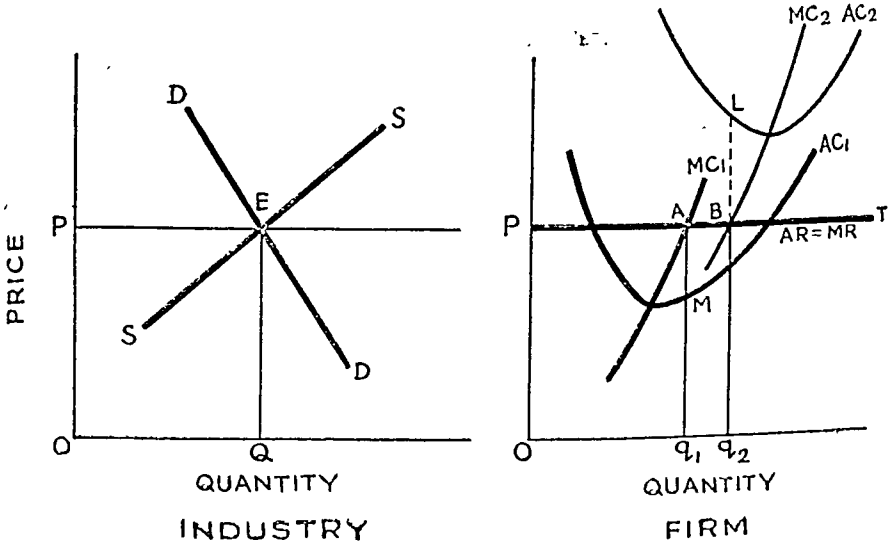
चित्र—३

४. एक उद्योग का दीर्घकालीन साम्य
(LONG-RUN EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY)

१. एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के अभिप्राय (Implications of Long-run Equilibri of an Industry)

(i) दीर्घकाल में एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग का कुल उत्पा स्थिर रहता है; उसमें वृद्धि या कमी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। (ii) इसका अभिप्राय है कि उद्योग में सभी फर्में साम्य की स्थिति में हैं तो उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर (Constant steady) रहेगा तथा उद्योग साम्य की स्थिति में होगा। एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य के दोहरी दशा (double condition) पूरी होनी चाहिए अर्थात (१) MR=MC अथवा (Price)=MC (क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में MR और AR बराबर होते हैं), तथा (२) AR AC। प्रथम दशा का अर्थ है कि जब प्रत्येक फर्म के लिए MR (या AR अर्थात कीमत) बरा है MC के तो प्रत्येक फर्म के उत्पादन में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होगी। दूसरी दशा के होने का अर्थ है कि जब प्रत्येक फर्म के लिए AR(अर्थात कीमत) बराबर है AC के, तो प्रत्येक को केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होगा, परिणामस्वरूप न तो नयी फर्मों की प्रवृत्ति उद्योग में प्रवे करने की होगी और न पुरानी फर्मों की प्रवृत्ति उद्योग को छोड़ कर जाने की होगी। दूसरे श में, जब एक उद्योग दीर्घकालीन साम्य में है तो उसमें फर्मों की संख्या में (अर्थात उद्योग के आक में) कोई परिवर्तन नहीं होगा। इस प्रकार, एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिए यह आवश्य है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में दीर्घकालीन साम्य की स्थिति में हों। (iii) एक उद्योग तथा फ के अल्पकालीन साम्य के लिए MR=MC की दशा पूरी होनी आवश्यक है। एक उद्योग त फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए (अल्पकालीन साम्य की दशा MR=MC के पूरे होने के अ रिक्त) AR=AC की दशा पूरी होनी चाहिए। अतः, उद्योग तथा व्यक्तिगत फर्म के दीर्घकाली

साम्य के लिए यह आवश्यक है कि अल्पकालीन साम्य का भी साथ-साथ अस्तित्व हो।[5] इस प्रकार उद्योग का दीर्घकालीन साम्य एक अधिक विस्तृत तथा सामान्य विचार है और उसे 'पूर्ण-साम्य' ('Full Equilibrium') या 'अन्तिम साम्य' ('Final Equilibrium) भी कहा जाता है। (iv) एक उद्योग के लिए साम्य कीमत पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (अर्थात S) उसकी कुल मांग (अर्थात D) के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में, एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिए S=D की दशा पूरी होनी चाहिए, परन्तु दीर्घकालीन साम्य के लिए उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित करके पूर्ति (S) को मांग (D) के बराबर किया जाता है, क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।

दीर्घकाल में उद्योग में फर्मों के प्रवेश या बहिर्गमन (exit) के कारण उत्पादन लागत में परिवर्तन होंगे। लागत में परिवर्तन या लागत समायोजन (cost adjustments) इस बात पर निर्भर करेंगे कि उद्योग 'बढ़ती हुयी लागतों' के अन्तर्गत कार्य कर रहा है या 'स्थिर लागतों' या 'घटती हुयी लागतों' के अन्तर्गत; तथा लागत की स्थिति के अनुसार ही उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा निर्धारित होगी।

२. स्थिर लागतों ('Constant Costs') के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल में स्थिर लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि उद्योग में फर्मों की संख्या में परिवर्तन के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत फर्मों की लागतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।[6] इसका अभिप्राय है कि स्थिर-लागत-उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश के कारण किसी भी उत्पत्ति के साधन की कीमत अर्थात उसकी लागत में कोई वृद्धि नहीं होगी तथा उद्योग में से फर्मों के छोड़ जाने से किसी भी उत्पत्ति के साधन की कीमत, अर्थात फर्म के लिए उसकी लागत, में कोई कमी नहीं होगी।[7] ऐसी स्थिति केवल तब सम्भव है जबकि सम्पूर्ण उद्योग इतना छोटा है कि उसके द्वारा उत्पत्ति के साधनों की मांग, उनकी कुल मांग की तुलना में, बहुत ही थोड़ी या नगण्य (negligible) है। माना कि चित्र सं० ४ में उद्योग के वस्तु की मांग रेखा D_1D_1 तथा उसकी अल्पकालीन पूर्ति रेखा SS_1 एक दूसरे को बिन्दु E पर काटते हैं; अर्थात वस्तु की कीमत OP या P है। माना कि बिन्दु E उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की स्थिति को बताता है। दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होना आवश्यक है अर्थात कीमत (या AR) प्रत्येक

चित्र—४

5 ... that short-run equilibrium

6 ... cost in the long-run only ... in the number of firms in the industry."

7 दीर्घकाल में जब नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग का विस्तार होता है तो उत्पत्ति के साधनों की मांग बढ़ेगी, मांग बढ़ने पर उत्पत्ति के साधनों की कीमत बढ़ सकती है अर्थात फर्मों के लिए

साम्य की स्थिति में होगी ; परन्तु एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के साथ 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit) या 'हानि' का सहअस्तित्व (co-existence) हो सकता है।
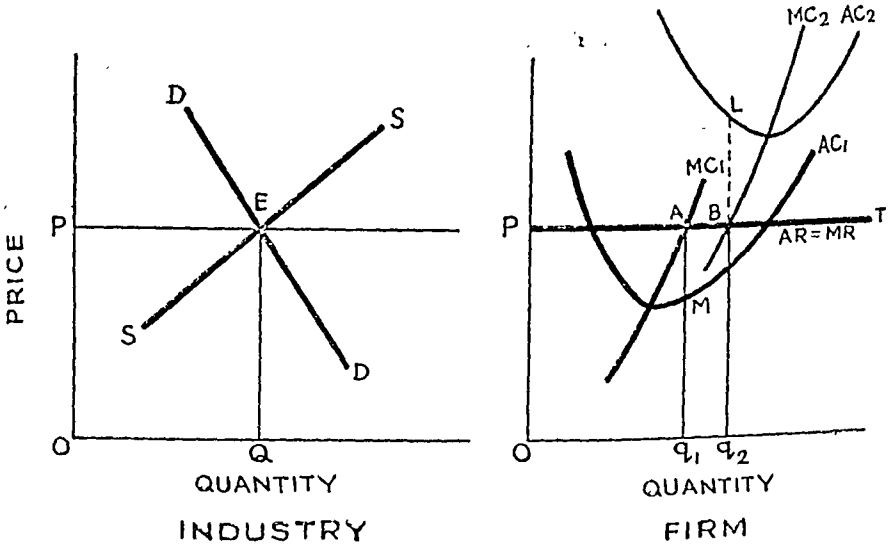
चित्र—३

४. एक उद्योग का दीर्घकालीन साम्य (LONG-RUN EQUILIBRIUM OF AN INDUSTRY)

१. एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के अभिप्राय (Implications of Long-run Equilibrium of an Industry)

(i) **दीर्घकाल में एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर रहता है;** उसमें वृद्धि या कमी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। (ii) इसका अभिप्राय है कि यदि उद्योग में सभी फर्में साम्य की स्थिति में हैं तो उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर (Constant or steady) रहेगा तथा उद्योग साम्य की स्थिति में होगा। एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए दोहरी दशा (double condition) पूरी होनी चाहिए अर्थात (१) MR=MC अथवा AR (Price)=MC (क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में MR और AR बराबर होते हैं), तथा (२) AR=AC। प्रथम दशा का अर्थ है कि जब प्रत्येक फर्म के लिए MR (या AR अर्थात कीमत) बराबर है MC के तो प्रत्येक फर्म के उत्पादन में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होगी। दूसरी दशा के पूरे होने का अर्थ है कि जब प्रत्येक फर्म के लिए AR(अर्थात कीमत) बराबर है AC के, तो प्रत्येक फर्म को केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होगा, परिणामस्वरूप न तो नयी फर्मों की प्रवृत्ति उद्योग में प्रवेश करने की होगी और न पुरानी फर्मों की प्रवृत्ति उद्योग को छोड़ कर जाने की होगी। दूसरे शब्दों में, जब एक उद्योग दीर्घकालीन साम्य में है तो उसमें फर्मों की संख्या में (अर्थात उद्योग के आकार में) कोई परिवर्तन नहीं होगा। इस प्रकार, **एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिए यह आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में दीर्घकालीन साम्य की स्थिति में हों।** (iii) एक उद्योग तथा फर्म के अल्पकालीन साम्य के लिए MR=MC की दशा पूरी होनी आवश्यक है। एक उद्योग तथा फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए (अल्पकालीन साम्य की दशा MR=MC के पूरे होने के अतिरिक्त) AR=AC की दशा पूरी होनी चाहिए। अतः, उद्योग तथा व्यक्तिगत फर्म के दीर्घकालीन

साम्य के लिए यह आवश्यक है कि अल्पकालीन साम्य का भी साथ साथ अस्तित्व हो।[5] इस प्रकार उद्योग का दीर्घकालीन साम्य एक अधिक विस्तृत तथा सामान्य विचार है और उसे 'पूर्ण-साम्य' ('Full Equilibrium') या 'अन्तिम साम्य' ('Final Equilibrium) भी कहा जाता है। (iv) एक उद्योग के लिए साम्य कीमत पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (अर्थात S) उसकी कुल मांग (अर्थात D) के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में, एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिए S=D की दशा पूरी होनी चाहिए, परन्तु दीर्घकालीन साम्य के लिए उद्योग के आकार (size) को परिवर्तित करके पूर्ति (S) को मांग (D) के बराबर किया जाता है, क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।

दीर्घकाल में उद्योग में फर्मों के प्रवेश या बहिर्गमन (exit) के कारण उत्पादन लागत में परिवर्तन होंगे। लागत में परिवर्तन या लागत समायोजन (cost adjustments) इस बात पर निर्भर करेंगे कि उद्योग 'बढ़ती हुयी लागतों' के अन्तर्गत कार्य कर रहा है या 'स्थिर लागतों' या 'घटती हुयी लागतों' के अन्तर्गत; तथा लागत की स्थिति के अनुसार ही उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा निर्धारित होगी।

२. स्थिर लागतों ('Constant Costs') के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल में स्थिर लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि उद्योग में फर्मों की संख्या में परिवर्तन के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत फर्मों की लागतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।[6] इसका अभिप्राय है कि स्थिर-लागत-उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश के कारण किसी भी उत्पत्ति के साधन की कीमत अर्थात उसकी लागत में कोई वृद्धि नहीं होगी तथा उद्योग में से फर्मों के छोड़ जाने से किसी भी उत्पत्ति के साधन की कीमत, अर्थात फर्म के लिए उसकी लागत, में कोई कमी नहीं होगी।[7]

चित्र—४

ऐसी स्थिति केवल तब सम्भव है जबकि सम्पूर्ण उद्योग इतना छोटा है कि उसके द्वारा उत्पत्ति के साधनों की मांग, उनकी कुल मांग की तुलना में, बहुत ही थोड़ी या नगण्य (negligible) है। माना कि चित्र नं० ४ में उद्योग के वस्तु की मांग रेखा D_1D_1 तथा उसकी अल्पकालीन पूर्ति रेखा SS_1 एक दूसरे को बिन्दु E पर काटते हैं; अर्थात वस्तु की कीमत OP या P है। माना कि बिन्दु E उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की स्थिति को बताता है। दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होना आवश्यक है अर्थात कीमत (या AR) प्रत्येक

5 ... equilibrium

6 ... ong-run only ... of firms in ...

7 दीर्घकाल में जब नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग का विस्तार होता है तो उत्पत्ति के साधनों की मांग बढ़ेगी, मांग बढ़ने पर उत्पत्ति के साधनों की कीमत बढ़ सकती है अर्थात फर्मों के लिए

फर्म की न्यूनतम औसत लागत (minimum AC) के बराबर होगी। दूसरे शब्दों में, उद्योग की दीर्घकालीन साम्य कीमत P (या OP) व्यक्तिगत (individual) फर्मों की न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी; तथा उद्योग का 'साम्य उत्पादन' PE (या OQ) होगा। यह शुरू की स्थिति (starting position) है।

माना कि मांग में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप मांग रेखा दायें को खिसक कर D_2D_2 की स्थिति में आ जाती है जहाँ पर कि उसके एक लम्बे समय तक रहने की आशा होती है। मांग में वृद्धि के कारण उद्योग का पहला साम्य भंग होकर नया साम्य स्थापित होगा; तथा अल्पकालीन और दीर्घकालीन समायोजन साथ-साथ शुरू हो जायेंगे।[8] अल्पकाल में उद्योग के नये साम्य की स्थिति R बिन्दु बताता है क्योंकि यह नयी मांग रेखा D_2D_2 तथा पुरानी पूर्ति रेखा SS_1 का कटाव का बिन्दु है। स्पष्ट है कि मांग में वृद्धि के कारण अल्पकाल में कीमत बढ़ कर P_1 हो जाती है तथा फर्में केवल अपनी वर्त्तमान उत्पादन-क्षमता की सहायता से उत्पादन को बढ़ा पाती हैं और अल्पकाल में उत्पादन बढ़ कर P_1R हो जाता है। उद्योग में पहले फर्में केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही थीं, परन्तु अब कीमत बढ़ जाने के कारण उन्हें अतिरिक्त लाभ (excess profits) प्राप्त होने लगते हैं। परन्तु ये अतिरिक्त लाभ केवल अल्पकाल में ही रह पाते हैं। दीर्घकाल में इन लाभों से आकर्षित होकर उद्योग में नयी फर्में प्रवेश करने लगती हैं, परिणामस्वरूप पूर्ति बढ़ती है और पूर्ति रेखा दायें को खिसकती जाती है, और कीमत गिरती जाती है, तथा अतिरिक्त लाभ कम होते जाते हैं। उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश तब बन्द हो जायेगा जबकि अतिरिक्त लाभ बिलकुल समाप्त (squeezed out) हो जाते हैं (अर्थात फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते हैं) और इस प्रकार उद्योग की अल्पकालीन पूर्ति रेखा (दायें को खिसक कर) SS_2 की स्थिति में आ जाती है। ध्यान रहे कि उद्योग 'स्थिर लागतों' के अन्तर्गत कार्य कर रहा है, इसलिए उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश के कारण फर्मों की संख्या में वृद्धि होने पर तथा उत्पत्ति के साधनों की माँग बढ़ने पर भी फर्मों की उत्पादन-लागत नहीं बढ़ेगी, वह समान बनी रहेगी। अब उद्योग का नया दीर्घकालीन साम्य F बिन्दु पर होगा, वस्तु की कीमत अल्पकालीन कीमत P_1 से घटकर पहली कीमत P के बराबर हो जायेगी (क्योंकि लागत अर्थात औसत लागत में कोई परिवर्तन नहीं होता है) और यह कीमत प्रत्येक फर्म की न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी तभी प्रत्येक फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा अर्थात् प्रत्येक फर्म दीर्घकालीन साम्य में होगी। चूंकि उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश के परिणामस्वरूप फर्मों की संख्या में वृद्धि हुई है, इसलिए उद्योग की पूर्ति पहले से बढ़ कर PF हो जाती है। यदि हम उद्योग के दीर्घकालीन साम्य बिन्दुओं E तथा F को मिला दें, तो हमें उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS (Long run Supply Curve) प्राप्त हो जाती है जो कि एक पड़ी रेखा होती है। संक्षेप में, एक स्थिर-लागत-उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा एक पड़ी रेखा या पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) रेखा होती है।

३. बढ़ती हुयी लागतों (Increasing Costs) के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल में बढ़ती हुयी लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग के आकार तथा उत्पादन क्षमता में विस्तार

साधनों की लागत बढ़ सकती है। इसी प्रकार जब फर्मों के बहिर्गमन द्वारा उद्योग का संकुचन होता है तो उत्पत्ति के साधनों की माँग कम होगी, परिणामस्वरूप उनकी कीमत अर्थात लागत कमी हो सकती है। परन्तु स्थिर-लागत-उद्योग ऐसा उद्योग है जिसमें फर्मों की संख्या में वृद्धि या कमी होने पर साधनों की कीमतों अर्थात फर्मों की उत्पादन-लागतों में कोई वृद्धि या कमी नहीं होती।

8 Short-run and long-run adjustments will be set in motion simultaneously,

होने पर सभी व्यक्तिगत फर्मों की लागतों में वृद्धि होती है।[9] इसका अभिप्राय है कि उद्योग के विस्तार तथा नयी फर्मों के प्रवेश के कारण उत्पत्ति के साधनों को अधिक मात्रा का प्रयोग किया जायेगा अर्थात् उनकी मांग बढ़ेगी। उत्पत्ति के साधनों की मांग बढ़ने से उनकी कीमतों म वृद्धि होगी अर्थात् उद्योग के अन्तर्गत सभी फर्मों की उत्पादन लागत बढ़ जायेगी। इसके विपरीत, यदि उद्योग के आकार का सकुचन होता है और फर्मों का बहिर्गमन होता है तो उत्पत्ति के साधनों की मांग कम हो जायेगी, उनकी कीमतें गिरेंगी और इस प्रकार सभी फर्मों की लागतें घट जायेगी।

चित्र नं० ५ में उद्योग की मांग रेखा D_1D_1 तथा उसकी अल्पकालीन पूर्ति रेखा SS_1 बिन्दु A पर काटती हैं; अर्थात् वस्तु को कीमत P_1 (या OP_1) है। यह शुरू की स्थिति (starting position) है। सुविधा के लिए माना कि बिन्दु A उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की स्थिति को बताता है। उद्योग की साम्य कीमत P_1 (या OP_1) है तथा साम्य उत्पादन P_1A है। कीमत P_1 प्रत्येक फर्म की न्यूनतम औसत लागत के बराबर होगी क्योंकि एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए यह आवश्यक है कि कीमत (या AR)=न्यूनतम औसत लागत (minimum AC) के।

चित्र—५

माना कि मांग में वृद्धि होती है तथा नयी मांग रेखा की स्थिति D_2D_2 हो जाती है, जहाँ पर कि उसके एक लम्बे समय तक रहने की आशा रहती है। अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन समायोजन साथ-साथ शुरू हो जायेंगे। नयी मांग रेखा D_2D_2 पुरानी पूर्ति रेखा SS_1 को B बिन्दु पर काटती है; अतः अल्पकाल में उद्योग का नया साम्य B बिन्दु पर होगा। स्पष्ट है कि मांग में वृद्धि के कारण अल्पकाल में कीमत बढ़ कर P_3 हो जाती है तथा फर्म केवल अपनी वर्तमान उत्पादन क्षमता की सहायता से थोड़ा उत्पादन बढ़ा पाती है और अल्पकाल में उद्योग का उत्पादन बढ़ कर P_2B हो जाता है। उद्योग में पहले फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही थी, परन्तु अब कीमत बढ़ जाने के कारण उन्हें 'अतिरिक्त लाभ' प्राप्त होने लगते हैं। परन्तु ये अतिरिक्त लाभ केवल अल्पकाल में ही रह पाते हैं। दीर्घकाल में इन लाभों से आकर्षित हो कर उद्योग में नयी फर्में प्रवेश करने लगती हैं, परिणामस्वरूप पूर्ति बढ़ती है और पूर्ति रेखा दायें को खिसकती जाती है, कीमत गिरती जाती है तथा अतिरिक्त लाभ कम होते जाते हैं। अतिरिक्त लाभों की समाप्ति दो-तरफा दबाव (two-way squeeze) के कारण होती है—नयी फर्मों के प्रवेश के परिणामस्वरूप एक ओर तो उत्पत्ति के साधनों की कीमतें बढ़ती हैं और इस प्रकार फर्मों की उत्पादन लागत बढ़ती है; दूसरी ओर नयी फर्मों के प्रवेश के कारण वस्तु की पूर्ति बढ़ती है तथा कीमत गिरती है। इन दोनों बातों के कारण कीमत तथा लागत में अन्तर (अर्थात् अतिरिक्त लाभ) कम होता जाता है। नयी फर्मों का प्रवेश होना (तथा पूर्ति रेखा का दायें को खिसकना अर्थात् पूर्ति का बढ़ना) तब बन्द हो जाता है जबकि 'दो-तरफा दबाव' के कारण
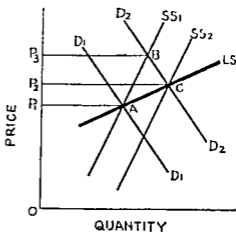
9 "An industry is said to operate under conditions of increasing cost in the long run if the costs of all the individual firms tend to increase as the industry expands in size and productive capacity by means of entrance of new firms."

अतिरिक्त लाभ बिलकुल समाप्त हो जाते हैं और प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होने लगते हैं तथा उद्योग पुनः दीर्घकालीन (तथा अल्पकालीन) साम्य की स्थिति में विन्दु C पर आ जाता है (बिन्दु C नयी माँग रेखा D_2D_2 तथा नयी पूर्ति रेखा SS_2 का कटाव विन्दु है)। अब उद्योग का नया दीर्घकालीन साम्य मूल्य P_2 होगा (जो कि प्रारम्भिक दीर्घकालीन साम्य मूल्य P_1 से अधिक है), तथा नया दीर्घकालीन साम्य उत्पादन P_2C होगा (जो कि पहले के साम्य उत्पादन P_1A से अधिक है)। दीर्घकालीन साम्य विन्दुओं A तथा C को मिला देने से (बढ़ती हुयी लागतों के अन्तर्गत) उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS प्राप्त हो जाती है।

४. घटती हुयी लागतों (Decreasing Costs) के अन्तर्गत उद्योग का दीर्घकालीन साम्य

एक उद्योग दीर्घकाल में घटती हुयी लागत की दशाओं के अन्तर्गत कार्य करता हुआ तब कहा जाता है जबकि नयी फर्मों के प्रवेश द्वारा उद्योग के आकार तथा उत्पादन क्षमता में विस्तार होने पर सभी व्यक्तिगत फर्मों की लागतों में कमी होती है।[10] इसका अभिप्राय है कि उद्योग के विस्तार तथा नयी फर्मों के प्रवेश के कारण उत्पत्ति के साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जायेगा, परन्तु 'घटती हुयी लागतों' के अन्तर्गत साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग करने (अर्थात् उनकी अधिक माँग करने) पर भी साधनों की कीमत घटती है और इसलिए उद्योग में सभी फर्मों की उत्पादन लागत घटती है। व्यावहारिक जगत में सामान्यतया ऐसी स्थिति नहीं पायी जाती है। इस स्थिति का विवेचन केवल सैद्धान्तिक (theoretical) है।

चित्र—६
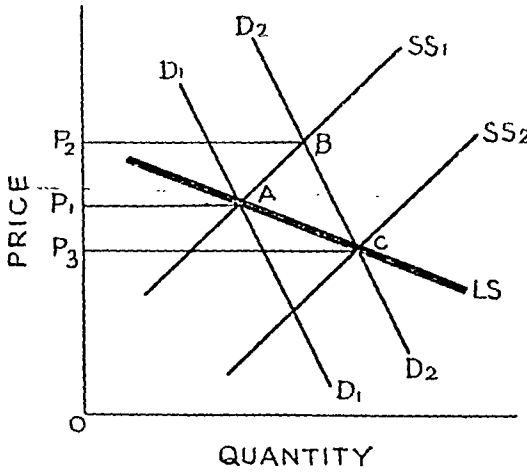
चित्र नं० ६ में विन्दु A प्रारम्भिक स्थिति (starting situation) को बताता है। विन्दु A उद्योग की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साम्य की स्थिति को बताता है; उद्योग का दीर्घकालीन साम्य मूल्य P_1 है और इस मूल्य पर प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है; तथा साम्य उत्पादन P_1A है। माना कि माँग बढ़ कर D_2D_2 हो जाती है। अल्पकाल में उद्योग के नये साम्य की स्थिति विन्दु B बतायेगा, कीमत बढ़ कर P_2 हो जायेगी तथा उत्पादन बढ़कर P_2B हो जाता है। कीमत के बढ़ जाने से फर्मों को सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त होगा। दीर्घकाल में इस अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में नयी फर्में प्रवेश करेंगी, उत्पत्ति के साधनों का अधिक मात्रा का प्रयोग किया जायेगा परन्तु सभी फर्मों के लिए कुछ उत्पत्ति के साधनों की लागत घटेगी (क्योंकि उत्पादन घटती हुयी लागत के अन्तर्गत हो रहा है) और वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी अर्थात् पूर्ति रेखा SS_1 नीचे को खिसककर SS_2 की स्थिति में आ जायेगी। अब उद्योग पुनः C विन्दु पर दीर्घकालीन साम्य की स्थिति में आ जाता है, दीर्घकालीन साम्य कीमत P_3 होगी (जो कि पहली दीर्घकालीन साम्य कीमत P_1 से कम है), साम्य उत्पादन P_3C होगा (जो कि पहले साम्य उत्पादन P_1A से अधिक है), तथा साम्य कीमत P_3 पर उद्योग में पुनः सब फर्मों को सामान्य लाभ प्राप्त होगा। दीर्घकालीन साम्य विन्दुओं A तथा C को मिला देने से 'घटती हुयी लागतों' के अन्तर्गत उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS प्राप्त हो जाती है।

---

10 "An industry is said to operate under conditions of decreasing cost in the long-run if the costs of all the individual firms tend to decrease as the industry expands in size and productive capacity by means of the entrance of new firms."

पंचम भाग

वितरण
[DISTRIBUTION]
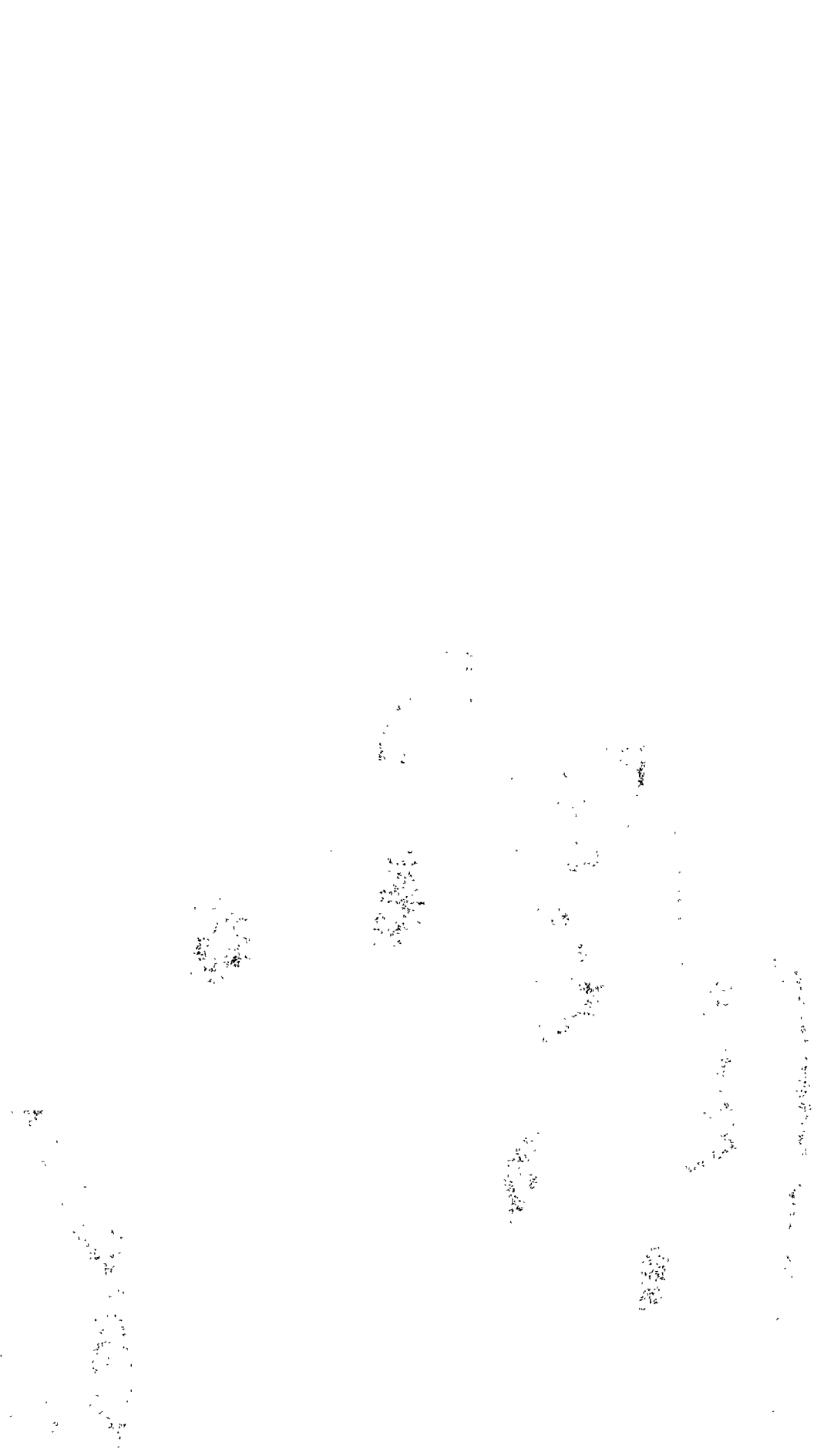
९ वितरण के सिद्धान्त
[THEORIES OF DISTRIBUTION]

देश के कुल उत्पादन अर्थात् राष्ट्रीय आय के उत्पादन में विभिन्न उत्पत्ति के साधन सहयोग देते हैं। प्रश्न यह उठता है कि प्रत्येक साधन को राष्ट्रीय आय में से कितना हिस्सा मिलेगा। दूसरे शब्दों में, साधनों के पुरस्कार (rewards or remunerations) अर्थात् उनकी कीमत किस प्रकार निर्धारित की जायेगी ?

वितरण के एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता

सामान्यतया किसी साधन को कीमत उसी प्रकार निर्धारित होती है जिस प्रकार एक वस्तु की कीमत निर्धारित होती है। दूसरे शब्दों में, किसी साधन की कीमत, वस्तु की कीमत की भाँति, उसकी माँग तथा पूर्ति द्वारा निश्चत होती है।

परन्तु वस्तु-मूल्य-निर्धारण (commodity pricing) तथा साधन-मूल्य-निर्धारण (factor pricing) में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर भी हैं जिनके कारण साधन-मूल्य-निर्धारण के एक पृथक सामान्य सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है। दोनों में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं—(i) किसी वस्तु को माँग प्रत्यक्ष रूप से उसकी उपयोगिता के कारण की जाती है। इसके विपरीत, साधन की माँग अप्रत्यक्ष अर्थात् व्युत्पन्न माँग (derived demand) होती है, साधन की माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है। (ii) किसी वस्तु की पूर्ति उसकी उत्पादन-लागत पर निर्भर करती है; परन्तु उत्पत्ति के साधनों की लागत का अर्थ अवसर लागत (opportunity cost) से लिया जाता है। एक साधन को किसी व्यवसाय में प्रयोग करने के लिए कम से कम इतना द्रव्य अवश्य देना पड़ेगा जितना कि उसे दूसरे वैकल्पिक प्रयोग में मिल सकता है; द्रव्य की यह मात्रा व्यवसाय की दृष्टि से साधन की लागत हुई। (iii) कुछ साधनों, जैसे श्रम, के सम्बन्ध में सामाजिक तथा मानवीय तत्त्वों को भी ध्यान में रखना पड़ता है।

उपर्युक्त अन्तरों के होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि साधन-मूल्य-निर्धारण वास्तव में वस्तु-मूल्य-निर्धारण का ही एक रूप है।

राष्ट्रीय आय के वितरण के सिद्धान्त

साधनों में राष्ट्रीय आय के वितरण अर्थात् साधनों के मूल्य-निर्धारण के प्रायः तीन सिद्धान्त बताये जाते हैं—(i) वितरण का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theory of Distribution), (ii) सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Distribution), तथा (iii) आधुनिक सिद्धान्त—वितरण का माँग तथा पूर्ति का सिद्धान्त (Modern Theory—Demand and Supply Theory of Distribution)।

इनका विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार है।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(CLASSICAL THEORY)

वितरण का प्रतिष्ठित सिद्धान्त एडम स्मिथ, रिकार्डो इत्यादि ने प्रतिपादित किया। इन अर्थशास्त्रियों ने वितरण का कोई एक सामान्य सिद्धान्त नहीं दिया बल्कि भूमि के लगान, श्रम की मजदूरी तथा पूँजी के व्याज के अलग-अलग सिद्धान्त दिये।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रीय आय में से सर्वप्रथम भूमि को लगान दिया जाता है, तत्पश्चात् श्रमिकों को मजदूरी दी जाती है और अन्त में जो शेष बच रहता है वह साहसी को व्याज या लाभ के रूप में प्राप्त हो जाता है।

रिकार्डो के अनुसार, लगान एक आधिक्य (surplus) है जो कि श्रेष्ठ भूमियों को सीमान्त भूमि के उत्पादन के ऊपर प्राप्त होता है। लगान देने के बाद राष्ट्रीय आय में से मजदूरों का हिस्सा दिया जाता है। मजदूरों का हिस्सा 'मजदूरी कोष' (wage fund) में से दिया जाता है, मजदूरी केवल श्रमिकों के जीवन-निर्वाह के बराबर दी जाती है। लगान तथा मजदूरी देने के बाद अन्त में जो बच रहता है वह व्याज या लाभ हो जाता है।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त दोषपूर्ण है; इसकी मुख्य **आलोचनाएँ** इस प्रकार हैं—(i) यह साधनों के हिस्से अर्थात् उनकी क़ीमत के निर्धारण का सामान्य सिद्धान्त (General Theory) नहीं है; यह तो लगान तथा मजदूरी के निर्धारण के पृथक-पृथक सिद्धान्त देता है। (ii) यह सिद्धान्त 'वितरण के कार्यात्मक सिद्धान्त' (Functional Theory of Distribution) पर कोई ध्यान नहीं देता। दूसरे शब्दों में, पहले साधन विशेष की इकाइयों का पृथक रूप से पुरस्कार ज्ञात किया जाना चाहिए और तत्पश्चात् सब इकाइयों का पुरस्कार जोड़ कर उस साधन के कुल वर्ग (class of the factor as a whole) का पुरस्कार ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु यह सिद्धान्त पहले साधन के कुल वर्ग का कुल हिस्सा ज्ञात करता है और इसके पश्चात् उसे साधन की विभिन्न इकाइयों में बाँटता है, परन्तु यह तरीका उचित नहीं है।

उपर्युक्त दोषों के कारण प्रतिष्ठित सिद्धान्त को त्याग दिया गया।

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त[1]
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF DISTRIBUTION)

१. प्राक्कथन (Introductory)

सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त इस बात की सामान्य व्याख्या (general explanation) प्रदान करता है कि उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार (rewards or remunerations) अर्थात् उनकी

---

1. **अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए**

नोट—जिन विश्वविद्यालयों के डिग्री स्तर के पाठ्यक्रमों (syllabuses) में 'वितरण के सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त' का केवल प्रारम्भिक विवेचन (elementary treatment) ही है, वहाँ के विद्यार्थियों को सिद्धान्त का पूरा विवरण पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें केवल १. प्राक्कथन, २. सिद्धान्त का सामान्य कथन, ३. सिद्धान्त की मान्यताएँ तथा अन्त में ४. सिद्धान्त की आलोचना (पृष्ठ ११)—ये कदम (steps) ही पढ़ने चाहिए, शेष बीच के सब कदम (steps) छोड़ देने चाहिए। जिन विश्वविद्यालयों के डिग्री अथवा डिग्री आनर्स के पाठ्यक्रमों में इस सिद्धान्त का उच्च विवेचन (advanced treatment) है वहाँ के विद्यार्थियों को सिद्धान्त का सम्पूर्ण विवरण पढ़ना चाहिए। अध्यापकों से निवेदन है कि वे इन बातों को अपने विद्यार्थियों को बताने का कष्ट करें।

(iii) द्रव्य में सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य (Value of marginal physical productivity in terms of money); इसे संक्षेप में 'सीमान्त उत्पाद[3] का मूल्य' (Value of Marginal Product, i.e., VMP) कहते हैं; कुछ अर्थशास्त्री इसे 'सीमान्त मूल्य उत्पाद' (Marginal Value Product, i.e., MVP) कहते हैं।

इन तीनों विचारों का विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार है :

(i) सीमान्त-भौतिक उत्पादकता (Marginal physical productivity, i.e., MPP)—जब सीमान्त उत्पादकता को वस्तु की भौतिक मात्रा (physical quantity) में व्यक्त किया जाता है तो उसे 'सीमान्त भौतिक उत्पादकता' (MPP) कहते हैं। किसी साधन को एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल भौतिक उत्पादन (total physical product) में वृद्धि को उस साधन को 'सीमान्त भौतिक उत्पादकता' कहते हैं, जबकि अन्य साधन स्थिर रखे जाते हैं। उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात् परिवर्तनशील अनुपातों के नियम (Law of Variable Proportions) के कारण प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता बढ़ती है, एक बिन्दु पर अधिकतम हो जाती है और तत्पश्चात् गिरने लगती है। दूसरे शब्दों में, सीमान्त भौतिक उत्पादकता रेखा (MPP curve) उल्टे U-आकार (Inverted U-Shape) की होती है जैसा कि चित्र न० १ में दिखाया गया है।
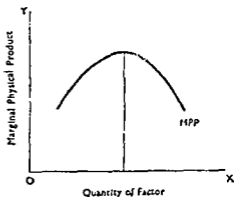
चित्र—१

(ii) सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal revenue productivity)—वास्तव में, एक उत्पादक या फर्म के लिए सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है; उसके लिए यह अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उसे इस भौतिक उत्पादन (physical output) को बेचने से कितना द्रव्य या आगम (money or revenue) मिलता है। फर्म इस बात में दिलचस्पी रखती है कि साधन की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करने से उसके कुल आगम में कितनी वृद्धि होती है; दूसरे शब्दों में, वह 'सीमान्त आगम उत्पादकता' में दिलचस्पी रखती है। अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रखने पर, परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल आगम में जो वृद्धि होती है उसे उस साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) कहते हैं।[4]

सीमान्त आगम उत्पादकता को एक दूसरी प्रकार से भी व्यक्त कर सकते हैं : सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को सीमान्त आगम (MR) से गुणा करने पर सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) प्राप्त हो जाती है। संक्षेप में,

$$MRP = MPP \times MR$$

[3] ध्यान रहे कि 'उत्पाद' (product) तथा 'उत्पादकता' (productivity) का प्रायः एक ही अर्थ लिया जाता है; इसलिए इस अध्याय में कहीं 'उत्पाद' (product) तथा कहीं 'उत्पादकता' (productivity) शब्द का प्रयोग मिलने से विद्यार्थियों को किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए, दोनों का एक ही अर्थ है।

[4] The increase in total revenue owing to the use of an additional unit of a variable factor is known as Marginal Revenue Product, when other factors are kept constant.

Factor Cost) तथा 'साधन की सीमान्त आय' (Marginal Remuneration of the Factor) एक ही बात हैं।]

इस सिद्धान्त की आगे विवेचना करने से पहले यह उचित होगा कि हम 'सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' की मान्यताओं को जान लें।

३. सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Marginal Productivity Theory)

इस सिद्धान्त की विवेचना करते समय प्रायः निम्न मान्यताएँ अनुमानित की जाती हैं :

(i) यह मान लिया जाता है कि साधन के बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है; साधन के क्रेता तथा विक्रेता बहुत अधिक संख्या में होते हैं ताकि उनमें से कोई भी क्रेता या विक्रेता बड़ा या महत्त्वपूर्ण नहीं होता।

(ii) यह भी मान लेते हैं कि साधन द्वारा उत्पादित वस्तु के बाजार में भी पूर्ण प्रतियोगिता होती है।

(iii) यह मान लिया जाता है कि साधन की प्रत्येक इकाई एक रूप है; समान रूप से कुशल होती है तथा साधन की विभिन्न इकाइयाँ एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होती हैं।

(iv) यह मान लेते हैं कि एक साधन परिवर्तनशील रहता है जबकि अन्य साधन स्थिर रहते हैं। दूसरे शब्दों में, एक परिवर्तनशील साधन (a single variable factor) की कीमत को ज्ञात किया जाता है।

(v) यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक उत्पादक या फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य रखती है।

(vi) यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार (full employment) की स्थिति को मान लेता है।

(vii) यह मान लिया जाता है कि 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' (Law of Variable Proportions or Law of Diminishing Returns) क्रियाशील रहता है।

४. सीमान्त उत्पादकता के अभिप्राय (Implications of Marginal Productivity)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में 'सीमान्त उत्पादकता' मुख्य शब्द (key word) है, इसलिए इसके अर्थ तथा अभिप्रायों (meaning and implications) को पूर्णतया समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

सीमान्त उत्पादकता की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है : "अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन (total product) जो वृद्धि होती है, उसे उस साधन की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) कहते हैं।"

सीमान्त उत्पादकता को निम्न तीन प्रकार से व्यक्त किया जाता है :

(i) सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity, i.e., MPP)

(ii) सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity, i.e., MRP)

साधन की इकाइयाँ (Units of the Factor)	कुल भौतिक उत्पाद (Total Physical Product)	उत्पाद की कीमत (Price of the Product)	कुल आगम (Total Revenue)	सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)	सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP)	सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP=MPP×Price)
२०	१०० इकाइयाँ	५ रु०	१००×५ =५०० रु०	—	—	—
२१	१०४ इकाइयाँ	४·९५ रु०	(१०४×४·९५) =५१४·८० रु०	(१०४−१००) =४ इकाइयाँ	(५१४·८० रु० −५०० रु०) =१४·८० रु०	(४× ४·९५ रु०) =१९·८० रु०

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि MRP=१४·८० रु० और VMP=१९·८० रु०; अतः अपूर्ण प्रतियोगिता में MRP कम होती है VMP से।

५. औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता के विचार (The Concepts of Average Gross Revenue Productivity, i.e., AGRP and Average Net Revenue Productivity, i.e., ANRP)

सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) के विचार के साथ हमें 'औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता' (AGRP) तथा 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (ANRP) के विचारों को भी समझ लेना आवश्यक है।

$$\frac{\text{किसी साधन 'A' की औसत सम्पूर्ण}}{\text{आगम उत्पादकता (AGRP)}} = \frac{\text{कुल या सम्पूर्ण आगम (Total or Gross Revenue)}}{\text{साधन की इकाइयाँ (Total Units of the Factor)}}$$

परन्तु यहाँ पर यह बात ध्यान रखने की है कि किसी फर्म का उत्पादन केवल एक साधन का परिणाम नहीं होता बल्कि फर्म का उत्पादन उस साधन को अन्य साधनों के साथ मिलाने से प्राप्त होता है। इस बात को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट होगा कि किसी साधन 'A' (माना श्रम) की मात्रा बढ़ाने से जो कुल या सम्पूर्ण आगम (Total or Gross Revenue) प्राप्त होता है उसमें से कुछ आगम (revenue) अन्य साधनों (जैसे भूमि, पूंजी, इत्यादि) के कारण होगा। अतः इस 'कुल या सम्पूर्ण आगम' में से यदि हम अन्य साधनों के आगम के हिस्से को निकाल दें तो हमें केवल साधन 'A' के कारण प्राप्त 'कुल विशुद्ध आगम' (Total Net Revenue) प्राप्त हो जायेगा। इस 'कुल विशुद्ध आगम' में साधन 'A' की कुल इकाइयों से भाग देने पर उस साधन की 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (Average Net Revenue Productivity, i.e., ANRP) प्राप्त हो जायेगी; संक्षेप में,

(iii) **सीमान्त उत्पादकता का मूल्य** (Value of marginal product, i.e., VMP) या **सीमान्त मूल्य उत्पादकता** (Marginal value product, i.e., MVP)—सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को वस्तु अर्थात् उत्पाद (product) की कीमत से गुणा करने से 'सीमान्त उत्पादकता का मूल्य' (VMP) प्राप्त होता हैं। संक्षेप में,

$$VMP = MPP \times Price$$

चूंकि **पूर्ण प्रतियोगिता** में Price (AR) = MR, इसलिए

$$VMP = MPP \times MR$$
$$= MRP$$

स्पष्ट है कि **पूर्ण प्रतियोगिता में VMP तथा MRP एक ही होते** हैं।

MPP, MRP तथा VMP के विचारों को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है :

साधन की इकाइयाँ (Units of the Factor)	कुल भौतिक उत्पाद (Total Physical Product)	उत्पाद की कीमत (Price of the Product)	कुल आगम (Total Revenue)	सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)	सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP)	सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP = MPP × Price)
२०	१०० इकाइयाँ	५ रु०	१०० × ५ = ५०० रु०	—	—	—
२१	१०४ इकाइयाँ	५ रु०	१०४ × ५ = ५२० रु०	(१०४ – १००) = ४ इकाइयाँ	(५२० रु० – ५०० रु०) = २० रु०	४ इकाइयाँ × ५ रु० = २० रु०

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता है, इसलिए वस्तु या उत्पाद (product) की अतिरिक्त इकाइयाँ (additional units) एक ही कीमत (अर्थात् ५ रु०) पर विकेगी, इस कारण पूर्ण प्रतियोगिता में MRP = VMP, जैसा कि तालिका से स्पष्ट है MRP तथा VMP दोनों २० रुपये के बराबर हैं।

यदि अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है तो फर्म वस्तु या उत्पाद की अतिरिक्त इकाइयाँ [illegible] ही कीम[illegible] नहीं बेच सकती, उसे कीमत घटानी पड़ेगी। माना कि अपूर्ण प्रतियोगिता [illegible] त[illegible] वस्तु की १०० इकाइयाँ ५ रु० प्रति इकाई पर बेच सकती है। माना [illegible] बेचने के लिए उसे कीमत ५ रु० से घटाकर ४·९५ रु० करनी पड़ती है; [illegible] अपूर्ण प्रतियोगिता में) MRP तथा VMP एक समान नहीं होंगे; यह बात अब स्पष्ट होती है।

साधन की इकाइयाँ (Units of the Factor)	कुल भौतिक उत्पाद (Total Physical Product)	उत्पाद की कीमत (Price of the Product)	कुल आगम (Total Revenue)	सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)	सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP)	सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP = MPP × Price)
२०	१०० इकाइयाँ	५ रु०	१००×५ =५०० रु०	—	—	—
२१	१०४ इकाइयाँ	४·९५ रु०	(१०४×४·९५) =५१४·८० रु०	(१०४ − १००) = ४ इकाइयाँ	$TR_1 - TR$ (५१४·८० रु० − ५०० रु०) = १४·८० रु०	(४× ४·९५ रु०) = १९ ८० रु०

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि MRP = १४·८० रु० और VMP = १९ ८० रु०; अतः अपूर्ण प्रतियोगिता में MRP कम होती है VMP से।

५. औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता के विचार (The Concepts of Average Gross Revenue Productivity, i.e., AGRP and Average Net Revenue Productivity, i.e., ANRP)

सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) के विचार के साथ हमें 'औसत सम्पूर्ण आगम उत्पादकता' (AGRP) तथा 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (ANRP) के विचारों को भी समझ लेना आवश्यक है।

$$\frac{\text{किसी साधन 'A' की औसत सम्पूर्ण}}{\text{आगम उत्पादकता (AGRP)}} = \frac{\text{कुल या सम्पूर्ण आगम (Total or Gross Revenue)}}{\text{साधन की इकाइयाँ (Total Units of the Factor)}}$$

परन्तु यहाँ पर यह बात ध्यान रखने की है कि किसी फर्म का उत्पादन केवल एक साधन का परिणाम नहीं होता बल्कि फर्म का उत्पादन उस साधन को अन्य साधनों के साथ मिलाने से प्राप्त होता है। इस बात को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट होगा कि किसी साधन 'A' (माना श्रम) की मात्रा बढ़ाने से जो कुल या सम्पूर्ण आगम (Total or Gross Revenue) प्राप्त होता है उसमें से कुछ आगम (revenue) अन्य साधनों (जैसे भूमि, पूँजी, इत्यादि) के कारण होगा। अतः इस 'कुल या सम्पूर्ण आगम' में से यदि हम अन्य साधनों के आगम के हिस्से को निकाल दें तो हमें केवल साधन 'A' के कारण प्राप्त 'कुल विशुद्ध आगम' (Total Net Revenue) प्राप्त हो जायेगा। इस 'कुल विशुद्ध आगम' में साधन 'A' की कुल इकाइयों से भाग देने पर उस साधन की 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (Average Net Revenue Productivity, i.e., ANRP) प्राप्त हो जायेगी; संक्षेप में,

(iii) **सीमान्त उत्पादकता का मूल्य** (Value of marginal product, i.e., VMP) या **सीमान्त मूल्य उत्पादकता** (Marginal value product, i.e., MVP)—सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को वस्तु अर्थात् उत्पाद (product) की कीमत से गुणा करने से 'सीमान्त उत्पादकता का मूल्य' (VMP) प्राप्त होता है। संक्षेप में,

$$VMP = MPP \times Price$$

चूँकि **पूर्ण प्रतियोगिता में** Price (AR) = MR, इसलिए

$$VMP = MPP \times MR$$
$$= MRP$$

स्पष्ट है कि **पूर्ण प्रतियोगिता में** VMP **तथा** MRP **एक ही होते हैं।**

MPP, MRP तथा VMP के विचारों को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है :

साधन की इकाइयाँ (Units of the Factor)	कुल भौतिक उत्पाद (Total Physical Product)	उत्पाद की कीमत (Price of the Product)	कुल आगम (Total Revenue)	सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)	सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP)	सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP = MPP × Price)
२०	१०० इकाइयाँ	५ रु०	१०० × ५ = ५०० रु०	—	—	—
२१	१०४ इकाइयाँ	५ रु०	१०४ × ५ = ५२० रु०	(१०४ – १००) = ४ इकाइयाँ	(५२० रु० – ५०० रु०) = २० रु०	४ इकाइयाँ × ५ रु० = २० रु०

चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता है, इसलिए वस्तु या उत्पाद (product) की अतिरिक्त इकाइयाँ (additional units) एक ही कीमत (अर्थात् ५ रु०) पर बिकेंगी, इस कारण पूर्ण प्रतियोगिता में MRP = VMP, जैसा कि तालिका से स्पष्ट है MRP तथा VMP दोनों २० रुपये के बराबर हैं।

यदि अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है तो फर्म वस्तु या उत्पाद की अतिरिक्त इकाइयों को एक ही कीमत पर नहीं बेच सकती, उसे कीमत घटानी पड़ेगी। माना कि अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में फर्म अपनी वस्तु की १०० इकाइयाँ ५ रु० प्रति इकाई पर बेच सकती है। मान कि १०४ इकाइयाँ बेचने के लिए उसे कीमत ५ रु० से घटाकर ४·९५ रु० करनी पड़ती है; ऐसी स्थिति (अर्थात् अपूर्ण प्रतियोगिता में) MRP तथा VMP एक समान नहीं होंगे; यह बात तालिका से स्पष्ट होती है।

[यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की है। चित्र न० २ में 'सीमान्त विशुद्ध आगम उत्पादकता' (Marginal Net Revenue Productivity, i.e., MNRP) को नहीं दिखाया गया है। इसका कारण है कि हम यह मानकर चलते हैं कि केवल एक साधन ही परिवर्तनशील होता है तथा अन्य साधन स्थिर रखे जाते हैं। एक ही परिवर्तनशील साधन (a single variable factor) की स्थिति में MRP तथा MNRP एक ही होती है।]

६. एक महत्वपूर्ण बात यह ध्यान रखने की है कि एक साधन की MRP-रेखा एक फर्म के लिए उस साधन की माँग-रेखा होती है। यह स्पष्ट है क्योंकि किसी साधन की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) पर निर्भर करती है।

७. सीमान्त साधन लागत या सीमान्त पुरस्कार (Marginal Factor Cost, i e, MFC or Marginal Remuneration) तथा औसत साधन लागत या औसत पुरस्कार (Average Factor Cost, i e, AFC or Average Remuneration)

एक साधन को जो पुरस्कार (remuneration) प्राप्त होता है वह साधन के लिए आय है तथा फर्म के लिए लागत है। चूँकि साधन-बाजार (factor-market) में पूर्ण प्रतियोगिता है, इसलिए प्रत्येक फर्म साधन-बाजार में साधन की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित मूल्य पर साधन की जितनी इकाई चाहती है प्राप्त कर सकती है। दूसरे शब्दों में, फर्म के लिए साधन की औसत लागत (Average Factor Cost, i. e, AFC) एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा फर्म के लिए साधन की औसत लागत (AFC)=साधन की सीमान्त लागत (MFC)। अतः AFC तथा MFC दोनों को एक ही पड़ी रेखा द्वारा दिखाया जाता है जैसा कि चित्र न० ३ में दिखाया गया है। ध्यान रहे कि AFC के लिए हम Average Remuneration तथा MFC के लिए Marginal Remuneration शब्दों का प्रयोग भी कर सकते हैं।)

चित्र—३

८. साधन का मूल्य निर्धारण अथवा फर्म का साम्य (Factor Price Determination or Equilibrium of Firm)

एक फर्म किसी साधन को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहाँ पर कि उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग करने से कुल आगम में वृद्धि (अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता—MRP) उस अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात सीमान्त साधन लागत MFC या सीमान्त पुरस्कार) के बराबर हो जाय। दूसरे शब्दों में, फर्म के साम्य के लिए निम्न दशा पूरी होनी आवश्यक है :

$MRP = MFC$ (or Marginal Remuneration of the Factor)[7]

[7] वस्तु के मूल्य की दृष्टि से फर्म के साम्य के लिए MR=MC के होती है। साधन के मूल्य की दृष्टि से MR के स्थान पर MRP तथा MC के स्थान पर MFC का प्रयोग करते हैं तथा फर्म के साम्य के लिए MRP=MFC की दशा होती है।

साधन 'A' की औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP)

$$= \frac{\text{साधन 'A' के कारण कुल विशुद्ध आगम (Total Net Revenue Attributable to Factor A)}}{\text{साधन 'A' की कुल इकाइयाँ (Total Units of Factor A)}}$$

[किसी साधन की विशुद्ध उत्पादकता (net productivity) को दो रीतियों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। **प्रथम रीति** के अन्तर्गत प्रारम्भिक विश्लेषण (elementary analysis) के लिए यह माना जा सकता है कि सहयोगी साधनों (co-operating factors) की बहुत थोड़ी मात्रा प्रयोग की जा रही है; इस मान्यता के परिणामस्वरूप कुल या सम्पूर्ण आगम (gross revenue) में इन सहयोगी साधनों का हिस्सा बहुत कम अर्थात् नगण्य (negligible) होगा। ऐसी स्थिति में विचाराधीन परिवर्तनशील साधन के द्वारा ही कुल आगम में वृद्धि होगी और इसलिए 'कुल या सम्पूर्ण उत्पादकता' (gross product) तथा विशुद्ध उत्पादकता (net product) एक ही होगी। परन्तु यह रीति अवास्तविक (unrealistic) है। **दूसरी रीति** अधिक वास्तविक तथा सन्तोषजनक है। एक साधन की 'सम्पूर्ण उत्पादकता' (gross productivity) में से 'विशुद्ध उत्पादकता' (net productivity) ज्ञात की जा सकती है, यदि हम यह मान लें कि अन्य सहयोगी साधनों के पुरस्कार (rewards) पृथक रूप से ज्ञात हैं। विचाराधीन साधन के प्रयोग के प्रत्येक स्तर पर हम फर्म के सम्पूर्ण आगम (gross revenue) में से अन्य सहयोगी साधनों के पुरस्कारों (rewards) के बराबर द्रव्य की मात्रा घटाकर विचाराधीन साधन की 'कुल विशुद्ध आगम' (total net revenue) ज्ञात कर सकते हैं। इस जानकारी से हम सीमान्त तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (Marginal and Average Net Revenue Productivity) मालूम कर सकते हैं। 'कुल विशुद्ध आगम' (Total Net Revenue) में विचाराधीन साधन की इकाइयों का भाग देकर उसके 'औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता' (ANRP) को ज्ञात कर लिया जाता है।]
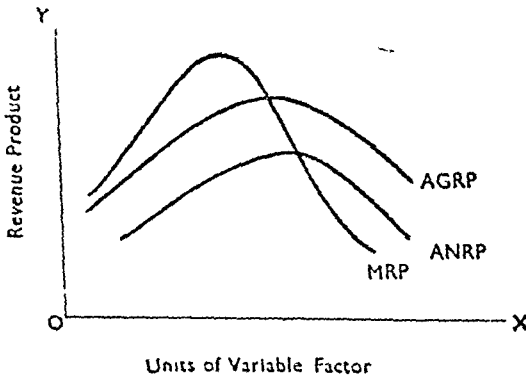
चित्र—२

सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) का आधार सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) होती है, इसलिए MRP-रेखा का आकार भी उल्टे U-आकार (*inverted U-shape*) का होता है। MRP, AGRP तथा ANRP रेखाओं को चित्र नं० २ में दिखाया गया है।

MRP तथा ARP[5] में सीमान्त तथा औसत का सामान्य सम्बन्ध (usual relation)[6] होता है; MRP-रेखा AGRP तथा ANRP रेखाओं को उनके उच्चतम विन्दुओं पर काटती है।

---

5 किसी साधन के प्रयोग (employment or use) के एक स्तर पर ARP-रेखा (अर्थात् AGRP या ANRP) यह बताती है कि साधन की प्रत्येक इकाई फर्म के लिए कितना औसत आगम (average revenue) प्राप्त करती है।

MRP तथा ARP में सामान्य सम्बन्ध इस प्रकार होता है—(i) ARP (अर्थात् AGRP या ANRP) जब बढ़ती हुई होती है तो MRP उससे अधिक होती है, (ii) ARP के उच्चतम बिन्दु पर ARP तथा MRP बराबर होंगे; तथा (iii) जब ARP गिरती हुई होगी तो MRP उससे कम होगी।

[यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की है। चित्र नं० २ में 'सीमान्त विशुद्ध आगम उत्पादकता' (Marginal Net Revenue Productivity, i.e., MNRP) को नहीं दिखाया गया है। इसका कारण है कि हम यह मानकर चलते हैं कि केवल एक साधन ही परिवर्तनशील होता है तथा अन्य साधन स्थिर रखे जाते हैं। एक ही परिवर्तनशील साधन (a single variable factor) की स्थिति में MRP तथा MNRP एक ही होती है।]

६. एक महत्वपूर्ण बात यह ध्यान रखने की है कि एक साधन की MRP-रेखा एक फर्म के लिए उस साधन की माँग-रेखा होती है। यह स्पष्ट है क्योंकि किसी साधन की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) पर निर्भर करती है।

७. सीमान्त साधन लागत या सीमान्त पुरस्कार (Marginal Factor Cost, i e, MFC or Marginal Remuneration) तथा औसत साधन लागत या औसत पुरस्कार (Average Factor Cost, i.e., AFC or Average Remuneration)

एक साधन को जो पुरस्कार (remuneration) प्राप्त होता है वह साधन के लिए आय है तथा फर्म के लिए लागत है। चूंकि साधन-बाजार (factor-market) में पूर्ण प्रतियोगिता है, इसलिए प्रत्येक फर्म साधन-बाजार में साधन की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित मूल्य पर साधन की जितनी इकाई चाहती है प्राप्त कर सकती है। दूसरे शब्दों में, फर्म के लिए साधन की औसत लागत (Average Factor Cost, i. e, AFC) एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा फर्म के लिए साधन की औसत लागत (AFC)=साधन की सीमान्त लागत (MFC)। अतः AFC तथा MFC दोनों को एक ही पड़ी रेखा द्वारा दिखाया जाता है जैसा कि चित्र नं० ३ में दिखाया गया है। ध्यान रहे कि AFC के लिए हम Average Remuneration तथा MFC के लिए Marginal Remuneration शब्दों का प्रयोग भी कर सकते हैं।)

चित्र—३

८. साधन का मूल्य निर्धारण अथवा फर्म का साम्य (Factor Price Determination or Equilibrium of Firm)

एक फर्म किसी साधन को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहाँ पर कि उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग करने से कुल आगम में वृद्धि (अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता—MRP) उस अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात सीमान्त साधन लागत MFC या सीमान्त पुरस्कार) के बराबर हो जाय। दूसरे शब्दों में, फर्म के साम्य के लिए निम्न दशा पूरी होनी आवश्यक है :

$MRP = MFC$ (or Marginal Remuneration of the Factor)[7]

[7] वस्तु के मूल्य की दृष्टि से फर्म के साम्य के लिए MR=MC के होती है। साधन के मूल्य की दृष्टि से MR के स्थान पर MRP तथा MC के स्थान पर MFC का प्रयोग करते हैं तथा फर्म के साम्य के लिए MRP=MFC की दशा होती है।

यदि MRP > MFC, तो इसका अर्थ है कि साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से के लिए कुल आगम में वृद्धि अधिक होगी अपेक्षाकृत साधन की अतिरिक्त इकाई की लागत के। स्थिति में फर्म साधन की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करके अपने लाभ को बढ़ा सकेगी। द MRP < MFC, तो इसका अर्थ है कि साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से र्म के लिए कुल आगम में वृद्धि उस अतिरिक्त इकाई की लागत से कम है; इसलिए फर्म अतिरिक्त काइयों का उत्पादन नहीं करेगी क्योंकि उसे हानि होगी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक फर्म, किसी साधन की इकाइयों का प्रयोग उस सीमा क करेगी जहाँ पर MRP = MFC के हो। दूसरे शब्दों में, 'सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त' ताता है कि एक साधन की कीमत (price or remuneration) उसकी सीमान्त उत्पादकता र्थात् 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (MRP) के बराबर निर्धारित होगी।

अल्पकाल में फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग करने से लाभ या हानि हो सकती है। लाभ की स्थिति को चित्र नं० ४ में दिखाया है। साधन की कीमत उस विन्दु पर निर्धारित होगी जहाँ पर MRP = MFC or Marginal Remuneration। चित्र नं० ४ में P विन्दु पर MPR = MFC के है; इसलिए साधन की कीमत PQ होगी तथा साधन की OQ मात्रा प्रयोग में लायी जायेगी। इस स्थिति में फर्म को लाभ होगा या हानि, इसके लिए ANRP तथा AFC की तुलना की जाती है; चित्र से स्पष्ट है कि फर्म को PLMN के बराबर लाभ प्राप्त होगा।

चित्र—४
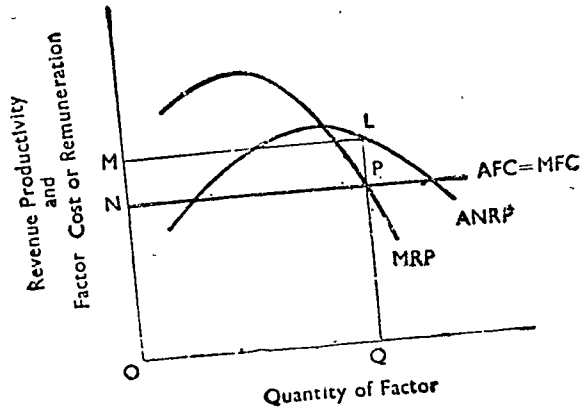
दीर्घकाल में फर्मों को साधन की इकाइयों के प्रयोग से केवल सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त होगा अर्थात् AFC (or Average Remuneration) = ANRP के होगा। **यदि** AFC (या Average Remuneration), **कम** है ANRP से, तो फर्म को साधन की इकाइयों के प्रयोग से लाभ प्राप्त होगा, इस लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में नयी फर्में प्रवेश करेंगी, साधन की माँग बढ़ेगी और परिणामस्वरूप साधन का Average Remuneration (अर्थात् AFC) बढ़कर ठीक ANRP के बराबर हो जायेगा। **यदि** Average Remuneration (अर्थात AFC) अधिक है ANRP से, तो फर्म को साधनों की इकाइयों के प्रयोग से हानि होगी, इस हानि के कारण कुछ फर्में उद्योग को छोड़ देंगी, साधन की माँग घटेगी और परिणामस्वरूप (Average Remuneration) (अर्थात् AFC) घटकर ठीक ANRP के बराबर हो जायेगा। इस प्रकार दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में, फर्मों तथा उद्योग के साम्य के लिए निम्न दोहरी दशा (double condition) होनी चाहिए :

(i) MRP = MFC (or Marginal Remuneration)

(ii) ANRP = AFC (or Average Remuneration)

चित्र नं० ५ में P विन्दु पर उपर्युक्त दोनों शर्तें पूरी होती हैं; अतः साधन की कीमत = PQ होगी तथा साधन की OQ मात्रा प्रयोग की जायेगी और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

९. 'सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' के अन्तर्गत प्रतिस्थापन का सिद्धान्त (Principle of Substitution) महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रतिस्थापन का सिद्धान्त (i) एक ही साधन की विभिन्न इकाइयों के बीच लागू होता है, तथा (ii) विभिन्न साधनों के बीच लागू होता है।

(i) पूर्ण प्रतियोगिता तथा पूर्ण गतिशीलता की मान्यता के अन्तर्गत सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त बताता है कि सभी व्यवसायों (occupations) में एक साधन की विभिन्न इकाइयों की सीमान्त उत्पादकताएँ समान होती हैं। यदि ऐसा नहीं है तो साधन की इकाइयाँ कम सीमान्त उत्पादकता वाले व्यवसायों को छोड़कर अधिक सीमान्त उत्पादकता वाले व्यवसायों में चली जायेंगी, इस प्रकार का हस्तान्तरण (transference) या प्रतिस्थापन तब तक जारी रहेगा जब तक कि प्रत्येक व्यवसाय में साधन की सीमान्त उपयोगिता बराबर न हो जाय।
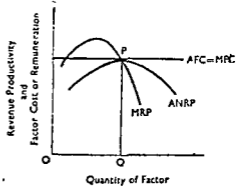
चित्र—५

(ii) विभिन्न साधनों के बीच एक फर्म सदैव ऊँची लागत वाले साधनों (high cost factors) के स्थान पर कम लागत वाले साधनों (Low cost factors) का प्रतिस्थापन करती है ताकि वह 'न्यूनतम लागत संयोग' (least cost combination) को प्राप्त कर सके। परन्तु इस प्रकार का प्रतिस्थापन उस सीमा तक होगा जहाँ पर एक साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत के अनुपात के बराबर हो जाता है। सुगमता से समझने के लिए इस बात को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है :

$$\frac{\text{MP of Factor A}}{\text{Price of A}} = \frac{\text{MP of Factor B}}{\text{Price of B}} = \frac{\text{MP of Factor C}}{\text{Price of C}} \ldots\ldots\ldots\ldots$$

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

(i) प्रत्येक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) के बराबर होती है।

(ii) सभी व्यवसायों में एक साधन की विभिन्न इकाइयों की सीमान्त उत्पादकताएँ समान होती हैं।

(iii) न्यूनतम लागत संयोग (least cost combination) प्राप्त करने के लिए फर्म विभिन्न साधनों के बीच प्रतिस्थापन तब तक करती है जब तक कि एक साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उसकी कीमत के अनुपात के बराबर न हो जाय।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Marginal Productivity Theory)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की बड़ी आलोचना की गयी है। इसकी आलोचना मुख्यतया इसकी मान्यताओं के प्रति है। मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) **किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात** (isolate) **करना अत्यन्त कठिन है।** यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा :

(i) किसी वस्तु का उत्पादन विभिन्न साधनों के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम होता है; अतः किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को पृथक करके ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु सीमान्त विश्लेषण (marginal analysis) की सहायता से विचाराधीन साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है।

(ii) कुछ अर्थशास्त्रियों (जैसे हॉब्सन) के अनुसार, साधनों के मिलने का अनुपात टेक्नीकल बातों के कारण स्थिर होता है और उसे बदला नहीं जा सकता; इसलिए सीमान्त विश्लेषण के द्वारा एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता। परन्तु सभी दशाओं में साधनों के मिलने के अनुपात स्थिर नहीं होते तथा दीर्घकाल में प्रायः अनुपातों को बदला जा सकता है।

(iii) इस सिद्धान्त में यह मान लिया जाता है कि साधनों को थोड़ी मात्राओं (small quantities) में घटाया या बढ़ाया जा सकता है। परन्तु बड़े तथा अविभाज्य साधनों (big, lumpy or indivisible factors) के सम्बन्ध में ऐसा नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में सीमान्त विश्लेषण और परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त असफल हो जाता है।

(२) **यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है;** अतः इसे अवास्तविक तथा अव्यावहारिक कहा जा सकता है। परन्तु प्रो० चेम्बरलिन (Chamberlin) ने अपूर्ण प्रतियोगिता की वास्तविक स्थिति में इनका प्रयोग किया है; अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन की कीमत 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (MRP) के बराबर होती है, न कि 'सीमान्त उत्पादकता के मूल्य' (VMP) के बराबर।

(३) **प्रत्येक फर्म या साहसी द्वारा लाभ को अधिकतम करने की मान्यता पूर्णतया सही नहीं है;** व्यवहार में एक फर्म अपनी वस्तु की उत्पादन-नीति निर्धारित करते समय लाभ के अतिरिक्त अन्य कई बातों से प्रभावित होती है।

(४) **उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता** (perfect mobility) **की मान्यता गलत है;** व्यावहारिक जीवन में साधनों की गतिशीलता में विभिन्न प्रकार की रुकावटें होती हैं, साधनों में गतिशीलता सीमित होती है परन्तु पूर्ण नहीं।

(५) **सिद्धान्त की यह मान्यता गलत है कि एक साधन की सभी इकाइयाँ एकरूप** (homogeneous) **होती हैं।** व्यवहार में साधनों की इकाइयाँ बिलकुल एकरूप नहीं होतीं, उनमें कम या अधिक अन्तर अवश्य होता है, वे एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नहीं होतीं।

(६) **पूर्ण रोजगार की मान्यता उचित नहीं है।** पूर्ण रोजगार के कारण ही एक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है; परन्तु व्यवहार में पूर्ण रोजगार की स्थिति एक सामान्य स्थिति (normal situation) नहीं होती है; प्रायः अर्थ-व्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर से कम स्तर पर कार्य करती है और ऐसी स्थिति में कोई भी साधन (माना श्रम) इस बात की चिन्ता नहीं करेगा कि उसे पुरस्कार (remuneration) उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर मिलता है नहीं।

(७) **यह सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में** (as a general theory) **अपर्याप्त** है। मजदूरी का निर्धारण यद्यपि मुख्यतया श्रमिकों की उत्पादकता पर निर्भर करता है परन्तु वह

श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति से भी प्रभावित होता है। ब्याज का निर्धारण आंशिक रूप से पूंजी की उत्पादकता पर तथा आंशिक रूप से तरलता पसन्दगी (Liquidity preference) पर निर्भर करता है। इसी प्रकार लाभ का निर्धारण आंशिक रूप से साहसी की उत्पादकता पर तथा आंशिक रूप से समाज में प्रावैगिक परिवर्तनों (dynamic changes) पर निर्भर करता है। इसी प्रकार भूमि का लगान केवल भूमि की उत्पादकता पर ही नहीं बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि भूमि की कुल पूर्ति सीमित है। स्पष्ट है कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त सभी साधनों के मूल्य निर्धारण की उचित तथा पूर्ण व्याख्या नहीं कर पाता। अतः सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में अपर्याप्त है।

(८) यह सिद्धान्त धन के असमान वितरण का समर्थन करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, धनवान व्यक्तियों की आय इसलिए अधिक होती है क्योंकि वे अधिक उत्पादन करते हैं, जबकि निर्धन व्यक्तियों की आय इसलिए कम होती है क्योंकि वे कम उत्पादन करते है। इस प्रकार सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का सहारा लेकर धन के वर्तमान असमान वितरण का समर्थन किया जाता है। परन्तु इस प्रकार का तर्क गलत है और सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का कोई नैतिक औचित्य (moral justification) नहीं है।

(९) यदि प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भुगतान किया जाय तो कुल उत्पाद (total product) समाप्त नहीं होगा, या तो कुछ बच रहेगा या कुछ कम पड़ेगा। ऐसा होने का कारण यह है कि कुल उत्पादन 'साधनों के सहयोग का परिणाम होता है। दूसरे शब्दों में, विभिन्न साधनों की सीमान्त उत्पादकताओं का योग कुल उत्पाद के बराबर नहीं होगा, इसे 'योग की समस्या' (adding up problem) कहा जाता है।[8] परन्तु यह आलोचना सही नहीं है क्योंकि गणित की सहायता से (Euler's Theorem द्वारा) यह सिद्ध कर दिया गया है कि विभिन्न साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भुगतान देने से कुल उत्पाद समाप्त (exhaust) हो जाता है।

(१०) फ्रीडमेन (Friedman), सेम्युलसन इत्यादि अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यह सिद्धान्त अपूर्ण तथा एक-पक्षीय है क्योंकि यह साधन की पूर्ति पर उचित ध्यान नहीं देता है। यह सिद्धान्त साधन की पूर्ति को स्थिर मान लेता है और तब यह बताता है कि एक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है। परन्तु साधन की कीमत निर्धारण में माँग तथा पूर्ति दोनों की दशाओं पर ध्यान देना चाहिए।[9]

वितरण का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF DISTRIBUTION)
अथवा
साधनों के मूल्य निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF FACTOR PRICING)

१. साधन-मूल्य-निर्धारण वास्तव में वस्तु-मूल्य-निर्धारण का एक विस्तार मात्र ही है (Factor-Pricing is only an Extension or Special Case of Commodity Pricing)

साधनों के मूल्य निर्धारण का 'सीमान्त उत्पादकता' का सिद्धान्त अपूर्ण है क्योंकि यह साधनों के केवल माँग पक्ष की ही व्याख्या करता है तथा पूर्ति पक्ष पर उचित ध्यान नहीं देता।

---

8 "The sum of the marginal productivities of the different factors of production will not be equal to total product. This is known as the 'adding up' problem."

9 ... marginal productivity analysis does not provide a complete theory of the pricing of

किसी साधन के मूल्य निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त माँग तथा पूर्ति का सिद्धान्त है। किसी साधन का मूल्य, एक वस्तु के मूल्य की भाँति, उसकी माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। विभिन्न साधनों की माँग तथा पूर्ति की दशाओं में अन्तर होता है इसलिए प्रत्येक साधन के पुरस्कार (अर्थात् मजदूरी, लगान, व्याज तथा लाभ) के सिद्धान्त के सम्बन्ध में भिन्नता होती है। परन्तु साधनों का मूल्य माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा ही निर्धारित होता है।

यद्यपि साधन-मूल्य-निर्धारण (factor pricing) वस्तु-मूल्य-निर्धारण (commodity pricing) की भाँति होता है, परन्तु दोनों में कुछ अन्तर भी है। मुख्य अन्तर इस प्रकार है— (i) वस्तु की माँग 'प्रत्यक्ष माँग' (direct demand) होती है जबकि साधन की माँग 'व्युत्पन्न माँग' (derived demand) होती है अर्थात् साधन की माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है। (ii) किसी वस्तु की पूर्ति उसकी द्राव्यिक लागत पर निर्भर करती है, परन्तु उत्पत्ति के साधनों की लागत का अर्थ है 'अवसर लागत' (opportunity cost); अर्थात् साधनों की पूर्ति 'अवसर लागत' पर निर्भर करती है। (iii) साधनों, जैसे श्रम, के सम्बन्ध में हमें सामाजिक तथा मानवीय तत्त्वों को भी ध्यान में रखना पड़ता है।

उपर्युक्त अन्तरों के होते हुए भी इसमें सन्देह नहीं है कि साधन-मूल्य-निर्धारण (factor pricing) वास्तव में वस्तु-मूल्य-निर्धारण (commodity pricing) का ही एक विस्तार मात्र (extension) है।

२. मान्यताएँ (Assumptions)

साधन की माँग, पूर्ति तथा मूल्य निर्धारण का विवेचन करने से पहले 'साधन की माँग तथा पूर्ति सिद्धान्त' की मुख्य मान्यताओं को जान लेना ठीक होगा। मुख्य मान्यताएँ निम्न हैं :

(i) पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मान ली जाती है।

(ii) उत्पत्ति ह्रास नियम या परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Law of Variable proportions) क्रियाशील रहता है।

(iii) साधन की सभी इकाइयाँ एकरूप (homogeneous) होती हैं और इसलिए एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) होती हैं।

(iv) प्रत्येक साधन पूर्णतया विभाज्य (divisible) होता है।

३. साधन की माँग (Demand of a Factor)

किसी साधन की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पाद (total product) में जो वृद्धि होती है उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं। एक फर्म साधन विशेष को उस सीमा तक प्रयोग करेगी जहां पर कि 'साधन की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य' (Value of the Marginal Productivity, i.e., VMP)='साधन की सीमान्त लागत' (Marginal Factor Cost, i.e., MFC) के हो। यदि VMP>MFC, तो फर्म को साधन की अतिरिक्त इकाई के प्रयोग करने में लाभ होगा क्योंकि अतिरिक्त इकाई की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (अर्थात् VMP) अधिक है साधन की उस अतिरिक्त इकाई की लागत (अर्थात् MFC) से। अतः जब तक VMP अधिक है MFC से, तब

factors of production. It summarizes the forces underlying the demand for factors of production; but the price of factors depends also on the conditions under which they are supplied."

तक फर्म साधन की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करती जायेगी और उस स्थान पर अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग बन्द कर देगी जहाँ पर VMP=MFC के हो जाती है। दूसरे शब्दों में, एक फर्म किसी साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से अधिक पुरस्कार नहीं देगी। इस प्रकार सीमान्त उत्पादकता साधन की कीमत की उच्चतम सीमा है।

किसी साधन की माँग निम्न बातों से प्रभावित होती है :

(i) साधन की माँग व्युत्पन्न माँग (derived demand) होती है, उसकी माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है; यदि वस्तु की माँग अधिक है तो साधन की माँग भी अधिक होगी।

(ii) यदि साधन की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है तो उसकी माँग तथा कीमत बढ़ेगी। किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता को निम्न तीन प्रकार से बढ़ाया जा सकता है :

(अ) साधन के गुण (quality) में वृद्धि करके उसकी सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है; उदाहरणार्थ, श्रमिकों को शिक्षा तथा प्रशिक्षण देकर उनकी सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

(ब) किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता अन्य सहयोगी साधनों (co-operating factors) की मात्रा पर निर्भर करेगी; उदाहरणार्थ, श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता को बढाया जा सकता है यदि उनको अच्छे तथा नवीनतम यन्त्र तथा मशीनें दी जायें।

(स) तकनीकी प्रगति (technological progress) के परिणामस्वरूप साधनों की सीमान्त उत्पादकताएँ स्वाभाविक रूप से बढ़ जायेंगी।

(iii) अन्य साधनों की कीमत साधन विशेष की माँग को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, श्रमिकों की माँग बढ़ जायेगी यदि मशीनों की कीमतें बहुत ऊँची हो जाती है क्योंकि ऐसी स्थिति में महँगी मशीनों के स्थान पर श्रमिकों का अधिक प्रयोग किया जायेगा।

४. साधन की पूर्ति (Supply of the Factor)

किसी वस्तु की पूर्ति उसकी उत्पादन लागत पर निर्भर करती है। इसी प्रकार से किसी साधन की पूर्ति उसकी लागत पर निर्भर करती है; परन्तु यहाँ लागत का अर्थ 'अवसर लागत' (opportunity cost) या 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) से होता है। 'अवसर लागत' द्रव्य की वह मात्रा है जो किसी साधन को दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग (next best paid alternative) में मिल सकता है। एक साधन को वर्तमान व्यवसाय में इतना अवश्य मिल जाना

पर निर्भर करता है।

एक साधन की पूर्ति कई बातों से प्रभावित होती है। उदाहरणार्थ, श्रमिकों की पूर्ति केवल इसी बात पर निर्भर नहीं करती कि उसको अधिक पुरस्कार या पूर्ति-मूल्य दिया जाय, बल्कि एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में लागत, शिक्षा तथा प्रशिक्षण की लागत, कार्य तथा आराम (leisure) के बीच अधिमान (preference) की मात्रा, इत्यादि बातें श्रमिकों की पूर्ति को प्रभावित करती हैं।

५. साधन का मूल्य या पुरस्कार निर्धारण (Determination of Price or Remuneration of the Factor)

साधन का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर कि माँग तथा पूर्ति बराबर हो जाती है। चित्र नं० ६ में साधन का मूल्य EQ या P निर्धारित होगा क्योंकि इस मूल्य पर साधन की माँग तथा उसकी पूर्ति दोनों बराबर हैं। यदि साधन का मूल्य P_1 है तो साधन की माँग$=P_1K$ होगी तथा उसकी पूर्ति$=P_1L$; अर्थात् साधन की $P_1L-P_1K=KL$ के बराबर अतिरिक्त पूर्ति (excess supply) है जो कि मूल्य को 'E' (अर्थात् EQ या P) की ओर नीचे को ढकेलेगी जैसा कि नीचे की ओर जाते हुये तीर बताते हैं। यदि साधन का मूल्य P_2 है तो साधन की माँग$=P_2T$ तथा उसकी पूर्ति$=P_2R$, अतः साधन की $P_2T-P_2R=RT$ के बराबर अतिरिक्त माँग (excess demand) है जो कि साधन के मूल्य को 'E' (अर्थात् EQ या P) की ओर ऊपर को ढकेलेगी जैसा कि चित्र में ऊपर को जाते हुए तीर बताते हैं। स्पष्ट है कि साधन का साम्य मूल्य 'P' या EQ ही होगा जहाँ पर कि उसकी माँग तथा पूर्ति दोनों बराबर हो जाती हैं।
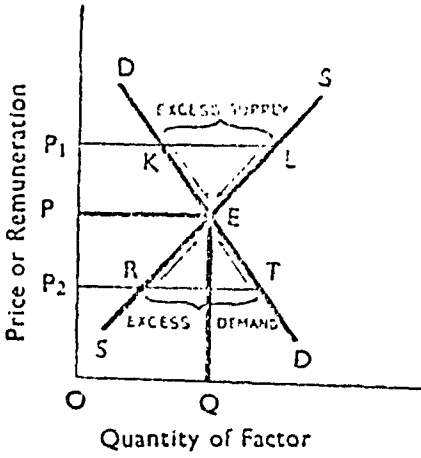
चित्र—६

लगान
[RENT]

लगान की परिभाषा (Definition of Rent)

लगान भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान है। **रिकार्डो** के अनुसार, लगान भूमि की 'मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों' (original and indestructible powers) के प्रयोग के लिए भुगतान है। **मार्शल** के अनुसार, समस्त समाज की दृष्टि से 'प्रकृति के निःशुल्क उपहारों से प्राप्त आय' (income derived from the free gifts of nature) को लगान कहते हैं। इस प्रकार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (classical economists) ने लगान का सम्बन्ध भूमि के साथ स्थापित किया।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भूमि की 'सीमितता का गुण' अर्थात् 'भूमि-तत्व' (land-element) प्रत्येक साधन प्राप्त कर सकता है और इसलिए प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर

सकता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान एक साधन को वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिए न्यूनतम पूर्ति मूल्य (minimum supply price) अर्थात् अवसर लागत (opportunity cost) के ऊपर एक बचत (surplus) है। लगान की एक ऐसी परिभाषा श्रीमती जोन रोबिन्सन ने इन शब्दों में दी है—"लगान के विचार का सार (essence) वह बचत है जोकि एक साधन की इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जोकि साधन को अपने कार्य को करते रहने के लिए आवश्यक है।"[1]

कुल लगान (Gross Rent)

साधारण बोलचाल की भाषा में जब लगान शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उसका अभिप्राय अर्थशास्त्र के 'कुल लगान' (Gross Rent) से होता है। एक कृषक या किरायेदार जो लगान भूमिपति या मकान मालिक को देता है वह 'कुल लगान' होता है।

कुल लगान में 'आर्थिक लगान' (economic rent) के अतिरिक्त निम्नलिखित कुछ अन्य तत्व भी शामिल होते हैं। (i) केवल भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान अर्थात् 'आर्थिक लगान', (ii) उस धनराशि का ब्याज जोकि भूमि की उन्नति पर, अर्थात् भूमि के निकट कुएँ खुदवाने, झोंपड़ी बनवाने, खेत के चारों तरफ पक्की नालियाँ बनवाने इत्यादि पर व्यय की गयी है; (iii) भूमिपति की जोखिम (जोकि भूमि-सुधार तथा उन्नति से सम्बन्धित होती है) का पुरस्कार; तथा (iv) भूमिपति की देख-रेख (अर्थात् प्रबन्ध) का पुरस्कार।

आर्थिक लगान (Economic Rent)

आर्थिक लगान कुल लगान का एक अंग है। केवल भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को आर्थिक लगान कहते हैं। आर्थिक लगान में अन्य तत्व शामिल नहीं होते। रिकार्डो के अनुसार, श्रेष्ठ भूमियों की लागतों तथा सीमान्त भूमि की लागत का अन्तर ही आर्थिक लगान की माप है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, केवल भूमि ही नहीं बल्कि अन्य सभी साधन आर्थिक लगान प्राप्त कर सकते हैं। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आर्थिक लगान एक साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत है।

ठेके का लगान (Contract Rent)

रस्परिक इकरार या ठेके

द्वारा नि अधिक, कम या उसके

बराबर हो सकता है, यह बात दोनों पक्षों की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करेगी। जब भूमि की पूर्ति कम तथा माँग बहुत अधिक होती है और काश्तकारों में भूमि के लिए बहुत अधिक प्रतियोगिता होती है तो भूमिपति काश्तकारों से बहुत अधिक लगान लेते हैं जिसे 'अत्यधिक लगान' (rack-renting) कहते हैं।

ठेके के लगान का निर्धारण भूमि की माँग तथा पूर्ति द्वारा होता है। यदि भूमि की माँग अधिक है अर्थात् काश्तकारों में भूमि के लिए अधिक प्रतियोगिता है और पूर्ति कम है तो ठेके का लगान ऊँचा होगा तथा वह आर्थिक लगान से अधिक होगा। इसके विपरीत, यदि भूमि की

---

1 "The essence of the conception of *rent* is the conception of a surplus earned by a particular part of a factor of production over and above the minimum earnings necessary to induce it to do its work."

—Mrs. Joan Robinson, *Economics of Imperfect Competition*, p. 102.

पूर्ति अधिक है अर्थात् भूमिपतियों में भूमि को काश्तकारों को उठाने के लिए आपस में अधिक प्रतियोगिता है तथा भूमि की माँग कम है तो लगान नीचा निर्धारित होगा और आर्थिक लगान से कम होगा।

आर्थिक लगान तथा ठेके के लगान में अन्तर

दोनों में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं :

(१) आर्थिक लगान का निर्धारण 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' (intra-marginal lands) की लागत तथा सीमान्त भूमियों की लागत के अन्तर पर निर्भर करता है।

ठेके के लगान का निर्धारण भूमि की माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है।

(२) सीमान्त भूमि की लागत बढ़ जाने से अर्थात् 'जोत की सीमा' (margin of cultivation) के आगे को खिसक जाने से आर्थिक लगान बढ़ जायेगा; इसके विपरीत सीमान्त भूमि की लागत घट जाने से अर्थात् जोत की सीमा के पीछे को खिसक जाने से आर्थिक लगान घट जायेगा।

इसके विपरीत, ठेके का लगान भूमिपति तथा काश्तकार के बीच इकरार (contract) द्वारा तय होता है, इसलिए उसमें घट-बढ़ नहीं होती जब तक कि दूसरा इकरार न किया जाय।

परन्तु ठेके का लगान आर्थिक लगान से कम या अधिक हो सकता है। प्राय: ठेके का लगान आर्थिक लगान से अधिक होता है और ऐसी स्थिति में कृषक का शोषण होता है।

(३) आर्थिक लगान श्रेष्ठ भूमियों तथा सीमान्त भूमियों की उपज पर निर्भर करता है, इसलिए यह पहले से निश्चित नहीं किया जा सकता है।

इसके विपरीत, ठेके का लगान इकरार द्वारा निश्चित होता है, इसलिए यह पूर्व निश्चित किया जा सकता है।

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त
(RICARDIAN THEORY OF RENT)

१. प्राक्कथन (Introductory)

रिकार्डो (David Ricardo) से पहले फ्रांस में फिजियोक्रेट्स (Physiocrats) के नाम से जाने वाले अर्थशास्त्रियों ने लगान के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये थे। परन्तु डेविड रिकार्डो (१७७३-१८२३) प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने लागत सिद्धान्त का एक यथाक्रम तथा विस्तृत अध्ययन किया। रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित लगान के सिद्धान्त को 'लगान का प्रतिष्ठित सिद्धान्त' (Classical Theory of Rent) भी कहा जाता है।

रिकार्डो के अनुसार, केवल भूमि ही लगान प्राप्त कर सकती है, अन्य साधन नहीं। रिकार्डो ने लगान का सम्बन्ध भूमि के साथ स्थापित किया क्योंकि वे समझते थे कि भूमि में कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं जो अन्य साधनों में नहीं होतीं, और ये विशेषताएँ हैं—(i) भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार (free gift) है, भूमि को अस्तित्व (existence) में लाने के लिए समाज को कोई लागत नहीं उठानी पड़ती; तथा (ii) भूमि सीमित होती है, समाज की दृष्टि से उसकी कुल मात्रा को घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता; अतः भूमि की एक मुख्य विशेषता है 'सीमितता' (limitedness) या 'स्थिरता' (fixity)।

२. लगान-सिद्धान्त के सम्बन्ध में रिकार्डो का कथन (Ricardo's Statement about the theory of Rent)

रिकार्डो ने अपने लगान-सिद्धान्त के सम्बन्ध में दो मुख्य बातें कहीं :

(i) रिकार्डो ने बताया कि ऊँचे लगान प्रकृति की उदारता (bounty) के कारण नहीं होते बल्कि उसकी कृपणता या कंजूसी (nigardliness) के कारण होते हैं।[2] रिकार्डो का यह कथन फीजियोक्रेट्स (Physiocrats)[3] के लगान सम्बन्धी विचार पर आक्रमण के रूप में था। भूमि की मात्रा सीमित होती है तथा उपजाऊ भूमि और भी सीमित होती है। अधिक उपजाऊ खेतों की मात्रा के सीमित होने के कारण मनुष्य को कम उपजाऊ खेतों पर खेती करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसके फलस्वरूप अधिक उपजाऊ खेतों पर एक प्रकार का आधिक्य प्राप्त होता है जिसे उन खेतों का लगान कह सकते हैं। इस प्रकार लगान प्रकृति की कृपणता तथा सीमितता के कारण उत्पन्न होता है, न कि उसकी उदारता के कारण जैसा कि फीजियोक्रेट्स समझते थे।

(ii) रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की दूसरी बात रिकार्डो द्वारा की गयी लगान की परिभाषा है जो इस प्रकार है—"लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि के स्वामी को भूमि की मूल तथा अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है।"[4]

अतः रिकार्डो के अनुसार, भूमि के प्रत्येक टुकड़े को प्रकृति द्वारा कुछ उर्वरा शक्ति (fertility) प्राप्त होती है जो कि 'मूल तथा अविनाशी' होती है। परन्तु भूमि कुछ उर्वरा शक्ति अर्जित (acquire) भी कर सकती है। इस प्रकार एक भूमि के टुकड़े की उर्वरा शक्ति आंशिक रूप से अर्जित की हुई (acquired) होती है तथा आंशिक रूप से 'मूल तथा अविनाशी' होती है। रिकार्डो की परिभाषा के अनुसार, एक भूमि के टुकड़े से प्राप्त कुल उपज में से जो भाग केवल 'मूल तथा अविनाशी शक्ति' के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है तथा भूमि के स्वामी को दिया जाता है, वह लगान होगा।

परन्तु यहाँ पर एक कठिनाई आती है कि यह कैसे निर्धारित किया जाय कि एक भूमि के टुकड़े से प्राप्त कुल उपज में से कितना भाग उसकी 'मूल तथा अविनाशी शक्ति' के कारण है और कितना भाग 'अर्जित शक्ति' के कारण। इसके अतिरिक्त यह कहना भी उचित नहीं है कि भूमि की 'मूल शक्ति' नष्ट नहीं होती है। वास्तव में, 'मूल तथा अविनाशी शक्ति' का विचार अस्पष्ट (nebulous) है।

३. लगान एक भेदात्मक बचत है (Rent is a Differential Surplus)

रिकार्डो के अनुसार, लगान सापेक्षिक लाभ या भेदात्मक बचत (differential gain or surplus) है। सभी भूमियाँ एक समान नहीं होती हैं उनमें उर्वरता या स्थिति (fertility or situation) या दोनों की दृष्टि से अन्तर या भेद होता है। इस अन्तर या भेद के कारण श्रेष्ठ

2 "High rents are not a sign of the bounty of nature. On the contrary, they are an indication of the nigardliness of nature."

3 फीजियोक्रेट्स के अनुसार लगान एक प्रकार का आधिक्य (surplus) है जो मनुष्य को प्रकृति की उदारता के कारण प्राप्त होता है। रिकार्डो भी लगान को एक प्रकार का आधिक्य मानते थे, परन्तु उनके अनुसार लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि प्रकृति की कृपणता या सीमितता के कारण प्राप्त होता है।

4 "Rent is that portion of the Produce of earth which is paid to the landlord for the use of the original and indestructible powers of the soil."

भूमियों को निम्न कोटि की भूमियों की तुलना में लाभ या बचत प्राप्त होती है जिसे रिकार्डो ने लगान कहा; चूँकि यह लगान भूमियों में अन्तर या भेद के कारण प्राप्त होता है, इसलिए इसे 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) कहा जाता है।

रिकार्डो का लगान नियम (Ricardian Law of Rent) : उपर्युक्त बात को रिकार्डो के के आदर में "रिकार्डो का लगान नियम" कहा जाता है। **प्रो० वाग** (Waugh) रिकार्डो के लगान नियम को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं : "किसी भूमि के टुकड़े पर श्रम तथा पूँजी के कुशलतम प्रयोग से प्राप्त उत्पादन के मूल्य तथा उस उत्पादन के मूल्य का अन्तर, जो कि गहरे अथवा विस्तृत सीमान्त (intensive or extensive margin) पर श्रम तथा पूँजी की उसी मात्रा का प्रयोग से प्राप्त होता है, लगान है।"[5]

'भेदात्मक बचत' या 'लगान' का अध्ययन तीन भागों में किया जाता है :

(अ) विस्तृत खेती के अन्तर्गत 'भेदात्मक बचत' या 'लगान' (Rent under extensive cultivation or Rent with extensive margin);

(ब) गहरी खेती के अन्तर्गत 'भेदात्मक बचत' या 'लगान' (Rent under intensive cultivation or Rent with intensive margin); और

(स) 'भेदात्मक बचत' या 'लगान' भूमि की स्थितियों में अन्तर के कारण (Rent owing to the difference in situations of the plots of land)।

(अ) विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान—रिकार्डो ने एक नये देश का उदाहरण प्रस्तुत किया। आरम्भ में देश में जनसंख्या कम होती है, उसकी खाद्यान्न की सम्पूर्ण आवश्यकता केवल सर्वश्रेष्ठ अर्थात् प्रथम श्रेणी की भूमियों पर खेती करने से पूरी हो जाती है। इस स्थिति में लगान उत्पन्न नहीं होता क्योंकि जनसंख्या की कमी तथा भूमि के अधिक होने के कारण प्रथम श्रेणी की भूमि सुगमता से प्राप्त हो जाती है ताकि उसके प्रयोग के लिए कुछ नहीं देना पड़ता। जनसंख्या में वृद्धि और परिणामस्वरूप खाद्यान्नों की बढ़ती हुई माँग में वृद्धि के कारण निम्न कोटि की भूमियाँ जैसे—द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी की भूमि, प्रयोग में लायी जायेंगी। यहाँ मान लिया जाता है कि (i) सब भूमि के टुकड़ों का क्षेत्रफल समान है, तथा (ii) भूमि के प्रत्येक टुकड़े पर श्रम तथा पूँजी की समान मात्राएँ लगायी जाती हैं। ऐसी स्थिति में श्रेष्ठ भूमियों पर अधिक उपज प्राप्त होगी अपेक्षाकृत निम्न कोटि की भूमियों के; दूसरे शब्दों में, श्रेष्ठ भूमियों की औसत लागत कम होगी अपेक्षाकृत निम्न कोटि की भूमियों के।

किसी समय विशेष पर जोती जाने वाली भूमियों में से सबसे निम्न कोटि की भूमि (inferior most land) को **'सीमान्त भूमि'** (margin land) कहते हैं; तथा इससे श्रेष्ठ भूमियों को 'पूर्व-सीमान्त भूमियाँ' (intra-marginal lands) कहते हैं। बाजार में वस्तु की कीमत सीमान्त भूमि की औसत लागत (जोकि सबसे अधिक लागत है) के बराबर होगी, यदि ऐसा नहीं होगा तो सीमान्त भूमि जोत से निकल जायेगी। 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' के काश्तकारों ([illegible]) के लिए औसत लागत कम होगी अपेक्षाकृत सीमान्त भूमि की औसत लागत के, [illegible]

5 "Rent of any piece of land measures the difference between the value of the product obtained from it by the most efficient use of labour and capital, and the value of the product that would be obtained by applying the same labour and capital at either the intensive or extensive margin."

सभी काश्तकार बाजार में समान कीमत पर ही वस्तु को बेचेंगे। स्पष्ट है कि 'पूर्व सीमान्त भूमियों' को 'अतिरेक' या 'बचत' (surplus) प्राप्त होगी क्योंकि कीमत की अपेक्षा उनकी औसत लागत कम है। इस 'बचत' को ही रिकार्डो ने लगान कहा। फैलनर (W. Fellner) के शब्दों में, "पूर्व-सीमान्त भूमियों की लागत तथा कीमत में अन्तर ही रिकार्डो का लगान है।"[6] दूसरे शब्दों में, प्रत्येक पूर्व सीमान्त भूमि द्वारा उत्पादित वस्तु को बेचने से प्राप्त कुल आगम (total revenue or receipts) में से उसकी कुल लागत को घटाने से उस पूर्व-सीमान्त भूमि पर लगान प्राप्त हो जायेगा। यहाँ पर लगान द्रव्य के शब्दों में (in terms of money) व्यक्त किया गया है।

लगान को उत्पत्ति के शब्दों में (*in terms of produce*) भी व्यक्त किया जाता है। श्रेष्ठ भूमियों की उत्पत्ति तथा सीमान्त भूमि की उत्पत्ति का अन्तर लगान है। इससे स्पष्ट है, रिकार्डो का लगान 'उत्पादक की बचत' (producer's surplus) है।

ध्यान रहे कि कीमत सीमान्त भूमि की औसत लागत के बराबर होती है, इसलिए सीमान्त भूमि को कोई 'बचत' अर्थात् 'लगान' प्राप्त नहीं होता है। अतः सीमान्त भूमि को 'लगान-रहित भूमि' (No-rent land) भी कहा जाता है।

विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान का एक उदाहरण तथा चित्र द्वारा स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है :

भूमियों के ग्रेड	'A' ग्रेड की भूमि	'B' ग्रेड की भूमि	'C' ग्रेड की भूमि	'D' ग्रेड की भूमि अर्थात् सीमान्त भूमि
कुल उत्पादन (गेहूँ का)	४० क्विटल	३० क्विटल	२० क्विटल	१० क्विटल
लगान (उत्पत्ति के शब्दों में)	(४० — १०) = ३० क्विटल	(३० — १०) = २० क्विटल	(२० — १०) = १० क्विटल	लगान-रहित भूमि (No-rent land)
कुल लागत (श्रम तथा पूँजी लगाने की)	२०० रु०	२०० रु०	२०० रु०	२०० रु०
बाजार मूल्य (मूल्य सीमान्त भूमि को औसत लागत के बराबर होगा)	२० रु०	२० रु०	२० रु०	२०० / १० = २० रु०
लगान (द्रव्य के शब्दों में)	(४० × २०) रु० — २०० रु० = ६०० रु०	(३० × २०) रु० — २०० रु० = ४०० रु०	(२० × २०) रु० — २०० रु० = २०० रु०	(१० × २०) रु० — २०० रु० = शून्य रु० लगान-रहित भूमि No-rent land)

उदाहरण की उपर्युक्त तालिका को दो भागों में बाँटा गया है। प्रथम भाग में लगान को 'उत्पत्ति के शब्दों में' (rent in terms of produce) दिखाया गया है तथा दूसरे भाग में लगान को 'द्रव्य के शब्दों में' (rent in terms of money) दिखाया गया है।

6 "The difference between price and cost of production of intra-marginal lands is the Ricardian rent." —W. Fellner

उपर्युक्त उदाहरण के प्रथम भाग को अर्थात् उत्पत्ति के शब्दों में लगान को चित्र नं० ७ में दिखाया गया है। श्रेष्ठ भूमियों 'A', 'B' तथा 'C' को सीमान्त भूमि 'D' की तुलना में 'भेदात्मक बचत' अर्थात् 'लगान' प्राप्त होता है जोकि चित्र में रेखांकित भाग द्वारा दिखाया गया है।

चित्र—७

(ब) गहरी खेती के अन्तर्गत लगान—निम्न कोटि की भूमियों को जोतने अर्थात् भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाकर विस्तृत खेती करने के अतिरिक्त वर्तमान भूमि के टुकड़ों पर गहरी खेती करके भी खाद्यान्न की पूर्ति को बढ़ा सकते हैं। किसी एक भूमि के टुकड़े पर श्रम तथा पूँजी की अधिक 'मात्राओं' (doses) के लगाने से, उत्पत्ति ह्रास नियम के परिणामस्वरूप, घटती हुई उपज प्राप्त होगी अर्थात् इन मात्राओं (doses) की सीमान्त उत्पादकता घटती जायेगी। यहाँ पर 'सीमान्त भूमि' (marginal land) के स्थान पर 'सीमान्त-मात्रा' (marginal dose) का प्रयोग किया जाता है। 'सीमान्त मात्रा' की लागत ठीक उसकी उत्पादकता के बराबर होगी और इस प्रकार इस सीमान्त मात्रा पर कोई बचत या 'लगान' प्राप्त नहीं होगा। परन्तु इस सीमान्त मात्रा से पूर्व की मात्राओं की उत्पादकता अधिक होगी अपेक्षाकृत उनकी लागत के; (ध्यान रहे कि यह मान लिया जाता है कि सीमान्त मात्रा तथा अन्य सभी मात्राओं की लागत समान होती है।) इस प्रकार 'पूर्व-सीमान्त मात्राओं' (intra-marginal doses) को बचत या लगान प्राप्त होगा। स्पष्ट है कि गहरी खेती में भी 'सीमान्त मात्रा' की तुलना में पूर्व-सीमान्त मात्राओं को लगान प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ पर भी लगान एक प्रकार की 'भेदात्मक बचत' (differential gain or surplus) है।

गहरी खेती के अन्तर्गत लगान का एक उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण किया जा सकता है। माना कि श्रम तथा पूँजी की एक 'मात्रा' (dose) की लागत [illegible] है। [illegible] भूमि के टुकड़े पर इस प्रकार की ४ मात्राएँ लगायी जाती हैं। उत्पत्ति ह्रास नियम के [illegible] इन मात्राओं से घटती हुई उत्पादकता प्राप्त होगी जैसा कि निम्न उदाहरण में दिखाया गया है:

मात्राएँ (Doses)	प्रथम मात्रा	द्वितीय मात्रा	तृतीय मात्रा	चतुर्थ मात्रा
उत्पादन	[illegible] क्विंटल गेहूँ	[illegible] क्विंटल गेहूँ	[illegible] क्विंटल गेहूँ	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible] (... product)	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
श्रम तथा पूँजी की एक 'मात्रा' की लागत	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

उपर्युक्त तालिका के दो भाग हैं। प्रथम भाग में लगान को 'उत्पत्ति के शब्दों में' (in terms of produce) तथा दूसरे भाग में लगान को 'द्रव्य के शब्दों में' (in terms of money) दिखाया गया है। इसे चित्र न० ८ द्वारा व्यक्त किया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि चौथी मात्रा अर्थात् सीमान्त मात्रा से पूर्व की मात्राओं पर लगान प्राप्त होता है जिसे रेखांकित भाग में दिखाया गया है।

चित्र—८
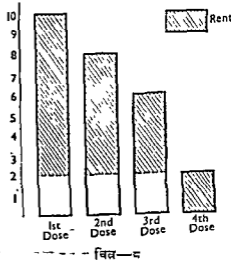
(ख) स्थिति तथा लगान (Situation and rent)—कुछ भूमियाँ मण्डी के निकट होंगी। जो भूमियाँ मण्डी से दूर होंगी उनकी उपज को मण्डी तक लाने में अपेक्षाकृत अधिक यातायात-लागत पड़ेगी। यदि यह मान लिया जाय कि सभी भूमियाँ एक समान उपजाऊ है, तो भी स्थिति की दृष्टि से मण्डी की निकट की भूमियाँ श्रेष्ठ होंगी अपेक्षाकृत मण्डी से दूर भूमियों के। किसी समय विशेष में जोती जाने वाली भूमियों में से जो भूमि मण्डी से सबसे अधिक दूरी पर है वह 'सीमान्त भूमि' (marginal land) कही जायेगी और अन्य भूमियाँ 'पूर्व सीमान्त भूमियाँ' (intra-marginal lands) कही जायेगी। मण्डी के निकट की भूमियों अर्थात् पूर्व-सीमान्त भूमियों की यातायात-लागत कम होगी अपेक्षाकृत सीमान्त भूमि के; स्पष्ट है कि 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' को सीमान्त भूमि की तुलना में 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) प्राप्त होगी अर्थात् वे लगान अर्जित करेंगी।

४. लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता (Rent does not determine Price)

कृषि की वस्तु की कीमत सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होती है तथा लगान इस लागत के ऊपर बचत (surplus) है, इसलिए लगान लागत में प्रवेश नहीं करता तथा मूल्य को प्रभावित नहीं करता, बल्कि वह स्वयं मूल्य द्वारा प्रभावित होता है।

५. लगान एक 'अनर्जित आय' (Unearned Income) है

एक भूमिपति को लगान केवल भूमि के स्वामित्व के कारण प्राप्त होता है; लगान उसके प्रयत्नों का परिणाम नहीं होता; लगान कीमत के लागत से अधिक होने के कारण प्राप्त होता है। इस प्रकार लगान भूमिपति के प्रयत्नों का फल नहीं होता और वह एक प्रकार की अनर्जित आय होती है।

रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Ricardian Theory of Rent)

रिकार्डो के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न है :

(१) रिकार्डो का यह कथन उचित नहीं है कि भूमि की शक्तियाँ (अर्थात् उर्वरा शक्ति) मौलिक तथा अविनाशी होती है। प्रकृति भूमि [illegible] तथा पूँजी के प्रयोग द्वारा भूमि एक बड़ी मात्रा [illegible] प्रश्न यह उठता है कि यह कैसे निश्चित किया [illegible] की मौलिक शक्ति के कारण है और कितना भाग [illegible] मौलिक शक्ति का विचार अनुचित तथा अस्पष्ट (nebulous) है।

दूसरे, आज के अणु शक्ति (atomic energy and nuclear physics) के युग में भूमि की उर्वरा शक्ति को अविनाशी कहना गलत है। इसके अतिरिक्त लगातार खेती करने से, जलवायु में परिवर्तन तथा कृषि के तरीकों में परिवर्तनों के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति में परिवर्तन होता रहता है। कृषि योग्य भूमियाँ धूल के गोलों (dust bowls) में तथा रेगिस्तान हरी भूमियों (green lands) में परिवर्तित हो जाते हैं।

[रिकार्डो के समर्थकों का कहना है कि भूमि की उर्वरा शक्ति को छोड़कर अन्य शक्तियाँ, जैसे किसी भूमि के टुकड़े से सम्बन्धित सूर्य की रोशनी तथा पानी की मात्रा, अविनाशी होती हैं।]

(२) **रिकार्डो द्वारा बताया गया भूमि के जोतने का क्रम सही नहीं है।** केरी तथा रोशर (Carey and Rocher) के अनुसार, लोग पहले सबसे अधिक उपजाऊ भूमि, तत्पश्चात् उससे कम उपजाऊ भूमि, फिर उससे कम उपजाऊ भूमि, इत्यादि, क्रम में भूमि को नहीं जोतते। वे सर्व-प्रथम उन भूमियों को जोतते हैं जो सबसे अधिक सुविधाजनक होंगी अर्थात् जो शहरों तथा मण्डियों के निकट होंगी।

परन्तु यह आलोचना ठीक नहीं है। (i) वाकर (Walker) के अनुसार, सर्वश्रेष्ठ भूमि (best land) से रिकार्डो का अर्थ ऐसी भूमि से था जो कि उर्वरता तथा स्थिति (fertility and situation) दोनों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हो। (ii) रिकार्डो के सिद्धान्त में भूमि को जोतने का क्रम महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि यह बात महत्त्व की है कि विभिन्न भूमियों की उपज (yield) में अन्तर होना चाहिए।

(३) **रिकार्डो का सिद्धान्त लगान उत्पन्न होने के कारण पर उचित प्रकाश नहीं डालता।** **ब्रिग्स तथा जोरडन** (Briggs and Jordon) के अनुसार, रिकार्डो का सिद्धान्त केवल इस सामान्य सत्य को बताता है कि एक अधिक अच्छी वस्तु के लिए सदैव ऊँची कीमत प्राप्त होगी। इसी प्रकार एक अधिक उपजाऊ भूमि की कीमत कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा अधिक होगी क्योंकि दोनों भिन्न हैं। इस प्रकार रिकार्डो का सिद्धान्त केवल यह बताता है कि एक श्रेष्ठ भूमि का लगान निम्न कोटि की भूमि की अपेक्षा अधिक होगा; यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि लगान क्यों उत्पन्न होता है।[7]

(४) यह सिद्धान्त भी, अन्य क्लासीकल सिद्धान्तों की भाँति, **पूर्ण प्रतियोगिता तथा दीर्घ-काल की अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।**

(५) रिकार्डो के सिद्धान्त में **सीमान्त भूमि अर्थात् लगान-रहित भूमि** (No-rent land) **की मान्यता उचित नहीं है;** व्यावहारिक जीवन में, किसी देश में, शायद ही कोई ऐसी भूमि हो जिस पर लगान न दिया जाता हो।

(६) **रिकार्डो के सिद्धान्त की यह धारणा कि लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता, पूर्णतया सही नहीं है।** आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार कुछ दशाओं में लगान लागत का अंग होता है और कीमत को प्रभावित करता है, जैसे एक व्यक्तिगत कृषक की दृष्टि से समस्त लगान कृषक के लिए लागत है और इसलिए वह कीमत को प्रभावित करता है। (लगान और कीमत के सम्बन्ध के पूर्ण विवरण के लिए इसी अध्याय में आगे देखिए)।

(७) **रिकार्डो के सिद्धान्त की यह धारणा कि लगान केवल भूमि को ही प्राप्त हो सकता है, सही नहीं है।** आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान 'अवसर लागत' (opportunity cost)

---

[7] Briggs and Jordan, *A Text Book Of Economics* (Revised Mackness), p. 267.

के ऊपर बचत (surplus) है। इस दृष्टि से लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक उत्पत्ति का साधन (चाहे वह भूमि हो या श्रम या पूँजी) लगान प्राप्त कर सकता है। अतः लगान के सिद्धान्त का सम्बन्ध केवल भूमि के साथ स्थापित करना उचित नहीं है जैसा कि रिकार्डो ने किया।

निष्कर्ष

रिकार्डो के सिद्धान्त की उपर्युक्त अनेक आलोचनाओं के होते हुए भी यह सिद्धान्त बेकार [illegible] र्थशास्त्र के सिद्धान्त में इसका महत्त्व [illegible] वल भूमि को ही सीमित समझा और [illegible] एक पृथक सिद्धान्त बनाया। परन्तु [illegible] ity of fixity or specificity) केवल भूमि में नहीं बल्कि अन्य सभी साधनों में पाया जाता है। रिकार्डो के सिद्धान्त को आदर प्रदान करने की दृष्टि से आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने 'सीमितता के गुण' के लिए 'भूमि-पक्ष' या 'भूमि-तत्त्व' (land aspect or land element) शब्द का प्रयोग किया। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने बताया कि प्रत्येक साधन में 'भूमि-तत्त्व' होता है और इसलिए प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्रियों के हाथों में लगान-सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त बन गया।

आभास-लगान या अर्द्ध-लगान
(QUASI-RENT)

१. प्राक्कथन (Introductory)

[illegible] मार्शल से पहले अधिकांश अर्थशास्त्री [illegible] पूर्ति पूर्णतया स्थिर होती है अर्थात् [illegible] ी पूर्ति पूर्णतया परिवर्तनशील होती है अर्थात् 'लागत साधन' ('cost factors')।[8] शायद मार्शल प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने यह समझा कि साधनों का एक मध्य वर्ग (intermediate class) भी है अर्थात् ऐसे साधन भी होते हैं जिनकी 'पूर्ति की स्थिरता' ('fixity of supply') केवल अल्पकालीन होती है। दूसरे शब्दों में, मार्शल ने बताया कि 'मनुष्य द्वारा निर्मित मशीनें तथा अन्य यन्त्रों' ('machines and other appliances made by man') की पूर्ति अल्पकाल में स्थिर या बेलोचदार होती है तथा दीर्घकाल में परिवर्तनशील या लोचदार। चूँकि इन पूँजीगत साधनों की पूर्ति, भूमि की भाँति, दीर्घकाल में स्थिर नहीं होती है, इसलिए इनकी आयों को लगान नहीं कहा जा सकता; परन्तु अल्पकाल में इन साधनों की पूर्ति स्थिर होती है, अतः अल्पकाल में इन साधनों की आय 'लगान की भाँति' होती है जिसे मार्शल ने 'आभास-लगान' कहा। इस प्रकार, पूँजीगत वस्तुओं, जिनकी पूर्ति अल्पकाल में

---

[8] रिकार्डो के अनुसार केवल भूमि को ही लगान प्राप्त होता है क्योंकि भूमि प्रकृति द्वारा प्रदत्त निःशुल्क उपहार है (अर्थात् समाज को उसको प्राप्त करने में कोई लागत नहीं उठानी पड़ती है) तथा उसकी पूर्ति पूर्णतया स्थिर है। अतः भूमि तथा अन्य प्राकृतिक साधनों को 'लगान साधन' कहा जाता था। इसके विपरीत अन्य साधन पूर्णतया परिवर्तनशील समझे जाते थे तथा उनको प्राप्त करने में समाज को लागत उठानी पड़ती है, इसलिए ऐसे साधनों को 'लागत साधन' कहा जाता था।

दूसरे, आज के अणु शक्ति (atomic energy and nuclear physics) के युग में भूमि की उर्वरा शक्ति को अविनाशी कहना गलत है। इसके अतिरिक्त लगातार खेती करने से, जलवायु में परिवर्तन तथा कृषि के तरीकों में परिवर्तनों के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति में परिवर्तन होता रहता है। कृषि योग्य भूमियाँ धूल के गोलों (dust bowls) में तथा रेगिस्तान हरी भूमियों (green lands) में परिवर्तित हो जाते हैं।

[रिकार्डो के समर्थकों का कहना है कि भूमि की उर्वरा शक्ति को छोड़कर अन्य शक्तियाँ, जैसे किसी भूमि के टुकड़े से सम्बन्धित सूर्य की रोशनी तथा पानी की मात्रा, अविनाशी होती हैं।]

(२) रिकार्डो द्वारा बताया गया भूमि के जोतने का क्रम सही नहीं है। केरी तथा रोशर (Carey and Rocher) के अनुसार, लोग पहले सबसे अधिक उपजाऊ भूमि, तत्पश्चात् उससे कम उपजाऊ भूमि, फिर उससे कम उपजाऊ भूमि, इत्यादि, क्रम में भूमि को नहीं जोतते। वे सर्वप्रथम उन भूमियों को जोतते हैं जो सबसे अधिक सुविधाजनक होंगी अर्थात् जो शहरों तथा मण्डियों के निकट होंगी।

परन्तु यह आलोचना ठीक नहीं है। (i) वाकर (Walker) के अनुसार, सर्वश्रेष्ठ भूमि (best land) से रिकार्डो का अर्थ ऐसी भूमि से था जो कि उर्वरता तथा स्थिति (fertility and situation) दोनों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हो। (ii) रिकार्डो के सिद्धान्त में भूमि को जोतने का क्रम महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि यह बात महत्त्व की है कि विभिन्न भूमियों की उपज (yield) में अन्तर होना चाहिए।

(३) रिकार्डो का सिद्धान्त लगान उत्पन्न होने के कारण पर उचित प्रकाश नहीं डालता। ब्रिग्स तथा जोरडन (Briggs and Jordon) के अनुसार, रिकार्डो का सिद्धान्त केवल इस सामान्य सत्य को बताता है कि एक अधिक अच्छी वस्तु के लिए सदैव ऊँची कीमत प्राप्त होगी। इसी प्रकार एक अधिक उपजाऊ भूमि की कीमत कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा अधिक होगी क्योंकि दोनों भिन्न हैं। इस प्रकार रिकार्डो का सिद्धान्त केवल यह बताता है कि एक श्रेष्ठ भूमि का लगान निम्न कोटि की भूमि की अपेक्षा अधिक होगा; यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि लगान क्यों उत्पन्न होता है।[1]

(४) यह सिद्धान्त भी, अन्य क्लासीकल सिद्धान्तों की भाँति, **पूर्ण प्रतियोगिता तथा दीर्घकाल की अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।**

(५) रिकार्डो के सिद्धान्त में **सीमान्त भूमि अर्थात् लगान-रहित भूमि (No-rent land) की मान्यता उचित नहीं है।** व्यावहारिक जीवन में, किसी देश में, शायद ही कोई ऐसी भूमि हो [illegible] लगान न दिया जाता हो।

(६) रिकार्डो के सिद्धान्त की **यह धारणा कि लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता, पूर्णतया सही नहीं है।** [illegible] के अनुसार कुछ दशाओं में लगान [illegible]

(७) रिकार्डो के सिद्धान्त की यह धारणा कि लगान केवल भूमि को ही प्राप्त हो सकता [illegible]

[illegible]

एक व्यक्ति की आय (अर्थात् मजदूरी या लाभ) मे एक भाग प्रकृति द्वारा दी गयी योग्यता या गुणों के कारण प्राप्त होता है तथा दूसरा भाग प्रशिक्षण (training) मे पूंजी का विनियोग कर अर्जित योग्यता या गुणों (acquired ability or qualities) के कारण होता है। मार्शल [illegible] 'quired personal qualities) [illegible] सकती है। मार्शल ने बताया कि लाभ मे आभास-लगान का अंश, मजदूरी मे आभास-लगान के अश की अपेक्षा, अधिक होता है।

व्यक्तियो की आयो मे से आभास-लगान तथा लगान के अन्तर को भी मार्शल स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

भूमि की भांति, मनुष्य को प्रकृति द्वारा दी गयी विशिष्ट योग्यता के कारण प्राप्त आय को मार्शल ने 'उत्पादक का अतिरेक' (producer's surplus) या 'अत्यधिक प्राकृतिक योग्यता का लगान' ('rent of extraordinary natural ability) कहा क्योंकि यह आय व्यक्ति को, भूमि की भांति, 'भेदात्मक लाभ' (differential advantage) के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है।

परन्तु एक आलोचना है कि अर्जित गुणो के कारण प्राप्त आय (अर्थात् आभास-लगान) तथा प्राकृतिक गुणों के कारण प्राप्त आय (अर्थात् लगान) को व्यक्ति की कुल आय या मजदूरी मे से कैसे ठीक ठीक ज्ञात किया जाये।

(iii) मार्शल ने लगान, आभास-लगान तथा ब्याज में अन्तर बताते हुये स्पष्ट किया कि इनमे अन्तर केवल मात्रा (degree) का है। सामान्यतया, लगान भूमि से सम्बन्धित होता है, आभास-लगान मनुष्यकृत औजारों तथा मशीनो की अल्पकालीन आय से, तथा ब्याज 'स्वतत्र पूंजी' या 'उधार-देय कोषो' ('free or floating capital' or 'loanable funds') से सम्बन्धित होता है। परन्तु इन तीनों शब्दों मे यह अन्तर केवल एक 'समय-अवधि' ('time-span') अथवा 'समयावधि में लोच' ('elasticity over time') की बात है।

भूमि तथा पूंजी प्रायः मिश्रित रूप मे पाये जाते है क्योंकि भूमि को प्रयोग मे लाने के लिए कुछ न कुछ पूंजी का विनियोग अवश्य किया जाता है। भूमि की पूर्ति अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों मे लगभग पूर्णतया बेलोचदार (inelastic) होती है और इसलिए भूमि के लगान का अस्तित्व अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनो मे रहता है। इसके विपरीत मनुष्य-कृत पूंजीगत वस्तुओं की पूर्ति अल्पकाल मे बेलोचदार तथा दीर्घकाल में लोचदार होती है, अर्थात् आभास-लगान केवल अल्पकाल मे रहता है तथा दीर्घकाल मे समाप्त हो जाता है। 'स्वतन्त्र पूंजी' (free or floating capital) तथा 'पूंजीगत वस्तुएँ या सम्पत्ति' (capital goods or capital assets) एक दूसरे मे परिवर्तित किये जा सकते हैं। स्वतत्र पूंजी स्थिर पूंजीगत सम्पत्ति (मशीन, बिल्डिंग, औजार, इत्यादि) में परिवर्तित होती रहती है तथा स्थिर पूंजी घिसायी-व्यय कोष या अपकर्ष-कोष (depreciation funds) के माध्यम से तथा अन्य रीतियो से स्वतत्र पूंजी मे परिवर्तित होती रहती है। परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि स्वतंत्र पूंजी की पूर्ति को शीघ्रता से बढ़ाया या घटाया जा सकता है जबकि स्थिर पूंजी की पूर्ति को बढ़ाने-घटाने में अधिक समय लगता है; दूसरे शब्दों मे, स्थिर पूंजी की पूर्ति अल्पकाल मे अधिक बेलोचदार होती है जबकि स्वतत्र पूंजी की पूर्ति अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनो में लोचदार होती है।

इस प्रकार लगान, आभास-लगान तथा ब्याज मे अन्तर केवल मात्रा का है; ये सम्पत्ति (property) से प्राप्त आय के विभिन्न रूप है। अत. मार्शल का कथन है: "इस प्रकार हमारा मुख्य सिद्धान्त है कि स्वतन्त्र पूंजी पर ब्याज तथा पूंजी के पुराने विनियोग पर आभास-लगान

बेलोचदार तथा दीर्घकाल में लोचदार होती है, की अल्पकालीन आयों के लिए मार्शल ने आभ
लगान शब्द का प्रयोग किया ।[9]

मार्शल ने यह भी बताया कि असाधारण योग्यता वाले श्रमिकों व साहसियों की आयों में आभास लगान होता है क्योंकि उनकी पूर्ति भी अल्पकाल में सीमित होती है । मार्शल ने यह स्पष्ट किया कि लगान, आभास-लगान तथा ब्याज में अन्तर केवल मात्रा का है[10] और धीरे-धी
वे दूसरे में मिल जाते हैं । दूसरे शब्दों में, आभास लगान के विवेचन द्वारा मार्शल ने लगान
विचार को अधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न किया और उन्होंने कहा कि "भूमि का लगान भी अप
में एक पृथक वस्तु नहीं है बल्कि वह बड़ी जाति (large genus) की एक मुख्य उपजाति (leadi
species) है ।[11]

२. मार्शल का दृष्टिकोण (Marshall's View)

प्रो० फरगुसन (Ferguson) के अनुसार "अस्थायी रूप से स्थिर साधन के प्रतिफल में
अनुरक्षण (maintenance) तथा प्रतिस्थापन (replacement) की लागत को घटा देने से प्राप्
प्रतिफल को मार्शल ने आभास लगान कहकर परिभाषित किया ।[12]

(i) मार्शल ने आभास लगान को मुख्यतया पूंजीगत वस्तुओं की अल्पकालीन आय के लि
प्रयुक्त किया । अतः उपर्युक्त परिभाषा को दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है
"मशीन (अर्थात् पूंजीगत वस्तुओं) की अल्पकालीन आय में से उसको चलाने की अल्पकालीन लागत
को घटाने से जो बचत प्राप्त होती है उसे आभास लगान कहते हैं । आभास लगान यह बताता है
कि मशीन की अल्पकालीन आय उसके चलाने की अल्पकालीन लागत से कितनी अधिक है ; इस
प्रकार आभास लगान अल्पकालीन लागत के ऊपर एक प्रकार की अल्पकालीन बचत है ।"[13]

उदाहरणार्थ, माना कि अल्पकाल में किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग बढ़ जाती है, परिणामस्वरूप मशीन की माँग तथा कीमत में भी वृद्धि हो जायेगी । यदि मशीन पहले १०० रु०
लगान प्राप्त कर रही थी तो अब वह, माना, १३० रु० प्राप्त कर सकेगी । अतः अल्पकाल में
३० रु० की अतिरिक्त आय (surplus income) प्राप्त होती है जिसे मार्शल ने 'आभास
लगान' कहा ।

इस प्रकार, आभास लगान एक अस्थायी आय है जो कि साधन की पूर्ति में अस्थायी कमी के कारण उत्पन्न होती है और दीर्घकाल में समाप्त हो जाती है जैसे ही पूर्ति बढ़ी हुयी माँग के साथ समायोजित (adjust) हो जाती है ।

(ii) मार्शल ने आभास-लगान शब्द के प्रयोग में एकरूपता (consistency) नहीं रक्खी । उन्होंने आभास-लगान को एक दूसरे अर्थ में भी प्रयोग किया । **मार्शल के अनुसार मजदूरी तथा लाभ में भी आभास-लगान का अंश होता है ।**

---

9 "Marshall used the term quasi-rent for the short-run earnings of capital goods whose supply in the short period is inelastic and in the long run elastic.

10 इनके अन्तर को इसी विवेचन के अन्तर्गत आगे स्पष्ट किया गया है ।

11 "... even the rent of land being not a thing by itself, but the leading species of a large genus." इस कथन को आगे पूर्णरूप से स्पष्ट किया गया है ।

12 "Marshall defined quasi-rent as the return to a temporarily fixed input minus the cost of maintenance and replacement."

13 "The short-run earnings of a machine minus the short-run cost of keeping it in running order is called the quasi-rent. It shows by how much the short-run earnings of the machines exceed the short, run cost of maintaining it ; thus, it is a kind of short-run surplus over short-run cost."

[अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए नोट : आभास-लगान के उपर्युक्त अर्थ को एक चित्र द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है जिसको कि इस अध्याय की परिशिष्ट (appendix) में दिया गया है। परिशिष्ट में दिये गये चित्र तथा उसके सम्पूर्ण विवरण के अध्ययन के बाद स्पष्ट होता है कि आधुनिक अर्थशास्त्री आभास-लगान को इन शब्दों में भी व्यक्त करते हैं—"साधन के वे भुगतान जो कि अल्पकाल में आर्थिक लगान (economic rents) तथा दीर्घकाल में हस्तातरण भुगतान (transfer payments) होते है उन्हें आभास-लगान कहा जाता है।" दूसरे शब्दों में, अल्पकाल में आभास-लगान कीमत-द्वारा निर्धारित (price-determined) होते है तथा दीर्घकाल में कीमत-निर्धारक (price-determining) होते है।" जिन विश्वविद्यालयों में डिग्री या आनर्स के स्तर ऊँचे हैं या जहाँ पर ऐसा प्रश्न पूछा गया है (जैसे बिहार के विश्वविद्यालयों में) वहाँ के विद्यार्थियों को परिशिष्ट में दिये गये चित्र तथा विवरण को (संक्षेप में) वहाँ पर देना चाहिए। जिन विश्वविद्यालयो के स्तर ऊँचे नहीं हैं या जहाँ ऐसा प्रश्न नहीं पूछा गया है वहाँ के विद्यार्थियों को चित्र तथा उसके विवरण को लिखने की आवश्यकता नहीं है, वे उसे छोड सकते हैं। इसीलिए चित्र तथा उसके विवरण को परिशिष्ट में दिया गया है ताकि विभिन्न विश्वविद्यालयो की आवश्यकतानुसार उसे लिखा या छोड़ा जा सके। अध्यापकों से निवेदन है कि वे इस सम्बन्ध में विद्यार्थियों की मदद करेंगे।]

(ii) आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आभास-लगान के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण बात है कि *निर्जीव पूँजीगत वस्तुओ की भाँति व्यक्तियों द्वारा भी सुगमता से आभास-लगान प्राप्त किया जा सकता है।* वे व्यक्ति, जो ऐसी योग्यता रखते हैं जिनकी पूर्ति अल्पकाल में सीमित या बेलोचदार अथवा अपूर्णरूप से लोचदार होती है आभास-लगान प्राप्त कर सकते हैं। एक असाधारण योग्यता वाला व्यक्ति, जिसकी पूर्ति अल्पकाल मे बेलोचदार है, आभास-लगान प्राप्त करेगा।

(iii) आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आभास-लगान के सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है। हस्तांतरण आय (अर्थात् अवसर लागत) आभास-लगान के लिए उसी प्रकार महत्त्वपूर्ण है जिस प्रकार लगान के लिए।[18] साधनों (जैसे श्रम तथा मशीन) की अल्पकाल मे भी हस्तातरण आयें (transfer earnings) होंगी। अल्पकाल में हस्तांतरण आय (या अवसर लागत) के ऊपर बचत (surplus) आभास-लगान होगी। व्यक्तियों को कुछ न्यूनतम अवश्य मिलना चाहिए ताकि वे जीवित रह सकें। समस्त अर्थव्यवस्था की दृष्टि से भी श्रम की 'हस्तांतरण आयें' हैं। उसको कुछ न्यूनतम अवश्य मिलना चाहिए नहीं तो वह दूसरे संसार में हस्तांतरित हो जायेगा (अर्थात् मर जायेगा)।[19] अल्पकाल में मशीनों की 'हस्तांतरण आयें' उनकी 'रक्षण लागतें' (maintenance costs) होंगी। भूमि की भाँति पूँजीगत वस्तुएँ (जैसे मशीन) अस्तित्व (existence) में रहेंगी चाहे उनके लिए कुछ दिया जाये या न दिया जाये। परन्तु अल्पकाल में भी उनमें जंग (rust) लग सकती है और वे बेकार हो सकती हैं, अतः उन पर कुछ न्यूनतम निश्चित व्यय करना आवश्यक होगा ताकि वे चालू हालत (running order) में रह सकें अर्थात् उनको चालू में तथा अस्तित्व में रखने के लिए कुछ 'रक्षण-लागतें' होंगी जो कि मशीन की अल्पकाल में 'हस्तांतरण आयें' कही जा सकती हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत उद्योगों तथा समस्त अर्थव्यवस्था दोनों की

---

18 "... transfer earnings will enter into the picture with quasi-rent just as they do with rent."

19 "Human beings must be paid something if they are to be kept alive. Even from the point of view of the whole economy, labour has transfer earnings. It must be paid something or it will transfer to the next world."

दृष्टि से मशीनों की अल्पकालीन आयों में से कुछ रक्षण-लागतें (अर्थात् हस्तांतरण आयें) होंगी; दूसरे शब्दों में, मशीनों की अल्पकालीन आयों में से उनकी रक्षण-लागतों अर्थात् हस्तांतरण आयों (maintenance costs, i. e. transfer earnings) को निकाल देने के बाद जो बचेगा वे आभास-लगान होंगे। अतः **स्टोनियर तथा हेग** (Stonier and Hague) इस दृष्टिकोण का समावेश करते हुये आभास-लगान की परिभाषा इस प्रकार देते हैं : "मशीन का आभास-लगान उसकी कुल अल्पकालीन आयों में से उसके साथ प्रयुक्त किये जाने वाले परिवर्तनशील साधनों की लागतों तथा अल्पकाल में मशीन को चालू हालत में रखने की लागतों को घटा देने से प्राप्त होता है।"[20]

४. लगान तथा आभास-लगान

उपर्युक्त विवरण से 'आभास-लगान' तथा 'आर्थिक लगान' के बीच भ्रम उत्पन्न नहीं होना चाहिए।

लगान अवसर लागत के ऊपर वह अतिरेक (surplus) है जिसका अस्तित्व अनिश्चित समय या लम्बे समय तक बना रहता है। आर्थिक लगान उन साधनों को प्राप्त होता है जिनकी पूर्ति लम्बे समय तक स्थिर या बेलोच रहती है; उनकी आय ऊँची होने पर भी उस प्रकार के साधन नहीं आ पाते हैं, और इसलिए आर्थिक लगान का अस्तित्व बना रहता है। लगान स्वभाव से लगभग स्थायी होता है।[21]

---

20 "The quasi-rent of a machine is its total shortrun receipts less the total costs of hiring the variable factors used with it and of keeping the machine in running order in the short-run."—*Stonier and Hague.*

स्टोनियर तथा हेग द्वारा दी गयी इस परिभाषा को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

Quasi-rent of a machine=[Total Revenue (in the short run)]—[Total Variable cost+Short run maintenance cost of machine

इससे पूर्व (पृष्ठ २८ पर) आधुनिक मत के अन्तर्गत आभास-लगान की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

Quasi-rent=Total Revenue—Total Variable cost

स्टोनियर तथा हेग की परिभाषा तथा इस परिभाषा में एक अन्तर यह प्रतीत होता है कि इस परिभाषा में 'short-run maintenance cost' को नहीं दिखाया गया है। परन्तु बहुत से आधुनिक अर्थशास्त्री, सुविधा के लिए, 'total variable cost' के अन्तर्गत ही 'short-run maintenance cost' को शामिल किया हुआ मान लेते हैं ; इस प्रकार स्टोनियर तथा हेग की परिभाषा में तथा कुछ अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों की परिभाषा (जो कि हमने पृष्ठ २९ पर तथा सुविधा के लिए यहाँ पर ऊपर दी है) में कोई अन्तर नहीं रह जाता। इतना ही नहीं स्टोनियर तथा हेग भी कहीं-कहीं 'short-run maintenance cost' को स्पष्ट रूप से प्रयुक्त नहीं करते बल्कि 'परिवर्तनशील लागत' (prime cost, i. e. variable cost) के अन्तर्गत ही उसे शामिल करते हैं; जैसे, अपनी पुस्तक में पृष्ठ २९५-२९६ पर वे कहते हैं— "Quasi-rent will be earned whenever any factor of production is in fixed short-run supply, and earns something more than prime costs."

A rent is a surplus over opportunity cost that will persist indefinitely or for a long eriod. Economic rent is earned by those factors whose supply is fixed or inelastic in he long period; even if their earnings are high, identical factors are not forth coming, and, therefore, economic rent persists indefinitely or for a long period. Economic rent is more or less permanent in character.

आभास-लगान कुल आगम तथा कुल परिवर्तनशील लागत के बीच अन्तर है जो कि केवल अल्पकाल में रहता है। परन्तु कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आभास-लगान अवसर लागत (या हस्तांतरण भुगतान) के ऊपर अतिरेक है और यही परिभाषा आधुनिक अर्थशास्त्री लगान के लिए भी देते हैं; तो दोनों में क्या अन्तर है? दोनों में अन्तर इस प्रकार है। आभास लगान साधन की पूर्ति में अस्थायी कमी के कारण अल्पकाल में अवसर लागत के ऊपर अतिरेक है और इसलिए इसका अस्तित्व अनिश्चित काल या लम्बे समय तक नहीं रहेगा। आभास-लगान स्वभाव से अस्थायी होता है।

५. निष्कर्ष (Conclusion)

(i) मार्शल का आभास-लगान का विचार रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का भूमि के अतिरिक्त अन्य साधनों के लिए विस्तार मात्र है।[22] पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति अल्पकाल में, भूमि की भाँति, स्थिर होती है, इसलिए उनकी अल्पकालीन आय को मार्शल ने आभास-लगान कहा। मार्शल के अनुसार मजदूरी तथा लाभ में भी आभास-लगान का अंश होता है। यद्यपि मार्शल ने, रिकार्डो की भाँति, लगान शब्द का प्रयोग भूमि के लिए किया परन्तु उन्होंने लगान, आभास-लगान तथा ब्याज में अन्तर बताते हुए स्पष्ट किया कि इनमें अन्तर केवल मात्रा का है। अतः मार्शल का कथन है कि 'भूमि का लगान भी अपने में एक पृथक वस्तु नहीं है बल्कि वह बड़ी जाति (large genus) की मुख्य उपजाति (leading species) है। मार्शल के बाद आभास-लगान की जाति (genus of quasi-rent) का बहुत अधिक विकास हुआ और इसने लगान के आधुनिक सिद्धान्त को जन्म दिया; वास्तव में मार्शल का आभास-लगान का विचार रिकार्डो के लगान सिद्धान्त तथा आधुनिक सिद्धान्त के बीच एक कड़ी का कार्य करता है।

(ii) आधुनिक अर्थशास्त्री आभास-लगान का अर्थ थोड़ा भिन्न लेते हैं। अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आभास-लगान कुल आगम तथा कुल परिवर्तनशील लागत के बीच अन्तर है [illegible] र्थशास्त्रियों [illegible] कीमत द्वारा [illegible] हस्तांतरण [illegible] क (price-determining) होते हैं।][23]

---

22 "Marshall's concept of quasi-rent in an extension of the Ricardian rent theory to inputs other than land"

23 अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए नोट : इस कथन को भली भाँति समझने के लिए इस अध्याय के अन्त में परिशिष्ट में दिये गये चित्र तथा विवरण को पढ़ना तथा समझना होगा। जिन विश्वविद्यालयों में डिग्री (पास या आनर्स) में उच्च स्तर हैं वे परिशिष्ट के चित्र तथा उसके विवरण को (बहुत संक्षेप में) देना पसन्द करेंगे तथा ऐसी स्थिति में उन्हें निष्कर्ष के इस कथन को देना चाहिए। जिन विश्वविद्यालयों में स्तर ऊँचे नहीं है, वहाँ के विद्यार्थियों को परिशिष्ट के चित्र तथा उसके विवरण को लिखने की आवश्यकता नहीं है और इसलिए उन्हें निष्कर्ष के इस कथन को भी छोड़ देना चाहिए। संक्षेप में, विभिन्न विश्वविद्यालयों के स्तर तथा पाठ्यक्रमों के अनुसार निष्कर्ष के इस कथन को लिखा जा सकता है या छोड़ा जा सकता है; इसलिए इस कथन को कोष्ठकों (brackets) में दिया गया है। अध्यापकों से निवेदन है कि वे इस सम्बन्ध में विद्यार्थियों का पथ-प्रदर्शन करेंगे।

दुर्लभता लगान
(SCARCITY RENT)

१. प्राक्कथन (Introductory)

रिकार्डो ने 'भूमि के भेदात्मक गुण' (differential quality) तथा 'भूमि की सीमितता' (scarcity of land) दोनों बातों का अपने सिद्धान्त में समावेश किया। परन्तु रिकार्डो ने इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट रूप से नहीं समझा, उन्हें इन दोनों के सम्बन्ध में भ्रम (confusion) था; रिकार्डो ने भूमि के 'भेदात्मक गुण' पर जोर दिया, न कि भूमि की सीमितता पर। रिकार्डो के अनुसार, लगान एक 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) है—यह श्रेष्ठ भूमियों के उत्पादन तथा निम्न कोटि की भूमियों के उत्पादन में अन्तर है।

२. दुर्लभता लगान का अर्थ तथा उसका निर्धारण (Meaning of Scarcity Rent and Its Determination)

माल्थस (Malthus) तथा कुछ यूरोपीय अर्थशास्त्रियों ने लगान को एक 'दुर्लभता आय' (Scarcity income) की दृष्टि से देखा।

दुर्लभता लगान को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—**दुर्लभता लगान भूमि के प्रयोग के लिए दी गयी कीमत है जबकि भूमि की पूर्ति माँग की तुलना में सीमित होती है। दुर्लभता लगान का सिद्धान्त यह मान लेता है कि भूमि एक रूप तथा सीमित दोनों है।** यदि भूमि बहुलता में (in abundance) या असीमित (unlimited) है (अर्थात् उसकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार है) तो भूमि के प्रयोग के लिए कोई कीमत देने की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा लगान शून्य होता है। माँग में बहुत वृद्धि होने से सब भूमि प्रयोग में आती है और भूमि माँग की तुलना में सीमित रह जाती है। अब भूमि की माँग बढ़ने पर भी उसकी पूर्ति को नहीं बढ़ाया जा सकता है अर्थात् उसकी पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार है और अब भूमि के प्रयोग के लिए कुछ कीमत अर्थात् लगान देना पड़ेगा। किसी देश में सभी भूमियों के एक समान उपजाऊ होने की बात मान लेने पर भी लगान उत्पन्न होगा यदि भूमि की कुल पूर्ति उसकी कुल माँग की अपेक्षा कम है और ऐसी स्थिति में भूमि के स्वामियों को 'दुर्लभता लगान' प्राप्त होगा।

दुर्लभता लगान के सिद्धान्त को **स्टोनियर तथा हेग** (Stonier and Hague) के शब्दों में बहुत अच्छी तरह से व्यक्त किया जा सकता है—"यह (अर्थात् दुर्लभता लगान) एक रूप भूमि की दुर्लभता या सीमितता के कारण उत्पन्न होता है। यह बात विशुद्ध दुर्लभता लगान की मुख्य विशेषता है। अन्य उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में वृद्धि, दीर्घकाल में, प्रायः उनकी पूर्ति में वृद्धि करेगी, परन्तु लगान में वृद्धि भूमि की पूर्ति में वृद्धि नहीं कर सकती। अतः भूमि के प्रयोग के लिए ऊँची आयें दीर्घकाल में भी उपस्थित रह सकती हैं, परन्तु अन्य साधनों के साथ ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि उनकी पूर्ति, बढ़ी हुई माँग के अनुसार, बढ़ जायेगी। भूमि की पूर्ति की स्थिरता वास्तव में एक रूप भूमि तथा उसके दुर्लभता लगान को अन्य उत्पत्ति के साधनों तथा उनकी कीमतों से भेदित करती है। दुर्लभता लगान, हमारे माडल[24] तथा वास्तविक जगत दोनों में, मुख्यतया इस बात का परिणाम है कि भूमि की पूर्ति बेलोचदार है।"[25]

---

[24] हमारे माडल का अर्थ है कि दुर्लभता लगान के सैद्धान्तिक विवेचन में हम यह मान लेते हैं सभी भूमि एक रूप (अर्थात् समान रूप से उपजाऊ) है, परन्तु वास्तविक जगत में सभी भूमि एक रूप नहीं होती।

[25] "It (i.e. scarcity rent) results from the scarcity of homogeneous land. The essential feature of pure scarcity rent is this. Whilst a rise in the prices of other factors of ...

दुर्लभता लगान के निर्धारण को चित्र न० ६ मे दिखाया गया है। चित्र में AB-रेखा भूमि की माँग रेखा है अर्थात् भूमि की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) को बताती है। यदि भूमि बहुलता मे है या असीमित मात्रा मे है तो उसका उस सीमा तक प्रयोग किया जायेगा जहाँ पर सीमान्त उत्पादकता शून्य हो जाती है; चित्र मे ऐसी स्थिति बिन्दु 'B' बताता है अर्थात् भूमि की OB मात्रा प्रयोग की जायेगी। यदि भूमि की मात्रा असीमित नही है अर्थात् वह सीमित है तथा भूमि की केवल OQ मात्रा प्राप्त है तो भूमि की पूर्ति रेखा खड़ी रेखा SQ होगी। AB तथा SQ दोनो P बिन्दु पर काटती हैं, अतः भूमि के प्रयोग के लिए PQ दुर्लभता लगान दिया जायेगा और यह लगान भूमि की सीमान्त उत्पादकता के बराबर है (क्योंकि P बिन्दु AB रेखा पर भी है।)
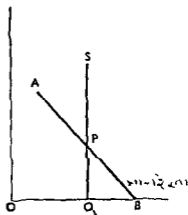
चित्र—६

३. भेदात्मक लगान की तुलना में दुर्लभता लगान की श्रेष्ठता (Superiority of Scarcity Rent over Differential Rent)

(i) रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार सीमान्त भूमि लगान-रहित भूमि (no-rent land) है। परन्तु 'दुर्लभता लगान सिद्धान्त' के अनुसार सीमान्त भूमि भी लगान प्राप्त कर सकती है यदि सीमान्त भूमि की माँग अथवा उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो जाती है।

(ii) रिकार्डो का सिद्धान्त 'भूमि की सीमितता' के स्थान पर 'भूमि के भेदात्मक गुण' पर अधिक बल देता है; रिकार्डो के अनुसार, 'लगान भेदात्मक बचत है जो कि भूमियों की उर्वरता मे अन्तर के कारण प्राप्त होता है। परन्तु 'दुर्लभता लगान सिद्धान्त' के अनुसार, भूमि का लगान उसकी सीमितता के कारण होता है। परन्तु भूमि ही नही बल्कि अन्य साधन भी सीमित हो सकते हैं तथा लगान प्राप्त कर सकते हैं। यही बात आभास लगान तथा लगान का आधुनिक सिद्धान्त बताता है। इस प्रकार 'दुर्लभता लगान सिद्धान्त' आधुनिक लगान सिद्धान्त के बहुत निकट है।

४. 'दुर्लभता लगान' तथा 'भेदात्मक लगान' में अन्तर केवल दृष्टिकोण का है (Distinction between 'Scarcity Rent' and 'Differential Rent' is one of approach only)

एक भूमि द्वारा प्राप्त लगान को हम 'भेदात्मक लगान' तथा 'दुर्लभता लगान' दोनों दृष्टियो मे देख सकते है। एक भूमि के लगान को 'भेदात्मक लगान' की दृष्टि से देखा जा सकता है यदि हम उस भूमि की उपज की तुलना निम्न कोटि की भूमियो या सीमान्त भूमि की उपज से करें।

Stonier and Hague, *A Text Book of Economic Theory*, p. 283

उसी भूमि के लगान को हम 'दुर्लभता लगान' की दृष्टि से देख सकते हैं यदि यह ध्यान में [illegible] लगान इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि उस प्रकार की भूमि की कुल पूर्ति, मांग की [illegible] सीमित है (उस प्रकार की भूमि के सीमित होने पर ही उससे निम्न कोटि की भूमि [illegible] जाती है)। अतः सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि 'भेदात्मक लगान' [illegible] 'दुर्लभता लगान' होता है क्योंकि श्रेष्ठ भूमियों की कुल पूर्ति, उनकी मांग की तुलना में [illegible] होती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'भेदात्मक लगान' तथा 'दुर्लभता लगान' [illegible] केवल दृष्टिकोण (approach) का ही है। अतः मार्शल ने कहा कि "एक अर्थ में सभी [illegible] **दुर्लभता लगान हैं और सभी लगान भेदात्मक लगान हैं।"**[26]

लगान, आभास लगान तथा ब्याज में अन्तर
(DIFFERENCE AMONGST RENT, QUASI-RENT AND INTEREST)

लगान, आभास लगान तथा ब्याज में अन्तर की विवेचना को हम दो भागों में [illegible] करेंगे—(अ) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा मार्शल का दृष्टिकोण तथा (ब) आधुनिक [illegible] का दृष्टिकोण।

(अ) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा मार्शल का दृष्टिकोण (Classical Economists' and Ma[illegible]

(capital goods or capital assets) एक दूसरे में परिवर्तित किये जा सकते है। स्वतन्त्र पूंजी स्थिर पूंजीगत सम्पत्ति (मशीन, बिल्डिंग, औजार इत्यादि) में परिवर्तित होती रहती है; तथा स्थिर पूंजी अपकर्ष-कोष (depreciation funds) के माध्यम से तथा अन्य रीतियो से स्वतन्त्र पूंजी में परिवर्तित होती रहती है।[27]

इस प्रकार लगान, आभास-लगान तथा ब्याज में अन्तर केवल मात्रा का है; वे सम्पत्ति (property) से प्राप्त आय के विभिन्न रूप है। अतः मार्शल का कथन है : "इस प्रकार हमारा मुख्य सिद्धान्त है कि स्वतन्त्र पूंजी पर ब्याज तथा पूंजी के पुराने विनियोग पर आभास-लगान धीरे धीरे एक दूसरे में मिल जाते हैं; यहाँ तक कि भूमि का लगान भी अपने में एक पृथक वस्तु नहीं है, बल्कि यह बड़ी जाति (large genus) की एक मुख्य उपजाति (leading species) है।"

(ब) आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण (Modern Economists' View)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार भी 'स्वतन्त्र या चल पूंजी' के लिए पुरस्कार ब्याज है। परन्तु लगान और आभास-लगान के सम्बन्ध में आधुनिक अर्थशास्त्रियो का दृष्टिकोण, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा मार्शल के दृष्टिकोण से भिन्न है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार लगान केवल भूमि से ही सम्बन्धित नहीं होती बल्कि प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। लगान अवसर लागत के ऊपर वह अतिरेक (surplus) है जिसका अस्तित्व अनिश्चित समय या लम्बे समय तक बना रहता है। आर्थिक लगान उन साधनों को प्राप्त होता है जिनकी पूर्ति लम्बे समय तक स्थिर या बेलोच रहती है।

आभास-लगान कुल आगम (total revenue) तथा कुल परिवर्तनशील लागत (total variable cost) के बीच अन्तर है जो कि केवल अल्पकाल में रहता है।

लगान का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF RENT)

१. प्राक्कथन (Introductory)

रिकार्डो तथा क्लासीकल अर्थशास्त्रियो के अनुसार, केवल भूमि ही लगान प्राप्त कर सकती है। भूमि प्रकृति का उपहार (fixed or limited) होती है। रिकार्डो के अनुसार, इसलिए उन्होंने लगान के एक पृथक सिद्धान्त की आव स्त्रियो के अनुसार, अन्य साधन (श्रम तथा पूंजी), भूमि की भांति, स्थिरता या सीमितता का गुण (quality of fixity or limitedness) अर्थात् 'भूमि-तत्त्व' (land-element) अर्जित (acquire) कर सकते हैं, और इसलिए वे भी लगान प्राप्त कर सकते है। अतः आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, प्रत्येक साधन (चाहे वह भूमि हो या श्रम या पूंजी या साहस) लगान प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त (general theory) है।

२. आधुनिक सिद्धान्त का आधार (Basis of the Modern Theory)

आस्ट्रियन अर्थशास्त्री वोन वीजर (Von Wieser) ने उत्पत्ति के साधनों को दो वर्गों में बांटा—(i) पूर्णतया विशिष्ट साधन (Perfectly Specific Factors); तथा (ii) पूर्णतया अविशिष्ट साधन (Perfectly Non-specific Factors)। 'पूर्णतया विशिष्ट साधन' वे हैं जो कि

[27] इस विषय सामग्री को पहले दिया जा चुका है, केवल विद्यार्थियों की सुविधा के लिए इसे दुबारा लिखा गया है।

केवल एक प्रयोग में ही प्रयुक्त (use) किये जा सकते हैं; अथवा जो पूर्णतया अगतिशील (perfectly immobile) हों। पूर्णतया अविशिष्ट साधन वे हैं जो कि कई प्रयोगों में प्रयुक्त किये जा सकते हैं; अथवा जो पूर्णतया गतिशील (perfectly mobile) हों। विशिष्टता (specificity) के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान रखने की हैं : (i) विशिष्टता एक गुण (quality) है जो किसी समय में कोई भी साधन प्राप्त कर सकता है। जो साधन आज विशिष्ट है वह कल अविशिष्ट हो सकता है। (उदाहरणार्थ, यदि किसी भूमि के टुकड़े में चने के बीज बो दिये जाते हैं तो वह टुकड़ा विशिष्ट होगा; चने की फसल कट जाने पर वह टुकड़ा अविशिष्ट हो जायगा और उसको किसी भी प्रयोग में प्रयुक्त किया जा सकेगा।) (ii) वास्तव में, कोई भी साधन न तो पूर्ण रूप से विशिष्ट होता है और न पूर्ण रूप से अविशिष्ट। एक साधन प्रायः आंशिक रूप से विशिष्ट और आंशिक रूप से अविशिष्ट होता है।

वीजर के उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों (श्रीमती जोन रोबिन्सन, बोल्डिंग, इत्यादि) ने आधुनिक सिद्धान्त का निर्माण किया। **आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान विशिष्टता के लिए भुगतान** (payment) **है या उसका परिणाम** (result) है। आधुनिक अर्थशास्त्री 'विशिष्टता' (specificity) के लिए 'भूमि-तत्त्व' (land-element or land-aspect) शब्द का भी प्रयोग करते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि एक साधन 'भूमि तत्त्व' के कारण लगान प्राप्त करता है। चूंकि प्रायः एक साधन आंशिक रूप से विशिष्ट तथा आंशिक रूप में अविशिष्ट होता है, इसलिए एक साधन के पुरस्कार (remuneration or income) में उस सीमा तक लगान का अंश होता है जिस सीमा तक कि साधन विशिष्ट होता है। यह बात आगे एक उदाहरण की सहायता से स्पष्ट की गयी है।

३. लगान की परिभाषा तथा व्याख्या (Definition of Rent and Its Explanation)

श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, "लगान के विचार का सार वह बचत (surplus) है जोकि एक साधन की इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जोकि साधन को अपने कार्य को करते रहने के लिए आवश्यक है।"[28]

प्रो० बोल्डिग ने भी लगान की ऐसी ही परिभाषा इन शब्दों में दी है—"आर्थिक बचत (अर्थात् लगान) उत्पत्ति के किसी साधन की एक इकाई को वह भुगतान है जो कि कुल पूर्ति मूल्य (supply price) के ऊपर आधिक्य (excess) है अर्थात् साधन को वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम धनराशि के ऊपर आधिक्य है।"[29]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान एक बचत (surplus) है जो किसी भी साधन की इकाई को उसकी न्यूनतम पूर्ति कीमत (minimum supply price) अर्थात् अवसर लागत (opportunity cost)[30] के ऊपर प्राप्त होती है।

---

28 "The essence of the conception of *rent* is the conception of a surplus earned by a particular part of a factor of production over and above the minimum earnings necessary to induce it to do its work."

29 "Part of the remuneration of any factor of production may be an economic surplus, the more traditional name for which is *economic rent*. Economic surplus may be defined as any payment to a factor of production which is in excess of its total supply price, that is, of the minimum amount which is necessary to keep the factor in its present occupation." —Boulding, *Economic Analysis*, Vol. I [illegible]

30 किसी साधन की अवसर लागत वह आय है [illegible] best paid alternative [illegible] मिल सकती है। दूसरे शब्दों में, किसी साधन की [illegible] (minimum earnings) है [illegible]

संक्षेप में,

लगान (Rent)=वास्तविक आय (Actual earnings)—अवसर लागत (Opportunity cost)

उपर्युक्त सूत्र की सहायता से हम किसी साधन की इकाई की आय में से लगान का अंश (element of rent) ज्ञात कर सकते हैं। इस बात को हम निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं :

एक मैनेजर को वर्तमान आय (Present earnings) of a manager)	अवसर लागत (Opportunity cost)	लगान (अर्थात् अवसर लागत के ऊपर बचत) (Rent—Surplus over Opportunity cost)
१,००० रु०	१,००० रु०	(१,०००—१,०००) रु०=०.० रु० —स्थिति—१ (Case I)
	०.० रु०	(१,०००—०.०) रु०=१,००० रु० —स्थिति—२ (Case II)
	७०० रु०	(१,०००—७००) रु०=३०० रु० —स्थिति—३ (Case III)
	१,२०० रु०	? —स्थिति—४ (Case IV)

स्थिति—१ (Case I)—माना कि एक मैनेजर की वर्तमान आय १,००० रु० है। यदि वह वर्तमान व्यवसाय छोड़े तो दूसरे व्यवसाय में भी उसे १,००० रु० प्राप्त हो सकता है, दूसरे शब्दों में, वह 'पूर्णतया अविशिष्ट' है अथवा वर्तमान व्यवसाय के लिए जरा भी विशिष्ट नहीं है। ऐसी स्थिति में साधन (मैनेजर) को अवसर लागत के ऊपर कोई बचत अर्थात् लगान प्राप्त नहीं होता क्योंकि उसकी वर्तमान आय तथा अवसर लागत बराबर है। दूसरे शब्दों में, स्थिति—१ यह दिखाती है कि साधन (मैनेजर) 'पूर्णतया अविशिष्ट' (perfectly non-specific) है इसलिए उसे कोई लगान प्राप्त नहीं होता है। यह एक सिरे (one extreme) की स्थिति है।

स्थिति—२ (Case II)—एक दूसरी स्थिति ऐसी हो सकती है कि यदि मैनेजर अपने वर्तमान रोजगार को छोड़कर किसी दूसरे व्यवसाय में जाना चाहे तो उसे किसी भी दूसरे व्यवसाय में कोई रोजगार प्राप्त न हो अर्थात् साधन (मैनेजर) वर्तमान व्यवसाय के लिए 'पूर्णतया विशिष्ट' (perfectly specific) है। इसका अर्थ है कि साधन की अवसर लागत शून्य है। ऐसी स्थिति में उसकी समस्त वर्तमान आय अवसर लागत के ऊपर बचत अर्थात् लगान होगी। स्पष्ट है कि स्थिति—२ यह बताती है कि साधन 'पूर्णतया विशिष्ट' है और इसलिए उसकी समस्त आय लगान है। यह एक दूसरे सिरे (another extreme) की स्थिति है।

बनाये रखने के लिए आवश्यक है। ध्यान रहे अवसर लागत के लिए प्रायः 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' या 'पूर्ति मूल्य' (minimum supply price or simply supply price) के शब्द का प्रयोग किया जाता है। अवसर लागत के पूर्ण विवरण के लिए इस पुस्तक के चतुर्थ भाग 'वस्तु-मूल्य निर्धारण' (Commodity-Pricing) के अध्याय ६ को देखिए।

स्थिति—३ (Case III)—माना कि मैनेजर को दूसरे प्रयोग में ७०० रु० मिल सकते हैं तो ७०० रु० उसकी अवसर लागत हुई। ऐसी स्थिति में उसको (१,०००—७००) रु०=३०० रु० के बराबर अवसर लागत के ऊपर बचत है और यह लगान है। स्थिति—३ बताती है कि साधन (मैनेजर) आंशिक रूप से 'विशिष्ट' है तथा आंशिक रूप से 'अविशिष्ट' है।

साधन (अर्थात् मैनेजर) जिस सीमा तक दूसरे प्रयोग में माँगा जाता है उस सीमा तक वह विशिष्ट नहीं है अर्थात् वह 'अविशिष्ट' (non-specific) है। उदाहरण में, मैनेजर ७०० रु० तक दूसरे प्रयोग में माँगा जाता है इसलिए ७०० रु० की सीमा तक वह 'अविशिष्ट' है और (१,०००—७००)=३०० रु० की सीमा तक वह 'विशिष्ट' (specific) है और यह ३०० रु० ही लगान है। इससे स्पष्ट होता है कि लगान 'विशिष्टता' (specificity) के लिए भुगतान (payment) है या विशिष्टता का परिणाम (result) है।

स्थिति—४ (Case IV)—माना कि मैनेजर को दूसरे व्यवसाय में १,२०० रु० मिल सकते हैं, तो १,२०० रु० उसकी अवसर लागत कही जायेगी। अतः

लगान=वास्तविक आय—अवसर लागत
=१,००० रु०—१,२०० रु०
=—२०० रु०

परन्तु लगान एक बचत है इसलिए वह ऋणात्मक (negative) **नहीं हो सकता;** अतः यहाँ लगान —२०० रु० नहीं होगा। ऐसी दशा में साधन का लगान क्या होगा? ऐसी स्थिति में हम यह मान लेते हैं कि चूँकि साधन को दूसरे प्रयोग में अधिक मिल सकता है, इसलिए वह वर्तमान प्रयोग को छोड़कर फौरन दूसरे प्रयोग में चला जायेगा। अब इस दूसरे प्रयोग में मिलने वाले १,२०० रु० उसकी वर्तमान आय हो जायेगी तथा पहले प्रयोग की १,००० रु० की आय उसकी अवसर लागत हो जायेगी; इसलिए (१,२००—१,०००)=२०० रु० उसका लगान होगा।

४. लगान के उत्पन्न होने का कारण

हम देख चुके है कि लगान 'विशिष्टता' (specificity) का परिणाम है या 'विशिष्टता' के कारण उत्पन्न होता है; जो साधन 'पूर्णतया अविशिष्ट' होते हैं उन्हें कोई लगान प्राप्त नहीं होता। इसी बात को हम दूसरे प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं। लगान तब उत्पन्न होता है जबकि एक साधन दुर्लभ (scarce) या सीमित होता है। **एक साधन को लगान तब प्राप्य होगा जबकि उसकी पूर्ति सीमित** (limited) **हो अर्थात् बेलोचदार** (inelastic) **हो; दूसरे शब्दों में, जब उसकी पूर्ति 'पूर्णतया लोचदार से कम'** (less than perfectly elastic) **हो।** किसी साधन की पूर्ति 'बेलोचदार' है अर्थात् 'पूर्णतया लोचदार से कम' है, इसका अर्थ है कि वह साधन 'विशिष्ट' है अर्थात् उनमें 'विशिष्टता का अंश' (element of specificity) है। अतः लगान 'विशिष्टता का परिणाम' है या लगान साधन की 'बेलोच पूर्ति का परिणाम' है—ये दोनों एक ही बातें हैं।

'पूर्णतया लोचदार पूर्ति' (perfectly elastic supply) के साधन को कोई लगान प्राप्त नहीं होगा। एक साधन की पूर्णतया लोचदार पूर्ति है, इसका अर्थ है कि एक विशेष कीमत पर साधन की कितनी ही इकाइयाँ (any number of units) प्राप्त हो सकेंगी। इस विशेष कीमत से नीची कीमत पर साधन की किसी भी इकाई की पूर्ति की पूर्ण अनुपस्थिति (complete

absence) होगी। एक साधन 'पूर्णतया लोचदार' (perfectly elastic) है, इसका अर्थ है कि वह साधन 'पूर्णतया अविशिष्ट' (perfectly non-specific) है। 'साधन की पूर्णतया लोचदार पूर्ति' (perfectly elastic supply of a factor) तथा 'पूर्णतया अविशिष्ट साधन' (perfectly non-specific factor) दोनों एक ही बात हैं। अतः ऐसे साधनों की पूर्ति रेखा एक पड़ी-रेखा (horizontal line) होगी जैसा कि चित्र न० १० में LS-रेखा बताती है। ऐसे साधनों को कोई लगान प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में साधन को दी गयी समस्त कीमत 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) है; क्योंकि जो

Y D P L S D O Q X Price Quantity of Factor
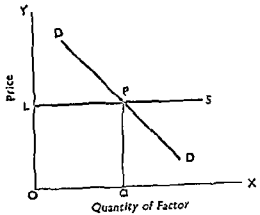
चित्र—१०

भी कीमत साधन को वास्तव में दी जाती है वह इसलिए देनी पड़ती है ताकि साधन दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित (transfer) होने से रोका जा सके। स्पष्ट है कि ऐसे साधनों की समस्त आय, 'हस्तान्तरण आय' अर्थात् 'अवसर लागत' होती है और इसलिए ऐसे साधनों का अवसर लागत के ऊपर कोई बचत नहीं होती और उन्हें कोई लगान प्राप्त नहीं होता। चित्र न० १० में साधन की कुल कीमत=PQ×OQ=OQPL; साधन की यह कुल कीमत (अर्थात् कुल आय) अवसर लागत है और उसे कोई लगान प्राप्त नहीं होता।

चित्र—११
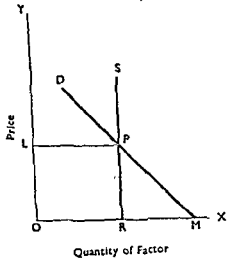
अब दूसरे सिरे (other extreme) की स्थिति को लीजिए। ऐसे साधन को लीजिए जो कि 'पूर्णतया-बेलोचदार' (perfectly inelastic) है, अर्थात् 'पूर्णतया विशिष्ट' (perfectly specific) है, *ऐसे साधनों की पूर्ति स्थिर होती है तथा वे एक ही प्रयोग में प्रयुक्त किये जा सकते* हैं। ऐसे साधनों की पूर्ति-रेखा X-axis पर खड़ी रेखा होती है जैसा कि चित्र न० ११ में SR-रेखा है। चित्र में DM माँग रेखा है। साधन की प्रति इकाई कीमत PR होगी। ऐसे साधन की अवसर लागत शून्य होगी क्योंकि साधन को PR से नीची कीमत देने पर भी वह दूसरे व्यवसाय में नहीं जायेगा; साधन की कुल कीमत=PR×OR=ORPL; साधन की यह कुल कीमत *(अर्थात् कुल आय)* लगान होगी।

यदि साधन (माना श्रम) की पूर्ति 'पूर्णतया लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) है (अर्थात् साधन आंशिक रूप से विशिष्ट है तथा आंशिक रूप से अविशिष्ट है) तो *साधन की समस्त कीमत या आय में से एक भाग लगान होगा। 'पूर्णतया लोचदार से कम पूर्ति'* के साधन की पूर्ति रेखा बायें से दायें को चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र न० १२ में ES रेखा है।

साधन के लिए मांग रेखा DD है। अतः साधन की साम्य कीमत (equilibrium price) अथ
आय PQ होगी और उस कीमत पर साधन की OQ मात्रा प्रयोग में लायी जायेगी। साधन
कुल आय या कुल कीमत $= OQ \times PQ = OQPW$।

चित्र १२ से स्पष्ट है कि OE से कम या OE कीमत पर साधन की कोई भी इकाई का
करने को तत्पर नहीं होगी। साधन की OR मात्रा को प्रयोग में लाने के लिए P_1 (या RA
न्यूनतम कीमत अवश्य देनी होगी अन्यथा साधन क
OR मात्रा उद्योग विशेष में कार्य नहीं करेगी; दूस
शब्दों में, साधन की OR मात्रा की 'हस्तान्तरण आय
या अवसर लागत' P_1 (या RA) है। यदि कीमत P
से बढ़कर P_2 हो जाती है तो साधन की RS अतिरिक्त
इकाइयाँ (additional units) उद्योग में कार्य करने
को तत्पर हो जायेंगी। यदि साधन की कीमत P_2 से
बढ़ाकर P_3 कर दी जाती है तो अब साधन की ST
अतिरिक्त इकाइयाँ उद्योग में कार्य करने को आकर्षित
होंगी। दूसरे शब्दों में, पूर्ति रेखा के विभिन्न बिन्दु
साधन की विभिन्न मात्राओं के लिए उन न्यूनतम कीमतों
को बताते हैं जिन पर कि साधन की तत्सम्बन्धित
मात्राएँ कार्य करने को या उद्योग में बने रहने को
तत्पर हैं। स्पष्ट है कि पूर्ति रेखा के विभिन्न बिन्दु
साधन की सम्बन्धित मात्राओं की 'अवसर लागत' को बताते हैं। अतः साधन की OQ मात्रा की
कुल अवसर लागत = पूर्ति रेखा ES के नीचे का क्षेत्रफल OQPE; साधन की OQ मात्रा की कुल
कीमत $= OQ \times PQ =$ क्षेत्रफल OQPW;

चित्र—१२

इसलिए,

साधन की मात्रा OQ का लगान = साधन की कुल कीमत (या आय)
— साधन की कुल अवसर लागत
$= OQPW - OQPE$
$= EPW$

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, उत्पत्ति का प्रत्येक साधन (भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध या साहस) लगान प्राप्त कर सकता है; साधन की वास्तविक आय में से उसकी अवसर लागत को घटाकर लगान ज्ञात किया जाता है। लगान के उत्पन्न होने का कारण साधन की 'विशिष्टता' है; दूसरे शब्दों में, लगान तब उत्पन्न होता है जबकि साधन की पूर्ति 'बेलोचदार' हो अर्थात् 'पूर्णतया लोचदार से कम' हो। लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त (general theory) है जो कि प्रत्येक साधन पर लागू होता है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त तथा आधुनिक लगान सिद्धान्त की तुलना
(COMPARISON OF RICARDIAN THEORY AND MODERN THEORY)

दोनों सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित हैं। दोनों की तुलना निम्न प्रकार है :

१. लगान का अर्थ

रिकार्डो के अनुसार, लगान भूमि की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के लिए भुगतान है। इससे स्पष्ट है कि रिकार्डो के अनुसार, लगान केवल भूमि को ही प्राप्त होता है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भूमि ही नहीं बल्कि प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है। लगान किसी साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत (surplus) है। इस प्रकार लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है।

रिकार्डो के सिद्धान्त तथा आधुनिक सिद्धान्त दोनों के अनुसार, लगान एक बचत या अतिरेक (surplus) है; परन्तु रिकार्डो के अनुसार, लगान सीमान्त भूमि की लागत पर अर्थात् द्रव्यिक लागत पर बचत है जबकि आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, लगान अवसर लागत पर बचत है।

२. लगान उत्पन्न होने का कारण

रिकार्डो के अनुसार, लगान भूमियों की उर्वरा शक्तियों तथा स्थितियों में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है; श्रेष्ठ भूमियाँ निम्न कोटि की भूमियों या सीमान्त भूमि की तुलना में बचत अर्थात् लगान प्राप्त करती हैं। इस प्रकार रिकार्डो का लगान एक 'भेदात्मक बचत' (differential surplus) है।

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, लगान 'विशिष्टता' (specificity) का परिणाम है; अर्थात् लगान साधन की सीमितता या बेलोच पूर्ति के कारण उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में, किसी साधन को लगान तब प्राप्त होगा जबकि उसकी पूर्ति 'पूर्णतया लोचदार से कम' (less than perfectly elastic) हो।

३. लगान की माप

रिकार्डो के अनुसार, लगान सीमान्त भूमि की लागत की तुलना में मापा जाता है। सीमान्त भूमि 'लगान-रहित भूमि' (No-rent land) होती है क्योंकि बाजार में वस्तु की कीमत इस सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होती है। श्रेष्ठ भूमियों की लागत तथा सीमान्त भूमि की लागत (अर्थात् वस्तु की कीमत) में अन्तर ही लगान की माप है।

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, साधन की वास्तविक कीमत में से उसकी अवसर लागत को घटा देने पर लगान प्राप्त हो जाता है।

४. लगान तथा मूल्य

रिकार्डो के अनुसार लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता। वस्तु का मूल्य सीमान्त भूमि की लागत के बराबर होता है और सीमान्त भूमि पर कोई लगान प्राप्त नहीं होता; स्पष्ट है कि लगान लागत का अंग नहीं होता और इसलिए मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि स्वयं मूल्य से प्रभावित होता है।

परन्तु आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, रिकार्डो का मत सही नहीं है। कई दशाओं में लगान लागत का अंग होता है और मूल्य को प्रभावित करता है, जैसे एक उत्पादक या कृषक के लिए समस्त लगान लागत है और इसलिए लगान मूल्य को प्रभावित करता है।

लगान तथा मूल्य
(RENT AND PRICE)

लगान मूल्य को प्रभावित करता है या मूल्य लगान को प्रभावित करता है, अर्थात् लगान तथा मूल्य में क्या सम्बन्ध है? इस सम्बन्ध में दो मत हैं—(अ) रिकार्डो का मत; तथा (ब) आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण। इन दोनों मतों का विवेचन निम्न प्रकार है :

(अ) रिकार्डो का मत (Ricardo's View)

(ii) **एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से (From the point of view of individual producer)**—एक व्यक्तिगत उत्पादक एक कृषक (cultivator) हो सकता है या एक फर्म। एक उत्पादक जो कीमत भूमि, श्रम, पूंजी, इत्यादि साधनों को अपने व्यवसाय में प्रयोग में लाने के लिए देता है (और यह कीमत एक प्रकार से लगान है जोकि साधन अपनी सीमितता (scarcity) के कारण प्राप्त करते है) वह कीमत उसके लिए लागत है जिसे वह वस्तु की कीमत में से निकालना चाहेगा। यदि उत्पादक साधनों को बाजार मूल्य नही देता, जिनमें कि इन साधनों का लगान शामिल होता है, तो उसको इन साधनों की सेवाएँ प्राप्त नहीं हो पायेंगी क्योकि वे साधन दूसरे प्रयोगो में हस्तान्तरण (transfer) हो जायेंगे। अत एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से लगान लागत का अग होता है और मूल्य को प्रभावित करता है।[32]

[परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने की वात है कि यदि उत्पादक या फर्म को प्रयोग में लाये जाने वाले सभी साधनों की लागत के ऊपर कोई अतिरिक्त लाभ (excess profit) प्राप्त होता है तो वह लाभ फर्म के स्वय के लिए लगान है। इस प्रकार के अतिरिक्त लाभ (अर्थात् फर्म को प्राप्य लगान) फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्यो को निर्धारित नही करते, बल्कि वे इन मूल्यों के परिणाम होते हैं।][33]

(iii) **एक उद्योग की दृष्टि से (From the point of view of an industry)**—भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को लगान कहा जा सकता है। भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को हम दो भागो में बाँट सकते है—(i) हस्तान्तरण आय अर्थात् अवसर लागत, तथा (ii) अवसर लागत के ऊपर आधिक्य (surplus)। उत्पादकों को भूमि को उद्योग में बनाये रखने के लिए एक न्यूनतम कीमत (अर्थात् अवसर लागत) देनी पड़ेगी नहीं तो वह भूमि दूसरे प्रयोग में हस्तान्तरित हो जायेगी, अर्थात् उद्योग के लिए भूमि की अवसर लागत या हस्तान्तरण आय लागत का अंग होगी, परन्तु अवसर लागत के ऊपर आधिक्य या वचत (जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री लगान कहते है) लागत का अग नही होगी। स्पष्ट है कि एक उद्योग की दृष्टि से भूमि के लिए दिये गये कुल भुगतान में से वह भाग जोकि अवसर लागत (या हस्तान्तरण आय) है लागत का अग है और मूल्य को प्रभावित करता है, परन्तु वह भाग जो कि अवसर लागत के ऊपर आधिक्य है लागत का अग नहीं होता और इसलिए मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि स्वयं मूल्य से प्रभावित होता है।[34] दूसरे शब्दों में, एक उद्योग की दृष्टि से भूमि की आय (अर्थात् लगान)

---

32 . labour, capital
... factors because
Unless it pays
firm will not be
...ate. Since these
...hey also help to
determine the prices of the products produced by the firm.

33 It should be noted, however, that any excess profit earned by the firm over and above the cost of all the factors of production which it uses is an economic rent to the firm itself. Such excess profits do not help determine the prices at which the firm sells its products, but instead, they result from these prices.

34 माना एक उद्योग में एक भूमि के टुकड़े को १०० रुपये का भुगतान मिलता है तथा भूमि की अवसर लागत ७० रुपये है। भूमि की कुल आय १०० रुपये में ७० रुपये लागत का अंग है जो कि मूल्य को प्रभावित करता है, तथा शेष (१००—७०)=३० रुपये अवसर लागत के ऊपर आधिक्य या बचत है जोकि मूल्य को प्रभावित नहीं करता।

आंशिक रूप से 'मूल्य-निर्धारक' (price-determining) तथा आंशिक रूप से 'मूल्य-द्वारा-निर्धारित' (price-determined) होती है।

मजदूरी, व्याज तथा लाभ में लगान तत्व
(RENT ELEMENT IN WAGES, INTEREST AND PROFIT)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के हाथ में लगान सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त (general theory) वन जाता है। दूसरे शब्दों में लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नहीं होता वल्कि उत्पत्ति के अन्य साधन भी लगान अर्जित कर सकते हैं। एक साधन को वर्तमान प्रयोग में वनाये रखने के लिए एक न्यूनतम भुगतान देना होगा जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री साधन का 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' (minimum supply price) या उसकी 'अवसर लागत' (opportunity cost) कहते हैं। इस 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' या 'अवसर लागत' के ऊपर आधिक्य (surplus or excess) लगान होता है और इस दृष्टि से प्रत्येक साधन की आय में से लगान तत्व को ज्ञात किया जा सकता है।

(१) मजदूरी में लगान तत्व :

किसी देश (जैसे अमेरिका) में श्रमिकों की अपेक्षाकृत कमी मजदूरी को उस दर से पर्याप्त ऊँचा कर देती है जिस पर कि श्रमिक अव भी कार्य करने को तत्पर होंगे; दूसरे शब्दों में, श्रमिकों को उनके 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' अर्थात् अवसर लागत (minimum supply price, i.e. opportunity cost) से अधिक प्राप्त होता है और उनकी मजदूरी में यह आधिक्य (surplus) ही लगान है। इसका कारण है कि श्रमिकों की पूर्ति वेलोचदार (inelastic) है अथवा श्रमिकों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार नहीं है।

प्रवन्ध सम्बन्धी श्रम (managerial labour) या उच्च कोटि के कुशल श्रमिकों के वेतन या मजदूरी में भी लगान तत्व होता है। एक कुशल मैनेजर को वर्तमान व्यवसाय में ५००० रु० प्रति माह मिलते हैं जवकि किसी दूसरे व्यवसाय में उसको ४००० रु० ही प्राप्त हो सकते हैं, इस वर्तमान व्यवसाय में उसे अपनी अवसर लागत के ऊपर १००० रु० अधिक प्राप्त होते हैं और यह आधिक्य उसके वर्तमान वेतन ५००० रु० में लगान तत्व है। इसी प्रकार एक कुशल हाकी (Hockey) के खिलाड़ी को हाकी खेलने से ३००० रु० प्रति माह प्राप्त होते हैं जवकि किसी दूसरे कार्य में उसको केवल १००० रु० मिल सकते हैं, अतः २००० रु० का आधिक्य इस खिलाड़ी की मजदूरी में लगान तत्व है। अतः **सेम्युलसन** (Samuelson) के शब्दों में, "अत्यधिक कुशल व्यक्तियों की ऊँची आयों में से अधिकांश को शुद्ध आर्थिक लगान कहा जा सकता है।"[35]

(२) व्याज में लगान तत्व

वचत-कर्त्ता जो कि अपनी वचतों को प्रत्यक्ष रूप से या वैंकिंग प्रणाली द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरों को उधार देते हैं वे एक व्याज की दर प्राप्त करते हैं जो कि आंशिक रूप से वचतों की कमी की सूचक होती है। व्याज का वह आधिक्य, जो कि उस व्याज दर से अधिक है जिस पर एक वचत-कर्त्ता अपनी वचतों को उधार देने के लिए ठीक तत्पर होता है, वास्तव में आर्थिक लगान है। यह इस कारण उत्पन्न होता है क्योंकि वचतों की पूर्ति व्याज दर के उत्तर में अपेक्षाकृत वेलोचदार होती है।[36]

---

35 "Most of the high earnings of outstanding individuals can probably be classified as 'pure economic rent'."

36 "Savers who lend their savings to others either directly or through the banking system will receive a rate of interest which reflects in part the scarcity of savings. Any interest return in excess of the rate which would have just induced a saver to lend his savings is in effect an economic rent. It results because the supply of savings is relatively inelastic with respect to the interest rate."

सरल शब्दों में, एक न्यूनतम ब्याज दर (माना ४%) पर एक बचत-कर्ता अपनी बचत को उधार देने को तत्पर है, परन्तु बाजार में यदि उसे इस न्यूनतम ब्याज दर से अधिक ब्याज दर (माना ७%) प्राप्त होती है तो ब्याज दर का यह आधिक्य (अर्थात ३%) लगान तत्व होगा।

(३) लाभ में लगान तत्व

कुछ साहसियों की संगठन तथा सौदा करने की योग्यता (organising and bargaining ability) अन्य साहसियों से बहुत अधिक होती है और परिणामस्वरूप ये अधिक योग्य साहसी, अन्य साहसियों की तुलना में 'अधिक अतिरिक्त लाभ' (excess profit) प्राप्त करते हैं जो कि लगान कहा जा सकता है। कभी-कभी इसे 'योग्यता का लगान' (rent of ability) भी कहा जाता है।

लगान के आधुनिक सिद्धान्त की दृष्टि से लाभ में लगान के तत्व को इस प्रकार से व्यक्त किया

[illegible]

वास्तविक मूल्य (worth) से कम भुगतानों पर प्राप्त कर सकने की साहसी की योग्यता के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है उस भुगतान को बताता है जो कि साहसी के कार्य के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। इस मात्रा से अधिक लाभ आर्थिक लगान है जो कि साधन-साहसी अपेक्षाकृत सीमितता या कमी के कारण प्राप्त करता है।[37]

लगान तथा लाभ
(RENT AND PROFIT)

लाभ अनिश्चितता झेलने (uncertainty bearing) का पुरस्कार है। विस्तृत रूप में, लाभ कुल आगम (या औसत आगम) तथा कुल लागत (या औसत लागत) में अन्तर है, इस अन्तर का स्रोत (source) कुछ भी हो सकता है। यदि लाभ ऋणात्मक है तो हम उन्हें हानि कहते हैं। किसी समय पर एक फर्म के लाभों में विभिन्न बातें शामिल हो सकती है. जैसे, आभास-लगान, आकस्मिक उच्चावचनों (random fluctuations) के कारण आगमों (revenues) तथा लागतों (costs) में अन्तर, एकाधिकारी लाभ, तथा साधनों से हड़पे हुए लगान। एक पर्याप्त लम्बे समय के अन्तर्गत इनमें से बहुत सी बातें एक दूसरे को नष्ट कर देती हैं या उनमें स्वयं अपने आप संशोधन (corrections) हो जाते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि लाभ एक विस्तृत शब्द है और लगान उसका एक अंग हो सकता है।

लाभ तथा लगान में मुख्य अन्तर इस प्रकार हैं :

(१) लाभ अनिश्चितता झेलने (uncertainty bearing) का पुरस्कार है जबकि लगान किसी साधन की सीमितता (scarcity or shortage) का परिणाम है अर्थात् लगान तब उत्पन्न होता है जबकि साधन की पूर्ति 'बेलोचदार' (inelastic) है या 'पूर्ण लोचदार से कम' (less than perfectly-elastic) है। दूसरे शब्दों में, लाभ तथा लगान में एक आधारभूत भेद उनके

---

37 [illegible]

factors of production for payments which are less than the true worth of these factors to the firm, represent a payment which is necessary to call forth the existing level of entrepreneurial activity. Profits in excess of this amount are an economic rent which the entrepreneurial factor of production is able to earn by virtue of its relative scarcity."

'उत्पन्न होने के कारण या स्रोत में अन्तर' में निहित है। शुद्ध लाभ (pure profit) एक उत्प
के साधन की सीमितता या कमी के परिणामस्वरूप उत्पन्न नहीं होगा, जबकि आर्थिक लग
सीमितता के कारण उत्पन्न होता है। लाभ अनिश्चितता झेलने के कारण उत्पन्न होता है।[38]

लाभ के उत्पन्न होने के मुख्य कारण या स्रोत निम्नांकित हो सकते हैं :

(i) किसी उद्योग में कुछ फर्मों को दीर्घकाल में इसलिए लाभ प्राप्त हो सकता है क्यों
उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रुकावटें हैं अर्थात् उद्योग में स्थित फर्मों के साह
बाहरी प्रतियोगिता से सुरक्षित (protected) हैं। ये साहसी 'कानूनी रुकावटों' (legal barrier
जैसे, लाइसेन्स, पेटेन्ट अधिकार इत्यादि, द्वारा सुरक्षित हो सकते हैं, अथवा वे बाहरी साहसियों
पक्ष पर 'ज्ञान की कमी'[39] के कारण सुरक्षित हो सकते हैं; अथवा वे 'प्लॉट तथा प्रक्रियाओं की अ
भाज्यताओं'[40] (indivisibilities of plant and processes) के परिणामस्वरूप सुरक्षित हो सक
हैं। संक्षेप में, कानूनी तथा संस्थात्मक रुकावटें (legal and institutional barriers), 'ज्ञान क
कमी' (lack of knowledge), तथा 'संगठन, मशीन, यन्त्र या प्रक्रियाओं में अविभाज्यता
(indivisibilities in organisation, machines, equipment or processes) वर्तमान फ
के लिए एक प्रकार से 'एकाधिकारी शक्ति' (monopoly power) या 'एकाधिकारी तत्व' (mono
poly element) की भाँति कार्य करते हैं और इन कारणों से प्राप्त लाभों को आधुनिक अर्थशास्त्र
'एकाधिकारी लाभ' (monopoly profit) अथवा 'आर्थिक लगान' (economic rent) कहते है
'विशुद्ध लाभ' (pure profit)[41] नहीं।

(ii) लाभ का एक दूसरा कारण है कि साहसी 'भविष्य में अनिश्चितता' के सम्बन्ध मे
विभिन्न दृष्टिकोण रखते हैं, वे भविष्य के बारे में समान रूप से अनिश्चितता का अनुभव नहीं करते
कुछ साहसी भविष्य की अनिश्चितता का अधिक सही अनुमान लगा सकते हैं और इस कारण
लाभ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अनिश्चितता के कारण उत्पन्न लाभ को 'विशुद्ध लाभ' कहा जाता
है, आर्थिक लगान नहीं। एक साहसी को ये 'विशुद्ध लाभ' इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि वह एक
ऐसे उद्योग में कार्य कर रहा है जिसमें अन्य साहसी अनिश्चितता के कारण प्रवेश नहीं कर पाते
हैं। इस प्रकार विशुद्ध लाभ अनिश्चितता के पुरस्कार हैं।[42]

---

38 The fundamental difference between profit and rent lies in the difference between the cause or source of their emergence. A pure profit will not arise from the shortage or scarcity of a factor of production, while an economic rent does. Profit emerges as a result of uncertainty-bearing.

39 Lack of 'knowledge about plant lay-out or productive processes which the present firm possesses.'

40 उत्पत्ति के साधन जैसे संगठन, मशीन, यन्त्र, प्रक्रियायें (processes) इत्यादि अविभाज्य (indivisible) होते हैं अर्थात् छोटे पैमाने पर उनका भली भाँति प्रयोग नहीं हो पाता है। बड़े पैमाने के उत्पादन में कुशल मैनेजर, बड़ी मशीनों, यन्त्रों इत्यादि का पूर्ण-पूर्ण प्रयोग सम्भव होता है और परिणामस्वरूप बड़ी फर्मों को बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं तथा उनकी औसत लागतें बहुत कम हो जाती हैं; परिणामस्वरूप उद्योग विशेष में नयी फर्में प्रवेश नहीं कर पातीं। संक्षेप में, नयी फर्मों का प्रवेश 'अविभाज्यताओं' (indivisibilities) के कारण रुक जाता है।

यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि लाभ में से लगान-तत्व को कैसे मालूम किया जाये, या लाभ तथा लगान को कैसे पृथक् किया जाये। ऊपर हम देख चुके है कि लगान तथा लाभ का अन्तर उनके उत्पन्न होने के कारण में निहित है। अतः, यदि हम लाभ तथा लगान को पृथक (isolate) करना चाहते हैं, तो "एक उचित कसौटी (criterion) यह है कि लाभों के 'कारण' ('cause') को एक व्यक्ति (या फर्म) से दूसरे को हस्तान्तरित किया जा सकता है या नहीं।"[43] लाइसेन्स, पेटेन्ट इत्यादि लाभ के 'कारण' हो सकते है, इन 'कारणों' को एक फर्म बाजार में बेच सकती है (अर्थात ये 'कारण' एक फर्म से दूसरी फर्म को हस्तान्तरित किये जा सकते हैं), जिस कीमत पर ये कारण बेचे जा सकते हैं वह (कीमत) आर्थिक लगान को बतायेगी।[44] यदि लाभ के 'कारण' को खरीदा या बेचा नहीं जा सकता तो ऐसी स्थिति में जो लाभ होता है उसे 'विशुद्ध लाभ' कहेंगे।[45] दूसरे शब्दों में, यदि एक फर्म 'अनिश्चितता' के परिणामस्वरूप 'लाभ' अर्थात 'विशुद्ध लाभ' प्राप्त करती है और यदि ऐसी फर्म बेची जाती है तो कीमत में 'विशुद्ध लाभों' की मात्रा व्यक्त नहीं होगी क्योंकि क्रय-कीमत क्रेता के अनिश्चित भविष्य के मूल्यांकन (assessment) पर निर्भर करेगी।[46]

(२) कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लाभ तथा लगान में अन्तर इस बात में निहित है कि हम उनको किस दृष्टिकोण से देखते हैं। लाभ एक फर्म को प्राप्त होता है और यह द्रव्य की वह मात्रा है जिसे कि फर्म अधिकतम करने का प्रयत्न करती है; जबकि फर्म के लिए पूर्ति किये जाने वाले किसी साधन के मालिक को फर्म द्वारा दिया गया भुगतान लगान है।[47] इस बात को इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं। कम लागत वाले उत्पादक शुद्ध लाभ प्राप्त करते हुए दिखायी देते हैं। सम्भावित (potential) उत्पादक इस पर ध्यान देते हैं और सीमित साधनों को ऊँची कीमत देकर प्रयोग में लाते हैं। अतः सीमित साधनों के मालिक उत्पादकों से औसत लागत के ऊपर समस्त आधिक्य को खींच लेने में सफल या समर्थ हो जाते हैं। तब यह आधिक्य लगान हो जाता है जो कि एक साहसी द्वारा सीमित साधनों के प्रयोग के लिए दिया जाता है।[48]

परन्तु यहाँ पर एक बात ध्यान रखने की है कि फर्म को जो लाभ प्राप्त होते है उनमें से भाग 'अस्पष्ट लगान' या 'सन्निहित लगान' ('implicit rent') हो सकता है; 'सन्निहित

...criterion is wheather ... (or firm) to another."
...ther use, the profits ... ing use per period)

... part of the profits

...s a result of uncer- ...ice that was paid for it, for the purchase price would depend on the buyer's assessment of the uncertain future."

...cts, an ...e) mag- ...rienta- ...er of a

...oducers ...ners of ... above ... use of

लगान' वह लगान है जो कि साहसी को अपने व्यवसाय में अपने स्वयं के साधनों ('se employed' or 'self-used' resources) पर प्राप्त होता है। अल्पकाल में साहसी को स्वयं साधनों पर उनकी अवसर लागत से अधिक प्राप्त हो सकता है और यह आधिक्य 'सन्निहित लगा होंगे। अन्य साहसी इन 'सन्निहित लगानों' की प्राप्ति से इस क्षेत्र में आने को आकर्षित हो परिणामस्वरूप दीर्घकाल में प्रतियोगिता के कारण साहसी के स्वयं के साधनों की कीमत ठीक अव लागत के बराबर होगी और 'सन्निहित लगान' समाप्त हो जायेंगे। परन्तु एकाधिकार के अन्त स्वयं-के-साधनों (self-used resources) को दीर्घकाल में भी उनकी अवसर लागत से अधि प्राप्त हो सकता है। अतः एक एकाधिकारी फर्म स्वयं-के-साधनों के मालिकों के लिए दीर्घकाल लगान की एक स्रोत (source) है।[49]

(३) लाभ तथा लगान में अन्तर के उपर्युक्त दो दृष्टिकोणों के अतिरिक्त उनमें कुछ **सामा अन्तर** (general differences) भी हैं। (i) लाभ ऋणात्मक (negative) भी हो सकते हैं औ ऋणात्मक लाभों को हानि कहा जाता है, जबकि लगान ऋणात्मक नहीं हो सकते। (ii) लगा (तथा अन्य पुरस्कारों) की तुलना में लाभ में उतार-चढ़ाव (fluctuations) अधिक होते हैं। तेज (boom) में लाभ, लगान (तथा अन्य पुरस्कारों) की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ते हैं, तथा मन्द (depression) में बहुत तेजी से गिरते हैं। (iii) लाभ एक 'बची हुयी आय' (residua income) होती है जबकि लगान (तथा अन्य पुरस्कार) अनुबन्धनीय तथा निश्चित भुगता (contractual and certain payments) होते हैं। लाभ की मात्रा इस बात पर निर्भर करत है कि भविष्य में उत्पादित वस्तु की बिक्री कैसी है।

क्या लगान उत्पन्न होगा यदि भूमि के सभी टुकड़े एक समान उपजाऊ हैं तथा स्थिति की दृष्टि से भी एक समान अच्छे हैं ?

(WILL THE RENT ARISE IF ALL THE PLOTS OF LAND ARE EQUALLY FERTILE AND EQUALLY FAVOURABLY SITUATED)

लगान उत्पादन की लागत के ऊपर बचत है। रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार लगान सीमान्त भूमि (marginal land), अथवा श्रम तथा पूँजी की सीमान्त मात्रा (marginal dose), की लागत के ऊपर बचत है; जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय' (opportunity cost or transfer earning) के ऊपर बचत है। यदि भूमि के सभी टुकड़े एक समान उपजाऊ हैं तथा स्थिति की दृष्टि से सभी एक समान अच्छे हैं तो भी लगान उत्पन्न होगा जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है।

(i) लगान गहरी खेती के अन्तर्गत उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशील होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होगा। भूमि से उत्पादित वस्तु का मूल्य श्रम तथा पूँजी की 'सीमान्त मात्रा' (marginal dose) की लागत के बराबर होगा। परन्तु उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशील होने के कारण श्रम तथा पूँजी की पहले की मात्राएँ अर्थात् 'पूर्व-सीमान्त मात्राएँ' (intra-marginal doses) 'सीमान्त मात्रा' से अधिक उत्पादन देती हैं। इस प्रकार भूमिपति को 'पूर्व-सीमान्त मात्राओं' पर, 'सीमान्त मात्रा' की तुलना में, बचत प्राप्त होती है जो कि लगान है।

(ii) 'दुर्लभता लगान' (scarcity rent) उत्पन्न हो सकता है। भूमि के सभी टुकड़ों के समान उपजाऊ तथा स्थिति की दृष्टि से एक समान अच्छे होने पर भी लगान उत्पन्न होगा यदि भूमि की कुल पूर्ति उसकी कुल माँग की तुलना में सीमित है।

---

49 "Under monopoly, however, self employed resources can command a price in excess of opportunity cost even in the long run. A monopolistic firm is a source of long run rent for owners of self employed resources."

(iii) भूमि अनेक प्रयोगों में लायी जा सकती है। माना कि एक भूमि के टुकड़े पर चने का उत्पादन किया जाता है तो उस भूमि के टुकड़े को 'अवसर लागत' (या 'हस्तांतरण आय') के ऊपर कोई 'आधिक्य' (surplus) अर्थात् लगान प्राप्त नहीं होता। माना कि भूमिपति उस टुकड़े पर गेहूँ का उत्पादन करता है तो उस टुकड़े की अवसर लागत पर उसे २० रु० का आधिक्य प्राप्त होता है जो कि लगान है। स्पष्ट है कि भूमिपति उस भूमि के टुकड़े को गेहूँ के उत्पादन में लगायेगा। यदि एक काश्तकार (cultivator) उस भूमि के टुकड़े पर चने का उत्पादन करना चाहता है तो उसे, चाहे भूमि की उर्वरता (fertility) या स्थिति कुछ भी हो, भूमिपति को 'अवसर-लागत+२० रु०' अवश्य देना होगा नहीं तो वह भूमि दूसरे प्रयोग (अर्थात् गेहूँ के उत्पादन) में हस्तान्तरित हो जायेगी; २० रु० का आधिक्य भूमिपति के लिए लगान है। स्पष्ट है कि यह लगान 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय' पर आधारित है और यह भूमि के एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में 'हस्तान्तरण की सीमा' ('margin of transference') पर उत्पन्न होता है।

आर्थिक उन्नति तथा लगान
(ECONOMIC PROGRESS AND RENT)

एक भूमि के टुकड़े का लगान इस भूमि की उत्पादन-लागत तथा सीमान्त भूमि की उत्पादन-लागत का अन्तर होता है। आर्थिक उन्नति खेती के सीमान्त (margin of cultivation) को प्रभावित करके लगान को प्रभावित करती है। विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक उन्नति लगान को निम्न प्रकार से प्रभावित करती है :

(१) कृषि में उन्नति—कृषि में उन्नति का अर्थ है कि कृषि-क्षेत्र में नयी उत्पादन-रीतियों, नवीनतम यन्त्रों और मशीनों, उन्नत बीज, खाद, इत्यादि का प्रयोग करके उत्पादकता को बढ़ाना।

[illegible]

उत्पादकता में अन्तर बढ़ जायेगा अर्थात् लगान बढ़ जायेगा।

(iii) यदि कृषि-उन्नति केवल निम्न कोटि की भूमियों को प्रभावित करती है तो इन भूमियों की उत्पादकता बढ़ेगी। परिणामस्वरूप, श्रेष्ठ भूमियों की उत्पादकता तथा सीमान्त भूमियों की उत्पादकता में अन्तर कम हो जायेगा अर्थात् लगान कम हो जायेगा।

(२) यातायात में सुधार—(i) यातायात में सुधार के कारण वह लगान कम हो जायेगा जो कि भूमियों को उनकी स्थितियों में अन्तर होने के कारण प्राप्त होता है।

(ii) यदि यातायात में सुधार के कारण देश विशेष में कृषि उपज का आयात बढ़ जाता है तो पूर्ति में वृद्धि के कारण देश में कृषि-उपज का मूल्य घट जायेगा, मूल्य घट जाने से खेती की सीमा पीछे को खिसक जायेगी (अर्थात् पूर्व-सीमान्त भूमियाँ, अब सीमान्त भूमियाँ हो जायेंगी) और इसलिए आयात करने वाले देश में लगान कम हो जायेगा।

(iii) यातायात में सुधार के कारण जिस देश से कृषि-उपज का निर्यात होता उस देश में उपज का मूल्य बढ़ जायेगा; मूल्य बढ़ने से खेती की सीमा आगे को खिसक जायेगी (अर्थात् जो

भूमियाँ सीमान्त भूमियाँ थीं वे अब 'पूर्व-सीमान्त भूमियाँ' हो जायेंगी तथा नयी भूमियाँ भूमियाँ बन जायेंगी) और परिणामस्वरूप निर्यात करने वाले देश में लगान बढ़ जायेगा।

(३) **जीवन-स्तर में वृद्धि**—आर्थिक विकास के कारण देश में आय का स्तर ऊँचा। आय में वृद्धि के कारण खाद्यान्न तथा अन्य कृषि उपज की कुल माँग में वृद्धि होगी, खेती की सीमा आगे को खिसकेगी तथा लगान में वृद्धि होगी।

(४) **जनसंख्या में वृद्धि**—जनसंख्या में वृद्धि के कारण कृषि उपज की माँग माँग में वृद्धि के कारण वर्तमान भूमियों पर अधिक गहराई से खेती की जायेगी तथा निम्न नयी भूमियाँ भी जोत में लायी जायेंगी अर्थात् खेती की सीमा आगे को खिसकेगी और लगान में वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त जनसंख्या में वृद्धि के कारण शहरों का विस्तार अकृषि-कार्यों (non-agricultural uses) में भूमि का प्रयोग किया जायेगा, इससे भूमि की कमी पड़ेगी तथा भूमि के लगान बढ़ेंगे।

अध्याय २ की परिशिष्ट :
[APPENDIX TO CHAPTER 2]

आभास-लगान के आधुनिक दृष्टिकोण का चित्र द्वारा निरूपण
(DIAGRAMATICAL REPRESENTATION OF THE MODERN VERSION OF QUASI-RENT)

आभास-लगान को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।
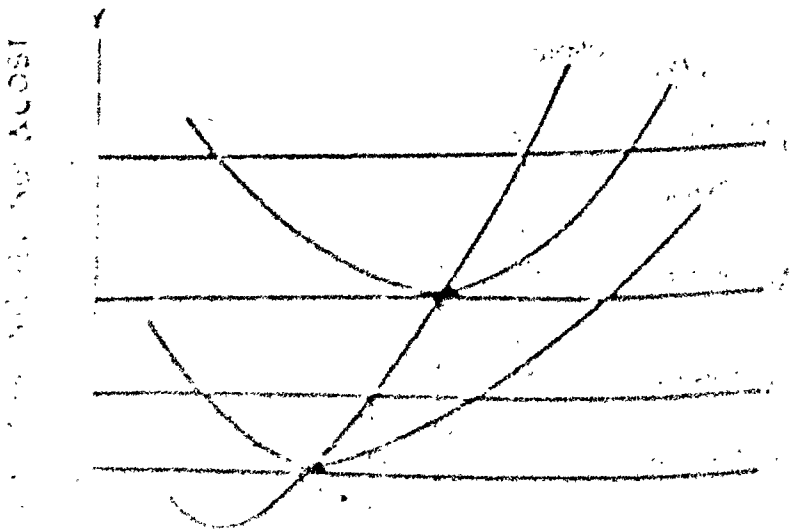
चित्र में SRAC (Short-run average cost) अल्पकालीन औसत लागत रेखा है; SRAVC (Short-run average variable cost) अल्पकालीन औसत परिवर्तनशील लागत रेखा है; तथा SRMC (Short-run marginal cost) अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखा है। उद्योग क्षेत्र में कुल मांग तथा कुल पूर्ति द्वारा वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है, माना कि वह P_1 है। उद्योग में प्रत्येक फर्म इस मूल्य P_1 को दिया हुआ मान लेगी अर्थात फर्म के लिए कीमत रेखा (या AR-रेखा) P_1M होगी। इस दशा में फर्म OB मात्रा का उत्पादन करेगी क्योंकि इस मात्रा पर उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होगा, इसका कारण है कि बिन्दु A पर लाभ को अधिकतम करने की दशा $\overline{MR = MC}$ पूरी हो रही है।

जब कीमत P_1 (या AB) है, तो—

प्रति इकाई आभास-लगान (Quasi-rent per unit)

$= $ औसत आगम (AR)—औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)

$= AB - BK$

$= AK$

कुल आभास लगान (Total Quasi-rent)[50]

$= $ प्रति इकाई आभास-लगान $\times$ कुल उत्पादन

$= AK \times OB$

$= AK \times LK (\because OB = LK)$

$= AKLP_1$

चित्र से स्पष्ट है कि प्रति इकाई आभास-लगान AK के दो भाग हैं: स्थिर लागत (प्रति इकाई) GK[51] तथा लाभ (प्रति इकाई) AG; दूसरे शब्दों में, यहां पर आभास-लगान स्थिर लागत से अधिक है।

यदि कीमत P_2 (या CD) है तो,

प्रति इकाई आभास लगान $=$ औसत आगम (AR) $-$ औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)

$= CD - VD$

$= VC$

कुल आभास लगान $= VC \times RV$ (or OD)

$= RVC\ P_2$

कुल आभास लगान को इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं:

कुल आभास लगान $=$ कुल आगम (Total Revenue)

—कुल परिवर्तनशील लागत (Total variable cost)

$= OBAP_1 - OBKL$

$= AKLP_1$

ध्यान रहे कि,

$$AC = AFC + AVC$$

$$\text{or } AC - AVC = AFC$$

अत: AC तथा AVC का अन्तर AFC होता है; चित्र से स्पष्ट है कि OB उत्पादन पर AC तथा AVC के बीच अन्तर खड़ी दूरी GK औसत स्थिर लागत अथवा स्थिर लागत प्रति इकाई (AFC) को बताती है।

चित्र से स्पष्ट है कि इस स्थिति में प्रति इकाई आभास लगान VC तथा प्रति इकाई स्थिर लागत (अर्थात् औसत स्थिर लागत) दोनों बराबर हैं; दूसरे शब्दों में, यहाँ पर आभास लगान **स्थिर लागत के बराबर है।**

यदि कीमत P_3 है तो,

प्रति इकाई आभास-लगान $= ET$

कुल आभास लगान $= ET \times ST$ (or OF)

$= STEP_3$

चित्र से स्पष्ट है कि इस स्थिति में प्रति इकाई आभास-लगान ET कम है SRAC तथा SRAVC के बीच खड़ी दूरी से, अर्थात ET कम है औसत स्थिर लागत (AFC) से; इस प्रकार **यहाँ पर आभास-लगान स्थिर लागत से कम है।**

यदि मूल्य (अर्थात् AR) औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से कम हैं अर्थात् चित्र में मूल्य P_4 (या HJ) से कम है तो फर्म अल्पकाल में उत्पादन बन्द कर देगी (परिणामस्वरूप विन्दु H 'बन्द होने का विन्दु' shut-down point कहा जाता है) और, इस मान्यता के आधार पर, यह ध्यान देने की बात है कि आभास-लगान कभी ऋणात्मक (negative) नहीं हो सकते,[52] कम से कम वे शून्य (zero) हो सकते हैं जैसा कि चित्र में विन्दु H पर है क्योंकि इस विन्दु पर AR तथा AVC बराबर हैं।

अतः हम सामान्यीकरण (generalisation) कर सकते हैं कि **आभास-लगान स्थिर लागत से अधिक, कम या उसके बराबर हो सकता है।** जब आभास-लगान स्थिर लागत से अधिक होता है तो फर्म लाभ प्राप्त करती है। यदि आभास-लगान स्थिर लागत से कम होता है तो फर्म को हानि होती है। यदि आभास-लगान स्थिर लागत के बराबर होता है तो फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है अर्थात् फर्म को 'विनियोग पर सामान्य प्रतिफल' ('normal return on investment') प्राप्त होता है।

आभास-लगान के सम्बन्ध में, कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, एक महत्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है कि पूंजीगत यंत्र (जैसे मशीन) का अल्पकाल में आभास-लगान दीर्घकाल में 'अवसर लागत' या 'हस्तान्तरण आय' (transfer earnings) होता है। दीर्घकाल में वस्तु की कीमत इतनी होनी चाहिए कि स्थिर लागत भी (परिवर्तनशील लागत के अतिरिक्त) निकल आए, यदि स्थिर लागत नहीं निकलती है तो मशीन इत्यादि साधन वर्तमान प्रयोग में काम नहीं करेंगे वे दूसरे प्रयोग में हस्तांतरित (transfer) हो जायेंगे; अतः पूंजीगत यंत्र की अल्पकाल में स्थिर

---

52 प्रो० फ्लक्स (Flux) के अनुसार, अल्पकाल में सम्पत्ति (property) से प्राप्त समस्त आय आभास-लगान नहीं होती बल्कि आभास-लगान तो केवल सामान्य प्रतिफल (normal return) अर्थात् सामान्य लाभ के ऊपर अतिरेक (surplus) होता है। यदि आय सामान्य प्रतिफल से कम है तो प्रो० फ्लक्स इसे 'ऋणात्मक आभास-लगान' (negative quasi-rent) कहते हैं। परन्तु प्रो० फ्लक्स के विचार आधुनिक अर्थशास्त्रियों को मान्य नहीं हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूंजीगत वस्तु या किसी साधन की समस्त अल्पकालीन आय जो कि [illegible] और आय के ऊपर अतिरेक है आभास-लगान है चाहे वह 'सामान्य प्रतिफल' से अधिक हो या कम। इसके अतिरिक्त आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आभास-लगान कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकते क्योंकि यदि कीमत (अर्थात् AR) औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से कम होती है तो फर्म अल्पकाल में भी उत्पादन को बन्द कर देगी।

लागत दीर्घकाल की दृष्टि से 'हस्तान्तरण आय' या 'अवसर लागत' कही जा सकती है। अल्पकाल में आभास-लगान (अर्थात् परिवर्तनशील लागत के ऊपर बचत) स्थिर लागत से अधिक या कम हो सकता है, परन्तु दीर्घकाल में आभास-लगान स्थिर लागत (अर्थात् अवसर लागत) के बराबर होगा। यदि दीर्घकाल में आभास-लगान (अर्थात् परिवर्तनशील लागत के ऊपर अतिरेक) स्थिर लागत से कम है तो उत्पादन बन्द हो जायेगा और पूँजीगत साधन (जैसे मशीन, यंत्र इत्यादि) दूसरे प्रयोग में हस्तांतरित हो जायेंगे। इसके विपरीत यदि दीर्घकाल में आभास-लगान (अर्थात् परिवर्तनशील लागत के ऊपर अतिरेक) स्थिर लागत से अधिक है तो फर्म को अतिरिक्त लाभ (excess profits) प्राप्त होंगे; परिणामस्वरूप उद्योग में नयी फर्में प्रवेश करेंगी, पूर्ति बढ़ेगी, कीमत घटेगी और आभास-लगान जो कि स्थिर लागत से अधिक थे गिरकर ठीक स्थिर लागत के बराबर हो जायेंगे। फर्म को केवल 'सामान्य लाभ' (या 'विनियोग पर सामान्य प्रतिफल') प्राप्त होंगे। संक्षेप में, आभास-लगान दीर्घकाल में स्थिर लागत अर्थात् अवसर लागत के बराबर होंगे और इस प्रकार आभास-लगान, जो कि अल्पकाल में एक प्रकार के अतिरेक (surplus) होते हैं, दीर्घकाल में वे 'अवसर लागत' (या 'हस्तान्तरण आय') होते हैं और इस प्रकार लागत का अंग होते है तथा वस्तु के मूल्य को निर्धारित करते हैं।

प्रो० लिप्से (Prof. Lipsey) आभास लगान को इन शब्दों में व्यक्त करते है—"साधनों के वे भुगतान जो कि अल्पकाल में आर्थिक लगान तथा दीर्घकाल में हस्तान्तरण भुगतान होते हैं आभास लगान कहे जाते हैं।"[53]

उपर्युक्त विवरण को दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं—अल्पकाल में आभास-लगान एक प्रकार की बचत (surplus) होते हैं तथा कीमत द्वारा निर्धारित (price-determined) होते हैं और दीर्घकाल में वे लागत का अंग (आभास लगान के केवल उस भाग को छोड़कर जो कि औसत लागत से अधिक होते हैं) होते हैं और कीमत-निर्धारक (price-determining) होते हैं।[54]

3

व्याज
[INTEREST]

व्याज का अर्थ तथा स्वभाव
(MEANING AND NATURE OF INTEREST)

व्याज की परिभाषा (Definition of Interest)

व्याज पूंजी या ऋण (loan) या ऋण-योग्य कोषों (loanable funds) के प्रयोग के लिए पुरस्कार है। इसी को अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न शब्दों में व्यक्त किया है। मार्शल के अनुसार, "व्याज किसी वाजार में पूंजी के प्रयोग की कीमत है।" मेयर्स (Meyers) के अनुसार, "व्याज वह कीमत है जो कि ऋण योग्य कोषों के प्रयोग के लिए दी जाती है।" कॅज (Keynes) व्याज को विशुद्ध मौद्रिक बात मानते हैं और व्याज को तरलता के त्याग का पुरस्कार (reward for parting with liquidity) कहते हैं। उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि व्याज द्रव्य या पूंजी से सम्बन्धित है।

शुद्ध व्याज तथा कुल व्याज (Net Interest and Gross Interest)

अर्थशास्त्री 'शुद्ध व्याज' और 'कुल व्याज' में अन्तर करते हैं। 'शुद्ध व्याज' वह है जोकि केवल पूंजी के प्रयोग के लिए दिया जाता है।

एक ऋणी (borrower) द्वारा पूंजी या ऋण के प्रयोग के लिए ऋणदाता (lender) को जो भुगतान दिया जाता है उसे 'कुल व्याज' कहते हैं। 'शुद्ध व्याज' कुल व्याज का एक अंग है। 'कुल व्याज' के निम्न अंग (constituents) होते हैं :

(i) **शुद्ध व्याज** (Net interest)—केवल पूंजी या ऋण के लिए पुरस्कार ही शुद्ध व्याज है।

(ii) **जोखिम के लिए भुगतान या पुरस्कार** (Payment or reward for risk)—एक ऋणदाता को ऋण देने में कुछ जोखिमें उठानी पड़ती हैं, उसे इन जोखिमों के लिए भुगतान मिलना चाहिए। जोखिम दो प्रकार की होती हैं—(अ) **व्यावसायिक जोखिम** (trade risk); जब ऋणदाता एक व्यापारी को ऋण देता है तो उसे इस बात की जोखिम रहती है कि उसको मूलधन तथा व्याज प्राप्त होगा या नहीं, व्यापारी को हानि होने पर ऋणदाता केवल व्याज ही नहीं बल्कि अपने मूलधन को भी खो सकता है। (ब) **व्यक्तिगत जोखिम** (personal risk); यदि ऋण लेने वाला व्यक्ति बेईमान हो जाता है तो ऋणदाता को व्याज या मूलधन या दोनों के न मिलने की जोखिम रहती है।

अतः एक ऋणदाता को उपर्युक्त जोखिमों के लिए भुगतान या पुरस्कार मिलना चाहिए।

(iii) **असुविधाओं के लिए भुगतान** (Payment for inconveniences)—ऋणदाता को ऋण देने में कुछ असुविधाओं को भी उठाना पड़ता है। यह सम्भव है कि आवश्यकता के समय,

ऋणदाता को अपना ऋण वापस न हो, इससे उसको असुविधा होगी और अत्यधिक आवश्यकता की दशा में उसे स्वयं दूसरों से उधार लेना पड़ेगा। इस प्रकार की असुविधाओं के लिए एक ऋणदाता पुरस्कार चाहेगा।

(iv) प्रबन्ध के लिए भुगतान (Payment for management)—ऋणदाता को ऋणों के लेन-देन के सम्बन्ध में प्रबन्ध पर कुछ व्यय करना पड़ता है, जैसे—प्रत्येक ऋणी का हिसाब-किताब रखना, ऋण-वसूली के लिए तकाजा करना, ऋण समय पर न मिलने पर कानूनी कार्यवाही करना इत्यादि। इन सब प्रबन्ध कार्यों के लिए ऋणदाता को भुगतान मिलना चाहिए।

ब्याज के स्वभाव के सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने की है—किसी भी अन्य साधन के पुरस्कार (reward or earning) की भाँति, ब्याज एक कीमत तथा आय का साधन दोनों है। ब्याज पूँजी या ऋण या ऋण-योग्य कोषों के प्रयोग की कीमत है। मनुष्य पूँजी का विनियोग आय प्राप्त करने के लिए करता है और यह आय ही ब्याज है।

ब्याज निर्धारण के सिद्धान्त
(THEORIES OF INTEREST)

ब्याज का निर्धारण किस प्रकार होता है? इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद रहा है और इसीलिए ब्याज निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्त हैं: कुछ सिद्धान्त ब्याज निर्धारण में वास्तविक तत्त्वों (real factors) पर जोर देते हैं, और कुछ सिद्धान्त मौद्रिक तत्त्वों (monetary factors) पर बल देते हैं।

ब्याज निर्धारण के सिद्धान्त ये हैं—(i) ब्याज का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त, (ii) ब्याज का प्रतीक्षा या त्याग का सिद्धान्त, (iii) एजियो या आस्ट्रियन ब्याज का सिद्धान्त, (iv) फिशर का समय पसन्दगी सिद्धान्त, (v) ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त, (vi) ब्याज का नया क्लासीकल सिद्धान्त या उधार देय कोषों का सिद्धान्त, तथा (vii) कींज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त।

ब्याज के उपर्युक्त सिद्धान्तों में से अन्तिम दो सिद्धान्त अर्थात् नया क्लासीकल सिद्धान्त (जोकि क्लासीकल सिद्धान्त का सुधरा हुआ रूप है) तथा तरलता पसन्दगी सिद्धान्त मुख्य हैं; अतः इन सिद्धान्तों की हम विस्तृत विवेचना करेंगे तथा अन्य सिद्धान्तों को संक्षेप में बतलायेंगे। वास्तव में, ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त 'नया क्लासीकल सिद्धान्त' तथा 'तरलता पसन्दगी सिद्धान्त' दोनों का समन्वय या मिश्रण (synthesis) है।

ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF INTEREST)

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज पूँजी की सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है। उत्पादक या साहसी पूँजी की माँग करते हैं क्योंकि पूँजी में उत्पादकता होती है अर्थात् पूँजी की सहायता से वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

पूँजी पर, अन्य साधनों की भाँति, उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। पूँजी की अधिक इकाइयों के प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। दीर्घकाल में ब्याज की दर की प्रवृत्ति पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की होती है। यदि ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से अधिक है, तो पूँजी की कम मात्रा का प्रयोग किया जायेगा, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ेगी और बढ़कर वह ब्याज की दर के बराबर हो जायेगी। यदि ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से कम है, तो पूँजी की अधिक माँग की जायेगी, पूँजी के अधिक

प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरेगी और अन्त में वह ब्याज की दर के बराबर हो जायेगी। स्पष्ट है कि दीर्घकाल में ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है।

आलोचना—इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त एक पक्षीय (one-sided) है क्योंकि यह केवल पूँजी की माँग पर विचार करता है और पूँजी की पूर्ति की उपेक्षा (ignore) करता है। ब्याज के निर्धारण में पूँजी की माँग तथा पूर्ति दोनों का प्रभाव होता है।

(२) इस सिद्धान्त की माँग पक्ष की विवेचना भी अधूरी है। इस सिद्धान्त के अनुसार, पूँजी की माँग केवल उत्पादकों द्वारा ही की जाती है; परन्तु पूँजी की माँग उपभोक्ताओं द्वारा भी की जाती है जिसे इस सिद्धान्त ने छोड़ दिया।

(३) वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनाएँ इस सिद्धान्त पर भी लागू होती हैं।

ब्याज का त्याग या प्रतीक्षा का सिद्धान्त

वर्तमान वस्तुएँ, भविष्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखती हैं; दूसरे शब्दों में, वर्तमान वस्तुओं पर भविष्य की वस्तुओं की तुलना में, एक प्रकार का प्रीमियम या एजियो (premium or agio) होता है। लोगों के लिए वस्तुओं से वर्तमान सन्तुष्टि, भविष्य में सन्तुष्टि की अपेक्षा, अधिक होती है। यदि व्यक्ति अपनी पूँजी को उधार देते हैं तो उन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण वर्तमान सन्तुष्टि का त्याग करना पड़ेगा, अतः लोग तभी उधार देंगे जब उन्हें वर्तमान सन्तुष्टि के त्याग के लिए कुछ पुरस्कार मिले। इस प्रकार, ब्याज वर्तमान सन्तुष्टि के त्याग का पुरस्कार है।

लोग वर्तमान सन्तुष्टि को, भविष्य में सन्तुष्टि की अपेक्षा, क्यों अधिक महत्त्व, एजियो या प्रीमियम देते हैं? इसके लिए बाम बावर्क (Bohm Bawerk) ने तीन कारण बताये— (i) भविष्य अनिश्चित होता है। यह कहना कठिन है कि भविष्य में क्या होगा, अतः धन या पूँजी से भविष्य में मिलने वाली सन्तुष्टि के बारे में लोग अनिश्चित होते हैं। (ii) मनुष्य अपनी वर्तमान आवश्यकताओं को, भविष्य की आवश्यकता की अपेक्षा, अधिक तीव्रता से अनुभव करता है। (iii) वर्तमान वस्तुओं को, भविष्य की वस्तुओं की अपेक्षा, एक प्रकार की तकनीकी श्रेष्ठता (technical superiority) प्राप्त होती है। इसका कारण इस प्रकार है : पूँजी उत्पादन की चक्करदार रीतियों (round about methods) के प्रयोग को सम्भव बनाता है, परिणामस्वरूप भविष्य में वस्तुओं का अधिक उत्पादन होगा और उपयोगिता ह्रास नियम के कारण, उनकी उपयोगिता कम हो जायेगी। इस प्रकार वर्तमान वस्तुएँ, भविष्य की वस्तुओं की अपेक्षा में, अधिक उपयोगी हैं।

आलोचना—इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचना है कि यह एक-पक्षीय है क्योंकि यह केवल पूँजी की पूर्ति पर ही ध्यान देता है।

फिशर का समय-पसन्दगी ब्याज सिद्धान्त
(FISHER'S TIME-PREFERENCE THEORY OF INTEREST)

फिशर का समय-पसन्दगी ब्याज सिद्धान्त बाम बावर्क के एजियो सिद्धान्त (Agio Theory) पर ही आधारित है; फिशर ने समय-पसन्दगी पर बल दिया। फिशर तथा बाम बावर्क के सिद्धान्तों में मुख्य अन्तर इस प्रकार है : बाम बावर्क ने भविष्य की वस्तुओं की तुलना में वर्तमान वस्तुओं की तकनीकी श्रेष्ठता पर अधिक बल दिया; परन्तु फिशर इसे स्वीकार नहीं करते हैं, फिशर के अनुसार यह कहना कि लोग वर्तमान आनन्द या सन्तुष्टि (present enjoyment or satisfaction) को भविष्य के आनन्द या सन्तुष्टि की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं, पर्याप्त है। यदि लोग बचत करते हैं तो उन्हें वर्तमान आनन्द या सन्तुष्टि का त्याग करना पड़ेगा जो भविष्य की अपेक्षा अधिक होगा; ऐसा करने के लिए उन्हें कुछ पुरस्कार या ब्याज चाहिए। अतः ब्याज समय-पसन्दगी (time-preference) की क्षतिपूर्ति (compensation) है; लोगों की जितनी वर्तमान सन्तुष्टि के लिए समय-पसन्दगी अधिक होगी उतनी ही ब्याज की दर ऊँची होगी, यदि वर्तमान सन्तुष्टि के लिए समय-पसन्दगी कम है तो ब्याज की दर कम होगी।

फिशर के अनुसार, लोग अपनी आय को वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति पर व्यय करने के लिए आतुर (impatient) रहते हैं। यह आतुरता अर्थात् समय-पसन्दगी निम्न तत्त्वों पर निर्भर करती है—

(ii) आय का समयावधि में वितरण (Distribution of income over time)—वर्तमान तथा भविष्य के बीच आय वितरण पर भी समय-पसन्दगी निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में तीन दशाएँ सम्भव हैं—(अ) यदि किसी व्यक्ति की आय जीवन भर एक समान रहती है तो समय-पसन्दगी या वर्तमान में व्यय करने की आतुरता की मात्रा व्यक्ति के स्वभाव तथा आय के आकार पर निर्भर करेगी। (ब) यदि भविष्य में व्यक्ति की आय उसकी उम्र के साथ घटती है तो उसकी समय-पसन्दगी या वर्तमान में व्यय करने की आतुरता कम होगी। (स) यदि भविष्य में व्यक्ति की आय उसकी उम्र के साथ बढ़ती है तो उसकी समय-पसन्दगी या वर्तमान में व्यय करने की आतुरता अधिक होगी।

(iii) भविष्य में आय-प्राप्ति या आय-प्रयोग की निश्चितता (Certainty about the receipt of income or the use of income in future)—यदि व्यक्ति को भविष्य में अपनी आय-प्राप्ति अर्थात् अपनी आय के प्रयोग के सम्बन्ध में निश्चितता है तो उसकी समय-पसन्दगी अधिक होगी।

(iv) व्यक्तियों का स्वभाव (Nature of individuals)—एक दूरदर्शी व्यक्ति भविष्य पर उचित ध्यान देगा और इसलिए उसकी समय-पसन्दगी कम होगी; इसके विपरीत जो व्यक्ति अदूरदर्शी है तथा भविष्य के बारे में लापरवाह है उसके लिए समय-पसन्दगी अधिक होगी।

आलोचना—फिशर के समय-पसन्दगी सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं:

(i) यह सिद्धान्त दो मान्यताओं पर आधारित है जोकि उचित नहीं हैं। प्रथम, फिशर ने वर्तमान तथा भविष्य के बीच द्रव्य की क्रय शक्ति को समान मान लिया; परन्तु वास्तविक जगत में दो समयों के बीच द्रव्य की क्रय शक्ति स्थिर नहीं रहती, प्रायः उसमें परिवर्तन हो जाता है। दूसरे, इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी अवास्तविक है, कि बचत करने वाले व्यक्तियों की निजी परिस्थितियाँ तथा उनके स्वभाव वर्तमान तथा भविष्य के बीच समान रहते हैं।

(ii) यह सिद्धान्त एकपक्षीय (one-sided) है क्योंकि यह केवल पूँजी के पूर्ति पक्ष पर ध्यान देता है और माँग पक्ष को छोड़ देता है।

ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त
(CLASSICAL THEORY OF INTEREST)

मार्शल, पीगू, वालरस (Walras), नाइट (Knight) इत्यादि अर्थशास्त्री ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त के प्रतिपादक (propounders) हैं। यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि ब्याज के निर्धारण में द्रव्य कोई प्रत्यक्ष पार्ट अदा नहीं करता है। यह सिद्धान्त ब्याज के निर्धारण में 'उत्पादकता' (productivity) तथा 'मितव्ययिता' (thrift) जैसे वास्तविक तत्त्वों पर जोर देता है, इसलिए इस सिद्धान्त को 'ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त' (Real Theory of Interest) भी कहते हैं।

'पूँजीगत वस्तुओं में विनियोग के लिए बचतों की माँग' (Demand for saving to invest in capital goods) तथा 'बचतों की पूर्ति' (supply of savings) द्वारा ब्याज का निर्धारण होता है। दूसरे शब्दों में, 'पूँजी की माँग' तथा 'पूँजी की पूर्ति' द्वारा ब्याज का निर्धारण होता है; जहाँ पर माँग तथा पूर्ति बराबर हो जाती हैं वहाँ पर ब्याज की दर निश्चित हो जाती है।

पूँजी की माँग (Demand of Capital)

उत्पादक वर्ग द्वारा पूँजी की माँग की जाती है। दूसरे शब्दों में, बचतों की माँग इसलिए करते हैं जिससे वे पूँजीगत वस्तुएँ खरीद सकें। पूँजीगत वस्तुओं की माँग इसलिए की जाती है

क्योंकि उनसे उपभोग-वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है; अर्थात् पूंजी की मांग उसकी उत्पादकता के कारण की जाती है। परन्तु परिवर्तनशील अनुपातों के नियम (Law of Variable Proportions, i e, Law of Diminishing Returns) के क्रियाशील होने के कारण, किसी अन्य साधन की भाँति, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) घटती जाती है यदि उसकी अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है। अन्य साधनों की तुलना में, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध में एक जटिलता (complexity) होती है। एक पूंजीगत वस्तु कई वर्षों तक प्रयोग में लायी जाती है। इसलिए एक उत्पादक या साहसी को पूंजीगत वस्तु को चालू रखने की लागत (maintenance cost) को निकालकर उसकी 'अनुमानित वास्तविक उत्पादकता' (expected net productivity) को ध्यान में रखना पड़ता है।

पूंजी की अधिक इकाइयों के प्रयोग से उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरती जाती है। पूंजीगत वस्तुओं के खरीदने के लिए एक उत्पादक बचतों की मांग करता है, बचतों के प्रयोग के लिए उसे कुछ न कुछ पुरस्कार अर्थात् ब्याज देनी पड़ेगी। इसलिए एक उत्पादक पूंजी को उस बिन्दु तक प्रयोग करेगा जहाँ पर उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरकर ठीक ब्याज की दर के बराबर हो जाती है।

यदि ब्याज की दर नीची है तो पूंजी की अधिक मात्रा माँगी जायेगी; इसके विपरीत ब्याज की ऊँची दर होने पर उत्पादक पूंजी की कम मात्रा माँगेंगे। स्पष्ट है कि पूंजी की मांग तथा ब्याज की दर में उलटा सम्बन्ध होता है, और इसलिए पूंजी की मांग-रेखा बायें से दायें को नीचे को गिरती हुई होगी जैसा कि चित्र नं० १ में DD-रेखा बताती है।
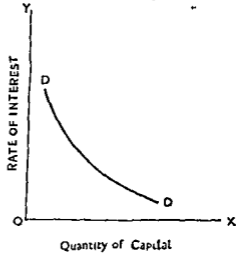
चित्र—१

यहाँ पर एक बात और ध्यान रखने की है। चूंकि बचतों की मांग पूंजीगत वस्तुओं में विनियोग के लिए की जाती है, इसलिए 'पूंजी की मांग रेखा' को 'विनियोजन मांग रेखा' (Investment Demand Curve) भी कहते हैं।

पूंजी की पूर्ति (Supply of Capital)

पूंजी की पूर्ति समाज में बचत पर निर्भर करती है अर्थात् व्यक्तियों, फर्मों तथा सरकार की बचतों पर निर्भर करती है। बचतें त्याग या प्रतीक्षा का परिणाम हैं। जब लोग अपनी वर्तमान आय में से बचत करते हैं तो उन्हें वर्तमान उपभोग को कम करना पड़ता है और इस प्रकार वे त्याग करते हैं तथा वे भविष्य में अपनी बचतों के आनन्द के लिए प्रतीक्षा करते हैं। परन्तु लोग वर्तमान उपभोग को अधिक पसन्द करते हैं अपेक्षाकृत भविष्य के; इसलिए, सामान्यतया, वे तब तक बचत नहीं करेंगे जब तक कि उन्हें 'त्याग तथा प्रतीक्षा' के लिए कुछ पुरस्कार न दिया जाय। यह पुरस्कार ही ब्याज है। अतः ब्याज प्रतीक्षा के लिए दी जाती है।

सामान्यतया, यदि व्याज की दर ऊँची है तो लोग अधिक बचत करेंगे; इसके विपरीत यदि व्याज की दर नीची है तो वे कम बचत करेंगे। दूसरे शब्दों में, व्याज की दर तथा बचतों में सीधा सम्बन्ध होता है, और इसलिए पूंजी की पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी जैसा कि चित्र नं० २ में SS रेखा दिखाती है।

चित्र—२

ध्यान रहे कि 'पूंजी की पूर्ति रेखा' को **'वचत की पूर्ति रेखा'** (Savings Supply Curve) भी कहते हैं क्योंकि यह विभिन्न व्याज की दरों पर बचत की मात्राओं को बताती है।

व्याज निर्धारण—माँग तथा पूर्ति का बराबर होना (Determination of Interest–Equation of Demand and Supply)
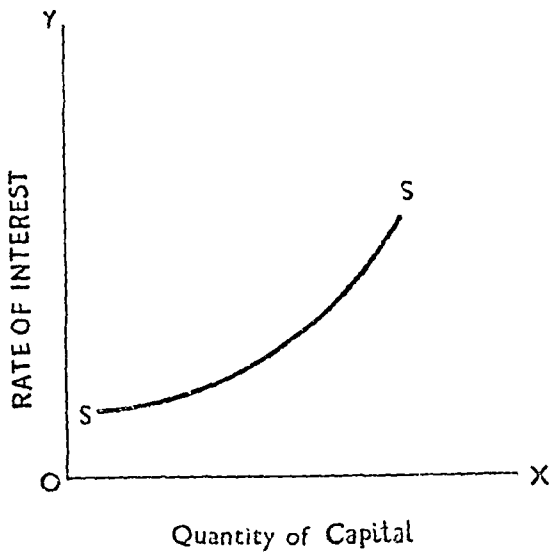
व्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर कि पूंजी की माँग तथा पूंजी की पूर्ति बराबर हो जाती है, जैसा कि चित्र नं० ३ में दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि व्याज की दर PQ निर्धारित होगी।

सन्तुलन व्याज की दर PQ (equilibrium rate of interest PQ) के सम्बन्ध में निम्न दो बातें ध्यान रखने की हैं :

(i) पूंजी की माँग रेखा पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को भी बताती है, इसलिए व्याज PQ=पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के। अतः, ध्यान रहे कि **सन्तुलन व्याज की दर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है।** यदि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता कम है, व्याज की दर से, तो इसका अर्थ यह हुआ कि उत्पादक पूंजी की माँग कम करेंगे (अपेक्षाकृत उसकी पूर्ति के), परिणामस्वरूप व्याज की दर गिरेगी और गिरकर ठीक पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। यदि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता अधिक है व्याज की दर से, तो इसका अर्थ यह हुआ है कि उत्पादक पूंजी की माँग अधिक करेंगे (अपेक्षाकृत उसकी पूर्ति के), परिणामस्वरूप, व्याज की दर बढ़ेगी और बढ़कर ठीक पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। स्पष्ट है कि सन्तुलन की स्थिति में व्याज की दर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है।

D S P R S D O Q X RATE OF INTEREST QUANTITY OF CAPITAL

चित्र—३

(ii) पूंजी की माँग रेखा 'बचतों के विनियोजन' को बताती है तथा पूंजी की पूर्ति रेखा 'बचतों की पूर्ति' को बताती है, इसलिए सन्तुलन व्याज की दर (PQ) पर 'बचतों का विनियोजन'

तथा 'बचतों की पूर्ति' दोनों बराबर होंगे। यदि किसी समय पर 'विनियोजन' तथा 'बचतों' में असन्तुलन (disequilibrium) है (अर्थात् ये बराबर नहीं हैं) तो ब्याज की दर में परिवर्तन होगा तथा ब्याज की दर 'विनियोग' तथा 'बचतों' में बराबरी स्थापित कर देगी।

ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Classical Theory of Interest)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अर्थ-व्यवस्था में सभी साधनों को पूर्ण रोजगार प्राप्त है; और यदि किसी पूंजीगत वस्तु के उत्पादन में वृद्धि की जाती है तो उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में से कुछ साधन हटाने पड़ेंगे जिसमें उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में कमी हो जायेगी; परिणामस्वरूप लोगों को वस्तुओं के उपभोग के लिए भविष्य में प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस प्रकार लोग तभी बचत करेंगे जबकि उन्हें प्रतीक्षा के लिए कुछ पुरस्कार अर्थात् ब्याज दिया जाय।

परन्तु अर्थ-व्यवस्था में सदैव पूर्ण रोजगार होने की मान्यता गलत है, प्रायः कुछ साधन बेरोजगार रहते हैं। ऐसी स्थिति में पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने के लिए इन बेरोजगार साधनों का प्रयोग किया जा सकता है तथा उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में से साधनों को हटाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इस प्रकार लोगों को भविष्य में उपभोग वस्तुओं के प्रयोग के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। स्पष्ट है कि ब्याज को प्रतीक्षा के लिए पुरस्कार कहना पूर्णतया सही नहीं है।

(२) पूँजी की पूर्ति में निम्न तीन बातें शामिल होनी चाहिए :

(i) वर्तमान आयों में से बचतें,

(ii) पिछली बचतें जब उनका असंग्रह किया जाय (Past savings when dishoarded), तथा

(iii) बैंक साख (Bank credit) जोकि पूँजी की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण भाग होती है।

ब्याज का क्लासीकल सिद्धान्त केवल प्रथम प्रकार की बचतों अर्थात् केवल वर्तमान आयों में से ही बचतों को पूँजी की पूर्ति के अन्तर्गत रखता है जोकि उचित नहीं है, अन्य दोनों बातों को पूँजी की पूर्ति के अन्तर्गत शामिल करना अत्यन्त आवश्यक है।

(३) क्लासीकल अर्थशास्त्रियों ने आय के स्तर (level of income) को स्थिर मान लिया जोकि सही नहीं है; इसका कारण था कि वे पूर्ण रोजगार की मान्यता को लेकर चले।

यह सिद्धान्त, आय के स्तर को स्थिर मानते हुए, यह बताता है कि बचत ब्याज की दर पर निर्भर करती है और ब्याज की दर में परिवर्तन द्वारा ही 'बचत' तथा 'विनियोग' में बराबरी (equality) स्थापित की जाती है।

परन्तु उपर्युक्त धारणा सही नहीं है। कीन्ज (Keynes) के अनुसार, बचत, ब्याज की दर पर नहीं बल्कि आय के स्तर पर निर्भर करती है—(यदि लोगों की आय अधिक होगी तो वे अधिक बचत कर सकेंगे अन्यथा नहीं) और आय के स्तर में परिवर्तनों द्वारा 'बचत' तथा 'विनियोग' में बराबरी स्थापित की जाती है।

(४) यह सिद्धान्त आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा (ignore) करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, ऊँची ब्याज की दर पर लोग अधिक बचत करेंगे, परन्तु यह सदैव सही नहीं होगा। यह बात स्पष्ट हो जायगी यदि हम आय पर विनियोग के प्रभाव को ध्यान में रखें जो कि आगे दिखाया गया है :

High Rate of Interest ——→ Less Investment——→ Less Employment and Less Income ——→ Less Savings

उपर्युक्त तर्क से स्पष्ट है कि ऊँची व्याज की दर पर समाज कम वचत करती है, न कि अधिक वचत जैसा कि क्लासीकल सोचते थे।

(५) **इस सिद्धान्त के अनुसार व्याज की दर अनिर्धारणीय** (indeterminate) है। इस सिद्धान्त की यह एक महत्त्वपूर्ण आलोचना है जो कि केंज (Keynes) द्वारा की गयी है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, व्याज की दर पूँजी की माँग तथा पूँजी की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। परन्तु 'पूँजी की पूर्ति' अर्थात् 'वचतों की पूर्ति' निर्धारित नहीं की जा सकती है और इसलिए व्याज की दर भी निर्धारित नहीं की जा सकती है। यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा :

इस सिद्धान्त के अनुसार, व्याज की दर 'वचतों' पर निर्भर करती है; अर्थात् **व्याज की दर को ज्ञात करने के लिए बचत की मात्रा ज्ञात होनी चाहिए।**

परन्तु वचतों को ज्ञात करने के लिए हमें व्याज की दर मालूम होनी चाहिए क्योंकि व्याज की दर, विनियोग तथा आय के स्तर को प्रभावित करके, बचतों को प्रभावित करती है। (उदाहरणार्थ, यदि व्याज की दर कम है, तो पूँजी का अधिक विनियोग होगा, अधिक विनियोग से कुल आय बढ़ेगी और कुल आय में वृद्धि से कुल वचत बढ़ेगी।)

अतः व्याज की दर को ज्ञात करने के लिए हमें बचतें मालूम होनी चाहिए और बचतें मालूम करने के लिए हमें व्याज की दर मालूम होनी चाहिए, स्पष्ट है कि स्थिति अनिर्धारणीय (indeterminate) **हो जाती है; अर्थात् यह सिद्धान्त हमें केवल 'वृत्ताकार तर्क'** (circular reasoning) **में डाल देता है।** नीचे एक चित्र द्वारा 'वृत्ताकार तर्क' को व्यक्त किया गया है :
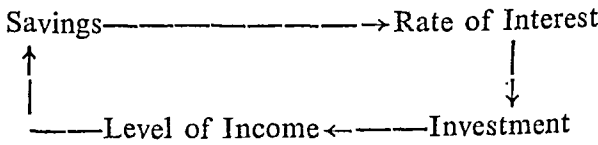
व्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त
(LIQUIDITY PREFERENCE THEORY OF INTEREST)

प्राक्कथन (Introductory)—उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार, व्याज उधार देय कोषों की कीमत (price of loanable funds) है। परन्तु केंज (Keynes) के अनुसार, व्याज 'नकदी की कीमत' (price of cash) या 'तरलता के परित्याग का पुरस्कार' (reward for parting with liquidity) है। केंज के शब्दों में, "व्याज वह कीमत है जो कि धन को नकद रूप में रखने की इच्छा तथा प्राप्य नकदी की मात्रा में बराबरी स्थापित करती है।"[1]

केंज के अनुसार, व्याज द्रव्य की माँग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार व्याज एक मौद्रिक बात (monetary phenomenon) है। अतः केंज अपने व्याज के सिद्धान्त को 'व्याज का मौद्रिक सिद्धान्त' (Monetary Theory of Interest) कहना पसन्द करते हैं; परन्तु केंज का व्याज का सिद्धान्त 'तरलता पसन्दगी सिद्धान्त' (Liquidity Preference Theory) के नाम से विख्यात है। द्रव्य की माँग का अर्थ है कि लोग द्रव्य को नकद रूप में अर्थात् तरल रूप में

1 "It is the 'price' which equilibrates the desire to hold wealth in the form of cash with the available quantity of cash."

रखने को माँगते हैं तथा द्रव्य की पूर्ति से अर्थ है किसी समय पर प्राप्य द्रव्य की मात्रा। जिस बिन्दु पर द्रव्य की माँग तथा द्रव्य की पूर्ति बराबर हो जाती है वहाँ पर ब्याज निर्धारित हो जाता है।

द्रव्य की माँग—तरलता पसन्दगी (Demand for Money—Liquidity Preference)

कींज के अनुसार, द्रव्य की माँग का अर्थ है द्रव्य को नकद रूप में अर्थात् तरल रूप में रखने की माँग; वे द्रव्य की माँग को 'तरलता पसन्दगी' कहते हैं।

एक व्यक्ति अपनी आय के सम्बन्ध में दो मुख्य निर्णय लेता है। प्रथम, वह यह निर्णय लेता है कि अपनी आय में से कित...
बचत को किस रूप में रखे—
or Securities) में लगाये या ...
तथा बचत का कितना भाग नगद या तरल रूप में रखे; वह द्रव्य को नकद या तरल रूप में अपने पास रख सकता है या बैंकों में 'चालू खाते' (Current Account) में जमा कर सकता है जिसमें कि उसे कोई ब्याज नहीं मिलता और उसमें से वह अपने द्रव्य को जब चाहे तब निकाल सकता है।

कींज के अनुसार कुछ कारणों से (जिनका वर्णन नीचे किया गया है) लोग द्रव्य को नकद या तरल रूप में रखना चाहते हैं। वे द्रव्य के लिए तरलता पसन्दगी का तभी परित्याग करेंगे जबकि उन्हें कुछ पुरस्कार (अर्थात् ब्याज) मिलेगा। अतः ब्याज तरलता के परित्याग के लिए पुरस्कार (reward for parting with liquidity) है। बैंकों के लिए तरलता दृढ़ता (strength) का प्रतीक होती है, उनके पास जितना द्रव्य नकद रूप में होगा उतनी ही उनकी स्थिति दृढ़ होगी। इसलिए बैंक भी अपनी तरलता के परित्याग के लिए पुरस्कार अर्थात् ब्याज चाहेंगे। स्पष्ट है कि चाहे व्यक्ति हो या बैंक, ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है।

कींज के अनुसार, लोग द्रव्य को नकद या तरल रूप में रखने की माँग निम्न उद्देश्यों (या कारणों) से करते हैं :

(१) कार्य-सम्पादन उद्देश्य (The Transactions Motive)

लोगों की आय एक निश्चित अवधि में मिलती है परन्तु भुगतान करने की आवश्यकता निरन्तर पड़ती रहती है, इसलिए नकद द्रव्य (cash) की कुछ मात्रा की सदैव आवश्यकता रहती है ताकि लोग अपने लेन-देन को पूरा कर सकें।

कार्य-सम्पादन उद्देश्य को दो दृष्टियों से देखा जा सकता है—(i) उपभोक्ताओं की दृष्टि से, तब इसे 'आय-उद्देश्य' कहते हैं, तथा (ii) साहसी या व्यापारियों की दृष्टि से, तब इसे 'व्यावसायिक उद्देश्य' कहते हैं।

(i) आय उद्देश्य (The income motive)—उपभोक्ताओं को आय एक निश्चित समय ... उपभोग ... के उद्देश्य ... के आकार ... receipts) पर निर्भर करेगी। इस प्रकार उपभोक्ताओं द्वारा कार्य-सम्पादन हेतु द्रव्य को नकद रूप में रखने के उद्देश्य को 'आय-उद्देश्य' कहा जाता है।

(ii) व्यवसाय उद्देश्य (The business motive)—साहसी या उत्पादक भी द्रव्य की कुछ मात्रा को नकद रूप में रखते हैं ताकि वे कच्चे माल, यातायात, मजदूरियों तथा वेतन और अन्य चालू खर्चों का भुगतान कर सकें। अतः साहसियों या उत्पादकों द्वारा द्रव्य को नकद रूप में

रखने के उद्देश्य को 'व्यावसायिक उद्देश्य' कहा जाता है। स्पष्ट है कि व्यावसायिक उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा, व्यापारी, उत्पादक या फर्म के 'समस्त क्रय-विक्रय' (turnover) पर निर्भर करेगी।

अतः 'आय उद्देश्य' तथा 'व्यावसायिक उद्देश्य' दोनों मिलकर 'कार्य-सम्पादन उद्देश्य' का निर्माण करते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **कार्य-सम्पादन उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा (अ) व्यक्तियों की आयों** (incomes of individuals) **पर तथा** (ii) **व्यवसाय के समस्त क्रय-विक्रय पर निर्भर करती है। कार्य-सम्पादन हेतु द्रव्य की नकद मात्रा सामान्यतया ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।**

(२) **दूरदर्शिता या सतर्कता उद्देश्य** (The Precautionary Motive)

लोग संकटकालीन दिनों (rainy day) के लिए द्रव्य की कुछ मात्रा नकद रूप में रखते हैं। दूसरे शब्दों में, बेरोजगारी, बीमारी, दुर्घटनाओं तथा अन्य आकस्मिक व अनिश्चित घटनाओं का सामना करने के लिए व्यक्ति द्रव्य की कुछ मात्रा नकद रूप में रखते हैं। इस उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा व्यक्तियों के स्वभाव तथा उनके रहने की दशाओं पर निर्भर करेगी। परन्तु **इस उद्देश्य के लिए द्रव्य की नकद मात्रा मुख्यतया व्यक्तियों के आय के स्तर पर निर्भर करती है;** सामन्यतया धनवान व्यक्ति, निर्धन व्यक्तियों की अपेक्षा, अधिक द्रव्य रख सकेंगे। **इस उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा, सामान्यतया, ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।**

(३) **सट्टा उद्देश्य** (The Speculative Motive)

लोग सट्टा द्वारा लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से भी कुछ नकद द्रव्य रखते हैं। सट्टे का अर्थ यहाँ पर 'ब्याज की दर में अनिश्चितता' के कारण लाभ उठाने से है। यदि कुछ व्यक्ति ब्याज की वर्तमान दर को नीचा समझते हैं तो वे द्रव्य की अधिक मात्रा नकद रूप में रखने को माँगेंगे ताकि भविष्य में ब्याज की दर ऊँची होने पर वे द्रव्य को ब्याज पर उधार देकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। इसके विपरीत जो व्यक्ति ब्याज की वर्तमान दर को ऊँचा समझते हैं वे द्रव्य की कम मात्रा नकद रूप में रखेंगे क्योंकि वे भविष्य में ब्याज की दर कम होने की आशा करते हैं।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि **'ब्याज की दर' तथा 'सट्टा उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की मात्रा' में उल्टा सम्बन्ध** (inverse relation) होता है।

कार्य-सम्पादन उद्देश्य (transaction motive), दूरदर्शिता उद्देश्य (precautionary motive) तथा सट्टा उद्देश्य (speculative motive) तीनों मिलकर द्रव्य की कुल माँग को बताते हैं। यदि कार्य-सम्पादन उद्देश्य तथा दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की माँग की मात्रा को L_1 द्वारा, सट्टा उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की माँग को L_2 द्वारा, तथा नकद द्रव्य की कुल माँग को L द्वारा व्यक्त किया जाय, तो नकद द्रव्य की कुल माँग (L) को निम्न प्रकार से लिख सकते हैं :

$$L = L_1 + L_2$$

ध्यान रहे कि L_1 आय के स्तर पर निर्भर करता है तथा L_2 ब्याज की दर पर। दूसरे शब्दों में, सट्टे के उद्देश्य की सन्तुष्टि के लिए नकद द्रव्य की माँग ब्याज की दर में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती है; ब्याज निर्धारण के लिए केंज ने द्रव्य की इस माँग पर विशेष बल दिया।

अब हम **द्रव्य की माँग रेखा अर्थात् तरलता-पसन्दगी-रेखा** (Liquidity Perference Curve) **के आकार के सम्बन्ध में विवेचन** करते हैं। तरलता-पसन्दगी रेखा (LP-curve) के सम्बन्ध में अग्रलिखित दो बातें ध्यान रखने की हैं।

(i) द्रव्य की माँग रेखा अर्थात् LP-रेखा ब्याज की विभिन्न दरों पर नकद द्रव्य की माँगी जाने वाली मात्राओं को बताती है; और चूँकि 'ब्याज की दर' तथा 'सट्टा उद्देश्य के लिए नकद द्रव्य की माँग' में उल्टा सम्बन्ध होता है, इसलिए LP-रेखा नीचे को गिरती हुई होती है; अर्थात् उसका ऋणात्मक ढाल (negative slope) होता है, जैसा कि चित्र न० ४ से स्पष्ट है।

(चूँकि L_1 ब्याज दर पर निर्भर नहीं करता, इसलिए L_1, LP-रेखा के ढाल (slope) को प्रभावित नहीं करता। L_1 तो आय के स्तर पर निर्भर करता है; यदि आय मे वृद्धि होती है तो L_1 में वृद्धि होगी अर्थात् लोग 'कार्य सम्पादन उद्देश्य' तथा 'दूरदर्शिता उद्देश्य' के लिए नकद द्रव्य की अधिक माँग करेंगे; इसका अर्थ यह हुआ कि LP-रेखा दायें (right) को खिसक जायेगी, जैसा कि चित्र नं० ५ में LP-रेखा दायें को खिसक कर LP_1 की स्थिति मे आ जाती है।)

चित्र—४

(ii) यदि ब्याज की दर बहुत नीची हो जाती है तो लोग यह सोचते हैं कि द्रव्य को उधार देने मे जो जोखिम (risk) रहती है उसकी तुलना मे ब्याज की दर बहुत कम है, इसलिए वे अपने समस्त द्रव्य को नकद या तरल रूप में रखना पसन्द करेंगे तथा उसमें कुछ भी ब्याज पर
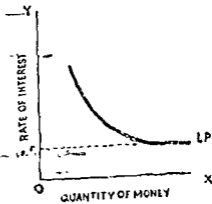
भाग अर्थात् उसकी 'पूँछ' (tail) X-axis के

४ में स्पष्ट है। LP-रेखा के 'पूँछ' की X-axis के समानान्तर होने की प्रवृत्ति बताती है कि ब्याज की एक न्यूनतम दर (चित्र में r ब्याज की दर) पर लोग अपने समस्त द्रव्य को तरल रूप में रखेंगे तथा बिलकुल उधार नहीं देंगे अर्थात् 'उधार-बन्दी' (credit deadlock) हो जायेगी; ऐसी स्थिति को कींज ने 'तरलता-ट्रैप (liquidity trap) कहा। संक्षेप में, LP-रेखा की पूँछ जो कि X-axis के समान्तर है, तरलता ट्रैप को बताती है।

चित्र—५

द्रव्य की पूर्ति (Supply of Money)

सिक्के, पत्र-मुद्रा तथा बैंक-साख मिलकर द्रव्य की कुल पूर्ति का निर्माण करते हैं। चूँकि मौद्रिक अधिकारी (monetary authority) द्रव्य की कुल पूर्ति (जिसे प्रायः 'M' द्वारा व्यक्त करते हैं) निर्धारित करता है, इसलिए किसी समय विशेष में द्रव्य की कुल पूर्ति (M) लगभग स्थिर होती है। अतः द्रव्य की पूर्ति रेखा खड़ी-रेखा (Vertical line) होती है, जैसा कि चित्र न० ५ में X-axis पर बिन्दु M से होती हुई खड़ी रेखा बताती है।

ब्याज निर्धारण (Determination of Interest)

ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहाँ पर कि द्रव्य की माँग-रेखा अर्थात् LP-रेखा तथा द्रव्य की पूर्ति-रेखा एक-दूसरे को
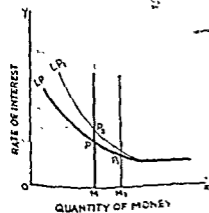
काटती हैं। चित्र नं० ५ से व्याज निर्धारण स्पष्ट होता है। माना कि द्रव्य की कुल पूर्ति OM है, M से होती हुई खड़ी पूर्ति रेखा LP-रेखा को P विन्दु पर काटती है। अतः व्याज की दर PM होगी और इस व्याज की दर पर 'नकद द्रव्यों की माँग' तथा 'नकद द्रव्य की पूर्ति' दोनों OM के बराबर होंगी।

यदि द्रव्य की पूर्ति बढ़कर OM_1 हो जाती है तो व्याज की दर घटकर P_1M_1 हो जायेगी। यदि आय में वृद्धि के कारण द्रव्य की माँग बढ़ जाती है अर्थात् LP-रेखा दायें को खिसक कर LP_1 की स्थिति में आ जाती है, और द्रव्य की पूर्ति पहले के समान अर्थात् OM के बराबर ही रहती है, तो व्याज की दर बढ़ कर P_2M हो जायेगी।

तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचना
(CRITICISM OF THE LIQUIDITY PREFERENCE THEORY)

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) केंज का सिद्धान्त द्रव्य की माँग के अन्तर्गत **पूंजी की उत्पादकता** (productivity of capital) **पर ध्यान नहीं देता** जोकि उचित नहीं है। द्रव्य की माँग केवल द्रव्य को नकद रूप में रखने के लिए ही नहीं की जाती वल्कि उत्पादक द्रव्य की माँग पूँजीगत वस्तुओं में विनियोग करने के लिए भी करते हैं क्योंकि पूँजी में उत्पादकता होती है। अतः माँग पक्ष में पूँजी की उत्पादकता पर विचार न करना उचित नहीं है।

(२) यह सिद्धान्त **मौद्रिक तत्त्वों पर अत्यधिक जोर देता है और** वास्तविक तत्त्वों, जैसे उत्पादकता तथा मितव्ययता इत्यादि, को छोड़ देता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, व्याज द्रव्य की माँग तथा द्रव्य की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है और इस प्रकार व्याज एक मौद्रिक वात है। परन्तु यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि वे वास्तविक तत्त्व कौन से हैं जो कि द्रव्य की माँग तथा पूर्ति के पीछे हैं।

(३) यह सिद्धान्त **एक-पक्षीय तथा अपर्याप्त** है क्योंकि यह व्याज निर्धारण में केवल तरलता-पसन्दगी (या माँग पक्ष) पर ही वल देता है। केंज तो द्रव्य की पूर्ति को एक स्वतन्त्र परिवर्तनशील तत्त्व (independent variable factor) मान लेते हैं; किसी समय पर द्रव्य की पूर्ति मौद्रिक अधिकारी द्वारा निर्धारित होती है; इस प्रकार द्रव्य की पूर्ति वाहरी शक्ति द्वारा निश्चित होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि द्रव्य की पूर्ति रेखा का खींचना वेकार है; परिणाम-स्वरूप व्याज का निर्धारण कैसे हो, इसकी व्याख्या नहीं हो सकती।[2]

(४) यह सिद्धान्त **केवल अल्पकाल में व्याज निर्धारण को वताता है** अर्थात् यह केवल 'तात्कालिक फोटोग्रेफिक चित्र' (instantaneous photographic picture) प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त व्याज निर्धारण की दीर्घकालीन शक्तियों पर प्रकाश नहीं डालता अर्थात् यह 'सिनेमा-सम्बन्धी चित्र' (cinematographic picture) को प्रस्तुत नहीं करता।

(५) केंज के सिद्धान्त की सवसे महत्त्वपूर्ण तथा गम्भीर आलोचना यह है कि इस सिद्धान्त के अनुसार, **व्याज की दर अनिर्धारणीय** (indeterminate) है। यह आलोचना जोकि केंज ने प्रतिष्ठित तथा उदार देय कोष सिद्धान्तों के सम्बन्ध में की थी वह स्वयं केंज के सिद्धान्त पर भी

2 "Hicks exposed the basic weakness of the theory. He stated that instead of using the two limbs of the scissor, viz., demand as opposed to supply, Keynes makes the supply of money an independent variable, externally determined. This means that the drawing of the supply curve is superfluous. Consequently, there is nothing left to indicate what determines the rate of interest."

होती है। कींज के सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर को ज्ञात करने के लिए हमें सट्टा उद्देश्य की सन्तुष्टि के लिए द्रव्य की पूर्ति मालूम होनी चाहिए; परन्तु सट्टा उद्देश्य की सन्तुष्टि के लिए द्रव्य की पूर्ति मालूम करने के लिए हमें पहले से ब्याज की दर ज्ञात होनी चाहिए; स्पष्ट है स्थिति अनिर्धारणीय हो जाती है तथा ब्याज को निर्धारित नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, यह सिद्धान्त 'वृत्ताकार तर्क' (circular reasoning) में फँस जाता है।

ब्याज का उदार देय कोष सिद्धान्त
(THE LOANABLE FUNDS THEORY OF INTEREST)
अथवा
ब्याज का नया-क्लासीकल सिद्धान्त
(NEO-CLASSICAL THEORY OF INTEREST)

प्राक्कथन (Introductory)

अर्थशास्त्री 'ब्याज के उधार-देय कोष सिद्धान्त' के सम्बन्ध में पूर्णरूप से एक मत नहीं है, उनके दृष्टिकोणों में थोड़ा अन्तर पाया जाता है। दूसरे शब्दों में 'ब्याज के उधार देय कोष सिद्धान्त' के विभिन्न रूप (different variants) हैं। यहाँ पर इन विभिन्न रूपों में से एक महत्वपूर्ण आधुनिक रूप (version) दिया गया है।[3] इस रूप के अन्तर्गत कींज के तरलता-पसन्दगी (liquidity preference) के विचार का भी समावेश है।[4]

ब्याज के उदार-देय कोष सिद्धान्त के निर्माता गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal), बेण्ट हैनसन (Bent Hansen), बर्टिल ओहलिन (Bertil Ohlin), ऐरिक लिण्डल (Eric Lindahl) इत्यादि स्वीडेन के अर्थशास्त्री हैं। इंग्लैण्ड में इस सिद्धान्त के विकास में प्रो० रोबर्टसन (Robertson) का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

'उदार देय कोष सिद्धान्त' ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त के ऊपर कई दृष्टियों से सुधार है; अतः इस सिद्धान्त को 'ब्याज का नया-क्लासीकल सिद्धान्त' (neo-classical theory of interest) भी कहते है। यह सिद्धान्त ब्याज के निर्धारण में मौद्रिक तथा अमौद्रिक तत्त्वों (monetary and non-monetary factors) दोनों पर ध्यान देता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज उधार देय कोषों (loanable funds) के लिए दिया जाता है। 'उदार देय कोष' के लिए ओहलिन 'साख' (credit) शब्द का तथा हेबरलर (Haberler) 'विनियोजन-योग्य कोष' (investible funds) शब्द का प्रयोग करते हैं। ध्यान रहे कि 'उधार

---

[3] अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए नोट—चूंकि सिद्धान्त के इस रूप में कींज के तरलता पसन्दगी के विचार को भी शामिल किया गया है, इसलिए अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री 'उधार देय कोष सिद्धान्त' को केंज के 'ब्याज के तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त' के बाद देना पसन्द करते हैं। प्रायः पुस्तकों में 'उधार देय कोष सिद्धान्त' को पहले और कींज के 'तरलता-पसन्दगी सिद्धान्त' को बाद में देते हैं। परन्तु जब उधार-देय कोष सिद्धान्त के आधुनिक रूप में कींज के तरलता पसन्दगी के विचार को शामिल कर लिया गया है तो उधार देय कोष सिद्धान्त को कींज के सिद्धान्त के बाद देना ही अधिक उचित समझा जाता है जैसा कि अब अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री करते हैं। अतः पुस्तक में इन दोनों सिद्धान्तों के क्रम (order) के सम्बन्ध में विद्यार्थियों को कोई भ्रम (confusion) नहीं होना चाहिए।

[4] यह बात आगे 'उधार देय कोषों की मांग' के शीर्षक के अन्तर्गत point (ii) (पृष्ठ ७१) के अध्ययन से तथा 'उधार देय कोषों की पूर्ति' शीर्षक के अन्तर्गत point (iii) (पृष्ठ ७२) के अध्ययन से स्पष्ट होगी।

देय कोष' उस सब द्रव्य को बताते हैं जिसकी साख-बाजार (credit market) **में पूर्ति तथा मांग की जाती है।** 'उदार देय कोष' तथा 'बचत' में अन्तर है। बचत का एक भाग संग्रहित (hoard) किया जा सकता है और इस सीमा तक साख बाजार में 'द्रव्य कोषों' (money loans or loanable funds) की पूर्ति कम हो जायेगी; इसी प्रकार भूतकालीन बचतों (past savings) को जब असंग्रह (dishoard) किया जाता है तो साख बाजार में 'द्रव्य कोषों' (money loans) की पूर्ति बढ़ जाती है। स्पष्ट है कि 'उदार देय कोष' तथा 'बचत' में थोड़ा अन्तर है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज उस विन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ पर कि उदार देय कोषों की माँग तथा उनकी पूर्ति बराबर हो जाती है।

उदार देय कोषों की माँग (Demand of Loanable Funds)

उदार देय कोषों की माँग चार स्रोतों से की जाती है—(i) उत्पादकों या व्यापारियों द्वारा; (ii) उपभोक्ताओं या परिवारों (consumers or households) द्वारा; (iii) सरकार द्वारा; तथा (iv) संचय (hoarding) के लिए।

(i) **उत्पादकों तथा व्यापारियों द्वारा माँग**—उधार देय कोषों की एक बहुत बड़ी मात्रा में माँग उत्पादकों तथा व्यापारियों द्वारा होती है। उत्पादक अपने पूंजीगत यन्त्र को बढ़ाने के लिए और नयी तथा श्रेष्ठ पूंजीगत वस्तुओं को खरीदने के लिए द्रव्य-ऋणों (money loans) की माँग करते हैं। पूंजीगत यन्त्र या वस्तुएँ उत्पादक होती हैं, इसलिए उनमें से प्रत्येक की सीमान्त उत्पादकता रेखा (marginal productivity curve) खींची जा सकती है। चूंकि उत्पादक या व्यापारी उधार देय कोषों को पूंजीगत वस्तुओं को खरीदने में लगाते हैं, इसलिए उधार देय कोषों की व्यावसायिक माँग पूंजी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है।

अन्य साधनों की तुलना में, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध में एक जटिलता (complexity) होती है। एक पूंजीगत वस्तु कई वर्षों तक प्रयोग में लायी जाती है। इसलिए एक उत्पादक या साहसी पूंजीगत वस्तु की उत्पादकता में से उसको चालू रखने की लागत (maintenance and operating cost) को निकालकर 'अनुमानित वास्तविक उत्पादकता या प्रतिफल' (expected net productivity or returns) पर ध्यान केन्द्रित करता है। उत्पादक इस 'अनुमानित वास्तविक प्रतिफल' (expected net returns) को पूंजीगत वस्तु की लागत के प्रतिशत के रूप में व्यक्त करता है और इसकी ब्याज की दर से तुलना करता है। स्पष्ट है कि एक उत्पादक उदार देय कोषों की उस सीमा तक माँग करेगा जहाँ पर कि पूंजीगत वस्तुओं के 'अनुमानित वास्तविक प्रतिफल' ब्याज की दर के बराबर हो जाता है।

कोषों की उपभोक्ताओं के लिए माँग रेखा नीचे को गिरती हुई होगी अर्थात् उसका ऋणात्मक ढाल होगा।

(iii) सरकार द्वारा माँग—कई दशाओं में सरकार भी बड़ी मात्रा में उधार लेती है। युद्ध तथा आपात्कालीन समयों में तथा विभिन्न प्रकार के विकासमान कार्यों (developmental activities) के लिए सरकार उधार देय कोषों की माँग करती है।

यदि ब्याज की दर ऊँची है तो उधार देय कोषों की लागत ऊँची होगी और इसलिए सरकार उनकी माँग कम करेगी; इसके विपरीत यदि ब्याज की दर नीची है तो सरकार उधार देय कोषों की माँग अधिक करेगी। यद्यपि कुछ दशाओं में, जैसे युद्ध के लिए द्रव्य-ऋण, सरकार द्वारा उधार लेने में ब्याज की दर के ऊँचे या नीचे होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता; परन्तु, सामान्यतया, यह कहा जा सकता है कि ब्याज की दर तथा सरकार की उधार देय कोषों की माँग में उल्टा सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में, सरकार के लिए उधार देय कोषों की माँग रेखा का ऋणात्मक ढाल होगा।

(iv) संग्रह या संचय (hoarding) के लिए माँग—उधार देय कोषों की माँग उन व्यक्तियों द्वारा भी की जाती है जोकि द्रव्य को नकद या तरल रूप (cash or liquid form) में, अर्थात् 'निष्क्रिय-नकद-कोषों' (idle cash balances) के रूप में रखना चाहते हैं। यहाँ पर कींज के तरलता पसन्दगी का विचार शामिल हो जाता है। यदि ब्याज की दर कम है तो लोग उधार देय कोषों को तरल रूप में रखने के लिए अधिक माँग करेंगे ताकि उन्हें भविष्य में ऊँची ब्याज दर पर उठा सकें; इसके विपरीत यदि ब्याज की दर ऊँची है तो लोग उधार देय कोषों को तरल रूप में रखने के लिए कम माँग करेंगे। स्पष्ट है कि ब्याज की दर तथा उधार देय कोषों की संचय के लिए माँग में उल्टा सम्बन्ध है।

यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि संचय को पूर्ति की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। जिस सीमा तक उधार देय कोषों की माँग संचय के लिए की जाती है उस सीमा तक उसकी पूर्ति कम हो जाती है; तथा यदि उधार देय कोषों की माँग संचय के लिए बहुत कम है तो उनकी पूर्ति अधिक होगी; या जब संचय किया हुआ द्रव्य विसंचय (dishoard) कर दिया जाता है तो उधार देय कोषों की पूर्ति बढ़ जाती है। अतः 'संचय' अर्थात् 'विसंचय' को पूर्ति पक्ष में शामिल किया जाता है।
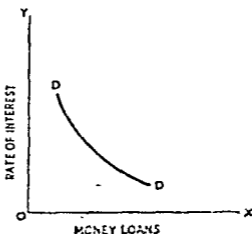
चित्र—६

व्यापारियों तथा उत्पादकों, उपभोक्ताओं और सरकार द्वारा उधार देय कोषों की माँग, तथा द्रव्य को तरल रूप में संग्रहित करने की माँग—इन सबको जोड़कर उधार देय कोषों की कुल माँग ज्ञात होती है। चूँकि इनमें के प्रत्येक की माँग रेखा नीचे का

गिरती हुई होती है, इसलिए उधार देय कोषों की 'कुल माँग रेखा' नीचे को गिरती हुई होगी अर्थात् उसका ऋणात्मक ढाल (negative slope) होगा जैसा कि चित्र नं० ६ में DD-रेखा द्वारा दिखाया गया है।

उधार देय कोषों की पूर्ति (Supply of Loanable Funds)

उधार देय कोषों की पूर्ति निम्न स्रोत से होती है :

(i) **बचतें**—उधार देय कोषों की पूर्ति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन 'बचतें' हैं; ये बचतें व्यक्तियों तथा व्यापारियों द्वारा की जाती हैं।

(अ) व्यक्ति अपनी वर्तमान आयों में से बचत (savings out of the current income) करते हैं। परन्तु रोबर्टसन के अनुसार, लोग अपनी वर्तमान आय में से बचत नहीं करते बल्कि 'प्रयोग-योग्य आय में से बचत' (savings out of disposable income) करते हैं; पिछले समय की आय वर्तमान में प्रयोग-योग्य (disposable income) हो जाती है जिसमें से बचत होती है क्योंकि वर्तमान में किये गये प्रयत्नों की आय वर्तमान में ही प्राप्त नहीं होती बल्कि वह कुछ समय बाद या भविष्य में प्राप्त होती है।

यदि ब्याज की दर ऊँची है तो, सामान्यतया, व्यक्ति अधिक बचत करेंगे और ब्याज की दर नीची होने पर वे कम बचत करेंगे। दूसरे शब्दों में, व्यक्तियों की बचत तथा ब्याज की दर **में सीधा सम्बन्ध** होता है अर्थात् व्यक्तियों की बचत की पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी।

(ब) व्यक्तियों की भाँति व्यावसायिक फर्में भी बचत करती हैं। अच्छे समयों में फर्मों की आय बहुत अधिक होती है जबकि वे इसमें से बहुत कम लाभांश के रूप में भुगतान करती हैं; इस प्रकार वे बचतें एकत्रित करती हैं। यदि ब्याज की दर ऊँची होगी तो फर्में अधिक बचत करेंगी ताकि उन्हें बाजार में ऊँची दर पर कम उधार लेना पड़े; ब्याज की दर नीची होने पर वे कम बचत कर सकती हैं क्योंकि वे नीची ब्याज की दर पर बाजार से उधार ले सकती हैं। स्पष्ट है कि व्यावसायिक बचतों तथा ब्याज की दर में सीधा सम्बन्ध है; अर्थात् व्यावसायिक बचतों की पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी।

सैद्धान्तिक रूप में ये व्यावसायिक बचतें उधार देय कोष की पूर्ति का एक भाग होती हैं। परन्तु व्यवहार में ये बचतें स्वयं फर्मों द्वारा ही विनियोग के लिए माँगी जाती हैं और इसलिए ये बचतें (पूर्ति पक्ष या माँग पक्ष किसी भी ओर से) प्रायः बाजार में प्रवेश नहीं करतीं।

(ii) **बैंक साख** (Bank credit)—उधार देय कोषों की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन व्यावसायिक बैंकों द्वारा साख का निर्माण या सरकार द्वारा केवल नोटों को छाप देना है।

(iii) **पिछली बचतों का विसंचय** (Dishoarding of past savings)—पिछली की हुई द्राव्यिक बचतों का जब व्यक्ति विसंचय करते हैं तो उधार देय कोषों की पूर्ति बढ़ जाती है। ब्याज की दर ऊँची हो जाने पर लोग पिछली बचतों का विसंचय करके उधार देय कोषों की पूर्ति में वृद्धि कर देंगे। (ब्याज की दर नीची होने पर वे कुछ द्रव्य का संचय कर सकते हैं और इस सीमा तक उधार देय कोषों की पूर्ति में कमी हो सकती है।)

(iv) **अविनियोग** (Disinvestment)—संरचनात्मक परिवर्तनों (structural changes) या अधिक हानि के कारण वर्तमान मशीनों तथा यन्त्रों को घिसने दिया जाता है पर घिसाई व्यय (depreciation charges) के रूप में कोई कोष इकट्ठा नहीं किया जाता और इस प्रकार उन मशीनों तथा यन्त्रों का प्रतिस्थापन सम्भव नहीं होता, तो इसे 'अविनियोग' कहते हैं। इस प्रकार यह विनियोग का उल्टा होता है।

अविनियोग के परिणामस्वरूप फर्म की उत्पादित वस्तु को बेचने से प्राप्त आगम (revenue) में से जो भाग घिसाई कोष (depreciation fund) में जाता (अर्थात् पुरानी तथा घिसी हुई मशीनों और यन्त्रों को नयी मशीनों और यन्त्रों से प्रतिस्थापित करने में जाता), वह साख बाजार (credit market) में जाता है तथा उधार देय कोषों की पूर्ति में वृद्धि करता है। यदि ब्याज दर ऊँची है तो यह सम्भव है कि वर्तमान पूँजी का कुछ भाग इस ऊँची ब्याज दर के बराबर सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue product) न दे सके। ऐसी स्थिति में फर्म पूँजी के कुछ भाग को बिना प्रतिस्थापित (replacement) किये घिस जाने देगी और इस प्रकार घिसाई कोष में जाने वाला द्रव्य बाजार में जायेगा तथा उधार देय कोषों की पूर्ति को बढ़ायेगा। अतः ब्याज की ऊँची दर पर अविनियोग अधिक होगा तथा नीची दर पर अविनियोग कम होगा। दूसरे शब्दों में, 'अविनियोग' तथा 'ब्याज की दर' में सीधा सम्बन्ध होता है; अर्थात् 'अविनियोग' के परिणामस्वरूप उधार देय कोषों की पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी।

चित्र—७
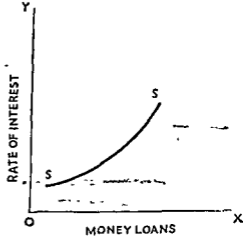
बचतें, बैंक साख, विसंचय तथा अविनियोग—इन सब स्रोतों से उधार देय कोषों की पूर्ति तथा ब्याज की दर में ... की कुल पूर्ति रेखा ऊपर को चढ़ती हुई होगी जैसा ... है।

... st)

ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ पर कि 'उधार देय कोषों' (loanable funds) या 'द्रव्य-ऋणों' (money loans) की कुल माँग तथा उनकी कुल पूर्ति दोनों बराबर हो जाती हैं। चित्र न० ८ से स्पष्ट है कि ब्याज की दर PQ होगी क्योंकि इस पर उधार देय कोषों की कुल माँग तथा कुल पूर्ति दोनों OQ के बराबर हैं।
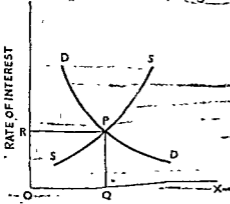
चित्र—८

यदि उधार देय कोषों की माँग तथा उनकी पूर्ति में किसी समय पर असन्तुलन (disequilibrium) है तो ब्याज की दर में परिवर्तन होगा और इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग तथा पूर्ति दोनों में बराबरी स्थापित हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, ब्याज के क्लासीकल सिद्धान्त की भाँति, इस सिद्धान्त में भी ब्याज की दर पूँजी के विनियोग (investment) तथा बचतों (savings) में बराबरी (equality) स्थापित करती है।

उधार देय कोष सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Loanable Funds Theory)

उधार देय कोष सिद्धान्त, कई दृष्टियों से, क्लासीकल सिद्धान्त पर सुधार है। यह सिद्धान्त पूर्ति पक्ष में केवल बचतों को ही नहीं बल्कि विसंचय (dishoarding), बैंक साख तथा अविनियोग (disinvestment) को भी शामिल करता है। इसी प्रकार माँग पक्ष में यह सिद्धान्त केवल व्यापारियों या उत्पादकों की माँग को ही नहीं बल्कि उपभोक्ताओं तथा सरकार द्वारा माँग और द्रव्य को संचय (hoard) करने की माँग को भी शामिल करता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त, क्लासीकल सिद्धान्त की अपेक्षा, अधिक विस्तृत (comprehensive) है।

परन्तु इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ वे ही हैं जोकि क्लासीकल सिद्धान्त की हैं। उधार देय कोष सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) **यह सिद्धान्त भी, क्लासीकल सिद्धान्त की भाँति, 'आय के स्तर' को स्थिर मान लेता है जोकि ठीक नहीं है।**

यह सिद्धान्त, आय के स्तर को स्थिर मानते हुए यह बताता है कि बचत ब्याज की दर पर निर्भर करती है और ब्याज की दर में परिवर्तनों द्वारा ही 'बचत' तथा 'विनियोग' में बराबरी (equality) स्थापित होती है।

परन्तु उपर्युक्त धारणा सही नहीं है। **कैंज** (Keynes) **के अनुसार, बचत ब्याज की दर पर नहीं, बल्कि आय के स्तर पर निर्भर करती है और आय के स्तर में परिवर्तनों द्वारा 'बचत' तथा 'विनियोग' में बराबरी स्थापित होती है।**

(२) **यह सिद्धान्त भी क्लासीकल सिद्धान्त की भाँति, आय पर विनियोग** (investment) **के प्रभाव की उपेक्षा** (ignore) **करता है।** इस सिद्धान्त के अनुसार, ऊँची ब्याज की दर पर लोग अधिक बचत करेंगे, परन्तु यह सदैव सही नहीं होगा। यह बात स्पष्ट हो जायेगी यदि हम आय पर विनियोग के प्रभाव को ध्यान में रखें जोकि नीचे दिखाया गया है :

High Rate of Interest ———→ Less Investment ———→ Less Employment and Less Income ———→ Less Savings

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि ऊँची ब्याज की दर पर समाज कम बचत कर पाती है, न कि अधिक बचत, जैसा कि यह सिद्धान्त बताता है।

(३) **इस सिद्धान्त के अनुसार भी, क्लासीकल सिद्धान्त की भाँति, ब्याज की दर अनिर्धारणीय** (indeterminate) **है।** इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर उधार देय कोषों की माँग तथा उनकी पूर्ति के अनुसार निर्धारित होती है। उधार देय कोषों की पूर्ति में बचत, बैंक, साख तथा विसंचय शामिल होते हैं, इनमें बचत का भाग आय के स्तर पर निर्भर करता है। अतः ब्याज की दर मालूम करने के लिए हमें बचतों को मालूम करना चाहिए; परन्तु बचतों को ज्ञात करने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए क्योंकि ब्याज की दर, विनियोग तथा आय के स्तर को प्रभावित करके, बचत को प्रभावित करती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **ब्याज की दर को ज्ञात करने के लिए हमें बचतें मालूम होनी चाहिए और बचतें मालूम करने के लिए हमें ब्याज की दर मालूम होनी चाहिए; अतः स्थिति अनिर्धारणीय हो जाती है, अर्थात् ब्याज का निर्धारण नहीं हो सकता है।** दूसरे शब्दों में, यह सिद्धान्त हमें वृत्ताकार तर्क (circular reasoning) में डाल देता है; यह बात अग्र चित्र द्वारा [illegible] जायगी।
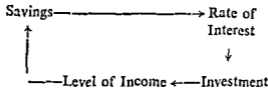
निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उधार देय कोष सिद्धान्त पूर्ण नही है; इस सिद्धान्त द्वारा ब्याज अनिर्धारणीय है। केज के सिद्धान्त द्वारा भी ब्याज निर्धारित नही की जा सकती।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों, हिक्स (Hicks), हेन्सन (Hansen) इत्यादि, के अनुसार ब्याज का

रेखा (savings curve), (३) तरलता पसन्दगी रेखा (liquidity preference curve); तथा (४) द्रव्य की मात्रा (quantity of money)। अतः 'ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त' के अनुसार ब्याज उपर्युक्त चारों तत्वों अर्थात् विनियोग, बचत, तरलता-पसन्दगी तथा द्रव्य की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है।[5]

क्या ब्याज की दर ऋणात्मक या शून्य हो सकती है ?
(CAN THERE BE A NEGATIVE OR ZERO RATE OF INTEREST ?)

सैद्धान्तिक दृष्टि से कुछ दशाओं में ब्याज के दर के ऋणात्मक (negative) या शून्य (zero) होने की सम्भावना हो सकती है, परन्तु वास्तविक जीवन मे दोनो मे से कोई भी बात नही हो सकती।

सैद्धान्तिक दृष्टि से 'ब्याज की ऋणात्मक दर' केवल ऐसे समाज मे सम्भव हो सकती है जिसमे कानून तथा व्यवस्था (law and order) की अनुपस्थिति होती है। ऐसे समाज मे यदि लोग बचत करते हैं तो वे उनकी रक्षा के लिए किसी शक्तिशाली व्यक्ति के पास रखेंगे; अपनी बचतो को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें शक्तिशाली व्यक्ति को कुछ भुगतान देना पड़ेगा और इस भुगतान को ब्याज की ऋणात्मक दर कहा जा सकता है। परन्तु व्यवहार मे ब्याज की ऋणात्मक दर नही होती।

सैद्धान्तिक दृष्टि से निम्न दो दशाओं मे 'शून्य ब्याज दर' होने की सम्भावना हो सकती है:

(i) जब किसी समाज की कुल आय उपभोग पर व्यय कर दी जाती है और कोई बचत तथा विनियोग नही होता। यह स्थिति केवल अत्यन्त प्राचीन समाज मे हो सकती है; परन्तु आज के युग मे इस प्रकार की पिछड़ी तथा प्राचीन अर्थ-व्यवस्था या समाज नहीं पायी जा सकती।

(ii) जब किसी समाज या अर्थ-व्यवस्था मे पूंजी की मात्रा इतनी अधिक हो कि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता शून्य हो; जब पूंजी की सीमान्त उत्पादकता शून्य होगी तो ब्याज की दर भी

[5] अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए नोट—ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त का पृथक तथा पूरा विवेचन यहां पर नही किया गया है क्योंकि वह किसी स्तर की दृष्टि से अधिक कठिन है। एक बात और ध्यान रखने की है कि बहुत-सी हिन्दी की पुस्तकों में ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त को 'पूंजी की मांग तथा पूर्ति' सिद्धान्त कहा है जो कि ठीक नहीं है।

(७) पूँजी की गतिशीलता में भिन्नता—उन्नतशील देशों में पूँजी की गतिशीलता अधिक होती है, इसलिए विभिन्न स्थानों में ब्याज की दरों में बहुत कम अन्तर होता है। इसके विपरीत, पिछड़े हुए देशों में पूँजी की गतिशीलता कम होती है और परिणामस्वरूप विभिन्न स्थानों तथा क्षेत्रों में ब्याज की दर में बहुत भिन्नता रहती है।

(८) पूँजी की उत्पादकता—जिन व्यवसायों में पूँजी का प्रयोग करके अधिक उत्पत्ति तथा लाभ प्राप्त किया जा सकता है [illegible]
ब्याज दर देने को तैयार होगा [illegible]

(९) बैंकिंग सुविधाओं [illegible]
हैं वहाँ ब्याज की दर ऊँची होती है; अच्छी बैंकिंग सुविधाओं के देशों में ब्याज की दर कम रहती है।

(१०) आर्थिक विकास के स्तरों में अन्तर—आर्थिक दृष्टि से उन्नतिशील देशों में लोगों की आय अधिक होती है, परिणामस्वरूप अधिक बचत होती है और पूँजी की पर्याप्त पूर्ति होती है; इसलिए ब्याज की दर कम होती है। पिछड़े हुए देशों में परिस्थितियाँ उल्टी होती हैं और उनमें ब्याज की ऊँची दर होती है।

आर्थिक प्रगति तथा ब्याज दर
(ECONOMIC PROGRESS AND RATE OF INTEREST)

आर्थिक प्रगति का अर्थ है कि देश विशेष में उद्योगों, कृषि, व्यापार, यातायात व संवादवहन, इत्यादि सभी क्षेत्रों का विकास होता है। इन सब क्षेत्रों में विकास के परिणामस्वरूप पूँजी की माँग में वृद्धि होगी।

परन्तु आर्थिक प्रगति के कारण पूँजी की पूर्ति भी बढ़ती है। आर्थिक प्रगति के परिणामस्वरूप देश की कुल आय बढ़ेगी, लोग अधिक बचत कर सकेंगे, बैंकिंग सुविधाएँ बढ़ेंगी और पूँजी की पूर्ति में वृद्धि होगी।

प्रायः पूँजी की पूर्ति, पूँजी की माँग की अपेक्षा, अधिक तीव्र गति से बढ़ती है और इसलिए ब्याज की दर कम होती है। अतः आर्थिक प्रगति के कारण सामान्यतया ब्याज की दर गिरती है।

स्वाभाविक ब्याज दर तथा बाजार ब्याज दर
(NATURAL RATE OF INTEREST AND MARKET RATE OF INTEREST)

१. पृष्ठभूमि (Background)

१९०१ में स्वीडिश अर्थशास्त्री विक्सैल (Swedish economist Wicksell) ने 'स्वाभाविक ब्याज दर' (natural rate of interest) के विचार को प्रस्तुत किया। इसको 'सामान्य' या 'वास्तविक' ब्याज ('normal' or 'real' rate of interest) भी कहते हैं।

की तुलना में कम होगी, परिणामस्वरूप बाजार व्याज दर बढ़ेगी और बढ़कर ठीक 'संतुलन व्याज दर' के बराबर हो जायेगी। इस प्रकार प्राचीन क्लासीकल सिद्धान्त के अनुसार 'बाजार व्याज दर' सदैव 'संतुलन व्याज दर' के बराबर होगी; दूसरे शब्दों में इस सिद्धान्त के अनुसार 'बाजार व्याज दर' 'संतुलित व्याज दर' से पृथक नहीं हो सकती है। इस धारणा का मुख्य कारण यह था कि क्लासीकल अर्थशास्त्री यह समझते थे कि केवल बचतें ही 'उधार देय कोषों' (loanable funds) की सम्पूर्ण पूर्ति का निर्माण करती है, और 'साख' (credit) अथवा 'बैंकों द्वारा निर्मित द्रव्य' ('created money' by banks) अर्थात् 'द्रव्य की पूर्ति' बाजार व्याज दर तथा वस्तुओं की कीमतों पर कोई प्रभाव नहीं डालती। परन्तु यह विचार धारा उचित नहीं थी जैसा कि विकसैल ने बताया, बैंकों द्वारा निर्मित साख द्रव्य की पूर्ति में वृद्धि या कमी करके बाजार व्याज दर को प्रभावित करती है।

विकसैल ने 'स्वाभाविक' या 'सामान्य' या 'वास्तविक' (natural or normal or real) व्याज दर तथा बाजार व्याज दर के बीच अन्तर को स्पष्ट किया और इस अन्तर को बताने में विकसैल का मुख्य ध्येय यह था कि वे 'द्रव्य की पूर्ति में परिवर्तनों' का व्याज दर तथा कीमतों पर प्रभाव को बताना चाहते थे। दूसरे शब्दों में, द्रव्य की पूर्ति (जिसमें बैंकों द्वारा निर्मित द्रव्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है) में परिवर्तनों का प्रभाव व्याज दर पर पड़ता है; यह बात विकसैल ने 'व्याज की स्वाभाविक दर' के विचार को प्रस्तुत करके स्पष्ट की।

२. "स्वाभाविक व्याज दर' की परिभाषा तथा व्याख्या (Definition of the 'Natural Rate of Interest' and its explanation)

कोई अन्तर है तो वह आकस्मिक (accidental or casual) है। परन्तु विकसैल के अनुसार इनमे अन्तर (divergence) आकस्मिक नहीं होता बल्कि बैंको की उधार देने की क्रियाओ के परिणामस्वरूप होता है। बैंक माग का निर्माण कर द्रव्य या उधार देय कोषो की कुल पूर्ति मे वृद्धि करते है और परिणामस्वरूप बाजार ब्याज दर स्वाभाविक ब्याज दर से कम हो जाती है। इसके विपरीत साख का संकुचन करके बैंक उधार देय कोषो की कुल पूर्ति मे कमी करते हैं और परिणामस्वरूप बाजार दर स्वाभाविक ब्याज दर से ऊँची हो जाती है।

परन्तु विकसैल ने यह भी बताया कि यदि संतुलन स्थापित होता है तो बाजार तथा स्वाभाविक (या सामान्य या वास्तविक) ब्याज की दरें बराबर होंगी।[6] उन्होंने इस कथन का समर्थन इस प्रकार किया। यदि किसी कारण बैंक स्वाभाविक दर से पर्याप्त नीची ब्याज दर पर ऋण (loan) उधार देते हैं तो साहसियो के लिए लाभों के अच्छे अवसर रहेंगे और विनियोग (या द्रव्य की पूर्ति) मे वृद्धि होगी। इसमे सन्देह नहीं कि बैंको को स्वाभाविक दर मालूम नहीं होगी क्योंकि इसको मापने योग्य मात्रा (measurable magnitude) के रूप मे परिभाषित नहीं किया गया है। पूर्ण रोजगार तथा स्थिर उपभोग की मान्यताओ के आधार पर, बढा हुआ विनियोग (अर्थात् द्रव्य) कीमतों मे वृद्धि उसी अनुपात मे करेगा जिसमे कि द्रव्य की पूर्ति मे वृद्धि हुई; और बढ़ते हुए विनियोग तथा चढ़ती हुयी कीमतों का प्रगतिशील उत्थान उस समय तक जारी रहेगा जब तक कि बैंकों के अतिरिक्त रिजर्व समाप्त नहीं हो जाते तथा बाजार ब्याज दर बढ़कर सामान्य या स्वाभाविक दर के बराबर नहीं हो जाती।[7] यदि बैंक स्वाभाविक ब्याज दर से ऊँची दर पर द्रव्य उधार देते हैं तो ऊपर दिये गये तर्क का क्रम उल्टा हो जावेगा और पुनः बाजार ब्याज दर स्वाभाविक दर के बराबर हो जायेगी।

इस प्रकार, विकसैल के अनुसार, संतुलन की स्थिति में स्वाभाविक या सामान्य दर और बाजार दर बराबर होगी तथा असंतुलन की स्थिति में बराबर नहीं होगी।[8]

३. निष्कर्ष

विकसैल का स्वाभाविक ब्याज का सिद्धान्त इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ब्याज दर पर साख निर्माण के प्रभाव पर जोर देता है।[9] विकसैल का सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि ब्याज की कोई व्याख्या केवल अमौद्रिक शब्दों (non-monetary terms) में नहीं की जा सकती, मौद्रिक बातें बाजार ब्याज दर पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। दूसरे शब्दो मे, अब ब्याज के सभी सिद्धान्त इस बात पर ध्यान देते हैं कि द्रव्य की पूर्ति और मांग ब्याज की दर को थोड़ा-बहुत अवश्य प्रभावित करती हैं।[10]

---

6 ... r natural rates of interest would have

7 ...

ब्याज का औचित्य
(JUSTIFICATION OF INTEREST)

अथवा

ब्याज क्यों दिया जाता है ?
(WHY INTEREST IS PAID ?)

१. प्राक्कथन (Introductory)

प्राचीन समय में ब्याज को प्रायः अच्छी निगाह से नही देखा जाता था। मध्ययुगीन धर्मशास्त्रियों (medieval theologists) ने ब्याज लेने की क्रिया को 'ब्याजखोरी' ('usury') की संज्ञा देकर बुराई की। प्राचीन समय मे पूँजी के लाभदायक प्रयोग के अवसर बहुत कम थे; और प्रायः ऋण धनवान व्यक्तियों द्वारा उपभोग हेतु निर्धन व्यक्तियों को दिये जाते थे। इसलिए ब्याज की बुराई की जाती थी।

मार्क्स (Marx) के अनुसार उत्पादन मे प्रयुक्त श्रम की मात्रा द्वारा मूल्य निर्धारित होता है, इसलिए समस्त मूल्य श्रमिको को प्राप्त होना चाहिए। परन्तु पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पादक श्रमिकों को केवल भरण-पोषण मात्र देकर समस्त आधिक्य स्वय हड़प जाते हैं। अतः मार्क्स के अनुसार ब्याज एक 'डाका' ('robbery') है और इस प्रकार मार्क्स के अनुसार समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज का कोई स्थान नही है।

परन्तु आधुनिक युग में ब्याज का भुगतान बुरा नही समझा जाता है। पूंजी उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है और वह उत्पादन मे सहायक है; दूसरे शब्दों में पूंजी में उत्पादकता है और साधन के रूप में पूंजी को उसकी उत्पादकता का पुरस्कार या कीमत मिलनी चाहिए; इसके अतिरिक्त पूंजी के स्वामी के लिए ब्याज आय के समान भी है। दूसरे शब्दो मे; किसी भी अन्य उत्पत्ति के साधन की आय (earnings) की भांति ब्याज एक कीमत तथा आय का एक स्रोत (source) दोनो है।[12]

अतः हम नीचे पहले (अ) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (या स्वतन्त्र उपक्रम) के अन्तर्गत ब्याज के औचित्य का—दो रूपों मे, ब्याज कीमत के रूप में ('interest as a price') तथा 'ब्याज आय के स्रोत के रूप में' ('interest as a source of income') विवेचन करेंगे; तत्पश्चात (ब) समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज का विवेचन करेंगे।

२. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (या स्वतंत्र उपक्रम) के अन्तर्गत ब्याज (Interest under capitalist economy or Free Enterprise Economy)

(अ) ब्याज कीमत के रूप में (Interest as a price)

कीमत के रूप मे ब्याज अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्यों (social functions) का सम्पादन करता है जिनके कारण ब्याज का भुगतान होता है या ब्याज को उचित बताया जाता है। मुख्य सामाजिक कार्य निम्न हैं :

(i) ब्याज बचत करने के लिए आवश्यक है (Interest is necessary for savings) लोग बचत करने के लिए प्रोत्साहित हों इसके लिए ब्याज देना आवश्यक है। हमें समय-पसन्दगी (time preference) के लिए या तरलता-पसन्दगी (liquidity preference) के त्याग के लिए ब्याज देना होगा।

---

[12] Like the earnings of any other factor of production, interest is both a price and a source of income.

वास्तविक तथा मौद्रिक ब्याज दर (Actual or real and Nominal or Money Rates of Interest)

१. **प्राक्कथन** (Introductory)—ऊपर हम विकसैल के अनुसार स्वाभाविक ब्याज दर (जिसे सामान्य या वास्तविक ब्याज दर भी कहते हैं) तथा बाजार ब्याज दर में अन्तर तथा उनमें सम्बन्ध की विवेचना कर चुके हैं।

परन्तु **अर्थशास्त्र में ब्याज की वास्तविक तथा मौद्रिक दरों के शब्दों का प्रयोग एक दूसरे अर्थ में भी किया जाता है** जिसका विवेचन नीचे किया गया है।

२. **अर्थ** (Meaning)—एक व्यक्ति किसी वस्तु को खरीदते समय या रुपये उधार लेते समय ब्याज की एक निश्चित मौद्रिक दर (माना कि 6%) देता है परन्तु वास्तव में उसे ब्याज दर कहीं अधिक पड़ सकती है; दूसरे शब्दों में उधार देने वाले व्यक्ति के लिए 'वास्तविक प्राप्ति' (real yield) मौद्रिक ब्याज दर से कहीं अधिक हो सकती है; यह 'वास्तविक प्राप्ति' ही 'वास्तविक ब्याज दर' है।

३. **व्याख्या** (Explanation)—माना कि एक बैंक की मौद्रिक ब्याज दर ६% है। आप बैंक जाते हैं और उससे १२०० रु० इस दर पर साल भर के लिए उधार चाहते हैं और आप बैंक को साल भर बाद (१२०० रु०+७२ रु० ब्याज अर्थात्) कुल १२७२ रु० देने को तत्पर हैं। परन्तु बैंक आपके सामने एक दूसरा विकल्प (alternative) रखती है। बैंक कहती है कि आप उसे प्रति माह १०० रु० मूलधन+प्रति माह ६ रु० ब्याज[11] अर्थात् प्रति माह १०६ रु० देकर १२ महीने में ऋणा चुका दें। यदि आप इसे मान लेते हैं तो प्रकट रूप से (apparently) मौद्रिक ब्याज दर ६% प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में आपके लिए 'वास्तविक ब्याज दर' (actual or real rate of interest) ११% के लगभग पड़ती है। यह बात इस विवरण से स्पष्ट होगी। पहले महीने में आप पूरे १२०० का प्रयोग करते हैं, परन्तु दूसरे महीने के आरम्भ में आप १०० मूलधन +६ रु० ब्याज का देते हैं अर्थात् दूसरे महीने में आप १२०० – १०० रु०=११०० रु० का ही प्रयोग करते हैं, तीसरे महीने आप ११०० रु० – १०० रु०=१००० रु० का प्रयोग कर पाते हैं; इत्यादि। इस प्रकार १२ महीने में आप (१२००+११००+१०००+९००+८००+७००+६००+५००+४००+३००+२००+१००)=७८०० रु० का प्रयोग करते हैं अर्थात् प्रति महीने $\frac{७८००}{१२}$=६५० रु० का औसत प्रयोग करते हैं (न कि कुल १२०० रु० का) और ६% प्रति वर्ष की दर से प्रति महीने ६ रु० ब्याज के हिसाब से साल भर में ७२ रु० ब्याज का देते हैं। दूसरे शब्दों में, आप साल भर वास्तव में ६५० रु० का प्रयोग करते हैं और उस पर साल भर का कुल ब्याज ७२ रु० देते हैं, अतः आपको वास्तविक ब्याज दर $\frac{७२}{६५०}$×१००=११·०७% या ११% पड़ती है। स्पष्ट है कि यद्यपि बैंक की मौद्रिक ब्याज दर (money or nominal rate of interest) ६% है परन्तु आपको वास्तविक ब्याज दर ११% पड़ी।

इसी प्रकार जब आप किसी टिकाऊ उपभोग वस्तु (durable consumer good) जैसे रेडियो, सिलाई मशीन, इत्यादि को 'किश्त-क्रय-प्लान' ('instalment-purchase-plan) के अन्तर्गत खरीदते हैं तो भी आपको वास्तविक ब्याज दर कहीं अधिक पड़ती है अपेक्षाकृत 'मौद्रिक ब्याज दर' के।

---

11 ६% की ब्याज दर से १२०० रु० पर साल भर अर्थात् १२ महीने की ब्याज ७२ रु० हुई और १ महीने की ब्याज $\frac{७२}{१२}$=६ रु० पड़ी।

ब्याज का औचित्य
(JUSTIFICATION OF INTEREST)

अथवा

ब्याज क्यों दिया जाता है ?
(WHY INTEREST IS PAID ?)

१. प्राक्कथन (Introductory)

प्राचीन समय मे ब्याज को प्रायः अच्छी निगाह से नही देखा जाता था। मध्ययुगीन धर्मशास्त्रियों (medieval theologists) ने ब्याज लेने की क्रिया को 'ब्याजखोरी' ('usury') की सज्ञा देकर बुराई की। प्राचीन समय मे पूंजी के लाभदायक प्रयोग के अवसर बहुत कम थे, और प्रायः ऋण धनवान व्यक्तियों द्वारा उपभोग हेतु निर्धन व्यक्तियों को दिये जाते थे। इसलिए ब्याज की बुराई की जाती थी।

मार्क्स (Marx) के अनुसार उत्पादन में प्रयुक्त श्रम की मात्रा द्वारा मूल्य निर्धारित होता है, इसलिए समस्त मूल्य श्रमिकों को प्राप्त होना चाहिए। परन्तु पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पादक श्रमिकों को केवल भरण-पोषण मात्र देकर समस्त आधिक्य स्वय हड़प जाते हैं। अतः मार्क्स के अनुसार ब्याज एक 'डाका' ('robbery') है और इस प्रकार मार्क्स के अनुसार समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज का कोई स्थान नहीं है।

परन्तु आधुनिक युग मे ब्याज का भुगतान बुरा नही समझा जाता है। पूंजी उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है और वह उत्पादन मे सहायक है; दूसरे शब्दों में पूंजी मे उत्पादकता है और साधन के रूप में पूंजी को उसकी उत्पादकता का पुरस्कार या कीमत मिलनी चाहिए; इसके अतिरिक्त पूंजी के स्वामी के लिए ब्याज आय के समान भी है। दूसरे शब्दो मे; किसी भी अन्य उत्पत्ति के साधन की आय (earnings) की भांति ब्याज एक कीमत तथा आय का एक स्रोत (source) दोनों है।[12]

अतः हम नीचे पहले (अ) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (या स्वतन्त्र उपक्रम) के अन्तर्गत ब्याज के औचित्य का—दो रूपों में, ब्याज कीमत के रूप में' ('interest as a price') तथा 'ब्याज आय के स्रोत के रूप में' ('interest as a source of income') विवेचन करेंगे; तत्पश्चात (ब) समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज का विवेचन करेंगे।

२. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (या स्वतंत्र उपक्रम) के अन्तर्गत ब्याज (Interest under capitalist economy or Free Enterprise Economy)

(अ) ब्याज कीमत के रूप में (Interest as a price)

कीमत के रूप में ब्याज अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्यों (social functions) का सम्पादन करता है जिनके कारण ब्याज का भुगतान होता है या ब्याज को उचित बताया जाता है। मुख्य सामाजिक कार्य निम्न हैं :

(i) ब्याज बचत करने के लिए आवश्यक है (Interest is necessary for savings) लोग बचत करने के लिए प्रोत्साहित हों इसके लिए ब्याज देना आवश्यक है। हमें समय-पसन्दगी (time preference) के लिए या तरलता-पसन्दगी (liquidity preference) के त्याग के लिए ब्याज देना होगा।

---

12 Like the earnings of any other factor of production, interest is both a price and a source of income.

परन्तु उपर्युक्त तर्क बहुत प्रभावपूर्ण नहीं है। इसके कारण हैं—(१) यह कहना कठिन है कि व्याज दर निश्चित रूप से व्यक्तिगत बचतों को बहुत अधिक प्रभावित करती है या नहीं। (२) इसके अतिरिक्त कम्पनियों द्वारा बचत (corporate saving) की जाती है, अर्थात् संस्थाओं (institutions) द्वारा बचतें की जाती हैं और ये बचतें व्यक्तिगत निर्णयों पर निर्भर नहीं करतीं। (३) अविकसित तथा विकासमान देशों में टैक्स द्वारा प्राप्त आय में से सरकार एक भाग बचा सकती है और इस बचत को पूँजी निर्माण में लगा सकती है।

(ii) **व्याज पूँजीगत वस्तुओं की माँग को उचित सीमाओं तक नियंत्रित करती है** ('Interest restraints the demand for capital goods within the limits of feasibility')—यदि हम व्याज तथा बचतों की पूर्ति के सम्बन्ध के वाद-विवाद (controversy) को छोड़ दें और यह मान लें कि किसी भी प्रकार बचतों की पूर्ति की मात्रा निर्धारित हो जाती है तो यह देखना है कि बचतें क्या करती हैं। बचत का अर्थ है कि सब आय उपभोग वस्तुओं पर व्यय नहीं की जाती और बचतों (अर्थात् द्रव्य की पूर्ति) का पूँजीगत वस्तुओं में विनियोग कर और अधिक उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार **बचत साधनों को स्वतंत्र** (liberate) **करती है :** साधन जो कि उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष विक्री हेतु उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करते हैं उनको बचत के माध्यम द्वारा पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त करना सम्भव होता है। प्रकट रूप से जो केवल द्रव्य की पूर्ति दिखायी देती है वह वास्तव में साधनों की पूर्ति है; पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति का अंकुर है।[13]

यदि इन साधनों (अर्थात् पूँजीगत वस्तुओं या बचतों) को निःशुल्क प्राप्त किया जा सकता तो इनकी माँग असीमित होती; परन्तु पूँजीगत वस्तुओं की सम्भावित (potential) पूर्ति असीमित नहीं होती। अतः **व्याज का मुख्य कार्य उचित सीमाओं के अन्तर्गत पूँजीगत वस्तुओं की माँग को नियंत्रित करना है।** इस नियंत्रण के अभाव में पूँजीगत वस्तुओं की माँगी जाने वाली मात्रा प्राप्य साधनों से बहुत अधिक होगी और इससे अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक भार पड़ेगा।[14]

(iii) **व्याज का राशनिंग या वितरण कार्य** (Rationing or allocating function of interest)—वस्तुओं की कीमतें साधनों के वितरण या राशनिंग का कार्य करती हैं। व्याज दर भी, उधार देय कोषों की कीमत (price of loanable funds) होने के कारण, द्रव्य-पूँजी के वितरण का कार्य करती है और इसलिए वास्तविक पूँजी को विभिन्न फर्मों और विनियोग-परियोजनाओं (investment-projects) में बाँटती है। व्याज की दर प्राप्य उधार-देय कोषों की पूर्ति को उन विनियोग-परियोजनाओं में वितरित करती है जिनमें प्रतिफल की दर या सम्भावित लाभ (rate of return or expected profitability) इतना ऊँचा है जिसमें से प्रचलित व्याज दर का भुगतान किया जा सके। जिन परियोजनाओं (projects) में प्रतिफल या लाभ की दर अथवा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (माना कि १०%) अधिक है व्याज दर (माना कि ६%) से (या वह कम से कम व्याज दर के बराबर है), उनमें पूँजी का विनियोग होगा और उन्हें कार्यान्वित किया जायेगा। इसके विपरीत जिन परियोजनाओं में पूँजी की सम्भावित सीमान्त आगम उत्पादकता व्याज की दर से कम है उनमें पूँजी का विनियोग नहीं होगा और

---

13 "Saving *liberates resources*, which would otherwise have been producing for direct sale to consumers, and makes them available for production of capital goods. What seems to be just a supply of money is really a supply of resources, of capital goods in embryo."

14 "So one major function of interest is to restrain the demand for capital goods within the limits of feasibility. Without this restraint, the quantity of capital goods demanded would greatly exceed the resources available and would overstrain the economy."

उन्हें कार्यान्वित नही किया जायेगा। इस प्रकार ब्याज दर द्रव्य और अन्त में वास्तविक पूँजी को उन उद्योगों में वितरित करती है जिनमें कि यह सर्वाधिक उत्पादक और इसलिए सर्वाधिक लाभदायक होती है।[15]

परन्तु ध्यान रहे कि ब्याज के वितरण कार्य की कुछ सीमाएँ भी है अर्थात् ब्याज दर ... (i) अनेक ... पूरा कर लेती हैं और इस प्रकार इन फर्मों मे ब्याज दर द्वारा पूँजी के वितरण कार्य का प्रश्न नही उठता (ii) बड़ी अल्पाधिकारी फर्में (oligopolistic firms) अपनी वस्तु की कीमतो को ऊँचा करने की अधिक अच्छी योग्यता रखती हैं और परिणामस्वरूप वे ब्याज-लागतों (interest costs) को उप- ... के। (iii) ... दर सुगमता ... (expected) लाभ की दर अपेक्षाकृत अधिक ऊँची हो सकती है, को अधिक ऊँची दर पर तथा कठिनाई के साथ द्रव्य प्राप्त होता है और परिणामस्वरूप ऐसी फर्मों का जन्म या विस्तार नही हो पाता।

(ब) ब्याज आय के रूप में (Interest as an income)

आय के रूप मे ब्याज को उचित ठहरना आसान नही है। समाज में प्राय. व्यक्तियों का एक वर्ग ऐसा होता है जो कोई उपयोगी कार्य (socially useful work) करके आय प्राप्त नही करता बल्कि ब्याज की आय खाते है। ऐसी दशा मे ब्याज को उचित ठहरना कठिन है क्योंकि—(i) ब्याज खाने वाले व्यक्ति निकम्मे (idlers) हो जाते है और उनका रचनात्मक श्रम (creative labour) समाज को प्राप्त नहीं होता; तथा (ii) ब्याज की ऐसी आय असमानताओ को बढाती है।

... अर्थव्यवस्था मे 'ब्याज को ... व्यक्ति बचत नहीं करेंगे या ... पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ... ब्याज से आय को केवल ... है।

३. समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज (Interest under Socialism)

... की उत्पादकता को ... रन्तु यह विचारधारा ... परन्तु ब्याज का ... प्रत्यक्ष रूप से ब्याज विभिन्न उद्योगों में पूँजी के राशनिंग या वितरण का कार्य करता है।

(i) समाजवादी अर्थव्यवस्था में एक केन्द्रीय योजना बोर्ड (Central Planning Board) होता है जो कि समस्त अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करता है। एक केन्द्रीय योजना बोर्ड के लिए

15 Thus, the interest rate rations or allocates money and ultimately real capital to projects or industries in which it will be most productive and, therefore,

प्रायः यह अत्यन्त कठिन होता है कि वह पूंजी के वितरण के सम्बन्ध में सभी निर्णय ले सके। अतः केन्द्रीय बोर्ड आर्थिक नीति की सामान्य बातों (broad matters of economic policy) पर निर्णय लेता है और सूक्ष्म निर्णय लेने के कार्य (detailed decision taking) को, जो प्रायः महत्त्वपूर्ण होता है, विकेन्द्रित (decentralize) कर देता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की भाँति, (अ) पूंजी की पूर्ति सीमित होती है (जिसे सरकार विभिन्न उद्योगों में या प्रयोगों में लगाना चाहती है; तथा (ब) विभिन्न उद्योगों की उत्पादकता एक समान नहीं होती। इन दोनों कारणों के परिणामस्वरूप समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी केन्द्रीय योजना बोर्ड या विकेन्द्रित निर्णायकों के लिए कोई न कोई आदर्श (norm) या गाइड (guide) होनी चाहिए जिससे कि वे यह जान सकें कि किन प्रयोगों में पूंजी का विनियोग अधिक उत्पादक होगा और किन में कम उत्पादक। सीमित पूंजी से अधिकतम प्रतिफल प्राप्त करने की दृष्टि से विभिन्न विनियोग-परियोजनाओं (investment projects) के बीच चुनाव (screening) करने के लिए समाजवादी सरकार को गाईड के रूप में एक 'आदर्श स्तर' ('standard') निर्धारित करना पड़ता है और विकेन्द्रित-निर्णायक (decentralized decision-takers)पूंजी का विनियोग उन उद्योगों में नहीं करते जिनमें कि 'प्रतिफल की दर' (rate of return) कम हो 'निर्धारित आदर्श स्तर' ('fixed standard rate') से। वास्तव में यह 'आदर्श स्तर ही ब्याज दर है, यद्यपि समाजवादी अर्थव्यवस्था में इसे ब्याज के नाम से नहीं पुकारा जाता है। इस प्रकार समाजवाद में ब्याज-दर हिसाब रखने के उद्देश्य (accounting or book-keeping purpose) के लिए आवश्यक है।[16] **स्पष्ट है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज-दर चोर दरवाजे से प्रवेश करती है और पूँजी के वितरण या राशनिंग के महत्त्वपूर्ण कार्य का सम्पादन करती है। दूसरे शब्दों में पूंजी की उत्पादकता को अप्रत्यक्ष रूप से मान्यता दी जाती है। अथवा यह कहिए कि ब्याज दर निर्धारण का एक पक्ष है। 'घुमावदार' या 'पूँजीवादी' ('roundabout' or 'capitalist') तरीकों उत्पादकता की।**

(ii) समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज दर 'चोर-दरवाजे' से एक दूसरी प्रकार से भी प्रवेश करती है। समाजवादी सरकार देश की कुल श्रम-शक्ति (labour force) में से एक भाग 'उपभोग-वस्तुओं' के उत्पादन में तथा दूसरा भाग 'उत्पादक-वस्तुओं या पूंजीगत वस्तुओं' (producer's goods or capital goods) के उत्पादन में प्रयुक्त करती है। उत्पादक वस्तुओं की सहायता से भविष्य में उपभोग वस्तुओं का अधिक उत्पादन सम्भव होगा और भविष्य में श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊँचा उठेगा, परन्तु वर्तमान में जो श्रमिक 'उत्पादक वस्तुओं' का उत्पादन कर रहे हैं उनका भरण-पोषण (उपभोग वस्तुओं की पूर्ति द्वारा) अन्य श्रमिकों को करना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोग वस्तुओं में से एक हिस्सा उत्पादक-वस्तु के उत्पादन में लगे हुए श्रमिकों को देना पड़ेगा; दूसरे शब्दों में, अन्य श्रमिकों के उपभोग वस्तुओं के हिस्सों में से एक समान प्रतिशत दर (equal percentage rate) की कटौती करनी होगी और यह कटौती (reduction) एक प्रकार से ब्याज-दर की भांति ही है। "अतः श्रमकों को प्रतीक्षा करनी पड़ती है और भविष्य में उनको अधिक आय प्राप्त हो सकें इसके लिए उन्हें अपनी आयों में अस्थायी कटौती सहन करनी पड़ती है। यह अस्थायी

---

16 According to *Samuelson* social engineers (i.e., economists) in Soviet Union need some [illegible] of interest rate for making efficient investment calculations; as a result, about [illegible] different accounting methods are in vogue there for introducing a thinly disguised [illegible] rate concept into Soviet planning procedures. (But, of course, no one necessarily [illegible] interest income from them.)

कटौती और कुछ नहीं है बल्कि ब्याज है।"[17] दूसरे शब्दों में, समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज निर्धारण का दूसरा पक्ष 'उपभोग-स्थगन' ('abstinence' or 'posponnung consumption for future') या 'मितव्यय' ('thrift') है; परन्तु यह उपभोग-स्थगन ऊपर से योजना-समिति के दबाव द्वारा लागू (enforce) किया जाता है, व्यक्तियों की स्वेच्छा पर नहीं छोड़ा जाता।

समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज की स्थिति के उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण को प्रो० बेनहम (Benham) के शब्दों में, संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—"इस प्रकार समाजवाद के अन्तर्गत ब्याज की दर हिसाब लगाने के लिए प्रयुक्त की जाती है, यद्यपि किसी व्यक्ति द्वारा न ब्याज का भुगतान किया जाता है और न उसे प्राप्त किया जाता है। एक ओर ब्याज की दर उत्पादन के 'घुमावदार' या 'पूंजीवादी' तरीकों की उत्पादकता द्वारा तथा दूसरी ओर 'उपभोग-स्थगन' या 'मितव्यय' द्वारा निर्धारित होगी। परन्तु 'उपभोग-स्थगन' या मितव्यय' ऊपर से योजना समिति के [illegible] के निर्णयों पर नहीं छोड़ा जाता। [illegible] होंगे—अर्थात्, वर्तमान आव-[illegible]ए साधनों का प्रयोग।"[18]

४. निष्कर्ष (Conclusion)

(i) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज का 'कीमत के रूप में' पूर्ण औचित्य है; परन्तु ब्याज को 'केवल आय के रूप में' उचित ठहरना कठिन है।

(ii) पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों में ब्याज दर का अस्तित्व होता है, परन्तु समाजवाद में ब्याज दर की उपस्थिति अप्रत्यक्ष (indirect) होती है। ब्याज की दृष्टि से पूंजीवाद तथा समाजवाद में भेद ब्याज की उपस्थिति में अन्तर के कारण नहीं होता है (क्योंकि ब्याज दर तो दोनों अर्थव्यवस्थाओं में उपस्थित होती है), बल्कि दोनों में भेद इसलिए होता है कि—(अ) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्तियों का एक वर्ग ऐसा होता है जो कि अपनी निजी पूंजी (privately owned capital) की पूर्ति के बदले में ब्याज का भुगतान प्राप्त करता है जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में ब्याज प्राप्त करने वाले निजी व्यक्तियों का ऐसा वर्ग उपस्थित नहीं होता; (ब) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में विभिन्न परियोजनाओं (projects) का मूल्यांकन बाजार कीमतों (market prices), जिनमें से ब्याज एक है, पर किया जाता है; जबकि समाजवाद में उनका मूल्यांकन सरकार-निर्धारित- कीमतों (State-administered-prices), जिनमें से ब्याज अर्थात् एक 'आदर्श स्तर' (standard-rate) भी एक है, पर किया जाता है।

(iii) पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों में 'ब्याज' या 'ब्याज-गणना' (interest calculation) के आधारभूत कार्य अपरिवर्तित रहते हैं और इसलिए दोनों में ब्याज का औचित्य है। "पूंजी प्रयोग करने वाली अर्थव्यवस्था में ब्याज-गणना एक आवश्यक पार्ट अदा करती है। हम

17 "That is, labourers must wait and in order that they may enjoy greater incomes in the future, they suffer a temporary reduction of their incomes. This temporary reduction is nothing but the rate of interest."

18 "[illegible] calculation, [illegible] by the pro-[illegible] one hand, [illegible] it would be [illegible] decisions of [illegible] of looking [illegible] cad of for current, wants." —Benham, *Economics*, p. 297

(ग) बोनस, रॉयल्टी (Royalties), कमीशन (Commission), इत्यादि; इन सब को भी अर्थशास्त्री मजदूरी के अन्तर्गत मानते हैं।

स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र में 'श्रम की कीमत' अर्थात् 'मजदूरी' का अर्थ बहुत विस्तृत है।

नकद मजदूरी तथा असल मजदूरी
(MONEY OR NOMINAL WAGES AND REAL WAGES)

नकद मजदूरी तथा असल मजदूरी का अर्थ (Meaning of Money and Real Wages)

[illegible] वह है जो कि श्रम [illegible] इत्यादि) में द्रव्य के रूप में दी जाती है। परन्तु नकद मजदूरी से किसी श्रमिक की वास्तविक स्थिति का पूर्ण ज्ञान नहीं होगा, इसके लिए असल या वास्तविक मजदूरी की जानकारी आवश्यक है।

वास्तविक मजदूरी वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा को बताती है जो कि एक व्यक्ति अपनी नकद या द्राव्यिक मजदूरी से प्राप्त कर सकता है; दूसरे शब्दों में, वास्तविक मजदूरी द्राव्यिक मजदूरी की 'क्रय शक्ति' (purchasing power) होती है।[2] वास्तविक मजदूरी में नकद मजदूरी के अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ तथा सुविधाएँ भी शामिल होती हैं, जैसे व्यक्ति को नि:शुल्क डाक्टरी सहायता, सस्ता मकान, बोनस, इत्यादि।

एक व्यक्ति की वास्तविक मजदूरी उसकी द्राव्यिक मजदूरी पर तथा खरीदी जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों पर निर्भर करती है। ध्यान रहे कि द्राव्यिक मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी आवश्यक रूप से एक दिशा में नहीं चलती। उदाहरणार्थ, यह सम्भव है कि द्राव्यिक मजदूरी बढ़े और इसके साथ-साथ वास्तविक मजदूरी घटे यदि वस्तुओं की कीमतें, द्राव्यिक मजदूरी (money wages) में वृद्धि की अपेक्षा, अधिक तेजी से बढ़ती हैं।

वास्तविक मजदूरी को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Real Wages)

एक व्यक्ति की सही आर्थिक स्थिति का ज्ञान उसकी द्राव्यिक मजदूरी से नहीं बल्कि वास्तविक मजदूरी से होता है। विभिन्न व्यवसायों में वास्तविक मजदूरी भिन्न-भिन्न होती है। वास्तविक मजदूरी निम्न तत्वों से प्रभावित होती है :

(१) द्रव्य की क्रय शक्ति—(Purchasing power of the money)—एक व्यक्ति अपनी एक निश्चित द्राव्यिक आय से अधिक वस्तुएँ और सेवाएँ खरीद सकता है यदि उनकी कीमतें कम हैं। एक छोटे शहर में, बहुत बड़े शहर (जैसे कलकत्ता, बम्बई, इत्यादि) की अपेक्षा, प्राय: वस्तुएँ और सेवाएँ सस्ती होती हैं। यदि एक छोटे शहर में एक व्यक्ति या मजदूर को प्रति माह २०० रुपये द्राव्यिक मजदूरी मिलती है तो उसकी वास्तविक मजदूरी उतने ही रुपये पाने वाले बड़े शहर के मजदूर की अपेक्षा अधिक होगी। कारण स्पष्ट है कि छोटे शहर में मुद्रा की क्रय शक्ति अधिक होती है अपेक्षाकृत बड़े शहर के।

(२) अतिरिक्त आय (Extra earnings)—किसी व्यक्ति की वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करने के लिए हमें अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाली आय को भी ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरणार्थ,

(i) एक अध्यापक की वास्तविक आय उसके नकद वेतन से अधिक हो सकती है यदि वह पुस्तकें तथा लेख लिखकर रॉयल्टी प्राप्त करता है।

---

2 Real wages indicate the quantity of goods and services which one can obtain with his money wages, in other words, real wages are the 'purchasing power' of money wages.

'पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर 'पूँजी-प्रयोग करने वाली अर्थव्यवस्था' का प्रयोग क्यों करते हैं ? इसका कारण है कि ब्याज के कार्यात्मक औचित्य (functional justification) का सम्बन्ध इस बात से नहीं होता कि पूँजी का स्वामी कौन है, ब्याज कौन प्राप्त करता है अथवा ब्याज का भुगतान वास्तव में होता है या नहीं। समस्त पूँजी पर सरकार का स्वामित्व होने पर भी ब्याज समान आर्थिक कार्यों का सम्पादन करती है।'[19]

४ मजदूरी [WAGES]

मजदूरी का अर्थ (MEANING OF WAGES)

श्रम (labour) **के प्रयोग के लिए दी गयी कीमत** (price) **मजदूरी कहलाती है।**[1]

उपर्युक्त परिभाषा को समझने के लिए निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

(अ) अर्थशास्त्र में 'श्रम' शब्द का अर्थ शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के श्रम से लिया जाता है। अतः मजदूरी मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार के श्रम के लिए कीमत है।

(ब) अर्थशास्त्री 'श्रम' शब्द का बहुत विस्तृत अर्थ लेते हैं और मजदूरी का अर्थ निम्न वर्गों के श्रम के लिए भुगतान है :

(i) संकीर्ण अर्थ में श्रमिक अर्थात् कारखानों तथा फैक्ट्रियों में कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के श्रमिक (blue-collar workers), क्लर्क (white-collar workers), इत्यादि।

(ii) फर्मों तथा फैक्ट्रियों के मैनेजर, उच्च अधिकारी, सरकारी अफसर इत्यादि। साधारण बोलचाल की भाषा में इनके श्रम के पुरस्कार को वेतन कहा जाता है, परन्तु आर्थिक दृष्टि से ये भी मजदूरी है और वेतन तथा मजदूरी में कोई भी अन्तर नहीं किया जाता।

(iii) व्यावसायिक लोग (professional people)—वकील, अध्यापक, डाक्टर इत्यादि; इनके श्रम के पुरस्कार भी मजदूरी के अन्तर्गत आते हैं।

(iv) छोटे व्यापारी (small businessmen)—बहुत छोटे खुदरा व्यापारी (very small retailers), नाई (barbers), मरम्मत करने वाले विभिन्न प्रकार के मिस्त्री, इत्यादि। ये लोग अपने व्यवसायों को चलाने में श्रम के रूप में सेवाएँ प्रदान करते हैं और इनकी सेवाओं के पुरस्कार को अर्थशास्त्री प्रायः मजदूरी के अन्तर्गत रखते हैं।

---

19 "Interest calculations play a nececessary role in a capital-using economy. Why do we say "capital-using" rather than "capitalistic"? Because the functional justification of interest has nothing to do with who owns the capital, who receives the interest, or even whether interest payments are made at all. Interest serves the same economic functions even if all capital is publicly owned."

1 Wages are the price paid for the use of labour.

पड़ता है, जैसे डाक्टर, इंजीनीयर, इत्यादि का व्यवसाय । अतः वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करते समय ट्रैनिंग की अवधि तक उसके व्यय को ध्यान में रखना पड़ता है ।

(८) भविष्य में उन्नति की आशा (Good future prospects)—यदि किसी व्यवसाय में व्यक्तियों के लिए भविष्य में पद-उन्नति (promotion) के अच्छे अवसर रहते हैं, तो ऐसे व्यवसायों में आरम्भ में नकद मजदूरी के कम होने पर भी वास्तविक मजदूरी अधिक होगी ।

मजदूरी के भुगतान की रीतियाँ
(METHODS OF WAGE PAYMENT)

श्रमिकों को मजदूरी कई ढंग से दी जाती है । मजदूरी के भुगतान की मुख्य रीतियाँ दो हैं—(१) समयानुसार मजदूरी (Time Wages), तथा (२) कार्यानुसार मजदूरी (Price Wages) । प्रत्येक रीति का विस्तृत रूप से नीचे विवेचन किया गया है ।

समयानुसार मजदूरी (Time Wages)

जब मजदूरी कार्य करने के समय के आधार पर दी जाती है तो उसे 'समयानुसार मजदूरी' (time wages) कहते हैं । वह समय, सामान्यतया, एक घण्टा, एक दिन, एक सप्ताह या एक माह होता है । इस रीति में एक समान कार्य के लिए प्रत्येक मजदूर को समान मजदूरी मिलती है चाहे कोई मजदूर अपेक्षाकृत कम कार्य करे या अधिक । इस रीति के अन्तर्गत मजदूर द्वारा किये गये कार्य का मजदूरी से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है, परन्तु मालिक (employer) चाहे तो कार्य का एक न्यूनतम मान (minimum standard) तय कर सकता है ।

समयानुसार मजदूरी के गुण (Merits of Time Wages)

संसार में समयानुसार मजदूरी अधिक प्रचलित है । इसके मुख्य गुण निम्न हैं :

(१) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिकों के रोजगार में स्थायित्व रहता है । यदि मालिक ५-१० दिन को किसी कारणवश कार्य बन्द कर देता है तो भी श्रमिक का रोजगार बना रहता है, कार्य आरम्भ होते ही वह पुनः काम पर लग जाता है और उसका रोजगार सुरक्षित रहता है । श्रमिक की बीमारी की दशा में भी उसका रोजगार बना रहता है और प्रायः उसको मजदूरी मिलती है ।

(२) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता । चूंकि मजदूरी एक निश्चित समय तक कार्य करने पर मिलती है, इसलिए मजदूर को अधिक उत्पादन करने के लिए बहुत तेजी से कार्य करने का लालच नहीं रहता । वह सुविधानुसार औसत दर्जे की तेजी से कार्य करता है, परिणामस्वरूप उसे अधिक औद्योगिक थकान नहीं होती और उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता ।

(३) जब कार्य बारीक हो, अधिक सतर्कता और व्यक्तिगत ध्यान (more care and individual attention) चाहता हो, या नाजुक मशीन (delicate machine) का प्रयोग किया जा रहा हो, तो समयानुसार मजदूरी अधिक उपयुक्त होती है क्योंकि ऐसी स्थितियों में जल्दबाजी से कार्य बिगड़ जाता है ।

(४) जब किसी कार्य का प्रमापीकरण (standardisation) नहीं होता और इसलिए उसे ठीक प्रकार से मापा नहीं जा सकता (जैसे, डाक्टर, अध्यापक, मैनेजर, इत्यादि के कार्य) तो ऐसी दशा में समयानुसार मजदूरी अधिक उपयुक्त रहती है ।

(५) समयानुसार मजदूरी के अन्तर्गत समय की कोई पाबन्दी नहीं होती है, इसलिए कार्य सावधानी से किया जाता है, कार्य करने की एक उचित गति (speed) रखी जा सकती है

(ii) एक फैक्ट्री में कार्य करने वाले मजदूर की वास्तविक मजदूरी नकद मजदूरी से अधिक होगी यदि उसके आश्रितों (स्त्री तथा बच्चों) को स्थान विशेप पर घरेलू नौकरों के रूप में कार्य या अन्य प्रकार का कार्य आसानी के मिल जाता है।

(३) **अतिरिक्त सुविधाएँ** (Extra facilities)—यदि किसी व्यवसाय में एक व्यक्ति को अपनी नकद मजदूरी के अतिरिक्त कुछ अन्य सुविधाएँ जैसे, निःशुल्क डाक्टरी सहायता (free medical aid), निःशुल्क या सस्ते किराये पर मकान की सुविधा, स्कूल में बच्चों की फीस माफ की सुविधा, इत्यादि, प्राप्त हैं तो उस व्यक्ति की असल मजदूरी अधिक होगी।

(४) **कार्य का स्वभाव** (Nature of employment)—(i) **कुछ कार्य कठिन, अरुचिकर तथा जोखिमपूर्ण** होते हैं, जैसे कोयले की खानों में मजदूरी का कार्य, रेलवे ड्राइवर का कार्य, लोहा गलाने की भट्टी के मजदूर (blast furnace worker) का कार्य इत्यादि। इस प्रकार के कार्यों में नकद मजदूरी ऊँची होने पर भी वास्तविक मजदूरी कम होगी। इसके विपरीत कुछ कार्य साफ, रुचिकर तथा आदरपूर्ण होते हैं (जैसे एक अध्यापक का कार्य); इस प्रकार के कार्यों में नकद मजदूरी की अपेक्षा वास्तविक मजदूरी अधिक होगी।

(ii) **कार्य करने की दशाओं** जैसे कार्य करने के घण्टों, छुट्टियों इत्यादि पर भी वास्तविक मजदूरी निर्भर करती है। यदि दो व्यक्ति दो व्यवसायों में समान नकद मजदूरी पाते हैं और प्रथम व्यवसाय में प्रतिदिन ५ घण्टे कार्य करना पड़ता है तथा साल भर में पर्याप्त छुट्टियाँ मिलती हैं, जबकि दूसरे व्यवसाय में ८ घण्टे कार्य करना पड़ता है और साल भर में कम छुट्टियाँ मिलती हैं, तो प्रथम व्यवसाय की वास्तविक मजदूरी अधिक होगी अपेक्षाकृत दूसरे के।

(iii) वास्तविक मजदूरी **कार्य की नियमितता** (regularity of employment) या **कार्य की अवधि** (period of employment) पर भी निर्भर करती है। यदि एक व्यक्ति को साल भर में नियमित रूप से कार्य मिलता है और उसे प्रति माह २०० रुपये नकद मजदूरी मिलती है, जबकि एक दूसरे व्यक्ति को साल भर में केवल ४ महीने कार्य मिलता है तथा उसे प्रति माह ३०० रु० नकद मजदूरी मिलती है, तो दूसरे व्यक्ति की नकद मजदूरी अधिक होने पर भी उसकी वास्तविक मजदूरी कम होगी अपेक्षाकृत पहले व्यक्ति के।

(५) **व्यावसायिक व्यय** (Trade or job expenses)—कुछ व्यवसायों में व्यक्तियों को अपनी कार्य कुशलता का एक अच्छा स्तर बनाये रखने के लिए कुछ व्यय करने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ एक प्रोफेसर को अपने विषय से सम्बन्धित नवीनतम पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, इत्यादि पर पर्याप्त व्यय करना पड़ता है तभी वह विषय से सम्बन्धित विकास की आधुनिक प्रवृत्तियों से अवगत रह सकता है। अतः एक प्रोफेसर की वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करने के लिए पुस्तकों पर व्यय को घटाना आवश्यक है।

(६) **बिना भुगतान के अतिरिक्त कार्य** (Extra work without payment)—यदि किसी व्यक्ति को कार्य के नियमित घण्टों के अतिरिक्त और अधिक कार्य करना पड़ता है परन्तु उसके लिए कोई भुगतान नहीं मिलता, तो उस व्यक्ति की वास्तविक मजदूरी कम हो जायेगी। उदाहरणार्थ, एक सरकारी दफ्तर में कार्य करने वाले चपरासी को दफ्तर में ८-१० घन्टे कार्य करने के अतिरिक्त १-२ घण्टे सरकारी अफसर के घर पर भी कार्य करना पड़ता है जिसके लिए प्रायः उसे कोई भुगतान नहीं मिलता; इस प्रकार उसकी वास्तविक मजदूरी कम हो जाती है।

(७) **ट्रेनिंग का समय तथा व्यय** (Training period and expenses)—कुछ व्यवसायों में कार्य करने के लिए एक लम्बे समय तक ट्रेनिंग लेनी पड़ती है और पर्याप्त धन व्यय करना

स्तर है, जैसे डाक्टर, इंजीनियर, इत्यादि का व्यवसाय। अतः वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करते समय ट्रेनिंग की अवधि तथा उसके व्यय को ध्यान में रखना पड़ता है।

(८) भविष्य में उन्नति की आशा (Good future prospects)—यदि किसी व्यवसाय में श्रमिकों के लिए भविष्य में पद-उन्नति (promotion) के अच्छे अवसर रहते हैं, तो ऐसे व्यवसायों में आरम्भ में नकद मजदूरी के कम होने पर भी वास्तविक मजदूरी अधिक होगी।

मजदूरी के भुगतान की रीतियाँ
(METHODS OF WAGE PAYMENT)

श्रमिकों को मजदूरी कई ढंग से दी जाती है। मजदूरी के भुगतान की मुख्य रीतियाँ दो हैं—(१) समयानुसार मजदूरी (Time Wages), तथा (२) कार्यानुसार मजदूरी (Price Wages)। प्रत्येक रीति का विस्तृत रूप से नीचे विवेचन किया गया है।

समयानुसार मजदूरी (Time Wages)

जब मजदूरी कार्य करने के समय के आधार पर दी जाती है तो उसे 'समयानुसार मजदूरी' (time wages) कहते हैं। यह समय, सामान्यतया, एक घण्टा, एक दिन, एक सप्ताह या एक माह होता है। इस रीति में एक समान कार्य के लिए प्रत्येक मजदूर को समान मजदूरी मिलती है चाहे कोई मजदूर अपेक्षाकृत कम कार्य करे या अधिक। इस रीति के अन्तर्गत मजदूर द्वारा किये गये कार्य का मजदूरी से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है, परन्तु मालिक (employer) चाहे तो कार्य का एक न्यूनतम मान (minimum standard) तय कर सकता है।

समयानुसार मजदूरी के गुण (Merits of Time Wages)

संसार में समयानुसार मजदूरी अधिक प्रचलित है। इसके मुख्य गुण निम्न हैं :

(१) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिकों के रोजगार में स्थायित्व रहता है। यदि मालिक ५-१० दिन को किसी कारणवश कार्य बन्द कर देता है तो भी श्रमिक का रोजगार बना रहता है, कार्य आरम्भ होते ही वह पुनः काम पर लग जाता है और उसका रोजगार सुरक्षित रहता है। श्रमिक की बीमारी की दशा में भी उसका रोजगार बना रहता है और प्रायः उसको मजदूरी मिलती है।

(२) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। चूँकि मजदूरी एक निश्चित समय तक कार्य करने पर मिलती है, इसलिए मजदूर को अधिक उत्पादन करने के लिए बहुत तेजी से कार्य करने का लालच नहीं रहता। वह सुविधानुसार औसत दर्जे की तेजी से कार्य करता है, परिणामस्वरूप उसे अधिक औद्योगिक थकान नहीं होती और उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

(३) जब कार्य बारीक हो, अधिक सतर्कता और व्यक्तिगत ध्यान (more care and individual attention) चाहता हो, या नाजुक मशीन (delicate machine) का प्रयोग किया जा रहा हो, तो समयानुसार मजदूरी अधिक उपयुक्त होती है क्योंकि ऐसी स्थितियों में जल्दबाजी से कार्य बिगड़ जाता है।

(४) जब किसी कार्य का प्रमापीकरण (standardisation) नहीं होता और इसलिए उसे ठीक प्रकार से मापा नहीं जा सकता (जैसे, डाक्टर, अध्यापक, मैनेजर, इत्यादि के कार्य) तो ऐसी दशा में समयानुसार मजदूरी अधिक उपयुक्त रहती है।

(५) समयानुसार मजदूरी के अन्तर्गत समय की कोई पाबन्दी नहीं होती है, इसलिए कार्य सावधानी से किया जाता है, कार्य करने की एक उचित गति (speed) रखी जा

जिससे मशीनों तथा औजारों की टूटफूट कम होती है तथा माल की बर्बादी (waste) **नहीं होती है।**

(६) यह रीति **कार्य में नियमितता तथा निश्चितता लाती है।** मालिक को बार-बार नये मजदूरों की खोज नहीं करनी पड़ती है, तथा मजदूर भी प्रायः अपने रोजगार के बारे में निश्चित रहते हैं। इस प्रकार कार्य नियमितता के साथ चलता रहता है।

समयानुसार मजदूरी के दोष (Demerits of Time Wages)

समयानुसार मजदूरी के कुछ दोष भी हैं जो इस प्रकार हैं :

इस रीति के अन्तर्गत श्रमिकों को **कार्य के अनुसार मजदूरी नहीं मिलती।** प्रत्येक मजदूर को निश्चित समय कार्य करने पर समान मजदूरी मिलती है चाहे वह कम काम करे या अधिक। प्रायः श्रमिक अधिक कुशलता के साथ कार्य नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि उन्हें एक पूर्व निश्चित मजदूरी मिलेगी। परिणामस्वरूप इस रीति के अन्तर्गत **कार्यकुशलता** (Efficiency) **को प्रोत्साहन नहीं मिलता।**

(२) इस रीति के कारण प्रायः श्रमिक अपने **कर्तव्य की उपेक्षा** करते हैं और **सुस्ती से कार्य** करते हैं। श्रमिक यह जानते हैं कि एक निश्चित समय के पश्चात् उन्हें एक पूर्व निर्धारित वेतन अवश्य मिल जायेगा, परिणामस्वरूप वे आराम तथा सुस्ती से कार्य करते हैं और अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं।

कुशल श्रमिकों के ऊपर इस रीति का बुरा प्रभाव पड़ता है। कुशल श्रमिकों को कोई द्राव्यिक प्रेरणा नहीं मिलती है, इसलिए वे आराम पसन्द हो जाते हैं और उनकी कार्यक्षमता में धीरे-धीरे कमी होती जाती है।

(३) **उद्योगपतियों या मालिकों को प्रायः कम काम के लिए अधिक मजदूरी या वेतन देना पड़ता है;** इसका कारण स्पष्ट है कि श्रमिक प्रायः सुस्ती और आराम के साथ कार्य करते हैं और इस प्रकार उनके द्वारा कम उत्पादन किया जाता है।

(४) इस रीति के अन्तर्गत मालिक को **पर्याप्त मात्रा में निरीक्षण-व्यय करना पड़ता है।** श्रमिकों से ठीक मात्रा में काम लेने के लिए उद्योगपति को कई निरीक्षक (Supervisors) रखने पड़ते हैं, इस निरीक्षण-व्यय के कारण वस्तु की उत्पादन-लागत बढ़ती है।

(५) इस रीति के अन्तर्गत **श्रमिकों तथा मालिकों में प्रायः अच्छे सम्बन्ध नहीं रहते हैं।** इसका कारण है कि श्रमिक अपनी मजदूरी बढ़ाने की माँग करते रहते हैं और मालिकों की यह शिकायत बनी रहती है कि श्रमिक कम काम करते हैं। इस प्रकार आशंकाएँ तथा प्रति-आशंकाएँ दोनों के बीच मनमुटाव को जन्म देती हैं।

समयानुसार मजदूरी की रीति के गुण तथा दोषों का अध्ययन करने के बाद हम इस **निष्कर्ष** पर पहुँचते हैं कि इस रीति का प्रयोग निम्न स्थितियों में अधिक उपयुक्त है :

(i) उन स्थितियों में जिनमें कि कार्य को ठीक प्रकार से मापा नहीं जा सकता, जैसे डाक्टर, अध्यापक, मैनेजर, सुपरवाइजर, फोरमैन, स्टोर-कीपर, इत्यादि के कार्य।

(ii) उन स्थितियों में जहाँ पर कि उत्पादित वस्तु या कार्य की किस्म पर अधिक बल दिया जाता है।

(iii) उन स्थितियों में जिनमें कि उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जाता है क्योंकि यहाँ पर मालिक उचित नियन्त्रण रख सकता है।

(iv) उन स्थितियों में जिनमें कि नाजुक मशीनों तथा औजारों का प्रयोग किया जाता है।

(v) उन स्थितियों में जिनमें कि श्रमिक काम सीखने के रूप में (as apprentice) कार्य करते हैं।

कार्यानुसार मजदूरी (Piece Wages)

जब एक श्रमिक को मजदूरी उसके द्वारा किये गये कार्य की मात्रा तथा उत्तमता के आधार पर दी जाती है, तो उसे 'कार्यानुसार मजदूरी' कहते हैं। इस रीति के अन्तर्गत श्रमिक द्वारा किये गये कार्य की मात्रा तथा मजदूरी में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

कार्यानुसार मजदूरी के गुण (Merits of Piece Wages)

इस रीति के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं :

(१) इस रीति के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को मजदूरी उसकी योग्यता तथा कार्यक्षमता के अनुसार मिलती है। इसके निम्न अच्छे परिणाम होते हैं—(i) यह रीति श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है क्योंकि प्रत्येक श्रमिक अपने उत्पादन को बढ़ा कर अधिक से अधिक मजदूरी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। (ii) श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है। (iii) उत्पादन-व्यय कम होता है क्योंकि अधिक मजदूरी प्राप्त करने की दृष्टि से प्रत्येक श्रमिक मन लगाकर काम करता है, कम से कम समय में अधिकतम उत्पादन करने का प्रयत्न करता है तथा मालिक को उसके कार्य-निरीक्षण के लिए सुपरवाईजर (Supervisors) इत्यादि पर बहुत ही कम या न के बराबर व्यय करना पड़ता है।

(२) यह रीति न्यायपूर्ण है क्योंकि श्रमिकों को अपने प्रयत्नों का पूरा पुरस्कार प्राप्त हो जाता है तथा मालिकों को उतनी मजदूरी देनी होती है जितना कि श्रमिक उत्पादन करते हैं।

(३) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिक प्रायः यन्त्रों तथा औजारों का सावधानी से प्रयोग करते हैं क्योंकि उनके खराब हो जाने पर या टूटने से वे कम उत्पादन कर सकेंगे और उनकी मजदूरी कम होगी।

(४) इस रीति के अन्तर्गत श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं, उन्हें अधिक मजदूरी प्राप्त होती है, परिणामस्वरूप श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है। इसी प्रकार उपभोक्ताओं को भी लाभ होता है क्योंकि उन्हें वस्तुओं की अधिक मात्रा अपेक्षाकृत कम कीमत पर प्राप्त होती है।

कार्यानुसार मजदूरी के दोष (Demerits of Piece Wages)

इस रीति के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं :

(१) इस रीति के कारण वस्तुओं के गुण में गिरावट आती है क्योंकि अधिक उत्पादन (तथा अधिक मजदूरी प्राप्त करने) के लालच में प्रायः श्रमिक वस्तु के गुण की उपेक्षा करते हैं।

(२) अधिक मजदूरी प्राप्त करने की दृष्टि से प्रायः श्रमिक अपनी शक्ति के बाहर कार्य करते हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, वे कम आयु में ही वृद्ध दिखायी देने लगते हैं तथा कुछ वर्षों में ही उनकी कार्यकुशलता कम हो जाती है।

(३) इस रीति का प्रयोग उन कार्यों के लिए उचित नहीं है जिनमें उत्पत्ति को ठीक प्रकार से मापा नहीं जा सकता। इसी प्रकार यह रीति बारीक तथा कलात्मक कार्यों के लिए भी उपयुक्त नहीं है।

(४) इस रीति के कारण द्वेष-भावनाओं (jealousies) को प्रोत्साहन मिलता है। जो श्रमिक कम मजदूरी प्राप्त कर पाते हैं वे अधिक मजदूरी प्राप्त करने वाले कुशल श्रमिकों के प्रति जलन तथा ईर्ष्या भाव रखने लगते हैं; परिणामस्वरूप श्रमिकों के संगठन तथा सौदा करने की सामूहिक शक्ति में कमी आती है।

इतना ही नहीं मालिक भी उन श्रमिकों के प्रति ईर्ष्या करने लगते हैं जो कि अधिक मजदूरी प्राप्त करते हैं और मालिक कम मजदूरी देने का प्रयत्न करने लगते हैं, इससे श्रमिकों तथा मालिकों में भी मन-मुटाव बढ़ता है।

(५) बीमारी, दुर्घटना इत्यादि आकस्मिक घटनाओं के दिनों में **श्रमिकों को मजदूरी प्राप्त नहीं होती।** इसके अतिरिक्त श्रमिकों को प्राय: यह भय बना रहता है कि उनकी नौकरी किसी समय भी छूट सकती है, इस प्रकार इस रीति में **रोजगार का स्थायित्व नहीं रहता है।**

यह कहना कठिन है कि समयानुसार मजदूरी तथा कार्यानुसार मजदूरी में से कौन सी मजदूरी श्रेष्ठ है; दोनों के अपने गुण-दोष हैं और कोई भी रीति पूर्ण नहीं है। प्रत्येक रीति का प्रयोग परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है।

मजदूरी के सिद्धान्त
(THEORIES OF WAGES)

मजदूरी किस प्रकार निर्धारित होती है? इस सम्बन्ध में समय-समय पर प्रचलित परिस्थितियों से प्रभावित होकर प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये। मजदूरी के सभी प्राचीन सिद्धान्त दोषपूर्ण हैं और वे अब मान्य नहीं हैं। नीचे हम इन विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से आधुनिक सिद्धान्त की पृष्ठभूमि की जानकारी के लिए करते हैं।

मजदूरी कोष सिद्धान्त
(THE WAGE FUND THEORY)

इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रारम्भ में कई क्लासीकल अर्थशास्त्रियों का हाथ रहा, परन्तु जे० एस० मिल (J. S. Mill) ने इस सिद्धान्त को अन्तिम (final) रूप दिया, इसलिए 'मजदूरी कोष सिद्धान्त' के निर्माता मिल ही माने जाते हैं। इस सिद्धान्त की आलोचना के परिणामस्वरूप बाद में मिल ने इस सिद्धान्त को त्याग दिया।

मिल के अनुसार, श्रमिकों की मजदूरी 'जनसंख्या तथा पूँजी के अनुपात' (proportion between population and capital)[3] पर निर्भर करती है। जनसंख्या का अर्थ 'श्रमिकों की जनसंख्या' अर्थात् 'श्रमिकों की पूर्ति' से है। देश में उपलब्ध पूँजी का एक भाग या कोष (fund) मजदूरी के भुगतान के लिए रख दिया जाता है। यदि पूँजी का यह कोष अर्थात् 'मजदूरी कोष' (wages fund) अधिक है तो श्रमिकों की माँग अधिक होगी, तथा उसके कम होने पर मजदूरों की माँग कम होगी; दूसरे शब्दों में श्रमिकों की माँग देश में उपलब्ध पूँजी अर्थात् मजदूरी-कोष पर निर्भर करती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मजदूरी दो बातों पर निर्भर करती है—(i) **मजदूरी-कोष** (Wages fund) : पूँजीपति अपनी चल पूँजी (circulating capital) का एक भाग मजदूरी के भुगतान के लिए अलग रख देते हैं जिसे 'मजदूरी कोष' कहा जाता है। इस कोष का निर्माण पिछली बचतों के आधार पर होता है तथा समय विशेष में यह लगभग स्थिर रहता है। यह कोष मजदूरों की माँग निर्धारित करता है, यदि यह कोष अधिक है तो श्रमिकों की माँग अधिक है और इस कोष के कम होने पर श्रमिकों की माँग भी कम होगी। (ii) **श्रमिकों की पूर्ति** : समय विशेष में मजदूरी कोष लगभग स्थिर या निश्चित रहता है, इसलिए श्रमिकों की संख्या अधिक होने पर

---

3 Lifted from Briggs and Jordon, *A Textbook of Economics*, p. 310

उनकी मजदूरी की सामान्य दर (general wage rate) कम होगी तथा उनकी संख्या कम होने पर मजदूरी की दर ऊँची होगी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है :

$$\text{मजदूरी की सामान्य दर (The general wage rate)} = \frac{\text{मजदूरी कोष (Wages fund)}}{\text{श्रमिकों की संख्या (Number of workers)}}$$

उपर्युक्त सूत्र से स्पष्ट है कि मजदूरी की सामान्य दर को दो प्रकार से बढ़ाया जा सकता है—मजदूरी कोष में वृद्धि करके या मजदूरों की संख्या में कमी करके। मजदूरी कोष पिछली बचतों द्वारा निर्मित होता है और वह समय विशेष में स्थिर रहता है, इसलिए मजदूरी की सामान्य दर केवल मजदूरों की संख्या में कमी होने पर ही बढ़ सकती है; अतः मजदूरी की दर में वृद्धि के लिए श्रमिकों को अपनी जनसंख्या कम करनी चाहिए। इस प्रकार मजदूरी की सामान्य दर में वृद्धि प्राप्त करने के लिए श्रमिक-संघों (Trade Unions) के प्रयत्न बेकार हैं। यदि किसी उद्योग विशेष में श्रमिकों की मजदूरी की दर में वृद्धि होती है तो इसका अर्थ है कि दूसरे उद्योगों में मजदूरी की दर कम होगी क्योंकि मजदूरी-कोष तो सीमित या स्थिर है।

मजदूरी-कोष सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि 'मजदूरी कोष' कैसे उत्पन्न होता है या कोष की मात्रा कैसे निर्धारित की जाती है। यह तो केवल एक 'स्पष्ट तथ्य' (self-evident fact) को बताता है कि मजदूरी कोष में मजदूरों की संख्या का भाग देने से मजदूरी की सामान्य दर प्राप्त होती है।

(२) यह सिद्धान्त श्रमिकों की कार्यक्षमता (efficiency) पर कोई ध्यान नहीं देता : (i) यह आवश्यक नहीं है कि मजदूरी कोष एक समयावधि में स्थिर रहे; यदि मजदूरों की कार्यक्षमता अधिक है तो वे अधिक उत्पादन करेंगे, उन्हें अधिक मजदूरी दी जायेगी तथा मजदूरी कोष अधिक होगा। (ii) श्रमिकों की कार्यक्षमता में भिन्नता होने के कारण उनकी मजदूरी में भिन्नता होती है। 'मजदूरी कोष सिद्धान्त' सभी मजदूरों को एक समान मान लेता है, उनकी कार्यक्षमता में अन्तर पर कोई ध्यान नहीं देता और इस प्रकार श्रमिकों की मजदूरी में अन्तर की व्याख्या नहीं करता।

(३) मजदूरी की सामान्य दर पूँजी की प्राप्य कुल मात्रा पर अनिवार्य रूप से निर्भर नहीं करती जैसा कि मजदूरी कोष सिद्धान्त मान लेता है। व्यवहार में प्रायः यह देखा गया है कि नए देशों में जिनमें कि पूँजी कम होती है, मजदूरी ऊँची होती है अपेक्षाकृत पुराने देशों के जिनमें पूँजी अधिक होती है।

(४) इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि मजदूरी में वृद्धि पूँजीपतियों के लाभ को कम कर देती है (तथा मजदूरी में कमी लाभ को बढ़ा देती है)। वास्तव में, [illegible] (law of increasing returns) के कारण तथा ऊँची मजदूरी के परिणामस्वरूप [illegible] कार्यक्षमता के कारण कुल उत्पादन में इतनी वृद्धि हो सकती है कि जिससे मजदूरी [illegible] में वृद्धि हो।

(५) **श्रमिकों की माँग मजदूरी कोष द्वारा निर्धारित नहीं होती** जैसा कि मजदूरी कोष सिद्धान्त मान लेता है। श्रमिकों की माँग तो श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है न कि मजदूरी कोष पर।

(६) सिद्धान्त की **यह मान्यता भी गलत है कि मजदूरी बढ़ने पर लाभ कम होगा, परिणामस्वरूप पूँजी उद्योग से बाहर जाने लगेगी और श्रमिकों की माँग कम हो जायेगी।** इसका कारण है कि पूँजी इतनी गतिशील (mobile) नहीं होती जितनी कि मजदूरी कोष सिद्धान्त के निर्माता समझते थे; इसी प्रकार लाभ के थोड़ा कम होने से साहसी श्रमिकों की माँग में एक दम कमी नहीं कर देते हैं।

(७) सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि मजदूरी में वृद्धि के परिणामस्वरूप सदैव श्रमिकों की जनसंख्या में वृद्धि होगी। ऐतिहासिक तथ्य यह बताते हैं कि कई देशों में मजदूरी में वृद्धि, अर्थात जीवन-स्तर में वृद्धि, के कारण जनसंख्या में कमी हुई, वृद्धि नहीं।

मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धान्त
(THE SUBSISTENCE THEORY OF WAGES)

१८वीं शताब्दी में फ्रांस के फीज्योक्रेट्स सम्प्रदाय (physiocrats school) के अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। जर्मनी के अर्थशास्त्री लेसेल (Lassalle) ने इस सिद्धान्त को मान्यता दी तथा इसे 'मजदूरी का लोह सिद्धान्त' (Iron Law of Wages) या 'मजदूरी का ब्रेजन निगम' (Brazen Law of Wages) का नाम दिया। यह सिद्धान्त **माल्थस** के जनसंख्या के सिद्धान्त पर आधारित है।

इस सिद्धान्त के अनुसार **मजदूरी की दर द्रव्य की उस मात्रा के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है जोकि श्रमिकों के जीवन-निर्वाह के लिए केवल पर्याप्त है। यदि किसी समय में मजदूरी जीवन निर्वाह से अधिक है,** तो श्रमिकों की जनसंख्या में वृद्धि होगी, श्रमिकों में रोजगार के लिए प्रतियोगिता बढ़ेगी और मजदूरी घट कर ठीक जीवन-निर्वाह के स्तर पर आ जायेगी। **यदि मजदूरी जीवन निर्वाह से कम है,** तो बहुत से श्रमिक शादी नहीं कर पायेंगे, श्रमिकों की जनसंख्या में कमी होगी, श्रमिकों की पूर्ति, माँग की अपेक्षा, कम होने से मजदूरी बढ़ेगी और बढ़ कर ठीक जीवन-निर्वाह के स्तर पर आ जायेगी। इस प्रकार मजदूरी की प्रवृत्ति जीवन-निर्वाह के स्तर के बराबर होने की रहती है।

मजदूरी के जीवन-निर्वाह सिद्धान्त की आलोचना

सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) **जीवन-निर्वाह के स्तर को ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं किया जा सकता क्योंकि** प्रत्येक श्रमिक की आवश्यकताएँ, परिवार के सदस्यों की संख्या, इत्यादि भिन्न-भिन्न होती हैं।

(२) **यह सिद्धान्त एक-पक्षीय** (One-sided) है; यह केवल श्रमिकों की पूर्ति की दशाओं की व्याख्या करता है और श्रमिकों की माँग की उपेक्षा (ignore) करता है। श्रमिकों की माँग उनकी उत्पादकता के कारण होती है, इसलिए मजदूरी का सम्बन्ध उत्पादकता से होना चाहिए; परन्तु यह सिद्धान्त इस बात की उपेक्षा करता है।

(३) यह सिद्धान्त **इस बात की व्याख्या नहीं करता है कि विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी क्यों भिन्न होती है।** इस सिद्धान्त के अनुसार सभी श्रमिकों की मजदूरी एक समान होगी सभी से जीवन-निर्वाह का स्तर लगभग समान होगा; परन्तु इस प्रकार की धारणा उचित है।

(४) यह सिद्धान्त न्यायसंगत तथा उचित (equitable and just) नहीं है। श्रमिकों को मजदूरी केवल जीवन-निर्वाह के बराबर दी जाये यह बात उचित तथा न्यायसगत नहीं है। श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा उत्पादकता को बढ़ाने के लिए ऊँची मजदूरी आवश्यक है।

(५) यह सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण मे श्रम-संघों के प्रभाव की उपेक्षा करता है।

(६) इस सिद्धान्त की यह मान्यता गलत है कि मजदूरी के जीवन-निर्वाह के अधिक होने पर श्रमिकों की जनसंख्या में वृद्धि होगी। श्रमिकों की मजदूरी ऊँची होने से उनका जीवन-स्तर ऊँचा होगा और ऊँचे जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए प्रायः श्रमिक कम सन्तान चाहते है।

मजदूरी का जीवन स्तर सिद्धान्त
(THE STANDARD OF LIVING THEORY OF WAGES)

यह सिद्धान्त 'जीवन-निर्वाह सिद्धान्त' का सुधरा हुआ हुआ रूप है। १९वीं शताब्दी के अन्त मे 'जीवन-निर्वाह' शब्द का त्याग कर दिया गया तथा उसके स्थान पर अधिक उपयुक्त शब्द 'जीवन-स्तर' का प्रयोग किया गया।

मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त बताता है कि श्रमिकों की मजदूरी केवल जीवन-निर्वाह योग्य ही नही होनी चाहिए बल्कि **मजदूरी इतनी होनी चाहिए जो श्रमिकों के उस जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए पर्याप्त हो जिसके वे आदी हो चुके हैं।** जीवन-स्तर के अन्तर्गत वे सब अनिवार्य, आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुएँ आ जाती है जिसके कि श्रमिक आदी हो जाते है।

यदि मजदूरी जीवन-स्तर से कम है तो बहुत से श्रमिक शादी करने मे असमर्थ होंगे और उनकी संख्या कम होगी, श्रमिकों की पूर्ति कम होने से उनकी मजदूरी बढकर ठीक जीवन-स्तर के बराबर हो जायेगी। यदि मजदूरी जीवन-स्तर से अधिक है तो श्रमिकों की पूर्ति बढ़ेगी और मजदूरी घट कर जीवन-स्तर के बराबर हो जायेगी। इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी की प्रवृत्ति जीवन-स्तर के बराबर होने की होती है।

मजदूरी के जीवन स्तर सिद्धान्त की आलोचना

यह सिद्धान्त भी अपूर्ण है। इसकी मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित है :

(१) यह सिद्धान्त एक पक्षीय है क्योंकि यह श्रमिकों के केवल पूर्ति पक्ष की ही व्याख्या करता है। मजदूरी केवल श्रमिकों के जीवन-स्तर (अर्थात पूर्ति) द्वारा ही नही बल्कि उनकी उत्पादकता (अर्थात माँग) द्वारा भी प्रभावित होती है।

(२) **यह कहना कठिन है कि मजदूरी प्रत्यक्ष रूप से जीवन-स्तर द्वारा निर्धारित होती है।** वास्तव में, मजदूरी जीवन-स्तर को प्रभावित करती है तथा जीवन-स्तर (श्रमिकों की कार्यक्षमता को बढ़ा कर) मजदूरी को प्रभावित करता है, दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार यह सिद्धान्त एक प्रकार से वृत्ताकार तर्क (circular reasoning) मे फँस जाता है।

(३) यह कहना भी पूर्णतया सही नहीं है कि श्रमिक एक प्रकार के जीवन-स्तर के आदी हो जाते हैं; जीवन-स्तर एक परिवर्तनशील तत्त्व है जो समय के साथ बदलता रहता है। यह सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं करता कि जीवन-स्तर परिवर्तनशील है तथा उसमें वृद्धि होने से मजदूरी में वृद्धि होती है।

मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त
(THE RESIDUAL CLAIMANT THEORY OF WAGES)

अमरीका के अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वाकर के अनुसार श्रमिक उद्योग के अवशेष उत्पाद (residual product) का अधिकारी होता है। उद्योग के कुल उत्पादन मे लगान, ब्याज तथा लाभ को निकाल देने के पश्चात जो अवशेष बचता

है वह मजदूरी होती है। लगान, व्याज तथा लाभ का निर्धारण कुछ निश्चित नियमों द्वारा हो हैं, परन्तु मजदूरी के निर्धारण का कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है, कुल उत्पादन में से लगा व्याज तथा लाभ घटा देने के बाद जो बचता है वह मजदूरी होती है। संक्षेप में,

मजदूरी=(कुल उत्पादन)—(लगान+व्याज+लाभ)

इस सिद्धान्त के अनुसार यदि श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं तो उनका अवशेष हि (Residual share) अधिक होगा। दूसरे शब्दों में, इस सिद्धान्त की एक मुख्य बात यह है यह श्रमिकों की कार्यक्षमता अर्थात उत्पादकता का सम्बन्ध मजदूरी के साथ स्थापित करता जबकि अन्य प्रारम्भिक सिद्धान्तों ने ऐसा नहीं किया। इस प्रकार यह सिद्धान्त मजदूरी के सी उत्पादकता सिद्धान्त का आधार हो जाता है।

मजदूरी के अवशेष अधिकारी सिद्धान्त की आलोचना

(१) यह सिद्धान्त **एकपक्षीय** (One-sided) है क्योंकि यह केवल श्रमिकों की उत्पादक अर्थात उसकी माँग पर ध्यान देता है और श्रमिकों की पूर्ति की उपेक्षा (ignore) करता है।

(२) यह सिद्धान्त **मजदूरी पर श्रम-संघों के प्रभाव की उपेक्षा करता है।** इस सिद्धान्त अनुसार मजदूरी अवशेष उत्पाद (Residual product) है, इसलिए श्रमिक संघ उसे प्रभावि नहीं कर सकते। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है।

(३) जब लगान, व्याज तथा लाभ का निर्धारण सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त या माँ तथा पूर्ति सिद्धान्त द्वारा समझाया जा सकता है तो मजदूरी के निर्धारण में यह सिद्धान्त क्यों न अपनाया जा सकता है।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF WAGES)

वितरण का एक सामान्य सिद्धान्त 'सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त' है, जब इस सिद्धा का प्रयोग उत्पत्ति के साधन श्रम के पुरष्कार 'मजदूरी' के निर्धारण में किया जाता है तो इ 'मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त' कहते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है। श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे 'सीमान्त उत्पादकता' (marginal productivity) कहते हैं तथा पूर्ण प्रतियोगिता में इस सीमान्त उत्पादकता के मूल्य को 'सीमान्त उत्पादकता का मूल्य' (Value of Marginal Productivity; i. e., V.M.P.) कहते हैं।[4]

[पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम उत्पादकता अर्थात् MRP तथा सीमान्त उत्पादकता का मूल्य अर्थात् VMP दोनों एक ही होते हैं।[5]]

श्रम की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता के कारण की जाती है; श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग (derived demand) कही जाती है क्योंकि इसकी माँग इसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँ पर निर्भर करती है। अन्य सहयोगी साधनों (co-operating factors) की मात्रा को स्थिर

---

4 सीमान्त उत्पादकता (MP) के विचार तथा उसके विभिन्न अभिप्रायों—VMP, MRP इत्यादि—का विस्तृत विवरण हम इस पुस्तक के पंचम भाग 'वितरण' के प्रथम अध्याय 'वितरण के सिद्धान्त' में कर चुके हैं।

5 देखिये इस पुस्तक के पंचम भाग 'वितरण' के प्रथम अध्याय को।

रखते हुए जब एक उद्योगपति श्रम की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करता जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) के कारण उसकी सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। उद्योगपति श्रम को उस बिन्दु तक प्रयोग करेगा जहाँ पर कि श्रम की एक अतिरिक्त इकाई की उत्पादकता (अर्थात् सीमान्त उत्पादकता) का मूल्य उसके लिए दी जाने वाली मजदूरी के बराबर हो जाता है।

यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से अधिक है तो उद्योगपतियों को हानि होगी और वे श्रमिकों की माँग कम कर देंगे। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उद्योग-पतियों को लाभ होगा और वे श्रमिकों की अधिक माँग करेंगे। अतः सन्तुलन की स्थिति में एक उद्योगपति उस बिन्दु तक श्रमिकों का प्रयोग करेगा जहाँ पर श्रमिको की मजदूरी ठीक उनकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर हो जाती है।

यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता, श्रमिकों में पूर्ण गतिशीलता, श्रम की प्रत्येक इकाई का समान होना, इत्यादि अनेक मान्यताओ पर आधारित है।

मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(१) यह सिद्धान्त अधूरा तथा एक पक्षीय (Incomplete and one-sided) है क्योंकि यह केवल श्रमिकों की माँग (अर्थात् सीमान्त उत्पादकता) की व्याख्या करता है तथा उनके पूर्ति पक्ष के बारे में कुछ नही बताता।

(२) श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात (isolate) करना अत्यन्त कठिन है। यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा :

(i) किसी वस्तु का उत्पादन विभिन्न साधनों के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम होता है; अतः श्रम की सीमान्त उत्पादकता को पृथक करके ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु मोटे रूप में सीमान्त विश्लेषण (marginal analysis) की सहायता से श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है।

(ii) कुछ अर्थशास्त्रियो (जैसे होबसन) के अनुसार साधनों के मिलने का अनुपात टेक्नीकल बातों के कारण स्थिर होता है और उसे बदला नही जा सकता; इसलिए सीमान्त विश्लेषण द्वारा श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नही किया जा सकता। परन्तु सभी दशाओं में साधनों के मिलने के अनुपात स्थिर नही होते तथा दीर्घकाल मे प्रायः अनुपातों को बदला जा सकता है।

(३) यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है; अतः इसे अवास्तविक तथा अव्यावहारिक कहा जा सकता है। परन्तु कई आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अपूर्ण प्रतियोगिता की वास्तविक स्थिति में इस सिद्धान्त का प्रयोग किया है। अपूर्ण प्रतियोगिता में श्रम की मजदूरी 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (marginal revenue product) के बराबर होती है, न कि 'सीमान्त उत्पादकता के मूल्य' (value of marginal product) के बराबर।

(४) श्रमिकों में पूर्ण गतिशीलता की मान्यता गलत है; व्यावहारिक जीवन में श्रमिकों की गतिशीलता में विभिन्न प्रकार की रुकावटें होती हैं।

(५) सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि श्रमिकों की सभी इकाइयाँ एक रूप (homogeneous) होती हैं; व्यवहार में ऐसा नही होता।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त एक स्थैतिक दृष्टिकोण (static approach) रखता है जबकि वास्तविक समाज प्रावैगिक (dynamic) है। यद्यपि यह सिद्धान्त अधूरा तथा एक-पक्षीय

है, परन्तु यह मजदूरी निर्धारण के महत्त्वपूर्ण तत्त्व अर्थात् श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता को में लाता है।

मजदूरी का वट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त
(THE DISCOUNTED MARGINAL PRODUCT THEORY OF WAGES)

प्रो० टार्उसिग इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। टार्उसिग के अनुसार मजदूरी स उत्पादकता से कुछ कम होती है। मालिकों या उद्योगपतियों द्वारा मजदूरी वस्तु के विक्रय होने पहले अर्थात् अग्रिम रूप (advance) में दी जाती है; अतः वे अग्रिम दी हुई धन राशि पर वर्त व्याज की दर से वट्टा (discount) काट लेते हैं। इस प्रकार मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के वर नहीं होती वल्कि उससे कुछ कम होती है क्योंकि उसमें से कुछ वट्टा काट लिया जाता है; शव्दों में, मजदूरी 'वट्टा युक्त सीमान्त उत्पादकता' (Discounted Marginal Productivity के वरावर होने की प्रवृत्ति रखती है।

मजदूरों के वट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं :

(१) उद्योगपति उत्पत्ति के अन्य साधनों को भी विक्री से पहले उनका पुरस्कार देता तो लगान, व्याज इत्यादि पर वट्टा क्यों नहीं काटा जाता? केवल मजदूरी में ही वट्टा क्यों जाता है?

(२) मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की सभी आलोचनाएँ इस सिद्धान्त पर लागू होती हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण—आधुनिक सिद्धान्त
(WAGE DETERMINATION UNDER PERFECT COMPETITION—MODERN THEORY)

मजदूरी श्रम की सेवाओं की कीमत है। अतः, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार मजदूर श्रम की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। यद्यपि मजदूरी, एक वस्तु के मूल्य की भाँति माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है, परन्तु फिर भी मजदूरी के अलग सिद्धान्त क आवश्यकता इसलिए है कि श्रम की कुछ विशेषताएँ होती हैं। मजदूरी का निर्धारण मूल्य सामान्य सिद्धान्त (general theory of value) का ही एक विशिष्ट रूप (special case) है

एक उद्योग में मजदूरी उस विन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ पर श्रमिकों की कुल रेखा तथा उनकी कुल पूर्ति रेखा काटती हैं।

श्रमिक की माँग (Demand for Labour)

श्रमिकों की माँग किसी वस्तु के उत्पादन के लिए उत्पादकों या साहसियों द्वारा की जात है। उत्पादक श्रम की माँग करते समय श्रम की सीमान्त उत्पादकता के द्राव्यिक मूल्य (money value of marginal productivity) पर ध्यान देते हैं। श्रम की अधिक इकाइयों का प्रयोग करने से उत्पत्ति ह्रास नियम के परिणामस्वरूप सीमान्त उत्पादकता घटती जायेगी। उद्योग में प्रत्येक उत्पादक श्रमिकों को उस सीमा तक प्रयोग करेगा जहाँ पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य उसको दी जाने वाली मजदूरी के वरावर हो; उत्पादक श्रम की उत्पादकता से अधिक मजदूरी नहीं देगा। अतः श्रम की सीमान्त उत्पादकता अर्थात् सीमान्त उत्पादकता का द्राव्यिक मूल्य श्रम के माँग की अधिकतम सीमा है।

श्रम की माँग के सम्वन्ध में निम्न वातें और ध्यान रखने की हैं :

(i) **श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग** (derived demand) **होती है**, अर्थात् श्रम की माँग उसके [illegible] त्पादित वस्तु की माँग के कारण उत्पन्न होती है। वस्तु की माँग अधिक या कम होने

पर श्रमिक की माँग भी अधिक या कम होगी। इस प्रकार श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग (derived demand) होती है जो कि उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है।

(ii) श्रम की माँग अन्य सहयोगी साधनों (co-operating factors) की कीमतों पर भी निर्भर करती है। यदि अन्य साधनों की कीमतें बहुत ऊँची हैं तो उनका प्रयोग कम होगा और श्रमिकों की माँग अधिक होगी।

(iii) श्रमिकों की माँग टेक्नीकल दशाओं पर भी निर्भर करती है। किसी वस्तु के उत्पादन में श्रम का किसी अन्य साधन के साथ मिलने का अनुपात स्थिर (fixed) हो सकता है या परिवर्तनशील (variable); इसके अनुसार श्रम की माँग कम या अधिक हो सकती है।

श्रमिकों की माँग तालिका या माँग रेखा मजदूरी की विभिन्न दरों पर माँगी जाने वाली श्रमिकों की मात्रा को बताती है। सामान्यतया यदि मजदूरी की दर अधिक है तो श्रमिकों की माँग कम होगी तथा मजदूरी कम होने पर श्रमिकों की माँग अधिक होगी। दूसरे शब्दों में, मजदूरी तथा श्रम की माँग में उल्टा सम्बन्ध (inverse relation) होता है और इसलिए श्रम की माँग रेखा बायें से दायें नीचे को गिरती हुई होती है जैसा कि चित्र नं० १ में दिखाया गया है।

Y
D
WAGE RATE
D
O
X
DEMAND OF LABOUR

चित्र—१

श्रम की पूर्ति (Supply of Demand)

एक उद्योग के लिए श्रम की पूर्ति का अर्थ है : (i) एक विशेष प्रकार के श्रमिकों की संख्या जो कि विभिन्न मजदूरी की दरों पर अपनी सेवाओं को अर्पित (offer) करने को तत्पर हैं तथा (ii) कार्य करने के घण्टे जो कि प्रत्येक श्रमिक मजदूरी की विभिन्न दरों पर देने को तत्पर हैं। सामान्यतया, श्रमिकों की पूर्ति तथा मजदूरी की दर में सीधा सम्बन्ध (direct relation) होता है, अर्थात् ऊँची मजदूरी पर अधिक श्रमिक तथा कम मजदूरी पर कम श्रमिक कार्य करने को तत्पर होते हैं।

एक विशेष प्रकार के श्रमिकों की पूर्ति की निचली सीमा (lower limit) श्रमिकों के जीवन-स्तर द्वारा निर्धारित होती है; यदि मजदूरी उनके जीवन-स्तर की लागत से कम है तो श्रमिक कार्य करने के लिए अपनी पूर्ति नहीं करेंगे। अतः मजदूरी कम से कम श्रमिकों के जीवन-स्तर के बराबर होनी चाहिए; इस प्रकार जीवन-स्तर मजदूरी की निचली सीमा निर्धारित करता है।

श्रमिकों की पूर्ति आर्थिक तथा अनार्थिक तत्वों (economic and non-economic factors) दोनों पर निर्भर करती है। श्रमिकों की पूर्ति निम्न बातों से प्रभावित होती है :

(अ) पहले हम अनार्थिक तत्वों को लेते हैं : (i) सुस्ती (inertia), वर्तमान रोजगार तथा वातावरण से स्नेह (attachment), सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के कारण अगतिशीलता इत्यादि के कारण यह सम्भव है कि श्रमिक ऊँची मजदूरी मिलने पर भी दूसरे रोजगार में न जायें। (ii) जनसंख्या के आकार (size) तथा आयु-वितरण (age-distribution) पर भी श्रमिकों की पूर्ति निर्भर करती है।

(ब) अब हम आर्थिक कारणों पर विचार करते हैं। सामान्यतया, अधिक मजदूरी मिलने पर अधिक श्रमिक अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करने को तत्पर होंगे तथा नीची मजदूरी मिलने पर
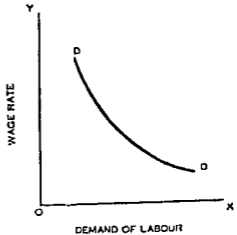
श्रमिकों की पूर्ति कम होगी। एक उद्योग श्रमिकों की आवश्यकतानुसार पूर्ति तब प्राप्त कर स जबकि वह श्रमिकों को ऊँची मजदूरी दे क्योंकि तभी श्रमिक दूसरे उद्योगों से इस उद्योग में हस्ता‍ रित (shift or transfer) हो सकेंगे; दूसरे शब्दों में, एक उद्योग के लिए श्रमिकों की पूर्ति 'व्य सायिक स्थानान्तरण' (occupational shift) पर निर्भर करती है। 'व्यावसायिक स्थानान्तर' अर्थात एक उद्योग के लिए श्रमिकों की पूर्ति निम्न तत्त्वों पर निर्भर करती है :

(i) अन्य उद्योगों में मजदूरी की दर; यदि अन्य उद्योगों में उद्योग विशेष की अपेक्षा ऊँ मजदूरी है तो श्रमिक अन्य उद्योगों में जाने लगेंगे और उद्योग विशेष में श्रमिकों की पूर्ति कम ह लगेगी।

(ii) कुछ अन्य तत्त्व, जैसे श्रमिकों में स्थानान्तरण के लिए सुस्ती (inertia), व्यवस में नौकरी की सुरक्षा (security of job), व्यवसाय विशेष से सम्बन्धित आदर, बोनस तथा पेन्श की व्यवस्था, इत्यादि तत्त्व भी 'व्यावसायिक स्थानान्तरण' को प्रभावित करते हैं।

(स) श्रमिकों की पूर्ति को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है **'कार्य-आर** **अनुपात'** (work-leisure ratio)। मजदूरी में परिवर्तन दो प्रकार के प्रभावों को जन्म देता है (i) **'प्रतिस्थापन प्रभाव'** (substitution effect) : मजदूरी में वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक का करेंगे अर्थात् वे 'आराम' (leisure) के स्थान पर 'कार्य' (work) का प्रतिस्थापन करेंगे; थ 'मजदूरी में वृद्धि के कारण प्रतिस्थापन प्रभाव' (substitution effect of increase in wages हुआ। ध्यान रहे कि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' सदैव धनात्मक (positive) होता है अर्थात् मजदूरी वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक कार्य करेंगे। (ii) **'आय प्रभाव'** (income effect) : मजदूरी वृद्धि के कारण श्रमिकों की आय बढ़ती है, आय में वृद्धि के कारण वे अधिक आराम (mor leisure) चाहते हैं। यह 'मजदूरी में वृद्धि के कारण आय प्रभाव' (income effect of increas in wages) हुआ। ध्यान रहे कि 'आय प्रभाव' ऋणात्मक (negative) होता है अर्थात् मजदूर में वृद्धि अधिक आराम करने को प्रोत्साहित करती है न कि अधिक कार्य को।

चूंकि 'प्रतिस्थापन प्रभाव' धनात्मक होता है और 'आय प्रभाव' ऋणात्मक होता है इसलिए श्रम की वास्तविक पूर्ति (net supply) पर मजदूरी के परिवर्तन का सही प्रभाव जान कठिन है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि मजदूरी में वृद्धि के कारण श्रमिकों की पूर्ति में वृद्धि होगी या श्रमिक अधिक घण्टे कार्य करने को तत्पर होंगे, परन्तु मजदूरी में बहुत वृद्धि हो जाने पर एक सीमा के बाद यह सम्भव है कि 'आय प्रभाव' के कारण श्रमिक कम घण्टे कार्य करें (अर्थात् उनकी पूर्ति कम हो) और अधिक आराम चाहें। ऐसी स्थिति में श्रमिकों की पूर्ति रेखा प्रारम्भ में तो चढ़ती हुई होगी परन्तु एक सीमा के बाद वह बायें को पीछे की ओर झुकती हुई (backward sloping) हो सकती है। जैसा कि चित्र नं० २ में ss—रेखा बताती है।
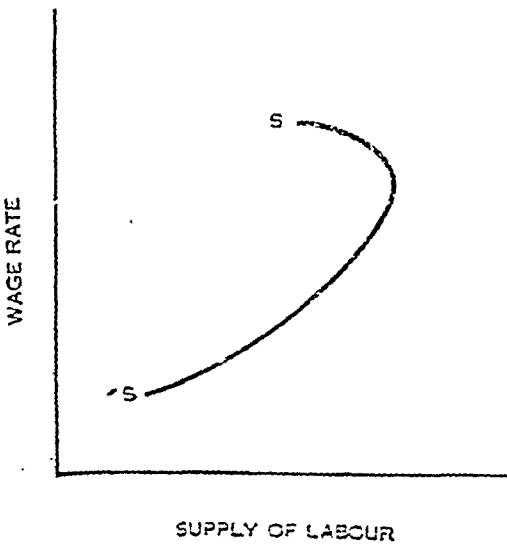
चित्र—२

मजदूरी का निर्धारण (Wage Determination)

एक उद्योग के लिए मजदूरी वहाँ पर निर्धारित होगी जहाँ पर कि श्रमिकों की माँग तथा उनकी पूर्ति बराबर हो। चित्र न० ३ में मजदूरी PQ या OW निर्धारित होगी क्योंकि इस मजदूरी की दर पर श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति दोनों OQ के बराबर हैं। माना कि मजदूरी की दर OW नहीं है बल्कि OW_1 है, इस मजदूरी दर (wage-rate) पर श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति बराबर नहीं है। OW_1 मजदूरी की दर पर,

श्रमिकों की पूर्ति $= W_1L$

श्रमिकों की माँग $= W_1M$

श्रमिकों की अतिरिक्त पूर्ति (excess of labour) या बेरोजगारी (unemployment) $= W_1L - W_1M = ML$
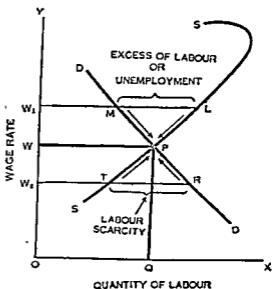
चित्र—३

श्रमिकों की यह अतिरिक्त पूर्ति (ML) मजदूरी की दर को घटायेगी और मजदूरी घट कर P बिन्दु पर पहुँच जायेगी (जैसा कि चित्र में 'नीचे की सन्तुलन बिन्दु P की ओर जाते हुए तीरों' द्वारा दिखाया गया है) अर्थात् 'सन्तुलन मजदूरी दर' (equilibrium wage rate) PQ या WO स्थापित हो जायेगी।

यदि मजदूरी की दर OW_2 है तो भी श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति बराबर नहीं है। OW_2 मजदूरी दर पर,

श्रमिकों की माँग $= W_2R$

श्रमिकों की पूर्ति $= W_2T$

श्रमिकों की अतिरिक्त माँग (excess demand) अर्थात् श्रमिकों की कमी (labour scarcity) $= TR$

चूँकि श्रमिकों की माँग अधिक है और पूर्ति कम है इसलिए श्रमिकों की कमी (TR) मजदूरी-दर को बढ़ायेगी और मजदूरी बढ़कर बिन्दु P पर पहुँच जायेगी (जैसा कि चित्र में 'ऊपर को सन्तुलन बिन्दु P की ओर जाते हुए तीरों' द्वारा दिखाया गया है) अर्थात् 'सन्तुलन मजदूरी-दर' PQ (या WO) स्थापित हो जायेगी।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि मजदूरी की वह दर निर्धारित होगी जहाँ पर कि श्रमिकों की माँग तथा उनकी पूर्ति बराबर हो जाती है।

मजदूरी की दर के निर्धारण के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान रखनी चाहिए :

(i) मजदूरी की दर के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात ध्यान रखने की यह है कि सन्तुलन की स्थिति में मजदूरी सदैव सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से अधिक है तो उत्पादक श्रमिकों की कम माँग करेंगे तथा श्रमिक अपनी अधिक पूर्ति करने को तत्पर होंगे। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उत्पादक

श्रमिकों की अधिक माँग करेंगे जवकि श्रमिक अपनी कम पूर्ति करेंगे। इस प्रकार जव तक मजदू की दर सीमान्त उत्पादकता के वरावर नहीं होगी तब तक श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति में परिव होते रहेंगे और मजदूरी की कोई स्थायी सन्तुलन दर स्थापित नहीं होगी। स्पष्ट है कि 'सन्तुल मजदूरी-दर' (equilibrium wage rate) के लिए मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के वरावर हो चाहिए।

व्यावहारिक जीवन में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम या अधिक हो सकती है पर उसकी प्रवृत्ति सदैव सीमान्त उत्पादकता के वरावर होने की होती है।

(ii) हमने यह मान लिया है कि सभी श्रमिक एक समान कुशल हैं और इसलिए व मा में मजदूरी की एक ही दर है। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता, श्रमिकों की कुशलता में होता है। ऐसी स्थिति में लगभग एक समान कुशल श्रमिकों के एक वर्ग के लिए मजदूरी की दर होगी। अतः कुशलता की दृष्टि से श्रमिकों के विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न मजदूरी की द होंगी; परन्तु मजदूरी-निर्धारण के माँग तथा पूर्ति के मूल सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं होगा प्रत्येक मजदूरी की दर उस प्रकार के श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होगी आ सन्तुलन की स्थिति में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के वरावर होगी।

एक व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण

१. एक फर्म की दृष्टि से श्रमिकों के प्रयोग (employment) तथा मजदूरी-निर्धारण सम्वन्धित विवेचना करने से पहले मान्यताओं को स्पष्ट रूप से जान लेना आवश्यक है। हम **मान्यताओं** (assumptions) को लेकर चलते हैं :

(अ) श्रम-वाजार (labour-market) में पूर्ण प्रतियोगिता होती है। इसके नि (implications) हैं :

(i) उत्पादकों या फर्मों तथा श्रमिकों की बहुत अधिक संख्या होती है। फर्मों की अ संख्या होने के कारण प्रत्येक फर्म छोटी होती है और श्रमिकों की कुल पूर्ति का एक वहुत थो भाग प्रयुक्त करती है।

(ii) कोई एकाधिकारी तत्त्व (monopoly elements) नहीं होते। इसका अर्थ है कि या उत्पादक स्वतन्त्र रूप से (independently) कार्य करती हैं, उनमें किसी प्रकार का ित नहीं होता तथा उनके कोई संघ (employer' associations) नहीं होते। इसी प्रकार श्रमिकों के कोई संघ (workers' unions) नहीं होते।

(iii) विभिन्न फर्मों तथा उद्योगों के लिए श्रमिकों में पूर्ण गतिशीलता (perfect mobility) होती है।

(iv) सव श्रमिक एक समान कुशल होते हैं और इसलिए मजदूरी की एक दर (a sin wage rate) होती है।

(व) श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु के वाजार (commodity market) में भी पूर्ण प्रतियोगिता मान ली जाती है।

२. **एक फर्म या उत्पादक के लिए मजदूरी दी हुई होती है।** उद्योग में श्रमिकों की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा मजदूरी निर्धारित होती है और इस मजदूरी-दर को प्रत्येक फर्म स्वीकार कर लेती है। श्रम-वाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होती हैं, फर्मों की संख्या वहुत होती है तथा प्रत्येक फर्म श्रमिकों की कुल पूर्ति की एक वहुत थोड़ी मात्रा प्रयोग करती है और इसलिए एक फर्म मजदूरी की दर को अपनी कार्यवाहियों से प्रभावित नहीं कर सकती। दूसरे शब्दों में, **एक फर्म के लिए**

मजदूरी-रेखा' (wage-line) एक 'पड़ी हुई रेखा' (horizontal line) होती है जैसा कि चित्र न० ४ (b) में दिखाया गया है।
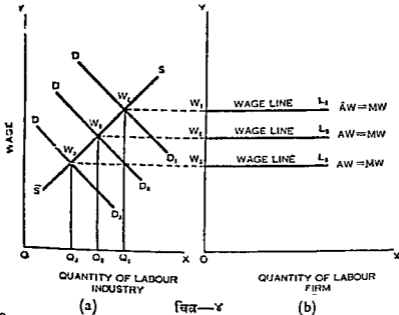
(a) चित्र—४ (b)

चित्र न० ४ (a) माना कि उद्योग में श्रमिकों की कुल माँग रेखा DD_1 तथा कुल पूर्ति रेखा SS है, दोनों एक दूसरे को W_1 बिन्दु पर काटती हैं। अतः उद्योग में मजदूरी की दर W_1Q_1 निर्धारित होगी; एक फर्म इस मजदूरी को दिया हुआ मान लेगी अर्थात् फर्म के लिए 'मजदूरी रेखा' (wage line) W_1L_1 होगी जैसा कि चित्र ४ (b) में दिखाया गया है। यदि उद्योग में माँग घटकर DD_2 हो जाती है तो फर्म के लिए 'मजदूरी रेखा' W_2L_2 हो जायेगी। यदि उद्योग में माँग और घट जाती है और माँग रेखा DD_3 हो जाती है तो फर्म के लिए 'मजदूरी-रेखा' W_3L_3 हो जायेगी।

एक फर्म के लिए पड़ी हुई 'मजदूरी-रेखा' का अर्थ है कि एक दी हुई मजदूरी-दर पर फर्म जितने श्रमिक चाहे प्राप्त कर सकती है; अर्थात् एक दी हुई मजदूरी दर पर फर्म के लिए श्रमिकों की पूर्ति असीमित मात्रा में प्राप्त होती है; अतः एक फर्म के लिए श्रमिकों की 'पूर्ति रेखा' (या मजदूरी-रेखा) पूर्णतया लोचदार (perfectly elastic) होती है।

उपर्युक्त विवरण का एक अभिप्राय यह है कि एक फर्म को एक अतिरिक्त श्रम (an additional labour) को कार्य पर लगाने के लिए जो मजदूरी अर्थात 'सीमान्त मजदूरी' (Marginal Wage, i.e., MW) देनी पड़ेगी वह औसत मजदूरी (Average Wage, i.e., AW) के बराबर ही होगी। दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक फर्म के लिए औसत मजदूरी (AW) =सीमान्त मजदूरी (MW)।

स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए मजदूरी-रेखा एक पड़ी हुई रेखा होती है तथा उसे 'AW=MW' द्वारा व्यक्त करते हैं, जैसा कि चित्र न० ४ (b) में दिखाया गया है।

[ध्यान रहे कि औसत मजदूरी (AW) श्रमिकों को प्रयोग में लाने के लिए फर्म की दृष्टि से औसत लागत (Average cost of employing workers to the firm) है तथा श्रमिकों की

श्रमिकों की अधिक माँग करेंगे जबकि श्रमिक अपनी कम पूर्ति करेंगे। इस प्रकार जब तक मज की दर सीमान्त उत्पादकता के बराबर नहीं होगी तब तक श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति में परिवर्त होते रहेंगे और मजदूरी की कोई स्थायी सन्तुलन दर स्थापित नहीं होगी। स्पष्ट है कि 'सन्तुल मजदूरी-दर' (equilibrium wage rate) के लिए मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो चाहिए।

व्यावहारिक जीवन में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम या अधिक हो सकती है पर उसकी प्रवृत्ति सदैव सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की होती है।

(ii) हमने यह मान लिया है कि सभी श्रमिक एक समान कुशल हैं और इसलिए में मजदूरी की एक ही दर है। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता, श्रमिकों की कुशलता में होता है। ऐसी स्थिति में लगभग एक समान कुशल श्रमिकों के एक वर्ग के लिए मजदूरी की ए दर होगी। अतः कुशलता की दृष्टि से श्रमिकों के विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न मजदूरी की होंगी; परन्तु मजदूरी-निर्धारण के माँग तथा पूर्ति के मूल सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं होगा प्रत्येक मजदूरी की दर उस प्रकार के श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होगी अ सन्तुलन की स्थिति में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी।

एक व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण

१. एक फर्म की दृष्टि से श्रमिकों के प्रयोग (employment) तथा मजदूरी-निर्धारण सम्बन्धित विवेचना करने से पहले मान्यताओं को स्पष्ट रूप से जान लेना आवश्यक है। हम नि **मान्यताओं** (assumptions) को लेकर चलते हैं :

(अ) श्रम-बाजार (labour-market) में पूर्ण प्रतियोगिता होती है। इसके अ (implications) हैं :

(i) उत्पादकों या फर्मों तथा श्रमिकों की बहुत अधिक संख्या होती है। फर्मों की अ संख्या होने के कारण प्रत्येक फर्म छोटी होती है और श्रमिकों की कुल पूर्ति का एक बहुत भाग प्रयुक्त करती है।

(ii) कोई एकाधिकारी तत्त्व (monopoly elements) नहीं होते। इसका अर्थ है कि फ या उत्पादक स्वतन्त्र रूप से (independently) कार्य करती हैं, उनमें किसी प्रकार का समझ नहीं होता तथा उनके कोई संघ (employer' associations) नहीं होते। इसी प्रकार श्रमिकों कोई संघ (workers' unions) नहीं होते।

(iii) विभिन्न फर्मों तथा उद्योगों के लिए श्रमिकों में पूर्ण गतिशीलता (perf ilit होती है।

(iv) सब श्रमिक एक समान कुशल होते हैं और इसलिए मजदूरी wage rate) होती है।

(ब) श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु के बाजार (commodi योगिता मान ली जाती है।

२. एक फर्म या उत्पादक के लिए मजदूरी दी हुई
माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा मजदूरी निर्धारित होती है और कर लेती है। श्रम-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होती है फर्म श्रमिकों की कुल पूर्ति की एक बहुत थोड़ी मा की दर को अपनी कार्यवाहियों से प्रभावित नहीं

चित्र नं० ५ मे मजदूरी की दर बिन्दु 'W' पर निर्धारित होगी क्योंकि इस बिन्दु पर MRP=MW के है। चूंकि ARP मजदूरी-रेखा (wage line) के ऊपर है, इसलिए फर्म को श्रमिकों के प्रयोग करने में लाभ होगा; ARP तथा AW के बीच खड़ी दूरी WS प्रति श्रमिक के प्रयोग करने से लाभ बताती है, फर्म के लिए कुल लाभ को ज्ञात करने के लिए हम प्रति श्रमिक लाभ WS को प्रयुक्त किये जाने वाले श्रमिकों की कुल सख्या OQ से गुणा करते है अर्थात कुल लाभ आयत (rectangle) WSTR का क्षेत्र-फल (area) बताता है। अत:

चित्र—५

चित्र नं० ५ में,
मजदूरी की दर=WQ
प्रयुक्त की गयी (employed) श्रमिकों की मात्रा=OQ
फर्म को कुल लाभ=WSTR
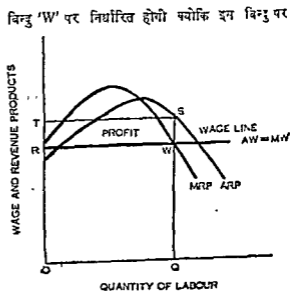
चित्र—६
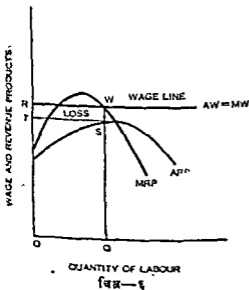
चित्र—७

चित्र नं० ६ में
मजदूरी की दर=WQ
प्रयुक्त की गयी श्रमिकों की मात्रा=OQ
फर्म को कुल हानि=WSTR
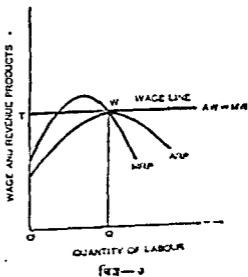
सुविधा के लिए हम अपूर्ण बाजार में दो स्थितियाँ मान लेते हैं—(i) श्रम बाजार में एक उत्पाद या कुछ उत्पादक बहुत प्रभावशाली होते हैं और मजदूरी दर को महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित कर सकते हैं, या बड़े उत्पादक मिलकर संघ बना लेते हैं, और इस प्रकार श्रम की सेवाओं का क्रय करने की दृष्टि से वे एक बड़े उत्पादक की भाँति होते हैं। दूसरे शब्दों में, अपूर्ण श्रम-बाजार क्रेता-एकाधिकार (monopsony) की स्थिति है। (ii) श्रम बाजार में श्रमिक भी श्रम-संघ (labour unions) में संगठित होते हैं और वे अपनी पूर्ति का एकाधिकारी की भाँति नियन्त्रण (monopsonistic control) करते हैं। अतः वास्तविक जगत में श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और मजदूरी का निर्धारण उत्पादकों के संघों तथा श्रमिकों के संघों के बीच मोल-भाव (bargaining) द्वारा निर्धारित होता है।

२. चूँकि श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए 'औसत मजदूरी रेखा' (average wage line, i-e., AW-line or simply wage line) ऊपर को चढ़ती हुई (upsloping) (न कि पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति पड़ी हुई रेखा) होती है; तथा 'सीमान्त मजदूरी रेखा' (marginal wage line, i. e., MW-line) भी ऊपर को चढ़ती हुई होगी और वह 'औसत मजदूरी रेखा' (AW-line) के ऊपर होगी। अपूर्ण प्रतियोगिता में, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, AW तथा MW बराबर नहीं होती। ऊपर को चढ़ती हुई MW-line का अर्थ है कि यदि उत्पादक अतिरिक्त (additional) श्रमिकों को प्रयुक्त (employ) करना चाहता है तो उसे अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी।

पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति अपूर्ण प्रतियोगिता में भी उत्पादक या फर्म के लिए श्रमिकों की माँग-रेखा 'सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा' (marginal revenue product curve, i e MRP-curve) होती है।

३. चित्र नं० ६ में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण को बताया गया है। उत्पादक श्रमिकों की वह मात्रा प्रयोग करेगा जहाँ पर कि MRP= MW के है, चित्र से स्पष्ट है कि यह स्थिति 'E' बिन्दु पर है। 'E' से X-axis पर लम्ब (perpendicular) AW-line को 'W' बिन्दु पर काटता है। अतः

मजदूरी की दर=WQ
श्रमिकों की प्रयुक्त (employed) मात्रा=OQ

चित्र से स्पष्ट है कि औसत मजदूरी (average wage) WQ कम है 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (marginal revenue productivity) EQ से। इसका अर्थ है कि श्रमिकों का शोषण (exploitation) हो रहा है

चित्र—६

(ध्यान रहे कि जब AW कम होती है MRP से, तो अर्थशास्त्री इसे श्रमिकों का शोषण कहते हैं।) चित्र से स्पष्ट है कि श्रमिकों का शोषण=EQ—WQ=EW

चित्र नं० ७ में,
मजदूरी की दर=WQ
प्रयुक्त की गयी श्रमिकों की मात्रा=OQ
फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा क्योंकि W विन्दु पर ARP=AW के है।

५. श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से **दीर्घ काल में** (in the long period) फर्म को केवल सामान्य लाभ (normal profit) प्राप्त होगा, उसको अतिरिक्त लाभ (excess profit) या हानि नहीं हो सकती। सामान्य लाभ प्राप्त होने का अभिप्राय है कि ARP=AW के।

यदि फर्म को अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है अर्थात ARP>AW, तो अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी, इसके परिणामस्वरूप—(i) श्रमिकों की माँग वढ़ेगी और इसलिए उनकी मजदूरी (AW) वढ़ेगी, तथा (ii) वस्तु का उत्पादन वढ़ेगा उसकी कीमत घटेगी, कीमत घटने से ARP कम होगी। इन दोनों वातों का परिणाम होगा कि ARP =AW के होगी और इस प्रकार फर्म को दीर्घकाल में अतिरिक्त लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। **यदि फर्म को हानि प्राप्त होती है अर्थात** ARP<AW तो हानि प्राप्त करने वाली फर्में उद्योग को छोड़ देंगी; इसके परिणामस्वरूप—(i) श्रमिकों की माँग घटेगी और इसलिए उनकी मजदूरी (AW) घटेगी, तथा (ii) वस्तु का उत्पादन घटेगा, उसकी कीमत बढ़ेगी, कीमत बढ़ने से ARP बढ़ेगी। इन दोनों बातों का परिणाम यह होगा कि ARP=AW के हो जायेगी और फर्म को हानि नहीं होगी। स्पष्ट है कि श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से एक फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा :

चित्र—८

श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य के लिए निम्न दोहरी दशा पूरी होनी चाहिए :

(i) MRP=MW

(ii) ARP=AW
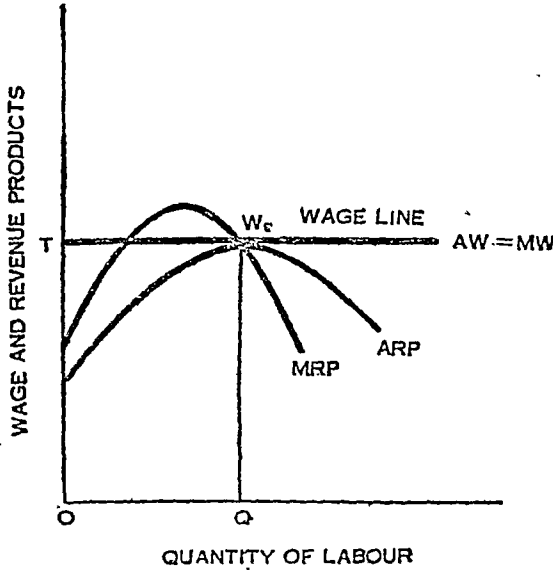
चित्र नं० ८ में विन्दु 'W' पर दोनों दशाएँ पूरी हो रही हैं, अतः दीर्घकाल में मजदूरी की दर=WQ; प्रयुक्त की गयी श्रमिकों की मात्रा=OQ; फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण
(WAGE DETERMINATION UNDER IMPERFECT COMPETITION)

१. व्यवहार में श्रम-वाजार (labour-market) में प्रायः पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है। इसका अर्थ है कि व्यवहार में श्रम-वाजार में स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले उत्पादक नहीं होते, उत्पादक वहुत वड़ी संख्या में तथा छोटे (small) नहीं होते, कुछ उत्पादक वड़े होते हैं या एक उत्पादक वहुत वड़ा हो सकता है या कुछ वड़े उत्पादक संगठित होकर अपने संघ (associations) वना सकते हैं; इसी प्रकार से श्रमिक भी संगठित होते हैं और वे अपने संघ (unions) वना लेते हैं। श्रम वाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की कई स्थितियाँ हो सकती हैं। परन्तु

सुविधा के लिए हम अपूर्ण बाजार में दो स्थितियाँ मान लेते हैं—(i) श्रम बाजार में एक उत्पादक या कुछ उत्पादक बहुत प्रभावशाली होते हैं और मजदूरी दर को महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित कर सकते हैं, या बड़े उत्पादक मिलकर संघ बना लेते हैं, और इस प्रकार श्रम की सेवाओं का क्रय करने की दृष्टि से वे एक बड़े उत्पादक की भाँति होते हैं। दूसरे शब्दों में, अपूर्ण श्रम-बाजार में क्रेता-एकाधिकार (monopsony) की स्थिति है। (ii) श्रम बाजार में श्रमिक भी श्रम-संघों (labour unions) में संगठित होते हैं और वे अपनी पूर्ति का एकाधिकारी की भाँति नियन्त्रण (monopsonistic control) करते हैं। अतः वास्तविक जगत में श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और मजदूरी का निर्धारण उत्पादकों के संघों तथा श्रमिकों के संघों के बीच सौदा (bargaining) द्वारा निर्धारित होता है।

२. चूँकि श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए 'औसत मजदूरी रेखा' (average wage line, i-e., AW-line or simply wage line) ऊपर को चढ़ती हुई (upsloping) (न कि पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति पड़ी हुई रेखा) होती है; तथा 'सीमान्त मजदूरी रेखा' (marginal wage line, i. e., MW-line) भी ऊपर को चढ़ती हुई होगी और वह 'औसत मजदूरी रेखा' (AW-line) के ऊपर होगी। अपूर्ण प्रतियोगिता में, पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति, AW तथा MW बराबर नहीं होती। ऊपर को चढ़ती हुई MW-line का अर्थ है कि यदि उत्पादक अतिरिक्त (additional) श्रमिकों को प्रयुक्त (employ) करना चाहता है तो उसे अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी।

पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति अपूर्ण प्रतियोगिता में भी उत्पादक या फर्म के लिए श्रमिकों की माँग-रेखा 'सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा' (marginal revenue product curve, i.e., MRP-curve) होती है।

३. चित्र न० ६ में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण को बताया गया है। उत्पादक श्रमिकों की वह मात्रा प्रयोग करेगा जहाँ पर कि MRP= MW के है, चित्र से स्पष्ट है कि यह स्थिति 'E' बिन्दु पर है। 'E' से X-axis पर लम्ब (perpendicular) AW-line को 'W' बिन्दु पर काटता है। अतः

मजदूरी की दर=WQ

श्रमिकों की प्रयुक्त (employed) मात्रा=OQ

चित्र से स्पष्ट है कि औसत मजदूरी (average wage) WQ कम है 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (marginal revenue productivity) EQ से। इसका अर्थ है कि श्रमिकों का शोषण (exploitation) हो रहा है

चित्र—६

(ध्यान रहे कि जब AW कम होती है MRP से, तो अर्थशास्त्री इसे श्रमिकों का शोषण कहते हैं।)
चित्र से स्पष्ट है कि श्रमिकों का शोषण=EQ—WQ=EW

श्रम संघ[1] तथा मजदूरी
(TRADE UNIONS AND WAGES)

क्या श्रम-संघ मजदूरी में वृद्धि कर सकते हैं ? इस सम्बन्ध में एक विचारधारा यह है कि श्रम-संघ मजदूरी में वृद्धि नहीं कर सकते । यह तर्क 'मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' पर आधारित है । यदि श्रम-संघ की कार्यवाहियों द्वारा मजदूरी में सीमान्त उत्पादकता से अधिक वृद्धि प्राप्त कर ली जाती है तो उसके दो परिणाम हो सकते हैं—(i) उत्पादकों का लाभ कम हो जायेगा; या (ii) वस्तु की कीमत बढ़ानी पड़ेगी । यदि ऊँची मजदूरी के कारण उत्पादकों का लाभ कम हो जाता है तो वे वस्तु का बहुत कम उत्पादन करेंगे या उत्पादन बन्द कर देंगे, परिणामस्वरूप श्रमिकों में बेरोजगारी फैल जायेगी । यदि वस्तु की कीमत ऊँची करके ऊँची मजदूरी प्राप्त की जाती है तो वस्तु की कुल मांग में कमी हो जायेगी, उत्पादन घटेगा और परिणामस्वरूप श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे । इस प्रकार यह कहा जाता है कि श्रम-संघ अपनी कार्यवाहियों से मजदूरी में वृद्धि नहीं कर सकते ।

परन्तु उपर्युक्त विचाराधारा उचित नहीं है क्योंकि मजदूरी की सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त (जिस पर यह तर्क आधारित है) एक-पक्षीय है, यह केवल श्रमिकों की मांग पर ध्यान देता है और उनके पूर्ति-पक्ष की अपेक्षा करता है । वास्तव में, श्रम-संघ श्रमिकों की माँग तथा पूर्ति दोनों को प्रभावित करके एक सीमा तक मजदूरी में वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं ।

श्रम-संघ निम्न परिस्थितियों में मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं :

(१) अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत श्रमिकों को अपनी सीमान्त उत्पादकता का पूरा मूल्य (full value of their marginal productivity) नहीं मिलता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में **श्रम संघ सीमान्त उत्पादकता के पूर्ण मूल्य के बराबर मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं ।**

(२) **श्रम-संघ श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि करके मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं ।** श्रम-संघ श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि दो प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं *(i)* श्रम-संघ श्रमिकों की सामूहिक शक्ति के कारण कई दशाओं में उत्पादकों को इस बात के लिए बाध्य कर सकते हैं कि वे श्रमिकों को कार्य करने के लिए अच्छे तथा नवीनतम यन्त्र प्रदान करें, उनको उचित मजदूरी दें तथा उनके कार्य करने की दशाओं को अच्छा करें । इन सब बातों के कारण श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि होगी और परिणामस्वरूप उनकी मजदूरी में वृद्धि होगी । (ii) श्रम-संघ कल्याणकारी कार्यों (welfare activities) में अधिक रुचि लेकर श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं और इस प्रकार उनकी मजदूरी में वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं ।

(३) **श्रम-संघ श्रमिकों के एक विशेष वर्ग के लिए मजदूरी में वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं;** ऐसा वे निम्न दशाओं में कर सकते हैं—(i) श्रमिकों के विशेष वर्ग द्वारा उत्पादित वस्तु ऐसी हो जिसकी माँग बेलोचदार हो; ऐसी स्थिति में मजदूरी में वृद्धि के कारण वस्तु की कीमत में वृद्धि होने से वस्तु की माँग में कोई विशेष कमी नहीं होगी। (ii) श्रमिकों के विशेष वर्ग की माँग बेलोचदार हो; अर्थात् उनके बिना उत्पादन कार्य सम्भव न हो और ऐसी स्थिति में श्रम-संघ मजदूरी

ः-संघ की परिभाषा, उनकी आवश्यकता, उनके कार्य, इत्यादि के लिए इस पुस्तक के प्रथम
। के अध्याय २४ को देखिए ।

मे वृद्धि करा सकते हैं। (iii) दूसरी बात का अभिप्राय (implication) यह हुआ कि उत्पादक किसी दूसरे वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी कम करेंगे। अतः एक वर्ग के श्रमिको की मजदूरी दूसरे वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी की कटौती के आधार पर ही प्राप्त की जा सकती है। (iv) जब विशेष प्रकार के श्रमिको की मजदूरी का बिल उत्पादक के कुल मजदूरी-बिल का एक बहुत थोड़ा भाग है तो उत्पादक को विशेष प्रकार के श्रमिकों के वर्ग को ऊँची मजदूरी देने मे कोई कठिनाई नहीं होगी।

परन्तु श्रम-संघ श्रमिको की मजदूरी असीमित मात्रा तक नही बढ़ा सकते। श्रम-सघों की सौदा करने की शक्ति (bargaining power) या मजदूरी में वृद्धि कराने की शक्ति की सीमाएँ (limitations) होती हैं। मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित है :

(१) श्रम-संघ को सौदा करने की शक्ति 'श्रमिको के प्रतिस्थापन की लोच' (elasticity of substitution of labour) पर निर्भर करती है। उत्पादन तकनीक मे ऐसे परिवर्तन किये जा सकते हैं जिससे कि मशीनों का प्रयोग अधिक हो और श्रमिकों का प्रयोग कम; दूसरे शब्दो मे, एक सीमा तक श्रमिकों को मशीनों द्वारा प्रतिस्थापित (substitute) किया जा सकता है। श्रमिको का प्रतिस्थापन पूँजी (capital, i.e., machines, tools, etc.) द्वारा ही नही होता बल्कि 'श्रमिकों का प्रतिस्थापन श्रमिको द्वारा' (substitution of labour by labour) भी होता है; जिस सीमा तक असघीय श्रमिक (non-union workers), जिन्हे 'blacklegs' कहा जाता है, प्राप्त हो सकते हैं उस सीमा तक श्रम सघों का प्रभाव कम हो जाता है; उद्योगपति दूसरे क्षेत्रो से भी श्रमिकों का आयात (import) कर सकते हैं। श्रमिको के प्रतिस्थापन की लोच जितनी अधिक होगी उतनी श्रम-सघो की सौदा करने की शक्ति कमजोर पड़ेगी और उन्हे मजदूरी में वृद्धि कराने मे कम सफलता प्राप्त होगी।

(२) श्रम-संघों की सौदा करने की शक्ति 'अन्य साधनों की पूर्ति की लोच' (elasticity of supply of alternative factors) पर निर्भर करती है। श्रमिकों को अन्य साधनों से किस सीमा तक प्रतिस्थापित किया जा सकता है यह केवल उत्पादन मे तकनीकी परिवर्तनो (technical changes in production) की सुगमता पर ही नही बल्कि इस बात पर भी निर्भर करेगा कि दूसरे साधनों की अतिरिक्त पूर्ति कितनी सुगमता से प्राप्य है। उदाहरणार्थ, यदि 'श्रमिकों की बचत करने वाली मशीनो' (labour-saving machines) की पूर्ति सीमित है या अपर्याप्त है (जैसा कि boom periods मे हो जाता है) तो उद्योगपतियों को श्रम-सघों के दबाव के अन्तर्गत श्रमिको को ऊँची मजदूरी देनी पड़ेगी; इसके विपरीत दशाओ मे श्रमिक-संघ मजदूरी मे वृद्धि प्राप्त करने मे असफल रहेंगे।

(३) श्रमिकों के सौदा करने की शक्ति 'वस्तु की मांग की लोच' (Elasticity of Demand of the Commodity) पर भी निर्भर करती है। यदि श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग अधिक लोचदार है तो ऊँची मजदूरी के परिणामस्वरूप वस्तु की ऊँची कीमत उपभोक्ताओं से नही ली जा सकेगी; इसके विपरीत यदि वस्तु की मांग बेलोचदार है तो उत्पादक श्रमिको को ऊँची मजदूरी देकर उसको उपभोक्ताओं से वस्तु की ऊँची कीमत के रूप मे निकाल लेंगे।

ऊँची मजदूरी की मितव्ययिता
(ECONOMY OF HIGH WAGES)

प्रकट रूप मे ऐसा प्रतीत होता है कि 'नीची मजदूरी' (low wages) सस्ती (cheap) होती है। परन्तु यह धारणा सदैव उचित नहीं है। नीची मजदूरी के कारण श्रमिकों की कार्यक्षमता

(efficiency) नीची होती है, उत्पादन कम होता है और परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत ऊँची होती है। **इस प्रकार नीची मजदूरी वास्तव में ऊँची मजदूरी होती है।**

ऊँची मजदूरी के कारण श्रमिकों की कार्यक्षमता ऊँची रहती है, अधिक उत्पादन होता है और परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत कम पड़ती है। इस प्रकार **ऊँची मजदूरी सस्ती मजदूरी** कही जाती है।

वास्तव में, एक उत्पादक मजदूरी पर व्यय (outlay on wages) तथा उत्पत्ति (output) के सम्बन्ध, जिसे कि आधुनिक अर्थशास्त्री **'मजदूरी की लागत'** (wages-costs) कहते हैं, पर ध्यान देता है। 'ऊँची द्राव्यिक मजदूरी' (high money wages) के कारण यदि श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं तो उत्पादक को वास्तव में 'मजदूरी की लागत' नीची पड़ती है; इसके विपरीत यदि 'नीची द्राव्यिक मजदूरी' के कारण श्रमिक कम उत्पादन करते हैं तो उत्पादक को वास्तव में 'मजदूरी की लागत' ऊँची पड़ती है। स्पष्ट है कि **एक उत्पादक 'नीची द्राव्यिक मजदूरी'** (low money wages) **पर नहीं बल्कि वह 'नीची मजदूरी-लागत'** (low wage-costs) **पर अपनी आँख रखता है।**

ऊँची मजदूरी प्राय: 'नीची मजदूरी-लागत' को जन्म देती है, और इसलिए यह कहा जाता है कि ऊँची मजदूरी सस्ती मजदूरी होती है। यह निम्न से स्पष्ट होता है :

(i) ऊँची मजदूरी से श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊँचा रहता है, उनकी कार्यक्षमता ऊँची रहती है, उत्पादन अधिक होता है, परिणामस्वरूप उत्पादन लागत कम पड़ती है। दूसरे शब्दों में, 'नीची मजदूरी-लागत' पड़ती है।

(ii) ऊँची मजदूरी देने से उत्पादक को श्रम-बाजार से अधिक कुशल श्रमिक मिलते हैं[10] परिणामस्वरूप अधिक उत्पादन होता है और उत्पादन की लागत कम पड़ती है। दूसरे शब्दों में, 'नीची मजदूरी-लागत' पड़ती है।

(iii) ऊँची मजदूरी के कारण श्रमिक सन्तुष्ट रहते हैं और उत्पादक तथा श्रमिकों में अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बने रहते हैं, श्रमिक दिल लगाकर कार्य करते हैं, परिणामस्वरूप उत्पादन अधिक तथा नियमित रूप से होता है।

स्पष्ट है कि ऊँची मजदूरी मितव्ययितापूर्ण (economical) होती है, अथवा ऊँची मजदूरी 'नीची मजदूरी-लागत' को जन्म देती है।

मजदूरी में अन्तर
(WAGE DIFFERENTIALS)

व्यावहारिक जीवन में मजदूरी में अन्तर पाया जाता है : (अ) यह अन्तर विभिन्न व्यवसायों में कार्य करने वाले श्रमिकों में होता है; तथा (ब) एक ही व्यवसाय में कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी में भी अन्तर पाया जाता है।

यहाँ पर हम उन कारणों का अध्ययन करते हैं जो कि मजदूरी में अन्तरों को उत्पन्न करते हैं। मजदूरी में अन्तरों को उत्पन्न करने वाले कारणों को आधुनिक अर्थशास्त्री निम्न सामान्य वर्गों (broad categories) में बाँटते हैं।

---

[10] By paying high wages it may be possible for the producer to 'cream' the labour market, i.e. to attract efficient workers.

विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी में अन्तर के कारण	१. श्रम-बाजार में 'अप्रतियोगी समूह' (Noncompeting Groups in the Labour Market) २. 'समकारी अन्तर' (Equalizing Differences)
एक ही व्यवसाय में मजदूरी में अन्तर के कारण	३. 'असमकारी अन्तर' (Nonequalizing Differences); इनको दो भागों में बाँटा जाता है-(अ) बाजार अपूर्णताएँ (Market Imperfections) तथा (ब) श्रम के गुणों में अन्तर (Differences in Labour Quality)

नीचे हम उपर्युक्त कारणों का विस्तृत विवरण देते हैं।

१. श्रम बाजार में अप्रतियोगी समूह (Noncompeting Groups in the Labour Market)

श्रमिक एक रूप नहीं होते, उनमें मानसिक तथा शारीरिक गुणों एवं शिक्षा तथा प्रशिक्षण (training) की दृष्टि से अन्तर होता है। अतः श्रमिकों को विभिन्न वर्गों या समूहों (जैसे अकुशल तथा अर्द्धकुशल श्रमिकों का वर्ग, डाक्टरों का वर्ग, अध्यापकों का वर्ग, इत्यादि) में बाँटा जा सकता है। एक वर्ग या समूह के अन्दर श्रमिकों में प्रतियोगिता होती है परन्तु विभिन्न वर्गों या समूहो (जैसे डाक्टर तथा अध्यापक, अकुशल तथा कुशल श्रमिको) मे आपस मे प्रतियोगिता नही होती; अतः इन वर्गों या समूहों को 'अप्रतियोगी समूह' (noncompeting groups) कहते है।

उदाहरणार्थ, डाक्टरों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण में लम्बा समय लगता है तथा अधिक खर्चा होता है जिसे थोड़े व्यक्ति ही कर सकते हैं, परिणामस्वरूप डाक्टरों की पूर्ति कम होगी और उनका वेतन अथवा मजदूरी अधिक होगी। इसके विपरीत दूसरे वर्ग अकुशल श्रमिकों को लीजिए; अकुशल श्रमिकों में *प्रशिक्षण लागत लगभग नही के बराबर होगी, परिणामस्वरूप उनकी पूर्ति बहुत* अधिक होगी और उनकी मजदूरी बहुत कम होगी। दूसरे शब्दो में प्रत्येक 'अप्रतियोगी समूह' मे श्रमिकों की मजदूरी उनकी माँग तथा पूर्ति की दशाओ के अनुसार निर्धारित होगी और इन 'अप्रतियोगी समूहो' की मजदूरियो मे अन्तर होगा।

'अप्रतियोगी समूह के अन्दर अप्रतियोगी समूह' ('noncompeting groups within noncompeting groups') भी होते हैं। उदाहरणार्थ, 'डाक्टरो के अप्रतियोगी समूह के अन्दर दिमाग के सर्जन (brain surgeons) का अप्रतियोगी समूह' होता है, दिमाग के सर्जन बहुत कम डाक्टर हो पाते हैं और इन 'दिमाग के सर्जनो' को समूह के अन्य डाक्टरो की तुलना मे बहुत अधिक वेतन या मजदूरी प्राप्त होती है।

परन्तु उपर्युक्त विवरण से यह अर्थ नही निकाल लेना चाहिए कि विभिन्न समूहों मे बिलकुल *भी प्रतियोगिता नही होती हैं। उदाहरणार्थ, कड़े प्रयत्नो द्वारा एक समयावधि में अकुशल श्रमिक* कुशल श्रमिक हो सकते हैं और इस प्रकार 'अकुशल श्रमिको' तथा 'कुशल श्रमिको' के अप्रतियोगी समूहों मे थोड़ी प्रतियोगिता हो सकती है। दूसरे शब्दो में, "मुख्य बात यह है कि विभिन्न वर्ग एक दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं, परन्तु वे शत-प्रतिशत एक समान नहीं होते हैं। वे एक दूसरे के लिए पूर्ण नही बल्कि आंशिक स्थानापन्न होते हैं।"[11]

अब एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि श्रमिकों के विभिन्न 'अप्रतियोगी समूह' क्यों होते हैं? इसके कई कारण हो सकते हैं; जैसे—(1) व्यक्तियों या श्रमिको के प्राकृतिक गुणों (natural

---

11 "The essential point, then, is this: The different categories compete with each other; yet they are not 100 percent identical. They are *partial rather than perfect substitutes* for each other."

endowments) में अन्तर होता है। किसी कार्य में दक्षता प्राप्त करने के लिए लम्बे प्रशिक्षण मानसिक जागरूकता (alertness) की आवश्यकता होती है और इसके लिए सभी व्यक्ति योग्यता, महत्त्वाकांक्षा (ambition) तथा धैर्य (patience) नहीं होता। (ii) वातावरण में अ होता है। सभी व्यक्तियों के लिए घर का वातावरण, अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध, तथा शिक्ष अवसर समान नहीं होते।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है—(i) श्रमिकों के 'अप्रतियोगी समूह' होते हैं और इन अप्र योगी समूहों' की मजदूरियों में अन्तर होते हैं; इतना ही नहीं बल्कि 'अप्रतियोगी समूह के अन्त अप्रतियोगी समूहों' (noncompeting groups within noncompeting groups') की म दूरियों में भी अन्तर होते हैं। (ii) 'अप्रतियोगी समूह' का विचार उन विभिन्न कार्यों या व्यवसाय में मजदूरी के अन्तर की व्याख्या में सहायक है जिनके लिए योग्य श्रमिकों की एक सीमित सं प्राप्य होती है।[12]

(२) 'समकारी अन्तर' (Equalizing Differences)

यदि एक विशिष्ट 'अप्रतियोगी समूह' में श्रमिकों का एक समूह ऐसा है जो कि सम दक्षता रखता है तथा अनेक विभिन्न कार्यों को करने की समान रूप से योग्यता रखता है तो य आशा की जा सकती है इनमें से प्रत्येक कार्य के लिए उनकी मजदूरी दर एक समान होगी। रन्त ऐसा नहीं होता।[13] यहाँ पर हमें दूसरे प्रकार के अन्तर मिलते हैं जिन्हें 'समकारी अन्तर' कह जाता है।

कुछ कार्य या व्यवसाय अमौद्रिक लाभों (nonmonetary benefits) के कारण अधि आकर्षक (attractive) होते हैं, परन्तु कुछ अन्य कार्य कम आकर्षक या कम आनन्दायक (less pleasent) होते हैं क्योंकि इनमें अमौद्रिक लाभ नहीं या बहुत कम होते हैं अथवा इनमें जोखि होती है या स्वास्थ्य पर बहुत जोर पड़ता है। कम आनन्दायक कार्यों में श्रमिकों की आवश्‍ पूर्ति तभी प्राप्त होगी जबकि उनको अमौद्रिक लाभों की क्षतिपूर्ति (compensation) के रूप में, अन्य कार्यों या व्यवसायों की तुलना में, अधिक मजदूरी दी जाय। मजदूरी के ऐसे अन्तरों को 'समकारी अन्तर' कहते हैं।

संक्षेप में **'समकारी अन्तरों' को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है**—"असुखदता (unpleasantness) की दृष्टि से कार्यों में अन्तर हो सकता है; अतः व्यक्तियों को कम आकर्षक कार्यों में प्रलोभित करने के लिए मजदूरियों को ऊँचा उठाना होगा। इस प्रकार के मजदूरी के अन्तर जो कि कार्यों के अमौद्रिक अन्तरों की क्षतिपूर्ति का काम करते हैं "समकारी अन्तर" कहे जाते हैं।"[14]

अमौद्रिक तत्व जो कि विभिन्न कार्यों या व्यवसायों में मजदूरी में अन्तर उत्पन्न करते हैं निम्नलिखित हैं :

---

12 The concept of noncompeting groups helps in explaining wage differentials between different jobs or occupations for which limited numbers of workers are qualified.

13 "If a group of workers in a particular noncompeting group are equally capable of performing several different jobs one might expect that the wage rate would be identical for each of these jobs. But this is not the case."

14 "Jobs may differ in their impleasantness; hence wages may have to be raised to coax people into the less attractive jobs. Such wage differentials that simply serve to *compensate for the nonmoney differences among jobs* are called "equalizing differences."

(i) कार्य का स्थायित्व तथा उसकी नियमितता (Permanence and regularity of job)—जिन व्यवसायों में श्रमिकों का कार्य अस्थायी तथा अनियमित (temporary and irregular) होता है, उनमें मजदूरी स्थायी तथा नियमित कार्य वाले व्यवसायों की अपेक्षा अधिक होती है। इसका कारण है कि अस्थायी कार्य वाले व्यवसाय के श्रमिक बीच-बीच में बेरोजगार हो जाते हैं और खाली समय में अपने भरण-पोषण का व्यय निकालने के लिए वे अपेक्षाकृत ऊँची मजदूरी पर ही कार्य करेंगे।

(ii) व्यवसाय की जोखिम (Risks of the occupation)—जिन व्यवसायों में जीवन का खतरा रहता है उनमे श्रमिकों को ऊँची मजदूरी दी जाती है अन्यथा ऐसे व्यवसायों में आवश्यकतानुसार श्रमिकों की पूर्ति प्राप्य नही होगी। इसी कारण खानो मे कार्य करने वाले श्रमिकों, सैनिकों, इत्यादि को अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी दी जाती है।

(iii) कार्य का दायित्व एवं उसकी विश्वसनीयता (Responsibility and reliability of the job)—कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनमें उत्तरदायित्व तथा विश्वास की आवश्यकता होती है, जैसे बैंक के मैनेजर का कार्य, मिल के मैनेजर का कार्य, इत्यादि। ऐसे कार्यों मे व्यक्तियों को ऊँची मजदूरी दी जाती है।

(iv) कार्य अवधि (Working period)—जिन कार्यों मे प्रतिदिन कम घण्टे कार्य करना होता है तथा साल भर मे छुट्टियाँ भी अधिक होती हैं, उनमे श्रमिकों को अपेक्षाकृत कम मजदूरी मिलती है। इसकी विपरीत दशाओं में अधिक मजदूरी मिलती है।

(v) स्थान विशेष पर मूल्य-स्तर (Price level at a particular place)—कुछ बड़े-बड़े शहरों मे वस्तुओं की कीमतें ऊँची होती हैं तथा रहन-सहन की लागत अधिक होती है। ऐसी जगहों मे श्रमिकों की मजदूरी ऊँची होती है।

(vi) अन्य सुविधाएँ (Other facilities)—कुछ व्यवसायों मे श्रमिकों को नकद मजदूरी के अतिरिक्त कई अन्य सुविधाएँ प्राप्य होती हैं, जैसे छोटे बड़े बच्चों की नि:शुल्क शिक्षा, नि:शुल्क डाक्टरी सहायता, सस्ते किराये पर मकान की सुविधा, इत्यादि। ऐसे व्यवसायों में श्रमिकों की मजदूरी कम होती है।

(vii) भविष्य में उन्नति की आशा (Future prospects)—जिन व्यवसायों में श्रमिकों के लिए भविष्य मे उन्नति के अच्छे अवसर होते हैं उनमे प्रारम्भ मे मजदूरी कम दी जाती है।

(३) 'असमकारी अन्तर' (Nonequalizing Differences)

यदि श्रमिक एक रूप (homogeneous) हैं तो भी अमौद्रिक [illegible] मजदूरियों मे अन्तर होगा जिन्हें 'समकारी अन्तर' कहा जाता है, जैसा कि [illegible] है। परन्तु वास्तविक जगत मे सब श्रमिक एक रूप नहीं होते और इसलिए [illegible] सभी अन्तरों की व्याख्या 'समकारी अन्तरों' द्वारा नही की जा सकती।

एक ही व्यवसाय या एक समान कार्यों (identical jobs) [illegible] दूरियों में अन्तरों की व्याख्या 'असमकारी अन्तरों' द्वारा की जाती है। [illegible] भागों मे बाँटा जा सकता है—(अ) बाजार की अपूर्णताएँ तथा (ब) [illegible]

(अ) बाजार अपूर्णताएँ (Market Imperfections)—[illegible] गतिहीनताएँ, एकाधिकारी तत्व तथा सरकारी हस्तक्षेप बाजार की [illegible] है। इन विभिन्न प्रकार की अपूर्णताओं के कारण एक ही [illegible]

होने पर श्रमिकों की मजदूरी में अन्तर उत्पन्न हो जाते हैं। बाजार अपूर्णताएँ निम्न प्रकार क सकती हैं:

(i) किसी व्यवसाय (occupation) में सुदृढ़ श्रम-संघ की उपस्थिति अथवा श्रमि एकाधिकार की स्थिति, या सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम-मजदूरी अधिनियम के कारण म अपेक्षाकृत ऊँची हो सकती है।

(ii) भौगोलिक अगतिशीलताएँ (Geographic immobilities)—कई दशाओं में श्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसी व्यवसाय में ऊँची मजदूरी होने पर भी जाना पसन्द नहीं क और इस प्रकार एक ही व्यवसाय में दो स्थानों या क्षेत्रों में मजदूरी में अन्तर बना रहता श्रमिकों की 'भौगोलिक अगतिशीलताओं' के कई कारण हो सकते हैं, जैसे—(अ) प्रायः श्रमिक मित्रों, सम्बन्धियों को छोड़ने के लिए, अपने बच्चों की दूसरे स्थान में प्रवेश की कठि तथा पढ़ाने की असुविधा, तथा नये स्थान पर नये व्यक्तियों और नयी परिस्थितियों के साथ स योजन (adjustment) की कठिनाइयाँ तथा असुविधाओं को उठाने के लिए अनिच्छुक (re tant) होते हैं और परिणामस्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसी व्यवसाय या उसी प्र के कार्य में ऊँची मजदूरी होने पर भी जाने को तैयार नहीं होते। (ब) एक स्थान पर एक साय में कई वर्षों तक कार्य करते रहने से जो पुराने श्रमिक अधिक ज्येष्ठ (senior) हो जा तथा पेन्शन या अन्य प्रकार के लाभों के अधिकारी हो जाते हैं वे दूसरे स्थान में उसी प्रकार व्यवसाय में जाना पसन्द नहीं करेंगे क्योंकि वहाँ पर उनकी ज्येष्ठता (seniority), अन्य प के अधिकार, इत्यादि प्रभावित हो सकते हैं। इन पुराने श्रमिकों में भौगोलिक गतिशीलता कम होती है। (स) कभी-कभी दूसरे स्थानों में कार्य के अवसरों तथा मजदूरी में अन्तरों के में श्रमिक अनभिज्ञ (ignorant) हो सकते हैं और इसलिए उनकी भौगोलिक गतिशीलता बहुत हो सकती है।

(iii) **कृत्रिम संस्थात्मक अगतिशीलताएँ** (Artificial institutional immobilities) कुछ संस्थाओं द्वारा श्रमिकों या व्यक्तियों की गतिशीलता पर कृत्रिम रुकावटें या बन्धन लगा जाते हैं जो कि भौगोलिक अगतिशीलताओं को और बल प्रदान करते हैं। उन्नतशील (advanced countries) में प्रायः श्रम-संघ अधिक दृढ़ और प्रभावशाली होते हैं। एक को व्यवसाय विशेष में रोजगार प्राप्त करने के लिए तत्सम्बन्धित श्रम-संघ का सदस्य बनना प है अर्थात् 'संघ-कार्ड' (Union Card) प्राप्त करना पड़ता है। ऊँची मजदूरी प्राप्त करने दृष्टि से कई श्रम-संघ अपने सदस्यों की संख्या सीमित रखना चाहते हैं। ऐसी परिस्थिति में कुछ श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर व्यवसाय विशेष में कार्य प्राप्त करना चाहते तो वहाँ का तत्सम्बन्धित श्रम-संघ उनको 'संघ-कार्ड' नहीं देना चाहता और इसलिए उन रोजगार प्राप्त नहीं होता, परिणामस्वरूप उनकी गतिशीलता में बाधा पड़ती है। अध्यापन व्यवसाय (teaching profession) तथा अन्य व्यवसायों में भी व्यक्तियों की पूर्ति को सी रखने के उद्देश्य से कृत्रिम बाधाएँ (restrictions) हो सकती हैं।

(iv) **सामाजिक अगतिशीलताएँ** (Sociological immobilities)—प्रायः जाति, व (race), इत्यादि के कारण व्यवसायों में रोजगार प्राप्त करने में कुछ श्रमिकों को कठिनाई हो है और उन्हें, अन्य व्यक्तियों की तुलना में, एक ही प्रकार के कार्य के लिए कम मजदूरी या वे दिया जाता है। उदाहरणार्थ, कई देशों में नीग्रो (Negroes), यहूदी (Jews) तथा अन्य अ संख्यक वर्ग (minority group) के लोगों को एक समान कार्य में कम मजदूरी पर रोजगार मि

पाता है। अधिकांश देशों (जिनमें भारत भी एक है) विभिन्न प्रकार की सामाजिक अगतिशीलताओं को कम करने के लिए कानून बनाए गए हैं, परन्तु फिर भी व्यवहार में ये अगतिशीलताएँ बनी रहती हैं।

(ब) श्रमिकों के गुणों में अन्तर (Differences in labour quality)—बाजार की अपूर्णताओं अथवा प्रतियोगिता में अपूर्णताओं की अनुपस्थिति होने पर भी श्रमिकों की मजदूरियों में अन्तर होगा। इसका कारण है श्रमिकों की योग्यताओं में अन्तर होता है, परिणामस्वरूप एक ही व्यवसाय में श्रमिकों की मजदूरियों में अन्तर रहता है।

महिला श्रमिकों की मजदूरी की दर कम क्यों होती है?
(WHY ARE WOMENS' WAGES LOW ?)

प्रायः महिला श्रमिकों को पुरुष श्रमिकों की तुलना में एक ही व्यवसाय में कम मजदूरी मिलती है। इसके कारण निम्नलिखित है :

(१) पुरुषों की तुलना में महिला श्रमिकों की शारीरिक शक्ति कम होती है और इसलिए कई व्यवसायों में वे अपेक्षाकृत कम उत्पादन करती हैं और उन्हे कम मजदूरी मिलती है।

(२) महिलाएँ प्रायः विवाह होने के समय तक ही कार्य करना चाहती हैं, अतः पुरुषों की अपेक्षा कम मजदूरी पर भी कार्य करने को तत्पर रहती हैं।

(३) प्रायः महिलाओं की आय 'पूरक आय' (supplementary income) की भाँति होती है, वे अपने पतियों, भाइयों, इत्यादि की आय में सहारा लगाती हैं, इसलिए कम मजदूरी पर कार्य कर लेती हैं।

(४) महिला श्रमिकों के संगठन (unions) प्रायः नही होते हैं, परिणामस्वरूप उनकी सौदा करने की शक्ति कम होती है और उन्हे कम मजदूरी मिलती है।

परन्तु अब परिस्थितियाँ बदल रही हैं। आज का नारा 'समान कार्य के लिए समान मजदूरी' है। अब अनेक देशों में महिलाओं तथा पुरुषों को समान कार्य के लिए समान मजदूरी मिलती है, भारत ऐसे देशों में से एक है।

न्यूनतम मजदूरी
(MINIMUM WAGES)

प्राक्कथन (Introductory)

पूँजीवादी देशों में प्रायः मालिक या सेवायोजक (employers) मजदूरों का शोषण करते हैं। वे मजदूरों से अधिक कार्य लेकर कम से कम मजदूरी देने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि प्रायः मजदूरों की सौदा करने की शक्ति (bargaining power) कमजोर होती है। परिणामस्वरूप, मालिकों तथा श्रमिकों में संघर्ष चलता रहता है, हड़तालें तथा तालेबन्दियाँ (lock-outs) होती रहती हैं। ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न न होने देने तथा मजदूरों को मालिकों के शोषण से बचाने के लिए एक तरीका सरकार द्वारा न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण बताया जाता है। अब लगभग सभी औद्योगिक उन्नतशील देशों में न्यूनतम मजदूरी के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है तथा मान्यता दी जाती है।

न्यूनतम मजदूरी का अर्थ (The Concept of Minimum Wage)

न्यूनतम मजदूरी का अर्थ उस न्यूनतम पारिश्रमिक (remuneration) से नहीं लिया जाता जो कि श्रमिक-जीवन के केवल भरण-पोषण मात्र (bare sustenance of life) के लिए होता हो अथवा जो श्रमिकों को केवल जीवित मात्र रख सके। न्यूनतम मजदूरी वह न्यूनतम पारिश्रमिक होता है जो कि श्रमिकों को एक न्यूनतम जीवन-स्तर बनाए रखने के लिए आवश्यक हो, जो

श्रमिकों को उन सामान्य आरामों (comforts) को प्रदान कर सकें जिनसे उनमें अच्छी आदतों विकास हो, आत्मसम्मान की भावना बनी रहे तथा वे एक आदरयुक्त नागरिक की स्थिति रह सकें।

भारत सरकार की 'उचित मजदूरी कमेटी' ('Fair Wages Committee') ने न्यून मजदूरी की एक अच्छी परिभाषा दी है जो कि इस प्रकार है : "न्यूनतम मजदूरी को श्रमि जीवन के केवल भरण-पोषण मात्र की व्यवस्था ही नहीं वल्कि श्रमिकों की कार्यक्षमता वनाए रखने की भी व्यवस्था करनी चाहिए। इस उद्देश्य से न्यूनतम मजदूरी को थोड़ी शि चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा अन्य सुविधाओं की भी पूर्ति करनी चाहिए।"[15]

न्यूनतम मजदूरी के सम्बन्ध में निम्न दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

(i) ध्यान रहे कि न्यूनतम मजदूरी की कोई एक दर सदैव निश्चित नहीं रहती। र० सहन की लागत में परिवर्तन होने से न्यूनतम मजदूरी की दर में भी परिवर्तन किया जाता. यदि रहन-सहन की लागत में वृद्धि (वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि के परिणामस्वरूप) हो जाए तो न्यूनतम मजदूरी की दर में भी वृद्धि की जायेगी।

(ii) न्यूनतम मजदूरी किसी उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों के लिए निर्धारित की सकती है; अथवा, देश के सभी उद्योगों के लिए एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (nation minimum wage) निर्धारित की जा सकती है। दोनों दशाओं में परिणाम भिन्न होंगे।

न्यूनतम मजदूरी का उद्देश्य (Object of minimum wages)

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (law) का उद्देश्य मजदूरी का सामान्य रूप से नियन्त्रण निर्धारण करना नहीं होता वल्कि इसका उद्देश्य किसी भी श्रमिक को उस मजदूरी से नीचे अप में लेने से रोकना है जो कि एक न्यूनतम जीवन-स्तर को वनाये रखने के लिए आवश्यक है।[16]

दूसरे शब्दों में, न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य निम्न हैं :

(i) श्रमिकों के शोषण को रोकना तथा उन उद्योगों में मजदूरी बढ़वाना जिनमें अत्यन्त नीची हैं।

(ii) श्रमिकों की न्यूनतम आवश्यकताओं तथा सुविधाओं (amenities) की पूर्ति कर न्यूनतम मजदूरी श्रमिकों को सन्तुष्ट रख कर उद्योग में शान्ति को प्रोत्साहित करती है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (laws) या तो उस मजदूरी दर को निश्चित रूप से व देते हैं जो कि न्यूनतम समझी जानी चाहिए, अथवा वे न्यूनतम मजदूरी दर का निर्धारण प्रावन्धिक कमीशन (administrative commission) पर छोड़ देते हैं। वाद की योजना सव त्तम है क्योंकि परिवर्तनशील आर्थिक दशाएँ, जैसे मूल्य-स्तर में परिवर्तन, न्यूनतम मजदूरी दर वार-वार परिवर्तन करना आवश्यक कर देती हैं, यदि न्यूनतम रहन-सहन की लागतों को समावि करने के उद्देश्य की पूर्ति होनी है।[17]

---

15 "...a minimum wage must provide not merely for the bare sustenance of life but the preservation of the efficiency of the worker. For this purpose the minimum w must also provide for some measure of education, medical requirements and amenities."

16 "The purpose of a minimum wage law is not to control or determine wages in ... but to prohibit the employment of anyone at a wage below an amount necessary maintain a minimum standard of living."

17 "These laws either state definitely the wage considerd to be minimum, or they leave the determination of that wage to an administrative commission. The later plan is by the best because changing economic conditions, such as variations in the price le make it necessary to vary the wage rate frequently if the intent of the law, to just co minimum living costs, is to be carried out."

न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के आर्थिक प्रभाव (Economic consequences of fixing a minimum wage)

न्यूनतम मजदूरी के दो रूप हो सकते हैं। (i) न्यूनतम मजदूरी किसी विशेष उद्योग या कुछ उद्योगों के लिए निश्चित की जा सकती है; अथवा (ii) देश के सभी उद्योगों के लिए एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (national minimum wage) निर्धारित कर दी जाती है। इन दोनों रूपों के अलग-अलग आर्थिक परिणाम होंगे। नीचे हम दोनों रूपों के आर्थिक परिणामों का अलग-अलग विस्तृत विवरण देंगे।

(i) एक विशेष उद्योग या कुछ उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के प्रभाव

उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में परिणाम समान होंगे चाहे न्यूनतम मजदूरी सरकार द्वारा लागू (enforce) की जाती है अथवा प्रभावपूर्ण तरीके से उसे श्रम-संघ द्वारा बनाये रखा जाता है।[18] न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के अच्छे तथा बुरे दोनों प्रकार के प्रभाव हो सकते है।

हानिकारक परिणाम या दोष (Harmful effects or demerits)—मुख्य हानिकारक परिणाम निम्न हैं :

(१) बेरोजगारी (unemployment)—प्रायः न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से कुछ ऊँची निर्धारित की जाती है। यदि न्यूनतम मजदूरी अधिक ऊँची निर्धारित की जाती है तो इस प्रकार की सम्भावना होगी कि उद्योग विशेष में बेरोजगारी फैले। बेरोजगारी की सम्भावनाएँ निम्न प्रकार से हो सकती हैं :

(i) मजदूरी ऊँची होने से लागत बढ़ेगी और वस्तु की कीमत बढ़ेगी। यदि वस्तु की माँग अधिक लोचदार (highly elastic) है तो वस्तु की माँग कम हो जायेगी और उत्पादक बढ़ी हुई लागत के बोझ को (ऊँची कीमत के रूप मे) उपभोक्ताओं पर नही डाल सकेगा। वस्तु की माँग कम होने पर उत्पादक पहले की अपेक्षा कम श्रमिकों को प्रयुक्त करेंगे, और इस प्रकार उद्योग मे बेरोजगारी उत्पन्न होगी। इन 'बेरोजगार' श्रमिकों मे से कुछ या सबको पहले से भी कम मजदूरी पर शायद उन उद्योगों में रोजगार मिल जाये जिनमें न्यूनतम मजदूरी लागू नही की गयी है। बेरोजगार होने या बहुत कम मजदूरी पर अन्य उद्योगो मे काम करने दोनो ही अवस्थाओ मे श्रमिकों को हानि होगी।

चित्र—१०

बेरोजगारी की स्थिति को हम संलग्न चित्र नं० १० द्वारा भी बता सकते हैं। यदि वस्तु की माँग अधिक लोचदार है तो उसको उत्पादित करने वाले श्रमिकों की माँग भी लोचदार होगी। चित्र न० १० मे DD रेखा श्रमिकों की लोचदार माँग को बताती है। ऐसी स्थिति मे न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण अधिक बेरोजगारी को उत्पन्न करेगा। चित्र मे श्रमिकों की पूर्ति रेखा SS है जो कि माँग रेखा DD को P बिन्दु पर काटती है। अत. स्पर्द्धात्मक मजदूरी (competitive wage) W_c होगी जिस पर Q_c श्रमिक रोजगार मे होंगे। माना कि न्यूनतम मजदूरी W_m निर्धारित कर
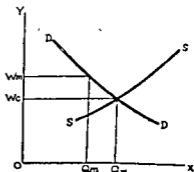
18 "The results are the same whether the minimum wage is enforced by the state or maintained, effectively, by a trade union."

दी जाती है तो रोजगार Q_c के घटकर Q_m हो जाता है; अर्थात् Q_m Q_c के बराबर श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं और जैसा कि चित्र से स्पष्ट है यह बेरोजगारी अधिक है।

(ii) एक सम्भावना यह है कि ऊँची मजदूरी के कारण लागत में वृद्धि के परिणामस्वरूप सेवायोजक (employers) अधिक 'श्रम-बचत मशीनों' (labour saving machinery) का प्रयोग करें। ऐसी स्थिति में बहुत से श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे।

(iii) ऊँची न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धित उद्योग या उद्योगों में लाभों को कम करेगी। कम कुशल उत्पादक हानि के कारण दिवालिये हो जायेंगे और कार्य को बन्द कर देंगे। इन उद्योगों में नयी पूँजी का विनियोग नहीं किया जायेगा जब तक कि इनमें उत्पादन की कमी वस्तुओं की कीमतों को इतना ऊँचा नहीं कर देती जिससे कि इनमें भी, अन्य उद्योगों की भाँति, लाभ के अवसर हो सकें। स्पष्ट है कि उत्पादन में कमी के कारण इन उद्योगों में बहुत से श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे।

(२) श्रमिकों का उद्योगों में पुनर्वितरण (Redistribution of labour between occupations)

इस बात की सम्भावना हो सकती है कि न्यूनतम मजदूरी इतनी ऊँची हो कि वह, वर्तमान उद्योग में लगे हुए कम कुशल श्रमिकों की तुलना में अन्य उद्योगों से अधिक कुशल श्रमिकों को आकर्षित कर सकें। यदि ऐसा है तो सेवायोजक वर्तमान श्रमिकों को अन्य उद्योगों के श्रमिकों से प्रतिस्थापित (replace) करेंगे और ऐसी परिस्थिति में श्रमिकों का विभिन्न व्यवसायों में केवल पुनर्वितरण ही होगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का उद्योग विशेष में सम्भावित परिणाम रोजगार को कम करना है, अर्थात् बेरोजगारी उत्पन्न करना है। परन्तु इस प्रभाव को पूर्ण रूप से प्रकट होने में कुछ समय लगेगा। स्थिर प्लांट का प्रयोग करने वाले साहसी या सेवायोजक उस प्लांट को कार्य में लेते रहेंगे और लगभग पहले के समान ही श्रमिकों को रोजगार देते रहेंगे; परन्तु अब उन्हें पहले की अपेक्षा कम लाभ या प्रतिफल (return) प्राप्त होगा। परन्तु जब प्लांट घिस जायेगा तो उसे पुनः स्थापित (replace) नहीं किया जायेगा अथवा उसे दूसरे रूप में स्थापित किया जायगा जिसमें कि कम श्रमिकों का प्रयोग हो। इस प्रकार मजदूरियों में वृद्धि होने के पर्याप्त समय बाद श्रमिकों का नौकरी से हटाया जाना सामान्यतया सेवायोजकों (employers) की अकुशलता या श्रम-बचत तरीकों का परिणाम समझा जा सकता है तथा न्यूनतम मजदूरी का परिणाम नहीं।[19]

लाभदायक परिणाम अथवा गुण (Beneficial effects or merits)

उपर्युक्त विवरण से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी को लागू करने से सदैव हानिकारक परिणाम ही होते हैं। यह प्रयोग निम्न प्रकार से लाभदायक भी हो सकता है :

---

19 "Thus the probable effect of the minimum wage will be to diminish employment in that occupation. But this effect may take some time to show itself. Entrepreneurs with fixed plant may continue to work it, employing nearly as many workers as before, although they now get a smaller return from it; but when plant wears out it may not be replaced, or it may be replaced in a different form requiring less labour. Thus dismissals taking place at a considerable interval after wages have been raised may be generally believed to be due to the inefficiency of employers or to labour-saving devices and not to the minimum wage."

(१) कुछ दशाओं में बेरोजगारी उत्पन्न नहीं होगी

(i) यदि न्यूनतम मजदूरी स्थिर तथा विशिष्ट प्लाट (fixed and specialized plant) प्रयोग करने वाले उद्योगों मे लागू की जाती है तो ऐसी दशा में उत्पादन की रीतियों को आसानी तथा शीघ्रता से परिवर्तित नही किया जा सकता है। अतः ऐसे उद्योगों मे मजदूरी में वृद्धि के कारण सेवायोजक का लाभ कुछ कम हो जायेगा; परन्तु श्रमिको के रोजगार मे कोई विशेष कमी नहीं होगी।[20]

दूसरे शब्दों में, यदि न्यूनतम मजदूरी लागू किये जाने वाले उद्योगो मे अधिक लाभ प्राप्त हो रहे हैं तो न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर देने से केवल अधिक लाभ घटकर सामान्य स्तर पर आ जायेंगे और श्रमिको के रोजगार में घटने की सम्भावना बहुत कम होगी।

(ii) यदि वस्तु की माँग अधिक बेलोचदार है तो उत्पादक ऊँची मजदूरी की लागत के बोझ को एक सीमा तक ऊँची कीमतों के रूप में उपभोक्ताओं पर डाल सकेंगे। ऐसी स्थिति मे उद्योग विशेष में श्रमिकों की बेरोजगारी बहुत कम होगी।

इस स्थिति को एक चित्र द्वारा भी दिखा सकते हैं। यदि वस्तु की माँग बेलोचदार है तो उसको उत्पादित करने वाले श्रमिकों की माँग भी बेलोचदार होगी। चित्र नं० ११ में DD रेखा श्रमिको की बेलोचदार माँग को बताती है। श्रमिकों की पूर्ति रेखा SS है; दोनों P बिन्दु पर काटती हैं, अतः स्पर्द्धात्मक मजदूरी Wc होगी जिस पर Qc श्रमिक रोजगार मे होंगे। माना कि न्यूनतम मजदूरी Wm निर्धारित कर दी जाती है तो अब Qm श्रमिक रोजगार में होंगे; दूसरे शब्दो मे Qm Qw के बराबर बहुत कम बेरोजगारी उत्पन्न होती है।
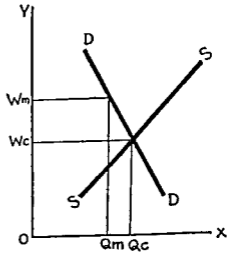
चित्र—११

(iii) यदि मजदूरी कुल उत्पादन-लागत का बहुत थोडा अश है तो सेवायोजक वस्तु की कीमत मे बहुत थोड़ी ही वृद्धि करके अपनी क्षति-पूर्ति कर लेगा और श्रमिको के रोजगार मे कोई विशेष कमी नही होगी।

(iv) यदि न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से कम है तो स्पष्ट है कि श्रमिको की माँग बढ़ेगी और रोजगार बढ़ेगा, तथा समय के साथ प्रतियोगी मजदूरी में वृद्धि की सम्भावना भी हो सकती है।

(२) श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि—न्यूनतम मजदूरी के कारण मजदूरी में वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रमिको की कुशलता मे वृद्धि हो सकती है क्योंकि अब श्रमिक अधिक पौष्टिक वस्तुओ तथा 'कार्यक्षमता के लिए आवश्यक वस्तुओं' ('necessaries for efficiency') का प्रयोग कर सकेंगे तथा कुछ तीव्र मौद्रिक-चिन्ताओं से मुक्त हो सकेंगे। कार्यक्षमता मे वृद्धि के

20 "The existence of fixed and specialized plant may mean that methods of production cannot readily be changed, so that it may be possible to "squeeze" profits for the benefit of wages without thereby causing much unemployment."

परिणामस्वरूप श्रमिक अधिक उत्पादन कर सकेंगे और उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की क गिरेगी परन्तु प्रति इकाई उत्पादन की श्रम-लागत घटेगी, परिणामस्वरूप अन्य साधनों की तु में श्रमिकों की माँग बढ़ेगी। परन्तु व्यवहार में इस बात का प्रमाण कम मिलता है कि म में वृद्धि वास्तव में श्रमिकों की कार्यक्षमता में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि करती है।

(३) श्रमिकों के शोषण पर नियन्त्रण—यदि उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में श्र का शोषण हो रहा है, तो ऐसे उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी लागू होने से श्रमिकों का शो रुकेगा और श्रमिकों को लाभ होगा क्योंकि श्रमिकों की मजदूरी, बिना विशेष वेरोजगारी बढ़ जायेगी।

(४) धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को धन हस्तांतरण का एक यन्त्र—यदि देश 'वेरोजगारी लाभ फंड' (unemployment benefit fund) की व्यवस्था है तो श्रमिकों को हानि नहीं होगी। उद्योग विशेष में न्यूनतम मजदूरी लागू होने से यदि कुछ श्रमिक वेरोजगार जाते हैं तो उन्हें सरकार से उनकी पुरानी मजदूरी के बराबर 'फंड' में से आर्थिक सहायता प्र होगी। धनी व्यक्तियों पर लगाए गये टैक्सों से प्राप्त धन में से 'वेरोजगारी लाभ फंड' का नि होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि न्यूनतम मजदूरी धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों धन हस्तांतरण के एक यन्त्र (instrument) की भाँति कार्य करती है।

(II) देश के सभी उद्योगों के लिए एक 'राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी' (National ... wage) निर्धारण के प्रभाव

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के अधिक गहरे प्रभाव पड़ेंगे विशेषतया जबकि न्यून मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से ज्यादा ऊँची है। राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के भी हानिकारक त अच्छे दोनों प्रकार के परिणाम होंगे। पहले हम हानिकारक परिणामों की तत्पश्चात् अ परिणामों की विवेचना करेंगे।

हानिकारक परिणाम (Harmful effects)

मुख्य हानिकारक परिणाम निम्नलिखित हैं :

(१) अधिक वेरोजगारी (Greater unemployment)

(i) कोई भी श्रमिक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी से कम पर कार्य नहीं कर सकता इसलिए श्रमिकों का पुनर्वितरण (redistribution) नहीं हो सकेगा ; एक उद्योग से नौकरी हटाये गये मजदूरों को दूसरे उद्योगों में कम मजदूरी पर रोजगार प्राप्त नहीं हो सकता। इ प्रकार ये श्रमिक स्थायी रूप से वेरोजगार हो जायेंगे जब तक कि वे अपनी कार्यकुशलता को बढ़ायें या जब तक कि देश में अनेक नये उद्योगों या फर्मों की स्थापना न हो।

(ii) ऊँची मजदूरी की लागत को ऊँची कीमतों के रूप में उपभोक्ताओं पर हस्तांतरि (transfer) नहीं किया जा सकता क्योंकि ऊँची कीमतों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय न्यूनत मजदूरी दर को और ऊँचा करना पड़ेगा ताकि वास्तविक मजदूरी (real wage) पहले समान रह सके। इस प्रकार जब ऊँची मजदूरी की लागत को उपभोक्ताओं के ऊपर नहीं डाल जा सकता तो वस्तुओं का उत्पादन कम होगा, श्रमिकों की माँग कम होगी तथा जो श्रमि वेरोजगार हो जायेंगे वे वेरोजगार बने रहेंगे।

(iii) ऊँची मजदूरी की लागत के कारण सेवायोजकों के लाभ कम होंगे। उत्पादन क दूसरी रीतियों (जैसे श्रम-बचत मशीनों) का प्रयोग करके वे लाभों में कमी को पूरा नहीं क पायेंगे क्योंकि सभी उद्योगों में श्रम-बचत मशीनों की अधिक माँग होगी और परिणामस्वरूप उनक

कीमतें भी बढ़ जायेंगी। लाभों में कमी के कारण अधिकांश उद्योगों में उत्पादन कम होगा, श्रमिकों की माँग कम होगी और बेरोजगारी उत्पन्न होगी।

(iv) लाभों में कमी के कारण बचत कम होगी, पूँजी का संचय तथा विनियोग कम होगा, नये उद्योगों तथा उपक्रमों के स्थापित होने की सम्भावनाएँ कम होंगी और श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसरों में कमी होगी।

(v) बेरोजगारों के भरण-पोषण की व्यवस्था सार्वजनिक फंडों (public funds) में से करनी पड़ेगी; परिणामस्वरूप अधिक टैक्स लगाये जायेंगे, उद्योग तथा उपक्रम पर और अधिक भार पड़ेगा और उनका संकुचन होगा तथा नये उद्योगों का स्थापित होना कम होता जायेगा, अधिक बेरोजगारी फैलेगी और देश गरीबी की ओर अग्रसर होगा क्योंकि पूँजी के संचय तथा नये उपक्रमों के खुलने में कमी के कारण देश अपनी पिछली बचतों पर ही निर्भर करेगा।

(२) सेवायोजक निर्धारित न्यूनतम मजदूरी को प्रायः अधिकतम मजदूरी मानने लगते हैं अर्थात् वे कुशल श्रमिकों को भी न्यूनतम मजदूरी से अधिक नहीं देना चाहते हैं; परिणामस्वरूप श्रमिकों की कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(३) राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी को व्यवहार में लागू करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। (i) प्रायः कुछ श्रमिक मालिकों से मिल जाते हैं और बेरोजगार रहने की अपेक्षा न्यूनतम मजदूरी से कम पर कार्य करने लगते हैं। (ii) एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के स्तर को निर्धारित करना भी कठिन होता है। (iii) इसके अतिरिक्त आदमियों के लिए न्यूनतम मजदूरी तथा औरतों के लिए न्यूनतम मजदूरी के बीच सम्बन्ध को निर्धारित करना भी कठिन होता है। (iv) एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण मजदूर-प्रणाली (wage system) को बेलोचदार तथा कठोर (inelastic and rigid) बना देता है।

लाभ अथवा गुण (Benefits or merits)

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के अच्छे परिणाम भी होते हैं। राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी का समर्थन निम्न लाभों के कारण किया जाता है :

(१) राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी अधिनियम श्रमिकों को, जिनकी सौदा करने की शक्ति प्रायः कमजोर होती है, बेईमान सेवायोजकों के शोषण से बचायेगा।

(२) यह श्रमिकों को एक उचित जीवन-स्तर बनाये रखने में सहायक होगी। यह सम्भव है कि श्रमिक बढ़ी हुयी मजदूरी से अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि करें, परिणामस्वरूप उत्पादन बढ़ेगा तथा श्रमिकों में बेरोजगारी उत्पन्न नहीं होगी।

(३) इसके परिणामस्वरूप निम्न स्तर के श्रमिकों की उच्च वर्ग के श्रमिकों के साथ प्रतियोगिता समाप्त हो जायेगी और इस प्रकार प्रतियोगिता के कारण मजदूरी में गिरावट की प्रवृत्ति समाप्त हो जायेगी।[21]

(४) उन अकुशल उत्पादकों को अपने कार्य समाप्त कर देने होंगे जो कि श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी देने की क्षमता नहीं रखते। दूसरे शब्दों में, उत्पादकों को कुशल उत्पादन रीतियों तथा आधुनिक यन्त्रों (equipment) को अपनाना होगा ताकि वे इतनी आय प्राप्त कर सकें जिससे कि वे श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी दे सकें। इस प्रकार उद्योगों की उत्पादकता बढ़ेगी और औद्योगिक प्रबन्ध का स्तर ऊँचा उठेगा।

---

21 "The competition of the lower strata of workers with the upper grades is eliminated, thus tending to prevent the depressing of wages."

(५) निम्न स्तरों वाले प्रतियोगी सेवायोजकों की अपविक्रय की कार्यवाही (underselling) से ऊँचे स्तरों वाले सेवायोजकों की रक्षा हो सकेगी।[22]

निष्कर्ष—उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी तथा राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के हानिकारक तथा लाभदायक दोनों ही प्रकार के परिणाम होते हैं। न्यूनतम मजदूरी अधिनियमों को लागू करने में व्यावहारिक तथा प्रशासनात्मक कठिनाई उपस्थित होती हैं। यदि मजदूरी दर न्यूनतम सम्भव स्तर (lowest minimum possible level) पर निर्धारित की जाती है तो हानिकारक प्रभाव तथा कठिनाइयाँ कम हो जाती हैं।

"समग्र रूप में, कहा जा सकता है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियमों का एक महत्वपूर्ण स्थान है, यदि वे बुद्धिमानी के साथ बनाये जाते हैं और उनको लोचपूर्ण ढंग से लागू किया जाता है ताकि वे भौगोलिक अन्तरों तथा विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रख सकें; परन्तु वे नीची मजदूरियों के लिए पूर्ण-उपचार (cure-all) नहीं हो सकते।[23]

लाभ
[PROFIT]

लाभ का स्वभाव तथा उसकी परिभाषा
(NATURE AND DEFINITION OF PROFIT)

राष्ट्रीय आय का वह भाग जो वितरण की प्रक्रिया (process) में साहसियों को प्राप्त होता है लाभ कहा जाता है।[1] लाभ स्वभाव में अवशेष (residual in nature) होता है अर्थात् अन्य सभी साधनों के पुरस्कार (rewards) देने के बाद साहसी (या उद्योगपति या व्यवसायी या मालिक) को जो शेष बचता है वह लाभ है।

अर्थशास्त्री लाभ को दो अर्थों में प्रयोग करते हैं—(i) आर्थिक या विशुद्ध लाभ (economic or pure profit); तथा (ii) कुल लाभ (gross profit)। साधारण बोलचाल की भाषा में लाभ का अर्थ अर्थशास्त्रियों के कुल लाभ से होता है।

---

22 "Employers with high standards are protected against underselling by competitors with low standards."

"All in all, there is a place for minimum wage laws, provided *they* are wisely framed and flexibly administered to allow for geographical *differences* and *exceptional* circumstances; but they cannot be regarded as a cure-all for low wages."

The share of national income that goes to entrepreneurs in the process of distribution is known as profit.

लाभ की परिभाषा (Definition of profit)

अर्थशास्त्र में लाभ का अर्थ आर्थिक लाभ या विशुद्ध लाभ से होता है। लाभ साहसी के कार्यों अर्थात् जोखिमों तथा अनिश्चितताओं झेलने तथा नव-प्रवर्तन (innovations)[2] के लिए पुरस्कार है। यहाँ एक बात और ध्यान रखने की है कि लाभ प्रावैगिक परिवर्तनों (dynamic changes) के कारण उत्पन्न होता है; पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक उत्पादक को पूर्ण जानकारी होती है, कोई अनिश्चितता नहीं रहती, तथा दीर्घकाल में लाभ प्राप्त नहीं होता (केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है); अतः लाभ के लिए बाजार-ढाँचे (market structure) में अपूर्णताओं (imperfections) का होना आवश्यक है।

अतः प्रो० हेनरी ग्रेसन (Henry Grayson) लाभ को इस प्रकार परिभाषित करते हैं :

१. नव-प्रवर्तन के लिए पुरस्कार।
२. जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को स्वीकार करने का पुरस्कार।
३. बाजार-ढाँचे में अपूर्णताओं का परिणाम।

स्पष्ट है कि कोई भी एक दशा या तीनों दशाओं का कोई भी मिश्रण आर्थिक लाभ को उत्पन्न कर सकता है।[3]

कुल लाभ (Gross Profit)

एक उत्पादक या फर्म को कुल आगम (total revenue) में से क्रय-किये गये (purchased or hired) उत्पत्ति के साधनों (अर्थात् श्रम, पूंजी, भूमि तथा प्रबन्ध) के पुरस्कारों तथा घिसाई व्यय (depreciation cost) को निकाल देने के बाद जो शेष बचता है उसे 'कुल लाभ' कहा जाता है। [अर्थशास्त्रियों के इस 'कुल लाभ' को साधारण बोलचाल में 'लाभ' या 'व्यावसायिक लाभ' या 'एकाउण्टेण्ट का लाभ' (accountant's profit) भी कहते हैं। चूंकि यह अवशि राशि (residual amount) होती है इसलिए इसे 'एकाउण्टेण्ट का अवशेष' (accountant residual) भी कहते हैं।]

कुल लाभ की उपर्युक्त परिभाषा के सम्बन्ध में 'क्रय किये गये उत्पत्ति के साधन' ए महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। जब साहसी 'श्रम', 'पूंजी', 'भूमि' तथा 'प्रबन्ध' के साधनों का क्रय करता और उनके लिए स्पष्ट रूप से पुरस्कार देता है जो कि साहसी के लिए लागत हैं तो इनको स्पष्ट लागतें (explicit costs) कहते हैं; चूंकि साहसी ये पुरस्कार (अर्थात् लागतें) साधनों के उनके साथ अनुबन्ध (contract) के अनुसार देता है इसलिए इन्हें 'अनुबन्ध-सम्बन्धी लागतें' (contractual costs) भी कहा जाता है। यदि साहसी बाहर से उत्पत्ति के साधनों को नहीं खरीदता, बल्कि स्वयं अपने साधन जैसे अपनी पूंजी, अपनी भूमि, तथा सेवाएं, निरीक्षण और प्रबन्ध

में अपना श्रम देता है, तो वास्तव में साहसी को बाजार दर पर अपने इन साधनों के पुरस्कार मिल चाहिए और ये उसकी उत्पादन लागत के अंग होने चाहिए, क्योंकि वह साधनों को अन्य व्यवसा में लगा कर उनके पुरस्कार प्राप्त कर सकता था। साहसी को अपने व्यवसाय में लगाये गये अप साधनों के लिए जो पुरस्कार मिलना चाहिए उन्हें अर्थशास्त्री 'अस्पष्ट लागतें' (implicit costs) या 'अध्यारोपित लागतें' (imputed costs) कहते हैं।

'स्पष्ट लागतों' तथा 'अस्पष्ट लागतों' के विचारों को ध्यान में रखने से 'कुल लाभ' त 'आर्थिक लाभ' के अर्थों को सुगमता से समझा जा सकता है। कुल आगम[4] में से केवल . लागतों' को निकाल देने से जो बचता है उसे 'कुल लाभ' कहा जाता है। कुल आगम में से 'स्प लागतों' तथा 'अस्पष्ट लागतों' दोनों को निकाल देने से जो बचता है उसे 'आर्थिक लाभ' व 'विशुद्ध लाभ' कहते हैं। संक्षेप में,

कुल लाभ = कुल आगम — स्पष्ट लागतें

तथा आर्थिक लाभ = कुल आगम — स्पष्ट लागतें — अस्पष्ट लागतें

'कुल आगम — स्पष्ट लागतें' के स्थान
पर 'कुल लाभ' लिखा जा सकता है;

इसलिए, आर्थिक लाभ = कुल लाभ — अस्पष्ट लागतें

आर्थिक लाभ धनात्मक (positive) भी हो सकता है तथा ऋणात्मक (negative) भी। आर्थिक लाभ धनात्मक होता है जब कि 'कुल आगम' कुल 'स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतों' से अधिक होता है; आर्थिक लाभ ऋणात्मक होता है जब कि 'कुल आगम' कुल 'स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतों' से कम होता है। लाभ ही एक ऐसा साधन-पुरस्कार (factor income) है जो कि ऋणात्मक हो सकता है।

कुल लाभ के अंग (Constituents of gross profit) निम्नलिखित हैं :

(१) **आर्थिक लाभ** (Economic profit); इसका अर्थ है—(i) नव-प्रवर्तन के लिए पुरस्कार; नयी उत्पादन रीति, नयी वस्तु या वस्तु-विभिन्नता (product-differentiation) इत्यादि के कारण लाभ; (ii) जोखिमों तथा अनिश्चितताओं के उठाने का पुरस्कार। (iii) साहसी के अपने उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार[5] अर्थात् 'अस्पष्ट लागतें'।

(२) **स्पष्ट लागतें** (Explicit costs) अर्थात् उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार, घिसाई व्यय, बीमा व्यय इत्यादि।

(३) **एकाधिकारी लाभ**' (Monopoly profit); जब कोई उत्पादक अपने क्षेत्र में अकेला उत्पादक है तथा अपनी वस्तु की पूर्ति पर उसका नियन्त्रण है तो वह अतिरिक्त आय (extra income) प्राप्त करता है और यह एकाधिकारी लाभ 'कुल लाभ' का एक अंग होता है।

---

4 अपनी वस्तु को वेचने से जो कुल विक्रय राशि (sale proceeds) उत्पादक को मिलती है उसे ...ल आगम' कहते हैं।

...सी के अपने व्यवसाय में अपनी पूंजी पर व्याज को अर्थशास्त्री 'अस्पष्ट व्याज' (implicit ...rest) या 'अध्यारोपित व्याज' (imputed interest) कहते हैं। इसी प्रकार साहसी की ...म के लगान को 'अस्पष्ट लगान' या 'अध्यारोपित लगान' कहते हैं। जब साहसी स्वयं अपने ...वसा... की देखभाल तथा निर्देशन (management and direction) करता है तो इसे 'प्रबन्ध की मजदूरी' (wages of management) कहते हैं।

(४) अप्रत्याश आय (Wind fall income); युद्ध, फैशन में परिवर्तन इत्यादि के कारण अचानक कीमतों में वृद्धि के परिणामस्वरूप जो लाभ प्राप्त होते हैं उन्हें 'अप्रत्याश लाभ' कहा जाता है और ये 'कुल लाभ' के अंग होते हैं; परन्तु 'अप्रत्याश लाभ' अस्थायी तथा बहुत थोड़े समय के लिए होते हैं।

लाभ की प्रभेदक विशेषताएँ (Distinguishing features of Profit)

लाभ अन्य साधनों की आयों से निम्न बातों में भिन्न है :

(१) लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है, जबकि मजदूरी, लगान या ब्याज कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकती। ऋणात्मक लाभ का अर्थ है हानि।

(२) लाभ में अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक उतार-चढ़ाव (fluctuations) होते हैं। तेजी या मन्दी (prosperity and depression) के समयों में मजदूरी, लगान या ब्याज में अपेक्षाकृत बहुत कम परिवर्तन होते हैं। वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ में बहुत उतार-चढ़ाव होते हैं।

(३) लाभ के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लाभ, अन्य साधनों की आयों की भाँति, 'अनुबन्ध की आय' (contractual income) नहीं होती जो कि पहले से निर्धारित की गई हो। लाभ तो एक 'अनिश्चित अवशिष्ट' (uncertain residual) है जो कि भूमि, श्रम तथा पूँजी को अनुबन्ध सम्बन्धी आय देने के बाद बचती है।

लाभ के सिद्धान्त
(THEORIES OF PROFIT)

लाभ किस प्रकार उत्पन्न होता है तथा उसका किस प्रकार निर्धारण होता है इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। अर्थशास्त्रियों द्वारा लाभ के अनेक सिद्धान्त दिये गये हैं। नीचे हम लाभ के मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना करते हैं।

१. लाभ का लगान सिद्धान्त
(RENT THEORY OF PROFIT)

लाभ के सिद्धान्त का पूर्ण विकास अमरीका के अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने किया। [illegible] ity) है। योग्य साहसी कम

[illegible] ों के अनुसार भूमियाँ विभिन्न [illegible] सबसे निम्न कोटि की भूमि [illegible] न कही जाती है। बाजार में [illegible] इसे कोई लगान प्राप्त नहीं

श्रेष्ठ भूमियों अर्थात् 'पूर्व-सीमान्त भूमियों' (intra-marginal lands) की लागत कम और इनको सीमान्त भूमि की लागत की तुलना में बचत या लगान प्राप्त होता है। इसी लाभ के लगान सिद्धान्त' के अनुसार साहसियों की योग्यता में अन्तर होता है, श्रेष्ठ साहसी सीमान्त साहसी की तुलना में बचत अर्थात् लाभ प्राप्त होता है। सीमान्त साहसी वह है जो कि अपनी वस्तु को बाजार में [illegible] अपनी [illegible] (इस लागत में साहसी के [illegible]मों की लागत भी आ जाती है) [illegible] इसे कोई लाभ नहीं [illegible] श्रेष्ठ साहसी अर्थात् [illegible] trepreneurs) कम [illegible] वस्तु उत्पादित करते हैं और [illegible] लाभ प्राप्त करते

लाभ की परिभाषा(Definition of profit)

अर्थशास्त्र मे लाभ का अर्थ आर्थिक लाभ या विशुद्ध लाभ से होता है। लाभ साहसी के कार्यों अर्थात् जोखिमो तथा अनिश्चितताओ झेलने तथा नव-प्रवर्तन (innovations)[2] के लिए पुरस्कार है। यहाँ एक बात और ध्यान रखने की है कि लाभ प्रावैगिक परिवर्तनो (dynamic changes) के कारण उत्पन्न होता है; पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक उत्पादक को पूर्ण जानकारी होती है, कोई अनिश्चितता नही रहती, तथा दीर्घकाल में लाभ प्राप्त नही होता (केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है); अतः लाभ के लिए बाजार-ढाँचे (market structure) मे अपूर्णताओं (imperfections) का होना आवश्यक है।

अतः प्रो० हेनरी ग्रेसन (Henry Grayson) लाभ को इस प्रकार परिभाषित करते हैं :

१. नव-प्रवर्तन के लिए पुरस्कार।
२. जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को स्वीकार करने का पुरस्कार।
३. बाजार-ढाँचे में अपूर्णताओं का परिणाम।

स्पष्ट है कि कोई भी एक दशा या तीनों दशाओं का कोई भी मिश्रण आर्थिक लाभ को उत्पन्न कर सकता है।[3]

कुल लाभ (Gross Profit)

एक उत्पादक या फर्म को कुल आगम (total revenue) में से क्रय-किये गये (purchased or hired) उत्पत्ति के साधनों (अर्थात् श्रम, पूंजी, भूमि तथा प्रबन्ध) के पुरस्कारों तथा घिसाई व्यय (depreciation cost) को निकाल देने के बाद जो शेष बचता है उसे 'कुल लाभ' कहा जाता है। [अर्थशास्त्रियों के इस 'कुल लाभ' को साधारण बोलचाल मे 'लाभ' या 'व्यावसायिक लाभ' या 'एकाउण्टेण्ट का लाभ' (accountant's profit) भी कहते हैं। चूंकि यह अवशिष्ट राशि (residual amount) होती है इसलिए इसे 'एकाउण्टेण्ट का अवशेष' (accountant's residual) भी कहते हैं।]

कुल लाभ की उपर्युक्त परिभाषा के सम्बन्ध में 'क्रय किये गये उत्पत्ति के साधन' एक महत्वपूर्ण शब्द हैं। जब साहसी 'श्रम', पूंजी', 'भूमि' तथा 'प्रबन्ध' के साधनो का क्रय करता है और उनके लिए स्पष्ट रूप से पुरस्कार देता है जो कि साहसी के लिए लागत है तो इनको स्पष्ट लागतें (explicit costs) कहते हैं, चूंकि साहसी ये पुरस्कार (अर्थात् लागतें) साधनों के उनके साथ अनुबन्ध (contract) के अनुसार देता है इसलिए इन्हे 'अनुबन्ध-सम्बन्धी लागतें' (contractual costs) भी कहा जाता है। यदि साहसी बाहर से उत्पत्ति के साधनों को नहीं खरीदता है बल्कि स्वयं अपने साधन जैसे अपनी पूंजी, अपनी भूमि, तथा देख-भाल, निर्देशन और प्रबन्ध के रूप

---

[2] नव-प्रवर्तन शब्द का प्रयोग शुम्पीटर (Schumpeter) ने किया है जिस का अर्थ है कि साहसी किसी 'नवीन लागत-बचत रीति' (new cost-saving method) को लागू कर सकता है या किसी नवीन वस्तु (new product) का उत्पादन कर सकता है। इन सबके कारण साहसी को लाभ प्राप्त होता है।

[3] Profits may be considered :
1. A reward for making innovations.
2. A reward for accepting risks and uncertainties.
3. A result of imperfections in the market structure.
Evidently, any one or any combination of the three conditions can give rise to economic profits.

में अपना श्रम देता है, तो वास्तव में साहसी को बाजार दर पर अपने इन साधनों के पुरस्कार मिलने चाहिए और ये उसकी उत्पादन लागत के अंग होने चाहिए, क्योंकि वह साधनों को अन्य व्यवसाय में लगा कर उनके पुरस्कार प्राप्त कर सकता था। साहसी को अपने व्यवसाय में लगाये गये अपने साधनों के लिए जो पुरस्कार मिलना चाहिए उन्हें अर्थशास्त्री 'अस्पष्ट लागतें' (implicit costs) या 'अध्यारोपित लागतें' (imputed costs) कहते हैं।

'स्पष्ट लागतों' तथा 'अस्पष्ट लागतों' के विचारों को ध्यान में रखने से 'कुल लाभ' तथा 'आर्थिक लाभ' के अर्थों को सुगमता से समझा जा सकता है। कुल आगम[4] में से केवल 'स्पष्ट लागतों' को निकाल देने से जो बचता है उसे 'कुल लाभ' कहा जाता है। कुल आगम में से 'स्पष्ट लागतों' तथा 'अस्पष्ट लागतों' दोनों को निकाल देने से जो बचता है उसे 'आर्थिक लाभ' या 'विशुद्ध लाभ' कहते हैं। संक्षेप में,

कुल लाभ=कुल आगम—स्पष्ट लागतें

तथा आर्थिक लाभ=कुल आगम—स्पष्ट लागतें—अस्पष्ट लागतें

'कुल आगम—स्पष्ट लागतें' के स्थान पर 'कुल लाभ' लिखा जा सकता है;

इसलिए, आर्थिक लाभ=कुल लाभ—अस्पष्ट लागतें

आर्थिक लाभ धनात्मक (positive) भी हो सकता है तथा ऋणात्मक (negative) भी। आर्थिक लाभ धनात्मक होता है जब कि 'कुल आगम' कुल 'स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतों' से अधिक होता है; आर्थिक लाभ ऋणात्मक होता है जब कि 'कुल आगम' कुल 'स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतों' से कम होता है। लाभ ही एक ऐसा साधन-पुरस्कार (factor income) है जो कि ऋणात्मक हो सकता है।

कुल लाभ के अंग (Constituents of gross profit) निम्नलिखित हैं :

(१) **आर्थिक लाभ** (Economic profit); इसका अर्थ है—(i) नव-प्रवर्तन के लिए पुरस्कार; नयी उत्पादन रीति, नयी वस्तु या वस्तु-विभिन्नता (product-differentiation) इत्यादि के कारण लाभ; (ii) जोखिमों तथा अनिश्चितताओं के उठाने का पुरस्कार। (iii) साहसी के अपने उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार[5] अर्थात् 'अस्पष्ट लागतें'।

(२) **स्पष्ट लागतें** (Explicit costs) अर्थात् उत्पत्ति के साधनों के पुरस्कार, घिसाई व्यय, बीमा व्यय इत्यादि।

(३) **एकाधिकारी लाभ'** (Monopoly profit); जब कोई उत्पादक अपने क्षेत्र में अकेला उत्पादक है तथा अपनी वस्तु की पूर्ति पर उसका नियन्त्रण है तो वह अतिरिक्त आय (extra income) प्राप्त करता है और यह एकाधिकारी लाभ 'कुल लाभ' का एक अंग होता है।

---

4 अपनी वस्तु को बेचने से जो कुल विक्रय राशि (sale proceeds) उत्पादक को मिलती है उसे 'कुल आगम' कहते हैं।

5 साहसी के अपने व्यवसाय में अपनी पूंजी पर ब्याज को अर्थशास्त्री 'अस्पष्ट ब्याज' (implicit interest) या 'अध्यारोपित ब्याज' (imputed interest) कहते हैं। इसी प्रकार साहसी की भूमि के लगान को 'अस्पष्ट लगान' या 'अध्यारोपित लगान' कहते हैं। जब साहसी स्वयं अपने व्यवसाय की देखभाल तथा निर्देशन (management and direction) करता है तो इसे 'प्रबन्ध की मजदूरी' (wages of management) कहते हैं।

(४) अप्रत्याश आय (Wind fall income); युद्ध, फैशन मे परिवर्तन इत्यादि के कारण यकायक कीमतों मे वृद्धि के परिणामस्वरूप जो लाभ प्राप्त होते है उन्हे 'अप्रत्याश लाभ' कहा जाता है और ये 'कुल लाभ' के अंग होते हैं; परन्तु 'अप्रत्याश लाभ' अस्थायी तथा बहुत थोडे समय के लिए होते हैं।

लाभ की प्रभेदक विशेषताएं (Distinguishing features of Profit)

लाभ अन्य साधनों की आयो से निम्न बातों में भिन्न है :

(१) लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है, जबकि मजदूरी, लगान या ब्याज कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकती। ऋणात्मक लाभ का अर्थ है हानि।

(२) लाभ मे अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक उतार-चढाव (fluctuations) होते हैं। तेजी या मन्दी (prosperity and depression) के समयों मे मजदूरी, लगान या ब्याज मे अपेक्षाकृत बहुत कम परिवर्तन होते हैं। वस्तुओं की कीमतों मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ मे बहुत उतार-चढ़ाव होते हैं।

(३) लाभ के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण बात यह है कि लाभ, अन्य साधनों की आयों की भांति, 'अनुबन्ध की आय' (contractual income) नही होती जो कि पहले से निर्धारित की गयी हो। लाभ तो एक 'अनिश्चित अवशिष्ट' (uncertain residual) है जो कि भूमि, श्रम तथा पूंजी की अनुबन्ध सम्बन्धी आय देने के बाद बचती है।

लाभ के सिद्धान्त
(THEORIES OF PROFIT)

लाभ किस प्रकार उत्पन्न होता है तथा उसका किस प्रकार निर्धारण होता है इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों मे मतभेद है। अर्थशास्त्रियों द्वारा लाभ के अनेक सिद्धान्त दिये गये हैं। नीचे हम लाभ के मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना करते हैं।

१. लाभ का लगान सिद्धान्त
(RENT THEORY OF PROFIT)

लाभ के सिद्धान्त का पूर्ण विकास अमरीका के अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने किया। इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ योग्यता का लगान (rent of ability) है। योग्य साहसी कम योग्य साहसियो की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त करते है।

यह सिद्धात रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की भांति है। रिकार्डो के अनुसार भूमियां विभिन्न श्रेणियो की होती हैं। समय विशेष में जोती जाने वाली भूमियो मे सबसे निम्न कोटि की भूमि (अर्थात् जिसकी उत्पादन लागत सबसे अधिक होती है) सीमान्त भूमि कही जाती है। बाजार में मूल्य इस सीमान्त भूमि की लागत के बराबर निर्धारित होता है और इसे कोई लगान प्राप्त नहीं होता। श्रेष्ठ भूमियो अर्थात् 'पूर्व-सीमान्त भूमियो' (intra-marginal lands) की लागत कम होती है और इनको सीमान्त भूमि की लागत की तुलना मे बचत या लगान प्राप्त होता है। इसी प्रकार 'लाभ के लगान सिद्धान्त' के अनुसार साहसियों की योग्यता में अन्तर होता है, श्रेष्ठ साहसियों को सीमान्त साहसी की तुलना में बचत अर्थात् लाभ प्राप्त होता है। सीमान्त साहसी वह साहसी है जो कि अपनी वस्तु को बाजार मे बेचकर केवल अपनी लागत (इस लागत मे साहसी के अपने साधनों की लागत भी आ जाती है) को ही निकाल पाता है और उसे कोई लाभ नहीं मिलता। श्रेष्ठ साहसी अर्थात् 'पूर्व-सीमान्त साहसी' (intra-marginal entrepreneurs) कम लागत पर वस्तु उत्पादित करते हैं और कीमत तथा लागत मे अन्तर के कारण लाभ प्राप्त

२. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
(WAGE THEORY OF PROFITS)

टाउसिग (Taussig) तथा डेवनपोर्ट (Devenport) इस सिद्धान्त के मुख्य समर्थक हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ मजदूरी के एक ही रूप (form) हैं। लाभ केवल संयोग (chance) के कारण नहीं होता। लाभ तथा निरन्तर सफलता के लिए कुछ विशेष गुणों, जैसे, संगठन की कुशलता और योग्यता, जोखिमों का सामना करने की निपुणता (shrewdness), इत्यादि की आवश्यकता है; लाभ इन गुणों का पुरस्कार है अर्थात् लाभ इन गुणों की मजदूरी है।

लाभ के मजदूरी के विशिष्ट रूप होने के कारण इस प्रकार हैं—(i) साहसी का कार्य श्रम का ही रूप है; यह शारीरिक श्रम न होकर 'मानसिक श्रम' है तथा एक विशिष्ट प्रकार का श्रम है जिसके लिए मानसिक कुशलता तथा योग्यता के गुणों की आवश्यकता है। डाक्टर, वकील, अध्यापक इत्यादि अपने मानसिक गुणों के कारण आय प्राप्त करते हैं जिसे मजदूरी (या वेतन) कहा जाता है। साहसी की आय भी उसके मानसिक गुणों का परिणाम है और इसलिए उसकी आय अर्थात् लाभ को भी मजदूरी कहना चाहिए। (ii) प्रायः वेतन प्राप्त करने वाले मैनेजर, निरीक्षक इत्यादि स्वतन्त्र व्यवसायी या साहसी (independent businessmen or entrepreneurs) में परिवर्तित हो जाते हैं तथा कभी-कभी स्वतन्त्र व्यवसायी या साहसी ऊँचे वेतन प्राप्त करने वाले मैनेजरों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार इन लोगों के श्रम में कोई अन्तर नहीं है, और साहसी के श्रम का पुरस्कार अर्थात् लाभ मजदूरी का ही एक रूप है।

लाभ के मजदूरी सिद्धान्त की आलोचना

यद्यपि यह सिद्धान्त लाभ के स्वभाव तथा लाभ के औचित्य (justification) पर प्रकाश डालता है परन्तु यह दोषपूर्ण है। इस सिद्धान्त का मुख्य दोष यह है कि यह लाभ तथा मजदूरी के वास्तविक अन्तर पर ध्यान नहीं देता।

लाभ तथा मजदूरी में निम्न मुख्य अन्तर हैं जिनकी लाभ का मजदूरी सिद्धान्त उपेक्षा करता है:

(१) साहसी का मुख्य कार्य जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को झेलना होता है, जबकि मजदूरी तथा वेतन प्राप्त करने वालों को किसी खतरे का सामना नहीं करना पड़ता या केवल साधारण खतरों (जैसे नौकरी छूट जाने का डर) का सामना करना पड़ता है। साहसी के खतरे संख्या तथा तीव्रता दोनों में बहुत अधिक होते हैं।

(२) लाभ में संयोग का तत्त्व (chance-element) अधिक होता है जबकि मजदूरी में वास्तविक प्रयत्नों की आय का भाग अधिक होता है।

(३) लाभ प्रायः अपूर्ण प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप बढ़ता है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी की प्रवृत्ति कम होने की होती है और वह श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता से कम होती है।

स्पष्ट है कि लाभ तथा मजदूरी को पृथक रखना अधिक उचित और वैज्ञानिक है।

३. लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ साहसी की सीमान्त उत्पादकता (अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue productivity) के द्वारा निर्धारित होता है। साहसी अर्थात् साहसी की योग्यता उत्पत्ति का एक साधन है, इसलिए, अन्य उत्पत्ति के साधनों की भाँति, उसकी कीमत अर्थात् लाभ उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करेगा। जिन उद्योगों में साहसी की पूर्ति

कम है और इसलिए उसकी उत्पादकता अधिक है तो साहसी की कीमत अर्थात् लाभ अधिक हो।
जिन उद्योगों में साहसी की पूर्ति अधिक है और इसलिए उसकी सीमान्त उत्पादकता कम है
लाभ कम होगा।

लाभ के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

(१) साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता :

(i) एक फर्म या एक उपक्रम में एक ही साहसी हो सकता है और इसलिए साहसी
सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता।

(ii) एक उद्योग में एक अतिरिक्त साहसी के प्रयोग से उद्योग की कुल उत्पादन में वृद्धि
मालूम करके सैद्धान्तिक दृष्टि से, साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है
परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि—प्रथम, सब साहसी एक सम।
कुशल नहीं होते, तथा दूसरे, एक साहसी की वृद्धि (या कमी) से उद्योग के कुल उत्पादन में वृ।
(या कमी) साहसी की सीमान्त उत्पादकता का सही माप नहीं है। अतः एक उद्योग में भी साह
की सीमान्त उत्पादकता को ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं किया जा सकता।

(iii) यह सिद्धान्त एकाधिकारी लाभ की व्याख्या भी नहीं कर सकता क्योंकि एका।
में एक उत्पादक होता है और इसलिए उत्पादक की संख्या में एक इकाई से वृद्धि या कमी कर
सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता।

(२) यह सिद्धान्त अप्रत्याशित लाभों (windfall profits) की व्याख्या नहीं कर सकता
क्योंकि इस प्रकार के लाभ केवल संयोग (chance) पर निर्भर करते हैं और उनका साहसी
सीमान्त उत्पादकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

४. लाभ का समाजवादी सिद्धान्त
(THE SOCIALIST THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक कार्ल मार्क्स (Karl Marx) हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार
किसी वस्तु का मूल्य उसमें लगाये गये श्रम द्वारा निर्धारित होता है। पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था म
श्रमिकों द्वारा कुल उत्पादन का एक बहुत थोड़ा भाग श्रमिकों को उनके पुरस्कार के रूप
में दिया जाता है और उसका अधिकांश भाग, जिसको कार्ल मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य (surplus
value) कहा, को पूंजीपति लाभ के रूप में स्वयं हड़प जाते हैं। इस प्रकार **इस सिद्धान्त के अनुसार
लाभ प्राप्त होने का मुख्य कारण श्रमिकों का शोषण है अर्थात् साहसी द्वारा श्रमिकों के पुरस्कार
का अपहरण है। मार्क्स ने इसे कानूनी डाका** (legalised robbery) **कहा है।** मार्क्स ने लाभ को
समाप्त करने का सुझाव दिया क्योंकि इसके कारण श्रमिकों का शोषण होता है।

आलोचना

(१) लाभ श्रमिकों के शोषण का परिणाम नहीं होता। लाभ साहसी की योग्यता पर
निर्भर करता है; लाभ साहसी के जोखिमों तथा अनिश्चितताओं के उठाने की योग्यता का प्रति-
फल है।

(२) वस्तु के मूल्य का एकमात्र कारण श्रम नहीं होता। उत्पत्ति के अन्य साधन (पूंजी,
व, साहसी इत्यादि) भी वस्तु के उत्पादन में महत्त्वपूर्ण सहयोग देते हैं। साहसी की महत्त्वपूर्ण
।ओं की उपेक्षा करना उचित नहीं है। लाभ को 'कानूनी डाका' कहना सर्वथा अनुचित है।

(३) समाजवादी देश भी लाभ को पूर्णतया समाप्त नहीं कर पाये हैं। समाजवादी देशों में
लाभ प्राप्त करने वाले निजी उत्पादक नहीं होते और इसलिए उनके द्वारा लाभ प्राप्त करने का
प्रश्न ही नहीं उठता; परन्तु सरकार लाभ प्राप्त करती है।

५. लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त
(DYNAMIC THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जे० बी० क्लार्क (J. B. Clark) हैं। क्लार्क के अनुसार, लाभ मूल्य तथा लागत में अन्तर है। इस सिद्धान्त के अनुसार, लाभ परिवर्तनों का परिणाम है और वह केवल प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था (dynamic economy) में ही उत्पन्न होता है, स्थिर अर्थ-व्यवस्था (static economy) में नहीं।

क्लार्क के अनुसार, प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था वह है जिसमें निम्न पाँच प्रकार के आधारभूत परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं—(i) जनसंख्या में परिवर्तन, (ii) पूँजी की मात्रा में परिवर्तन, (iii) उपभोक्ताओं की रुचियों, अधिमानों तथा आवश्यकताओं में परिवर्तन, (iv) उत्पादन की रीतियों में सुधार, तथा (v) औद्योगिक इकाइयों (industrial establishment) के रूपों में परिवर्तन होते रहते हैं जिससे कि अकुशल उत्पादक हट जाते हैं और कुशल उत्पादक जीवित रहते हैं।

प्रावैगिक समाज में ये आधारभूत परिवर्तन मूल्य तथा कीमत में अन्तर उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार लाभ उत्पन्न हो जाता है। अतः लाभ प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में ही सम्भव है।

एक स्थिर अर्थ-व्यवस्था में लाभ सम्भव नहीं होता। स्थिर अर्थ-व्यवस्था वह है जिसमें उपर्युक्त पाँचों प्रकार के आधारभूत परिवर्तनों की पूर्ण अनुपस्थिति होती है। परिवर्तनों की पूर्ण अनुपस्थिति में आर्थिक भविष्य स्पष्टतया दिखायी देने वाला (foreseeable) होता है, और आर्थिक अनिश्चितताएँ नहीं होतीं; परिणामस्वरूप, कीमत तथा लागत में कोई अन्तर नहीं रहता और इसलिए कोई लाभ नहीं होता। यदि पूर्ण प्रतियोगिता तथा स्थिर अवस्था में प्रारम्भिक अवस्था में कुछ लाभ (या नुकसान) होता भी है तो वह नयी फर्मों के प्रवेश (या बहिर्गमन) से दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है। स्थिर अर्थ-व्यवस्था में साहसी का कार्य केवल सामान्य निरीक्षण या प्रबन्ध (routine supervision or management) का ही रह जाता है। अतः स्थिर अर्थ-व्यवस्था में साहसी को केवल 'प्रबन्ध की मजदूरी' तथा अपने उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार ही प्राप्त हो पाता है, कोई लाभ नहीं।

अतः इस सिद्धान्त के अनुसार स्थिर अर्थ-व्यवस्था में कोई लाभ प्राप्त नहीं होता, लाभ परिवर्तनों का परिणाम है और वह केवल प्रावैगिक अर्थ-व्यवस्था में ही सम्भव है।

आलोचना

(१) प्रो० नाईट (Knight) के अनुसार सभी प्रकार के प्रावैगिक परिवर्तन लाभ को उत्पन्न नहीं करते। कुछ परिवर्तन ऐसे होते हैं जिनको पहले से जाना जा सकता है और उनका बीमा कराया जा सकता है, इस प्रकार ऐसे परिवर्तनों के वित्तीय परिणामों को लागत में शामिल कर लिया जाता है। इस प्रकार के परिवर्तन लाभ को जन्म नहीं देते हैं दूसरी प्रकार के परिवर्तन ऐसे होते हैं जिनको पहले से जाना नहीं जा सकता और वे अनिश्चित होते हैं तथा लाभ को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार लाभ केवल अनिश्चित प्रावैगिक परिवर्तन (uncertain dynamic changes) के परिणाम होते हैं न कि सभी प्रकार के परिवर्तनों के परिणाम।

(२) वास्तविक अर्थ-व्यवस्था सदैव प्रावैगिक है; लाभ प्रावैगिक परिवर्तनों के परिणाम है, इस कथन का अभिप्राय हुआ कि वास्तविक अर्थ-व्यवस्था में लाभ सदैव से ही मौजूद रहते हैं, परन्तु ऐसा नहीं होता।

(३) यह सिद्धान्त इस बात पर भी ध्यान नहीं देता कि लाभ साहसी के 'जोखिम' ०० की योग्यता का पुरस्कार है ।

लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त
(INNOVATION THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक शुम्पीटर (Schumpeter) हैं । यह सिद्धान्त क्लॉर्क के 'लाभ प्रावैगिक सिद्धान्त' से मिलता-जुलता है । क्लार्क की भांति शुम्पीटर भी प्रावैगिक या ... परिवर्तनों (dynamic changes) को लाभ का कारण मानते हैं । परन्तु वह क्लार्क के आधारभूत परिवर्तनों के स्थान पर लाभ की व्याख्या आविष्कारों या नव-प्रवर्तनों के शब्दों करते हैं ।

क्लार्क के 'उत्पादन की रीतियों में सुधार के विचार' की तुलना में शुम्पीटर का प्रवर्तन का विचार' या 'उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन का विचार' (the concept of chan in the productive process) अधिक व्यापक है । किसी नयी मशीन का प्रयोग, वस्तु की ... में परिवर्तन, कच्चे माल के नये स्रोतों का प्रयोग, वस्तु का नये बाजार में विक्रय, वस्तु के वितर तथा विक्रय की नयी रीतियां, इत्यादि नव-प्रवर्तन के विभिन्न रूप हो सकते हैं । 'उत्पादन-प्रक्रिया में ये विभिन्न प्रकार के परिवर्तन अर्थात् 'नव-प्रवर्तन' लागत को कम करते हैं तथा कीमत औ लागत में अन्तर उत्पन्न करके लाभ उत्पन्न करते हैं ।

शुम्पीटर के अनुसार लाभ नव-प्रवर्तन के कारण तथा परिणाम दोनों हैं । नव-प्रवर्तन कारण कीमत तथा लागत में अन्तर होता है और इस प्रकार लाभ उत्पन्न होता है, परन्तु लाभ क प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होकर ही साहसी नव-प्रवर्तन को प्रयोग में लाता है; अतः ला नव-प्रवर्तन को प्रभावित करता है । इस प्रकार नव-प्रवर्तन तथा लाभ एक दूसरे को प्रभावित कर हैं; अर्थात् लाभ नव-प्रवर्तन के कारण तथा परिणाम दोनों हैं ।

लाभ नव-प्रवर्तन द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा अनुकरण द्वारा लुप्त होते हैं ("profits a caused by innovation and disappear by immitation" । जब कोई साहसी किसी सफल नव-प्रवर्तन को प्रयोग में लाता है तो उसे लाभ प्राप्त होता है । इस लाभ से आकर्षित होकर अन्य साहसी उस नव-प्रवर्तन का अनुकरण (immitation) करते हैं और धीरे-धीरे लाभ लुप्त या समाप्त हो जाते हैं क्योंकि कुछ समय बाद नव-प्रवर्तन में कोई नवीनता नहीं रह जाती है । इसलिए यह कहा जाता है कि लाभ नव-प्रवर्तन द्वारा उत्पन्न होते हैं और अनुकरण द्वारा लुप्त होते हैं । ...त इस सम्बन्ध में एक बात यह ध्यान रखने की है कि जब तक प्रतियोगी उत्पादक एक सुधरी रीति का अनुकरण तथा प्रयोग करते हैं तब तक एक कुशल साहसी किसी दूसरे नव-प्रवर्तन का प्रयोग करने में सफल हो जाता है । **इस प्रकार गतिशील तथा प्रगतिशील** (dynamic and progressive) **अर्थ-व्यवस्था में नव-प्रवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ** (innovational profits) **सदैव रहते हैं क्योंकि पुराने नव-प्रवर्तनों के स्थान पर नवीन नव-प्रवर्तनों का प्रतिस्थापन होता रहता है ।**

नव-प्रवर्तन के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान रखने की है । लाभ उसको प्राप्त नहीं होते जो कि किसी नव-प्रवर्तन के विचार को प्रस्ततु करता है या जो उसके लिए वित्तीय सहायता देता है वल्कि लाभ उसको प्राप्त होते हैं जो कि नव-प्रवर्तन को प्रयोग करते हैं ।

शुम्पीटर के अनुसार लाभ जोखिम-उठाने (risk bearing) **का पुरस्कार नहीं है,** लाभ तो नव-प्रवर्तन का परिणाम है । परन्तु यदि गहराई से देखा जाय तो नव-प्रवर्तन जोखिम उठाने का ही एक विशिष्ट रूप है । लाभ कमाने के उद्देश्य से नव-प्रवर्तनों के प्रयोग अनिश्चितता को उसी

प्रकार से उत्पन्न करते हैं जिस प्रकार कि आर्थिक वातावरण में ये परिवर्तन अनिश्चितता उत्पन्न करते हैं जिन पर कि व्यक्तिगत उपक्रम का कोई नियन्त्रण नहीं होता। अतः, एक अर्थ में, लाभों के स्रोत (source) के रूप में, नव-प्रवर्तन जोखिम उठाने का ही एक विशिष्ट रूप है।[6]

आलोचना

इस सिद्धान्त की लगभग वे ही आलोचनाएँ की जाती हैं जो कि क्लार्क के लाभ के प्रावैगिक सिद्धान्त की। नव-प्रवर्तन सिद्धान्त की मुख्य आलोचना है कि यह लाभ निर्धारण में जोखिम तथा अनिश्चितता की उपेक्षा करता है।

लाभ का जोखिम सिद्धान्त
(THE RISK THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक होले (Hawley) हैं। इस सिद्धान्त का पूर्ण विवरण होले ने अपनी पुस्तक 'Enterprise and Productive Process' (1907) में दिया है। मार्शल ने इस सिद्धान्त को अपना समर्थन प्रदान किया।

इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ जोखिम-उठाने का पुरस्कार है। आधुनिक युग मे एक उत्पादक या साहसी भविष्य की माँग के आधार पर अपनी वस्तु का उत्पादन करता है यदि माँग, लागत, कीमत इत्यादि के अनुमान ठीक निकलते हैं तो साहसी को लाभ होता है अन्यथा हानि। इस प्रकार किसी वस्तु के उत्पादन में जोखिम होती है। कोई भी साहसी उत्पादन का कार्य नहीं करेगा जब कि उसे इस जोखिम को उठाने के लिए कुछ पुरस्कार की आशा न हो। अतः जोखिम उठाना साहसी का एक विशिष्ट कार्य (special function) है और लाभ जोखिम-उठाने का पुरस्कार है।

जोखिम व्यवसायो में साहसियों के प्रवेश में रुकावट पैदा करता है। इस प्रकार जोखिम-पूर्ण व्यवसायों में साहसियो की पूर्ति कम या सीमित रहती है और जो जोखिम उठाते हैं और जीवित रहते हैं वे साहसी अतिरिक्त लाभ अर्जित करते हैं क्योंकि साहसियो की पूर्ति सीमित रहती है।

विभिन्न उद्योगों में जोखिम की मात्रा मे अन्तर होता है, इसलिए साहसियों के लाभो में भी अन्तर होता है। जिन व्यवसायों मे अधिक जोखिम होती है उनमे लाभ की मात्रा अधिक होगी और जिनमे जोखिम कम होती है उनमें लाभ कम होगा। एक ही उद्योग में विभिन्न साहसी जोखिम की विभिन्न मात्रा उठाते हैं और इसलिए उनके लाभो में अन्तर होता है।

आलोचना

(१) यद्यपि लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है, परन्तु लाभ केवल जोखिम उठाने का ही पुरस्कार नहीं है। नव-प्रवर्तन, साहसी के प्रबन्ध की श्रेष्ठ योग्यता, एकाधिकारी स्थिति, इत्यादि भी लाभ को उत्पन्न करते हैं।

कुछ व्यक्ति मनोवैज्ञानिक कारणों (psychological factors) से अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करना चाहते हैं चाहे उन्हें कम आय प्राप्त हो, वे किसी के अधीन रह कर कार्य नहीं करना चाहते, ऐसे व्यक्तियो या साहसियों के लिए जोखिम-उठाने की बात द्वितीय स्थान रखती है; दूसरे शब्दों

---

6 ... rtainty, just as do ... enterprise has no ... a special case of

में, ऐसे व्यक्तियों के लाभ को जोखिम उठाने के शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस लाभ केवल जोखिम उठाने का ही पुरस्कार नहीं है।

(३) कार्वर (Carver) के अनुसार लाभ जोखिम उठाने के कारण उत्पन्न नहीं होते वे इसलिए उत्पन्न होते हैं क्योंकि श्रेष्ठ साहसी जोखिमों को कम कर सकते हैं। अतः विरोधा पूर्ण तरीकों से (paradoxically) यह कहा जा सकता है कि व्यवसायी लाभ इसलिए प्राप्त करते कि वे जोखिम उठाते हैं वल्कि वे लाभ इसलिए प्राप्त करते हैं कि वे कुछ जोखिम को उठाते हैं।[7]

(३) प्रो० नाईट के अनुसार सभी प्रकार के जोखिम लाभों को उत्पन्न नहीं करते। जोखिमों (जैसे आग, चोरी, दुर्घटना, वाढ़ इत्यादि) का अनुमान लगाया जा सकता है और बीमा कराके उनको दूर किया जा सकता है। इसके विपरीत, कुछ जोखिम (जैसे माँग तथा ल की दशाओं से सम्बन्धित जोखिम) ऐसे होते हैं जिनका अनुमान नहीं लगाया जा सकता इसलिए उनका बीमा नहीं कराया जा सकता; अर्थात् कुछ जोखिम अनिश्चित होते हैं। प्रो० के अनुसार, लाभ 'अनिश्चित जोखिमों' या 'अनिश्चितताओं' का पुरस्कार है।

लाभ का अनिश्चितता-उठाने का सिद्धान्त
(UNCERTAINTY-BEARING THEORY OF PROFIT)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक प्रो० नाईट हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Risk, U tainty and Profit' में इस सिद्धान्त की पूर्ण विवेचना की है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, लाभ 'बीमा-अयोग्य जोखिमों' (non-insurable risks) **'अनिश्चितताओं'** (uncertainties) **को उठाने का पुरस्कार है तथा लाभ की मात्रा** ...तार **उठाने की मात्रा पर निर्भर करती है।**

प्रो० नाईट 'जोखिम' तथा 'अनिश्चितता' (uncertainties) में भेद करते हैं। सभी के जोखिम अनिश्चितताएँ उत्पन्न नहीं करते। इस भेद को अधिक स्पष्ट करने के लिए उ बताया कि एक व्यवसाय में जोखिम दो प्रकार के होते हैं—(i) **बीमा योग्य जोखिम** (insura risks), तथा (ii) **बीमा अयोग्य जोखिम** (uninsurable risks)। नीचे हम इन दोनों प्रकार जोखिमों का विस्तृत विवरण करते हैं।

बीमा योग्य जोखिम वे जोखिम हैं जिनका अनुमान लगाया जा सकता है और जिन सांख्यिकीय गणना की जा सकती है और इसलिए उनका बीमा किया जा सकता है। उदाहरणा आग, दुर्घटना, चोरी, डकैती, इत्यादि ऐसे जोखिम हैं जिनका बीमा कराया जा सकता है। प्रकार के जोखिम वास्तव में कोई अनिश्चितता उत्पन्न नहीं करते क्योंकि साहसी इनका बी कराके निश्चिन्त हो जाता है। अतः 'बीमा-योग्य जोखिम' को लाभ उत्पन्न नहीं करते।

बीमा-अयोग्य जोखिम वे जोखिम हैं जिनका अनुमान नहीं लगाया जा सकता तथा जि सांख्यिकीय गणना नहीं की जा सकती, और इसलिए उनका बीमा नहीं किया जा सकता। इ प्रकार के जोखिम अनिश्चितताएँ उत्पन्न करते हैं, इसलिए 'बीमा-अयोग्य जोखिमों' को 'अनिश्च ताएँ' भी कहा है। बीमा-अयोग्य जोखिमें निम्न प्रकार की हो सकती हैं: (i) व्यक्तियों की रु फैशन इत्यादि में परिवर्तन होने से माँग की दशाओं में परिवर्तन हो सकता है; (ii) लागत में वृ

7 "Profit arise not because risks are borne, but because the superior entrepreneurs are a to reduce risks. Hence, pardoxically it may be said that businessmen get profit not cause of the risks they bear but because of the risks they do not bear."

करने वाली किसी नयी मशीन का आविष्कार हो सकता है, तथा इसी प्रकार की अन्य टेक्नीकल जोखिमें हो सकती हैं; (iii) व्यापारिक चक्र (business cycles); तेजी-मन्दी (prosperity and depression) के समयों में लाभ-हानि की अधिक सम्भावनाएँ रहती हैं; (iv) सरकार की नीति में परिवर्तन, टैक्स तथा राजकोषीय (fiscal) नीतियों में परिवर्तन होने से लाभ-हानि की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

इस प्रकार के बीमा-अयोग्य जोखिमें अनिश्चितताओं को जन्म देती हैं। बिना इन अनिश्चितताओं को सहन किये कोई उत्पादन कार्य प्रारम्भ नहीं हो सकता। अतः साहसी का मुख्य कार्य अनिश्चितताओं को उठाना है, और 'अनिश्चितता उठाने' (uncertainty-bearing) का पुरस्कार ही लाभ है। लाभ की मात्रा अनिश्चितता की मात्रा पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, लाभ केवल परिवर्तन होने से ही उत्पन्न नहीं होता, बल्कि लाभ तब उत्पन्न होता है जबकि परिवर्तन अप्रत्याशित अथवा अनिश्चित (unexpected and uncertain) हो।

आलोचना

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) 'अनिश्चितता-उठाना' ही साहसी का केवल एकमात्र कार्य नहीं है; साहसी अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य जैसे, कुशलतापूर्वक संयोजन (co-ordination) तथा संगठन का कार्य, नव-प्रवर्तन का कार्य, भी है। अतः लाभ को केवल अनिश्चितता-उठाने का पुरस्कार मान लेना पूर्णतया सही नहीं है।

(२) केवल अनिश्चितता का तत्त्व ही लाभ को उत्पन्न नहीं करता। दूसरे शब्दों में, 'अनिश्चितता-उठाना' अन्य तत्त्वों में से केवल एक तत्त्व है जो कि साहसियों की पूर्ति को सीमित करके लाभ को उत्पन्न करता है। अन्य तत्त्व, जैसे अवसरों की अज्ञानता, पूँजी की कमी, इत्यादि भी लाभ को उत्पन्न करते हैं।

दूसरे शब्दों में, प्रतियोगिता की अपूर्णताएँ (imperfections of competition) भी लाभ को उत्पन्न करती हैं, केवल अनिश्चितताएँ ही लाभ को जन्म नहीं देती; इसका एक उदाहरण एकाधिकारी लाभ है।

(३) यह सिद्धान्त 'अनिश्चितता-उठाने' के तत्त्व को एक पृथक् उत्पत्ति का साधन मान लेता है जो कि उचित नहीं है, यह तो साहसी के कार्यों की केवल एक विशेषता को बताता है।

निष्कर्ष

यद्यपि नाईट के 'अनिश्चितता-उठाने' के सिद्धान्त की आलोचनाएँ हैं तथा यह पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह सिद्धान्त लाभ के अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा 'अधिक पूर्ण' (more perfect) है या 'सबसे कम असन्तोषजनक' (least unsatisfactory) है। अतः अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री नाईट के लाभ के सिद्धान्त को मान्यता देते हैं।

लाभ का औचित्य
(JUSTIFICATION OF PROFIT)

समाजवादियों तथा कुछ अन्य समाज-सुधारकों द्वारा एक गन्दे शब्द में लाभ को सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय (undesirable) बताया गया है। मार्क्स के अनुसार कुल उत्पादन का मूल्य श्रम का परिणाम है और इसलिए वह सब श्रमिकों को मिलना चाहिए। परन्तु पूँजीपति या उत्पादक कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग श्रमिकों को देते हैं और 'अतिरिक्त मूल्य' लाभ के रूप में स्वयं हड़प जाते हैं। अतः मार्क्स ने लाभ को 'कानूनी डकैती' कहा।

यद्यपि उपर्युक्त विचार सही नहीं है और एक सिरे (extreme) के हैं, परन्तु इसमें नहीं कि कुछ दशाओं में लाभ को उचित नहीं कहा जा सकता। ये दशाएँ निम्नलिखित हैं जब साहसी श्रमिकों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम देकर अपने लाभ को है, (ii) जब उत्पादक विभिन्न प्रकार की बेईमानी की रीतियों से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं, जब व्यवसायी स्टॉक-एक्सचेंज में अनुचित रीतियों से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं; (iv) एकाधि लाभ; इत्यादि। परन्तु ये दशाएँ प्रायः लोगों के निम्न व्यावसायिक चरित्र (low busin morality) के परिणाम हैं। प्रतियोगिता को बढ़ाकर तथा लोगों के चरित्र में सुधार करके दोषों को दूर किया जा सकता है।

व्यक्तिगत लाभों को अनुचित ठहराने में एक महत्त्वपूर्ण बात यह कही जाती है कि समाज के साधनों से प्राप्त होते हैं और इसलिए समाज अर्थात् सरकार को मिलने चाहिए, किसी भी एक वर्ग को केवल इसलिए प्राप्त नहीं होने चाहिए कि वे सम्पत्ति के स्वामी हैं।[8]

परन्तु इस प्रकार का तर्क केवल एक सीमा तक ही उचित है। यह ध्यान रखने की बा कि केवल सम्पत्ति का स्वामित्व ही लाभों को जन्म नहीं देता, बल्कि लाभ तो साहसी की योग्य जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को झेलने की योग्यता, नव-प्रवर्तन की योग्यता, कुशल संगठन योग्यता—के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार लाभ एक विशिष्ट प्रकार के श्रम का न कि सम्पत्ति के स्वामित्व का प्रतिफल (return)।[9]

मेहनत द्वारा प्राप्त हुआ लाभ उचित है। एक स्वतन्त्र-उपक्रम अर्थ-व्यवस्था (free ent prise economy) में **लाभ महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्य करता है और इन कार्यों के कारण वांछनीय है।**

लाभ के **सामाजिक कार्य** (social functions) निम्न हैं :

(१) **लाभ का प्रावैगिक कार्य** (dynamic function) **नव-प्रवर्तन तथा विनियोग प्रोत्साहित करना है।** लाभ अर्थात् लाभ की आशा फर्मों को नव-प्रवर्तन के लिए प्रेरित करती और नव-प्रवर्तन विनियोग को उत्तेजित करते हैं, परिणामस्वरूप कुल उत्पादन तथा रोजगार में वृ होती है। इस प्रकार लाभ नव-प्रवर्तन तथा विनियोग को उत्तेजित करके आर्थिक विकास में सहयो देते हैं।

(२) **लाभ साधनों के वितरण** (allocation of resources) **का महत्त्वपूर्ण कार्य है।** जिन वस्तुओं की उपभोक्ता अधिक माँग करते हैं उनकी कीमतें ऊँची होंगी और ऐसे के उत्पादन में उत्पादकों को लाभ होगा तथा उत्पत्ति के साधनों का अधिक प्रयोग होगा। हा वाले प्रयोगों से साधन हट कर लाभ वाले प्रयोगों में हस्तान्तरित होंगे। जिस सीमा तक अर्थ व्यवस्था स्पर्द्धात्मक होगी उस सीमा तक साधनों का यह हस्तान्तरण सामाजिक दृष्टि से वांछ्न होगा। दूसरे शब्दों में, लाभ का उदय होना साधनों के पुनर्वितरण के लिए संकेत (signal) है त भ को प्राप्त करना साहसियों के लिए साधनों के पुनर्वितरण को पूरा करने की प्रेरणा है।

It might be argued that "profit is created by the means of society's resources; none of th fruits of production thus secured should be expropriated by any one class by virtue o the historical accident of ownership."

9 To a point such arguments are valid, but remember that entrepreneurial ability, not pr perty ownership, gives rise to economic profit. Entrepreneurial ability is not a historica accident in the sense as property ownership. Rather, it is an endowed ability or skill jus as the skill of a musician or artist, profit is a return to a particular type of labour—no a return to property ownership.

'संकेत तथा प्रेरणा यन्त्र' (signal incentive mechanism) का एक महत्वपूर्ण भाग है, और 'संकेत तथा प्रेरणा यन्त्र स्वयं कीमत-व्यवस्था (price system) का आधार है।"[10]

(५) समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में भी लाभ 'विनियोग, उत्पादन तथा रोजगार' को प्रोत्साहित करके महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। समाजवाद सामान्यतया लाभ को समाप्त नहीं करता, वह तो केवल निजी व्यक्तियों द्वारा लाभ के स्वामित्व को समाप्त करता है, समाजवादी रूस में सरकार कर्मचारियों के वेतनों में अन्तर रखकर तथा सफल मैनेजरों के साथ लाभ में भागीदारी (profit sharing) करके उत्पादन को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार समाजवादी देशों में लाभ का रूप बदल सकता है परन्तु लाभ के महत्त्वपूर्ण कार्य बने रहते हैं।

स्पष्ट है कि समाज का कोई भी रूप हो—चाहे पूँजीवाद, समाजवाद या साम्यवाद—लाभ एक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य करता है और इसलिए उसका औचित्य (*justification*) है।

'लाभ' शब्द के विभिन्न प्रयोग
(DIFFERENT USES OF THE TERM PROFIT)

लाभ अनिश्चितता उठाने का पुरस्कार है। परन्तु लाभ शब्द के विभिन्न प्रयोग पाये जाते हैं। लाभ के अर्थ तथा अभिप्रायों को अच्छी तरह से समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसके विभिन्न प्रयोगों की उचित जानकारी हो। इसके विभिन्न प्रयोग निम्नलिखित हैं—(१) व्यावसायिक लाभ तथा आर्थिक लाभ (२) पूँजी के फेर पर लाभ (३) सामान्य लाभ (४) अतिरिक्त या असामान्य लाभ (५) एकाधिकारी लाभ (६) आकस्मिक लाभ (७) लाभ तथा लाभों।

अब हम ऊपर दिये गये लाभ शब्द के विभिन्न प्रयोगों का विवेचन करते हैं।

१. व्यावसायिक लाभ तथा आर्थिक लाभ
(BUSINESS PROFIT AND ECONOMIC PROFIT)

एक व्यापारी के लिए लाभ कुल लागत के ऊपर आधिक्य है, अर्थात् लाभ कुल आगम तथा कुल लागत में अन्तर है। परन्तु एक व्यापारी या उत्पादक या एकाउण्टेण्ट लागत में केवल 'स्पष्ट लागतों' (explicit costs) को शामिल करता है। दूसरे शब्दों में, कुल आगम में से स्पष्ट लागतों को घटा देने के बाद जो बचता है वह व्यावसायिक लाभ है; इसे अर्थशास्त्री 'कुल लाभ' (gross profit) कहते हैं। 'स्पष्ट लागतें' वे हैं जो कि एक व्यापारी या उत्पादक स्पष्ट रूप से विभिन्न साधनों की सेवाओं को खरीदने में करता है, जैसे, श्रमिकों की मजदूरियाँ, उधार ली गयी पूँजी का ब्याज, कच्चे माल की लागत, भूमि तथा बिल्डिंगों का किराया, मशीनों (अर्थात् स्थिर पूँजी) का घिसायी व्यय, विज्ञापन पर व्यय, इत्यादि।

अर्थशास्त्री के लिए भी लाभ कुल आगम तथा कुल लागत में अन्तर है, परन्तु अर्थशास्त्री लागत का अर्थ 'अवसर लागत' से लेते हैं, अर्थात् वे लागत के अन्तर्गत 'स्पष्ट लागतों' के अतिरिक्त 'अस्पष्ट लागतें' (implicit costs) तथा 'सामान्य लाभ' (normal profit) भी शामिल करते हैं। 'अस्पष्ट लागतें' वे लागतें हैं जो कि एक साहसी या उत्पादक को अपने स्वयं के साधनों (self-owned resources)—जैसे, अपनी पूँजी, अपना श्रम, अपनी भूमि इत्यादि—के मालिक के रूप में बाजार-दर पर पुरस्कार (reward) मिलने चाहिए और ये लागत के अंग होने चाहिए। 'सामान्य लाभ' *लाभ का वह निम्नतम स्तर है जो कि साहसी को उद्योग में कार्य* करने तथा बनाये रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र (just sufficient) है। यदि साहसी को

सामान्य लाभ नहीं मिलता तो वह उद्योग विशेष में कार्य नहीं करेगा और किसी दूसरे उद्योग हस्तांतरित हो जायेगा; दूसरे शब्दों में, 'सामान्य लाभ' साहसी की 'हस्तांतरण आय' या 'अ. लागत' है और इसलिए 'सामान्य लाभ' लागत का अंग है।

संक्षेप में,

व्यावसायिक लाभ = कुल आगम — स्पष्ट लागतें

आर्थिक लाभ = कुल आगम — (स्पष्ट लागतें + अस्पष्ट लागतें + सामान्य लाभ)

२. पूंजी के फेर पर लाभ
(PROFIT ON THE TURNOVER)

एक व्यवसाय में लगायी गयी कुल पूंजी पर वार्षिक लाभ-दर को **'प्रति वर्ष लाभ'** (pr. per year) कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि व्यवसाय में २०,००० रु० की कुल पूंजी लगी हुई और साल भर में 'स्पष्ट लागतों' को काटकर, माना, २४०० रु० का लाभ प्राप्त होता है त व्यवसायी की दृष्टि से, लाभ की वार्षिक दर १२% होगी।

लाभ जो कि पूंजी के प्रत्येक फेर (turnover) पर प्राप्त होता है उसे एक व्यवसाय 'पूंजी के फेर पर लाभ' (profit on turnover) कहता है। प्रायः एक व्यवसाय (विशेषतया छो व्यवसायों) में लगायी गयी पूंजी का साल भर में कई बार हेर-फेर होता है। उदाहरणार्थ, मा कि एक फुटकर व्यापारी (retailer) १००० रु० की पूंजी से कार्य करता है। वह १००० रु का माल थोक बाजार में खरीद कर फुटकर बाजार में १ महीने में बेच लेता है। इसके पश्च वह पुनः १००० रु० का माल खरीदकर १ महीने में फुटकर बाजार में बेच लेता है। इ प्रकार माना कि वह साल भर में १००० रु० की पूंजी का १२ बार फेर कर लेता है और मा कि उसे प्रत्येक फेर में लगभग ३% का लाभ होता है। पूंजी की एक निश्चित मात्रा (... १००० रु०) का कई बार हेर-फेर होने पर लाभ होता है जिसे 'पूंजी के फेर पर लाभ' कह जाता है।

यद्यपि फुटकर व्यापारी की लाभ-दर नीची है, परन्तु पूंजी के कई बार फेर होने पर लाभ की वार्षिक दर ऊँची हो जाती है। १००० रु० के एक फेर पर ३% के हिसाब से उसे ३० रु० लाभ मिलता है; १२ फेर में उसको कुल लाभ ३० × १२ = ३६० रु० मिलता है। स्पष्ट है कि १००० रु० की पूंजी से वह फुटकर व्यापारी ३६० रु० प्राप्त करता है, अर्थात् प्रतिवर्ष लाभ की दर $\frac{३६०}{१०००}$ × १०० = ३६% पड़ती है।

यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि 'प्रति वर्ष लाभ' तथा 'पूंजी के फेर पर लाभ' दोनों व्यावसायिक लाभ के ही रूप हैं; अतः इनको ज्ञात करने में लागत का अर्थ 'अस्पष्ट लागतों' से ही लिया जाता है।

३. सामान्य लाभ
(NORMAL PROFIT)

(i) **किसी उद्योग में साहसी के लिए 'सामान्य लाभ' लाभ का वह निम्नतम स्तर है जो ... को उद्योग में कार्य करने तथा बनाये रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र है।**[11] उपर्युक्त ... का अभिप्राय है कि जब एक उद्योग में साहसियों अर्थात् फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है तो उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश होने की कोई प्रवृत्ति नहीं होती है और न ही

11 "Normal profit, for an entrepreneur in any industry, is the minimum level of profit which is just sufficient to induce him to stay in the industry."

पुरानी फर्मों की उद्योग से बाहर जाने की प्रवृत्ति होती है। अतः श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, "सामान्य लाभ लाभ का वह स्तर है जिस पर कि व्यवसाय में नयी फर्मों के प्रवेश करने की या पुरानी फर्मों को उद्योग से निकल जाने की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।"[12] सामान्य लाभ को एक और प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग 'साम्य' या 'पूर्ण साम्य' (equilibrium or full equilibrium) की दशा में तब होता है जबकि उसके अन्तर्गत फर्मों की संख्या में कोई परिवर्तन (कमी या वृद्धि) न हो; ऐसा तब होगा जबकि फर्मों को न हानि हो और न लाभ बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा हो क्योंकि तभी न तो नयी फर्में उद्योग में प्रवेश करेंगी और न उनमें से बाहर जायेंगी। अतः, सामान्य लाभ वह लाभ है जो कि फर्मों को तब प्राप्त होता है जबकि उद्योग पूर्ण साम्य की स्थिति में हो।[13]

(ii) एक महत्वपूर्ण बात ध्यान रखने की यह है कि सामान्य लाभ लागत का अंग होता है अर्थात् औसत लागत में शामिल होता है। इसका कारण है कि भूमि, श्रम तथा पूंजी की भाँति साहसी (अर्थात् साहसी की योग्यता) एक सीमित या दुर्लभ साधन (scarce resource) है और इसलिए उसकी भी एक कीमत होती है। अतः एक साहसी किसी उद्योग में तभी कार्य करेगा जबकि (अन्य साधनों की भाँति) उसको उसकी न्यूनतम कीमत अर्थात् 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' (minimum supply price) प्राप्त हो सके, यदि ऐसा नहीं है तो वह इस उद्योग में नहीं रहेगा। साहसी का यह 'न्यूनतम पूर्ति मूल्य' ही 'सामान्य लाभ' है, अर्थात् 'सामान्य लाभ' साहसी की 'हस्तान्तरण आय' या 'अवसर लागत' है और इस प्रकार यह लागत का एक अंग है।[14]

(iii) साहसी को उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिए सामान्य लाभ अनिश्चितता उठाने का एक न्यूनतम पुरस्कार (irreducible minimum reward) है। सामान्य लाभ तो साहसी को उद्योग में बनाये रखने के लिए केवल पर्याप्त मात्र (just sufficient) होता है ताकि साहसी देखभाल तथा प्रबन्ध (supervision and organisation) का सामान्य कार्य (routine work) करता रहे। इसलिए यह कहा जाता है कि सामान्य लाभ मजदूरी की भाँति होता है या उसे 'प्रबन्ध की मजदूरी' कहा जा सकता है;[15] सामान्य लाभ के रूप में साहसी स्वयं अपने आप को संगठन या प्रबन्ध की मजदूरी देता है।

(४) सामान्य लाभ का स्तर भिन्न-भिन्न उद्योगों के लिए भिन्न-भिन्न होता है। जिन उद्योगों में प्रारम्भिक विनियोग (initial investment) बहुत अधिक होता है, या जिन उद्योगों में खतरा रहता है, या जो उद्योग आदरणीय नहीं समझे जाते, ऐसे उद्योगों में सामान्य लाभ का स्तर अन्य उद्योगों की अपेक्षा ऊँचा होगा।

12 ... of profit at which there is no tendency for new firms to enter

13

14 Like land, labour, and capital, entrepreneur (i.e., entrepreneurial ability) is a scarce resource and therefore has a price tag on it. Hence, an entrepreneur will work in an industry only when he gets his minimum price or minimum supply price, otherwise he will not stay in this industry. In other words, this minimum supply price of an entrepreneur is the normal profit and it is a part of cost.

15 Marshall's 'normal profits' virtually correspond to Clarkian 'wages of management.'

सामान्य लाभ नहीं मिलता तो वह उद्योग विशेष में कार्य नहीं
हस्तांतरित हो जायेगा; दूसरे शब्दों में, 'सामान्य लाभ' साहसी
लागत' है और इसलिए 'सामान्य लाभ' लागत का अंग है।

संक्षेप में,

व्यावसायिक लाभ = कुल आगम — स्पष्ट लागतें

आर्थिक लाभ = कुल आगम — (स्पष्ट लागतें + अस्पष्

२. पूँजी के फेर पर लाभ
(PROFIT ON THE TURNOVER)

एक व्यवसाय में लगायी गयी कुल पूँजी पर वार्षिक लाभ-दर
per year) कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि व्यवसाय में २०,००० रु
और साल भर में 'स्पष्ट लागतों' को काटकर, माना, २४०० रु०
व्यवसायी की दृष्टि से, लाभ की वार्षिक दर १२% होगी।

लाभ जो कि पूँजी के प्रत्येक फेर (turnover) पर प्राप्त हो
'पूँजी के फेर पर लाभ' (profit on turnover) कहता है। प्रायः एक
व्यवसायों) में लगायी गयी पूँजी का साल भर में कई बार हेर-फेर होता
कि एक फुटकर व्यापारी (retailer) १००० रु० की पूँजी से कार्य कर
का माल थोक बाजार में खरीद कर फुटकर बाजार में १ महीने में बेच
वह पुनः १००० रु० का माल खरीदकर १ महीने में फुटकर बाज
प्रकार माना कि वह साल भर में १००० रु० की पूँजी का १२ बार फे
कि उसे प्रत्येक फेर में लगभग ३% का लाभ होता है। पूँ
१००० रु०) का कई बार हेर-फेर होने पर लाभ होता है
जाता है।

यद्यपि फुटकर व्यापारी की लाभ-दर नीची है, परन्तु पूँज
की वार्षिक दर ऊँची हो जाती है। १००० रु० के एक फेर प
लाभ मिलता है; १२ फेर में उसको कुल लाभ ३० × १२ =
१००० रु० की पूँजी से वह फुटकर व्यापारी ३६० रु० प्राप्त
दर $\frac{३६०}{१०००}$ × १०० = ३६% पड़ती है।

पर ध्यान रखना चाहिए कि 'प्रति वर्ष ला
; अतः इनको ज्ञात करने में

३. सामान्य लाभ
(NORMAL PROFIT)

में साहसी के लिए 'सामान्य लाभ' ल
में कार्य करने तथा बनाये रखने के लिए केवल
अभिप्राय है कि जब एक उद्योग में साहसियों अर्थात् फ
में नयी फर्मों के प्रवेश होने की कोई प्रवृत्ति

or an entrepreneur in any industry, is the minimum
to induce him to stay in the industry."

को दृष्टि से एक साहसी द्वारा उठायी जा सकती है। (iii) 'अनिश्चितता' तथा 'एकाधिकार' से उत्पन्न लाभों में एक महत्वपूर्ण अन्तर भी है, और यह अन्तर लाभ के इन दोनों स्रोतों (sources) की सामाजिक वांछनीयता (social desirability) से सम्बन्धित है। प्रावैगिक (dynamic) तथा अनिश्चित आर्थिक वातावरण में निहित जोखिमों को उठाना तथा नव-प्रवर्तनों को ग्रहण करना सामाजिक दृष्टि से वाँछनीय कार्य है। इसके विपरीत एकाधिकारी लाभों की सामाजिक वाँछनीयता अत्यधिक सदेहात्मक है। एकाधिकारी लाभ, स्पर्द्धात्मक कीमतों के ऊपर, उत्पादन संकुचन (restriction) तथा साधनों के जानबूझ कर अनुचित वितरण (contrived misallocation) पर आधारित हैं।[18] संक्षेप में 'जान बूझकर उत्पन्न की गयी कमी' (contrived scarcities) के कारण 'एकाधिकारी लाभ' सामाजिक दृष्टि से अवाँछनीय हैं, जबकि 'नव-प्रवर्तन के कारण एकाधिकारी लाभ' वाँछनीय कहे जा सकते हैं।

६. आकस्मिक लाभ
(WINDFALL PROFITS)

१. परिभाषा (Definition)—आकस्मिक घटना, अवसर या भाग्य (accident, chance or luck) के कारण यकायक अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो जाते हैं जिन्हे 'आकस्मिक लाभ' कहा जाता है।

आकस्मिक लाभ की एक अच्छी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—एकाधिकार के अतिरिक्त, कुछ ऐसी परिस्थितियां होती हैं जो कि आकस्मिक (accidental) तथा अल्पकाल के लिए होती हैं और ये द्रव्य अर्जित करने की दृष्टि से फर्मों को अनुकूल स्थिति में रख देती हैं। ऐसी परिस्थितियों से उत्पन्न अतिरिक्त प्रतिफलों को 'आकस्मिक लाभ' कहा जा सकता है।"[19]

२. व्याख्या (Explanation)—उदाहरणार्थ, यकायक युद्ध छिड़ जाने से किसी वस्तु की कमी के कारण उसकी कीमत बहुत बढ़ जाती है और ऐसी स्थिति में उन व्यापारियों को, जिनके पास उस वस्तु के स्टाक हैं, बहुत अधिक लाभ प्राप्त होते हैं जिन्हें 'आकस्मिक लाभ' कहा जाता है। भाग्यवश यदि किसी व्यक्ति को एक लॉटरी (lottery) का एक लाख का प्रथम पुरस्कार मिल जाता है तो यह 'आकस्मिक लाभ' होगा।

अब हम दो और, परन्तु महत्वपूर्ण, उदाहरण देते हैं। माना दो फर्में 'A' तथा 'B' एक प्रकार की वस्तु का उत्पादन कर रही हैं। माना फर्म A में श्रमिकों की आकस्मिक हड़ताल हो जाती है जो कि लगभग १ महीने चलती है। परिणामस्वरूप फर्म B को एक महीने की अल्पावधि में 'आकस्मिक लाभ' प्राप्त होंगे क्योंकि वह अब अपनी वस्तु को ऊँची कीमत पर बेचकर अथवा पहले की कीमत पर ही बहुत अधिक मात्रा में बेचकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकेगी। यहाँ पर आकस्मिक घटना (अर्थात् हड़ताल) एक फर्म (अर्थात् फर्म B) के लिए आकस्मिक लाभ उत्पन्न करती है तथा दूसरी फर्म (अर्थात् फर्म A) के लिए हानि।

---

18 "Bearing the risks inherent in a dynamic and uncertain economic environment and the undertaking of [illegible] socially desirable functions. The social desirability of [illegible] great doubt. Monopoly profits [illegible] competitive prices, and a contrived [illegible]"

19 "In addition to monopoly, there is a large family of circumstances, accidental and short lived, which place some firms in a favourable spot to make money. The extra returns resulting may be called windfall profits."

४. अतिरिक्त लाभ या असामान्य लाभ
(EXCESS OR ABNORMAL OR SUPERNORMAL PROFIT)

(i) **जब एक साहसी की आय सामान्य लाभ से अधिक होती है तो उसे 'अतिरिक्त ला[भ]' या 'असामान्य लाभ'** (excess or supernormal profit) कहते हैं।

(ii) अतिरिक्त लाभ, सामान्य लाभ की भाँति, साहसी को किसी उद्योग में कार्य क[रने] तथा उसमें बने रहने के लिए आवश्यक नहीं होता। दूसरे शब्दों में, अतिरिक्त लाभ, सामान्य ला[भ] की भाँति, लागत का अंग नहीं होता।

(iii) जब 'विशुद्ध लाभ' (pure profit) या 'अतिरिक्त लाभ' (excess profit)[16] शू[न्य] होता है तो इसका अभिप्राय है कि साहसी को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है। दूसरे [शब्दों] में, 'शून्य विशुद्ध लाभ' ('zero pure profit' or simply 'zero profit') तथा 'सामान्य लाभ' (normal profit) एक ही बात हैं।

(iv) सामान्य लाभ कभी ऋणात्मक नहीं हो सकता जबकि अतिरिक्त लाभ ऋणात्मक हो सकता है अर्थात् हानि को 'ऋणात्मक लाभ' कहा जाता है।

५. एकाधिकारी लाभ
(MONOPOLY PROFIT)

जब लाभ एकाधिकारी स्थिति के कारण प्राप्त होते हैं तो उन्हें 'एकाधिकारी लाभ' कहा जाता है। एक वस्तु को उत्पादित करने वाली कुछ बड़ी फर्में आपस में समझौता करके नयी फर्मों के प्रवेश को रोक सकती हैं और एकाधिकारी स्थिति प्राप्त कर सकती हैं; पेटेण्ट, कापीराइट, कच्चे माल की अधिकांश पूर्ति पर अधिकार, इत्यादि एकाधिकार के कारण हो सकते हैं। एक एकाधिकारी नयी फर्मों के प्रवेश को रोकने की योग्यता रखता है, परिणामस्वरूप वह अपने उत्पादन को संकुचित करके ऊँची कीमत रखता है और दीर्घकाल में भी असामान्य या अतिरिक्त लाभ प्राप्त करता है। चूँकि ये अतिरिक्त लाभ, लगान की भाँति, सीमितता के कारण प्राप्त होते हैं और दीर्घकाल में भी रहते हैं, इसलिए 'एकाधिकारी लाभ' लगान के अधिक निकट होते हैं और इन्हें 'एकाधिकारी लगान' (Monopoly Rent) भी कहा जाता है।

अब हम **लाभ के स्रोत** (source) **के रूप में 'अनिश्चितता'** (uncertainty) **तथा 'एकाधिकार' के बीच सम्बन्ध तथा अन्तर** (distinction) **की विवेचना करते हैं**—(i) एक साहसी एकाधिकारी शक्ति प्राप्त करके अनिश्चितता को कम कर सकता है अथवा उसके प्रभावों को अपने [स्]वार्थ के लिए काम में ला सकता है। एक स्पर्द्धात्मक (competitive) फर्म बाजार की अनिय[मि]तताओं (vagaries) के प्रति अरक्षित रहती है, जबकि एक एकाधिकारी बाजार को एक सीमा तक नियन्त्रित कर सकता है और इस प्रकार महत्वपूर्ण तरीके से अनिश्चितता के कुप्रभावों को समाप्त कर सकता है या उन्हें न्यूनतम कर सकता है।[17] (ii) इसके अतिरिक्त नव-प्रवर्तन (innovation) एकाधिकार का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है; नये तकनीकों के लागू करने या नयी वस्तुओं के उत्पादन करने से उत्पन्न अल्पकालीन अनिश्चितता एकाधिकारी शक्ति को अर्जित करने

---

16 What Marshall's would call 'abnormal profits' is designated by Clark as 'pure profit'.

17 "An entrepreneur can reduce uncertainty, or at least manipulate its effect, by achieving monopoly power. The competitive firm is unalterably exposed to the vagaries of the market; the monopolist, however, can control the market to a degree and thereby offset or minimize potentially adverse effects of uncertainty."

की दृष्टि से एक साहसी द्वारा उठायी जा सकती है। (iii) 'अनिश्चितता' तथा 'एकाधिकार' से उत्पन्न लाभों में एक महत्वपूर्ण अन्तर भी है, और यह अन्तर लाभ के इन दोनों स्रोतों (sources) की सामाजिक वांछनीयता (social desirability) से सम्बन्धित है। प्रावैगिक (dynamic) तथा अनिश्चित आर्थिक वातावरण में निहित जोखिमों को उठाना तथा नव-प्रवर्तनों को ग्रहण करना सामाजिक दृष्टि से वांछनीय कार्य है। इसके विपरीत एकाधिकारी लाभों की सामाजिक वांछनीयता अत्यधिक सदेहात्मक है। एकाधिकारी लाभ, स्पर्द्धात्मक कीमतों के ऊपर, उत्पादन संकुचन (restriction) तथा साधनों के जानबूझ कर अनुचित वितरण (contrived misallocation) पर आधारित हैं।[18] संक्षेप में 'जान बूझकर उत्पन्न की गयी कमी' (contrived scarcities) के कारण 'एकाधिकारी लाभ' सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय हैं, जबकि 'नव-प्रवर्तन के कारण एकाधिकारी लाभ' वांछनीय कहे जा सकते हैं।

६. आकस्मिक लाभ
(WINDFALL PROFITS)

१. परिभाषा (Definition)—आकस्मिक घटना, अवसर या भाग्य (accident, chance or luck) के कारण यकायक अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो जाते हैं जिन्हें 'आकस्मिक लाभ' कहा जाता है।

आकस्मिक लाभ की एक अच्छी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—"एकाधिकार के अतिरिक्त, कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जो कि आकस्मिक (accidental) तथा अल्पकाल के लिए होती हैं और ये द्रव्य अर्जित करने की दृष्टि से फर्मों को अनुकूल स्थिति में रख देती हैं। ऐसी परिस्थितियों से उत्पन्न अतिरिक्त प्रतिफलों को 'आकस्मिक लाभ' कहा जा सकता है।"[19]

२. व्याख्या (Explanation)—उदाहरणार्थ, यकायक युद्ध छिड़ जाने से किसी वस्तु की कमी के कारण उसकी कीमत बहुत बढ़ जाती है और ऐसी स्थिति में उन व्यापारियों को, जिनके पास उस वस्तु के स्टाक हैं, बहुत अधिक लाभ प्राप्त होते हैं जिन्हें 'आकस्मिक लाभ' कहा जाता है। भाग्यवश यदि किसी व्यक्ति को एक लॉटरी (lottery) का एक लाख का प्रथम पुरस्कार मिल जाता है तो यह 'आकस्मिक लाभ' होगा।

अब हम दो और, परन्तु महत्वपूर्ण, उदाहरण देते हैं। माना दो फर्में 'A' तथा 'B' एक प्रकार की वस्तु का उत्पादन कर रही हैं। माना फर्म A में श्रमिकों की आकस्मिक हड़ताल हो जाती है जो कि लगभग १ महीने चलती है। परिणामस्वरूप फर्म B को एक महीने की अल्पावधि में 'आकस्मिक लाभ' प्राप्त होंगे क्योंकि वह अब अपनी वस्तु को ऊँची कीमत पर बेचकर अथवा पहले की कीमत पर ही बहुत अधिक मात्रा में बेचकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकेगी। यहाँ पर आकस्मिक घटना (अर्थात् हड़ताल) एक फर्म (अर्थात् फर्म B) के लिए आकस्मिक लाभ उत्पन्न करती है तथा दूसरी फर्म (अर्थात् फर्म A) के लिए हानि।

---

18 "Bearing the risks inherent in a dynamic and uncertain economic environment and the undertaking of innovations are socially desirable functions. The social desirability of monopoly profit, on the other hand, is subject to very great doubt. Monopoly profits typically are founded upon output restriction, above competitive prices, and a contrived misallocation of resources."

19 "In addtion to monopoly, there is a large family of circumstances, accidental and short lived, which place some firms in a favourable spot to make money. The extra returns resulting may be called windfall profits."

दूसरा उदाहरण लीजिए जिसमें भाग्य, अवसर या एक आकस्मिक घटना एक ही फर्म के लिए 'अनिश्चितता' तथा 'एक मात्र लाभकारी स्थिति' दोनों का मिश्रण (mixture) उत्पन्न कर सकती है। यकायक युद्ध छिड़ जाने के कारण किसी वस्तु विशेष की माँग बहुत बढ़ सकती है तो इस वस्तु को उत्पादित करने वाली फर्म को (वस्तु की ऊँची कीमत के परिणामस्वरूप) अत्यधिक लाभ अर्थात् 'आकस्मिक लाभ' प्राप्त होंगे। वस्तु की अधिक माँग तथा ऊँची कीमत के कारण फर्म का लागत-ढाँचा (cost structure) ऊँचा हो सकता है जिसके कारण फर्म के लिए अनिश्चितता भी उत्पन्न होगी क्योंकि युद्ध समाप्त हो जाने के बाद वस्तु की माँग तथा कीमत गिर सकती हैं और शाँति-काल (peace time) में ऊँचे लागत-ढाँचे को बनाये रखना कठिन होगा और फर्म को हानि हो सकती है। स्पष्ट है कि युद्ध की आकस्मिक घटना से एक ही फर्म के लिए 'अनुकूल स्थिति' (favoured position) तथा 'अनिश्चितता' (uncertainty) दोनों का मिश्रण उत्पन्न होता है।

३. **निष्कर्ष** (Conclusion)—(i) अनेक आकस्मिक घटनाओं के कारण अनिश्चितता उसी प्रकार से उत्पन्न हो सकती है जिस प्रकार कि प्रावैगिक (dynamic) परिवर्तनों के कारण। कुछ दशाओं में भाग्य, अवसर या आकस्मिक घटना एक ही फर्म को 'अनिश्चितता' तथा 'एक मात्र लाभकारी स्थिति' (exclusively favourable position) का मिश्रण प्रदान करती है। कुछ अन्य दशाओं में यह कुछ फर्मों के लिए आकस्मिक लाभ उत्पन्न करती है और कुछ अन्य फर्मों के लिए केवल हानि। आकस्मिक लाभ का सार (essence) इस परिस्थिति में निहित है कि अनुकूल स्थिति (favoured position) प्रवेश से समाप्त नहीं होती तथा आकस्मिक हानियाँ फर्मों के तात्कालिक बहिर्गमन (exit) से नहीं रुक पाती हैं। वास्तव में पूर्ति की बेलोचता (inflexibility) आकस्मिक लाभों के कारण की व्याख्या करती है।[20]

(ii) परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि एक विस्तृत अर्थ में सीमित प्रवेश या बहिर्गमन अर्थात् पूर्ति की बेलोचताएँ लाभ के उत्पन्न होने की सभी स्थितियों से सम्बन्धित होती हैं—अर्थात् अनिश्चितता की स्थितियों में उत्पन्न लाभ का सम्बन्ध पूर्ति की बेलोचता से होता है, अनिश्चितता चाहे नव-प्रवर्तन के कारण हो या अन्य परिवर्तनों के कारण; 'अनुकूल स्थिति' की दशाओं में उत्पन्न लाभ भी पूर्ति की बेलोचता से सम्बन्ध रखता है, 'अनुकूल स्थिति' चाहे एकाधिकार के कारण हो अथवा आकस्मिक घटना के कारण।[21]

७. 'लाभ' तथा 'लाभों' (PROFIT AND PROFITS)

कुछ अर्थशास्त्री (जैसे Ryan तथा Machlup) 'लाभ' ('profit') तथा 'लाभों' (profits) में भेद करते हैं तथा इन्हें कार्यात्मक दृष्टि से (operationally) परिभाषित करते हैं।

"लाभ से हमारा अर्थ उस विशुद्ध आगम से है जो कि एक फर्म भविष्य में एक समयावधि के अन्तर्गत प्राप्त करने की आशा करती है; लाभों से हमारा अर्थ उस विशुद्ध आगम

[illegible]ce of windfall profit dwells in the circumstances that the favoured position [illegible]oved by the instantaneous entry of new firms, and accidental losses are not [illegible]by the immediate exit of firms. It is the inflexibility of supply that accounts [illegible]ndfall profits.

[illegible]It may be kept in mind that "in a broad sense restricted entry and exit or inflexibi[illegible]s of supply seem to be associated with profit in all cases in which they appear—in [illegible]ses of *uncertainty*, whether fosterd by innovation or other changes, and in cases of *favoured position*, whether created by monopoly or accident.

से है क्योंकि एक फर्म एक निश्चित अवधि के समाप्त होने के बाद प्राप्त करने में सफल होती है।[22]

यदि एक फर्म की उत्पादन तथा बिक्री की योजनाएँ भविष्य में सही सिद्ध होती हैं तो एक निश्चित समय समाप्त होने पर उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में, एक निश्चित अवधि में 'लाभ' तथा 'लाभों' में तुलना इस बात की माप है कि किस सीमा तक एक फर्म ने अपनी योजनाओं में गलती की है; यदि आर्थिक वातावरण समयावधि में अपेक्षाकृत स्थायी है तो हम यह आशा करेंगे कि 'लाभ' तथा 'लाभों' में अन्तर बहुत कम होगा और समाप्त हो जायेगा।[23]

सामान्य लाभ का निर्धारण
(DETERMINATION OF NORMAL PROFIT)

१. प्राक्कथन (Introductoy)

वास्तविक जगत गत्यात्मक (dynamic) है, उसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं, परिणामस्वरूप अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में उसमें अनिश्चितता बनी रहती है। इस अनिश्चितता को उठाने की दृष्टि से व्यक्तियों अर्थात् साहसियों को प्रेरित (induce) करने के लिए एक न्यूनतम पुरस्कार (अर्थात् लाभ) का होना आवश्यक है। यह न्यूनतम पुरस्कार या लाभ की न्यूनतम दर 'सामान्य लाभ' कही जाती है: सामान्य लाभ शुद्ध लाभ (pure profit) का वह अंश है जिसको प्राप्त करने की साहसी आशा करते हैं। यह अनिश्चितता झेलने का कम न हो सकने योग्य न्यूनतम पुरस्कार है जो कि एक समयावधि में साहसियों को उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिए आवश्यक है।[24] यदि साहसियों को उद्योग विशेष में यह न्यूनतम पुरस्कार नहीं मिलता है तो वे इस उद्योग में काम नहीं करेंगे बल्कि दूसरे उद्योग में चले जायेंगे; दूसरे शब्दों में, सामान्य लाभ साहसी की 'हस्तांतरण आय' या 'अवसर लागत' है। अल्पकाल में साहसियों को सामान्य लाभ से अधिक (surplus profit) प्राप्त हो सकता है अर्थात् लाभ में लगान का अंश हो सकता है, परन्तु दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, यह 'अतिरिक्त लाभ' या 'लगान का अंश' समाप्त हो जायेगा और केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

अन्य साधनों की कीमत की भाँति, साहसी की कीमत (अर्थात् सामान्य लाभ) साहसी की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

२. साहसी की माँग (Demand of Entrepreneurship)

माँग पक्ष पर हम सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रयोग करते हैं। फर्मों द्वारा साहसी की माँग उसकी उत्पादकता के कारण की जाती है परन्तु अन्य साधनों की तुलना में साहसी की सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue product) के ज्ञात करने में एक कठिनाई है। साधन श्रम के सम्बन्ध में एक फर्म श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का

22 "By *profit* we mean the [illegible] ring a period of time [illegible] has actually succee-

23 [illegible] iod, then, provides a [illegible] which its plans were [illegible] we would expect the

24 Normal profit is that part of 'pure profit' which is expected by entrepreneurs. It is an irreducible minimum reward for uncertainty-bearing, which entrepreneurs will require, over a period of time, to induce them to stay in a particular industry.

प्रयोग करके कुल आगम में वृद्धि को मालूम करके श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता को ज्ञात कर लेती है, परन्तु एक फर्म साहसी की सीमान्त उत्पादकता इस प्रकार ज्ञात नहीं कर सकती क्योंकि एक फर्म एक साहसी का ही प्रयोग कर सकती है, एक से अधिक का नहीं। परन्तु इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है यदि हम साहसी की सीमान्त उत्पादकता को एक उद्योग के सन्दर्भ में देखें।

एक उद्योग में प्रयुक्त किये जाने वाले साहसियों की संख्या फर्मों की संख्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखती है, उद्योग विशेष में जितनी फर्में होंगी उतने ही साहसी होंगे। यह मान लेना उचित (reasonable) होगा कि उद्योग में फर्मों की संख्या में वृद्धि के साथ प्रत्येक फर्म का लाभ घटेगा (क्योंकि उद्योगों में वस्तु के उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत गिरेगी)। इसका अभिप्राय है कि साहसियों की अधिक संख्या प्रयुक्त होने से उनकी सीमान्त उत्पादकता गिरेगी, अर्थात् साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा (MRP—curve) बाँये से दाँये नीचे की ओर गिरती हुयी होगी जैसा कि चित्र नं० १ में दिखाया गया है। **सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था (economy as a whole) के लिए भी साहसियों की माँग ज्ञात की जा सकती है।** सभी उद्योगों से सम्बन्धित साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता रेखाओं को जोड़ देने से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए साहस (entreprenuership) की माँग ज्ञात हो जायेगी।
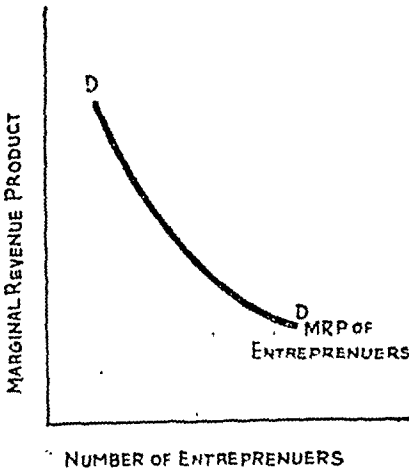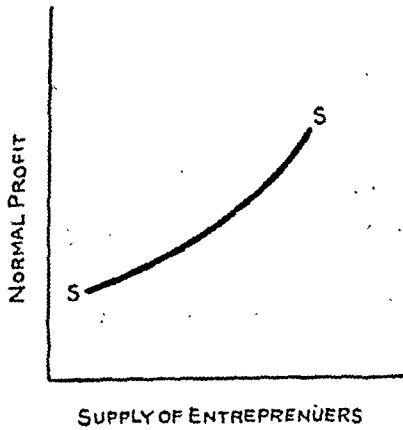
चित्र—१

३. साहस की पूर्ति (*Supply of Entreprenuership*)

'सामान्य लाभ' साहसी का पूर्ति मूल्य (supply price) है; सामान्य लाभ वह न्यूनतम पूर्ति मूल्य है जो कि समाज (अर्थात् सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था) को अनिश्चितता झेलने की पूर्ति (supply of uncertainty-bearing) को बनाए रखने के लिए देना पड़ेगा।[25] यदि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में लाभ-दर ऊँची होगी तो साहसियों की पूर्ति अधिक होगी, लाभ-दर नीची होगी तो साहसियों की पूर्ति कम होगी। इस प्रकार लाभ-दर तथा साहसियों की पूर्ति में सीधा सम्बन्ध होगा और इसलिए, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से साहसियों की पूर्ति रेखा ऊपर की ओर चढ़ती हुयी होगी जैसा कि चित्र न० २ में दिखाया गया है।

चित्र—२

25 "Profit exclusive of any rent element—i. e. what is termed 'normal profit'—is the supply price of entreprenuership, the price which society must pay to maintain *the supply of* uncertainty-bearing."

४. सामान्य लाभ निर्धारण (Determination of Normal Profit)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था (economy as a whole) की दृष्टि साहसी का मूल्य अर्थात् सामान्य लाभ उस न्दु पर निर्धारित होगा जहाँ साहसियों की ग रेखा तथा पूर्ति रेखा एक दूसरे को काटती । चित्र नं ३ में D D तथा S S रेखाएँ R न्दु पर काटती हैं, अतः सामान्य लाभ R Q ा P O) निर्धारित होगा और साहसियों की ग तथा पूर्ति दोनों O Q के बराबर होगी । ामान्य लाभ को P L रेखा द्वारा भी व्यक्त या जा सकता है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता के न्तर्गत प्रत्येक उद्योग इस सामान्य लाभ के स्तर । स्वीकार करेगा ।

DEMAND AND SUPPLY OF ENTREPRENEURS IN LONG PERIOD
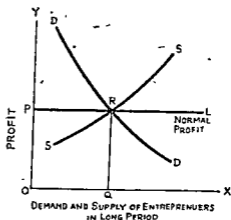
चित्र—३

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग उस सामान्य लाभ को दिया हुआ मान लेगा जो कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे साहसियो की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है । दूसरे शब्दों मे, प्रत्येक उद्योग चित्र नं० ३ की P L सामान्य लाभ रेखा को दिया हुआ मान लेगा; इसका अभिप्राय है कि एक उद्योग के लिए सामान्य लाभ रेखा (या साहसियों की पूर्ति रेखा) एक पड़ी हुई रेखा होगी और इस दिये हुए सामान्य लाभ तथा साहसियो की सीमान्त आगम उत्पादकता के अनुसार उद्योग विशेष मे साहसियों की संख्या निर्धारित होगी । चित्र नं० ४ मे सामान्य लाभ रेखा P L तथा साहसी की M R P-रेखा एक दूसरे को T बिन्दु पर काटती हैं, अतः उद्योग विशेष मे प्रयुक्त किये जाने वाले साहसियों की संख्या O M

Y
D
A
SUPPLY CURVE OR NORMAL PROFIT LINE
P
T
L
K
D MRP OF ENTREPRENEURS
O B M N X
NUMBER OF ENTREPRENEURS
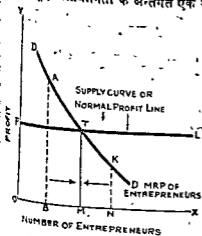
चित्र—४

होगी । दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि साहसी सामान्य लाभ प्राप्त करते हैं । यदि उद्योग मे साहसियों की संख्या O M से कम है, माना कि O B है, तो इसका अभिप्राय है कि इस उद्योग में साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता A B है अर्थात् उन्हें A B लाभ प्राप्त हो रहा है जो कि सामान्य लाभ से अधिक है; इस अतिरिक्त लाभ से आकर्षित होकर साहसियों की संख्या बढ़ेगी (जैसा कि चित्र नं० ४ मे B से M की ओर जाता हुआ तीर बताता है) और बढ़कर वह O M के बराबर हो जायेगी जहाँ पर साहसी की सीमान्त आगम उत्पादकता (M R P) तथा सामान्य लाभ बराबर हैं । इसी प्रकार यदि साहसियों की संख्या O M से अधिक है, माना कि O N है, तो इसका अभिप्राय है कि इस उद्योग मे साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता (M R P) बराबर है K N के, अर्थात् उनको K N लाभ प्राप्त हो रहा है जो कि सामान्य लाभ से कम है; परिणामस्वरूप कुछ साहसी

इस उद्योग को छोड़ देंगे, उनकी संख्या कम होकर (जैसा कि चित्र में N से M की ओर जाता हुआ तीर बताता है) O M के बराबर हो जायेगी जहाँ पर साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता (M R P) तथा सामान्य लाभ बराबर हैं। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग साम्य की स्थिति में तभी होगा जबकि सभी साहसियों (अर्थात् फर्मों) को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक उद्योग, अर्थात् जब उद्योग विशेष में साहसियों या फर्मों के प्रवेश के प्रति रुकावटें अथवा बाधाएँ हैं तब ऐसे उद्योग के लिए साहसियों की पूर्ति रेखा (अर्थात् सामान्य लाभ रेखा) पड़ी हुयी रेखा न होकर ऊपर को चढ़ती हुयी रेखा होगी जैसा कि चित्र नं० ५ में E S रेखा है।[26] चित्र नं० ५ में साहसियों की माँग रेखा D D तथा पूर्ति रेखा E S एक दूसरे को P बिन्दु पर काटती हैं; अतः प्रत्येक साहसी को P Q (या R O) के बराबर पुरस्कार या लाभ प्राप्त होगा तथा प्रयुक्त किये जाने वाले कुल साहसियों की संख्या O Q होगी। O Q साहसियों को प्राप्त होने वाला कुल लाभ O Q×P Q=O Q P R तथा कुल सामान्य लाभ=O Q P E। स्पष्ट है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के
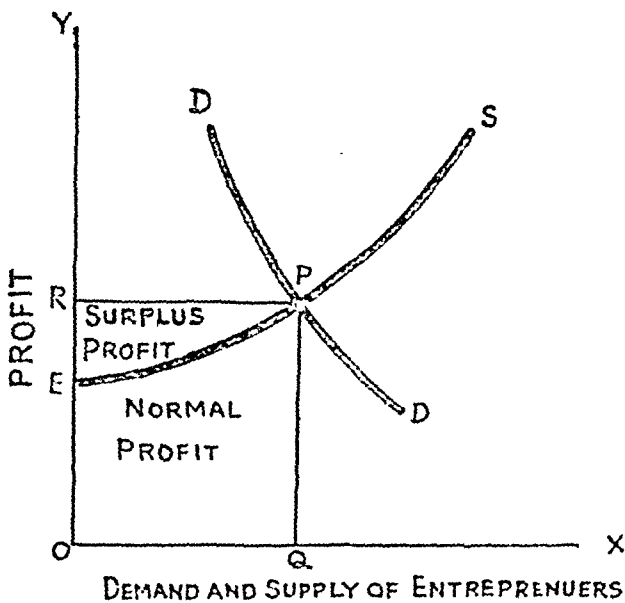
चित्र—५

26 ऊपर को चढ़ती हुई साहसियों की पूर्ति रेखा E S का अभिप्राय है कि अधिक साहसियों को प्रयुक्त करने के लिए ऊँचे पुरस्कार अर्थात् ऊँचे सामान्य लाभ देने पड़ेंगे। पूर्ति रेखा S प्र साहसियों के 'पूर्ति मूल्यों' (अर्थात् 'सामान्य लाभ' के विभिन्न स्तरों') को बताती है जिन पर कि साहसियों की विभिन्न संख्या उद्योग विशेष में कार्य करने को तत्पर है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग यदि साहसियों की O A संख्या (चित्र नं० ६) प्रयुक्त करना चाहता है तो उसे प्रत्येक साहसी को कम से कम D A के बराबर सामान्य लाभ या पूर्ति मूल्य अवश्य देना होगा नहीं तो उद्योग को साहसियों की यह संख्या प्राप्त नहीं होगी। इसी प्रकार उद्योग यदि साहसियों की O B संख्या या O C संख्या या O Q संख्या प्रयुक्त करना चाहता है तो उसे क्रमशः कम से कम B K या C R या Q P के बराबर पूर्ति मूल्य या सामान्य लाभ अवश्य देना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, E S रेखा सामान्य लाभ के विभिन्न स्तरों को बताती है तथा साहसियों की O Q संख्या का कुल सामान्य लाभ (या 'कुल पूर्ति मूल्य' या 'कुल अवसर लागत') E S रेखा के नीचे का क्षेत्रफल O Q P E के बराबर होगा।
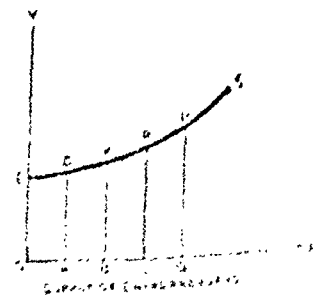
चित्र—६

स्पष्ट है उद्योग विशेष में साहसियों को सामान्य लाभ से अधिक लाभ (अर्थात् एक प्रकार से लगान) प्राप्त हो रहा है; अर्थात्

अतिरिक्त लाभ (excess profit) = कुल लाभ — सामान्य लाभ

= O Q P R — O Q P E

= E P R

4. लाभ-निर्धारण के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातें (Some important points regarding profit determination)

सामान्य लाभ निर्धारण के उपर्युक्त विवेचन के सम्बन्ध में निम्न महत्वपूर्ण बातों को ध्यान रखना आवश्यक है :

(i) उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हम यह मान लेते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी साहसियों के लिए सामान्य लाभ का स्तर एक ही है और इस प्रकार सभी साहसी समान कुशल होते हैं। दूसरे शब्दों में, यह मान लिया जाता है कि सभी साहसी एक रूप (homogeneous) हैं अर्थात् समान योग्यता रखते हैं। स्पष्ट है कि यह मान्यता अवास्तविक है।

पर, व्यवहार में दीर्घकाल में भी कुछ साहसी ऐसे होंगे जो सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त करेंगे, इस अतिरिक्त लाभ को 'योग्यता का लगान' (rent of ability) कहा जा सकता है।

(ii) उपर्युक्त विवेचन में एक छिपी हुई मान्यता (implicit assumption) यह है कि सभी उद्योगों में अनिश्चितता की समान मात्रा (same degree of uncertainty) मान ली जाती है। परन्तु यह मान्यता भी अवास्तविक है क्योंकि व्यवहार में कुछ उद्योगों में अनिश्चितता की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है और इसलिए ऐसे उद्योगों में सामान्य लाभ का स्तर, अन्य उद्योगों की तुलना में, अधिक होगा। दूसरे शब्दों में लाभ का एक स्तर जो कि एक साहसी के लिए सामान्य है वह दूसरे के लिए सामान्य से कम तथा तीसरे के लिए सामान्य से अधिक हो सकता है।[27]

परन्तु फिर भी सामान्य लाभ का विचार लाभदायक है क्योंकि "सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए सामान्य लाभ के स्तर का समायोजन (adjustment) करके हम व्यक्तिगत उद्योगों में अनिश्चितता की विभिन्न मात्राओं की जानकारी कर सकते हैं।"[28]

(iii) यदि अर्थव्यवस्था पूर्णतया स्थिर (perfectly static) है, अर्थात जनसंख्या, व्यक्तियों की रुचियों (tastes), टैक्नोलोजी तथा आयों में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो कोई अनिश्चितता नहीं होगी और इसलिए कोई सामान्य लाभ या लाभ नही होंगे, साहसी का 'सामान्य लाभ' वास्तव में केवल 'प्रबन्ध की मजदूरी' (wages of management) होगी।

क्या लाभ समान हो सकते हैं ?
(CAN PROFIT TEND TO EQUALITY ?)

अन्य साधनों के पुरस्कारों की भाँति लाभ की एक सामान्य दर (general rate) असम्भव है:

(i) अधिक जोखिम तथा अनिश्चितता वाले उद्योगों में लाभ अधिक होगा अपेक्षाकृत कम जोखिम वाले और साधारण उद्योगों में। इस प्रकार अल्पकाल में विभिन्न उद्योगों में लाभ की समान दर होने की कोई प्रवृत्ति नहीं होगी।

---

27 "A level of profit which is normal for one entrepreneur may be less than normal for another and more than normal for a third."

28 Yet the concept of normal profit is useful because "by making an adjustment to the level of normal profit for the economy as a whole, we can take account of the varying degrees of uncertainty in individual industries."

(ii) अल्पकाल में एक ही उद्योग में साहसियों की व्यावसायिक योग्यताओं के अनुसार विभिन्न फर्मों में भी लाभ की दरें भिन्न होंगी।

(iii) सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल में विभिन्न उद्योगों में लाभ की एक सामान्य दर हो सकती है। यदि ऐसा नहीं है और लाभ की दरों में अन्तर है, तो साहसी (अर्थात् व्यावसायिक योग्यता) कम लाभ वाले उद्योगों से अधिक लाभ वाले उद्योगों में जायेंगे जब तक सभी उद्योगों में लाभ दर समान न हो जाये। इस प्रकार दीर्घकाल में, सैद्धान्तिक दृष्टि से, विभिन्न उद्योगों में लाभ की एक समान दर होने की प्रवृत्ति कही जा सकती है।

परन्तु दीर्घकाल में विभिन्न उद्योगों में लाभ के समान होने की प्रवृत्ति केवल सैद्धान्तिक तथा काल्पनिक है। वास्तविक संसार प्रावैगिक है जिसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं जो विभिन्न उद्योगों तथा फर्मों में वस्तुओं की कीमतों तथा लागतों में अन्तर उत्पन्न करते रहते हैं और इस प्रकार विभिन्न उद्योगों में लाभ की दरों में भिन्नता बनी रहती है। स्पष्ट है कि वास्तविक संसार में लाभ के समान होने की कोई प्रवृत्ति नहीं हो सकती।